॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

592

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितं

श्रीपद्ममहापुराणम्

हिन्दीटीका–अकारादिश्लोकानुक्रमणी सहित

(पंचम भाग : उत्तर खण्ड - I)

सम्पादक एवं टीकाकार

आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी

(श्रीधराचार्य)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

श्रीपद्ममहापुराणम् (1-7 भाग) – आचार्य शिव प्रसाद द्विवेदी

ISBN : 978-93-85005-30-5 (set)

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण : 2016
₹ 7500 (सात भाग–सम्पूर्ण)

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक :
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

|| Shri ||
Chaukhamba Surbharti Prakashan
592

Śrīmanmaharṣikṛṣṇadvaipāyanavyāsaviracitaṁ

ŚRĪPADMAMAHĀPUĀṆAM

Hindi Commentary with Śloka Index

(Part V : Uttara Khaṇḍa - I)

Edited with Hindi Commentary by :
Acharya Shivprasad Dvivedi
(Shridharacharya)

Chaukhamba Surbharti Prakashan
Varanasi

ŚRĪPADMAMAHĀPUĀṆAM – Shivprasad Dvivedi

ISBN : 978-93-85005-30-5 (set)

Published by :
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(*Oriental Publishers or Distributors*)
K 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001 (India)
Tel. : +91-542-2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

Edition 2016
₹ 7500 (1-7 Part Complete)

Also can be had from :
CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road, Daryaganj
New Delhi 110002
Tel : +91-11-32996391, +91-11-23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bunglow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

*

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

Printed by :
A. K. Lithographer
Delhi

विषयानुक्रम

६. उत्तर खण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१.	महेश नारद संवादान्तर्गत शङ्करजी द्वारा उत्तर खण्ड के वर्ण्य विषयों का वर्णन	२६०६
२.	बदरी नारायण का माहात्म्य	२६११
३.	युधिष्ठिर नारद संवादान्तर्गत जालन्धर की उत्पत्ति का वर्णन	२६१३
४.	जालन्धर के साथ वृन्दा का विवाह वर्णन	२६१८
५.	क्षीर सागर के मन्थन का कारण जानने के लिए जालन्धर द्वारा इन्द्र के पास दूत भेजना	२६२३
६.	दैत्य सेना का देव सेना के साथ युद्ध	२६२६
७.	विष्णु आदि देवताओं का कालनेमि आदि दैत्यों के साथ द्वन्द्व युद्ध	२६३१
८.	जालन्धर द्वारा इन्द्र का पराजय	२६३६
९.	जालन्धर द्वारा सभी देवताओं को परास्त करके सुराज्य की स्थापना का वर्णन	२६४३
१०.	शङ्करजी द्वारा सभी देवताओं के तेज से चक्र का निर्माण	२६४५
११.	नारदजी द्वारा जालन्धर के समक्ष पार्वतीजी के सौन्दर्य का वर्णन	२६४९
१२.	जालन्धर की युद्ध के लिए यात्रा	२६५३
१३.	शुम्भ आदि का नन्दी आदि से युद्ध	२६६०
१४.	शिवजी तथा जालन्धर का घोर संग्राम	२६६५
१५.	जालन्धर के द्वारा पार्वती से किए जाने वाले छल को जानकर भगवान् विष्णु द्वारा वृन्दा का हरण करने के लिए प्रयत्न करना	२६७०
१६.	भगवान् विष्णु का तपस्वी का वेष धारण करना	२६७७
१७.	माया शिव जालन्धर की परीक्षा के लिए पार्वतीजी द्वारा पहले अपनी सखी को उसके पास भेजा जाना	२६८३
१८.	जालन्धर का शङ्करजी के साथ युद्ध	२६८७
१९.	दैत्यो का शिवजी के गणों के साथ युद्ध	२६९५
२०.	श्रीशैल का माहात्म्य वर्णन	२७०८
२१.	हरिद्वार का माहात्म्य वर्णन	२७१०
२२.	गङ्गाजी के पृथिवी पर जाने का वर्णन पूर्वक हरिद्वार की प्रशंसा	२७१४
२३.	गङ्गा, यमुना, प्रयाग, काशी तथा गया गदाधर की स्तुति का वर्णन	२७१६
२४.	प्रयागतीर्थ का माहात्म्य	२७२४
२५.	तुलसी तथा शालग्राम का माहात्म्य वर्णन	२७२६
२६.	तुलसी त्रिरात्र व्रत की विधि और उसके माहात्म्य का वर्णन	२७३१
२७.	सभी दानों में अन्नदान की मुख्यता का वर्णन	२७३५

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२८.	जलदान इत्यादि की प्रशंसा	२७३७
२९.	इतिहास पुराण के पाठ की प्रशंसा के प्रकरण में धर्मपाल के वृत्तान्त का वर्णन	२७४१
३०.	गोपीचन्दन के माहात्म्य का वर्णन	२७४५
३१.	कार्तिक शुक्ल एकादशी को दीपव्रत के विधान का वर्णन	२७४८
३२.	हरिश्चन्द्र तथा सनत्कुमार के संवादान्तर्गत जन्माष्टमी व्रत के विधान का वर्णन	२७५८
३३.	पृथिवी दान तथा वस्त्र दान का माहात्म्य	२७६२
३४.	रोहिणी मे शनि के जाने से रोकने का महाराज दशरथ का प्रयत्न	२७६८
३५.	प्राची माधव और जाह्नवी संवादान्तर्गत त्रिस्पृशा एकादशी व्रत की विधि का वर्णन	२७७३
३६.	उन्मीलनी एकादशी व्रत की विधि का वर्णन	२७८२
३७.	पक्षवर्द्धिनी एकादशी व्रत की विधि का वर्णन	२७८८
३८.	एकादशी के दिन जागरण करने का माहात्म्य	२७९१
३९.	जया, विजया और जयन्ती नामक एकादशियों का माहात्म्य वर्णन	२७९९
४०.	मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की मोक्षदा एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८०९
४१.	पौष मास के कृष्ण पक्ष की सफला एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८१३
४२.	पौष मास के शुक्ल पक्ष की पुत्रदा एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८१८
४३.	माघ कृष्णपक्ष की षट्तिला एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८२२
४४.	माघमास के शुक्लपक्ष की जया एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८२७
४५.	फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की विजया एकादशी का माहात्म्य	२८३२
४६.	फाल्गुन शुक्ल पक्ष की आमलकी एकादशी के माहात्म्य का वर्णन	२८३६
४७.	चैत्रकृष्ण पक्ष की पापमोचनी एकादशी का माहात्म्य	२८४१
४८.	चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की कामदा एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८४६
४९.	वैशाख मास के कृष्ण पक्ष की वरूथनी एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८५०
५०.	वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की मोहिनी एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८५२
५१.	ज्येष्ठमास के कृष्ण पक्ष की अपरा नामक एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८५६
५२.	ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की निर्जला एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८५८
५३.	आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष की योगिनी एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८६३
५४.	आषाड शुक्ल पक्ष की हरि शयनी एकादशी का माहात्मय वर्णन	२८६७
५५.	श्रावण कृष्ण पक्ष की कामिका एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८७०
५६.	श्रावण मास के शुक्लपक्ष की पुत्रदा एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८७३
५७.	भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अजा एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८७८
५८.	भाद्रपद शुक्ल पक्ष की पद्मा एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८८०
५९.	आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की इन्दिरा एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८८३
६०.	आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की पाशाङ्कुशा एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८८७
६१.	कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की रमा एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८८९
६२.	कार्तिक शुक्ल पक्ष की प्रबोधिनी एकादशी का माहात्म्य वर्णन	२८९४
६३.	पुरुषोत्तम मास के कृष्णपक्ष की कमला एकादशी का माहात्म्य	२९००
६४.	पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की कामदा एकादशी का माहात्म्य	२९०४
६५.	चातुर्मास्य व्रत की विधि का वर्णन	२९०६

अध्याय	विषय	पृष्ठ
६६.	चातुर्मास्य व्रत की उद्यापन की विधि	२९१६
६७.	यम की आराधन तथा वैतरणी व्रत का विधान वर्णन	२९१८
६८.	वैष्णव का लक्षण तथा माहात्म्य वर्णन	२९२६
६९.	श्रावण द्वादशी व्रत की विधि का वर्णन	२९२८
७०.	नदी त्रिरात्र व्रत का माहात्म्य वर्णन	२९३३
७१.	भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन	२९३६
७२.	विष्णुसहस्रनाम की महिमा का वर्णन	२९७६
७३.	श्रीराम रक्षा स्तोत्र	२९७८
७४.	धर्म प्रशंसा पूर्वक दान धर्म का माहात्म्य वर्णन	२९७९
७५.	गण्डिका तीर्थ का माहात्म्य वर्णन	२९८२
७६.	आभ्युदयिकौर्ध्वदेहिक स्तोत्र	२९८४
७७.	ऋषि पञ्चमी व्रत की विधि	२९८८
७८.	अपामार्जनस्तोत्र	२९९३
७९.	अपामार्जन स्तोत्र के पाठ की विधि और उसका माहात्म्य	३००१
८०.	भगवान् विष्णु का माहात्म्य वर्णन	३००३
८१.	गङ्गा माहात्म्य वर्णन	३०१६
८२.	वैष्णव का लक्षण वर्णन	३०२०
८३.	सभी मासों की विधि का वर्णन	३०२३
८४.	चैत्र शुक्ल द्वादशी के दिन दमनक महोत्सव का वर्णन	३०२७
८५.	वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ महीनों में श्रीभगवान् का जलशयन महोत्सव वर्णन	३०३०
८६.	पवित्रारोपण विधि का वर्णन	३०३३
८७.	चैत्र आदि मासों के क्रम से चम्पा इत्यादि के पुष्पों से भगवान् विष्णु का पूजन	३०३७
८८.	कार्तिक माहात्म्य वर्णन	३०३९
८९.	गुणवती द्वारा कार्तिक मास का सेवन करने से सत्यभामात्व की प्राप्ति	३०४३
९०.	पृथु नारद संवाद के अन्तर्गत शङ्खासुर के आख्यान का वर्णन	३०४६
९१.	भगवान् विष्णु का मत्स्यावतार धारण करके शङ्खासुर के वध का वर्णन	३०४९
९२.	कार्तिक व्रत करने वालों के नियमों का वर्णन	३०५२
९३.	कार्तिक स्नान और अर्घ्य आदि का वर्णन	३०५५
९४.	कार्तिक मास में अनुष्ठेय नियमों का वर्णन	३०५८
९५.	कार्तिक व्रत के उद्यापन की विधि का वर्णन	३०६०
९६.	तुलसी माहात्म्य के प्रसङ्ग में जालन्धर की उत्पत्ति का वर्णन	३०६३
९७.	जलन्धर दैत्य के द्वारा देवताओं की पराजय पूर्वक अमरावती विजय का वर्णन	३०६७
९८.	जालन्धर दैत्य के भय से भयभीत देवताओं द्वारा सङ्कट नाशक विष्णु स्तोत्र वर्णन	३०७०
९९.	नारदजी के मुख से पार्वतीजी के सौन्दर्यातिशय को सुनकर जालन्धर का शिवजी के पास दूत भेजना	३०७३
१००.	शिवजी द्वारा सभी देवताओं के तेज से चक्र का निर्माण	३०७६
१०१.	नन्दी आदि का कालनेमि आदि के साथ द्वन्द युद्ध	३०७९
१०२.	शिवजी द्वारा जालन्धर का पराजय वर्णन	३०८२

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१०३.	दु:स्वप्न देखकर उद्विग्न वृन्दा का वनों में भ्रमण	३०८५
१०४.	शङ्करजी द्वारा युद्ध में जालन्धर का वध	३०८८
१०५.	तीन बीजों से उत्पन्न आँवला, मालती और तुलसी को देखने से भगवान् विष्णु के भ्रम का नाश	३०९१
१०६.	कलहा चरित्र वर्णन	३०९३
१०७.	तुलसी मिश्रित जल के प्रक्षेप से कलहा को दिव्य देह की प्राप्ति का वर्णन	३०९७
१०८.	धर्मदत्त और भगवान् विष्णु के गण के संवादान्तर्गत विष्णुव्रत का माहात्म्य	३१००
१०९.	विष्णुदास ब्राह्मण और चोलराज की नि:सीम भक्ति से वैकुण्ठ की प्राप्ति	३१०३
११०.	जय विजय दोनों के पूर्वजन्म के वृत्तान्त का वर्णन	३१०६
१११.	कृष्णा वेणी आदि अनेक नदियों का माहात्म्य वर्णन	३१०९
११२.	एकादशी, माघ, कार्तिक, तुलसी एवं द्वारका का माहात्म्य वर्णन	३११३
११३.	कार्तिक व्रत की प्रशंसा और धनेश्वर ब्राह्मण का वृत्तान्त	३११६
११४.	धनेश्वर का धनयक्ष के नाम से कुबेर के भृत्यत्व की प्राप्ति	३११९
११५.	अश्वत्थ वट की प्रशंसा	३१२२
११६.	अश्वत्थ वृक्ष की अस्पृश्यता वर्णन के प्रसङ्ग में अलक्ष्मी का वृतान्त वर्णन	३१२५
११७.	शिवषडानन संवाद के अन्तर्गत कार्तिक स्नान के महात्म्य का वर्णन	३१२८
११८.	कार्तिक में तिल तथा गो दान का माहात्म्य	३१३१
११९.	माघ स्नान आदि का माहात्म्य	३१३७
१२०.	शालग्राम पूजन का वर्णन	३१४१
१२१.	दीप, गन्ध, और आँवले का माहात्म्य	३१४९
११२.	दीपावली का माहात्म्य वर्णन	३१५२
१२३.	प्रबोधिनी एकादशी का माहात्म्य	३१६०
१२४.	माघमास का माहात्म्य वर्णन	३१६८
१२५.	माघ माहात्म्यन्तर्गत कार्तवीर्य और दत्तात्रेय संवाद का वर्णन	३१८२
१२६.	माघ स्नान की विधि का वर्णन	३१८९
१२७.	माघ स्नान के फल का वर्णन	३२०४
१२८.	चित्रराजा के वृत्तान्त का वर्णन	३२३१
१२९.	भगवान् विष्णु की महिमा का वर्णन	३२५६
१३०.	शालग्राम शिला के पूजन का माहात्म्य	३२५८
१३१.	भगवान् विष्णु का माहात्म्य वर्णन	३२६१
१३२.	पुष्कर आदि अनेक तीर्थों का माहात्म्य वर्णन	३२७४
१३३.	वेत्रवती नदी का माहात्म्य वर्णन	३२७७
१३४.	साभ्रमती नदी का माहात्म्य वर्णन	३२८०
१३५.	नन्दि तीर्थ की महिमा का वर्णन	३२९०
१३६.	विकीर्ण तीर्थ का माहात्म्य वर्णन	३२९२
१३७.	श्वेता तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन	३२९४

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितं

श्रीपद्ममहापुराणम्

हिन्दीटीका–अकारादिश्लोकानुक्रमणी सहित

षष्ठ उत्तर खण्ड

पहला अध्याय

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥२॥

ऋषय ऊचुः

श्रुतं पातालखण्डं च त्वयाऽऽख्यातं विदांवर ।
नानाख्यानसमायुक्तं परमानन्ददायकम् ॥३॥
अधुना श्रोतुमिच्छामो भगवद्भक्तिवर्धनम्। पाद्मे यच्छेषमस्तीह तद्ब्रूहि कृपया गुरो ! ॥४॥

सूत उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वेः यदुक्तं शङ्करेण हि। पृच्छते नारदायैव विज्ञानं पापनाशनम् ॥५॥
एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः । गतोऽद्रिं मन्दरं शम्भुं प्रष्टुं किञ्चिन्मनोगतम् ॥६॥
तत्रासीनमुमानाथं प्रणिपत्य शिवाज्ञया । उपविष्टः समादिष्ट आसनेऽभिमुखो विभोः ॥
पप्रच्छ चेदमेवेशं यन्मा पृच्छथ सत्तमाः ॥७॥

नारद उवाच

भगवन्देवदेवेश ! पार्वतीश ! जगद्गुरो ! ।
भगवत्तत्त्वविज्ञानं येन स्यात्तन्ममादिश ॥८॥

महेश नारद संवादान्तर्गत शङ्करजी द्वारा उत्तर खण्ड के वर्ण्य विषयों का वर्णन

ओम् यह श्रीभगवान् का प्रथम नाम है । सभी कार्यों के प्रारम्भ में इसका स्मरण करना चाहिए । भगवान् नारायण को नरों में उत्तम नर को, सरस्वती देवी को तथा व्यासजी को नमस्कार करके जय शब्दोपलक्षित इस पुराण का वाचन करना चाहिए ॥१॥ अज्ञान रूपी घोर अन्धकार से अज्ञानी बने हुए मेरी आँखों को जिन्होंने ज्ञान रूपी अञ्जन की शलाका से खोल दिया उन श्रीगुरुदेव को मेरा नमस्कार है ॥२॥ **ऋषियों ने कहा—** हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ सूतजी ! अनेक कथाओं से परिपूर्ण, परमानन्दप्रद एवं आपके द्वारा वर्णित पाताल खण्ड का हमलोगों ने श्रवण किया है ॥३॥ हे गुरो ! अब पद्मपुराण का जो अवशिष्ट अंश है, उस श्रीभगवान् की भक्ति को बढ़ाने वाले अंश को हमलोग सुनना चाहते हैं । कृपा करके आप उसे ही सुनायें ॥४॥ **सूतजी ने कहा—** प्रश्नकर्त्ता नारदजी को जिस पाप विनाशक विज्ञान को शङ्करजी ने बतलाया था हे मुनिगण ! आपलोग उसको ही सुनें ॥५॥ एक बार श्रीभगवान् के प्रिय भक्त नारदजी पर्यटन करते हुए अपने मन की कुछ बातों को पूछने के लिए मन्दराचल पर्वत पर शङ्करजी के पास गये॥६॥ वहाँ पर बैठे हुए पार्वतीजी के पति शिवजी को साष्टाङ्ग-प्रणाम करके तथा शिवजी की आज्ञा प्राप्त करके उनके सामने बैठे हुए नारदजी ने, हे श्रेष्ठ मुनियों ! यही पूछा जो आप लोगों ने हमसे पूछा है ॥७॥ **नारदजी ने कहा—** हे भगवन् ! हे देवाराध्य ! हे पार्वतीपते ! हे जगद्गुरो ! आप हमें उस तत्त्व का उपदेश दें जिससे कि भगवत् तत्त्व के विषय में ज्ञान हो ॥८॥ **शिवजी ने कहा—** हे नारदजी ! मैं वेद के समान पवित्र पद्मोत्तर पुराण को सुना रहा हूँ, उसे आप सुनें । उसको सुनकर मनुष्य सभी पापों

शिव उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि पुराणं वेदसंमितम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥९॥
प्रथमोत्तरकीर्तिः स्यात्पर्वताख्यानमेव च। जालन्धरं तथाऽऽख्यानं श्रीशैलाख्यं ततःपरम्॥१०॥
हरिद्वारस्य व्याख्यानं विष्णुपादोद्भवं तथा । प्रयागतीर्थं ते वक्ष्ये दशाश्वमेधिकं चतत् ॥११॥
तुलसीमहिमा चैव शङ्खचक्रगदादिकम्। द्वारकायास्तथाऽऽख्यानं महोत्सवविधिस्ततः ॥१२॥
तटाकजं तथा पुण्यं वापीकूपप्रपादिजम् । गाणपत्यं ततो वक्ष्ये वैष्णवागममेव च ॥१३॥
जीर्णोद्धारस्य माहात्म्यं मन्दाकिनीसमागमम् ।
साभ्रमत्यास्तु माहात्म्यं माहात्म्यं तीरजं तथा ॥१४॥
स्त्रीशूद्राणां तथा धर्मं तथा त्याज्यैश्च धारणम् ।
उमामहेशसंवादेप्रोक्तं नामसहस्त्रकम् ॥१५॥
कैलासात्तत्समानीतं नारदेनाग्रजन्मना । लोकानां ब्राह्मणानां च क्षत्त्रियणां विशेषतः ॥१६॥
स्त्रीशूद्राणां विशेषेण पठितव्यं समाहितैः । इदं पवित्रं परमं पुण्यमायुष्यवर्धनम् ॥१७॥
पठितव्यं विशेषेण विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।
विष्णोर्नामसहस्त्रं तत्पावनं भुवि विश्रुतम् ॥१८॥
चतुर्विंशतिमूर्तीनां स्थानकानीह संवदे । तेषां च मातापितरावन्तरं च ब्रवीम्यहम् ॥१९॥
गोत्रं वेदांश्च तेषां वै कर्माणीह तथैव च। स्त्रियस्तेषां प्रवक्ष्यामियथाविज्ञानदर्शनात् ॥२०॥

से मुक्त हो जाता है । इसमें कोई भी सन्देह नहीं है ॥९॥ इस खण्ड में सर्वप्रथम उत्तर दिशा की कीर्ति वर्णित है । उसके पश्चात् पर्वतों का वर्णन है । तदनन्तर जालन्धर का उपाख्यान वर्णित है, उसके पश्चात् श्रीशैल का वर्णन है ॥१०। उसके पश्चात् हरिद्वार का वर्णन है तथा गङ्गा की उत्पत्ति का वर्णन है । उसके पश्चात् आपको मैं प्रयाग तीर्थ का वर्णन सुनाऊँगा तदनन्तर दशाश्वमेध का वर्णन करूँगा ॥११॥ फिर तुलसी और शङ्ख, चक्र तथा गदा आदि का वर्णन करूँगा । फिर द्वारका का वर्णन और महोत्सव विधि का वर्णन करूँगा ॥१२॥ मैं तटाक, वापी, कूप तथा प्रपा (प्याऊ) आदि से होने वाले पुण्य का वर्णन करूँगा । फिर मैं गाणपत्यागम तथा वैष्णवागम का वर्णन करूँगा ॥१३॥ फिर जीर्णोद्धार कराने की महिमा तथा गङ्गा सङ्गम का माहात्म्य बतलाऊँगा फिर साभ्रमती तथा उसके तट पर निवास का माहात्म्य बतलाऊँगा ॥१४॥ तदन्तर स्त्रियों तथा शूद्रों के धर्म तथा त्याज्य एवं धार्य वस्तुओं का वर्णन करूँगा । फिर उमा महेश्वर संवादान्तर्गत विष्णु सहस्त्रनाम स्तोत्र का वर्णन करूँगा ॥१५॥ उसको ब्राह्मणश्रेष्ठ नारदजी ने कैलास पर्वत से लाया है । उसको विशेष रूप से संसारी जीवों, ब्राह्मणों, क्षत्त्रियों, स्त्रियों तथा शूद्रों को सावधान होकर पढ़ना चाहिए । यह स्तोत्र अत्यन्त पवित्र है, पुण्य तथा आयु को बढ़ाने वाला है ॥१६-१७॥ इसको विशेष रूप से पढ़ने वाला भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है । वह विष्णु सहस्त्रनाम पवित्र है तथा भूलोक में विख्यात है ॥१८॥ मैं इस खण्ड में भगवान् विष्णु के चौबीस अवतारों के स्थानों का वर्णन करूँगा । उन अवतारों में उनके माता-पिता तथा उनके बीच में होने वाले समय के अन्तराल को भी बतलाऊँगा ॥१९॥ विभिन्न गोत्रों उनके वेदों तथा कर्मों का भी वर्णन करूँगा एवं उनके स्त्रियों का भी वर्णन अपने ज्ञान के अनुसार करूँगा ॥२०॥ चौबीस एकादशियों तथा द्वादशियों की महिमा, गोदावरी

चतुर्विंशत्येकादशीनां द्वादशीनां प्रभावताम्। गोदावर्याश्च माहात्म्यं शङ्खचक्रादिधारणम् ॥२१॥
ब्राह्मणानां विशेषेण धारणंविधिपूर्वकम्। यमुनायाश्च माहात्म्यं गण्डिकायास्तथामुने॥२२॥
वेत्रवत्यास्तु माहात्म्यं वच्म्यहं ते न संशयः ।
गिल्लितीर्थोद्भवं पुण्यं शिलाक्षेत्रं महच्च यत् ॥२३॥
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि खण्डे ह्युत्तरसंज्ञके। अर्बुदेश्वरमाहात्म्यं तत्र तीर्थादिकं यत् ॥२४॥
सरस्वत्याश्च माहात्म्यं सिद्धक्षेत्रादिकं च यत् ।
पद्मनाभसमुत्पत्तिं तुलस्याश्चैव धारणम् ॥२५॥
गोपीचन्दनमाहात्म्यं पट्टपूजां तथैव च। निरञ्जनस्य माहात्म्यं तथा विज्ञानदर्शनम् ॥२६॥
तत्रदीपप्रदानं च धूपदानं विशेषतः। कार्तिकस्याथ माहात्म्यं माहात्म्यं माघजं तथा॥२७॥
सर्वेषां च व्रतानां च माहात्म्यं विधिपूर्वकम् ।
श्रृणु नारद ! वक्ष्यामि जगन्नाथाख्यमुत्तमम् ॥२८॥
यं दृष्ट्वामुच्यते लोको ब्रह्महत्यादिपातकत्। यत्रसिद्धं तथाभुक्तं पारलौकिकदायकम्॥२९॥
ब्राह्मणा यत्र भुञ्जन्ति वेदशास्त्रविशारदाः। अन्येषां चैव लोकानां का कथा चैवसुव्रत ॥३०॥
पञ्चविंशत्यत्र नागा नर्तक्यो विविधास्तथा। ब्रह्महत्या बालहत्या गवां हत्या तथैव च ॥३१॥
ताः सर्वा विलयं यान्ति जगन्नाथस्य दर्शनात् ।
जगन्नाथेत्युच्चरञ्जन्तुर्महापापैः प्रमुच्यते ॥३२॥
विष्णोः पूजनकं पुष्पैस्तन्माहात्म्यमपि ब्रुवे। पर्वतानां वर्णनं च देशानां वर्णनं तथा ॥३३॥

नदी की महिमा तथा शङ्ख, चक्र धारण का माहात्म्य एवं विशेष रूप से ब्राह्मणों द्वारा शङ्ख, चक्र धारण की विधि को मैं बतलाऊँगा । हे मुने ! मैं आपको यमुना नदी, गण्डिका (गाण्डकी) नदी तथा बेत्रवती (बेतवा) नदी का भी माहात्म्य सुनाऊँगा, इसमें कोई भी संशय नहीं है । गिल्ली तीर्थ से होने वाले पुण्य तथा शिला क्षेत्र का जो माहात्म्य है ॥२१-२३॥ उन सबों को मैं इस पाद्मोत्तर खण्ड में बतलाऊँगा, अर्बुदेश्वर क्षेत्र की महिमा और वहाँ के तीर्थों को मैं बतलाऊँगा ॥२४॥ सरस्वती नदी की महिमा तथा उसके जो सिद्धक्षेत्र इत्यादि हैं, पद्मनाभ की उत्पत्ति तथा तुलसी को धारण ॥२५॥ का माहात्म्य, पट्ट की पूजा, निरञ्जन की महिमा तथा विज्ञान दर्शन को भी मैं बतलाऊँगा ॥२६॥ वहाँ धूप एवं दीप दान की महिमा का विशेष रूप से वर्णन करूँगा । उसके पश्चात् कार्तिक मास तथा माघ मास का माहात्म्य बतलाऊँगा॥२७॥ सभी व्रतों की विधि तथा उनकी महिमा का वर्णन हे नारद ! तुम सुनो । मैं उत्तम जगन्नाथ भगवान् का वर्णन करूँगा ॥२८॥ उनका दर्शन करके मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है । वहाँ के प्रसाद को खाना परलोक प्रदान करता है ॥२९॥ हे सुव्रत नारदजी ! वहाँ पर वेदों तथा शास्त्रों के निपुण विद्वान् भगवान् के प्रसाद को खाते हैं; तो सामान्य मनुष्यों की क्या बात है ?॥३०॥ यहाँ पर पच्चीस नाग तथा अनेक नर्तकियाँ है । भगवान् जगन्नाथ का दर्शन कर लेने से ब्रह्महत्या, बाल हात्या तथा गोहत्या जन्य पाप विनष्ट हो जाते हैं । भगवान् जगन्नाथ का नाम उच्चारण करने वाला मनुष्य महापापों से भी छूट जाता है ॥३१-३२॥ मैं पुष्पों से भगवान् विष्णु की पूजा करने का भी माहात्म्य बतलाऊँगा।

गोपूजनादि माहात्म्यं सिद्धानां चैव पूजनम्। सिक्थे दत्ते तु:यत्पुण्यं तत्सर्वं प्रवदाम्यहम् ॥३४॥
कदलीगर्भदानं च वृक्षदानं ततः परम् । अश्वदानं हस्तिदानं जपमाहात्म्यमुत्तमम् ॥३५॥
मन्त्रदीक्षागमं चैव गुरोर्लक्षणमेव च। शिष्यस्य लक्षणं प्रोक्तं यथा पौराणिका विदुः॥३६॥
चरणोदकमाहात्म्यं पितृश्राद्धादिकं च यत् । पितृक्षयाहदानं च नीलोत्सर्गविधिस्ततः ॥३७॥
ग्रहणं चन्द्रपूष्णोश्च तत्र दानं च यद्भवेत् । शालग्रामस्य दानस्य माहात्म्यं माल्यगन्धयोः ॥३८॥
दशम्यैकादशीवेधं द्वादशी हरिवासरम्। तेषां चैव तु माहात्म्यं रुद्रनानादिकं च यत्॥३९॥
मथुरायाश्च माहात्म्यं कुरुक्षेत्रादिकं तथा । सेतुबन्धस्य चाख्यानं श्रीरामेश्वरजं तथा॥४०॥
त्र्यम्बकस्य च माहात्म्यं पञ्चवट्याश्च यत्फलम् ।
दण्डकारण्यमाहाम्यं शृणु वाडवसत्तम ! ॥४१॥
दण्डकारण्यमाहात्म्यं नृसिंहोत्पत्तिकारणम् । गीतायाश्चैव माहात्म्यं तथा भागवतस्य च ॥४२॥
कालिन्द्याश्चैव माहात्यमिन्द्रप्रस्थस्यवर्णनम् । रुक्माङ्गदचरित्रं तु महिमावैष्णवस्य च ॥४३॥
वैष्णवे ह्येकभुक्ते तु शृणु वाडवसत्तम । ससागरां च पृथिवीं दत्त्वा चैव तु यत्फलम् ॥४४॥
तत्फलं समवाप्नोति भुङ्क्ते ह्येके तु वैष्णवे ।
सात्त्विकाः सत्त्वसम्पन्ना राजसाः कामुकाः स्मृताः ॥४५॥
तामसा अधमाः प्रोक्ता वैष्णवानां तु लक्षणम् ।
ब्राह्मणा वैष्णवा येतु वेदधर्मपरायणाः ॥४६॥
तेषां माहात्म्यं वक्ष्यामि यथोक्तं चैव नारद ! ।
विष्णुनिन्दारता ये वै द्रव्यलोभेन सत्तम ! ॥४७॥

पर्वतों तथा देशों का वर्णन मैं करूँगा ॥३३॥ गो पूजन का माहात्म्य, सिद्ध पुरुषों की पूजा का माहात्म्य तथा सिक्थ (पोलाव या पूआ) दान का जो फल होता है उन सबों को मैं बतलाऊँगा ॥३४॥ कदलीगर्भ (कर्पूर) का दान, वृक्षदान, उसके बाद अश्वदान, हाथीदान, जप का उत्तम माहात्म्य ॥३५॥ मन्त्र दीक्षा की प्राप्ति; गरु का लक्षण, शिष्य का लक्षण जैसा कि पौराणिक पुरुष बतलाते हैं, उनके, चरणोदक की महिमा पितृश्राद्ध का वर्णन, पिता के क्षयाह तिथि को दिए जाने वाले दान, नीले वृषोत्सर्ग की विधि, चन्द्रग्रहण और सूर्य ग्रहण के समय पर दिए जाने वाले दान, शालग्राम के दान का माहात्म्य तथा माला और सुगन्धि दान का माहात्म्य मैं बतलाऊँगा ॥३६-३८॥ दशमी का एकादशी में वेध, द्वादशी में एकादशी करने का माहात्म्य तथा रुद्र के नाम आदि का माहात्म्य ॥३९॥ मथुरा का माहात्म्य, कुरुक्षेत्र आदि का माहात्म्य, सेतुबन्ध की कथा श्रीरामेश्वर का माहात्म्य, त्र्यम्बक तीर्थ का महात्म्य, पञ्चवटी का माहात्म्य और दण्डकारण्य का माहात्मय हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! सुनो ॥४०-४१॥ दण्डकारण्य का माहात्म्य नृसिंह की उत्पत्ति का कारण, गीता तथा भागवत का माहात्म्य तथा यमुना नदी की महिमा इन्द्रप्रस्थ का वर्णन, रुक्माङ्गद का चरित्र और वैष्णव की महिमा का वर्णन सुनो ॥४२-४४॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! सुनो सागर के साथ सम्पूर्ण पृथिवी का दान का जो फल होता है, उसी फल की प्राप्ति एक श्रीवैष्णव को भोजन कराने से होती है । सत्त्व गुण सम्पन्न वैष्णव सात्त्विक कहलाते हैं, राजस वैष्णव कामुक कहे गये हैं ॥४५॥ तामसी वैष्णव अधम कहे गये हैं, यही वैष्णवों का लक्षण है । वैदिक धर्म का पालन करने वाले जो वैष्णव ब्राह्मण हैं हे नारद !

तेषां पापन्तु वक्ष्यामिसाम्प्रतं चर्षिसत्तम । ज्वालामुख्यास्तथा ख्यानंहिमशैलेक्षणं तथा ॥४८॥
ब्रह्मोत्पत्तिस्तु वै यत्र तं प्रदेशं वदाम्यहम्। कायस्थानां समुत्पत्तिर्गयाव्याख्यानमेव च॥४९॥
गदाधरस्वरूपं च फल्गुवर्णनमेव च। एतेषां चैव माहात्म्यं पद्मे दृष्टं तथा श्रुतम्॥५०॥
महाबोधस्वरूपं च सकल्केर्यश एव च। रामगयायामाहात्म्यं तथा प्रेतशिलाभवम् ॥५१॥
ब्रह्मणश्च तथाऽऽख्यानं शिलाख्यानं वदाम्यहम् ।
ब्रह्मयोनेस्तथाख्यानमक्षयाख्यवटस्य च ॥५२॥
श्राद्धे तत्र महत्पुण्यं यत्तत्सर्वं वदाम्यहम् । महेश्वरकृतां भक्तिं विष्णुना च महात्मना ॥५३॥
अद्यापि काश्यां जपतिमहारुद्रो ह्यनामयम् । माहात्म्यं च ततोवक्ष्येसागरस्य हि नारद ॥५४॥
तिलतर्पणजं पुण्यं यवजं पुण्यमेव च। तुलसीदलसंयुक्तं तर्पणं देवजं तथा ॥५५॥
तन्माहात्म्यं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मणा मम। शङ्खनादस्य माहात्म्यं पुण्यं चासङ्ख्यसंज्ञकम्॥५६॥
रवेर्वारस्य माहात्म्यं योगस्य विष्णुसंज्ञिनः । वैधृतस्य च माहात्म्यं व्यतीपातस्य वै तथा ॥५७॥
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं चैव नारद !। अन्नदानं वस्त्रदानं भूमिदानं तथैव च ॥५८॥
शय्यादानं च गोदानं तथावृषभमेव च । जन्माष्टम्याश्चमाहात्म्यं मत्स्यमाहात्म्यमेव च॥५९॥
कूर्ममाहात्म्यं तत्प्रोक्तं वाराहस्यतथैव च। माहात्म्यं च गवादीनां दानानां प्रवदाम्यहम् ॥६०॥
प्रह्लादमुखभक्ता ये ये केचिद्भुवि विश्रुताः । तन्माहात्म्यं ततो वक्ष्ये शृणु देवर्षिसत्तम ॥६१॥
जागरे महिमा चैव दीपदाने कृते च यत् । प्रहरेषु पृथक्पूजा फलं देवर्षिसत्तम ! ॥६२॥

उन सबों का शास्त्रोक्त माहात्म्य मैं बतलाऊँगा । हे ऋषि श्रेष्ठ ! द्रव्य प्राप्ति के लोभ से जो लोग भगवान् विष्णु की निन्दा करते हैं मैं उन सबों को होने वाले पाप को बतलाऊँगा । ज्वालामुखी तथा हिमालय पर्वत का वर्णन मैं करूँगा ॥४६-४८॥ मै उस स्थान को बतलाऊँगा जहाँ ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुयी थी । मैं कायस्थों की उत्पत्ति का वर्णन करूँगा तथा गया का वर्णन करूँगा ॥४९॥ मैं गदाधर का स्वरूप तथा फल्गू नदी का वर्णन करूँगा । इन सबों का माहात्म्य पद्मोत्तर खण्ड में देखा और सुना गया है ॥५०॥ महाबोध का स्वरूप, कल्कि अवतार का यश, प्रेतशिला से सम्बद्ध राम गया का माहात्म्य मैं बतलाऊँगा॥५१॥ ब्रह्माजी का वृत्तान्त, ब्रह्म शिला का वृत्तान्त, ब्रह्मयोनि का वृत्तान्त, अक्षयवट का वृत्तान्त ॥५२॥ वहाँ पर श्राद्ध करने का जो माहात्म्य है, उसे मैं बतलाऊँगा । भगवान् विष्णु ने जो शङ्करजी की भक्ति की उसका वर्णन करूँगा ॥५३॥ आज भी काशी में महारुद्र नैरुज्य का (निरोगता का) जप करते हैं । हे नारद ! उसके बाद मैं सागर का माहात्म्य बतलाऊँगा ॥५४॥ तिल से तर्पण करने से उत्पन्न पुण्य को, यव से तर्पण करने से होने वाले पुण्य को, तुलसी दल मिलाकर देवताओं का तर्पण करने के पुण्य को जैसा ब्रह्माजी ने बतलाया है, उसका मैं वर्णन करूँगा । शङ्ख ध्वनि करने का जो अक्षय पुण्य होता है उसका वर्णन मैं करूँगा॥५५-५६॥ विष्णुयोग से युक्त रविवार की महिमा, वैधृति योग तथा व्यतीपात का योग इन सबों का मैं ठीक-ठीक वर्णन करूँगा । अन्नदान, वस्त्रदान, भूमिदान, शय्यादान, गोदान, वृषभ दान, जन्माष्टमी के माहात्म्य तथा मत्स्य पुराण के माहात्म्य का वर्णन मैं करूँगा । कूर्म पुराण का माहात्म्य तथा वाराह पुराण का भी माहात्म्य तथा गौ आदि के दान का माहात्म्य मैं बतलाऊँगा ॥५७-६०॥ हे देवर्षि श्रेष्ठ ! संसार में जो प्रह्लाद आदि विख्यात भक्त हो गये हैं, उनका मैं माहात्म्य बतलाऊँगा उसे आप सुनें ॥६१॥ हे देवर्षि श्रेष्ठ ! रात्रि

पर्शुरामस्य चाख्यानं रेणुकायावधस्तथा। ब्राह्मणानां भूमिदानं रामेणैव च यत्कृतम् ॥६३॥
रामस्याश्रमजं पुण्यं वदाम्यहमशेषतः । नर्मदायास्तथाऽऽख्यानं पुण्यं पूजानयोस्तथा ॥६४॥
दानं वेदपुराणानामाश्रमाणां निरूपणम्। हिरण्यदानपुण्यं च ब्रह्माण्डदानमेव च ॥६५॥
पद्मपुराणदानं च खण्डानां व्यक्तयस्तथा । प्रथमं सृष्टिखण्डं च द्वितीयं भूमिखण्डकम् ॥६६॥
स्वर्गखण्डं तृतीयं तु चतुर्थं ब्रह्मखण्डकम् । पातालं पञ्चमं खण्डं परिशिष्टस्वरूपकम् ॥६७॥
षष्ठं क्रियायोगसारमुत्तरं तूत्तरं क्रमात् । एतत्पद्मपुराणं तु व्यासेन तु महात्मना ॥६८॥
कृतं लोकहितार्थाय ब्राह्मणश्रेयसे तथा । शूद्राणां पुण्यजननं तीव्रदारिद्र्यनाशनम् ॥६९॥
मोक्षदं सुखदं चाशु कल्याणप्रदमव्ययम् । श्रुत्वा दानं तथा कुर्याद्विधिना तत्र नारद ! ॥७०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे महेशनारदसंवादे
बीजसमुच्चयो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

दूसरा अध्याय

महेश उवाच

एकलक्षं पञ्चविंशत्सहस्राःपर्वतास्तथा । तेषां मध्ये महत्पुण्यं बदर्याश्रममुत्तमम् ॥१॥

जागरण करने का, दीप दान करने का, प्रत्येक प्रहरों में की जाने वाली पृथक्-पृथक् पूजा का जो फल है उसे आप सुनें ॥६२॥ परशुरामजी की कथा, रेणुका वध तथा परशुरामजी ने जो ब्राह्मणों को भूमिदान किया है तथा परशुरामाश्रम के पुण्य का वर्णन मैं करूँगा । नर्मदा की कथा तथा इन दोनों की पूजा का फल मैं बतलाऊँगा ॥६३-६४॥ वेदों, पुराणों तथा आश्रमों के दान का फल, हिरण्य (सुवर्ण) दान का फल तथा ब्राह्मण दान का फल मैं बतलाऊँगा ॥६५॥ सम्पूर्ण पद्मपुराण के दान का फल तथा उनके अलग-अलग खण्डों का वर्णन मैं करूँगा । इसका पहला खण्ड सृष्टि खण्ड है, दूसरा भूमिखण्ड है, तीसरा स्वर्गखण्ड है, चौथा ब्रह्मखण्ड है, पाँचवाँ पाताल खण्ड है, छटा उत्तर खण्ड है और सातवाँ परिशिष्ट रूप क्रियासार खण्ड है । इस तरह के पद्मपुराण को महर्षि व्यास ने बनाया है ॥६६-६८॥ महर्षि ने इस पुराण की रचना लोककल्याण के लिए तथा ब्राह्मणों के कल्याण के लिए की है । यह शूद्रों के लिए पुण्य जनक है तथा उनके तीव्र दारिद्र्य का नाश करने वाला है ॥६९॥ यह मोक्ष तथा सुख प्रदान करने वाला तथा शीघ्र कल्याण करने वाला है । हे नारद ! इस पुराण का श्रवण करके उसका दान कर देना चाहिए ॥७०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के महेश नारद संवादान्तर्गत प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

बदरी नारायण का माहात्म्य

भगवान् शङ्कर ने कहा— एक लाख पच्चीस हजार पर्वतों में बदरिकाश्रम अत्यन्त पवित्र और

नरनारायणो देवो यत्र तिष्ठति नारद । तस्य स्वरूपं तेजश्च वक्ष्यामीह चसाम्प्रतम् ॥२॥
हिमपर्वतशृङ्गे च कृष्णाकारतया द्विज ! । पुरुषौ तत्र वर्तेते नरनारायणावुभौ ॥३॥
श्वेत एकस्तु पुरुषः कृष्णो ह्येकतमः पुनः । पिङ्गलश्वेतवर्णश्च जटाधारी महाप्रभुः ॥४॥
कृष्णो नारायणो ह्येष जगदादिर्महाप्रभुः । चतुर्बाहुर्महाञ्छ्रीमान्व्यक्तोऽव्यक्तः सनातनः ॥५॥
उत्तरायणे महापूजा जायते तत्र सुव्रत ! । षण्मासादिकपर्यन्तं पूजा नैव च जायते ॥६॥
हिमव्याप्तं तदा जातं यावद्वै दक्षिणं भवेत् ।
अत एतादृशो देवो न भूतो नभविष्यति ॥७॥
तत्र देवा वसन्तीह ऋषीणां चाश्रमास्तथा । अग्निहोत्राणि वेदानांध्वनिःप्रश्रूयते सदा ॥८॥
तस्य वै दर्शनं कार्यं कोटिहत्याविनाशनम् । अलकनन्दा यत्र गङ्गा तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥९॥
कृत्वा स्नानं तु वै तत्र महापापात्प्रमुच्यते । यत्र विश्वेश्वरो देवस्तिष्ठत्येव न संशयः ॥१०॥
एकस्मिन्समये तत्र सुतपस्तप्तवानहम् । तदा नारायणो देवो भक्तानां हि कृपाकरः ॥११॥
अव्ययः पुरुषःसाक्षादीश्वरो गरुडध्वजः । सुप्रसन्नोऽब्रवीन्मां वै वरं वरय सुव्रत ! ॥१२॥

श्रीनारायण उवाच

यं यमीप्ससि देव ! त्वं तं तं कामं ददाम्यहम् ।
त्वं कैलासविभुः साक्षाद्रुद्रो वै विश्वपालकः ॥१३॥

रुद्र उवाच

अलं गृह्णामि भोदेव सुप्रसन्नो जनार्दन। द्वौ वरौ मम दीयेतां यदिदातुं त्वमिच्छसि ॥१४॥

उत्तम हैं ॥१॥ हे नारद ! वहाँ पर भगवान् नर-नारायण विराजमान हैं । इस समय मैं उनके स्वरूप और तेज का वर्णन करता हूँ ॥२॥ हे द्विज ! हिमालय पर्वत के शिखर पर श्याम वर्ण के नर तथा नारायण ये दोनों पुरुष विद्यमान हैं ॥३॥ इन दोनों में एक पुरुष श्वेत (गौर) वर्ण के हैं और एक श्याम वर्ण के हैं । जटाधारण करने वाले महाप्रभु पिङ्गल श्वेत वर्ण के हैं ॥४॥ ये महाप्रभु जगत् के कारण स्वरूप भगवान् नारायण ही हैं । इनकी विशाल चार भुजायें हैं, ये ऐश्वर्य सम्पन्न, व्यक्त, अव्यक्त एवं सनातन हैं॥५॥ हे सुव्रत ! उनकी महापूजा सूर्य के उत्तरायण होने पर होती है, छह महीने इनकी पूजा नहीं होती है ॥६॥ दक्षिणायन के समय ये बर्फ से ढँक जाते हैं, अतएव इनके समान कोई देवता न तो हुआ और न होगा ॥७॥ वहाँ पर देवता निवास करते हैं और वहाँ ऋषियों के आश्रम है । वहाँ पर सदैव अग्निहोत्र होता रहता है और वेदों की ध्वनि सुनायी पड़ती है ॥८॥ उनका दर्शन करने से हत्याजन्य करोड़ों पापों का विनाश हो जाता है । वहाँ पर विद्यमान अलकनन्दा नाम की गङ्गा में स्नान करना चाहिए ॥९॥ जहाँ पर संसार के स्वामी विद्यमान हैं, वहाँ पर स्नान करने से मनुष्य महापाप से भी मुक्त हो जाता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥१०॥ एक वार मैंने (शिवजी ने) वहाँ पर खूब तपस्या की उस समय भक्तों पर कृपा करने वाले निर्विकार पुरुष, सम्पूर्ण जगत् के नियामक गरुडध्वज भगवान् नारायण प्रकट होकर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक मुझसे कहे हे सुव्रत ! वरदान माँगो ॥११-१२॥ **श्रीनारायण ने कहा**— तुम कैलास के स्वामी साक्षात् रुद्र और संसार का पालन करने वाले हो तुम जो-जो पाप्त करना चाहो वह सब कुछ मैं देने के लिए तैयार हूँ ॥१३॥ **रुद्र ने कहा**— हे अत्यन्त प्रसन्न देव ! हे जनार्दन ! यदि आप

तव भक्तिः सदैवास्तु भक्तराजो भवाम्यहम् ।
सर्वे लोका ब्रुवन्त्वेमयं भक्तः सदैवहि ॥१५॥
तव प्रसादाद्देवेश मुक्तिदाता भवाम्यहम्। ये लोका मांभजिष्यन्तितेषांदातान संशयः ॥१६॥
विष्णुभक्त इतिख्यातो लोके चैव भवाम्यहम् ।
यस्याहंवरदाता तु तस्यमुक्तिर्भवेत्प्रभो ॥१७॥
जटिलो भस्मलिप्तोह ह्यहं वै तव सन्निधौ। तव देव प्रसादेन लोकेख्यातो भवाम्यहम् ॥१८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां षष्ठे उत्तरखण्डे नारदोमापतिसंवादे बदरीनारायणमाहात्म्ये रुद्रप्रसादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तीसरा अध्याय

सूत उवाच

एकदा नारदोद्रष्टुं पाण्डवान्दुःखकर्शितान्। ययौ काम्यवनंविप्रः सत्कृतस्तैर्यथाविधि ॥
अथ नत्वा मुनिश्रेष्ठं युधिष्ठिर उवाच ह ॥१॥

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्कर्मणा केन दुःखाब्धौ पतिता वयम् ॥२॥

देना चाहते हैं तो मुझे दो वरदान दीजिये ॥१४॥ मुझमें आपकी भक्ति सदैव बनीं रहे और मैं भक्तराज हो जाऊँ । संसार के सभी लोग कहें कि ये सदैव भक्त बने रहे हैं ॥१५॥ हे देवेश ! आपकी कृपा से मैं मुक्ति प्रदान करने वाला हो जाऊँ । जो लोग मेरा भजन करें निःसन्देह मैं उन जीवों को मुक्ति प्रदान कर दूँ ॥१६॥ मैं संसार में विष्णु भक्त के रूप में प्रख्यात होऊँ । हे प्रभो ! मैं जिसको वर प्रदान करूँ उसकी मुक्ति हो जाय ॥१७॥ जटाधारी, शरीर में भस्म लगाये हुए आपके सन्निकट में मैं रहूँ । हे देव ! आपकी कृपा से मैं संसार में इस प्रकार से विख्यात होऊँ ॥१८॥

इस तरह पचपन हजार श्लोक वाले श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के नारद-शिव संवादान्तर्गत बदरीनारायण माहात्म्य वर्णन का रुद्र पर कृपा नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

युधिष्ठिर नारद संवादान्तर्गत जालन्धर की उत्पत्ति का वर्णन

एक बार दुःख से दुर्बल बने हुए पाण्डवों को देखने के लिए विप्र नारदजी काम्बवन में गये और पाण्डवों ने उनका विधि पूर्वक सत्कार किया । इसके पश्चात् मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी को नमस्कार करके युधिष्ठिर ने पूछा ॥१॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** हे भगवन् ! हमलोग किस कारण से दुःख सागर में पड़े हुए हैं ?॥२॥ **सूतजी ने कहा—** देवर्षि नारद ने उनसे कहा, हे पाण्डुनन्दन ! आप दुःख का परित्याग

सूत उवाच

तमुवाच ऋषिर्दुःखं त्यजत्वं पाण्डुनन्दन !। सुखदुःखसमाहारे संसारे कः सुखी नरः ॥३॥
ईश्वरोऽपि हि न स्थायी पीड्यते देहसञ्चयैः ।
न दुःखरहितः कश्चिद्देही दुःखसहो यतः ॥४॥
शरीरं सवितुर्यस्माद्राहुस्तद्ग्रसते बली। राहोरपि शिरश्छिन्नं शौरिणाऽमृतभोजने॥५॥
सोऽपि शार्ङ्गधरो देव क्षिप्तः सागरगह्वरे। जालन्धरेण वीरेण निहतः सोऽपि शम्भुना ॥६॥

युधिष्ठिर उवाच

कौऽसौ जालन्धरोवीरःकस्यपुत्रःकुतो बली ।
कथं जालन्धरंसङ्ख्ये हतवान्वृषभध्वजः ॥७॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन ! ॥८॥

सूत उवाच

राज्ञा स एव मुक्तस्तु कथयामास नारदः ॥९॥

नारद उवाच

शृणुभूपकथांदिव्यामशेषाघौघनाशिनीम् । ईशानसिन्धुसून्वोश्च सङ्ग्रामं परमाद्भुतम् ॥१०॥
एकदा गिरिशं स्तोतुं प्रययौ पाकशासनः । अप्सरोगणसङ्कीर्णो देवैर्बहुभिरावृतः ॥११॥
गन्धर्वैरावृतो देवस्तन्त्रीशिक्षासुकोविदैः । रम्भा तिलोत्तमा रामा कर्पूरा कदली तथा ॥१२॥
मदना भारती कामा सर्वाभरणभूषिता। नर्तक्यश्च तथा चान्याः समाजग्मुः सुरान्तिकम्॥१३॥
गन्धर्वयक्षसिद्धास्तु नारदस्तुम्बुरुस्तथा । किन्नरा मुहुराजग्मुस्तथा किन्नरयोषितः ॥१४॥
वायुश्च वरुणश्चैव कुबेरो धनदस्तथा। यमश्चाग्निर्निर्ऋतिश्च ये चान्ये देवतागणाः ॥१५॥

कर दें। संसार सुख तथा दुःख दोनों का मिला-जुला रूप हैं। यहाँ सुखी कौन हैं ?॥३॥ यहाँ पर ईश्वर भी स्थिर नहीं रहते हैं, वे देहधारियों से पीड़ित होते रहते हैं। कोई भी शरीरधारी दुःख से रहित नहीं है अतएव सबको दुःख सहना पड़ता है ॥४॥ बलवान् राहु, सूर्य के शरीर को निगल लेता है। भगवान् विष्णु ने अमृतपान के समय राहु के भी शिर को काट दिया ॥५॥ वीर जालन्धर ने शार्ङ्ग धनुषधारी भगवान् को समुद्र में पहुँचा दिया था और जालन्धर को शिवजी ने मार दिया ॥६॥ **युधिष्ठिर ने पूछा—** वह जालन्धर वीर कौन था ? वह किसका पुत्र था ? वह कैसे बलवान् हो गया ? शिवजी ने जालन्धर को कैसे युद्ध में मारा ? हे तपोधन ! आप इन सारी बातों को मुझे विस्तार पूर्वक बतलायें ॥८॥ **सूतजी ने कहा—** राजा युधिष्ठिर के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर नारदजी ने कहा ॥९॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजन् ! आप समस्त पाप समूह को विनष्ट करने वाली इस दिव्य कथा को सुनें। ईश्वर और सागर पुत्र का परस्पर में अत्यन्त अद्भुत संग्राम हुआ ॥१०॥ एक वार अप्सरा समूह तथा अनेक देवताओं के साथ इन्द्र शङ्करजी की स्तुति करने के लिए कैलास पर्वत पर गये ॥११॥ इन्द्र वीणा बजाने में निपुण गन्धर्वों से घिरे हुए थे। रम्भा, तिलोत्तमा, रामा, कर्पूरा, कदली, मदना, भारती, कामा ये सभी नर्तकियाँ सभी आभूषणों से अलंकृत थीं। इससे अतिरिक्त भी इन्द्र के सन्निकट आयीं ॥१२-१३॥ गन्धर्व गण, यक्षगण,

विमानसंस्थो मघवा विमानस्थाःसुराङ्गनाः । स्ववाहनगतादेवाः कैलासं प्रययुर्जवात् ॥१६॥
ददृशुस्ते ततो देवाः कैलासं पर्वतोत्तमम् । महीधराणां सर्वेषां पृथिव्या इव मण्डनम् ॥१७॥
सर्वतः सुखदं शुद्धं सिद्धिराशिमिव स्थितम् ।
यत्र वृक्षाः कल्पवृक्षाः पाषाणाश्चिन्तितप्रदाः ॥१८॥
पुन्नागैर्नागचम्पैश्च तिलकैर्देवदारुभिः । अशोकैः पाटलैश्चूतैर्मन्दारैः शोभितो गिरिः ॥१९॥
पर्यन्तकवनामोदवाहका यत्र वायवः । पङ्गुत्वं बहुचारेण यान्ति ते मलयानिलाः ॥२०॥
वाप्यः स्फटिकसोपानां ह्यगाधविमलोदकाः ।
वैडूर्यनालसंसक्तसौवर्णनिभपङ्कजाः ॥२१॥
कुमुदानां द्युतिर्यत्र राजते सर्वतो दिशम् । कह्लारैः शोभिता वाप्यः पिनद्धाः पद्मरागवत्॥२२॥
हरिन्मणिनिबद्धाश्च गोमेदैः सर्वतोवृताः । पद्मरागशिलाबद्धा नानाधातुविचित्रिताः ॥२३॥
ददृशुः सुन्दरतरं नाकाधिकविनिर्मितम्। कैलासं पर्वतश्रेष्ठं दृष्ट्वा ते विस्मयं गताः ॥२४॥
विमानादवतीर्णाश्च मघवा देवताश्च ताः । द्वारपालमथागम्य नन्दिनं वाक्यमब्रुवन् ॥२५॥

इन्द्र उवाच

भोभोगणवरश्रेष्ठ शृणु मे वाक्यमुत्तमम् । समाज्ञापय शीघ्रं त्वं नृत्यार्थमिहमागतम् ॥
ईश्वरं प्रति देवेशं सर्वदेवैः समावृतम् ॥२६॥

नारद उवाच

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा गिरिशं नन्दिरब्रवीत् । प्रभोऽयमागतः सर्वैर्देवराजः पुरन्दरः ॥२७॥

सिद्धगण, नारद, तुम्बुरु तथा अनेक किन्नर तथा किन्नरों की स्त्रियाँ भी आयीं ॥१४॥ वायु देव, वरुण, धनाधिप कुबेर, यम, अग्नि, निऋति तथा दूसरे भी देवगण वहाँ आयें ॥१५॥ इन्द्र विमान पर बैठे थे । देवताओं की स्त्रियाँ भी विमान पर बैठी थीं । देवतागण अपने-अपने वाहन पर थे । वे सभी वेग पूर्वक कैलास पर्वत पर गये । उसके बाद वे सभी देवता पृथिवी के अलङ्कार के समान तथा पर्वतों में श्रेष्ठ कैलास पर्वत को देखे ॥१६-१७॥ वह सिद्धि की राशि के समान विद्यमान वह हर प्रकार से सुखद तथा शुद्ध था। वहाँ के वृक्ष कल्पवृक्ष थे और पत्थर अभिप्रेत वस्तुओं को प्रदान करने वाले थे ॥१८॥ वह पर्वत पुन्नाग, नाग चम्पा, तिलक, चन्दन, देवदारु, अशोक, पाटल, आम तथा मन्दार के वृक्षों से सुशोभित था॥१९॥ इर्द-गिर्द के वन की सुगन्धि को लेकर चलने वाली मलयाचल की वायु बहुत अधिक चलने के कारण वहाँ मानों आकर पङ्गु हो गयी थी ॥२०॥ वहाँ की वावलियों की सिढ़ियाँ स्फटिक मणि की बनी थीं और उनमें अगाध जल था । वहाँ के स्वर्णिम कमलों के नाल जैसे वैडूर्यमणि के थे ॥२१॥ वहाँ पर हर ओर कुमुदों की कान्ति सुशोभित होती थी । पद्मरागमणि से संसक्त के समान वहाँ की बावलियाँ कह्लारों से सुशोभित थीं ॥२२॥ उन बावलियों के घाट हर ओर से नीलमणि और गोमेद से बँधे थे । वे पद्मराग मणि की शिला से बद्ध तथा अनेक प्रकार के धातुओं से विचित्र बनाये गये थे ॥२३॥ उन देवताओं ने स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर बनाये गये पर्वत श्रेष्ठ कैलास को देखकर आश्चर्यित हो गये ॥२४॥ इन्द्र तथा वे सभी देवता विमान से उतर कर वहाँ के द्वारपाल नन्दी के पास जाकर कहे ॥२५॥ **इन्द्र ने कहा—** हे श्रेष्ठ गण ! आप मेरी उत्तम बात सुनें । तुम शङ्करजी को बतलाओ कि मैं नृत्य करने के लिए देवताओं के साथ आया हूँ ॥२६॥

नृत्यार्थमथ तं प्राहानय शीघ्रं शचीपतिम्। प्रवेशयामास तदा नन्दी तैः सह वासवम् ॥२८॥
स दृष्ट्वा गिरिशं देवं तुष्टाव वृषभध्वजम्। रम्भाद्यास्तास्तदा सर्वा नर्तक्यो हरसन्निधौ ॥२९॥
मृदङ्गवीणावादित्रैर्मुदा नाट्यं प्रचक्रिरे। कांस्यवाद्यान्प्रगृह्यान्या वंशतालान्सकाहलान् ॥३०॥
चक्रुस्ता नृत्यसंरम्भं स्वयं देवः पुरन्दरः। अतीवनर्तनं चक्रे सुन्दरं देवदुर्ल्लभम् ॥३१॥
ईश्वरस्तोषमापन्नो वासवं वाक्यमब्रवीत्। प्रसन्नोऽहं सुरश्रेष्ठ जातस्ते व्रियतां वरः ॥३२॥
इत्युक्तवति देवेशे स्वबाहुबलगर्वितः। प्रत्युवाच हरं वाक्यं सङ्ग्रामः संवृतो मया ॥३३॥
यत्र त्वत्सदृशो योद्धा तद्युद्धं देहि मे प्रभो !।
इत्युत्तवा निर्गतो जिष्णुर्लब्ध्वा शम्भोर्वरं प्रभो !।
तस्मिन्गते तदा शक्रे गिरिशो वाक्यमब्रवीत् ॥३४॥

शङ्कर उवाच

गणा मे श्रूयतां वाक्यं देवराजोऽतिगर्वितः ॥३५॥

नारद उवाच

इत्युत्तवा क्रोधसंयुक्तोबभूव चततो हरः। आविरासात्ततः क्रोधोमूर्त्तिमान्पुरतःस्थितः ॥३६॥
घनान्धकारसदृशो मृडं क्रोधस्ततोऽब्रवीत्। देहिमे त्वं हि सन्देशंकिं करोमि तवप्रभो ॥३७॥
उमापतिस्तदोवाच गच्छ त्वं वासवं जय। स्वर्गसिन्धुं समासाद्य सागरस्य च वीर्यवान् ॥३८॥
इत्युक्तोऽन्तर्दधे क्रोधो गणास्ते विस्मयं ययुः।
ईशानकल्पे जाते तु कामेनार्णवसङ्गमे ॥३९॥

नारदजी ने कहा— इन्द्र की बात को सुनकर नन्दी ने शङ्करजी से कहा हे प्रभो ! सबों के साथ देवराज इन्द्र आये हैं। वे नृत्य करने के लिए आये हैं। इसके बाद शिवजी ने नन्दी से कहा शीघ्र इन्द्र को बुलाओ। उस समय नन्दी देवताओं के साथ इन्द्र को भीतर लाए ॥२७-२८॥ इन्द्र ने शङ्करजी को देखकर उनकी स्तुति की। उस समय रम्भा आदि नर्तकियों ने मृदङ्ग तथा वीणा आदि वाद्यों के द्वारा नाट्य प्रदर्शित किया। स्वयम् इन्द्र भी कांस्य वाद्यों तथा काहल एवं वंश तालों को लेकर नृत्य प्रारम्भ किये। उन्होंने देवताओं के लिए दुर्लभ अत्यन्त सुन्दर नृत्य किया ॥२९-३१॥ प्रसन्न होकर शिवजी ने इन्द्र से कहा कि देवराज मैं प्रसन्न हूँ वरदान माँगो ॥३२॥ इस तरह से शङ्करजी के कहने पर आपने बाहुबल से गर्वित इन्द्र ने कहा मैं सङ्ग्राम करना चाहता हूँ ॥३३॥ आपके समान जो योद्धा हो उसके साथ मुझे युद्ध का वरदान आप दें। हे प्रभो ! इस प्रकार से कहकर तथा वरदान प्राप्त करके विजय प्राप्त करने की इच्छा वाले इन्द्र वहाँ से चले आये। इन्द्र के चले जाने पर शङ्करजी ने कहा ॥३४॥ **शङ्करजी ने कहा—** हे मेरे गणों मेरी बात सुनो इन्द्र अत्यन्त गर्वीला हो गया है ॥३५॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से कहकर शङ्करजी क्रुद्ध हो गये। उसके पश्चात् उनका क्रोध मूर्त रूप धारण करके उनके सामने खड़ा हो गया॥३६॥ वह घोर अन्धकार के समान काला था। उसने कहा हे प्रभो ! आप मुझे आज्ञा दें मैं क्या करूँ ?॥३७॥ उसके बाद शङ्करजी ने कहा तुम जाकर पराक्रमी इन्द्र पर विजय प्राप्त करो। स्वर्गङ्गा तथा सागर को प्राप्त करके वह क्रोध अन्तर्धान हो गया। यह देखकर सभी शिवजी के गण आश्चर्यित हो गये।

नाकसिन्धुस्तदा मत्ता स्वयौवनभरोष्मणा । तां दृष्ट्वा सिन्धुराजश्च जलकल्लोलवानभूत् ॥४०॥
तदाबभूव राजेन्द्र गङ्गासागरसङ्गमः । महानदी तदा प्राप्य रेमे चात्मबलेन च ॥४१॥
अत्रान्तरे समुद्रस्य बभूव सुभटस्ततः । सूनुस्तस्यां महानद्यां समुद्रादभवद्बली ॥४२॥
महार्णवतनूजेन जातमात्रेण पार्थिव । रुदतोत्कम्पिता पृथ्वी त्रिलोका नादिताऽभवत्॥४३॥
समाधिबद्धमुद्रां च सन्तत्याज चतुर्मुखः । अत्रान्तरे परित्रस्तां तां संवीक्ष्य जगत्त्रयीम् ॥४४॥
धातासुरेन्द्रवाक्येन प्रजगाम महार्णवम् । आश्चर्यमिति सञ्चिन्त्य हंसारुढोजवाद्ययौ॥४५॥
ब्रह्माणमागतं वीक्ष्य सपर्यां विदधेऽर्णवः । तमुवाचततो ब्रह्माकिं गर्जसि वृथाऽम्बुधे ! ॥४६॥

समुद्र उवाच

गहं गर्जामि देवेश मत्सुतो बलवान्प्रभो। शिशोर्वै कुरु रक्षां च दुर्ल्लभं तव दर्शनम्॥४७॥

सन्दृश्यतां च तनयो भार्या प्राहातिशोभनाम् ।
ययौ सा भर्तुरादेशात्सपुत्रा ब्रह्मणोऽन्तिके ॥४८॥
उत्सङ्गदेशे चतुराननस्य विधाय पुत्रं चरणो ननाम ।
तदा समुद्रात्मजमद्भुतं तं दृष्ट्वा विधातुः किल विस्मयोऽभूत् ॥४९॥
गृहीतकूर्चस्य शिशोः करं च यदा विरिञ्चिर्न शशाक मोचितुम् ।
तदा समुद्रः प्रहसन्प्रयातः कूर्चं प्रगृह्यार्भकरं विमोचयन् ॥५०॥
तादृशं तस्य बालस्य दृष्ट्वा विक्रममात्मभूः ।
प्रीत्या जालन्धरेत्याह नाम्ना जालन्धरोऽभवत् ॥५१॥

वह सागर कामना पूर्वक शङ्करजी के समान हो गया । उस समय स्वर्गङ्गा अपनी जवानी की गर्मी से मदमत्त हो गयी । उनको देखकर सागर जल की लहरों से भर गया ॥३८-४०॥ हे राजेन्द्र ! युधिष्ठिर उस समय गङ्गा और सागर का सङ्गम हुआ । उस समय सागर को प्राप्त करके गङ्गानदी ने उसके साथ बल पूर्वक रमण किया ॥४१॥ उसके कारण गङ्गा के गर्भ से सागर का अत्यन्त बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ॥४२॥ उत्पन्न होकर सागर के पुत्र ने रुदन किया उसके कारण पृथिवी काँपने लगी और त्रैलोक्य उसकी ध्वनि से ध्वनित हो गया ॥४३॥ उसके कारण ब्रह्माजी की लगी हुयी समाधि टूट गयी । उस समय त्रैलोक्य को भयभीत देखकर इन्द्र ने ब्रह्माजी को समुद्र के पास भेजा । वे भी इसे आश्चर्य की बात मानकर हंस पर चढ़कर वेग पूर्वक समुद्र के पास गये ॥४४-४५॥ आये हुए ब्रह्माजी को देखकर समुद्र ने उनकी पूजा की। ब्रह्माजी ने कहा— सागर व्यर्थ की गर्जना क्यों करते हो ॥४६॥ **समुद्र ने कहा**— देवेश ! मैं नहीं गर्जता हूँ, यह मेरा बलवान् पुत्र है आप इसकी रक्षा करें आपका दर्शन ही दुर्लभ होता है ॥४७॥ आप मेरे पुत्र और अत्यन्त सुन्दरी पत्नी को दर्शन दें । पति की आज्ञा प्राप्त करके वह अपने पुत्र के साथ ब्रह्माजी के पास गयी ॥४८॥ उन्होंने अपनी गोद में पुत्र को लेकर ब्रह्माजी के चरणों में प्रणाम किया उस समय समुद्र के पुत्र को देखकर ब्रह्माजी आश्चर्यित हो गये ॥४९॥ ब्रह्माजी की दाढ़ी को उस बालक ने पकड़ लिया । उस समय ब्रह्माजी उसके हाथ को नहीं छुड़ा सके । उस समय हँसते हुए समुद्र गये और बालक के हाथ को पकड़कर उनकी दाढ़ी को छुड़ाये ॥५०॥ उस बालक के उस प्रकार के पराक्रम को

वरं ददावथोतस्य प्रणयेन प्रजापतिः। अयं जालन्धरो देवैरजेयश्च भविष्यति ॥५२॥
पातालसहितं नाकं मत्प्रसादेन भोक्ष्यति। इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे ब्रह्मा हंसमारुह्य सत्वरः ॥५३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिरनारदसंवादे जालन्धरोत्पत्तिर्ब्रह्मागमो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥४॥

चौथा अध्याय

नारद उवाच

क्रमेणवर्द्धमानोऽसौ बाल्यभावे स बालकः ।
निपत्य मातुरुत्सङ्गे सागरं प्रतिधावति ॥१॥
आनीय चक्रे स च पञ्जरस्थान्क्रीडापरः केसरिणः किशोरान् ।
सिंहादिनेभादिभिर्युद्धमेवं युद्धोपयोगीव तदीयवीर्यम् ॥२॥
तस्मादाकाशमुत्पत्य खेचरान्पातयेद्भुवि। गर्जितैर्भीषयामास सरिद्भिस्सहसागरम् ॥३॥
समुद्रान्तर्गतं सर्वं सत्त्वजातं तु पार्थिव। ग्रस्तं सिन्धुसुतेनेति तद्भयाच्छन्नतां गतम् ॥४॥
दृष्ट्वा निःसत्त्वकं तोयं तद्भयाद्वडवानलः। निजदेशं परित्यज्य प्रविवेश हिमालयम् ॥५॥

देखकर ब्रह्माजी ने उसे प्रेम पूर्वक जालन्धर कहा और उसका नाम जालन्धर हो गया ॥५१॥ प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उसे वरदान दिया कि यह जालन्धर देवताओं के लिए अजेय होगा ॥५२॥ यह मेरी कृपा से पाताल और स्वर्ग दोनों का स्वामी होगा, इस तरह से कहकर ब्रह्माजी हंस पर चढ़कर शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये ॥५३॥

इस तरह पचपन हजार श्लोक वाले श्रीपद्ममहापुराण के उत्तर खण्ड के युधिष्ठिर नारद संवादान्तर्गत जालन्धर की उत्पत्ति तथा ब्रह्माजी के आगमन नामक तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

जालन्धर के साथ वृन्दा का विवाह वर्णन

नारदजी ने कहा— बालभाव में विद्यमान बढ़ता हुआ वह बालक अपनी माता की गोद से गिरकर दौड़कर सागर में चला जाता था ॥१॥ क्रीड़ा करता हुआ वह सिंह के बच्चों को लाकर पिंजड़े में बन्द कर दिया । वह सिंह आदि तथा हाथियों आदि के साथ युद्ध करता था । इस तरह से उसका पराक्रम युद्ध करने योग्य हो गया ॥२॥ उसके कारण वह आकाश में उछलकर तारों को पृथिवी पर गिरा देता था । वह अपनी गर्जना से नदियों तथा सागर को भी भयभीत कर देता था ॥३॥ हे राजन् ! उस सागर पुत्र ने समुद्र के सभी जीवों को खा लिया उसके भय से सब शान्त हो गये ॥४॥ सागर के जल को जीवों से रहित देखकर सागर में विद्यमान बाड़वानल उसके भय से अपना स्थान छोड़कर हिमालय में प्रवेश कर

स बालत्वं परित्यज्य क्रमेणार्णवनन्दनः। ततो नवंवयःप्राप्य विक्रमेणाक्रमद्दिवम्॥६॥
एकदा पितरं प्राह समुद्रं सिन्धुनन्दनः। मन्निवासोचितंस्थानं देहि तातातिविस्तृतम्॥७॥
सम्बुध्य वचनं सूनोः जगाद महार्णवः। पुत्र दास्याम्यहं राज्यं तव वै भुविदुर्ल्लभम्॥८॥
अनन्तरं दैत्यगुरुः समुद्रं भार्गवोगतः। तमागतं विलोक्याब्धिर्विधिना समपूजयत्॥९॥
अथ नदिपतिदत्ते प्राप्तसौन्दर्यनिर्यन्मणिमहसि स तस्मिन्नासने सन्निविष्टः।
रुचिररुचिसुमेरोः सुन्दरे शृङ्गभागे कमलज इव कान्तिं किञ्चिदुच्चैर्जहार॥१०॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्याजहारार्णवः कविम्।
दिष्ट्या तवात्रागमनं वद किं करवाण्यहम्॥११॥
तदा दैत्यकुलाचार्यःप्राह तं सागरं कविः। किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा॥१२॥
प्ररोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा।
तवात्मजो विक्रमेण त्रैलोक्यं भोक्ष्यति ध्रुवम्॥१३॥
जम्बूद्वीपे महापीठं योगिनीगणसेवितम्। आप्लावितं त्वयेदानींमुञ्च जालन्धरालयम्॥१४॥
तत्रराज्यं प्रयच्छास्मै तनयाप महार्णव !। अजयश्चाप्यवध्यश्च तत्रस्थोऽयं भविष्यति॥१५॥
एवमुक्तोऽर्णवःप्रीत्या भार्गवेणाथ लीलया। अपासर्पत्सुतप्रीत्यै जले स्थलमदर्शयत्॥१६॥
शतयोजनविस्तीर्णमायतं च शतत्रयम्। देशं जालन्धरं पुण्यं तस्य नाम्नैव विश्रुतम्॥१७॥
दैत्यवर्यं समाहूय मयं प्रोवाच सागरः। पुर जालन्धरे पाठं कुरू जालन्धराय वै॥१८॥

गया ॥५॥ बाल्यावस्था समाप्त हो जाने के पश्चात् वह समुद्र पुत्र नवीन जवानी प्राप्त करके अपने पराक्रम से स्वर्ग लोक में चला गया ॥६॥ उस सागर के पुत्र ने सागर से एक बार कहा हे तात ! आप मेरे लिए मुझे उचित तथा विस्तृत निवास स्थान दें ॥७॥ पुत्र की वाणी को सुनकर **महासागर ने कहा—** पुत्र मैं तुम्हें ऐसा राज्य प्रदान करूँगा जो मर्त्यलोक में दुर्लभ है ॥८॥ उसके बाद दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य सागर के पास गये उनको आये हुए देखकर सागर ने उनकी विधि पूर्वक पूजा की ॥९॥ उसके बाद समुद्र के द्वारा प्रदत्त मणियों के प्रकाश से युक्त सौन्दर्य युक्त आसन पर बैठे हुए शुक्राचार्य ऐसे लगते थे जैसे सुमेरु पर्वत के शिखर पर ब्रह्माजी बैठे हों ॥१०॥ समुद्र ने हाथ जोड़कर **शुक्राचार्य से कहा—** मेरे सौभाग्यवशात् आपका आगमन हुआ है, कहिए मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ?॥११॥ उस समय दैत्यों के कुलगुरु शुक्राचार्य ने सागर से कहा केवल अपनी माता के यौवन का अपहरण करने वाले उस पुत्र के जन्म लेने से कौन सा लाभ है ?॥१२॥ जो अपने वंश के आगे ध्वजा के समान नहीं बढ़ता है, उस पुत्र से क्या लाभ है। निश्चित है कि तुम्हारा पुत्र अपने पराक्रम से त्रैलोक्य का भोग करेगा ॥१३॥ तुमने जम्बूद्वीप में योगिनी समुदाय से सेवित महापीठ को डुबा दिया है। उसको तुम छोड़ दो; वह जालन्धर का गृह है॥१४॥ हे महार्णव ! अपने पुत्र को वही राज्य प्रदान करो, वहाँ पर रहकर यह अजेय और अवध्य हो जायेगा ॥१५॥ शुक्राचार्य के द्वारा इस प्रकार से प्रेम पूर्वक कहे जाने पर महार्णव प्रसन्नता पूर्वक अपने पुत्र की प्रसन्नता के लिए वहाँ से हट गया और वहाँ पर उसने भूमि को प्रदर्शित किया ॥१६॥ सौ योजन चौड़ा और तीन सौ योजन लम्बा वह स्थान जालन्धर के ही नाम से विख्यात हो गया ॥१७॥ सागर ने

अम्भोधिनैव मुक्तस्तु चक्रे रत्नमयं पुरम् । प्राकारगोपुरद्वारं सोपानगृहभूमिकम् ॥१९॥
यत्रेन्द्रनीलसम्बद्धप्रासादतलसंस्थिता: । मेनिरे जलदोद्योगंताण्डवस्था:शिखण्डिन: ॥२०॥
यत्र प्रवालमाणिक्यभवनोत्था मरीचय: । सेव्यन्ते शकुनैश्चूतरुचिराङ्कुरशङ्कया ॥२१॥
यत्र काञ्चनहर्म्येषु त्विषोवह्निषु कातरा: । विलोक्य प्रपलायन्तु दावशङ्का:शिखण्डिन: ॥२२॥
यत्र स्फटिकशालोत्थप्रभासं मिश्रिता दिश: ।
विभान्ति मन्दरोद्भ्रान्ता: सफेनार्णवसन्निभा: ॥२३॥
यत्रमोहं स्वहर्म्येषुविभातालोकसंस्थिता: । चक्रिरे ललना:पूर्णं सान्ध्यचन्द्रोपमानना: ॥२४॥
यत्रेन्द्रनीपकादम्बपवनोद्यानमोदिता: । चित्तं विशन्त्यो नारीणां चक्रिरे मोहनज्वरम्॥२५॥
यत्रलेख्यगतं नृणां विलोक्य सुरतं जन: । संयाति द्विगुणं नूनं निजकान्तारतोद्यमम्॥२६॥
यत्र वातायनोद्धूतधूपधूमस्य लेखया । नभो बभूव तद्गङ्गाकालिन्दीसङ्गमोपमम् ॥२७॥
यत्रानेकगृहोद्भूतप्रभया सकलं नभ: । विभातीन्द्रायुधाकीर्ण:शरन्मेघ इवोन्नत: ॥२८॥
यत्रानिशं भ्रमभ्रान्ता: सूर्यवाहा: प्रपीडिता: । विश्रामं यान्ति मध्याह्ने प्रासादशिरसि स्थिता:॥२९॥
यत्रकुत्र च हर्म्येषु बिभ्रत्यो मालतीस्त्रज: । रात्रौ सम्भूतनक्षत्रा इव रेजुर्वराङ्गना: ॥३०॥
यत्र हाटकहिन्दोलशृङ्खलाघर्षयोद्भव: । चकार सुन्दरीशब्द: स्फुटं मेरुभुवो भुवम्॥३१॥
साकं सरिद्भि: पुत्रस्योशनसा सह सागर: । तत्राभिषेकमकरोद्वादित्रैर्निजगर्जितै: ॥३२॥

दैत्य राज मय को बुलाकर कहा जालन्धरपुर में जालन्धर के लिए निवास स्थान बना दो ॥१८॥ समुद्र के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर मय ने वहाँ रत्नमय नगर बना दिया । उस नगर के प्राकार, गोपुर, सिंहद्वार, सोपान गृह तथा भूमि सबकुछ रत्न निर्मित थे ॥१९॥ वहाँ के इन्द्रनील मणि निर्मित छतों पर नाचने के लिए बैठे हुए मयूरों को लगता है कि मेघ छा गया है ॥२०॥ वहाँ की प्रवाल मणियों से निर्मित भवनों की किरणों का सेवन पक्षीगण उसे आम्रमञ्जरी समझकर करते थे । वहाँ के सुवर्ण निर्मित भवनों की कान्तियों को देखकर तथा उसे दावाग्नि समझकर मयूर डर जाते थे और वहाँ से भाग जाते थे ॥२१-२२॥ वहाँ की स्फटिक मणि निर्मित शालभञ्जिकाओं की कान्ति से प्रकाशित दिशाएँ मन्दराचल से निस्सृत तथा फेन से युक्त समुद्र के समान प्रतीत होती थीं ॥२३॥ वहाँ के भवनों पर स्थित तथा प्रकाशित होने वाली सुन्दरियाँ सायंकालीन पूर्ण चन्द्र के मुख चन्द्रमा के समान आह्लादक थे वे लोगों के मोह उत्पन्न करती थीं॥२४॥ वहाँ के इन्द्रनीपकदम्ब उद्यान की सुगन्धित हवा नारियों के हृदय में प्रवेश करके कामज्वर को उत्पन्न कर देती थी ॥२५॥ वहाँ के चित्र निर्मित मनुष्यों की सुरत क्रीडा को देखकर लोग अपनी प्रेमिकाओं के साथ दुगने उत्साह के साथ सुरत क्रीडा करते है ॥२६॥ वहाँ के वातायनों (खिड़कियों) से निस्सृत धूप के धूम की रेखा से सारा आकाश गङ्गा यमुना के सङ्गम के समान बन जाता था ॥२७॥ वहाँ के उन गृहों से उत्पन्न कान्ति से सारा आकाश इन्द्रायुध से परिपूर्ण शरत्कालीन मेघ के समान सुशोभित होता था॥२८॥ दोपहर की बेला में वहाँ के महलों के ऊपर स्थित सूर्य के घोड़ें भ्रमित होकर विश्राम करने लगते थे॥२९॥ रात्रि में वहाँ के छतों पर जहाँ-तहाँ मालती पुष्प की माला धारण की हुयी ललनाएँ उदित हुए ताराओं के समान सुशोभित होती थीं ॥३०॥ वहाँ के सुवर्ण निर्मित झूले की शृंखला के घर्षण से उद्भूत सुन्दर शब्द

याः स्कन्दस्य जगाद तारकजये देवः स्वयम्भूः स्वयं ।
स्वःसाम्राज्यमहोत्सवेऽपि च शचीकान्तस्य वाचस्पतिः ॥
ताभिश्चित्रविरिञ्चिवक्त्रसरसीहंसीभिराशास्महे ।
वाणीभिर्वसुधाविवाहसमये मन्त्रोत्सवैर्मङ्गलम् ॥३३॥
महापद्मसहस्रं तु सैन्यमात्मोदरोद्भवम्। जालन्धराय पुत्राय ददौ भीमं महोदधिः ॥३४॥
जालन्धराय शुक्रोऽपि प्रीत्या विद्यां निजां ददौ ।
मृतसञ्जीवनीं नाम्नां मायां रुद्रविमोहिनीम् ॥३५॥
शास्त्रास्त्रविद्या अन्याश्च विधिना अब्धिसूनवे ।
यदन्यत्सकलं तस्मै व्याख्यातं कविना तदा ॥३६॥
ततो जालन्धरं पुत्रमभिषिच्यार्णवो ययौ। स्वस्थानं दिव्यदेहेन नदीभिः परिवारितः ॥३७॥
दृष्ट्वा जालन्धरो दिव्यपुरं गोपुरमण्डितम्। व्यचरत्सहशुक्रेण द्विजसङ्घैः सुपूजितः ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे दैत्याः पातालस्था महाबलाः। प्राप्ता जालन्धरं सर्वे कालनेमिपुरोगमाः ॥३९॥
ततो महाबला वीरा बलं क्षीरोदसन्निभम्। तस्य शुम्भासुरं दैत्यं सेनापतिमकल्पयन् ॥४०॥
बलं स्ववशगं कृत्वाकृत्वाभुवि स्थिरं जलम् ।
जालन्धरस्तदा राज्यं पितृदत्तं चकार सः ॥४१॥
अत्रान्तरेऽप्सराः काचित्स्वर्णेत्यासीत्पुरा दिवि ।
तस्याः क्रौञ्चप्रसादेन वृन्दा नाम सुताऽभवत् ॥४२॥

मन्दराचल और पृथिवी का अनुकरण करता था ॥३१॥ सागर ने नदियों तथा शुक्राचार्य के साथ अपनी गर्जना रूपी वाद्य के साथ अपने पुत्र जालन्धर को वहाँ पर अभिषिक्त किया ॥३२॥ तारकासुर पर विजय प्राप्त करने के समय स्वयं ब्रह्माजी ने जो मन्त्रों के माध्यम से स्कन्दजी का मङ्गल मनाया था, स्वर्ग के साम्राज्य प्राप्ति महोत्सव के अवसर पर बृहस्पति ने जो इन्द्र का मङ्गल मनाया था, जालन्धर के पृथिवी पति होने के समय ब्रह्माजी की उन्हीं वाणियों ने मङ्गलानुशासन किया ॥३३॥ महासागर ने अपने भीतर से उत्पन्न तथा भयङ्कर एक हजार सेना अपने पुत्र जालन्धर को प्रदान किया ॥३४॥ शुक्राचार्य ने भी प्रसन्न होकर जालन्धर को रुद्र को भी मोहित करने वाली मृतसंजीवनी नाम की अपनी मायामयी विद्या को प्रदान किया ॥३५॥ उस समय दूसरी शस्त्रास्त्र विद्याओं को तथा दूसरी सारी बातों को शुक्राचार्य ने जालन्धर को विधि पूर्वक पढ़ाया ॥३६॥ उसके पश्चात् जालन्धर नामक अपने पुत्र को अभिषिक्त करके दिव्य देहधारी सागर नदियों के साथ अपने स्थान पर चले गये ॥३७॥ गोपुर से अलंकृत दिव्य नगर को देखकर जालन्धर ब्राह्मण समूह से पूजित होकर शुक्राचार्य के साथ विचरण करता था ॥३८॥ इसी बीच पाताल में रहने वाले कालनेमि आदि महाबलवान् सभी दैत्य जालन्धर के पास आये ॥३९॥ उसके बाद महाबलवान् वीरों ने क्षीरसागर के समान अप्रमेय सेना का सेनापति शुम्भासुर नामक दैत्य को बना दिया ॥४०॥ सेना को अपने वश में करके तथा पृथिवी पर जल को स्थिर करके जालन्धर अपने पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य को करने लगा ॥४१॥ उसी समय स्वर्गलोक में स्वर्णा नाम की कोई अप्सरा थी उसके गर्भ से क्रौञ्च की

धात्रा विभवसंयुक्तं सौन्दर्यं यत्कृतं पृथक् । तत्तदेकगतं द्रष्टुं वृन्दागात्रं विनिर्मितम् ॥४३॥
तां वृन्दामतिचार्वङ्गीं प्रमदां जनमोहिनीम् । स्वर्णाजालन्धरस्यार्थे ददौ शुक्राय याचते ॥४४॥

शुक्र उवाच

कन्दर्पस्य जगन्नेत्रशस्त्रेणाश्चर्यकारिणा । रूपेणानेन रम्भोरुदीर्घायुःसुखिनी भव॥४५॥

निर्माय स्वयमेव विस्मितमनाः सौन्दर्यसारेण यं,
स्वव्यापारपरिश्रमस्य कलशं वेधाः समारोपयत् ।
कन्दर्पं पुरुषं स्त्रियो विदधते यस्मिन्नदृष्टे सति,
द्रष्टव्यावधिरूपमाप्नुहि पतिं तं दीर्घनेत्रं भटम् ॥४६॥

नारद उवाच

उपमेये विवाहेन गान्धर्वेणार्णवात्मजः । वृन्दां तौ दम्पतीजातौ जनानन्दकरौ नृप !॥४७॥

चञ्चलत्वं परित्यक्तं तया जालन्धरोऽपि हि ।
वृत्तेन वृद्धकार्येण चकमे न परस्त्रियम् ॥४८॥
कदाचित्स सभासीनो दृष्ट्वा राहुशिरो हृतम् ।
कस्मात्कायार्द्धशेषोऽयमति पप्रच्छ भार्गवम् ॥४९॥

स तस्य कथयामास पूर्ववृत्तान्तमादितः । यथा निर्मथितो देवैः क्षीरोदोऽमृतकारणात् ॥५०॥

तच्छ्रुत्वा विस्मितो वाक्यं प्राह जालन्धरोऽसुरः ।
प्रसादसुमुखो राहुं कामरूपो भवाधुना ॥५१॥

वृन्दा नाम की पुत्री हुयी ॥४२॥ ब्रह्माजी ने ऐश्वर्य सम्पन्न पृथक्-पृथक् जिस सौन्दर्य को बनाया वह सम्पूर्ण केवल वृन्दा के ही शरीर में समाविष्ट हो गया ॥४३॥ स्वर्णा ने अत्यन्त सुन्दरी तथा लोगों को मोहित करने वाली उस वृन्दा का विवाह शुक्राचार्य के कहने से जालन्धर से कर दिया ॥४४॥ शुक्राचार्य ने उसे आशीर्वाद दिया । कामदेव के आश्चर्यकारी जगन्नेत्रशस्त्ररूपी इस रूप के द्वारा हे रम्भोरु ! तुम दीर्घायु तथा सुखिनी हो जाओ ॥४५॥ स्वयमेव सौन्दर्य के सारभाग से जिसका निर्माण करके आश्चर्यित ब्रह्माजी ने अपने व्यापार जन्य परिश्रम के कलश की स्थापना की, जिसको नहीं देखने के कारण वे सुन्दर पुरुष तथा स्त्रियों की रचना नहीं करते हैं उस द्रष्टव्य की चरम सीमा रूपी बड़े-बड़े नेत्रों वाले वीरपति को तुम प्राप्त करो॥४६॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजन् ! सागर पुत्र जालन्धर ने गान्धर्व रीति से वृन्दा के साथ विवाह किया और वे दोनों लोगों को आनन्दित करने वाले पति-पत्नी हो गये ॥४७॥ वृन्द तथा जालन्धर दोनों ने चञ्चलता का परित्याग कर दिया । वृद्ध पुरुषों के द्वारा किए जाने वाले व्यवहार को करने के कारण उसने किसी दूसरे की पत्नी को प्राप्त करने की इच्छा नहीं की ॥४८॥ एक बार सभा में बैठे हुए जालन्धर ने राहु के शिर को काटे हुए देखा और शुक्राचार्य से पूछा कि इसका आधा ही शरीर क्यों हैं ?॥४९॥ शुक्राचार्य ने आदि से अन्त तक उस वृत्तान्त को सुनाया कि देवताओं ने अमृत प्राप्त करने के लिए क्षीर सागर का किस तरह से मन्थन किया ॥५०॥ उस वाक्य को सुनकर जालन्धर आश्चर्यित हो गया और

इति शुक्रस्य मन्त्रेण सिन्धुसूनुः प्रतापवान्। पितृव्यंसंस्मरन्वीरविग्रहं त्वकरोत्सुरैः ॥५२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे नारदयुधिष्ठिरसंवादे जालन्धरोपाख्याने वृन्दाविवाहो जालन्धराभिषेको नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पाँचवा अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

कः पितृव्यः सिन्धुसूनोः किं वृत्तंतस्य विग्रहे ।
युयुधेसकथं दैत्यस्तन्मे कथय नारद ॥१॥

नारद उवाच

शृणुत्वं नृपशार्दूल पितृव्यःक्षीरसागरः। जालन्धरस्य तं देवैः प्रमथ्य धनमाहृतम् ॥२॥
श्रीचन्द्रामृतनागाश्वपूर्वं तस्य सुरासुरैः। तच्छ्रुत्वाविग्रहं चक्रे देवैर्जालन्धरोऽसुरः ॥३॥
कदाचित्प्रेषयामास दूतं दुर्वारणं बली। शिक्षयित्वा तु वक्तव्यं देवेन्द्रभवनं प्रति ॥४॥
अथ स्यन्दनमारुह्य ययौ दुर्वारणो दिवि। प्रवेष्टुकामो भवनं द्वाःस्थैर्द्वारि निवारितः ॥५॥

दूत उवाच

जालन्धरस्य दूतोऽहमागतः शक्रसन्निधौ। गत्वा तत्र भवन्तो मां विज्ञापयितुमर्हथ ॥६॥

प्रसन्न होकर राहु से कहा तुम अपने मनोनुकूल रूप वाले हो जाओ ॥५१॥ इस तरह से शुक्राचार्य के मन्त्र के द्वारा प्रतापी जालन्धर अपने पितृव्य (चाचा) का स्मरण करके देवताओं से वैर कर लिया ॥५२॥

इस तरह पचपन हजार श्लोक वाले पद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के नारद युधिष्ठिर संवादान्तर्गत वृन्दाविवाह तथा जालन्धर अभिषेक नामक चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

क्षीर सागर के मन्थन का कारण जानने के लिए जालन्धर द्वारा इन्द्र के पास दूत भेजना

युधिष्ठिर ने कहा— हे नारदजी ! आप मुझे बतलायें कि सागरपुत्र जालन्धर का पितृव्य (चाचा) कौन था ? और उसके वैर का कारण क्या था ? उस दैत्य ने युद्ध क्यों किया ?॥१॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजश्रेष्ठ ! आप सुनें जालन्धर का पितृव्य क्षीरसागर था । उसका मन्थन करके देवताओं ने उसके धन को ले लिया ॥२॥ लक्ष्मी, चन्द्रमा, अमृत, ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा आदि को देवताओं और असुरों ने ले लिया । उसको सुनकर जालन्धर ने देवताओं से वैर किया ॥३॥ उसने एक बार सारी बातें बतलाकर दुर्वारण नामक दैत्य को दूत के रूप में इन्द्र के यहाँ भेजा ॥४॥ उसके पश्चात् रथ पर बैठकर दुर्वारण स्वर्गलोक में प्रवेश करने की इच्छा से गया और द्वारपालों ने उसे रोक दिया ॥५॥ **दूत ने कहा—** मैं जालन्धर का दूत हूँ । इन्द्र के पास आया हूँ तुमलोग इन्द्र को जाकर बतला दो ॥६॥

नारद उवाच

इतितस्य वचः श्रुत्वा तदैव तु शचीपतिम्। गत्वा च प्रणिपत्याह दूतो देवागतो भुवः ॥७॥
दौवारिको महेन्द्रेण प्रत्युक्तो दूतमानय। हस्ते गृहीत्वा तं दूतं वासवान्तिकमानयत्॥८॥
दुर्वारणो देवसभां प्रविष्टः प्रव्यलोकयत्। हरिं देवैस्त्रयस्त्रिंशत्कोटिभिः परिवेष्टितम् ॥९॥
स्वर्णसिंहासने दिव्यचामरानिलसेवितम्। शचीप्रेमरसोत्फुल्लनयनाब्जसहस्रकम् ॥१०॥
दुर्वारणोऽथ देवेशं विलोक्य गुरुणा सह। प्रणनामात्मगर्वेण प्रहसन्नयनश्रियम् ॥११॥
दिर्दिष्टमासनं भेजे दूतो जालन्धरस्य सः। कस्य त्वं केन कार्येण प्राप्तःप्राहेति तं हरिः॥१२॥
दूतो जालन्धरस्याहं स जगाद पुरन्दरम्। स राजा सर्वलोकानां तस्याज्ञां शृणु मन्मुखात्॥१३॥

पितृव्यो मम दुग्धाब्धिस्त्वया कस्माद्विलोडितः ।
मन्दाराद्रिविधानेन हृतं कोशो महाधनः ॥१४॥

श्रीचन्द्रामृतनागांश्चतन्मणिं विद्रुमादिकम्। देहि सर्वतथा स्वर्गं शीघ्रं त्यज पुरन्दर ! ॥१५॥

किं केकीव शिखण्डमण्डिततनुः सारीव किं सुस्वरः,
किं वा हन्त शकुन्तबालकपितुः कर्णामृतस्यन्दनः ।
किं वा हंस इवाङ्गनागतिगुरुः किं करीवत्पाठकः
काकः केन गुणेन काञ्चनमयेऽलङ्कारितःपञ्जरे ॥१६॥

स त्वं मद्वचनात्तूर्णं कुरु सर्वं यथोचितम्। तं क्षमापय भूपालं यदि जीवितुमिच्छसि॥१७॥

नारद उवाच

अथ प्रहस्य मघवा प्राह दुर्वारणं प्रति ॥१८॥

नारदजी ने कहा— उसकी इस वाणी को सुनकर दूत ने देवराज से जाकर कहा— महाराज ! भूलोक से दूत आया है ॥७॥ इन्द्र ने द्वारपाल से कहा— दूत को लाओ और वह दूत का हाथ पकड़कर इन्द्र के सन्निकट लाया ॥८॥ देवताओं की सभा में प्रवेश करके दुर्वारण ने तैंतिस करोड़ देवताओं के बीच में विद्यमान इन्द्र को देखा ॥९॥ इन्द्र स्वर्ण के सिंहासन पर बैठे थे। उनको दिव्य चामर से हवा की जा रही थी। शची के प्रेम में उनके हजारों नेत्र विकसित (प्रसन्न) थे ॥१०॥ उसके पश्चात् बृहस्पति के साथ विद्यमान इन्द्र को देखकर उनके नेत्र रूपी सम्पत्ति का उपहास करता हुआ सा दुर्वारण इन्द्र को गर्व पूर्वक प्रणाम किया ॥११॥ जालन्धर का वह दूत निर्दिष्ट आसन पर बैठ गया तो इन्द्र ने उससे पूछा— तुम किसके दूत हो ? और किस कार्य से आये हो ?॥१२॥ उसने इन्द्र से कहा— मैं जालन्धर का दूत हूँ। वे सभी लोकों के राजा हैं। आप मेरे मुख से उनकी आज्ञा को सुनें ॥१३॥ उन्होंने कहा है— क्षीरसागर मेरे पितृव्य हैं, तुमने उनका मन्थन क्यों किया ? मन्दराचल के द्वारा तुमने उनके महाधन से सम्पन्न कोश का अपहरण किया है ॥१४॥ हे पुरन्दर ! तुम श्री, चन्द्रमा, अमृत तथा हाथियों को देकर शीघ्र स्वर्ग से भाग जाओ ॥१५॥ शिखण्ड से अलंकृत मयूर के समान अपने शरीर को क्यों अलंकृत किए हो ? मैना पक्षी के समान सुन्दर स्वर से क्या लाभ है ? कानों में अमृत घोलने वाले बालक पक्षी के पिता से क्या लाभ है ? हंस के समान चलने वाली नारी से क्या लाभ ? शुकपक्षी के समान पाठक (वन्दीजन) से क्या लाभ और किस गुण के कारण तुम जैसे कौए को सुवर्ण के पिञ्जड़े में रखा जाय ?॥१६॥ यदि तुम

इन्द्र उवाच

शृणु दूत समासेन सिन्धोर्मथनकारणम्। पुरा हिमवतः सूनुर्मैनाको नाम मे रिपुः ॥१९॥
स कुक्षौ विधृतस्तेन सागरेण जडेन च। दग्धं चराचरं येन वह्निना हयरूपिणा ॥२०॥
स चापि विधृतस्तेन सागरेण दुरात्मना। धर्मद्विषां दानवानामसौ वा आश्रयः प्रभुः ॥२१॥
नित्यं दधिघृतं क्षीरं दानवेभ्यः प्रयच्छति। अत एवायमस्माभिर्दुर्वारण ! विलोडितः ॥२२॥
दण्डितश्च गतश्रीको देवैरथ पुरातनैः। शृणु दूत ! सबन्येन मम विप्रेण शोषितः॥२३॥
कुम्भोद्भवेन किञ्चैष दुःसङ्गेनैव बाध्यते। सोऽपि युद्धार्थमस्माभिः सर्वसैन्येन संवृतः ॥
आगमिष्यति वै नाशं गमिष्यति तदैव हि ॥२४॥

नारद उवाच

इतीरयित्वा विरराम वृत्रहा सरित्पतेरात्मजदूतमुच्चकैः ।
शशंस चागत्य समुद्रसूनोर्देवेश्वरेणोक्तमशेषमादितः ॥२५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे षष्ठे उत्तरखण्डे नारदयुधिष्ठिरसंवादे जालन्धरोपाख्याने पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

जीवित रहना चाहते हो तो जाकर उनसे क्षमा माँगो और उन्होंने जो आज्ञा दी है उसका पालन करो ॥१७॥ **नारदजी ने कहा—** उसके पश्चात् इन्द्र ने जोर से हँसकर दुर्वारण से कहा ॥१८॥ **इन्द्र ने कहा—** हे दूत! सुनो मैं समुद्र मन्थन का कारण संक्षेप में बतलाता हूँ। पूर्वकाल में हिमालय का पुत्र मैनाक मेरा शत्रु हुआ। उसको जड सागर ने अपने पेट में रखकर बचा लिया। दूसरी बात यह कि जिस अश्वरूप धारी अग्नि ने चराचर को जला दिया था, उस बाडवाग्नि को भी उस दुष्ट सागर ने अपने भीतर रख लिया। यही नहीं वह धर्म के शत्रु दानवों का आश्रय भी है ॥१९-२१॥ वह सदैव ही दानवों को दुग्ध, दधि और घृत प्रदान करता है इसीलिए मैंने उसका मन्थन किया ॥२२॥ प्राचीन देवताओं के द्वारा वह दण्डित किया गया है और वह निःश्रीक (दरिद्र) हो गया है। दूत ! मेरे ब्राह्मण अगस्त्य महर्षि ने उसको प्रतिज्ञा पूर्वक शोख भी लिया ॥२३॥ वह दुष्टों की सङ्गति से बाधित हो रहा है। वह भी (जालन्धर भी) जब आयेगा तो हमारी सारी सेना के द्वारा घेरकर मार दिया जायेगा ॥२४॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से सागर पुत्र जालन्धर से जोर से कहकर इन्द्र चुप हो गये और वह दूत भी आकर जालन्धर को इन्द्र के द्वारा कही गयी सारी बातों को सुना दिया ॥२५॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के उत्तर खण्ड के नारद युधिष्ठिर संवादान्तर्गत जालन्धरोपाख्यान के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

छठा अध्याय

नारद उवाच

महेन्द्रवचनं श्रुत्वा निजदूतमुखेन च। समुद्रसूनुः सङ्क्रुद्धः सर्वं सैन्यं समाह्वयत् ॥१॥
रसातलस्थिता दैत्या ये च भूतलवासिनः। आययुः सबलास्तत्र जालन्धरमथाज्ञया ॥२॥
प्रयाणप्रक्रमे सिन्धुसूनोः सैन्यस्यगर्जितैः। स्फुटन्ति नभसो राजन्यातालमखिलादिशः ॥३॥
हयनागोष्ट्रवदना बिडालमुखभीषणाः। व्याघ्रसिंहाखुवदना विद्युत्सदृशलोचनाः ॥४॥
सर्पकेशा महादेहाः केचित्खङ्गतनूरुहाः। अन्ये च परिधावन्ति गर्जन्ति जलदस्वनैः॥५॥
रथगजहयपत्तिसङ्कुलं समरविनोदकदम्बभासुरम् ।
अब्जशतसहस्रकोटिनायकं बलमखिलं च तदा रराज राजन् ! ॥६॥
शतयोजनविस्तीर्णं विमानं हंसकोटिभिः। युक्तं भूतिसहस्रौघं सर्ववस्तुप्रपूरितम् ॥७॥
तद्विमानं समारुह्य सद्यो जालन्धरो ययौ। मध्याह्ने मन्दरं प्राप्तः प्रथमेऽह्निबलैः सह ॥८॥
खण्डितं शिविकावाहैर्दलितं भूरिकुञ्जरैः। द्वितीये दिवसे मेरुं सम्प्राप्तो बलसंयुतः॥९॥
इलावृते तु शिखरे तस्थौ तत्कटकं महत्। अथ दैत्याधिपैर्भग्नं खाण्डवं नन्दनं वनम् ॥१०॥
शिखराणि विशीर्णानि मेरोर्दानवपुङ्गवैः। सन्तानकेषु वृक्षेषु बद्ध्वा हिन्दोलमञ्चकान्॥११॥
सिद्धाङ्गनाभिः सहिता रेमिरे दैत्यपुङ्गवाः। कुचकुङ्कुमताम्बूलचन्दनागरुभूषणैः ॥१२॥

दैत्य सेना का देव सेना के साथ युद्ध

नारदजी ने कहा— अपने दूत के मुख से इन्द्र की बातों को सुनकर समुद्रपुत्र जालन्धर ने अपनी सारी सेना को बुलाया ॥१॥ उसके बाद जालन्धर की आज्ञा प्राप्त करके पाताल और भूलोक में रहने वाले सभी दैत्य अपनी सेना के साथ आ गये ॥२॥ हे राजन् ! युद्ध के लिए प्रस्थान करने के समय जालन्धर की सेना की गर्जन से पाताल से लेकर स्वर्ग पर्यन्त की सारी दिशाएँ फटने लगीं ॥३॥ उन सेनाओं के घोड़ा, हाथी, ऊँट तथा विडाल के मुख के समान भयङ्कर मुख थे । कुछ के व्याघ्र, सिंह तथा चूहे के मुख के समान मुख थे और उनके बिजली के समान नेत्र थे ॥४॥ कुछ के सर्प के समान केश थे और विशाल शरीर थे । कुछ के रोएँ खड्ग के समान थे और कुछ वीर दौड़ रहे थे और मेघ के समान गरज रहे थे॥५॥ हे राजन् ! उस समय सैकड़ों हजार करोड़ पद्म सेनापतियों, हाथी, घोड़ा तथा पैदल सेना से परिपूर्ण तथा युद्ध रूपी मनोविनोद से देदीप्यमान वह सम्पूर्ण सेना सुशोभित हो रही थी ॥६॥ जालन्धर भी सौ योजन विस्तृत तथा करोड़ों हंसों से युक्त, हजारों प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण तथा सभी वस्तुओं से भरे हुए विमान पर बैठकर जालन्धर भी गया । वह पहले दिन के दोपहर के समय अपनी सेना के साथ मन्दराचल पर पहुँचा ॥७-८॥ शिविका वाहकों ने मन्दराचल को खण्डित कर दिया और बहुत अधिक हाथियों ने उसको मसल डाला । दूसरे दिन वह अपनी सेना के साथ सुमेरु पर्वत पर पहुँच गया ॥९-१०॥ वह विशाल सेना इलावृत के शिखर पर रुकी । इसके बाद बड़े-बड़े दैत्यों ने खण्डव वन तथा नन्दन वन को तोड़ दिया । श्रेष्ठ दानवों ने सुमेरु पर्वत के शिखरों को तोड़ दिया । सन्तान वृक्षों में झूला बाँधकर सिद्धाङ्गनाओं के साथ श्रेष्ठ दैत्यों ने रमण किया । उनके स्तनों के कुङ्कुम, ताम्बूल, चन्दन, अगरु

केशपाशच्युतैः पुष्पैर्मेरोःसम्पूरिता नदी। सुमेरोः पूर्वदिग्भागो गजैस्तस्य विघट्टितः ॥१३॥
दक्षिणं च रथैश्चेरुरुत्तरं पश्चिमं भटैः। अथ प्रस्थापयामास दैत्याञ्जालन्धरोऽसुरः॥१४॥
महेन्द्रशिखरं चान्ये ययुर्दुन्दुभिनिःस्वनैः। राजराजपुरीं भङ्क्त्वा यमस्य वरुणस्य च ॥१५॥
अन्येषां लोकपालानामाययुस्तेऽमरावतीम्। यथोत्पातोऽभवन्नाके दिव्यभौमान्तरिक्षगः ॥१६॥
रजः पपात बहुलं तमस्तोमो विजृम्भते। तदा पपात कुलिशं करादिन्द्रस्य निष्प्रभम्॥१७॥

दृष्ट्वा निमित्तानि भयावहानि नाके महेन्द्रो गुरुमित्युवाच ।
किंकुर्महे कं शरणं च यामस्तं पश्य युद्धं समुपस्थितं च ॥१८॥

ततो वाचस्पतिर्वाक्यमुवाच त्रिदशाधिपम्। चरणौ याहि शरणं विष्णोर्वैकुण्ठवासिनः ॥१९॥

इत्युक्तो गुरुणा देवैः साकं वैकुण्ठमन्दिरम् ।
जगामाखण्डलःशीघ्रं शरणं कैटभद्विषः ॥२०॥

शशंस वासुदेवाय विजयो द्वारपालकः। जालन्धरभयत्रस्ताः सर्वे देवाः समागताः ॥२१॥

श्रीरुवाच

न वध्योऽसौ मम भ्राता देवार्थे युध्यता त्वया ।
शापितो देव मत्प्रीत्या न वधार्हो भविष्यति ॥२२॥

नारद उवाच

इति श्रीवचनं श्रुत्वा विष्णुस्त्रैलोक्यपालकः ।
अथारुरोह गरुडं पक्षक्षेपावृताम्बरम् ॥२३॥

वैकुण्ठभवनात्तूर्णं निर्गतस्त्रिदशान्हरिः। जालन्धरभयत्रस्तान्गतकान्तीनथैक्षत ॥२४॥

तथा भूषणों से ॥११-१२॥ तथा केशपाश से गिरे हुए पुष्पों से सुमेरु पर्वत की नदी भर गयी। सुमेरु पर्वत की पूर्व दिशा को उसके हाथियों ने रगड़ डाला। सुमेरु पर्वत के दक्षिण और उत्तर दिशा में वीरों ने संचरण किया। इसके पश्चात् जालन्धर ने दैत्यों को भेजा ॥१३-१४॥ दूसरे दैत्य दुन्दुभि बजाते हुए महेन्द्र पर्वत के शिखर पर गये। कुबेर की नगरी को तोड़कर यमराज और वरुण की भी नगरी को तोड़ करके तथा दूसरे लोकपालों की नगरी को तोड़कर वे अमरावती में आ गये। स्वर्गलोक तथा दिव्यभौम अन्तरिक्ष में भी उसी तरह का उत्पात हुआ ॥१५-१६॥ वहाँ बहुत अधिक धूल गिरी और घोर अन्धकार छा गया। उस समय कान्तिविहीन होकर इन्द्र के हाथ से वज्र गिर पड़ा ॥१७॥ स्वर्ग लोक में बहुत अधिक भयङ्कर शकुनों को देखकर इन्द्र ने बृहस्पति से कहा— मैं क्या करूँ ? किसके शरण में जाऊँ, उसको आप देखें युद्ध उपस्थित हो गया है ॥१८॥ इसके पश्चात् बृहस्पति ने इन्द्र से कहा— तुम वैकुण्ठवासी भगवान् विष्णु के शरण में जाओ ॥१९॥ बृहस्पति के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर इन्द्र शीघ्र ही कैटभ नामक दैत्य के शत्रु भगवान् विष्णु के पास वैकुण्ठ लोक में गये ॥२०॥ विजय नामक द्वारपाल ने भगवान् वासुदेव को बतलाया कि जालन्धर के भय से भयभीत होकर सभी देवता आये हैं॥२१॥ **श्रीदेवी ने भगवान् विष्णु से कहा—** देवताओं की ओर से युद्ध करते हुए आप मेरे भाई जालन्धर को नहीं मारेंगे। आपको मेरे प्रेम की शपथ है वह आपका वधार्ह नहीं है ॥२२॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह की लक्ष्मीजी की वाणी को सुनकर त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले भगवान् विष्णु अपने पङ्खों से आकाश को ढँक देने

ददृशुस्ते सुराः सर्वे हरिं सान्द्रघनोपमम् । शार्ङ्गशङ्खगदापद्म विभूषितचतुर्भुजम् ॥२५॥
स्तोत्रं पठित्वा पुरतः प्राहेन्द्रः सरितांपतेः । जालन्धरेणात्मजेन भग्नं देव त्रिविष्टपम् ॥२६॥
तदिन्द्रवचनं श्रुत्वाऽभयं दत्त्वा दिवौकसाम् । विजेतुमसुरं देवैः सह रेजेऽसुरान्तकृत् ॥२७॥
अथानीतं मातलिना रथमारुह्यवासवः । वासुदेवस्य पुरतः प्रययौ विधृताशनिः ॥२८॥
वामतस्त्रिदशाः सर्वे सव्यतश्च समाययौ । स्वाहाप्रियौदक्षिणतःस च मेषं समास्थितः ॥२९॥
आरुह्यैरावतं नागं जयन्तः शक्रनन्दनः । उच्चैःश्रवसमन्द्रश्च उभौभगवतःपुरः ॥३०॥

धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ।
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः ॥३१॥
ततस्त्वष्टा ततो विष्णू रेजेधन्यो जघन्यजः ।
इत्येते द्वादशादित्या इन्द्रस्य पुरतः स्थिताः ॥३२॥

वीरभद्रश्च शम्भुश्च गिरिशश्च महायशाः । अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः॥३३॥
भुवनाधीश्वरश्चैव कपाली च विशांपते । स्थाणुर्भगश्च भगवान्रुद्रा एकादशस्मृताः ॥३४॥
श्वसनः स्पर्शनोवायुरनिलोमारुतस्तथा । प्राणापानौ सजीवौ च मरुतोऽष्टौतदग्रतः ॥३५॥
विवस्वानपि तन्मध्ये ययौ द्वादश मूर्तिभिः । धनदः शिबिकारूढः किन्नरेशो ययौ तदा॥३६॥
रुद्राश्च वृषभारुढा मारुतो मृगवाहनः । ययुः सैन्यस्य पुरतस्त्रिशूल परिघायुधाः॥३७॥
गन्धर्वाश्चारणा यक्षाः पिशाचोरगगुह्यकाः । सर्वसैन्यस्य पुरतः सर्वशास्त्रभृतो ययुः ॥३८॥

वाले गरुड़ पर चढ़ गये ॥२३॥ वैकुण्ठ रूपी भवन से निकलकर श्रीहरि ने जालन्धर के भय से संत्रस्त तथा निस्तेज देवताओं को देखा ॥२४॥ देवताओं ने भी देखा कि श्रीहरि की चारो भुजाएँ शार्ङ्ग, शङ्ख, गदा तथा पद्म से अलंकृत हैं ॥२५॥ इन्द्र ने श्रीभगवान् की उनके सामने जाकर स्तुति उनके सामने पढ़कर कहा कि हे देव ! सागर के पुत्र जालन्धर ने स्वर्ग को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है ॥२६॥ इन्द्र की वाणी सुनकर श्रीभगवान् ने उनको अभय प्रदान किया और उस असुर को पराजित करने के लिए वे सुशोभित हुए॥२७॥ उसके पश्चात् मातलि द्वारा लाये गये रथ पर चढ़कर इन्द्र भगवान् विष्णु के आगे हाथ में वज्र लेकर चले॥२८॥ उनके बायें और दायें सभी देवता चले । उनकी बायीं ओर मेष पर सवार होकर स्थित हो गये॥२९॥ श्रीभगवान् के आगे इन्द्रपुत्र जयन्त हाथी पर चढ़कर और इन्द्र उच्चैःश्रवा पर सवार होकर चले॥३०॥ आगे १. धाता, २. अर्यमा, ३. मित्र, ४. वरुण, ५. अंश, ६. भग, ७. इन्द्र, ८. विवस्वान्, ९. पूषा तथा दशवाँ १०. पर्जन्य, उसके पश्चात् ११. त्वष्टा और बारहवाँ १२. विष्णु ये बारहों आदित्य स्थित हुए ॥३१-३२॥ हे राजन् ! १. वीर भद्र, २. शम्भु, ३. महायशस्वी गिरिश, ४. अजैकपाद, ५. अहिर्बुध्न्य, ६. पिनाकी, ७. अपराजित, ८. भुवनाधीश्वर, ९. कपाली, १०. स्थाणु और ११. भग ये ग्यारह भगवान् रुद्र कहे गये हैं ॥३३-३४॥ उनके आगे १. श्वसन, २. स्पर्शन, ३. वायु, ४. अनिल, ५. मारुत, ६. प्राण, ७. अपान सजीव मरुत ये आठ मरुत स्थित हुए । उसी के बीच सूर्य भी अपने बारह मूर्तियों के साथ चले गये । उसके पश्चात् किन्नरेश धनद शिविका पर सवार होकर गये ॥३५-३६॥ सभी रुद्र वृषभ पर सवार थे और मारुत का वाहन मृग था । वे सब सेना के आगे हाथ में त्रिशूल और परिघ लेकर चल रहे थे ॥३७॥ सम्पूर्ण सेना के आगे सभी शास्त्रों के ज्ञाता गन्धर्व, चारण, यक्ष, पिशाच, उरग और

पूर्वापरौ तोयराशी समाक्रान्तौ च सैनिकैः। तस्मिन्ससारभूमिराड् वराहवपुषा हरिः ॥३९॥
स्वर्गादागत्य वेगेन दैत्यसैन्य जिघांसया। सुमेरोरुत्तरोभागः सुरसैन्येनसंवृतः ॥४०॥
सेनाभारोऽद्भुत करस्तस्थौ जालन्धरस्य च। आश्रित्य दक्षिणं भागं तूर्णं कनकशृङ्गतः ॥४१॥
अहोरात्रेणविहिता वर्षे तस्मिन्निलावृते। मेरुमन्दरयोर्मध्ये युद्धभूमिः प्रतिष्ठिता ॥४२॥
तत्रात्मजयदां भूमिं कविप्रोक्तां मुदायुताः। जग्मुस्ते दानवास्तूर्णं गुरुप्रोक्तां ययु सुराः ॥४३॥

रथप्रवीरैः परितश्च सम्प्लवैर्गजैर्घनाकारमदप्रवाहिभिः ।
अश्वैरनन्तैर्गरुडाग्रगामिभिः पदातिभिः सारणभूर्भृता बभौ ॥४४॥

ततो वादित्रनिर्घोषः सेनयोरुभयोरभूत्। कोलाहलश्च वीराणामन्योन्यमभिगर्जताम् ॥४५॥
अथ दानवदेवानां सङ्ग्रामोऽभूद्भयावहः। सर्वसैन्यस्य संमर्दो यथा त्रिभुवनक्षयः॥४६॥
भयक्रान्ता महाश्रान्ता श्रुतिर्विलपती मुहुः। रोमाञ्चिताबभौद्यौश्च रजोवस्त्रं विधुन्वती॥४७॥
रौद्रैर्विहङ्गमारावैस्त्रासादाक्रन्दतीवं हि। देवेन्द्रेण तदाज्ञप्ता मेघाःसंवर्तकादयः ॥४८॥
गजानुच्चैः समारुह्य तेऽसुरान्युयुधुर्मृधे। देवानामश्वारोहाश्च जाता गन्धर्वकिन्नराः ॥४९॥
रथिनःसाध्यसिद्धाश्च गजिनो यक्षचारणाः। पदातिनः किम्पुरुषाः पन्नगाः पवनाशनाः ॥५०॥
रागाणामधिपो राजयक्ष्मा च यमनायकः। तदा दानवरोगाणांसङ्ग्रामोऽभूत्सुदारुणः ॥५१॥
पतिता लुलुठुर्भूमौ दैत्याःशूलज्वरामयैः। दानवैर्निहता रोगाः पेतुसमरमूर्द्धनि ॥५२॥

गुह्यकवगचल रहे थे ॥३८॥ सैनिकों ने पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्र सैनिकों द्वारा आक्रान्त हो गये। उसमे पृथिवीपति वाराह भगवान् प्रवेश कर गये ॥३९॥ वे दैत्यों की सेना को मारने की इच्छा से वेगपूर्वक स्वर्ग से आकर प्रवेश किए थे। सुमेरु पर्वत का उत्तर भाग देवताओं की सेना से ढँक गया ॥४०॥ अद्भुत कार्य करने वाला जालन्धर शीघ्रता से आकर सुमेरु पर्वत के दक्षिण भाग में स्थित हो गया ॥४१॥ उस इलावृत वर्ष में सुमेरु और मन्दराचल पर्वत के बीच में एक दिन और एक रात में युद्धभूमि निश्चित हो गयी ॥४२॥ शुक्राचार्य के द्वारा विजय प्रदान करने वाली भूमि पर दानव शीघ्र चले गये और बृहस्पति के द्वारा बतलायी गयी भूमि पर देव चले गये ॥४३॥ श्रेष्ठ रथी वीरों तथा चारों ओर उछलने वाले; मदवारि प्रवाहित करने वाले काले हाथियों, गरुड से भी तेज चलने वाले अनन्त अश्वों, तथा पैदल सैनिकों के द्वारा वह युद्धभूमि भर गयी ॥४४॥ उसके बाद दोनों सेनाओं में युद्ध वाद्य बजने लगे और परस्पर में गरजने वाले वीरों में कोलाहल होने लगा ॥४५॥ उसके पश्चात् देवताओं और दानवों का भयङ्कर युद्ध हुआ। सारी सेना का ऐसा युद्ध हुआ कि जैसे त्रिभुवन का क्षय हो गया हो ॥४६॥ भयभीत और अत्यन्त श्रान्त श्रुति बार-बार विलाप कर रही थी। अपने रजोवस्त्र को झाड़ती हुयी द्युलोक रूपी नायिका रोमाञ्चित हो रही थी॥४७॥ भयावह पक्षियों की ध्वनि के माध्यम से मानो वह भयभीत होकर चिल्ला रही थी। उसी समय इन्द्र ने संवर्तक आदि मेघों को आदेश दिया ॥४८॥ वे बड़े-बड़े हाथियों पर सवार होकर युद्ध में असुरों के साथ युद्ध करने लगे। देवताओं के घुड़सवार गन्धर्व और किन्नर हो गये ॥४९॥ सिद्ध और साध्य देवता रथी हो गये, यक्ष और चारण हाथी पर सवार हो गये। पैदल किम्पुरुष वायु पीने वाले सर्प हो गये ॥५०॥ रोगों के स्वामी राजा यक्ष्मा यम का सेनापति हो गया। उस समय दानवों का रोगों के साथ भयङ्कर संग्राम हुआ॥५१॥ शूलज्वर के कारण दैत्यवीर पृथिवी पर गिर कर लोटने लगे। दानवों के द्वारा मारे गये रोग

पलायांचक्रिरे केचिद्व्याधयो भूधराम्प्रति । ओषध्यस्तत्र सहजा वैशल्यकरणीमुखाः ॥५३॥
ताभिर्विशल्याःसैन्येषु युयुधुर्यमकिङ्कराः । दानवैर्निहताःसर्वे शरमुद्गरपट्टिशैः ॥५४॥
पदातयः पत्तिगणैःखड्गैस्तीक्ष्णैःपरश्वधैः । कोटिशो जघनुरन्योन्यारुधिरारुणविग्रहाः ॥५५॥
अश्ववारा हयैस्तूर्णैश्चिक्षिपुर्गगने तदा । संश्लिष्य जघ्नुरन्योन्यं रुधिरारुणविग्रहाः ॥५६॥
समूहो रथिनां भीमो रथौघैश्छाद्य मेदिनीम् ।
विव्याध निशितैर्बाणैर्धनुर्मुक्तैर्महारथान् ॥५७॥
मदक्षीणकपोलाङ्गाःकरैर्बद्ध्वा करान्दृढम्। गजान्प्रतिगजाःक्रुद्धाःपातयन्ति महीतले ॥५८॥
कोऽपि दैत्यो रथं दोर्भ्यामुत्क्षिप्योत्थाय खं ययौ ।
अश्वचारान्हयान्नागान्पातयामास भूतले ॥५९॥
स्कन्धे गृहीत्वा तरसा ययौ जालन्धरंप्रति । कक्षयोर्वै गजौगृह्य तृतीयं जठरोपरि ॥६०॥
चतुर्थं मस्तके गृह्य रणे धावति कश्चन। उत्पाट्य कोशतःखड्गं विधूय विमलाम्बरम् ॥६१॥
ययौ सहस्रशो देवान्पातयित्वा रणेऽसुरः। काचित्पीनस्तनीतन्वी खेचरी रतिलम्पटा ॥६२॥
आगत्य गगनात्तूर्णं निम्ये दैत्यं रणाङ्गणात्। चुचुम्ब सा तद्वदनं तीक्ष्णनाराचकीलितम्॥६३॥
देवसैन्यं ततो बद्ध्वा कालनेमिर्ननर्त्तह । ततो जनार्दनःक्रुद्धो निर्ययौ कलनेमिनम् ॥६४॥
यमोदुर्वारणंवीरं स्वर्भानुश्चन्द्रभास्करौ । केतुं वैश्वानरो देवो ययौ शुक्रं बृहस्पतिः ॥६५॥

युद्ध स्थल में गिर पड़े ॥५२॥ कुछ व्याधियाँ भागकर पर्वतों पर चली गयीं । स्वाभाविक रूप से निरोग बना देने वाली वैशल्यकरणी आदि औषधियों ने उन यमदूतों को निरोग बना दिया और वे सेना में आकर युद्ध करने लगे । दानवों द्वारा वाण, मुद्गर और पट्टिश से सबके मारे गये ॥५३-५४॥ पैदल सेनाओं ने पदातियों को तीक्ष्ण खड्ग और फरसों से मारा इस तरह करोड़ों सैनिकों ने प्रहार किया और उनका शरीर खून से लाल हो गया ॥५५॥ उस समय घुड़सवारों ने तीव्रगामी घोड़ों से एक दूसरे को आकाश में फेंक दिया और फिर वे एक दूसरे पर सटकर प्रहार किये उनका शरीर खून से लाल हो गया ॥५६॥ रथियों के भयङ्कर समूह ने रथ समूह से पृथिवी को ढँककर धनुष से छोड़े गये तीक्ष्ण बाणों से महारथियों को छेद दिया ॥५७॥ जिनके कपोलों से मदवारि चू रहा था ऐसे क्रुद्ध हाथियों ने अपनी सूंड से विरोधी हाथियों के सूंड को बाँधकर पृथिवी पर पटक दिया ॥५८॥ कोई दैत्य अपने दोनों हाथों से रथ को ऊपर उठाकर आकाश में चला जाता था, वह घुड़सवारों, घोड़ों, हाथियों को भी पृथिवी पर पटक देता था ॥५९॥ कोई अपने दोनों बगल में दो हाथियों को तीसरे को अपने पेट पर चौथे हाथी को अपने मस्तक पर रखकर तथा किसी को अपने पर रखकर जालन्धर के पास जाता था और युद्ध में दौड़ता था । कोई दैत्य म्यान से तलवार निकालकर उसे कँपाकर स्वच्छ आकाश में चला गया और हजारों देवताओं को मार दिया । कोई बड़े-बड़े स्तनों वाली रतिलम्पट आकाश में चलने वाली नारी आकाश से आकर शीघ्रता से रणाङ्गण से किसी दैत्य को जिसका मुख बाणों से भेद दिया गया था उसको उठाकर उसके मुख को चूमने लगी ॥६०-६३॥ उसके बाद कालनेमि देवताओं की सेना को बाँध कर नृत्य करने लगी । उसके पश्चात् भगवान् विष्णु कालनेमि के पास युद्ध करने के लिए गये ॥६४॥ यम वीर दुर्वारण से युद्ध करने के लिए, सूर्य और चन्द्रमा राहु से युद्ध करने के लिए, अग्निदेव केतु से युद्ध करने के लिए, बृहस्पति, शुक्राचार्य से ॥६५॥ युद्ध में

अश्विनौ संयतौ तत्र दैत्यमङ्गारपर्णकम्। संह्लादं शत्रुपुत्रश्च निर्ह्लादं धनदो ययौ ॥६६॥
निशुम्भश्चावृतोरुद्रैः शुम्भो वसुभिराहवे। मेघाकारंस्थितं जम्भं विश्वेदेवाःसमाययुः ॥६७॥
वायवो वज्ररोमाणमथ मृत्युर्मयं ययौ। नमुचिं वासवो व्यग्रंशक्तिहस्तोऽभ्यधावत ॥
अन्यैरपि सुरैर्दैत्याः स्वस्ववीर्यसमैर्वृताः ॥६८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्सहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिरनारदसंवादे देवदानवयुद्धं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सातवाँ अध्याय

नारद उवाच

एवं द्वन्द्वेषु युद्धेषु सम्प्रवृत्तेष्वनेकशः। जघानाथ हरिःक्रुद्धो गदया कालनेमिनम् ॥१॥
विहाय मूर्च्छा सञ्चिन्त्य विष्णुं बाणैर्जघान सः ।
ततः क्रुद्धेन हरिणा स क्षितौ पातितो व्यसुः ॥२॥
राजञ्जघान सञ्चिन्त्य राहुं खड्‌गेन चन्द्रमाः ।
राहुस्तु तं परित्यज्य तदा सूर्यमधावत ॥३॥
सहस्रांशुं रणेजित्वा राहुश्चन्द्रमधावत। जघान तं च खड्‌गेन समरे रजनीपतिः ॥४॥

दोनों अश्विनी कुमार अङ्गार पर्णक नामक दैत्य से युद्ध करने के लिए गये, इन्द्र पुत्र संह्लाद से तथा कुबेर निह्लाद से युद्ध करने के लिए गये ॥६६॥ निशुम्भ को ग्यारहो रुद्रों ने घेर लिया और वसुओं ने शुम्भ को घेर लिया । मेघ के समान आकार वाले जम्भ से विश्वेदेवों ने युद्ध किया ॥६७॥ वायुओं ने वज्ररोम से युद्ध किया तथा मृत्यु देव मय नामक दैत्य से युद्ध करने के लिए गये, व्यग्रनमुचि से युद्ध करने के लिए हाथ में शक्ति लेकर इन्द्र दौड़ पड़े । दूसरे भी देवताओं के द्वारा अपने ही समान पराक्रमी दैत्य घेर लिए गये ॥६८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के युधिष्ठिर नारद संवादान्तर्गत देवदानव युद्ध नामक छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

विष्णु आदि देवताओं का कालनेमि आदि दैत्यों के साथ द्वन्द्व युद्ध

नारदजी ने कहा— इस तरह से अनेक प्रकार से द्वन्द युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर क्रुद्ध होकर श्रीहरि ने कालनेमि को गदा से मारा ॥१॥ उसने भी मूर्छा को त्यागकर तथा विचार करके भगवान् विष्णु को बाणों से मारा । उसके पश्चात् क्रुद्ध श्रीहरि ने उसको निष्प्राण करके पृथिवी पर गिरा दिया ॥२॥ विचार करके चन्द्रमा ने राहु को खड्‌ग से मारा । उसके बाद राहु चन्द्रमा को छोड़कर सूर्य पर टूट पड़ा ॥३॥

सैंहिकेयाङ्गकाठिन्यात्खड्गं चूर्णमभूत्तदा। जघान मुष्टिना गाढं कठिनेन विधुन्तुदः ॥५॥
चन्द्रं मूर्च्छापरिक्लिष्टं धृत्वा वेगान्महामृधे ।
गिलित्वा राहुणा चन्द्रोऽप्युद्गीर्णश्च ततः पुनः ॥६॥
मृगं स्वचिह्नमुरसि निधाय विससर्ज ह । स उच्चैःश्रवसं गृह्य हयरत्नं विधुन्तुदः ॥७॥
जालन्धरान्तिकं नीत्वा भक्त्या तस्मै न्यवेदयत् ।
दुर्वारणो रणे क्रुद्धस्तं यमं गदयाऽवधीत् ॥८॥
निशितैर्मार्गणैर्भिन्नःशक्रपुत्रेण चाहवे । धृत्वा जयन्तं संह्लादःपरिघाघातमूर्च्छितम्॥९॥
ऐरावतं समारुह्य ययौ जालन्धरं प्रति। हतवांश्चैव गदया निह्लादं धनदोरणे ॥१०॥
रुद्रास्त्रिशूलनिर्घातैर्निशुम्भं जघ्नुरोजसा। निशुम्भो बाणजालैश्चपीडयामास तानति॥११॥
शुम्भासुरो देवगणान्पूरयामास मार्गणैः । मृत्युं मायामयमयो बद्ध्वापाशैर्निनाय तम् ॥१२॥
ददौ जालन्धरायासौ पौलोम्ने सोऽपि सिन्धवे ।
अब्धिना च मुखे क्षिप्तौ लोको जीवतु निर्भयः ॥१३॥
बद्ध्वा च नमुचिं पाशैर्वासवोऽपि रसातलम् ।
निन्ये विश्वस्य हन्तारमश्च जालन्धरो ययौ ॥१४॥
अथेन्द्रबलयोर्युद्धमभूद्राजन्सुदारुणम् । बलाङ्गरोचिषो भान्ति दिशोदश रवेरिव॥१५॥
सर्वाण्यस्त्राणि शक्रस्य शीर्णान्यङ्गे बलस्य च ।
बलीयसा बलेनेन्द्रो मुद्गरेणहतोहृदि ॥१६॥

सूर्य को परास्त करके राहु चन्द्रमा पर दौड़ा । चन्द्रमा ने उसको खड्ग से मारा ॥४॥ राहु के अङ्ग इतने कठोर थे कि खड्ग चूर-चूर हो गया । तब राहु ने मुक्के से जोर से प्रहार किया ॥५॥ मूर्छित हुए चन्द्रमा को उस महासंग्राम में पकड़ कर राहु ने निगल लिया किन्तु राहु ने चन्द्रमा को उगल दिया ॥६॥ उसने अपने चिह्न मृग को हृदय में रखकर फिर छोड़ दिया । उस राहु ने उच्चैश्रवा नामक अश्व को पकड़ कर जालन्धर के पास लाया और भक्तिपूर्वक उसको समर्पित कर दिया । युद्ध में क्रुद्ध होकर दुर्वारण ने गदा से यम पर प्रहार किया ॥७-८॥ युद्ध में इन्द्रपुत्र के द्वारा मारा जाकर संह्लाद परिघ के प्रहार से जयन्त को मूर्छित कर दिया ॥९॥ और वह ऐरावत पर चढ़कर जालन्धर के पास आया । कुबेर ने युद्ध में निह्लाद को गदा से मारा ॥१०॥ रुद्रों ने बलपूर्वक त्रिशूलों से शुम्भ को मारा । निशुम्भ ने बाण समूह से रुद्रों को अत्यन्त पीड़ित किया ॥११॥ शुम्भासुर ने देवताओं को बाणों से छेद डाला । मय नामक दानव माया मय पाश से मृत्यु को बाँधकर लाया और उसको जालन्धर को समर्पित कर दिया और उसने पुलोम के पुत्र सन्ध को उसे (मृत्यु को) दे दिया । समुद्र ने उसको यह कहकर अपने मुँह में डाल लिए कि लोग हमेशा निर्भय होकर जीवित रहें ॥१२-१३॥ इन्द्र भी नमुचि को पाश में बाँधकर रसातल में भेज दिया। उसके बाद जालन्धर संसार को विनष्ट करने वाले शङ्करजी से युद्ध करने के लिए गया ॥१४॥ हे राजन्! उसके पश्चात् इन्द्र और बल का भयङ्कर युद्ध हुआ । बल के अङ्गों की कान्तियाँ दशो दिशाओं में सूर्य के समान चमकर रही थीं ॥१५॥ बल के अङ्गों में इन्द्र के सभी शस्त्र विनष्ट हो गये । इसके बाद बलवान्

ननादेन्द्रस्ततो भीमं तच्छ्रुत्वा स बलोऽहसत् ।
हसतस्तस्य निश्चेरुर्मुखतो मौक्तिकानि च ॥१७॥
तस्याङ्गस्याभिलाषेण न युद्धमकरोत्तदा । तुष्टाववासवोऽत्यर्थं तं बलं बलसागरम्॥१८॥
वरं शृणु सुरश्रेष्ठेत्युक्तःप्राह बलंप्रति । यदि तुष्टोऽसि दैत्येश स्वं वपुर्दातुमर्हसि ॥१९॥
तदिन्द्रवचनं श्रुत्वा भित्त्वा शस्त्रैर्गृहाण भाम् ।
इत्युवाच बलं सोऽपि किमदेयं महात्मनाम् ॥२०॥
गीरिव श्रोत्रहीनस्य लोलाक्षीव विचक्षुषः। परासोःपुष्पमालेवश्रीःकदर्यस्य निष्फला॥२१॥
महात्मानो न गृह्णन्ति हिंसमानानिपूनपि । सपत्नीःप्रापयन्त्यब्धिं सिन्धवो नगनिम्नगाः ॥२२॥
सुजनो न याति विकृतिं परहितनिरतो विनाशकालेऽपि ।
छिन्नोऽपि चन्दनतरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य ॥२३॥
दैवं परं विनश्यति तनुरपि न श्रीनिवेदिता सत्सु ।
अवशिष्यते हिमांशोः सैव कलाशिरसि या शम्भोः ॥२४॥
ते साधवो भुवनमण्डलमौलिभूता ये साधुतामनुपकारिषु दर्शयन्ति ।
आत्मप्रयोजनवशात्कृतछिन्नदेहः पूर्वापकारिषु खलोऽपि हितानुरक्तः ॥२५॥
तथेत्युत्तवा सहस्राक्षो मुद्गरेणाहनद्बलम्। न भिद्यते यदा देहःशक्रश्चिन्तामवापह॥२६॥
स स्मारितो मातलिना वज्रेणाङ्गं जघान तत् ।
तेन वज्रप्रहारेण बलाङ्गं तद्व्यशीर्यत ॥२७॥

बल ने इन्द्र के हृदय में मुद्गर से प्रहार किया ॥१६॥ इन्द्र ने भयङ्कर गर्जना की और उसको सुनकर बल हँसने लगा । जब वह हँस रहा था तो उसके मुख से मोतियाँ निकलीं ॥१७॥ उसके अङ्ग की अभिलाषा से इन्द्र ने युद्ध नहीं किया । इन्द्र ने बल के सागर बल की स्तुति की ॥१८। बल ने कहा देववर्य ! वरदान माँगो तो इन्द्र ने कहा हे दैत्येश ! यदि तुम प्रसन्न हो तो तुम मुझे अपने अङ्गों (शरीर) को दे दो ॥१९॥ इन्द्र की वाणी को सुनकर बल ने कहा तुम शस्त्रों से काटकर मेरे अङ्गों को ले लो । बल ने कहा महापुरुषों के लिए मेरे पास कुछ भी अदेय नहीं है ॥२०॥ कायर पुरुषों की सम्पत्ति तो बहरे के लिए वाणी के समान, अन्धे के लिए चञ्चल नेत्रों वाली रमणी के समान, तथा मुर्दे के लिए पुष्पमाला के समान व्यर्थ होती है ॥२१॥ महापुरुष तो मारने वाले शत्रुओं को भी नहीं रोकते हैं । इसीतरह से बड़ी-बड़ी नदियाँ भी अपनी सौत रूपी पर्वतीय नदियों को समुद्र के पास पहुँचाने का काम करती हैं ॥२२॥ दूसरों का कल्याण करने वाले सज्जन पुरुष मृत्यु की बेला आ जाने पर भी क्षुब्ध नहीं होते हैं । काटा जाता हुआ भी चन्दन का वृक्ष अपने काटने वाले कुठार के मुख को सुगन्धित ही बनाता है ॥२३॥ भाग्य तथा शरीर दोनों विनष्ट होते हैं किन्तु सज्जन पुरुषों को प्रदत्त लक्ष्मी कभी विनष्ट नहीं होती है । चन्द्रमा की वही कला सदैव बची रहती है जो शिव के शिर पर विराजमान रहती है ॥२४॥ वे ही सज्जन पुरुष भूमण्डल को अलंकृत करते हैं जो अनुपकारी व्यक्ति का भी उपकार करते हैं । अपने प्रयोजन के लिए अपने शरीर को काटने वाले दुष्ट पुरुष भी पहले जो उपकार किए रहता है, उसका कल्याण करता है॥२५॥ इन्द्र ने कहा ठीक है, और उसके बाद इन्द्र ने बल पर गदा से प्रहार किया । उसके बाद भी

बलाङ्गस्यैकभागस्तु पपात कनकाचले। तुहिनाद्रौ द्वितीयस्तु तृतीयो गोनगेऽपतत् ॥२८॥
चतुर्थो देवनद्यां च पञ्चमो मन्दरे तथा । वज्राकरे पपातांशःषष्ठश्च विजयाङ्गजः ॥२९॥
तस्य जातिविशुद्धस्य परिशुद्धेन कर्मणा । कायस्यावयवाःसर्वे रत्नबीजत्वमागताः ॥३०॥

वज्रादस्थिकणाः कीर्णाःषट्कोणा मणयोऽभवन् ।
अक्षिभ्यामिन्द्रनीला वै माणिक्यश्रुतिसम्भवम् ॥३१॥
क्षतजात्पद्मरागाः स्युर्मेदसो मरकतास्तथा ।
प्रवालानि च जिह्वातो दनता मुक्तास्तथाऽभवन् ॥३२॥

मज्जोद्भवं मरकतं गारुत्मतमभून्नसा । कांस्यं पुरीषं रजतं वीर्यं ताम्र च मूत्रजम् ॥३३॥
अङ्गस्योद्वर्तनाज्जातं पित्तलं ब्रह्मवीतिकाः । नादाद्वैदूर्यमुत्पन्नं रत्नं चारुतरं तथा ॥३४॥
नखेभ्यःकनकोत्पत्ती रुधिराच्च रसोद्भवः। मेदसः स्फटिकं जातंप्रवालं मांससम्भवम् ॥३५॥
बलदेहोद्भवान्यासन्रत्नानि पृथिवीतले । पुण्योपचयसम्पत्त्या भोक्ष्यन्ते विमलैर्जनैः ॥३६॥
अत्रान्तरे हतंश्रुत्वा बलं मघवतामृधे । प्रभावती नाम राज्ञी ययौ तच्चरणान्तिकम्॥३७॥

विललाप पतिं दृष्ट्वा विकीर्णाऽवयवं रणे ।
प्रभावत्यश्रुपूर्णाक्षी मुक्तकेशी घनस्तनी ॥३८॥

हा नाथ बलविक्रान्त कान्तदेह जगत्प्रिय। मां त्वं विहाय किंचात्र कैवल्यं गतवानसि ॥३९॥

जब बल का शरीर नहीं टूटा तो इन्द्र चिन्तित हो गये ॥२६॥ मातलि के द्वारा याद दिलाये जाने पर इन्द्र ने वज्र से उसके शरीर पर प्रहार किया और उस वज्र के प्रहार से बल का शरीर टूट गया ॥२७। बल के अङ्ग का एक भाग सुमेरु पर्वत पर गिरा दूसरा हिमालय पर्वत पर गिरा और तीसरा भाग गोपर्वत पर गिरा ॥२८॥ चौथा भाग स्वर्गङ्गा में गिरा और पाँचवाँ भाग मन्दराचल पर गिरा और छठा भाग वज्राकर पर गिरा ॥२९॥ उस जन्म से ही शुद्ध बल के शुद्ध कर्म के कारण उसके शरीरस्थ सभी अङ्ग रत्नों के बीज बन गये ॥३०॥ वज्र से जो अस्थि के कण विकीर्ण हुए वे छह कोणों वाली मणियाँ बन गये। दोनों नेत्रों से इन्द्रनीलमणि बनीं और कानों से माणिक्य उत्पन्न हुए ॥३१॥ उसके रक्त से पद्मराग मणियाँ उद्भूत हुयी और मेदा से मरकत मणि उत्पन्न हुयी । उसकी जीभ से प्रबाल (मूङ्गा) उत्पन्न हुआ और उसके दाँत मुक्ता बन गये ॥३२॥ मज्जा से उत्पन्न मरकत मणि हुयी और उसकी नाक से गरुत्मतमणि हुयी । उसके पुरीष से कांस्य (धातु) हुआ, वीर्य ही चाँदी बन गया और मूत्र से ताम्बा उत्पन्न हुआ ॥३३॥ उसके अङ्गों के उद्वर्तन (उबटन) से पित्तल बना और ब्रह्मवीत्तिका नाद से वैदूर्य मणि उत्पन्न हुयी वह अत्यन्त सुन्दर रत्न हुआ । उसके नख से सुवर्ण की उत्पत्ति हुयी । रुधिर से रसोद्भव (रसोत) उत्पन्न हुआ । उसकी मेदस से स्फटिक उत्पन्न हुआ और उसके मांस से प्रबाल उत्पन्न हुआ ॥३४-३५॥ बल के शरीर से उत्पन्न रत्न ही पृथिवी पर थे और अपने पुण्यों के बढ़ जाने पर निर्दोष पुरुष उनको उपभोग करते है ॥३६॥ उसी समय इन्द्र के द्वारा युद्ध में बल को मारा गया सुनकर प्रभावती नाम की रानी उसके चरणों के सन्निकट गयी ॥३७॥ अपने पति को युद्ध में विकीर्ण अवयवों वाला देखकर वह विलाप करने लगी । कठोर स्तनों वाली तथा खुले केशों वाली प्रभावती के आँखों में आँसू भरे थे ॥३८॥ वह कहती थी बल और विक्रम से सम्पन्न हाय नाथ ! हे देदीप्यमान शरीर वाले तथा संसार के प्रिय, तुम मुझको छोड़कर अकेले कैवल्य

जराकुष्ठादिभिर्व्याप्तं बुद्ध्वा देहं त्यजन्ति न ।
देहिनोऽन्ये परं कान्तं त्वया देहो वृथोज्झितः ॥४०॥
तव देहेन दिव्येन हारकं भूष्यते प्रिय। रणोत्सुकेन भवता या वेणी ग्रथिता मम ॥४१॥
तामुद्ग्रथय वैधव्यदुःखार्त्तायाः स्वयंप्रिय। एवं विलपतीं वीक्ष्य बलराज्ञीं समुद्रजः ॥
दुःखितः शुक्रमित्याह बलंजीवय भार्गव ! ॥४२॥

शुक्र उवाच

इच्छया मरणं प्राप्तं तं कथं जीवयाम्यहम् ।
तथापि मन्त्रसामर्थ्याद्वाचमुच्चारयिष्यति ॥४३॥

जालन्धर उवाच

बलस्यरूपवचनं श्रोतुमिच्छामि भार्गव ! । जालन्धरेणैवमुक्तः क्षणं ध्यानपरोऽभवत्॥४४॥
अथोदतिष्ठद्वदनात्स्वनः श्रोत्रमनोरमः। प्रभावतीं प्रतिव्यक्तं वाद्यभाण्डादिवोत्थितः॥४५॥
प्रभावति ! स्वदेहं त्वं ममाङ्गेषु लयंनय । इति तस्य वचःश्रुत्वा नदीजाता प्रभावती॥४६॥
बलाङ्गेष्वेव लीना सा सुमेरोः पूर्ववाहिनी । यस्यास्तोयेन सञ्जाता रत्नानां कान्तिरुत्तमा॥४७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे जालन्धरोपाख्याने बलदैत्यस्वर्गारोहणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

पद में कैसे चले गये ॥३९॥ दूसरे शरीर धारी जरा तथा कुष्ठ आदि से व्याप्त भी शरीर को नहीं त्यागना चाहते हैं आपने तो अपने देदीप्यमान शरीर को व्यर्थ ही त्याग दिया ॥४०॥ आपके दिव्य शरीर से मैं अपने हार को सजाती थी । रण में जाने के लिए उत्सुक आपने जो मेरी चोटी को गूंथा था हे प्रिय ! आप वैधव्य दुःख से आर्त बनी हुयी मेरी उस चोटी को आप स्वयं गूं. दें । इस तरह से विलाप करती हुयी रानी को देखकर जालन्धर दुःखी हो गया और उसने शुक्राचार्य से कहा कि आप बल को जीवित कर दें ॥४१-४२॥ **शुक्राचार्य ने कहा**— वह तो अपनी इच्छा से मरा है उसको मैं कैसे जीवित करूँ, फिर भी मन्त्र के सामर्थ्य से वह बोलेगा ॥४३॥ **जालन्धर ने कहा**— मैं बल के रूप और वाणी को देखना और सुनना चाहता हूँ । जालन्धर के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर शुक्राचार्य ने क्षणभर के लिए ध्यान किया॥४४॥ उसके बाद उसके मुख से प्रभावती के लिए स्पष्ट रूप से उसी तरह कर्ण प्रिय वाणी निकली जैसे वह किसी वाद्य से निकली हो ॥४५॥ प्रभावति ! तुम अपने शरीर को मेरे ही शरीर में लीन कर दो । उसकी इस वाणी को सुनकर प्रभावती नदी हो गयी ॥४६॥ सुमेरु पर्वत से निकलने वाली पूर्व वाहिनी वह नदी बल के ही अङ्गों में लीन हो गयी । उस नदी के जल के सम्पर्क से रत्नों की कान्ति उत्तम कोटि की हो गयी ॥४७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के जालन्धरोपाख्यानान्तर्गत बल नामक दैत्य के स्वर्गारोहण नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

आठवाँ अध्याय

नारद उवाच

ततो जालन्धरःक्रुद्धः प्राह तं दैत्यसूदनम्। कपटेन बलंहत्वा क्व यास्यसि बलाधम ! ॥१॥
इत्युक्त्वा तं शतमखं सिन्धुसूनुःप्रतापवान्। ससूताश्वध्वजरथं छादयामास मार्गणैः ॥२॥
पपात मूर्च्छितःशक्रो रथोपरि शरैःक्षतः। दृष्ट्वा तं पतितं शक्रं जगर्जार्णवनन्दनः ॥३॥
मूर्च्छां त्यक्त्वा मुमोचेन्द्रो वज्रं जालन्धरं प्रति।
तदाद्रिदलनं हस्ते गृहीत्वा सिन्धुसम्भवः ॥४॥
वज्रंकक्षापुटे धृत्वा रथादुत्तीर्य सत्वरम्। अभ्यधावत दैत्येन्द्रो देवेन्द्रं धर्तुमाहवे॥५॥
ततो दुद्राव मघवा रथंत्यक्त्वा हरिं स्मरन्। रथमिन्द्रस्य मदवानारुह्यार्णवनन्दनः ॥६॥
यन्तारं मातलिं कृत्वा ययौ प्राप्तमनोरथः। रथमिन्द्रस्य तरसा यत्र यत्र ययौ बले॥७॥
जालन्धरो महाबाहुः स्वयं चाम्बुधरो यथा ॥८॥
ततः स कोपात्पुरुषोत्तमः स्वयं खड्गं समुद्यम्य च नन्दकं रणे।
सम्प्रेरयित्वा गरुडं मनोजवं जघान कोपेन च दैत्यवाहिनीम् ॥९॥
रथान्हयान्कुञ्जरपत्तिसङ्घान्स पातयामास बलात्सहस्रशः।
जनार्दनः कश्यपसूनुसंवृतश्चकार सङ्ख्ये चरितं भयावहम् ॥१०॥
केशास्थिमज्जारुधिरौघवाहिनी पिशाचवेतालविहङ्गसेविताम्।
करोरुजङ्घायुधशस्त्रपूरितां सुदुस्तरां व्याघ्रगजेन्द्रसेविताम् ॥११॥
रक्तान्त्रहाराङ्गदभूषितान्तां विघूर्णनेत्रोत्सवकान्तिवाससम् ॥१२॥

जालन्धर द्वारा इन्द्र का पराजय

नारदजी ने कहा— उसके पश्चात् क्रुद्ध होकर जालन्धर ने इन्द्र से कहा— अरे बलाधम ! कपट के द्वारा बल को मार कर तुम कहाँ जाओगे ॥१॥ इस तरह से कहकर प्रतापी जालन्धर ने सारथि, घोड़े, ध्वजा तथा रथ के साथ इन्द्र को अपने बाणों से ढँक दिया ॥२॥ बाणों से घायल होकर मूर्छित इन्द्र रथ पर ही गिर पड़े। उनको गिरा हुआ देखकर जालन्धर ने गर्जना की ॥३॥ मूर्छा का परित्याग करके इन्द्र ने जालन्धर पर वज्र का प्रहार किया। उन पर्वतों को दलित करने वाले वज्र को जालन्धर ने अपने हाथ से पकड़कर उसे अपनी कमर में खोंस लिया और जल्दी से रथ से उतरकर इन्द्र को युद्ध में पकड़ने के लिए दौड़ा ॥४-५॥ उसके बाद श्रीहरि का स्मरण हुए इन्द्र भाग चले। मदमत्त जालन्धर इन्द्र के रथ पर चढ़कर मातलि को ही अपना सारथि बनाया वह सन्तुष्ट होकर सेना में गया। इन्द्र का रथ सेना में जहाँ-जहाँ गया ॥६-७॥ वहाँ-वहाँ महाबाहु जालन्धर स्वयं मेघ के समान लगता था ॥८॥ उसके पश्चात् भगवान् पुरुषोत्तम युद्ध में अपने नन्दक नामक खड्ग को उठाकर तथा मन के समान वेग वाले गरुड़ को प्रेरित करके क्रोधपूर्वक दैत्यसेना को मार डाले ॥९॥ उनहोंने बल पूर्वक हजारों रथों, घोड़ों, हाथियों तथा पैदल सैनिकों को मार दिया। गरुड से ढँके हुए भगवान् जनार्दन युद्ध में भयङ्कर चरित किए ॥१०॥ उस समय पिशाच, बेताल तथा पक्षियों से युक्त रक्त तथा आंत रूपी हार तथा अङ्गद से अलंकृत केश, अस्थि, मज्जा

विष्णुना निहतं सैन्यं दृष्ट्वा दानवपुङ्गवाः । जालन्धराज्ञया सर्वे रुरुधुः परितोहरिम्॥१३॥
दैत्यास्ते तत्र बाणौघान्वर्षमाणा यथाम्बुदाः। यथा द्विरेफाःकमलं पर्वतं जलदा इव ॥१४॥
चूतं यथा पक्षिगणा गगनं धूमसञ्चयः । न दृश्योऽभूत्तदा विष्णुर्न तार्क्ष्यो रणसङ्कटे॥१५॥
सर्वे ते रथमारूढाःसर्वशस्त्रैर्महासुराः। वैकुण्ठाधिपतिं जघ्नुर्गर्जन्तो भीमनिस्वनैः॥१६॥
तान्सर्वान्भीमरूपेण दैत्यारिः कुपितस्तदा। रणे निपातयामास वायुः पर्णचयं यथा॥१७॥
शैलरोमा ततो विष्णुं दैत्यः कोपादधावत। हरेरपि शरास्तस्य शरीरे शीर्णतां गताः ॥१८॥
शैलरोमा च दैत्यारिशरीरं चावधीच्छरैः । हरिःखड्गं विनिर्धूयशिरस्तस्यजहारह ॥१९॥
छिन्नेशिरसि दैत्यस्य कबन्धो विक्रमन्रणे। शैलरोमाभुजाभ्यां च तार्क्ष्यं जग्राह पक्षयोः॥२०॥
शिरश्चोत्पत्य तरसा विलग्नं स्कन्धोर्दृढम्। ततस्तत्रास्य युद्धेन हृषीकेशोऽपि विस्मितः॥२१॥
शिरः संलग्नमालोक्य गरुडोन्यपतद्भुवि। पुनश्चोत्पत्य वेगेन शिरःस्थानं समाश्रयत्॥२२॥
शैलरोमा ततो विष्णुं जहार गरुडाद्बली । हरिर्जघ्ने तलेनाशु गतायुश्चापतद्भुवि ॥२३॥
ततो जालन्धरःसूतं खड्गरोमाणमब्रवीत् । सम्प्रेषय रथं तत्र यत्र देवो जनार्दनः ॥२४॥
जालन्धरस्य वचनात्खड्गरोमानयद्रथम् । दृष्ट्वा तं पुरतो विष्णुमुवाचार्णवनन्दनः॥२५॥

तथा रुधिर समूह को लेकर बहने वाली नदी, जिसको पार करना कठिन तथा व्याघ्रों तथा गजेन्द्रों से युक्त, घूमते हुए नेत्र ही जिसका उत्सव वस्त्र था ऐसी नदी तथा विष्णु के द्वारा मारी गयी सेना को देखकर जालन्धर की आज्ञा पाकर श्रेष्ठ दैत्यों ने श्रीहरि को चारो ओर से घेर लिया ॥११-१३॥ वे दैत्य श्रीहरि पर उसी तरह से बाणों की वर्षा कर रहे थे । जैसे भौंरे कमल को, मेघ पर्वत को, पक्षीगण जैसे आम्रवृक्ष को तथा धूम आकाश को ढँक लेते हैं, वैसे ही श्रीहरि को उन सबों ने बाणों से ढँक दिया । उस समय युद्ध में भगवान् विष्णु तथा गरुड दिखायी नहीं पड़ते थे ॥१४-१५॥ वे सभी दैत्य रथ पर चढ़कर सभी दैत्य शस्त्रों से भयङ्कर गर्जना करते हुए वैकुण्ठाधिपति श्रीहरि पर प्रहार कर रहे थे ॥१६॥ अपना भयङ्कर रूप धारण करके श्रीहरि क्रुद्ध होकर उन सबों को उसीतरह मारकर गिरा दिए जिस तरह वायु पत्तों को गिरा देता है ॥१७॥ उसके बाद शैलरोमा नामक दैत्य क्रोध करके भगवान् विष्णु से युद्ध करने के लिए दौड़ा। उसके शरीर में श्रीहरि के भी बाण शीर्ण हो गये ॥१८॥ शैलरोमा ने भी श्रीहरि के शरीर को बाणों से छेद दिया । श्रीहरि अपने खड्ग को चलाकर उसके शिर को काट दिए ॥१९॥ शिर के कट जाने पर उसका कबन्ध ही रण में पराक्रम प्रदर्शित करने लगा । शैलरोमा ने अपनी दोनों भुजाओं से गरुड के पङ्खों को पकड़ लिया ॥२०॥ उसका शिर भी उड़कर उसके कन्धे पर जाकर लग गया । उसके बाद उसके युद्ध से हृषीकेश भी विस्मित हो गये ॥२१॥ शिर को लगे हुए देखकर गरुड पृथिवी पर गिर पड़े । फिर वे वेग पूर्वक उच्छल कर उसके शिर पर बैठ गये ॥२२॥ बलवान् शैलरोम ने भगवान् विष्णु को गरुड़ पर से खींच लिया । विष्णु भगवान् ने उसको थप्पड़ से मारा और वह गतासु होकर पृथिवी पर गिर पड़ा॥२३॥ उसके पश्चात् जालन्धर ने अपने खड्गरोमा नामक सारथि से कहा— जहाँ पर भगवान् जनार्दन हैं वहीं पर मेरे रथ को ले चलो ॥२४॥ जालन्धर कि आज्ञा से खड्गरोमा वहीं पर रथ को लाया । अपने सामने भगवान् विष्णु को देखकर जालन्धर ने कहा ॥२५॥ हे विष्णो ! बिना किसी शङ्का के आप मुझ पर प्रहार करें मैं आप पर प्रहार नहीं कर रहा हूँ । उसकी उस वाणी को सुनकर क्रोध से आँखें लाल किए हुए भगवान् विष्णु॥२६॥

निशङ्कं जहि मां विष्णो नाहं त्वाहन्मिमाधव ।
तस्य तद्वचनंश्रुत्वाक्रोधसंरक्तलोचनः ॥२६॥

नारायणःप्राणहरैःशरैरेनमपूरयत् । विष्णुना च विभिन्नान्तोऽर्णवसूनुःप्रतापवान् ॥२७॥
हरिं सम्पूरयामास मार्गणौघैर्निरन्तरम् । अस्य बाणशतैर्भिन्नो गरुडो मूर्च्छितोऽपतत् ॥२८॥
गरुडं पतितं दृष्ट्वा सिन्धुसूनोःशरैर्भुवि । रथं संस्मारयामास वैकुण्ठस्थं जनार्दनः ॥२९॥
स रथस्तस्य सम्प्राप्तःसूतहीनो हयैर्वृतः । अश्वैर्युतंरथं दृष्ट्वा विस्मितो भगवान्रणे ॥३०॥
सम्बोधयित्वा गरुडं सारथ्ये समयोजयत् । य धृत्वा मुकुटं मूर्ध्नि कौस्तुभं हृदये मणिम् ॥३१॥
पुरुषार्थान्हयान्कृत्वा ययौ जालन्धरं हरि । मेदिनीं रथचक्रेण दारयंश्च सुरैःसह ॥३२॥
जघान तरसा बाणैर्दानवानां च वाहिनीम् । देवराजेन सन्दिष्टो वीतिहोत्रो रणाङ्गणे ॥३३॥
ददाह दानवानीकं समीरणसमन्वितम् । तदा हतं भगवता दैत्यसैन्यं सुरैःसह ॥३४॥

जालन्धरः स्वल्पशेषं दध्यौ दृष्ट्वा बलं स्वकम् ।
अथाह भार्गवं राजा मत्सैन्यं निहतं सुरैः ॥३५॥
त्वयि तिष्ठति मन्त्रज्ञे विख्यातो विद्यया भवान् ।
किं तया विद्यया ब्रह्मन्क्षत्त्रेणाथ बलेन च ॥३६॥

या न रक्षति रोगार्तान्यद्बलं शरणागतान् । जालन्धरवचःश्रुत्वा भार्गवस्तमभाषत ॥३७॥
पश्य राजन्ममबलं ब्राह्मणस्य रणाङ्गणे । इत्युक्त्वावारिणास्पृष्टा हुङ्कारेण प्रबोधिता ॥३८॥
उत्थापितास्ते कविना शरौघैःप्राणहारकैः । देवाहता रणेपेतुःसमन्तात्सिन्धुसुनुना ॥३९॥

ने प्राणापहारीबाणों से उसके शरीर को भर दिया विष्णु भगवान् के बाणों से अन्तःकरण के छिन्न हो जाने पर भी प्रतापी जालन्धर ॥२७॥ लगातार बाणों से श्रीहरि को छेदता रहा । उसके सैकड़ों बाणों से छिदे हुए गरुड़ मूर्छित होकर गिर पड़ें ॥२८॥ जालन्धर के बाणों से गरुड़ को पृथिवी पर गिरे हुए देखकर भगवान् जनार्दन वैकुण्ठ में स्थित अपने रथ का स्मरण किए ॥२९॥ वह अश्वों से युक्त रथ सारथि के बिना ही आया । घोड़ों से युक्त रथ को देखकर भगवान् रण में विस्मित हो गये ॥३०॥ वे गरुड़ को सम्बोधित करके उनको अपना सारथि बनाये और शिर पर मुकुट तथा हृदय पर मणि धारण करके तथा पुरुषार्थ को अश्व बनाकर श्रीहरि जालन्धर से युद्ध करने के लिए पृथिवी को विदीर्ण करते हुए देवताओं के साथ गये॥३२॥ उन्होंने बलपूर्वक दानवों की सेना को बाणों से मारा । उस समय श्रीभगवान् ने दैत्यों की सेना को मार डाला ॥३४॥ जालन्धर ने अपनी थोड़ी सी बची हुयी सेना को देखकर ध्यान किया और उसने शुक्राचार्य से कहा कि मेरी सेना को देवताओं ने मार दिया है ॥३५॥ आप मन्त्र के विख्यात ज्ञाता हैं । आपके रहते हुए यह कैसे हुआ । हे ब्राह्मण ! जो दुःखी रोगियों की रक्षा न करे उस विद्या से तथा जो शरणागत सेना की रक्षा न कर सके उस क्षत्रिय के बल से क्या लाभ है ? जालन्धर की वाणी को सुनकर शुक्राचार्य ने उससे कहा ॥३६-३७॥ हे राजन् ! आप युद्ध में मेरे ब्राह्मण्य के बल को देखें । इस तरह से कहकर शुक्राचार्य ने आचमन करके अपने हुङ्कार से सबों को जीवित कर दिया । उसके बाद जालन्धर ने अपने प्राणापहारी बाणों के प्रहार से देवताओं को मारा और वे युद्ध में गिर पड़े ॥३८-३९॥ हे राजन्!

बाणैर्जर्जरदेहास्ते धृतप्राणा नरधिप। न मृतास्त्वमरत्वाच्च बाणैर्भिन्नाश्च सत्तम ॥४०॥
ततो नारायणो देवो बृहस्पतिमभाषत। धिग्बलं दैवतगुरो यो न जीवयसे सुरान्॥४१॥
धिषणस्तु जगन्नाथमुवाच त्वरितं तदा। ओषधीभिरहं स्वामिञ्जीवयिष्यामि निर्जरान्॥४२॥
इत्युक्त्वा धिषणःसोऽपि ययौ क्षीरार्णवस्थितम् ।
द्रोणमद्रिं तदा गत्वा सुखं गृह्यौषधीःस्वयम् ॥४३॥
गुरुस्तासां च योगेन जीवयामास निर्जरान्। उत्थितास्ते ततो देवा जघ्नुर्दानववाहिंनीम्॥४४॥
देवान्समुत्थितादृष्ट्वा बभाषे सिन्धुजः कविम् ।
विना त्वद्विद्यया काव्य ! कथमेते समुत्थिताः ॥४५॥
इतिदैत्योक्तमाकर्ण्य शुक्रःप्राहार्णवात्मजम् । क्षीरसागरमध्यस्थो द्रोणोनाम महागिरिः ॥४६॥
ओषध्यस्तत्र तिष्ठन्ति जीवयन्ति च या मृतान् ।
तत्र गत्वा सुराचार्यो गृहीत्वौषधिसञ्चयम् ॥४७॥
रणे विनिहतान्देवानुत्थापयति मन्त्रतः । भार्गवोक्तमथाकर्ण्य सैन्यभारं महाबलः॥४८॥
शुम्भे निक्षिप्य तरसा ययौ जालन्धरोऽर्णवम् ।
अथ प्रविष्टःक्षीराब्धौ वेश्मदिव्यं महाप्रभम् ॥४९॥
प्रविश्य तत्र क्षीराब्धेः क्रीडास्थानं ददर्श सः ।
नोष्णो न शीतलो वायुर्न तमो यत्र दृश्यते ॥५०॥
यत्र गायन्ति नृत्यन्ति क्रीडन्ति चवरस्त्रियः। सुपीनस्तनभाराढ्या कृशोदर्यःसुदन्तिकाः ॥५१॥
नेत्रविभ्रमविक्षेपैर्नितम्बपरिवर्त्तनैः । अङ्गैः संमोहनैरम्यैर्बाहुवल्लीविचालनैः ॥५२॥

उन सबों का शरीर जर्जर हो गया और उन सबों के केवल प्राण बचे थे । बाणों से विद्ध होने पर भी वे अमर होने के कारण मरे नहीं ॥४०॥ उसके बाद भगवान् नारायण ने बृहस्पति से कहा कि देवताओं के गुरु को धिक्कार है क्योंकि आप देवताओं को जीवित नहीं कर रहे हैं । तब वृहस्पति ने श्रीभगवान् से कहा— हे स्वामिन् ! मैं औषधियों से देवताओं को जीवित करूँगा ॥४१-४२॥ यह कहकर बृहस्पति क्षीरसागर में विद्यमान द्रोणाचल पर गये और स्वयं औषधियों को लाये ॥४३॥ वे उन औषधियों के प्रयोग से देवताओं को जीवित कर दिए । जीवित होकर देवता दैत्य सेना को मारने लगे ॥४४॥ देवताओं को उठे हुए देखकर जालन्धर ने शुक्राचार्य से कहा— हे शुक्राचार्य ! आपकी विद्या के बिना ये कैसे उठ गये ?॥४५॥ जालन्धर की इस वाणी को सुनकर शुक्राचार्य ने कहा क्षीरसागर के बीच में द्रोणाचल है ॥४६॥ वहाँ पर ऐसी औषधियाँ हैं जिससे मरे हुए भी जीवित हो जाते हैं । वहाँ जाकर बृहस्पति औषधि समूह को लाकर॥४७॥ युद्ध में मारे गये देवताओं को मन्त्र के प्रयोग से जीवित कर देते हैं । शुक्राचार्य की वाणी को सुनकर महाबलवान् जालन्धर ने सेना का भार शुम्भ नामक दैत्य को सौंपकर शीघ्र क्षीरसागर में जाकर उनके दिव्य तथा महाप्रभ गृह में प्रवेश किया ॥४८-४९॥ प्रवेश करके उसने क्षीरसागर के क्रीडास्थल को देखा । वहाँ की वायु न तो गर्म थी न ठंडी थी और वहाँ अन्धकार भी नहीं था ॥५०॥ वहाँ पर स्थूल स्तनों से भार के युक्त, पतली कमर वाली (कृशोदरी) तथा सुन्दर दाँतों वाली श्रेष्ठ स्त्रियाँ नृत्य, गीत एवं

पादविन्यासरणितैर्मधुरैर्वचनस्तवैः । सौगन्ध्यसौख्यदैर्वासैर्नेत्रभ्रमरझांकृतैः ॥५३॥
चामरान्दोललीलाभिः स्त्रग्भिः स्मितविलोकितैः ।
सेवां चक्रुर्विलासिन्यस्तत्र गत्वोदधेः सुतः ॥५४॥
क्रीडन्तं तत्र दुग्धाब्धिं संवीक्ष्य समरोत्सुकः ।
अथाह प्रणिपत्यासौ क्षीराब्धिं तात हंसि माम् ।
द्रोणाचलौषधीव्याजादम्बुभिः प्लावयस्वतः ॥५५॥

क्षीरसागर उवाच

तं प्राप्तं शरणं पुत्र प्लावयाम्यूर्मिभिः कथम् ।
मुनीन्द्रास्तं न शंसन्ति यस्त्यजेच्छरणागतम् ॥५६॥
पितृव्यवचनं श्रुत्वा सङ्क्रोधात्सन्ततं गिरिम् ।
तलप्रहरणेनैव ताडयामास दैत्यराट् ॥५७॥
ततो द्रोणगिरी राजन्भीतो जालन्धराद्भृशम् ।
अथाजगाम रूपेण प्राह जालन्धरंप्रति ॥५८॥
तवाहमभवं दासो रक्ष मां शरणागतम् । रसातलं महाबाहो यास्यामि तव शासनात् ॥५९॥
यावत्त्वं कुरुषे राज्यं तावत्स्थास्याम्यहं प्रभो ! ।
ओषधीनां विरावेण सिद्धानां रोदनेन च ॥६०॥
रसातलं जगामाद्रिः सिन्धुसूनोः प्रपश्यतः । ततो जालन्धरो वीर आजगाम महारणम् ॥६१॥
पूर्वकल्पितमारुह्य स्यस्थं केशवं ययौ । रथस्थं माधवं दृष्ट्वा जहासोच्चैर्नदीसुतः ॥६२॥
तावत्त्वं तिष्ठ शकटे यावद्धन्यामरीनहम् । एवमुक्त्वा जघानाशु शरैस्तां देववाहिनीम् ॥६३॥

क्रीड़ा करती थीं ॥५१। नेत्रों के कटाक्षपात, नितम्बों के नचाने, मनोहर तथा संमोहक अङ्गो तथा बाहुलता के संचालन, चरण विन्यास की ध्वनियों, मधुर वचन युक्त स्तुतियों, सुगन्धि युक्त सुखद वस्त्रों, तथा नेत्र रूपी भ्रमरों के झंकारों, चामरों के संचालन रूपी लीलाओं, मालाओं, मुस्कान युक्त चितवनों से विलासिनियों ने जालन्धर की सेवा की । वहाँ जाकर युद्ध के लिए उत्सुक जालन्धर ने क्रीड़ा करते हुए क्षीरार्णव को देखकर प्रणाम करके कहा तात ! आप द्रोणाचल की औषधि के व्याज से मुझे मार रहे हैं, अतएव आप द्रोणाचल को अपने जल से बहा दें ॥५२-५५॥ **क्षीरसागर ने कहा**— वत्स ! वह मेरे शरण में आया है, उसे मैं कैसे बहाऊँ ? जो शरणागत का परित्याग कर देता है मुनीन्द्र जन उसकी प्रशंसा नहीं करते हैं ॥५६॥ अपने पितृव्य की बात को सुनकर क्रुद्ध दैत्य राज ने फैले हुए द्रोणाचल को थप्पड़ से मारा॥५७॥ हे राजन् ! उसके कारण द्रोणाचल जालन्धर से डर गया उसने अपना रूप धारण करके जालन्धर से कहा; मैं आपका दास हूँ, मुझ शरणागत की आप रक्षा करें । आपकी आज्ञा से मैं रसातल में चला जाऊँगा ॥५८-५९॥ जब तक आप राज्य करेंगे तब तक मैं वहीं रहूँगा । औषधियों के चिल्लाहट और सिद्धों के रुदन के साथ द्रोणगिरि जालन्धर के सामने ही रसातल में चला गया । उसके पश्चात् वीर जालन्धर महायुद्ध में आया ॥६०-६१॥ पहले से ही कल्पित रथ पर स्थित केशव से वह युद्ध करने गया। रथ पर स्थित श्रीभगवान् को देखकर वह जोर से हँसा ॥६२॥ उसने कहा जब तक मैं शत्रुओं को मार रहा

बाणैर्विदारिता देवास्त्राहीत्यूचुर्बृहस्पतिम् । ततो बृहस्पतिः शीघ्रमगमत्क्षीरसागरम् ॥६४॥
अदृष्ट्वा तं ततो द्रोणमभूच्चिन्तापरो नृप। अथागत्य रणं तूर्णममरान्प्राह गीष्पतिः ॥६५॥
पलायध्वं सुराः सर्वे द्रोणाद्रिः क्षयमागतः । एवमुक्तवतस्तस्य गुरोश्चिच्छेद सिन्धुजः ॥६६॥
यज्ञोपवीतं केशांश्च बाणैस्तीक्ष्णैर्हसन्सुरान् । ततो दुद्राववेगेन गुरुः प्राणभयार्दितः ॥६७॥
देवाः सर्व रणांहित्वा पलायाञ्चक्रिरे नृप। एवं विद्राव्य देवान्वै जनार्दनमथावत॥६८॥
हृषीकेशोऽपि दैत्येशमन्वधावद्रणोत्सुकः । ततो युद्धमभूद्घोरं विष्णोर्जालन्धरस्य च ॥६९॥
दुर्द्धर्षणो बाणजालैः प्लावयामास केशवम् । तान्बाणान्खण्डशः कृत्वा पूरयित्वा शरैर्महान्॥७०॥
वासुदेवोऽसुरं बाणैर्जालन्धरमपीडयत् । जालन्धरो रथंत्यक्त्वा शरपीडितविग्रहः ॥७१॥
विष्णुंविजेतुं दुद्राव संयतिस्थमथ द्रुतम् । तमायान्तं रणेदृष्ट्वा हरिर्विव्याध सायकैः ॥७२॥

बाणानङ्गेऽसहद्विष्णोः प्राप्तोऽसौ रथसन्निधौ ।
हस्तेनैकेन गरूडं द्वितीयेन रथंहरेः ॥७३॥

भ्रामयित्वाऽम्बरे शश्वच्छ्वेतद्वीपेन्यपातयत्। जालन्धरकरक्षिप्तो गरुडोऽपि पपातह ॥७४॥
क्रौञ्चद्वीपे स तत्रैव विश्राममकरोच्चिरम् । अच्युतः प्रच्युतस्तस्माद्भ्रमतो रथमण्डलात् ॥७५॥
रणमागत्य दैत्येशं तिष्ठ तिष्ठेत्यभाषत । दृष्ट्वा तमागतं भूयः केशवं समरप्रियः ॥
पूरयन्मार्गणैर्भूमिं जगर्जार्णवनन्दनः ॥७६॥

विव्याध दैत्यं हरिराशु शक्त्या हृदि स्फुरन्त्या स ततः पपात ।
सूतोऽनयत्तं समरान्निवासं तं प्राह रे केन कृतोऽस्यलज्जः ॥७७॥

हूँ तब तक तुम रथ पर ही रहो । इस तरह से कहकर उसने बाणों से देव सेना को मारा ॥६३॥ बाणों से चीर दिये गये देवताओं ने बृहस्पति से कहा आप हमलोगों की रक्षा करें । उसके बाद बृहस्पति शीघ्रता से क्षीर सागर में गये ॥६४॥ वहाँ पर द्रोणगिरि को नहीं देखकर वे चिन्तित हो गये । उसके बाद युद्ध में आकर बृहस्पति ने देवताओं से कहा ॥६५॥ देवताओं तुमलोग भाग जाओ, द्रोणाचल विनष्ट हो गया। इस तरह से कहने वाले बृहस्पति के केशों तथा यज्ञोपवीत को जालन्धर ने बाणों से काट दिया । तथा जोर से हँसकर देवताओं का उपहास किया । उसके बाद प्राण सङ्कटापन्न बृहस्पति वहाँ से वेगपूर्वक भाग चले ॥६६-६७॥ हे राजन् ! सभी देवता युद्ध का परित्याग करके भाग गये । इस तरह देवताओं को भगाकर वह जर्नादन पर टूट पड़ा ॥६८॥ युद्ध करने के लिए उत्सुक श्रीभगवान् भी दैत्यराज पर टूट पड़े उसके बाद भगवान् विष्णु और जालन्धर का घोर युद्ध हुआ ॥६९॥ जालन्धर ने भगवान् पर बाणों की वर्षा की और भगवान् उन बाणों को टुकड़े-टुकड़े कर दिए । उसके बाद उन्होंने धनुष का टङ्कार करके बाणों से जालन्धर को पीड़ित किया, वाणों से पीड़ित शरीर वाला जालन्धर रथ को त्याग कर तेजी से भगवान् विष्णु को जीतने के लिए उनकी ओर दौड़ा । आते हुए जालन्धर को श्रीहरि ने बाणों से छेद दिया ॥७०-७२॥ जालन्धर ने अपने शरीर पर उन बाणों को बर्दास्त किया । उसने एक हाथ से गरुड़ तथा दूसरे हाथ से श्रीहरि के रथ को उठाकर आकाश में घुमाया और श्वेत द्वीप में फेंक दिया । जालन्धर के हाथों फेंके गये गरुड क्रौञ्च द्वीप में गिरे और वहीं देर तक विश्राम करते रहे । भगवान् भी उस घूमते हुए रथमण्डल से गिरे ॥७३-७५॥ वे युद्ध में आकर जालन्धर को तिष्ठ-तिष्ठ कहकर ललकारे । युद्ध प्रिय जालन्धर ने आये हुए केशव को देखकर बाणों से पृथिवी को भरते हुए गर्जना किया ॥७६॥ श्रीहरि ने चमकती हुयी शक्ति के द्वारा दैत्य के हृदय को बेध दिया और वह गिर पड़ा । यह देखकर सारथि उसको निवास स्थान

दैत्यारिजालन्धरयोर्महत्तदा बभूव युद्धं धरणीतलस्थयोः ।
प्रेम्णा श्रियस्तं न जघान दानवं स्वयं हरिस्तस्य शरैः पपात ॥७८॥
ततो निरीक्ष्य गोविन्दं पतितं धरणीतले। प्रगृह्यार्णवजो दैत्य आरुरोह निजंरथम् ॥७९॥
ततस्तमिन्दिराप्राप्ता रुदन्ती विष्णुबल्लभा। संस्थिता कमला तत्र पतिंकमललोचनम् ॥८०॥
पतितं तु पतिं वीक्ष्य लक्ष्मीः प्राहार्णवात्मजम् ।
शृणुष्व वचनं भ्रातर्जितो विष्णुर्धृतस्त्वया ॥८१॥
भगिन्या न च वैधव्यं दातुंयुक्तं महाबल। श्रुत्वा तु वचनं तस्या मुमोच जगतःपतिम् ॥८२॥
जालन्धरो महाबाहुः स्वस्रे भक्त्या ननाम च ।
ववन्दे चरणौ विष्णोः स्वसुः स्नेहात्तदाञ्जसा ॥८३॥
विष्णुर्जालन्धरं प्राह तुष्टोऽस्मि तवकर्मणा। वरंवरय दैत्येश किं प्रयच्छामि ते वरम् ॥८४॥

जालन्धर उवाच

यदि त्वं ममतुष्टोऽसि शौर्येणानेनकेशव। स्थातव्यं मत्पितुःस्थानेत्वया कमलासह ॥८५॥
तथेत्युक्त्वा च संस्मृत्य गरुडं धरणीधरः। आरुह्य चजगन्नाथःक्षीराब्धिं प्रिययासह ॥८६॥
तदाप्रभृति कृष्णस्य वासःश्वशुरमन्दिरे। अब्धौवसति देवेशो लक्ष्म्याःप्रियचिकीर्षया ॥८७॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिरनारदसंवादेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

लाया । उसको देखकर उसने कहा कि किसने मुझे निर्लज्ज बनाया है ॥७७॥ उस समय पृथिवी पर स्थित जालन्धर और भगवान् विष्णु का भयङ्कर युद्ध हुआ । लक्ष्मीजी के प्रेम के कारण श्रीहरि ने जालन्धर को नहीं मारा स्वयं श्रीहरि ही उसके बाणों से गिर पड़े ॥७८॥ उसके बाद पृथिवी पर गिरे हुए गोविन्द को देखकर जालन्धर ने उन्हें उठा लिया और अपने रथ पर बैठ गया ॥७९॥ उसके बाद लक्ष्मीजी उसके पास आयीं और कमलनयन श्रीभगवान् के पास वे खड़ी हो गयीं । अपने पति को गिरे हुए देखकर लक्ष्मीजी ने जालन्धर से कहा ऐ भ्रात: ! तुम मेरी बात सुनो तुमने विष्णु को जीतकर पकड़ लिया है ॥८०-८१॥ हे महाबलवान् ! बहन को विधवा बनाना उचित नहीं है । लक्ष्मीजी की बातों को सुनकर जालन्धर ने जगत् के स्वामी को छोड़ दिया ॥८२॥ महाबाहु जालन्धर ने अपनी बहन को भक्ति पूर्वक नमस्कार किया । उसने अपनी बहन के स्नेह से भगवान् विष्णु के चरणों की वन्दना की ॥८३॥ भगवान् विष्णु ने जालन्धर से कहा कि तुम्हारे कर्म से मैं सन्तुष्ट हूँ । हे दैत्येश ! वरदान माँगों मैं आपको कौन सा वरदान दूँ । जालन्धर ने कहा हे केशव ! यदि आप मेरे पराक्रम से सन्तुष्ट हैं तो आप मेरे पिता के ही स्थान पर लक्ष्मी के साथ निवास करें ॥८४-८५॥ ठीक है कहकर भगवान् ने गरुड़ का स्मरण करके और उस पर सवार होकर लक्ष्मीजी के साथ क्षीर सागर में चले गये ॥८६॥ उसी समय से देवेश भगवान् विष्णु लक्ष्मीजी की प्रसन्नता के लिए अपने श्वसुरालय क्षीरसागर में निवास करते हैं ॥८७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तरखण्ड के युधिष्ठिर नारद संवाद के अन्तर्गत आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पुर्ण हुआ ।।८।।

नवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

देवान्विद्राव्यसमरे विष्णुं स्थाप्यात्ममन्दिरे। जालन्धरेणाब्धिजेन यत्कृतंब्रूहि नारद॥१॥

नारद उवाच

शुम्भादीनां तु वीराणां दत्त्वा दानं प्रसादजम् ।
जालन्धरो जगामाथ स्वर्गं प्राप्यावलोकयत् ॥२॥

हिरण्यवर्षेणजनान्भूषयन्ति दिनेदिने। फलन्ति तरवोऽजस्रं वाजिमेधक्रतोःफलम् ॥३॥
गजवस्त्रसुवर्णानि धेनुकन्यातिलानि च। पुष्पकर्पूरताम्बूलकस्तूरीकुङ्कुमानि च॥४॥
ये यच्छन्ति महात्मानस्ते पश्यन्त्यमरावतीम्। वर्षासु गृहदानेन शिशिरेऽग्निप्रदानतः ॥५॥

वादित्राणि च सर्वाणि वादयन्ति शिवालये ।
प्रपां कुर्वन्ति ये चैत्रे दध्योदनसमन्विताम् ॥६॥

यत्र हिन्दोलपर्यङ्कं स्वयमान्दोलयन्ति च। सारिकाशुकहंसाश्च भ्रमद्भ्रमर कोकिलाः ॥७॥
कुर्वन्तो दूतकार्याणि यच्छन्ते प्रियसङ्गमम् । रम्भा यत्र पुरेरामा मेनका च तिलोत्तमा ॥८॥
सुषमासुन्दरी यत्र घृताची पुञ्जिकस्थली। सुकेशी सुमुखी रामा मञ्जुघोषा च मालिनी ॥९॥
मृगोद्भवा च सुखदा धनदंष्ट्रवा तिलप्रभा। वाजिमेधफलग्राहा राजसूयं फलन्ति याः॥१०॥

कोटिशो यत्र निष्पापाःक्रीडान्त्यप्सरसो नृप ! ।
एवं भूरिसुखे स्वर्गे स्थापयामास सिन्धुजः ॥११॥

जालन्धर द्वारा सभी देवताओं को परास्त करके सुराज्य की स्थापना का वर्णन

महाराज युधिष्ठर ने कहा— हे नारदजी ! युद्ध में देवताओं को परास्त करके तथा श्रीभगवान् को अपने गृह में स्थापित करके समुद्र पुत्र जालन्धर ने जो कार्य किया उसे आप बतलायें ॥१॥ **नारदजी ने कहा—** प्रसन्न होकर शुम्भ आदि वीरों को दान देकर जालन्धर स्वर्ग में जाकर देखा ॥२॥ कि वहाँ प्रतिदिन सुवर्ण की वर्षा होती हैं और वहाँ के लोग उससे अपने को अलंकृत करते हैं । वहाँ के वृक्ष सदा अश्वमेध यज्ञ के फल को प्रदान करते हैं ॥३॥ हाथी, वस्त्र, सुवर्ण, गौ, कन्या, तिल, पुष्प, कर्पूर, ताम्बूल, कस्तूरी तथा कुङ्कुम का दान करने वाले महापुरुष अमरावती नगरी में जाते हैं । वर्षा ऋतु में गृहदान करने से, शिशिर ऋतु में अग्निदान करने वाले, जो लोग सभी वाद्यों को शिवालय मे बजवाते हैं, चैत्र के महीने में दध्योदन के साथ पौशाल चलाने वाले ॥४-६॥ वहाँ पर लोग झूला रूपी पर्यङ्क को स्थापित करके स्वयं उस पर झूलते रहते थे तथा सारिका, शुक, हंस तथा गुञ्जार करते हुए हंस एवं कोकिलाएँ दूत का कार्य करती थीं तथा उन्हें प्रियतमाओं से मिलाने का कार्य करती थीं । वहाँ पर, रम्भा, रामा, मेनका, तिलोत्तमा, सुन्दरी, सुषमा, घृताची, पुञ्जिकस्थली, सुकेशी, सुमुखी, रामा, मञ्जुघोषा, मालिनी, मृगोद्भवा, सुखदा, धनदंष्ट्रा, तिलप्रभा इत्यादि अप्सराएँ अश्वमेध तथा राजसूय का फल प्रदान करती हैं। हे राजन् ! वहाँ पर ऐसी करोड़ों निष्पाप अप्सरायें क्रीड़ा करती हैं । इस तरह अत्यन्त सुखमय स्वर्ग में जालन्धर ने अपना राज्य स्थापित किया ॥७-११॥ अपने प्राण के समान प्रिय शुम्भ तथा निशुम्भ नामक

शुम्भप्राणसमं दैत्यं निशुम्भं युवराजके। स्वयं जालन्धरे पीठे स्वर्गादागत्य सिन्धुराट् ॥
वर्षार्बुद्वयं राज्यं चकारात्मबलेन च ॥१२॥

युधिष्ठिर उवाच

युयुधे सुरसङ्ग्रामे स सुरैरपराजितः। ततःकिमकरोद्राजा सिन्धुसूनुःप्रतापवान् ॥१३॥
तन्ममाचक्ष्व देवर्षे ! श्रोतुकामस्य विस्तरात् ॥१४॥

नारद उवाच

शृणु राजन्यथातथ्यं कृतं सागरसूनुना। सदेवान्समरेजित्वा राज्यंचक्रे ह्यकण्टकम्॥१५॥
गन्धर्वाश्चित्रसेनाद्याःसेवन्ते चासुरेश्वरम्। यज्ञभागांश्च यो भुङ्क्ते सर्वेषामसुरेश्वरः ॥१६॥
क्षीरसागरतो देवैर्हृतं रत्नादिकं च यत्। तत्सर्वं च तथान्यच्च निर्जित्य हृतवान्बली ॥१७॥
समुद्रतनयेराज्यं भुवो राजन्प्रशासति। न कश्चिन्म्रियते मर्त्यो नरकं कोऽपि न व्रजेत्॥१८॥
न कलिःप्रणयादन्यो न भोगादपरःक्षयः। न वन्ध्यादुर्भगानारी नालङ्कारैर्विवर्जिता ॥१९॥
कुरूपादुर्गतादुष्टाऽयशस्या न च दृश्यते। न तत्र विधवानारी न कश्चिन्निर्द्धनोजनः ॥२०॥

दातारः सन्ति सर्वत्र न प्रतिग्राहिणः क्वचित्।
पुण्याजनाः प्रयच्छन्ति द्विजेभ्यो ह्यात्मनो धनम् ॥२१॥

रूपयौवनशालिन्यःसीमन्तिन्यो गृहेगृहे। गोक्षीरं दधिसर्पिश्च यत्र निर्जरसोजनाः ॥२२॥
मङ्गलं तत्र सर्वेषां न क्वचिद्वधबन्धनम्। मरणं न च हिंसाऽस्ति न कश्चित्केन बाध्यते॥२३॥

ऋणं न दृश्यते राजन्धनिनः सन्ति सर्वतः।
सन्तुष्टाः सर्वसस्याढ्याः प्रजाः सर्वत्र पार्थिव ! ॥२४॥

दैत्यों को युवराज बनाकर स्वर्ग से लौटकर महासागर ने जालन्धर के राज्य में अपने पराक्रम से दो अरब वर्षों तक राज्य किया ॥१२॥ **युधिष्ठिर ने कहा**— देवताओं के संग्राम में पराजित नही होने वाला प्रतापी जालन्धर ने उसके पश्चात् क्या किया ?॥१३॥ हे देवर्षे ! मैं इसे विस्तार से सुनना चाहता हूँ, इसे ही आप मुझे सुनाइये ॥१४॥ **नारदजी ने कहा**— हे राजन् ! आप सुनें मै जालन्धर का ठीक-ठीक वृतान्त सुनाता हूँ। वह युद्ध में देवताओं को पराजित करके अकण्टक राज्य करने लगा ॥१५॥ चित्रसेन आदि गन्धर्व असुरेश्वर जालन्धर की सेवा में लगे रहते थे। सम्पूर्ण यज्ञभागों का उपभोग असुरेश्वर ही करता था॥१६॥ देवता जिन रत्नों को क्षीर सागर से लाये थे बलवान् जालन्धर ने उन सभी रत्नों को तथा दूसरे रत्नो का भी हरण करके ले आया ॥१७॥ हे राजन् ! जालन्धर के राज्य काल में कोई भी मनुष्य न तो मरता था और न तो कोई नरक में जाता था ॥१८॥ उसके राज्य में प्रणय में ही कलह होता था दूसरे किसी विषय में नहीं, भोग में ही क्षय होता था। उसके राज्य में कोई भी नारी अलङ्कारों से रहित नहीं थीं ॥१९॥ कोई भी नारी, कुरूप, या दुर्गति ग्रस्त, या दुष्टा, या यशोविहीन नहीं थी। उस समय न तो कोई विधवा नारी थी और न तो कोई निर्धन मनुष्य था ॥२०॥ सभी लोग दान देने वाले थे, कोई भी दान लेने वाला नहीं था। पवित्र मनुष्य ब्राह्मणों को अपना धन-दान देते थे ॥२१॥ प्रत्येक गृहों की रमणियाँ रूप और यौवन से सुशोभित रहती थी वहाँ के लोग जरा से रहित थे। वहाँ गौ का दुग्ध, दधि तथा गोघृत की बहुलता थी ॥२२॥ सर्वत्र मङ्गल ही मङ्गल था कोई भी मनुष्य मारा अथवा बान्धा नहीं जाता था।

केलीक्षुदण्डप्रभवश्च दुग्धरसोऽति सुस्वादुतरो गृहे नृणाम् ।
शुश्राव नारी नरयोर्हितं वचो न चापहर्ताऽध्वनि गच्छतां सदा ॥२५॥
पतन्त्यखण्डा नभसो यतस्ततो धाराश्च कर्मारविमिश्रसर्पिषः ।
संमिश्रिताः शर्करया परिश्रुताः समुद्रसूनोःस्म रणान्मुखे नृणाम् ॥२६॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिरनारद सम्वादे जालन्धरसौराज्यवर्णनंनाम नवामोऽध्यायः ॥९॥

दसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

इन्द्रादिभिस्तदा देवैःकिं कृतं द्विजसत्तम । जालन्धरेणविजितैः स्वर्गराज्ये हृते सति ॥१॥

नारद उवाच

अथ त्यक्त्वा दिवं देवाः प्रापुस्ते दुर्दशां चिरम् ।
न पीयूषं नैव यज्ञा ययुः स्थानं स्वयम्भुवः ॥२॥
ददृशुर्ब्राह्मभुवने ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । प्राणायामेन युञ्जानं मनःस्वंपरमात्मनि॥३॥
ते तुष्टुवुः सुराः सर्वेवाग्भिस्तथ्याभिरादृताः ।
ततः प्रसन्नो भगवान्किं करोमीति चाब्रवीत् ॥४॥

कोई भी ऋण नही लेता था और सर्वत्र धनिक लोगों का निवास था । हे राजन् ! सर्वत्र प्रजाओं की सभी प्रकार की धान्य सम्पत्ति भरी थी और सब सन्तुष्ट थे ॥२३-२४॥ मनुष्यों के गृह में विद्यमान ईख का रस अत्यन्त स्वादिष्ट था । सर्वत्र स्त्री पुरुषों के कल्याणमयी वार्ता सुनायी पड़ती थी । मार्ग में जाने वाले लोगों की धन सम्पत्ति को कोई भी नहीं छिनता था ॥२६॥ जहाँ-तहाँ आकाश से मिश्रित घी की धारा निरन्तर गिरती रहती थी स्मरण करने मात्र से लोगों के मुख में चीनी मिश्रित दुग्ध गिरने लगता था ॥२६॥
इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के उत्तर खण्ड के युधिष्ठिर नारद संवाद के अन्तर्गत जालन्धर सौराज्य वर्णन नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

शङ्करजी द्वारा सभी देवताओं के तेज से चक्र का निर्माण

युधिष्ठिर ने पूछा— हे द्विजश्रेष्ठ ! जब जालन्धर ने देवताओं को पराजित करके उनसे स्वर्ग का राज्य छिन लिया उस समय देवताओं ने क्या किया ? **नारदजी ने कहा—** उसके बाद सभी देवता स्वर्ग लोक का परित्याग करके दीर्घ काल तक दुर्दशा सहते रहे । उनको न तो अमृत मिलता था और न यज्ञ का भाग मिलता था । वे देवता ब्रह्माजी के पास गये ॥१-२॥ उन लोगों ने ब्रह्मलोक में परमेष्ठी ब्रह्माजी का दर्शन किया । उस समय ब्रह्माजी प्राणायाम करके परमात्मा में अपने मन को लगाये थे ॥३॥ देवताओं

ततो निवेदायञ्चक्रुर्ब्रह्मणे विबुधाःपुनः। जालन्धरस्य सकलं तथा निजपराभवम्॥५॥
क्षणंध्यात्वा ययौ ब्रह्मा कैलासं त्रिदशैःसह।
तस्य शैलस्यपार्श्वे ते वैचित्र्येणसमाकुलाः॥६॥
स्थिताः सन्तुष्टुवुर्देवा ब्रह्मशक्रपुरोगमाः। नमो भवाय शर्वाय नीलग्रीवाय ते नमः॥७॥
नमःस्थूलाय सूक्ष्माय बहुरूपाय ते नमः। इति सर्वमुखोभूत्वा वाणीमाकर्ण्य शङ्करः॥८॥
प्रोवाच नन्दिनं देवानानयस्वेति सत्वरम्।
श्रुत्वा शम्भोर्वचो देवा आहूता नन्दिना द्रुतम्॥९॥
प्रविश्यान्तुःपुरे देवाः ददृशुर्विस्मतेक्षणाः। तत्रासने समासीनं शङ्करं लोकशङ्करम्॥१०॥
गणैःकोटिसहस्रैस्तु सेवितं भक्तिशालिभिः। नग्नैर्विरूपैःकुटिलैर्जटिलैर्धूलिधूसरैः॥११॥
प्रणिपत्याग्रतःप्राह सहदेवैः पितामहः। सुखरोगो यथाऽस्यासीच्छकःसोऽयं वृथागतः॥१२॥
कृपांकुरु महादेव शरणागतवत्सल। ततउच्चैर्विभीर्हास्यं श्रुत्वा ब्रह्मा पिनाकिनः॥१३॥
उवाच देवदेवेशं पश्यावस्थां दिवौकसाम्। ततः सर्वेश्वरो ज्ञात्वा ब्रह्मणो मनसेप्सितम्॥१४॥
शक्रस्य मानभङ्गं च देवार्थे परमेश्वरः। प्रेम्णा भवान्याविज्ञप्तो नृप ! प्राह वचोहरः॥१५॥
विष्णुना न हतो योऽरिः सकथं हन्यते मया।
पूर्वसृष्टान्यायुधानि वज्रादीनिपितामह॥१६॥
तैःशस्त्रैर्नैव वध्योऽसौ बलीजालन्धरोऽसुरः।
हेतिभिःपूर्वसंसृष्टैःसमयाऽपि न हन्यते॥१७॥

अपनी सत्यवाणियों के द्वारा आदर पूर्वक ब्रह्माजी की स्तुति की। उसके बाद प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने कहा— मैं आपलोगों का कौन-सा काम करूँ॥४॥ इसके पश्चात् देवताओं ने जालन्धर के समस्त वृत्तान्तों तथा अपने पराभव की बात को बतलाया॥५॥ क्षणभर ध्यान करने के पश्चात् ब्रह्माजी देवताओं के साथ कैलास पर्वत पर गये। उस पर्वत के पास जाकर वे देवता उसकी विचित्रता को देखकर घबरा गये॥६॥ वहीं स्थित होकर देवताओं ने ब्रह्माजी तथा इन्द्र को आगे करके शङ्करजी की स्तुति करते हुए कहा भव, शर्व तथा नीलग्रीव नाम वाले आपको नमस्कार है॥७॥ स्थूल, सूक्ष्म तथा अनेक रूप वाले आपको नमस्कार है। इस तरह से सबों की ओर मुख करके तथा देवताओं की वाणी को सुनकर शङ्करजी॥८॥ ने नन्दी से कहा कि देवताओं को शीघ्र लाओ। शङ्करजी की वाणी को सुनकर नन्दी के द्वारा बुलाये गये देवगण शीघ्रता से॥९॥ भीतर प्रवेश करके आश्चर्यित नेत्रों वाले देवताओ ने देखा कि लोक कल्याणकारी शङ्करजी आसन पर बैठे हैं॥१०॥ भक्ति के सम्पन्न करोड़ों हजार गण उनकी सेवा कर रहे हैं। वे सब नग्न, विरूप, कुटिल (टेढ़े-मेढे शरीर वाले) जटाधारी और धूल धूसरित थे॥११॥ सबों के आगे विद्यमान ब्रह्माजी शङ्करजी को प्रणाम करके कहे जिसको पहले सुख का रोग हो गया था वे इन्द्र व्यर्थ ही आये हैं॥१२॥ हे शरणागत वत्सल महादेव! आप कृपा करें। उसके बाद शङ्करजी की जोर से हँसी को सुनकर ब्रह्माजी ने शङ्करजी से कहा आप देवताओं की दशा को देखें। उसके पश्चात् ब्रह्माजी के अभिप्रेत अर्थ को॥१३-१४॥ तथा इन्द्र के अभिमान का नाश जानकर देवताओं के लिए पार्वतीजी द्वारा प्रेम पूर्वक कहे जाने पर शङ्करजी ने कहा॥१५॥ जिस शत्रु को भगवान् विष्णु ने नहीं मारा उसको मैं कैसे मार सकता हूँ?

देवाः कुर्वन्तु शस्त्रं हि ममप्राणसहं दृढम् । शम्भोरित्युत्तरं श्रुत्वा ब्रह्मोवाचाथ शङ्करम् ॥१८॥
स्वयं कुरु महाशस्त्रं त्वं बेत्थ स्वात्मनोबलम् ।
इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महेश्वरः ॥१९॥
ब्रह्मन्विमुञ्च तेजस्त्वं क्रोधयुक्तं सुरैःसह। ततस्तेजो मुमोचाथ ब्रह्मा ब्रह्मास्त्रसूचकः ॥२०॥
रुद्रस्त्रिनेत्रजं तेजस्ततो निर्मुक्तवान्स्वयम् । देवाश्च मुमुचुःसर्वे सक्रोधं तेजसांचयम् ॥२१॥
अत्रान्तरे स्मृतःप्राप्तो हरेण मधुसूदनः। किं करोमीति तेनोक्तःशिवःप्राह जनार्दनम्॥२२॥
विष्णो जालन्धरः कस्मान्न हतःसङ्गरे त्वया ।
कथं सुरान्परित्यज्य क्षीराब्धिं शयितुं गतः ॥२३॥

श्रीविष्णुरुवाच

यदि तं हन्मि देवेश श्रीःकथं ममवल्लभा। तस्मात्त्वं पार्वतीकान्त जहि जालन्धरं रणे॥२४॥
तेजस्त्वं क्रोधजं मुञ्चेत्युक्तःशर्वेण केशवः । मुमोच वैष्णवं तेजस्तत्सर्वं समवर्द्धत ॥
तेजःप्रवृद्धं तद् दृष्ट्वा व्यापकं प्राह केशवम् ॥२५॥

शङ्कर उवाच

एतेन तेजसा शीघ्रं ममास्त्रं कर्तुमर्हथ । विश्वकर्मादयस्तच्च श्रुत्वा शङ्करभाषितम् ॥२६॥
निरीक्ष्य च तदान्योन्यं किं कुर्म इतिशङ्किताः ।
दृष्ट्वा तूष्णीं स्थितांस्तांश्च ज्ञात्वा तन्मनसि स्थितम् ॥२७॥
तदाह भगवान्ब्रह्मा अनालोक्यं हि दैवतैः । सोढुं न शक्तास्ते तेजो धर्तुं केन चशक्यते ॥२८॥

हे ब्रह्माजी ! पहले जो वज्र आदि आयुध बनाये गये हैं, उन सबों से जालन्धर का वध नहीं सम्भव है । अतएव पूर्व निर्मित वज्रों से मैं भी उसको नहीं मार सकता हूँ ॥१६-१७॥ अतएव देवता मेरे प्राणों के द्वारा सुदृढ़ शस्त्र का निर्माण करें । शङ्करजी की इस बात को सुनकर ब्रह्माजी ने उनसे कहा ॥१८॥ आप अपने बल को जानते हैं अतएव आप ही उस महाशस्त्र को बनायें । ब्रह्माजी की इस वाणी को सुनकर शङ्करजी ने कहा ॥१९॥ हे ब्रह्मन् ! आप देवताओं के साथ क्रोध करके अपने तेज को प्रकट करें उसके बाद ब्रह्माजी ने ब्रह्मास्त्र के सूचक तेज को प्रकट किया ॥२०॥ उसके बाद स्वयं रुद्र ने अपने त्रिनेत्र जन्य तेज को प्रकट किया । सभी देवताओं ने क्रोध करके तेज समूह को प्रकट किया ॥२१॥ उसी समय शङ्करजी के द्वारा स्मरण किए जाने पर वहाँ श्रीहरि आ गये और पूछे कि मैं क्या करूँ ? तो शङ्करजी ने जनार्दन से कहा ॥२२॥ हे विष्णो ! आपने युद्ध में जालन्धर को क्यों नहीं मारा ? देवताओं को छोड़कर आप क्षीर सागर में शयन करने के लिए क्यों चले गये ?॥२३॥ **श्रीविष्णु भगवान् ने कहा**— हे देवेश ! यदि मैं उसको मारता हूँ तो लक्ष्मी मेरी प्रियतमा कैसे रह सकती है ? अतएव हे पार्वतीपते! आप ही जालन्धर को युद्ध में मारें ॥२४॥ तब शङ्करजी द्वारा यह कहे जाने पर कि आप अपने क्रोध जन्य तेज को प्रकट करें भगवान् विष्णु ने वैष्णव तेज को प्रकट किया । इस तरह सम्पूर्ण तेज बढ़ गया । उस समृद्ध हुए तेज को देखकर शङ्करजी ने भगवान् केशव से कहा ॥२५॥ **शङ्करजी ने कहा**— आप लोग इसी तेज से मेरे अस्त्र का निर्माण करें । शङ्करजी के इस वचन को सुनकर विश्वकर्मा आदि देवता एक दूसरे को देखकर सोचने लगे कि हमलोग क्या करें? देवताओं को मौन हुए देखकर तथा उन सबों के मन

ततःप्रहस्य भगवानुत्पत्योपरितेजसः। वामाङ्घ्रिपार्ष्णिनाशम्भुर्ननर्त भ्रमरीचयम् ॥२९॥
ततो देवा महेन्द्राद्यास्तेजसोपरि शङ्करम्। नृत्यमानं तदा दृष्ट्वा मुदावाद्यान्यवादयन्॥३०॥
तदा प्रभृति नृत्येषु भ्राम्यते भ्रमरीचयम्। अथ चक्रं समुत्पन्नं शम्भोर्नर्तनमर्दनात् ॥३१॥
आरलक्षत्रयोपेतमस्थिकोटिसमाकुलम् । शर्वाङ्घ्रिकर्षणात्तस्य तेजसो निसृताः कणाः॥३२॥
विश्वकर्मा च तेनास्त्रं विमानानि च निर्ममे । ततस्तै निर्जराभीत्या दृष्ट्वा चक्रं सुदर्शनम् ॥३३॥
त्राहि त्राहिति देवेशं प्रत्यूचुस्ते सुरानृप । पृथ्वीकाठिन्यमादायलोहानामपितेजसाम् ॥३४॥
यद्विश्वकर्मणाकोशंकृतं भस्मीकृतं चतत्। सृष्टेन तेन चक्रेण दग्धःकालोऽपतत्क्षितौ ॥३५॥
ततस्तद्ब्रह्मणोहस्ते ददौ चक्रं स धूर्जटिः । चक्रार्चिर्निचयैःकूर्चं दृष्ट्वा दग्धमुमापतिः॥३६॥

हसित्वा ब्रह्मणो हस्ताद् गृहीत्वा सत्वरं शिवः ।
दधौ कक्षापुटे चक्रं निधानं निर्धनो यथा ॥३७॥
ततो न दृश्यते चक्रं शिवकक्षापुटे स्थितम् ।
महामूर्खस्ययद्दत्तं दानं तस्य फलं यथा ॥३८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिरनारदसंवादे जालन्धरोपाख्याने सर्वदेवतेजोमयचक्रोत्पत्तिर्नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

की बात को जानकर ब्रह्माजी ने कहा कि देवता इस तेज को देख भी नहीं सकते हैं अतएव इसको कौन पकड़ पायेगा ?॥२६-२८॥ उसके पश्चात् जोर से हँसकर उस तेज के ऊपर उछल कर तथा अपने बायें पैर की एंड़ी से दबाकर शङ्करजी भ्रमरी समूह के समान नाचने लगे ॥२९॥ उसके पश्चात् इन्द्र आदि देवता तेज के ऊपर नृत्य करते हुए शङ्करजी को देखकर प्रसन्नता पूर्वक वाद्य बजाने लगे ॥३०॥ उसी समय से नृत्यों में भ्रमरी समूह के समान घूमा जाता है । शङ्करजी द्वारा नृत्य में मसले जाने के कारण उस तेज से चक्र उत्पन्न हो गया ॥३१॥ उस चक्र मे तीन लाख और एक करोड़ अस्थियाँ थीं । शङ्करजी के चरणों की रगड़ से उस तेज से कण निकला ॥३२॥ विश्वकर्मा उससे अस्त्र तथा विमानों का निर्माण किए उसके पश्चात् उस सुदर्शन चक्र को देखकर देवता डर गये और शङ्करजी से कहे कि आप इससे हमलोगों की रक्षा करें । पृथिवी की कठोरता तथा लौह आदि धातुओं के तेज को लेकर विश्वकर्मा ने जो उसका कोश (आवरक) बनाया था वह भस्म हो गया और उस भूमि पर काल भी उस निर्मित चक्र से जल गया ॥३३-३५॥ उसके पश्चात् शङ्करजी ने उस चक्र को ब्रह्माजी के हाथ में प्रदान किया । उस चक्र के तेज समूह से ब्रह्माजी की दाढ़ी जली हुयी देखकर शङ्करजी ने शीघ्रता से हँसकर उस चक्र को ले लिया और उन्होंने उसको अपने कक्षा में उसी प्रकार रख लिया जैसे कोई निर्धन व्यक्ति खजाने को छिपा लेता है ॥३६-३७॥ उसके ही कारण शिवजी की कक्षा में स्थित वह उसी तरह से नहीं दिखता था जिस तरह महामूर्ख को दिए गये दान का फल नहीं दिखता है ॥३८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के युधिष्ठिर नारद संवाद के अन्तर्गत सर्वदेवतेजोमय चक्र के निर्माण नामक दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

नारद उवाच

अत्रान्तरे मयागत्वा कथितं सिन्धुसूनवे। त्वां हन्तुं सर्ववीरेश प्रतिज्ञा शम्भुना कृता ॥
श्रुत्वेत्थं मद्वचो राजंस्ततःप्रपच्छ सोऽसुरः ॥१॥

जालन्धर उवाच

किमस्ति शूलिनोगेहे रत्नजातं महामुने। तन्ममाचक्ष्व सकलं नास्ति युद्धंनिरामिषम्॥२॥

नारद उवाच

भूमिर्गात्रे वृषोजीर्णःफणिनोऽङ्के गलेविषम्। भिक्षापात्रं करे पुत्रौ गजाननषडाननौ ॥३॥
इत्यादिविभवस्तस्य यदन्यत्तन्निबोध मे। तनयागिरिराजस्य विशाला ह्युन्नतस्तनी॥४॥
दग्धस्मरोऽपि भगवान्यस्यारूपेण मोहितः। महेशो यद्विनोदाय कुरुते नित्यकौतुकम्॥५॥
नृत्यन्गायंश्च तां शम्भुः स्वयं भवति हासकः।
सा पार्वतीति विख्याता सौन्दर्यावधिदैवतम् ॥६॥
वृन्दा वराङ्गना राजन्निमाश्चाप्सरसः शुभाः। न चाप्नुवन्ति पार्वत्याः षोडशीमपि तां कलाम्॥७॥
इत्युक्त्वाऽहं महीपाल जालन्धरममर्षणम्। पश्यतां सर्वदैत्यानमन्तर्धानंगतः क्षणात् ॥८॥
अथ संप्रेषयद्दूतं सिन्धुजःसिंहिकासुतम्। क्षणेनासाद्य कैलाशं देवावासमपश्यत ॥९॥
अत्रान्तरे हरिर्भीममापृच्छ्य तु तदा हरम्। जगामालक्षितस्तूर्णं क्षीराब्धिं भेदशङ्कया ॥१०॥
ददर्श राहुर्भवनं शङ्करस्यातिदीप्तिमत्। आत्मानमात्मनावीक्ष्य किमित्याह सुविस्मितः॥११॥

नारदजी द्वारा जालन्धर के समक्ष पार्वतीजी के सौन्दर्य का वर्णन

नारदजी ने कहा— उसी बीच मैं जालन्धर के पास गया और कहा कि हे सभी वीरों में अग्रगण्य! आपको मारने के लिए शम्भु ने प्रतिज्ञा की है। हे राजन्! मेरी इस वाणी को सुनकर उस असुर ने पूछा॥१॥ **जालन्धर ने कहा—** हे महामुने! शङ्कर के गृह में कौन सा रत्न है ? आप उन सबों को मुझे बतलाएँ व्यर्थ के युद्ध तो होता नहीं है ॥२॥ **नारदजी ने कहा—** उनके शरीर में भस्म है, बूढ़ा बैल है, उनके शरीर में सर्प रहते हैं, गले में विष है, हाथ में भिक्षा का पात्र है और उनके दो पुत्र हैं गजानन और षडानन ॥३॥ यही उनके ऐश्वर्य हैं। जो दूसरा रत्न है, उसे मैं बतलाता हूँ। हिमालय की पुत्री पार्वती के स्तन उठे हुए और विशाल हैं ॥४॥ कामदेव को जला देने पर भी शङ्करजी पार्वती के रूप पर मोहित हो गए। उनको प्रसन्न करने के लिए महेश सदा कौतुक किया करते हैं ॥५॥ शम्भु नृत्य करके तथा गीत गाकर उनको हँसाते रहते हैं। उनका नाम पार्वती है वह सौन्दर्य की अधिष्ठातृ देवी है ॥६॥ राजन्! वृन्दा सुन्दरी है ये अप्सराएँ भी सुन्दर हैं किन्तु इन सबों में पार्वती के सौन्दर्य का सोलहवाँ अंश भी नहीं है॥७॥ हे राजन्! इस तरह से क्रोधी जालन्धर से कहकर मैं सभी दैत्यों के सामने ही क्षणभर में अन्तर्धान हो गया ॥८॥ इसके बाद जालन्धर ने राहु को अपना दूत बनाकर भेजा। वह क्षण भर में कैलास पर भगवान् शिव के गृह को देखा ॥९॥ इसी बीच श्रीहरि शङ्करजी से विदा लेकर भेद की शङ्का से सबों से अलक्षित होकर शीघ्र ही क्षीरसागर में चले गये ॥१०॥ राहु ने शङ्करजी के अत्यन्त दीप्ति सम्पन्न गृह को देखा वह

प्रवेष्टुकामो बलिभिर्द्वारि द्वाःस्थैर्निरोधितः। यत्नवान्स निषिद्धोऽपि तदा ते प्रोद्यतायुधाः ॥१२॥
तान्निवार्यगणान्नन्दी व्याजहार विधुन्तुदम् । कस्त्वं कस्मादिहायातः किं कार्यं तव बर्बर॥
ब्रूहि कार्यं गणा यावत्त्वां न हन्युर्भयावहाः ॥१३॥

राहुरुवाच

दूतो जालन्धरस्याहं त्वं मां शर्वान्तिकेनय। न वाच्यमन्तरे द्वाःस्थ महाराज प्रयोजनम् ॥१४॥
नन्दी दूतोक्तमाकर्ण्य नीललोहितमाययौ। दण्डवत्प्रणिपत्याग्रे स्थित्वा शङ्करमब्रवीत्॥१५॥
सैंहिकेयो महाराज द्वारे तिष्ठति कार्यतः। स प्रयात्वथवा यातु भवानाज्ञप्तुमर्हति ॥१६॥
नन्दिनोक्तमथाकर्ण्य त्वरन्निव महेश्वरः। सुप्तामन्तःपुराद्देवीं प्रस्थाप्य च सखीवृताम्॥१७॥
पश्चाद्द्वाःस्थं जगादाथ नन्दिन्दूतं प्रवेशय। ततो हस्ते प्रगृह्यामुं दूतं नन्दी महाबलः ॥१८॥
अनयामास देवानां मध्ये शम्भुमदर्शयत्। तं ददर्श तदा राहुर्जटिलं नीलमात्मनि॥१९॥
पञ्चवक्त्रं दशभुजं नागयज्ञोपवीतिनम्। देवीविरहितं मूर्ध्नि चन्द्रलेखाविभूषितम्॥२०॥
उच्छ्वासोच्छ्वासनिर्मुञ्चत्पृदाकुगणसेवितम्। सर्वदेवगणोपेतं सेवितं गणकोटिभिः ॥२१॥

प्राप्तं ज्ञात्वा ततो दूतं शम्भुरालोक्य चाग्रतः ।
प्राह ब्रूहि तदा राहुर्वक्तुं समुपचक्रमे ॥२२॥

राहुरुवाच

देव जालन्धरेणाहं प्रेषितस्तव सन्निधौ। तस्य शिष्टं वचः श्रुत्वा मन्मुखेन द्रुतं कुरु ॥२३॥

अपने से ही अपने शरीर को प्रतिबिम्बित देखकर आश्चर्रित होकर सोचा कि यह क्या है ?॥११॥ वह भीतर जाना चाहता था किन्तु बलवान् द्वारपालों ने उसको रोक दिया । रोकने पर भी जब वह भीतर जाने का प्रयास किया तो उन सबों ने आयुध धारण कर लिया ॥१२॥ उन सबों को रोककर नन्दी ने राहु से कहा अरे दुष्ट ! तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आये हो ? तुम्हें क्या काम है ? जब तक ये भयङ्कर गण तुम्हें मार न दें उससे पहले ही अपना काम बतलाओ ॥१३॥ **राहु ने कहा—** मैं जालन्धर का दूत हूँ तुम मुझे शिवजी के पास ले चलो । हे द्वारपाल ! महाराज के प्रयोजन को दूसरे को नहीं बतलाया जा सकता है ॥१४॥ दूत की बातों को सुनकर नन्दी शिवजी के पास आये । वे शङ्करजी के समक्ष साष्टाङ्ग-प्रणाम करके शङ्करजी से कहे ॥१५॥ महाराज ! द्वार पर राहु किसी कार्य से आया है । वह आये अथवा जाय आप जैसी आज्ञा दें ॥१६॥ उसके बाद नन्दी की बात को सुनकर शङ्करजी शीघ्रता से अन्तःपुर में सोयी हुयी पत्नी पार्वती देवी को सखियों के साथ भेजकर ॥१७॥ उसके पश्चात् द्वारपाल से कहे, नन्दी! दूत को भीतर लाओ । उसके बाद महाबलवान् नन्दी दूत का हाथ पकड़कर लाये और देवताओं के बीच में विद्यमान शिवजी को उसे दिखाये । राहु ने जटाधारी उस नीलकण्ठ को अपने भीतर देखा ॥१८-१९॥ उनके पाँच मुख और दश भुजायें थी । वे सर्पो के यज्ञोपवीत धारण किए थे । उनके पास पार्वतीजी नहीं थीं । उनका शिर चन्द्रमा से अलंकृत था ॥२०॥ उनके शरीर में फुफकार मारते हुए सर्प लिपटे थे । उनके साथ सभी देवगण विद्यमान थे और करोड़ों गण उनकी सेवा में थे ॥२१॥ दूत को आये हुए जानकर शिवजी उससे कहे— कहो, क्या कहना है ? उसके बाद राहु ने कहना प्रारम्भ किया ॥२२॥ **राहु ने कहा—** हे देव ! जालन्धर ने मुझको आपके पास भेजा है । उसकी शिष्ट वाणी को सुनकर आप उसका

गिरिश ! त्वं तपोनिष्ठो निर्गुणो धर्मवर्जितः ।
तव नास्ति पिता माता वसुगोत्रादिवर्जितः ॥२४॥
जालन्धरो महाबाहुर्भुङ्क्तेऽसौ भुवनत्रयम्। तस्यैव वश्यस्त्वमपि ततश्चोक्तं समाचर ॥२५॥
पुराणपुरुषः कामी वृषारूढः कथं भवान्। एवं वदति सम्प्राप्तौ सुतौ स्कन्दविनायकौ॥२६॥
तस्मिन्काले देवदेवो यतवागङ्गमर्दनम् । चकार च करैर्व्यस्तै र्वासुकिर्भूतलेऽपतत् ॥२७॥
हेरम्बवाहनस्याखोः पुच्छे ग्रस्तमथाहिना। स्वपत्रं ग्रस्तमालोक्य मुञ्चमुञ्चेत्युवाच ह॥२८॥
अत्रान्तरे स्कन्दवाहं क्षुब्धं वीक्ष्य महास्वरम् ।
तद्भयाद्वासुकिर्ग्रस्तमाखुपुच्छमथोद्गिरत् ॥२९॥
अथारुह्य रहस्याङ्गं गलमावेष्ट्य संस्थितः। तस्य निश्वासपवनैरथ जातो हुताशनः ॥३०॥
तस्योष्मणा चन्द्रलेखा जटाजूटाटवीस्थिता । सार्द्रतां तु तदा साऽऽयात्प्लावितं तद्वपुर्यथा॥३१॥
तस्याह्यमृतधाराभिर्ब्रह्मस्तकमालिका । हरमौलिकपालानामभूत्सञ्जीविता तदा ॥३२॥
पपाठ पूर्वमभ्यस्तं सर्वयोगश्रुतिक्रमम् । श्रुत्वा परस्पराधितं विवदन्ति शिरांस्यथ ॥३३॥
अहमादिरहं पूर्वमहमेव परात्परः । अहं स्त्रष्टा अहं पातेत्युत्सुकानि परस्परम् ॥३४॥
शोचन्त्येतानि नो दत्तं नो भुक्तं न हुतं मया ।
लोभग्रस्तेन मनसा नो वित्तं ब्रह्मणेऽर्पितम् ॥३५॥
अथेश्वरजटाजूटादाविरासीद्गणो महान्। त्र्याननस्त्रिचरणस्त्रिपुच्छः सप्तहस्तवान् ॥३६॥

शीघ्रता से पालन करें ॥२३॥ हे गिरिश ! आप तपस्वी हैं, निर्गुण और अधार्मिक हैं । आपकी कोई न तो माता है और न पिता है । आप धन सम्पत्ति और गोत्र से रहित हैं ॥२४॥ इस त्रैलोक्य के स्वामी जालन्धर हैं । आप भी उन्हीं के अधीन हैं अतएव आप उनकी बातों का पालन करें ॥२५॥ आप बूढ़े पुरुष हो तथा कामी हो । तुम वृषभ पर क्यों चढ़ते हो । राहु जब इस तरह कह रहा था उसी समय शङ्करजी के पुत्र स्कन्द और गणेशजी भी आ गये ॥२६॥ उस समय शङ्करजी बिना बोले ही अपने हाथों को फैलाकर अङ्ग को रगड़े तो वासुकि पृथिवी पर गिर पड़े ॥२७॥ गणेशजी के वाहन चूहे की पूंछ को सर्प ने पकड़ लिया । अपने वाहन को गस्त देखकर गणेशजी ने कहा छोड़ो-छोड़ो ॥२८॥ उस समय स्कन्दजी के वाहन तथा जोर से बोलने वाले मयूर को क्रुद्ध देखकर, उसके भय से वासुकि ने चूहे की पूंछ को छोड़ दिया ॥२९॥ उसके बाद छिपकर वह शङ्करजी के शरीर पर चढ़ गया और शिवजी के गले में लिपट गया । वासुकि के निःश्वास वायु से अग्नि प्रगट हो गयी ॥३०॥ उस अग्नि की गर्मी से शङ्करजी की जटा-जूट रूपी वन में विद्यमान चन्द्रमा की कला पिघल गयी और उससे शङ्करजी का शरीर मानो घुल गया ॥३१॥ चन्द्रमा की अमृत की धाराओं से शङ्करजी के शिर पर विद्यमान ब्रह्माजी के शिरों की माला जीवित हो गयी ॥३२॥ उसने अपने पहले अभ्यस्त श्रुतियों का क्रमशः पाठ किया । उसको सुनकर अपने द्वारा अधीत वेद के विषय में उस माला के सभी शिर विवाद करने लगे ॥३३॥ कि मैं ही प्रथम ब्रह्मा हूँ, मैं ही प्रथम हूँ । मैं ही सबों से प्राचीन हूँ । मैं ही सृष्टि करने वाला हूँ, मैं रक्षा करने वाला हूँ। इस तरह से वे सभी शिर बोल रहे थे । ये सभी सोचते थे कि मैंनें न तो दान दिया, न भोग किया और न तो मैंने होम किया और लोभ के कारण मैंने न तो ब्राह्मणों को धन दान दिया ॥३४-३५॥ उसके बाद महेश्वर

सच कीर्तिमुखो नाम पिङ्गलो जटिलो महान् ।
तं दृष्ट्वा सा कपालाली भयात्तस्थौ मृतेव सा ॥३७॥
पुरतः प्राह सगणस्ततः कीर्तिमुखः प्रभुम्। प्रणिपत्य शिवं देवमत्यर्थं क्षुधितः प्रभो ॥३८॥
तदोक्तः शङ्करेणाहो भक्षयत्वं रणे हतान् । क्षणं विचार्य सगणः क्वाप्यदृष्ट्वारणं तदा॥३९॥
ब्राह्मणं भक्षितुं प्राप्तः शङ्करेण निवारितः । ततः कीर्तिमुखेनाथ स्वाङ्गं सर्वं च भक्षितम् ॥४०॥
बुभुक्षितेन चात्यन्तं निषिद्धेन च सर्वतः। तत्साहसं तदा दृष्ट्वा भक्तिं कीर्तिमुखस्यच ॥४१॥
तमुवाचेश्वरः प्रीतः प्रासादे तिष्ठ मे सदा । त्वच्चित्तरहितो यश्च भविष्यति ममालये॥४२॥
स पतिष्यति शीघ्रं हीत्युक्तः सोऽन्तर्हितोऽभवत् ।
शम्भोमूर्ध्नि तदा देवा ववृषुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४३॥
एवमत्यद्भुतं दृष्ट्वा सभायां तु त्रिशूलिनः । स्वर्भानुरपि देवेशं पुनः प्रोवाच विस्मितः ॥४४॥
स्पृशन्ति त्वां कथं भावाः स्वाधीनं योगिनं बलात् ।
इन्द्रियैः पूज्यसे त्वं हि प्राप्योऽयं विषयैः कथम् ॥४५॥
ब्रह्मादिलोकपालानां पूजां गृह्णासि सर्वतः । न त्वं पश्यसि कं देवंत्वं पूजयसि कञ्चन॥४६॥
ईश्वरोऽसि कथं लोके भिक्षाभोजी प्रतिष्ठितः ।
सङ्गोपयसि योगीन्द्र ! गौरीं रम्यां प्रयच्छ मे ॥४७॥
स्कन्दलम्बोदराभ्यां त्वं पुत्राभ्यां सहितोऽधुना ।
भिक्षापात्रं गृहीत्वा तु भ्रम नित्यं गृहे गृहे ॥४८॥

के जटाजूट से एक महान गण प्रकट हुआ । उसके तीन मुख थे, तीन चरण थे, तीन पूछें थीं और उसके सात हाथ थे । उसकी पीली जटायें थी तथा उसका नाम कीर्तिमुख था । उसको देखकर वे सभी कपाल समूह भय के कारण मरे के समान चूप हो गये ॥३६-३७॥ शङ्करजी के सामने आकर उस कीर्तिमुख ने प्रणाम किया और कहा देव ! मुझे वहुत भूख लगी है ॥३८॥ उस समय शङ्करजी ने कहा— युद्ध में मारे गये जीवों को तुम खा लो । क्षणभर विचार करके वह गण कहीं पर युद्ध न देखकर ब्रह्माजी को ही खाना चाहा तो उसको शङ्करजी ने रोका, उसके बाद उस कीर्तिमुख ने अपने सम्पूर्ण शरीर को ही खा लिया ॥३९-४०॥ अत्यन्त भूखे तथा हर तरह से रोके गये कीर्तिमुख के साहस तथा भक्ति को देखकर शङ्करजी ने उससे कहा तुम मेरे छत प्रासाद पर सदैव रहा करो । मेरे घर मे तुम्हारा ध्यान जो न करे उसे खाया करना । इस तरह से कहने पर वह कीर्तिमुख शङ्करजी के शिर में ही विलीन हो गया । उस समय देवताओं ने शङ्करजी पर पुष्पों की वृष्टि की ॥४१-४३॥ शङ्करजी की सभा में इस अत्यन्त आश्चर्य को देखकर राहु आश्चिर्यित होकर पुनः शङ्करजी से कहा ॥४४॥ आप स्वाधीन योगी हैं आपको भाव कैसे स्पर्श कर सकते हैं । इन्द्रियाँ आपकी पूजा करती हैं यह विषयों से प्राप्त होना कैसे सम्भव है ?॥४५॥ ब्रह्मा आदि लोकपाल आपकी सदा पूजा करते हैं । आप न तो किसी देवता को देखते हैं और न तो किसी की आप पूजा करते हैं ॥४६॥ आप तो ईश्वर हैं । लोक में भिक्षान्न भोजी रूप से प्रतिष्ठित हैं । हे योगीन्द्र ! आप देवी गौरी को छिपाये हुए हैं उनको आप मुझे दे दें ॥४७॥ अब आप अपने लम्बोदर तथा स्कन्द इन दोनों पुत्रों के साथ भिक्षा पात्र लेकर घर-घर भीख माँगना ॥४८॥ इस तरह से राहु ने भगवान् शिव को बहुत सी बातों को कहा और

एवं बहुविधं तत्र राहुराहेश्वरंप्रति। भगवानपि तच्छुत्वा नोत्तरं किंचिदब्रवीत्॥४९॥
अथेशं मौनिनं त्यक्त्वा राहुर्नन्दिनमब्रवीत्। त्वं मन्त्री ह्यसि सेनानीर्विकटाननबिम्बधृत्॥५०॥
एवमाचरितभ्रष्टं त्वं शिक्षयितुमर्हसि। नो चेद्रोषेणेन्द्र इव पतिष्यति रणे हतः॥५१॥
इत्याकर्ण्यवचस्तस्य नन्दी विज्ञाप्य चेश्वरम्। भ्रूसंज्ञयैव स तदा मतमाज्ञाय शूलिनः॥
सम्पूज्य प्रेषयामास राहुं नन्दीगणाग्रणीः ॥५२॥
अथ जालन्धरं गत्वाकथयामास विस्तरात्। स्वर्भानुस्तस्यवृत्तान्तंगौरीरूपं मनोहरम्॥५३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे नारदयुधिष्ठिरसंवादे जालन्धरोपाख्याने कैलासाद्राहुप्रत्यागमनं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

बारहवाँ अध्याय

नारद उवाच

अथ जालन्धरो दूतवचः श्रुत्वा प्रतापवान्। सर्वसैन्यं समाहूय प्रयाणमकरोत्तदा॥
ततस्ततः समेतानां सैन्यानां श्रूयते ध्वनिः ॥१॥

सस्त्रीन्मन्दरकन्दरेषु शयितानुत्थापयन्किन्नरा-
न्मेरोर्मन्दरकन्दरे प्रतिरवानुत्थापयन्वारणान्।
सिंहानां च ततीव्यर्मुञ्चत पुरः पन्थानमेवंविध-
स्त्रैलोक्यं बधिरीचकार महतः सैन्यस्य कोलाहलः॥२॥

भगवान् शिव उसको सुनकर कुछ भी उत्तर नहीं दिये ॥४९॥ उसके पश्चात् मौन हुए शिवजी को छोड़कर राहु ने नन्दी से कहा— तुम इनके मन्त्री हो तथा भयङ्कर तुम्हारा मुख है ॥५०॥ इस तरह से भ्रष्ट आचरण वाले इनको तुम बतलाओ। ये यदि इन बातों को नहीं मानेंगे तो इन्द्र के समान रण में मार दिए जायेंगे॥५१॥ इस तरह की राहु की बातों को सुनकर नन्दी ने उन बातों को शङ्करजी से कहा और शङ्करजी के भौहों के इशारे से उनके अभिप्राय को जानकर ॥५२॥ श्रेष्ठगण नन्दी ने राहु की पूजा की और उसको भेज दिया। उसके बाद वह जालन्धर के पास जाकर राहु सारी बातों को तथा गौरी के मनोहर रूप का विस्तार से वर्णन किया ॥५३॥

इस तरह श्रीपद्म महापुराण के छठे उत्तर खण्ड के नारद युधिष्ठिर संवादान्तर्गत जालन्धरोपाख्यान के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥११॥

जालन्धर की युद्ध के लिए यात्रा

नारदजी ने कहा— उसके पश्चात् प्रतापी जालन्धर दूत की वाणी को सुनकर अपनी सारी सेना को बुलाकर युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया। उसके बाद विभिन्न स्थानों से सेना की ध्वनि सुनायी देने

ततो दुन्दुभिनादोऽभूत्पीठे जालन्धरे नृप !। तन्निनादेन शूराणां प्रियेण महता तदा ॥३॥
कम्पन्ते गिरयस्तुङ्गाः प्रासादा विचलन्ति च ।
सप्तसागरगर्भेभ्यो निःसृतादैत्यदानवाः ॥४॥
सन्नद्धाश्चातिगर्जन्ति नानावाहनसंयुताः । हेषारवो महानासीद्वाजिनां बाह्यतःपुरः ॥५॥
रथाङ्गेनाथ सङ्घृष्टा धरा संचलतेऽथवा । चालितैर्गजयूथैश्च पृथ्वी रुद्धा स कानना ॥६॥
जालन्धरेरितैर्भीमैर्युतैः स्यन्दनस्थितैः । अश्वार्बुदसहस्रे द्वे अर्बुदं दन्तिनामपि ॥७॥
रराज सैन्यलक्षैकं रथिनां सपताकिनाम् । परार्द्धनवतिः कोट्यो दृश्यन्तेमुख्यनायकाः ॥
निर्जगाम महासैन्यं छत्रैः संछाद्य भास्करम् ॥८॥
आसीत्पिञ्जरपाण्डुपङ्कजवनं श्वेतातपत्रैःक्वचिन्-
मायूरातपवारणैः क्वचिदभूदुन्नीलनीलोत्पलम् ।
उन्मेघं क्वचिदूर्ध्वधूलिपटलैर्यस्य प्रयाणेऽभवत्-
सद्वीचिक्वचिदम्बरं सर इवोत्सर्पत्पताकापटैः ॥९॥
गजवाजिमयी भूमिर्ध्वजच्छत्रमयं नभः। दिक्चक्रं चामरमयं दैत्यसैन्ये प्रसर्पति॥१०॥
ततो जालन्धरोदैत्यः प्रयाणायसमुत्सुकः । स्कन्धेचारोपयच्छक्तिंनानारत्नविभूषिताम् ॥११॥
आजगाम महाविष्णुं प्रष्टुं सागरवासिनम् । अभिवाद्य जगादाथ हरिं जालन्धरस्त्विदम्॥१२॥

लगी॥१॥ मन्दराचल पर्वत की कन्दराओं में अपनी पत्नियों के साथ सोये हुए किन्नरों को, सुमेरु तथा मन्दराचल की कन्दराओं में प्रतिध्वनित होकर हाथियों को जगाकर सबों के आगे मार्ग पर सिंहो के समूह को जिसने छोड़ दिया था ऐसे उन सेनाओं के कोलाहल ने त्रैलोक्य को बहरा बना दिया ॥२॥ हे राजन्! उसके पश्चात् जालन्धर की राजधानी में दुन्दुभियाँ नाद हुआ । वह नाद शूरवीरों को अत्यन्त प्रिय था ॥३॥ उसके कारण ऊँचे-ऊँचे पर्वत कांप गये और महल हिलने लगे । सातो सागरों के भीतर से दैत्य तथा दानव निकल पड़े ॥४॥ वे युद्ध के लिए तैयार होकर अनेक वाहनों के साथ गर्जना करने लगे । नगर के वाहर घोड़े जोर-जोर से हिनहिनाने लगे ॥५॥ रथ के पहिए से पृथिवी घिर गयी अथवा पृथिवी काँपने लगी । हाँके गये हाथियों से वन तथा पृथिवी दोनों भर गये । जालन्धर के द्वारा प्रेरित तथा रथ पर बैठे हुए वीरों से पृथिवी भर गयी । उस सेना में दो हजार अरब घोड़े थे और एक हजार अरब हाथी थे ॥६-७॥ पताकाओं से युक्त रथियों की एक लाख सेना सुशोभित हो रही थी । उस सेना में नबे परार्द्ध करोड़ मुख्य सेना नायक थे । वह विशाल सेना अपने छत्रों से सूर्य को ढँककर निकल पड़ी ॥८॥ कहीं पर तो श्वेत छत्रों के कारण सेना श्वेत तथा पीत पङ्कज वन के समान लगती थी, कहीं पर वह मयूर पिछ निर्मित छत्रों से नील कमल के समान लगती थी । कहीं पर उड़ी हुयी धूल समूह के कारण सेना के प्रस्थान के समय लगता था जैसे आकाश में मेघ उमड़ रहे हों, और कहीं पर फहराते हुए पताका के वस्त्र से आकाश लहरियों से भरे हुए सरोवर के समान लगता था ॥९॥ दैत्यों की सेना के प्रस्थान करते समय पृथिवी हाथी और घोड़े से भर गयी, आकाश ध्वजों एवं छत्रों से भर गया और दिशाएँ चामर मयी हो गयीं ॥१०॥ उस समय प्रस्थान करने के लिए उत्सुक बना हुआ जालन्धर अपने कन्धे पर अनेक रत्नों से अलंकृत शक्ति को रख लिया ॥११॥ वह सागर में निवास करने वाले भगवान् विष्णु के पास आया ।

भोगार्थं किं प्रयच्छामि तुभ्यं आवुत्त ! कथ्यताम् ।
श्रुत्वा नारायणो वाक्यमब्धिजस्य मुदान्वितः ॥१३॥
उवाच किं करोमीति प्रियं सिन्धुसुतेप्सितम् ।
इत्युक्तः स प्रहृष्टोऽथ हरिं प्रोवाच सत्वरः ॥१४॥
यामि योद्धुं रणेऽहं त्वंसुखी तिष्ठेहसागरे ।
लक्ष्म्यादत्ताक्षतस्तत्रकेशवेनाथ पूजितः ॥१५॥

स निर्गत्य हरेःस्थानात्समुद्रं प्रष्टुमागतः। सोऽर्णवं प्रणिपत्याहतात यास्यामि दूरतः ॥१६॥
नीलकण्ठं रणे जेतुमनुज्ञां दातुमर्हसि। पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा यियासोः शङ्करं प्रति ॥१७॥

सिन्धुराजेन सोऽप्युक्तः पुत्र ! तं तापसं त्यज ।
भुङ्क्ष्व राज्यं मया दत्त तापसं त्यज दूरतः ॥१८॥
अत्यद्भुतः प्रतापस्ते त्वत्तुल्यो नास्ति भूमिपः ।
स्वर्गादधिकतां नीतं त्वया वत्स ! धरातलम् ॥१९॥

तव राज्ये वसुमती वैकुण्ठ इव राजते। यो देवो दुर्जयोदैत्यैरानीतः सह सश्रिया ॥२०॥
ममान्तिके वत्स वस शङ्करं भिक्षुकं त्यज। एवमुक्तो ह्यर्णवेन गिरिजां प्रति रागवान् ॥२१॥
पितृवाक्यमवज्ञाय चागतस्सुभटान्स्वकान्। सज्जीभूतं तु युद्धाय वृन्दा जालन्धरंजगौ ॥२२॥

वृन्दोवाच

नाथ युद्धं न कर्तव्यं राजेन्द्र कुत्सयोगिना। मनो निवर्त्यतां पश्य प्रवृत्तं पार्वतीं प्रति ॥२३॥

उसने श्रीहरि को प्रणाम करके कहा ॥१२॥ हे आवुत (जीजा) ! आपको भोग के लिए मैं क्या प्रदान करूँ? जालन्धर की बात को सुनकर भगवान् नारायण ने प्रसन्नता पूर्वक कहा— हे जालन्धर ! मैं तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य करूँ । इस तरह से कहने पर प्रसन्न होकर जालन्धर ने कहा ॥१३-१४॥ मैं युद्ध में जा रहा हूँ आप सुख पूर्वक यहाँ सागर में ही रहें । उसके पश्चात् लक्ष्मी द्वारा प्रदत्त अक्षत के द्वारा भगवान् विष्णु ने उसकी पूजा की ॥१५॥ वह श्रीहरि के स्थान से निकल कर वह समुद्र से आज्ञा लेने आया । उसने समुद्र को प्रणाम करके कहा पिताजी मैं दूर जा रहा हूँ ॥१६॥ आप मुझे शङ्कर पर विजय प्राप्त करने की आज्ञा प्रदान करें । शङ्करजी से युद्ध करने की इच्छा से जाने वाले पुत्र की वाणी सुनकर ॥१७॥ महार्णव ने कहा पुत्र उस तपस्वी को छोड़ दो । मेरे द्वारा प्रदत्त राज्य का उपभोग करो, उसको बिल्कुल छोड़ दो ॥१८॥ तुम्हारा प्रताप अत्यन्त अद्भुत है तुम्हारे समान कोई राजा नहीं है । वत्स ! तुमने भूलोक को स्वर्ग से भी अधिक बना दिया है ॥१९॥ तुम्हारे राज्य में पृथिवी वैकुण्ठ के समान सुशोभित होती है । जो देवता (भगवान्) विष्णु देवताओं के लिए अजेय हैं उनको तुमने लक्ष्मी के साथ ला दिया ॥२०॥ हे वत्स ! तुम मेरे पास रहो छोड़ो भिक्षुक शङ्कर को समुद्र के द्वारा इस तरह कहे जाने पर गिरिजा में जिसका प्रेम था वह जालन्धर अपने पिता के वाक्य की अवहेलना करके अपने वीरों के पास आ गया । तैयार हुए जालन्धर के पास वृन्दा गयी ॥२१-२२॥ **वृन्दा ने कहा—** हे नाथ ! आप युद्ध न करें । आप उस निन्दितयोगी से अपने मन को हटा लें, वह तो हमेशा पार्वती को ही प्रसन्न करने में लगा रहता है ॥२३॥ आप पार्वती

गौरीं त्वं वाञ्छसि कस्मात्पार्वती किं ममाधिका ।
तपस्विनी निरालम्बा संसक्ता स्थाणवे सदा ॥२४॥

सुतानुरागिणी वन्ध्या ततः कृत्रिमपुत्रिका । वृथा स्तुता नारदेन तां त्यजस्व भजस्व माम्॥२५॥
इति वृन्दावचः श्रुत्वा प्रत्युवाचार्णवात्मजः । अदृष्ट्वा पार्वतीरूपं मच्चेतो न निवर्तते॥२६॥
वृन्दे त्वया जनपदो राजधानी प्रपाल्यताम् । स्मर्तव्योऽहं सदा चण्डि यदि मां हन्ति शङ्करः॥२७॥
इति भर्तृवचः श्रुत्वा वृन्दा हाससमन्विता । जगाम शिविकारूढा पीठं जालन्धरं तदा ॥२८॥
अथ प्रतस्थे कैलासं सिन्धुसूनुर्महाबलः । महापद्मसहस्राणां षष्ट्यासैन्येन संवृतः ॥२९॥
अत्रान्तरे परित्यज्य कैलासं शङ्करो गतः । गणपुत्रप्रियायुक्तः कैलासं मानसोत्तरम् ॥३०॥
जालान्धरस्ततः प्राप्तः कैलासं प्रथमेऽहनि। सेनाःसंस्थाप्य कैलासआलोकनकुतूहली ॥३१॥
दिव्यकेसरमन्दाररजः पुञ्जपरिश्रिताः । शीताम्बुशीकरासारैः प्रभुग्रा वान्ति वायवः ॥३२॥
यत्र सिद्धाङ्गनापीनस्तनोत्तुङ्गतरङ्गिणः । मन्दारमकरन्दाढ्याः सुन्दरा वान्ति वायवः॥३३॥

यत्राशोकरुचिस्निग्धपादन्यासं य योषिताम् ।
विलोक्य दानवेन्द्रोऽभून्मनोरथसमाकुलः ॥३४॥
प्राप्नुवन्ति सुराः प्रीतिंस्वबिम्बालोकहर्षिताः ।
यत्र किन्नरकान्तानां सुरतव्यञ्जितप्रभाः ॥३५॥
विभान्ति सर्वतस्तत्र मन्दाराशोकपल्लवाः ।
यत्र शम्भुगणाक्रान्ता नानावेलाकुलद्रुमाः ॥३६॥

को क्यों चाहते हैं ? पार्वती क्या मुझसे अधिक सुन्दर है ? वह तपस्विनी है, उसका कोई आधार नहीं है वह सदा शिव से लगी रहती है ॥२४॥ उसका अपने पुत्र में प्रेम है । वह वन्ध्या है, इसीलिए उसके पुत्र तो कृत्रिम हैं । नारद ने उसकी व्यर्थ ही प्रशंसा की है आप उसको त्याग कर मुझसे प्रेम करें ॥२५॥ इस तरह से वृन्दा की बातों को सुनकर जालन्धर ने कहा— पार्वती को देखे बिना मेरा मन उससे विरक्त नहीं होता है ॥२६॥ वृन्दे ! तुम मेरे राज्य की रक्षा करना । प्रिये ! यदि शङ्कर मुझे मार देते हैं तो तुम मुझे याद करते रहना ॥२७॥ इस तरह से जालन्धर की वाणी को सुनकर वृन्दा हँसती हुयी शिविका पर चढ़कर जालन्धर के राज्य में चली गयी ॥२८॥ उसके बाद महाबलवान् जालन्धर ने कैलास के लिए प्रस्थान किया । उसके साथ साठ हजार महापद्म सेना थी ॥२९॥ उसी समय शिवजी कैलास को छोड़कर गणों, पुत्रों तथा प्रियतमा के साथ मानसरोवर के उत्तर तट पर कैलास में चले गये ॥३०॥ वहाँ से जालन्धर कैलास पर्वत पर आया और वहाँ पर सेना को टिकाकर वह पहले दिन कैलास देखने गया॥३१॥ वहाँ पर दिव्य केसर तथा मन्दार पुष्प के पराग बिखरे हुए थे । ठण्डे जल के कण से युक्त हवा मन्द-मन्द चल रही थी ॥३२॥ सिद्धाङ्गनाओं के उन्नत तथा स्थूल स्तनों से टकराकर पारिजात पराग से परिपूर्ण तथा मनोज्ञ हवायें चल रही थीं ॥३३॥ जहाँ पर अशोक की कान्ति के समान मनोहर पादन्यास (चरण विक्षेप) को देख कर जालन्धर के मन में अनेक प्रकार की कामनाएँ भर गयीं ॥३४॥ वहाँ पर देवता अपने प्रतिबिम्ब को देखकर हर्षित होते थे । वहाँ पर किन्नरों की रमणियों की सुरत क्रीड़ा से अभिव्यक्त कान्ति वाला मन्दार तथा अशोक के पल्लव सर्वत्र सुशोभित होते थे । वहाँ पर शम्भुगणों से

भान्ति मन्मथभूपाल यशसा सुधृता इव । यत्र चन्दनकस्तूरी गन्धोन्मत्तालिसञ्चयाः ॥
विभान्ति दग्धकन्दर्पनिर्वाणाङ्गारसन्निभाः ॥३७॥
यत्राङ्गनानां सकलं विलोक्य सौरभ्यमत्युत्तमकान्तिमित्रम् ।
मन्ये परिष्वक्तमनोविनोदा कस्तूरिकागाहतिकालिमानम् ॥३८॥
क्वचित्प्रवरगैरिकासमसमुल्लसत्पङ्कजं लवङ्गदलसन्निभासनचलञ्चकोरं क्वचित् ।
क्वचिद्गिरिसरित्तटीतरणिवत्स्फुरत्कुण्डलं चलन्निचुलमञ्जरीविनयनप्रभृङ्गं क्वचित् ॥३९॥
क्वचिद्दलितकोकिलाकुलितनूलचूताङ्कुरं कुरङ्गकुलसेवितं प्रबलशालिमूलं क्वचित् ।
क्वचित्प्रवरसुन्दरैः सुरवधूपदैः पावनं वनं नयति विक्रियामिह मनो मुनीनामपि ॥४०॥
एवं गुणसमायुक्तं विलोक्य हरमन्दिरम् । विचित्रं चापि कैलासं सर्वरत्नसमाश्रयम् ॥४१॥
अत्यन्तविस्मितो दैत्यः प्रोवाच भृगुनन्दनम् । कस्मात्तं तापसं तात ! प्रवदन्ति भवादृशाः ॥४२॥
तादृशी यस्य सा भार्या गृहमीदृङ् मनोहरम् ।
तत्रादृष्ट्वाऽवदच्छम्भुं हरःकुत्र गतः कवे ॥४३॥
कथं मम भयाच्चेति पृष्टः प्रोवाच भार्गवः ।
देव शम्भुर्महाशैलमगम्यं मानसोत्तरम् ॥४४॥
ययौ तत्र महादेवो गन्तुं चान्यैर्नशक्यते । इति काव्यवचः श्रुत्वा प्राह दैत्यो महाबलः ॥४५॥
अहं यास्यामि देवेशं त्वं पुरा गच्छ भार्गव ! ।
इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र यत्रास्ते शङ्करः स्वयम् ॥४६॥

युक्त तटों के अनेक वृक्ष यशस्वी मन्मथ राज के सदृश सुशोभित होते थे । वहाँ पर चन्दन तथा कस्तूरी के गन्ध से उन्मत्त बने हुए भौंरे जले हुए कामदेव के बुझे हुए अङ्गार के सदृश काले-काले सुशोभित होते थे ॥३५-३७॥ वहाँ पर रमणियों की उत्तम कान्ति के मित्र सम्पूर्ण सुगन्धि को देखकर लगता है कि आलिङ्गन रूपी मनोविनोद वाली कस्तूरी कालिमा का आलिङ्गन करती है ॥३८॥ कहीं पर श्रेष्ठ गैरिक के समान कमल सुशोभित हो रहे थे । कहीं पर लवङ्ग पत्र के समान चञ्चल चकोर पक्षी सुशोभित हो रहे थे। कहीं पर पर्वतीय नदी का तट सूर्य के कुण्डल के समान सुशोभित होता था और कहीं पर चञ्चल नियुल मञ्जरी पर भौंरे बैठे थे ॥३९॥ कहीं पर कोकिलाएँ आम्र मञ्जरी को कुतर रही थीं और कहीं पर मृग समूह धान के मूल में बैठे हुए थे । कहीं पर अत्यन्त सुन्दर देव रमणियों के चरणों से पवित्र बना हुआ वन मुनियों के भी मन में विकार पैदा कर रहा था ॥४०॥ इस तरह के सुन्दर शिवजी के भवन को देखकर तथा सभी रत्नों से परिपूर्ण कैलास को देखकर ॥४१॥ अत्यन्त आश्चर्यित होकर जालन्धर ने शुक्राचार्य से कहा— हे तात ! आपलोग भी उसको (शाङ्कर को) तपस्वी कहते हैं ?॥४२॥ उसकी वह पत्नी उतनी सुन्दर है और उसका गृह इतना मनोहर है । वहाँ पर शिवजी को नहीं देखकर जालन्धर ने पूछा कि हे शुक्राचार्य ! शङ्कर कहाँ चले गये ?॥४३॥ वह मेरे भय से चले गये क्या ? इस तरह से पूछने पर शुक्राचार्य ने कहा— महाराज शम्भु मानसोत्तर पर्वत पर चले गये हैं, वह पर्वत अगम्य है ॥४४॥ वहाँ पर दूसरा कोई नहीं जा सकता है । शुक्राचार्य की इस वाणी को सुनकर महाबलवान् जालन्धर ने कहा॥४५॥

अपश्यत्तं गिरिवरं सिन्धुजो मानसोत्तरम् । तस्य षष्टिसहस्राणि योजनानां समुच्छ्रयः ॥४७॥
स शैलो मानसो राजन्दैत्यसैन्यैः समावृतः। बहवो दैत्यराजानः शैलमारुरुहुर्द्रुतम्॥४८॥
छत्रान्धकारं पर्यासीद्वाद्यनादेन वेपथुः। सैन्यकोलाहलस्तेषां पूरयामास रोदसी॥४९॥
अथैवमागतं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं महत्तदा। अत्युच्चेसगिरेःशृङ्गेस्थाप्यगौरींसखीवृताम् ॥५०॥
भगवांश्चगणैः सर्वैः सन्नद्धैर्युद्धदुर्मदैः । त्रिंशन्महाब्जसाहस्रैः प्रमथानां वृतः शिवः ॥५१॥
उवाच नन्दिनं शम्भुर्गणानामधिपं त्वया। प्रहर्तव्यो महादेत्यो वीरो जालन्धरो रणे॥५२॥
महाकालादिभिः शूरैर्याहि त्वं परिवारितः। तावदाजौ त्वया तस्माद्योद्धव्यमतिपौरुषात्॥५३॥
यावद्युद्धेनारिजयो मम वीर भविष्यति। इति शम्भोर्वचः श्रुत्वास च सारथिमब्रवीत्॥५४॥
काकतुण्डरथं मेऽद्य समानय महामते। नन्दिनो वचनं श्रुत्वा सोऽपि स्यन्दनमाहरत्॥५५॥
द्वात्रिंशदश्वसंयुक्तं चक्रषोडशसंयुतम् । षष्टिध्वजसमोपेतं द्वात्रिंशद्योजनायुताम्॥५६॥

सर्वशस्त्रैश्च सम्पूर्णं प्राप्तं साङ्ग्रामिकं रथम् ।
नन्दिनश्चक्ररक्षार्थं पुत्रौ स्कन्दविनायकौ ॥५७॥
समादिष्टौ शङ्करेण सन्नद्धौ तौ स्ववाहनौ ।
गणैः परिवृतो नन्दी वाग्भिः सम्पूज्य चेश्वरम् ॥५८॥

नन्दी रथं समारुह्य निर्ययौ दानवान्प्रति। विराजते तस्य मूर्ध्नि छत्रं द्वादशयोजनम्॥५९॥

हे भार्गव ! आप आगे चलें मैं शङ्कर के पास जाऊँगा । इस तरह से कहकर वह जहाँ शङ्करजी विद्यमान थे; वहाँ चला गया ॥४६॥ जालन्धर ने उस श्रेष्ठ पर्वत को देखा । वह पर्वत साठ हजार योजन ऊँचा था ॥४७॥ हे राजन् ! उस मानसोत्तर पर्वत को दैत्यों ने चारो ओर से घेर लिया । बहुत से दैत्यराज उस पर्वत पर शीघ्रता से चढ़ गये ॥४८॥ चारो ओर छत्रों का अन्धकार हो गया और वाद्य की ध्वनि से कम्प हो रहा था । उन सबों की सेना के कोलाहल से पृथिवी और आकाश भर गये ॥४९॥ इस तरह से आयी हुयी विशाल सेना को देखकर शङ्करजी सखियों के साथ पार्वतीजी को अत्यन्त ऊँचे शिखर पर रखकर॥५०॥ भगवान् शिव युद्ध करने में दुर्मद तथा कवच धारण किए हुए तीस हजार महापद्म प्रभव समूह के साथ शङ्करजी स्थित रहे ॥५१॥ शङ्करजी ने गणों के स्वामी नन्दी से कहा— तुमको युद्ध में महान् वीर दैत्य जालन्धर को मारना है ॥५२॥ तुम महाकाल आदि वीरों के साथ जाओ । तुमको युद्ध में तब तक युद्ध करना है जब तक कि मैं युद्ध के द्वारा शत्रु को परास्त नही कर लेता हूँ । इस तरह से शङ्करजी की वाणी को सुनकर नन्दी ने काकतुण्ड नामक सारथि से कहा— हे महामते ! मेरे रथ को तुम ले आओ । नन्दी के वचन को सुनकर वह भी रथ को ला दिया ॥५३-५५॥ उस रथ में बत्तीस घोड़े जुते थे तथा उस रथ के सोलह चक्के थे । उसकी साठ पताकाएँ थीं और वह रथ बत्तीस योजन विस्तृत था ॥५६॥ उसमें संग्रामोपयोगी समस्त शस्त्र विद्यमान थे । नन्दी के चक्र की रक्षा करने के लिए शिवजी ने अपने दोनों पुत्रों गणेश तथा स्कन्द को नियुक्त किया था ॥५७॥ वे भी अपने वाहन पर चढ़कर कवच धारण किए थे । गणों से घिरे हुए नन्दी ने शङ्करजी की स्तुति की ॥५८॥ नन्दी रथ पर बैठकर दानवों के साथ युद्ध करने के लिए निकल पड़े । उनके शिर पर बारह योजन विस्तृत छत्र सुशोभित होता था ॥५९॥

यावत्संनिर्ययौ नन्दी तावत्ते दानवाः पुरः। शैलोपरिसमारूढा दानवा घोरदर्शनाः ॥६०॥
गणानामायुधैस्तीक्ष्णैर्निहताः पतिताभुवि। हन्यमानागणैर्दैत्यास्तत्यजुर्दूरतोगिरिम् ॥६१॥
ततो भूमिगतांस्तस्मादवरुह्य शिलोच्चयात् ।
जघ्नुर्दैत्याञ्छितैः शस्त्रैर्गणा राजन्महाबलान् ॥६२॥
अमरैराचितं दृष्ट्वा रुरुधुर्दैत्यसैनिकाः। ततः समभवद्युद्धं गणानां दानवैः सह ॥६३॥
शरवर्षमथात्युग्रं दानवानां दिवौकसाम्। ततः समस्तान्मातङ्गाञ्जघ्नुः शिलिमुखारणे ॥६४॥
रथान्हयान्पदातींश्च काकतुण्डा महाबलाः। हतानां दैत्यसङ्घानां सङ्गरे भृशमायिनाम् ॥६५॥
शिरोभिर्गगनं व्याप्तं प्रहसद्भिर्भयावहैः। मुक्तकेशारुणमुखैर्भीमदंष्ट्रवाविलोचनैः ॥६६॥
सिंहैः कबन्धजङ्घोरुकटिपृष्ठनिकृन्तनैः। चिता सर्वत्र वसुधा कबन्धैरुधिरारुणैः ॥६७॥
तते विरावः सुमहान् बभूव दैत्येश्वराणां ध्वजिनीषु धावताम् ।
शम्भोर्गणैः पातितसैनिकानां यथार्णवानां नदतां युगक्षये ॥६८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरेखण्डे नारदयुधिष्ठिरसंवादे जालान्धरोपाख्याने दैत्यसैन्यपराजयो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

ज्योंहि नन्दी निकले उसी समय उनके सामने भयङ्कर दानव पर्वत पर चढ़ गये ॥६०॥ गणों के तीक्ष्ण आयुध से मारे गये वे पृथिवी पर गिर पड़े। गणों के द्वारा मारे जाते हुए दैत्य दूर से पर्वत को छोड़कर भाग चले ॥६१॥ उसके बाद पृथिवी पर गिरे हुए उन महाबलवान् दानवों को पर्वत से उतर कर गणों ने तीक्ष्ण शस्त्रों से मारा ॥६२॥ देवताओं से भरी हुयी पृथिवी को देखकर दैत्य सैनिकों ने उन सबों को रोक लिया। उसके पश्चात् शिवगणों का दानवों के साथ युद्ध हुआ ॥६३॥ उसके बाद देवताओं तथा दानवों के बीच अत्यन्त बाणों की वर्षा हुयी। उसके पश्चात् महाबलवान् मयूर मुख वालों ने तथा काकतुण्डों ने सभी हाथियों, रथियों, घोड़ों तथा पैदलों को मार दिया। अत्यधिक माया करने वाले तथा युद्ध में मारे गये दैत्यों के भयभीत करने वाले और हँसने वाले शिरों से आकाश व्याप्त हो गया। उन सबों के केश खुले हुए थे। मुख लाल थे और दाँत तथा नेत्र भयङ्कर थे ॥६४-६६॥ उनके शरीर जङ्घा, कमर तथा पीठ को सिंह नोच रहे थे, खून से लाल बने हुए कबन्धों (शवों) से पृथिवी भर गयी ॥६७॥ उसके पश्चात् दैत्येश्वरों की दौड़ती हुयी सेना में जोर-जोर से कोलाहल होने लगा। जिस सैनिकों को शम्भु के गणों ने मार कर गिरा दिया था वे सैनिक प्रलय काल में गरजने वाले समुद्रों के समान कोलाहल मचा रहे थे ॥६८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के अन्तर्गत नारद युधिष्ठिर संवाद का दैत्य सेना के पराजय वर्णन नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

तेरहवाँ अध्याय

नारद उवाच

दैत्यसैन्यं हतं दृष्ट्वागणैर्नन्दिपुरोगमैः । क्रुद्धाः शुम्भादयो दैत्याः समाजग्मुर्गणान्प्रति ॥१॥
ततः शुम्भो महादैत्यो नन्दिनं प्रत्ययुध्यत। महाकालं निशुम्भोऽथ कालो लोकेश्वरं रणे ॥२॥
पुष्पदन्तं शैलरोमा माल्यवन्तं महाबलः। कोलाहलो रणे राजन्प्राप्तो मायाबलेन च ॥३॥
चण्डं भयानको नाम राहुः स्कन्दमधावत। कूष्माण्डं सर्परोमा च घर्घरो मदनं तथा ॥४॥
शुभ्रं केतुमुखो हन्तुं ययौ जम्भो विनायकम् ।
हासंपातालकेतुश्च भृङ्गीशं रोमकण्टकः ॥५॥
युयुधुः कोटिशो रुद्रगणा दैत्याः परस्परम् ।
पश्यतोरुभयोस्तत्र स्वामिनोरिति ते युधि ॥६॥
दृढप्रहारिणो जघ्नुर्गणादैत्याः शरैरथ। नन्दी मुमोच तान्बाणान्महासारो यथा नगे ॥७॥
ततः सम्पूरयामास मुखं शुम्भस्य पत्रिभिः। यथा पर्णचयैर्वातो मन्दरस्येव कन्दरम्॥८॥
शुम्भोऽथ कार्मुकं त्यक्त्वा रथात्तं प्रत्यधावत ।
उत्पाट्य च गिरिं तेन जघान हृदि नन्दिनः ॥९॥
नन्दिनो हृदयं भित्त्वा चूर्णयित्वा रथं रणे। पपात भूमौ सगिरिर्वज्रं प्राप्य गिरिंयथा ॥१०॥
मूर्च्छां प्राप्य क्षणात्संज्ञां वेगवान्स पलायितः ।
महाकालो निशुम्भेन मुद्गरेण हतो हृदि ॥११॥

शुम्भ आदि का नन्दी आदि से युद्ध

नारदजी ने कहा— नन्दी आदि गणों के द्वारा दैत्य सेना को मारी गयी देखकर शुम्भ आदि दैत्य उन गणों से युद्ध करने के लिए गये ॥१॥ उसके बाद शुम्भ नामक महादैत्य नन्दी के साथ युद्ध करने लगा । निशुम्भ महाकाल के साथ तथा काल लोकेश्वर के साथ युद्ध करने लगा ॥२॥ शैलरोमा पुष्पदन्त के साथ तथा हे राजन् ! महावलवान् कोलाहल माया पूर्वक माल्यवान् के साथ युद्ध करने लगा ॥३॥ भयानक नामक दैत्य चण्ड से तथा राहु स्कन्द से युद्ध करने के लिए दौड़ा । सर्परोमा कूष्माण्ड के साथ घर्घर नामक दैत्य मदन के साथ, केतु मुख शुभ्र को तथा जम्भ विनायक को मारने के लिए गया । पाताल केतु हास के साथ तथा रोमकण्टक भृङ्गीश से युद्ध करने गया । इस तरह से करोड़ों रुद्रगण तथा दैत्य युद्ध करने लगे । दोनों सेनाओं के स्वामी उस युद्ध को देख रहे थे ॥४-६॥ उसके पश्चात् जोरदार प्रहार करने वाले शिवगण और दैत्य एक दूसरे को मार रहे थे । नन्दी उन सबों पर ऐसे वाणों का प्रहार कर रहे थे जैसे पर्वत के ऊपर महावृष्टि हो रही हो । उन्होंने बाणों से शुम्भ के मुख को उसी तरह से भर दिया जिस तरह वायु मन्दराचल की गुफा को पत्तो से भर देती है ॥७-८॥ उसके वाद शुम्भ धनुष को त्याग करके नन्दी की ओर दौड़ा उसने पर्वत को उखाड़कर उससे नन्दी के हृदय पर प्रहार किया ॥९॥ नन्दी के हृदय का भेदन करके तथा रण में उनके रथ को चूर-चूर करके वह पर्वत पृथिवी पर उसी तरह से गिर पड़ा जिस तरह वज्र से टकराकर पर्वत गिर पड़ा हो ॥१०-११॥ वह क्षणभर के लिए मूर्छित

आगत्य दैत्यं गदया जघान मुकुटोपरि । तत्प्रहारमचिन्त्याथ निशुम्भोऽपि महाबलः ॥१२॥
तं गृहीत्वा चरणयोर्महाकालं महाबलः । भ्रामयित्वा करतलाच्चिक्षेप च ननाद च ॥१३॥
स तद्वक्त्रानिलं पीत्वा ननाद रुधिरारुणः । पुष्पदन्तः शैलरोम्णा चाहतो मुष्टिनामुखे ॥१४॥
गदया शैलरोमाणं हत्वा भूमौ न्यपातयत् । तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ गिरिकेतुर्महाबलः ॥१५॥
पुष्पदन्तं महाभीमं मुद्गरेण व्यपोथयत् । पुष्पदन्तोऽथखड्गेन गिरिकेतोः शिरोऽच्छिनत् ॥१६॥

गृहीत्वा चर्मखड्गं च गिरिकेतोरधावत ।
शिरस्तं प्राह किं यासि मां त्यक्त्वा समरार्थिनम् ॥१७॥
शिरोहीने च कायेऽस्मिन्किं तु धावन्न लज्जसे ।
इत्युक्ते शिरसा तेन कबन्धेन तु पादयोः ॥१८॥
विधृतः पुष्पदनतश्च कुक्षौ तीक्ष्णासिनाऽच्छिनत् ।
निश्चकामासुरः कुक्षेः शतशीर्षो महाबलः ॥१९॥

द्विशताक्षिसमायुक्तःशतद्वयभुजाकुलः । भ्रमत्तस्य शिरोराजन्कबन्धोपान्तमागमत् ॥२०॥

तच्छिरः प्राप्तमालोक्य पुष्पदन्तोऽसिनाऽच्छिनत् ।
ततो भूकम्पनो नाम ज्वरो दैत्यो भयावहः ॥२१॥

पुष्पदन्तस्तदा तत्र द्वाभ्यां राजन्विमर्दितः । ज्वरेण तेन च क्लिष्टो दुःसहेनातिवेगिना ॥२२॥

त्यत्तवा शिवगणः सङ्ख्यं कम्पमानो गिरिं ययौ ।
कोलाहलो महाधन्वी माल्यवन्तं शरैस्त्रिभिः ॥२३॥

होकर होश में आया और वेग पूर्वक वहाँ से भाग चला । महाकाल निशुम्भ नामक दैत्य के पास आकर उसके हृदय पर मुद्गर से प्रहार किए और उसके मुकुट पर भी प्रहार किए । महाबलवान् निशुम्भ भी उस प्रहार की परवाह किए बिना महाकाल के चरणों को हाथ से पकड़कर फेंक कर गर्जना किया ॥१२-१३॥ उसने महाकाल के मुख की वायु को पीकर खून से लाल बना हुआ गर्जना किया । शैलरोमा ने पुष्पदन्त के मुख पर मुक्के से मारा तो पुष्पदन्त ने उसको गदा से मारकर गिरा दिया । उसको गिरे हुए देखकर महाबलवान् गिरिकेतु ने भयङ्कर पुष्पदन्त को मुद्गर से मारकर गिरा दिया । उसके पश्चात् पुष्पदन्त ने खड्ग से गिरिकेतु के शिर को काट दिया ॥१४-१६॥ गिरिकेतु के चर्म तथा खड्ग को लेकर उसका शिर दौड़ा और कहा मैं युद्ध करना चाहता हूँ । मुझको छोड़कर कहाँ जा रहे हो ॥१७॥ शिर विहीन शरीर पर आक्रमण करते हुए तुमको लज्जा भी नहीं आ रही है क्या ? । इस तरह से शिर के कहने पर कबन्ध ने पुष्पदन्त के पैर को पकड़ लिया और तीक्ष्ण तलवार से उसके पेट को काट दिया । उस समय उस असुर के पेट से महाबलवान् सौ शिरों वाला असुर निकला ॥१८-१९॥ उसकी दो सौ आँखें थी और दो सौ भुजाएँ थीं । हे राजन् ! घूमता हुआ उसका शिर कबन्ध के सन्निकट आया ॥२०॥ उस आये हुए शिर को देखकर पुष्पदन्त ने उसको तलवार से काट दिया । उसके बाद भूकम्पन तथा ज्वर नामक दो भयङ्कर दैत्यों ने पुष्पदन्त को बहुत दुःखी बनाया । ज्वर तथा अत्यन्त योगवान् भूकम्पन के द्वारा ॥२१-२२॥ पीड़ित होने से शिव का गण युद्ध छोड़कर काँपता हुआ पर्वत पर चला गया । कोलाहल नामक महाधनुर्धारी ने माल्यवान् को तीन बाणों से दोनों कन्धों और ललाट में मारा । उसके बाद माल्यवान् ने उस असुर पर प्रहार किया ।

विव्याध स्कन्धयोर्भाले माल्यवांश्च ततोऽसुरम् ।
बाणाहतो माल्यवता शस्त्रैर्नानाविधैः शितैः ॥२४॥
कोलाहलः प्रहृतवान्दर्शयन्नात्मलाघवम् ।
सोऽपि हेतिव्यथां त्यक्त्वा माल्यवांश्च गणाग्रणीः ॥२५॥
गिरिं गृहीत्वा तेनाजौ कोलाहलमथाहनत् ।
निश्चक्राम ज्वरस्तस्माज्ज्वलनो नाम भीषणः ॥२६॥
त्रिशीर्षो नवहस्तश्च नवपादोऽतिपिङ्गलः। स ज्वरो मोहयामासमाल्यवन्तं स्वतेजसा॥२७॥
माल्यवान्समरं त्यक्त्वा पराक्रान्तो गिरिं ययौ ।
चण्डिर्भयानकेनाजौ पाशेन हृदये हतः ॥२८॥
हयो विनिर्गतस्तस्मात्क्षिप्तः सोऽपि च सागरे ।
कार्त्तिकेयो रणे राहुं शितैर्बाणैः समाहनत् ॥२९॥
आच्छाद्य शरजालैश्च शीघ्रं शक्तिं मुमोच ह ।
आपतन्तीं महाशक्तिं ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥३०॥
दृष्ट्वा राहुः खमुत्पत्य कराभ्यां जगृहे द्रुतम् ।
स तां शक्तिं गृहीत्वा तु विनद्योच्चैः पुनः पुनः ॥३१॥
स्वर्भानुः शिरसोनोऽपि तस्य शक्तया जघान तम् ।
वक्षस्यभिहते शक्तया तद्देहान्निर्गता सरित् ॥३२॥
तया सम्प्लावितः पुत्रो महादेवस्य संयुगे ।
कथञ्चित्सा नदी रुद्धा समं पूरो गिरिं ययौ ॥३३॥
श्रुत्वाऽर्णवजो ज्वरतः कटककदम्बस्य कर्कशं विरुतम् ।
सुस्वरवचनविदग्धमपि कोकिलापतिं न सस्मार ॥३४॥

माल्यवान् के द्वारा अनेक तीक्ष्ण शस्त्रों से मारा जाकर ॥२३-२४॥ कोलाहल ने भी अत्यन शीघ्रता से प्रहार किया गणों में अग्रणी माल्यवान् भी शस्त्रों की व्यथा को त्यागकर पर्वत को लेकर उससे कोलाहल को मारा। उससे ज्वलन नामक भयङ्कर ज्वर प्रकट हुआ ॥२५-२६॥ उसके तीन शिर और नव पैर तथा नव हाथ थे। वह अत्यन्त पीला था। उस ज्वर ने अपने तेज से माल्यवान् को मूर्छित कर दिया ॥२७॥ उसके द्वारा आक्रान्त होकर माल्यवान् पर्वत पर चले गये। युद्ध में भयानक पाश से हृदय पर मारे जाने पर चण्ड पुत्र के हृदय से घोड़ा निकला और वह समुद्र में फेंक दिया गया। कार्तिकेय ने रण में तीक्ष्ण बाणों से राहु को मारा ॥२८-२९॥ उन्होंने राहु को बाण समूह से ढँक दिया और उन्होंने उस पर शीघ्रता से शक्ति से प्रहार किया। तेज से जलती हुयी शक्ति को देखकर राहु ने आकाश में उछल कर उसको अपने दोनों हाथों से पकड़ लिया। उस शक्ति को पकड़ कर वार-बार उसने जोर से गर्जना किया ॥३०-३१॥ शिर से रहित भी राहु उनकी (कार्तिकेयकी) ही शक्ति से कार्तिकेय को मारा। वक्षस्थल में शक्ति से मारे जाने पर कार्तिकेय के शरीर से नदी प्रवाहित होने लगी ॥३२॥ उस नदी ने कार्तिकेय को डुबो दी। किसी

शरैः किरन्तं दहनमसिना बर्बरोऽवधीत् ।
कूष्माण्डो निहतो मूर्ध्नि सर्परोम्णाऽथ मुष्टिना ॥३५॥
पातालकेतुनाहासोमुद्गरेण समाहतः । तस्य देहाद्विनिष्क्रम्य हस्ती मुद्गरमाभुनक् ॥३६॥
शुण्डायां मुष्टिघातेन हतः पातालकेतुना। आयुधैर्जर्जरं चक्रे भृङ्गीशं रोमकण्टकः ॥३७॥
भृङ्गीशोऽपि रणाद्भीतस्त्वरन्नेव गिरिं ययौ। सहसाधूम्रवर्णश्च शुभ्रः केतुमुखेऽपतत् ॥३८॥
गणं गिलितवान्दैत्यो महाकायो महाननः। हाहाकारो महानासीद् गिलिते केतुनारणे॥३९॥
जृम्भस्य निशितैर्बाणैश्छिन्नाङ्गोऽथ विनायकः ।
शुण्डादण्डं परशुना तस्य चिच्छेद दन्तिनः ॥४०॥
जृम्भासुरो जघानाथ शत्तया लम्बोदरोदरम्। मूषकोऽपि शरैर्भिन्नः प्रविवेश गुहामुखम् ॥४१॥
विनायकः प्रहारार्त्तो विललापाकुलो रणे। हामातस्तातहाभ्रातर्हामूषक ममप्रिय ॥४२॥
गणेशक्रन्दितं श्रुत्वा भगवत्या तयातदा। समेत्य कूटादन्यस्मात्पार्वत्योक्तः शिवस्तदा॥४३॥
हेरम्बो वध्यते दैत्यैः स्कन्दोऽपि विनिपातितः ।
शिव ! किं क्रीडसे शैले रक्षपुत्रौ गणानपि ॥४४॥
सदा शूलादिशस्त्राणां धृतानामद्य वै क्षणः ।
अथ गौर्यावचः श्रुत्वा वीरभद्रं शिवोऽब्रवीत् ॥४५॥
वृषः सज्जीयतां शीघ्रमित्युक्तस्स तदाऽकरोत् ।
बबन्धमुकटं तस्यशृङ्गयोर्भास्करप्रभम् ॥४६॥

तरह वह नदी रुकी तो उस प्रवाह के साथ वे पर्वत पर चले गये ॥३३। सेना समूह के चिल्लाहट को सुनकर जालन्धर, सुन्दर स्वर के निपुण विज्ञाता होने पर भी वह कोयलों की ध्वनि से भी उसे अच्छा माना ॥३४॥ बाणों की वर्षा करने वाले अग्निदेव का बर्बर ने कृपाण से वध कर दिया । सर्परोमा नामक दैत्य ने कूष्माण्ड के शिर पर मुक्के से प्रहार किया ॥३५॥ पाताल केतु नामक दैत्य ने हास को मुद्गर से मारा । उसके शरीर से निकलकर हाथी ने उस मुद्गर को खा लिया ॥३६॥ उसके बाद पाताल केतु ने हाथी के सूंढ पर मुक्के से प्रहार किया । रोमकण्टक नामक दैत्य ने आयुधों के प्रहार से भृंगीश को जर्जर बना दिया ॥३७-३८॥ भृङ्गीश भी डर कर युद्ध से भागकर पर्वत पर चले गये । धूम्रकेतु अचानक केतु के मुख में गिर पड़े । उस गण को बहुत बड़े मुख वाले महाकाय ने निगल लिया । केतु के द्वारा उस गण के निगल लिए जाने पर महान् हाहाकार होने लगा ॥३९। जृंभ ने अपने तीक्ष्ण बाणों से विनायक के अङ्गों को काट डाला । उसने उसके सूंढ को फरसे से काट दिया ॥४०॥ उसके बाद जृंभ ने शक्ति से गणेशजी के उदर में प्रहार किया । बाणों से विदीर्ण होकर चहू भी पर्वत की कन्दरा में प्रवेश कर गया ॥४१॥ प्रहार के कारण आर्त बने हुए गणेशजी युद्ध में चिल्लाने लगे । वे कह रह थे— हाय माँ, हाय पिता, हाय भ्रातः हाय मेरे प्रिय मूषक ॥४२॥ गणेशजी का चिल्लाना सुनकर पार्वतीजी दूसरे कूट से आकर शङ्करजी से कहीं ॥४३॥ दैत्य गणेश को मार रहे हैं और स्कन्द भी गिर पड़े है हे शिव ! आप पर्वत पर क्रीड़ा क्यों कर रहे हैं ? आप अपने दोनों पुत्रों और गणों की रक्षा करें ॥४४॥ आप सदाशूल आदि शस्त्रों को धारण करते हैं, आज उन सबों के प्रयोग की बेला है । उसके बाद पार्वतीजी की बातों

कण्ठे घण्टाशतं बद्ध्वा कर्णयोर्दर्पणो धृतौ ।
स्कन्धे च किङ्किणीजालं चरणे नूपुरंमहत् ॥४७॥
पुच्छे चामरसाहस्रं तस्य पाशाष्टकं मुखे । कल्याणी च तदा देवी शर्वपार्श्वे व्यवस्थिता ॥४८॥
पाशाष्टकेन संयुक्ता तत्र खड्गधराऽम्बिका । न्यस्तानि सर्वशस्त्राणि सवृषःसज्जितोबभौ ॥४९॥
पार्वत्या भूषितः सोऽथ निजया घण्टमालया ।
कृतं च तिलकं देव्या प्रोक्तः सत्कृतिपूर्वकम् ॥५०॥
हरस्त्वया न मोक्तव्यो वृषेन्द्ररणसङ्कटे । आगन्तव्यमरीञ्जित्वा शम्भुना सह सङ्गरे ॥५१॥
इति श्रुत्वा वचो देव्या हरो वृषमथारुहत् । धृत्वाऽऽयुधसहस्रं तु निजालङ्कारभूषितः ॥५२॥
रणं गच्छामि तां प्राह पार्वतीं प्रतिसादरम् । त्वं तिष्ठसिस्वरूपेणएकाकिन्यपिसस्पृहा ॥५३॥
भामिनी दुरभिप्राया दानवा हि समागताः । तस्मात्त्वयात्मनैवात्मा रक्षणीयोवरानने ॥५४॥
इत्युक्तवा वृषभारूढो ययौ रुद्रो रणाङ्गणम् ।
त्रिंशन्महाब्जसाहस्रैः प्रमथानां वृतः शिवः ॥५५॥
वीरभद्रो रथेनाशु सिंहयुक्तेन सत्वरः । वामपार्श्वे महेशस्य शूरो रक्षति पार्थिव ! ॥५६॥
मणिभद्रोऽश्वयुक्तेन रथेन परवीरहा । दक्षिणं धूर्जटेःपार्श्वे संरक्षति धनुर्द्धरः ॥५७॥
तुङ्गादुत्तीर्य शैलेन्द्राद्रणं प्राप्तो गणैः सह । दृष्ट्वा जगर्जुस्ते दैत्या महेशानं वृषस्थितम् ॥५८॥
ततो महान्निनादोऽभूदैत्यप्रमथसेनयोः । तयोरभून्मिथो राजन्सप्रमर्दोऽथ दारुणः ॥५९॥

को सुनकर वीरभद्र से शिवजी ने कहा ॥४५॥ मेरे वृष को तैयार करो, इस तरह से कहने पर उसने बैल को तैयार कर दिया । उसके दोनों सींगों में सूर्य के समान कान्ति वाले मुकुट को बाँधा ॥४६॥ उसके गले में सैकड़ों घण्टा बांधे गये दोनों कानों में दर्पण लगाये गये । कन्धे पर घुघुरु समूह को बाँधा गया तथा उसके चरण में नूपुर बाँधा गया । उसके पुच्छ में हजारों चामर बाँधे गये और मुख में आठ पाश बाँधे गये । उस समय कल्याणी देवी शिवजी के बगल में बैठीं ॥४७-४८॥ खड्गधारिणी अम्बिका भी आठ पाशों वाली हो गयी बैल पर सभी शस्त्र रख दिए गये और बैल सजकर तैयार हो गया ॥४९॥ पार्वतीजी ने उसके गले में अपने गले की घंटा बॉध दी । पार्वतीजी ने तिलक लगाकर आदर पूर्वक कहा ॥५०॥ हे वृषेन्द्र ! युद्ध में तुम कभी शङ्कर को मत छोड़ना । युद्ध में शत्रुओं को जीतकर शीघ्र इनके साथ ही आना ॥५१॥ पार्वतीजी की इस वाणी को सुनकर शङ्करजी वृषभ पर चढ़ गये । हजारों आयुधों को धारण करके तथा अपने अलङ्कारों से अलंकृत होकर उन्होंने पार्वती से आदर पूर्वक कहा— मैं युद्ध करने जा रहा हूँ ॥५२॥ **ईश्वर ने कहा**— तुम यहाँ पर अकेली, स्पृहा से युक्त तथा स्वरूपतः विद्यमान हो ॥५३॥ हे प्रिये ! दुष्ट विचार वाले दानव आये हुए हैं, अतएव हे सुन्दरि ! तुमको अपने से ही अपनी रक्षा करनी चाहिए ॥५४॥ इस तरह कहकर शिव वृषभ पर सवार होकर युद्ध में चले गये । उनके साथ तीस हजार महापद्म गण थे ॥५५॥ हे राजन् ! वीरभद्र सिंह से युक्त रथ के द्वारा शिवजी के बायें भाग में रक्षक के रूप में स्थित हो गये ॥५६॥ धनुर्धारी मणिभद्र अश्व वाले रथ पर सवार होकर शङ्करजी के दाहिने भाग में रक्षक हो गये ॥५७॥ वे ऊँचे पर्वत से गणों के साथ उतरकर युद्ध में आ गये । वृषभ पर सवार महेश को देखकर दैत्य गर्जना करने लगे ॥५८॥ उसके पश्चात् दैत्यों तथा प्रमथों की सेना में जोर से शब्द हुआ।

ततो नन्दी महाकालः कालस्कंदौ महाबलः ।
माल्यवान्पुष्पदन्तश्च वृषली स्वर्णदन्तिकः ॥६०॥
चण्डीशो मदनश्चण्डः कूष्माण्डो गुप्तलोमकः ।
ये ये पूर्वं रणे भग्नाः प्राप्तास्ते रणसङ्कटम् ॥६१॥
शिवस्य पुरतो दैत्या युयुधुस्ते महाबलाः। गणदानवयोद्धानां सङ्ग्रामोऽभूद्भयावहः॥६२॥
ततो गणानां विद्राव्य सैन्यं ते च महाबलाः ।
रणे संवेष्टयामासुः शरौघैः सर्वतःशिवम् ॥६३॥
शूलैः कुन्तैर्गदाभिश्च मुद्गरैः परिघैरपि। इन्द्रियाणि यथात्मानं विषयैः पञ्च पञ्चभिः ॥६४॥
जघानाथ रणे दैत्याञ्छम्भुर्बाणैः सुदारुणैः ।
यथाशुमाघः पापानि हन्ति स्नानेन तत्क्षणात् ॥६५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिरनारदसंवादे जालन्धरोपाख्याने श्रीमहादेवरणसमागमनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥
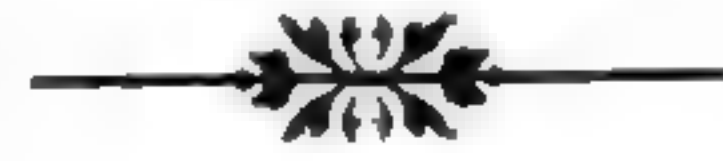
चौदहवाँ अध्याय

नारद उवाच

ततो जालन्धरः श्रुत्वा दैत्यकोलाहलं रणे। आजगाम रथारूढो यत्र देवः सदाशिवः ॥१॥

हे राजन् ! उसके पश्चात् दोनों सेनाओं में घोर संग्राम हुआ ॥५९॥ उसके पश्चात् नन्दी, महाकाल, काल स्कन्द, महाबलवान् माल्यवान्, पुष्पदन्त वृषली स्वर्णदंतिक, चण्डीश, मदन, चण्ड, कूष्माण्ड तथा गुप्तलोमक इत्यादि जो पहले युद्ध से पलायन कर गये थे वे सब युद्धस्थल में आ गये ॥६०-६१॥ महाबलवान् दैत्य शिवजी के सामने युद्ध करते थे । गणों तथा दानवों के योद्धाओं में भयङ्कर युद्ध हुआ ॥६२॥ उसके पश्चात् गणों की सेना को भगाकर वे महाबलवान् दैत्य चारों ओर से शिवजी को घेर लिए ॥६३॥ जिस तरह पाञ्चों इन्द्रियाँ पाञ्चों विषयों द्वारा आत्मा को घेर लेती हैं उसी तरह वे दैत्य शूल, कुन्त, गदा तथा मुद्गर लेकर शङ्करजी को घेर लिए ॥६४॥ उसके बाद शिवजी ने भयङ्कर बाणों से दैत्यों को उसीतरह से मारा जिस तरह माघ का महीना स्नान करने वाले के पापों को शीघ्र ही विनष्ट कर देता है ॥६५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के युधिष्ठिर नारद संवादान्तर्गत जालन्धरोपाख्यान युद्ध में महादेव का आगमन वर्णन नामक तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

शिवजी तथा जालन्धर का घोर संग्राम

नारदजी ने कहा— युद्ध में दैत्यों के कोलाहल को सुनकर जालन्धर रथ पर बैठकर शिवजी के पास आया ॥१॥ उसने अपने सारथि खड्गरोमा से क्रोध करके कहा जिसमें हजार अश्व जुते हों ऐसे रथ

सारथिं खड्गरोमाणं कोपात्सत्वरमब्रवीत् । सम्प्रेषय रथं शीघ्रं सहस्रहययोजितम् ॥२॥
हन्ति तं तापसं शौर्याज्जटाभस्मास्थिभूषितम् ।
वृषारूढस्य का शक्तिः पङ्गोर्युद्धेमयासह ॥३॥
इत्युक्त्वा खड्गरोमाणमाभाष्य च तथोद्धतः ।
गृहीत्वा कार्मुकं घोरं रथेनाधावत द्रुतम् ॥४॥
तं रुरोध तदाऽऽयान्तं वीरभद्रः शितैः शरैः ।
निरुच्छ्वासीकृतेनापि स कायेन शरैर्वृतः ॥५॥
देवैर्यद्यपि तुल्योऽभूद्भूतेशस्य परिग्रहः । तथापि किं कपालानि तुलांयान्ति कलानिधेः ॥६॥
विव्याध मणिभद्रोऽपि शरैःसागरनन्दनम् । पाशेन मणिभद्रं तु हत्वोवाचेश्वरं वचः ॥७॥
एहि योद्धुं महादेव ! शस्त्राभ्यासोऽस्ति ते यदि ।
त्वं मां प्रहर न त्वाऽहमादौ हन्मि जटाधरम् ॥८॥
इतिब्रुवन्तं तं गर्वाद्वीरभद्रोऽथ सायकैः । पूरयामास सङ्क्रुद्धो यथा पद्मं रविःकरैः ॥९॥
मणिभद्रोऽथ गदया सैन्यं तस्य समाहनत् । रथोपरि रथं वीर ! तुरगं तुरगोपरि ॥१०॥
गजोपरि गजंहत्वा पातयामास भूतले । रक्तपङ्कारुणाभूमिःसञ्जाता दुर्गमा क्षणात् ॥११॥
शैलाच्च गणमुख्याश्च दानवाञ्जघ्नुराहवे । पतन्ति दानवाःशूरा गतप्राणा महीतले ॥१२॥
रुण्डदोर्दण्डमुण्डैश्च करिपृष्ठकरोरुभिः । पतन्ति दानवाःशूराःपूरिता वसुधा नृप ! ॥१३॥
एवंविधं रणेदृष्ट्वा हरमत्यन्तदुर्नयम् । भुवने च तथान्यानि दृष्टवाँल्लक्षणानि सः ॥१४॥

को शीघ्र भेजो ॥२॥ मैं उस वृषभ पर सवार लङ्गड़े, जटाजूट तथा अस्थियों के आभूषण धारण करने वाले को अपने पराक्रम से मार देता हूँ । उसकी मेरे साथ युद्ध करने की क्या शक्ति है ?॥३॥ इस तरह से खड्गरोमा से कहकर उसी तरह से उद्धत बना हुआ वह रथ पर चढ़कर तथा धनुष धारण करके शीघ्रता से चल पड़ा ॥४॥ उस तरह से आते हुए उसको तीक्ष्ण बाणो के प्रहार से वीरभद्र को रोका । बाणों से घिरे हुए उसके श्वास रहित होने पर भी वह यद्यपि देवताओं के समान शङ्करजी का परिग्रह हो गया फिर भी क्या कपाल चन्द्रमा के समान हो सकते है ॥५-६॥ मणिभद्र ने भी जालन्धर को बाणों से छेद दिया। उसके बाद उसने पाश से मणिभद्र को मारकर शङ्करजी से कहा ॥७॥ हे महादेव ! यदि आपने शस्त्रों का अभ्यास किया है तो मेरे साथ युद्ध करने के लिए आइये । पहले तुम मुझ पर प्रहार करो । तुम जटाधारी हो मैं तुम पर पहले प्रहार नहीं करूँगा ॥८॥ इस तरह से गर्व पूर्वक कहने वाले जालन्धर को अपने बाणों से मणिभद्र ने उसी तरह भर दिया जिस तरह सूर्य अपनी किरणों से कमल को भर देता है ॥९॥ हे वीर! मणिभद्र ने उसकी सेना को गदा से मारा और रथ के ऊपर रथ को तथा घोड़ों के ऊपर घोड़ों को, हाथी के ऊपर हाथी को मारकर पृथिवी पर गिरा दिया । क्षणभर में ही पृथिवी खून से लाल होकर दुर्गम हो गयी ॥१०-११॥ मुख्य गण भी पर्वत से युद्ध में दानवों को मार रहे थे । दानव वीर मरकर पृथिवी पर गिर जाते थे ॥१२॥ हे राजन् ! रुण्ड (कटे हुए शरीरों) भुजाओं, शिरों, हाथियों के पृष्ठ तथा लम्बे-लम्बे सूंढ़ों पर से गिरने वाले दानवों से पृथिवी भर गयी ॥१३॥ इस तरह की दुर्नीत वाले शिवजी को देखकर तथा संसार में दूसरे लक्षणों को जालन्धर ने देखा ॥१४॥ देवता, नक्षत्र, चन्द्रमा आदि

तेजोऽन्यदेवनक्षत्रशशाङ्कसकलादिषु । उद्धाटितजगत्कोशमन्यदेव रवेर्महः ॥१५॥
भग्नः पुनश्चिन्तितवांस्ततो जालन्धरो नृप !। न दृष्टा सा मया गौरी यां मामाहाति नारदः ॥१६॥
साम्प्रतं शाश्वते स्थाने कथं द्रक्ष्याम्युमां स्थिताम् ।
तां हि द्रष्टुं व्रजाम्यादौ पश्चाद्योत्स्यामि शम्भुना ॥१७॥
चिन्तयित्वेति मनसा दैत्यं प्राहार्णवात्मजः। शुभं चण्डजयेवीर ममतुल्यपराक्रम ॥१८॥
धृत्वा मत्सदृशं रूपं सङ्ग्रामं कर्तुमर्हसि। तव युद्धस्यभारोऽयं शिबिरस्य बलस्य च॥१९॥
अहं यास्यामि तां द्रष्टुं गौरीं मच्चित्तहारिणीम् ।
इत्युक्त्वाऽथ ददौ तस्मै स्वाङ्गादुत्तार्य मण्डनम् ॥२०॥
वर्मशस्त्रादिकं दत्त्वा रथसारथिसंयुत्तम्। दुर्वारणेन सहितः सैन्यं मुक्त्वोदधेःसुतः ॥२१॥
अलक्षितस्ततो गत्वा गुहांगुप्तां तु पार्थिव ! ।
मानसोत्तरशैलस्य हररूपं दधार सः ॥२२॥
धृत्वा दुर्वारणोरूपं नन्दिनःसदृशं तथा । अथारुहतुःशैलं छद्मशङ्करनन्दिनौ ॥२३॥
यत्रास्ति शिखरे गौरी सखीभिः सहिता नृप ! ।
तमायान्तं शरैर्भिन्नं स्कन्धमालम्ब्य नन्दिनः ॥२४॥
रक्ताक्तमम्बरं दृष्ट्वा भवानी विस्मिताऽभवत् ।
सख्यस्तस्य जायद्यास्ता जग्मुस्तं सम्भ्रामान्विताः ॥२५॥
शङ्करस्यान्तिकं गत्वा पप्रच्छुस्तं सुदुःखिताः ।
किंजातं तव देवेश केन त्वं सङ्गरेजितः ॥२६॥

सबों का तेज अन्य प्रकार का हो गया था सूर्य की कान्ति दूसरे ही जगत रूपी कोश (कमल) को प्रकाशित कर रही थी ॥१५॥ हे राजन् ! भग्न होकर भी जालन्धर ने विचार किया कि अभी तक मैंने उस गौरी को नहीं देखा जिसके विषय में नारदजी ने मुझसे कहा था ॥१६॥ इस समय मैं निश्चित स्थान में उमा को कैसे देख सकता हूँ ? पहले मैं उसको देखने के लिए जा रहा हूँ, उसके बाद मैं शङ्कर से युद्ध करूँगा॥१७॥ इस तरह से सोचकर उसने विचार किया कि शुम्भ मेरे समान पराक्रम वाला है, वह विजय प्राप्त कर सकता है ॥१८॥ उसने शुम्भ से कहा तुम मेरा रूप धारण करके युद्ध करो । इस युद्ध का भार तुम पर, शिविर पर और बल पर है ॥१९॥ मैं अपने चित्त को आकृष्ट करने वाली गौरी को देखने के लिए जा रहा हूँ । यह कहकर उसने अपने शरीर से अलङ्कारों को उतार कर उसे दे दिया ॥२०॥ हे राजन् ! रथ तथा सारथि के साथ अपने कवच तथा शस्त्र आदि को देकर तथा सेना को छोड़कर जालन्धर दुर्वारण के साथ अलक्षित रूप से मानसरोवर पर्वत की गुप्त गुफा में जाकर शङ्करजी के रूप को धारण कर लिया ॥२१-२२॥ दुर्वारण ने भी नन्दी का रूप धारण कर लिया । उसके बाद वे कृत्रिम (नकली) शङ्कर और नन्दी पर्वत पर चढ़ गये । हे राजन् ! वहीं पर सखियों के साथ गौरी थीं । नन्दी के कन्धे को पकड़कर आते हुए तथा बाणों से भिन्न तथा खून से रङ्गे हुए उनके वस्त्र को देखकर पार्वतीजी आश्चर्यित हो गयीं । उनकी जया आदि सखियाँ शीघ्रता से उनके पास गयीं ॥२३-२५॥ शङ्करजी के पास जाकर और अत्यन्त दुःखी होकर उन

स शल्यस्त्वं कथं नाथ संसारीव प्ररोदिषि ।
इत्युक्तः प्रददौ ताभ्यो भूषणानि पृथक्पृथक् ॥२७॥
उत्तार्य शनकैरङ्गाद्वासुकिप्रभृतीनि च । गणेशस्कन्दशिरसीच्छित्रेकुक्षौ विलोक्य च ॥२८॥
हास्कन्द हागणेशेति हारुद्रेत्यम्बिकाऽरुदत्। तस्याः सख्यस्ततः सर्वा रुरुदुः शोककर्शिताः॥२९॥
अत्राब्रवीज्जयां नन्दी त्वमेनं परिपालय । मणिभद्रो वीरभद्रः पुष्पदन्तश्च वीर्यवान् ॥३०॥
दम्भनो धूमतिमिरः कूष्माण्डाद्या रणे हताः ।
चण्डी भृगी (ङ्गी) किरीटिश्च महाकालश्च शृङ्खली ॥३१॥
चण्डीशो गुप्तनेत्रश्च कालाद्याश्च हतारणे । विनायकस्य स्कन्दस्य शिरसीभ्रमता मया ॥३२॥
दृष्टे महारणे देवि इत्युक्त्वाथपुरोऽक्षिपत् । तच्छ्रुत्वानन्दिनोवाक्यं शिरसी गृह्य पुत्रयोः॥३३॥
पार्वती विललापोच्चैः पुत्र पुत्रति जल्पती । तारकारे ! कथं युद्धे हतस्त्वं सिन्धुसूनुना॥३४॥
त्वं हि त्रिवासरो देवैः सैनापत्येऽभिषेचितः ।
तदा त्वया कथं वीर ! तारकाख्यो निपातितः॥३५॥
नीलकण्ठेन किं त्यक्तो यतस्त्वं पतितो भुवि ।
स्नुषामुखं न दृष्टं च मया पुत्रावभाग्यया ॥३६॥
न भोगा वत्स ! ते भुक्ताः संसारस्यापि येऽभवन् ।
तात ! हेरम्ब ! विघ्नेश ! लम्बोदर ! गजानन ! ॥३७॥
रणाङ्गणे केन पुत्र सिद्धैः पूज्योनिपातितः । वाहनोऽसौ कुतो वत्समूषकः केनहिंसितः ॥३८॥

सबों ने पूछा देवेश ! क्या हो गया ? आपको किसने परास्त किया है ॥२६॥ हे नाथ ! आप दुःखी कैसे हैं ? और संसारी जीवों के समान क्यों रो रहे हैं ? इस तरह से कहने पर उसने उन सबों को अलग-अलग भूषणों को प्रदान किया ॥२७॥ धीरे-धीरे अपने शरीर से वासुकि आदि को उतार कर अपनी कुक्षि में गणेश तथा स्कन्द दोनों के शिरों को दिखाया ॥२८॥ उसे देखकर अम्बिका हाय स्कन्द, हाय गणेश तथा हाय रुद्र कहकर रोने लगीं । उसके बाद उनकी सखियाँ भी शोक सन्तप्त होकर रोने लगीं ॥२९॥ उसी समय नन्दी ने कहा कि तुम इसकी रक्षा करो । मणिभद्र, वीरभद्र तथा पराक्रमी पुष्पदन्त, दम्भ, धूम तिमिर, तथा कूष्माण्ड आदि युद्ध में मारे गये । चण्डी, भृङ्गी, किरीटी, महाकाल, शृङ्खली, चण्डीश, गुप्तनेत्र तथा काल आदि भी युद्ध में मारे गये । घूमते हुए विनायक तथा स्कन्द के शिरों को हे देवि ! मैंने देखा, यह कहकर उसने उन शिरों को पार्वतीजी के सामने फेंक दिया । नन्दी के उस वाक्य को सुनकर तथा दोनों पुत्रों के शिर को लेकर ॥३०-३३॥ पार्वती पुत्र-पुत्र कहकर जोर-जोर से विलाप करने लगीं । उन्होंने कहा हे तारकारे ! तुमको जालन्धर ने कैसे मार दिया ?॥३४॥ जब तुम तीन दिन के थे तो देवताओं ने तुम्हें सेनापिति के पद पर अभिषिक्त किया था; हे वीर ! उस समय तुमने कैसे तारकासुर को मारा ?॥३५॥ नीलकण्ठ ने तुम्हें कैसे त्याग दिया कि तुम पृथिवी पर गिर पड़े । हे पुत्र ! दुर्भाग्य सम्पन्न मैंने अपनी पुत्र वधू का मुख नहीं देखा ॥३६॥ हे वत्स ! तुमने संसार के भोगों को नहीं भोगा । हे तात ! हेरम्ब! हे विघ्नेश ! हे लम्बोदर ! हे गजानन !॥३७॥ हे सिद्धों के द्वारा पूज्य पुत्र ! युद्ध में तुम्हें किसने मारा है । हे वत्स ! तुम्हारे वाहन चूहे को किसने मार दिया ?॥३८॥ इस तरह से विलाप करती हुयी गौरी

एवं विलपती गौरी शिवंप्राह सुदुःखितम् । साक्षाद्रुद्रोऽसि देवेशहरस्त्वं मा भयं कुरु ॥३९॥
वृषभःक्वगतो देव हतो जालनधरेण वै । शरजर्जरदेहस्य किं करोमि प्रियं तव॥४०॥

ततः श्रुत्वा वचो देव्या निःश्वस्योवाच शङ्करः ।
दीर्घं विनिहतौ पुत्रौ वृथा शोचसि किं प्रिये ! ॥४१॥

अधुना तेऽङ्गसङ्गेन देवि ! मां त्रातुमर्हसि । शङ्करस्य वचःश्रुत्वा समयोचितमातुरम् ॥
प्रत्युवाचाम्बिका देवं बभाषे नोचितं वचः ॥४२॥

महाविषादे पतिते भये च कृते समाधौ वमने महाज्वरे ।
श्राद्धे प्रयाणे गुरुवृद्धसन्निधौ रतिं बुधाः शङ्कर ! वर्जयन्ति ॥४३॥
कथं मां दुःखदुःखार्ता पुत्रशोकेन पीडिताम् ।
म्लानां वाष्पपरिम्लानां सम्प्रार्थयसि चातुराम् ॥४४॥
भवान्या इति वाक्यानि श्रुत्वा मायामहेश्वरः ।
उवाच स्वार्थमुद्दिश्य गौर्या रूपेण मोहितः ॥४५॥

पुरुषस्यार्तियुक्तस्य न यच्छन्ति रतिंस्त्रियः । तथैव रौरवेघोरे पतिष्यन्ति न संशयः॥४६॥

गणशून्यः पुत्रशून्यो धीशून्योऽहं वरानने ! ।
साम्प्रतं गृह्यशून्योऽहं सर्वशून्योऽस्मि भामिनि ! ॥४७॥

सजीवितविहीनोऽहं त्वां प्रष्टुमिह चागतः। स्वगृहं तु प्रविश्याशु त्यजामि प्रकृतिं स्वकाम्॥४८॥

उत्तिष्ठ नन्दिन्संयावस्तीर्थे भव पुरःसरः ।
त्वं याहि स्वेच्छया कान्ते ! प्रकृतिं स्वां परित्यज ॥४९॥

ने अत्यन्त दुःखी शिवजी से कहा हे देवेश ! आप साक्षात् रुद्र हैं, आप हर हैं आप भयभीत न हों॥३९॥ हे देव ! जालन्धर के द्वारा मारे जाकर वृषभ कहाँ गया ? आपका शरीर बाणों से जर्जर हो गया है मैं आपका कौन सा प्रिय कार्य करूँ ?॥४०॥ उसके बाद देवी पार्वती की वाणी को सुनकर शङ्कर ने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा ॥४१॥ हे देवि ! इस समय तुम अङ्ग के सङ्ग से मेरी रक्षा करो । शङ्कर की समय के प्रतिकूल तथा आतुर वाणी को सुनकर पार्वतीजी ने कहा— आप उचित वाणी नहीं बोल रहे हैं ॥४२॥ हे शङ्कर ! महाविषाद के समय, भय के आ जाने पर, समाधि काल में, वमन हो जाने पर, महाज्वर हो जाने पर, श्राद्ध के समय, प्रस्थान काल में, गुरुजनों और वृद्ध जनों के सन्निकट में विद्वान पुरुष रति का निषेध करते हैं ॥४३॥ अत्यन्त दुःख से दुःखी, पुत्र शोक से पीड़ित ग्लान तथा आँसुओं से अत्यन्त मलीन बनी हुयी तथा आतुर मुझसे ऐसी प्रार्थना कैसे करते हैं ?॥४४॥ भवानी की इस बात को सुनकर माया से महेश्वर बने हुए जालन्धर ने गौरी के रूप से मोहित होकर अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए कहा॥४५। जो नारी आर्त बने हुए पुरुष को रति नहीं प्रदान करती हैं वह निश्चित रूप से घोर रौरव नरक में पड़ती है ॥४६॥ हे सुन्दरि ! मैं गणों, पुत्रों तथा बुद्धि से रहित हूँ । इस समय गृह रहित तथा सब कुछ से रहित हूँ ॥४७॥ जीवन से रहित मैं तुमसे मिलने आया हूँ । अपने गृह में प्रवेश करके मैं अपनी प्रकृति का परित्याग करने जा रहा हूँ ॥४८॥ हे नन्दी ! उठो हम दोनों तीर्थ में चलें । तुम आगे चलो। हे कान्ते ! तुम अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ चाहो चली जाओ और अपनी प्रकृति का परित्याग कर

इति मायामहेशस्य वचः श्रुत्वाऽम्बिका ततः ।
दीर्घं दध्यौ महाश्वासं शोकेन चजडीकृता ॥५०॥
तस्यैवं परमेक्षोभे किञ्चिन्नोवाच सा क्षणम् ।
यया संमोहितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥
सैव संमोहिता तेन न जाने दुःखमात्मनः ॥५१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे नारदयुधिष्ठिरसंवादे जालन्धरोपाख्याने मायामाहेशस्य गौरीसमीपगमनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

इति मायामहेशेन मोहिता गिरिजा यदा । अतःकिं समभूद्ब्रह्मंस्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१॥

नारद उवाच

क्षीराब्धौ तु शयानस्य चुक्षोभ हृदयं हरेः । अकस्मादेव राजेन्द्र ! नयनेऽश्रुपरिप्लुते ॥२॥
दृष्ट्वा यन्महदुत्पातलक्षणं भगवांस्ततः । उत्थाय शेषपर्यङ्कान्मां च वायुं विलोक्य च ॥३॥
किं कार्यमिति गोविन्दस्तन्नागारिमथास्मरत् ।
स चाग्रे स्मृतिमात्रेण तस्थौ बद्धाञ्जलिः प्रभोः ॥४॥

दो॥४९॥ इस तरह से उस माया महेश की वाणी सुनकर शोक से जड़ बनी हुयी पार्वतीजी ने दीर्घ महाश्वास लिया ॥५०॥ उसके इस अत्यन्त क्षोभ के होने पर पार्वतीजी क्षण भर कुछ नहीं बोली । उनके द्वारा ही यह सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत् मोहित है । वे ही उस (जालन्धर) के द्वारा मोहित होने के कारण अपनी आत्मा के दुःख को नहीं जान सकीं ॥५१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के नारद युधिष्ठिर संवाद के अन्तर्गत जालन्धरोपाख्यान के मायामहेश के गौरी समीप आगमन का वर्णन नामक चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

जालन्धर के द्वारा पार्वती से किए जाने वाले छल को जानकर भगवान् विष्णु द्वारा वृन्दा का हरण करने के लिए प्रयत्न करना

युधिष्ठिर ने कहा— हे ब्रह्मन् ! जब माया महेश के द्वारा पार्वतीजी मोहित हुयी तो उसके बाद जो हुआ उसे आप मुझे बतलाएँ ॥१॥ **नारदजी ने कहा—** क्षीर सागर में सोये हुए श्रीहरि के हृदय में क्षोभ उत्पन्न हो गया तथा अकस्मात् उनके दोनों नेत्र आँसुओं से भर गये ॥२॥ उस महा उत्पात के लक्षण को देखकर श्रीभगवान् शेषपर्यंक से उठकर मुझको तथा वायु को देखकर सोचे कि मुझे क्या करना चाहिए।

विनतानंनदनं दृष्ट्वा पुरतःप्राह केशवः। सुपर्ण ! तत्र गच्छत्वं यत्र युद्धं प्रवर्तते ॥५॥
हतो जालन्धरो वीरो हरो वा तेन मोहितः ।
दृष्ट्वा तं शीघ्रमागत्य कथयस्व ममाखिलम् ॥६॥
जालन्धरेशयोर्युद्धं द्रष्टुं शक्तस्त्वमेव हि। कोऽन्यो महाहवे यस्मिञ्ज्ञात्वाऽऽयाति शरीरवान्॥७॥
कदाचिद्दुर्गमं तत्र युद्धं शस्त्रास्त्रवृष्टिभिः। अथ त्वं बाणसञ्चारं गत्वा पिहितविग्रहः ॥८॥
सन्दृश्य पार्वतीवृत्तिं शीघ्रमायातुमर्हसि। दैत्यमायानिरासार्थं विचिन्त्य भगवांस्त्वरन् ॥९॥
गुटिकां सर्वसिद्धां च गरुडाय ददौ हरिः ।
अनया न भ्रमो वीर ! तथेत्युक्त्वा मुखेऽक्षिपत् ॥१०॥
एवं सम्प्रेरितःपत्री हरिंकृत्वा प्रदक्षिणम्। निश्चक्राम खमाविश्यजगामाद्भुतवेगवान् ॥११॥
तत्र गत्वा रणंघोरंदैत्यसङ्घैसुदुःसहम्। दृष्टवानखिलेनासौ न किञ्चिज्ज्ञातवान्किल ॥१२॥
तस्मादुप्यत्य वेगेन गतोऽसौ मानसोत्तरम्। शैलं तुङ्गतरं दुर्गमगम्यं मरुतामपि ॥१३॥
विलोक्यन्न ददृशे गौरीस्थानं पतङ्गराट्। तत्रागत्य भुजङ्गारिर्ध्वनिं संश्रुतवान्किल ॥१४॥
गत्वा समीपे ददृशे मायापशुपतिं ततः। गरुडो गुटिकांक्षिप्य मुखेन भ्रमगाप सः ॥१५॥
ज्ञात्वा बुद्ध्वाऽथ दैत्योऽयमिति नायं वृषध्वजः ।
हा कष्टमिति चोक्त्वा च रुदन्नागत्य चार्णवम् ॥१६॥
कथयामास वृत्तान्तं पुरतः कैटभद्विषः। देव जालन्धरेणायं हरो देवो विडम्बितः ॥१७॥

उन्होंने गरुड का स्मरण किया। स्मरण करते ही गरुड़ आकर उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गये ॥३-४॥ गरुड को सामने देखकर श्रीभगवान् ने कहा कि जहाँ युद्ध हो रहा है वहाँ जाकर देखो, क्या जालन्धर मारा गया अथवा उसने शङ्करजी को मोहित कर दिया। यह सब देखकर शीघ्र आओ और मुझे सारी बातें बतलाओ ॥५-६॥ जालन्धर तथा शङ्करजी के युद्ध को तुम ही देखने में समर्थ हो। दूसरा कोई भी शरीरधारी उसको देखकर नहीं लौट सकता है ॥७॥ शस्त्रास्त्रों की वृष्टि के कारण युद्ध में जाना यदि कठिन हो तो उस बाणों के बीच में अपने शरीर को छिपाकर जाना ॥८॥ पार्वतीजी की भी स्थिति को देखकर शीघ्र आओ। दैत्य की माया का विचार करके श्रीभगवान् शीघ्रता से ॥९॥ गरुड़ को सर्वसिद्ध गुटिका दिए और कहे हे वीर ! उस गुटिका से किसी प्रकार का भ्रम नहीं होगा। गरुड ने कहा ठीक है और उस गुटिका को वे अपने मुख में डाल लिए ॥१०॥ इस तरह से प्रेरित होकर गरुड़ ने श्रीहरि की प्रदक्षिणा की और अद्भुत वेग वाले वे आकाश में प्रवेश करके वहाँ से निकल पड़े ॥११॥ वहाँ जाकर दैत्य समूह के साथ होने वाले भयङ्कर युद्ध को उन्होंने देखा किन्तु वे कुछ भी नहीं जान सके ॥१२॥ वहाँ से उड़कर वे वेग पूर्वक मानसरोवर पर्वत पर गये। वह पर्वत अत्यन्त ऊँचा है। उस पर देवताओं को भी जाना कठिन है ॥१३॥ वहाँ गरुड गौरी के स्थान को नहीं देखे और न वहाँ आकर वे कुछ ध्वनि को सुने॥१४॥ उसके सन्निकट जाकर उन्होंने माया महेश को देखा। गरुड ने गुटिका को मुख में डाल लिया तो उनको भ्रम नहीं हुआ। उसके विषय में वे यह जान गये कि यह तो दैत्य है शङ्कर नहीं है। उन्होंने कहा अरे यह अत्यन्त कष्ट की बात है। वे रोते हुए क्षीरार्णव में आये ॥१५-१६॥ उन्होंने भगवान् श्रीहरि से

उमाप्रतारिता तेन पापेन च्छद्मरूपिणा। सुरस्त्वं यदि गोविन्द समरंप्रति याह्यतः ॥१८॥
मायायुद्धं तु देवेश कुरु जालन्धरंप्रति। तस्य राज्ञी मयादृष्टा पीठे जालन्धरे शुभे ॥१९॥
प्रासादभूम्यां क्रीडन्ती वाद्यगीतादि वर्त्तनैः। सा सुन्दरतरा गौर्या रम्भोर्वश्योः शतादपि ॥२०॥
नेदानीं मानुषेलोके न पातालेषु तत्समा। भार्या तेन समावेश्या नारीणां का कथा हरे॥२१॥
यस्तां स्पृशति देहेन सकृतार्थःपुमान्भवेत्। तव श्यालकपत्नी च हर त्वं तां रमप्रियाम्॥
शङ्करस्योपकारं च कुरु चैवात्मनःसुखम् ॥२२॥

नारद उवाच

श्रुत्वा तार्क्ष्यस्य वचनं तं निर्भर्त्स्य रमाप्रियः ।
सम्यग्व्यवस्य चोपायं विससर्ज द्रुतं द्विजम् ॥२३॥

श्रियं प्रतार्य सञ्छाय मञ्चके पीतवाससा। निर्गतोऽन्येनरूपेण योगमायाबलेन च ॥२४॥
वृन्दारिकानुरागेण मोहितो मधुसूदनः। दृष्ट्वाहरिं तु गच्छन्तं प्रतिच्छन्नं युधिष्ठिर ॥२५॥
शेषोऽप्यन्यतमेनासौ रूपेणागत्य केशवम्। जगाद भक्तया त्वं तिष्ठ मामनुज्ञातुमर्हसि॥२६॥

किं करोमि क्व गच्छामि ब्रूहि कार्यं जनार्दन ! ।
सदा तवमुखं दृष्ट्वा भोक्ष्यामीति भवेत्सुखम् ॥२७॥

श्रीभगवानुवाच

जालन्धरस्त्रियं रम्यां हरिष्ये हरकारणात्। पार्वत्याश्चोपकाराय सञ्छाद्य स्वात्मनस्तनुम्॥२८॥
एहियामोवयं बन्ध्योकान्तरं दुरतिक्रमम्। वृन्दाकर्षणसिद्ध्यर्थमित्युक्त्वा तौ वनंगतौ॥२९॥

कहा कि हे देव ! जालन्धर शङ्करजी का रूप बनाये है ॥१७॥ उस छद्म रूपधारी ने उमा को मोहित कर दिया है । हे गोविन्द ! यदि आप देवता हैं तो आप युद्ध में जायँ ॥१८॥ हे देवेश ! आप जालन्धर से माया युद्ध करें । मैंने जालन्धर की रानी को जालन्धर के सिंहासन पर देखा है ॥१९॥ वह महल की भूमि पर वाद्यों तथा गीतों आदि के साथ क्रीडा कर रही है । वह गौरी, तथा सैकड़ों रम्भा तथा उर्वशी आदि से भी अधिक सुन्दर है ॥२०॥ उसके समान न तो भूलोक में और न पाताल में ही कोई सुन्दरी वेश्या है और नारियों की क्या बात है ?॥२१॥ उसका शरीर से स्पर्श करने वाला पुरुष कृतार्थ हो जाय । वह आपके साले की पत्नी है तथा लक्ष्मी को भी प्रिय है उसका आप हरण कर लें । इस तरह से आप शङ्करजी का अपने सुख के लिए उपकार करें ॥२२। **नारदजी ने कहा—** उसके बाद गरुड़ की बात सुनकर श्रीभगवान् गरुड़ को डाँटे । उपाय का अच्छी तरह निश्चय करके वे वहाँ से गरुड़ को भेज दिए॥२३॥ लक्ष्मीजी से छल करके खाट पर अपने पीताम्बर से ढँककर, अपनी माया के द्वारा दूसरा रूप धारण करके वृन्दा के प्रति अनुराग होने के कारण मोहित होकर श्रीभगवान् वहाँ से निकल पड़े । हे युधिष्ठिर ! श्रीहरि को गुप्त रूप से जाते हुए देखकर शेष भी अपना दूसरा रूप बनाकर केशव के पास आये और कहे आप मुझे भी अपने साथ चलने की आज्ञा दें ॥२४-२६॥ हे जनार्दन ! मैं कहाँ जाकर कौन सा कार्य करूँ ? मैं आपके मुख को देखकर जब भोजन करता हूँ तो मुझे सुख मिलता है । **श्रीभगवान् ने कहा—** मैं शङ्कर के कारण जालन्धर की पत्नी का अपहरण करूँगा । यह कार्य अपने शरीर को छिपाकर पार्वती के उपकार के लिए करूँगा ॥२७-२८॥ आओ हम दोनों भयङ्कर बन्ध्योकान्तर में

ततो विष्णुश्च शेषश्च जटावल्कलधारिणौ । आश्रमं चक्रतुः पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥३०॥
तयोःशिष्याःप्रशिष्याश्च बभूवुःकामरूपिणः। सिंहव्याघ्रवराहाश्च ऋक्षवानरमर्कटाः ॥३१॥
अथ तस्मिन्वने वृन्दां मन्त्रेणाकर्षयद्धरिः । तस्या हृदयसन्तापं चकार मधुसूदनः ॥३२॥
एतस्मिन्नन्तरे राज्ञी तापमुग्रमुपागता। चामराश्चालयामास दिव्यस्त्रीकरचालितान् ॥३३॥
प्रियस्यागमनं तन्वी चिन्तयन्ती मुहुर्मुहुः । चन्दनागुरुलिप्ताङ्गी मूर्च्छां याति हि सत्वरम् ॥३४॥
तुर्ययामे विभावर्याश्चतुर्दश्यां नृपाङ्गना । स्वप्नं ददर्श भयदं वैधव्यभयसूचकम्॥३५॥
जालन्धरशिरःशुष्कं मर्दितं पाण्डुभस्मना । गृध्रेणकृष्टनयनं छिन्नकर्णाग्रनासिकम्॥३६॥
मुक्तकेशी करालास्या कृष्णवर्णारुणाम्बरा। चखाद कालीरक्तास्या हस्तेविधृतखर्परा ॥३७॥
ईदृशं ददृशेस्वप्नं तथात्मानं विडम्बितम् । दैत्यक्षयगुणोपेतं साददर्श नृपाङ्गना ॥३८॥

ततः प्रबुद्धाऽसुरराजपत्नी गीतेन वाद्येन च मागधानाम् ।
गेयप्रबन्धैः स्तवनैर्वचोभर्वशस्तवैःकिंपुरुषप्रपाठितैः ॥३९॥

ततस्तान्सकलाञ्छ्रान्तान्धनंदत्त्वा प्रसादजम् ।
निवार्य विप्रानाहूय स्वप्नंदृष्टंन्यवेदयत् । तं स्वप्नंब्राह्मणाःश्रुत्वातामूचुःशास्त्रपारगाः ॥४०॥

द्विजा ऊचुः

देवि दुःस्वप्नमत्युग्रमचिन्त्यभयदायकम् । देहि दानं द्विजातिभ्यो ह्यचिन्त्यभयनाशकम् ॥४१॥

वृन्दा का आकर्षण करने के लिए जायेंगे । इस तरह से कहकर वे दोनों वन में चले गये ॥२९॥ उसके बाद विष्णु और शेष दोनों जटा और वल्कल धारण कर लिए और उन दोनों ने सम्पूर्ण कामना रूपी फल को प्रदान करने वाले आश्रम को बना दिया ॥३०॥ उन दोनों के कामरूप धारी अनेक शिष्य एवं प्रशिष्य हो गये । वहाँ पर सिंह, व्याघ्र, वराह, ऋक्ष तथा वानर भी हो गये ॥३१॥ उसके बाद श्रीहरि ने मन्त्र के द्वारा उस वन में वृन्दा का आकर्षण किया । मधुसूदन ने उसके हृदय में सन्ताप को उत्पन्न कर दिया॥३२॥ उस समय रानी के हृदय में उग्र सन्ताप उत्पन्न हो गया दिव्य स्त्रियों के हाथ से सञ्चालित चामरों को वह चला रही थी ॥३३॥ वह सुन्दरी बार-बार अपने प्रियतम के आगमन के विषय में सोचने लगी। अपने अङ्गों में चन्दन तथा अगरु का लेप लगाने पर भी वह बार-बार मूर्छित हो जाती थी ॥३४॥ चतुर्दशी तिथि को रात्रि के चौथे प्रहर में रानी ने अपने वैधव्य के सूचक भयङ्कर स्वप्न को देखा ॥३५॥ उसने देखा कि जालन्धर का मूख शिर है और उसे श्वेत भस्म ने मसल डाला है । गृध्र ने उसकी आँखें निकाल ली है उसके कान और नाक कटे हुए हैं ॥३६॥ खुले केशों वाली, भयङ्कर मुख वाली, काले वर्ण वाली तथा लाल वस्त्र धारण की हुयी काली ने हाथ में खप्पर लेकर उसके रक्त को पी लिया ॥३७॥ उस रानी ने इस प्रकार के स्वप्न तथा अपनी विडम्बना को दैत्य के नाश को सूचित करने वाला समझा ॥३८॥ उसके बाद मागधों के गीत तथा वाद्य की ध्वनि को सुनकर जग गयीं । उस समय किम्पुरुष गेय प्रबन्ध, स्तुति तथा उसके वंश की स्तुति का पाठ कर रहे थे ॥३९॥ उसके पश्चात् उन सबों के शान्त हो जाने पर प्रसन्न होकर उसने उन सबों को धन दिया, फिर ब्राह्मणों को बुलाकर उन सबों को अपने स्वप्न को सुनाया । उस स्वप्न को सुनकर उन शास्त्र पारङ्गत ब्राह्मणों ने उससे कहा ॥४०॥ **ब्राह्मणों ने कहा—** देवि!

धेनूर्वासांसि रत्नानि गजाश्चाभरणानि च । ब्राह्मणाः परिसन्तुष्टाःसिषिचुस्तां नृपस्त्रियम् ॥४२॥
अभिषिक्ताऽपि सा वृन्दा ज्वरेण परितप्यते ।
विसृज्य विप्रप्रवरान्प्रासादमगमत्तदा ॥४३॥
तत्र स्थिताऽपि स्वपुरं ददृशे दीप्तमङ्गला । ततः स्वकर्मणा राजन्नाकृष्टा हरिणा तु सा ॥४४॥
न शशाक गृहेस्थातुं ततो राज्ञी वनं ययौ। रथमश्वतरीयुक्तं स्मरदूतीसखीवहम् ॥४५॥
समारुह्य क्षणात्तन्वी प्राप्ता सौभाग्यकाननम् ।
नानावृक्षसमायुक्तं ननापक्षिगणान्वितम् ॥४६॥
पुष्पप्रस्त्रवणोपेतं स्वर्गनारी विभूषितम् । मन्दानिलप्रवेशोऽस्ति यत्र नान्यस्य कस्यचित् ॥४७॥
वनं वृन्दारिका दृष्ट्वा सस्मार पतिमात्मनः ।
कथं जालन्धरं वीरं द्रक्ष्यामि प्राप्तमग्रतः ॥४८॥
सा तत्र न सुखं लेभे विवेशान्यतमं वनम्। सखी रथसमसमायुक्ता विष्णुमायाविमोहिता॥४९॥
ततो विलोकयामास विपिनं तरुसङ्कुलम् । उरुपाषाणसंरुद्धं कुरुङ्गाक्षी भयावहम्॥५०॥
सिंहव्याघ्रभयाकीर्णं शृगालव्यालसेवितम् । द्रुमैःस्पृशच्छिखाकाशैर्गुहासु ध्वान्तपूरितम् ॥५१॥
वनं विलोक्य सा भीमं चकिता चपलेक्षणा ।
स्मरदूतीं सखीं वृन्दा जगाद रथवाहिनीम् ।
रथं प्रेषय मे शीघ्रं स्मरदूति ! गृहंप्रति ॥५२॥

यह स्वप्न अत्यन्त उग्र, अचिन्त्य भय प्रदान करने वाला है । अतएव अचिन्त्य भय को विनष्ट करने वाला ब्राह्मणों को दान दो ॥४१। धेनु, वस्त्र, रत्न, हाथी, आभूषण आदि का वृन्दा ने दान दिया और सन्तुष्ट होकर ब्राह्मणों ने रानी का अभिषेक किया ॥४२। अभिषिक्त होने पर भी वृन्दा ज्वर के कारण सन्तप्त हो रही थी और वह ब्राह्मणों के यहाँ से महल में चली गयी । वहाँ पर स्थित होकर उसने सब प्रकार के मङ्गलों से युक्त उस नगरी को देखा । हे राजन् ! उसके पश्चात् श्रीहरि ने उसको अपने कर्म से आकृष्ट किया । उसके कारण रानी अपने घर में नहीं रह सकी, वह वन में चली गयी । खच्चरियों से युक्त रथ पर चढ़कर वह अपनी स्मरदूती नामक सखी के साथ क्षण भर में सौभाग्य कानन में चली गयी । उस वन में अनेक प्रकार के वृक्ष और अनेक प्रकार के पक्षी भरे हुए थे ॥४३-४६॥ वहाँ पुष्प रसों के झरने थे, अप्सराओं से वह अलंकृत था । उसमें केवल मन्द वायु ही जाती थी दूसरे का प्रवेश उसमें नहीं होता था॥४७॥ उस वन को देखकर वृन्दारिका ने अपने पति का स्मरण किया । वह सोचती थी कि मैं अपने समक्ष आये हुए अपने पति जालन्धर को कैसे देखूँ ?॥४८॥ उस वन में उसको सुख नहीं मिला वह दूसरे वन में प्रवेश की । वह भगवान् विष्णु की माया से मोहित तथा अपनी सखी के साथ रथ पर बैठी थी॥४९॥ उसके पश्चात् उस मृगनयनी ने भयङ्कर वृक्षों से भरे हुए तथा पाषाण से रुद्ध वन को देखा॥५०॥ उसमें भयङ्कर सिंह तथा व्याघ्र भरे हुए थे सर्वत्र शृङ्गाल (स्यार) तथा सर्प थे । पेड़ों की शिखा आकाश को छू रही थी तथा कन्दराएँ अन्धकार से भरी थीं ॥५१॥ चंचल नेत्रों वाली वह भयङ्कर वन को देखकर आश्चर्यित हो गयी । वृन्दा ने रथ हाँकने वाली स्मरदूती से कहा, हे स्मरदूति ! मेरे रथ को शीघ्र घर ले चलो ॥५२॥

स्मरदूतिरुवाच

नाहं जानामि दिग्भागं न यामि क्व रथं सखि ।
श्रान्ता अश्व्यः प्रवर्तन्ते मार्गश्चात्र न विद्यते ॥५३॥
प्रेरितो दैववकेनापि स्यन्दनो यातु यत्र च ।
अत्र कोऽपि च मांसादो भक्षयिष्यति नान्यथा ॥५४॥
इत्युक्ता सा द्रुततरा रथं शीघ्रमवाहयत्। स रथोवेगतःप्राप्तो यत्र सिद्धा मुदान्विताः॥५५॥
तत्र सिद्धाश्च दृश्यन्ते काननं च भयावहम्। न यत्र प्रबलोवायुर्न शब्दःपक्षिणामपि॥५६॥
न च तेजःप्रकाशोऽस्ति न जलं प्रदिशोदिशः ।
तत्र प्राप्तरथस्यापि लक्षणोऽभूद्विपर्ययः ॥५७॥
अश्वतर्यो न हेषन्ते न च शब्दश्च नेमिजः । न चलन्ति पताकास्ता घण्टिक न क्वणन्ति च॥५८॥
न स्वनन्ति महाघण्टा ध्वजस्तम्भे निवेशिताः ।
विलोक्यैवंविधं प्राह तत्र वृन्दा सखींप्रति ॥५९॥
स्मरदूति क्व यास्यामो व्याघ्रसिंहभयं वनम् ।
न गृहे न सुखं राज्ये ममजातं वनेसखि ॥६०॥

स्मरदूतिरुवाच

श्रृणुष्व देवि ! पश्य त्वं पुरःशैलोऽतिदारुणः ।
दृष्ट्वाऽग्रतो न गच्छन्ति तुरङ्ग्यो भयविह्वलाः ॥६१॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सन्त्रस्ता स नृपाङ्गना । दृष्ट्वा हारं स्वकण्ठस्थं स्यन्दनाच्छीघ्रमुत्थिता॥६२॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो राक्षसो भीषणाकृतिः । त्रिपादःपञ्चहस्तश्च सप्तनेत्रोऽतिदारुणः ॥६३॥

स्मर दूति ने कहा— सखि ! मुझे दिशाओं का ज्ञान नहीं है और न तो इस बात का ही पता है कि मेरा रथ कहाँ है । खच्चरियाँ थक गयीं हैं, यहाँ रास्ता भी नहीं है ॥५३॥ भाग्य से प्रेरित इस रथ को चलने दो, लगता है कोई राक्षस हमलोगों को खा लेगा ॥५४॥ इस तरह से कहने पर वह शीघ्रता से रथ हाँकने लगी, वेग पूर्वक वह रथ वहाँ पहुँच गया जहाँ पर प्रसन्न रहने वाले सिद्ध पुरुष थे ॥५५॥ वहाँ पर सिद्ध पुरुष तथा भयङ्कर वन दिखते थे । वहाँ जोर से हवा भी नहीं चलती थी । पक्षियों का शब्द भी नहीं सुनायी पड़ता था ॥५६॥ वहाँ पर तेज प्रकाश भी नहीं था, न जल था और न दिशाएँ प्रतीत होती थीं। वहाँ पर पहुँचे हुए रथ का लक्षण भी विपरीत हो गया ॥५७॥ घोड़ियाँ हिनहिनाती नहीं थी । रथ का शब्द भी नहीं होता था । पताकाएँ फहरती नहीं थी । और न तो घण्टियाँ बजती थीं ॥५८॥ ध्वज के स्तम्भ में बँधे बड़े-बड़े घण्टे भी नहीं बजते थे । इस तरह की स्थिति को देखकर वृन्दा ने अपनी सखी से कहा॥५९॥ हे स्मर दूति ! हमलोग कहाँ जायेंगे ? मुझको न तो गृह में सुख मिलता है और न वन में सुख मिलता है ॥६०॥ **स्मरदूति ने कहा—** सखि ! देखो; सामने भयङ्कर पर्वत है । उसको देखकर ये घोड़ियाँ आगे नहीं चल रही हैं, ये भयभीत हो गयी हैं ॥६१॥ उसके उस वचन को सुनकर रानी डर गयी अपने कण्ठ में विद्यमान हार को देखकर वह शीघ्रता से रथ से उतर गयी ॥६२॥ उसी समय वहाँ पर एक

पिङ्गलो व्याघ्रकर्णश्च सिंहस्कन्धस्तथाननः । विहङ्गेशसमा:केशा लम्बन्ते रुधिरारुणाः ॥६४॥
तं दृष्ट्वा पद्मकोशाङ्गी सहसा सभयाऽभवत् ।
नेत्रे कराभ्यामाच्छाद्य चकम्पे कदलीव सा ॥६५॥
प्रतिहारी प्रतोद तु त्यक्त्वा राज्ञीमभाषत। भीतां मां त्राहि देवि त्वमयं धावति भक्षितुम्॥६६॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो राक्षसो रथसन्निधौ। रथमुत्क्षिप्य हस्तेनभ्रामयंश्चाश्विनीयुतम् ॥६७॥
सा राज्ञी पतिता भूमौ मृगी व्याघ्रभयादिव ।
स्मरदूती तरोर्मूले च्छिन्नाऽशोकलता यथा ॥६८॥
ततस्ताश्चाश्विनी:सर्वा भक्षयामास राक्षसः। तेन राज्ञीधृता हस्ते सिंहेनैणवधूरिव ॥६९॥
तामुवाच ततो रक्षःप्राणैस्ते कारणं यदि। तवभर्ता हतः सङ्ख्ये हरेणेति श्रुतं मया ॥७०॥
मामासाद्याद्य भर्तारं चिरंजीवाकुतोभया ।
पिबाथ वारुणीं स्वाद्वीं महामांससमन्विताम् ।
शृण्वन्तीति वचो राज्ञी गतसत्त्वेव चाभवत् ॥७१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे नारदयुधिष्ठिरसंवादे जालन्धरोपाख्याने श्रीमन्माधवमायाकथनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

भयङ्कर राक्षस आ गया । उसके तीन पैर, पाँच हाथ और सात नेत्र थे । वह देखने में भयङ्कर था ॥६३॥ वह पीतवर्ण का था । व्याघ्र के समान उसके कान थे उसके कन्धे और मुख सिंह के समान थे । गरुड़ के समान उसके लाल-लाल केश लटक रहे थे ॥६४॥ उसको देखकर वह कमल के कोश के समान अङ्गों वाली अचानक भयभीत हो गयी अपने दोनों हाथों से दोनों नेत्रों को ढँककर केले के वृक्ष के समान काँपने लगी ॥६५॥ प्रतिहारी लगाम को छोड़कर रानी से कही कि तुम मेरी रक्षा करो यह मुझे खा जाने के लिए दौड़ रहा है ॥६६॥ तब तक राक्षस रथ के सन्निकट आ गया, वह घोड़ियों से युक्त रथ को उठाकर घुमाने लगा ॥६७॥ वह रानी उसी प्रकार गिर पड़ी जिस तरह व्याघ्र के भय से मृगी गिर पड़ती है । स्मरदूती वृक्ष की जड़ में जाक कटी हुयी अशोक लता के समान गिरी ॥६८॥ उसके बाद उस राक्षस ने उन सभी घोड़ियों को खा लिया । जिस तरह सिंह मृगी को पकड़कर खा लेता है उसी तरह उस राक्षस ने रानी का हाथ पकड़ लिया ॥६९॥ उससे उस राक्षस ने कहा कि यदि तुम प्राणों की रक्षा चाहती हो तो मैंने सुना है कि शम्भु ने तुम्हारे पति को मार दिया है ॥७०॥ तुम मुझको अपना पति बना लो और दीर्घकाल तक निर्भय होकर जीओ । महामांस से युक्त स्वादिष्ट मदिरा का पान करो इस बात को सुनकर रानी मरी हुयी के समान हो गयी ।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के नारद युधिष्ठिर संवाद के अन्तर्गत जालन्धरोपाख्यान का श्रीभगवान् की माया का वर्णन नामक पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

नारद उवाच

नारायणस्तदा देवो जटा वल्कलधार्यथ। द्वितीयोऽनुचरस्तस्य ह्यायया फलधृस्तवान् ॥१॥
तौ दृष्ट्वा स्मरदूती सा विललाप मृगेक्षणा ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः प्रोचतुस्तां च तावुभौ ॥२॥
भयं मागच्छकल्याणि त्वामावां त्रातुमागतौ ।
वनं घोरं प्रविष्टासि कथंदुष्टनिषेवितम् ॥३॥
एवमाश्वास्य तां तन्वीं राक्षसं प्राहमाधवः । मुञ्चेमामधमाचार मृद्वङ्गीं चारुहासिनीम् ॥४॥
रेरे मूर्ख दुराचार किं कर्तुं त्वं व्यवस्थितः ।
सर्वस्वं लोकनेत्राणामाहारं कर्तुमुद्यतः ॥५॥
भवपुण्यप्रभावेयं हंस्येतां मण्डनंभुवः । अद्यलोकं निरालोकं कन्दर्पं दर्पवर्जितम्॥६॥
करिष्यत्यधुना त्वञ्च हत्वावृन्दारिकांवने । तस्मादिमांविमुञ्चाशु सुखप्रासाददेवताम्॥७॥
इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं राक्षसः कुपितोऽब्रवीत् ।
समर्थस्त्वं यदि तदा मोचयाद्यैव मत्करात् ॥८॥
इत्युक्तमात्रे वचने माधवेन क्रुधेक्षितः । पपातभस्मसाद्भूतस्त्यक्त्वा वृन्दां सुदूरतः ॥९॥
अथोवाच प्रमुग्धा सा मायया जगदीशितुः। कस्त्वं कारुण्यजलधिर्येनाहमिह रक्षिता॥१०॥
शारीरं मानसं दुःखं सन्तापं तपसांनिधे । त्वया मधुरयावाचा हृतं राक्षसनाशनात्॥११॥

भगवान् विष्णु का तपस्वी का वेष धारण करना

नारदजी ने कहा— उसके पश्चात् जटा वल्कल धारण किए भगवान् अपने अनुचर के साथ हाथ में फल लेकर आये ॥१॥ उन दोनों को देखकर मृगनयनी स्मरदूती विलाप करने लगी । उसके उस वचन को सुनकर उन दोनों ने उससे पूछा ॥२॥ हे कल्याणि ! डरो मत तुम्हारी रक्षा करने के लिए हम दोनों आये हैं । दुष्टों से सेवित इस वन में तुम कैसे आयी हो ?॥३॥ इस तरह से उसको आश्वस्त करके भगवान् माधव ने उस राक्षस से कहा— अरे अधम ! इस कोमल अङ्गों वाली तथा चारुहासिनी को तुम छोड़ दो ॥४॥ अरे मूर्ख ! दुराचारी तुम क्या कर रहे हो । संसार के नेत्रों के सर्वस्वभूत इसको खा जाना चाहते हो ॥५॥ यह संसार के पुण्य के प्रभाव स्वरूपिणी तथा पृथिवी के अलङ्कार स्वरूप इस वृन्दारिका को मारकर आज तुम संसार को प्रकाश रहित तथा काम को दर्प विहीन बना दोगे ॥६॥ अतएव सुखमय प्रासाद की इस देवता को शीघ्र छोड़ दो ॥७॥ श्रीहरि के इस वाक्य को सुनकर क्रुद्ध होकर उस राक्षस ने कहा यदि तुममें सामर्थ्य है तो तुम इसको मेरे हाथ से छुड़ा लो ॥८॥ उसके इस तरह कहने पर भगवान् माधव ने उसको क्रोध पूर्वक देखा तो वृन्दा को दूर से ही छोड़कर वह गिर गया और भस्म हो गया ॥९॥ उसके पश्चात् जगदीश्वर की माया से मोहित होकर वृन्दा ने कहा— हे करुणा सागर ! आप कौन हैं ? आपने मेरी रक्षा की है ॥१०॥ हे तपोनिधे ! इस राक्षस को विनष्ट करके तथा अपनी मधुर वाणी से आपने मेरे शारीरिक तथा मानसिक दुःख और सन्ताप को विनष्ट कर दिया है । हे तपोधन ! मैं आपके

तवाश्रमे तपः सौम्य ! करिष्यामि तपोधन ! ॥१२॥

तापस उवाच

भरद्वाजात्मजश्चाहं देवशर्मेति विश्रुतः। विहाय भोगानखिलान्वनं घोरमुपागतः ॥१३॥
अनेन बटुना सार्थममशिष्येण कामगाः। बहुशःसन्तिचान्येऽषिमच्छिष्याः कामरूपिणः ॥१४॥
त्वं चेन्ममाश्रमे स्थित्वा चिकीर्षसितपःशुभे। एहि राज्यपरंयामो वनंदूरस्थितं यतः ॥१५॥

इत्युक्त्वा राजपत्नीं तां ययौ प्राचीं दिशं हरिः ।
वनं प्रेतपिशाचाढ्यं मन्दगत्या नराधिप ! ॥१६॥

वृन्दारिकाश्रुपूर्णाक्षी तस्य पृष्ठानुगाययौ। स्मरदूती च तत्पृष्ठे मां प्रतीक्षेतिवादिनी ॥१७॥
अत्रान्तरे दुराचारःकोऽपि पापाकृतिर्वने। जालं प्रसारयामास तद्यदाजीवपूरितम् ॥१८॥
ततःसंकोचयामास तज्जालं पापनायकः। जालस्थांस्तु तदा जीवानुपाहृत्य मुमोचह ॥१९॥

स च व्याधः स्त्रियो स्मरदूतीं जगाद ताम् ।
देवि मामत्तुमायाति करे गृह्णातु मां सखी ॥२०॥
वृन्दा तयोक्तं श्रुत्वैनं विकृतास्यं व्यलोकयत् ।
वीक्ष्य तं भयवातेन निर्धूता सिन्धुजप्रिया ॥२१॥

दुद्राव विकलं श्वभ्रं स्मरदूत्या समंवने। विद्रवन्ती समंसख्या तापसाश्रममागता॥२२॥
सा तापसवने तस्मिन्ददर्शात्यन्तमद्भुतम्। पक्षिणः काञ्चनप्रख्यान्नानाशब्दसमाकुलान् ॥२३॥

सा पश्यद्धेमपद्माढ्यां वापीं तु स्वर्णभूमिकाम् ।
क्षीरंवहन्तिसरितःस्रवन्ति मधुभूरुहः ॥२४॥

आश्रम में तपस्या करूँगी ॥११-१२॥ **तपस्वी ने कहा**— मैं भरद्वाज का पुत्र देवशर्मा हूँ । सारे भोगों का परित्याग करके मैं भयङ्कर वन में आया हूँ । मेरे दूसरे भी कामग तथा काम रूप धारी शिष्य हैं । हे शुभे! यदि तुम मेरे आश्रम में तपस्या करना चाहती हो तो मेरे इस शिष्य के साथ आओ, क्योंकि मेरा वन यहाँ से दूर हैं अतएव हमलोग चलें ॥१३-१५॥ इस तरह से उस रानी से कहकर श्रीहरि पूर्व दिशा में चले गये । हे राजन् ! आखों में आँसू भरकर वह वृन्दारिका उस शिष्य के पीछे-पीछे उस वन में गयी जो प्रेतों और पिशाचों से भरा था । स्मरदूती भी उसके पीछे मेरे साथ चलो यह कहती हुयी जा रही थी ॥१६-१७॥ इसी बीच कोई दुराचारी पापी वन में जाल को फैलाया, जब वह जाल जीवों से भर गया ॥१८॥ तब उस महापापी ने जाल को समेट लिया । उसके बाद उसने जाल में विद्यमान जीवों को लेकर जाल को छोड़ दिया ॥१९॥ उस व्याघ ने स्त्रियों को देखकर स्मरदूती से कहा— वृन्दारिका कहाँ हे देवि ! यह मुझको खाने के लिए आ रहा है, हे सखी ! मेरे हाथ को पकड़ लो ॥२०॥ उसकी वाणी को सुनकर वृन्दा ने उस विकृत मुख वाले को देखा । उसको देखकर जालन्धर की पत्नी भय से काँप गयी ॥२१॥ वह व्याकुल होकर स्मरदूती के साथ वन गुफा में भाग गयी अपनी सखी के साथ भागती हुयी वह तापस के आश्रम में आ गयी ॥२२॥ उसने तपस्वी के वन में अत्यन्त आश्चर्य देखा । वह अनेक प्रकार के शब्द करने वाले पक्षी जैसे सुवर्ण के हों ॥२३॥ उसने सुवर्ण मयी भूमि पर बनी हुयी तथा स्वर्णिम कमल से भरी हुयी बावली को देखा । वहाँ पर चीनी और मिठाइयों की ढेर थी । सभी भक्ष्य पदार्थ स्वादिष्ट थे और वहाँ

शर्कराराशयस्तत्र मोदकानां च संचयाः । भक्ष्याणिस्वादुसर्वाणि बहून्याभरणानिच॥२५॥
बहुशस्त्राणिदिव्यानि नभसःसंपतन्ति च । क्रीडन्ति हरयस्तृप्ता उत्पतन्ति पतन्ति च ॥२६॥
मठेऽतिसुन्दरें वृन्दा तं ददर्शतपस्विनम् । व्याघ्रचर्मासनगतं भासयन्तं जगत्त्रयम् ॥२७॥
तमुवाच विभो पाहि पाहि पापार्द्धिकादथ । तपसा किं च धर्मेण मौनेन च जपने च ॥२८॥
भीतत्राणात्परंनान्यत्पुण्यमस्तितपोधन ! । एवमुक्तवती भीता सालसाङ्गीतपस्विनम्॥२९॥
तावत्प्राप्तः स दुष्टात्मा सर्वजीवप्रबन्धकः । वृन्दादेवी भयत्रस्ता हरिकण्ठे समाश्लिषत् ॥३०॥

सुखस्पर्शभुजाभ्यां साऽशोकवल्लीवलिङ्गिता ।
तवालिङ्गनभावेन पुनरेव भविष्यति ॥३१॥

शिरःसर्वाङ्गसंपन्नं त्वद्भर्तुरधिकं गुणैः । अथ त्वं प्रमदे ! गच्छपत्यर्थे चित्रशालिकाम्॥३२॥

सा चित्रशालामित्युक्तवा विवेश मुनिना तदा ।
दिव्यपर्यङ्कमारूढा गृह्यकान्तास्यतच्छिरः ॥३३॥
चकाराधरपानं सा मि (मी) लिताक्ष्यतिलोलुपा ।
यावत्तावदभूद्राजन्रूपं जालन्धराकृति ॥३४॥

तत्कान्तसदृशाकारस्तद्वक्षास्तद्वदुन्नतिः । तद्वाक्यस्तन्मनोभावस्तदासीज्जगदीश्वरः ॥३५॥
अथ सम्पूर्णकायं तं प्रियं वीक्ष्य जगादसा। तवकुर्वे प्रियंस्वामिन्ब्रूहित्वंस्वरणं च मे॥३६॥
वृन्दा वचनमाकर्ण्य प्राह मायासमुद्रजः । शृणु देवि यथायुद्धं वृत्तं शम्भोर्मया सह॥३७॥

अनेक प्रकार के आभूषण थे ॥२४-२५॥ वहाँ पर बहुत से दिव्य शस्त्र आकाश से गिरते थे । वहाँ के सन्तुष्ट बन्दर क्रीड़ा करते थे तथा उछल-कूद करते थे ॥२६॥ वृन्दा ने उस अत्यन्त सुन्दर मठ में तपस्वी को देखा । तपस्वी व्याघ्र चर्म पर बैठे थे और त्रैलोक्य को प्रकाशित कर रहे थे ॥२७॥ उनसे वृन्दा ने कहा— हे प्रभो ! आप मेरे समृद्ध पापों से मुझे बचाएँ । तपस्या, जप, धर्म तथा मौन से क्या लाभ है?॥२८॥ हे तपोधन ! भयभीत की रक्षा से बढ़कर कोई भी पुण्य नहीं है । भयभीत तथा आलस्य युक्त अङ्गों वाली उसने इस तरह से तपस्वी से कहा ॥२९॥ उसी समय सभी जीवों को बान्धने वाला वह दुष्ट वहाँ आया भयभीत वृन्दा देवी श्रीहरि के कण्ठ में लिपट गयी ॥३०॥ जिसका स्पर्श सुखमय था ऐसी दोनों भुजाओं से अशोक लता के समान उसका भगवान् ने आलिङ्गन किया । तुम्हारा इसी प्रकार से आलिङ्गन भाव पूर्वक अधिक गुणों से युक्त सर्वाङ्ग सम्पन्न तुम्हारे पति के शिर का आलिङ्गन होगा । हे प्रमदे ! तुम अपने पति के लिए चित्रशाला में जाओ ॥३१-३२॥ वह मुनि के साथ चित्रशाला में प्रवेश की वह अपने पति के शिर को लेकर दिव्य पर्यक पर चढ़ गयी ॥३३॥ अत्यन्त लोलुप बनी हुयी उसने अपने आँखों को बन्द करके उसके अधर का पान की । हे राजन् ! इतने में वहाँ जालन्धर के समान शरीर बन गया ॥३४॥ उसके पति के समान ही उसका आकार था, उसी के समान उसका वक्षःस्थल और लम्बाई भी थी । जालन्धर के ही समान उसके वाक्य तथा मनोभाव वाले जगदीश्वर बन गये ॥३५॥ अपने पति के सम्पूर्ण शरीर को देखकर वृन्दा ने कहा— हे स्वामिन् ! मैं आपका प्रिय कार्य करूँगी आप अपने युद्ध का वर्णन करें ॥३६॥ वृन्दा की वाणी को सुनकर माया जालन्धर ने कहा— हे देवि ! शम्भु के साथ मेरे युद्ध का वर्णन सुनो ॥३७॥ हे प्रिये ! भयङ्कर रुद्र ने चक्र से मेरे शिर को काट दिया । उसी

प्रिये ! रुद्रेण रौद्रेण छिन्नं चक्रेण मे शिरः ।
तावत्त्वत्सिद्धियोगाच्च त्वद्दूतेन महारणात् ॥३८॥
छिन्नं तदत्र चानीतं जीवितं तेऽङ्गसङ्गतः ।
प्रिये ! त्वं मद्वियोगेन बाले ! जातासि दुःखिता ॥३९॥
क्षन्तव्यं विप्रियं मह्यं यत्त्वांत्यक्त्वारणंगतः । इत्यादिवचनैस्तेनवृन्दा संस्मारितातदा॥४०॥
ताम्बूलैश्च विनोदैश्च वस्त्रालङ्करणैः शुभैः । अथ वृन्दारिकादेवी सर्वभोगसमन्विता॥४१॥
प्रियं गाढं समालिङ्ग्य चुचुम्ब रतिलोलुपा ।
मोक्षादप्यधिकं सौख्यं वृन्दामोहनसंभवम् ॥४२॥
मेने नारायणो देवो लक्ष्मीप्रेमरसाधिकम् । वृन्दावियोगजं दुःखं विनोदयति माधवे॥४३॥
तत्क्रीडा चारुविलसद्वापिका राजहंसके । तद्रूपभावात्कृष्णोऽसौ पद्मायां विगतस्पृहः ॥४४॥
अभूद्वन्दावने तस्मिंस्तुलसीरूपधारिणी । वृन्दाङ्गस्वेदतो भूम्यां प्रादुर्भूतातिपावनी ॥४५॥
वृन्दासङ्गजं चेदमनुभूयसुखं हरिः । दिनानि कतिचिन्मेने शिवकार्यं जगत्पतिः ॥४६॥
एकदा सुरतस्यान्ते सा स्वकण्ठे तपस्विनम् ।
वृन्दाददर्श सँलग्नं द्विभुजं पुरुषोत्तमम् ॥४७॥
तं दृष्ट्वा प्राह सा कण्ठाद्विमुच्य भुजबन्धनम् ।
कथं तापसरूपेण त्वं मां मोहितुमागतः ॥४८॥
निशम्य वचनं तस्याः सान्त्वयन्प्राह तां हरिः ।
शृणु वृन्दारिके ! त्वं मां विद्धि लक्ष्मीमनोहरम् ॥४९॥

समय तुम्हारी सिद्धि के योग के कारण उस महारण से उसने मेरे कटे हुए शिर को यहाँ ला दिया । वह तुम्हारे शरीर के संयोग से पुनः जीवित हो गया । हे प्रिये बाले ! मेरे वियोग के कारण तुम दुःखी हो गयी थी ॥३८-३९॥ देवि ! मैं तुमको छोड़कर जो युद्ध मे चला गया उस अपराध को क्षमा कर देना; इन वचनों के द्वारा उसने वृन्दा को याद दिलाया ॥४०॥ उसके बाद ताम्बूलों, मनोविनोदों तथा सुन्दर अलङ्कारों से शुक्ल वृन्दा देवी सभी भोगों से युक्त हो गयी । उसने रति की कामना से अपने पति का गाढ़ा लिङ्गन करके उसको चूम लिया । मोह से उत्पन्न मोक्ष से भी अधिक सौख्य का वृन्दा ने अनुभव किया ॥४१-४२॥ भगवान् नारायण ने भी लक्ष्मीजी के भी प्रेमानन्द से अधिक आनन्द का अनुभव किया । वृन्दा भी वियोग जन्य दुःख का विनोद माधव में ही करती थी ॥४३॥ वृन्दा के ही साथ क्रीड़ा तथा मनोहर विलास रूपी वाणी के राजहंस बने हुए भगवान् विष्णु भी वृन्दा के रूप की भावना करने के कारण लक्ष्मीजी के विषय में निःस्पृह हो गये ॥४४॥ उस वन मे वृन्दा ने तुलसी का रूप धारण कर लिया । वृन्दा के शरीर के स्वेद से पृथिवी पर वह अत्यन्त पवित्र तुलसी के रूप में उत्पन्न हो गयी ॥४५॥ वृन्दा के सङ्ग से उत्पन्न सुख का अनुभव करके श्रीहरि कुछ दिनो मे अनुभव किए कि अब शिवजी का कार्य हो गया ॥४६॥ एक दिन सुरत क्रीड़ा के अन्त में वृन्दा ने देखा कि उसके गले से दो भुजाओं वाले पुरुषोत्तम लिपटे हुए है ॥४७॥ उनको देखकर अपने गले से उनकी भुजाओं के बन्धन को हटा कर वृन्दा ने कहा तुम तपस्वी का रूप बनाकर मुझको मोहित करने के लिए क्यों आ गये हो ?॥४८॥ उसकी बातों को सुनकर उसको सान्त्वना

तवभर्ताहरं जेतुं गौरीमानयितुं गतः । अहं शिवः शिवश्चाहं पृथक्त्वेन व्यवस्थितौ ॥
जालन्धरो हतः सङ्ख्ये भज मामधुनाऽनघे ! ॥५०॥

नारद उवाच

इति विष्णोर्वचः श्रुत्वा विषण्णवदनाभवत्। ततो वृन्दारिकाराजन्कुपिता प्रत्युवाचह ॥५१॥
रणे बद्धोऽसि येन त्वं जीवन्मुक्तः पितुर्गिरा ।
विविधैः सत्कृतोरत्नैर्युक्तंतस्यहतावधूः ॥५२॥
पतिर्धर्मस्य यो नित्यं परदाररतः कथम् ।
ईश्वरोऽपि कृतं भुङ्क्ते कर्मेत्याहुर्मनीषिणः ॥५३॥
अहं मोहं यथा नीता त्वया माया तपस्विना ।
तथा तव वधूं मायातपस्वीकोऽपि नेष्यति ॥५४॥
इति शप्तस्तथा विष्णुर्जगामादृश्यतां क्षणात् ।
सा चित्रशाला पर्यङ्कः स च तेऽथ प्लवङ्गमाः ॥५५॥
नष्टं सर्वं हरौ याते वनं शून्यं विलोक्य सा ।
वृन्दा प्राह सखीं पश्य जिह्मं तद्विष्णुना कृतम् ॥५६॥
त्यक्तं पुरं गतं राज्यं कान्तः संदेहतां गतः ।
अहं वने विदित्वैतत्क्व यामि विधिनिर्मिता ॥५७॥
मनोरथानां विषयमभून्मे प्रियदर्शनम्। प्राहः निःश्वस्य चैवोष्णंराज्ञी वृन्दातिदुःखिता ॥५८॥
मम प्रापतं हि मरणं त्वया हि स्मरदूतिके ।
इत्युक्ता सा तया प्राह मम त्वं प्राणरूपिणी ॥५९॥

प्रदान करते हुए श्रीहरि ने कहा वृन्दारिके तुम सुनो मैं लक्ष्मीपति हूँ ॥४९॥ तुम्हारा पति शिवजी को जीतने के लिए तथा गौरी को लाने के लिए गया है । मैं ही शिव हूँ और शिव मैं हूँ । हम दोनों शरीर से अलग-अलग हैं । हे अनघे ! जालन्धर युद्ध में मारा गया अब तुम मेरी पत्नी बन जाओ ॥५०॥ **नारदजी ने कहा—** भगवान् विष्णु के इस वचन को सुनकर वृन्दा दुःखी हो गयी । हे राजन् ! उसके बाद क्रुद्ध होकर वृन्दारिका ने कहा ॥५१॥ जिसने तुमको युद्ध में बांध दिया अपने पिता की बात मानकर तुम्हें जीवित छोड़ दिया । तुमको जिसने अनेक रत्नों से समादृत किया उसकी पत्नी का अपहरण करना उचित है क्या?॥५२॥ आप तो धर्म पति हैं पर पत्नी में कैसे आसक्त हो गये । मनीषियों ने कहा है कि ईश्वर को भी अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है ॥५३॥ तुमने माया से तपस्वी बनकर जिस तरह से मुझको मोहित किया है उसी तरह तुम्हारी भी पत्नी को कोई मायावी तपस्वी ले जायेगा ॥५४॥ इस तरह से अभिशप्त होकर भगवान् विष्णु क्षणभर में अदृश्य हो गये । वह चित्रशाला, वह पलङ्ग, वे सभी वानर ये सभी श्रीहरि के जाते ही विनष्ट हो गये । वन को शून्य देखकर वृन्दा ने अपनी सखी से कहा कि विष्णु के द्वारा किये गये कपट को देखो ॥५५-५६॥ मैंने नगर छोड़ दिया, राज्य भी चला गया, पति की भी मृत्यु हो गयी, मैं वन मे हूँ इस समस्त भाग्य निर्मित बातों को जानकर मैं कहाँ जाऊँ ॥५७॥ पति का दर्शन तो केवल अब तो स्मरण का ही विषय बन गया है । इस तरह से गर्म-गर्म श्वास लेकर अत्यन्त दुःखी वृन्दा ने कहा ॥५८॥

तस्यास्तथोक्तमाकर्ण्य इति कर्त्तव्यतां ततः ।
वने निश्चित्य सा वृन्दा गत्वा तत्र महत्सरः ॥६०॥
विहाय दुःखमकरोद्गात्रक्षालनमम्बुना । तीरे पद्मासनं बद्ध्वा कृत्वा निर्विषयं मनः ॥६१॥
शोषयामास देहं स्वं विष्णुसङ्गेन दूषितम्। तपश्चचार साऽत्युग्रं निराहारा सखी समम्॥६२॥
गन्धर्वलोकतो वृन्दामथागत्याप्सरोगणः ।
प्राह याहीति कल्याणि ! स्वर्गं मा त्यज विग्रहम् ॥६३॥
गान्धर्वं शस्त्रमेतत्त्रिभुवनविजयि श्रीपतिस्तोषमग्र्यं ।
नीतो येनेह वृन्दे ! त्यजसि कथमिदं तद्वपुः प्राप्तकामम् ॥
कान्तं ते विद्धि शूलीप्रवरशरहतं पुण्यलभ्यस्य भूषा ।
स्वर्गस्य त्वं भवाद्य द्रुतममरवनं चण्डि ! भद्रे ! भज त्वम् ॥६४॥
श्रुत्वा शास्त्रं वधूनां जलधिजदयिता वाक्यमाह प्रहस्य ।
स्वर्गादाहृतय मुक्ता त्रिदशपतिवधूश्चातिवीरेण पत्या ॥
आदौ पात्रं सुखानामहममरजिता प्रेयसी तद्वियुक्ता ।
निर्दुष्टा तद्यतिष्ये प्रियममृतगतं प्राप्नुयां येन चैव ॥६५॥
इत्युक्त्वा ससखी वृन्दा विससर्जाप्सरोगणान् ।
तत्प्रीतिपाशबद्धास्ता नित्यमायान्ति यान्ति च ॥६६॥
योगाभ्यासेन वृन्दाऽथ दग्ध्वा ज्ञानाग्निना गुणान् ।
विषयेभ्यः समाहृत्य मनः प्राप ततः परम् ॥६७॥

हे स्मरदूति ! अब तो मेरी मृत्यु आयी है । इस तरह से कहने पर स्मरदूति ने कहा तुम तो मेरी प्राण हो ॥५९॥ उसके इस बात को सुनकर वन में विद्यमान वृन्दा ने अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया । वह उस महान् सरोवर में जाकर ॥६०॥ दुख का परित्याग करके अपने शरीर को जल से धोयी । उसने अपने मन को निर्विषय बना लिया और पद्मासन लगाकर बैठ गयी ॥६१॥ विष्णु भगवान् के सङ्ग से दूषित अपने शरीर को उसने सुखा दिया । वह अपनी सखी के साथ निराहार रहकर तपस्या करने लगी ॥६२॥ उसके वाद गन्धर्व लोक से अप्सरायें वृन्दा के पास आयीं । उन सबों ने कहा शरीर का परित्याग करके स्वर्ग चली जाओ ॥६३॥ यह गान्धर्व शास्त्र त्रैलोक्य विजयी है भगवान् विष्णु को सर्वाधिक संतुष्ट करने वाला है । जिसने तुमको यहाँ लाया है, हे वृन्दे ! उस कृपा प्राप्त शरीर का त्याग क्यों करती हो । जानो शङ्करजी ने तुम्हारे पति को मार दिया है । अतएव पुण्य से प्राप्त होने वाली वस्तुओं के अलङ्कार स्वरूप देववन को शीघ्र अपना लो ॥६४॥ बंधुओं के शास्त्र को सुनकर वृन्दा ने जोर से हँसकर कहा मेरे वीर पति ने स्वर्ग से इन्द्र की पत्नी को लाकर उसे छोड़ दिया । मैं देवताओं को परास्त करने वाले अपने पति के प्रथम पात्र स्वरूपिणी उनसे वियुक्त हो गयी हूँ । निष्पाप मैं मुक्त हुए अपनी उसी पति को प्राप्त करने का प्रयास करूँगी ॥६५॥ इस तरह से कहकर अपनी सखी के साथ वृन्दा ने अप्सरा समूह को विदा कर दिया । उसके प्रेम पाश में बँधी हुयी ये सब प्रतिदिन आती और जाती थीं ॥६६॥ उसके बाद वृन्दा ने

दृष्ट्वा वृन्दारिकां तत्र महान्ताश्चाप्सरोगणाः ।
तुष्टुवुर्नभसस्तुष्टा ववृषुः पुष्पवृष्टिभिः ॥६८॥
शुष्ककाष्ठचयं कृत्वा तत्र वृन्दाकलेवरम् । निधायाग्निं च प्रज्वाल्य स्मरदूतीविवेशतम् ॥६९॥
दग्धवृन्दाङ्गरजसाबिम्बतद्गोलकात्मकम् ।
कृत्वा तद्भस्मनः शेषं मन्दाकिन्यां विचिक्षिपुः ॥७०॥
यत्र वृन्दा परित्यज्य देहं ब्रह्मपथं गता । आसीद्वृन्दावनं तत्र गोवर्धनसमीपतः ॥७१॥
देव्योऽथ स्वर्गमेत्य त्रिदशपतिवधूसत्त्वसंपत्तिमाहु-
र्देवीभ्यस्तन्निशम्य प्रमुदितमनसो निर्जराद्याश्च सर्वे ।
शत्रोर्दैत्यस्य हित्वा प्रबलतरभयं भीमभेरी निजघ्नुः
श्रुत्वा तत्रासनस्थः परिजननिवहोऽवाप शोभां शुभस्य ॥७२॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे जालन्धरोपाख्याने
वृन्दाया ब्रह्मपदप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सत्रहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

कथं जालन्धरो गौरीं हररूपधरो मुने । दृष्ट्वा चकार किं तत्र तन्मे कथय विस्तरात् ॥१॥

योगाभ्यास तथा ज्ञान रूपी अग्नि के द्वारा गुणों को भस्म करके विषयों से मन को निगृहीत करके परमपद को प्राप्त कर ली ॥६७॥ वृन्दारिका को वहाँ देखकर अप्सराओं के महानगण ने उसकी स्तुति की और आकाश से पुष्पों की वृष्टि की ॥६८॥ सूखे काष्ठ को एकत्रित करके स्मर दूती ने उस पर वृन्दा के शरीर को रखकर उसमें अग्नि लगा दिया ॥६९॥ जले हुए वृन्दा के शरीर की धूलि का गोला बनाकर उसके बचे भस्म को सबों ने गङ्गाजी में डाल दिया ॥७०॥ वृन्दा ने अपने शरीर का जहाँ पर परित्याग करके ब्रह्ममार्ग पर चली गयी वहीं पर गोवर्धन पर्वत के सन्निकट वृन्दावन है ॥७१॥ उसके पश्चात् देवियाँ वहाँ पर आकर इन्द्राणी को सत्त्व सम्पत्ति को सुनायीं । अप्सराओं के मुख से उसको सुनकर देवता आदि सबों ने अपने शत्रु के भय का परित्याग करके जोर से भेरी ताडन किया । परिजनों के साथ आसन पर बैठे हुए इन्द्र भी उसको सुनकर मङ्गलमय शोभा को प्राप्त किए ॥७२॥

इस तरह श्रीपद्म महापुराण के छठे उत्तर खण्ड के जालन्धरोपाख्यान के अन्तर्गत वृन्दा की परमपद की प्राप्ति वर्णन नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

माया शिव जालन्धर की परीक्षा के लिए पार्वतीजी द्वारा पहले अपनी सखी को उसके पास भेजा जाना

युधिष्ठिर ने कहा— हे मुने ! शङ्कररूप धारी जालन्धर ने गौरी को देखकर क्या किया इस बात

नारद उवाच

यदा मायाशिवस्तत्र प्रार्थयद् गिरिजां प्रति। ततः सा चुक्षुभे राजन्किञ्चिन्नोवाच तं प्रति ॥२॥
अनातुरस्य देवस्य प्राप्तस्य तपसा मया। न युक्तमिति निश्चित्य पार्वती नाह तं नृप ॥३॥

सा न तत्र प्रतीकारं दृष्ट्वा तस्य प्रपश्यतः ।
निर्गता तत उत्थाय ददर्शाकाशवाहिनीम् ॥४॥
गङ्गां वासोचितां मत्वा भवानी तपसे ययौ ।
पुराऽपितपसा लब्धोमयेशः साम्प्रतंतथा ॥५॥

इत्यव्रजच्चिन्तयन्ती सखीभिः सहिता ततः। पुरः क्षीरनिभां राजन्पार्वतीगगनात्परम्॥६॥
मन्दाकिनीं ददर्शाथ पतन्तीं मानसोत्तरे। हारमालामिवायान्तीं विविक्तां गगनस्रजः ॥७॥

मन्दाकिन्याः पयः पूरो ह्याकृष्टः स्वर्गतो यथा ।
श्रुतीनां पूरधारेव ब्रह्मणो वदनच्युता ॥८॥
दृष्ट्वा मुमोद तां गङ्गां स्नात्वा चालिसमन्विता ।
संपूज्य स्वतनुं पश्चान्निविष्टा स्वर्णदीतटे ॥९॥
परस्परमथालोक्य गौरी प्राह सखीं जयाम् ।
त्वं गच्छ मद्वपुः कृत्वा तत्समीपं सखि ! त्वर ॥१०॥
जानीहि तत्त्वं किं शम्भुर्यदि वाऽन्यो भविष्यति
यद्यसौ त्वां समालिङ्ग्य कुरुते चुम्बनादिकम् ॥११॥
तदा मायां समास्थाय जानीह्यसुरमागतम् ।
यदि चेत्त्वां प्रतिब्रूयान्मन्निमित्तं शुभाशुभम् ॥१२॥

को आप मुझे विस्तार से बतलायें ॥१॥ **नारदजी ने कहा—** जब उस माया शिव ने गौरी से प्रार्थना किया उस समय हे राजन् ! पार्वतीजी क्षुब्ध हो गयीं और वे कुछ भी नहीं बोली ॥२॥ मैने अनातुर देव को तपस्या से प्राप्त किया है अतएव यह उचित नही है, इस बात को निश्चित करके वे नही बोलीं ।३। उसके सामने उसका कोई प्रतिकार नहीं देखकर वे उठकर बाहर निकल गयीं और उन्होंने आकाशगङ्गा को देखा॥४॥ गङ्गा को अपने निवास के योग्य मानकर भवानी तपस्या करने के लिए चली गयीं । पहले भी मैंने तपस्या से शङ्करजी को प्राप्त किया था, इस समय भी उसी तरह प्राप्त करूँगी ॥५॥ इस तरह से विचार करती हुयी वे वहाँ से सखियों के साथ चली गयीं । हे राजन् ! उसके पश्चात् दूध की धारा के समान आकाश से मानसरोवर पर्वत पर गिरती हुयी मन्दाकिनी को उन्होंने देखा । लगता था जैसे आकाश माला से अलग हुयी हारमाला आ रही हो । जैसे मन्दाकिनी की जलधारा स्वर्ग से खींच ली गयी हो । अथवा ब्रह्माजी के मुख से जैसे श्रुतियों की धारा प्रवाहित हो रही है ॥६-८॥ उस गङ्गा को देखकर वे प्रसन्न हो गयीं और सखियों के साथ स्नान करके अपने शरीर की पूजा करके वे गङ्गातट में प्रवेश कर गयीं ॥९॥ परस्पर में एक दूसरे को देखकर गौरी ने जया नाम की सखी से कहा । हे सखि ! शीघ्रता करो । तुम मेरा शरीर धारण करके जाओ और पता लगाओ कि वे शम्भु हैं अथवा दूसरा कोई ? यदि वह तुम्हारा आलिङ्गन करके चुम्बन इत्यादि करता है तो समझना कि माया करके कोई असुर आया है,

असंशयं पिनाकी स्यादत्रागत्याभिधेहि माम् ।
इत्यादिष्टा जया देव्या गता गङ्गा धरान्तिकम् ॥१३॥
तामायान्तीं स दृष्ट्वा च भृशं मन्मथपीडितः ।
चकारा लिङ्गनं तस्या गौरीरूपेण भावयन् ॥१४॥
ततो जालन्धरः सद्यो वीर्यं स्वं प्रमुमोचह । अल्पेन्द्रियश्च संजातो वेगतः कुरुनन्दन ॥१५॥
तया स प्रोदितो दैत्यो न त्वं रुद्रो भविष्यसि ।
अल्पवीर्योऽधमाचारो नाहं गौरी हि तत्सखी ॥१६॥
इत्युक्त्वा निजमास्थाय रूपं सा प्राह तं पुनः ।
अनेन बतपापेनहतस्त्वं हि पिनाकिना ॥१७॥
इति ज्ञात्वा च सा प्राप्ता तत्र गत्वाऽब्रवीदुमाम् ।
देवि ! जालन्धरोह्येषन शम्भुस्तववल्लभः ॥१८॥
ततो भयार्ता हरवल्लभाऽभूद् द्रुतं विवेशाथ सरोजमध्ये ।
सख्यो भ्रमर्यः कमलेषु जाता भयेन जालन्धरजेन राजन् ! ॥१९॥
अत्रान्तरे वनगतामदृष्ट्वा तां नृपाङ्गनाम् । भीतास्तु रक्षकास्तस्याः सत्वरं रणमाययुः॥२०॥
ततः शुम्भेन ते पृष्टास्तं नत्वोचुः ससाध्वसाः ।
आत्मनः परिहारार्थे विष्णुमित्यसुरेश्वरम् ॥२१॥
श्रुत्वा वृन्दां हृतां त्रस्तो रुद्रात्त्यक्त्वाऽथ सङ्गरम् ।
शुम्भेन प्रेषितौ चण्डमुण्डौ जालान्धरं प्रति ॥२२॥
मानसोत्तरमागत्य दानवौ वेगवत्तरौ । हररूपधरं दैत्यमूचतुर्विटपान्तरे॥२३॥

यदि वह मेरे कारण तुमको भला-बुरा कहे तो समझना कि शिव ही आये हैं, और तुम शीघ्र आकर मुझे वतलाना । इस तरह की आज्ञा प्राप्त करके जया उस माया शिव के पास गयी ॥१०-१३॥ उसके आते हुए देखकर काम से अत्यन्त पीड़ित वह जया को गौरी समझकर उसका आलिङ्गन आदि किया ॥१४॥ उसके बाद जालन्धर का शीघ्र ही वीर्य स्खलन हो गया । हे कुरुनन्दन ! वह शीघ्र ही क्षीणेन्द्रिय हो गया॥१५॥ जया ने दैत्य से कहा तुम रुद्र नहीं हो सकते हो, हे अधम आचरण करने वाले ! मैं गौरी नहीं अपितु उसकी सखी हूँ ॥१६॥ उसके पश्चात् अपना रूप धारण करके उसने जालन्धर से कहा इसी पाप के कारण तुम शङ्कर के द्वारा मारे जाओगे ॥१७॥ इस बात को जानकर वह उमा के पास जाकर कही हे देवि ! यह जालन्धर है, यह शङ्कर नहीं है ॥१८॥ उसके पश्चात् पार्वतीजी भयभीत होकर कमल में प्रवेश कर गयीं । हे राजन् ! जालन्धर के भय से कमलों पर भ्रमरियाँ हो गयीं ॥१९॥ इसी बीच वन में गयी हुयी रानी वृन्दा को न देखकर उसके रक्षक शीघ्र ही रणस्थल में आये ॥२०॥ फिर शुम्भ के द्वारा पूछे जाने पर उन सबों ने प्रणाम करके अपनी रक्षा करने के लिए विष्णु को बतलाया ॥२१॥ वृन्दा के अपहरण को सुनकर भयभीत शुम्भ रुद्र से युद्ध करना छोड़कर चण्ड और मुण्ड को जालन्धर के पास भेजा ॥२२॥ वे दोनों दानव वेग पूर्वक मानसोत्तर पर्वत पर आकर शिवरूप धारी जालन्धर से वृक्ष के पीछे

किं तया नृपशार्दूल विदेशगतया श्रिया। अरयो यां न पश्यन्ति बन्धुभिर्यान भुज्यते ॥२४॥
जितः शुम्भो हतं सैन्यं देवरुद्रेण ते रणे । एह्येहिकुरु सङ्ग्रामं न त्वंप्राप्रोति पार्वतीम् ॥२५॥
पञ्चाननस्य महिषीं कथं प्राप्नोति जम्बुकः । अन्धकारः कथं राजन्प्राप्नोति सवितुःप्रभाम् ॥२६॥
तव जालन्धरात्पीठाद्धृता राज्ञी मुरारिणा । इति संश्रूयते वार्तातस्मात्त्वंकुरु सङ्गरम् ॥२७॥
रणे शर्वं विजित्याशु भव सर्वेश्वरेश्वरः । अथवा शिवनाराचैः खण्डितोयासि तत्पदम् ॥२८॥

इति जालन्धरः श्रुत्वा भाषितं चण्डमुण्डयोः ।
निःससार गिरेस्तस्मात्सक्रोधं रक्तलोचनः ॥२९॥
चण्डमुण्डौ समाश्वास्य त्यक्त्वा रूपं हरस्य च ।
गच्छञ्जालन्धरो मार्गे दुर्वारणमुवाचह ॥३०॥
पश्य दुर्वारणेदानीं तत्र यद्विष्णुना कृतम् ।
मायामाश्रित्य सा राज्ञी वृन्दा नीताऽऽत्मनः पदम् ॥३१॥
गृहे स्थितस्य जामातुर्विश्वसेन्नैव बुद्धिमान् ।
नूनं तस्मै प्रदत्त्वा च कन्यकां विसृजेद् बुधः ॥३२॥

जामातरं गृहे नैव स्थापयेत्सर्वथा नरः । धनदारादिकं सर्वं स गृह्णाति शनैः शनैः ॥३३॥

दुर्वारण उवाच

राजन्यत्क्रियते कर्म तत्तथैव तु भुज्यते । त्वं हर्तुमागतो गौरीं हरिणा ते हृता वधूः ॥
तस्य स्पष्टं वचः श्रुत्वा क्षणं मौनी व्यचिन्तयत् ॥३४॥

जालन्धर उवाच

किं प्रयामि हरं जेतुमथवा हरिमुल्बणम् । कार्यद्वये समुत्पन्ने यत्परं तत्प्रकथ्यताम् ॥३५॥

से कहा ॥२३॥ हे राजवर्य ! विदेश गयी हुयी लक्ष्मी से क्या लाभ है ? जिसको न तो शत्रु जान पाते हैं और बान्धव जिसका भोग नहीं कर पाते हैं ॥२४॥ हे देव ! रुद्र ने शुम्भ को परास्त कर दिया और सेना मार दिया आइये, संग्राम कीजिए आप पार्वती को नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥२५॥ सिंह की पत्नी को शृङ्गाल कैसे प्राप्त कर सकता है । राजन् ! अन्धकार सूर्य की प्रभा को कैसे प्राप्त कर सकता है?॥२६॥ तुम्हारे जालन्धर पीठ से विष्णु ने तुम्हारी रानी का अपहरण कर लिया है । यह बात सुनायी पड़ती है । अतएव तुम संग्राम करो ॥२७॥ शीघ्र ही शिव को परास्त करके सर्वेश्वर बन जाओ अथवा शिव के बाणों से मारे जाकर उनके लोक में जाओ ॥२८॥ इस तरह से चण्डमुण्ड की वाणी को सुनकर वह क्रोध से आँखे लाल करके उस पर्वत से वह चल पड़ा ॥२९॥ चण्ड और मुण्ड को आश्वस्त करके तथा शिव के रूप को त्याग कर मार्ग में जाते हुए जालन्धर ने दुर्वारण से कहा ॥३०॥ हे दुर्वारण ! तुम विष्णु के कार्य को तो देखो वह माया के बल से रानी को अपने लोक में ले गया ॥३१॥ बुद्धिमान् को चाहिए कि वह घर-जमाई पर कभी भी विश्वास न करे । बुद्धिमान को चाहिए कि वह उसको कन्या प्रदान करके विदा कर दे ॥३२॥ मनुष्य को चाहिए कि वह जामाता को अपने घर में न बसाये वह धीरे-धीरे धन तथा पत्नी आदि सब कुछ ले लेता है ॥३३॥ **दुर्वारण ने कहा—** हे राजन् ! जो जैसा कर्म करता

दुर्वारण उवाच

यदि यासि हरिं जेतुं हरः पृष्ठे हनिष्यति। हनिष्यन्ति रणे शूरा यातुं रुद्रो न दास्यति ॥३६॥
तस्मात्पशुपतिं जित्वा कृत्वा त्वं वश्यमात्मनः ।
पश्चात्प्रयाहि गोविन्द यदि जानासि तत्पदम् ॥३७॥
अधुना सत्वरं वीर याहि दैत्यान्महाबलान्। रणं कुरु महाघोरं यथा सम्पूज्यसे बुधैः॥३८॥
देशकालोचितं श्रुत्वा दुर्वारणवचस्तदा। ययौ जालन्धरो योद्धुं सह रुद्रेण योगिना ॥३९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे जालन्धरोपाख्याने जालन्धरस्य मायारूपपरित्यागो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अठारहवाँ अध्याय

नारद उवाच

अथ जालन्धरोऽपश्यत्कबन्धचयभीषणम्। रणं रुधिमांसौघमज्जामेदोऽस्थि दुर्गमम् ॥१॥
तत्र जालन्धरो दैत्यः प्रियाहरणदुःखितः। रणे विलोकयामास वृषस्थं पार्वतीपतिम् ॥२॥

है वह वैसा ही फल भोगता है । तुम गौरी का हरण करने के लिए यहाँ आये थे श्रीहरि ने तुम्हारी पत्नी का अपहरण कर लिया । उसकी स्पष्ट वाणी को सुनकर जालन्धर क्षणभर मौन होकर विचार किया । **जालन्धर ने कहा—** मैं पहले हर को जीतने के लिए चलूँ अथवा श्रीहरि को जीतने के लिए चलूँ । इन दोनों कार्यों में जो श्रेष्ठ हो उसे बतलाएँ ॥३४-३५॥ **दुर्वारण ने कहा—** यदि तुम हरि को जीतने के लिए जाते हो तो हर तुम पर पीछे से प्रहार करेंगे । युद्ध में वीर तुमको मार देंगे, रुद्र तुम्हें नहीं जाने देंगे ॥३६॥ अतएव तुम हर को जीतकर उनको अपनें वश में करके उसके बाद तुम श्रीहरि के पास तब जाना जब कि तुम उसके स्थान को जान लो ॥३७॥ हे वीर ! इस समय तुम महाबलवान् दैत्यों के पास चलो । ऐसा घोर संग्राम करो कि विद्वान् तुम्हारी पूजा करें ॥३८॥ उस समय दुर्वारण की देशकालोचित वाणी को सुनकर जालन्धर योगी रुद्र के साथ युद्ध करने के लिए चला गया ॥३९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के जालन्धरोपाख्यानान्तर्गत जालन्धर के माया परित्याग नामक सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

जालन्धर का शङ्करजी के साथ युद्ध

नारदजी ने कहा— उसके बाद जालन्धर ने कबन्ध समूह के कारण भयङ्कर तथा रुधिर मांस-मज्जा तथा मेदस के कारण दुर्गम बने हुए रणस्थल को देखा ॥१॥ प्रियतमा के हरण से दुःखी बना हुआ जालन्धर युद्ध में वृष पर बैठे हुए पार्वतीपति को देखा ॥२॥ भयङ्कर सर्पो के फणाओं से अलंकृत अङ्गों

घोराहिभोगेन विभूषिताङ्गं जटाकलापे शशिभूषणाङ्कितम् ।
नेत्राग्निकीलोपरिशोभिताङ्गं बिना रणं सम्प्रददर्श सिन्धुजः ॥३॥
शीघ्रं स्वरथमारुह्य समुद्रतनयस्तदा । संहृष्टः प्राह तं शुम्भं तापसो न हतस्त्वया ॥४॥
प्राह जालन्धरं शुम्भस्तपस्तेन महत्कृतम् । हन्तुं न शक्यतेऽस्माभिर्हरः सङ्ग्रामदुर्जयः ॥५॥
इति शुम्भोक्तमाकर्ण्य सिन्धुजः क्रोधमूर्च्छितः ।
हरं पद्मसहस्त्रेण दैत्यसैन्येन संवृतम् ॥६॥
गृहीत्वा कालकेदारं धनुर्जालन्धरो ययौ ।
बाणांस्तीक्ष्णानतिस्थूलाँल्लोहस्तम्भांस्तथा बहून् ॥७॥
मुमोच युधि दुर्धर्षोवर्षन्मेघ इवागमे । आयान्तं रुरुधुः सिन्धुसूनुं शम्भुगणा युधि॥८॥
ततो रुद्रेण रौद्रेश्च शरौघैस्ताडियो रुषा। रुद्रबाणैस्तदा तस्य कवचं भुवि पातितम्॥९॥
विवर्माऽपिबभौसोऽथ मेघमुक्तो यथाऽचलः ।
पुनर्जालन्धरस्याङ्गं शम्भुना कीलितं शरैः ॥१०॥
रुधिरं बहु सुस्राव जालन्धरशरीरतः । तेनाशु रुधिरौघेण प्लाविता सकला मही ॥११॥
ततो देवाभयं जग्मुर्दानवाश्च चकम्पिरे। त्यक्त्वा ते प्रमथा वीरा रणभूमिं प्रदुद्रुवुः॥१२॥
नद्या इव परामूर्तिः प्रसृता सर्वतोऽपि च । अथाहार्णवजो रुद्रं धनुर्धरवरो ह्यसि ॥१३॥
इदानीं तत्करिष्यामि येन गच्छसि संक्षयम्। इत्युक्त्वा कालकेदारं सशरं प्रतिगृह्य तत्॥१४॥
शीघ्रं संपूरयामास शरैर्नानाविधैः शिवम्। शिवः सहस्त्रकोटीभिः पूरिताङ्गो रणे वभौ ॥१५॥

वाले जटा समूह पर चन्द्रमा रूपी भूषण से भूषित, नेत्र की अग्नि की चिनगारी से सुशोभित अङ्गों वाले शिवजी को युद्ध नहीं करते हुए जालन्धर ने देखा ॥३॥ शीघ्र ही अपने रथ पर चढ़कर जालन्धर ने प्रसन्न हुए शुम्भ से कहा तुमने तपस्वी को नहीं मारा ॥४॥ शुम्भ ने जालन्धर से कहा उसने बहुत अधिक तपस्या की है उसको हमलोग नहीं मार सकते हैं । वे संग्राम में दुर्जय हैं ॥५॥ शुम्भ की इस वाणी को सुनकर क्रोध से व्याकुल जालन्धर एक हजार पद्म दैत्यों की सेना से घिरे हुए शङ्करजी से युद्ध करने के लिए कालकेदार नामक धनुष को लेकर गया । वह तीक्ष्ण बाणों और बहुत से मोटे लोहे के स्तम्भ को लेकर। बरसात के मेघों के समान बाणों की वर्षा करके आते हुए जालन्धर को युद्ध में शिव के गणों ने रोक लिया ॥६-८॥ उसके पश्चात् रुद्र ने क्रोध करके भयङ्कर बाणों से उसको मारा । शङ्करजी के बाणों से उसका कवच टूट पृथिवी पर गिर पड़ा ॥९॥ कवच से रहित भी वह मेघ से रहित पर्वत के समान सुशोभित होता था । उसके बाद शम्भु ने बाणों से उसके शरीर को कीलित कर दिया ॥१०॥ जालन्धर के शरीर से बहुत अधिक रक्त निकला और उस रक्त से सारी पृथिवी भींग गयी ॥११॥ उसके पश्चात् देवता अभय हो गये और दानव काँप गये । वे वीर पर्वत को छोड़कर रणभूमि में दौड़कर चले आये॥१२॥ नदियों के दूसरी मूर्ति के समान वे सर्वत्र फैल गये । इसके पश्चात् जालन्धर ने कहा तुम श्रेष्ठ धर्नुधर हो॥१३॥ अब मैं ऐसा करूँगा कि तुम्हारा नाश हो जायेगा । इस तरह से कहकर उसने बाणों के साथ कालकेदार धनुष को लेकर ॥१४॥ शिवजी को शीघ्र ही अनेक प्रकार के बाणों से छेद दिया । शिवजी के भी हजारों

विहङ्गैर्यथाकाशं वृक्षैरिव महागिरिः । दैत्यमुक्तैस्तुतैर्बाणैर्दृष्ट्वा व्याप्तं महेश्वरम्॥१६॥
वीरभद्रस्तथा कोपाज्जालन्धरमधावत । अपीडयदमेयात्मा समुद्रतनयं बली ॥१७॥
जालन्धरोऽथ संक्रुद्धो विध्यन्बाणैः सहस्त्रशः ।
धनुः शरान्रथं छत्रं सारथिं तिलशः शरैः ॥१८॥
चकार वीरभद्रस्य सिन्धुसूनुः प्रतापवान् । वीरभद्रोऽथ विरथो हतवान्गदयाब्धिजम् ॥१९॥
तथैव गदया सोऽपि तं हत्वा पातयद्भुवि । गदाप्रहारपतितमालोक्याति विमूर्छितम्॥२०॥
मणिभद्रोऽथ समरे जालन्धरमधावत्। अतिक्रुद्धं तमायान्तं दृष्ट्वा दैत्यो महारणे ॥२१॥
शरैर्व्यस्तोपकरणं स चकार नदीसुतः। अथ मूर्छां परित्यज्य उत्तस्थौ सिंहवन्नदन् ॥२२॥
वीरभद्रस्ततः कोपान्मणिभद्रः प्रतापवान् । जघ्नतुः पर्वताभ्यां तौ व्योमस्थं तटिनीसुतम्॥२३॥
तदङ्गे पतितौ दृष्ट्वा पर्वतौ विनिनद्य च । जघान मुष्टिपातेन वीरभद्रो नदीसुतम् ॥२४॥
मणिभद्रश्चरणयोर्धृत्वा सागरनन्ददम् । स्यन्दनाद् भ्रामयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥२५॥
मणिभद्रगृहीतोऽपि दैत्यराट् स महाबलः । हत्वा चरणघातेन मणिभद्रमपातयत् ॥२६॥
जालन्धरो महाबाहुर्वीरभद्रं च मुष्टिना। अथागतः परिवृतोगणैर्नन्दिकेश्वरः ॥२७॥
शुम्भस्तमागतं दृष्ट्वा रुरोध सह सैनिकैः । द्वन्द्वयुद्धैरथाजग्मुर्गणा दैत्यैः परस्परम्॥२८॥
शुम्भः शिलादजं राहुर्महाकालं रणे ययौ । कोलाहलं निशुम्भोऽथ केतुः कालमधावत ॥२९॥
शैलोदरो गुहं जम्भो माल्यवन्तं महाबलः । महापार्श्वो ययौ चण्डं चण्डीशो रोमकण्टकम्॥३०॥

करोड़ों बाणों से छिदे हुए अङ्ग सुशोभित होते थे ॥१५॥ पक्षियों से व्याप्त आकाश के समान वृक्षों से व्याप्त महापर्वत के समान जालन्धर द्वारा छोड़े गये बाणों से व्याप्त शङ्करजी को देखकर ॥१६॥ क्रोध करके वीरभद्र जालन्धर के प्रति दौड़ पड़े । और अप्रमेय पराक्रम वाले वे जालन्धर को पीड़ित किए॥१७॥ उसके बाद जालन्धर क्रोध करके हजारों बाणों से वीरभद्र के धनुष, बाण, छत्र, सारथि तथा रथ को तिल के समान काट दिया । रथ विहीन होकर वीरभद्र ने जालन्धर को गदा से मारा ॥१८-१९॥ उसी तरह से जालन्धर ने भी वीरभद्र को गदा से मारकर भूमि पर गिरा दिया । गदा के प्रहार से गिरे हुए तथा अत्यन्त मूर्छित हुए उनको देखकर मणिभद्र भी जालन्धर के प्रति दौड़ पड़े । उस युद्ध में अत्यन्त क्रुद्ध मणिभद्र को आते हुए देखकर जालन्धर उनको बाणों से व्यस्त उपकरण वाला बना दिया । उसके बाद मूर्छा का परित्याग करके सिंह के समान गर्जना करते हुए वीरभद्र तथा मणिभद्र दोनों ने आकाशस्थ जालन्धर को दो पर्वतों से मारा ॥२०-२३॥ उसके शरीर पर गिरे हुए पर्वतो को देखकर वीरभद्र ने जालन्धर को मुक्के से मारा ॥२४॥ मणिभद्र ने रथ से जालन्धर के पैर को पकड़कर अद्भुत प्रकार से उसको घुमाया ॥२५॥ मणिभद्र के द्वारा पकड़े जाने पर भी महाबलवान् जालन्धर ने उनको अपने चरणों के प्रहार से गिरा दिया। और उसने मुक्के के प्रहार से वीरभद्र को मारकर गिरा दिया । उसके पश्चात् गणों के साथ नन्दिकेश्वर आये ॥२६-२७॥ उनको आये हुए देखकर शुम्भ ने सैनिकों के साथ उनको रोका । और शिवगणों का दैत्यों के साथ द्वन्द युद्ध होने लगा ॥२८॥ शुम्भ ने शिला से और राहु ने महाकाल से युद्ध किया । निशुम्भ कोलाहल से युद्ध करने लगा तथा केतु काल से युद्ध करने लगा ॥२९॥ शैलोदर कार्तिकेय से महाबलवान् जम्भ माल्यवान् से, महापार्श्व चण्ड से तथा चण्डीश रोमकण्टक से युद्ध करने लगे ॥३०॥ विकटास्य भृङ्गी

विकटास्योऽथ वै भृङ्गिमुरुनेत्रो विनायकम्। एवं दैत्येश्वरैः सार्द्धं गणानामधिपाययुः ॥३१॥
अथशुम्भायुधैर्बाणैः प्रहतश्च शिलादजः। चूर्णीचकाराद्रिशृङ्गं कपितुण्डो महत्तरैः ॥३२॥

शुम्भस्तेनार्दितः शक्त्या शिलादं च जघान तम् ।
महाकाले जघानाथ तं राहुं रणमूर्द्धनि ॥३३॥
शक्त्याऽथ तस्य हतवान्स्यन्दनं समहाद्रिणा ।
कोलाहलो हतः शक्त्या निशुम्भेन प्रतापवान् ॥३४॥

शक्तिं गृहीत्वा ह्यहनद्रथं सारथिनां सह । विरथेनाथ दैत्येन भृशं क्रुद्धेन संयुगे ॥३५॥
कोलाहलोऽसुरेन्द्रेण सहस्रफणिना हतः । तं हत्वा चातिवेगेन रथं चान्यमुपागतः ॥३६॥

फणिचक्रहतः सङ्ख्ये क्षणान्मूर्छां विहाय च ।
स्वरथाच्छीघ्रमुत्तीर्य गृहीत्वा खड्गचर्मणी ॥३७॥

सर्वं चक्रे निशुम्भस्य सरथाद्यसिनापृथक् । पुनः स्वरथमारुह्य दैत्यं बाणैरताडयत्॥३८॥
निशुम्भोऽप्यतिरोषाच्च तत्पराक्रमविस्मितः। शक्त्या महाबलस्तस्यरथं साश्वं न्यषूदयत्॥३९॥
कोलाहलो रणेऽथावन्निशुम्भं विरथो बली। गतः स सरथं चक्रे विरथं भुजबन्धनात् ॥४०॥

केतुपुच्छं गृहीत्वा च भ्रामयामास चाम्बरे ।
कालश्चिक्षेप सोऽप्यद्रिं स चिच्छेद गिरिं ज्वात् ॥४१॥

तं नगं चूर्णितं दृष्ट्वा ताडयामास मुष्टिना । कालश्चूर्णितसर्वाङ्गःकेतुना प्राद्रवद्भयात् ॥४२॥
शैलोदरस्तथा स्कन्दं जघान गदयोरसि। षडाननोऽपि तं शक्त्या हत्वा भूमावपातयत् ॥४३॥

से, उरुनेत्र विनायक से, इस तरह बड़े-बड़े दैत्यों से गणेश्वर युद्ध करने लगे ॥३१॥ उसके पश्चात् शुम्भ के आयुधों और वाणों से मारे गये शिलादज ने पर्वत शिखर को अपने वानर मुख से चूर-चूर कर दिया॥३२॥ उसके द्वारा पीड़ित हुए शुम्भ ने शक्ति से शिलाद को मारा । उसके बाद महाकाल ने युद्ध में राहु को मारा ॥३३॥ उसके पश्चात् शक्ति तथा महापर्वत के द्वारा उन्होंने उसके रथ को नष्ट कर दिया। निशुम्भ ने प्रतापी कोलाहल को मार दिया ॥३४॥ उन्होंने शक्ति को लेकर सारथि के साथ रथ को मारा। रथ से रहित वह दैत्य युद्ध में अत्यन्त क्रुद्ध हो गया । कोलाहल पर हजार फणों वाले असुरेन्द्र ने प्रहार किया । उनको मारकर वह अत्यन्त वेग के साथ दूसरे रथ के पास गया ॥३५-३६॥ फणिचक्र के द्वारा युद्ध में मारे जाकर क्षणभर में मूर्छा का परित्याग करके, अपने रथ से उतरकर खड्ग तथा चर्म लेकर॥३७॥ उन्होंने अपनी तलवार से निशुम्भ के रथ आदि को पृथक्-पृथक् कर दिया उसके बाद अपने रथ पर चढ़कर उन्होंने दैत्य को बाणों से मारा ॥३८॥ उनके पराक्रम से विस्मित होकर महाबली निशुम्भ भी अत्यन्त क्रोध करके शक्ति के द्वारा उनके घोड़े के साथ रथ को विनष्ट कर दिया ॥३९। रथ से रहित तथा बलवान् कोलाहल युद्ध में निशुम्भ की ओर दौड़े और जाकर अपनी भुजाओं में दबाकर उसके रथ को तोड़ दिए ॥४०॥ उसके बाद केतु के पूंछ को पकड़कर उन्होंने आकाश में घुमाया । काल ने पर्वत को फेंका तो उसको उन्होंने वेग पूर्वक तोड़ दिया ॥४१॥ उस पर्वत को चूर-चूर हुए देखकर उन्होने मुक्के से मारा। केतु के द्वारा सारे अङ्गों के चूर-चूर कर दिए जाने के कारण काल भयभीत होकर भाग गये ॥४२॥ उसी

शक्तिप्रहारेण मृतं दानवं वीक्ष्य षण्मुखः। जगर्ज तत्र वैचित्र्यं यथा क्रौञ्चे विदारिते ॥४४॥
माल्यवानथ बाणौघैर्जम्भमभ्यर्दयद्रणे ।
जम्भोऽपि सायकैस्तीक्ष्णैर्भित्त्वा तं मूर्च्छितं जहौ ॥४५॥
महापार्श्वो रथं धृत्वा बाणौघैर्वाजिवर्जितम् । लीलयैव च खे नीत्वा व्यश्वं चण्डमपातयत्॥४६॥
व्यश्वं रथं विलोक्याथ ततश्चण्डोग्रहीद्गजम् । आपतन्तं महापार्श्वं चण्डस्तं गदयाऽहनत् ॥४७॥
अचिन्त्येव गदापातं सोऽसुरो भृशदारुणः । प्रहत्य मुष्टिना चण्डं पातयामास भूतले ॥४८॥
चण्डीश शस्त्राभिहतोरोमकण्ठोमहासुरः । चण्डीशं पादयोर्धृत्वा रथमूर्ध्नि न्यपातयत् ॥४९॥
पपात सहसा भूमौ ययौ तं भीषणेक्षणः । उरुनेत्रेण समरे हतो लम्बोदरः शरैः ॥५०॥
दन्तेनोरसि तं हत्वा पातयामास भूतले । उरुनेत्रःक्षणाच्छान्तिमागत्याशु रथं क्षणात् ॥५१॥
जघान मुद्गरेणासौ मूर्ध्नि सिन्दूरमण्डिते । गणेश्वरः पट्टिशेन जघानोरसि दानवम् ॥५२॥
तन्मुखादथ निष्क्रान्तो नवशीर्षोऽसुरो महान् ।
अष्टादशभुजो राजन्सोऽप्यधावत शाङ्करिम् ॥५३॥
नवक्षीर्षोरुनेत्राभ्यां रणेरुद्धो विनायकः । जर्जरीकृतदेहोऽपि जग्राह परशुं रुषा ॥५४॥
तेन चिच्छेद शस्त्राणि तयोराजौ गणेश्वरः ।
रुद्धं गणेश्वरं दृष्ट्वा ताभ्यां सङ्कुचेऽथ षण्मुखः ॥५५॥
शीघ्रमागत्य सेनानीर्जघान नवशीर्षकम् । नवशीर्षं रणे हत्वा चोरुनेत्रमधावत ॥५६॥

तरह शैलोदर ने गदा से स्कन्द के हृदय पर प्रहार किया । कार्तिकेय ने भी शक्ति के द्वारा प्रहार करके शैलोदर को पृथिवी पर गिरा दिया ॥४३॥ शक्ति के प्रहार से मरे हुए उस दानव को देखकर षडानन क्रौञ्च पर्वत को विदीर्ण करते समय जैसे विचित्र गर्जना किए थे वैसी ही गर्जना किए ॥४४॥ उसके बाद माल्यवान् ने बाण समूह से जम्भ को युद्ध में मसल दिया । जम्भ ने भी तीक्ष्ण बाणों से छेद कर मूर्छित करके छोड़ा ॥४५॥ महापार्श्व भी अश्वों से रहित रथ को आकाश में लेजाकर उसको चण्ड के ऊपर पटक दिए ॥४६॥ अश्वहीन रथ को देखकर चण्ड ने हाथी को उठाया । आते हुए महापार्श्व को चण्ड ने अपनी गदा से मारा ॥४७॥ उस गदा के प्रहार की परवाह किए बिना ही वह भयङ्कर दानव चण्ड पर मुक्के से प्रहार करके उनको पृथिवी पर गिरा दिया ॥४८॥ चण्डीश के शस्त्रों से मारे जाकर रोमकण्ठ नामक महाअसुर चण्डीश के पैर को पकड़कर रथ के ऊपर पकट दिया ॥४९॥ वे सहसा पृथिवी पर गिर पड़े तो उनके पास भीषणेक्षण गये । उरुनेत्र नामक दैत्य ने युद्ध में लम्बोदर को बाणों से मारा ॥५०॥ उसने अपने दाँत से उनके हृदय पर प्रहार करके उनको पृथिवी पर गिरा दिया । उरुनेत्र क्षणभर में क्षान्ति के रथ पर आया और उसने उनके सिन्दूर मण्डित शिर पर मुद्गर से प्रहार किया । गणेश्वर ने पट्टिश से दानव के हृदय पर प्रहार किया ॥५१-५२॥ उस समय उसके मुख से नव शिरों वाला महान् असुर निकला । हे राजन् ! उसकी अठारह भुजाएँ थीं । वह भी शङ्करजी के पुत्र पर टूट पड़ा ॥५३॥ नवशीर्ष तथा उरुनेत्र दोनों के द्वारा रुद्ध विनायक, शरीर से जर्जर हो जाने पर क्रोध कर परशु धारण कर लिए ॥५४॥ युद्ध में गणेश्वर ने फरसे से उन दोनों के शस्त्रों को काट डाला । उन दोनों के द्वारा युद्ध में गणेश्वर को देखकर कार्तिकेय ॥५५॥ शीघ्र आकर नवशीर्ष को मारे । नवशीर्ष को युद्ध में मारकर वे उरुनेत्र पर टूट पड़े॥५६॥

स्कन्दः स्वशक्तिघातेन पातयामास तं नृप ! ।
पश्यञ्जालन्धरः स्कन्दं ययौ सैन्येन संवृतः ॥५७॥
पुत्रप्रीत्याऽसुरान्हन्तुं सगणः शङ्करोऽपि च। ततो घोरतरं युद्धमभूदद्भुतसैन्ययोः ॥५८॥
हरसिन्धुजयोर्युद्धे गतप्राणेव रोदसी। अथ जालन्धरः क्रुद्धो बाणं संधाय दारुणम्॥५९॥
सहस्रं शतसङ्ख्याकैः पत्रैः सर्वत्र भूषितम्। दैत्येन्द्रस्तेन बाणेन ललाटेऽताडयच्छिवम्॥६०॥
ममज्जापुङ्खमर्यादं ललाटे शङ्करस्य च। भाले शशाङ्कवच्छम्भोः स रराज महाप्रभः ॥६१॥
यथाऽऽदित्यो हि धर्मान्ते सन्ध्याकालेऽम्बुदागमे ।
अथ रुद्रो महाबाणं जग्राह ज्वलनोपमम् ॥६२॥
यस्य वेगेतु पवनःफले यस्याग्निभास्करौ। कालो ग्रन्थिषु सर्वेषु शरेदेवी धरास्थिता ॥६३॥
हरस्तेन शरेणाशु विव्याघ हृदि सिन्धुजम्। तेन बाणप्रहारेण रुधिरौघपरिप्लुतः॥६४॥
पपात शरभिन्नाङ्गो वज्राहत इवाचलः। तदा दैत्याः समाक्रन्दज्जगर्जुः प्रमथास्तथा॥६५॥
सिन्धुजं मूर्च्छितं दृष्ट्वा रुरुधुर्दानवाः शिवम् ।
रक्षार्थमुद्यताः केचिन्केचित्तं परितः स्थिताः ॥६६॥
यावज्जालन्धरो मूर्च्छां प्राप्तो वारिधिनन्दनः ।
तावद्रुद्रेण नाराचैर्हता जालन्धरी चमूः ॥६७॥
चिराज्जालन्धरस्त्यक्त्वा मूर्च्छां सैन्यं हतं नृप ! ।
दृष्ट्वा भयान्वितः सेनां विकीर्णां च तथा रणे ॥६८॥

हे राजन् ! अपनी शक्ति के प्रहार से उरुनेत्र को गिरा दिया । स्कन्द को देखकर जालन्धर अपनी सेना के साथ उससे युद्ध करने गया ॥५७॥ पुत्र के प्रेम के कारण शङ्करजी भी असुरों को मारने के लिए अपने गणों के साथ वहाँ गये । उसके पश्चात् उन दोनों की अद्भुत सेनाओं में अत्यन्त भयङ्कर युद्ध हुआ ॥५८॥ शङ्करजी तथा जालन्धर के युद्ध में तो जैसे भूलोक और अन्तरिक्ष लोक ही निष्प्राण हो गये ! उसके पश्चात् क्रुद्ध होकर जालन्धर ने भयङ्कर बाण का सन्धान किया वह एक लाख पत्रों से सर्वत्र अलंकृत था । जालन्धर ने उस बाण से शिव के ललाट पर प्रहार किया ॥५९-६०॥ वह बाण पुङ्ख पर्यन्त शिव के ललाट में धस गया । महाकान्ति सम्पन्न वह शङ्करजी के ललाट में चन्द्रमा के समान सुशोभित हुआ॥६१॥ ग्रीष्म के अन्त में सन्ध्या काल में सुशोभित होने वाले आदित्य के समान वह शोभता था । इसके वाद शिवजी अग्नि के समान महाबाण को उठाये ॥६२॥ उसके वेग में पवन तथा फाल में अग्नि एवं सूर्य का निवास था । सभी ग्रन्थियों में काल तथा शर में भूदेवी का निवास था ॥६३॥ उसी बाण से शङ्करजी ने जालन्धर के हृदय को बेध दिया । उस बाण के प्रहार से रक्त की धारा बह चली । बाण से विदीर्ण अङ्गों वाला जालन्धर वज्र से मारे गये पर्वत के समान गिर पड़ा । उस समय दैत्य चिल्लाने लगे और प्रमथ गण गर्जने लगे ॥६४-६५॥ जालन्धर को मूर्छित देखकर दानवों ने शिवजी को घेर लिया । कुछ उसकी रक्षा करने लगे और कुछ उसके चारों ओर खड़े हो गये ॥६६॥ जव तक जालन्धर मूर्छित रहे तव तक शिवजी ने उसकी सेना को बाणों से मार डाला ॥६७॥ दीर्घ काल के बाद मूर्छा से जगकर जालन्धर ने

ततःकाव्यं स सस्मार मनसा परमंगुरुम् । स्मृतस्तेन त्वरन्प्राप्तःकविर्जालन्धरंप्रति ॥६९॥
स्वस्तिकृत्वा जगादाथ भार्गवःसिन्धुनन्दनम् ।
किं करोमि महाराज तवकार्यं महाबल ॥७०॥

नारद उवाच

इति काव्यवचःश्रुत्वा भार्गवं बहुमानयन् । नत्वा गुरुमुवाचाथ राजा जालन्धरस्तथा ॥७१॥

राजोवाच

जीवयैतान्मृताञ्छुक दैत्यान्सर्वान्समन्ततः । इत्युक्तः सिन्धुजेनाजौ सैन्यं तत्र व्यलोकयत् ॥७२॥
पञ्चविंशत्सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः । दैत्याङ्गरथसंकीर्णमुपर्युपरि पार्थिव !॥७३॥
उच्छ्रये पञ्चनवतियोजनानां महींचिताम् । योधवाहनदेहाद्यैरिव पूर्णा धरां ततः ॥७४॥
मन्त्रोदकेन चाभ्युक्ष्य दैत्यानुत्थापयत्कविः । यावद्रुद्रो जटाजूटं बबन्धभुजगैर्दृढम् ॥७५॥
तावत्काव्येनतत्सैन्यंमन्त्रेणोत्थापितं नृप । व्याघ्रान्यथाकेसरिणोगजेन्द्राःशूकरान्यथा ॥७६॥
आगतान्दानवान्दृष्ट्वा चिन्तयामास शङ्करः । किमेतदिह संजातं मृतान्सृजति कुत्रचित् ॥७७॥
ददर्श चिन्तयन्काव्यमिति तस्मिन्रणेभवः । जीवयन्तं रणे दैत्यान्धावन्तं वेगवत्तरम् ॥७८॥
ततःक्रुद्धो महादेवःशुकंहन्तुं मनोदधे । त्रिशूलिनमनुज्ञाय रहश्चोवाच तं कविः ॥७९॥
ब्राह्मणोऽहं कथं हंसि सर्वविद्याविशारदम् । ब्रह्महत्या मयि हते तव रुद्र ! भविष्यति ॥८०॥
इति श्रुत्वा कवेर्वाक्यं शूलं तत्याज शङ्करः ।
स्मृत्वा तत्पूर्ववृत्तान्तं यल्लग्नं ब्रह्मणःशिरः ॥८१॥

सेना को मारी हुयी देखकर भयभीत हो गया तथा रण में तितर-बितर सेना को देखा ॥६८॥ उसके बाद उसने मन से अपने परम गुरु शुक्राचार्य को स्मरण किया । स्मरण करते ही शुक्राचार्य जालन्धर के पास आये ॥६९॥ मङ्गल वाचन करके शुक्राचार्य जालन्धर से कहे हे महाबलवान् राजन् ! मैं आपका कौन सा कार्य करूँ ॥७०॥ **नारदजी ने कहा—** शुक्राचार्य की इस वाणी को सुनकर उनका अत्यन्त समादर करते हुए जालन्धर ने उनको प्रणाम करके कहा ॥७१॥ **राजा जालन्धर ने कहा—** हे शुक्राचार्य ! आप इन मरे हुए दैत्यों को जीवित कर दें । जालन्धर के इस तरह कहने पर शुक्राचार्य ने सेना को देखा॥७२॥ हे राजन् ! पच्चीस हजार योजन पर्यन्त दैत्यों के शरीर तथा रथ एक के ऊपर एक सौ पच्चानवे योजन ऊँची पृथिवीं भर गयी थी । योधा वाहन तथा शरीरों आदि से मानों पृथिवी भर गयी थी ॥७३-७४॥ शुक्राचार्य ने जल छिड़ककर दैत्यों को जीवित कर दिया । जब तक रुद्र ने सर्पों के बन्धन से अपने जटा-जूट को कसकर बाँधा, उतने में ही शुक्राचार्य ने उस सेना को जीवित कर दिया । व्याघ्र सिंह गजेन्द्र तथा शूकर के समान आये हुए दानवों को देखकर शङ्करजी ने सोचा ये मरे हुए जीवित कैसे हो गये ? कौन यह कर रहा है ?॥७५-७६॥ इस तरह से सोचते हुए शङ्करजी ने शुक्राचार्य को देखा कि वे दैत्यो को जीवित कर रहे हैं और वेग से दौड़ रहे हैं ॥७७-७८॥ उसके बाद क्रुद्ध होकर शङ्करजी शुक्राचार्य को मारना चाहे त्रिशूलधारी शङ्करजी को शुक्राचार्य ने कहा ॥७९॥ मैं सभी विद्याओं को जानने वाला ब्राह्मण हूँ मुझे क्यों मारते हैं । मुझको मारने पर आपको ब्रह्महत्या लग जायेगी ॥८०॥ शुक्राचार्य की इस बात को सुनकर

ब्राह्मणो न हि हन्तव्यो हरन्प्राणानपि प्रियान् ।
अयं तु जीवयन्दैत्यान्निग्राह्यः सर्वथा मया ॥८२॥
तस्मादेनं क्षिपाम्याशु स्त्रीयोनौ दैत्यजीवनम् ।
एवमुक्तवतः शम्भोस्तृतीयनयनाद् द्रुतम् ॥८३॥
कृत्या विवासाश्चात्युग्रा मुक्तकेशी महोदरा। स्थूललम्बस्तनी योनिदंष्ट्रा लोचनभीषणा ॥८४॥
आज्ञापयेति स तया प्रोक्तस्तामब्रवीच्छिवः । कृत्ये ! त्वं दानवाचार्यं स्वयोनौ क्षिप दुर्मतिम्॥८५॥
यावज्जालन्धरं हन्मि तावदेनं भगे वह । हते जान्लधरेदैत्ये पश्चान्निस्तीर्य मोचय ॥८६॥
हरेणोक्तेति सा कृत्या भार्गवं समधावत । पपातभूमौ तां दृष्ट्वा कविर्दैत्याः प्रदुद्रुवुः ॥८७॥
केशेष्वाकृष्य धुन्वाना नग्नमालिङ्य भार्गवम् ।
योनौ दधार सा कृत्या हसन्ती जयनन्दन ॥८८॥
भगेक्षिप्तंगुरुंदृष्ट्वायावज्जालन्धरोऽसुरः । संदधेमार्गणांस्तावत्साकृत्याऽदृश्यतांगता ॥८९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिरनारदसंवादे जालन्धरोपाख्याने शुक्रयोनिप्रवेशो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

शङ्करजी ने त्रिशूल को त्याग दिया । ब्रह्माजी का जो शिर सट गया था उसकी उनको याद आ गयी॥८१॥ यदि प्राणापहार भी कर रहा हो तो भी ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिए । अतएव दैत्यों को जीवित करने वाले को मुझे निगृहीत कर देना चाहिए ॥८२॥ अतएव दैत्यों को जिलाने वाले इसको मैं स्त्री की योनि में डाल देता हूँ । इस तरह से शङ्करजी के कहते ही उनके तीसरे नेत्र से कृत्या निकली वह नग्न थी अत्यन्त उग्र थी । उसके केश खुले हुए तथा उसका बहुत बड़ा पेट था । उसके स्तन लम्वे और मोटे थे । उसकी योनि में दाँत थे और नेत्र भयङ्कर थे ॥८३-८४॥ उसने कहा आप आज्ञा दें तो शिवजी ने कहा कृत्ये ! तुम दुष्ट शुक्राचार्य को अपनी योनि में डाल दो ॥८५॥ जब तक मैं जालन्धर को मार न लूँ तब तक इनको तुम अपनी योनि में ही धारण किए रहना । जालन्धर के मारे जाने के बाद इनको निकाल कर छोड़ देना ॥८६॥ शङ्करजी के इस तरह से कहने पर कृत्या शुक्राचार्य जी के पास दौड़ी । उसको देखकर शुक्राचार्य गिर पड़े ॥८७॥ उनके केश को पकड़कर घुमाती हुयी वह नग्न शुक्राचार्य का आलिङ्गन करके हँसती हुयी उनको अपनी योनि में रख ली ॥८८॥ शुक्राचार्य को योनि में डाले हुए देखकर जालन्धर ने जब तक बाणों का संधान किया तब तक वह अन्तर्धान हो गयी ॥८९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के जालन्धरोपाख्यानान्तर्गत शुक्राचार्य के योनि में प्रवेश नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

उन्नीसवाँ अध्याय

श्रीनारदउवाच

अथ जालन्धरःप्राह रक्षात्मानमितःशिवम्। शिवाद्यत्वां क्षिपाम्याशु यत्रास्ते मधुसूदनः ॥१॥
पश्चाद्ब्रह्माणमाकृष्य पातयिष्यामि सागरे। धृतेषु युष्मासु यदा तदा सर्वेश्वरो ह्यहम्॥२॥
इत्युक्त्वा सैन्यसंभारं न्यस्य शुम्भासुरादिषु ।
भटैर्गुप्तं निशुम्भाद्यैश्चतुरङ्गमनन्तकम् ॥३॥
शुम्भो निशुम्भःफेङ्कारो फेरुण्डो धूम्रलोचनः ।
केतुर्बिडालजङ्घश्च राहुर्दुर्वारणा यमः ॥४॥
कालासुरोऽथ लवणो भूमिरेतोऽन्धकासुरः ।
रक्तवीर्यादयश्चण्डी चामुण्डी दैत्यपवुङ्गवाः ॥५॥
सर्वनिवोद्यतान्दृष्ट्वा सङ्ख्ये दानवपुङ्गवान्। रुरुधुः समरे राजन्वीरभद्रादयो गणाः॥६॥
ततो युद्धमभूद्धोरं तुमुलं लोमहर्षणम्। पतन्ति प्रमथा यत्र दैत्याश्चापि क्षतापुराः ॥७॥
अथ शुम्भादिभिर्दैत्यैः सर्वशस्त्रैर्महामृधे। हताःपेतुर्गणाश्चान्ये पलायांचक्रिरे नृप !॥८॥
गणान्विजित्य समरे रुरुधुर्दानवाः शिवम्। वर्षन्तः शरधाराभिर्घना मेरुगिरिं यथा ॥९॥
ततः पिनाकमाकृष्य वृषभोपरि भैरवः। जघान बाणानिवहैर्दानवान्समराङ्गणे॥१०॥
तीक्ष्णाग्रैस्तु क्षुरप्रौघैर्दानवानहनद्बली। केचिन्नन्दिप्रहारेण पेतुः सङ्ग्राममूर्धनि॥११॥
बाणैश्च जर्जरान्कृत्वा शुम्भादीन्वृषभध्वजः। शेषं सैन्यं जघानाशु शस्त्रास्त्रैः समराङ्गणे ॥१२॥
गजैर्नरैर्हयैर्व्याप्तं पतितैः समराङ्गणम्। बभूव वज्रनिर्भिन्नैः पर्वतैरिव भूतलम्॥१३॥

दैत्यो का शिवजी के गणों के साथ युद्ध

श्रीनारदजी ने कहा— इसके बाद जालन्धर ने शिवजी से कहा अब तुम अपने प्राणों की रक्षा करो। अब मैं शिव को वहाँ फेंक रहा हूँ जहाँ पर मधुसूदन हैं ॥१॥ उसके बाद ब्रह्मा को खींचकर समुद्र में फेंक दूँगा। तुम सबों के जीवित रहते ही मैं सर्वेश्वर हो जा रहा हूँ ॥२॥ यह कहकर सेना का भार शुम्भ आदि पर छोड़ दिया। अनन्त चतुरङ्गिणी सेना से युक्त निशुम्भ आदि से वह सेना संरक्षित थी ॥३॥ शुम्भ, निशुम्भ, फेंकार, केरुण्ड, धूमलोचन, केतु, विडालजङ्घ, राहु, दुर्वारण, कालासुर, लवण, भूमिरेत, अन्धकासुर, रक्तवीर्य आदि चण्डी, चामुण्डी आदि श्रेष्ठ दैत्यों को देखकर वीरभद्र आदि गणों ने उन सबों को रोक दिया ॥४-६॥ उसके बाद भयङ्कर रोमाञ्चक युद्ध हुआ। उस युद्ध में क्षत-विक्षत होकर शिवगण दैत्य गिर रहे थे ॥७॥ हे राजन्! शुम्भ आदि दैत्यों द्वारा उस महायुद्ध में सभी शस्त्रों से मारे गये गण पृथिवी पर गिर पड़े और युद्ध से भाग गये ॥८॥ गणों को जीतकर दैत्यों ने शिवजी को घेर लिया। जिस तरह मेघ सुमेरु पर्वत पर वर्षा करते हैं उसी तरह वे शिवजी पर बाणों की वर्षा कर रहे थे ॥९॥ उसके बाद वृषभ पर विद्यमान शिवजी भैरव पिनाक को चढ़ाकर समराङ्गण में बाण समूह से दैत्यों को मारे ॥१०॥ तीक्ष्ण क्षुरप्रबाणों के समूह से वे दानवों को मार रहे थे। कुछ दैत्य नन्दी के प्रहार से समराङ्गण में गिर पड़े॥११॥ शङ्करजी ने शुम्भ आदि को बाणों से जर्जर बना दिया। बची हुयी सेना को उन्होंने शस्त्रास्त्रों से शीघ्र ही

अथ मायामयीं गौरीं विदधे सिन्धुनन्दनः। सौन्दर्यगुणसंपन्नां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥१४॥
जयां मायामयीं कृत्वा समुवाचाब्धिनन्दनः। गच्छ त्वं पुरतो रुद्रं विमोहयरणे द्रुतम् ॥१५॥
इत्युक्त्वादैत्यपतिना ययौ मामामयी जया। रणे गत्वा शिवस्याग्रे मुक्तकेशी रुरोदह ॥१६॥
पृष्ठा हरेण सा प्राह मानसोत्तरपर्वतात्। हृता तव प्रिया देव ! पार्वती सिन्धुसूनुना ॥१७॥
श्रुत्वेति वचनं तस्यास्तामुवाच वृषध्वजः। जये ! त्वमेहि वृषभं त्वां हरिष्यन्ति दानवाः ॥१८॥
ततो वृषभमारुह्य जया चालिङ्ग्य शङ्करम् ।
प्राहप्रयामिपार्वत्या न जीवामि विना हर ॥१९॥
चन्द्रशम्भुजटाविष्टं गृहीत्वा वृषभाद् द्रुतम्। अवारोहत सा माया मायास्वक्तो रणं ययौ ॥२०॥
ततो गौरीं हृतां श्रुत्वा चिन्तयामास शङ्करः ।
दैत्यमायापरिष्वक्तो नात्मानं बुबुधेनृप ॥२१॥
एतस्मिन्नन्नरे प्राप्तः सैन्येन महतावृतः। मायामृडानीं स्वरथे निधायार्णवजः शिवम् ॥२२॥
जालन्धरजये तद्वदासीद्वादित्रनिस्वनः। चचाल वसुधा येन प्रतिनेदुर्महीधराः ॥२३॥
हरस्य दर्शयामास पार्वतीं सिन्धुनन्दनः। रुद्रोऽप्यरिरथस्थां तां ददर्श निजवल्लभाम् ॥२४॥
वियोगविधुरां दीनां तन्वीमातुरलोचनाम्। हा नाथ प्रिय रुद्रेति प्रजल्पन्तीं पुनः पुनः ॥२५॥
प्रौढवैरिरथे दृष्ट्वा पाखण्डिस्थां यथाश्रुतिम् ।
गौरीं दध्यौ तथा स्थाणुः कथं प्राप्या प्रिया मया ॥२६॥
विललाप ततः शम्भुर्दैत्यमायाविमोहितः। मोहो मे दानवैःकान्ते हृतासित्वं कथंप्रिये ॥२७॥

मार दिया । गिरे हुए हाथी, मनुष्य तथा अश्वों से समराङ्गण व्याप्त हो गया । लगता था जैसे व्रज से विदीर्ण पर्वतों से जैसे भूतल व्याप्त हो गया हो ॥१२-१४॥ मायामयी जया को बनाकर जालन्धर ने उससे कहा तुम रुद्र के सामने जाकर उनको मोहित करो ॥१५॥ जालन्धर के द्वारा इस तरह से कहने पर मायामयी जया शिवजी के सामने केश खोल कर रोने लगी ॥१६॥ जब शङ्करजी ने पूछा तो उसने बतलाया कि जालन्धर ने आपकी प्रियतमा पत्नी पार्वती का मानसोत्तर पर्वत से अपहरण कर लिया है॥१७॥ उसके इस वचन को सुनकर शङ्करजी ने कहा— जये तुम वृषभ पर आओ नहीं तो दानव तुम्हारा भी अपहरण कर लेंगे ॥१८॥ उसके बाद वृषभ पर सवार होकर जया ने शङ्कर का आलिङ्गन करके कहा मैं जा रही हूँ, मैं पार्वती के बिना जीवित नहीं रह सकती हूँ ॥१९॥ शम्भु की जटा में प्रविष्ट चन्द्रमा को लेकर वृषभ से शीघ्र ही वह माया उतर गयी और माया से युक्त वह युद्ध में चली गयी ॥२०॥ उसके बाद गौरी को अपहृत सुनकर शङ्करजी चिन्तित हो गये । दैत्य की माया से मोहित होने के कारण वे अपने को भी नहीं जान सके ॥२१॥ इसी बीच विशाल सेना से युक्त जालन्धर मायामयी पार्वती को अपने रथ पर बैठाकर शिव के पास आया ॥२२॥ जालन्धर के विजय से संबद्ध मायामय वाद्य की ध्वनि होने लगी। उसके कारण पृथिवी काँप गयी और पर्वत प्रतिध्वनित होने लगे ॥२३॥ जालन्धर ने पार्वती को दिखलाया और शङ्करजी ने भी शत्रु के रथ पर विद्यमान पार्वती को देखा ॥२४॥ वियोग से व्याकुल, दीन तथा भयभीत नेत्रों वाली वह बार-बार हाय नाथ ! हाय रुद्र ! चिल्ला रही थी ॥२५॥ बलवान् शत्रु के रथ पर पाखण्डी के यहाँ विद्यमान श्रुति के समान गौरी को देखकर शङ्करजी सोचने लगे कि मैं पार्वती

शोकमोहप्लुप्तं दृष्ट्वाशङ्करं सागरात्मजः। जगाद प्रहसन्वाक्यंकश्चित्कारुण्यवान्यथा ॥२८॥
सर्वप्रमाणशून्योऽसि स्मरशृङ्गारवर्जितः। ईश्वरोऽपि वराकस्त्वं संजातोऽम्बिकया विना ॥२९॥
मा रोदीर्हि विरूपाक्ष ददामि तव वल्लभाम् ।
रक्षितोऽसि मया रुद्र ! गृहीत्वा पार्वतीं रणात् ॥३०॥
इत्युक्त्वा गिरिशंतूर्णमुत्तार्य स्वरथादुमाम्। सैन्यं संप्रेषयामासशङ्कराभिमुखं किल ॥३१॥
हरोऽपि वृषभेणाशु तत्सैन्यं समधावत। ग्रहीतुं पार्वतीं पाहि त्राहित्राहीति जल्पतीम्॥३२॥
यावद् गृह्णाति तां गौरीं करेण वृषभध्वजः ।
तावच्छुम्भासुरः शीघ्रं गृहीत्वा चाम्बरे स्थितः ॥३३॥
शूलं मुमोच बलवान्हन्तुं शुम्भासुरं हरः। शुम्भेन सा परित्यक्ता शूलोपरि पपातह ॥३४॥
रुदन्ती चारुसर्वाङ्गी त्यक्ता शूलेन संयुता। पतिता शङ्करस्याग्रे तथेत्युक्त्वा ममार च॥३५॥
मायागौरीं मृतां दृष्ट्वा शोकमोहपरिप्लुतः। हा प्रियेति रुदन्रुद्रः पपातभुवि मूर्च्छितः ॥३६॥
क्षणं संज्ञामवाप्याथ रणभूमावुमापतिः। शशाप शुम्भप्रमुखान्गौरी युष्मान्हनिष्यति॥३७॥

नारद उवाच

अथ शुम्भादयो दैत्यारणे देव्या निपातिताः ।
महेश्वरस्य शापेन गते मन्वन्तरे नृप ! ॥३८॥
शपित्वा तान्रु रोदाथ जल्पन्निर्गत्य शङ्करः ।
क्व गताऽसिप्रिये त्यक्त्वा दुःखितं मां रणाङ्गणे ॥३९॥

को कैसे प्राप्त करूँ ?॥२६॥ उसके बाद दैत्य की माया से मोहित होकर शिवजी विलाप करने लगे हे कान्ते ! दैत्यों ने तुम्हारा हरण कैसे कर लिया ? इस बात की मुझे चिन्ता है ॥२७॥ शोक तथा मोह से सन्तप्त शिवजी को देखकर जालन्धर जैसे करुणा सम्पन्न के समान शिवजी से कहा ॥२८॥ तुम अम्बिका के बिना काम तथा शृङ्गार से रहित, सभी प्रमाणों से रहित हो गये हो । ईश्वर होकर भी दीन हो गये हो॥२९॥ शङ्कर रोओ मत मैं तुम्हारी पत्नी को तुम्हें दे रहा हूँ । रुद्र तु पार्वती को प्राप्त करके मेरे द्वारा संरक्षित हो गये ॥३०॥ इस तरह से शङ्करजी से कहकर उसने माया पार्वती को अपने रथ से उतार दिया। और शङ्करजी के समक्ष उसने युद्ध करने के लिए सेना को भेज दिया ॥३१। शङ्करजी भी शीघ्र ही वृषभ पर सवार होकर उस सेना से युद्ध पार्वतीजी को प्राप्त करने के लिए करने लगे ॥३२॥ जब तक शङ्करजी ने अपने हाथ से उस गौरी को पकड़ना चाहा उसी समय शुम्भ उसको लेकर आकाश में चला गया ॥३३॥ शङ्करजी ने शुम्भासुर को मारने के लिए त्रिशूल छोड़ा तो शुम्भ ने उस पार्वती को छोड़ दिया और वह त्रिशूल पर गिरी ॥३४॥ रोती हुयी वह सर्वाङ्गसुन्दरी त्रिशूल पर गिरकर हाय प्रिय कहकर पृथिवी पर गिरी और मूर्छित होकर मर गयी ॥३५॥ माया गौरी को मरी हुयी देखकर शोक तथा मोह से आविष्ट शिवजी रोते हुए पृथिवी पर गिरकर मूर्छित हो गये ॥३६॥ क्षणभर में होश में आकर शिवजी ने रणभूमि में शुम्भ आदि को शाप दिया कि तुमलोगों को गौरी ही मारेगी ॥३७॥ **नारदजी ने कहा**— उन सबों को शाप देकर शङ्करजी कह रहे थे, प्रिये ! समरभूमि में दुःखी मुझको छोड़कर तुम कहाँ चली गयी हो । हे प्रिये ! रति को त्याग वियोग व्याकुल मुझको तुमने श्रीकण्ठ बना दिया । वासुदेव भी नहीं जानते हैं कि

रतिं त्यक्त्वा वियोगार्तः श्रीकण्ठोऽहं त्वया कृतः ।
वासुदेवोऽपि मां त्यक्तं न जानाति त्वया प्रिये ! ॥४०॥
यज्ञे दक्षस्याग्निकुण्डे शिरो देवि हुतं त्वया ।
भूयो हि भवती लब्धा कथं त्यजसि मां पुनः ॥४१॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ चार्वङ्गि गिरिजेमांप्रबोधय । अत्रान्तरे शिवं ज्ञात्वादैत्यमायाविमोहितम् ॥४२॥
देवतागणमध्यस्थो ह्यन्तरिक्षादुपागतम् । विलपन्तमुवाचेदमदृश्यः कमलासनः ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

त्वं शोकमोहपितृमातृविवर्जितोऽसि दुःखं सुखं सुतकलत्ररिपुर्न चास्ति ।
जातोऽसि नैव जनकेन जनिष्यमाणस्त्वं मन्यसे ऋषिगणैश्च कुतो विमोहः ॥४४॥
एकोऽसि नाथ बहुधा कृतविग्रहोऽसि सूर्यो यथा जलधिवीचिषु दृश्यमानः ।
ध्यानेन यान्ति यमिनस्तव पादमूलं रूपं परं दुरवबोधमवाच्यमेव ॥४५॥
नैषा प्रिया तव समानतया विपन्ना जालन्धरेण रचितां जहि देवमायाम् ।
सा पार्वती कमलकोशगता हि शम्भो युध्यस्व वैरिनिवहं जहि पाहि चास्मान् ॥४६॥
श्रुत्वेति ब्रह्मणो वाक्यमवबुद्धो महेश्वरः । ज्ञात्वा तां दानवीं मायां मुमोच महतीं शिलाम्॥४७॥
तया जघान समरे दैत्यकोटिशतत्रयम् । ततो वृषभमारुह्य क्रोधेन महता नृप ! ॥४८॥
धनुः पिनाकं सन्धाय धूर्जटिर्जगृहे शरान् । अथ मायापरित्यक्तं शर्वमालोक्यसिन्धुजः ॥४९॥
सुरेशमोहनं मायाजालमत्यद्भुतं नृप । अन्यदाविश्वकाराशु भृशं मायामहाबलम् ॥५०॥
जालन्धरः कोटिभुजो बभूव वृक्षास्त्रशस्त्रैर्युयुधे वृषाङ्कम् ।
अथान्तराले पृथिवीं चकार समुद्रसूनुर्गिरिधातुमण्डिताम् ॥५१॥

मैं तुमसे वियुक्त हो गया हूँ ॥३८-४०॥ हे देवि ! तुमने दक्ष के कुण्ड में अपने शिर का होम कर दिया था । उसके बाद तुम मुझको प्राप्त हुयी अब तुम मुझको क्यों त्यागती हो ?॥४१॥ हे सुन्दरि ! गिरिजे उठो मुझे धैर्य धराओ उसी समय शिवजी को दैत्य की माया से मोहित जानकर ॥४२॥ देवताओं के बीच में विद्यमान ब्रह्माजी शिवजी के पास आये और अदृश्य ही रहकर कहे ॥४३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** आप शोक, मोह तथा माता-पिता से रहित हैं । आप सुख, दुःख, पुत्र तथा कलत्र से रहित हैं । आप न तो किसी से उत्पन्न हुए है और न उत्पन्न होने वाले हैं । ऋषिगण जानते हैं कि आपको मोहित कर दिया गया है ॥४४॥ हे नाथ ! आप एक हैं आपके अनेक शरीर है । जिस तरह सूर्य समुद्र के तरङ्गों से अनेक दिखते हैं । संन्यासी पुरुष ध्यान करके आपके चरणों को प्राप्त करते हैं । आपका पर रूप अनवगम्य और अनिर्वाच्य है ॥४५॥ यह आपकी पत्नी नहीं है, यह जालन्धर के द्वारा उन्हीं के समान निर्मित माया है। शम्भो ! पार्वतीजी तो कमल कोश में विद्यमान् है । आप शत्रु समूह से युद्ध करके हमलोगों की रक्षा करें॥४६॥ ब्रह्माजी के इस वाक्य को सुनकर महेश्वर सावधान हो गये उसको दैत्य की माया जानकर उन्होंने विशाल शिला को उठाकर फेंका ॥४७॥ उस शिला से उन्होंने तीन सौ करोड़ दैत्यों को मार दिया। हे राजन् ! उसके बाद वृषभ पर चढ़कर अत्यन्त क्रोध करके ॥४८॥ शङ्करजी ने पिनाक धनुष को धारण करके बाणों का सन्धान किया । इसके बाद माया वियुक्त शिवजी को देखकर जालन्धर ने ॥४९॥

देवतायतनैरम्यैर्नानापुष्पसमाकुलैः । मण्डितां नृपभूमिं च चकारोदधिनन्दनः ॥
नृत्यन्ति यत्राप्सरसो मेनकाद्या मनोहराः ॥५२॥

विस्मृत्य शम्भुस्तदपास्य कार्मुकं सद्यः प्रतस्थे वृषभोपरि स्थितः ।
वादित्रगीतैर्भुवि मोहितो भृशं दैत्येन्द्रमायामयताण्डवेन सः ॥५३॥
विमोहितं वीक्ष्य वृषस्थितं हरं नित्यं समुद्रः सह ताण्डवेन ।
गीतेन वाद्येन च नृत्यलीलया ननाद रूपी तरसा विमोहितुम् ॥५४॥
जन्तून्क्षिप्त्वोदधौ तांश्च सहस्रं स ततोत्सवः ।
क्व च ता देवताः सर्वाः क्वनन्दिप्रमुखा गणाः ॥५५॥
अपि त्वं माननीयोऽसि मोहितो दैत्यमायया ।
किमद्य शम्भो ! भगवन्नुपेक्ष्ये उदीर्य चक्रं जठरस्थितं च ॥५६॥
वधाय चास्यैव कृतं महेश ! जालन्धरं संहरते न चाजौ ।
इति कृष्णस्य वचनात्तत्स्मृत्वाऽऽत्मानमीश्वरम् ॥५७॥

आरुह्य वृषभं शीघ्रमाजगाम महारणम् । तमागतं शिवं दृष्ट्वा सर्वसैन्यसमावृतः ॥५८॥
रुरोध समरे राजन्क्रुद्धो जालन्धरोऽसुरः । हरस्य कुपितस्यासीत्सृष्टिसंहारकारकम् ॥५९॥
रूपं तृतीयनेत्राग्नौ दानवाः शलभा यथा। रूपं दृष्ट्वा भगवतो रौद्रज्वालामतं नृप !॥६०॥
शुम्भादयस्तदा दैत्या राहुप्रभृतयश्च ये। रुद्रं निरीक्ष्य संत्रस्ताः पातालं विविशुर्भयात् ॥६१॥
सेना भटाननेकांश्च हतान्दृष्ट्वा महामृधे। शुम्भादीन्हतशेषांस्तान्दृष्ट्वाऽऽत्मानं पलायितान्॥६२॥

शङ्करजी को मोहित करने वाली दूसरी माया को अविष्कृत कर दिया। वह माया महाबलवती थी ॥५०॥ जालन्धर की करोड़ भुजाएँ हो गयीं वह वृक्षों, अस्त्रों, तथा शस्त्रों से शिवजी के साथ युद्ध करने लगा। इसी बीच जालन्धर ने पृथिवी को गैरिक से अलंकृत कर दिया ॥५१॥ जालन्धर ने पुष्पों से भरे मनोहर देव मन्दिरों से पृथिवी को अलंकृत कर दिया। वहाँ पर सुन्दर मेनका आदि अप्सराएँ नृत्य करती थीं॥५२॥ दैत्यराज के मायामय ताण्डव से मोहित हुए शम्भु युद्ध करना भूल गये और धनुष को छोड़कर वृषभ पर सवार होकर नृत्य तथा पृथिवी पर देखने के लिए आये ॥५३॥ वृष पर स्थित शम्भु को मोहित देखकर उनको मोहित करने के लिए गीत, वाद्य, समुद्र सदैव रूप धारण करके गीत, वाद्य तथा नृत्य की लीला द्वारा जोर-जोर से गरज रहा था ॥५४॥ उन हजारों जीवों को समुद्र में डालकर उसने उत्सव का विस्तार किया। सभी देवता कहाँ हैं और नन्दी इत्यादि गण कहाँ हैं ॥५५॥ उसी समय भगवान् विष्णु ने कहा आप माननीय हैं, दैत्य की माया से मोहित हो गये हैं। आपके जठर में स्थित चक्र को निकाल कर हे शम्भो ! आप क्यों उपेक्षा कर रहे हैं। जालन्धर का वध करने के ही लिए आपने चक्र का निर्माण किया है किन्तु युद्ध में जालन्धर को क्यों नहीं मारते है ? भगवान् के इस वचन को सुनकर शङ्करजी को याद आयी कि मैं शङ्कर हूँ ॥५६-५७॥ वे शीघ्र वृषभ पर चढ़कर समराङ्गण में आ गये। उनको आये हुए देखकर क्रुद्ध जालन्धर ने उनको रोका। यह देखकर शङ्करजी का क्रोध से सृष्टि का संहार करने वाला तीसरा नेत्र खुल गया और दानव कीड़ों की तरह जलने लगे। हे राजन् ! भगवान् शिव के उस रौद्र रूप को देखकर ॥५८-६०॥ उस समय शुम्भ इत्यादि तथा राहु इत्यादि सभी दैत्य डरकर पाताल में प्रवेश कर गये। सेना तथा अनेक

तदा जालन्धरः सह्नस्त्र एको गिरिरिव स्थितः ।
परमार्थं रुद्ररूपं हृष्टः साक्षाद्विलोकयन् ॥६३॥
ततो जालन्धरः प्राह महादेवं प्रहस्य च । रूपं संहर येन त्वं दहसे सचराचरम् ॥६४॥
शस्त्रेण कुरुसंग्रामं त्यत्तवा योगबलं निजम् ।
इति जालन्धरवचः श्रुत्वोवाच ततःशिवः ॥६५॥
वरं वरय दैत्येश प्रीतोऽस्मि तव कर्मणा । ईदृक्षमपि मद्रूपं दृष्ट्वा यन्निर्भयोऽधुना ॥६६॥
अपि ब्रह्माण्डमखिलं मद्रूपस्यास्य दानव ।। तेजसोवीक्षणेनालं तत्र त्वमसि निर्भयः ॥६७॥

नारद उवाच

इति शम्भोः प्रसादं च मत्वा संसारनिःस्पृहः ।
जालन्धरो हराद्वव्रे मुक्तिं सायुज्यतां पराम् ॥६८॥

श्रीमहादेव उवाच

दिव्यं देहमिदं दैत्य ! भोगसिद्धियुतं तव। वृन्दामनोहरं रम्यमिहस्थं कालमश्नुते ॥६९॥
मुहूर्तं परमात्मानं तमेकाकिनमव्ययम्। अबुद्ध्वा त्यजसे मूर्ख कथं त्वंमुक्तिमिच्छसि॥७०॥
वृन्दा तव प्रिया राज्ञी हृता सा योगमायया ।
ब्रह्मस्वरूपं विज्ञाय प्राप्तातत्परमं पदम् ॥७१॥
इदानीं दुर्ल्लभा सा च तत्पदं चैव दुर्ल्लभम् ।
स्वर्गापवर्गयोर्मध्ये संसारे वरमाप्नुहि ॥७२॥

जालन्धर उवाच

देवमुक्तिपदं लभ्यं कृतकृत्येन केनचित्। इदानीं कृतकृत्योऽस्मि यत्त्वां पश्येत्वया हतः॥७३॥

वीरों को महासमर में मारे गये देखकर मारने से बचे हुए शुम्भ इत्यादि को पलायन किए हुए देखकर ॥६१-६२॥ उस समय अकेले जालन्धर पर्वत के समान विद्यमान था । प्रसन्नता पूर्वक रुद्र के वास्तविक रूप को देखते हुए ॥६३॥ जालन्धर ने जोर से हँसकर रुद्र से कहा । इस चराचर को जलाने वाले अपने रूप को आप उपसंहृत कर लें ॥६४॥ योग बल को त्याग करके आप शस्त्र से युद्ध करें । जालन्धर की इस वाणी को सुनकर शिवजी ने कहा ॥६५॥ दैत्येश तुम वरदान माँगों मैं तुम्हारे कर्म से प्रसन्न हूँ । क्योंकि मेरे इस रूप को भी देखकर तुम निर्भय बने हुए हो । दानव ! मेरे इस रूप को देखने में सारा ब्राह्माण्ड समर्थ नहीं है, किन्तु तुम निर्भय बने हुए हो ॥६६-६७॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से शम्भु की प्रसन्नता को जानकर जालन्धर ने शिवजी से सायुज्य मुक्ति को माँगा, क्योंकि वह संसार से निःस्पृह हो गया था ॥६८॥ **श्रीमहादेव ने कहा—** दैत्य तुम मूर्ख हो । तुम्हारा यह देह दिव्य है, भोग की सिद्धि से युक्त है । यह वृन्दा के मन का हरण करने वाला है यहाँ के काल को प्राप्त किए हुए है। मुहूर्त पर्यन्त अव्यय तथा एकाकी परमात्मा को नहीं जानकर इसको त्याग रहे हो और मुक्ति चाहते हो ॥६९-७०॥ तुम्हारी प्रियतमा रानी का अपहरण योग माया ने किया है । वह ब्रह्म के स्वरूप को जानकर परमपद को प्राप्त कर ली है ॥७१॥ इस समय वह दुर्लभ है और उसका पद भी दुर्लभ है । स्वर्ग तथा अपवर्ग के बीच में विद्यमान संसारी वरदान को माँगो ॥७२॥ **जालन्धर ने कहा—** देव किसी भी

शिव उवाच

मत्स्थानं परमं क्षेत्रं यदि त्वं गन्तुमुत्सुकः । तर्हि मां कोपयस्वाशु दैत्य हत्वादृढैःशरैः ॥७४॥
ततोऽहं त्वां हनिष्यामि मत्स्थानं यास्यसेऽनघ ! ।
महेश्वरवचः श्रुत्वा प्राह जालन्धरः शिवम् । त्वयि सर्वजगत्पूज्ये पूर्वं न प्रहराम्यहम् ॥७५॥

नारद उवाच

एवमुक्तो जघानाशु सिन्धुजं विशिखैः शिवः ।
ते शराः सिन्धु त्रस्य देहलग्ना विभान्ति च ॥७६॥
यथा लोहगिरिप्रान्ते वैणवो वह्निदीपिताः । जालन्धरो हरस्याङ्गं पूरयामास मार्गणैः ॥७७॥
तैः शरैः शुशुभे रुद्रो यथा खं खेचराकुलम् ।
जालन्धरेशयोर्युद्धं तथा द्वन्द्वमभून्नृप ॥७८॥
हरादन्यो न हन्ताऽस्ति न सोढाऽन्योऽर्णवात्मजात् ।
गिरिकोटिसहस्त्रैस्तु तदा पृथ्वीपुटोद्धतैः ॥७९॥
पूरयामास समरे सिन्धुजः पार्वतीपतिम् । ततः शूलेन निहतो रुद्रेणोरसि दानवः ॥८०॥
निःससार मुखात्तस्य ज्वरो जम्भो भयङ्करः ।
सचावीरज्वरोनामसिंहवक्त्रोनराकृतिः ॥८१॥
दैत्यदेहाद्विनिस्क्रान्तं दृष्ट्वा सिंहमुखमं ज्वरम् ।
हुङ्कारमकरोद्धोरं शरभस्तत्र निर्ययौ ॥८२॥
शिवस्य निःसृतेनासौ शरभेण निपातितः । अजेयं शङ्करंदृष्ट्वा वृषभेन्द्रेण संयुतम् ॥८३॥

कृतकृत्य व्यक्ति को मुक्ति प्राप्त करना चाहिए । मैं आपको देखते हुए आपसे मारा जाकर मैं कृत-कृत्य हो गया हूँ ॥७३॥ **शिवजी ने कहा—** मेरा स्थान सर्वोत्कृष्ट क्षेत्र है, यदि तुम वहाँ जाना चाहते हो तो तुम कठोर बाणों से मारकर मुझे क्रुद्ध बनाओ । तब मैं तुमको मारूँगा और निष्पाप तुम मेरे स्थान को प्राप्त करोगे । महेश्वर की वाणी को सुनकर जालन्धर ने कहा आप सम्पूर्ण जगत् के पूज्य हैं । मैं आप पर पहले प्रहार नहीं कर सकता हूँ ॥७४-७५॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से कहने पर शिवजी ने जालन्धर को बाणों से मारा । वे बाण जालन्धर के शरीर में लगकर सुशोभित हुए ॥७६॥ जिस तरह लौह पर्वत के निकट अग्नि से प्रदीप बाँस सुशोभित होते हैं, उस तरह के बाणों से जालन्धर ने शङ्करजी के शरीर को भर दिया ॥७७॥ शङ्करजी उन बाणों से तारों से व्याप्त आकाश के समान सुशोभित हुए । राजन् जालन्धर और शङ्करजी में उस प्रकार का द्वन्द युद्ध हुआ ॥७८॥ शङ्करजी से भिन्न कोई मारने वाला नहीं है और जालन्धर से भिन्न कोई उन बाणों से सह भी नहीं सकता है । हजारों करोड़ पर्वतों तथा उद्धत पृथिवी पुटों से जालन्धर ने शङ्कर को युद्ध से भर दिया । उसके बाद शिवजी ने जालन्धर के हृदय में त्रिशूल से प्रहार किया ॥७९-८०॥ उसके कारण जालन्धर के मुख से जम्भ नामक भयङ्कर ज्वर निकला । उसका वीरज्वर नाम था मुख उसका सिंह के समान था और उसका आकार मनुष्य के समान था ॥८१॥ उस दैत्य के मुख से निकले हुए सिंह के समान मुख वाले ज्वर को देखकर वहाँ आकर शरभ ने घोर हुङ्कार किया ॥८२॥ शिवजी के मुख से निकले हुए शरभ ने उस ज्वर को मार दिया । वृषभेन्द्र से युक्त

आययौ वृषभाभ्याशे तरसासागरात्मजः। वृषं पुच्छे गृहीत्वा च भ्रामयामास चाम्बरे ॥८४॥
जालन्धरो महाबाहुश्चिक्षेप हिमवद्गिरौ। ततस्त्रिशूलमत्युग्रं मुमोच गिरिजापतिः॥८५॥
तद्धस्तेन गृहीत्वा च दैत्येशः शिवसन्निधौ। रथारूढो धनुर्गृह्य कालकेदारमब्धिजः॥८६॥
पूरयामास विशिखैः शिवमुर्वीतले स्थितम्। उग्रः शस्त्राञ्छराञ्छित्त्वाबाणैरथमचूर्णयत् ॥८७॥
दशयोजनविस्तीर्णं सारथ्यश्वसमन्वितम्। जालन्धरोऽपि विरथो ह्यभ्यधावन्मृधे शिवम् ॥८८॥
तयोर्युद्धमभूद्घोरमद्भुतं लोमहर्षणम्। तद्दृष्ट्वाऽकाण्डकल्पान्तशङ्कया तत्रसुः सुराः॥८९॥
सर्वास्त्रैस्तावदन्योन्यं जघ्नतुर्भीमविक्रमौ। पद्भिः पृथ्वीं चालयन्तौ कम्पयन्तौ नभः स्वनैः॥९०॥
अथोत्कटं बलं दृष्ट्वा दानवेन्द्रस्य शङ्करः। शस्त्रजालं जहाराशु योगमायाबलेन सः॥९१॥
ततः कोटिभुजो दैत्यो दंष्ट्राभीषणलोचनः। शस्त्रहीनोऽपि तरसा धावमानो हरं ययौ॥९२॥
विशालकरबन्धेन बबन्ध समरे शिवम्। ततस्तस्य कृपाणेन चिच्छेद करकाननम्॥९३॥

सिन्धुजेन भुजाक्रान्तो रुद्रोऽभून्नीललोहितः ।
लीलया योधयामास रणेऽसौ सिन्धुनन्दनः ॥९४॥
छिन्नहस्तोऽपि युयुधे स्वर्भानुः शिरसा यथा ।
नियुद्धेन नदीसूनुस्तोषयामास शङ्करम् ॥९५॥

परितुष्टोऽब्रवीच्छम्भुर्वरं वरय दुर्लभम्। जालन्धरेण सोऽप्युक्तस्त्वं मे देह्यात्मनःपदम् ॥९६॥
ममदोःशस्त्रहीनस्य नावज्ञां कर्तुमर्हसि। शीघ्रं प्रयच्छमे सिद्धिं नोचेत्त्वां संहराम्यहम् ॥९७॥

शिवजी को अजेय देखकर ॥८३॥ जालन्धर वेग से वृष के निकट आया और वृषभ के पूंछ को पकड़ कर उसको आकाश में घुमाया ॥८४॥ महाबाहु जालन्धर ने उस वृषभ को हिमवान् पर्वत पर फेंक दिया। उसके बाद शङ्करजी ने अत्यन्त उग्र त्रिशूल को छोड़ा ॥८५॥ उसको दैत्येश ने शिवजी के सन्निकट ही अपने हाथ से पकड़ लिया। रथ पर चढ़ा हुआ जालन्धर कालकेदार नामक धनुष को लेकर पृथिवी पर स्थित शिवजी को बाणों से छेद डाला। शङ्करजी ने बाणों से शस्त्रों तथा बाणों को काटकर रथ को चूर-चूर कर दिया ॥८६-८७॥ वह रथ सारथि तथा अश्वों से युक्त दश योजन विस्तृत था। विरथ होकर जालन्धर भी युद्ध में शिवजी की ओर दौड़ा ॥८८॥ उन दोनों में अद्भुत तथा रोमाञ्चक घोर युद्ध हुआ। उसको देख कर बिना समय के ही कल्पान्त की शङ्का से देवता भयभीत हो गये ॥८९॥ भयङ्कर पराक्रम सम्पन्न वे दोनों ने एक दूसरे पर सभी शस्त्रों से प्रहार किया। उनके पैरों से पृथिवी डगमगा रही थी और उनकी ध्वनि से आकाश काँप रहा था ॥९०॥ उसके बाद दानवेन्द्र के उत्कट बल को देखकर शङ्करजी योगमाया के बल से उसके शस्त्र समूह का हरण कर लिया ॥९१॥ उसके बाद करोड़ों भुजाओं वाला तथा भयङ्कर नेत्रों वाला वह शस्त्र हीन होकर वेग से दौड़ता हुआ शङ्करजी के पास गया ॥९२॥ वह अपने विशाल भुजबन्ध से शङ्करजी को बाँध लिया। उसके बाद कृपाण से शिवजी न उसके हस्तवन को काट डाला॥९३॥ जालन्धर की भुजाओं से आक्रान्त होने के कारण शिवजी नील लोहित हो गये। वह जालन्धर लीला पूर्वक युद्ध कर रहा था ॥९४। शिर विहीन राहु के समान हाथ के कट जाने पर भी युद्ध कर रहा था। उसने युद्ध के द्वारा शङ्करजी को सन्तुष्ट कर दिया ॥९५॥ शङ्करजी ने कहा मैं प्रसन्न हूँ दुर्लभ वर माँगो। **जालन्धर ने कहा—** आप मुझे अपना लोक प्रदान करें। मैं हाथ और शस्त्र से हीन हूँ आप मेरी

इत्युक्त्वा स भुजो भूत्वा जघ्ने तं मुष्टिनोरसि ।
ततः सुदर्शनं चक्रं पुरा यन्निर्मितं स्वयम् ॥९८॥
मुखादुद्गीर्य तद्धस्ते गृहीत्वाऽतोलयद्रुषा । सूर्यकोटिसहस्राभं ग्रसन्तं सचराचरम् ॥९९॥
तेन चक्रेण चिच्छेद शिरो जालन्धरस्य च ।
ततस्तच्छीर्षमुत्प्लुत्य गगने शतयोजनम् ॥१००॥
दंष्ट्राशतकरालास्यं स्वर्भूमिनयनं च यत्। व्याघ्रगत्या ततो यातं सदनं ब्रह्मणो नृप॥१०१॥
भूयः स्वर्गे ततो दृष्ट्वा मृडः शीर्षमधावत ।
स्नवत्तद्रुधिरं भूरि प्रकुर्वद्भैरवस्वनम् ॥१०२॥
ततो दिशः प्रनष्टास्ता गगनं विलयं गतम् ।
न तेजसां प्रकाशोऽस्ति चचाल वसुधा भयात् ॥१०३॥
आपतन्निजघानाशु रुद्रश्चक्रेण तच्छिरः। द्विधा भूत्वाऽथ राजेन्द्र ! पपात हिमवद्गिरौ॥१०४॥
ततो जालन्धरस्याशु शिरसः शकले किल ।
विशतः सर्वभूतानां पश्यतांस्म वृषाकपौ ॥१०५॥
तस्य कण्ठात्समुद्भूता दैत्याः शतसहस्रशः। ते हतास्तेन चक्रेण कपर्दिकरशालिना॥१०६॥
जालन्धरकबन्धं तन्ननर्त रुधिरारुणम्। पुनः पुनः समुद्भूतास्तस्य कण्ठात्तु दानवाः॥१०७॥
पुनः पुनःर्बलवता छिन्नाश्चक्रेण शम्भुना । मेदसा सिन्धुपुत्रस्य पूरिता सकला मही॥१०८॥
मेदिनी मेदसैवैषा ख्यातिं प्राप्ता तु पार्थिव ! ।
यत्र दैत्यवरस्यास्य शोणितं शैलतां गतम् ॥१०९॥

अवमानना न करें । आप मुझे शीघ्र ही मुक्ति प्रदान करें नहीं तो मैं आपको मार डालूगाँ ॥९६-९७॥ इस तरह से कहकर वह भुजा बनकर मुट्ठी से शङ्करजी के वक्ष:स्थल पर प्रहार किया । उसके बाद जिस सुदर्शन चक्र को शङ्करजी ने पहले बनाया था ॥९८॥ उसको मुख से निकालकर उन्होंने उसे अपने हाथ में उठा लिया हजारों सूर्य के समान कान्ति वाला मानो वह चराचरात्मक जगत् को विनष्ट कर देगा ॥९९॥ उस चक्र से उन्होंने जालन्धर के शिर को काट दिया । उसके बाद वह आकाश में सौ योजन ऊपर तक उछला॥१००॥ सौ दाँतों से युक्त वह भयङ्कर था और स्वर्ग की भूमि उसके थे हे राजन् ! वह व्याघ्र की गति के समान गति से ब्रह्माजी के लोक में चला गया ॥१०१॥ पुन: स्वर्ग में शिर को देखकर शङ्करजी दौड़े । उससे बहुत अधिक रुधिर निकल रहा था और भयङ्कर ध्वनि कर रहा था ॥१०२॥ उसके कारण दिशाएँ विनष्ट हो गयीं अकाल लय हो गया, सूर्य, चन्द्रमा आदि का प्रकाश नहीं हो रहा था, पृथिवी भय से काँपने लगी ॥१०३॥ वह शिर जब गिर रहा था तो शङ्करजी ने उसे चक्र से मारा । हे राजेन्द्र ! वह दो टूकड़ों में हिमालय पर्वत पर गिरा ॥१०४॥ उसके बाद जालन्धर के शिर के टुकड़े सबों के सामने ही शिवजी में प्रवेश कर गये ॥१०५॥ उसके कण्ठ से लाखों दैत्य उत्पन्न हुए । उन सबों को शङ्करजी ने अपने हाथ में सुशोभित होने वाले चक्र से मार दिया ॥१०६॥ जालन्धर का रक्त से लाल बना हुआ वह शरीर नृत्य करने लगा । उसके कण्ठ से बार-बार दैत्य निकले ॥१०७॥ बलवान् शङ्करजी ने उन सबों को चक्र से मारा । जालन्धर की मेदा से पृथिवी भर गयी ॥१०८॥ मेदा के ही कारण पृथिवी का नाम

कैलासस्योत्तरे भागे तत्राभूच्छोणितं पुरम् । अथ मांसचयान्दृष्ट्वा सर्वतो व्याप्य तिष्ठतः ॥११०॥
तदा सस्मार देवेशश्चतुःषष्टिगणं रणे । विज्ञानस्मरणाद्देव्यः संप्राप्ताः शङ्करान्तिकम्॥१११॥
कृताञ्जलिपुटाः प्रोचुः शिव ! किं करवामहे ॥११२॥

महादेव उवाच

य एते दैत्यमांसस्य राशयो गिरिसन्निभाः । भक्षयध्वं युताः शीघ्रं दत्तानुज्ञामयातुवः ॥११३॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही चैव माहेन्द्री सर्वाः स्वगणशोभिताः ॥११४॥
एवं शङ्करनिर्दिष्टा देव्यस्तामांससंचयान् । क्रूरेणचक्षुषाऽऽलोक्यनिन्युश्चादर्शनं क्षणात् ॥११५॥
अथ जालन्धरवपुः क्षीणं क्रान्तं तु शक्तिभिः ।
ताभिर्ग्रस्ते शरीर तु तस्य देहाद्विनिःसृता ॥११६॥
प्रभा सा शङ्करं प्राप्ता जगामादर्शनं क्षणात् ।
तत्तेजः सूर्यसङ्काशं लयं प्राप्तं महेश्वरे ॥११७॥
एवं सविलयं प्राप्तस्त्रिदशारिस्त्रिलोचनात् । वृणुध्वं च वरं सर्वाः प्रीतः प्राहमहेश्वरः ॥११८॥
तदा ताः सर्वयोगिन्यः पप्रच्छुर्जगदीश्वरम्। मर्त्यलोकेषु ये लोकाभोगमोक्षवरेप्सवः ॥११९॥
पूजयिष्यन्ति ते नित्यं स्वगृहे योगिनीगणम् ।
तत्तेषां वाञ्छितं सर्वं सिध्यतां त्वत्प्रसादतः ॥१२०॥

महादेव उवाच

यः कश्चित्पूजयेन्नित्यं भक्तिभावसमन्वितः । युष्मद्गणं च तस्याहंवरदोऽस्मिधरातले॥१२१॥

मेदिनी हो गया । जहाँ पर उस श्रेष्ठ दैत्य का रक्त पर्वत बना उस स्थान का नाम शोणितपुर हो गया उसके बाद सर्वत्र मांस समूह को सर्वत्र व्याप्त देखकर ॥१०९-११०॥ उस समय शिवजी ने चौसठ योगिनियों का स्मरण किया । स्मरण करते ही वे देवियाँ शङ्करजी के सन्निकट उपस्थित हो गयीं । उन सबों ने हाथ जोड़कर शिवजी से कहा हमलोग क्या करें ?॥१११-११२॥ **महादेवजी ने कहा—** मैं आपलोगों को यह आदेश देता हूँ कि ये जो पर्वत के समान दैत्यों की मांस राशियाँ हैं, इन सबों की तुमलोग खा जाओ॥११३॥ ब्राह्मी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही तथा माहेश्वरी वे सभी अपने गण के साथ विद्यमान थीं ॥११४॥ इस तरह शङ्करजी से निर्दिष्ट वे देवियाँ उन मांस समूहों को अपनी आँखों से ही देखकर लुप्त कर दीं ॥११५॥ उसके पश्चात् जालन्धर के मनोहर शरीर से उन देवियों के द्वारा खा लिए जाने पर उसके शरीर से जो प्रभा निकली वह सूर्य के समान देदीप्यमान् प्रभा महेश्वर में लीन हो गयी ॥११६-११७॥ इस तरह उस देव शत्रु को शङ्करजी ने मारा । इसके बाद प्रसन्न होकर शङ्करजी ने कहा— तुम सब वरदान माँगो ॥११८॥ उसके बाद उन सभी योगिनियों जो मनुष्य ने शङ्करजी से कहा संसार के भोग तथा मोक्ष के वरदान को चाहने वाले, अपने गृह में हमलोगों की पूजा करेंगे, उन मनुष्यों के अभिप्रेत अर्थ की सिद्धि आपकी कृपा से हो जाय ॥११९-१२०॥ **महादेवजी ने कहा—** पृथिवी पर जो कोई भी भक्ति-भाव पूर्वक तुम लोगों की पूजा करेगा उसको मैं अभिप्रेत वर प्रदान करूँगा ॥१२१॥ जो मेरा भक्त केशव तथा योगिनी गण से द्वेष करेगा

मद्भक्तः केशवस्यापि द्वेष्टि यो योगिनीगणम् ।
भैरवोऽहं तदातस्यह्हरिष्ये सुकृतं कृतम् ॥१२२॥
इति दत्तवरा हृष्टा योगिन्यो विभुना मृधे । अत्रान्तरे भवानीं तां सस्मार वृषभं हरः ॥१२३॥
स्मृतमात्रा पार्वती सा वृषभश्चागमत्क्षणात् । सखीगणसमायुक्ता संप्राप्ताहरवल्लभा ॥१२४॥
संत्यक्त्वा भ्रामरीं मूर्तिं हरस्यार्द्धं समारुहत् ।
गिरिजासहितो राजन्महेशोमुमुदे ततः ॥१२५॥
योगिनीः प्रत्युवाचेदं पिबध्वं रुधिरं नृषु । जालन्धरकबन्धस्य ताः श्रुत्वा जहृषुर्भृशम् ॥१२६॥
मांसमेदो ह्यसृक्पीत्वा योगिन्यो ननृतुर्मुदा । ततो हरः प्रसन्नोऽभूत्तासां क्रीडनवीक्षणात् ॥१२७॥
स्वयं च भैरवं रूपं कृत्वा तन्मध्यगः पपौ ।
तीक्ष्णदंष्ट्रा महाकायास्तदाऽऽसन्योगिनीगणाः ॥१२८॥
ग्रसन्तोऽद्यापि मांसानि काले चापि पिबन्त्यसृक् ।
तेन जालन्धरो दैत्यो नोत्तिष्ठाति रणे हतः ॥१२९॥
ततस्तत्र समाजग्मुर्ब्रह्माद्या देवता गणाः । ऋषयो मरुतो देवाः स्तुवन्तिस्म महेश्वरम्॥१३०॥
दिशः प्रसेदुः सुरभिर्ववौ मरुद्दिवः प्रपेतुर्भुवि पुष्पवृष्टयः ।
कृताभिषेकस्य च तस्य निःस्वनान्संनादिता दुन्दुभयोऽपि चक्रिरे ॥१३१॥
उपरि परिमलान्धैः सुस्वरं संपतद्भिर्मधुकरनिकुरम्बैरुह्यमाना भरेण ।
अविरलमधुधारासारसंसिक्तभूमिः सदसि सुरविमुक्ता प्रापतत्पुष्पवृष्टिः ॥१३२॥
हते तदा सिन्धुसुते हरेण नाराचघातैस्त्रिजगत्तदा बभौ ।
प्रसूनवृष्टिर्ननृतुस्तदाऽङ्गना जगुश्च यक्षाः सुरकिन्नराद्याः ॥१३३॥

उसके समस्त पुण्यों का मैं भैरव बनकर अपहरण कर लूँगा ॥१२२॥ इस तरह से युद्ध में शिवजी से वरदान प्राप्त करके वे योगिनियाँ प्रसन्न हो गयीं । उसके बाद शिवजी ने भवानी (पार्वतीजी) तथा वृषभ को याद किया ॥१२३॥ स्मरण करते ही क्षणभर में पार्वतीजी तथा वृषभ दोनों आ गये । हे राजन् ! पार्वतीजी के साथ शङ्करजी प्रसन्नता का अनुभव किये ॥१२४॥ शङ्करजी ने योगिनियो से कहा कि जालन्धर के कबन्ध में विद्यमान मनुष्यों के शरीर के रक्त को तुमलोग पी लो यह सुनकर वे सब बहुत प्रसन्न हुयीं॥१२५-१२६॥ मांस, मेदा और रक्त को पीकर प्रसन्न योगिनियाँ नृत्य करने लगीं । उन सबों की क्रीड़ा को देखकर शङ्करजी प्रसन्न हो गये ॥१२७॥ स्वयं भी वे भैरव बनकर उन सबों के साथ रक्त पीये । उस समय योगिनियों के गण तीक्ष्ण दाँतों वाले तथा विशाल शरीर वाले हो गये । वे आज भी समयानुसार माँस खाते हैं और रक्त का पान करते हैं । उसी के कारण जालन्धर दैत्य जीवित नहीं होता है ॥१२८-१२९॥ उसके बाद वहाँ ब्रह्मा आदि देवताओं का समूह आया । ऋषियों तथा मरुत देवता भी आये । सबों ने शङ्करजी की स्तुति की ॥१३०॥ दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं, सुगन्धित वायु चलने लगी और पृथिवी पर पुष्पों की वृष्टि हुयी । शङ्करजी का अभिषेक करके देवताओं ने दुन्दुभियों को बजाया ॥१३१॥ पराग से मदमत्त बने गुनगुनाते हुए भौंरे ऊपरे से गिर रहे थे उनके भार से युक्त निरन्तर गिरने वाली मधु की धारा से पृथिवी

शम्भुर्वैरिजयोत्थितेन यशसा स्फाराङ्गकीर्तिगिरि-
स्वं भेजे सुरसिद्धचारणगणैः संस्तूयमानः सदा ।
गौरी चापि जगाम चाशु गिरितः श्वेतं सखीसंवृता,
संचक्रुस्त्वभिसेवनं सुमनसां वर्षेण देवाङ्गनाः ॥१३४॥
देवोऽसौ करुणामयः सुरगणान्स्वे स्वे पदे स्थापय-
न्प्रादादन्यदपि स्वकं वसु ततो ज्ञात्वा पतिः शङ्करः ।
किं वक्तव्यमतः परं यदि भवेदीशानुकम्पा परा,
कोऽयं वा त्रिदिवो धरातलमिदं स्यादात्मसात्सर्वतः ॥१३५॥
देवाः स्वराज्यमासाद्य यथा पूर्वं चकाशिरे ।
बुभुजुर्यज्ञभागांस्ते लोकपालत्वमाश्रिताः ॥१३६॥

नारद उवाच

इति जालन्धरस्योक्तं यथावदनुपूर्वशः । चरितं लोकवीरस्य राजन्नत्यद्भुतं तव॥१३७॥
विष्णुस्त्यजति नाद्यापि क्षीराब्धिं यद्वशो नृप ! ।
सर्वोऽपि भुङ्क्ते स्वं कर्म कर्म तद्विद्ध्यसंशयम् ॥१३८॥
तुभ्यं दुःखनिरासाय प्रोक्तमाख्यानमुत्तमम् । यावद्देहोऽस्ति कर्माणि सुखदुःखानि कर्मतः॥१३९॥
देही भुङ्क्ते वशोराजंस्त्राणं न ज्ञानतः परम्। कृष्णादीनां देहबन्धे सुखदुःखादिवर्तते॥१४०॥

सींच गयी उस सभा में देवताओ से गिरायी गयी पुष्पों की वृष्टि हुयी ॥१३२॥ जालन्धर के शङ्करजी के द्वारा बाणों के प्रहार से मार दिए जाने पर त्रैलोक्य सुशोभित हो गया पुष्पों की वृष्टि हुयी । स्त्रियों ने नृत्य किया यक्ष, देवता और किन्नरों ने गीत गाया ॥१३३॥ शत्रु पर विजय प्राप्ति जन्य कीर्ति से प्रसन्नता पूर्वक अपने पर्वत पर चले गये । देवता, सिद्ध तथा चारणगण उसकी सदा स्तुति कर रहे थे । पार्वतीजी भी अपनी सखियों के साथ उस पर्वत से कैलास पर्वत पर चली गयीं, और देवनारियों ने पुष्पों की वर्षा करके उनकी सेवा की ॥१३४॥ करुणा करने वाले शिवजी भी देवताओं को उनके पद पर प्रतिष्ठित किये और उन लोगों को अपनी भी सम्पत्ति प्रदान किए । अतएव शङ्करजी को अपना स्वामी जानकर यदि शिवजी की सर्वोत्कृष्ट कृपा होती है तो उसके विषय में क्या कहना है ? स्वर्ग अथवा भूलोक में कौन ऐसा है जो पूर्ण रूप से आत्मसात (आत्मा स्वरूप) हो जाय ॥१३५॥ देवता अपने राज्य को प्राप्त करके पहले ही समान सुशोभित हो गये । वे लोकपालत्व को प्राप्त करके यज्ञ के भाग का भोग करने लगे ॥१३६॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजन् ! संसार प्रख्यात वीर जालन्धर के चरित का मैंने ठीक-ठीक वर्णन किया॥१३७॥ राजन् ! उसी के वश में रहने के कारण भगवान् विष्णु आज भी क्षीरार्णव का परित्याग नहीं करते हैं । सबों को अपने कर्मो का फल भोगना पड़ता है । यह भी कर्म का ही फल है । तुम्हारे दुःख को दूर करने के लिए इस उत्तम आख्यान का मैंने वर्णन किया है । जब तक शरीर है तब तक कर्म रहते हैं और कर्मो के फल सुख तथा दुःख होते रहते हैं ॥१३८-१३९॥ राजन् ! शरीरधारी विवश होकर कर्मफलों को भोगता है, ज्ञान से बड़ा दूसरा कोई भी रक्षक नहीं है । कृष्ण आदि के शरीर बन्धन का कारण सुख दुःख आदि का भोग ही है ॥१४०॥ दूसरों के विषय में क्या कहना है ? जो वैराग्य से उदासीन रहते हैं वे भी इस

तत्रेतरेषां किं वाच्यं ये वैराग्यपराङ्मुखाः। ज्ञात्वेदृशीं कर्मगतिंसर्वेभ्यो बलवत्तमाम् ॥१४१॥
धीरो भव प्रतीक्षस्व शुभकर्मागमं पुनः। शत्रूञ्जित्वा तु समये स्वं राज्यं पुनराप्स्यसि॥१४२॥
इतिहासमिमं श्रुत्वा न दुःखैः परिभूयते। धर्मार्थकाममोक्षाश्च यथावच्चात्र कीर्त्तिताः ॥१४३॥
स्वर्ग्यं पापहरं पुण्यं शोकमोहविनाशनम्। ब्राह्मणो ज्ञानमाप्नोति राज्यं प्राप्नोति क्षत्रियः॥१४४॥
वैश्यश्च बह्वीं संपत्तिं श्रुत्वा शूद्रः सुखं लभेत् ।
यो राजा भ्रष्टराज्योऽपि रतः सन्नेव सत्पथि ॥१४५॥
सराज्यं पुनराप्नोति श्रवणान्नित्यमस्यतु । आकर्ण्यैतत्सतां राजञ्छ्राव्यमन्यन्नरोचते॥१४६॥
कलं च कोकिलालापं रूक्षं ध्वाङ्क्षरुतं यथा ।
आख्यानमेतदनघं श्रुत्वा सज्जनहृत्प्रियः ॥१४७॥
हिरण्यतिलवस्त्राद्यैर्धेनुभूभिप्रदानतः । संतोषयेद्वाचकं तु तस्मिंस्तुष्टे फलं लभेत् ॥१४८॥
देवताश्च प्रसीदेयुरर्चिते वाचके गुरौ। अन्नदानानि दद्याच्च ब्राह्मणेभ्यः प्रपूजयेत् ॥१४९॥
जायते विजयी नित्यं पुत्रपौत्रसमृद्धिमान्। जायते विष्णुलोके यः शृणोत्याख्यानमुत्तमम्॥१५०॥
इति व्याजेन भोभूप तुलस्युत्पत्तिकारणम्। ये शृण्वन्ति नरश्रेष्ठा न तेषांपातकं क्वचित्॥१५१॥
तुलसीमाहात्म्यमिदं पवित्रं पापनाशनम्। श्रुत्वा तु लभते मोक्षमुक्तवा चैव न संशयः॥१५२॥
स्वगृहे रोपिता चैव तुलसी पापनाशिनी। दर्शनाद्ब्रह्महत्याऽपि नश्यते नात्र संशयः ॥१५३॥
कार्त्तिके चैव माघेतु तुलस्या पूजयेद्धरिम्। वैशाखे तु विशेषेण पूजनं च हरेः स्मृतम् ॥१५४॥

प्रकार की कर्म की गति को सबों से बलवती जानकर ॥१४१॥ तुम धैर्य धारण करो और शुभ कर्मों के आगमन की प्रतीक्षा करो। शत्रुओं को परास्त करके तुम पुनः राज्य प्राप्त करोगे ॥१४२॥ इस इतिहास को सुनकर मनुष्य दुःखों से दुःखी नहीं होता है। यहाँ पर मैंने धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का यथावत् वर्णन किया ॥१४३॥ यह आख्यान स्वर्ग प्रदान करने वाला, पापों का विनाश करने वाला, पवित्र, शोक तथा मोह का विनाश करने वाला है। इसको सुनने वाला ब्राह्मण ज्ञानी हो जाता है और क्षत्रिय राज्य प्राप्त कर लेता है। इसका श्रवण करके वैश्य बहुत अधिक सम्पत्ति को प्राप्त कर लेता है और शूद्र सुख को प्राप्त कर लेता है। सन्मार्ग गामी राज्य का यदि राज्य चला जाता है तो वह इसका नित्य श्रवण करके पुनः राज्य को प्राप्त कर लेता है। राजन् ! इस कथा को सुनकर सत्पुरुषों को दूसरा कुछ सुनना अच्छा नहीं लगता है ॥१४४-१४६॥ कोयल की ध्वनि जैसे मनोहर ही होती है और कौए की बोली रुक्ष ही होती है। सज्जनों के हृदय को प्रिय लगने वाले इस आख्यान को सुनकर ॥१४७॥ कथा वाचक को सुवर्ण, तिल, वस्त्र आदि धेनु तथा भूमि दान देकर प्रसन्न करने से ही फल की प्राप्ति होती है ॥१४८॥ आचार्य की पूजा करने से देवता भी प्रसन्न होते हैं। अन्न दान भी करके ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए॥१४९॥ वह पुत्रों तथा पौत्रों से समृद्ध होकर सदा विजयी होता है। इस आख्यान को सुनने वाला विष्णु लोक में जाता है ॥१५०॥ हे राजन् ! इसी व्याज से तुलसी की उत्पत्ति के कारण का जो लोग श्रवण करते हैं उन लोगों को पाप नहीं लगता है ॥१५१॥ यह तुलसी का माहात्म्य पवित्र और पाप विनाशक है। इसको कहने वाले तथा सुनने वाले निःसन्देह मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥१५२॥ अपने घर में रोपी गयी तुलसी पाप का विनाश करती हैं, तुलसी का दर्शन करने से ब्रह्महत्या का भी नाश हो जाता है, इसमें कोई भी

एकेनैव प्रदक्षिणेन सकलं पापं गतं वै सदा,
ये शूद्रा भुवि सन्ति दाननिरताः कालेन शुद्धिं गताः ।
तेऽपि स्युः सुरपूजनार्हतनवः पापाच्च दूरं गता,
ये वै विष्णुजनाश्च दुर्लभतरा ह्यस्मिन्कलौ साम्प्रतम् ॥१५५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे जालन्धरोपाख्याने श्रीजालन्धरवधनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

श्रीशैलः पर्वतो रम्यः कुत्र तिष्ठति नारद। किं तत्र वर्त्तते तीर्थं कस्य देवस्य पूजनम् ॥
कस्यां दिशि समाख्यातो लोकेषु च वदाधुना ॥१॥

नारद उवाच

श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि श्रीशैलं पर्वतोत्तमम् ।
यं श्रुत्वा मुच्यते लोको बालहत्यादिपातकात् ॥२॥
तत्पर्वतवरं रम्यं मुनिभिश्चोपसेवितम्। नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम्॥३॥

संशय नहीं है ॥१५३॥ कार्तिक तथा माघ के महीने में तुलसी से श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए । वैशाख के महीने में विशेष रूप से तुलसी से श्रीहरि की पूजा बतलायी गयी है ॥१५४॥ तुलसी की एक बार प्रदक्षिणा करने से सदैव पाप का नाश होता है । पृथिवी पर रहने वाले तथा सदा दान करने वाले शूद्र भी समयानुसार शुद्ध हो जाते हैं । वे भी देव पूजन के योग्य हो जाते हैं, उनका पाप विनष्ट हो जाता है तथा जो भगवान् विष्णु के भक्त हैं, ऐसे लोग तो इस कलियुग में दुर्लभ हैं ॥१५५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के जालन्धरोपाख्यान के अन्तर्गत जालन्धर वध नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

श्रीशैल का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— हे नारदजी ! मनोहर श्रीशैल कहाँ पर है ? वहाँ पर कौन सा तीर्थ है तथा वहाँ किस देवता की पूजा होती है ? आप बतलायें कि वह किस दिशा में है ॥१॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजन् ! मैं श्रीशैल के माहात्म्य का वर्णन करता हूँ उसे आप सुनें उसका श्रवण करने से मनुष्य बाल हत्या आदि से उत्पन्न पापों से मुक्त हो जाता है ॥२॥ वह श्रेष्ठ पर्वत अत्यन्त सुन्दर है उस पर मुनियों का निवास है । वह अनेक प्रकार के वृक्षों, लताओं तथा अनेक प्रकार के पुष्पों से सुशोभित है ॥३॥ उस पर

हंसकोकिलषट्पादमयूरध्वनिनादितम् । श्रीवृक्षैश्च कपित्थैश्च शिरीषै राजवृक्षकैः ॥४॥
पारिजातकपुष्पैश्च कदम्बोदुम्बरैस्तथा। नानापुष्पैः सुगन्धाढ्यैर्वासितं तद्वनं गिरौ ॥५॥
सर्वाभिर्ऋषिपत्नीभिः सशिष्याभिः सुसेवितम् ।
केचिदभ्यासयुक्ताश्च केचिद् व्याख्यानतत्पराः ॥६॥
केचिदूर्ध्वभुजास्तत्र चाङ्गुष्ठाग्रैःस्थिताः परे । शिवध्यानरताः केचित्केचिद्विष्णुपरायणाः ॥७॥
निराहाराश्च केऽप्यत्र केचित्पर्णाशने रताः । कन्दमूलफलाहाराःकेचिन्मौनव्रताः स्थिताः ॥८॥
एकपादाः स्थिताः केचित्केचित्पद्मासने स्थिताः ।
केचिच्चैव निराहारास्तपस्तेपुः सुदुष्करम् ॥९॥
आश्रमाणि च पुण्यानि नद्यश्च विविधाः शुभाः ।
देवखातान्यनेकानि तडागानि बहूनि च ॥१०॥
पर्वतोऽयं महाराज दृश्यते किल सर्वतः । मल्लिकार्जुनको राजन्यत्र तिष्ठति नित्यशः ॥११॥
तच्चैवं शिखरं रम्यं पर्वतोपरि शोभितम्। शृङ्गदर्शनमात्रेण मुक्तिरेव न संशयः ॥१२॥
दक्षिणांदिशमाश्रित्य वर्त्तते पर्वतोत्तमः । अत्र गङ्गा महारम्या पातालाख्या समन्विता ॥१३॥
तत्र च स्नानमात्रेण महापापैः प्रमुच्यते ।
श्रीशैलशिखरं दृष्ट्वा वाराणस्यां मृतौ ध्रुवम् ॥१४॥
केदारे ह्युदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते । तापसानां महत्स्थानं योगिनां च तथैव च ॥१५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दर्शनं तस्य कारयेत् । अयं विज्ञानदेवोऽसौ महापातकनाशनः ॥१६॥

हंस, कोयल, भौंरे, तथा मयूर की ध्वनि होती रहती है । उस पर्वत का वन श्रीवृक्ष, कैंथ, शिरीष, राजवृक्ष, पारिजात पुष्प, कदम्ब, गूलर तथा अनेक प्रकार के पुष्पों से सुगन्धित है ॥४-५॥ उस पर अपने शिष्यों से युक्त सभी ऋषियों की पत्नियाँ रहती हैं । वहाँ पर कुछ लोग वेदाभ्यास करते हैं और कुछ लोग वेदों की व्याख्या करते हैं ॥६॥ कुछ ऋषि अपने पैरों के अङ्गूठे पर खड़ा होकर तथा अपनी भुजाओं को ऊपर की ओर उठाकर भगवान् शिव का ध्यान करते हैं और कुछ लोग भगवान् विष्णु का ध्यान करते हैं॥७॥ कुछ ऋषि निराहार रहते है और कुछ ऋषि पेड़ों के पत्तों का आहार करते हैं । कुछ लोग कन्द, मूल तथा फल का आहार करते हैं कुछ ऋषि मौन व्रत करते हैं ॥८॥ कुछ लोग एक पैर पर खड़ा रहते हैं तो कुछ लोग पद्मासन लगाकर बैठते हैं । कुछ लोग निराहार रहकर कठोर तपस्या करते हैं ॥९॥ यहाँ पर पवित्र आश्रम है अनेक पवित्र नदियाँ हैं । अनेक देवकुण्ड हैं तथा बहुत से सरोवर हैं ॥१०॥ हे राजन्! यह पर्वत सभी स्थानों से दिखता है । वहाँ पर भगवान् शिव का मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिङ्ग है॥११॥ पर्वत के ऊपर वह मनोहर शिखर सुशोभित होता है । उस शिखर के दर्शन मात्र से मुक्ति हो जाती है, इसमें संशय नहीं है ॥१२॥ वह उत्तम पर्वत दक्षिण भारत में है । वहाँ पर अत्यन्त मनोहर पाताल गङ्गा हैं ॥१३॥ वहाँ पर स्नान करने मात्र से मनुष्य महापापों से छुटकारा पा लेता है । श्रीशैल के शिखर देखने मात्र से वाराणसी में मृत्यु का फल प्राप्त होता है ॥१४॥ केदार तीर्थ का जलपान कर लेने से पुनः जन्म नहीं होता है । वह तपस्वियों तथा योगियों का महास्थान है ॥१५॥ अतएव हर प्रकार का प्रयत्न करके उसका दर्शन करना चाहिए । यहाँ पर विराजमान विज्ञान देव महापातकों का नाश कर

सिद्धं पुरं च नगरं रम्यं स्वर्गसुखावहम् । नित्यमप्सरसो यत्र (आ) यन्ति च रमन्ति च ॥१७॥
अतः पर्वतराजोऽयं दर्शने सौख्यकारकः । तस्य तैर्दर्शनं कार्यं मुक्तिमिच्छन्ति ये नराः ॥१८॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे श्रीशैलोपाख्याने विंशोऽध्यायः ॥२०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

हरिद्वारं महापुण्यं शृणु देवर्षिसत्तम । यत्र गङ्गा वहत्येव तत्रोक्तं तीर्थमुत्तमम् ॥१॥
यत्र देवा वसन्तीह ऋषयो मनवस्तथा। यत्र देवः स्वयं साक्षात्केशवो नित्यमाश्रितः ॥२॥
पुरा तु तत्र भोवत्स तीर्थं जातं महत्तदा । यस्य दर्शनमात्रेण दूरतो याति पातकम् ॥३॥
यत्र गङ्गा महारम्या जाता पुण्यविशेषतः। विष्णुपादोदकी जाता चरणस्पर्शनात्ततः ॥४॥
भगीरथेन भोविद्वन्नानीता तत्र मार्गतः। उद्धारः पूर्वजानां तु कृतस्तेन महात्मना ॥५॥

नारद उवाच

कोऽयं देव ! समाख्यातो भगीरथो महातपाः ।
येन तीर्थं समानीतं लोकानां हितकारणात् ॥६॥

गङ्गातीर्थं महत्पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् । लोकाःसर्वे वदन्त्येवमेतत्तीर्थोत्तमोत्तमम् ॥७॥

देते हैं ॥१६॥ मनोहर सिद्ध पुर नामक नगर स्वर्ग का सुख प्रदान करता है । वहाँ पर नित्य ही अप्सराएँ आती और रमण करती हैं ॥१७॥ अतएव ये पर्वतराज दर्शन करने मात्र से सुख प्रदान करते हैं । मुक्ति चाहने वालों को उसका दर्शन करना चाहिए ॥१८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड का श्रीशैल का वर्णन नामक बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

हरिद्वार का माहात्म्य वर्णन

श्रीमहादेवजी ने कहा— हे देवर्षि श्रेष्ठ ! आप सुनें । हरिद्वार अत्यन्त पवित्र तीर्थ स्थान है वहाँ जहाँ पर गङ्गा बहती है, वहाँ पर उत्तम तीर्थ बतलाया गया है ॥१॥ वहाँ पर देवताओं, ऋषियों तथा मनुओं का निवास है । साक्षात् भगवान् केशव का नित्य निवास बना रहता है ॥२॥ हे वत्स ! वहाँ पर प्राचीन काल में महान तीर्थ हुआ । उसका दर्शन करने मात्र से ही पाप दूर भाग जाता है ॥३॥ वहाँ पर पुण्य विशेष के कारण गङ्गा अत्यन्त मनोहर हो गयी हैं । श्रीभगवान् का चरण स्पर्श करने के कारण वे विष्णु पादोदकी हो गयीं ॥४॥ महाराज भगीरथ उनको उस मार्ग से लाये और अपने पूर्वजो का उद्धार किए ॥५॥ **नारदजी ने कहा—** हे देव ! ये महातपस्वी भगीरथ कौन हैं ? जो संसारी जीवों का कल्याण करने के लिए गङ्गाजी को लाये ॥६॥ सभी लोग कहते हैं कि गङ्गा का जल अत्यन्त पवित्र है, सभी पापों

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥८॥
कथं तेन समानीता किं कार्यं वद सुव्रत ! ॥९॥

महादेव उवाच

येन गङ्गा यथाऽऽनीता गङ्गाद्वारेऽतिशोभने। तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि क्रमानुक्रमयोगतः ॥१०॥
पूर्वमासीद्धरिश्चन्द्रस्त्रैलोक्ये सत्यपालकः। रोहितस्तस्य पुत्रोऽभूदेको विष्णुपरायणः ॥११॥

तस्यापि च वृकः पुत्रो धर्मिष्ठः सत्पथे स्थितः ।
तस्य पुत्रः सुबाहुश्च जातोऽस्मिन्वै कुले तदा ॥१२॥
तस्य पुत्रो गरो नाम नात्यन्तं धार्मिकोऽभवत् ।
कदाचित्कालयोगेन दुःखीजातोऽत्र कारणात् ॥१३॥
राजा प्रच्यावितो राज्याल्लोकैश्चाधर्मकारणात् ।
स्वकुटुम्बं गृहीत्वा तु गतोऽसौ भार्गवाश्रमे ॥१४॥

रक्षितो भार्गवेणाथ कृपया तत्र वै तदा । तत्र पुत्रो ह्यभूत्तस्य सगरो नाम वै द्विज ! ॥१५॥
ववृधे चाश्रमे पुण्ये भार्गवेणाभिरक्षितः। उपवीतादिकं सर्वं क्षत्रियस्य तदा कृतम् ॥१६॥

शस्त्राणां च तथाऽभ्यासो वेदानां तु तथैव च ।
आग्नेयास्त्रं ततो लब्ध्वा भार्गवात्सगरो नृपः ॥१७॥

जघान पृथिवीं गत्वा तालजङ्घान्सहैहयान्। सशकान्पारदांश्चैव जघान स महातपाः ॥१८॥

नारद उवाच

माहात्म्यं सगरस्याथ वद शङ्कर विस्तरात्। सूर्यवंशी महाराज विख्यातःस महाबली ॥१९॥

का विनाश करने वाला है । यह सभी तीर्थों में उत्तम है ॥७॥ जो व्यक्ति सैकड़ों योजन दूर से भी गङ्गाजी का नामोच्चारण करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥८॥ हे सुव्रत! यह बतलायें कि भगीरथ गङ्गाजी को क्यों लाये, उनका कौन सा कार्य था ॥९॥ **महादेवजी ने कहा—** गङ्गाजी को जिसने अत्यन्त मनोहर गङ्गाद्वार में लाया उन सारी बातों को मैं क्रमशः बतलाता हूँ॥१०॥ प्राचीन काल में त्रैलोक्य में सत्य का पालन करने वाले राजा हरिश्चन्द्र थे । उनके पुत्र भगवान् विष्णु के भक्त रोहित हुए ॥११॥ उनके पुत्र वृक हुए वे धार्मिक तथा सन्मार्गनुगामी थे । उसी वंश में उनके पुत्र सुबाहु हुए ॥१२॥ उनके पुत्र गर हुए वे अत्यन्त धार्मिक नहीं हुए । इसी कारण वे एक बार दुःखी हो गये ॥१३॥ अधार्मिक होने के कारण प्रजाओं ने उन्हें राज्य से हटा दिया । अपने परिवार को लेकर वे भागर्वाश्रम में चले गये ॥१४॥ महर्षि भार्गव ने कृपा करके उनकी रक्षा की । हे द्विज ! उनके पुत्र सगर हुए ॥१५॥ महर्षि भार्गव के द्वारा संरक्षित होकर वे उस पवित्र आश्रम में बड़े हुए । उसके बाद महर्षि ने उन क्षत्रिय श्रेष्ठ का यज्ञोपवित आदि संस्कार सम्पन्न किया ॥१६॥ उन्होंने शस्त्रों का तथा वेदों का अभ्यास कराया । राजा सगर महर्षि भार्गव से आग्नेयास्त्र प्राप्त करके ॥१७॥ पृथिवी पर गये ताल जङ्घों तथा हैहयों का वध किए । उन तपस्वी ने शकों तथा पदों का भी वध किया ॥१८॥ **नारदजी ने कहा—** हे शङ्करजी! आप सगर का विस्तार के साथ माहात्म्य बतलायें । वे महाबली सूर्यवंशी के रूप में विख्यात

महादेव उवाच

गरस्य व्यसने तात हृतं राज्यमभूत्किल । हैहयैस्तालजङ्घाद्यैःशकैःसार्द्धं च नारद !॥२०॥
यवनाःपारदाश्चैव काम्बोजाःपह्लवास्तथा। एते पञ्चगणा ब्रह्मन्हैहयार्थे पराक्रमन् ॥२१॥
हृतराज्यस्ततो राजा सगरोऽथ वनं ययौ। पत्न्या चानुगतो दुःखी स वै प्राणानवासृजत्॥२२॥
तस्य पत्नी तु कल्याणी सगर्भा च व्रतान्विता ।
सपत्न्या भार्गवस्तस्य वृतःपूर्वं सुतेप्सया ॥२३॥
सा तु भर्तृचितां कृत्वा वने तं प्ररुरोदह। और्वस्तां वारयित्वा च गरपत्नीं तु नारद ॥२४॥
न्यवेदयत तत्पुत्रं धर्मिष्ठं सात्त्विकं प्रियम्। निवेदिते ततो बाले मरणात्सा न्यवर्त्तत॥२५॥
ततो मासद्वये जाते ववृधे तस्य चाश्रमे। जातकर्मादि योगश्च और्वेण च तथाकृतः ॥२६॥
उपवीतादिकं सर्वं जातं तत्र महामुने !। तत्र वेदादिकं सर्वं पठितं चौर्वयोगतः॥२७॥
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ।
आग्नेयं तं महाभाग अमरैरपि दुःसहम् ॥२८॥
स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वितः। हैहयान्वै जघानाशु संक्रुद्धःस्वबलेन च ॥२९॥
आजहार च लोकेषु स च कीर्तिमवाप सः ।
ततःशकाः सयवनाः काम्बोजाः पह्लवास्तथा ॥३०॥
हन्यमानास्तदा ते तु वसिष्ठं शरणं ययुः ।
वसिष्ठोऽपि च तान्कृत्वा समये स महाद्युतिः ॥३१॥

हैं ॥१९॥ **महादेवजी ने कहा—** हे तात ! गर के दुःखी होने के बाद उनके राज्य का हरण हो गया । हैहयों, तालजङ्घों तथा शकों ने मिलकर उनका राज्य ले लिया । हे ब्रह्मन् ! यवन, पारद, कम्बोज तथा पह्लव इन पाञ्चों ने हैहय के लिए आक्रमण किया ॥२०-२१॥ राज्यापहार हो जाने पर राजा गर वन में चले गये । उनके साथ उनकी पत्नी भी गयी । दुःखी राजा ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥२२॥ उनकी पतिव्रता कल्याणी गर्भवती थी । उसकी सौत पहले पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से महर्षि भार्गव की शरणागति की ॥२३॥ वह तो अपने पति की चिता बनाकर वन में रो रही थी । हे नारद ! महर्षि और्व ने गरकी पत्नी को मरने से रोका ॥२४॥ उन्होंने बतलाया कि उसका पुत्र धार्मिक तथा सात्त्विक एवं प्रिय होगा । उस बात को जानकर वे मरी नहीं ॥२५॥ उसके बाद दो मास बीत जाने पर वे उनके आश्रम में ही बड़े हुए । उनके जातकर्म आदि संस्कारों को और्व ने ही सम्पन्न किया ॥२६॥ हे महामुने ! वहीं पर उनका यज्ञोपवीत आदि हुआ । वे महर्षि और्व की ही सन्निधि में वेद आदि को पढ़े ॥२७॥ वेदों तथा शास्त्रों को पढ़ाकर वे सगर को शस्त्रों का ज्ञान प्रदान किए । हे महाभाग ! वे देवताओं के भी लिए दुर्लभ आग्नेयास्त्र का ज्ञान प्रदान किए ॥२८॥ युद्ध में वे उस अस्त्र के बल से तथा बल से सम्पन्न होकर, क्रुद्ध होकर अपने बल से शीघ्र ही हैहयों को मार दिए ॥२९॥ उन्होंने संसार में कीर्ति प्राप्त की । वहाँ के शक, यवन, कम्बोज तथा पह्लव महर्षि वसिष्ठ के शरण में चले गये । महाद्युति महर्षि वसिष्ठ भी प्रतिज्ञा करके ॥३०-३१॥ उन सबों को अभय प्रदान करके सगर को रोक दिए । अपने गुरु के वाक्य

सगरं वारयामास तेषांदत्त्वाऽभयं नृपः । सगरःस्वां प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च ॥३२॥
धर्मभ्रष्टांश्च विकृतांस्तान्कृत्वा पूरयत्स तु । अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डं कृत्वा व्यसर्जयत्॥३३॥
यवनानां शिरःसर्वं काम्बोजानां तथैव च । पारदा मुण्डकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुरक्षकाः ॥३४॥
एवं विजित्य सर्वान्वै कृतवान्धर्मसङ्ग्रहम् । सर्वधर्मजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम्॥३५॥
अश्वं संस्कारयामास वाजिमेधाय पार्थिवः । तस्य चारयतःसोऽश्वःसमुद्रे पूर्वदक्षिणे ॥३६॥
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिंचैव प्रवेशितः । स तं देशं तदा पुत्रैःखानयामास सर्वतः ॥३७॥
नाश्वं प्रापुस्तदा ते वै खन्यमाने महार्णवे । तत्रैकमादिपुरुषं ददृशुस्ते त्वरान्विताः ॥३८॥
कपिलं जगतां नाथं चोरोऽयमिति चाब्रुवन् ।
तस्य चक्षुःसमुत्पन्नवह्निना प्रतिबुध्यतः ॥३९॥
दग्धाःषष्टिसहस्राणि चत्वारस्तेऽवशेषिताः । हृषीकेतुःसुकेतुश्च तथा धर्मरथोऽपरः ॥४०॥
शूरःपञ्चजनश्चैव तस्य वंशकरा द्विज ! । प्रादाच्च तस्मै भगवान्हरिःपञ्चवरान्स्वयम्॥४१॥
वंशं मोक्षं सुकीर्तिं च समुद्रं तनयं विभुः । सागरत्वं च लेभेऽथ कर्मणा तेन तस्य वै ॥४२॥
तमाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान् । आजहाराश्वमेधानां शतं स च महायशाः ॥४३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे नारदयुधिष्ठिरसंवादे गङ्गोत्पत्तिप्रसङ्गेन सगरवृत्तान्तवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

को सुनकर सगर अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति उन सबों को धर्मभ्रष्ट तथा विकृत बनाकर किए । उन्होंने शकों के आधे शिर को मुंडवाकर उनको छोड़ दिया ॥३२-३३॥ उन्होंने यवनों तथा कम्बोजों के पूरे शिर को मुंडवा दिया । पारदों के सम्पूर्ण केशों को उन्होने मुंडवा दिया । पह्लवों की दाढ़ी उन्होने छोड़ दी ॥३४॥ इस तरह सबों को जीतकर सगर ने धर्म की रक्षा की । सभी धर्मो को जीतने वाले राजा ने इस सम्पूर्ण पृथिवी को जीत लिए ॥३५॥ राजा अश्वमेध याग करने के लिए अश्व का संस्कार किए । उनका अश्व पूर्व दक्षिण समुद्र के बेला तट के सन्निकट चलता हुआ पृथिवी में प्रवेश कर गया । सगर के पुत्रों ने उस स्थान को हर ओर से खन डाला ॥३६-३७॥ महार्णव के खनने के समय उनके पुत्र अश्व को नहीं प्राप्त कर सके । उन सबों ने वहाँ पर एक आदि पुरुष को देखा ॥३८॥ वे संसार के स्वामी महर्षि कपिल थे । उन सबों ने कहा यह चोर है । अपनी दुष्ट बुद्धि के कारण वे सब उनके नेत्र की अग्नि से जल गये । उनकी संख्या साठ हजार थी । उनमें से सगर के चार पुत्र ही अवशिष्ट रहे । उनके नाम थे हृषीकेतु, सुकेतु, धर्मरथ और वीर पञ्चजन । इन सबों से ही सगर का वंश आगे बढ़ा । सगर को स्वयं भगवान् श्रीहरि ने पाञ्च वरों को प्रदान किया ॥३९-४१॥ वंश, मोक्ष, सुकीर्ति, समुद्र जैसे पुत्र सगरत्व को वे राजा अपने उस कर्म से प्राप्त किए ॥४२॥ उस आश्वमेधिक अश्व को उन्होंने समुद्र से प्राप्त किया । उन महायशस्वी राजा सगर ने सौ अश्वमेध यागों को किया ॥४३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के नारद युधिष्ठिर संवादान्तर्गत गङ्गाजी की उत्पत्ति का वर्णन तथा सगर का वृत्तान्त वर्णन नामक इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

बाइसवाँ अध्याय

नारद उवाच

सगरस्यात्मजा वीरा:कथं जाता महाबला:। विक्रान्ता:षष्टिसाहस्रा विज्ञानेश्वर तद्वद ॥१॥

श्रीपार्वतीपतिरुवाच

द्वे पत्न्यौ सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे ।
और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तोषितो मुनिसत्तमः ॥२॥

षष्टिं पुत्रसहत्राणि एकाववे्र तरस्विनाम् । एकावंशधरं त्वेकं यथेष्टं वरशालिनी ॥३॥

तत्रैका सुषुवे तुम्ब्यां पुत्रान् शूरान् बहूनथ ।
ते तु सर्वेऽपि धात्रीभिर्वर्द्धितास्तु यथाक्रमम् ॥४॥

घृतपुर्णेषु कुम्भेषु कुमारा:प्रीतिवर्द्धना:। कपिलानां तु दुग्धानि धात्र्यस्तानप्यपाययन्॥५॥
तेनैव दुग्धयोगेन ववृधुस्ते महाबला: । एक:पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह॥६॥
तत:पञ्चजनस्यासीदंशुमान्नाम वीर्यवान् । दिलीपस्तनयस्तस्य पुत्रोयस्य भगीरथ: ॥७॥
यस्तु गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठामानिनाय च सुव्रत: । अब्धिमेनां समानीय दुहितृत्वमकल्पयत् ॥८॥

नारद उवाच

कथं गङ्गा समानीता किं तपस्तेन वै कृतम् ।
तत्सर्वं मे समाचक्ष्व सुव्रतोऽसिदयानिधे ॥९॥

महादेव उवाच

पूर्वजानां हितार्थाय गतोऽसौ हैमके गिरौ । तत्र गत्वा तपस्तप्तं वर्षाणामयुतं तदा॥१०॥

गङ्गाजी के पृथिवी पर जाने का वर्णन पूर्वक हरिद्वार की प्रशंसा

नारदजी ने कहा— हे विज्ञानेश्वर ! आप मुझे यह बतलायें कि सगर को महाबली तथा विक्रान्त साठ हजार पुत्र कैसे हो गये ?॥१॥ **श्रीपार्वतीपति ने कहा—** तपस्या से जिनके पाप विनष्ट हो गये थे सगर की ऐसी दो पत्नियाँ थीं । प्रसन्न होकर महर्षि और्व ने उन दोनों को वरदान दिया ॥२॥ उनमें से एक ने साठ हजार पराक्रमी पुत्रों का वरदान माँगा और एक ने अपने लिए वंश बंढ़ाने वाले एक पुत्र का वरदान माँगा ॥३॥ उन दोनों में से एक ने एक तुम्बी में बहुत से वीर पुत्रों को उत्पन्न किया । उन सबों को धाइयों ने क्रमानुसार पाला ॥४॥ उन सबों को घी से भरे घड़ों में पाला गया, वे सबके सब प्रेम को बढ़ाने वाले थे । उन सबों को धाइयाँ कपिला गायों का दूध पिलाती थीं ॥५॥ उस दुग्ध के ही पीने से वे बढ़कर महाबलवान् हुए । एक जो पञ्चजन थे वे ही राजा हुए ॥६॥ उसके बाद पञ्चजन के पराक्रमी पुत्र अंशुमान् हुए । उनके पुत्र दिलीप हुए और उनके पुत्र भगीरथ हुए ॥७॥ वे ही हे सुव्रत ! नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा नदी को लाये । गङ्गाजी को समुद्र पर्यन्त लाकर वे उनको अपनी पुत्री बना लिये ॥८॥ नारदजी ने पूछा गङ्गाजी को वे कैसे लाये और उन्होंने कौन सा तप किया था ? हे दयासागर ! आप तो सुन्दर व्रत वाले (सुव्रत) हैं ॥९॥ **महादेवजी ने कहा—** अपने पूर्वजों का कल्याण करने के लिए ये हिमालय पर्वत पर

आदिदेवः प्रसन्नोऽभूद्योऽसौ देवो निरञ्जनः । तेन दत्ता इयं गङ्गा आकाशात्समुपस्थिता ॥११॥
तत्र विश्वेश्वरो देवो यत्र तिष्ठति नित्यशः । गङ्गां दृष्ट्वाऽऽगतां तेन गृहीता जाह्नवी तदा ॥१२॥
जटाजूटे च संधार्य वर्षाणामयुतंस्थितम् । न निःसृता तदा गङ्गा ईशस्यैव प्रभावतः ॥१३॥
विचारितं तदा तेन क्व गता मम मातृका । स ध्यानेन विचार्यैवं गृहीता चेश्वरेण तु ॥१४॥
ततः कैलासमगमत्स तु भगीरथो नृपः । तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठ ! ह्यकरोदुल्बणं तपः ॥१५॥
आराधितस्तदा तेन दत्तवानहमापगाम् । एकं केशं परित्यज्य दत्ता त्रिपथगा तदा ॥१६॥
स गृहीत्वा गतो गङ्गां पाताले यत्र पूर्वजाः ।
अलकनन्दा तदा नाम गङ्गायाः प्रथमं स्मृतम् ॥१७॥
हरिद्वारेयदाऽऽयाता विष्णुपादोदकी तदा । तदेव तीर्थं प्रवरं देवानामपि दुर्ल्लभम् ॥१८॥
तत्तीर्थे च नरः स्नात्वा हरिं दृष्ट्वा विशेषतः ।
प्रदक्षिणं ये कुर्वन्ति न चैते दुःखभागिनः ॥१९॥
ब्रह्महत्यादि पापानां राशयः सन्त्यनेकशः । विलयं यान्ति ते सर्वे हरेर्दर्शनतः सदा ॥२०॥
एकदा केशवस्थाने हरिद्वारे ह्यहंगतः । तस्मात्तीर्थप्रभावाच्च जातोऽहंविष्णुरूपवान् ॥२१॥
ये गच्छन्ति नरश्रेष्ठास्ते वै यान्ति ह्यनामयम् ।
चतुर्भुजास्तु ते लोकानरानार्यश्च सर्वशः ॥२२॥
वैकुण्ठं यान्ति ते सर्वे हरेर्दर्शनमात्रतः । ममाप्यधिकतीर्थं तु हरिद्वारं सुशोभनम् ॥२३॥

गये । वहाँ जाकर इन्होंने दश हजार वर्षों तक तपस्या किया ॥१०॥ उससे निरञ्जन तथा अदिदेव प्रसन्न हो गये । उन्होंने ही इस गङ्गा को दिया और ये गङ्गा आकाश से आयीं ॥११॥ वहाँ पर सदैव विश्वेश्वर देव रहते हैं । आयी हुयी गङ्गा को देखकर उन्होंने उन को ग्रहण कर लिया ॥१२॥ वे अपने जटा जूट में गङ्गाजी को दश हजार वर्षों तक धारण किए रहे । शङ्करजी के प्रभाव के कारण गङ्गाजी उस जटाजूट से बाहर नहीं निकल सकीं ॥१३॥ उस समय राजा भगीरथ ने विचार किया कि मेरी माता गङ्गाजी कहाँ चली गयी । इस तरह से ध्यान से विचार करके उन्होंने जाना कि गङ्गाजी को शङ्करजी ने रख लिया है॥१४॥ उसके पश्चात् राजा भगीरथ कैलास गये । हे मुनि श्रेष्ठ ! वहाँ जाकर उन्होंने कठोर तपस्या की॥१५॥ उनके द्वारा आराधित होकर मैंने उस नदी को दे दिया । मैंने अपना एक केश तोड़कर तीन मार्गों से जाने वाली गङ्गाजी को दे दिया ॥१६॥ वे गङ्गाजी को लेकर पाताल में गये जहाँ पर उनके पूर्वज थे । गङ्गा का प्रथम नाम अलकनन्दा है ॥१७॥ जब वे हरिद्वार में आयीं तो वे विष्णुपादोदकी हो गयी। वह श्रेष्ठ तीर्थ देवताओं के लिए भी दुर्लभ है ॥१८॥ उस तीर्थ में स्नान करके तथा विशेष रूप से श्रीहरि का दर्शन करके उनकी प्रदक्षिणा जो लोग करते हैं वे दुःख के भागी नहीं होते हैं ॥१९॥ ब्रह्महत्या आदि अनेक पापों की जो राशियाँ हैं, उनका नाश श्रीहरि के दर्शन मात्र से हो जाता है ॥२०॥ एक बार मैं स्वयं केशव भगवान् के स्थान हरिद्वार तीर्थ में गया और उस तीर्थ के प्रभाव से मेरा भी रूप श्रीकेशव भगवान् का ही हो गया ॥२१॥ जो श्रेष्ठ पुरुष हरिद्वार तीर्थ में जाते हैं वे उस लोक में चले जाते हैं जहाँ के सभी जीव चार भुजाओं वाले हैं ॥२२॥ वे श्रीहरि के दर्शन मात्र से वे वैकुण्ठ को प्राप्त कर लेते हैं । हरिद्वार तीर्थ

तीर्थानां प्रवरं तीर्थं चतुर्वर्गप्रदायकम् । कलौ धर्मकरं पुंसां मोथदं चार्थदं तथा ॥२४॥
यत्र गङ्गा महारम्या नित्यं वहति निर्मला। एतत्कथानकं पुण्यं हरिद्वाराख्यामुत्तमम्॥२५॥
उक्तं च शृण्वतां पुंसां फलं भवति शाश्वतम् ।
अश्वमेधे कृते यागे गोसहस्रे तथैव च ॥२६॥
तत्पुण्यं लभते विद्वान्हरेर्दर्शनमात्रतः । गोहन्ता ब्रह्महा चैव ये चान्ये पितृघातकाः ॥२७॥
एवं विधानि पापानि बहून्यपि च वै द्विज ।
विलयं यान्ति सर्वाणि हरेर्दर्शनमात्रतः ॥२८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे हरिद्वारमाहात्म्ये गङ्गोत्पत्तिपूर्वकं हरिद्वारमाहात्म्यं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

तेइसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

गाङ्गं वक्ष्यामि माहात्म्यं यथोक्तं मुनिसत्तम ! ।
यस्य श्रवणमात्रेण अघं नश्यति तत्क्षणात् ॥१॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥२॥

मेरे भी तीर्थ से अधिक सुन्दर है ॥२३॥ वह सभी तीर्थों में श्रेष्ठ तथा चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है । कलि में मनुष्य के धर्म को बढ़ाने वाला मोक्ष तथा अर्थ को प्रदान करने वाला है ॥२४॥ वहाँ पर अत्यन्त सुन्दर तथा निर्मल गङ्गा सदैव प्रवाहित होती रहती हैं । यह हरिद्वार की कथा उत्तम तथा पुण्य प्रदान करने वाली है ॥२५॥ बतलाया गया है कि इस कथा को सुनने वाले पुरुषों को शाश्वत फल की प्राप्ति होती है । अश्वमेध याग करने, हजारों गौओं का दान करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसकी विद्वान् पुरुष श्रीहरि का दर्शन कर लेने मात्र से कर लेते हैं । हे द्विज ! श्रीहरि के दर्शन मात्र से गोहन्ता, ब्रह्मघाती, पितृहन्ता इत्यादि पापियों के जो पाप हैं, तथा इस तरह के जो अनेक पाप हैं वे सबके सब विनष्ट हो जाते हैं ॥२६-२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के शिव नारद संवाद के अन्तर्गत हरिद्वार माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में गङ्गाजी की उत्पत्ति तथा हरिद्वार माहात्म्य वर्णन नामक बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

गङ्गा, यमुना, प्रयाग, काशी तथा गया गदाधर की स्तुति का वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं गङ्गा का माहात्म्य जैसा बतलाया गया है उसका वर्णन कर रहा हूँ । उसके सुनने मात्र से उसी क्षण पाप का नाश हो जाता है ॥१॥ जो मनुष्य हजारों योजन दूर से

चरणाब्जसमुद्भूता गङ्गा नामेति विश्रुता। पापानां स्थूलराशीनां नाशिनी चेति नारद !॥३॥
नर्मदा सरयूश्चैव तथा वेत्रवती नदी। तापी पयोष्णी चन्द्रा च विपाशा कर्मनाशिनी॥४॥
पुष्या पूर्णा तथा दीपा विदीपा सूर्यनन्दना। सहस्रवृषदानात्तु यत्फलं लभते ध्रुवम्॥५॥
तत्फलं समवाप्नोति गङ्गादर्शनतः क्षणात्। इयं गङ्गा महापुण्या ब्रह्मघ्नानां विशेषतः॥६॥
तेषां निरययुक्तानां गङ्गा पापापहारिणी। चन्द्रसूर्योपरागे च यत्फलं विद्यतेऽनघ !॥७॥
तत्फलं समवाप्नोति गङ्गादर्शनमात्रतः। यथा सूर्योदये तात तमो गच्छति दूरतः॥८॥
तथा गङ्गाप्रभावेण विलयं याति पातकम्। मान्येयं सर्वदा लोके पवित्रा पापनाशिनी॥९॥
कल्याणरूपा सततं विष्णुना निर्मिता पुरा। दिव्यरूपा तु जननी दीनानां पावनीस्मृता॥१०॥

देवानां च यथा विष्णुस्तथा गङ्गोत्तमा नदी।
ये कुर्वन्ति नराः स्नानं माघमासे निरन्तरम्॥११॥
न तेषां विद्यते दुःखं कल्पानां च शतत्रयम्।
यत्र गङ्गा च यमुना यत्रचैव सरस्वती॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुक्तिभागी न संशयः॥१२॥
त्वद्वार्तां प्रियतो ब्रवीमि यदहं साऽस्तु स्तुतिस्ते प्रभो !
यद्भुञ्जे तव तन्निवेदनमथो यद्यामि सा प्रेष्यता।
यच्छान्तः स्वपिमि त्वदङ्घ्रियुगले दण्डप्रणामोऽस्तु नः,
स्वामिन्यच्च करोमि तेन स भवान्विश्वेश्वरः प्रीयताम्॥१३॥

गङ्गाजी का नाम स्मरण करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में जाता है ॥२॥ श्रीभगवान् के चरण कमल से उद्भूत नदी का गङ्गा नाम विख्यात है। हे नारदजी ! वह पापों की विशाल राशि का विनाश करने वाली हैं ॥३॥ नर्मदा, सरयू, वेत्रवती नदी, तापी, पयोष्णी, चन्द्रा तथा विपाशा, कर्मनाशा, पुष्या, पूण्या, दीपा, विदीपा तथा यमुना इन नदियों में स्नान करने से तथा हजार वृषों का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति मनुष्य गङ्गा के दर्शन मात्र से क्षण भर में प्राप्त कर लेता है। यह गङ्गा विशेष रूप से ब्रह्मघातियों को महान् पुण्य प्रदान करने वाली हैं ॥४-६॥ नरक में स्थित उन जीवों के पाप का विनाश गङ्गा करती हैं। हे अनघ ! चन्द्र ग्रहण और सूर्यग्रहण के समय जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति गङ्गाजी के दर्शन मात्र से होती है। हे तात ! जिस तरह सूर्योदय होते ही अन्धकार दूर चला जाता है ॥७-८॥ उसी तरह गङ्गा के प्रभाव से पाप विनष्ट हो जाता है। यह लोक में सर्वदा मान्य, पवित्र और पापों का विनाश करने वाली है ॥९॥ भगवान् विष्णु ने इसको सदा कल्याण स्वरूप रहने वाली बनाया है। यह दिव्य रूप वाली दीन जीवों की माता तथा पवित्र करने वाली कही गयी हैं ॥१०॥ जिस तरह देवताओं में भगवान् विष्णु उत्तम हैं उसी तरह नदियों में गङ्गा उत्तम हैं। जो मनुष्य माघ के महीनें में सदा गङ्गा नदी में स्नान करते हैं ॥११॥ उन मनुष्यों को तीन सौ कल्पों तक कोई दुःख नहीं प्राप्त होता है। जहाँ पर गङ्गा, यमुना और सरस्वती का सङ्गम हैं वहाँ पर स्नान करने से तथा उसका जल पीने से मनुष्य मुक्ति का पात्र हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं हैं॥१२॥ श्रीभगवान् का प्रार्थना करते हुए कहना चाहिए कि हे प्रभो ! आपकी प्रिय चर्चाओं का जो मैं

दृष्टेन वन्दितेनापि स्पृष्टेन च धृतेन के । नरा येन विमुच्यन्तो तदेतद्यामुनं जलम् ॥१४॥
तावद् भ्रमन्ति भुवने मनुजा भवोत्थदारिद्र्यरोगमरणव्यसनाभिभूताः ।
यावज्जलं तव महानदिनीलनीलं पश्यन्ति नो दधति मूर्धसु सूर्यपुत्रि ! ॥१५॥
यत्संस्मृतिः सपदि कृन्तति दुष्कृतौघं पापावलीं जयति योजनलक्षतोऽपि ।
यन्नाम नाम जगदुच्चरितं पुनाति दिष्ट्या हि सा पथि दृशो भविताऽद्य गङ्गा ॥१६॥
आलोकोत्कण्ठितेन प्रमुदितमनसा वर्त्म यस्याः प्रयातं,
सत्यस्मिन्कृत्यमेतामथ प्रथमकृती जज्ञिवान्स्वर्गसिन्धुम् ।
स्नानं सन्ध्यानिवापः सुरयजनमपि श्राद्धविप्राशनाद्यं,
सर्वं सम्पूर्णमेतद्भवति भगवतः प्रीतिदं नातिचित्रम् ॥१७॥
देवि त्वं तु परब्रह्मपरमानन्ददायिनि। अर्घं गृहाण मे गङ्गे पापं हर नमोऽस्तु ते॥१८॥
साक्षाद्धर्मद्रवौघं मुररिपुचरणाम्भोजपीयूषसारं,
दुःखस्याब्धेस्तरित्रं सुरमनुजनुतं स्वर्गसोपानमार्गम् ।
सर्वांहोहारि वारि प्रवरगुणगणं भासि या संवहन्ती,
तस्यै भागिरथि श्रीमति मुदितमना देवि ! कुर्वे नमस्ते ॥१९॥

वर्णन करता हूँ, वहीं आपकी स्तुति बन जाय, मैं जो भोजन करता हूँ वही आपको निवेदित प्रसाद बन जाय, मैं जो चलता हूँ वही आपकी सेवा हो जाय । मैं जो शान्त होकर सोता हूँ वही आपके चरणों में किया गया साष्टाङ्ग प्रणाम बन जाय । हे स्वामिन् ! मैं जो कुछ भी करता हूँ, उससे आप प्रसन्न हो जायँ। आप तो विश्वेश्वर हैं ॥१३॥ यमुनाजी का जल ऐसा है कि उसको देखने, वन्दना करने, स्पर्श करने तथा धारण करने वाले सभी जीव मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥१४॥ संसारजन्य दरिद्रता, रोग, मृत्यु तथा कष्टों से अभिभूत होकर मनुष्य तब तक संसार में भ्रमण करते रहते हैं, हे महानदि ! सूर्य पुत्रि !जब तक कि वे लोग आपके नीले-नीले जल का न तो दर्शन करते हैं और न अपने शिर पर धारण करते हैं ॥१५॥ जिनका लाखों योजन से किया गया स्मरण दुष्कर्म समूह को विनष्ट कर देता है तथा पाप समूह पर विजय प्राप्त कर लेता है । यह प्रख्यात है कि जिनके नाम का उच्चारण संसारी प्राणियों को पवित्र बना देता है, सौभाग्यवशात् मैं उसी गङ्गाजी का दर्शन करूँगा ॥१६॥ जिस गङ्गाजी तक जाने वाले मार्ग को उत्कण्ठा पूर्वक प्रसन्न मन से प्रकाशित करना, इसके कार्य के रहने पर प्रथम रचना स्वर्ग सिन्धु (गङ्गा) की उत्पत्ति हुयी, उस गङ्गा में स्नान, सन्ध्या, तर्पण, देवपूजा, श्राद्ध तथा ब्राह्मण भोजन आदि सबके सब पूर्ण रूप से यदि श्रीभगवान् को प्रसन्न करने वाला होता है तो इसमें कौन सा आश्चर्य है ?॥१७॥ हे देवि ! आप परंब्रह्म को परमानन्द प्रदान करने वाली हैं । हे गङ्गे ! आप मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ को स्वीकार करके मेरे पापों को नष्ट कर दें, आपको नमस्कार है ॥१८॥ साक्षात् धर्मद्रव समूह रूपी, श्रीभगवान् के चरण कमल के पीयूष के सार स्वरूप, दुःखसागर से पार होने के साधन स्वरूप, देवताओं और मनुष्यों से वन्दित, स्वर्ग प्राप्ति के सोपान स्वरूप, समस्त पापों का अपहरण करने वाले जल तथा श्रेष्ठ गुण समूह का संवहन करती हुयी जो आप प्रतीत होती हैं, ऐसी ऐश्वर्य सम्पन्न हे भागीरथि देवि ! ऐसी आपको प्रसन्न मन से नमस्कार करता हूँ ॥१९॥ हे स्वर्ग की नदी ! हे पाप सागर में डूबती हुयी जनता का उद्धार करने

स्वः सिन्धोदुरिताब्धिमग्नजनतासन्तारणिप्रोल्लसत्-
कल्लोलामलकान्तिनाशिततमःस्तोमे जगत्पावनि ! ।
गङ्गे ! देवि ! पुनीहि दुष्कृतभयक्रान्तं कृपाभाजनम् ।
मातर्मां शरणागतं शरणदे ! रक्षाथ भो भीषितम् ॥२०॥
हंहो मानसकम्पसे किमु सखे त्रस्तं भयान्नारका,
त्किं ते भीतिरितिश्रुतिर्दुरितकृत्संजायते नारकी ।
मा भैषी शृणु मे गतिं यदि मया पापाचलस्पार्द्धिनी,
प्राप्ता ते निरयः कथं किमपरं किं मे न धर्मं धनम् ॥२१॥
सर्वेशादि प्रशंसामुदमनुभवितुं मज्जनं यत्र चोक्तं,
स्वर्नार्यो वीक्ष्य हृष्टा विबुधसुरपतिप्राप्तिसंभावनेन ।
नीरे श्रीजह्नुकन्ये यमनियमरताः स्नान्ति येतावकीने,
देवत्वं ते लभन्ते स्फुटमशुभकृतोऽप्यत्र वेदाः प्रमाणम् ॥२२॥
बुद्धे ! सद्बुद्धिरेवं भवतु तवसखे मानसे स्वस्ति तेऽस्तु,
आस्तां पादौ पदस्थौ सततमिहयुवां साधुदृष्टी च दृष्टी ।
वाणि ! प्राणप्रियेऽधिप्रकटगुणवपुः प्राप्नुहि प्राणपुष्टिं,
यस्मात्सर्वैर्भवद्भिः सुखमतुलमहं प्राप्नुयां तीर्थपुण्यम् ॥२३॥
श्रीजाह्नवीरविसुतापरमेष्ठिपुत्रीसिन्धुत्रयाभरणतीर्थवरप्रयाग ! ।
सर्वेश ! मामनुगृहाण नयस्व चोर्ध्वमन्तस्तमो दशविधं दलयस्वधाम्ना ॥२४॥

वाली ! हे उठती हुयी लहरियों की स्वच्छ कान्ति से अन्धकार समूह को विनष्ट करने वाली ! हे जगत् को पवित्र बनाने वाली ! हे गङ्गे देवि ! पाप के भय से आक्रान्त तथा आपकी कृपा का पात्र मुझको आप पवित्र बना दें, हे शरणागत जीवों की रक्षा करने वाली ! मुझ भयभीत की रक्षा आप करें ॥२०॥ अरे मेरे मित्र ! मेरा मन तुम नरक के भय से क्यों डरे हुए हो ? क्या यह सुनकर कि पाप कर्म करने वाला जीव नारकी हो जाता है ? तुम मेरी बात सुनो, तुम डरो मत, यदि मैंने पाप पर्वत से स्पर्धा करने वाली गङ्गाजी को प्राप्त कर लिया है तो तुमको नरक कैसे होगा ? क्या मेरे पास धर्म रूपी सर्वश्रेष्ठ धन नहीं है ?॥२१॥ परमात्मा आदि के द्वारा की जाने वाली प्रशंसा से उत्पन्न आनन्द का अनुभव करने के लिए जिसमें स्नान करने को बतलाया गया है । देवेन्द्र की प्राप्ति जन्य समादर को देखकर अप्सरायें प्रसन्न होती हैं । हे श्रीजह्नुकन्ये आपके जल में यम नियम का पालन करने वाले जो लोग स्नान करते हैं वे तथा बड़े-बड़े पापी भी जीव देवत्व को प्राप्त करते हैं, इसमें वेद ही प्रमाण है ॥२२॥ हे बुद्धि ! तुम्हारी ऐसी ही सद्बुद्धि बनी रहे, हे मित्र मन ! तुम्हारा कल्याण हो । हे मेरे दोनों पैरों आप गङ्गाजी में आप दोनों की स्थिति बनी रहे । हे दोनों नेत्रों ! आप लोगों की इस विषय में साधु दृष्टि बनी रहे । हे प्राणप्रिये वाणी! तथा अधिक गुण सम्पन्न शरीर तुम्हारे प्राण पुष्ट हो जायँ । क्योंकि आप सबों के द्वारा मैं अतुलनीय सुख तथा तीर्थ का पुण्य मैं प्राप्त करूँ ॥२३॥ हे गङ्गा, यमुना तथा सरस्वती इन तीन नदियों रूप अलङ्कार से

वागीशविष्ण्वीशपुरन्दराद्याः पापप्रणाशाय विदांविदोऽपि ।
भजन्ति यत्तोरमनीलनीरं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥२५॥
कलिन्दजासङ्गमवाप्य यत्र प्रत्यग्गता स्वर्गधुनी धुनोति ।
अध्यात्मतापत्रितयं जनस्य स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥२६॥
श्यामो जटःश्यामगुणो वृणोति स्वच्छायया श्यामलया जनानाम् ।
श्यामः श्रमं कृन्ति यत्र दृष्टः स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥२७॥
ब्रह्मादयोऽप्यात्मकृतिं विहाय भजन्ति पुण्यात्मकभागधेयम् ।
यत्रोज्झिता दण्डधरः स्वदण्डं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥२८॥
यत्सेवया देव नृदेवतादि देवर्षयः प्रत्यहमामनन्ति ।
स्वर्गं स सर्वोत्तम भूमिराज्यं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥२९॥
एनांसि हन्तीति प्रसिद्धवार्ता नाम प्रतापेन दिशो द्रवन्ति ।
यस्य त्रिलोकी प्रतता यशोभिः स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥३०॥
धत्तेऽभितश्चामरचारुकान्तिसितासिते यत्र सरिद्वरेण्ये ।
आद्यो वटश्छत्रमिवातिभाति स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥३१॥
ब्राह्मीनपुत्रीत्रिपथास्त्रिवेणीसमागमे साक्षतयागमात्रात् ।
यत्राप्लुतान्ब्रह्मपदं नयन्ति सतीर्थराजो जयति प्रयागः ॥३२॥

सम्पन्न सभी तीर्थों में श्रेष्ठ प्रयाग, हे सर्वेश ! मुझ पर आप कृपा करें, अपने तेज से मेरे अन्तःकरण में विद्यमान दश प्रकार के अज्ञानान्धकार को दूर करके मुझे मुक्ति प्रदान करें ॥२४॥ उस तीर्थ राज प्रयाग की जय हो ! जिनके तट का सेवन अपने पापों का विनाश करने के लिए ज्ञानियों में अग्रगण्य बृहस्पति, विष्णु, शङ्कर तथा इन्द्र आदि करते हैं ॥२५॥ जहाँ पर यमुनाजी से मिलकर पूर्व की ओर प्रवाहित होती हुयी गङ्गा नदी, मनुष्यों के आध्यात्मिक आदि (आधिभौतिक तथा आधिदैविक) तीनों संतापों को विनष्ट कर देती है उस तीर्थ राज प्रयाग की जय हो ॥२६॥ जहाँ पर श्रीभगवान् के गुणों से युक्त श्यामवट के दर्शन मात्र से उनकी श्याम छाया से मनुष्यों के श्याम वर्ण की सांसारिक श्रान्ति का विनाश हो जाता है, उस तीर्थराज प्रयाग की जय हो ॥२७॥ ब्रह्मा आदि देवता भी अपने सृष्टि रूपी कार्य को छोड़कर अपने पुण्यात्मक सौभाग्य का सेवन करते हैं, जहाँ पर यमराज अपने दण्ड का परित्याग कर देते हैं उस तीर्थराज प्रयाग की जय हो ॥२८॥ जिसकी प्रतिदिन सेवन करने से स्वर्ग तथा पृथिवी का सर्वोत्तम राज्य प्राप्त होता है, इस बात का देवता विद्वान्, ब्राह्मण तथा देवर्षि गण बतलाते हैं, उस तीर्थ राज प्रयाग की जय हो॥२९॥ यह पापों को विनष्ट कर देता है, जिसके विषय में इस प्रकार की प्रसिद्धि है, जिसके नाम के प्रताप से पाप भाग जाते हैं जिसके यश से त्रैलोक्य व्याप्त है, उस तीर्थ राज प्रयाग की जय हो ॥३०॥ उस तीर्थ राज की जय हो जिसके दोनो बगल में विद्यमान दो श्रेष्ठ नदियाँ (गङ्गाजी तथा यमुनाजी) श्वेत तथा श्याम दो प्रकार के चामरों की शोभा को धारण करती हैं तथा अक्षयवट जिनके छत्र के समान सुशोभित होता है ॥३१॥ जहाँ पर सरस्वती, यमुना तथा गङ्गा इन तीनों से विरचित त्रिवेणी का सङ्गम

केषांचिज्जन्मकोटिर्व्रजति सुवचसा यामियामीति यस्मिन्,
केषाचित्प्रोषितानां नियतमतिपतेद्वर्षवृन्दं वरिष्ठम् ।
यत्प्राप्तं भाग्यलक्षैर्भवति भवति नो वासवाचामवाच्यो,
दिष्ट्या वेणीविशिष्टो भवति दृगतिथिः कम्प्रयागप्रयागः ॥३३॥
लोकानामक्षमाणां मखकृतिषु कलौ स्वर्गकामैर्जयस्तु-
त्यादिस्तौत्रैर्वचोभिः कथममरपदप्राप्तिचिन्तातुराणाम् ।
अग्निष्टोमाश्वमेधप्रमुखमखफलं सम्यगालोच्य साङ्गं
ब्रह्माद्यैस्तीर्थराजोऽभिमतद उपविष्टोऽयमेव प्रयागः ॥३४॥
मया प्रमादातुरतादि दोषतः सन्ध्याविधिर्नो समुपासितोऽभूत् ।
चेदत्र सन्ध्यां चरतोऽप्रमादतः सन्ध्यास्तु पूर्णाऽखिलजन्मनोऽपि मे ॥३५॥
अन्यत्रापि प्रगर्जन्महिमनितपसिप्रेमभिर्विप्रकृष्टै,
र्ध्यातः संकीर्तितो योऽभिमतपदविधाताऽनिशं निर्व्यपेक्षम् ।
श्रीमत्पांसुं त्रिवेणीपरिवृढमतुलं तीर्थराजं प्रयागं,
गोलङ्कारप्रकाशं स्वयममरवरैश्चार्चितं तं नमामि ॥३६॥
अस्माभिः सुतपोऽन्वतप्तकिमहो ऐज्यन्त किंवाध्वराः,
पात्रे दानमदायि किं बहुविधं किं वा सुराश्चार्चिताः ।
किं सत्तीर्थमसेवि किं द्विजकुलं पूजादिभिः सत्कृतं,
येन प्रापि सदाशिवस्य शिवदा सा राजधानी स्वयम् ॥३७॥

पर अक्षत के द्वारा किए गये याग मात्र से तथा वहाँ स्नान करने वालों को ब्रह्मलोक प्राप्त होता है । उस तीर्थ राज प्रयाग की जय हो ॥३२॥ जिस प्रयाग में जाने के लिए कुछ लोगों के मैं प्रयाग जाऊँगा-जाऊँगा, यह कहते हुए करोड़ों जन्म बीत जाते हैं वे नहीं जा पाते हैं तथा कुछ लोग जो विदेश चले गये हैं, उनके कई श्रेष्ठ वर्ष बीत जाते हैं । जिसकी प्राप्ति लाखों सौभाग्य के कारण होती है, जहाँ पर निवास का फल वर्णनातीत है, सुखमय श्रेष्ठ प्रयाग स्वरूप प्रयाग का दर्शन सौभाग्यवशात् ही होता है ॥३३॥ कलियुग में स्वर्ग की प्राप्ति चाहने वाले, किन्तु यागादि कर्मो को करने में असमर्थ होने के कारण जय-जयकार स्तुति इत्यादि स्तोत्र आदि वाणियों के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति कैसे सम्भव है ? इस प्रकार की चिन्ता करने वालों के लिए अग्निष्टोम तथा अश्वमेध आदि यागों के फल का सम्यक् विचार करके, ब्रह्मा आदि देवताओं से युक्त तथा अभिमत फल प्रदान करने वाले ये तीर्थराज प्रयाग बैठे ही हुए हैं ॥३४॥ प्रमाद तथा आतुरता आदि दोषों के कारण मैंने सन्ध्योपासन कर्म को नहीं किया है । यदि यहाँ पर सावधानी पूर्वक बैठकर सन्ध्या कर ली जाय तो समस्त जन्मों की सन्ध्या पूरी हो जाय ॥३५॥ अन्यत्र दूर रहकर भी तपस्या के समय प्रेम पूर्वक जिनकी महिमा का कीर्तन तथा ध्यान करने पर सदा निर्व्यपेक्ष रहने वाले तथा उपासकों को अभिप्रेत पद प्रदान करने वाले, जिनकी धूलि ऐश्वर्य सम्पन्न है, त्रिवेणी के द्वारा अतुलनीय समृद्धि सम्पन्न जो तीर्थराज प्रयाग हैं, जिनके गोल आकर वाले प्रकाश की पूजा श्रेष्ठ देवता करते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३६॥ हमलोगों ने न जाने कौन सी सुन्दर तपस्या की है, अथवा न जाने कौन सा यज्ञ

भाग्यैर्मेऽधिगता ह्यनेकजनुषां सर्वाघविध्वंसिनी,
सर्वाश्चर्यमयी मया शिवपुरी संसारसिन्धोस्तरी ।
लब्धं सज्जनुषः फलं कुलमलञ्चक्रे पवित्रीकृतः,
स्वात्मा चाप्यखिलं कृतं किमपरं सर्वोपरिष्टात्स्थितम् ॥३८॥
जीवन्नरः पश्यति भद्रलक्षमेवं वदन्तीति मृषा न यस्मात् ।
तस्मान्मया वै वपुषेदृशेन प्राप्ताऽपि काशी क्षणभङ्गुरेण ॥३९॥
काश्यां विधातुममरैरपि दिव्यभूमौ सत्तीर्थलिङ्गगणनार्चनतो न शक्या ।
यानीह गुप्तविवृतानि पुरातनानि सिद्धानि योजितकरः प्रणमामि तेभ्यः ॥४०॥
किं भीत्या दुरितव्रजात्किमु मुदा पुण्यैरगण्यैः कृतैः,
किं विद्याभ्यसनान्मदेन जडता दोषाद्विषादेन किम् ।
किं गर्वेण धनोदयादधनता तापेन किं भोजनाः,
स्नात्वा श्रीमणिकर्णिकापयसि चेद्विश्वेश्वरो दृश्यन्ते ॥४१॥
अल्पस्फीतिनिरामयाऽपि तनुता प्रव्यक्तशक्त्यात्मता-
प्रोत्साहढ्यबलेन केवलमनो रागद्वितीयेन यत् ।
अप्राप्यापि मनोरथैरविषयास्वप्नप्रवृत्तेरपि-
प्राप्ता सापि गदाधरस्य नगरी सद्योऽपवर्गप्रदा ॥४२॥

किया है, किसी योग्य पात्र को न जाने कौन सा, अनेक प्रकार का दान दिया है, अथवा न जाने किन देवताओं की पूजा की है, न जाने किस सत् तीर्थ का सेवन किया, अथवा न जाने किस ब्राह्मण वंश को पूजा आदि के द्वारा समादृत किया है जिसके फलस्वरूप स्वयं भगवान् सदाशिव की कल्याण कारिणी राजधानी को हमलोग प्राप्त किए हैं ॥३७॥ मेरे सौभाग्यवशात् अनेक जन्मों के सभी पापों को विनष्ट करने वाली, सभी प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, संसार सागर से पार करने वाली शिवपुरी (वाराणसी) को मैंने प्राप्त किया है । मैंने अपने जन्म का सुन्दर फल प्राप्त कर लिया है, और मेरी आत्मा पवित्र हो गयी है, मैंने न जाने किन सर्वश्रेष्ठ कार्यों को किया है, जिसका फल यह मुझे मिला है ॥३८॥ महापुरुषों का यह कथन मिथ्या नहीं है कि जीवित रहकर मनुष्य लाखों कल्याणों को प्राप्त करता है । इसीलिए मैंने अपने क्षणभङ्गुर शरीर के द्वारा काशी को प्राप्त किया है ॥३९॥ दिव्य भूमि काशी मे विद्यमान सत्तीर्थों तथा लिङ्गों की गणना एवं अर्चना देवगण भी नहीं कर सकते हैं, यहाँ पर जो गुप्त प्रकट तथा प्राचीन सिद्ध स्थान है उन सबों को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥४०॥ ऐ लोगों यदि मणिकर्णिका के जल में स्नान करके भगवान् विश्वेश्वर का दर्शन कर लिया गया है तो फिर पाप समूह से डरने की कौन सी आवश्यकता है? प्रसन्नता पूर्वक किए गये असंख्य पुण्यों से क्या मतलव है ? विद्या के अभ्यास से क्या लाभ है ? मदजन्य जडता, विषाद, अथवा दोष के विषय में क्या सोचना है ? धन की प्राप्ति जन्य गर्व अथवा निर्धनता जन्य संताप क्या करना है ?॥४१॥ जो स्वल्प समृद्धि से युक्त होने पर भी निरामय है जो सूक्ष्मता के द्वारा ही अपनी शक्ति सम्पन्नता को सूचित करती है जो अप्राप्य है फिर भी, अत्यधिक उत्साह युक्त बल तथा मानसिक प्रेम के द्वारा ही प्राप्त होती है, जहाँ तक मनोरथ से भी नहीं जाया जा

मन्ये नात्मकृतिर्नपूर्वपुरुषप्राप्तेर्बलं चात्रय-
न्नापीदं स्वजनप्रमाणमचलं किं शपतापादिकम् ।
या दुष्प्रापगयाप्रयागयमुनाकाशीसुपर्वागमात्-
प्राप्तिस्तत्र महाफलो विजयते श्रीशारदानुग्रहः ॥४३॥
यः श्राद्धसमये दूरात्स्मृतोऽपि पितृमुक्तिदः ।
तं गयायां स्थितं साक्षान्नमामि श्रीगदाधरम् ॥४४॥
पन्थानं समतीत्य दुस्तरमिमं दूराद्दवीयस्तरं,
क्षुद्रव्याघ्रतरक्षुकण्टकफणिप्रत्यर्थिभिः सङ्कुलम् ।
आगत्य प्रथमव्ययं कृपणवाग्याचेज्जनः कं परं,
श्रीमद्द्वारि गदाधर ! प्रतिदिनं त्वां द्रष्टुमुत्कण्ठते ॥४५॥
सर्वात्मन्निजदर्शनेन च गयाश्राद्धेन वै देवताः,
प्रीणन्विश्वमनीहवत्कथमिहौदासीन्यमालम्बसे ।
किं ते सर्वद निदर्यत्वमधुना किं वा प्रभुत्वं कलेः,
किं वा सत्त्वनिरीक्षणं नृषु चिरं किं वाऽस्य सेवारुचिः ॥४६॥
गदाधर ! मया श्राद्धं संचीर्णं त्वत्प्रसादतः ।
अनुजानीहि मां देव गमनाय गृहं प्रति ॥४७॥

सकता है, जो स्वप्न में भी सुलभ नहीं होती है तथा जो शीघ्र ही मोक्ष प्रदान कर देने वाली है, इस प्रकार की भगवान् गदाधर की नगरी गया आज मुझको प्राप्त हो गयी ॥४२॥ किसी पुण्य पर्व के अवसर पर दुष्प्राप्य गया, प्रयाग, यमुना (मथुरा वृन्दावन) तथा काशी में आने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, उससे महान् फल प्रदान करने वाली शारदा देवी की ही कृपा कारण है, वही विजयिनी है । इसमें मैं अपना पुरुषार्थ नहीं मानता हूँ । हमारे पूर्वजों ने आकर जो पुण्य प्राप्त किया है, उसका भी इसमें कोई महत्त्व नहीं है, स्वजनों की सुदृढ़ शक्ति से भी यह कार्य सम्भव नहीं है, इसमें शाप तथा ताप इत्यादि का क्या महत्त्व है?॥४३॥ श्राद्ध करते समय दूर से भी स्मरण करने पर जो पितृगणों को मुक्ति प्रदान कर देते हैं, उन गया तीर्थ में साक्षात् विद्यमान् भगवान् गदाधर को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४४॥ हे गदाधर भगवन् ! आपका यह दास अत्यधिक दूर से, छोटे-छोटे जीव (मच्छर आदि) व्याघ्र, तेंदुआ, काण्टे, तथा सर्पो आदि से भरे हुए कठिन मार्ग को पार करके आपके ऐश्वर्य सम्पन्न द्वार पर आया है, अतएव आपको छोड़कर किसके यहाँ याचना करने जाऊँ यह तो प्रतिदिन आपका ही दर्शन करने के लिए उत्कण्ठित बना रहता है ॥४५॥ हे सर्वात्मन् ! आप अपने दर्शन से, तथा गया में श्राद्ध करने से सभी देवताओं को तृप्त करते हैं तो फिर आप मेरे सामने क्यों उदासीन भाव को धारण किए हुए हैं ? हे अपने भक्तों को सब कुछ प्रदान करने वाले भगवन् ! आप में इस समय निर्दयता आ गयी है क्या ? अथवा आप पर भी कलियुग का प्रभाव आ गया है ? अथवा देर लगाकर आप अपने भक्तों की सात्त्विकता तथा धैर्य की परीक्षा ले रहे हैं ? अथवा आप यह देख रहे हैं कि आपके इस दास में आपकी सेवा करने में कितनी रुचि है ?॥४६॥ हे गदाधर

चतुर्णां देवतानां च स्तोत्रं स्वर्गार्थदायकम्। श्राद्धकालेपठेन्नित्यं स्नानकालेतुयःपठेत् ॥४८॥
सर्वतीर्थसमं स्नानं श्रवणात्पठनाज्जपात्। प्रयागस्य च गङ्गाया यमुनायाःस्तुतेर्द्विज ॥
श्रवणेन विनश्यन्ति दोषाश्चैव तु कर्मजाः ॥४९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे गङ्गाप्रयागयमुनास्तुतिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चौबीसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

प्रयागतीर्थमाहात्म्यं प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतम्। महादानपराः पुण्यकर्माणोयत्र सन्तिहि॥१॥
यत्र गङ्गा च यमुना यत्र चैव सरस्वती। तदेवतीर्थप्रवरं देवानामपि दुर्लभम् ॥२॥
ईदृशं त्रिषु लोकेषु भूतं न च भविष्यति। ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथाशशी ॥३॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं प्रयागाख्यमनुत्तमम्। प्रातःकाले तु भोविद्वन्प्रयागे स्नानमाचरेत्॥४॥
महापापाद्विनिर्मुक्तः स याति परमं पदम्। देयं किंचिद्यथाशक्ति दारिद्र्याभावमिच्छता ॥५॥

भगवन् ! आपकी कृपा से ही मैंने यहाँ पर श्राद्ध किया है, आप इसको स्वीकार करें और मुझे अपने घर जाने की अनुमति प्रदान करें ॥४७॥ इन चार देवताओं का स्तोत्र स्वर्ग प्रदान करने वाला है । इसे श्राद्ध के समय पढ़ना चाहिए और सदा स्नान के समय इसको पढ़ना चाहिए ॥४८॥ इसको पढ़ने, सुनने और जप करने से सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है । हे द्विज ! प्रयाग, गङ्गा तथा यमुना की स्तुति के सुनने से कर्मजन्य सभी दोष विनष्ट हो जाते हैं ॥४९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत गङ्गा, प्रयाग, यमुना तथा गया की स्तुति वर्णन नामक तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

प्रयागतीर्थ का माहात्म्य

श्रीमहादेवजी ने कहा— जैसा मैंने सुना है उसी तरह से प्रयाग तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन करता हूँ। वहाँ पर किए जाने वाले कर्म अत्यन्त पुण्यमय फल प्रदान करते हैं ॥१॥ जहाँ पर गङ्गा, यमुना तथा सरस्वती ये तीनों नदियाँ विद्यमान हैं; वह श्रेष्ठ तीर्थ प्रयाग देवताओं के लिए भी दुर्लभ है ॥२॥ इस प्रकार का तीर्थ तीनों लोकों में न तो हुआ और न होगा । जिस तरह ग्रहों में सूर्य और नक्षत्रों में चन्द्रमा श्रेष्ठ हैं, उसी तरह तीर्थों में प्रयाग उत्तम तीर्थ है । हे विद्वन् ! प्रातःकाल प्रयाग में स्नान करना चाहिए ॥३-४॥ कभी भी दरिद्र नहीं होने की कामना वाले को चाहिए कि प्रातःकाल स्नान करके कुछ दान करे । ऐसा करने वाला महापाप से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेता है ॥५॥ जो मनुष्य प्रयाग में जाकर स्नान

यो नरस्तत्र गत्वा वै प्रयागे स्नानमाचरेत् । धनिको दीर्घजीवी च जायते नात्रसंशयः ॥६॥
यत्र वटस्याक्षस्य दर्शनं कुरुते नरः । तेन दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या विनश्यति ॥७॥

स चाक्षयवटः ख्यातः कल्पान्तेऽपि च दृश्यते ।
शेते विष्णुर्यस्य पत्रे अतोऽयमव्ययःस्मृतः ॥८॥

तत्र पूजां प्रकुर्वन्ति मानवा विष्णुवल्लभाः। सूत्रेणाच्छादितंकृत्वा पूजां चैवतु कारयेत् ॥९॥

माधवाख्यस्तत्र देवः सुखं तिष्ठति नित्यशः ।
तस्य वै दर्शनं कार्यं महापापैः प्रमुच्यते ॥१०॥
यत्र देवाश्च ऋषयो मनुष्याश्चापि सर्वशः ।
स्वस्वस्थानं समाश्रित्य तत्र तिष्ठन्ति नित्यशः ॥११॥
गोघ्नो वापि च चाण्डालो दुष्टो वा दुष्टचेतनः ।
बालघाती तथाऽविद्वान्म्रियते तत्र वै यदा ॥१२॥
स वै चतुर्भुजो भूत्वा वैकुण्ठे वसते चिरम् ।
प्रयागे तु नरो यस्तु माघस्नानं करोति च ॥१३॥
न तस्य फलसङ्ख्यास्ति शृणु देवर्षिसत्तम ।
आपो नाराइतिप्रोक्ताः सर्वलोकेषु शुश्रुम ॥१४॥
तेन नारायणः प्रोक्तः स्नातानां भुक्तिमुक्तिदः ।
ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी ॥१५॥
मासानां हि तथा माघः श्रेष्ठः सर्वेषु कर्मसु ।
मकरस्थे रवौ माघे प्रातःकाले तथाऽमले ॥१६॥

करता है वह धनिक और दीर्घजीवी होता है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥६॥ जो यहाँ पर अक्षयवट का दर्शन करता है, उसके दर्शन मात्र से उसकी ब्रह्महत्या विनष्ट हो जाता है ॥७॥ वह प्रख्यात अक्षयवट कल्पान्त हो जाने पर भी बना रहता है, उसी के पत्र पर भगवान् विष्णु शयन करते हैं अतएव यह अव्यय कहलाता है ॥८॥ वहाँ पर भगवान् विष्णु के भक्त पूजा करते है । उसे सूत्र से लपेट करके पूजा करनी चाहिए ॥९॥ प्रयाग में भगवान् का नित्य ही निवास बना रहता है । मनुष्य को उसका दर्शन करना चाहिए । ऐसा करने वाला महापाप से मुक्त हो जाता है ॥१०-११॥ वहाँ पर देवता, ऋषिगण तथा मनुष्य अपने-अपने स्थान पर सदा बने रहते हैं ॥१२॥ गोघाती, चाण्डाल, दुष्ट तथा दुष्ट विचार वाला, बालकों को मारने वाला या मूर्ख भी यदि प्रयाग में जाकर मर जाता है तो वह चतुर्भुज होकर दीर्घ काल तक वैकुण्ठ में निवास करता है । जो मनुष्य प्रयाग में माघ स्नान करता है, हे देवर्षि श्रेष्ठ ! उसको जिन फलों की प्राप्ति होती है, उन सबों की गणना नहीं की जा सकती है । जल का ही दूसरा नार है । यह सभी लोकों में प्रख्यात है ॥१३-१४॥ इसीलिए स्नान करने वालों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला नारायण को ही कहा गया है । जिस तरह ग्रहों में सूर्य हैं तथा नक्षत्रों में चन्द्रमा हैं ॥१५॥ उसी तरह सभी कर्मों को करने के लिए मासों में माघ मास श्रेष्ठ है । जब माघ मास में सूर्य मकर राशि

गो:पदेऽपि जले स्नानं स्वर्गदं पापिनामपि ।
योगोऽयं दुर्लभो विद्वंस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥१७॥
अस्मिन्योयत्नमापन्नः स्नायादपि दिनत्रयम् । पञ्च वा सप्तवाप्यत्रस्नानंकुर्वन्प्रयागजम् ॥१८॥
चन्द्रवद्वर्धते सोऽपि कुले वाडवसत्तम । चराचराश्च ये जीवास्तथैव मनुजादयः॥१९॥
प्रयागं तीर्थमाश्रित्य वैकुण्ठं यान्ति तेऽचिरात् ।
ये वसिष्ठादयस्तत्र ऋषयः सनकादयः ॥२०॥
तेऽपि प्रयागजं तीर्थं सेवन्ते च पुनःपुनः। यत्र विष्णुश्च रुद्रश्च यत्रेन्द्रश्च तथा पुनः ॥२१॥
तेऽपि सर्वे वसन्तीह प्रयागे तीर्थसत्तमे । दानंतत्र प्रशंसन्ति नियमांश्च तथैव च ॥२२॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च पुनर्जन्म न विद्यते ॥२३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे प्रयागमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥
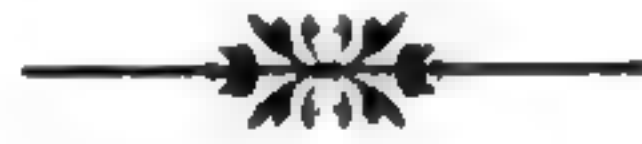
पच्चीसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

श्रृणु नारद ! वक्ष्यामि माहात्म्यं तुलसीभवम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥१॥

पर हों उस समय निर्दोष प्रातःकाल में ॥१६॥ गौ के खुर का भी जल पापियों को भी स्वर्ग प्रदान करता है । हे विद्वन् ! सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् में यह दुर्लभ योग है ॥१७॥ इस योग में जो व्यक्ति प्रयास करके तीन दिन भी यदि या पाँच दिन या सात दिन प्रयाग में स्नान कर लेता है तो हे ब्राह्मण ! श्रेष्ठ वह अपने वंश में उसी तरह से बढ़ता है जिस तरह चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में बढ़ते हैं । मनुष्य आदि जितने भी चराचर जीव हैं, वे प्रयाग तीर्थ को अपना आश्रय बनाकर शीघ्र ही वैकुण्ठ चले जाते हैं । वहाँ पर जो वसिष्ठ तथा सनकादिक ऋषिगण हैं ॥१८-२०॥ वे भी बार-बार प्रयाग तीर्थ का सेवन करते हैं । विष्णु, रुद्र तथा इन्द्र आदि देवता भी तीर्थ श्रेष्ठ प्रयाग में निवास करते हैं । महापुरुष वहाँ पर किए जाने वाले दानों तथा नियमों की प्रशंसा करते हैं, वहाँ पर स्नान करके तथा वहाँ का जल पीकर मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता है ॥२१-२३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

तुलसी तथा शालग्राम का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— नारदजी ! मैं आपको तुलसी का माहात्म्य सुनाता हूँ, उसे आप सुनें । उसका श्रवण करके मनुष्य जन्म से लेकर मृत्य पर्यन्त के समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥१॥ तुलसी के पत्र,

पत्रं पुष्पं फलं मूलं शाखात्वक्स्कन्धसंज्ञितम् ।
तुलसीसंभवं सर्वं पावनं मृत्तिकादिकम् ॥२॥

शरीरं दह्यते येषां तुलसीकाष्ठवह्निना । दत्त्वा च तुलसीकाष्ठं सर्वाङ्गेषु मृतस्य वै ॥३॥
पश्चाद्यः कुरुते दाहंसोऽपि पापात्प्रमुच्यते। मरणे यस्य संप्राप्तं कीर्तनं स्मरणं हरेः ॥४॥
तुलसीदारुणादाहो न तस्य पुनरावृतिः । यद्येकं तुलसीकाष्ठं मध्ये काष्ठशतस्य हि॥५॥
दाहकाले भवेन्मुक्तिः कोटिपापयुतस्य च। गङ्गाम्भसाभिषेकेण यान्ति पुण्यानि पुण्यताम् ॥६॥

तुलसीकाष्ठमिश्राणि यान्ति दारूणि पुण्यताम् ।
तुलसीकाष्ठसंमिश्रा यावत्प्रज्वलते चिता ॥७॥
दह्यन्ति तस्य पापानि कल्पकोटिकृतानि वै ।
दह्यमानं नरं दृष्ट्वा तुलसीकाष्ठवह्निना ॥८॥

नयन्तितं विष्णुदूता न च वै यमकिङ्कराः । जन्मकोटिसहस्रैस्तु मुक्तोयाति जनार्दनम्॥९॥

दह्यन्ते ये नरा लोके तुलसी काष्ठवह्निना ।
तान्विमानस्थितान्देवाः क्षिपन्ति कुसुमाञ्जलिम् ॥१०॥
नृत्यन्त्यप्सरसः सर्वा गीतं गायन्ति गायकाः ।
जायते वीक्ष्य तं विष्णुः संतुष्टः शम्भुना सह ॥११॥
गृहीत्वा तं करे शौरिर्गृहं नीत्वाऽस्य चाङ्गतः ।
मार्जयेत्सर्वपापानि पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥१२॥

महोत्सवं कारयित्वा जयशब्दपुरःसरम् । ज्वलते यत्र चाज्येन तुलसीकाष्ठपावकः ॥१३॥

पुष्प, फल, मूल, छिलका, डंठल तथा मिट्टी आदि जो तुलसी से उत्पन्न हैं वे सबके सब पवित्र हैं ॥२॥ मृत व्यक्ति के सभी अङ्गों मे तुलसी की लकड़ी रखकर तुलसी के लकड़ी की आग से यदि किसी व्यक्ति के शरीर को जलाया जाता है, वह अग्नि से जलने वाला व्यक्ति भी पापों से मुक्त हो जाता है । जिसके मरते समय श्रीहरि का कीर्तन किया जाता है, उस जीव को पुनः इस संसार में तुलसी से जलाये जाने का अवसर नहीं आता है । जलाने के समय सैकड़ों काष्ठों के बीच में यदि एक भी तुलसी का काष्ठ रहता है तो वह करोड़ो पापों को किए रहता है तो उसकी मुक्ति हो जाती है । गङ्गाजल से स्नान करने से पुण्य कर्म और पवित्र हो जाते हैं ॥३-६॥ तुलसी के काष्ठ से मिश्रित होकर दूसरे काष्ठ पवित्र हो जाते हैं । तुलसी की लकड़ी जिसमें मिली रहती है, इस प्रकार की चिता जब तक जलती रहती है ॥७॥ तब तक उस जीव द्वारा करोड़ों कल्पों में किए गये पाप जलते रहते हैं । तुलसी की लकड़ी से जलते हुए मनुष्य को देखकर ॥८॥ उसको विष्णु भगवान् के दूत विष्णु लोक में ले जाते हैं उसे यमदूत नहीं ले जाते हैं। वह हजारों जन्मों से मुक्त होकर भगवान् जनार्दन को प्राप्त कर लेता है ॥९॥ संसार में जो मनुष्य तुलसी की लकड़ी से जलाये जाते हैं, उन सबों को विमान पर बैठे हुए देखकर देवगण उसको पुष्पाञ्जलि निवेदित करते हैं ॥१०॥ उसको देखकर भगवान् विष्णु सन्तुष्ट हो जाते हैं और उसका हाथ पकड़कर अपने धाम में लाते हैं और सभी देवताओं के सामने ही उसके पापों को अपने हाथों से दूर कर देते हैं ॥११-१२॥ तथा उसका जय-जयकार कराकर महोत्सव मनाते हैं । जहाँ पर घी के साथ तुलसी की

अग्न्यगारे श्मशाने वा दह्यते पातकंनृणाम्। होमं कुर्वन्ति ये विप्रास्तुलसीकाष्ठवह्निना ॥१४॥
सिक्थे सिक्थे तिले वापि अग्निष्टोमफलं लभेत् ।
यो ददाति हरेर्धूपं तुलसीकाष्ठसंभवम् ॥१५॥
शतक्रतुसमं पुण्यं लभते गोशतं फलम् । नैवेद्यं यस्तु तुलसीकाष्ठवह्निना ॥१६॥
मेरुतुल्यं भवेद्दत्तं तदन्नं केशवस्य हि । तुलसीपावकेनाथ यो दीपं कुरुते हरेः ॥१७॥
दीपलक्षसहस्राणां पुण्यं स लभते फलम् । न तेन सदृशो लोके वैष्णवो भुवि दृश्यते ॥१८॥
यः प्रयच्छति कृष्णास्य तुलसीकाष्ठचन्दनम् ।
स जायते कृपापात्रं विष्णोर्वाडवसत्तम ॥१९॥
तुलसीदारुजातेन चन्दनेन कलौ हरिम् । विलिप्य भक्तितो नित्यं रमते हरिसन्निधौ ॥२०॥
तुलसीपङ्कलिप्ताङ्गः कुरुते विष्णुपूजनम्। पूजाशतदिनैकाह्ना लभ्यते गोशतं फलम्॥२१॥
विलेपार्थे तु कृष्णस्य तुलसीकाष्ठचन्दनम्। मन्दिरे तिष्ठते यावत्तावत्पुण्यफलं श्रृणु॥२२॥
तिलप्रस्थाष्टकं दत्त्वा यत्पुण्यंप्राप्नुयान्नरः । तत्फलंजायतेपुंसांप्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥२३॥
योददातिपितृणां तु पिण्डे तुलसिसंभवम् । दलं संजायतेतृप्तिःपत्रे पत्रे शताब्दिका ॥२४॥
तुलसीमूलमृद्भिश्च स्नानं कुर्याद्विशेषतः । तेन तीर्थे कृतं स्नानं यावच्चाङ्गे च मृत्तिका॥२५॥
तदीयया तु मञ्जर्या पूजनं च करोति यः । नानापुष्पैः कृता पूजा यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥२६॥

लकड़ी जलायी जाती है वह स्थान चाहे यज्ञशाला हो या श्मशान हो, उसमें मनुष्यों के पाप ही जलते हैं। जो ब्राह्मण तुलसी के काष्ठ की अग्नि से होम करते हैं ॥१३-१४॥ उसके एक-एक सिक्थ (पुलाव) तथा तिल से अग्निष्टोम याग के फल की प्राप्ति होती है । जो मनुष्य तुलसी की लकड़ी से बने धूप को श्रीहरि को समर्पित करता है ॥१५॥ वह इन्द्र के समान सैकड़ों गोदान का फल प्राप्त करता है । जो नैवेद्य तुलसी की लकड़ी की आग से पकाया जाता है ॥१६॥ उस अन्न को भगवान् केशव को समर्पित करने से वह सुमेरु के समान अक्षय पुण्यप्रद हो जाता है । जो मनुष्य तुलसी की अग्नि से श्रीभगवान् को दीप दिखाता है॥१७॥ वह एक लाख हजार दीपक दान करने का फल प्राप्त करता है । उसके समान संसार में कोई भी वैष्णव नहीं दिखायी देता है ॥१८॥ जो श्रीभगवान् को तुलसी के काष्ठ से बने चन्दन को समर्पित करता है, हे ब्राह्मण (नारद) ! वह भगवान् का प्रियतम हो जाता है ॥१९॥ तुलसी की लकड़ी से बने चन्दन का प्रतिदिन श्रीहरि के शरीर में जो भक्तिपूर्वक लेप लगाता है, वह मृत्यु के पश्चात् श्रीहरि के पास जाकर आनन्दानुभव करता है ॥२०॥ जो व्यक्ति अपने शरीर में तुलसी का चन्दन लगाकर भगवान् विष्णु की पूजा करता है वह एक ही दिन में सैकड़ों दिनों तक पूजा करने का फल तथा सौ गौओं को दान करने का फल प्राप्त करता है ॥२१॥ भगवान् विष्णु के शरीर में तुलसी के काष्ठ के चन्दन लगाने के लिए मनुष्य जब तक मन्दिर में रुका रहता है उस को प्राप्त होने वाले फल को आप सुनें ॥२२॥ आठ प्रस्थ तिलदान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसी फल की प्राप्ति उसको भगवान् विष्णु की कृपा से होती है ॥२३॥ जो मनुष्य पितृगणों के पिण्ड पर तुलसी दल को चढ़ाता है, तो तुलसी के एक-एक दल से पितरों को सौ वर्षों तक तृप्ति बनी रहती हैं ॥२४॥ जो व्यक्ति तुलसी की जड़ की मिट्टी को अपने शरीर में लगाकर स्नान करता है, उसको तीर्थ में स्नान करने का फल प्राप्त होता है ॥२५॥ जो तुलसी

यस्मिन्गृहेऽवतिष्ठेत तुलसीवृक्षवाटिका । दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव ब्रह्महत्यादिपातकम् ॥
तत्सर्वं विलयं याति दर्शनेनैव नारद ! ॥२७॥

महादेव उवाच

अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकाग्रमानसः । न कस्यापि च कथितं शृणु देवर्षिसत्तम ॥२८॥
यत्र यत्र गृहे ग्रामे वने वा तुलसी भवेत् । तत्र तत्र जगत्स्वामी प्रीतात्मा च वसेद्धरिः ॥२९॥
गृहे तस्मिन्न दारिद्रयं नायोगो बन्धुसम्भवः । न दुःखं नभयं रोगस्तुलसी यत्रतिष्ठति ॥३०॥
सर्वत्र तुलसी पुण्या पुण्यक्षेत्रे विशेषतः । संनिधौ तस्य देवस्य रोपणात्पृथिवीतले ॥३१॥
तेषां विष्णुपदं नित्यं तुलस्यारोपणे कृते । उत्पातान्दारुणानोगान्दुर्निमित्तान्यनेकशः ॥३२॥

तुलस्याभ्यर्चितो भक्त्या हन्तशान्तिकरो हरिः ।
तुलसीगन्धमाघ्रायत्र गच्छति मारुतः ॥३३॥

दिशो दश च ताः पूता भूतग्रामश्चतुर्विधः । यस्मिन्गृहे मुनिश्रेष्ठ तुलसीमूलमृत्तिका ॥३४॥
सर्वदा तत्र तिष्ठन्ति देवताश्च शिवो हरिः । तुलसीवनजा च्छाया यत्रयत्र भवेद्द्विज ॥३५॥
तर्पणं कुरुते तत्र पितृणां दत्तमक्षयम् । तस्यमूले स्थितो ब्रह्मा मध्ये देवो जनार्दनः ॥३६॥
मञ्जर्यां वसते रुद्रस्तुलसी तेन पावनी । विना यस्तुलसीं कुर्यात्सन्ध्याकाले तु मार्जनम्॥३७॥
तत्सर्वं राक्षसहतं नरकं च प्रयच्छति । तुलसीपत्रगलितं तोयं यः शिरसा वहेत् ॥३८॥

की मञ्जरी से पूजा करता है उसको जब तक सूर्य चन्द्रमा रहते हैं तब तक पूजा करने का फल प्राप्त होता है ॥२६॥ जिस घर में तुलसी के वृक्षों की वाटिका होती है । हे नारद ! उस गृह के दर्शन तथा स्पर्श करने मात्र से ब्रह्महत्यादि पापों का विनाश हो जाता है । उस गृह के दर्शन मात्र से सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥२७॥ **महादेवजी ने कहा**— हे नारदजी ! मैं आपको एक ऐसी बात बतलाता हूँ ॥२८॥ जिस गृह, ग्राम अथवा वन में तुलसी रहती हैं, वहाँ-वहाँ पर प्रसन्नता पूर्वक श्रीहरि रहा करते हैं ॥२९॥ उस गृह में कभी न तो दरिद्रता आती है और न बान्धवों का वियोग होता है । जहाँ पर तुलसी रहती हैं, वहाँ पर दुःख, भय, रोग आदि नहीं रहते हैं ॥३०॥ सर्वत्र तुलसी पवित्र होती हैं, किन्तु तीर्थ में तुलसी अधिक पवित्र होती हैं । संसार में श्रीभगवान् के सन्निकट जो तुलसी रोपते हैं ॥३१॥ तुलसी को रोपने से नित्य ही भगवान् विष्णु के प्राप्ति होती है । उत्पात, भयङ्कर रोग तथा अनेक प्रकार के अपशकुन से ॥३२॥ तुलसी से अर्चना करने पर श्रीहरि शान्ति प्रदान करते है । तुलसी की सुगन्धि लेकर हवा जहाँ जाती है॥३३॥ वहाँ की दशो दिशाएँ पवित्र हो जाती हैं और चारो प्रकार के (जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज) जीव पवित्र हो जाते हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस घर में तुलसी के जड़ की मिट्टी रहती है ॥३४-३५॥ उस गृह में सदैव देवताओं, शिवजी तथा श्रीहरि का निवास बना रहता है । हे द्विज ! जहाँ कहीं भी तुलसी वन की छाया रहती है । हे द्विज ! वहाँ पर उपर्युक्त सभी देवता तर्पण करते हैं । वहाँ पर पितरों के लिए जो कुछ भी समर्पित किया जाता है वह पितरों के लिए अक्षय हो जाता है । तुलसी के मूल में ब्रह्माजी तथा उसके मध्य में भगवान् जनार्दन का निवास रहता है ॥३६॥ तुलसी की मञ्जरी में रुद्र का निवास होता है, इसीलिए तुलसी पवित्र हैं । जो सन्ध्या के समय तुलसी के बिना ही मार्जन करता है ॥३७॥ उसका किया हुआ सब कुछ राक्षस ग्रहण कर लेते हैं और वह नरक में चला जाता है । तुलसी के पत्ते से गिरा

गङ्गाफलमवाप्नोति शतधेनुफलं लभेत्। शिवालये विशेषेण रोपयेत्तलसीं यदि॥३९॥
बीजसङ्ख्यावसेत्स्वर्गे प्रत्येकं युगसङ्ख्यया ।
उमया तु पुरादेवि शङ्करार्थं हिमालये ॥४०॥
रोपिताः शतवृक्षास्तु तुलस्याः प्रणतोऽस्म्यहम् ।
पर्वण्यवसरे यस्तु श्रावणे चाथ रोपयेत् ॥४१॥
संक्रान्तिदिवसे चैव तुलसी चातिपुण्यदा। तुलसीं पूजयेन्नित्यं दरिद्र ईश्वरो भवेत् ॥४२॥
सर्वसिद्धिकरा मूर्तिः कृष्णः कीर्तिं ददाति च ।
शालग्रामशिला यत्र तत्र संनिहितो हरिः ॥४३॥
तत्र स्नानं च दानं च वाराणस्याः शताधिकम् ।
कुरुक्षेत्रं प्रयागं च नैमिषारण्यमेव च ॥४४॥
तस्य कोटिगुणं पुण्यं शालग्रामशिलार्चनात् ।
शालग्राममयी मुद्रा संस्थिता यत्र हि क्वचित् ॥४५॥
वाराणस्यां च यत्पुण्यं सर्वं तत्रैव तद्भवेत्। ब्रह्महत्यादिकं पापं यत्किंचित्कुरुते नरः ॥
तत्सर्वं नाशयेदाशु शालग्रामशिलार्चनात् ॥४६॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे तुलसीशालग्राममाहात्म्यं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥
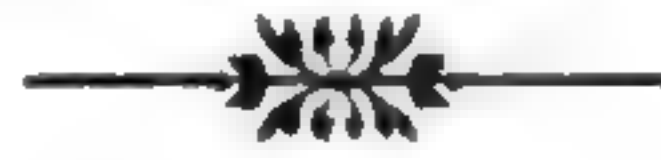
हुआ जल जो अपने शिर पर धारण करता है ॥३८॥ उसको गङ्गा स्नान करके सौ गौओं के दान करने का भी फल प्राप्त होता है । जो व्यक्ति विशेष रूप से शिवालय पर तुलसी रोपता है ॥३९॥ तो उससे जितने बीज तैयार होते हैं, उतने युगों तक वह रोपने वाला स्वर्ग में निवास करता है । शङ्करजी को प्राप्त करने के लिए उमा देवी ने हिमालय पर सौ तुलसी के वृक्ष लगाया अतएव मैं उसके समक्ष प्रणत बना रहता हूँ । जो मनुष्य पर्व के समय अथवा श्रावण महीने में तुलसी रोपता है ॥४०-४१॥ संक्रान्ति के समय तुलसी अत्यन्त पुण्यप्रद होती है । दरिद्र व्यक्ति भी यदि नित्य तुलसी की पूजा करता है तो वह धनिक हो जाता है ॥४२॥ तुलसी की मूर्ति सभी सिद्धियों को प्रदान करती है तथा भगवान् की मूर्ति यश प्रदान करती है । जहाँ पर शालग्राम की शिला रहती है, वहाँ पर श्रीभगवान् का निवास होता है ॥४३॥ वहाँ पर स्नान और दान करने से वाराणसी की अपेक्षा सौ गुना फल प्राप्त होता है । कुरुक्षेत्र, प्रयाग तथा नैमिषारण्य में शालग्राम शिला का अर्चन करने से वाराणसी की अपेक्षा करोड़ गुना फल प्राप्त होता है जहाँ कहीं भी शालग्राम शिला रहती है ॥४४-४५॥ वाराणसी के सारे पुण्य वहाँ ही होते हैं । ब्रह्महत्या आदि से जो कुछ भी पाप करता है, उन सबों का शालग्राम शिला का पूजन करने से शीघ्र नाश हो जाता है ॥४६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत तुलसी शालग्राम माहात्म्य वर्णन नामक पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

छब्बीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

एतं तुलस्यामाहात्म्यं त्वत्प्रासादाच्छ्रुतं मया। साम्प्रतं तु समाचक्ष्व त्रिरात्रंतुलसीव्रतम् ॥१॥

सदाशिव उवाच

श्रृणु विप्र महाबुद्धे व्रतमेतत्पुरातनम्। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥२॥
पुरारथन्तरे कल्पे राजा ह्यासीत्प्रजापतिः। तस्यभार्या च विख्याता चन्द्ररूपा महासती॥३॥
सा वै व्रतमिदं चक्र सर्वकामफलप्रदम्। त्रिरात्रं तु व्रतं तस्या धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥४॥
सफलं जीवितं तेषां यैः श्रुतं तुलसीव्रतम्। कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु नवम्यां चैव नारद ॥५॥
नियमस्थो व्रती तिष्ठेदभूमिशायीजितेन्द्रियः। व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्यशुचिः संयतमानसः॥६॥
स्वपेन्नियमपूर्वं तु तुलसीवनसंनिधौ। ततो मध्याह्नसमये नद्यादौ विमलेजले ॥७॥
स्नानं कृत्वा पितृन्देवांस्तर्पयेद्विधिपूर्वकम्। सौवर्णं कारयेद्देवंलक्ष्म्यासह जनार्दनम्॥८॥
वित्तशठ्यं न कर्तव्यमात्मनः श्रेयमिच्छता। वस्त्रयुग्मं ततः कार्यं पीते शुक्ले च वाससी ॥९॥
नवग्रहाणामारम्भं शान्तिकं विधिपूर्वकम्। श्रपयित्वा चरुं तत्र वैष्णवं होममाचरेत्॥१०॥
द्वादश्यां देवदेवेशं पूजयित्वा प्रयत्नतः। अव्रणं शुद्धकलशं स्थापयेद्विधिपूर्वकम्॥११॥
पञ्चरत्नसमोपेतं पल्लवैश्चोषधीयुतम्। तस्योपरि न्यसेत्पात्रे लक्ष्म्या सह जनार्दनम् ॥१२॥

तुलसी त्रिरात्र व्रत की विधि और उसके माहात्म्य का वर्णन

नारदजी ने कहा— आपकी कृपा से मैंने तुलसी के माहात्म्य को सुना है, अब आप मुझे तुलसी त्रिरात्र व्रत को बतलाएँ ॥१॥ **सदाशिव ने कहा**— हे विप्र ! आप इस प्राचीन व्रत को सुनें, उसका श्रवण करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥२॥ पहले के रथन्तर कल्प में प्रजापति नामक राजा थे। उनकी पत्नी का नाम चन्द्ररूपा था, वह महासती थी ॥३॥ उसी ने इस समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूप फल को प्रदान करने वाले त्रिरात्र व्रत को किया था ॥४॥ जिसने इस तुलसी व्रत को सुना है, उसका जीवन सफल है। हे नारद! कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को ॥५॥ त्रिरात्रव्रत करने के उद्देश्य से व्रती को पवित्र तथा अपने मन को वश में रखकर नियम का पालन करते हुए जितेन्द्रिय रहकर भूमि पर सोना चाहिए॥६॥ वह नियम पूर्वक तुलसी वन के सन्निकट सोए। उसके बाद मध्याह्न में नदी आदि के स्वच्छ जल में ॥७॥ स्नान करके विधि पूर्वक पितरों एवं देवताओं का तर्पण करे। लक्ष्मी और विष्णु भगवान् की सुवर्ण की मूर्ति बनवाये ॥८॥ आत्म कल्याण चाहने वाले को कंजूसी नहीं करनी चाहिए। उसके बाद दो-दो वस्त्र बनवाये। उन वस्त्रों को पीला और श्वेत होना चाहिए ॥९॥ आरम्भ में विधि पूर्वक नव ग्रहों की शान्ति कराये। उसके पश्चात् चरु का निर्माण करके उससे वैष्णव होम करें ॥१०॥ द्वादशी तिथि को श्रीभगवान् की विधि पूर्वक पूजा करके, निश्छिद्र तथा शुद्ध कलश की विधि पूर्वक स्थापना करें ॥११॥ कलश में पञ्चपल्लव, पञ्चरत्न तथा सर्वौषधि डाले। उसके ऊपर एक पात्र में रखकर लक्ष्मीजी के साथ श्रीभगवान् की स्थापना करें ॥१२॥ उसकी तुलसी के मूल में वैदिक तथा पौराणिक मन्त्रों से स्थापना करें। केवल

स्थापयेत्तुलसीमूले मन्त्रैर्वेदपुराणकैः । पयसा केवलेनैव सिञ्चयेत्तुलसीवनम् ॥
पञ्चामृतेन संस्नाप्य देवदेवं जगद्गुरुम् ॥१३॥

प्रार्थना मन्त्रः

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो गर्भोदके लोकविधिं बिभर्त्ति ।
प्रसीदतामेष स देवदेवो यो मायया विश्वकृदेष देवः ॥१४॥

आवाहन मन्त्रः

आगच्छाच्युत देवेश तेजोराशे जगत्पते । सदैवतिमिरध्वंसी पाहि मां भवसागरात् ॥१५॥

स्नान मन्त्रः

पञ्चामृतेन सुस्नानं तथा गन्धोदकेन च । गङ्गादीनां च तोयेनस्नातोऽनन्तः प्रसीदतु ॥१६॥

विलेपनमन्त्रः

श्रीखण्डागुरुकर्पूरं कुङ्कुमादिविलेपनम् । भक्तया दत्तं मया देव लक्ष्म्या सह गृहाणवै ॥१७॥

वस्त्रमन्त्रः

नारायण ! नमस्तेऽस्तु नरकार्णवतारण ! । त्रैलोक्याधिपते तुभ्यं ददामि वसने शुभे ॥१८॥

उपवीतमन्त्रः

दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात् । ब्रह्मसूत्रं मया दत्तं गृहाण पुरुषोत्तम ! ॥१९॥

पुष्पमन्त्रः

पुष्पाणिचसुगन्धीनिमालत्यादीनिवैप्रभो । मयादत्तानिदेवेशप्रीतितः प्रतिगृह्यताम् ॥२०॥

नैवेद्यमन्त्रः

नैवेद्यं गृह्यतां नाथभक्ष्यभोज्यैः समन्वितम् । सर्वैरसैः सुसंपन्नं गृहाण परमेश्वर ! ॥२१॥

जल से अथवा दूध से तुलसी वन को सींचना चाहिए । जगत् के स्वामी श्रीभगवान् को पञ्चामृत से स्नान करायें ॥१३॥ इसके बाद प्रार्थना करें । **प्रार्थना का मन्त्र—** जो श्रीभगवान् अनन्त रूपों वाले हैं, सम्पूर्ण जगत् उन श्रीभगवान् का शरीर है, जो गर्भ रूप जल में स्थित रहकर सम्पूर्ण जगत् का भरण-पोषण करते हैं। जो माया को अपनाकर सम्पूर्ण संसार की सृष्टि करते हैं और रूपवान् हैं मैं उनकी प्रार्थना करता हूँ। **आवाह्न का मन्त्र—** हे देवेश ! हे अच्युत ! हे तेजोराशि स्वरूप ! हे जगत् के स्वामिन् ! आप यहाँ पर पधारिये। आप सदैव, अज्ञानान्धकार को विनष्ट करने वाले हैं । आप संसार सागर से मेरी रक्षा करें ॥१४-१५॥ **स्नान का मन्त्र—** पञ्चामृत से स्नान करके, चन्दन मिश्रित जल तथा गङ्गा आदि के जल से स्नान किए हुए भगवान् अनन्त मुझ पर प्रसन्न हों ॥१६॥ **विलेपन मन्त्र—** हे भगवन् ! मैंने चन्दन, अगरु, कर्पूर तथा कुङ्कुम आदि का विलेपन (अङ्गराग) आपको भक्ति पूर्वक समर्पित किया है, आप इसे श्रीलक्ष्मीजी के साथ स्वीकार करें ॥१७॥ **वस्त्र चढ़ाने का मन्त्र—** हे नरक के सागर से पार करने वाले भगवान् नारायण ! हे त्रैलोक्य के स्वामिन्, आपको नमस्कार है, मैं आपको पवित्र वस्त्र समर्पित कर रहा हूँ ॥१८॥ **यज्ञोपवीत चढ़ाने का मन्त्र—** हे दामोदर भगवन् आपको नमस्कार है । आप मेरी संसार सागर से रक्षा करें । मैंने आपको यज्ञोपवीत समर्पित किया है । हे पुरुषोत्तम ! इसे आप स्वीकार करें ॥१९॥ **पुष्प समर्पित करने का**

ताम्बूलमन्त्र:

पूगानि नागपत्राणि कर्पूरसहितानि च। मया दत्तानिदेवेश ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥२२॥
धूपंदत्त्वाऽगुरुं भक्त्या गुग्गुलं घृतमिश्रितम्। एवं पूजा प्रकर्त्तव्या घृतेन दीपामाचरेत् ॥२३॥
विविधं मुनिशार्दूल दीपं कृत्वा समाहितः। लक्ष्मीनारायणस्याग्रे तुलसीवनसन्निधौ ॥२४॥
अर्घं तत्र प्रदातव्यं देवदेवाय चक्रिणे। नवम्यां नालिकेरेण पुत्रार्थमर्घमुत्तमम् ॥२५॥
दशम्यां बीजपूरं तु धर्मकामार्थसिद्धये। एकादश्यां दाडिमेन दारिद्रयं नाशयेत्सदा॥२६॥
सप्तधान्येन संयुतं वंशपात्रेण नारद। फलसप्तकसंयुक्तं पत्रं पूगसमन्वितम्॥२७॥
वस्त्रेणाच्छादितं कृत्वा देवस्याग्रे निवेदयेत्। मन्त्रणानेन विप्रेन्द्र शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥२८॥

अर्घमन्त्र:

तुलसीसहितो देव सदा शङ्खेन संयुतम्। गृहाणार्घं मया दत्तं देवदेव ! नमोऽस्तु ते॥२९॥
एवं संपूज्य देवेशं लक्ष्म्या सह जनार्दनम्। प्रार्थयेहवदेवेशं व्रतसंपूर्तिसिद्धये॥३०॥
उपषितोऽहं देवेश कामक्रोधविवर्जितः। व्रतेनानेन देवेश त्वमेव शरणं मम॥३१॥
गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव ! यदपूर्णं कृतं मया। सर्वं तदस्तु संपूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ! ॥३२॥
नमः कमलपत्राक्ष नमस्ते जलशायिने। इदं व्रतं मया यीर्णं प्रसादात्तव केशव !॥३३॥

मन्त्र— हे प्रभो ! मैंने मालती आदि के सुगन्धित पुष्पों को समर्पित किया है । हे देवेश्वर ! इसे आप स्वीकार करें ॥२०॥ **नैवेद्य समर्पित करने का मन्त्र—** हे नाथ ! मैंने भक्ष्य तथा भोज्य पदार्थों से युक्त नैवेद्य को समर्पित किया है । यह समस्त रसों से परिपूर्ण है, इसे आप स्वीकार करें ॥२१॥ **ताम्बूल समर्पित करने का मन्त्र—** हे देवेश ! मैंने आपको सुपारी, पान के पत्ते और कर्पूर से युक्त ताम्बूल आपकी सेवा में समर्पित किया है । इसे आप स्वीकार करें ॥२२। उसके पश्चात् भक्ति पूर्वक गुग्गुल अगरु तथा घृत मिश्रित धूप देकर घी का दीपक समर्पित करें । इसी तरह से श्रीभगवान् की पूजा करनी चाहिए॥२३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सावधानी पूर्वक अनेक प्रकार के दीपों को जलाकर, तुलसी वन के सन्निकट भगवान् लक्ष्मी नारायण के आगे रखें ॥२४॥ पुत्र की प्राप्ति के लिए नवमी तिथि को देवाराध्य भगवान् विष्णु को उत्तम नारियल से अर्घ प्रदान करना चाहिए ॥२५॥ दशमी तिथि को धर्म, काम तथा अर्थ की प्राप्ति के लिए बीजपूर (विजौरा) से अर्घ्य दें और एकादशी तिथि को अनार से अर्घ्य देना चाहिए उससे सदा दारिद्रय का नाश होता है ॥२६॥ हे विप्रेन्द्र ! नारदजी बाँस के पात्र में सप्त धान्य रखें । उसके पश्चात् सात फल और सुपारी रखकर उसको वस्त्र से ढँक दे और उसे भगवान् के समक्ष रखे । उसके पश्चात् श्रीभगवान् को निम्नाङ्कित मन्त्र से अर्घ्य दें, इसे आप सावधानी से सुनें ॥२७-२८॥ **अर्घ्य मन्त्र—** हे देव ! तुलसी तथा शङ्ख के साथ आप को मैं यह अर्घ्य प्रदान कर रहा हूँ इसे आप स्वीकार करें । आपको नमस्कार है॥२९॥ इस तरह से देवताओं के स्वामी श्रीभगवान् की लक्ष्मीजी के साथ पूजा करके अपने व्रत की पूर्ति के लिए श्रीभगवा॰् से प्रार्थना करना चाहिए ॥३०॥ हे देवेश ! काम तथा क्रोध से रहित होकर मैंने उपवास किया है । हे देवेश ! इस व्रत के द्वारा आप ही मेरे रक्षक हैं ॥३१॥ हे देव ! इस व्रत को लेकर करने में जो कुछ भी अपूर्णता रह गयी है । हे जनार्दन ! आपकी कृपा से वह सब पूर्ण हो जाय ॥३२॥ हे कमलनयन ! हे जलराशि ! भगवन् आपको नमस्कार है । हे केशव ! आपकी ही कृपा से मैंने इस व्रत

अज्ञानतिमिरध्वंसिन्व्रतेनानेन केशव। प्रसादसुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ।।३४।।
ततो जागरणं रात्रौ गीतपुस्तकवाचनम्। नादनृत्यकलाभिज्ञैः पुण्याख्यानैः सुशोभनैः ।।३५।।
विभातायां तु शर्वर्यामुदिते विमले रवौ ।
निमन्त्रय ब्राह्मणान्भक्तया श्राद्धं कुर्याच्च वैष्णवम् ।।३६।।
भोजयित्वा यथा कामं पायसेन घृतेन च ।
ताम्बूलपुष्पगन्धादिदक्षिणाभिः समन्वितम् ।।३७।।
उपवीतानि वासांसि दत्त्वा मालां च चन्दनम् ।
दाम्पत्यत्रितयं भोज्यं वस्त्र (स्त्र) भूषणकुङ्कुमैः ।।३८।।
वंशपात्राणि शक्तया च विरूढैः परिपूरयेत् ।
नालिकेरैश्च पक्वान्नैर्वस्त्रैश्च विविधैः फलैः ।।३९।।
सपत्नीकं गुरुं तत्र वस्त्राणि परिधापयेत्। विभूषणानि दिव्यानि गन्धमाल्यैः प्रपूजयेत् ।।४०।।
सर्वोपस्करसंयुक्तां गां दद्याच्च पयस्विनीम्। सदक्षिणां सवस्त्रां च तन्मे निगदतः शृणु ।।४१।।
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं स्नातानां जायते नृणाम्। तत्फलं स लभेत्सर्वं देवदेवप्रसादतः ।।४२।।
भुक्त्वा च विपुलान्भोगान्सर्वकामान्मनोरमान् ।
वैष्णवं पदमाप्नोति अन्ते विष्णोः प्रसादतः ।।४३।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे तुलसीत्रिरात्रव्रतवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ।।२६।।

को किया है ।।३३।। हे अज्ञानान्धकार को दूर करने वाले भगवन् केशव ! इस व्रत के कारण आप प्रसन्न हो जायँ और मुझे ज्ञान दृष्टि प्रदान करें ।।३४।। उसके पश्चात् रात्रि में जागरण करे, गीता की पुस्तक का पाठ करे । कलाकारों के गीत नृत्य सुन्दर पवित्र कथाओं ।।३५।। से रात्रि के बीत जाने पर तथा सूर्योदय हो जाने पर भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को निमन्त्रित करें और वैष्णव श्राद्ध करें ।।३६।। ब्राह्मणों की इच्छा के अनुसार पायस तथा घी से उनको भोजन कराये । ब्राह्मणों को पान, पुष्प, चन्दन आदि समर्पित करके दक्षिणा दे ।।३७।। यज्ञोपवीत, वस्त्र, माला तथा चन्दन भी समर्पित करे । तीन दम्पती ब्राह्मणों को वस्त्र, भूषण तथा कुङ्कुम प्रदान करके भोजन कराये ।।३८।। अपनी शक्ति के अनुसार बाँस के पात्रों को बनवाकर उसे नारियलों पकवानों तथा अनेक वस्त्रों से भरे ।।३९।। पत्नी सहित आचार्य को वस्त्र पहनाएँ फिर दिव्य भूषणों चन्दन तथा माला से उनकी पूजा करें ।।४०।। सभी उपकरणों के साथ दूध देने वाली गौ का दान दे । दक्षिणा तथा वस्त्र के साथ गौ का दान दे, उसे मैं बतलाता हूँ सुनो ।।४१।। सभी तीर्थों में स्नान करने वाले लोगों को जिस फल की प्राप्ति होती है, इस व्रत के करने से उस फल की प्राप्ति श्रीभगवान् की कृपा से होती है ।।४२।। वह पुरुष इस लोक में अनेक भोगों को तथा समस्त मनोहर भोगों को भोगकर अन्त में भगवान् विष्णु की कृपा से श्रीभगवान् के लोक में जाता है ।।४३।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत तुलसी त्रिरात्रव्रत वर्णन नामक छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।

सताइसवाँ अध्याय

नारद उवाच

गुणाधिकेभ्यो विप्रेभ्यो दातुकामोऽपि मानवः ।
कानि कानि च लोकेऽस्मिन्दद्यात्सर्वं तथा वद ॥१॥

महादेव उवाच

लोके तत्त्वंहि संज्ञाय शृणु देवर्षिसत्तम। अन्नमेव प्रशंसन्ति सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥२॥
तस्मादन्नं विशेषेण दातुमिच्छन्ति मानवाः। अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति॥३॥
अन्नेण धार्यते विश्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणाह्यन्ने प्रतिष्ठिताः॥४॥
दातव्यं भिक्षते चान्नं ब्राह्मणाय महात्मने। कुटुम्बं पीडयित्वाऽपि आत्मनो भूतिमिच्छता॥५॥
नारदासौ विदांश्रेष्ठो यो दद्यादन्नमर्थिने। ब्राह्मणायार्तरूपाय पारलौकिकमात्मनः॥६॥
आत्मीयभूतिमन्विच्छन्काले द्विजमुपस्थितम्। श्रान्तमध्वनिवर्तन्तं गृहस्थं गृहमागतम् ॥७॥
अन्नदः प्राप्नुते विद्वन्सुशीलो वीतमत्सरः। क्रोधमुत्पतितं हित्वा दिवि चेह च यत्सुखम् ॥८॥
न चाभिनिन्देदतिथिं न द्रुह्याच्च कथञ्चन। ब्रह्मविदेऽर्पयेदन्नं तच्च दानं विशिष्यते॥९॥
श्रान्तायादृष्टपूर्वाय अन्नमध्वनिवर्तिने। यो दद्यादपरिक्लिष्टस्सर्वधर्ममवाप्नुयात् ॥१०॥
पितृदेवांस्तथा विप्रानतिथींश्च महामुने। यो नरःप्रीणयेतान्नैस्तस्य पुण्यमनन्तकम्॥११॥

सभी दानों में अन्नदान की मुख्यता का वर्णन

नारदजी ने कहा— अधिक गुणवान् ब्राह्मणों को दान देने की कामना वाले व्यक्ति को किन-किन वस्तुओं का दान देना चाहिए, आप इन सारी बातों को बतलायें ॥१॥ **महादेवजी ने कहा—** हे देवर्षि श्रेष्ठ ! आप लोक में तत्त्व को जानने के लिए इस बात को सुनें । लोग अन्न की ही प्रशंसा करते है, सम्पूर्ण जगत् अन्न में ही स्थित है ॥२॥ इसीलिए लोग अन्न का ही दान करना चाहते हैं । अन्न दान के समान न तो कोई दान हुआ और न होगा ॥३॥ स्थावर जङ्गमात्मक जगत् अन्न से ही जीवित रहता है लोक में अन्न ही तेज को बढ़ाने वाला है और सभी प्राण अन्न में ही स्थित हैं ॥४॥ भिक्षा माँगने वाले ब्राह्मण महात्मा को अन्न देना चाहिए चाहे इसके लिए परिवार को भूखा रखना पड़े तो भी ऐसा करें । ऐसा करने से कल्याण की प्राप्ति होती है ॥५॥ हे नारदजी ! जो याचना करने वाले भूखे ब्राह्मण को अन्न दान देता है, वह ज्ञानियों में श्रेष्ठ है । उससे आत्मा का पारलौकिक कल्याण होता है ॥६॥ आत्म कल्याण चाहने वाले को चाहिए कि भोजन के समय आये हुए ब्राह्मण, थके हुए किन्तु मार्ग में विद्यमान गृहस्थ यदि घर आ जाय तो उसको अवश्य भोजन दे ॥७॥ अन्न देने वाला इस लोक में तथा परलोक में भी सुख प्राप्त करता है । दाता को सुशील, मत्सर रहित, तथा क्रोध रहित होना चाहिए ॥८॥ अतिथि की न तो निन्दा करे और न उससे द्रोह करें । ब्रह्मज्ञानी को जो अन्न दिया जाता है, उस दान की विशेष प्रशंसा होती है ॥९॥ जो थके हुए, जिसको कभी नहीं देखा गया हो, जो मार्ग में हो ऐसे व्यक्ति को जो भोजन बिना किसी क्लेश के देता है, वह सभी धर्मो का फल प्राप्त करता है ॥१०॥ हे महामुने! जो पितरों, देवों, ब्राह्मणों तथा अतिथियों को अन्न देकर प्रसन्न करता है, उसको अनन्त पुण्य की

कृत्वाऽपि सुमहत्पापं यो दद्यादन्नमर्थिने । ब्राह्मणाय विशेषेण स तु पापैः प्रमुच्यते ॥१२॥
ब्राह्मणेष्वक्षयं दानमन्नं शूद्रे महत्फलम् । अन्नदानं च शूद्रे च ब्राह्मणे च विशिष्यते ॥१३॥
न पृच्छेद्गोत्रचरणं न च स्वाध्यायमेव च । भिक्षुको ब्राह्मणो ह्यत्र दद्यादन्नं प्रयाति च ॥१४॥
अन्नदस्यशुभा वृक्षाः सर्वकामफलान्विताः । संभवन्तीह लोकेच हर्षयुक्तास्त्रिविष्टपे ॥१५॥
अन्नदानेन ये लोकास्ताञ्छृणुष्व महामुने । विमानानि प्रकाशन्ते दिवि तेषां महात्मनाम् ॥१६॥
नानासंस्थानरूपाणि नानाकामान्वितानि च । सर्वकामफलाश्चापि वृक्षा भुवनसंस्थिताः ॥१७॥

हेमवाप्यः शुभाः सर्वा दीर्घिकाश्चैव सर्वशः ।
घोषवन्ति च यानानिमुक्तान्यथ सहस्रशः ॥१८॥
भक्ष्यभोज्यमयाः शैला वासांस्याभरणानि च ।
क्षीरं स्रवन्त्यः सरितस्तथैवाजयस्य वापिकाः ॥१९॥
प्रासादाः शुभ्रवर्णाभाः शय्याश्च कनकोज्ज्वलाः ।
तदन्नं दातुमिच्छन्ति तस्मादन्नप्रदो भवेत् ॥२०॥

एतेलोकाः पुण्यकृतामन्नदानं महाफलम् । तस्मादन्नं विशेषेणदातव्यं मानवैर्भुवि॥२१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे
उमापतिनारदसंवादेऽन्नदानप्रशंसा नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

प्राप्ति होती है ॥११-१२॥ ब्राह्मणों को अन्न दान करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है । शूद्र को अन्न दान देने से महान् फल की प्राप्ति होती है । ब्राह्मण तथा शूद्र को अन्न दान करने का विशेष महत्त्व है॥१३॥ भिक्षुक ब्राह्मण से उसका गोत्र या आचरण या उसकी विद्या के विषय में कुछ भी न पूछे । उसको अन्न देकर चला जाय ॥१४॥ अन्नदान करने वाले के लिए इस लोक में वृक्ष कल्याणकारी होते हैं, वे इस लोक में सभी फलों से युक्त होते हैं और स्वर्गलोक में हर्ष प्रदान करने वाले होते हैं ॥१५॥ हे महामुने! अन्नदान करने वालों को जिन लोकों की प्राप्ति होती है, उसे आप सुनें । उन महात्माओं के विमान स्वर्ग में प्रकाशित होते हैं ॥१६॥ वे अनेक प्रकार के संस्थानों से युक्त तथा अनेक काम्य पदार्थों से युक्त होते हैं । अन्नदान संसार में उसके लिए सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले वृक्ष बन जाते हैं ॥१७॥ उसके लिए सभी वापियाँ सुवर्ण की वापियाँ हो जाती है । दीघिकाएँ भी वैसी ही हो जाती हैं उसको शब्द करने वाले हजारों विमान प्राप्त हो जाते हैं ॥१८॥ अन्नदान करने वाले के लिए पर्वत भी भक्ष्य और भोज्य पदार्थों से परिपूर्ण हो जाती हैं । उसे अनेक प्रकार के वस्त्र और आभरण प्राप्त होते हैं। उसको प्राप्त होने वाली नदियाँ दूध बहाती है, स्वर्ग में उसको प्राप्त वापियाँ घृत भरी होती हैं ॥१९॥ उसके भवन श्वेत वर्ण के चमकते हैं । उसकी शय्या सुवर्ण के समान चमकती है । इसीलिए महापुरुष अन्न दान करना चाहते हैं । अतएव अन्न दान करना चाहिए ॥२०॥ पुण्यवान् पुरुषों के लिए ही ये सभी लोक हैं । अतएव अन्नदान महान् फल देने वाला होता है । अतएव मनुष्यो को संसार में अन्नदान करना चाहिए ॥२१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तरखण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत अन्नदान की प्रशंसा वर्णन नामक सत्ताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२७।।

अठाइसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

पानीयदानं परमं दानानामुत्तमं सदा । तस्माद्वापीश्च कूपांश्च तडागानि च कारयेत्॥१॥
अर्धं पापं संहरन्ति पुरुषस्य विकर्मणः । कूपाः प्रवृत्तपानीयाः सुप्रवृत्तस्य नित्यशः ॥२॥
स च तारयेत वंशं यस्य खातजलाशये । गावः पिबन्ति विप्राश्च साधवश्च नराःसदा ॥३॥
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति नारद !। दुर्गं विषमकृच्छ्रं च न कदाचिदवाप्यते ॥४॥
तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां ये गुणाः स्मृताः ।
त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजितो यस्तडागवान् ॥५॥
अथवा मित्रसदनं मित्रमैत्रीविवर्धनम् । कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तडागानां निवेशनम् ॥६॥
धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः । तडागं सुकृतं देशे क्षेत्रमध्ये महाश्रयम्॥७॥
चतुर्विधानां भूतानां तडागस्योपलक्षयेत् । तडागानि च सर्वाणि दिशन्ति श्रेय उत्तमम् ॥८॥
देवा मनुष्या गन्धर्वाः पितरो नागराक्षसाः । स्थावराणि च भूतानि संश्रयन्ति जलाशयम् ॥९॥
वर्षार्तौ तडागे तु सलिलं यत्र तिष्ठति। अग्निहोत्रफलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥१०॥
हेमन्ते शिशिरे चैव सलिलं यस्य तिष्ठति। गोसहस्रफलं तस्य लभते नात्र संशयः॥११॥
वसन्तेऽपि तथा ग्रीष्मे सलिलं तिष्ठतेयदि। अतिरात्राश्वमेधाभ्यां फलमाहुर्मनीषिणः॥१२॥

जलदान इत्यादि की प्रशंसा

महादेवजी ने कहा— जल का दान श्रेष्ठ तथा सभी दानों में उत्तम है । अतएव वापी (बावली), कूप तथा तडाग (सरोवर) का निर्माण करना चाहिए ॥१॥ जिस मनुष्य के द्वारा बनाये गये कूप में पानी रहता है, अथवा पर्याप्त मात्रा में सदैव पानी बना रहता है, उस मनुष्य के द्वारा किए गये निन्दित कर्मों से होने वाले पापों का आधा भाग यह कूप निर्माण विनष्ट कर देता है ॥२॥ जिसके द्वारा खनाये गये जलाशय में गायें पानी पीती हैं, वह अपने वंश को तार देता है ॥३॥ यदि उसके जलाशय में ग्रीष्म में भी जल रहता है तो वह कभी भी दुर्गम तथा विषम सङ्कट में नहीं पड़ता है ॥४॥ बनाये गये सरोवरों के गुण जो बतलाये गये हैं उसे मैं बतलाता हूँ । पोखरा बनवाने वाला व्यक्ति तीनों लोकों में सर्वत्र पूजित होता है ॥५॥ सरोवर को बनाना मित्र के गृह के समान है, मित्रों तथा मित्रता को बढ़ाने वाला है तथा कीर्ति को बढ़ाने का श्रेष्ठ साधन है ॥६॥ मनीषियों ने उसे धर्म, अर्थ तथा काम रूपी फल को प्रदान करने वाला बतलाया है । देश में खेत में बनाया गया अच्छा सरोवर चारों प्रकार के जीवों के लिए महान् आश्रय होता है । सभी प्रकार के सरोवर उत्तम कल्याण को प्रदान करते हैं ॥७-८॥ देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितृगण, नाग, राक्षस तथा स्थावर जीव भी जलाशय को अपना आश्रय बनाते हैं ॥९॥ जिस सरोवर में वर्षा ऋतु में जल रहता है, उस सरोवर को बनाने वाले को अग्निहोत्र का फल प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥१०॥ जिसके सरोवर में हेमन्त और शिशिर ऋतुओं तक जल रहता है उसको एक हजार गोदान करने का फल प्राप्त होता है इसमें किसी प्रकार संशय नहीं है ॥११॥ यदि उसमें वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु में भी जल रहता है, तो उसको अतिरात्र तथा अश्वमेध इन दोनों यागों को करने का फल प्राप्त होता

अथैतेषां तु वृक्षाणां रोपणे च गुणाच्छृणु। अतीतानागतौ चोभौ पितृवंशौ महामुने ॥१३॥
तारयेद्वृक्षरोपी च तस्माद्वृक्षांस्तु रोपयेत। पुत्रपौत्राभवन्त्येते पादपा नात्र संशयः ॥१४॥
परलोकं गतः सोऽपि लोकानाप्नोति चाक्षयान् ।
पुष्पैः सुरगणान्सर्वान्पत्रैश्चापि तथा पितृन् ॥१५॥
छायया चातिथीन्सर्वान्पूजयन्ति महीरुहाः। किन्नरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानवाः ॥१६॥
तथा ऋषिगणाश्चैव संश्रयन्ति महीरुहान्। पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान् ॥१७॥
इहलोके परे चैव पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः। तडागवृक्षरोपाश्च इष्टयज्ञाश्च ये द्विजाः ॥१८॥
एते स्वर्गान्नहीयन्ते ये चान्ये सत्यवादिनः। सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परन्तपः ॥१९॥
सत्यमेव परो यज्ञः सत्यमेवपरं श्रुतम्। सत्यं देवेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम् ॥२०॥
तपो यज्ञाश्च पुण्यं च तथा देवर्षिपूजनम्। आद्यो विधिश्च विद्या च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥२१॥
सत्यं यज्ञस्तथा दानं मन्त्रा देवी सरस्वती। व्रतचर्या तथा सत्यमोङ्कारः सत्यमेव च॥२२॥
सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः। सत्येन चाग्निर्दहति स्वर्गः सत्येन तिष्ठति ॥२३॥
पूजनं सर्वदेवानां सर्वतीर्थावगाहनम्। सत्यं च वदते लोके सर्वमाप्नोत्यसंशयः ॥२४॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्। सर्वेषां सर्वयज्ञानां सत्यमेव विशिष्यते॥२५॥
सत्येन देवाः प्रीयन्ते पितरोऽप्यृषयस्तथा। सत्यमाहुः परं धर्मं सत्यमाहुः परंपदम् ॥२६॥
सत्यमाहुः परं ब्रह्म तस्मातत्यं वदामि ते। मुनयः सत्यनिरतास्तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ॥२७॥

है ॥१२॥ अव तुम वृक्षों को रोपने का फल सुनो । वृक्षों को लगाने वाला व्यक्ति अपने अतीत कालिक तथा अनागत कालिक पितरो के वंशो को तार देता है । अतएव वृक्षों को रोपना चाहिए । ये ही वृक्ष उसके पुत्र तथा पौत्र बनकर जन्म लेते हैं ॥१३-१४॥ परलोक में जाकर वह अक्षय लोकों को प्राप्त करता है । वृक्ष अपने पुष्पों से देवताओं की तथा पत्तों से समस्त पितरों की ॥१५॥ अपनी छाया से वे आये हुए अतिथियों की पूजा करते हैं । किन्नर, उरग (सर्प), देवता, गन्धर्व, मानव तथा ऋषिगण वृक्षों को अपना आश्रय बनाते हैं । वे पुष्प तथा फल से मनुष्यों को तृप्त करते हैं ॥१६-१७॥ इस लोक में तथा परलोक में वे धर्म के पुत्र बनते हैं जो ब्राह्मण सरोवर बनाते हैं, वृक्षों को रोपते हैं, अभिप्रेत यज्ञों को करते हैं अथवा सत्य बोलते हैं, वे कभी भी स्वर्ग से भ्रष्ट नहीं होते हैं । सत्य ही परंब्रह्म हैं, सत्य ही सबसे बड़ा तप है ॥१८-१९॥ सत्य ही श्रेष्ठ यज्ञ है तथा सत्य ही परंज्ञान है । सत्य ही देवताओं में जागता रहता है और सत्य ही परम पद है ॥२०॥ तप, यज्ञ, पुण्य, देवों तथा ऋषियों का पूजन, आद्य विधि तथा विद्या ये सभी सत्य पर ही टिके हुए हैं ॥२१। सत्य ही यज्ञ, दान, मन्त्र और सरस्वती देवी हैं । सत्य ही व्रतचर्या है, तथा सत्य ही ओङ्कार है ॥२२॥ सत्य के बल पर वायु चलती है । सत्य से ही सूर्य तपते रहते हैं, सत्य से ही अग्नि जलाने का काम करता है तथा सत्य के ही बल पर स्वर्ग टिका है ॥२३॥ जो संसार में सत्य बोलता है, वह सभी देवताओं के पूजन तथा सभी तीर्थों में स्नान करने के फल को प्राप्त करता है इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥२४॥ यदि हजारों अश्वमेध याग के फल को तथा सत्य के फल को तराजू पर रखा जाय तो सभी यज्ञों की अपेक्षा सत्य का फल अधिक होगा ॥२५॥ सत्य से ही देवता, पितृगण और ऋषिगण प्रसन्न होते हैं, सत्य को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म तथा सत्य को ही परंपद

सत्यधर्मरताः सिद्धास्ततः स्वर्गमितो गताः। अप्सरोगणसङ्घुष्टैर्विमानैः परितोवृताः ॥२८॥
वक्तव्यं च सदा सत्यं न सत्याद्विद्यते परम् ।
अगाधे विपुलेसिद्धे सत्यतीर्थे शुचिह्रदे ॥२९॥
स्नातव्यं मनसा युक्तैः स्नानं तत्परमं स्मृतम् ।
आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थे वाऽपि मानवाः ॥३०॥
अमृतं ये न भाषन्ते तेनराः स्वर्गगामिनः। वेदायज्ञास्तथामन्त्राः सन्ति विप्रेषुनित्यशः ॥
न भान्त्युज्झितसत्येषु तस्मात्सत्यं समाचरेत् ॥३१॥

नारद उवाच

तपसां मे फलं ब्रूहि पुनरेव विशेषतः। सर्वेषां चैव वर्णानां ब्राह्मणानां तपोबलम् ॥३२॥

महादेव उवाच

प्रवक्ष्यामि तपोऽध्यायं सर्वकामार्थसाधकम्। सुदुश्चरं द्विजातीनां तन्मे निगदतः शृणु ॥३३॥
तपोहि परमं प्रोक्तं तपसा विन्दते फलम्। तपो रतोहि यो नित्यं मोदते सह दैवतैः ॥३४॥
तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः । तपसा मोक्षमाप्नोति तपसा विन्दते महत् ॥३५॥
ज्ञानविज्ञानसंपत्तिः सौभाग्यं रूपमेव च। तपसा लभते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति॥३६॥
नातप्ततपसो यान्ति ब्रह्मलोकं कदाचन। यत्कार्यं किं चिदास्थाय पुरुषस्तप्यते तपः॥३७॥
तत्सर्वं समवाप्नोति परत्रेह च मानवः। सुरापः परदारी च ब्रह्मदा गुरुतल्पगः ॥३८॥
तपसा तरते सर्वं सर्वतश्च विमुच्यते। अपि सर्वेश्वरः स्थाणुर्विष्णुश्चैव सनातनः ॥३९॥

कहा गया है ॥२६॥ सत्य को परब्रह्म कहा गया है अतएव मैं सत्य बोलता हूँ। मुनिगण कठोर तपस्या करके सत्य का पालन करते हैं ॥२७॥ सिद्ध पुरुष सत्य धर्म में ही सदा रत रहने के कारण स्वर्ग में गये हुए हैं। अप्सरा समूह से ध्वनित चारों तरफ विमान से घिरे रहते हैं ॥२८॥ सत्य बोलना चाहिए सत्य से बढ़कर कुछ भी नहीं है। अगाध, विपुल तथा सिद्ध सत्य रूपी सरोवर में प्रामाणिक पुरुषों को मन से स्नान करना चाहिए। वह सर्वश्रेष्ठ स्नान है। जो मनुष्य अपने लिए, दूसरों के लिए अथवा पुत्र के लिए ॥२९-३०॥ झूठ नहीं बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं। विप्रों में सदा विद्यमान रहने वाले वेद, यज्ञ तथा मन्त्र असत्य बोलने वालो में अपना कार्य नहीं करते हैं, अतएव सत्य बोलना चाहिए ॥३१॥ **नारदजी ने कहा—** आप पुनः मुझे तपस्या के फल को विशेष रूप से बतलाएँ सभी वर्णों की अपेक्षा ब्राह्मणों में विशेष रूप से तपस्या का बल रहता है ॥३२॥ **महादेवजी ने कहा—** मैं अब सभी कामनाओं और अर्थो को प्रदान करने वाले तप अध्याय का वर्णन करता हूँ ब्राह्मणों के अत्यन्त कठिन तपस्याएँ हैं, उसको मैं बतलाता हूँ उसे आप सुनें ॥३३॥ तप को ही श्रेष्ठ बतलाया गया है, तपस्या के द्वारा ही मनुष्य फल को प्राप्त करता है। जो सदा तपस्या करने में लगा रहता है वह देवताओं के साथ आनन्दानुभव करता है ॥३४॥ तपस्या से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, यश की प्राप्ति होती है। तपस्या से मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है तथा तपस्या से वह महान् हो जाता है ॥३५॥ मनुष्य मन में जो-जो चाहता है वह ज्ञान, विज्ञान, सम्पत्ति, सौभाग्य तथा रूप को प्राप्त करता है। वह तपस्या से सब कुछ प्राप्त कर लेता है ॥३६॥ तपस्या किए बिना कोई भी ब्रह्मलोक नहीं जा सकता है। मनुष्य जिस उद्देश्य से तपस्या करता है ॥३७॥ वह लोक तथा परलोक में उन सारी वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है। सुरापायी, परस्त्रीगमी,

ब्रह्मा हुताशनः शक्रो ये चान्ये तपसाऽन्विताः ।
षडशीति सहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥४०॥
तपसा दिवि मोदन्ते समेता दैवतैः सह। तपसा प्राप्तवान्राज्यं शक्रः सर्वसुरेश्वरः॥४१॥
तपसा पालयन्सर्वे स्वं स्वं लोकं च लोकपाः ।
सूर्याचन्द्रमसौ देवौ सर्वलोकहितेरतौ ॥४२॥
तपसैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि ग्रहास्तथा। सर्वं च तपसाऽभ्येति सर्वं च सुखमश्नुते॥४३॥
तपस्तपति योऽरण्ये वनमूलफलाशनः। योऽधीते श्रुतिमेवादौ समं स्यात्तपसा मुने॥४४॥
श्रुतेरध्यापनात्पुण्यं यदाप्नोति द्विजोत्तमः। तदध्यायस्य जप्याच्च द्विगुणं फलमश्नुते॥४५॥
जगद्यथा निरालोकं जायते शशिभास्करौ। विना तथा पुराणं हि ध्येयमस्मान्महामुने॥४६॥
तप्यमानस्तपो ज्ञानं यो धारयति शास्त्रतः। संबोधयति लोकं च तस्मात्पूज्यतमो गुरुः॥४७॥
सर्वेषां चैव पात्राणां श्रेष्ठं पात्रं पुराणवित्। पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रमुदाहृतम्॥४८॥
धनं धान्यं हिरण्यं वा वासांसि विविधानि च ।
ये यच्छन्ति सुपात्राय ते यान्ति च परां गतिम् ॥४९॥
गाश्चैव महिषीर्वापिगजानश्वांश्च शोभनान्। यः प्रयच्छति मुख्याय तत्पुण्यस्य फलं शृणु॥५०॥
अक्षयं सर्वलोकानां सोऽश्वमेधफलं लभेत्। महीं ददाति यस्तस्मै कृष्टांफलवतीं शुभाम्॥५१॥
स तारयति वै वंशान्दशपूर्वान्दशापरान्। विमानेन च दिव्येन विष्णुलोकं सगच्छति॥५२॥

ब्रह्मघाती तथा गुरुस्त्रीगामी ॥३८॥ ये सभी तपस्या के द्वारा संसार को पार कर जाते हैं और पापों से मुक्त हो जाते हैं । सर्वेश्वर शिव, सनातन विष्णु, ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र तथा दूसरे भी तपस्या करने वाले जो छियासी हजार ऊर्ध्वरिता मुनिगण हैं ॥३९-४०॥ ये सबके सब तपस्या के कारण स्वर्ग लोक में देवताओं के साथ आनन्दानुभव करते है । सभी देवताओं के राजा इन्द्र ने तपस्या के ही द्वारा स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया॥४१॥ सभी लोकपाल तपस्या के बल पर ही अपने-अपने लोको का पालन करते हैं । तपस्या से ही सूर्य तथा चन्द्रमा ये दोनो देवता लोक का कल्याण करते रहते हैं ॥४२॥ तपस्या के द्वारा ही नक्षत्र तथा ग्रह प्रकाशित होते हैं । तपस्या से मनुष्य सबकुछ प्राप्त कर लेता है और वह समस्त सुखों को प्राप्त करता है ॥४३॥ वन में फलमूल का आहार करके जो तपस्या करता है तथा जो प्रारम्भ से वेदाध्ययन करता है, उन दोनों को एक समान फल प्राप्त होता है ॥४४॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण वेदाध्यापन करके जिस फल को प्राप्त करता है, उस अध्याय का पाठ करने से उसके दो गुना फल की प्राप्ति होती है ॥४५॥ जैसे सूर्य और चन्द्रमा के बिना जगत् प्रकाश विहीन हो जायेगा उसी तरह हे महामुने ! पुराण को भी जगत् प्रकाशक ही जानना चाहिए ॥४६॥ गुरु इसलिए पूज्यतम हैं कि वे तपस्या करके शास्त्रों से ज्ञान प्राप्त करते है और संसार को ज्ञान प्रदान करते हैं ॥४७॥ समस्त पात्रों में पुराज्ञ पुरुष योग्य पात्र होता है । वह चूंकि पतित होने से रक्षा करता है अतएव वह पात्र कहलाता है ॥४८॥ जो मनुष्य सुपात्र को धन, सम्पत्ति, अन्न विविध वस्त्र तथा सुवर्ण दान देते हैं वे मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥४९॥ जो व्यक्ति मुख्य पात्र को गौ, भैंस, हाथी तथा सुन्दर अश्व दान देता है, उसको जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे तुम सुनो ॥५०॥ जो व्यक्ति फल से युक्त कृषि की भूमि उसको देता है, वह सभी लोकों में अश्वमेध याग का अक्षय फल प्राप्त करता

न यज्ञैस्तुष्टिमायान्ति देवाः प्रोक्षणकैरपि । बलिभिः पुष्पपूजाभिर्यथा पुस्तकवाचनैः ॥५३॥
विष्णोरायतने यस्तु कारयेद्धर्मपुस्तकम् । देव्याः शम्भोर्गणेशस्य अर्कस्य च तथापुनः ॥५४॥
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः । इतिहासपुराणाभ्यां पुण्यं पुस्तकवाचनम् ॥५५॥
सर्वान्कामानवाप्नोति सूर्यलोकं भिनत्ति सः । सूर्यलोकं च भित्त्वाऽसौ ब्रह्मलोकं च गच्छति॥५६॥
स्थित्वा कल्पशतान्यत्र राजाभवति भूतले । अश्वमेधसहस्रस्य यत्फलं समुदाहृतम्॥५७॥
तत्फलं समवाप्नोति देवाग्रे यो जयं पठेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं पुस्तकवाचनम् ॥५८॥
इतिहासपुराणाभ्यां विष्णोरायतने शुभम् ।
नान्यत्प्रीतिकरं विष्णोस्तथाऽन्येषां दिवौकसाम् ॥५९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे वृक्षप्रपासरोवरतपोऽध्यायनधर्मव्याख्यानमाहात्म्यं नामाष्टविंशोऽध्यायः ॥२८॥

उनतीसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । पुराणं परमं पुण्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥१॥

है॥५१॥ वह अपने से पहले के दश पूर्वजों को तथा अपने से बाद में होने वाले दश पीढ़ी के पुरुषों को तार देता है । वह दिव्य विमान से भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥५२॥ देवता जितना सन्तुष्ट पुस्तक का पाठ करने से प्रसन्न होते हैं उतना वे यज्ञों से, या प्रोक्षण करने से या उपहार प्रदान करने से या पुष्पों से पूजा करने से नहीं प्रसन्न होते हैं ॥५३॥ जो मनुष्य भगवान् विष्णु के मन्दिर में, देवी या शम्भु या गणेश, या सूर्य से सम्बद्ध धर्म के पुस्तक का पाठ करता है, वह राजसूय तथा अश्वमेध के फलों को प्राप्त करता है। इतिहास तथा पुराण के पुस्तक का पाठ अधिक पवित्र होता है ॥५४-५५॥ उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह सूर्य मण्डल का भेदन कर देता है । सूर्य लोक का भेदन करके वह ब्रह्मलोक में जाता है॥५६॥ वह वहाँ सौ कल्पों तक रहकर उसके बाद भूलोक में राजा होता है । जो श्रीभगवान् के समक्ष जो महाभारत का पाठ करता है वह एक हजार अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है । अतएव सभी प्रकार का प्रयास करके पुस्तक का पाठ करना चाहिए ॥५७-५८॥ भगवान् विष्णु के मङ्गलमय मन्दिर में इतिहास तथा पुराण से भिन्न पुस्तक का पाठ भगवान् विष्णु तथा देवताओं को प्रसन्न करने वाला नहीं है ॥५९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत वृक्ष-प्रपा-सरोवर-तपस्या-वेदाध्ययन तथा धर्मव्याख्यान के माहात्म्य वर्णन नामक अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२८।।

इतिहास पुराण के पाठ की प्रशंसा के प्रकरण में धर्मपाल के वृत्तान्त का वर्णन

महादेवजी ने कहा— इस विषय में सभी पापों को विनष्ट करने वाले इस प्राचीन इतिहास को लोग बतलाते हैं ॥१॥ हे देवर्षि ! ब्रह्मपुत्र कुमार ने सर्वलोक नमस्कृत ब्रह्माजी को नमस्कार करके इस इतिहास

कुमारेण च लोकानां नमस्कृत्य पितामहम् ।
प्रोक्तं चेदं ममाख्यानं देवर्षे ब्रह्मसूनुना ॥२॥

सनत्कुमार उवाच

गतोऽहं धर्मराजानं द्रष्टुं संपूजितो मुदा । श्रुतिभिः परया भक्तया तेनोक्तोऽस्मि सुखासने ॥३॥
मया तत्रोपविष्टेन दृष्टंकिंचिन्महाद्भुतम् । काञ्चनेन विमानेन वैडूर्यकृतवेदिना ॥४॥
मणिमुक्ताविचित्रेण किङ्किणीजालशोभिना । आगतं पुरुषं तत्र आसनाद्देवसत्तम ! ॥५॥

ससंभ्रमं समुत्थाय दृष्ट्वा धर्मः स्वयं विभुः ।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ पूजितोऽर्घेण वै ततः ॥६॥
शिरस्याघ्राय देवेशः पुरः स्थाप्यः ततः परम् ।
पूजयित्वा तु तं धर्म इदंवाक्यमुवाच ह ॥७॥

सुस्वागतं धर्मदर्शिन्प्रीतोऽस्मिदर्शनात्तव। समीपेममतिष्ठस्वकिंचिज्ज्ञानं वदस्व मे॥८॥

पुनर्यास्यसि तत्स्थानं यत्र ब्रह्मा व्यवस्थितः ।
इत्युक्ते च ततश्चान्यो विमानवरमास्थितः ॥९॥

आगतः पुरुषो देवो यत्र तिष्ठति धर्मराट् । स पूजितो विमानस्थः प्रश्रयावनतेन च॥१०॥

सामपूर्वं तथोक्त्वा तु यथापूर्वं नरः स्वयम् ।
किमनेन कृतं कर्म यस्य तुष्टोभवान्भृशम् ॥११॥
अत्र मे कौतुकं जातं कृता हि स्वयमेव तु ।
यदस्य भवता पूजासविस्मयमनन्तरम् ॥१२॥
तथैवास्य कृता पूजा द्वितीयस्य नरस्य तु ।
मेनेऽहं शुभकर्माणौ विमानं वरसत्तमौ ॥१३॥

को कहा ॥२॥ **सनत्कुमार ने कहा—** मैं धर्मराज को देखने के लिए गया था । उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक वेद मन्त्रों से मेरी पूजा की और मुझे सुखद आसन पर बैठाया ॥३॥ वहाँ पर बैठे हुए मैंने कुछ अद्भुत वस्तुओं को देखा । वहाँ पर सुवर्ण निर्मित विमान से एक पुरुष आया उस विमान की वेदी वैडूर्य मणि से बनी थी । वह विमान मुक्ता मणि से अलंकृत तथा किंकिणी समूह से सुशोभित था । हे देव श्रेष्ठ ! उस आये पुरुष को देखकर स्वयं धर्मराज अपने आसन से शीघ्र उठकर खड़े हो गये और उसका दाहिना हाथ पकड़कर अर्घ प्रदान के द्वारा उसकी पूजा किए ॥४-६॥ देवेश ने उसके शिर का आघ्राण किया और उसको सामने बैठाकर उसकी पूजा करके कहे ॥७॥ हे धर्मज्ञ ! पुरुष आपका स्वागत है आपको देखकर मुझे प्रसन्नता हुयी है । आप मेरे सन्निकट बैठकर कुछ ज्ञान की बातें सुनायें ॥८॥ उसके बाद उस स्थान पर आप जायँ जहाँ ब्रह्माजी रहते हैं । इतना कहने पर दूसरा श्रेष्ठ पुरुष श्रेष्ठ विमान पर बैठकर ॥९॥ वहाँ पर आया जहाँ पर धर्मराज विद्यमान थे । धर्मराज ने विमान में ही विनम्रता पूर्वक पूजित करके उसको सान्त्वना प्रदान किया, और उसकी भी पूजा वे पहले पुरुष के समान ही किए । यह देखकर मैंने धर्मराज से पूछा कि इन्होंने कौन सा ऐसा कर्म किया है कि आप इनसे सन्तुष्ट हैं ॥१०-११॥

यस्त्वमाभ्यां स्वयं पूजां कुरुषे धर्मकारणात् ।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैस्तु पूज्यसे त्वं सदाऽनिशम् ॥१४॥
यस्येदृक्परमं पुण्यं किमेतौ कर्म चक्रतुः। कथ्यतां मम सर्वज्ञ फलं दिव्यमवापतुः ॥१५॥
तच्छ्रुत्वा स तु मां प्राह शृणु कर्मानयोः कृतम् ।
यत्कृत्वा चार्हतां यातौ तच्छृणुष्व महामते ! ॥१६॥

धर्म उवाच

वैदिशं नाम नगरं पृथिव्यामस्ति विश्रुतम् । तत्राभूत्पृथिवीपालो धरापाल इति श्रुतः॥१७॥
कस्मिन्काले पुरा देवी शशाप स्वगणं क्रुधा ।
मदृतेऽत्र परा नारी भर्त्तुर्यन्मे निवेशिता ॥१८॥
तस्माद्द्वादशवर्षाणि जम्बुकस्त्वं भविष्यसि। इत्युक्तः सचबभ्रामजम्बुकोमेदिनीतलम् ॥१९॥
वेतसीवेत्रवत्योस्तु सङ्गमे लोकविश्रुते। शापान्तो भविता पुत्रइत्युकं गिरिकन्यया॥२०॥
तत्र चानशनं कृत्वा क्षेत्रे प्राणांस्ततोऽत्यजत् ।
दिव्यरूपवपुर्भूत्वा जगाम विष्णुसन्निधौ ॥२१॥
तत्राश्चर्यं महद् दृष्ट्वा धरापालो महीपतिः ।
विष्णोरायतनं कृत्वा क्षेत्रे प्राणांस्ततोऽत्यजत् ॥२२॥
दिव्यरूपवपुर्भूत्वा स्थापयामास तं प्रभुम् । तस्मिन्पुरे नरान्सर्वान्सन्नियोज्यास्य वीक्षणे ॥२३॥
शुभमायतनंविष्णोस्तस्मिन्ग्रामे सदा जनैः । पूर्णं तु ब्राह्मणादीनांपूजयित्वाकदम्बकम् ॥२४॥

इसके विषय में मेरे मन में कौतूहल पैदा हो गया है क्योकि आपने इनकी पूजा स्वयं की है ॥१२॥ उसके पश्चात् आपने इस दूसरे पुरुष की भी वैसे ही पूजा की है मैं मानता हूँ कि सत्कर्म के फलस्वरूप इन दोनों को श्रेष्ठ विमान प्राप्त हुआ है ॥१३॥ धर्म के ही कारण आप स्वयम् अपने हाथ से इन दोनों की पूजा किए हैं । आपकी पूजा तो ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव भी सदा किया करते हैं ॥१४॥ जिसका इतना अधिक पुण्य है उस किस कर्म को इन दोनों ने किया है ? हे सर्वज्ञ ! आप इसे मुझे बतलाएँ जिसके कारण इन दोनों ने दिव्य फल को प्राप्त किया है ॥१५॥ मेरी बात को सुनकर धर्मराज ने कहा— आप इन दोनों के कर्मों को सुनें । जिस कर्म को करके ये दोनों पूजा के योग्य हो गये हैं, हे महामते ! आप उसे सुनें॥१६॥ **धर्म ने कहा—** पृथिवी पर वैदिश नामक विख्यात नगर है । वहाँ के राजा का नाम धरापाल है ॥१७॥ एक समय क्रोध करके देवी ने अपने गण को शाप दे दिया मुझसे भिन्न दूसरी नारी को जो तुमने मेरे पति को प्रदान किया है ॥१८॥ उसके कारण तुम बारह वर्षों तक शृङ्गाल होओगे । इतना कहते ही वह शृङ्गाल होकर पृथिवी पर घूमने लगा ॥१९॥ पार्वतीजी ने उसको कहा था कि लोक प्रख्यात वेतसी तथा वेत्रवती इन दोनों नदियों के सङ्गम स्थल पर तुम्हारे शाप का अन्त होगा ॥२०॥ उसके बाद वह वहीं पर अनशन करके अपने प्राणो का परित्याग कर दिया । वह दिव्य शरीर धारण करके भगवान् विष्णु के सन्निकट गया ॥२१॥ वहाँ पर महान् आश्चर्य को देखकर राजा धरापाल उस क्षेत्र में भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाकर अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥२२॥ उसने दिव्य शरीर धारण करके श्रीभगवान् की स्थापना की । उसने उस नगर के सभी लोगों को श्रीभगवान् का दर्शन करने के लिए बुलाया ॥२३॥ उस

इतिहासपुराणज्ञं वाचकं तु विशेषतः। पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठं विद्याश्रेष्ठं महामतिः॥२५॥
पुस्तकं चापि संपूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्।
ततस्तमाह राजाऽसौ वाचकं विनयान्वितः ॥२६॥
एतदायतनं विष्णोः कारितं च तवाग्रतः। चातुर्वर्ण्यमिदं चापि श्रोतुकामकदम्बकम्॥२७॥
तिष्ठतीह द्विजश्रेष्ठ कुरु पुस्तकवाचनम्। यावत्संवत्सरं विप्र गृह्यवृत्तिंत्वमुत्तमाम्॥२८॥
स्वर्णनिष्कशतं चात्र ततो दास्ये तथापरम्। पूर्णे वर्षे द्विजश्रेष्ठ ! श्रेयोऽर्थमहमात्मनः ॥२९॥
एवं प्रवर्तितं तत्र पुण्यं पुस्तकवाचनम्। वर्षसङ्गतमात्रे तु तथा च मुनिसत्तम ! ॥३०॥
अथायुषः क्षयाच्चायं कालधर्ममुपेयिवान्। मया चास्य विमानं हि विष्णुनां प्रेरितं दिवः॥३१॥
इत्येषा कर्मणां व्युष्टिः पुण्यमाख्यानसंज्ञकम्।
श्रुतं पाद्मं महत्पुण्यं पवित्रं पापानाशनम् ॥३२॥
गन्धपुष्पोपहारैस्तु न तुष्टिर्जायते तथा। देवानामिह सर्वेषां पुराणश्रवणाद्यथा॥३३॥
स्वर्णरत्नादिवस्तूनां वस्त्राणां चापि कुत्स्नशः।
ग्रामाणां नगराणां च दानात्तुष्टिर्भवेन्नहि ॥३४॥
यथा स्याद्धर्मश्रवणात्प्रीतिः सर्वदिवौकसाम्। इतिहासपुराणानां श्रवणे मुनिसत्तम !॥३५॥
यथा स्यान्मे महाप्रीतिः साध्ये सर्वार्थकामिके।
कन्यादाने महाप्रीतिर्मम स्यान्मुनिसत्तम ! ॥३६॥
न तथा रोचते सा च यथा पुस्तकवाचनात्।
अथ किं बहुनोक्तेननान्यत्प्रीतिकरं मम ॥३७॥

ग्राम में भगवान् का मन्दिर लोगों से भरा रहता था। राजा ने ब्राह्मणों का सर्वप्रथम पूजन किया ॥२४॥ उसके बाद इतिहास तथा पुराणों के ज्ञाता को उन्होंने विशेष रूप से नियुक्त किया। उन श्रेष्ठ विद्वान् की पूजा करके राजा ने ॥२५॥ पुस्तक की भी पूजा चन्दन पुष्प आदि से क्रमशः की। उसके पश्चात् विनय पूर्वक राजा ने वाचक से कहा ॥२६॥ आपके सामने मैंने इस मन्दिर को इसलिए बनवाया है कि चारो वर्णों के लोग यहाँ आकर पुराण का श्रवण कर सकें ॥२७॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आप पुस्तक का वाचनषर्ष पर्यन्त उत्तम वृत्ति को स्वीकार करके करें ॥२८॥ वर्ष पूरा हो जाने पर मैं आपको पुनः सौ स्वर्ण मुद्राएँ दूँगा। मैं अपना आत्मकल्याण करना चाहता हूँ ॥२९॥ इस तरह वहाँ पवित्र पुस्तक का वाचन प्रारम्भ हो गया। हे मुनिश्रेष्ठ ! वर्ष पूरा होते-होते राजा की आयु समाप्त हो गयी और उसकी मृत्यु हो गयी। मैंने तथा भगवान् विष्णु ने उसके लिए स्वर्ग से विमान भेजा ॥३०-३१॥ यह पुण्य कथा का ही परिणाम है। इसने पाप विनाशक पद्मपुराण की कथा का श्रवण किया है ॥३२॥ पुराणों के श्रवण से देवताओं को जितना सन्तोष होता है उतना सन्तोष देवताओं को चन्दन पुष्पादि के उपहारों से नहीं होता है ॥३३॥ सुवर्ण तथा रत्नों से बने वस्तुओं के दान से, या सम्पूर्ण वस्त्रों के दान से या ग्रामों तथा नगरों के दान से भी श्रीभगवान् को संतोष नहीं होता है ॥३४॥ जितना सन्तोष देवताओं को धर्म ग्रन्थ से तथा इतिहास, पुराणों के श्रवण से होता है ॥३५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले कन्या दान से मुझको जितनी प्रसन्नता होती हैं ॥३६॥ किन्तु पुस्तक पाठ के समान वह भी मुझे अच्छा नहीं

पुण्याख्यानमृते विप्र गुह्यमेतत्प्रकीर्तितम्। यश्चायमपरो विप्र इहायातो नरोत्तमः ॥३८॥
संगत्यानुगतश्चायं धर्मश्रवणमुत्तमम्। श्रुत्वा भक्तिरभूदस्य श्रद्धया परमात्मनः॥३९॥
कृत्वा प्रदक्षिणं तस्य वाचकस्य महात्मनः।
एष विप्रो मुनिश्रेष्ठ ! ददौ स्वर्णस्य माषकम् ॥४०॥
नान्यद्दानं कदा चक्रे लोभाविष्टेन चेतसा। पात्रदानात्फलप्राप्तिस्तस्यजातान संशयः॥४१॥
इत्येतत्कथितं कर्म आभ्यां चैव महामुने ॥४२॥
एतत्पुण्यस्य माहात्म्यं ये शृण्वन्ति मनीषिणः।
न तेषां दुर्गतिः कच्चिज्जन्मजन्मनि जायते ॥४३॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे शास्त्रव्याख्यामहिमानामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

तीसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि शृणु देवर्षिसत्तम। गोपीचन्दनमाहात्म्यं यथादृष्टं श्रुतं मया॥१॥
ब्राह्मणोवाऽथवैश्यो वा शूद्रोवाप्यथ बाहुजः।
गोपीचन्दनलिप्ताङ्गोमुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२॥

लगता है। हे विप्र ! मैं बहुत क्या कहूँ पवित्र कथाओं से भिन्न किसी भी वस्तु से मुझको उतनी प्रसन्नता नहीं होती है। यह मैंने आपको रहस्य की बात बतलायी है। हे व्रिप ! यहाँ जो दूसरा श्रेष्ठ मनुष्य आया है। यह उत्तम धर्म का श्रवण की सङ्गति से तथा उसका धर्म का श्रवण करके, इसके मन में श्रीभगवान् के प्रति श्रद्धामयी भक्ति उत्पन्न हो गयी थी ॥३७-३९॥ उस कथा वाचक महात्मा की प्रदक्षिणा करके उनको एक माशा सुवर्ण दान दिया ॥४०॥ लोभी होने के कारण उससे भिन्न कोई भी दान नहीं दिया था। योग्य पात्र को दान देने के कारण उसको इस फल की प्राप्ति हुयी है ॥४१॥ हे महामुने ! इन दोनों के कर्मों का मैंने आपको वर्णन सुनाया है ॥४२॥ **महादेवजी ने कहा—** पुण्य के इस माहाम्त्य को जो मनीषी श्रवण करते है उनकी किसी भी जन्म में दुर्गति नहीं होती हैं ॥४३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत शास्त्र व्याख्या की महिमा का वर्णन नामक उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२९।।

गोपीचन्दन के माहात्म्य का वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे देवर्षि श्रेष्ठ ! मैंने गोपी चन्दन की महिमा का जैसा श्रवण और दर्शन किया है उसे मैं बतलाता हूँ आप सुनने ॥१॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र कोई भी हो जिसके शरीर

तिलकं कुरुते यस्तु गोपीचन्दनसंभवम् । मद्यपानादि दोषैस्तु मुच्यते नात्रसंशयः ॥३॥
गोचीचन्दनलिप्ताङ्गो वैष्णवो विष्णुतत्परः । सर्वदोषैःप्रमुच्येत यथा गङ्गाभसा पुनः ॥४॥
ब्रह्महा मद्यपायी च स्वर्णस्तेयी तथैव च । गुरुतल्पगमोवाऽथ शूद्रो वाप्यथ वै द्विजः ॥५॥
स सद्यो मुच्यते पापादाजन्मशत कारणात् । द्वादश तिलकं प्रोक्तं सर्वेषां वै विशेषतः ॥६॥

वैष्णवानां ब्राह्मणानां कर्तव्यं भूतिमिच्छताम् ।
दण्डकारं ललाटे स्यात्पद्माकारं तु वक्षसि ॥७॥

वेणुपत्रनिभं बाहुमूलेऽन्यद्दीपकाकृति । उच्चैश्चक्राणि चत्वारि बाहुमूले तु दक्षिणे ॥८॥
नाम मुद्राद्वयं नीचैः शङ्खमेकं तयोरपि । मध्ये तत पार्श्वयोस्तु द्वे द्वे पद्मे च धारयेत्॥९॥
वामेऽपि चतुरःशङ्खान्नाममुद्रे च पूर्ववत् । चक्रमेकं गदे द्वे द्वेः तयोरिति बिभेदतः ॥१०॥

ललाटे च गदामेकां नाममुद्रां तथा हृदि ।
त्रीणि त्रीणि च चक्राणि मध्ये शङ्खावुभावुभौ ॥११॥

हृदि पार्श्वे स्तनादूर्ध्वंगदापद्मानि बाहुवत् । त्रीणि चत्वारिचक्राणिकर्णमूले द्वयोरधः ॥१२॥
एकमेकं तदन्येषु तिलकेषु च धारयेत् । सम्प्रदायजमुद्रा तु धार्या शिष्टानुसारतः ॥१३॥

यथारुच्यथवा धार्या न तत्र नियमो यतः ।
आचाण्डालाद्विशुद्ध्यन्ति तिलकस्यैव धारणात् ॥१४॥
चाण्डालादधिकं मन्ये वैष्णवानां हि निन्दकम् ।
स च विष्णुसमो ज्ञेयो नात्र कार्या विचारणा ॥१५॥

में गोपीचन्दन लगा रहता है, वह निश्चित रूप से ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है ॥२॥ जो व्यक्ति गोपी चन्दन से तिलक लगाता है, वह मदिरापानादि जन्य पापों से निश्चित रूप से छूट जाता है ॥३॥ गोपी चन्दन अपने अङ्गों में लगाने वाले भगवान् विष्णु के भक्त वैष्णव सभी दोषों से उसी तरह मुक्त हो जाते हैं जिस तरह से गङ्गाजल से ॥४॥ ब्रह्मघाती, मद्यप, सुवर्ण की चोरी करने वाला गुरुतल्पगामी, भी चाहे शूद्र हो या ब्राह्मण, जन्म से पहले के सैकड़ो जन्मों के पापों से गोपीचन्दन का तिलक लगाकर मुक्त हो जाते हैं । सबों के लिए विशेष रूप से द्वादश तिलक बतलाये गये हैं ॥५-६॥ ऐश्वर्य चाहने वाले वैष्णव ब्राह्मणों को ललाट पर दण्डाकार तिलक लगाना चाहिए और वक्षःस्थल में कमल के समान तिलक लगाये॥७॥ दोनों भुजाओं में बाँस के पत्ते के आकार का तथा अन्यत्र दीपक के आकार का तिलक लगाये। दाहिने भुजमूल में चार चक्रों को धारण करना चाहिए ॥८॥ उसके नीचे दो नाम मुद्रा को तथा उन दोनों के नीचे एक शङ्ख को धारण करे । उसके बीच में तथा बगल में दो-दो कमलों को धारण करना चाहिए। बायें भुजमूल में भी चार शङ्ख तथा दो नाम मुद्रा को पहले के समान धारण करना चाहिए एक चक्र तथा दो-दो गदाओं को धारण करना चाहिए ॥९-१०॥ ललाट पर एक गदा को तथा हृदय में एक नाम मुद्रा को धारण करे । तीन-तीन चक्रों को तथा बीच में दो-दो शङ्खों को धारण करना चाहिए ॥११॥ हृदय में, बगल में तथा स्तनों के ऊपर भुजाओं के ही समान गदाओं तथा पद्मों को धारण करना चाहिए । कर्ण मूलों के नीचे तीन तथा चार चक्रों को धारण करना चाहिए । और एक-एक उससे भिन्न तिलकों में चक्रों को धारण करे । शिष्टाचारानुकूल साम्प्रदायिकी मुद्रा को धारण करना चाहिए ॥१२-१३॥ अथवा इन सबों को

वैष्णवो ब्राह्मणो यस्तु विष्णुध्यानेषु तत्परः ।
नान्तरं तस्य वै ज्ञेयंस वै विष्णुर्भवेदिह ॥१६॥
शङ्खचक्रधरो विप्रो वेदाध्ययनतत्परः। स वै नारायण इति वेदे चैव तु पठ्यते॥१७॥
तप्तचक्रधरो विप्रः पङ्क्तिपावनपावनः। तस्य भक्तियुतो ब्रह्मन्महापापैः प्रमुच्यते॥१८॥
तुलसीपत्रमालां वा तुलसीकाष्ठसंभवाम्। धृत्वा वै ब्राह्मणो भूयान्मुक्तिभागी न संशयः॥१९॥
विष्णुरूपो यतो विप्रो वैष्णवः स इहस्मृतः ।
पञ्चत्वे यस्यतिलकं गोचीचन्दनसंभवम् ॥२०॥
विमानं स समारुह्य याति विष्णोः परं पदम् ।
कलौ नारद वक्ष्यामि तिलकं गोपिचन्दनम् ॥२१॥
ये कुर्वन्ति नरश्रेष्ठा न तेषांदुर्गतिः क्वचित् ।
शङ्खं चैव तथाचक्रं दक्षिणे चापि सव्यके ॥२२॥
हस्ते धृत्वा विशेषेण महापापैः प्रमुच्यते। मद्यपानरता ये च ये च स्त्रीबालघातकाः ॥२३॥
अगम्यगमका ये वै दृश्यन्ते भुवि वाडव। भक्तानां दर्शनादेव मुक्तिस्तेषां न संशयः॥२४॥
संसारे तुच्छसारेऽस्मिन्कुतो वै वैष्णवा जनाः ।
अहं हि वैष्णवो जातो विष्णोर्भक्तिप्रसादतः ॥२५॥

अपनी रुचि के अनुसार धारण करना चाहिए क्योंकि इसका कोई नियम नहीं है। चाण्डाल पर्यन्त सभी मनुष्य केवल तिलक के ही धारण करने से शुद्ध हो जाते हैं ॥१४॥ जो वैष्णवों की निन्दा करता है वह चाण्डाल से भी अधिक नीच है। बिना किसी बिचार के ही वैष्णवों को भगवान् विष्णु के समान मानना चाहिए ॥१५॥ भगवान् विष्णु के ध्यान में ही लगे रहने वाला ब्राह्मण वैष्णव और भगवान् विष्णु में कोई भेद नहीं मानता है क्योंकि वैष्णव विष्णु के ही समान होता है ॥१६॥ वेदों में बतलाया गया है कि शङ्ख, चक्रांकित तथा वेदाध्ययन करने वाला ब्राह्मण नारायण स्वरूप होता है ॥१७॥ हे ब्रह्मन् ! तप्त चक्राङ्कित विप्र पङ्क्ति पावन को भी पवित्र बनाने वाला होता है। उसकी भक्ति करने वाला मनुष्य महापापों से छूट जाता है ॥१८॥ तुलसी के पत्तों की माला अथवा तुलसी के काष्ठ की माला को धारण करने वाला ब्राह्मण मुक्ति के योग्य होता है, इसमें किसी भी प्रकार संशय नहीं है ॥१९॥ चूकि वैष्णव ब्राह्मण विष्णु स्वरूप होता है मृत्यु के समय जिसके ललाट पर गोपीचन्दन का तिलक रहता है वह विमान पर चढ़कर भगवान् विष्णु के परम पद में जाता है। हे नारद ! मैं बतलाता हूँ कि कलियुग में गोपीचन्दन का तिलक ॥२०-२१॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य लगाते हैं उनकी कहीं दुर्गति नहीं होती है जो दायीं और बायीं भुजा में क्रमशः शङ्ख, चक्र धारण करते हैं वे महापापों से मुक्त हो जाते हैं। जो मदिरा पीते हैं, स्त्रियों और बालकों की हत्या करते हैं तथा जो अगम्यागमन करते हैं हे ब्राह्मण ! वे भी भगवद् भक्तों का दर्शन करके मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥२२-२४॥ तुच्छ सार वाले संसार में वैष्णव

काश्यां निवसतां ह्यत्र रामरामेति संजपन् । तेन पुण्यादियोगेन शिवो वै नात्र संशयः ॥२६॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे गोपीचन्दनमाहात्म्यं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकतीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

ब्रह्मन्संवत्सराख्यस्य दीपस्य विधिमुत्तमम् । सर्वव्रतप्रधानस्य माहात्म्यं प्रवदस्व मे॥१॥
येन व्रतानि सर्वाणि कृतान्येव न संशयः । सर्वकामसमृद्धिश्च सर्वपापक्षयो भवेत् ॥२॥

महादेव उवाच

वदामि तव देवर्षे रहस्यं पापनाशनम् । यच्छ्रुत्वा ब्रह्मध गोघ्नो मित्रघ्नो गुरुतल्पगः ॥३॥
विश्वासघाती क्रूरात्मा मुक्तिमाप्नोति शाश्वतीम् ।
शतं कुलानामुद्धृत्य विष्णोर्लोकं स गच्छति ॥४॥
तदहं कथयिष्यामि दीपव्रतमनुत्तमम् । संवत्सरप्रमाणस्य विधिं माहात्म्यमेव च ॥५॥
हेमन्ते प्रथमे मासि प्राप्य ह्येकादशीं शुभाम् ।
ब्राह्मे मुहूर्त्तेचोत्थाय कामक्रोधविवर्जितः ॥६॥

पुरुष कहाँ से मिलेंगे । मैं तो भगवान् विष्णु की भक्ति की कृपा से वैष्णव हो गया ॥२५॥ यहाँ पर काशी में रहकर मैं राम-राम जपते रहता हूँ इसीलिए उसी पुण्य विशेष के कारण मैं शिव कहलाता हूँ ॥२६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत गोपीचन्दन का माहात्म्य वर्णन नामक तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३०॥

कार्तिक शुक्ल एकादशी को दीपव्रत के विधान का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे ब्रह्मन् ! सभी व्रतों में प्रधान संवत्सर दीप की उत्तम विधि का माहात्म्य आप मुझे बतलायें ॥१॥ जिसके करने मात्र से सभी व्रतों के करने का फल प्राप्त हो जाता है, साथ ही सभी कामनाओं की पूर्ति तथा सभी पापों का नाश भी हो जाता है ॥२॥ **महादेवजी ने कहा—** हे देवर्षे ! मैं आपको पाप विनाशक रहस्य को बतलाता हूँ । उसका श्रवण करने मात्र से ब्रह्मघाती, गोघाती, मित्रघाती तथा गुरुतल्पगामी, विश्वासघाती तथा क्रूर जीव भी शाश्वत मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं । वह अपने सौ वंशों का उद्धार कर देता है और स्वयं भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥४॥ मैं उसी संवत्सर प्रमाण वाले दीपव्रत की विधि तथा उसके माहात्म्य का वर्णन करता हूँ ॥५॥ हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में मङ्गलमयी एकादशी के दिन ब्राह्ममुहूर्त में जगकर, काम एवं क्रोध से रहित होकर, अपने मन को वश में रखकर

नदीसंगमतीर्थेषु तडागेषु सरित्सु च । स्नानं समाचरेत्तत्र गृहे वा नियतात्मवान्॥७॥
स्नाताऽहं सर्वतीर्थेषु गर्ते प्रस्रवणेषु च । नदीषु सर्वतीर्थेषु तत्स्नानं देहिमे प्रभो ॥८॥

स्नानमन्त्रः

देवान्पितृंश्च संतर्प्य कृतजप्यो जितेन्द्रियः । ततः संपूजयेद्देवं लक्ष्मीनारायणं प्रभुम् ॥९॥
पञ्चामृतेन संस्नाप्य ततो गन्धोदकेन च । स्नातोऽसि लक्ष्म्यासहितोदेवदेव जगत्पते ॥१०॥
मां समुद्धर देवेश घोरात्संसारबन्धानात् । ततः सम्पूजयेद्देवं लक्ष्म्या सह जनार्दनम् ॥११॥
मन्त्रैस्तु वैदिकैर्भक्तया तथा पौराणिकैरपि । अतो देवेति सूक्तेन पौरुषेणापि वा पुनः ॥१२॥
नमा मत्स्याय देवाय कूर्मदेवाय वै नमः । नमो वाराहदेवाय नरसिंहाय वै नमः ॥१३॥
वामनाय नमस्तुभ्यं पर्शुरामाय ते नमः । नमोस्तु रामदेवाय विष्णुदेवाय ते नमः ॥१४॥
नमोऽस्तु बुद्धदेवाय कल्किने च नमोनमः । नमः सर्वात्मने तुभ्यं गिर इत्यभिपूजयेत् ॥
केशवादीनि नामानि तैर्वा संपूजयेद्धरिम् ॥१५॥

धूपमन्त्रः

वनस्पतिरसो दिव्यः सुरभिर्गन्धवाञ्छुचिः । धूपोऽयं देवदेवेश नमस्ते प्रतिगृह्यताम् ॥१६॥

दीपमन्त्रः

दीपस्तमोनाशयति दीपः कान्तिं प्रयच्छति । तस्माद्दीपप्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः ॥१७॥

नैवेद्यमन्त्रः

नैवेद्यमिदमन्नाद्यं देवदेव ! जगत्पते ! । लक्ष्म्या सह गृहाण त्वं परमामृतमुत्तमम् ॥१८॥

नदियों के सङ्गम में, या सरोवर में, या नदियो में, या अपने घर में ही स्नान करना चाहिए **स्नान करने का मन्त्र**— मन में प्रार्थना करे कि हे प्रभो ! मैंने सभी तीर्थों में गर्तों तथा नदियों में स्नान कर लिया है, वही स्नान आज मुझे आप प्रदान करें ॥६-८॥ जितेन्द्रिय रहकर वह देवताओं और पितरों का तर्पण करके जप करें, उसके पश्चात् जगत् के स्वामी भगवान् लक्ष्मी नारायण की पूजा करे ॥९॥ पहले पञ्चामृत से स्नान कराये उसके पश्चात् गन्धोदक से स्नान कराये और प्रार्थना करे कि हे देवाराध्य ! हे जगत् के स्वामिन् ! आपने श्रीलक्ष्मीजी के साथ स्नान कर लिया है ॥१०॥ हे देवेश ! आप भयङ्कर संसार के बन्धन से उद्धार करें । उसके पश्चात् लक्ष्मीजी के साथ भगवान् जनार्दन की पूजा करे ॥११॥ श्रीभगवान् की पूजा वैदिक अथवा पौराणिक मन्त्रों से करे अथवा **अतो देवा** इस सूक्त से करे या पुरुष सूक्त से करे ॥१२॥ मत्स्य देव को नमस्कार है, कूर्मदेव को नमस्कार है । वराहदेव को नमस्कार है, नरसिंह देव को नमस्कार है ॥१३॥ हे वामन भगवान् ! आपको नमस्कार है, परशुराम भगवान् को नमस्कार है । भगवान् श्रीराम को नमस्कार है तथा भगवान् विष्णु को नमस्कार है ॥१४॥ बुद्ध भगवान् को नमस्कार है और कल्कि भगवान् को नमस्कार है । हे सर्वात्मन् आपको नमस्कार है इस तरह से कहकर पूजा करे अथवा श्रीभगवान् के केशव आदि जो नाम हैं उन नामों से उनकी पूजा करे ॥१५॥ **धूप का मन्त्र**— वनस्पति के रस से बना हुआ दिव्य पवित्र तथा सुगन्धित यह धूप है, हे देवदेवेश ! आपको नमस्कार है, आप इसे स्वीकार करें ॥१६॥ **दीप का मन्त्र**— दीप अन्धकार को दूर करता है, और कान्ति प्रदान करता है । अतएव हे

अर्घमन्त्रः

अर्घ्यं दद्यात्ततो भक्त्या एवं ध्यात्वा जनार्दनम् ।
फलेन चैव हस्तेन शङ्खेनादाय चोदकम् ॥१९॥
जन्मान्तरसहस्रेण यन्मया पातकं कृतम् । तत्सर्वं नाशमायातु प्रसादात्तव केशव ! ॥२०॥
ततः कुम्भं नवं शुभ्रं घृतपूर्णं समानयेत् । लक्ष्मीनारायणस्याग्रे तैलपूर्णमथापि वा ॥२१॥
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं मृण्मयमेव च । नवतन्तुसमां वर्तितस्मिन्पात्रे तु निर्वपेत् ॥२२॥
ततः प्रबोधयेद्दीपं स्थाप्य कुम्भं सुनिश्चलम् ।
पुष्पगन्धादिभिः पूज्य ततः सङ्कल्पयेच्छुचिः ॥२३॥
मन्त्रेणानेन देवर्षे असमीरेषु धामसु। कामो भूतस्य भव्यस्य सम्राडेको विराजते ॥२४॥
दीपः संवत्सरं यावन्मयाऽयं परिकल्पितः । अग्निहोत्रमविच्छिन्नं प्रीयतां मम केशवः ॥२५॥
ततो जितेन्द्रियो भूत्वा श्रुतिज्ञानपरायणः । नालपेत्पतितान्पापांस्तथा पाखण्डिनो नरान्॥२६॥
रात्रौ जागरणं गीतं नृत्यवाद्यादिकैस्तथा । पुण्यपाठैश्च विविधैर्धर्माख्यानैरूपोषणैः ॥२७॥
ततः प्रभातसमये कृतपूर्वाह्निकक्रियः । ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या यथाशक्त्या प्रपूजयेत् ॥२८॥
स्वयं च पारणं कृत्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।
एवं सवत्सरं यावदहोरात्रं दृढव्रतः ॥२९॥
दीपं पलसुवर्णेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः । वर्तिस्तु राजती प्रोक्ता द्विपलार्द्धार्द्धिकापिवा ॥३०॥

जनार्दन । आप दीप प्रदान के कारण प्रसन्न होइये ॥१७॥ **नैवेद्य का मन्त्र—** हे जगत्पते ! यह अन्न आदि से बना हुआ नैवेद्य है, यह श्रेष्ठ अमृत के समान तथा उत्तम है । हे देवदेवेश ! आप इसे लक्ष्मीजी के साथ ग्रहण करें ॥१८॥ **अर्घ का मन्त्र—** उसके पश्चात् उपर्युक्त प्रकार से भगवान् जनार्दन का ध्यान करके हाथ में फल, जल और शङ्ख लेकर उनको अर्घ प्रदान करना चाहिए ॥१९॥ हे केशव ! हजारों जन्मों में जो मैंने पाप किया है आपकी कृपा से वह सब नष्ट हो जाय ॥२०॥ उसके पश्चात् भगवान् लक्ष्मीनारायण के समक्ष तेल अथवा घी से भरा हुआ नवीन तथा चमकता हुआ घड़ा रखे ॥२१॥ उसके ऊपर ताम्बे अथवा मिट्टी का पात्र रखे उसमें नव तन्तुओं से बनी हुयी वत्ती डाले ॥२२॥ सुदृढ रूप से घट को स्थापित करके दीपक जालये । फिर पुष्प तथा दीप आदि से उसकी पूजा करके फिर सङ्कल्प करे॥२३॥ हे देवर्षे ! निम्नाङ्कित मन्त्र से वायु रहित स्थान में दीपक प्रज्वलित करे । भूत और भविष्य के सम्राट् तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले परमात्मा सर्वत्र विराजमान हैं । एक वर्ष पर्यन्त प्रज्वलित रखने के लिए मैंने इस दीपक की स्थापना की है । यह निरन्तर अग्निहोत्र स्वरूप है, इससे भगवान् केशव मुझ पर प्रसन्न हों ॥२४-२५॥ उसके पश्चात् जितेन्द्रिय होकर श्रुतियों का ज्ञान प्राप्त करने में लगा रहे । पतितों, पापियों और पाखण्डियों से बातें न करे ॥२६॥ रात्रि में गीत, नृत्य वाद्य, पवित्र पाठों तथा अनेक प्रकार के धार्मिक आख्यानों से जागरण करे ॥२७॥ उसके पश्चात् प्रातःकाल पूर्वाह्ण की क्रियाओं को करके भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराये और अपनी शक्ति के अनुसार उनकी पूजा करे ॥२८॥ उसके पश्चात् स्वयं पारण करके साष्टाङ्ग प्रणाम करके विजर्सन करे । इस तरह एक वर्ष पर्यत दृढ़व्रत होकर दिन-रात उस नियम से रहे ॥२९॥ उसके पश्चात् एक पल सुवर्ण का दीप बनाकर आधे पल चाँदी की वत्ती बनवाये।

घृतपूर्णं तथा कुम्भं ताम्रपात्रसमन्वितम् । लक्ष्मीनारायणोदेवोयथा शक्तया हिरण्मयः ॥३१॥
कार्यो भक्तिमता पुंसा मुक्तिद्वारमभीप्सताः। ततो निमन्त्रयेद्विद्वान्ब्राह्मणान्साधुसत्तमाम् ॥३२॥
द्वादशोत्तमपक्षे तु विप्रान्षणमध्यमे तथा । अन्यथा कारयेत्त्रीन्वा एकं कर्मकरं द्विजम् ॥३३॥
सपत्नीकं द्विजं शान्तं क्रियावन्तं विशेषतः। इतिहासपुराणज्ञं धर्मज्ञं मृदुमेव च ॥३४॥
पितृभक्तं गुरुपरं देवब्राह्मणपूजकम्। पाद्यार्घदानविधिना वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥३५॥

संपूज्य पत्न्या सहितमेकँ भक्तया च पूर्ववत् ।
लक्ष्मीनारायणं देवं दीपवतियुतं तथा ॥३६॥

ताम्रपात्रोपरि स्थाप्यघृतकुम्भेन संयुतम् । ब्राह्मणायततो दद्याद्ध्यात्वा नारायणंपरम् ॥
मन्त्रेणानेन देवर्षे ! तमहं कथयामि ते ॥३७॥
अविद्यातमसा व्याप्ते संसारे पापनाशनः । ज्ञानप्रदो मोक्षदश्च तस्माद्दत्तो मयाऽनघ ॥३८॥

दीपमन्त्रः

दक्षिणां च यथाशक्तया दत्त्वा विप्राय भक्तितः ।
भोजयेद् ब्राह्मणान्पश्चाद् घृतपायसमोदकैः ॥३९॥
वस्त्रैराच्छादयेत्पश्चात्सपत्नीकं तथा द्विजम् ।
शय्यां सोपस्करां दद्याद् धेनुं चैव सवत्सिकाम् ॥४०॥

तेभ्यस्तु दक्षिणां दद्याद्यथावित्तानुसारतः। सुहृत्स्वजनबन्धूंश्च भोजयेत्पूजयेत्तथा ॥४१॥
एवं महोत्सवं कुर्याद्दीपव्रतसमापने । ततो विसर्जयेत्पश्चात्प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥४२॥

वह ढाई पल की भी हो सकती है । घी से भरे घड़े के ऊपर ताम्बे का पात्र रखे । फिर अपनी शक्ति के अनुसार भगवान् लक्ष्मी नारायण की सुवर्ण की मूर्ति बनाये । मुक्ति चाहने वाले को इन सभी कार्यों को भक्तिपूर्वक करना चाहिए । उसके पश्चात् एक वर्ष पूरा हो जाने पर साधु प्रकृति के श्रेष्ठ ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे ॥३०-३२॥ उत्तम पक्ष में बारह ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे । छह ब्राह्मणों को मध्यम कहा गया है । नहीं तो तीन ब्राह्मणों को ही निमन्त्रित करे । उनमें से एक ब्राह्मण को कर्मनिष्ठ होना चाहिए॥३३॥ उस ब्राह्मण को सपत्नीक शान्त, क्रियानिष्ठ होना चाहिए । उसे इतिहास पुराण का ज्ञाता धर्मज्ञ तथा मृदुल स्वभाव का होना चाहिए ॥३४॥ उसे पिता का भक्त, गुरुजनों का भक्त तथा देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करने वाला होना चाहिए । पाद्य, अर्घ देकर वस्त्र, अलङ्कार तथा भूषणों से सपत्नीक ब्राह्मण की पूजा भक्ति पूर्वक पूर्वोक्त विधि से करे । उसके भगवान् लक्ष्मी नारायण की मूर्ति, दीपक तथा उसकी बातों आदि को ताम्बे के पात्र के ऊपर स्थापित करके घी के घड़े के साथ भगवान् नारायण का ध्यान करके ब्राह्मण को दे दे । जिसे मैं आपको बतला रहा हूँ देवर्षे उसी मन्त्र से उसे दान दे ॥३५-३७॥ हे अनघ! संसार अज्ञानान्धकार से व्याप्त है अतएव मैंने पाप नाशक, मोक्षप्रद दीपदान दिया है ॥३८॥ यही दीप का मन्त्र है । अपनी शक्ति के अनुसार उस ब्राह्मण को दक्षिणा भक्ति पूर्वक देनी चाहिए । उसके बाद ब्राह्मणों को घी, पायस तथा मिठाई से ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥३९॥ उसके पश्चात् उस सपत्नीक ब्राह्मण को वस्त्रों से ढँक दे । सभी सामग्रियों से युक्त शय्या दान दे तथा बछड़ी वाली गौ का दान करे । अपनी सम्पत्ति के अनुसार ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए । फिर अपने मित्रों तथा स्वजनों को भोजन कराकर

एवं कृते तु यत्पुण्यं तथा सांक्रान्तिकैश्च यत् ।
संवत्सराख्यदीपस्य तत्फलं प्राप्यते नरैः ॥४३॥
मासव्रतैश्च यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्यते नरैः । संवत्सरस्य दीपस्य व्रतेन चरितेन च ॥४४॥
दानव्रतैर्यथा सङ्ख्यैर्यश्च योगव्रतैस्तथा। तत्फलं समवाप्नोति दीपे सांवत्सरे कृते ॥४५॥
गोभूहिरण्यदानानि गृहादीनां विशेषतः । यत्फलं लभते विद्वांस्तत्फलं दीपदो भवेत्॥४६॥
दीपदःकान्तिमाप्नोति दीपदो धनमक्षयम् । दीपदो ज्ञानमाप्नोति दीपदःपरमंसुखम्॥४७॥
दीपदानाच्च सौभाग्यं विद्यामत्यन्तनिर्मलाम्। आरोग्यं परमामृद्धिं लभते नात्रसंशयः ॥४८॥
दीपदः सुभगां भार्यां सर्वलक्षणसंयुताम् । पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रांश्च सन्ततिं चाक्षयां लभेत् ॥४९॥
ब्राह्मणः परमं ज्ञानं क्षत्रियो राज्यमुत्तमम् । वैश्यो धनपशून्सर्वाञ्छूद्रःसुखमवाप्नुयात् ॥५०॥
कुमारीचापि भर्तारं सर्वलक्षणसंयुतम् । प्राप्नोति परमायुश्च पुत्रान्पौत्रांश्च पुष्कलान् ॥५१॥
वैधव्यंनैव युवती कदाचिदपि पश्यति । न वियोगमवाप्नोति दीपदानप्रभावतः ॥५२॥
नाधयो व्याधयश्चैव जायन्ते दीपदानतः । भयात्प्रमुच्यते भीतो बद्धो मुच्यते बन्धनात्॥५३॥
ब्रह्महत्यादिभिःपापैर्दीपव्रतपरायणः । मुच्यते नात्र संदेहो ब्रह्मणो वचनं यथा ॥५४॥
चान्द्रायणानि कृच्छ्राणि चरितानि न संशयः ।
येन सांवत्सरोदीपो बोधितः शाश्वतो हरेः ॥५५॥

उनकी पूजा करे ॥४०-४१॥ इस तरह दीपव्रत के समाप्त हो जाने पर महोत्सव करना चाहिए । उसके पश्चात् सभी ब्राह्मणों को प्रणाम करके विदा करे ॥४२॥ ऐसा करने से संक्रान्तियों का जो पुण्य होता है, उस फल की प्राप्ति संवत्सराख्य दीप से ही हो जाती है ॥४३॥ मास व्रत करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल की प्राप्ति दीपव्रत करने मात्र से ही हो जाती है ॥४४॥ सभी दान व्रतों तथा योग व्रतों के करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति संवत्सर दीप व्रत करने से ही हो जाते हैं ॥४५॥ विशेष रूप से गौ, पृथिवी, सुवर्ण तथा गृह दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसकी प्राप्ति विद्वान् दीपदान से कर लेता है ॥४६॥ दीपदान करने वाला व्यक्ति कान्ति प्राप्त करता है, वह अक्षय धन प्राप्त करता है । वह ज्ञान प्राप्त करता है तथा परम सुख को प्राप्त करता है ॥४७॥ दीपदान से सौभाग्य की प्राप्ति तथा अत्यन्त निर्मल विद्या की प्राप्ति होती हैं । वह आरोग्य, तथा श्रेष्ठ समृद्धि को प्राप्त करता है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥४८॥ दीपदान करने से सुन्दर तथा नारी के समस्त लक्षणों से सम्पन्न पत्नी को प्राप्त करता है । वह पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्रों से सम्पन्न अक्षय सन्तान को प्राप्त करता है ॥४९॥ ब्राह्मण श्रेष्ठ ज्ञान को तथा क्षत्रिय उत्तम राज्य को प्राप्त कर लेता है। वैश्य समस्त धनों तथा पशुओं को प्राप्त करता है तथा शूद्र सुख को प्राप्त करता है ॥५०॥ कुमारी सभी सत् लक्षणों से युक्त पति को प्राप्त करता है, परमाणु तथा पुष्कल मात्रा में पुत्रों तथा पौत्रों को प्राप्त करती है ॥५१॥ इस व्रत को करने वाली युवती विधवा नहीं होती है । दीपदान के प्रभाव से उसका कभी वियोग नहीं होता है ॥५२॥ दीपदान करने वाले को कोई आधि-व्याधि नहीं होती है । भयभीत व्यक्ति दीपदान के प्रभाव से भय से रहित हो जाता है, बँधा हुआ व्यक्ति बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥५३॥ दीपव्रत करने वाला ब्रह्महत्या आदि दोषों से ब्रह्माजी के वचन के अनुसार मुक्त हो जाता है, इसमें कोई भी संशय नहीं

ते धन्यास्ते महात्मानस्तैःप्राप्तं जन्मनःफलम् ।
यैः संपूज्य हरिंभक्तया दीपः सांवत्सरःकृतः ॥५६॥
येऽपि संवर्त्तयन्तीह दीपवर्तिं शलाकया। ते यान्ति परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥५७॥
ये च तैलं च वर्तिं च यथाशक्तया प्रदीपके ।
प्रक्षेपयन्ति सततं ते यान्ति परमांगतिम् ॥५८॥
गच्छन्तं दीपकं शान्तिं न शक्नोति प्रबोधितुम् ।
कथयत्यन्यलोकानां तेऽपि तत्फलभागिनः ॥५९॥
स्तोकं स्तोकं च भिक्षित्वा तैलं दीपार्थमेव च ।
करोति दीपकं विष्णोः पुण्यं तेनापि लभ्यते ॥६०॥
दीपं प्रज्वाल्यमानं तु यः पश्यत्यधमो नरः ।
कृताञ्जलिपुटो विष्णोर्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥६१॥
दीपप्रज्वालने बुद्धिं यो दद्यात्कुरुतेस्वयम्। सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥६२॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥६३॥
सरस्वत्यास्तटे रम्ये सिद्धाश्रम इति श्रुतः। तत्रोवास द्विजःपूर्वं कपिलो नाम वेदवित् ॥६४॥
व्रतोपवासनिरतो दरिद्रःश्रोत्रियस्तथा । भिक्षावृत्त्या च कुरुते कुटुम्ब परिपालनम् ॥६५॥
व्रतोपवासनियमैर्विष्णुमाराधयत्यसौ । विष्णुं संपूज्य विधिवद्दीपं बोधयते सदा ॥६६॥
समादाय च तत्तैलं स्वगृहे पूज्य केशवम् । दीपं भक्तया च परया बोधयेद्धरितुष्टये ॥६७॥

है ॥५४॥ जिसने श्रीहरि का सांवत्सर दीप जलाया है, उसने निश्चित रूप से चान्द्रायण आदि कृच्छ्र व्रतों को कर लिया ॥५५॥ जिन लोगों ने भक्ति पूर्वक श्रीहरि की पूजा करके सांवत्सरीय दीपदान किया है, वे महापुरुष धन्य हैं । उन लोगों ने जन्म का फल प्राप्त कर लिया ॥५६॥ जो लोग शलाका से दीप की वत्ती बनाते हैं वे देवताओं को भी दुष्प्राप्य परमपद को प्राप्त करते हैं ॥५७॥ जो लोग श्रीभगवान् के दीपक में अपनी शक्ति के अनुसार तेल तथा बत्ती डालते हैं वे परमगति को प्राप्त कर लेते हैं ॥५८॥ जो लोग श्रीहरि के बूझते हुए दीपक को जलाने में स्वयं असमर्थ होने पर उसकी सूचना दूसरे लोगों को देकर जलवा देते हैं, वे भी उस फल को प्राप्त करते हैं ॥५९॥ जो व्यक्ति भगवान् के दीपक के लिए थोड़ा-थोड़ा तेल माँगकर भगवान् विष्णु के दीपक को जलाने का काम करता है, वह भी उसी फल को प्राप्त करता है ॥६०॥ यदि कोई अधम व्यक्ति भगवान् को जलते हुए दीप को हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक दर्शन करता है तो वह श्रीभगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥६१॥ जो स्वयं भगवान् विष्णु के दीप को जलाने का मन बनाता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक मे जाता है ॥६२॥ इस विषय में लोग इस प्राचीन इतिहास को बतलाते हैं । उसका श्रवण करने वाला मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है॥६३॥ सरस्वती नदी के मनोहर तट पर सिद्धाश्रम था । पूर्वकाल में वहाँ कपिल नामक वेदज्ञ ब्राह्मण रहते थे ॥६४॥ वे दरिद्र थे तथा व्रत एवं उपवास करते रहते थे । वे श्रोत्रिय भी थे । वे भिक्षावृत्ति से अपने परिवार का पालन करते थे । वे भगवान् विष्णु की पूजा करके दीप जलाते थे ॥६५-६६॥ उसी तेल को लेकर अपने घर में भगवान् केशव की पूजा करके श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए परमा भक्ति पूर्वक दीपक

एवं प्रवर्त्तमानस्य कपिलस्य महात्मनः। मार्जारस्तीक्ष्णदंष्ट्रवस्तु मूषकान्भक्षयेत्सदा ॥६८॥
तत्रागच्छति भक्ष्यार्थं मूषकानामहर्निशम्। कृत्वा ध्यानं स भक्ष्यार्थं नित्यं नारायणाग्रतः॥६९॥
भक्षिता बहवस्तेन मूषका द्विजवेश्मनि। ये ये तैलार्थमायान्ति वर्त्यपाहरणाय च ॥७०॥
तांस्तांस्तु भक्षयत्येव मूषकान्ध्यानतत्परः । एवं प्रवर्तमानस्य कदाचित्कालपर्ययात् ॥७१॥
एकादश्यां स कपिलो ब्राह्मणः स्वगृहे शुचिः ।
सोपवासः सपत्नीकः पूजयामास चाच्युतम् ॥७२॥
ततो जागरणं चक्रे स्तुतिनृत्यपरायणः । अर्धरात्रे तु संप्राप्ते निद्रया मोहितो द्विजः ॥७३॥
मार्जारश्चागतस्तत्र तीक्ष्णदंष्ट्रो लघुक्रमः । भक्षयामासनैवेद्यं गृहकोणेस्थितःसदा ॥७४॥
अद्राक्षीन्मूषिकां क्षुद्रां तैलपानार्थमागताम्। मन्दतेजसि दीपे तु वर्त्यपाहरणोचिताम्॥७५॥
समुत्पत्य पदाक्रम्य तदा सा बिलमाविशत् ।
तस्याः पादेन वै वर्त्या दीपः संबोधितो भृशम् ॥७६॥
तैलपात्रं च नमितं सुप्रकाशोऽभवत्तदा ।
ब्राह्मणोऽपि जजागार त्यक्त्वा निद्रां विमोहिनीम् ॥७७॥
मार्जारोऽपि च तां रात्रिमजाग्रच्चाखुभक्षकः ।
ततः प्रभाते विमले कृत्वा नित्यक्रियां द्विजः ॥७८॥
ततश्च पारणं चक्रे विप्रो बन्धुजनैःसह । एवं प्रवर्त्तमानस्य कपिलस्य महात्मनः॥७९॥
बभूवुपुत्रपौत्राश्च धनधान्यमनुत्तमम्। आरोग्यं परमामृद्धिमवाप महतीं श्रियम्॥८०॥
दीपव्रतप्रभावेन कपिलो मोक्षमागतः। संभेद्य मण्डलं पुण्यं सवितुःशशिनस्तथा॥८१॥

जलाते थे ॥६७॥ इस तरह से कपिल के करते समय तीखे दाँत वाली बिल्ली सदा चूहों को खा लेती थी ॥६८॥ वह वहाँ पर चूहों को खाने के लिए दिन-रात आती रहती थी । वह भगवान् के समक्ष भक्ष्य पदार्थ के लिए ध्यान करके उस ब्राह्मण के घर में बहुत से चूहों को खा गयी । जो-जो चूहे तेल पीने के लिए आते थे उन सबों को वह ध्यान पूर्वक देखकर खा जाती थीं । इस तरह करते हुए समयानुसार ॥६९-७१॥ कपिल नामक ब्राह्मण पवित्र होकर अपने घर में पत्नी के साथ एकादशी के दिन श्रीभगवान् की पूजा किए ॥७२॥ उसके बाद स्तुति तथा नृत्य करते हुए वे जागरण किए । आधी रात को उन ब्राह्मण को नींद आ गयी ॥७३॥ उसी समय जल्दी से बिल्ली आयी और घर के कोने में रखे हुए नैवेद्य को खा गयी ॥७४॥ उसने तेल पीने के लिए आयी हुयी एक छोटी चुहिया को देखा । प्रकाश के मन्द पड़ जाने पर वह बत्ती को खा जाना चाहती थी ॥७५॥ वह उछलकर ब्राह्मण के पैर पर चढ़कर बिल में प्रवेश कर गयी । चूहिया के पैर से लगकर वह दीपक तेजी से जलने लगा ॥७६॥ क्योंकि तेल का पात्र झुक गया और उसका अच्छा प्रकाश हो गया । ब्राह्मण भी निद्रा का त्याग करके जग गये ॥७७॥ चूहा खाने वाली बिल्ली भी उस रात जागती ही रह गयी । उसके पश्चात् ब्राह्मण प्रातःकाल होने पर नित्य कृत्य करके ॥७८॥ अपने बान्धवों के साथ पारण किए । इस तरह महात्मा कपिल के करते समय॥७९॥ उसके उत्तम धन-धान्य तथा पुत्र पौत्रों की प्राप्ति हो गयी । वे अरोग्य, श्रेष्ठ समृद्धि तथा महती सम्पत्ति प्राप्त कर लिए ॥८०॥ दीपव्रत के प्रभाव से कपिल मुक्ति प्राप्त कर लिए । उन्होंने सूर्य मण्डल तथा

दीपज्योतिःस्वरूपेण परमात्मनि युक्तवान्। मूषिकापि च कालेन ममार बिलमध्यतः ॥८२॥
विमानवरमासाद्य विष्णुलोकं जगाम सा। मार्जारोऽपि च कालान्ते मृतः स्वर्गं जगाम सः॥८३॥
विमानवरमारुह्य देवगन्धर्वसेवितम्। अप्सरोभिःपरिवृतो विद्याधरगणैर्युतः॥८४॥
स्तूयमानो महातेजा जयशब्दादि मङ्गलैः। स्तूयमानः स वै नागैर्विष्णुलोकं जगाम सः ॥८५॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च।
भुक्त्वा च विपुलान्भोगांस्ततो राजाऽभवद् भुवि ॥८६॥
सुधर्मानाम धर्मात्मा देवब्राह्मणपूजकः। रूपवान्सुभगश्चैव महाबलपराक्रमः ॥८७॥
तस्य प्रियतमा भार्या सर्वलक्षणसंयुता। भर्तृभक्ता तथा शीला नाम्ना सा रूपसुन्दरी ॥८८॥
सर्वासां चैव नारीणां मध्ये सासुभगाऽभवत्।
पुत्राश्च बहवोजातास्तथा दुहितरोघनाः ॥८९॥
एवं विहरतोस्तद्वद्दम्पत्योःप्रीतिपूर्वकम्। आगतःकार्त्तिकोमासो हरिनेत्रावबोधकृत् ॥९०॥
तस्मिन्दीपाःप्रबोध्यन्ते नारायणपरायणैः। कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि व्रतानि नियमास्तथा॥९१॥
क्रियन्ते विष्णुभक्तैश्च संसारभयभीरुभिः। अथ प्रबोधिनीं प्राप्य राजा राज्ञीमथाब्रवीत् ॥९२॥
भद्रे ! प्रबोधिनी पुण्या विष्णोर्नाभिसरोरुहे।
करिष्याम्यद्य पूजो च सोपवासो जितेन्द्रियः ॥९३॥
स्नात्वा च पुष्करे तीर्थे पुण्डरीकाक्षमच्युतम्।
पूजयिष्यामि देवेशं लक्ष्म्या सह जनार्दनम् ॥९४॥

चन्द्रमण्डल दोनों का भेदन करके मोक्ष प्राप्त किया ॥८१॥ दीप ज्योतिः स्वरूप होकर परमात्मा का सायुज्य प्राप्त किए। चूहिया भी कालवशात् बिल के भीतर मर गयी ॥८२॥ वह श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर विष्णुलोक में गयी। विलाव मरकर मृत्यु के बाद स्वर्ग में गया ॥८३॥ वह देवगन्धर्वों से युक्त श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर अप्सराओं से घिरा हुआ तथा विद्याधरों के साथ था ॥८४॥ उस महातेजस्वी की स्तुति की जा रही थी। उसका मङ्गलमय जयघोष किया जा रहा था। नाग उसकी स्तुति कर रहे थे। वह विष्णुलोक में गया ॥८५॥ हजारों करोड़ तथा सैकड़ों करोड़ कल्प तक वहाँ रहकर फिर पृथिवी पर राजा हुआ ॥८६॥ वह देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करने वाला सुधर्मा नामक राजा हुआ। वह सुन्दर रूप वाला तथा महाबल एवं पराक्रम से सम्पन्न राजा हुआ ॥८७॥ उसकी प्रियतमा पत्नी नारी के सभी लक्षणों से युक्त थी। वह अपने पति की भक्ता तथा शीलगुण सम्पन्न थी। उसका नाम रूपसुन्दरी था ॥८८॥ राजा की सभी रानियों में वह सुन्दर थी। उसकी अनेक पुत्र एवं पुत्रियाँ हुयीं ॥८९॥ इस तरह उन दोनों के प्रेमपूर्वक विहार करते हुए ही श्रीहरि को जगाने वाला कार्तिक का महीना आया ॥९०॥ उस महीने में भगवान् नारायण के भक्त दीपकों को जलाते हैं तथा कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों तथा नियमों को करते हैं ॥९१॥ इन सभी व्रतों को संसार के भय से भयभीत पुरुष करते हैं। उसके बाद प्रबोधनी एकादशी के आने पर राजा ने रानी से कहा ॥९२॥ भद्रे ! आज प्रबोधिनी एकादशी है। आज मैं जितेन्द्रिय तथा उपवास रहकर भगवान् विष्णु के नाभिकमल की पूजा करूँगा ॥९३॥ पुष्कर तीर्थ में स्नान करके पुण्डरीकाक्ष भगवान् अच्युत की; जो दुष्टों का विनाश करने वाले हैं; उनकी पूजा करूँगा ॥९४॥ इस तरह से अपने अभिमत

इति सा वाञ्छितं श्रुत्वा भर्तुःप्रियहितेरता। उवाच वचनं गुह्यं भर्तारं चारुहासिनी॥९५॥

रूपसुन्दर्युवाच

ममापि हृदये कामःसमुत्पन्नो नराधिप। रूपसौन्दर्यवाञ्छा च हृदये मम वर्त्तते॥९६॥
पुष्करं प्रथमं तीर्थं गन्तुमिच्छे त्वया सह। ततो राजा तथासार्द्धमागतःपुष्करं तदा॥९७॥
हस्त्यश्वरथवृन्दैश्च समागत्य पुरोहितैः। ततः स्नात्वा तथा ध्यायंस्तर्पयन्पितृदेवताः॥९८॥
पूजयामास देवेशं पुण्डरीकाक्षमच्युतम्। दीपमालाकुले तत्र सर्वतः सुमनोहरे॥९९॥
ददर्श लिखितं तत्र मार्जारं देवतालये। तं दृष्ट्वा प्राकृतं कर्म जन्य स्मृत्वा नृपस्तदा॥
मुखपङ्कजमालोक्य प्रियायाः प्रजहास च ॥१००॥

रूपसुन्दर्युवाच

मम सन्मुखमालोक्य भर्तः! किं स्मितकारणम्।
कथयामास हृष्टात्मा प्राक्तनं कर्मणः फलम्॥१०१॥

राजोवाच

अहमासं पुरा देवि मार्जारो ब्राह्मणालये। भक्षिता मूषकास्तत्र मया शतसहस्त्रशः॥१०२॥
ततो नारायणस्याग्रे दीपः संरक्षितो यतः।
व्याजेनापि मया देवि! प्राप्तं तत्कर्मणः फलम्,
विष्णुलोकमनुप्राप्य राज्यं प्राप्तं मयाऽधुना॥१०३॥

रूपसुन्दर्युवाच

ममापि स्मरणं जातं प्राकृतस्य च जन्मनः। मूषिका चाह मप्यासं क्षुद्राब्राह्मणवेश्मनि॥१०४॥
कार्तिके च प्रवोधिन्यां मन्दीभूते च दीपके। वर्त्यग्राहरणार्थाय निर्गताऽहंतदा बिलात्॥१०५॥

अर्थ को सुनकर अपने पति का कल्याण करने वाली, उस मनोहर मुस्कान वाली ने अपने पति से रहस्यमय बात कहा॥९५॥ **रूप सुन्दरी ने कहा**— राजन्! मेरे भी हृदय में यह कामना उत्पन्न हुयी है कि मैं भी रूप तथा सौन्दर्य प्राप्त करूँ॥९६॥ सर्वप्रथम मैं आपके साथ पुष्कर तीर्थ में जाना चाहती हूँ। उसके पश्चात् उसके साथ राजा पुष्कर आये॥९७॥ हाथी, घोड़े तथा रथ समूह के साथ तथा पुरोहितों के साथ आकर स्नान करके पितरों तथा देवताओं का ध्यान तथा तर्पण राजा ने किया॥९८॥ उन्होंने देवेश्वर पुण्डरीकाक्ष अच्युत की पूजा की। दीपमाला ने सर्वत्र प्रकाशित मनोहर मन्दिर विडाल का चित्र देखकर राजा उस जन्म के प्रकृति का कर्म स्मरण करके तथा अपनी प्रियतमा के मुख कमल को देखकर जोर से हँसे॥९९-१००॥ **रूप सुन्दरी ने कहा**— स्वामिन्! मेरे सामने देखकर आपके मुस्कुराने का कारण क्या है? तो राजा ने प्रसन्न होकर अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल बतलाया॥१०१॥ **राजा ने कहा**— हे देवि! मैं पूर्वजन्म में ब्राह्मण के घर में विडाल था। वहाँ पर मैंने सैकड़ों हजार चूहों को खा लिया॥१०२॥ किन्तु भगवान् नारायण के समक्ष चूकि मैंने दीपक की रक्षा की हे देवि! उसी के व्याज से अपने कर्म का फल प्राप्त किया। भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करने के बाद मैंने इस समय राज्य प्राप्त किया है॥१०३॥ **रूप सुन्दरी ने कहा**— मुझे भी उस प्राकृत जन्म की याद आ गयी है। मैं ब्राह्मण के घर में छोटी चूहिया थी॥१०४॥ कार्तिक मास की प्रबोधिनी एकादशी को जब दीपक का प्रकाश मन्द हो गया

दृष्ट्वा नारायणं देवं पूजितं कुसुमैस्तथा। निद्राभिभूतं विप्रं च वर्त्तिःकृष्टा मया तदा ॥१०६॥
उत्थितस्त्वं यदा तत्र मां ग्रहीतुं कृतक्षणः। दृष्ट्वा त्वां च प्रनष्टाऽहं प्रविष्टा बिलमध्यतः॥१०७॥
विशन्त्या मम पादेन दीपवर्त्तिर्विजृम्भिता। तैलपात्रं च नमितं तेनाहं सुखभागिनी ॥१०८॥
तन्मया राजराजेन्द्र दीपं चैव प्रकाशितम्। इदानीं च मया प्राप्तं रूपलावण्यमुत्तमम् ॥१०९॥
त्वं च भर्त्ता तथा राज्यं पुत्राश्चैवंविधं सुखम्।
दीपप्रबोधनाज्जातं ज्ञानमत्यन्तदुर्लभम् ॥११०॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दीपव्रतमनुत्तमम्। आवां हि परया भक्तया कुर्वश्चैव विशेषतः॥१११॥
तदेतत्कर्मणः प्राप्तं फलं राज्यादिसम्पदः। पूर्वजन्मस्मृतं चापि सर्वपापक्षयस्तथा ॥११२॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विधिमन्त्रादि पूर्वकम्। दीपव्रतं कृतं पुम्भिः पुण्यमाचन्द्रतारकम्॥११३॥
इति श्रुत्वा वचो राजाचक्रे दीपव्रतं तदा। प्रिययो सह देवर्षे सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः ॥११४॥
तस्मिंस्तु पुष्करे तीर्थे कृत्वा दीपव्रतं तुतौ। अवापतुः परां मुक्तिं देवदानवदुर्लभाम्॥११५॥
एतद् दीपस्य माहात्म्यं ये श्रृण्वन्ति नरा भुवि।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ॥११६॥
ये च कुर्वन्ति पुरुषाः स्त्रियो वा भक्तितत्पराः।
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति ब्रह्म सनातनम् ॥११७॥
दीपव्रतमिदं विद्वन्कथितं ते विमुक्तिदम्। सर्वसौख्यप्रदं धन्यं महाव्रतमिदं तव॥११८॥

तो उसकी बाती के कील को खाने के लिए मैं बिल से निकली ॥१०५॥ भगवान् नारायण को पुष्पों से पूजित देखकर तथा सोये हुए ब्राह्मण को देखकर मैंने बात्ती को खींचा ॥१०६॥ जब तुम मुझको पकड़ने के लिए झपटे तो आपको देखकर मैं भाग गयी और बिल में प्रवेश कर गयी ॥१०७॥ भागती हुयी मेरे पैर से दीप की बत्ती बढ़ गयी, तेल का पात्र भी झुक गया उसी के कारण मैं सुखी हूँ ॥१०८॥ हे राजराजेश्वर ! मैंने चूकि दीपक को प्रकाशित कर दिया उसी के फल स्वरूप मैं रूप और लावण्य से सम्पन्न हूँ ॥१०९॥ तुम मेरे पति हुए, राज्य एवं पुत्रों की प्राप्ति हुयी। इस प्रकार का सुख प्राप्त है। दीपक को जलाने के कारण दुर्लभ ज्ञान की प्राप्ति हुयी है ॥११०॥ अतएव हमदोनों प्रयत्न पूर्वक तथा भक्ति पूर्वक सर्वोत्तम दीपव्रत को करेंगे ॥१११॥ इस तरह कर्मों के फल स्वरूप राज्य आदि सम्पत्ति की प्राप्ति हुयी है। मुझे पूर्वजन्म की स्मृति हो गयी तथा सभी पापों का नाश भी हो गया है ॥११२॥ अतएव समस्त प्रयत्नों के द्वारा विधि तथा मन्त्र पूर्वक मनुष्यों द्वारा किया जाने वाला दीप व्रत का पुण्य तब तक रहता है जब तक कि चन्द्रमा और तारे रहते हैं ॥११३॥ हे देवर्षे ! इस बात को सुनकर राजा ने अपनी पत्नी के साथ श्रद्धा पूर्वक अच्छी तरह से दीपव्रत को किया ॥११४॥ उस पुष्कर तीर्थ में वे दोनों दीपव्रत करके देवताओं तथा दानवों के लिए भी दुर्लभ परा मुक्ति को प्राप्त किया ॥११५॥ दीपक के इस माहात्म्य को जो लोग संसार में श्रवण करते हैं वे सभी पापों से मुक्त होकर श्रीहरि के लोक में जाते हैं ॥११६॥ जो स्त्री अथवा पुरुष भक्ति पूर्वक दीपव्रत करते हैं वे सभी पापों से छूटकर सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं॥११७॥ हे विद्वन् ! आपको मैंने यह दीप व्रत सुनाया यह मोक्ष तथा सभी प्रकार के सौख्य को देने

नेत्ररोगा विनश्यन्ति यथा पापप्रभावजाः ।
आधयो व्याधयः सर्वे नश्यन्ते हि कृते क्षणात् ॥११९॥
न दारिद्र्यं न शोकं न च मोहो न च विभ्रमः ।
गृहे लक्ष्मीः समायाति जन्मजन्मनि वाडव ! ॥१२०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे दीपव्रतमाहात्म्यं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

देवदेव ! जगन्नाथ ! भक्तानामभयप्रद । व्रतं ब्रूहि महादेव ! कृपांकृत्वा ममोपरि ॥१॥

श्रीमहादेव उवाच

सार्वभौमः पुरा ह्यासीद्धरिश्चन्द्रो महीपतिः । तस्य तुष्टोऽददाद् ब्रह्मा पुरीं कामदुघां शुभाम् ॥२॥
सर्वरत्नमयीं दिव्यां बालार्कसदृशप्रभाम् । तत्र स्थितो महीपालो सप्तद्वीपां वसुन्धराम्॥३॥
पालयामास धर्मेण पिता पुत्रमिवौरसम् । प्रभूतधनधान्यस्तु पुत्रदौहित्रवान्नृपः ॥४॥
सपालयच्छुभं राज्यं परं विस्मयमागतः । न तादृशमभूत्पूर्वं राज्यं कस्य हि कर्हिचित् ॥५॥

वाला है । यह महाव्रत धन्य है ॥११८॥ पाप के प्रभाव से उत्पन्न नेत्रों के रोग विनष्ट हो जाते हैं । इसके करने से आधियाँ तथा व्याधियाँ विनष्ट हो जाती हैं ॥११९॥ हे ब्राह्मण ! दारिद्र्य, शोक, मोह तथा श्रम ये सब विनष्ट हो जाते हैं तथा प्रत्येक जन्मों में घर में लक्ष्मीजी आती हैं ॥१२०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत दीपव्रत माहात्य वर्णन नामक इकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३१।।

हरिश्चन्द्र तथा सनत्कुमार के संवादान्तर्गत जन्माष्टमी व्रत के विधान का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे देवेश्वर महादेव ! आप अपने भक्तों को अभय प्रदान करने वाले हैं । आप मुझ पर कृपा करके किसी दूसरे व्रत को बतलायें ॥१॥ **श्रीमहादेवजी ने कहा—** प्राचीन काल में एक राजा हरिश्चन्द्र थे उन पर प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उन्हें एक नगरी प्रदान की, वह नगरी सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली थी ॥२। वह सभी रत्नों से युक्त, दिव्य तथा बाल सूर्य की कान्ति के समान कान्ति वाली थी । उस नगरी में रहकर राजा सप्तद्वीपा वसुन्धरा (पृथिवी) का धर्म पूर्वक पालन करते थे । वे प्रजाओं का पालन अपने औरस पुत्र के समान करते थे । वे प्रभूत धन-धान्य से सम्पन्न तथा पुत्रों एव दौहित्रों से सम्पन्न थे ॥३-४॥ वे अपने राज्य का पालन करते समय अत्यन्त विस्मित थे, वे सोचते थे कि इससे पूर्व

न चेदृशं नरैरन्यैर्विमानमधिरोहितम्। कस्येह कर्मणो व्युष्टिर्येनाहं सुरराडिव ॥६॥
इति चिन्तापरो भूत्वा विमानवरमास्थितः । ददर्श पार्थिववरो मेरुं शिखरिणां वरम्॥७॥
तत्रास्ते च महात्मासौ द्वितीय इव भास्करः ।
आसीनं पर्वतवरे शैलपट्टे हिरण्मये ॥८॥
सनत्कुमारं ब्रह्मर्षिं ज्ञानयोगपरायणम्। दृष्ट्वा ह्यवातरद्राजा प्रष्टुकामोऽथ विस्मयम् ॥९॥
ववन्दे चरणौ हृष्टस्तेनापि स च नन्दितः। सुखोपविष्टस्तु नृपः पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ॥
भगवन्दुर्लभा लोके सम्पच्चेयं यथा मम ॥१०॥
कर्मणा केन लभ्येत कश्चाहं पूर्वजन्मनि । तत्त्वं कथय मे सर्वमनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥११॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि पूर्ववृत्तस्य कारणम्। येन कृत्वा विशेषेण तव चानुग्रहोऽभवत् ॥१२॥
त्वमासीः पूर्वजनुषिसुवैश्यःसत्यवाक्छुचिः । स्वं कर्म ते परित्यक्तं ततस्त्यक्तस्तुबान्धवैः ॥१३॥
सत्वं वृत्तिपरिक्षीणो भार्ययानुगतस्तथा। निर्गतः स्वजनांस्त्यक्त्वा परप्रेषणलिप्सया ॥१४॥
न च प्रेषणदो ह्यासीत्काले दुर्भिक्षपीडितः । ततः कदाचिद्गहने सरश्चोत्फुल्लपङ्कजम् ॥१५॥
दृष्ट्वा तत्र कृतो भावो गृह्णीवः पङ्कजानिवै ।
एतावदुक्त्वापुष्पाणि तान्यादाय पदे पदे ॥१६॥
आस्थितौ नगरीं पुण्यां नाम्ना वाराणसीं शुभाम् ।
ततो विक्रीणतः कश्चिन्नैव गृह्णाति पङ्कजम् ॥१७॥

किसी का भी ऐसा राज्य नहीं हुआ ॥५॥ कोई दूसरा पुरुष इस तरह के विमान पर नहीं चढ़ा होगा । यह मेरे किस कर्म का फल है जिसके कारण मैं इन्द्र के समान हूँ ॥६॥ इस तरह से सोचते हुए श्रेष्ठ विमान पर वैठे हुए राजा ने पर्वतों में श्रेष्ठ सुमेरु पर्वत के शिखर को देखा ॥७॥ उस पर दूसरे सूर्य के समान एक महात्मा थे । वे सुवर्णमय शिला के ऊपर पर्वत पर बैठे थे ॥८॥ वे ज्ञानयोगी महर्षि सनत्कुमार थे। उनको देखकर राजा अपने विस्मय के बारे में पूछने पर उस पर्वत पर विमान से उतरे ॥९॥ उन्होंने उनके (सनत्कुमार महर्षि) के चरणों की वन्दना की और महर्षि ने भी उनको अभिनन्दित किया, सुखपूर्वक बैठने के बाद राजा ने मुनि श्रेष्ठ से पूछा, मेरी जैसे सम्पत्ति है वैसी सम्पत्ति लोक में दुर्लभ है ॥१०॥ ऐसी सम्पत्ति किस कर्म से प्राप्त होती है और पूर्वजन्म में मैं कौन था ? यदि मैं आपकी कृपा का पात्र होऊँ तो आप मुझे इन सारी बातों को बतलायें ॥११॥ **सनत्कुमार महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! सुनो आपके पूर्वजन्म के वृतान्त को मैं सुनाता हूँ । उसी कर्म को करके तुम विशेष रूप से कृपा के पात्र बने ॥१२॥ तुम पूर्व जन्म में सत्यवादी एवं पवित्र वैश्य थे । तुमने अपने कर्म का परित्याग कर दिया अतएव बान्धवों ने भी तुम्हारा त्याग कर दिया ॥१३॥ तुम क्षीण वृत्ति होने के कारण अपने बान्धवों का परित्याग करके दूसरे की नौकरी करने की इच्छा से घर से निकल गये ॥१४॥ उस समय अकाल पड़ा था अतएव कोई भी काम देने वाला नहीं मिला । उसके बाद एक समय तुमने वन में कमल से भरे हुए एक सरोवर को देखा और तुमने कहा कि हम दोनों कमलों को ले लें । यह कहकर उन पुष्पों को लेकर पग पैदल चलकर वाराणसी नगरी में आये । वहाँ उन पुष्पों को बेचना चाहे किन्तु किसी ने पुष्पों को नहीं खरीदा ॥१५-१७॥

तन्मठान्निर्गतः कश्चित्तत्रैव प्राङ्गणोस्थितः । तत्रस्थाने प्रविशता श्रुतो वादित्रनिस्वनः ॥१८॥
कस्मिंश्च श्रूयतेह्येष वादित्रस्य च निस्वनः । इतिपृष्टे तदातूर्ये तेनोक्ते प्रस्थितोऽन्तरम्॥१९॥
काशिराजस्तु विख्यात इन्द्रद्युम्नस्तु पार्थिवः ।
तस्यास्ति दुहिता ख्याता नाम्ना चन्द्रावती सती ॥२०॥
उपोषिता महाभागा जयन्तीमष्टमीं शुभाम्। तत्रागतोऽसौ वैश्यस्तु यत्र तिष्ठतिसाशुभा ॥२१॥
संतुष्टचित्तः स तदा हर्षस्तत्रागतो महान् । तत्रस्थानेत्वया दृष्टो देववैतानिको विधिः ॥२२॥
आदित्यसहितो यत्र पूज्यते भगवान्हरिः। तद्भक्तया चत्वयापत्न्यासहपुष्पार्चनं कृतम् ॥२३॥
शैषैस्तु प्रकरस्तत्र कृतः पुष्पमयस्तथा। तं दृष्ट्वा विस्मता साह केनेहाभ्यर्चनं कृतम् ॥२४॥
ज्ञात्वा तत्कर्म तत्सर्वं कृतं संरक्षणं तथा। ततस्तुष्टा तु सा तुभ्यं ददौ वित्तं वहुस्वयम् ॥२५॥
त्वया वित्तं नोगृहीतंभोजनायानुमन्त्रितः । न गृहीतं भोजनं च न च वित्तं त्वया तदा ॥२६॥
आदित्यो विष्णुसंयुक्तः पूजितोऽसौ यथाविधि ।
ततः प्रभातसमये रक्षमाणस्तया सदा ॥२७॥
विश्रम्भयित्वा तान्सर्वान्निर्गतोऽसि यथेच्छया ।
तदेतदन्यजनुषि सुकृतं चार्जितं त्वया ॥२८॥
पञ्चत्वं च त्वया प्राप्तं स्वीयकर्मानुयोगतः । तेन पुण्येन महता विमानमागमत्तदा ॥२९॥
तत्फलं भुज्यते भूप ! पूर्वजन्मकृतं च यत् ॥३०॥

हरिश्चन्द्र उवाच

केनैव च विधानेन कस्मिन्मासे च सा तिथिः ।
कर्त्तव्या तन्ममाचक्ष्व अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥३१॥

उस गढ से निकलकर तुम उसके आँगन में ठहर गये । उस स्थान में जाते समय तुमने वाद्य ध्वनि को सुना॥१८॥ यह कहाँ पर वादित्र की ध्वनि सुनायी देती है । यह किसी से पूछने पर किसी ने उस ध्वनि के विषय में बतलाया और तुम मठ के भीतर चले गये । काशी के विख्यात राजा इन्द्रद्युम्न थे । उनकी पुत्री का नाम चन्द्रावती था ॥१९-२०॥ वह जयन्ती अष्टमी का व्रत की थी । वहीं पर वह वैश्य गया जहाँ पर चन्द्रावती थी ॥२१॥ तुम्हारा चित्त सन्तुष्ट था और तुम प्रसन्न हो गये । वहाँ पर तुमने श्रीभगवान् की पूजा विधि को देखा ॥२२॥ वहाँ पर सूर्यनारायण के साथ श्रीभगवान् की पूजा की जा रही थी । तुमने तथा तुम्हारी पत्नी ने भक्ति पूर्वक पुष्पों से अर्चना किया ॥२४॥ उस जयन्ती व्रत विषयक कर्म के विषय में सारी बातें जानकर तुमने उसका संरक्षण किया । उससे प्रसन्न होकर चन्द्रावती ने तुम्हें बहुत अधिक सम्पत्ति प्रदान किया । किन्तु तुमने न तो भोजन किया और न उस सम्पत्ति को ही लिया यद्यपि राजकुमारी ने तुमको भोजन के लिए निमन्त्रित किया था ॥२५-२६॥ तुमने भगवान् विष्णु के साथ सूर्य की विधि पूर्वक पूजा की उसके वाद प्रात:काल राजकुमारी के द्वारा रक्षित होते हुए ॥२७॥ सबों को विश्वास दिलाकर वहाँ से चल दिए । इसी पुण्य को तुमने पूर्व जन्म में अर्जित किया है ॥२८॥ कर्मों के अनुसार तुम्हारी मृत्यु हो गयी उस कर्म के फल स्वरूप तुम्हारे पास विमान आया ॥२९॥ राजन् ! तुमने जो पूर्वजन्म में

सनत्कुमार उवाच

शृणुष्वावहितो राजन्कथ्यमानं मया तव। श्रावणस्य तु मासस्य कृष्णाष्टम्यां नराधिप !॥३२॥

रोहिणी यदि लभ्येत जयन्ती नाम सा तिथिः ।
भूयो भूयो महाराज ! भवेज्जन्मनि कारणम् ॥३३॥

विधानमस्या वक्ष्यामि यथोक्तंब्रह्मणा मम । यत्कृत्वामुक्तपापस्तुविष्णुलोकंप्रगच्छति ॥३४॥

उपोषितस्ततः कृत्वा स्नानं कृष्णतिलैः सह ।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥३५॥

वज्रमौक्तिकवैडूर्यपुष्परागेन्द्रनीलकम् । पञ्चरत्नं प्रशस्तं तु इति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥३६॥
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं सौवर्णं लक्षणान्वितम्। सौवर्णां विन्यसेत्तत्र यशोदां नन्दगेहिनीम् ॥३७॥
प्रददानां तु पुत्रस्य स्तनं वै विस्मिताननाम्। पिबमानं स्तनं मातुरपरं पाणिनास्पृशत् ॥३८॥
आलोक्यमातरं प्रेम्णा सुखयन्तं मुहुर्मुहुः । सौवर्णं कारयेद्देवं यावच्छक्तिश्च विद्यते ॥३९॥
द्विनिष्कमात्रं कर्तव्यं यदि शक्तिश्च विद्यते । त्रिलोहेनैव कर्तव्यं सौवर्णेनाथ वा पुनः ॥४०॥

तद्वच्च रोहिणीं कुर्यात्सौवर्णीं राजतः शशी ।
अङ्गुष्ठमात्रस्तु शशी रोहिणी चतुरङ्गुला ॥४१॥
कर्णयोः कुण्डले दद्यात्कण्ठाभरणकं गले ।
एवं कृत्वा तु गोविन्दं मात्रा सार्धं जगत्पतिम् ॥४२॥

कर्म किया था उसी का फल तुम भोग रहे हो ॥३०॥ **हरिश्चन्द्र ने कहा—** वह किस महीने में होता है? उसकी विधि क्या है ? यदि मैं आपका अनुग्रह का पात्र हूँ तो आप मुझे इस सारी बातों को बतलाये । **महर्षि सनत्कुमार ने कहा—** राजन् ! मैं आपको बतलाता हूँ सावधानी पूर्वक आप मेरी बात सुनें । राजन्! श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को ॥३१-३२॥ यदि रोहिणी नक्षत्र हो तो वह जयन्ती तिथि होती है । हे महाराज ! वह तिथि अनेक जन्मों के पुण्यों के फलस्वरूप प्राप्त होती है ॥३३॥ उसका विधान जैसा ब्रह्माजी ने बतलाया है, उसे मैं आपको बतलाता हूँ । उस व्रत को करने वाला पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में जाता है ॥३४॥ वह उपवास करने के निमित्त काली तिलों को जल में मिलाकर उससे स्नान करें । उसके बाद निश्छिद्र नवीन घट की स्थापना करे । उसमें पञ्चरत्न डाल दे ॥३५॥ हीरा, मोती, वैडूर्य, पुष्पराग तथा इन्द्र नील ये ही प्रशस्त पञ्चरत्न हैं यह महर्षि कात्यायन ने कहा है ॥३६॥ उसके ऊपर लक्षण सम्पन्न सुवर्ण का पात्र रखे । उसके ऊपर नन्दजी की पत्नी यशोदाजी की सुवर्ण मूर्ति स्थापित करे ॥३७॥ आश्चर्यित होकर यशोदजी अपने पुत्र के मुख में स्तन डालकर उन्हें पिला रही है और भगवान् कृष्ण उसे पीते हुए अपना हाथ माता के दूसरे स्तन पर रखे हुए हैं ॥३८॥ वे अपनी माता को प्रेम पूर्वक देखते हुए सुख प्रदान कर रहे हैं । इस तरह की सुवर्ण की मूर्ति अपनी शक्ति के अनुसार बनवाना चाहिए॥३९॥ यदि शक्ति हो तो दो निष्क की वह मूर्ति बनानी चाहिए । उस मूर्ति को त्रिलोह अथवा सुवर्ण से बनवाना चाहिए ॥४०॥ उसी तरह की रोहिणी की भी मूर्ति बनवानी चाहिए और चन्द्रमा की मूर्ति चाँदी की बनवाये। चन्द्रमा की मूर्ति अङ्गुष्ठ परिमाण की होनी चाहिए और रोहिणी की मूर्ति चार अङ्गुल की होनी

क्षीरादिस्तनपनं कृत्वा चन्दनेनानुलेपयेत्। श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं पुष्पमालोपशोभितम् ॥४३॥
नैवेद्यैर्विविधैर्भक्षैः फलैर्नानाविधैरपि । दीपं च कारयेत्तत्र पुष्पमण्डपशोभितम् ॥४४॥
गीतं नृत्यं च वाद्यं चकारयेद्भक्तिमान्बुधैः । एवं कृत्वा विधानं तु यथाविभवसारतः ॥
गुरुं संपूजयेत्पश्चात्पूजां तत्र समापयेत् ॥४५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे जन्माष्टमीव्रतं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

तैंतिसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

दृष्ट्वा शतक्रतुं सिद्धं समाप्तवरदक्षिणम्। मघवा जातसङ्कल्पः पर्यपृच्छद् बृहस्पतिम् ॥१॥
भगवन्केन दानेन सर्वतः सुखमेधते । यदक्षयं महार्घं च तन्मे ब्रूहि महातपः ॥२॥
एवमिन्द्रेण चोऽक्तोसौ देवदेवः पुरोहितः । प्रहस्य तं महाप्राज्ञो बृहस्पतिरूवाचह ॥३॥
हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं च वासव ! । एतत्प्रयच्छमानस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥
सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिरत्नं च वासव ! । सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति ॥५॥

चाहिए ॥४१॥ भगवान् के कानों के कुण्डल और गले में हार लगाना चाहिए । माता यशोदा के साथ जगत् के स्वामी श्रीभगवान् की इस प्रकार की मूर्ति बनवाकर ॥४२॥ उन्हे दुग्ध आदि से स्नान कराये तथा उनके शरीर में चन्दन का अङ्गराग लगाये । उनके ऊपर दो श्वेत वस्त्र चढाये और उनको पुष्पों की माला पहनाये । अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों तथा अनेक प्रकार के फलों का नैवेद्य समर्पित करे सुन्दर पुष्प मण्डप में माला लगाये ॥४३-४४॥ भक्तिपूर्वक विद्वानों को चाहिए कि वे गीत, नृत्य और वाद्य करायें । अपने विभव के अनुसार इस प्रकार से जयन्ती अष्टमी का विधान करें । अन्त में आचार्य की पूजा करके, पूजा को समाप्त करें ॥४५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत जन्माष्टमी व्रत वर्णन नामक बत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३२॥

पृथिवी दान तथा वस्त्र दान का माहात्म्य

महादेवजी ने कहा— इन्द्र का जब सौवाँ अश्वमेध याग श्रेष्ठ दक्षिणा के साथ समाप्त हो गया तो इन्द्र का सङ्कल्प पूरा हो गया, उन्होंने आचार्य बृहस्पति से पूछा ॥१॥ हे भगवन् ! किस प्रकार का दान करने से हर प्रकार के सुख की समृद्धि होती है । जो दान अक्षय और महार्घ हो उसको आप मुझे बतलायें॥२॥ इस तरह से इन्द्र के द्वारा पूछे जाने पर देवाराध्य बृहस्पति ने जोर से हँसकर कहा ॥३॥

फालकृष्टां महीं दत्त्वा सबीजां सस्यमालिनीम् ।
यावत्सूर्यः कृतालोकस्तावत्स्वर्गे महीयते ॥६॥

यत्किंचित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्शितः । अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ॥७॥
दशहस्तेन दण्डोऽत्र त्रिंशद्दण्डानिवर्तनम् । दश तान्येव गोचर्म ब्रह्मगोचर्मलक्षणम् ॥८॥
सवृषं गोसहस्त्रं तु यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम् । बालवत्सप्रसूतानां तद्गोचर्म इति स्मृतम् ॥९॥

विप्राय दद्याच्च गुणान्विताय तपोयुताय प्रजितेन्द्रियाय ।
यावन्मही तिष्ठति सागरान्ता तावत्फलं तस्य भवेदनन्तम् ॥१०॥

यथाऽप्सु पतितः शक्रतैलबिन्दुः प्रसर्पति । एवं कृतं भूमिदानं सस्ये सस्ये प्रसर्पति ॥११॥
यथा बीजानि रोहन्ति प्रचीर्णानि महीतले । एवं कामान्प्ररोहन्ति भूमिदानसमन्विताः ॥१२॥

अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदो रूपवान्भवेत् ।
स नरः सर्वदो भूयो यो ददाति वसुन्धराम् ॥१३॥

यथा गौर्भरते वत्सं क्षीरमुत्सृज्य क्षीरिणी । एवं दत्ता सहस्राक्षः भूमिर्भरति भूमिदम् ॥१४॥
शङ्खो भद्रासनं छत्रं वराश्ववरवारणाः । भूमिदानस्य पुण्यस्य फलं स्वर्गः पुरन्दर ! ॥१५॥
आदित्यो वरुणो वह्निर्ब्रह्मासोमो हुताशनः । शूलपाणिश्च भगवानभिनन्दन्ति भूमिदम् ॥१६॥
आस्फोटयन्ति पितरो वर्णयन्ति पितामहाः । भूमिदाता कुले जातः स नस्त्राता भविष्यति ॥१७॥

सुवर्ण, गौ तथा भूमि का दान करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥४॥ हे इन्द्र ! सोना, चाँदी, वस्त्र तथा मणि इन सबों को उसे देना चाहिए जिसको भूमि का दान दिया जाता है ॥५॥ जोती हुयी जिसमें फसल लहरा रही हो ऐसी पृथिवी का दान करने से जब तक सूर्य का प्रकाश फैलता है तब तक दाता स्वर्ग लोक में पूजित होता है ॥६॥ वृत्ति के अभाव में मनुष्य जो भी पाप करता है, वह गोचर्म प्रमाण वाली भूमि का दान करके शुद्ध हो जाता है ॥७॥ दश हाथ का दण्ड होता है । तीस दण्ड का निवर्तन होता है । दश निर्वतन का एक गोचर्म होता है, यही ब्रह्मगोचर्म का लक्ष । है ॥८॥ जहाँ पर साँड़ के साथ एक हजार छोटे बछड़ों वाली गायें अच्छी तरह से बैठ सकें वह भूमि गोचर्म प्रमाण वाली होती है ॥९॥ यदि वह दान, गुणी, तपस्वी तथा जितेन्द्रिय ब्राह्मण को दिया जाय तो जबतक सागर पर्यन्त की भूमि बनी रहती है तब तक उसका अनन्त फल होता है ॥१०॥ हे इन्द्र ! जैसे पानी में गिरा हुआ तेल का बूंद चारो ओर फैल जाता है उसी तरह भूमिदान का फल प्रत्येक सस्य सम्पत्ति में फैल जाता है ॥११॥ जैसे पृथिवी में बोये गये बीज बढ़ते रहते हैं, उसी तरह भूमि दान से युक्त काम्य वस्तुओं के रूप में बढ़ते रहते हैं ॥१२॥ अन्न दान करने वाले सदा सुखी रहते हैं और वस्त्र दान करने वाला रूपवान् होते हैं । भूमिदान करने वाले मनुष्य को सब कुछ दान करने का फल प्राप्त होता है ॥१३॥ जिस तरह दूध देने वाली गौ अपने बछड़े का पालन करती है । हे इन्द्र ! इसी तरह दी गयी भूमि, भूमिदान करने वाले का भरण-पोषण करती है ॥१४॥ इन्द्र ! शङ्ख, भद्रासन, छत्र, श्रेष्ठ घोड़े, हाथी तथा स्वर्ग की प्राप्ति ये सभी भूमिदान जन्य पुण्य के फल हैं ॥१५॥ भूमिदान करने वाले का सूर्य, वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, सोम, हुताशन तथा भगवान् शिव अभिनन्दन करते हैं ॥१६॥ उसके पितृगण प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, पितामह गण उसकी प्रशंसा यह कहकर करते हैं कि मेरे वंश में भूमिदाता उत्पन्न हुआ है वह हमलोगों की रक्षा

त्रीण्याहुरति दानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ।
नरकादुद्धरन्त्येते जपवापनदोहनात् ॥१८॥
दुर्गतिं तारयन्त्येते विद्वद्भिर्विप्रधारणैः । प्रावृता वस्त्रदा यान्ति नग्ना यान्ति त्ववस्त्रदा ॥१९॥
तृप्ता यान्त्यनन्नदातारः क्षुधिता यान्त्यनन्नदाः ।
काङ्क्षन्ति पितरः सर्वे नरकाद्भयभीरवः ॥२०॥
गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥२१॥
यजेत वाश्वमेधे न नीलंवा वृषमुत्सृजेत् । लोहितो यस्तु वर्णेनपुच्छाग्रे यस्तुः पाण्डुरः ॥२२॥
श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ।
नीलपाण्डुरलाङ्गूलस्तोयमुद्धरते तु यः ॥२३॥
षष्टि वर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः । यच्च शृङ्गगतं पङ्कंकुलं तिष्ठति चोद्धृतम् ॥२४॥
पितरस्तस्य चाश्नन्ति सोमलोकं महाद्युतिम् । आसीद्राज्ञो दिलीपस्य नृगस्य नहुषस्य च ॥२५॥
अन्येषां तु नरेन्द्राणां पुनरन्यो न गच्छति । बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः ॥२६॥
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ।
ब्रह्मघ्नो वाथ स्त्रीहन्ता बालघ्नः पतितोऽथवा ॥२७॥
गवां शतसहस्राणि हन्ता तत्तस्य दुष्कृतम् । स्वदत्तां परदत्तां वा योहरेत्तु वसुन्धराम् ॥२८॥
स च विष्ठाकृमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते ।
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः ॥२९॥

करेगा॥१७॥ गौ, पृथिवी तथा विद्या इन तीनों का दान अतिदान कहलाता है । ये तीनो क्रमशः जप करने से, बोने से तथा दूहने से नरक से उद्धार करते हैं ॥१८॥ ये तीनों विद्वान ब्राह्मण के द्वारा दान ग्रहण किये जाने पर दुर्गति से बचाते है । वस्त्रदान करने वाले वस्त्र से आच्छादित मार्ग से परलोक में जाते हैं तथा जो वस्त्र दान नहीं करते हैं वे नङ्गे पाँव जाते हैं ॥१९॥ अन्न दान करने वाले तृप्त होकर जाते हैं, जो अन्न दान नहीं करते हैं वे भूखे जाते हैं, नरक के भय से भयभीत रहने वाले पितृगण चाहते हैं ॥२०॥ जो पुत्र गया जायेगा वही हमलोगों को तार देगा । अतएव अनेक पुत्रों की प्राप्ति की कामना करनी चाहिए हो सकता है कि उन सबों मे से कोई पुत्र गया जाय ॥२१॥ अथवा अश्वमेध याग करे, या नील वृषभ छोड़े । जिसका रङ्ग लाल हो, पुछ का अग्रभाग पीला हो ॥२२। खुर और सीङ्ग उजले हों, उस सांड को नील सांड कहते हैं । नीला, पीला पूंछ वाला वृष जो अपनी पूंछ से पानी उछालता है ॥२३॥ उससे साठ हजार वर्षो तक पितरों की तृप्ति बनी रहती है । वह अपनी सींग से मिट्टी उखाड़ता है उससे पितृगण महाकान्ति सम्पन्न सोम लोक के प्रकाश का उपभोग करते हैं । यह पृथिवी पहले दिलीप, नृग तथा नहुष आदि राजाओं के अधिकार में थी वह पुनः दूसरे राजाओं के अधिकार में चली गयी । सगर आदि अनेक राजाओं ने पृथिवी का दान किया ॥२४-२६॥ पृथिवी जब-जब जिस राजा के अधीन हुयी उस समय उसी राजा को फल मिलता है ब्रह्मघाती, स्त्रीहन्ता, बालघ्न अथवा पतित तथा सैकड़ों एवं हजारों गायों को मारने का जो पाप होता है वह पृथिवी के दान से विनष्ट हो जाता है । जो अपने से दी हुयी

प्रहर्ता चानुमन्ता च तावद्वै नरकं व्रजेत्। भूमिदाद्भूमिहर्तुश्च नापरः पुण्यपापवान् ॥३०॥
ऊर्ध्वाधस्तौ च तिष्ठेते यावदाभूतसंप्लवम् ॥३१॥

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुतास्तु गावः ।
तेषामनन्तं फलमश्नुवीत यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात् ॥३२॥
भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति ।
उभो तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥३३॥

अन्यायेन हृता भूमिर्यैर्नरैरपहारिता । हसन्तो हारयन्तश्च हन्युस्ते सप्तमं कुलम् ॥३४॥
हरेद्धारयते यस्तु मन्दबुद्धिस्तमोवृतः। स बद्धो वारुणैः पाशैस्तिर्यग्योनिषु जायते ॥३५॥
अश्रुभिः पतितैःस्तेषां दानानामवकीर्तनम्। ब्राह्मणस्य हृते क्षेत्रे हतं त्रिपुरुषं कुलम् ॥३६॥
वापीकूपसहस्त्रेण अश्वमेधशतेन च । गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुध्यति ॥३७॥
कृतं दत्तं तपोऽधीतं यत्किंचिद्धर्मसंस्थितम्। अर्धाङ्गुलस्य सीमाया हरणेन प्रणश्यति॥३८॥
गोतीर्थं ग्रामरथ्यां च श्मशानग्राममेव च। संपीड्य नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥३९॥
पञ्चकन्यानृते हन्ति दश हन्ति गवानृते । शतमश्वानृते हन्ति सहस्त्रं पुरुषानृते॥४०॥
हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् । सर्वं भूम्यनृते हन्ति मास्मभूम्यनृतं वद॥४१॥

अथवा दूसरे द्वारा दी गयी पृथिवी का हरण कर लेता है, वह अपने पितरों के साथ विष्ठा का कृमि होता है । भूमिदान करने वाला मनुष्य साठ हजार वर्षो तक स्वर्ग में निवास करता है ॥२७-२९॥ और भूमि का हरण करने वाला अथवा भूमि हरण का अनुमोदन करने वाला उतने ही समय तक नरक में रहता है। भूमिदाता से बड़ा कोई पुण्यवान नहीं होता है और भूमि का अपहरण करने वाले से बड़ा कोई पापी नहीं होता है ॥३०॥ भूमिदाता स्वर्ग लोक में और भूमिहर्ता नरक में तब तक रहते हैं, जब तक महाप्रलय नहीं होता है ॥३१॥ सुवर्ण अग्नि का प्रथम पुत्र है, पृथिवी भगवान् विष्णु की पत्नी हैं और गायें सूर्य की सन्तान हैं । जो सुवर्ण की गौ और सुवर्ण की पृथिवी का दान करता है वह अनन्त फल को प्राप्त करता है ॥३२॥ जो भूमि का दान लेता है तथा जो भूमि का दान देता है । ये दोनों पुण्य कमी हैं और स्वर्ग में जाते हैं ॥३३॥ जो लोग अन्याय पूर्वक किसी की भूमि का अपहरण कर लेते हैं और जो लोग अपहरण करवाते हैं, वे हरण करने वाले और हरण करवाने वाले दोनों प्रकार के लोगों को अपने सात पीढ़ी के पूर्वजों को मारने का पाप लगता है ॥३४॥ जो मन्दबुद्धि वाले अज्ञानी श्रीहरि की सम्पत्ति का अपहरण करते हैं, वह वारुण पाशों से बद्ध होकर पशु पक्षियों में जन्म लेता है ॥३५॥ उन सबों के गिरे हुए आंसुओ से किए हुए दान का नाश होता है । ब्राह्मण के खेत का अपहरण करने पर तीन पीढ़ी का नाश होता है ॥३६॥ हजारों बावली और कुओं को बनवाने से, सैकड़ों अश्वमेध याग करने से तथा करोड़ों गायों का दान करने से भी भूमि हरण जन्य पाप का नाश नहीं होता है ॥३७॥ आधा अङ्गुल भी भूमि की सीमा का हरण करने से समस्त किए हुए, दानों तपस्याओं, अध्ययनों से उत्पन्न समस्त पुण्यों का नाश हो जाता है ॥३८॥ गोतीर्थ (गोचर भूमि) गाँव की गली तथा गाँव के श्मशान का थोड़ा सा भी अंश ले लेने वाला तब तक नरक में निवास करता है जब तक कि महाप्रयल नहीं हो जाता है ॥३९॥ झूठ बोलने पर पाञ्च कन्याओं के वध का पाप लगता है, गौ के विषय में झूठ बोलने पर दश कन्याओं के वध का

ब्रह्मस्वे नोरतिं कुर्यात्प्राणैः कण्ठगतैरपि । अग्निदग्धाः प्ररोहन्ति ब्रह्मदग्धो न रोहति ॥४२॥
अग्निदग्धाः प्ररोहन्ति सूर्यदग्धास्तथैव च । राजदण्डहताश्चैव ब्रह्मशापहता हताः ॥४३॥
ब्रह्मस्वेन च पुष्टानि अङ्गानि च मुहुर्मुहुः । कार्यकाले विशीर्यन्ते सिकताभित्तयो यथा ॥४४॥
ब्रह्मस्वहरणं कुर्वन्नरो यातिह रौरवम् । न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥४५॥
विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् । लोहचूर्णं चाश्मचूर्णं विषं संजरयेन्नरः ॥४६॥
ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति । ब्रह्मस्वेन तु यत्सौख्यं देवस्वेन त या रतिः ॥४७॥
तद्धनं कुलनाशाय भवत्यात्मविनाशनम् । ब्रह्मस्वं ब्रह्महत्या च दरिद्रस्य तु यद्धनम् ॥४८॥
गुरुमित्रहिरण्यं च स्वर्गस्थमपि पीडयेत् । श्रोत्रियाय कुलीनाय दरिद्राय च वासव ! ॥४९॥
संतुष्टाय विनीताय सर्वस्वसहिताय च । वेदाभ्यासतपपोज्ञानेन्द्रियसंयमशालिने ॥५०॥
ईदृशाय सुरश्रेष्ठ यद्दत्तं हि तदक्षयम् । आमपात्रे यथान्यस्तं क्षीरं दधिघृतं मधु ॥५१॥
भिनत्ति पात्रं दौर्बल्यात्र च पात्रं विनश्यति । एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमन्नं महीं तिलान् ॥५२॥
अविद्वान्प्रतिगृह्णातिभस्मीभवति काष्ठवत् । यस्तडागं नवंकुर्यात्पुराणं वापि खानयेत् ॥५३॥
सर्वं कुलं समुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते । वापीकूपतडागानि उद्यानप्रभवाणि च ॥५४॥

पाप लगता है । घोड़ों के विषय में झूठ बोलने पर हजार कन्याओं के वध का पाप लगता है ॥४०॥ जो सुवर्ण के लिए झूठ बोलता है उसको उत्पन्न तथा अनुत्पन्न सभी कन्याओं के वध का पाप लगता है । भूमि के लिए झूठ बोलने वाले को सबों के मारने का पाप लगता है अतएव भूमि के लिए कभी भी झूठ न बोले ॥४१॥ प्राणसङ्कटापन्न हो जाने पर ब्राह्मण की सम्पत्ति को न ले, क्योंकि अग्नि से जला हुआ तो फिर उत्पन्न होता है किन्तु ब्राह्मण के शाप से दाध हुआ कभी नहीं पनपता है ॥४२॥ अग्नि से दग्ध हुए पनपते हैं, सूर्य से दग्ध हुए भी पुनः पनपते हैं, राजदण्ड से मारे गये भी पनपते हैं किन्तु ब्रह्मशाप से मारे गये का तो नाश ही हो जाता है ॥४३॥ ब्राह्मण की बार-बार सम्पत्ति खाने से जो अङ्ग पुष्ट हुए रहते हैं, वे समय आने पर उसी तरह विनष्ट हो जाते हैं जैसे बालू से निर्मित दीवार ढह जाते हैं ॥४४॥ ब्राह्मण की सम्पत्ति का अपहरण करने वाला मनुष्य रौरव नरक में जाता है । वस्तुतः विष नहीं ब्राह्मण की सम्पत्ति ही वास्तविक विष है ॥४५॥ विष तो केवल विष खाने वाले को मारता है किन्तु ब्राह्मण की सम्पत्ति तो पुत्रों तथा पौत्रों को भी मार देती है । मनुष्य लोहे के चूर्ण को, पत्थर के चूर्ण को तथा विष को मनुष्य पचा सकता है ॥४६॥ त्रैलोक्य में कोई भी ब्राह्मण की सम्पत्ति को नहीं पचा सकता है । ब्राह्मण की सम्पत्ति से जो सुख मिलता है तथा देव सम्पत्ति से होने वाला प्रेम ॥४७॥ ये दोनों धन अपहर्ता के वंश तथा आत्मा का विनाश कर देते हैं । ब्राह्मण की सम्पत्ति, ब्रह्महत्या, दरिद्र का धन, गुरु तथा मित्र का सोना ये सभी यदि स्वर्ग में भी रहें तो दुःख देते हैं । श्रोत्रिय (वेदज्ञ) कुलीन, निर्धन, सन्तुष्ट रहने वाले, विनम्र सर्वस्व सम्पन्न, वेदाभ्यास तथा तपस्या करने वाले, अपनी ज्ञानेन्द्रियों को संयमित करने वाले ब्राह्मण को जो दान दिया जाता है, वह अक्षय पुण्यप्रद होता है । जैसे कच्चे घड़े में रखे हुए दूध, दही, घी तथा मधु ॥४८-५१॥ ये सब पात्र को फोड़ देते है क्योंकि वह पात्र कमजोर होता है वे पात्र को विनष्ट नहीं करते हैं, उसी तरह गौ, सुवर्ण, वस्त्र तथा अन्न भूमि तथा तिल का दान लेने वाला मूर्ख ब्राह्मण काष्ठ के समान भस्म हो जाता है । जो नवीन सरोवर बनवाता है अथवा पुराने सरोवर को खनवाता है ॥५२-५३॥

पुनर्नीतानि संस्कारं ददते मौक्तिकं फलम्। निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव ॥५५॥
स दुर्गं विषमं कृच्छ्रं न कदाचिदवाप्नुयात्। एकाहं तु स्थितं तोयंपृथिव्यां देवसत्तम॥५६॥
कुलानि तारयेत्तस्य सप्तपूर्वापराण्यपि। दीपालोकप्रदानेन वपुष्मान्स भवेन्नरः॥५७॥
दक्षिणायाः प्रदानेन स्मृतिं मेधां न विन्दति ।
कृत्वाऽपि पातकं कर्म यो दद्यादनुसन्धिने ॥५८॥
ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापैर्हिलिप्यते। भूमिर्गावस्तथा दासः प्रसह्य प्रहृता यदा ॥५९॥
न निवेदयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम्। उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव॥६०॥
मोहाच्चरति विघ्नं यः स मृतो जायते कृमिः ।
धनं फलति दानेन जीवितं जीवरक्षणात् ॥६१॥
रूपमैश्वर्यमारोग्यमहिंसाफलमश्नुते । फलमूलाशनात्पूजां स्वर्गः सत्येन लभ्यते ॥६२॥
प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वत्र सुखमश्नुते। सुखाढ्यः शक्रदीक्षायां सुगामी च तृणाशनः॥६३॥
रूपी त्रिषवणस्नायी वायुंपीत्वाक्रतुं लभेत्। नित्यस्नायी भवेद्दक्षः सन्ध्यावेदजपान्वितः॥६४॥
अहिंस्रो यातिवै राज्यं नाकपृष्ठमनाशकम्। अग्निप्रवेशी नियतं ब्रह्मलोके महीयते ॥६५॥
रसानां प्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्च विन्दति। नाके चिरं सवसति उपवाची च यो भवेत् ॥६६॥

वह अपने सम्पूर्ण वंश का उद्धार करके स्वर्गलोक में पूजित होता है। बावली, कूप, सरोवर तथा उद्यान के फल ॥५४॥ इन सबों का पुनः संस्कार करने से मोती के समान फल मिलता हैं। हे इन्द्र ! जिसके सरोवर में गर्मी के दिनों में पानी रहता है ॥५५॥ वह कभी भी कठोर विपत्ति में नहीं पड़ता है। हे देवश्रेष्ठ! जिस सरोवर में एक दिन भी जल रहता है वह अपने से पहले के तथा बाद के सात-सात पुरुषों को भी तार देता है। दीपक का प्रकाश कराने वाला मनुष्य सुन्दर शरीर वाला होता है ॥५६॥ दक्षिणा देने वाला मनुष्य स्मृति तथा मेघा को प्राप्त करता है। चाहे वह पाप करके ही विद्वान् ब्राह्मण को दक्षिणा क्यों न दिया हो ॥५८॥ विशेष रूप से ब्राह्मण को दक्षिणा देने वाले को पाप नहीं लगता है। बल पूर्वक भूमि, गौ तथा दास का अपहरण करने वाले उन सबो को यदि नहीं लौटाता है तो उसको ब्रह्मघाती कहा गया है। हे इन्द्र ! होने वाले विवाह, यज्ञ तथा दान में यदि कोई विघ्न उपस्थित करता है तो वह मरकर कृमि होता है। दान के द्वारा धन बढ़ता है तथा जीव की रक्षा के द्वारा जीवन बढ़ता है ॥६१॥ रूप, ऐश्वर्य, आरोग्य ये सभी अहिंसा के फल हैं। फल तथा मूल का भोजन करने से पूजा होती है। सत्य बोलने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। प्रयोपवेशन (मरणान्त उपवास) करने से राज्य की प्राप्ति होती है और वह सर्वत्र सुख प्राप्त करता है। इन्द्र की दीक्षा में प्रविष्ट होने वाला सुख से परिपूर्ण रहता है तथा तृण खाने वाला सुन्दर पत्नी को प्राप्त करता है ॥६२-६३॥ तीनों संध्यायओं में स्नान करने वाला रूपवान् होता है। वायु पीने वाला यज्ञ के फल को प्राप्त करता है, नित्य स्नान करने वाला चतुर होता है। संध्या तथा वेदाध्ययन तथा जप करने वाला भी चतुर होता है ॥६४॥ अहिंसक राज्य प्राप्त करता है। उपवास करने वाला स्वर्ग में जाता है। अग्नि में प्रवेश करने वाला निश्चित रूप से ब्रह्मलोक में पूजित होता है॥६५॥ रसों को एकत्रित करने वाला पशुओं और पुत्रों को प्राप्त करता है। जो उपवास करता है वह

सततं भूमिशायी यः स लभेदीप्सितां गतिम् ।
वीराशनं वीरशयं वीरस्थानमुपासकः ॥६७॥
अक्षयास्तस्य लोकाः स्युः सर्वकामगमास्तथा ।
उपवासं च दीक्षां च अभिषेकं च वासव ! ॥६८॥
कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते । पावनं चरते धर्मं स्वर्गलोके महीयते ॥६९॥
बृहस्पतिमतं पुण्यं ये पठन्ति द्विजोत्तमाः । तेषां चत्वारि वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ॥७०॥

नारद उवाच

इतीन्द्राय बृहस्पतिप्रणीतं धर्मशास्त्रकम् । मह्यं भक्ताय सम्प्रोक्तं महेशेनाखिलं नृप ! ॥७१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे धर्मकथने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

शनिपीडा कथं याति तन्मे वद सुरोत्तम । त्वन्मुखाच्छ्रूयते यद्वै तेन जन्तुः प्रमुच्यते॥१॥

महादेव उवाच

देवर्षे ! शृणु वृत्तान्तं येन मुच्येत बन्धनात् ।
ग्रहाणां ग्रहराजोऽयं सौरिः सर्वमहेश्वरः ॥२॥

स्वर्गलोक में चिरकाल तक निवास करता है ॥६६॥ जो सदा भूमि पर शयन करता है वह अपने मनोनुकूल गति को प्राप्त करता है । वीरस्थान की उपासना करने वाला वीर का भोजन तथा वीर का हाथ प्राप्त करता है ॥६७॥ उपवास की दीक्षा लेकर जो शरीर त्याग करता है, वह अपनी इच्छा के अनुसार अक्षय लोकों में जाता है ॥६८॥ बारह वर्षों तक उपवास करने वाला वीरस्थान में विशिष्ट होता है । जो पवित्र आचरण करता है वह स्वर्ग लोक में पूजित होता है ॥६९॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण बृहस्पति के इस पवित्र मत को पढ़ते हैं, उनको आयु, विद्या, यश और बल ये चारों बढ़ते हैं ॥७०॥ **नारदजी ने कहा—** इस बृहस्पति के द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र को शङ्करजी ने मुझे अपने भक्त को उपदेश दिया ॥७१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत धर्म वर्णन नामक तैंतिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३३।।

रोहिणी में शनि के जाने से रोकने का महाराज दशरथ का प्रयत्न

नारदजी ने कहा— हे देवश्रेष्ठ ! आप मुझे बतलायें कि शनि की पीड़ा कैसे दूर होती है ? आपके मुख से जो कुछ भी सुना जाता है, उससे जीव मुक्त हो जाता है ।।१।। **महादेवजी ने कहा—** हे देवर्षे!

अयंतु देवो विख्यातः कालरूपी महाग्रहः। जटिलो वज्ररोमा च दानवानां भयङ्करः ॥३॥
तस्याख्यानं च लोकेऽस्मिन्प्रथितं नास्ति वै प्रभो ! ।
मया गुप्तं विशेषेण नोक्तं हि कस्यचित्कदा ॥४॥
रघुवंशेऽति विख्यातो राजा दशरथः पुरा। चक्रवती महावीरः सप्तद्वीपाधिपोऽभवत् ॥५॥
कृत्तिकान्ते शनिं ज्ञात्वा दैवज्ञैर्ज्ञापितो हि सः ।
रोहिणीं भेदयित्वा च शनिर्यास्यति साम्प्रतम् ॥६॥
शाकटं भेदमत्युग्रं सुरासुराभयङ्करम्। द्वादशाब्दं तु दुर्भिक्षं भविष्यति सुदारुणम् ॥७॥
एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं मन्त्रिभिः सह पार्थिवः ।
मन्त्रयामास किमिदं भयङ्करमुपस्थितम् ॥८॥
आकुलं च जगद्दृष्ट्वा पौरजानपदादिकम्। ब्रुवन्ति सर्वतो लोकाः क्षय एष समागतः ॥९॥
देशाः सनगरा ग्रामा भयभीताः समन्ततः। पप्रच्छप्रयतो राजा वसिष्ठप्रमुखान्द्विजान् ॥१०॥
सम्विधानं किमत्रास्ति ब्रूत मां हि द्विजोत्तमाः ! ॥११॥

वसिष्ठ उवाच

प्राजापत्यमृक्षमिदं तस्मिन्भिन्ने कुतः प्रजाः ।
अयं योगो ह्यसाध्यस्तु ब्रह्मशक्रादिभिस्तथा ॥१२॥
इति संचिन्त्य मनसा साहसं परमं महत्। समादाय धनुर्दिव्यं दिव्यायुधसमन्वितम् ॥१३॥
रथमारुह्य वेगेन गतो नक्षत्रमण्डलम्। सपादं योजनं लक्षं सूर्यस्योपरि संस्थितम् ॥१४॥

आप इस वृत्तान्त को सुनें इसके सुनने से जीव बन्धन मुक्त हो जाता है। शनि ग्रहराज हैं और सबों के स्वामी हैं ॥२॥ विख्यात है कि शनि कालरूपी महाग्रह हैं। ये जटाधारी हैं, इनके रोम व्रज के समान हैं। ये दानवो के लिए भयङ्कर हैं ॥३॥ उनका वृत्तान्त लोक में प्रसिद्ध नहीं है। मैंने इसे विशेष रूप से गुप्त रखा है इसे कभी किसी को नहीं बतलाया है ॥४॥ प्राचीन काल में दशरथ नाम के एक चक्रवर्ती राजा हुए। वे महान् वीर और सातों द्वीपों के स्वामी थे ॥५॥ दैवज्ञों ने जब जाना कि शनि कृतिका नक्षत्र के अन्तिम चरण पर है तो उन लोगों ने बतलाया कि शनि कृतिका को पार करके रोहिणी नक्षत्र पर चले जायेंगे और उसका भेदन करेंगे। यह शाकट भेद नामक अत्यन्त उग्र योग है और देवताओं तथा असुरों के लिए अत्यन्त भयङ्कर है। इसके कारण बारह वर्षो का भयङ्कर दुर्भिक्ष होगा ॥६-७॥ इस वाक्य को सुनकर राजा ने मन्त्रियों के साथ विचार किया कि यह न जाने कौन सा भयङ्कर योग आ रहा है ॥८॥ उन्होंने संसार तथा नागरिकों को घबराये हुए देखा। सब लोग कह रहे थे यह विनाश की बेला आ गयी है। सभी देश, सभी नगरों तथा ग्रामों को देखकर राजा ने वसिष्ठ आदि महर्षियों से विनयान्वित होकर पूछा ॥९-१०॥ उन्होंने कहा— ब्राह्मणों इसका अच्छा विधान क्या है ? इस बात को आपलोग बतलायें॥११॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** रोहिणी प्राजापत्य नक्षत्र है। उसका भेदन हो जाने पर प्रजाएँ कैसे बचेंगी ? यह योग तो ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि देवताओं के लिए असाध्य है ॥१२॥ इस तरह से विचार करके राजा ने साहस को संगृहीत किया। वे दिव्य धनुष तथा दिव्य आयुध लेकर रथ पर बैठे और वेगपूर्वक नक्षत्र मण्डल में पहुँच गये। रोहिणी का स्थान सूर्य मण्डल से सवा लाख योजन ऊपर है। वे वहाँ पहुँच गये।

रोहिणीपृष्ठमास्थाय राजा दशरथः पुरा। रथे तु काञ्चने दिव्ये मणिरत्नविभूषिते॥१५॥
हंसवर्णहयैर्युक्ते महाकेतुसमुच्छ्रये। दीप्यमानो महारत्नैः किरीटमुकुटोज्ज्वलः॥१६॥
बभ्राज स तदाऽऽकाशे द्वितीय इव भास्करः।
आकर्णपूर्णचापे तु संहारास्त्रं न्ययोजयत्॥१७॥
संहारास्त्रं शनिर्दृष्ट्वा सुरासुरभयङ्करम्। हसित्वा तद्भयात्सौरिरिदं वचनमब्रवीत्॥१८॥

शनिरुवाच

पौरुषं तव राजेन्द्र परं रिपुभयङ्करम्। देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः॥१९॥
मया विलोकिता राजन्भस्मसाच्च भवन्तिते।
तुष्टोऽहंतव राजेन्द्र तपसा पौरुषेणच॥
वरं ब्रूहि प्रदास्यामि मनसा यत्किमिच्छसि॥२०॥

दशरथ उवाच

रोहिणीं भेदयित्वा तु न गन्तव्यं कदाचन। सरितः सागराः यावद्यावच्चन्द्रार्कमेदिनी॥२१॥
याचितं तु मया सौरे! नान्यमिच्छामि ते वरम्।
एवमस्तु शनिः प्राह वरं दत्त्वा तु शाश्वतम्॥२२॥
पुनरेवाब्रवीत्तुष्टो वरं वरय सुव्रत!। प्रार्थयामस हृष्टात्मा वरमन्यं शनेस्तदा॥२३॥
न भेत्तव्यं हि शकटं त्वया भास्करनन्दन। द्वादशाब्दंतु दुर्भिक्षं न कर्तव्यं कदाचन॥२४॥

शनिरुवाच

द्वादशाब्दं तु दुर्भिक्षं न कदाचिद्भविष्यति। कीर्तिरेषा त्वदीया च त्रैलोक्येविचरिष्यति॥२५॥
वरद्वयं तु सम्प्राप्य हृष्टरोमा च पार्थिवः। रथोपरि धनुर्मुक्त्वा भूत्वा चैव कृताञ्जलिः॥२६॥

राजा दशरथ का रथ सुवर्ण निर्मित और रमणियों तथा रत्नों से विभूषित था ॥१३-१५॥ उसके घोड़े हंस के समान श्वेत तथा उस पर ऊँची पताका लगी थी। राजा महारत्नों से सुशोभित थे उनका किरीट तथा मुकुट चमक रहा था ॥१६॥ वे आकाश में दूसरे सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे। उन्होंने अपने कानों तक धनुष की प्रत्यंचा खिंचकर उस पर संहारास्त्र चढ़ाया ॥१७॥ संहारास्त्र को देखकर देवताओं और असुरों के भी लिए भयङ्कर शनि भयभीत हो गये उन्होंने हँसकर कहा ॥१८॥ **शनि ने कहा—** हे राजेन्द्र! आपका पौरुष शत्रुओं के लिए अत्यन्त भयङ्कर है। मेरे द्वारा देखे गये, देवता, असुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर तथा उरग भस्म हो जाते हैं। राजन्! मैं आपकी तपस्या तथा पौरुष से सन्तुष्ट हूँ। आप अपने मन से जो चाहें वरदान माँगें मैं वर दूँगा ॥१९-२०॥ **दशरथजी ने कहा—** जब तक नदियाँ, सागर, चन्द्रमा, सूर्य और पृथिवी रहें तब तक कभी भी रोहिणी का भेदन करने न जायँ ॥२१॥ हे शनिदेव! मैं यही वरदान माँगता हूँ, इससे भिन्न वरदान मैं नहीं मागता हूँ। शनि देव ने भी एवमस्तु कहकर हमेशा के लिए वह वरदान दे दिया ॥२२॥ पुनः सन्तुष्ट होकर शनि ने कहा— हे सुव्रत! तुम पुनः वर माँगो उस समय प्रसन्न होकर दशरथजी ने दूसरा वरदान माँगा ॥२३॥ हे भास्कर नन्दन! आप कभी शकट भेदन न करें और न तो कभी बारह वर्षों की दुर्भिक्षा उत्पन्न करें ॥२४॥ **शनिदेव ने कहा—** कभी भी बारह

ध्यात्वा सरस्वतीं देवीं गणनाथं विनायकम् ।
राजा दशरथः स्तोत्रं सौरेरिदमथाब्रवीत् ॥२७॥

दशरथ उवाच

नमः कृष्णाय नीलाय शितिकण्ठनिभाय च ।
नमःकालाग्निरूपाय कृतान्ताय च वै नमः ॥२८॥
नमो निर्मांसदेहाय दीर्घश्मश्रुजटाय च। नमो विशालनेत्राय शुष्कोदर भयाकृते ॥२९॥
नमःपुष्कलगात्राय स्थूलरोम्णेऽथ वै नमः। नमो दीर्घायशुष्काय कालदंष्ट्र नमोऽस्तुते ॥३०॥
नमस्ते कोटराक्षाय दुर्निरीक्ष्याय वै नमः। नमो घोराय रौद्राय भीषणाय कपालिने ॥३१॥
नमस्ते सर्वभक्षाय वलीमुख नमोऽस्तु ते। सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु भास्करे भयदाय च ॥३२॥
अधोदृष्टे ! नमस्तेऽस्तु संवर्तक ! नमोऽस्तु ते ।
नमो मन्दगते ! तुभ्यं निस्त्रिंशाय नमोऽस्तु ते ॥३३॥
तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च। नमो नित्यं क्षुधार्ताय अतृप्ताय च वै नमः ॥३४॥
ज्ञानचक्षुर्नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मजसूनवे। तुष्टो ददासि वै राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात् ॥३५॥
देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः। त्वयाविलोकिताःसर्वे नाशं यान्ति समूलतः ॥३६॥
प्रसादं कुरु मे देव वरार्होऽहमुपागतः। एवं स्तुतस्तदा सौरिर्ग्रहराजो महाबलः ॥३७॥
अब्रवीच्च पुनर्वाक्यं हृष्टरोमा तु भास्करिः ।
तुष्टोऽहं तव राजेन्द्र स्तवेनानेन सुव्रत। वरं ब्रूहि प्रदास्यामि स्वेच्छया रघुनन्दन ! ॥३८॥

वर्षों का दुर्भिक्ष नहीं होगा, आपकी यह कीर्ति संसार में फैल जायेगी ॥२५॥ दो वरों को पाकर राजा दशरथ रोमाञ्चित हो गये । उन्होंने धनुष को रथ पर रख दिया और हाथ जोड़ लिया ॥२६॥ सरस्वती देवी, गणेशजी का ध्यान करके राजा दशरथ शनि की इस प्रकार की स्तुति किए ॥२७॥ **राजा दशरथ ने कहा—** जिनके शरीर का वर्ण कृष्ण नील और शङ्करजी के समान है उन शनिदेव को नमस्कार है । कालाग्नि के समान तथा कृतान्त (काल) के समान शनिदेव को नमस्कार है ॥२८॥ मांस रहित शरीर वाले तथा लम्बी दाढ़ी और जटा धारण करने वाले शनिदेव को नमस्कार है । विशाल नेत्र वाले, सूखे पेट वाले भयङ्कर शनिदेव को नमस्कार है । कठोर अङ्गों वाले तथा मोटे रोओं वाले शनिदेव को नमस्कार है। लम्बे, शुष्क तथा काले दाँत वाले आपको नमस्कार है ॥२९-३०॥ खोंखले नेत्र वाले दुर्निरीक्ष्य, भयङ्कर, रौद्र तथा भीषण कपालधारी वाले शनिदेव को नमस्कार है ॥३१॥ हे बलिमुख ! सर्वभक्ष तथा सूर्य पुत्र को नमस्कार है । हे भास्करे ! तथा भयङ्कर आपको नमस्कार है । हे नीचे दृष्टि वाले तथा संवर्तक ! आपको नमस्कार है । हे मन्दगति वाले ! आपको नमस्कार है । हे कृपाण के समान आकार वाले आपको नमस्कार है ॥३२-३३॥ जिन्होंने तपस्या से अपने शरीर को जला दिया है तथा सदैव योगरत रहने वाले आपको नमस्कार है । जो सदा भूखे तथा अतृप्त रहते हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥३४॥ ज्ञाननेत्र वाले आपको नमस्कार है । महर्षि कश्यप के पुत्र सूर्य के पुत्र को नमस्कार है आप तुष्ट होकर राज्य प्रदान करते हैं और रुष्ट होकर उसी क्षण उसे ले लेते हैं ॥३५॥ देव, असुर, मनुष्य सिद्ध तथा विद्याधर और उरग ये सभी आपके द्वारा देखे जाने पर विनष्ट हो जाते हैं ॥३६॥ हे देव ! आप मुझपर कृपा करें मैं आपके द्वारा

दशरथ उवाच

अद्यप्रभृति ते सौरे पीडाकार्या न कस्यचित् ।
देवासुरमनुष्याणां पशुपक्षिसरीसृपाम् ॥३९॥

शनिरुवाच

गृह्णन्तीति ग्रहा:सर्वेग्रहा:पीडाकरा:स्मृता: । अदेयंयाचितं राजन्किंचिद्युक्तं वदाम्यहम् ॥४०॥
त्वया प्रोक्तमिदं स्तोत्रं यः पठिष्यति मानवः ।
एककालं द्विकालं वा पीडामुक्तो भवेत्क्षणात् ॥४१॥
देवासुरमनुष्याणां सिद्धविद्याधररक्षसाम् । मृत्युं मृत्युगतो दद्यां जन्मन्यन्ते चतुर्थके॥४२॥
यः पुनः श्रद्धयायुक्तः शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
शमीपत्रै:समभ्यर्च्य प्रतिमां लोहजां मम ॥४३॥
माषौदनतिलैर्मिश्रं दद्याल्लोहं च दक्षिणाम् ।
कृष्णां गां वृषभं वाऽपि यो वै दद्याद् द्विजातये ॥४४॥
मद्दिने तु विशेषेण स्तोत्रेणानेन पूजयेत्। पूजयित्वा जपेत्स्तोत्रं भूत्वाचैव कृताञ्जलिः ॥४५॥
तस्य पीडां न चैवाहं करिष्यामि कदाचन। गोचरे जन्मलग्ने वा दशास्वन्तर्दशासु च ॥४६॥
रक्षामि सततं तस्य पीडांचापि ग्रहस्य च । अनेनैव विधानेन पीडामुक्तं जगद्भवेत् ॥४७॥
एवं युत्तया मया दत्तो वरस्ते रघुनन्दन। वरत्रयं तु संप्राप्य राजा दशरथस्तदा ॥४८॥
मेने कृतार्थमात्मानं नमस्कृत्य शनैश्चरम्। शनिना चाभ्यनुज्ञातो रथमारुह्य वेगवान् ॥४९॥
स्वस्थानं गतवान्राजा प्राप्तश्रेयोऽभवत्तदा । य इदं प्रातरुत्थाय शनिवारे स्तवं पठेत् ॥५०॥

वर प्राप्त करने के योग्य हूँ । इस तरह से स्तुति किए जाने पर ग्रहराज महाबलवान् शनि ॥३७॥ पुन: प्रसन्न होकर कहे— हे सुव्रत ! राजेन्द्र आपकी इस स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ । आप अपनी इच्छा से वरदान माँगें मैं उसे दूँगा ॥३८॥ **राजा दशरथ ने कहा**— हे शनि देव ! आज से आप किसी को दु:ख न दें । वे देव, असुर, मनुष्य पशु, पक्षी, सरीसृप में से जो भी हों ॥३९॥ **शनिदेव ने कहा**— गृहणन्ति इति ग्रहा, इस व्युत्पत्ति के अनुसार सभी ग्रह दु:ख देने वाले कहे गये हैं । राजन् ! मैं कुछ अदेय वस्तुओं को बतलाता हूँ ॥४०॥ आपके द्वारा किए गये स्तोत्र जो एक बार या दो बार पढ़ेगा वह पीड़ा से मुक्त हो जायेगा ॥४१॥ देवासुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर तथा राक्षस के भी जब मैं जन्म लग्न में या बारहवें अथवा चतुर्थ स्थान में रहूगाँ तथा सातवें स्थान में रहूँगा तो उसको मृत्यु दूँगा ॥४२॥ जो मनुष्य पवित्र होकर श्रद्धा पूर्वक मेरी लोहे की प्रतिमा की पूजा शमी पत्र से करेगा ॥४३॥ उड़द तथा तिल का दान देकर ब्राह्मण को दक्षिणा देगा । तथा काली गौ या वृषभ दान करेगा ॥४४॥ शनिवार को मेरी पूजा इस तरह से विशेष रूप से करेगा और हाथ जोड़कर इस स्तोत्र का पाठ करेगा ॥४५॥ उसको मैं कभी भी दु:ख नहीं दूँगा । गोचर में या जन्म लग्न में, या अन्तर्दशाओं में रहकर मैं उसकी रक्षा ग्रह से भी करूँगा। इस प्रकार का विधान करके जगत् पीड़ा मुक्त हो सकता है ॥४६-४७॥ हे रघुनन्दन ! मैंने आपको युक्ति पूर्वक यह तीसरा वरदान भी दे दिया । तीनों वरों को प्राप्त करके राजा दशरथ ॥४८॥ शनिश्चर को प्रणाम करके अपने को कृतार्थ (सफल) माने शनि से आज्ञा लेकर वेगपूर्वक ॥४९॥ अपने स्थान पर

पठ्यमानमिदंस्तोत्रं श्रद्धयाय: श्रृणोति च। नरः स मुच्यते पापात्स्वर्गलोके महीयते ॥५१॥
राज्ञा दशरथेनोक्तं शनेःस्तोत्रं च शारदम् । परमायुष्करं बल्यं सर्वपीडाविनाशनम्॥५२॥
कान्तिदं पुत्रदं चैव ग्रहशान्तिकरं परम्। ईदृशं नास्ति लोकेऽस्मिन्पावनं भुवि दुर्लभम्॥५३॥
वृद्धाख्ये नगरे रम्ये तत्र तीर्थं ह्यनुत्तमम् । श्रावणेमासि गन्तव्यं तस्मिंस्तीर्थे ह्यनुत्तमे ॥५४॥
वसन्ति ब्राह्मणा यत्र वृद्धाख्यं च पुरं महत् ।
शनेः सरोवरं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥५५॥
तत्र गत्वा नरश्रेष्ठ स्नानंचैव समाचरेत्। ग्रहपीडा विनश्यन्ति इत्येवं ब्रह्मणो वचः॥५६॥
चतुरशीतिसहस्राणि तीर्थानि तत्र वा ऋषे। नगरं वृद्धसंज्ञं तु कथितं ब्रह्मसूनवे॥५७॥
महेशेनैव रचितं यत्र तीर्थं तु वर्तते ॥५८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे दशरथकृत शनिस्तोत्रं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पैंतिसवाँ अध्याय

नारद उवाच

त्रिस्पृशाख्यं व्रतं ब्रूहि सर्वेश्वरविशेषतः । यच्छ्रुत्वामुच्यते लोकः कर्मबन्धनतः क्षणात् ॥१॥

चले गये और उन्होंने कल्याण प्राप्त किया । जो शनिवार को प्रातःकाल जगकर इस स्तोत्र को पढ़ता है॥५०॥ और पढ़े जाते हुए इस स्तोत्र को जो श्रद्धा पूर्वक सुनता है, वह मनुष्य पाप से मुक्त होकर स्वर्ग लोक में पूजित होता है ॥५१॥ राजा दशरथ के द्वारा कहा गया यह स्तोत्र बुद्धि को बढ़ाने वाला, आयु को बढ़ाने वाला, बल प्रदान करने वाला, सभी पापों का विनाश करने वाला ॥५२॥ कान्ति प्रदान करने वाला, पुत्र देने वाला तथा ग्रहों की शान्ति करने वाला है । इस तरह का पवित्र कोई भी दूसरा स्तोत्र नहीं है । यह संसार में दुर्लभ है ॥५३॥ उनके वृद्ध नामक मनोहर नगर में श्रेष्ठ तीर्थ है । उस उत्तम तीर्थ में श्रावण के महीने में जाना चाहिए ॥५४॥ उस महान् वृद्ध नामक नगर में ब्राह्मणों का निवास है । वहाँ पर शनि का पवित्र तथा पाप विनाशक सरोवर है ॥५५॥ वहाँ जाकर श्रेष्ठ नर को स्नान करना चाहिए, यह ब्रह्माजी ने कहा है ॥५६॥ हे ऋषे ! वहाँ पर चौरासी हजार तीर्थ हैं यह नारदजी को शङ्करजी ने बतलाया है ॥५७॥ वहाँ पर शङ्करजी ने ही तीर्थों का निर्माण किया है ॥५८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद का राजा दशरथ कृत शनिस्तोत्र वर्णन नामक चौंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३४।।

प्राची माधव और जाह्नवी संवादान्तर्गत त्रिस्पृशा एकादशी व्रत की विधि का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे सर्वेश्वर ! आप विशेष रूप से त्रिस्पृशा नामक व्रत का वर्णन करें । उसका

महादेव उवाच

सर्वपापौघशमनं महादुःखविनाशनम् । शृणु कृष्णावतारं त्वं त्रिस्पृशाख्यं महाव्रतम् ॥२॥
कामदं सस्पृहाणां तु निस्पृहाणां तु मोक्षदम् ।
त्रिस्पृशाख्यं व्रतं विप्र ! शृणुष्व गदतो मम ॥३॥
प्रत्यक्षमर्चितस्तेनकलिकाले च केशवः । त्रिस्पृशा कीर्तनं नित्यं यः करोति महामुने॥४॥
न पुरश्चरणे चीर्णे सर्वपापक्षयो भवेत्। त्रिस्पृशानाममात्रेण क्षीयते नात्र संशयः ॥५॥
नागमैर्न पुराणाद्यैर्न मखैस्तीर्थकोटिभिः । बहुभिर्व्रतसङ्घैश्च पूजितैस्त्रिदशैरपि ॥६॥
मोक्षो भवति विप्रेंद्र ! त्रिस्पृशा न कृता यदि ।
मोक्षार्थे देवदेवेन दृष्ट्वा वै वैष्णवी तिथिः ॥७॥
द्विजानां दुर्विदं साङ्ख्यं कलिकाले विशेषतः ।
अनिग्रहश्चेन्द्रियाणां स्थिरत्वं मनसो न हि ॥८॥
विषयैविप्रयुक्तानां ध्यानधारणवर्जिनाम्। कामभोगप्रसक्तानांत्रिस्पृशा मोक्षदायिनी ॥९॥
मह्यं चैव पुरा प्रोक्ता चतुर्वक्त्रस्य सागरे। क्षीरोदे प्रणतानां तु मथ्यमाने तु चक्रिणा ॥१०॥
त्रिस्पृशां ये करिष्यन्ति विषयैरपि संयुताः । तेषामपि मया दत्तो मोक्षःसाङ्ख्यविवर्जिनाम् ॥११॥
कामभोगप्रसक्तानां त्रिस्पृशा मोक्षदायिनी । बहुभिर्मुनिसङ्घैश्च कृतेयं च महामुने !॥१२॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु त्रिस्पृशा जायते यदि ।
सोमेन सोमजेनापिपापकोटिविनाशिनी ॥१३॥

श्रवण करके मनुष्य कर्मों के वन्धन से भणभर में मुक्त हो जाता है । **महादेवजी ने कहा—** आप समस्त पाप समूह को विनष्ट करने वाले, और महादुःख को नष्ट करने वाले कृष्णावतार स्वरूप त्रिस्पृशा नामक व्रत का श्रवण करें ॥१-२॥ यह कामना युक्त मनुष्यों की कामना को पूर्ण करने वाला और निस्पृह मनुष्यों को मोक्ष प्रदान करने वाला व्रत है । हे विप्र ! मैं त्रिस्पृशा नामक व्रत को बतला रहा हूँ उसे आप सुनें॥३॥ हे महामुने ! जो त्रिस्पृशा का नित्य स्मरण करता है उसको इस कलिकाल में भगवान् केशव को साक्षात् पूजन करने का फल मिलता है ॥४॥ पुरश्चरण करने से सभी पापों का नाश नहीं होता है, किन्तु त्रिस्पृशा का नाम लेने मात्र से सभी पापों का नाश हो जाता है ॥५॥ हे विप्रेन्द्र ! यदि त्रिस्पृशा व्रत नहीं किया गया है तो आगमों, पुराणों आदि यज्ञों, करोड़ों तीर्थों, अनेक प्रकार के व्रत समूहों तथा देवताओं की पूजा करने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है । इसी बात को देखकर भगवान् विष्णु ने वैष्णवी तिथि त्रिस्पृशा का निर्माण किया है ॥६-७॥ विशेष रूप से कलिकाल में ब्राह्मणों को ज्ञान होना कठिन है । इन्द्रिय का निग्रह न होने वाला मन भी अस्थिर बना रहता है ॥८॥ विषयों में सदा आसक्त रहने वाले तथा धारणा एवं ध्यान से रहित, कामोपयोग में लगे रहने वाले लोगों को भी त्रिस्पृशा मोक्ष प्रदान करने वाली है ॥९॥ जब क्षीर सागर देवताओं द्वारा मथा जा रहा था उस समय भगवान् विष्णु ने मुझको तथा ब्रह्माजी को इसका उपदेश दिया । उन्होंने कहा कि ॥१०॥ विषयों में आसक्त जीव भी यदि त्रिस्पृशा व्रत करते हैं उन अज्ञानी जीवों को भी मैं मोक्ष प्रदान करता हूँ ॥११॥ कामोपभोग में विशेष रूप से आसक्त जीवों को त्रिस्पृशा मोक्ष प्रदान करती है । हे महामुने । बहुत से मुनियों के समुदाय ने इस व्रत को किया है ॥१२॥ कार्तिक मास के शुक्ल

यस्या उपोषणकृतो हत्यायुक्तमहेशितुः। हस्ताद्ब्रह्मकपालं तु तत्क्षणात्पतितं भुवि॥१४॥

कलिकल्मष कोट्योघैर्मुक्ता देवी त्रिमार्गगा।
उपदेशान्माधवस्यत्रिस्पृशा समुपोषणात् ॥१५॥

हत्याष्टो बाहुवीर्यस्य पूर्वजाता महामुने। गता भृगूपदेशेन त्रिस्पृशा समुपोषणात् ॥१६॥
शतायुधेन विप्रेन्द्र निहतो ब्राह्मणो वने। ब्रह्महत्याविनिर्मुक्तस्त्रिस्पृशासमुपोषणात् ॥१७॥
जीवोपदेशाच्छक्रस्य हत्या च मुनिसंभवा। विनष्टा मुनिमुख्येन्द्र त्रिस्पृशा समुपोषणात् ॥१८॥
ब्रह्महत्यादि पापानि त्रिस्पृशा समुपोषणात्। विलयं यान्ति विप्रेन्द्र पापेष्वन्येषु का कथा॥१९॥

न प्रयागे न काश्यां तु गोमत्यां कृष्णसन्निधौ।
मोक्षो भवति विप्रेन्द्र त्रिस्पृशा यदि नो कृता ॥२०॥

मरणाच्च प्रयागे तु गोमत्यां कृष्णसन्निधौ। स्नानमात्रेण गोमत्यां मुक्तिर्भवति शाश्वती॥२१॥

गृहेऽपि जायते मुक्तिस्त्रिस्पृशा समुपोषणात्।
विषयेवर्त्तमानस्यकामभोगान्वितस्यच ॥२२॥

निवृत्तविषस्यापि मुक्तिः साङ्ख्येन दुर्लभा। तस्मात्कुरुष्व विप्रेन्द्र त्रिस्पृशां मोक्षदायिनीम् ॥२३॥

नारद उवाच

कीदृशं तत्सुरश्रेष्ठ त्रिस्पृशाख्यं महाव्रतम्। मुक्तिदंयद्द्विजातीनां त्वया प्रोक्तं ममाधुना ॥२४॥

महादेव उवाच

जाह्नव्यै सा पुरा विप्र त्रिस्पृशा माधवेन तु।
प्राचीसरस्वतीतीरे कथिता त्वनुकम्पया ॥२५॥

पक्ष में यदि त्रिस्पृशा एकादशी सोमवार को अथवा बुधवार को होती है तो वह करोड़ों पापो का विनाश करने वाली होती है ॥१३॥ उसका ही व्रत करने से हत्या युक्त महेश के हाथ से तत्काल कपाल छूटकर गिर गया था ॥१४॥ कलि के करोड़ों पापों से गङ्गाजी भी मुक्त हुयीं। माधव भगवान् ने उनको त्रिस्पृशा व्रत करने का उपदेश दिया था ॥१५॥ हे महामुने! बाहुवीर्य को आठ हत्यायें लगी थी। महर्षि भृगु के उपदेश से त्रिस्पृशा का उपवास करने से वे सब विनष्ट हो गयीं ॥१६॥ हे महामुने! शतायुध ने ब्राह्मण का वध कर दिया था त्रिस्पृशा का उपोषण करने से वह भी विनष्ट हो गयी ॥१७॥ बृहस्पति का उपदेश करने से मुनि के वध से इन्द्र को ब्रह्महत्या लग गयी थी, हे मुनियों में श्रेष्ठ! वह भी त्रिस्पृशा का उपवास करने से विनष्ट हो गयी ॥१८॥ हे विप्रेन्द्र! त्रिस्पृशा का उपवास करने से ब्रह्महत्या आदि पापों का नाश हो जाता है तो दूसरे पापों की कौन सी बात है ?॥१९॥ हे विप्रेन्द्र! यदि कोई त्रिस्पृशा का उपवास नहीं किया है तो उसकी प्रयाग, काशी अथवा भगवान् श्रीकृष्ण के सन्निकट में विद्यमान गोमती में स्नान करने से मुक्ति नहीं होती है ॥२०॥ प्रयाग में मृत्यु होने से अथवा कृष्ण भगवान् के सन्निकट गोमती में स्नान करने से शाश्वत मुक्ति होती है ॥२१। त्रिस्पृशा का व्रत करने से अपने घर में भी मुक्ति हो जाती है। यदि वह मनुष्य विषयी तथा कामोपभोग करने वाला हो तो भी ॥२२॥ विषयोपभोग पराङ्मुख व्यक्ति को मुक्ति ज्ञान के द्वारा दुर्लभ है। अतएव हे विप्रेन्द्र! आप भी मोक्ष प्रदायिनी त्रिस्पृशा का व्रत करें ॥२३॥

जाह्नव्युवाच

कलिकल्मषकोट्यौघैर्ब्रह्महत्यादिकैर्युताः । कलिकाले हृषीकेश स्नानं कुर्वन्ति मज्जले॥२६॥
तेषां पापशतैर्दोषैर्देहो मे कलुषीकृतः। कथं यास्यति मे देव पातकं गरुडध्वज॥२७॥

प्राचीमाधव उवाच

कथयामि न संदेहः पुत्रि मारोदनं कुरु। श्यामो वटस्तु मे स्थानं प्राचीदेवी ममाग्रतः॥२८॥
वहते ब्रह्मतनया दृष्ट्वाग्रे च सुरेश्वरीम्। स्नानं कुरुष्व नित्यं त्वं त्वत्र पूता भविष्यसि॥२९॥
यत्र ब्रह्मसुता प्राची तत्राहं नात्र संशयः। तीर्थकोटिशतैर्युक्तः सुरैः सह वसाम्यहम्॥३०॥
पवित्रं मत्प्रियं स्थानं हत्याकोटिविनाशनम्। संतुष्टेन मया दत्तं यस्मात्प्राणाधिकाऽसि मे॥३१॥
तीर्थकोटिसहस्राणि नित्यं तिष्ठन्ति जाह्नवि। प्राचीसरस्वती तोये सर्वदैवममाज्ञया॥३२॥
ब्रह्मवधात्सुरापानाद्गोवधाद्वृषलीधवात्। ब्रह्मदेवस्वहरणान्माता पित्रोस्त्वपूजनात्॥३३॥
चक्रियानाद्गुरुद्रोहादभक्षस्य च भक्षणात्। सर्वपापस्य करणात्प्राची ब्रह्मसुता सुते॥३४॥
व्यपोहयति पापानि सकृत्स्नानेन मेऽग्रतः। कुरु स्नानं सरिच्छ्रेष्ठे विपापा त्वं भविष्यसि॥३५॥

जाह्नव्युवाच

नाहं शक्नोमि देवेश आगन्तुं नित्यमेव हि। अतिदूरे च तत्तीर्थं तत्र गन्तुं न पार्यते॥
कथं नश्यन्ति पापानि कथयस्वेह माधव॥३६॥

प्राचीमाधव उवाच

न शक्नोषि यदा गन्तुं नित्यमेवहि जाह्नवि। तदान्यत्संप्रवक्ष्यामि यस्मान्मत्पादसंभवा॥३७॥

नारदजी ने कहा— हे देववर्य ! वह त्रिस्पृशा नामक महाव्रत कैसा है जिसे आपने मुझे द्विजों को मुक्ति प्रद बतलाया है ?॥२४॥ **महादेवजी ने कहा—** प्राची सरस्वती के तट पर भगवान् माधव ने इस व्रत का उपदेश गङ्गाजी पर कृपा करके किया था ॥२५॥ **जाह्नवीदेवी ने कहा—** हे हृषिकेश ! इस कलिकाल में करोड़ों कलिजन्य पापों तथा ब्रह्महत्या आदि से युक्त मनुष्य मेरे जल में स्नान करते हैं ॥२६॥ उनके सैकड़ों पापों से मेरा शरीर दूषित हो गया है हे गरुडध्वज ! वह पाप कैसे विनष्ट होगा ?॥२७॥ **प्राची माधव ने कहा—** हे पुत्रि ! रोओ मत मैं बतलाता हूँ मेरे रहने का स्थान श्याम वट है मेरे सामने प्राची देवी है ॥२८॥ मेरे सामने उस प्राची देवी को देखकर सरस्वती वहाँ पर प्रवाहित होती है । तुम उसी में नित्य स्नान करके पवित्र हो जाओगी ॥२९॥ जहाँ पर प्राची सरस्वती रहती है, वहाँ मैं निश्चित रूप से रहता हूँ । वहाँ पर करोड़ों तीर्थों तथा देवताओं के साथ निवास करती हूँ ॥३०॥ वह मेरा प्रिय स्थान करोड़ों हत्या जन्य पापों का विनाश करने वाला है । चूकि सन्तुष्ट होकर उस स्थान को तुम्हें दिया अतएव तुम प्राणों से भी अधिक प्रिय हो ॥३१॥ हे जाह्नवी ! मेरी आज्ञा से प्राची सरस्वती के जल में हजारों करोड़ तीर्थों का निवास होता है ॥३२॥ हे पुत्रि ! ब्रह्महत्या, मदिरापान, गोहत्या तथा वृषली गामित्व (वेश्यागामित्व) जन्य दोष, ब्राह्मण तथा देव सम्पत्ति के हरण जन्य, माता-पिता के अनादर जन्य, चक्रीयानजन्य, गुरुद्रोह जन्य, अभक्ष्य भक्षण जन्य इत्यादि समस्त पापों को प्राची सरस्वती एक बार स्नान करने मात्र से विनष्ट कर देती है । हे श्रेष्ठ नदी ! तुम भी उसमें स्नान करके निष्पाप हो जाओगी ॥३३-३५॥ **जाह्नवी**

सरस्वत्यधिका या च तीर्थकोटिशताधिका। मखकोट्यधिका वाऽपि व्रतदानाधिका च या॥३८॥

जपहोमाधिका या च चतुर्वर्गफलप्रदा ।
साङ्ख्ययोगाधिका या च त्रिस्पृशा क्रियतां शुभा ॥३९॥
यस्मिन्मासे समायाति सिता च यदि वासिता ।
कर्तव्या सा सरिच्छ्रेष्ठे कृते पापात्प्रमुच्यते ॥४०॥

जाह्नव्युवाच

कीदृशी त्रिस्पृशा देव ममाख्याहि सुमाधव ।
ईदृशो महिमा यस्यास्त्वया प्रोक्तो ममाधुना ॥४१॥

दशम्येकादशी भद्रा दिनैकस्मिन्यदाभवेत्। त्रिस्पृशा सा भवेद्देव वान्यथा वद मे प्रभो ॥४२॥

कृष्ण उवाच

आसुरी त्रिस्पृशा देवी या त्वया परिकीर्तिता ।
वर्जनीया प्रयत्नेन वृत्तिहीनो यथा पतिः ॥४३॥
असुराणां तु सा प्रोक्ता आयुर्बलविनाशिनी ।
वर्जनीया प्रयत्नेन यथानारी रजस्वला ॥४४॥

स्वजातिं चपरित्यज्यागतासाऽधमजातिषु । सेवत्याजं विशेषेण दशमीयुक्तं हि मद्दिनम् ॥४५॥
यथा रजस्वलासङ्गाद् दूष्यन्ते ज्ञानवर्जिताः। तथैव दशमीयुक्तं मद्दिनं दूषितं नृणाम् ॥४६॥

ने कहा— हे देवेश ! मैं प्रतिदिन आने में समर्थ नहीं हूँ । वह तीर्थ अत्यन्त दूर है, वहाँ प्रतिदिन नहीं जाया जा सकता है । हे माधव ! आप बतलाएँ कि ये पाप कैसे नष्ट हो सकेंगे ॥३६॥ **प्राचीमाधव ने कहा—** हे मेरे चरणों से उत्पन्न होने वाली ! यदि तुम नित्य नहीं जा सकती हो तो मैं दूसरा उपाय बतलाता हूँ ॥३७॥ जो सरस्वती से भी श्रेष्ठ है, करोड़ों सौ तीर्थों से भी श्रेष्ठ है, जो करोड़ो यागो से भी श्रेष्ठ है तथा जो व्रतो एवं दानों से भी श्रेष्ठ है, जो जप, होम तथा दान से भी श्रेष्ठ है, जो चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली है, जो सांख्य तथा योग से भी श्रेष्ठ है, तुम उस त्रिस्पृशा एकादशी का व्रत करो ॥३८-३९॥ हे श्रेष्ठ नदि ! जिस किसी भी महीने में शुक्ल पक्ष की अथवा कृष्ण पक्ष की त्रिस्पृशा एकादशी हो उसका व्रत करने से सभी पापों से मुक्ति हो जाती है ॥४०॥ **जाह्नवी ने कहा—** हे माधव! आप मुझे बतलायें कि त्रिस्पृशा एकादशी कैसी होती है ? जिसकी आप इस तरह की महिमा बतलाते हैं ॥४१॥ क्या वह त्रिस्पृशा एकादशी है ? जब एक ही दिन में दशमी, एकादशी और भद्रा हो? अथवा उससे भिन्न प्रकार की वह एकादशी है ?॥४२॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे देवि ! जिसे आपने कहा है वह आसुरी त्रिस्पृशा है उसका उसी तरह से त्याग कर देना चाहिए जिस तरह वृत्तिहीन पति त्याज्य है ॥४३॥ वह असुरों की एकादशी है, वह आयु और बल का विनाश करती है । उसका रजस्वला नारी के समान प्रयत्न पूर्वक त्याग कर देना चाहिए ॥४४॥ अपनी जाति का परित्याग करके अधम जाति में आयी हुयी नारी के समान ही उस एकादशी का परित्याग कर देना चाहिए ॥४५॥ जिस तरह रजस्वला के साथ सङ्गम करके अज्ञानी जीव दूषित हो जाते हैं उसी तरह दशमी से युक्त एकादशी तिथि मनुष्यों को दूषित कर देती है ॥४६॥ जब एकादशी द्वादशी के साथ हो और रात्रि के अन्तिम प्रहर में

हत्यायुतशतं हन्ति त्रिस्पृशा समुपोषिता। एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ॥४७॥
त्रिस्पृशा सा तु विज्ञेया दशमी सहिता न हि ।
कृत्वाऽपराधं मुच्येत प्रायश्चित्ते कृते नरः ॥४८॥
दशमीवेधजं दोषं न क्षमामि सुरापगे। भुक्तं हालाहलं तेन विषस्य भक्षणं कृतम्॥४९॥
दशमीमिश्रीतं येन कृतमेकादशीव्रतम्। इति मत्वा न कर्त्तव्यं मद्दिनं दशमीयुतम् ॥५०॥
जन्मकोटिकृतं पुण्यसन्तानं याति संक्षयम्। पातयेत्स्वकुलं स्वर्गान्नयते रौरवादिकम्॥५१॥
स्वदेहं शोधयित्वा तु कर्त्तव्यो मम वासरः ।
वृद्धौ त्याज्या विना वेधाच्छ्रवणादिषु संयुता ॥५२॥
जन्मपुण्यं क्षयं याति एकादश्युपवासिनाम्। संवृद्धौ तु विशेषेण संदेहे समुपस्थिते॥५३॥
ममाज्ञया च कर्त्तव्यां द्वादशी वल्लभा मम ॥५४॥

जाह्नव्युवाच

करिष्येऽहं जगन्नाथ त्रिस्पृशां वचनात्तव। सर्वपापविनिर्मुक्ता भविष्यामि तवाज्ञया ॥५५॥

श्रीकृष्ण उवाच

स्वस्थानंगच्छ भद्रं ते न भी कार्या कदाचन ।
तव देवि सरिच्छ्रेष्ठे न पापं संक्रमिष्यति ॥५६॥
स्नात्वा सरस्वतीतोये येऽर्चयित्वा च माधवम् ।
प्रणमन्ति जगन्नाथं ते यान्ति परमां गतिम् ॥५७॥

त्रयोदशी तिथि हो तो वह त्रिस्पृशा दश हजार हत्याओं से उत्पन्न पाप का विनाश कर देती हैं ॥४७॥ उसी एकादशी को त्रिस्पृशा जानना चाहिए दशमी विद्धा को नहीं। मनुष्य अपराध का प्रायश्चित करके पाप से मुक्त हो जाता है किन्तु दशमी वेध जन्य एकादशी व्रत करने से होने वाले अपराध को मैं भी क्षमा नहीं कर सकता हूँ। दशमी मिश्रित व्रत करने के अपराध को मैं कभी भी क्षमा नहीं करता हूँ। जो दशमी मिश्रित एकादशी व्रत कर लिया उसने हलाहल विष को खा लिया है। इस बात को जानकर दशमी युक्त एकादशी कभी नहीं करनी चाहिए ॥४८-५०॥ उस एकादशी को व्रत करने से करोड़ों जन्मों के किए गये पुण्य विनष्ट हो जाते हैं। उसके वंशज स्वर्ग से गिर जाते हैं और रौरव इत्यादि नरकों में चले जाते हैं ॥५१॥ मेरा व्रत अपने शरीर को शुद्ध करके करना चाहिए। वृद्धि में श्रवण आदि से युक्त भी दशमी विद्धा एकादशी को त्याग देना चाहिए। विशेष रूप से वृद्धि का संदेह हो जाने पर विद्धा एकादशी उपवास करने वालों के जीवन भर के पुण्यों का विनाश कर देती हैं ॥५२-५३॥ ऐसी स्थिति में मेरी प्रिय द्वादशी तिथि को व्रत करना चाहिए ॥५४॥ **जाह्नवी ने कहा—** हे जगन्नाथ ! आपके कथनानुसार मैं त्रिस्पृशा का व्रत करूँगी और आपकी आज्ञा के प्रभाव से मैं सभी पापों से मुक्त हो जाऊँगी ॥५५॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** तुम अपने स्थान पर जाओ, तुम्हें भय नहीं करना चाहिए। हे नदि श्रेष्ठ देवि ! तुमको कभी भी पाप नहीं लगेगा ॥५६॥ सरस्वती नदी के जल में स्नान करके जो लोग भगवान् माधव की पूजा करते हैं तथा जगत् स्वामी को जो लोग प्रणाम करते हैं वे लोग मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥५७॥ **जाह्नवी ने कहा—**

जाह्नव्युवाच

विधानं ब्रूहि मे ब्रह्मन्सर्वस्वेन करोम्यहम्। प्रसादयामि देवेशं दामोदरमनामयम् ॥५८॥

प्राचीमाधव उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि त्रिस्पृशाया विधानकम् ।
यं श्रुत्वाऽपि सरिच्छ्रेष्ठे ! मुच्यते पातकैर्नरः ॥५९॥

पलेन चपलार्धेन तदर्द्धेनापि वापगे। प्रतिमा मम सौवर्णा कार्या विभवसारतः ॥६०॥
पात्रं ताम्रमयं कार्यं तिलैस्तु परिपूरितम्। सजलं तु घटं शुभ्रं पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥६१॥
वेष्टितं पुष्पमालाभिःकर्पूरागुरुवासितम्। न्यसेद्दामोदरं पश्चात्स्नापयित्वा विलिप्यच ॥६२॥
परिधानं ततः कार्यं वस्त्रयुग्मेन चान्वितम् । मन्त्रैस्तु पूजनं कार्यं पुराणैः समुदीरितै ॥६३॥

पुष्पैः कालोद्भवैः शुभ्रैः कोमलैस्तुलसीदलैः ।
छत्रं तु विष्णवे दद्यात्पादुकाभ्यां सुसंयुतम् ॥६४॥

नैवेद्यानि मनोज्ञानि फलानि सुबहून्यपि । उपवीतं तु दातव्यं सोत्तरीयं नवं दृढम् ॥६५॥
वैणवं दापयेद्दण्डं सुरूपं सोन्नतं दृढम्। दामोदराय वै पादौ जानुनी माधवाय च ॥६६॥
गुह्यं कामप्रदायेति कटिं वामनमूर्तये। पद्मनाभाय नाभिं तु जठरं विश्वयोनये ॥६७॥
हृदयं ज्ञानगम्याय कण्ठं वैकुण्ठवासिने। सहस्रबाहवे बाहू चक्षुषी योगरूपिणे ॥
सहस्रशीर्षा शिरसि सर्वाङ्गं माधवाय च ॥६८॥
संपूज्य विधिवद्भक्त्या दद्यादर्घं विधानतः ॥६९॥

हे ब्रह्मन् ! आप उस व्रत की विधि बतलायें, मैं सब कुछ स्वयं करूँगी । मैं निर्दोष भगवान् दामोदर को प्रसन्न करूँगी ॥५८॥ **प्राचीमाधव ने कहा**— हे देवि ! त्रिस्पृशा की विधि मैं बतलाता हूँ उसे तुम सुनो। हे श्रेष्ठ नदी ! उसको सुन लेने मात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥५९॥ हे नदी ! एक पल, या आधा पल या उसके भी आधे अपने ऐश्वर्य के अनुसार मेरी सुवर्ण की प्रतिमा बनवाये ॥६०॥ ताम्बे के पात्र को काली तिल से भर दे । जल भरे कलश में पञ्च रत्न डाले ॥६१॥ कर्पूर तथा अगरु से सुगन्धित उसमें पुष्पो की माला लपेट दे । उसके पश्चात् स्नान कराकर तथा चन्दन लगाकर मूर्ति को उसके ऊपर रखे ॥६२॥ उसके बाद भगवान् को दो वस्त्रों का परिधान समर्पित करे । उसके बाद पौराणिक मन्त्रों से श्रीभगवान् की पूजा करनी चाहिए ॥६३॥ तत्कालीन श्वेत पुष्पों तथा कोमल तुलसीदल से भगवान् की पूजा करे । भगवान् को छत्र और पादुका भी समर्पित करे ॥६४॥ बहुत से मनोहर नैवेद्य, फल, यज्ञोपवीत तथा उत्तरीय श्रीभगवान् को चढ़ाये ॥६५॥ भगवान् को बाँस का सुन्दर तथा लम्बा दण्डा समर्पित करे । **दामोदराय नमः** कहकर भगवान् के दोनों चरणों की पूजा करें । **माधवाय नमः** कहकर भगवान् के घुटनों की पूजा करें, **काम प्रदाय नमः** कहकर भगवान् के गुह्य प्रदेश की पूजा करे, **वामन मूर्तये नमः** कहकर कमर की पूजा करे । **पद्मनाभाय नमः** से नाभि की पूजा करे, तथा **विश्वयोनये नमः** कहकर भगवान् के पेट की पूजा करे ॥६६-६७॥ **ज्ञान गम्याय नमः** से हृदय की, **वैकुण्ठवासिने नमः** से कण्ठ की **सहस्र बाहवे नमः** से दोनों बाहुओं की, **योगरूपिणे नमः** से दोनों नेत्रों की पूजा करें ॥६८॥ **सहस्रशीर्ष्णे नमः**

शुभ्रेण नालिकेरेण शङ्खोपरिस्थिते नहि। सूत्रैरावेष्टितेनैव हस्तयोरुभयोरपि ॥७०॥
स्मृतौ हरसि पापानि यदि नित्यं जनार्दन। दुःस्वप्नं दुर्निमित्तानि मनसा दुर्विचिन्तितम् ॥७१॥
नारकं तु भयं देव भयं दुर्गतिसम्भवम्। यन्ममस्यान्महादेव ऐहिकं पारलौकिकम् ॥७२॥
तेन देवेश मां रक्ष गृहाणार्घं नमोऽस्तु ते। कृपादृष्टिःसदैवास्तु दामोदर ममोपरि॥७३॥
धूपंदीपं च नैवेद्यं कुर्यान्नीराजनं ततः। शीर्षोपरि सरिच्छ्रेष्ठे भ्रामयेद्वारिजं हरेः॥७४॥
कृत्वा विधानमेतद्धि पूजयेत्स्वगुरुं ततः ।
दद्यात्सुवर्णं वस्त्राणि सोष्णीषं चैव कञ्चुकम् ॥७५॥
उपानहौ तु छत्रं च मुद्रिकां च कमण्डलुम् ।
भोजनं चैव ताम्बूलं सप्तधान्यं च दक्षिणाम् ॥७६॥
गुरुं संपूज्य देवेशं कुर्याज्जागरणं हरेः। गीत नृत्यसमायुक्तमुपचारसमन्वितम् ॥७७॥
निशान्ते चैव देवाय दत्त्वा चार्घं विधानतः। स्नानादिकां क्रियां कृत्वा भुञ्जीयाद्वाडवैःसह ॥७८॥

शिव उवाच

द्विजैतत्त्रिस्पृशाख्यानमद्भुतं रोमहर्षणम्। श्रुत्वा तु लभते पुण्यंगङ्गास्नान समुद्भवम् ॥७९॥
अश्वमेध सहस्राणि वाजपेय शतानि च। तत्फलं समवाप्नोतित्रिस्पृशा समुपोषणात् ॥८०॥
पितृपक्षो मातृपक्षस्तथा चैवात्मपक्षकः। तैःसर्वैः सहसंयुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥८१॥
तीर्थकोटिषु यत्पुण्यं क्षेत्रकोटिषु यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति त्रिस्पृशासमुपोषणात्॥८२॥

से शिर की पूजा करे, **माधवाय नमः** से सम्पूर्ण अङ्गों की पूजा करे । भक्ति पूर्वक विधिवत् पूजा करके विधि पूर्वक भगवान् को अर्घ प्रदान करे ॥६९॥ शङ्ख के ऊपर स्वच्छ तथा सूत्र से वेष्टित नारियल रखकर इस मन्त्र को पढ़कर अर्घ प्रदान करे । हे जनार्दन ! यदि आप स्मरण करने मात्र से दुःस्वप्न को दूर कर देते है तथा पापों को विनष्ट कर देते हैं तथा मन के दुर्विचारों को भी दूर कर देते हैं ॥७०-७१॥ तो हे देवेश ! दुर्गति जन्य तथा नरक के भय को तथा मेरे जो लौकिक एवं पारलौकिक पाप हो, उन सबों से आप मेरी रक्षा करें और इस अर्घ को स्वीकार करें । हे दामोदर ! आपकी मुझ पर कृपा दृष्टि सदैव बनी रहे ॥७२-७३॥ उसके पश्चात् श्रीभगवान् को धूप एवं दीप समर्पित करके उनकी आरती करनी चाहिए । हे नदी श्रेष्ठ ! श्रीभगवान् के शिर पर कमल घुमाये ॥७४॥ सारे विधान को पूरा करके आचार्य की पूजा करनी चाहिए । उनको सुवर्ण, वस्त्र, पगड़ी, कुर्ता, जूता, छत्र अङ्गूठी, कमण्डलु देकर उन्हें भोजन कराये और पान समर्पित करे, फिर सप्त धान्य तथा दक्षिणा देनी चाहिए ॥७५-७६॥ गुरु की पूजा करने के बाद श्रीहरिः का जागरण करना चाहिए । उसमें नृत्य करे उपचारों से पूजा करें । रात्रि के अन्त में श्रीभगवान् को अर्घ विधि पूर्वक प्रदान करे । फिर स्नान आदि करके ब्राह्मणों के साथ भोजन करे ॥७७-७८॥ **शिवजी ने कहा—** हे द्विज यह त्रिस्पृशा की कथा अद्भुत है, इसको सुनने वाले को गङ्गा स्नान का पुण्य प्राप्त होता है ॥७९॥ त्रिस्पृशा एकादशी को उपवास करने वाले को हजारों अश्वमेध याग तथा सैकड़ों वाजपेय याग करने का फल प्राप्त होता है ॥८०॥ वह पितृपक्ष-मातृपक्ष तथा आत्म पक्ष के सभी लोगों के साथ भगवान् विष्णु के लोक में जाता हैं ॥८१॥ करोड़ों तीर्थो को करने से तथा करोड़ों क्षेत्रों में जाने का जो फल होता है त्रिस्पृशा व्रत करने से उसी पुण्य को वह प्राप्त करता है ॥८२॥ इस व्रत को भगवद्

ब्राह्मणाये ऽपि कुर्वन्ति क्षत्रियाः कृष्णमानसाः ।
वैश्या वा शूद्रजन्मानो ये तथा चान्यजातयः ॥८३॥
ते सर्वे मुक्तिमायान्ति भुवं त्यक्त्वा द्विजोत्तम ! ।
मन्त्राणां मन्त्रराजोऽथ यथा स्याद् द्वादशाक्षरः ॥८४॥
व्रतानां च तथा चैषा येन बै त्रिस्पृशा कृता ।
ब्रह्मणा च कृता पूर्वं पश्चाद्राजर्षिभिः कृता ॥८५॥
अन्येषांकाकथावत्सत्रिस्पृशामुक्तिदायिनी । अनेन विधिना ब्रह्मंस्त्रिस्पृशासंभवंव्रतम् ॥८६॥
यः करोति नरो भक्तया शृणु वक्ष्यामि तत्फलम् ।
गङ्गावगाहने ब्रह्मन्वाराणस्यां तु यत्फलम् ॥८७॥
मन्वन्तरसहस्रैस्तु त्रिस्पृशाकारको हि तत् । प्राच्यां च यमुनास्नाने वर्षैर्यत्कोटिभिः फलम्॥८८॥
तत्फलं समवाप्नोति त्रिस्पृशाव्रतकृन्नरः । यत्फलं तु कुरुक्षेत्रे सूर्यग्रहणकोटिभिः ॥८९॥
हेमभारशतैदनैस्त्रिस्पृशाकरणेन तत् । पापकोटिसहस्राणि हत्याकोटिशतानि च ॥९०॥
एकेनैवोपवासेन क्रियते भस्मसादद्भुतम् । त्रिस्पृशाया व्रतं यत्तु अगतीनां गतिप्रदम् ॥९१॥
गतिमिच्छन्ति विप्रर्षे महापापशतानि च । स्वयं कृष्णेन कथितं पाराशर्यस्य चाग्रतः ॥९२॥
प्रकाशयति यश्चेदं लिखित्वा वैष्णवं द्विजे । पापौघैर्ग्रथितस्यापि तस्यमुक्तिर्भविष्यति ॥९३॥
पुण्यैरवाप्यते विद्वन्मन्वन्तरशतैरपि । त्रिस्पृशा दुर्लभा लोके प्राप्यते नैव मानवैः ॥९४॥

भक्त, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र तथा दूसरे भी जो कोई करते हैं ॥८३॥ हे द्विजोत्तम ! वे भूलोक का त्याग करके मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं । जिस तरह सभी मन्त्रों में द्वादशाक्षर **(ओं नमो भगवते वासुदेवाय)** यह मन्त्रराज है ॥८४॥ उसी तरह से त्रिस्पृशा भी सभी व्रतों में उत्तम है । सर्वप्रथम इस व्रत को ब्रह्माजी ने किया इसके बाद राजर्षियों ने किया ॥८५॥ हे वत्स ! तो फिर दूसरों के विषय में क्या कहना है ? त्रिस्पृशा मोक्ष प्रदान करने वाली है । हे ब्रह्मन् ! त्रिस्पृशा का व्रत इसी विधि से सम्भव है॥८६॥ जो कोई भी इस व्रत को करता है, उसको प्राप्त होने वाले फल को बतलाता हूँ । हे ब्रह्मन् ! वाराणसी में गङ्गाजी में तीन मन्वन्तरों तक स्नान करने का जो फल होता है ॥८७॥ उसी फल को वह प्राप्त करता है । प्राची सरस्वती में करोड़ों वर्षों तक यमुनाजी में स्नान करने का जो फल होता है ॥८८॥ त्रिस्पृशा व्रत को करने का वही फल होता है । करोड़ों सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र में स्नान करने से होने वाले फल की प्राप्ति तथा सौ भार वहाँ सुवर्ण दान करने का जो फल होता है त्रिस्पृशा व्रत करने से भी उसी फल की प्राप्ति होती है । त्रिस्पृशा का एक ही उपवास करने से हजारों करोड़ पाप तथा सैकड़ों करोड़ हत्याओं का नाश हो जाता है । त्रिस्पृशा का व्रत गति हीनों को गति प्रदान करने वाला है ॥८९-९१॥ स्वयं भगवान् विष्णु ने महर्षि व्यास के समाने कहा है कि इस व्रत से सैकड़ों पापियों की सद्गति हो जाती है ॥९२॥ कोई भी मनुष्य इसको लिखकर इसे वैष्णव ब्राह्मण को देता है वह यदि पापों से ही मरा होता हो तो भी उसकी मुक्ति हो जाती है ॥९३॥ हे विद्वन् ! त्रिस्पृशा एकादशी बड़े पुण्य से ही सैकड़ों मन्वन्तर के बाद ही प्राप्त होती है । त्रिस्पृशा संसार में दुर्लभ है । मनुष्यों को त्रिस्पृशा दुर्लभ है ॥९४॥

कलौ ये त्रिस्पृशां लब्ध्वा न कुर्वन्ति नराधमाः ।
तेषां जन्मफलं चैव जीवितं विफलं भवेत् ॥९५॥
प्रेतत्वं तैः समुत्तीर्णं विना श्राद्धैर्विनासुतैः । कृता यैस्त्रिस्पृशा विद्वन्सकृत्प्राप्य कलौ युगे॥९६॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे त्रिस्पृशाख्यानं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अतस्त्वां संप्रवक्ष्यामिउन्मीलनीमनुत्तमाम् । यस्याः श्रवणमात्रेणजन्मसंसाबन्धनात्॥१॥
पापात्मा मुच्यते पापैः स्वर्गलोके महीयते । देवताः पितरश्चैव तस्या गतिमवाप्नुयुः॥२॥
विद्यार्थी लभते विद्यां सर्वकामानवाप्नुयात् । तस्या व्रतान्न संदेहः स्वर्गलोके महीयते॥३॥
स्वस्थानं तत्र वै प्राप्तः शिवलोके महीयते ।
अतस्त्वं कुरु भोराजन्वैष्णवानां तु पूजनम् ॥४॥
वैष्णवानां तु ये राजन्सेवां कुर्वन्ति नित्यशः ।
तेषां दण्डं च कुरुषे नो वा तेषां नराधिप ! ॥५॥
भोजनानन्तरं तेषां भोजनं कुरुते नृप । तैरेव पूजितो विष्णुर्यैर्भक्तया तु प्रपूजितः ॥६॥

कलि में जो अधम मनुष्य त्रिस्पृशा एकादशी को प्राप्त करके भी उसका व्रत नहीं करते हैं उसका जन्म तथा जीवन व्यर्थ हो जाता है ॥९५॥ हे विद्वन् ! कलियुग में त्रिस्पृशा को प्राप्त करके जो लोग उसका व्रत कर लेते हैं वे लोग श्राद्ध के नहीं करने पर तथा पुत्रों के नहीं रहने पर भी मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥९६॥
इस तरह श्रीपद्मपुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारदसंवादान्तर्गत त्रिस्पृशाख्यान वर्णन नामक पैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३५।।

उन्मीलनी एकादशी व्रत की विधि का वर्णन

महादेवजी ने कहा— अब मैं आपको उन्मीलनी एकादशी व्रत को वतलाता हूँ उसके श्रवण मात्र से ही पापी पुरुष भी पापों से मुक्त होकर जन्म तथा संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है तथा स्वर्ग लोक में पूजित होता है । उससे देवता तथा पितृगण भी सद्गति को प्राप्त कर लेते है ॥१-२॥ निश्चित रूप से उसका व्रत करने वाला विद्यार्थी विद्या प्राप्त कर लेता है तथा उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं वह स्वर्ग लोक में पूजित होता है ॥३॥ वहाँ पर अपने स्थान को प्राप्त करके वह शिवलोक में जाता है अतएव हे राजन् ! आप वैष्णवों की पूजा करें ॥४॥ हे राजन् ! जो लोग सदा वैष्णवों की सेवा करते हैं आप उन वैष्णवों एवं वैष्णव पूजक को कभी दण्डित न करें ॥५॥ वैष्णवों के भोजन करने के

शालग्रामशिलाभूतां दत्त्वामूर्द्धनि प्रत्यहम् । त्वं धारयसि भूपालकण्ठे नित्यंसुभक्तितः ॥७॥
धूपशेषं तु वै विष्णोर्भत्तया भजसि भूपते। आरार्तिकं सदाकृत्वा भक्तानां वेदयेर्नृप ! ॥८॥

शङ्खोदकं हरेर्मूर्ध्नि भ्रामयित्वा तु भक्तितः ।
नित्यं बिभर्षि शिरसि शेषं यच्छसि वैष्णवान् ॥९॥

नैवेद्यं प्रत्यहं कृत्वा सर्वोपस्करसंयुतम् । विष्वक्सेनाय दत्त्वा वै स्वयं भुनक्षिवाडव॥१०॥
विष्णोर्निवेदितं चान्नं वैष्णवैः सह भुज्यते। नित्यं नामसहस्रेणःभत्तया स्तौषि जनार्दनम् ॥११॥
दीपार्घदानं वै विष्णोःकुरुषे गीतनर्तनम्। श्यामाङ्कुरैः पूजयसे पूज्यन्ते नृपसत्तम ! ॥१२॥
श्यामाङ्कुरै सदा वत्सपूजनं चातिदुर्लभम् । पृथ्वीदानसमं पुण्यं दूर्वया पूजनेकृते॥१३॥

अतो वै नास्ति लोकेऽस्मिन्दूर्वायाः सदृशं भुवि ।
तया वै पूजनं कार्यं विष्णु सायुज्यमिच्छता ॥१४॥

अतस्त्वं कुरुषे नित्यं पूजनं दूर्वया सह। यवाक्षतैविशेषेण पूजनं कुरुषे न वा ॥१५॥
पक्षे पक्षे नृपश्रेष्ठ विधिवद्द्वादशीव्रतम् । यत्कृतं तु महाराज महापापप्रणाशनम्॥१६॥
मोक्षदं सुखदं चैव तथा ऽऽयुष्यप्रदं सदा। एतद्विष्णुव्रतं प्रोक्तं वैष्णवानां तु मोक्षदम्॥१७॥
गृहस्थानां तु सुखदं यतीनां मुक्तिदायकम् । सर्वरोगादिशमनं पवित्रं कायशोधनम् ॥१८॥
व्रतमेतच्च कुरुषे नोवाचैव नराधिप। दशमीवेधरहितं कुरुषे जागरान्वितम्॥१९॥
तुलसीपत्रनिकरैर्नित्यं पूजयसे हरिम् । गोपीचन्दनजं पुण्ड्रं भाले वा नृपसत्तम ! ॥२०॥

बाद जो मनुष्य भोजन करते हैं, उन लोगों ने भक्ति पूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा कर ली ॥६॥ हे राजन्! जो लोग शालग्राम शिला को अपने शिर पर धारण करके प्रतिदिन भक्ति पूर्वक उसको गले में बाँधे रहते हैं॥७॥ राजन् ! आप भगवान् को समर्पित करने के बाद ही बचे हुए धूप का उपभोग करते हैं । राजन्! जो व्यक्ति भक्तों की सदा आरती करता है ॥८॥ राजन् ! शङ्ख का जल श्रीभगवान् के शिर पर घुमाकर तुम उसे अपने शिर पर धारण करते हो और बचे हुए जल को श्रीवैष्णवों को प्रदान करते हो ॥९॥ हे बाडव ! प्रतिदिन सभी सामग्री के साथ श्रीभगवान् को भोग लगाकर उसको स्वयं खाते हैं तथा भगवान् को निवेदित करके ही आप वैष्णवों के साथ भोजन करते हैं । प्रतिदिन आप सहस्रनाम स्तोत्र से श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं । हे राजश्रेष्ठ ! आप साँवा के अङ्कुर से भगवान् की पूजा करते हैं ॥१०-११॥ आप भगवान् को दीप तथा अर्घ समर्पित करके गीत और नृत्य करते हैं ॥१२॥ हे वत्स ! सदा सावाँ के अङ्कुर से पूजन करना अत्यन्त दुर्लभ है । दुर्वा से भगवान् की पूजा करने का फल पृथिवी दान के फल के समान होता है ॥१३॥ अतएव संसार में दुर्वा के समान कोई वस्तु नहीं है । सायुज्य मुक्ति चाहने वाले को सदा भगवान् की पूजा दुर्वा से करनी चाहिए ॥१४॥ इसीलिए तुम सदा दुर्वा से ही भगवान् की पूजा करते हो यव के अक्षतों से भगवान् की पूजा करते हो कि नहीं ?॥१५॥ हे महाराज ! प्रत्येक पक्ष में द्वादशीव्रत को करने से महापापों का नाश होता है ॥१६॥ वह मोक्ष, सुख तथा आयुष्य प्रदान करने वाला है । इसको विष्णु व्रत कहा गया है । यह वैष्णवों को मोक्ष प्रदान करने वाला है ॥१७॥ गृहस्थों को सुख प्रदान करता है । संन्यासियों को मुक्ति प्रदान करता है । समस्त रोगों को शान्त करता है तथा शरीर को शुद्ध करने वाला है ॥१८॥ हे राजन् ! तुम इस व्रत को करते हो या नहीं ? तुम दशमी के वेध से रहित व्रत

धारितं सर्वलोकानां पवित्रीकरणं नृप। अतस्त्वं च धारयसे गोपीचन्दनसंभवम्॥२१॥
ब्रह्महा हेमहारी च मद्यपानी तथैव च। अगम्यगो महापापी तथा ह्यनृतभाषितः॥२२॥
ते सर्वे मुक्तिमायान्ति तिलकधारणादृताः। बिभर्षि कण्ठे नित्यं त्वं धात्रीफलसमुद्भवाम्॥२३॥
मालां मुख्यायुतसमां तुलसीपत्रसंभवाम्। शालग्रामशिलायुक्तं द्वारकायां समुद्भवाम्॥२४॥
नित्यं पूजयसे भूप भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम्। पद्मसंज्ञं पुराणं वै पठसे पुरतो हरेः॥२५॥
चरितं दैत्यराजस्य प्रह्लादस्य च भूपतेः। वासरं वासुदेवस्य सवेधं कुर्वतोनरान्॥२६॥
निवारयसि भूपनालशास्त्रं दृष्ट्वा प्रयत्नतः। सवेधं वासरं विष्णोर्यस्मिन्राष्ट्रे प्रवर्तते॥२७॥
लिप्यते तेन पापेन राजा भवति नारकी। वेधं चतुर्विधं त्यक्त्वा समुपोष्य हरेर्दिनम्॥
कुलकोटिं समुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥२८॥
भूमिपालेन सम्पृष्टो वसुनाथेन गौतमः। यथोवाच तु माहात्म्यं तन्मे निगदतः शृणु॥२९॥

गौतम उवाच

शृणु भूपाल वक्ष्यामि वैष्णवाख्यं महाव्रतम्।
यं श्रुत्वा पापिनः सर्वे मुक्तिमायान्ति तत्क्षणात्॥३०॥
द्वादशीसंभवं पुण्यं मयाऽऽख्यातं न कस्यचित्।
वैष्णवोऽसि महाराज! भक्तो भगवतो नृणाम्॥३१॥

वैष्णवं तु महागुह्यं तद्व्रतं त्वं निशामय। उन्मीलनी नाम पुरा भक्तया मे माधवेन तु॥३२॥

को रात्रि जागरण करते हो कि नहीं॥१९॥ क्या आप प्रतिदिन तुलसीदल समूह से श्रीहरि की पूजा करते हैं? क्या गोपी चन्दन का तिलक शिर पर लगाते हो?॥२०॥ धारण करने से वह सभी मनुष्यों को पवित्र बना देता है। इसीलिए तुम भी चन्दन का तिलक लगाते रहो॥२१॥ ब्रह्मघाती, सुवर्ण चुराने वाला, शराबी तथा अगम्यागमन करने वाले ये महापापी हैं और झूठ बालने वाले भी॥२२॥ गोपी चंदन का तिलक लगाने से इन सबों की भी मुक्ति हो जाती है। क्या तुम सदा आँवले के फल की माला अपने कण्ठ में धारण करते हो? यह तुलसी के दश हजार पत्रों की माला के समान होती है। शालग्राम शिला के साथ गोमती चक्र जो द्वारका में उत्पन्न होता है॥२३-२४॥ वह भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है उसकी पूजा करते हो क्या? क्या श्रीभगवान् के सामने पद्मपुराण का पाठ करते हो?॥२५॥ राजन्! क्या आप एकादशी के दिन श्रीभगवान् के समक्ष दैत्यराज प्रह्लाद के चरित को पढ़ते हैं? क्या आप अपने राज्य में दशमी विद्धा एकादशी व्रत करने वालों को रोकते हैं। जिस राष्ट्र में बेध युक्त एकादशी व्रत किया जाता है, उस राज्य का राजा पापी और नारकी हो जाता है। चार प्रकार के वेध से रहित ही एकादशी व्रत करना चाहिए। ऐसा करने वाला अपने करोड़ों वंशों का उद्धार करके भगवान् विष्णु के लोक मे पूजित होता है॥२६-२८॥ राजा वसुनाथ के द्वारा पूछे जाने पर महर्षि गौतम ने जैसा माहात्म्य बतलाया उसे मैं आपको बतलाता हूँ॥२९॥ **महर्षि गौतम ने कहा**— राजन्! आप सुनें मैं वैष्णव महाव्रत का माहात्म्य बतलाता हूँ। उसके सुनने से पापी भी तत्क्षण मुक्त हो जाते हैं। द्वादशी व्रत से होने वाले पुण्य को मैंने किसी को नहीं बतलाया है। हे महाराज! आप भगवान् के भक्त हैं और वैष्णव पुरुष हैं॥३०-३१॥ वैष्णव व्रत अत्यन्त रहस्यात्मक है, उसे आप सुने। प्राचीन काल में भगवान् ने मुझको

कथिता सुप्रसन्नेन तां ते भूप वदाम्यहम्। एकादशीअहोरात्रं प्रभाते घटिका भवेत् ॥३३॥
उन्मीलनी तु सा ज्ञेया विशेषेण हरिप्रिया। त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥३४॥
कोट्यंशेनैव तुल्यानि मखावेदास्तपांसि च। उन्मीलनीसमं किंचिन्न भूतं न भविष्यति ॥३५॥

प्रयागो न कुरुक्षेत्रं न काशी न च पुष्करः ।
शैलो हिमाचलो नैव न मेरुर्गन्धमादनः ॥३६॥
शैलो न नीलनिषधो न विन्ध्यो नैव नैमिषम् ।
गोदावरी न कावेरी चन्द्रभागा न वेदिका ॥३७॥
न तापी न पयोष्णी च न क्षिप्रा नैव चन्दना ।
चर्मण्वती च सरयूश्चन्द्रभागा न गण्डिका ॥३८॥
गोमती च विपाशा च शोणाख्यश्च महानदः ।
किमत्र बहुनोक्तेन भूयो भूयो नराधिप ॥३९॥

उन्मीलनीसमं किंचिन्न देवः केशवात्परः। उन्मीलनीमनुप्राप्य यैः कृतंकेशवार्चनम् ॥४०॥
पापचक्रसमूहस्य राशयः पतिताः क्षणात् । यस्मिन्मासे महीपाल ! तिथिरुन्मीलनी भवेत् ॥४१॥
तन्मासनाम्ना गोविन्दः पूजनीयः प्रयत्नतः। जातरूपमयः कार्योमासनाम्ना तु माधवः ॥४२॥
स्वशक्तया विश्वरूपस्तु श्रद्धाभक्तिसमन्वितः। पवित्रोदकसंयुक्तं पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥४३॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तं कुम्भं स्त्रग्दामभूषितम् । पात्रं च सोदकं कार्यं गोधूमैश्चापि पूरितम् ॥४४॥
नानारत्नैश्च संयुक्तं नानागन्धैः प्रपूजितम् । मल्लिकामोदसंयुक्तं जातीपुष्पैः प्रपूजितम् ॥४५॥

उन्मीलनी नामक एकादशी को प्रसन्न होकर बतलाया उसे मैं बतला रहा हूँ । दिन और रात भर रहने के वाद, प्रातःकाल भी दो घड़ी रहे वह एकादशी उन्मीलनी एकादशी होती है । वह श्रीहरि को विशेष रूप से प्रिय है । त्रैलोक्य में जितने तीर्थ हैं तथा पवित्र मन्दिर हैं ॥३२-३४॥ सभी यज्ञ, वेद तथा तपस्या ये सभी उस एकादशी के करोड़वें अंश के तुल्य है । उन्मीलनी के समान कोई भी व्रत न तो हुआ और न होगा॥३५॥ प्रयाग, कुरुक्षेत्र, काशी, पुष्कर, हिमालय पर्वत, सुमेरु, गन्धमादन, नीलगिरि, निषध पर्वत, विन्ध्यगिरि, नैमिषारण्य, गोदावरी, काबेरी, चन्द्रभागा, वेदिका, तापी, पयोष्णी, क्षिप्रा, चन्दना, चर्मण्वती, सरयू, गण्डिका, गोमती, विपाशा, तथा शोण नदी इनमें से कोई भी उन्मीलनी एकादशी के समान फल देने वाले नहीं हैं । राजन् ! बार-बार कहने से क्या लाभ है ? उन्मीलनी के समान कुछ भी पुण्यवान् नहीं है और भगवान् केशव से बढ़कर कोई देवता भी नहीं है । उन्मीलनी एकादशी के दिन जिन लोगों ने भगवान् केशव की आराधना की, उनके पाप चक्र समूह की राशियाँ उसी समय विनष्ट हो गयीं । राजन्! जिस महीने में उन्मीलनी तिथि होती है ॥३६-४१॥ उस महीने के नाम से भगवान् गोविन्द की पूजा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए । उस महीने के नाम से भगवान् माधव की सुवर्ण की मुर्ति बनवायें ॥४२॥ श्रद्धा भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् की मूर्ति अपनी शक्ति के अनुसार बनानी चाहिए । पवित्र जल से पूर्ण घट में पञ्चरत्न डाले, गन्ध, पुष्प, अक्षत तथा माला से उसको अलंकृत करे, जल से भरे पात्र को गेहूँ से भर दे ॥४३-४४॥ अनेक रत्नों के साथ अनेक प्रकार के गन्धों से भगवान् की पूजा करें । मल्लिका की

श्वेताश्यैस्तण्डुलैश्चैव पूरणीयः प्रयत्नतः। प्रदद्याद्वस्त्रयुग्मं तु उपवीतं तु सोत्तरम् ॥४६॥
उपानहौ तु राजर्षे श्वेतं छत्रं च सुन्दरम् । भोजनं जलपात्रं च सप्तधान्यं तिलैःसह ॥४७॥
रूप्यं चैव तु कार्पासं पायसं मुद्रिका हरेः ।
धेनुर्वाऽत्र तु दातव्या वत्सालङ्कारसंयुता ॥४८॥
सुवर्णशृङ्गी रौप्यखुरीं ताम्रपृष्ठीं तथैव च । कांस्यदोहां रत्नपुच्छीं द्वद्याद्वै गुरुवेतदा ॥४९॥
शय्यां सोपस्करां दद्यात्साधवे भक्तिपूर्वकम् ।
धूपं दीपं तु नैवेद्यं फलपत्रं निवेदयेत् ॥५०॥
पूजनीयो महाभक्तैर्मन्त्रैरेभिस्तु केशवः। तुलसीपत्रसंयुक्तैः पुष्पैः कालोद्भवैस्तथा ॥५१॥
मासनाम्नैव चरणो जानुनी विष्णुरूपिणे । गुह्ये तु गुह्यपतये कटौ वै पीतवाससे॥५२॥
ब्रह्ममूर्तिभृतेनाभावुदरे विश्वयोनये । हृदये ज्ञानगम्याय कण्ठे वैकुण्ठमूर्तये॥५३॥
ऊर्ध्वगाय ललाटे तु बाहौ दक्षान्तकारिणे । उत्तमाङ्गे सुरेशाय सर्वाङ्गे सर्वमूर्तये॥५४॥
स्वनाम्ना चायुधादीनि पूजनीयानि भक्तितः। अर्घदानं प्रकर्तव्यं नालिकेरादिभिः समम्॥५५॥
शङ्खोपरिजलं कृत्वा गन्धपुष्पाक्षतान्वितम्। सूत्रेण वेष्टितं कृत्वा दद्यादर्घं विधानतः॥५६॥
देवदेव महादेव ! श्रीकेशव ! जनार्दन ! । सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु पुण्यराशिविवर्धन॥५७॥
शोकमोहमहापापान्मामुद्धर भवार्णवात्। सुकृतं न कृतं किंचिज्जन्मकोटिशतैरपि ॥५८॥

सुगन्धित जूही के फूल से श्रीभगवान् की पूजा करें ॥४५॥ उसके पश्चात् श्वेत चावल पात्र में भरकर समर्पित करे । भगवान् को दो वस्त्र, यज्ञोपवीत और उत्तरीय समर्पित करे ॥४६॥ जूते, श्वेत छत्र, भोजन, जल पात्र तथा तिलों के साथ जल पात्र भगवान् को चढ़ाये । चाँदी, कपास, क्षीरान्न तथा अङ्गूठी चढ़ाये। बछड़े तथा अलङ्कार के साथ गोदान करना चाहिए ॥४७-४८॥ उसकी सींग में सुवर्ण मढ़ाये, खुर में चाँदी तथा पीठ पर ताम्बा मढ़ाये । उसका दोहन पात्र कांसे का होना चाहिए और पूंछ मे रत्न बाँधे । इस प्रकार की गौ अपने गुरु को देना चाहिए ॥४९॥ उनको सभी उपकरणों के साथ भक्तिपूर्वक शय्या दान दें । आचार्य को धूप, दीप, नैवेद्य तथा फल समर्पित करे ॥५०॥ महाभक्तों को चाहिए कि वे तुलसी पत्र तथा तात्कालिक पुष्पों से भगवान् केशव की पूजा करें । महीने के नाम से भगवान् के चरणों की पूजा करें, **विष्णु रूपिणे नमः** कहकर भगवान् के दोनों घुटनों की पूजा करें । **गुह्यपतये नमः** से गुप्ताङ्गों की पूजा करें । **पीतवासरसे नमः** से कमर की पूजा करें ॥५१-५२॥ **ब्रह्ममूर्ति भृते नमः** से नाभि की पूजा करे, **विश्वयोनये नमः** से उदर की पूजा करें, **ज्ञानगम्याय नमः** से हृदय की पूजा करें । **वैकुण्ठमूर्तये नमः** से कण्ठ की पूजा करें॥५३॥ **ऊर्ध्वगाय नमः** से ललाट की पूजा करें, **दक्षान्तकारिणे नमः** से दोनों भुजाओं की पूजा करें, **सुरेशाय नमः** से शिर की पूजा करें और **सर्वमूर्तये नमः** से भगवान् के सर्वाङ्ग की पूजा करें ॥५४॥ अपने नाम से श्रीभगवान् के सभी आयुधों आदि की भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए । नारियल आदि से भगवान् को अर्घदान करना चाहिए ॥५५॥ शङ्ख में जल भरकर उसमें चन्दन, पुष्प तथा अक्षत आदि डाले फिर उसमें सूत्र लपेट दे । इसी तरह से अर्घ प्रदान करे । इसके बाद भगवान् की निम्नांकित मन्त्रों से स्तुति करे हे देवाधिदेव ! हे महादेव ! हे केशव ! हे जनार्दन ! हे सुब्रह्मण्य, हे पुण्य समूह को बढ़ाने वाले भगवन् ! आपको नमस्कार है । आप शोक मोह तथा महापाप से तथा संसार सागर से मेरा उद्धार करें ।

तथापि मां महास्वामिन्समुद्धर भवार्णवात् । व्रतेनानेन देवेश ! ये चान्ये मम पूर्वजाः ॥५९॥
वियोनिश्च गताश्चान्ये पापमृत्युवशं गताः । ये भविष्यन्ति येऽतीताः प्रेतलोकात्समुद्धर ॥६०॥
आर्तस्य मम दीनस्य भक्तिरव्यभिचारिणी । दत्तमर्घं मया तुभ्यं भक्त्या गृह्णीष्व माधव ॥६१॥
दत्त्वार्घं धूपदीपाद्यैर्नैवेद्यैर्विष्णुसंभवैः । स्तोत्रैर्नीराजनैर्गीतैर्नृत्यैः संतोषयेद्धरिम् ॥६२॥
वस्त्रैर्दानैश्च गोदानैर्भोजनैस्तोषयेद्गुरुम् । तथा तथा विधातव्यं गुरुर्वै प्रीतिमाप्नुयात् ॥६३॥
लोकानां तारणार्थाय धात्रा सृष्टो गुरुर्यतः । अतो वै गुरुपूजा च कर्त्तव्या वै प्रयत्नतः ॥६४॥
अहितं यो नाशयति स्वहितं दर्शयेत्सदा । स गुरुः स च विज्ञेयः सर्वधर्मार्थकोविदः ॥६५॥
अकुर्वन्वित्तशाठ्यं तु गुरवे तं निवेदयेत् । गुरोर्निवेदिते भूप ! परिपूर्णं भवेद् व्रतम् ॥६६॥
कृत्वा दिवातनं कर्म भोजनं ब्राह्मणैः सह । कर्त्तव्यं नृपशार्दूल ! दिनं नेयं कथानकैः ॥६७॥
अनेन विधिना यस्तु कुर्यादुन्मीलनीव्रतम् । कल्पकोटिसहस्राणि वसतेविष्णुसन्निधौ ॥६८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे
उन्मीलनीव्रतं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

मैंने सैकड़ों जन्मों से कोई पुण्य कर्म नहीं किया है ॥५६-५८॥ फिर भी हे स्वामिन् ! इस व्रत के कारण आप भव सागर से मेरा उद्धार करें । हे देवेश ! मेरे जो अतीत कालिक पूर्वज पाप तथा मृत्यु के कारण निन्दित योनि में चले गये हैं । भविष्यत् कालिक तथा अतीत कालिक मेरे जो वंशज हैं उनका आप प्रेतलोक से उद्धार करें ॥५९-६०॥ मैं दीन तथा आर्त हूँ । मेरी अव्यभिचारिणी भक्ति आप में हैं । मैंने भक्ति पूर्वक आपको अर्घ प्रदान किया है उसे आप स्वीकार करें ॥६१॥ अर्घ प्रदान करके धूप, दीप तथा भगवान् विष्णु के नैवेद्य के द्वारा स्तुति तथा आरती के द्वारा गीत तथा नृत्य के द्वारा श्रीहरि को सन्तुष्ट करना चाहिए ॥६२॥ फिर वस्त्र दान तथा गोदान को देकर आचार्य को सन्तुष्ट करे । यह सब ऐसा करना चाहिए कि उससे गुरु प्रसन्न हो जायँ ॥६३॥ ब्रह्माजी ने लोगों का उद्धार करने के लिए ही गुरु की सृष्टि की है । अतएव प्रयत्न पूर्वक गुरु की पूजा करनी चाहिए ॥६४॥ जो अकल्याण का नाश करके कल्याण की सृष्टि करे, सभी धर्मों एवं अर्थों के ज्ञाता हो उसी को गुरु जानना चाहिए ॥६५॥ गुरु की सेवा में वित्तशाठ्य न करे । राजन् ! गुरु को ही सभी पूजन सामग्री निवेदित करने पर व्रत पूरा होता है ॥६६॥ दिन के सभी कार्यों को करके ब्राह्मणों के साथ भोजन करें । हे राजन् ! पूरा दिन कथा वार्ता मे बिताना चाहिए ॥६७॥ इसी विधि से जो उन्मीलनी व्रत करता है । वह हजारों करोड़ कल्पों तक भगवान् विष्णु के सन्निकट में निवास करता है ॥६८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारदसंवाद के अन्तर्गत उन्मीलनी व्रत वर्णन नामक छत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३६।।

सैंतिसवाँ अध्याय

नारद उवाच

कीदृशी स्यान्महादेव पक्षवर्धिनिसंज्ञिका। यया वै कृतया जन्तुर्महापापात्प्रमुच्यते ॥१॥

श्रीमहादेव उवाच

अमा वा यदि वा पूर्णा संपूर्णा जायते यदा ।
भूत्वा वै नाडिका षष्टिर्वर्तते प्रतिपद्दिने ॥
अश्वमेधायुतैस्तुल्या सा भवेत्पक्षवर्द्धिनी ॥२॥

नारद उवाच

पूजाविधिं तु पृच्छामि साम्प्रतं देवसत्तम !। यत्कृते तु महादेव ! महाफलमवाप्नुयात् ॥३॥

महादेव उवाच

पूजाविधिं प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं द्विजनन्दन ! ।
पूजिते चार्चिते विष्णौ फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥४॥

येन पूजाविधानेन तुष्टिं प्राप्नोति माधवः । अव्रणं जलपूर्णं च कुम्भं चन्दनचर्चितम् ॥५॥
पञ्चरत्नसमायुक्तं पुष्पमालाभिवेष्टितम् । स्थाप्यं ताम्रमयं पात्रं सगोधूमं घटोपरि ॥६॥
सौवर्णं कारयेद्देवं माससंज्ञाभिनामकम्। पञ्चामृतेन विधिना स्नपनं सुमनोरमम् ॥७॥
कारयेद्देवदेवेशं जगन्नाथं जगत्पतिम्। विलेपनं तु कर्त्तव्यं कुङ्कुमागरुचन्दनैः ॥८॥
वस्त्रयुग्मं च दातव्यं छत्रोपानहसंयुतम्। पूजयेद्देवताधीशं कुम्भपात्रोपरि स्थितम् ॥९॥
पद्मनाभाय वै पादौ जानुनी विश्वमूर्त्तये । ऊरू वै ज्ञानगम्याय कटी ज्ञानप्रदाय च ॥१०॥

पक्षवर्द्धिनी एकादशी व्रत की विधि का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे महादेव ! पक्षवर्द्धिनी एकादशी कैसे होती है ? जिसके करने से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ॥१॥ **श्रीमहादेवजी ने कहा—** जब पूर्णिमा अथवा अमावस्या पूरे दिन-रात होकर दूसरे दिन प्रतिपत् में भी कुछ उसका अंश चला जाय तो वह पक्षवर्द्धिनी होती है । वह पक्षवर्द्धिनी दश हजार अश्वमेधों के समान पुण्य प्रदान करती है ॥२॥ **नारदजी ने कहा—** हे देव श्रेष्ठ ! मैं उस पूजा विधि को जानना चाहता हूँ जिसके करने से महाफल की प्राप्ति होती है ॥३॥ **महादेवजी ने कहा—** हे द्विजनन्दन! मैं पूजा की विधि को बतलाता हूँ । भगवान् विष्णु की पूजा तथा अर्चना करके मनुष्य निश्चित रूप से फल को प्राप्त करता है ॥४॥ उस पूजा विधि से श्रीभगवान् प्रसन्न होते हैं । चन्दन जिसमें लगाया गया हो ऐसे निश्छिद्र घट को जल से भर दे । उसमें पञ्चरत्न डालकर उसे पुष्प माला से वेष्टित करे । उस कलश के ऊपर गेहूँ से भरकर ताम्बें का पात्र रखे ॥५-६॥ उस महीने के नाम से भगवान् विष्णु की सुवर्ण की मूर्ति वनाये । उस मूर्ति को पञ्चामृत से अच्छी तरह से स्नान कराये । जगत्पति देवाधिदेव श्रीभगवान् की मनोहर मूर्ति बनवाये । फिर उसमें कुङ्कुम, अगरु और चन्दन का लेप लगाये ॥७-८॥ श्रीभगवान् को दो वस्त्र, तथा छत्र भी समर्पित कर उपानह भी समर्पित करे । कुम्भपात्र पर स्थित श्रीभगवान् की फिर पूजा करे ॥९॥

उदरं विश्वनाथाय हृदयं श्रीधराय च। कण्ठं कौस्तुभकण्ठाय बाहू क्षत्रान्कारिणे ॥११॥
ललाटं व्योममूर्ध्ने तु शिरो वै सर्वरूपिणे। स्वनाम्ना चैव कमलं सर्वाङ्गीं दिव्यरूपिणीम्॥१२॥
एवं विधिवत्संपूज्य ततोऽर्घं दापयेत्सुधीः। नालिकेरेण शुभ्रेण देवदेवस्य चक्रिणः॥१३॥
अनेनैवार्घदानेन संपूर्णं जायते व्रातम्। संसारार्णवमग्नं मां समुद्धर जगत्पते ! ॥१४॥

त्वमीशः सर्वलोकानां त्वं साक्षाच्च जगत्पतिः ।
गृहाणार्घं मया दत्तं पद्मनाथ नमोऽस्तु ते ! ॥१५॥

नैवेद्यानि सुहृद्यानि षड्रसानि विशेषतः। देयानि तु विशेषेण केशवाय सुभक्तितः॥१६॥
नागपत्रं सकर्पूरं दद्याद्देवस्य भक्तितः। घृतेन दीपकं कुर्यात्तिलतैलेन वा पुनः॥१७॥

कृत्वा सम्यग्विधानेन गुरोः पूजां प्रकारयेत् ।
वस्त्राणि चैव चोष्णीषं कञ्चुकं च प्रदापयेत् ॥१८॥

दक्षिणां च यथाशक्तया गुरवे संप्रदापयेत् । भोजनं चैव ताम्बूलंदत्त्वा चार्घं प्रदापयेत् ॥१९॥
स्ववित्तस्यानुसारेण यथाशक्तया तु निर्द्धनैः। कार्यासम्यक्प्रयत्नेनद्वादशी पक्षवर्द्धिनी॥२०॥
ततो जागरणं कुर्याद्गीतनृत्यसमन्वितम्। पुराणपाठसहितं हास्याह्लादसमन्वितम् ॥२१॥
स्तुवन्ति च प्रशंसन्ति जागरं चक्रधारिणः। नित्योत्सवोभवेत्तेषां गृहे वै दशजन्मसु॥२२॥
अतो धन्यतमा चेयं कर्त्तव्या पक्षवर्धिनी। कृत्वा तु सकलं पुण्यं फलं प्राप्नोत्यसंशयम्॥२३॥

पद्मनाभाय नमः से उनके चरणों की पूजा करे, **विश्वमूर्तये नमः** कहकर घुटनों की पूजा करे। **ज्ञानगम्याय नमः** से ऊरुभाग की पूजा करे, **ज्ञान प्रदाय नमः** से कमर की पूजा करे ॥१०॥ **विश्वनाथाय नमः** से उदर की पूजा करें, **श्रीधराय नमः** से हृदय की पूजा करे। **कौस्तुभकण्ठाय नमः** से कण्ठ की पूजा करे। **क्षत्रान्तकारिणे नमः** से दोनों बाहुओं की पूजा करे ॥११॥ **व्योममूर्ध्ने नमः** से ललाट की पूजा करे। **सर्वरूपिणे नमः** से शिर की पूजा करे। अपने नाम से कमल की तथा दिव्यरूपिणी सर्वाङ्गी की पूजा करे॥१२॥ इस तरह से विधि पूर्वक पूजा करके विद्वान् को चाहिए कि वह अर्घ प्रदान करे। अर्घ में श्वेत नारियल भगवान् को देना चाहिए ॥१३। इस अर्घ प्रदान से ही व्रत की पूर्ति हो जाती है। इसके बाद प्रार्थना करे। हे जगत्पते ! संसार सागर में डूबते हुए मेरा आप उद्धार करें ॥१४॥ आप सम्पूर्ण लोकों के नियामक और जगत् के साक्षात् स्वामी हैं। हे पद्मनाभ ! आप अर्घ को स्वीकार करें। आपको नमस्कार है ॥१५॥ विशेष रूप से श्रीभगवान् को षड्रस सम्पन्न नैवेद्य भक्ति पूर्वक समर्पित करना चाहिए ॥१६॥ कर्पूर मिलाकर श्रीभगवान् के नाम पत्र समर्पित करे। भगवान् के समक्ष घी का अथवा तिल के तेल का दीपक जलाये ॥१७॥ अच्छी तरह से विधान करके फिर गुरु की पूजा करनी चाहिए। उनको वस्त्र पगड़ी तथा कुर्ता समर्पित करें ॥१८॥ अपनी शक्ति के अनुसार आचार्य को दक्षिणा दे। फिर भोजन और पान देकर अर्घ प्रदान करें ॥१९॥ निर्धन व्यक्तियों को भी अपने वित्त तथा शक्ति के अनुसार पक्षवर्द्धिनी द्वादशी का व्रत अच्छी तरह से करना चाहिए ॥२०॥ उसके पश्चात् गीत, पुराण पाठ हास्य तथा आह्लाद पूर्वक रात्रि में जागरण करना चाहिए ॥२१॥ श्रीभगवान् के लोक में रहने वाले चक्रधारी पुरुष रात्रि जागरण की स्तुति और प्रशंसा करते हैं। रात्रि जागरण करने वालों के घर में दश जन्मों तक सदैव उत्सव होता रहता है॥२२॥ अतएव यह पक्षवर्द्धिनी द्वादशी धन्यतमा है। इसको अवश्य करना चाहिए। सम्पूर्ण पुण्यों को

पक्षवर्धिनीमाहात्म्यं ये शृण्वन्ति मनीषिणः। तैः कृतं सत्कृतं सर्वं यावदाभूतसंप्लवम्॥२४॥
पञ्चाग्निसाधने पुण्यं यच्च स्यात्तीर्थसाधने। तत्पुण्यं समवाप्नोति विष्णोर्जागरकारणात्॥२५॥
पक्षवर्धिनिका पुण्या पवित्रा पापनाशिनी। उपवासकृतां विप्र हत्याकोटिविनाशिनी॥२६॥
वसिष्ठेन कृता पूर्वं भारद्वाजेन वै मुने। ध्रुवेण चाम्बरीषेणकृतेयं विष्णुवल्लभा॥२७॥
इयं काशी समापुण्या इयं वै द्वारका समा।
उपोषिताच भक्तेन वाञ्छितञ्च ददात्यसौ॥२८॥
इयं धन्या धन्यतमा हत्यायुतविनाशिनी। कर्त्तव्या तु विशेषेण वैष्णवैर्ज्ञानतत्परैः॥२९॥
अहो सर्वेश्वरो देवः संसेव्यो व्रततत्परैः। किमन्यद्बहुनोक्तेन कर्तव्यं व्रतमुत्तमम्॥३०॥
यथा च वर्धते चन्द्रः सिते पक्षे विशेषतः। तथा वै वर्धते भक्तःकरणात्पक्षवर्धिनी॥३१॥
सूर्योदये यथा ध्वान्तं नश्यते तत्क्षणादपि। पक्षवर्धिन्यनुष्ठानात्तथाऽघं नाशमप्नुयात्॥३२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे पक्षवर्द्धिन्येकादशीमाहात्म्यं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

करने वाला अवश्य फल प्राप्त करता है ॥२३॥ जो मनीषी पक्षवर्द्धिनी के माहात्म्य को सुनते हैं, वे प्रलय काल पर्यन्त तक के लिए सभी पुण्यों को कर लेते हैं ॥२४॥ पञ्चागिन का सेवन करने से तथा तीर्थों में निवास करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसी पुण्य को मनुष्य रात्रि जागरण करके प्राप्त कर लेता है ॥२५॥ हे विप्र ! पक्षवर्धिनी व्रत करने वालें के सभी पापों तथा करोड़ों हत्याओं से उत्पन्न पापों का विनाश कर देती है ॥२६॥ हे मुने ! इस भगवान् विष्णु के प्रिय पक्षवर्धिनी का व्रत पहले, वसिष्ठ, भरद्वाज, ध्रुव तथा अम्बरीष कर चुके हैं ॥२७॥ यह काशी तथा द्वारकापुरी के समान पवित्र है। जो कोई भक्त इसका व्रत करता है उसको यह वाञ्छित फल प्रदान करती है ॥२८॥ यह धन्य तथा धन्यतर है। दशो हजार हत्याओं के पापों का विनाश करती है। ज्ञानी वैष्णवों को इसको अवश्य करना चाहिए ॥२९॥ व्रत करने वालों को श्रीभगवान् की सेवा करनी चाहिए। बहुत कहने से क्या लाभ है ? इस उत्तम व्रत को करना चाहिए ॥३०॥ जिस तरह से शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा विशेष रूप से बढ़ते हैं, उसी तरह पक्षवर्धिनी व्रत करने से भक्त की वृद्धि होती है ॥३१॥ जिस तरह सूर्योदय होते ही अन्धकार विनष्ट हो जाता है उसी तरह पक्षवर्धिनी द्वादशी का अनुष्ठान करने से पापों का नाश हो जाता है ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत, पक्षवर्धिनी एकादशी माहात्म्य वर्णन नामक सैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

श्रृणु नारद वक्ष्यामि माहात्म्यं जागरस्य च ।
यच्छ्रुत्वा मुक्तिमाप्नोति महापापी न संशयः ॥१॥

नारद उवाच

अहो विश्वेश्वरो विष्णुः पवित्रीकरणः सदा ।
तस्योपवासमाहात्म्यं श्रुतं हि त्वन्मुखाच्छिव ॥२॥
तथाऽपि श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं जागरस्य तु ।
कीदृग्जागरमाहात्म्यं रात्रौ भक्तिस्तु कीदृशी ॥३॥
प्रहरेषु च या पूजा वद विश्वेश्वर प्रभो । त्वं लोकेषु सदा पूज्यस्त्वं हि देवो जनार्दनः ॥४॥
त्वं हि विश्वेश्वरो देवो यतो भक्तिर्जनार्दने। सर्वेषां चैवभक्तानां त्वं च श्रेष्ठ उमापतिः ॥५॥
लोकेऽस्मिन्सर्वदा भक्त्या तवाख्या वर्तते सदा ।
अतो येन प्रकारेण लोकानां मुक्तिरेव च । विश्वेश्वर वद त्वं तु माहात्म्यं जागरस्यतु ॥६॥

महादेव उवाच

एकादश्यां जनो विष्णुं रात्रौ संपूज्य भक्तितः ।
कुर्याज्जागरणं विष्णोः पुरतो वैष्णवैः सह ॥७॥
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं पुराणपठनं तथा। धूपं दीपं न नैवेद्यं पुष्पं गन्धानुलेपनम् ॥८॥
फलमर्घं तथा श्रद्धादानमिन्द्रियसंयमम्। सत्यान्वितंच विप्रेन्द्र वचोयुक्तंक्रियान्वितम्॥९॥
विनिद्रं च मुदा युक्तो यः करोति नरः सदा ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो जायते विष्णुवल्लभः ॥१०॥

एकादशी के दिन जागरण करने का माहात्म्य

महादेवजी ने कहा— हे नारद ! सुनों मैं जागरण का माहात्म्य बतलाता हूँ । उसको सुनने वाला महापापी भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥१॥ **नारदजी ने कहा—** पवित्र करने वाले भगवान् विष्णु धन्य हैं। हे शिवजी ! उनके उपवास का माहात्म्य मैं आपके मुख से सुना हूँ । फिर भी मैं जागरण का माहात्म्य सुनना चाहता हूँ । जागरण का माहात्म्य क्या है ? रात्रि में कैसी भक्ति होती है ॥३॥ हे विश्वेश्वर ! प्रत्येक प्रहरों में जो पूजा होती है उसे आप बतलायें । आप सभी लोकों में सदा पूज्य हैं । आप ही जनार्दन देव हैं ॥४॥ आप ही विश्वेश्वर देव हैं क्योंकि आप में भगवान् जनार्दन के प्रति भक्ति है । सभी देवों में हे उमापति ! आप ही सभी भक्तों में श्रेष्ठ हैं ॥५॥ लोक में भक्ति के कारण आपकी ख्याति है । अतएव संसारी जीवों को जिस साधन के द्वारा मुक्ति प्राप्त हो आप उस जागरण के माहात्म्य का वर्णन करें ॥६॥ **महादेवजी ने कहा—** भक्त को चाहिए कि वह एकादशी के दिन रात्रि में भगवान् विष्णु की पूजा करके भगवान् विष्णु के समक्ष वैष्णवों के साथ जागरण करे ॥७॥ प्रसन्नता पूर्वक जागते हुए गीत, वाद्य, नृत्य, पुराण पाठ, धूप, द्वीप, नैवेद्य, पुष्प समर्पण तथा भगवान् को चन्दन समर्पण, फल

रात्रौ जागरणे प्राप्ते निद्रां कुर्वन्ति वैष्णवाः ।
हारितं चोपवासन्तैर्व्रतं वै विष्णुसंज्ञकम् ॥११॥
ये कुर्वन्ति नराः प्राज्ञ जागरे विष्णुसंज्ञके। जागरं कृष्णभावेन न स्वपन्ति कदाचन ॥१२॥
कृष्णस्य नाम मनसा वदन्ति च पुनः पुनः ।
तेतु धन्यतमा ज्ञेया अस्यांरात्रौ विशेषतः ॥१३॥
क्षणेक्षणे तु गोदानं घट्यां चैव चतुर्गुणम्। प्रहरे कोटिगुणितंचतुर्ष्वमेष्वसङ्ख्यकम् ॥१४॥
जागरे निमिषार्धे तु केशवाग्रे विशेषतः ।
तत्फलं कोटिगुणितं तस्य सङ्ख्या न विद्यते ॥१५॥
नर्तनं कुरुते यस्तु केशवाग्रे नरोत्तमः। न फलं हीयते तस्य आजन्ममरणान्तिकम् ॥१६॥
साश्चर्यं चैव सोत्साहं पापालापादिवर्जितम्। प्रदक्षिणसमायुक्तं नमस्कारपुरःसरम् ॥१७॥
नीराजनसमायुक्तमनिर्विण्णेन चेतसा। यामे यामे महाभाग कुर्यादारार्तिकं हरेः ॥१८॥
षड्विंशगुणसंयुक्तमेकादश्यां च जागरम्। यः करोति नरो भक्त्या न पुनर्जायते भुवि ॥१९॥
य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः। जागरं वासरे विष्णोर्लीयते परमात्मनि ॥२०॥
धनवान्वित्तशाठ्येन यः करोति प्रजागरम्। तेनात्मा हारितो नूनं कितवेन दुरात्मना ॥२१॥
विष्णुजागरणे प्राप्त उपहासं करोति यः। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥२२॥

समर्पण अर्घ प्रदान करते हुए श्रद्धा एवं इन्द्रिय संयम, संयमित वाणी तथा पूजादि क्रिया को करते हुए रात्रि में जो जागरण करता है, वह भगवद् भक्त सभी पापों से मुक्त हो जाता है। रात्रि जागरण में समर्थ जो वैष्णव सोते हैं, वे भगवान् विष्णु के इस व्रत के पुण्य को चुरवा देते हैं ॥८-११॥ जो मनुष्य भगवान् विष्णु के इस जागरण में जागते रहते है कभी सोते नहीं है ॥१२॥ प्रेम पूर्वक भगवान् के नामों का बार-बार उच्चारण करते हैं, वे जागरण की रात्रि में विशेष रूप से धन्य हैं ॥१३॥ क्षण-क्षण पर भगवन्नामोच्चारण करने पर प्रत्येक क्षण गोदान करने का फल प्राप्त होता है। घड़ी-घड़ी पर नामोच्चारण करने पर व्रत का चार गुना फल होता है। एक-एक प्रहर तक भगवान्नाम कीर्तन से करोड़ गुणा तथा चारो प्रहर तक नमोच्चारण करने पर असंख्य फल की प्राप्ति होती है ॥१४॥ भगवान् के समक्ष आधा निमेष जागरण करने पर व्रत का फल करोड़ गुणा हो जाता है उसकी कोई संख्या नहीं होती है ॥१५॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य भगवान् के समक्ष नृत्य करता है, उसको जो फल प्राप्त होता है, वह जन्म से लेकर मरण तक कभी घटता नहीं है ॥१६॥ हे महाभाग! आश्चर्य और उत्साह के साथ, किसी प्रकार के पाप की बात किए विना भगवान् की प्रदक्षिणा और नमस्कार करते हुए प्रसन्न मन से प्रत्येक प्रहर में श्रीहरि का नीराजन तथा आरती करना चाहिए ॥१७-१८॥ जो मनुष्य एकादशी के दिन भक्ति पूर्वक छब्बीस गुणों से युक्त जागरण करता है वह मनुष्य इस संसार में पुनः जन्म नहीं लेता है ॥१९॥ जो एकादशी के दिन कृपणता किए विना भगवान् विष्णु का जागरण करता है, वह भगवान् में ही लीन हो जाता है ॥२०॥ यदि कोई धनवान् व्यक्ति रात्रि जागरण में कृपणता करता है, वह दुष्ट पापी अपनी आत्मा का अपहरण करता है ॥२१॥ जो मनुष्य विष्णु जागरण का उपहास करता है वह साठ हजार वर्षों तक विष्ठा का कीड़ा होता है ॥२२॥ जो वेदज्ञ ब्राह्मण

वेदविद्ब्राह्मणो यस्तु नर्त्तनेन विशेषतः । उपहासपरः प्राप्तः स वै चाण्डाल उच्यते ॥२३॥
निभिष निमिषार्धं वा यः करोति प्रजागरम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नोति पदमव्ययम् ॥२४॥
वेदशास्त्ररतो नित्यं नित्यं वै यज्ञयाजकः । रात्रौ जागरणेप्राप्ते निन्दां कुर्वन्व्रजत्यधः ॥२५॥
मम पूजां प्रकुर्वाणौ विष्णुनिन्दासु तत्परः । एकविंशत्कुलेनैव नरकं प्रतिपद्यते ॥२६॥
विष्णुः शिवः शिवो विष्णुरेकमूर्तिर्द्विधा स्थितः ।
तस्मात्सर्वप्रकारेण नैव निन्दां प्रकारयेत् ॥२७॥
दष्टाः कलिभुजङ्गेन स्वपन्ति मधुहाहनि । कुर्वन्ति जागरं नैव मायया त च मोहिताः ॥२८॥
प्राप्ता ह्येकादशी येषां कलौ जागरणं विना ।
ते विनष्टा नसंदेहो यस्माज्जीवितमध्रुवम् ॥२९॥
उद्धृतं नेत्रयुग्मं तु दत्त्वा वै वैष्णवं पदम् । कृतं ये नैव पश्यन्ति पापिनो हरिजागरम् ॥३०॥
अभावे वाचकस्याथ गीतं नृत्यं तु कारयेत् ।
वाचके सति देवर्षे पुराणं प्रथमं पठेत् ॥३१॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयायुतस्य च । पुण्यं कोटिगुणं वत्स विष्णोर्जागरणे कृते ॥३२॥
पितृपक्षे मातृपक्षे भार्यापक्षे तु वाडव । कुलान्युद्धरते चैतान्कृत्वा जागरणं हरेः ॥३३॥
उपोषणदिने विद्धे जागरं पूजनं हरेः । वृथा दानादिकं सर्वं कृतघ्नेषु कृतं यथा ॥३४॥
उपोषणदिने विद्धे प्रारब्धे जागरे स्थितिम् । विहाय स्थानं तद्विष्णुः शापं दत्त्वा प्रगच्छति ॥३५॥

नर्तन के विषय में विशेष रूप से उपहास करता है, वह चाण्डाल कहलाता है ॥२३॥ जो एक निमेष अथवा आधा निमेष भी जागरण करता है वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को प्राप्त करके शाश्वत पद को प्राप्त कर लेता है ॥२४॥ सदा वेद शास्त्रों का अध्ययन करने वाला, यज्ञ करते रहने वाला भी व्यक्ति यदि जागरण की निन्दा करता है तो उसका अध:पतन हो जाता है ॥२५॥ जो मेरी पूजा करता है किन्तु भगवान् विष्णु की निन्दा करता है वह अपने इकीस पीढ़ी के पूर्वजों के साथ नरक में चला जाता है ॥२६॥ विष्णु ही शिव हैं, शिव ही विष्णु हैं । ये एक ही देव की दो मूर्तियाँ हैं अतएव किसी भी प्रकार भगवान् विष्णु की निन्दा नहीं करनी चाहिए ॥२७॥ जो लोग एकादशी के दिन जागरण नहीं करते हैं, उन लोगों को कलि रूपी सर्प ने काट लिया है । वे माया से मोहित जीव हैं ॥२८॥ जिनकी एकादशी जागरण किए बिना ही बीत जाती है वे लोग निश्चय रूप से विनष्ट हो जाता हैं क्योंकि जीवन अनिश्चित है ॥२९॥ श्रीभगवान् ने वैष्णव पद प्रदान करके अपनी दोनों आँखों को खोला है जो लोग श्रीहरि का जागरण किए बिना ही उसको देखते हैं वे पापी हैं ॥३०॥ जहाँ कोई कथा वाचक नहीं से वहाँ पर गीत और नृत्य करना चाहिए । हे देवर्षे ! यदि कथावाचक हों तो पहले पुराण पाठ कराना चाहिए ॥३१॥ हे वत्स ! भगवान् विष्णु का जागरण करने से एक हजार अश्वमेध का तथा दश हजार वाजपेय याग का करोड़ गुणा पुण्य प्राप्त होता है ॥३२॥ श्रीहरि का जागरण करने वाला पिता, माता एवं पत्नी के वंश का उद्धार कर देता है ॥३३॥ यदि व्रत के दिन वेध हो तो जागरण करना श्रीहरि का पूजन तथा दान ये सबके सब उसी तरह

अविद्धे वासरे विष्णोर्ये कुर्वन्ति प्रजागरम्। तेषां मध्ये तु तुष्टः सन्नृत्यं तु कुरुतेहरिः ॥३६॥
यावद्दिनानि कुरुते जागरं केशवाग्रतः। युगानि तानि तावन्ति विष्णुलोके महीयते ॥३७॥
यावद्दिनानि वसते विना जागरणं हरेः। तावद्वर्षसहस्राणि रौरवान्न निवर्तते ॥३८॥
एकादश्यां शयानस्तु विना जागरणं हरेः। मूकवत्तिष्ठते यो वै गानं पाठं न वाचरेत्॥३९॥
सप्तजन्मनि मूकत्वं जायते जागरे हरेः। यो न नृत्यति मूढात्मा पुरतो जागरे हरेः ॥४०॥
पङ्गुत्वं तस्य जानीयात्सप्तजन्मनि वाडव। यः पुनः कुरुते गीतं नृत्यं जागरणं हरेः ॥४१॥

ब्राह्मं पदं मदीयं च सत्यं वै तस्य वैष्णवम् ।
यः प्रबोधयते लोकान्विष्णोर्जागरणेरतः ॥४२॥
वसेच्चिरं तु वैकुण्ठे पितृभिः सह वैष्णवः ।
मतिं प्रयच्छते यस्तु हरेर्जागरणं प्रति ॥४३॥

षष्टिवर्षसहस्राणि श्वेतद्वीपे वसेन्नरः। यत्किञ्चित्क्रियते पापं कोटिजन्मनि मानवैः ॥४४॥
श्रीकृष्णजागरे सर्वं रात्रौ नश्यति वाडव। शालग्रामशिलाग्रे ये प्रकुर्वन्ति प्रजागरम् ॥४५॥

यामे यामे फलं प्रोक्तं कोट्यैन्दवसमुद्भवम् ।
संप्राप्ते वासरे विष्णोर्ये न कुर्वन्ति जागरम् ॥४६॥
वृथा स्यात्तत्कृतं तेषां वैष्णवानां च निन्दया ।
कामार्थौ संपदः पुत्राः कीर्तिर्लोकाश्च शाश्वताः ॥४७॥

से व्यर्थ हो जाते हैं जैसे कृतघ्न को दिया गया दान व्यर्थ होता है ॥३४॥ व्रत के दिन यदि दशमी का वेध हो तो उस दिन व्रत करने पर भगवान् उस स्थान को छोड़कर शाप देकर वहाँ से चले जाते हैं ॥३५॥ वेध रहित एकादशी के दिन जो लोग जागरण करते हैं उन लोगों के बीच में प्रसन्न होकर श्रीहरि नृत्य करते हैं ॥३६॥ कोई भी व्रती श्रीभगवान् के समक्ष जितने दिन जागरण करता है वह उतने युगों तक विष्णु लोक में पूजित होता है ॥३७॥ श्रीहरि का जागरण किए बिना मनुष्य जितने दिनों तक जीवित रहता है, उतने हजार वर्षों तक रौरव नरक से बाहर नहीं निकल पाता है ॥३८॥ मनुष्य श्रीहरि का जागरण किए बिना एकादशी के दिन गूङ्गे के समान दान तथा पाठ किए बिना सोता रहता है वह सात जन्मों तक गूङ्गा होता है। जो अज्ञानी जीव श्रीहरि के सामने नृत्य नहीं करता है, हे नारद ! वह सात जन्मों तक लङ्गड़ा होता है। जो श्रीहरि के जागरण में गीत और नृत्य करता है ॥३९-४१॥ यह सत्य है कि वह ब्रह्माजी के लोक, भगवान् विष्णु के लोक और मेरे लोक को प्राप्त करता है। जो भगवान् विष्णु के जागरण में लोगों को ज्ञानोपदेश करता है, वह वैष्णव भगवान् विष्णु के लोक में अपने पितरों के साथ चिरकाल तक निवास करता है। जो लोगों को श्रीहरि का जागरण करने के लिए प्रेरित करता है वह साठ हजार वर्षों तक श्वेत द्वीप में निवास करता है। मनुष्य अपने करोड़ों जन्मों में जिन पापों को करते हैं हे ब्राह्मण ! वे सभी पाप भगवान् श्रीकृष्ण का रात्रि जागरण करने पर नष्ट हो जाते हैं। जो लोग शालग्राम शिला के समक्ष रात्रि जागरण करते हैं ॥४२-४५॥ वे एक-एक प्रहर के जागरण में करोड़ों तीर्थों का फल प्राप्त करते हैं। जो लोग एकादशी के दिन जागरण नहीं करते हैं उनके द्वारा किया गया एकादशी व्रत व्यर्थ हो जाता है। वैष्णवों की निन्दा

यज्ञायुतैर्न लभ्यन्ते द्वादशी जागरं विना। मतिर्न जायते यस्य द्वादश्यां जागरं प्रति॥४८॥

न हि तस्याधिकारोऽस्ति पूजने केशवस्य हि ।
यावत्पदानि चलति केशवायतनं प्रति ॥४९॥

अश्वमेधसमानि स्युर्जागरार्थं प्रगच्छतः। पादयोः पतितं यावद्धरण्यां पांसुगच्छताम् ॥५०॥
तावद्वर्षसहस्राणि जागरी वसते दिवि। तस्माद्गृहात्प्रगन्तव्यं जागरे केशवालये॥५१॥
कलौ मलविनाशाय द्वादशीद्वादशीषु च। परापवादसंयुक्तं मनः प्रासादवर्जितम्॥५२॥
शास्त्रहीनमगान्धर्वं तथा दीपविवर्जितम्। शत्तयोपचाररहितमुदासीनं स निन्दनम्॥५३॥
कलियुक्तं विशेषेण जागरं नवधा धमम्। सशास्त्रं जागरं यच्च नृत्यगान्धर्वसंयुतम् ॥५४॥
सवाद्यं तालसंयुक्तं सदीपं मधुभिर्युतम्। उच्चारैस्तु समायुक्तं यथोक्तैर्भक्तिभावितैः॥५५॥
प्रसन्नं तुष्टिजननं संमूढं लोकरञ्जनम्। गुणैर्द्वादशभिर्युक्तं जागरं माधवप्रियम्॥५६॥

कर्त्तव्यं तत्प्रयत्नेन पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
किंव्रतैर्बहुभिश्चीर्णैस्तीर्थवासेन तस्य किम् ॥५७॥

द्वादशीवासरे प्राप्ते न कुर्याज्जागरं हरेः। प्रवासेन त्यजेद्यस्तु पथि स्विन्नोऽपिवाडव॥५८॥
जागरं वासुदेवस्य द्वादश्यां तु स मे प्रियः। मद्भक्तो न हरेः कुर्याज्जागरं पापमोहितः ॥५९॥

व्यर्थं मत्पूजनं तस्य मत्पूज्यं यो न पूजयेत् ।
न शैवो न च सौरोऽसौ न शाक्तो गणसेवकः ॥६०॥

करने से, काम, अर्थ, सम्पत्ति, पुत्र की कीर्ति तथा शाश्वत लोक ये सभी ॥४६-४७॥ दशों हजार यज्ञों के करने से द्वादशी जागरण के बिना नहीं प्राप्त होते हैं जिसके मन में द्वादशी जागरण का विचार नहीं होता है, उसका भगवान् केशव के पूजन में अधिकार नहीं होता है। जागरण के दिन मनुष्य भगवान् के मन्दिर में जाने के लिए जितने डग चलता है ॥४८-४९॥ जागरण करने के लिए जाने वाले को उतने अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त होता है। उन चलने वालों के पैरों पर जितने धूलिकण पड़ते हैं, वह जागरण करने वाला उतने हजार वर्षों तक स्वर्ग लोक में निवास करता है। अतएव जागरण करने के लिए भगवान् केशव के मन्दिर में जाना चाहिए ॥५०-५१॥ इससे कलि के दोषों का विनाश होता है। दूसरों की निन्दा में संलग्न होना, मन का प्रसन्न न होना, शास्त्र चर्चा का न होना, सङ्गीत का अभाव, दीपक न जलाना, शक्ति के अनुसार उपचारों का न होना, औदासीन्य, निन्दा एवं कलह ये नव प्रकार के जागरण अधम कोटि के होते हैं। जिस जागरण में शास्त्र की चर्चा, नृत्य एवं सङ्गीत होते है ॥५२-५४॥ वाद्य, ताल, तेल से युक्त दीपक, तथा भक्ति भावना पूर्वक सङ्कीर्तन, प्रसन्नता, संतोष जनकता, समुदाय की समुपस्थिति होती है, इन बारह गुणों से युक्त जागरण श्रीभगवान् को प्रिय होता है ॥५५-५६॥ अतएव शुक्ल एवं कृष्ण दोनों पक्षो की एकादशी को करना चाहिए। एकादशी के दिन व्रत नहीं करने वाले को अनेक व्रतों को करने से तथा तीर्थवास करने से कोई लाभ नहीं है ॥५७॥ नारद ! यदि प्रवास में गये रहने के कारण थका हुआ भी व्यक्ति अपने द्वादशी जागरण के नियम को नहीं छोड़ता है वह मुझको प्रिय है। पाप से मोहित होने के कारण यदि मेरा भक्त जागरण नहीं करता है तो ॥५८-५९॥ उसके द्वारा की गयी मेरी पूजा

यो भुङ्क्ते वासरे विष्णोर्ज्ञेयः पश्वधिको हि सः ।
विप्रियं च कृतं तेन दुष्टेनैव च पापिना ॥६१॥
मद्भक्तिबलमाश्रित्य यो भुङ्क्ते वै हरेर्दिने। स बाह्याभ्यन्तरं देही वेष्टितं पापकोटिभिः ॥६२॥
मुच्यन्ते वासरे विष्णोर्ये कुर्वन्ति प्रजागरम् ।
कूर्परं यमदूतानां दत्तं तेन यमस्य च ॥६३॥
कृत्वा जागरणं विष्णोरविद्धं द्वादशीव्रतम् । स्वर्गापेक्षा मुनिश्रेष्ठमुक्ता तेनैव संशयः ॥६४॥
वाञ्छितं नारकं सौख्यं विद्धं कृत्वा हरेर्दिनम् ।
निहताः पितरस्तेन देवानां वै वधः कृतः ॥६५॥
दत्तं राज्यं तु दैत्यानां कृत्वा विद्धं हरेर्दिनम् ।
यो नृत्यति प्रहृष्टात्मा कृत्वा वै करताडनम् ॥६६॥
गीतंकुर्वन्मुखेनापि दर्शयन्कौतुकान्बहून् । पुरतो वासुदेवस्य रात्रौ जागरणे स्थितः ॥६७॥
पठन्कृष्णचरित्राणि रञ्जयन्वैष्णवान्गणान् । मुखेन कुरुते वाद्यं संप्रहृष्टतनूरुहः ॥६८॥
दर्शयन्विविधान्नृत्यान्स्वेच्छालापान्प्रकारयन् । भावैरेतैर्नरो यस्तु कुरुते जागरं हरेः ॥६९॥
निमिषेनिमिषे पुण्यं तीर्थकोटिफलं स्मृतम् । अनुद्विग्नमना यस्तु धूपं नीराजनं हरेः ॥७०॥
कुरुते जागरे रात्रौ सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । यानि कानि च पापानिब्रह्महत्या समानिच ॥७१॥
कृष्णाहजागरात्तानि विलयं यान्ति खण्डशः ।
एकतः क्रतवः सर्वे समाप्तवरदक्षिणाः ॥७२॥
एकतो देवदेवस्य जागरः कृष्णवल्लभः । तत्र काशीपुष्करं च प्रयागं नैमिषं गया ॥७३॥

व्यर्थ हो जाती है । जो मेरे पूज्य वैष्णवों की पूजा नहीं करता है वह न तो शैव है, न सूर्य भक्त है, न शाक्त है, न गाणपत्य है ॥६०॥ जो एकादशी के दिन भोजन करता है, उसे पशु से भी गिरा हुआ जानना चाहिए । वह दुष्ट, पापी और मेरे विपरीत आचरण करने वाला है ॥६१॥ मेरी भक्ति का सहारा लेकर जो एकादशी के दिन भोजन करता है वह शरीरधारी भीतर और बाहर करोड़ों पापों से भरा हुआ है ॥६२॥ जो लोग एकादशी के दिन जागरण करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं वह यमराज और यमदूतों को धक्का दे देता हैं ॥६३॥ वेध रहित द्वादशी व्रत करके वे मुक्त होकर स्वर्ग की अपेक्षा श्रेष्ठ लोकों में जाते हैं ॥६४॥ जो लोग दशमीविद्धा एकादशी करते हैं वे नारकीय कष्ट को प्राप्त करना चाहते हैं । ऐसे लोग पितरों तथा देवताओं का वध करने वाले हैं ॥६५॥ जो विद्धा एकादशी करते हैं वे दैत्यों को अपना राज्य समर्पित करने वाले हैं । जो मनुष्य जागरण में ताली वजाकर तथा प्रसन्नता पूर्वक नृत्य करते हैं ॥६६॥ मुख से गीत गाते हैं, अनेक प्रकार के नृत्यों को प्रदर्शित करते हैं । इन सभी भावों के द्वारा जो लोग श्रीहरि का जागरण करते हैं ॥६७-६९॥ उनको प्रत्येक निमेष में करोड़ों तीर्थो का फल प्राप्त होता है । जो मनुष्य रात्रि जागरण के समय बिना किसी धबराहट के रात्रि जागरण में बार-बार धूप, दीप और निराजन करते हैं वे सातों द्वीपों के स्वामी होते हैं । ब्रह्महत्या के समान कोई भी पाप नहीं है ॥७०-७१॥ वे सभी एकादशी के दिन जागरण करने से खण्ड-खण्ड होकर विनष्ट हो जाते हैं । श्रेष्ठ दक्षिणा प्रदान पूर्वक

शालग्राममहाक्षेत्रमर्बुदारण्यमेव च। पौष्करं मथुरा तत्र सर्वतीर्थानि चैव हि ॥७४॥
यज्ञा वेदाश्च चत्वारो व्रजन्ति हरिजागरम् । गङ्गासरस्वती तापी यमुना च शतद्रुका॥७५॥
चन्द्रभागा वितस्ता च नद्यः सर्वास्तु तत्र वै ।
सरांसि च ह्रदाः सर्वे समुद्राः सर्व एव हि ॥७६॥
एकादश्यां द्विजश्रेष्ठ गच्छन्ति कृष्णजागरम् ।
स्पृहणीयाहि देवानां ये नराःकृष्णजागरे ॥७७॥
नृत्यन्ति गीतं कुर्वन्ति वीणावाद्यप्रहर्षिताः। एवंजागरणंकृत्वा संपूज्य च महाहरिम् ॥७८॥
द्वादश्यां पारणं कार्यं स्वशक्तया वैष्णवैः सह ।
शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि द्वादशीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥७९॥
द्वादशी तु सदा ज्ञेया पुत्रदामाक्षदायिनी। प्रातः स्नात्वहरिं पूज्य उपवासं समर्पयेत्॥८०॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव। प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥८१॥
पारणं च ततः कुर्याद्यथासंभवमग्रतः। अत ऊर्ध्वं यथेष्ठं तु कारयेच्च यथाविधि॥८२॥
यदा तु द्वादशी स्वल्पा पारणे न भवेद् द्विज ! ।
तदा रात्रौ तु कर्त्तव्यं पारणं मुक्तिमिच्छता ॥८३॥
तदा न रात्रिदोषः स्यान्निषिद्धं न भवेत्क्वचित् ।
यदुक्तं निशि न स्नायान्महानिशि न भोजयेत् ॥८४॥
तत्पूर्वपरयामाभ्यां दिनवत्कर्म कारयेत्। यदा भवति स्वल्पा तु द्वादशी पारणेदिने ॥८५॥

समाप्त किए गये समस्त क्रतुओं के फल को तराजू के पलड़े पर एक ओर रखा जाय और दूसरी ओर भगवान् को प्रिय जागरण के फल का रखा जाय तो दोनो समान होंगे । जहाँ पर श्रीभगवान् का जागरण किया जाता है, वहीं पर काशी, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य तथा गया है ॥७२-७३॥ वहीं पर शालग्राम महाक्षेत्र, अर्वुदारण्य, पौष्कर क्षेत्र तथा मथुरा ये सभी तीर्थ रहते हैं ॥७४॥ सभी यज्ञ, सभी वेद भी श्रीहरि के जागरण स्थान में जाते हैं । गङ्गा, सरस्वती, यमुना, शतद्रु, चन्द्रभागा, वितस्ता आदि सभी नदियाँ वहाँ जाती हैं, सभी सरोवर तथा सभी ह्रद तथा समुद्र ॥७५-७६॥ भी एकादशी के दिन होने वाले हरि जागरण में जाते हैं । देवताओं के जो प्रिय मनुष्य हैं वे श्रीभगवान् के जागरण में अत्यन्त हर्षित होकर, गीत, नृत्य तथा वीणा वादन करते हैं । इस तरह से जागरण करके तथा श्रीहरि की अच्छी तरह से पूजा करके ॥७७-७८॥ द्वादशी के दिन अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों के साथ पारण करना चाहिए । हे ब्रह्मन् ! मैं द्वादशी का उत्तम माहात्म्य बतलाता हूँ उसे आप सुनें ॥७९॥ द्वादशी तिथि को सदा पुत्र तथा मोक्ष प्रदान करने वाली जानना चाहिए । प्रातःकाल स्नान करके, तथा श्रीहरि की पूजा करके व्रत को समाप्त करना चाहिए ॥८०॥ फिर प्रार्थना करें कि हे केशव ! आप अज्ञानान्धकार से अन्धे बने हुए मुझे ज्ञान दृष्टि प्रदान करें और सुमुख होकर मुझ पर आप कृपा करें ॥८१॥ यथा सम्भव सबों के समक्ष पारण करें । उसके पश्चात् उसको विधि पूर्वक करना चाहिए ॥८२॥ यदि अत्यन्त अल्प होने के कारण पारण काल में द्वादशी नहीं मिले तो मुक्ति चाहने वाले को रात्रि में पारण करना चाहिए ॥८३॥ उस समय रात्रि का दोष नहीं होता

उषः काले द्वयं कुर्यात्प्रातर्माध्याह्निकं तथा। द्वादशी साधिता येन नरेण भुवि सर्वदा।।८६।।
तस्या पुण्यमहं वक्तुं न समर्थो विशेषतः । साधयित्वाऽखिलान्कामान्प्राप्नुयुश्च महाजनाः ।।८७।।

अम्बरीषादयः सर्वे ये भक्ता भुवि विश्रुताः ।
द्वादशीं साधयित्वा तु तेगता विष्णुसद्मनि ।।८८।।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं यदुक्तं तु मया तव ।
नास्ति विष्णुसमो देवो न तिथिर्द्वादशी समा ।।८९।।
अत्र दत्तं च भुक्तं च तथा पूजादिकं च यत् ।
तत्सर्वं पूर्णतां याति पूजिते माधवे सति ।।९०।।

किंपुनर्बहुनोक्तेन भक्तानां वल्लभो हरिः । प्रददात्यखिलान्कामान्यावदाभूतसंप्लवम् ।।९१।।
द्वादश्यां चैव यद्दत्तं तत्सर्वं सफलं भवेत् ।
कुरुक्षेत्रेषु यद्दत्तं निष्फलं नैव जायते । तद्वच्च द्वादशीदत्तं भवेद्देवर्षिसत्तम ! ।।९२।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहसस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे द्वादश्येकादशीजागरणमहिमा नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ।।३८।।

है और न तो वह निषिद्ध हीं हैं । यह जो कहा गया है कि रात्रि में स्नान न करे और न तो रात्रि में भोजन करे । उससे पहले और बाद की घड़ियों में दिन के समान कर्मों को करना चाहिए । यदि पारण के दिन द्वादशी अत्यन्त अल्प रहे ।।८४-८५।। उषःकालः में प्रातः और मध्याह्न दोनों की क्रियाओं को करना चाहिए । जो मनुष्य संसार में द्वादशी को सिद्ध कर लेता है ।।८६।। विशेष रूप से उसको प्राप्त होने वाले पुण्य का वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ । वे लोग अपनी सभी कामनाओं को पूर्ण कर लेते हैं ।।८७।। संसार में प्रख्यात जो अम्बरीष आदि विख्यात पुरुष हैं । द्वादशी का व्रत पूरा करके विष्णुलोक में चले गये।।८८।। मैंने जिसे बार-बार कहा है वह पूर्ण रूप से सत्य है । भगवान् विष्णु के समान न तो कोई देवता है और न द्वादशी के समान कोई तिथि है ।।८९।। इस लोक में किए गये दान, भोग तथा पूजा आदि में जो कुछ भी होती है वह श्रीभगवान् की पूजा करने से पूरा हो जाती है ।।९०।। बहुत अधिक कहने से कोई लाभ नहीं है । श्रीहरि भक्तों के प्रिय हैं । वे महाप्रलय काल पर्यन्त अपने भक्तों की सारी कामनाओ को पूर्ण करते हैं ।।९१।। द्वादशी तिथि को जो कुछ भी दान दिया जाता है, वह सबकुछ सफल होता है । कुरुक्षेत्र में जो दान दिया जाता है वह कभी निष्फल नहीं होता है । हे देवर्षि श्रेष्ठ ! उसी तरह द्वादशी तिथि को दिया गया दान भी सफल होता है ।।९२।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत द्वादशी तथा एकादशी तिथि को जागरण करने के वर्णन नामक अड़तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३८।।

उनतालीसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

एकस्मिन्समये पुत्र ! गतोऽहं विष्णुसन्निधौ ।
तत्र पृष्टं मयापूर्वमाहात्म्यं द्वादशीभवम् । यच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वेभुक्त्वाभोगान्दिवंययुः ॥१॥

नारद उवाच

कीदृशी स्यान्महादेव महाद्वादशिका परा। तस्य व्रते फलं कीदृग्वद सर्वेश्वर प्रभो ॥२॥

शिव उवाच

इयमेकादशी ब्रह्मन्महापुण्यफलप्रदा। ऋक्षयोगश्च संयुक्ता कर्त्तव्या मुनिसत्तमैः ॥३॥
जया च विजया चैव जयन्तीपापनाशिनी। सर्वपापहराश्चैताः कर्त्तव्याःफलकाङ्क्षिभिः ॥४॥
एकादश्यां यदा ऋक्षं शुक्लपक्षे पुनर्वसुः ।
नाम्ना सा च जयाऽऽख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥५॥
तामुपोष्य नरः पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः। यदा च शुक्लद्वादश्यां नक्षत्रंश्रवणं भवेत् ॥६॥
विजया सा समाख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ।
सहस्रगुणितं दानं यस्यां वै विप्रभोजनम् ॥७॥
होमस्तथोपवासश्च सहस्राधिकलप्रदः। यदा च शुक्लद्वादश्यां प्राजापत्यं हि जायते॥८॥
जयन्ती नाम सा प्रोक्तासर्वपापहरा तिथिः। सप्तजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वाबहु ॥९॥
प्रक्षालयति गोविन्दस्तस्यामभ्यर्चितो ध्रुवम्। यदा वै शुक्लद्वादश्यां पुष्यं भवति कर्हिचित्॥१०॥

जया, विजया और जयन्ती नामक एकादशियों का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे पुत्र ! एक बार मैं भगवान् विष्णु के सन्निकट गया । वहाँ मैंने द्वादशी तिथि का माहात्म्य पूछा । जिस माहात्म्य का श्रवण करके सभी मुनिजन भोगों को भोगकर स्वर्गलोक चले गये ॥१॥ **नारदजी ने कहा—** हे महादेव ! महाद्वादशी कैसी है ? उसका व्रत करने पर कैसा फल प्राप्त होता है, इस बात को आप मुझे बतलाएँ ॥२॥ **शिवजी ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! यह एकादशी महान् पुण्य फल प्रदान करने वाली है । नक्षत्र के योग से युक्त इस एकादशी को करना चाहिए ॥३॥ जया, विजया तथा जयन्ती ये तीनों सभी पापों को विनष्ट करने वाली हैं, फल चाहने वालों को इसको अवश्य करना चाहिए ॥४॥ यदि शुक्ल पक्ष की एकादशी को पुनर्वसु नक्षत्र हो, उस एकादशी का नाम जया है, यह सभी तिथियों में उत्तम तिथि है ॥५॥ उसका व्रत करके मनुष्य पाप मुक्त हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । यदि शुक्लपक्ष की एकादशी के दिन श्रवण नक्षत्र हो तो ॥६॥ उस एकादशी को विजया एकादशी कहते हैं वह भी तिथियों में उत्तम तिथि होती है । उस तिथि को किये गये दान और ब्राह्मण भोजन का हजार गुना अधिक फल होता है ॥७॥ उस दिन किए गये होम तथा उपवास का फल सस्रगुणा अधिक होता है । यदि शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को रोहिणी नक्षत्र (प्राजापत्य नक्षत्र) हो तो उस एकादशी का नाम जयन्ती है और वह सभी पापों का हरण कर लेती हैं । सात जन्मों तक किए गये पाप चाहे वे स्वल्प हो या बहुत हों उसको उस तिथि को श्रीभगवान् पूजित होकर दूर कर देते हैं । यदि

तदा तु सा महापुण्या भविता पापनाशिनी। यो ददाति तिलप्रस्थं नित्यसंवत्सरं प्रति ॥११॥
उपवासं च यस्तस्यां करोत्येतत्समं स्मृतम्। तस्यां जगत्पतिर्देवस्तुष्टः सर्वेश्वरो हरिः ॥१२॥
प्रत्यक्षतां प्रयात्येव तत्रानन्तफलं स्मृतम्। सगरेण ककुत्स्थेन नहुषेण च साधितः ॥१३॥
तस्यामाराधितः कृष्णो दत्तवानखिलं भुवि। वाचिकान्मानसाद्वाऽपि कायजाच्च विशेषतः ॥१४॥
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः। तामेकां समुपोष्याथ पुण्यनक्षत्रसंयुताम् ॥१५॥
एकादशीसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः। स्नानंदानं जपो होमः स्वध्यायोदेवतार्चनम् ॥१६॥
यत्तस्यां क्रियतेकिंचित्तदक्षयफलंस्मृतम्। तस्मादेषाप्रकर्तव्यायत्नेन फलकाङ्क्षिभिः ॥१७॥
पञ्चमेनाश्वमेधेन यदा स्नातो युधिष्ठिरः। पर्यपृच्छत धर्मात्मा कृष्णं यदुकुलोद्वहम् ॥१८॥

युधिष्ठिर उवाच

उपवासस्य नक्तस्य त्वेकभुक्तस्य मे प्रभो। किं पुण्यं किं फलं तस्य ब्रूहि सर्वं जनार्दन ॥१९॥

श्रीभगवानुवाच

हेमन्ते चैव संप्राप्ते मासे मार्गे च शोभते। कृष्णपक्षे च या पार्थ द्वादशी तामुपोषयेत् ॥२०॥
दशम्यां चैकभक्तश्च शुद्धचितो दृढव्रतः। नक्तं चैव तथा ज्ञात्वा दशम्यां नियतः सदा ॥२१॥
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे। नक्तं च तद्विजानीयान्त नक्तं निशि भोजनम् ॥२२॥
नक्षत्रदर्शनान्नक्तं गृहस्थस्य विधीयते। यतेर्दिनाष्टमे भागे रात्रौ तस्य निषेधनम् ॥२३॥

किसी भी शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि को पुष्य नक्षत्र होता है ॥८-१०॥ तो वह एकादशी महापुण्यप्रद तथा पापों का विनाश करने वाली होती है। जो एक वर्ष तक प्रतिदिन एक प्रस्थ तिलदान करता है॥११॥ और जो उस पापनाशिनी एकादशी को उपवास करता है तो दोनों का फल एक समान होता है। उस तिथि को जगत् के स्वामी श्रीभगवान् प्रसन्न होकर ॥१२॥ साक्षात् दर्शन देते हैं उसका अनन्त फल बतलाया गया है। इस एकादशी को सगर, ककुत्स्थ, तथा नहुष ने किया ॥१३॥ उस तिथि को मन, वाणी तथा शरीर से पूजित होकर श्रीहरि ने सागर आदि को पृथिवी का राज्य प्रदान किया था ॥१४॥ पुष्य नक्षत्र से युक्त केवल उसी एकादशी का व्रत करने से मनुष्य सात जन्मों में किए गये पापों से मुक्त हो जाता है॥१५॥ उस पाप नाशिनी एकादशी का व्रत करके मनुष्य एक हजार एकादशियों को करने का फल प्राप्त कर लेता है। उस तिथि को किये गये स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय आदि तथा श्रीभगवान् की अर्चना का अक्षय फल बतलाया गया है। अतएव फल चाहने वालों को इस एकादशी को प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ॥१६-१७॥ पाञ्चवें अश्वमेध याग का अवभृथ स्नान करके महाराज युधिष्ठिर यदुवंश का निर्वाह करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण से पूछे ॥१८॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** हे प्रभो ! हे जनार्दन ! नक्त की बेला में एक बार भोजन करने का जो फल होता है उसे आप मुझे बतलायें ॥१९॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे पार्थ ! हेमन्त ऋतु के मार्गशीर्ष महीने में जो कृष्णपक्ष की एकादशी होती है उस द्वादशी तिथि का व्रत करना चाहिए ॥२०॥ दशमी तिथि को एक शाम शुद्ध चित्त वाला और दृढ़व्रत होकर नक्त की बेला में भोजन करे और दशमी तिथि को नियम पूर्वक रहे ॥२१॥ दिन के आठवें भाग में जब सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ जाय उसी को नक्त की बेला जानना चाहिए। रात्रि में भोजन करने को नक्त भोजन नहीं कहते हैं॥२२॥ गृहस्थ के लिए तारे दिखने लग जायँ तो उसे नक्त कहते हैं। संन्यासी के लिए नक्त की बेला

ततः प्रभातसमये कृत्वा च नियमं व्रती ।
मध्याह्ने च तथा पार्थ ! स्नानं शुचिः समाचरेत् ॥२४॥
अधमं कूपके स्नानं वाप्यां स्नानं च मध्यमम् ।
तडागे चोत्तमं स्नानं नद्यां स्नानं ततः परम् ॥२५॥
पीडयन्ते जन्तवो यत्र जलमध्ये व्यवस्थिते। तत्र स्नानेकृते पार्थ पापंपुण्य समं भवेत् ॥२६॥
गृहे चैवोत्तमं स्नानं जलं चैव विशोधयेत्। तस्मात्तु पाण्डवश्रेष्ठ गृहे स्नानं समाचरेत् ॥२७॥
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे। मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम् ॥२८॥
क्रोधलोभौपरित्यज्य चैकचित्तोदृढव्रतः। नालपेतान्त्यजं चैव तथा पाखण्डिनो नरान् ॥२९॥
मिथ्यावादरतांश्चैव तथा ब्राह्मणनिन्दकान्। अन्यांश्चैव दुराचारानगम्यागमनेरतान् ॥३०॥
परद्रव्यापहारांश्च परदाराभिगामिनः। केशवं पूजयित्वा तु नैवेद्यं तत्र कायेत् ॥३१॥
दीपं दद्याद्गृहेतत्र भक्तियुतेन चेतसा। तद्दिने वर्जयेत्पार्थ निद्रां चैव तु मैथुनम् ॥३२॥
धर्मशास्त्रविनोदेन दिनं सर्वं निवारयेत्। रात्रौ जागरणं कृत्वा भक्तियुक्तो नृपोत्तम ॥३३॥
विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्यात्प्रणिपत्य क्षमापयेत्। यथा कृष्णा तथा शुक्ला विधिनैवं प्रकारयेत्॥३४॥
एकादशीं द्विजः पार्थ विभेदं नैव कारयेत् ।
एवं हि कुरुते यस्तु शृणु तस्य हि यत्फलम् ॥३५॥
शङ्खोद्धारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ।
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥३६॥

दिन के आठवें भाग में होती है । रात्रि में उसका निषेध है ॥२३॥ उसके बाद प्रात:काल व्रती नियम करे और पवित्र होकर मध्याह्न में स्नान करे ॥२४॥ कुएँ पर स्नान अधम कोटि का होता है, बावली में मध्यम कोटि का स्नान होता है । सरोवर में स्नान उत्तम कोटि का होता है और नदी में स्नान उससे भी श्रेष्ठ होता है ॥२५॥ हे पार्थ ! जहाँ जल में प्रवेश करने पर जीवों को कष्ट होता है, वहाँ पर स्नान करने पर पाप और पुण्य दोनों बराबर होते हैं ॥२६॥ घर में ही स्नान करना उत्तम होता है, जल को शुद्ध कर ले अतएव हे पार्थ ! गृह में ही स्नान कर ले ॥२७॥ स्नान करते समय इस मन्त्र को पढ़े । हे अश्वक्रान्ते! रथक्रान्ते तथा विष्णु क्रान्ते भूदेवि, हे मृतिके ! मेरे द्वारा पूर्व संचित पाप को तुम दूर करो ॥२८॥ व्रती को चाहिए कि वह लोभ एवं मोह का परित्याग करके दृढ़व्रत हो जाय । मन को एकान्त कर ले अन्त्यजों एवं पाखण्डियों से बात न करे ॥२९॥ जो लोग, झूठ बोलते हैं, ब्राह्मणों की निन्दा करते हैं, दूसरे प्रकार के दुराचारों को करते हैं, अगम्यागमन करते हैं ॥३०॥ दूसरों के द्रव्य का अपहरण करते है, दूसरों की पत्नी से प्रेम करते है, उन लोगों से भी बातें न करे । उस दिन श्रीभगवान् की पूजा करके नैवेद्य भोग लगायें ॥३१॥ श्रीभगवान् को मन्दिर में भक्ति पूर्वक दीपक दिखायें । उस दिन न तो सोये और न मैथुन करे ॥३२॥ धर्मशास्त्र के अध्ययन में सारा दिन बिताये । हे राजश्रेष्ठ ! रात्रि में भक्ति पूर्वक जागरण करे॥३३॥ ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनसे क्षमा प्रार्थना करे । कृष्णा एकादशी तथा शुक्ला एकादशी दोनों समान है ॥३४॥ हे पार्थ ! दोनों एकादशी में भेद

संक्रान्तिषु चतुर्लक्षं यो ददाति नृपोत्तम। एकादश्युपवासस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥३७॥
प्रभासक्षेत्रे यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। तत्फलं जायते नूनमेकादश्युपवासिनः॥३८॥
केदारे चोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते। तथाचैकादशी पार्थ गर्भवासक्षयङ्करी॥३९॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य पृथिव्यां यत्फलं लभेत्। तस्माच्छतगुणं पुण्यमेकादश्युपवासिनः॥४०॥
तपस्विनो गृहे यस्य भुञ्जते च द्विजोत्तमः। तत्फलं जायते नूनमेकादश्युपवासिनः॥४१॥
गोसहस्रेण यत्पुण्यं दत्त्वा वेदान्तपारगे। तस्माच्छतगुणं पुण्यमेकादश्युपवासिनः॥४२॥
येषां देहे त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। वसन्ति तेषां ते तुल्या एकादश्युपवासिनः॥४३॥
ते नराः पुण्यकर्माणो ये भक्ता हरिपूजकाः।
एकादशीव्रतस्यापि पुण्यसङ्ख्या न विद्यते॥४४॥
एतत्पुण्यं भवेत्तस्य यत्सुरैरपि दुर्लभम्। एतस्मादर्धपुण्यं तु प्राप्यते नक्तभोजनात्॥४५॥
नक्तस्यार्धं भवेत्पुण्यमेकभक्तेन देहिनाम्। तावद्गर्जन्ति तीर्थानि दानानि नियमानि च॥४६॥
यावन्नो पोषयेज्जन्तुर्वासरं विष्णुवल्लभम्। तस्मात्त्वं पाण्डवश्रेष्ठ! व्रतमेतत्समाचर॥४७॥
पुण्यसङ्ख्यां न जानामि यत्त्वं पृच्छसि पाण्डव!।
एतद्विकथितं पार्थ यद्गोप्यं व्रतमुत्तमम्। एकादशीसमं नास्ति कृतं यज्ञसहस्रकम्॥४८॥

नहीं करना चाहिए। जो इस तरह से एकादशी व्रत करता है उसको प्राप्त होने वाले फल को आप सुनें॥३५॥ जो मनुष्य शङ्खोद्धार तीर्थ में स्नान करके भगवान् गदाधर का जो दर्शन करता है उसको जो फल प्राप्त होता है, वह एकादशी के दिन उपवास से होने वाले फल के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होता है॥३६॥ हे नृपोत्तम जो व्यक्ति संक्रान्ति के अवसर पर चार लाख रुपये दान करता है, उसको जो फल प्राप्त होता है, वह एकादशी के दिन उपवास जन्य फल के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं होता है॥३७॥ सूर्य ग्रहण अथवा चन्द्र ग्रहण के समय में प्रभास क्षेत्र में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है उसी फल की प्राप्ति एकादशी के दिन उपवास करने वाले को होती है॥३८॥ हे पार्थ! केदार क्षेत्र में जल पीने से पुनर्जन्म नहीं होता है। एकादशी का व्रत करने से भी गर्भ में निवास नहीं करना पड़ता है॥३९॥ भूलोक में अश्वमेध याग करने का जो फल होता है, उसके सौ गुना फल एकादशी व्रत करने से होता है। जिस तपस्वी के घर में श्रेष्ठ ब्राह्मण भोजन करता है, उसको जो फल प्राप्त होता है वही फल एकादशी को उपवास करने वाले को प्राप्त होता है॥४०-४१॥ वेदान्त पारङ्गत विद्वान् को एक हजार गौ दान करने का जो फल होता है उससे सौ गुना अधिक फल एकादशी का उपवास करने वाले को प्राप्त होता है॥४२॥ जो मनुष्य श्रीहरि की पूजा करने वाले तथा उनके भक्त होते हैं वे पुण्य कर्म करने वाले हैं। एकादशी व्रत के भी पुण्यों की कोई संख्या नहीं है॥४३-४४॥ एकादशी का जो पुण्य होता है, वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। नक्त की बेला में भोजन करने से उसके आधा पुण्य होता है॥४५॥ दिन में एक बार भोजन करने से नक्त भोजन के आधा फल प्राप्त होता है। तीर्थ, दान तथा नियम तब तक ही गर्जना करते हैं जब तक मनुष्य भगवान् को प्रिय एकादशी का व्रत नहीं करता है, अतएव हे युधिष्ठिर! आप एकादशी व्रत किया करो॥४६-४६॥ हे पाण्डव! एकादशी के पुण्यों की संख्या को मैं भी नहीं जानता

युधिष्ठिर उवाच

उत्पन्ना सा कथं देव पुण्या चैकादशी तिथिः ।
कथं पवित्रा विश्वेऽस्मिन्कथं वै देवता प्रिया ॥४९॥

श्रीभगवानुवाच

पुरा कृतयुगे पार्थ मुरनामा तु दानवः । अत्यद्भुतो महारौद्रः सर्वदेवभयङ्करः ॥५०॥
इन्द्रोऽपि निर्जितस्तेन सर्वदेवास्तथा नृप। महासुरेण तेनैव मृत्युना च दुरात्मना ॥५१॥
स्वार्गान्निराकृतास्तेन विचरन्ति महीतले । सशङ्काभयभीताश्च सर्वे गत्वा महेश्वरम् ॥५२॥
इन्द्रेण कथितं सर्वमीश्वरस्यापि चाग्रतः । स्वर्गलोकपरिभ्रष्टा विचरन्ति महीतले ॥५३॥
मर्त्येषु संस्थिता देवा न शोभन्ते महेश्वर । उपायं ब्रूहि मे देवह्यमरायान्ति कां गतिम् ॥५४॥

महादेव उवाच

देवराज ! सुरश्रेष्ठ ! यत्रास्ते गरुडध्वजः । शरण्यश्च जगन्नाथःपरिपात्रा नारायणः ॥५५॥
तत्र गच्छ सुरश्रेष्ठ स वो रक्षां विधास्यति ।
ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा देवराजोमहामतिः ॥५६॥
त्रिदशैः सहितो यत्र गतस्तत्र युधिष्ठिर ! ।
जलमध्ये प्रसुप्तं तं दृष्ट्वा देवं गदाधरम्। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इन्द्रः स्तोत्रमुदैरयत्॥५७॥

इन्द्र उवाच

ॐ नमो देवदेवेश ! देवदानववन्दित ! । दैत्यारे ! पुण्डरीकाक्ष ! त्राहि नो मधुसूदन॥५८॥

हूँ ॥४७॥ हे पार्थ ! मैंने आपको यह गोपनीय तथा उत्तम व्रत का उपदेश दिया है । एकादशी व्रत के समान हजारों यज्ञों के भी करने से फल नहीं होता है ॥४८॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** हे देव ! वह एकादशी तिथि कैसे उत्पन्न हुयी है ? वह सम्पूर्ण जगत् में कैसे पवित्र हो गयी ? और वह भगवान् को कैसे प्रिय हो गयी ?॥४९॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** पहले के सत्ययुग में एक मुर नामक दानव हुआ । वह अत्यन्त अद्भुत, महाभयङ्कर और देवताओं के लिए भयङ्कर था ॥५०॥ हे राजन् ! उसने इन्द्र तथा सभी देवताओं को जीत लिया । मृत्यु स्वरूप तथा दुष्ट उस महाअसुर से देवता परास्त हो गये ॥५१॥ सभी देवताओं को उसने स्वर्ग से खदेड़ दिया । सशङ्कित तथा भयभीत सभी देवता शङ्करजी के पास गये ॥५२॥ इन्द्र ने शङ्करजी के सामने जाकर कहा कि स्वर्ग से भ्रष्ट होकर सभी देवता पृथिवी पर विचरण कर रहे हैं।॥५३॥ हे महेश्वर ! मनुष्यों के साथ रहने वाले देवताओं की शोभा नहीं होती है । हे देव ! आप कोई उपाय बतलायें देवता किसके शरण में जायँ ॥५४॥ **महादेवजी ने कहा—** देवराज इन्द्र ! आप गरुडध्वज भगवान् के पास जायँ सबों के रक्षक, जगत् के स्वामी, रक्षक भगवान् नारायण हैं ॥५५॥ उन्हीं के पास जायँ वे आपलोगों की रक्षा करेंगे । शङ्करजी की वाणी सुनकर महाबुद्धिमान् इन्द्र देवताओं के साथ वहाँ गये ॥५६॥ जल के बीच में सोए हुए भगवान् को देखकर इन्द्र ने उनकी निम्नांकित स्तुति की ॥५७॥ ओङ्कार स्वरूप देवताओं के भी स्वामिन् आपको नमस्कार है । हे देवताओं और दानवों से वन्दित प्रभो ! हे दैत्यारे ! हे पुण्डरीकाक्ष ! हे मधुसूदन ! आप हमलोगों की रक्षा करें ॥५८॥ दानव से भयभीत होकर

सुराः सर्वे समायाता भयभीताश्च दानवात्। शरणं त्वां जगन्नाथ ! त्राहि मां भक्तवत्सल !॥५९॥
त्राहि नो देवदेवेश त्राहि त्राहि जनार्दन। त्राहि वै पुण्डरीकाक्ष ! दानवानां विनाशक ॥६०॥
त्वत्समीपं गताः सर्वे त्वमेव शरणं प्रभो। शरणागतानां देवानां सहायं कुरु वै प्रभो॥६१॥

त्वं पतिस्त्वं मतिर्देव त्वं कर्ता त्वं च कारणम्।
त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता ॥६२॥

भगवन्देवदेवेश शरणागतवत्सल !। शरणं तव चायाता भयभीताश्च देवताः ॥६३॥

देवता निर्जिताः सर्वाः स्वर्गभ्रष्टाः कृताःप्रभो !।
अत्युग्रेणाहिदैत्येनमुरनाम्ना महौजसा ॥६४॥

महादेव उवाच

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥६५॥

श्रीभगवानुवाच

कीदृशो दानवः शक्र ! किं रूपं कीदृशं बलम्।
क्व स्थानं तस्य दुष्टस्य किं वीर्यं कः पराक्रमः॥
किं वरं तस्य दुष्टस्य ममाख्याहि महामते ! ॥६६॥

इन्द्र उवाच

पूर्वं बभूव देवेश ! ब्रह्मवंशसमुद्भवः। तालजङ्घस्तु नाम्ना च अत्युग्रोऽपि महासुरः ॥६७॥
तस्य पुत्रो हि विख्यातो मुरनामेति दानवः। अत्युत्कटो महावीर्यो देवतानां भयङ्करः॥६८॥
पुरी चन्द्रावती नाम्ना तत्र स्थाने वसत्यसौ। निर्जिता देवताः सर्वाः स्वर्गात्तेन विवासितः ॥६९॥
इन्द्रोऽन्यो रोपितस्तेन वातश्चैव हुताशनः। चन्द्रसूर्यौ कृतौ चान्यौ वायुर्वरुण एव च ॥७०॥

सभी देवता आपकी शरण में आये हैं। हे भक्तवत्सल ! आप मेरी रक्षा करें ॥५९॥ हे देवदेवेश ! आप हमलोगों की रक्षा करें, रक्षा करें। हे दानवों का विनाश करने वाले पुण्डरीकाक्ष ! आप रक्षा करें ॥६०॥ सभी आपके पास आये हैं। आप ही रक्षक हैं। हे प्रभो ! शरण में आये हुए हम देवताओं की आप सहायता करें ॥६१॥ आप सबों के स्वामी तथा बुद्धि है। आप ही कर्ता और कारण हैं। आप ही सभी लोकों के माता हैं तथा जगत् पिता हैं ॥६२॥ हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे शरणागत वत्सल ! देवता भयभीत हैं और आपके शरण में आये हैं ॥६३॥ प्रभो ! सभी देवता अत्यन्त उग्र मुर नामक दैत्य से परास्त हो गये हैं। उसने देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया है ॥६४॥ **महादेवजी ने कहा—** इन्द्र के वचन को सुनकर भगवान् विष्णु ने कहा ॥६५॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे इन्द्र ! वह दानव कैसा है ? उसका रूप कैसा है और उसमें बल कितना है ? वह दुष्ट कहाँ रहता है, हे महामते ! मुझे आप इन सारी बातों को बतलायें। उसने किससे वरदान पाया है ?॥६६॥ **इन्द्र ने कहा—** हे देवेश ! बहुत पहले ब्रह्माजी के वंश में तालजङ्घ नामक महाअसुर उत्पन्न हुआ। वह स्वभाव से अत्यन्त उग्र था ॥६७॥ उसका पुत्र दानव मुर के नाम से विख्यात हुआ। वह अत्यन्त उत्कट, महापराक्रमी तथा देवताओं के लिए भयङ्कर है ॥६८॥ वह चन्द्रावती नाम की नगरी में रहता है। उससे सभी देवता परास्त हो गये हैं। उसने देवताओं को स्वर्ग

सर्वमात्मकृतं तेन सत्यं सत्यं जनार्दन। देवलोकः कृतस्तेन सर्वस्थानविवर्जितः ॥७१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कोपमाप्तो जनार्दनः। हनिष्ये दानवं दुष्टं देवतानां भयङ्करम् ॥७२॥
त्रिदशैः सहितो देवो गतश्चन्द्रावतीं पुरम्। दृष्टो दैवैस्तु दैत्येन्द्रो गर्जमानः पुनः पुनः ॥७३॥
तेन सर्वे जिता देव गताश्चैव दिशोदश। हरिं निरीक्ष्य प्रोवाच तिष्ठतिष्ठेति दानवः ॥
भगवानब्रवीतं च क्रोधसंरक्तलोचनः ॥७४॥

श्रीभगवानुवाच

रे दानव दुराचार ! ममबाहुं निरीक्षय । ततस्ते सम्मुखाः सर्वे विष्णुना दुष्टदानवाः ॥७५॥
हता बाणैः पुनर्दिव्यै जाताश्च भयविह्वलाः। चक्रं मुक्तं च कृष्णेन दैत्यसैन्येषु पाण्डव ! ॥७६॥
तेन च्छिन्नास्तु शतशो बहवो निधनं गताः। एकोऽपिदानवस्तत्र युध्यमानोमुहुर्मुहुः ॥७७॥
नष्टाः सर्वे सुरास्तेन निर्जितो मधुसूदनः । निर्जितं तेन दैत्येन बाहुयुद्धमजायत ॥७८॥
बाहुयुद्धं कृतं तेन दिव्यं वर्षसहस्रकम् । विष्णुश्चिन्तां प्रपन्नश्च नष्टाः सर्वाश्च देवताः॥७९॥
विष्णुश्च निर्जितस्तेन गतो बदरिकाश्रमम् । गुहा सिंहावती नाम तत्र सुप्तो जनार्दनः॥८०॥
योजनद्वादशवती एकद्वारा व पाण्डव ! । तस्यां विष्णुं प्रसुप्तं च दानवो हन्तुमुद्यतः ॥८१॥
महायुद्धेन तेनैव श्रान्तोऽसौ योगमायया। दानवः पृष्ठतो लग्नः प्रविष्टः सततागुहाम् ॥८२॥
प्रसुप्तं तत्र तं दृष्ट्वा दानवो हर्षमागतः। इत्थं मां निर्जितं मत्वा प्रविष्टं शङ्कया हरिम् ॥८३॥

से निकाल दिया है ॥६९॥ उसने दूसरे इन्द्र और दूसरे अग्नि को बना दिया है । उसने दूसरे चन्द्रमा, सूर्य, वायु और वरुण को बना दिया है । हे जनार्दन ! यह सत्य है कि उसमें सब कुछ अपने से बना दिया है। उसने सभी स्थानों से देवताओ को हटा दिया है ॥७०-७१॥ इन्द्र की उस वाणी को सुनकर भगवान् कुपित होकर कहे कि मैं उस दुष्ट दानव को मार दूँगा । वह देवताओं के लिए भयङ्कर है ॥७२॥ भगवान् विष्णु देवताओं के साथ चन्द्रावती नगरी में गये । देवताओं ने देखा कि वह दैत्य बार-बार गर्जना कर रहा है॥७३॥ उसने सभी देवताओं को जीत लिया और सभी देवता भाग गये । श्रीहरि को देखकर दानव ने कहा ठहरो-ठहरो । भगवान् भी क्रोध से आँखें लाल करके कहे ॥७४॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** अरे दुराचारी ! दानव मेरी भुजाओं को देखो । उसके बाद वे सभी दानव भगवान् विष्णु के सम्मुख आ गये॥७५॥ भगवान् के दिव्य बाणों से मारे जाकर वे सभी भयभीत हो गये । हे पाण्डव ! श्रीभगवान् ने दैत्य सेना के ऊपर चक्र को छोड़कर ॥७६॥ चक्र के द्वारा काटे जाकर अनेक दैत्य मर गये । वहाँ पर एक दानव भगवान् से बार-बार युद्ध कर रहा था । उसने सभी देवताओं को तथा श्रीभगवान् को जीत लिया । जीते जाने पर भगवान् ने उसके साथ बाहुयुद्ध किया ॥७७-७८॥ उसने देवताओं से एक हजार वर्ष तक युद्ध किया । भगवान् विष्णु चिन्तित हो गये कि सभी देवता नष्ट हो गये ॥७९॥ उससे पराजित होकर भगवान् विष्णु बदरिकाश्रम में सिंहावती नामक गुफा में जाकर सो गये ॥८०॥ वह बारह योजन में गुफा थी और उसमें एक ही द्वार था । उसमें सोए हुए भगवान् विष्णु को वह दानव मार देने के लिए तैयार था ॥८१॥ उसी के साथ महायुद्ध करने के कारण वे योगमाया के द्वारा श्रान्त कर दिये गये थे । उनके पीछे आता हुआ वह दैत्य उस गुफा में प्रवेश किया ॥८२॥ भगवान् को सोए हुए देखकर दानव

निःसंदेहं हनिश्यामि दानवानां भयङ्करम्। निर्गता कन्यका तत्र विष्णुदेहाद्युधिष्ठिर ! ॥८४॥
रूपवती सुसौभाग्या दिव्यप्रहरणायुधा। तस्य तेजोंऽशसंभूता महाबलपराक्रमा॥८५॥
दृष्टा सा दानवेन्द्रेण मुरनाम्ना धनञ्जय। युद्धं समाहितं तेन स्त्रियाचैव प्रयाचितम्॥८६॥
कन्यका युध्यते तत्र सर्वयुद्धविशारदा। हुङ्कारैर्भस्मसाज्जातो मुरनामा महासुरः॥८७॥
निहते दानवे तस्मिंस्तत्र देवस्त्वबुध्यत। पतितं दानवं दृष्ट्वा ततो विस्मयमागतः॥८८॥

विष्णुरुवाच

केनायं च हतो रौद्रो ह्यत्युग्रो मम शात्रवः। अत्युग्रं च कृतं कर्म मम कारुण्यतःकृतम्॥८९॥

कन्योवाच

तेनदेवाश्च गन्धर्वास्सयक्षोरगराक्षसाः। इन्द्राद्याः सकलाजित्वा स्वर्गाच्चैव निराकृताः॥९०॥
हरिः सुप्तो मया दृष्टो मुरः पृष्ठे समागतः।
संहरिष्यति त्रैलोक्यं सुप्ते चेव जनार्दने॥९१॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत्। अहं च निर्जितो येन कथं सोऽपि त्वया जितः॥९२॥

एकादश्युवाच

त्वत्प्रसादाच्च भोः स्वामिन्महादैत्यो मया हतः॥९३॥

श्रीभगवानुवाच

आनन्दं त्रिषु लोकेषु मुनयो देवता गताः। ब्रूहि भ्रदेऽद्य मह्यं त्वं यत्ते मनसि रोचते॥
ददामि च न संदेहो यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥९४॥

एकादश्युवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव सत्यमुक्तं जनार्दन। वरमेकं तु वाञ्छामि हृदये च जगत्पते !॥९५॥

हर्षित हो गया। इस तरह से मुझको हारा हुआ मानकर शङ्का के कारण प्रवेश किए हुए श्रीहरि को ॥८३॥ मैं दानवों के लिए भयङ्कर इसको मैं अवश्य मार दूँगा। हे युधिष्ठिर ! भगवान् विष्णु के शरीर से एक कन्या निकली ॥८४॥ वह सुन्दरी तथा सौभाग्य सम्पन्न थी। वह आयुधों को धारण किए थी। वह भगवान् के तेजांश से उत्पन्न थी तथा महाबल एवं पराक्रम से सम्पन्न थी ॥८५॥ हे धनञ्जय ! उस कन्या को मुर ने देखा। उस स्त्री ने उससे युद्ध करने को कहा और वह युद्ध करने लगा ॥८६॥ सभी प्रकार के युद्धों में निपुण उस कन्या ने युद्ध किया। उसके हुङ्कार से मुर नामक महाअसुर भस्म हो गया ॥८७॥ उस दैत्य के मार दिए जाने पर श्रीभगवान् जगे। गिरे हुए दानव को देखकर भगवान् आश्चर्यित हो गये॥८८॥ **भगवान् विष्णु ने कहा**— मेरे इस अत्यन्त उग्र शत्रु को किसने मारा है ? उसने इस अत्यन्त उग्र कर्म को करके मेरे ऊपर करुणा की है ॥८९॥ **कन्या ने कहा**— उसने देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, उरगों, राक्षसों तथा इन्द्र आदि सबों को जीतकर स्वर्ग से भगा दिया था ॥९०॥ श्रीहरि को सोए हुए तथा पीछे से आये हुए मुर को मैंने देखा। मैंने सोचा कि श्रीहरि के सो जाने पर यह तो त्रैलोक्य का संहार कर देगा ॥९१॥ उस कन्या की वाणी सुनकर भगवान् विष्णु ने कहा उसने तो मुझे भी जीत लिया था और तुमने उसको कैसे परास्त कर दिया ॥९२॥ **एकादशी ने कहा**— हे स्वामिन् ! आपकी ही कृपा से मैंने इसको मारा है ॥९३॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— त्रैलोक्य में मुनिगण आनन्दित हो गये हैं। हे भद्रे !

प्रार्थयामि च देवेश ईप्सितं च मयाप्रभो। यदि सत्यं जगन्नाथ तिस्रो वाचो ददासिमे॥९६॥

श्रीभगवानुवाच

सत्यं सत्यं मया प्रोक्तं अवश्यं तव सुव्रते। तिस्रो वाचो मयादत्ता नचावाक्यंभवेदिह॥९७॥

एकादश्युवाच

त्रिभुवनेषु च देवेश चतुयुर्गेषु साम्प्रतम्। त्रिषु लोकेषु सर्वत्र तादृशं कुरु मे प्रभो !॥९८॥

सर्वतीर्थप्रधाना हि सर्वविघ्नविनाशिनी। सर्वसिद्धिकरी देवी त्वत्प्रसादाद्भवाम्यहम्॥९९॥

मामुपोष्यन्ति ये भत्तया तव भत्तया जनार्दन ! ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तेषां यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ! ॥१००॥

उपवासं च नक्तं च एकभक्तं करोति च । तस्य वित्तं च धर्मं च मोक्षं वै देहि माधव॥१०१॥

विष्णुरुवाच

यत्त्वं वदसि कल्याणि ! तत्सर्वं च भविष्यति ।
सर्वान्मनोरथान्भद्रे दास्यसि त्वं च नान्यथा ॥१०२॥
मम भक्ताश्च ये लोकेये च भक्तास्तु कार्तिके ।
चतुर्युगेषु विख्यातास्त्रिषुंलोकेषुवैतथा ॥१०३॥
त्वां च शक्तिमहं मन्य एकादशीव्रतस्थिताः ।
मम पूजां करिष्यन्ति मोक्षगास्ते न संशयः ॥१०४॥

तृतीया चाष्टमी चैव नवमी च चतुर्दशी । एकादशीविशेषेण तिथिरेषा हरिप्रिया ॥
सर्वतीर्थाधिकं पुण्यं सत्यं सत्यं न संशयः ॥१०५॥

तुमको जो अच्छा लगे वह वरदान मुझसे माँग लो । मैं देवताओं के भी लिए दुर्लभ वरदान तुमको दूँगा॥९४॥ **एकादशी ने कहा—** हे जनार्दन ! यदि आप सचमुच प्रसन्न हैं तो मैं एक वरदान चाहती हूँ जो मेरे हृदय में है ॥९५॥ हे प्रभो ! मैं अपने अभिप्रेत वरदान के लिए आपसे प्रार्थना करती हूँ । यदि आप तीन बार कहकर अपनी वाणी की सत्यता प्रदान करते हैं तो मैं उसे कहूँ ॥९६॥ हे सुव्रते ! मैंने निश्चित रूप से सत्य कहा है । मैंने इसे तीन बार कहा है, यह असत्य नहीं होगा ॥९७॥ **एकादशी ने कहा—** हे देवेश ! आप मुझको तीनों भुवनों, चारों युगों तथा तीनों लोकों में ऐसा बना दीजिये कि॥९८॥ मैं आपकी कृपा से सभी तीर्थों में प्रधान हो जाऊँ, सभी विघ्नों का विनाश करने वाली बन जाऊँ तथा सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाली देवी हो जाऊँ ॥९९॥ हे प्रभो ! आपकी भक्ति से युक्त जो मनुष्य भक्ति पूर्वक मेरी तिथि को उपवास करें उनकी सब प्रकार की सिद्धि हो जाय ॥१००॥ जो उपवास करके नक्त बेला में एक बार भोजन करे उसको हे माधव ! आप सम्पत्ति, धर्म और मोक्ष प्रदान करें ॥१०१॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** कल्याणि ! तुम जो कह रही हो वह सब होयेगा । तुम समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाली होओगी, यह सत्य है ॥१०२॥ संसार में जो मेरे भक्त हैं तथा कार्तिक मास के भक्त हैं वेचारों युगों में तथा तीनों लोकों में विख्यात होंगे ॥१०३॥ मैं तुमको अपनी शक्ति मानता हूँ । एकादशी व्रत करने वाले मेरी पूजा करेंगे और मुक्ति प्राप्त करेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥१०४॥ तृतीया, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी तथा एकादशी ये तिथियाँ श्रीहरि को विशेष रूप से प्रिय हैं । यह नितान्त सत्य है कि

महादेव उवाच

इदं दत्त्वा वरं तस्यै तिस्रो वाचो न संशयः ।
हृष्टा पुष्टा च संजाता एकादशीमहाव्रता ॥१०६॥
शत्रुं हंसि परां तस्य ददासि परमां गतिम्। त्वं हंसि सर्वविघ्नानि सर्वसिद्धिवाप्रदा ॥१०७॥
उभयोः पक्षयोःपार्थ तुल्यैवैकादशी शुभा । न शुक्ला नैवकृष्णा च विभेदं नैव कारयेत्॥१०८॥
विभेदो नैव कर्तव्यः समस्तव्रतकारिभिः । दिवा वा यदि वा रात्रौ श्रृणोति भक्तितत्परः॥१०९॥
तिथिरेका भवेत्सर्वा पक्षयोरुभयोरपि । उदयैकादशी स्वल्पा ह्यन्ते चैव त्रयोदशी ॥११०॥
मध्ये तु द्वादशी पूर्णा त्रिस्पृशासा हरिप्रिया ।
एकामुपोषयेत्तां वै सहस्रैकादशीफलम् ॥१११॥
सहस्रगुणितं ह्येवं द्वादश्यां पारणे कृते। अष्टभ्येकादशी षष्ठी तृतीया च चतुर्दशी ॥११२॥
पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या परविद्धामुपोषयेत्। एकादशी ह्यहोरात्रं प्रभाते घटिका भवेत् ॥११३॥
सा तिथिः परिहर्तव्या उपोष्या द्वादशी युता ।
एवंविधा मया प्रोक्ता पक्षयोरुभयोरपि ॥११४॥
एकादश्यां प्रकुर्वीत ह्युपवासं नरास्तु ये । ते यन्ति वैष्णवं स्थानं यत्रास्ते गरुडध्वजः ॥११५॥
धन्यास्ते मानवा लोके विष्णुभक्तिपरायणाः ।
एकादश्याश्च माहात्म्यं सर्वकालेषु यः पठेत् ॥११६॥
गोसहस्रफलं सोऽपि पुण्यं प्राप्नोति मानवः ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ ये वै श्रृण्वन्ति भक्तितः ॥११७॥

एकादशी सभी तीर्थों से अधिक पवित्र है ॥१०५॥ **महादेवजी ने कहा**— तीन बार कहकर श्रीभगवान् ने एकादशी को यह वरदान दिया उससे वह हृष्ट-पुष्ट हो गयी ॥१०६॥ हे एकादशी ! तुम शत्रु को मारती हो, सर्वोत्कृष्ट सद्गति (मुक्ति) प्रदान करती हो, समस्त विघ्नों का विनाश करती हो तथा सभी सिद्धियों का वरदान प्रदान करती ॥१०७॥ हे पार्थ ! दोनों पक्षों की एकादशियाँ एक समान हैं । उन दोनो में शुक्ला और कृष्णा का भेद नहीं करना चाहिए ॥१०८॥ सभी व्रत करने वालों को दोनों एकादशियो में विभेद नहीं करना चाहिए, दिन अथवा रात्रि में उन एकादशियाँ का माहात्म्य भक्ति पूर्वक सुनना चाहिए ॥१०९॥ दोनों ही पक्षों मे एक एक एकादशी तिथि होती है । उदय काल में अत्यन्त थोड़ी एकादशी रहे और रात्रि के अन्तिम समय में थोड़ी त्रयोदशी हो और बीच में द्वादशी तिथि हो तो वह श्रीहरि को अत्यन्त प्रिय त्रिस्पृशा एकादशी होती है । इस तरह की एकादशी का पारण द्वादशी में करने पर एक हजार गुना एकादशी का फल होता है । अष्टमी, एकादशी, षष्ठी, तृतीया और चतुर्दशी इन तिथियों के पूर्वविद्धा होने पर व्रत न करे, किन्तु बाद की तिथि का वेध होने पर व्रत करना चाहिए । दिन-रात रहने वाली एकादशी यदि प्रातःकाल एक घड़ी रहे तो ॥११०-११३॥ ऐसी एकादशी को त्याग दे और द्वादशी का व्रत करे । इस तरह से मैंने दोनों पक्षों की एकादशी को बतलाया ॥११४॥ जो मनुष्य एकादशी तिथि का उपवास करते हैं वे इस वैष्णव स्थान में जाते हैं जहाँ पर भगवान् गरुडध्वज रहते हैं ॥११५॥ भगवान् विष्णु की भक्ति करने वाले वे मनुष्य धन्य हैं जो एकादशी का माहात्म्य सदैव पढ़ते है ॥११६॥ वे भी मनुष्य एक हजार गोदान

ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यन्ते नात्र संशयः। विष्णुधर्मसमं नास्ति गीतार्थं च नृपोत्तम ॥
एकादशीसमं नास्ति व्रतं पापप्रणाशनम् ॥११८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे एकादश्युत्पत्ति मुरवधो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

चालिसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

वन्दे विष्णुं विभुं साक्षाल्लोकत्रयसुखावहम् ।
विश्वेशं विश्वकर्तारं पुराणं पुरुषोत्तमम् ॥१॥
पृच्छामि देवदेवेश संशयोऽस्ति महान्मम। लोकानांच हितार्थाय पापानां क्षयहेतवे ॥२॥
मार्गशीर्षेऽसिते पक्षे भवेदेकादशी तु या ।
किं नाम कोविधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ॥
एतदाचक्ष्व मे स्वामिन्विस्तरेण यथातथम् ॥३॥

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टं त्वया राजन्साधु ते विमलं यशः ।
कथयिष्यामि राजेन्द्रहरिवासरमुत्तमम् ॥४॥

का फल प्राप्त करता है जो मनुष्य भक्ति पूर्वक दिन अथवा रात्रि में एकादशी माहात्म्य को सुनते हैं।।११७।। वह ब्रह्महत्या आदि से मुक्त हो जाते हैं इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । हे नृपोत्तम, गीतार्थ के समान कोई विष्णु धर्म नहीं है और एकादशी के समान कोई पाप विनाशक नहीं है ।।११८।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत एकादशी उत्पत्ति तथा मुर वध वर्णन नामक उनतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३९।।

मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की मोक्षदा एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— व्यापक तीनों लोकों का साक्षात् सुख प्रदान करने वाले विश्व के स्वामी, विश्व के कर्ता तथा पुराण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की मैं वन्दना करता हूँ ।।१।। हे देव देवेश ! मुझको अत्यन्त संशय है अतएव आपसे पूछता हूँ । संसारी जीवों का कल्याण करने के लिए और पापों का नाश करने के लिए मैं पूछ रहा हूँ ।।२।। मार्गशीर्ष के शुक्लपक्ष की जो एकादशी होती है, उसका नाम क्या है ? उसकी विधि क्या है ? उस एकादशी में किस देवता की पूजा होती है ? हे स्वामिन् ! इसबात को आप मुझे ठीक-ठीक विस्तार पूर्वक बतलाइये । **श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—** राजन् ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया

उत्पन्ना चासिते पक्षे द्वादशी मम वल्लभा। मार्गशीर्षोत्पत्तिरिति मम देहसमुद्भवा ॥५॥
सुरासुरवधार्थाय ह्युत्पन्ना भरतर्षभ। कथिता च मया सा वै तवाग्रे राजसत्तम !॥६॥
पूर्वा चैकादशी राजंस्त्रैलोक्ये सचराचरे। मार्गशीर्षेऽसिते पक्षे ह्युत्पत्तिरिति नामतः ॥७॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि मार्गशीर्षे सिता तु या।
यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥८॥
मोक्षानामेति सा प्रोक्ता सर्वपापहरा परा। देवं दामोदरं राजन्पूजयेच्च प्रयत्नतः ॥९॥
तुलस्यामञ्जरीभिश्च धूपैर्दीपैः प्रयत्नतः। पूर्वेण विधिना चैव दशम्येकदशी तथा ॥१०॥
मोक्षा चैकादशी नाम्ना महापातकनाशिनी। रात्रौ जागरणं कार्यं नृत्यगीतस्तवैर्मम ॥११॥
शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि दिव्यां पौराणिकीं कथाम्।
यस्याः श्रवणमोत्रण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥१२॥
अधोयोनिगताश्चैव पितरो यस्य पापतः। अस्याश्च पुण्यदानेन मोक्षं यान्ति नसंशयः॥१३॥
चम्पके नगरे रम्ये वैष्णवैश्च विभूषिते। वैखानसो नाम नृपः पुत्रवत्पालयेत्प्रजाः॥१४॥
वसन्ति बहवो विप्रा वेदवेदाङ्गपारगाः। ऋद्धिमत्यः प्रजास्तस्य राज्ञो वैखानसस्य हि ॥१५॥
एवं राज्यं प्रकुर्वाणो रात्रौ स्वप्नस्य मध्यतः।
पितॄन्स्वकीयान्सोऽपश्यदधोयोनिगतान्नृप ! ॥१६॥
एवं दृष्ट्वा च तान्सर्वान्विस्मयाविष्टमानसः ॥१७॥

है, आपका यश निष्कलंक है। हे राजेन्द्र ! मैं आपको इस उत्तम एकादशी के विषय में बतलाऊँगा ॥३-४॥ शुक्ल पक्ष में मेरी प्रिया एकादशी होती है, मार्गशीर्ष की उत्पत्ति मेरे शरीर से हुयी है ॥५॥ हे भरतश्रेष्ठ! मैंने आपको बतलाया है कि यह देवताओं और असुरों का वध करने के लिए उत्पन्न हुयी ॥६॥ राजन् ! चराचरात्मक त्रैलोक्य में मार्गशीर्ष के महीने में उत्पन्न हुयी उसका नाम मैं बतला चुका हूँ ॥७॥ अव मैं मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के विषय में बतलाता हूँ। उसका माहात्म्य सुनने मात्र से वाजपेय याग करने का फल प्राप्त होता है ॥८॥ उस एकादशी का नाम मोक्षा है। वह श्रेष्ठ पापापहारिणी है। इस एकादशी में प्रयत्न पूर्वक भगवान् दामोदर की पूजा करनी चाहिए ॥९॥ पूर्वोक्त विधि से भगवान् की तुलसी की मञ्जरी से तथा धूप एवं दीप से भगवान् की पूजा करें, दशमी और एकादशी भी पूर्वोक्त प्रकार की ही होती है ॥१०॥ इस एकादशी का नाम मोक्षा है यह महापापों का विनाश करती है। रात्रि में नृत्य, गीत तथा मेरे स्तवों के द्वारा जागरण करना चाहिए ॥११॥ हे राजन् ! मैं पुराण की दिव्य कथा बतलाता हूँ, उसके सुनने मात्र से सभी पापों का नाश होता है ॥१२॥ इस एकादशी के पुण्य का दान करने से पाप करने के कारण जिनके पितृगण नीचयोनि में चले गये हैं, उनका मोक्ष हो जाता है ॥१३॥ चम्पक नामक मनोहर नगर वैष्णवों से विभूषित था। वहाँ के राजा का नाम वैखानस था। वह प्रजा का पुत्र के समान पालन करता था ॥१४॥ इस नगर में बहुत से वेद वेदाङ्गपारङ्गत ब्राह्मण थे। राजा वैखानस की प्रजा समृद्धि सम्पन्न थी ॥१५॥ इस तरह से राज्य करते हुए उस राजा ने स्वप्न में अपने पितरों को अधोगति में गये हुए देखा ॥१६॥ उन सबों को इस प्रकार का देखकर राजा आश्चर्यित हो गये॥१७॥ **राजा ने कहा—** ब्राह्मणों मैंने अपने पितरों को नरकों में गये हुए देखा है। उन लोगों ने

राजोवाच

मया स्वपितरो दृष्टा नरकोपगता द्विजाः। तारयेति तनूज ! त्वमस्यान्निरयसागरात् ॥१८॥
एवं ब्रुवाणास्ते नूनं रोदमाना मुहुर्मुहुः। मया दृष्टा द्विजश्रेष्ठा एतस्माच्च न मे सुखम्॥१९॥
एतद्राज्यं मम महत्सुखदायि न विद्यते । अश्वा गजास्तथा सर्वे रोचन्ते मे न भोद्विजाः ॥२०॥
न दारा न सुता मह्यं रोचन्ते द्विजसत्तमाः। किं करोमि क्व गच्छामि हृदयं मेऽवरुध्यते ॥२१॥

तद्व्रतं तं तपोयोगं येनैव मम पूर्वजाः ।
मोक्षं प्रयान्ति सद्यो वै कथ्यतां च द्विजोत्तमाः ! ॥२२॥

पुत्रे तु जीवितप्रायेबलीयसि महात्मनि। पिताऽस्ति नरके घोरेतस्य पुत्रस्य किं फलम्॥२३॥

ब्राह्मण ऊचुः

पर्वतस्य मुने राजन्निकटे चाश्रमो महान्। गम्यतां राजशार्दूल भूतं भव्यं विजानतः ॥२४॥

तेषां श्रुत्वा ततो वाक्यं राजा वैखानसो महान् ।
जगाम चाशु तत्रैव चाश्रमं पर्वतस्य च ॥२५॥

ब्राह्मणैर्वेष्टितो राजाराजभिश्च समन्वितः। आश्रमं विपुलं तस्य संप्राप्तो राजसत्तमः ॥२६॥
तत्रर्ग्वेदयजुर्वेदसामाध्ययनकोविदैः । वेष्टितं मुनिभिश्चैव द्वितीयमिव वेधसम् ॥२७॥
दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलं राजा वैशानसस्तथा। दण्डवत्प्रणतिं कृत्वा पस्पर्श चरणौ मुनेः ॥२८॥

पप्रच्छ कुशलं तस्य सप्तस्वङ्गेष्वसौ मुनिः ।
राज्ये निष्कण्टकत्वं च राज्ञः सौख्यसमन्वितम् ॥२९॥

राजोवाच

तव प्रसादाद्ग्रोस्वामिन्कुशलं मेऽङ्गसप्तके। भक्त ये विष्णुविप्रेषु कथं तेषां सविधनता ॥३०॥

कहा वत्स ! इस नरक सागर से तुम हमलोगों का उद्धार करो ॥१८॥ इस तरह बार-बार कहकर वे रो रहे थे । ब्राह्मणों मैंने यह देखा है अतएव मैं सुखी नहीं हूँ ॥१९॥ यह महान् राज्य मुझको सुख नहीं दे रहा है । ब्राह्मणों ये हाथी, घोड़े मुझको अच्छे नहीं लगते हैं ॥२०॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणों मुझको पत्नी तथा पुत्र भी अच्छे नहीं लग रहे हैं । मैं क्या करूँ ? और कहा जाऊँ ? मेरा हृदय जैसे रुक रहा है ॥२१॥ आपलोग मुझको व्रत को अथवा तप को बतलायें जिसके करने से मेरे पूर्वज शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर लें॥२२॥ बलवान् पुत्र के जीवित रहते पिता यदि नरक में निवास करें तो ऐसे पुत्र से कौन सा लाभ है?॥२३॥ **ब्राह्मणों ने कहा**— राजवर्य ! आप भूत तथा भविष्य को जानने वाले महर्षि पर्वत के आश्रम में जायँ । उनका आश्रम सन्निकट में ही है ॥२४॥ ब्राह्मणों की बात सुनकर राजा वैखानस शीघ्र ही पर्वत महर्षि के आश्रम में गये ॥२५॥ राजा के साथ दूसरे राजा और ब्राह्मण भी थे । वे श्रेष्ठ राजा उस विस्तृत आश्रम में गये ॥२६॥ वहाँ पर ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद का अध्ययन करने वाले विद्वानों से घिरे हुए दूसरे ब्रह्मा के समान ॥२७॥ मुनि को देखकर राजा वैखानस ने उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उनके चरणों का स्पर्श किया ॥२८॥ महर्षि ने राजा के राज्य के सातों अङ्गों के विषय में कुशल पूछा तथा राज्य में निष्कण्टक सुख के विषय में उन्होंने पूछा ॥२९॥ **राजा ने कहा**— हे स्वामिन् ! आपकी कृपा से मेरे

मया स्वपितरो दृष्टाः स्वप्ने च नरके स्थिताः ।
कस्य पुण्यस्य सामर्थ्यान्मोक्षं यान्ति द्विजोत्तम ! ॥३१॥
अयं मे संशयः स्वामिन्प्रष्टु तं त्वामुपागतः ।
उपायः कश्चिदेवात्र कर्तव्यो मुनिरसत्तम ॥३२॥

एतद्वाक्यं ततः श्रुत्वा पर्वतो मुनिसत्तमः । ध्यानस्तिमितनेत्रोऽभूत्तपस्वी ब्रह्मसंनिभः ॥३३॥
मुहूर्तमेकं ध्यानस्थो भूपतिं प्रत्युवाचह । ज्ञातं हि तव राजेन्द्र पितृणां पूर्वचेष्टितम् ॥३४॥
पूर्वजन्मनि तातस्ते क्षत्रियो राज्यगर्वितः । स पत्न्या ऋतुकाले तु राजधर्मप्रवर्तितः ॥३५॥

गतो ग्रामे तु तां त्यक्त्वा कार्यार्थी निजयोषितम् ।
तव पित्रा तु तस्याश्च न दत्तमृतुदानकम् ॥३६॥

तेन पापप्रभावेण नरके पितृभिः सह । पतितो राजशार्दूल ! तव तातः सुदारुणे ॥३७॥
ततः पुनरुवाचेदं राजा वैखानसो मुनिम् । केन व्रतप्रभावेण मोक्षस्तेषां भवेन्मुने ! ॥३८॥

मुनिरुवाच

मार्गशीर्षेऽसिते पक्षे मोक्षानामेतिनामतः । सर्वैश्चैतद्व्रतं कार्यं पित्रे पुण्यं प्रदीयताम् ॥३९॥
तेन पुण्यप्रभावे मोक्षस्तेषां भविष्यति । सत्यमेतन्महाभाग ब्राह्मणो वचनं यथा ॥४०॥
मुनेर्वाक्यं ततः श्रुत्वा स्वगृहं पुनरागतः । मार्गशीर्षस्तथा मासः प्राप्तः कष्टेन तेन वै ॥४१॥
मुनेर्वाक्येन तत्कृत्वा व्रतं वैखानसो नृपः । अददात्पुण्यमखिलैः सार्धं पित्रे स भूमिपः ॥४२॥
दत्ते पुण्ये क्षणेनैव पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः । वैखानसस्य तातो वै पितृभिर्मोक्षमाविशत् ॥४३॥

सातो राज्याङ्गों में कुशल है । भगवान् विष्णु के भक्तों को विघ्न होने की कैसे सम्भावना हो सकती है॥३०॥ स्वप्न में मैंने अपने पितरों को नरक में स्थित देखा है । हे द्विजोत्तम ! किस पुण्य के करने से वे मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ?॥३१॥ हे स्वामिन् ! मुझको यहीं संशय है, इसीके विषय में पूछने के लिए मैं आपके पास आया हूँ । हे मुनिश्रेष्ठ ! इस विषय में कोई उपाय वतलायें ॥३२॥ इस वाक्य को सुनकर महर्षि पर्वत अपने नेत्रों को मूंदकर ध्यान मग्न हो गये । वे तपस्वी ब्रह्माजी के समान थे ॥३३॥ एक मुहूर्त तक ध्यान करके वे राजा से कहे— राजेन्द्र ! मैंने आपके पूर्वजों के कर्मो को जान लिया है ॥३४॥ आपके पिता पूर्व जन्म में राज्य के गर्व से दृप्त क्षत्रिय थे । वे अपनी पत्नी के ऋतु काल में राज धर्म में लगे रहे ॥३५॥ अपने ग्राम में जाने पर भी, कार्यो में व्यग्र रहने के कारण उन्होंने अपनी पत्नी को ऋतुदान नहीं दिया ॥३६॥ उसी पाप के प्रभाव से वे अपने पितरों के साथ अत्यन्त भयङ्कर नरक में गिर पड़े हैं॥३७॥ उसके बाद राजा वैखानस ने मुनि पर्वत से पुनः कहा— हे मुने ! किस व्रत को करने से मेरे पितरों की मुक्ति हो सकती है ॥३८॥ **मुनि ने कहा**— मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में मोक्षा नाम की एकादशी होगी । सब लोग इस व्रत को करें और उस व्रत के पुण्य को आपके पितरों को दे दें ॥३९॥ उसी के पुण्य के प्रभाव से उन सबों का मोक्ष हो जायेगा । राजन् ! ब्रह्माजी के अनुसार यह वचन सत्य है ॥४०॥ मुनि के वाक्य को सुनकर राजा अपने घर आये । उसके बाद उसी कष्ट से मार्गशीर्ष का महीना आया॥४१॥ राजा ने मुनि के वचनानुसार उस व्रत को राजाओं के साथ किया और उस व्रत के सम्पूर्ण पुण्य को अपने

राजानं चान्तरिक्षे स गिरं पुण्यामुवाचह ।
स्वस्ति स्वस्तीति ते पुत्र ! प्रोच्य चैवं दिवं गतः ॥४४॥
एवं यः कुरुते राजन्मोक्षामेकादशीं शुभाम् ।
तस्य पापानि नश्यन्ति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥४५॥
नातः परतरा काचिन्मोक्षदैकादशी भवेत् ।
पुण्यसङ्ख्यां न जानामि राजन्मे प्रियकृद् व्रतम् ॥४६॥
चिन्तामणिसमा ह्येषा नृणां मोक्षप्रदायिनी। पठनाच्छ्रवणादस्या वाजपेयफलं लभेत् ॥४७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे मार्गशीर्षशुक्लमोक्षदैकादशी नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

एकतालिसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

पौषस्य कृष्णपक्षेतु किंनामैकादशीभवेत् । किं नामकोविधिस्तस्या एतद्विस्तरतोवद ॥
एतदाख्याहि भोस्वामिन्कोदेवस्तत्र पूज्यते ॥१॥

पिता को समर्पित कर दिया ॥४२॥ पुण्य प्रदान करते ही क्षणभर में आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुयी । और राजा वैखानस के पिता अपने पितरों के साथ मोक्ष प्राप्त कर लिए ॥४३॥ राजा के लिए स्वस्ति स्वस्ति कहकर पवित्र आकाशवाणी हुयी । इस तरह से कहकर वे द्युलोक में चले गये ॥४४॥ राजन् ! जो मोक्षदा एकादशी का व्रत करता है, उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं और वह मृत्यु के पश्चात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥४५॥ इससे भिन्न कोई मोक्षदा एकादशी नहीं हो सकती है । राजन् ! उससे होने वाले पुण्यों की संख्या मैं नहीं जानता हूँ । वह व्रत मुझको प्रिय है ॥४६॥ यह मोक्षदा एकादशी मनुष्यों के लिए चिन्तामणि के समान है । इस आख्यान को पढ़ने तथा श्रवण करने से वाजपेय यज्ञ के समान फल होता है ॥४७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत मार्गशीर्ष शुक्ल मोक्षदा एकादशी वर्णन नामक चालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४०॥

पौष मास के कृष्ण पक्ष की सफला एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— पौष मास के कृष्ण पक्ष में होने वाली एकादशी का नाम क्या है ? उसकी कौन सी विधि होती है, इस बात को आप विस्तार से बतलायें । हे स्वामिन् ! इस बात को आप मुझे विस्तार से बतलायें ॥१॥ **श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—** हे राजेन्द्र ! आपके प्रति स्नेह होने के कारण मैं

श्रीकृष्ण उवाच

कथयिष्यामि राजेन्द्र ! भवतः स्नेहबन्धनात् ।
तुष्टिर्मे न तथा राजन्यज्ञैर्बहुलदक्षिणैः ॥२॥

यथा मे तुष्टिरायाति ह्येकादशीव्रतेन वै । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यो हरिवासरः ॥३॥
सत्यमेतन्न वै मिथ्या धर्मिष्ठानां विशारद। पौषस्य कृष्णपक्षे या सफलानाम नामतः॥४॥
तस्यां नारायणं देवं पूजयेच्च यथाविधि। पूर्वेणैव विधानेन कर्त्तव्यैकादशा शुभा ॥५॥

नागानां च यथा शेषः पक्षिणां पन्नगाशनः ।
देवानां च यथा विष्णुर्द्विपदानां यथा द्विजः ॥६॥
व्रतानां च तथा राजञ्छ्रेष्ठा चैकादशी तिथिः ।
ते जनाश्चैव भोराजन्पूज्या वै सर्वदा मम ॥७॥

हरिवासरसंलीनाः कुर्वन्त्येकादशीव्रतम् । इहैव धनसंयुक्ता मृता मोक्षं लभन्ति ते॥८॥
सफलायां फलै राजन्पूजयेन्नामतो हरिम् । नारिकेलफलैश्चैव क्रमुकैर्बीजपूरकैः॥९॥
जम्बीरैर्दाडिमैश्चैव तथा धात्रीफलैः शुभैः । लवङ्गैर्बदरीभिश्च तथाऽऽम्रैश्च विशेषतः ॥१०॥
पूजयेद्देवदेवेशं धूपदीपैस्तथैव च । सफलायां विशेषेण दीपदानं तु कारयेत्॥११॥
रात्रौ जागरणं चैव कर्त्तव्यं सह वैष्णवैः। यावन्निमेषो नेत्रस्य तावज्जागर्ति यो निशि॥१२॥

एकाग्रमनसो राजंस्तस्य पुण्यं शृणुष्व हि ।
तत्समो नास्ति यज्ञो वै तीर्थं वा तत्समं न हि ॥१३॥

सर्वव्रतानि राजेन्द्र कलां नार्हन्ति षोडशीम्। एवं वर्षसहस्राणि तपसानैव यत्फलम्॥१४॥

इसे बतलाता हूँ । राजन् ! मुझको दक्षिणा तथा बहुत यज्ञों से उतनी संतुष्टि नहीं होती है । जितना ॥२॥ एकादशी व्रत से मुझको संतोष होता है । अतएव हर प्रकार का प्रयत्न करके एकादशी व्रत करना चाहिए॥३॥ हे धार्मिकों में निपुण मेरी यह बात सत्य है मिथ्या नहीं है । पौष मास के कृष्ण पक्ष में होने वाली एकादशी का नाम सफला है ॥४॥ इस व्रत में विधिपूर्वक भगवान् नारायण की पूजा करनी चाहिए । पूर्वोक्त विधान से ही इस एकादशी को भी करना चाहिए ॥५॥ जिस तरह नागों में शेष श्रेष्ठ हैं, पक्षियों में गरुड श्रेष्ठ है, देवताओं में भगवान् विष्णु श्रेष्ठ हैं तथा मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, उसी तरह व्रतों में एकादशी तिथि श्रेष्ठ है । हे राजन् ! वे मनुष्य मेरे लिए सदा पूज्य हैं ॥६-७॥ जो एकादशी में लगे रहकर एकादशी का व्रत करते हैं । वे लोग संसार में धनी हो जाते हैं और मृत्यु के पश्चात् मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥८॥ हे राजन् ! सफला एकादशी में श्रीहरि की पूजा फल से करनी चाहिए । नारियल, सुपारी, बीजपूर, जाम्बीर, अनार, आँवला, लवङ्ग, बैर तथा विशेष रूप से आम से श्रीहरि की पूजा करें ॥९-१०॥ सफला एकादशी में श्रीहरि की पूजा धूप, दीप से करे, और विशेष रूप से श्रीभगवान् को दीपदान करे ॥११॥ रात्रि में वैष्णवों के साथ जागरण करना चाहिए । यदि कोई रात्रि में एकनिमेष भी जागरण करता है, तो उसको प्राप्त होने वाले फल को आप सुनें ॥१२॥ उसके समान न तो कोई यज्ञ होता है और न तो कोई उसके समान तीर्थ होता है ॥१३॥ सभी व्रत एकादशीव्रत के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं होते हैं । हजारों वर्षों तक तपस्या करने से भी उस फल की प्राप्ति नहीं होती है जिस फल की प्राप्ति रात्रि जागरण करने

तत्फलं समवाप्नोति यः करोति हि जागरम् ।
श्रूयतां राजशार्दूल सफलायाः कथाशुभा ॥१५॥
चम्पावतीति विख्याता पुरी माहिष्मतस्य च ।
बभुवुस्तस्य राजर्षेः पुत्राः पञ्चकुमारकाः ॥१६॥
तेषां मध्ये तु ज्येष्ठो वै महापापरतःसदा । परदाराभिचारी च वेश्यासक्तश्च मद्यपः॥१७॥
पितुर्द्रव्यं तु तेनैव गमितं पापकर्मणा । असद्वृत्तिरतो नित्यं भूसुराणां तु निन्दकः ॥१८॥
वैष्णवानाञ्च देवानां नित्यं निन्दां करोति सः ।
ईदृशं तु ततो दृष्ट्वा पुत्रं माहिष्मतो नृपः ॥१९॥
नाम्ना तु लुम्पक इति राजपुत्रेषु चापठत् ।
राज्यान्निष्कासितस्तेन पित्रा चैव तु बन्धुभिः ॥२०॥
स चैवं परिवारैस्तु त्यक्तश्च परिपन्थिवत्। लुम्पकोऽपि तथा त्यक्तश्चिन्तयामास वै तदा ॥२१॥
त्यक्तोऽहं बान्धवैःपित्रा राज्यान्निष्कासितः किल ।
इति चिन्तयमानोऽसौ मतिं पापे तदाऽकरोत् ॥२२॥
मया गन्तव्यमेवास्तु दारुणे गहने वने। तस्माच्चैव पुरं सर्वं लुम्पयिष्यामि वै पितुः ॥२३॥
इत्येवं स मतिं कृत्वा लुम्पको दैवयोगतः। निर्जगाम पुरात्तस्माद्गतोऽसौ गहने वने॥२४॥
जीवघातरतो नित्यं स्तेयद्यूतकलानिधिः। सर्वं च नगरं तेन मुषितं पापकर्मणा ॥२५॥
स्तेयाभिगामी नगरे गृहीतः स निशाचरैः ।
उवाच तान्सुतोऽहं वै राज्ञो माहिष्मतस्य च ॥२६॥
स तैर्मुक्तःपापकर्मा चागतो विपिनं पुनः। आमिषाभिरतो नित्यं तरोर्वै फलभक्षणे॥२७॥

से होती है । हे राजेन्द्र ! आप सफला एकादशी की कथा सुनें ॥१४-१५॥ माहिष्मत की विख्यात नगरी का नाम चम्पावती था । उस राजर्षि के पाञ्च पुत्र थे । उनमें जो सबसे बड़ा था वह सदा पाप कर्मों को करता रहता था । वह परस्त्रीगामी, वेश्यागामी और मद्यप था ॥१६-१७॥ उसने पिता की सम्पत्ति पाप कर्मों में ही खर्च कर दिया । वह सदा असदाचारी था और ब्राह्मणों की निन्दा करता था ॥१८॥ वह सदैव देवताओं तथा ब्राह्मणों की निन्दा करता था । अपने पुत्र को इस प्रकार का देखकर राजा माहिष्मत् ॥१९॥ ने अपने पुत्रों में उसका नाम लुम्पक रख दिया । फिर राजा और उसके भाइयों ने मिलकर उसको अपने राज्य से निकाल दिया ॥२०॥ अपने परिवार वालों से शत्रु के समान् परित्याग कर दिए जाने के कारण लुम्पक ने उस समय विचार किया ॥२१॥ मेरे पिता और बान्धवों ने मुझे त्याग दिया है और राज्य से निष्कासित कर दिया है । इस तरह से सोचते हुए उसकी बुद्धि पापमयी हो गयी ॥२२॥ मुझे घनघोर वन में चले जाना चाहिए । वहाँ ही रहकर मैं अपने पिता के सम्पूर्ण नगर को लूट लूँगा ॥२३॥ इस तरह से विचार करके लुम्पक दैव योग से उस नगर से निकल गया और घोर वन में चला गया ॥२४॥ वह जीवों की हिंसा करने, चोरी करने तथा जूआ खेलने में निपुण था । वह पाप कर्म करते हुए सम्पूर्ण नगर को लूट लिया ॥२५॥ चोरी करने के लिए जाते हुए उसको रात्रि में गुप्तचरों ने पकड़ लिया । जब उसने बतलाया कि मै राजा महिष्मत का पुत्र हूँ ॥२६॥ उन सबों ने जब उसको छोड़ दिया तो वह फिर वन

आश्रमस्तस्य दुष्टस्य यत्राभूद्विपिनेघने। अश्वत्थो वर्त्तते तत्र जीर्णश्च बहुवार्षिकः ॥२८॥
देवत्वं तस्य वृक्षस्य विपिने वर्तते महत् । तत्रैव निवसंश्चैव लुम्पकः पापबुद्धिमान्॥२९॥
गते बहुतिथे काले कदाचित्पुण्यसंचयात्। पौषस्य कृष्णपक्षे तु दशम्यांदिवसे तथा॥३०॥
फलानि भुक्त्वा वृक्षाणां रात्रौ शीतेन पीडितः ।
लुम्पको नाम पापिष्ठो वस्त्रहीनो गतेक्षणः ॥३१॥
पीड्यमानोऽतिशीतेन हरिवृक्षसमीपतः । न निद्रा न सुखं तस्य गतप्राण इवाभवत्॥३२॥
आच्छाद्य दशनैरास्यमेव नीता निशाऽखिला ।
भानूदयेऽपि पापिष्ठो न लेभे चेतनां तदा ॥३३॥
लुम्पको गतसंज्ञस्तु सफलायादिने तथा। रवौ मध्यं गतेश्चैव संज्ञां लेभे च लुम्पकः ॥३४॥
इतस्ततो विलोक्याथ व्यथितश्च तदासनात्। स्खलन्पद्भ्यां प्रचलितः खञ्जन्निव मुहुर्मुहुः॥३५॥
वनमध्ये गतस्तत्र क्षुत्क्षामःपीडितोऽभवत्। न शक्तिर्जीवघाते तु लुम्पकस्य दुरात्मनः ॥३६॥
फलानि च तदा राजन्नाजहार स लुम्पकः। यावत्समागतस्तत्र तावदस्तंगतो रविः ॥३७॥
किं भविष्यति तातेति स विलापं चकार ह ।
फलानि तत्र भूरीणि वृक्षमूलेन्यवेशयत् ॥३८॥
इत्युवाच फलैरेभिःश्रीपतिस्तुष्यतां हरिः । इत्युक्त्वा लुम्पकश्चैवनिद्रांलेभे न वै निशि॥३९॥
रात्रौ जागरणं मेने विष्णुस्तस्य दुरात्मनः । फलैस्तु पूजनं मेने सफलायास्तथाऽनघ ॥४०॥
अकस्माद्व्रतमेवैतत्कृतवान्वै स लुम्पकः । तेन पुण्यप्रभावेण प्राप्तं राज्यमकण्टकम्॥४१॥

में आ गया । अब वह सदा मांस और फल खाने लगा ॥२७॥ उस दुष्ट का घोर वन में जहाँ निवास स्थान था वहाँ पर एक बहुत पुराना पिप्पल का पेड़ था ॥२८॥ वह वृक्ष उस वन का देवता माना जाता था । वहीं पर पापबुद्धि लुम्पक निवास करता था ॥२९॥ बहुत दिन बीत जाने पर एक बार वह अपने पूर्व पुण्य के कारण दशमी तिथि को दिन में फल खाकर रात्रि में वस्त्र विहीन होने के कारण उसको नींद नहीं आयी ॥३०-३१॥ अत्यधिक ठंढक होने के कारण पीड़ित होने से अश्वत्थ वृक्ष के समीप ही वह रात में नहीं सो सका । वह बेहोश हो गया ॥३२॥ अपने दाँतों से मुख को ढंककर उसने रात बितायी सूर्योदय हो जाने पर भी उसको होश नहीं आया ॥३३॥ बेहोश पड़ा हुआ लुम्पक सफला एकादशी के दिन दोपहर की बेला में होश में आया ॥३४॥ दुःखी वह इधर-उधर देखकर अपने आसन से उठा । उसके पैर बार-बार लड़खड़ा रहे थे वह लङ्गड़े के समान चला ॥३५॥ वह वन में गया तथा भूख से पीड़ित था । उसमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वह किसी जीव को मार सके ॥३६॥ हे राजन् ! वह फलों को लाया । जव तक वह वहाँ आया उसी समय सूर्यास्त हो गया ॥३७॥ हे पितः ! अव क्या होगा यह कहकर उसने विलाप किया । उस वृक्ष की जड़ में वह बहुत से फलों को रख दिया ॥३८॥ उसने कहा— इन फलों से भगवान् लक्ष्मीपति प्रसन्न हों । यह कहकर लुम्पक रात में नहीं सो पाया ॥३९॥ इसी को भगवान् विष्णु ने उसका रात्रि जागरण मान लिया । हे अनघ ! उन्होंने उन फलों से सफला की पूजा मान ली ॥४०॥ लुम्पक ने इस तरह अकस्मात् सफला एकादशी का व्रत कर लिया । उस पुण्य के प्रभाव से लुम्पक ने अकण्टक

सूर्यस्योदयनं यावत्तावद्विष्णुर्जगाम ह। दिवि तत्कालमुत्पन्ना वागुवाचाशरीरिणी ।।४२।।
राज्यं प्राप्स्यसि पुत्र ! त्वं सफलायाः प्रसादतः ।
तथेत्युक्ते तु वचसि दिव्यरूपधरोऽभवत् ।।४३।।
मतिरासीत्ततस्तस्य परमावैष्णावी नृप। दिव्याभरणशोभाढ्यो लेभे राज्यमकण्टकम्।।४४।।
कृतं राज्यं तु तेनैव वर्षाणि दशपञ्चच। मनोज्ञास्तस्य पुत्रास्तु दाराः कृष्णप्रसादतः ।।४५।।
आशु राज्यं परित्यज्य पुत्रे चैव समर्प्य च ।
गतः कृष्णस्य सान्निध्यं यत्र गत्वा न शोचति ।।४६।।
एवं यःकुरुते राजन्सफलाव्रतमुत्तमम्। इहलोके सुखं प्राप्य मृतो मोक्षमवाप्नुयात्।।४७।।
धन्यास्ते मानवा लोके सफलायां च ये रताः ।
तेषां च सफलं जन्म नात्र कार्या विचारणा ।।४८।।
पठनाच्छ्रवणाच्चैव करणाच्च विशांपते ! । राजसूयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः।।४९।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे पौषकृष्णासफलैकादशी नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४१।।

राज्य प्राप्त किया ।।४१।। सूर्योदय होते ही वहाँ से भगवान् विष्णु चले गये और उस समय आकाशवाणी हुयी।।४२।। हे पुत्र ! तुम सफला एकादशी की कृपा से राज्य प्राप्त करोगे । इस तरह से कहते ही लुम्पक ने दिव्य रूप धारण कर लिया ।।४३।। उसकी अत्यन्त वैष्णवी बुद्धि हो गयी । वह दिव्य अलङ्कारों से सुशोभित हो गया और अकण्टक राज्य प्राप्त किया ।।४४।। उसने पन्द्रहवर्ष तक राज्य किया । भगवान् विष्णु की कृपा से उसको मनोहर पुत्र तथा पत्नी प्राप्त हो गये ।।४५।। उसने शीघ्र राज्य छोड़ दिया । उसको अपने पुत्र को राज्य सौंप दिया । वह मृत्यु के पश्चात् भगवान् के सान्निध्य को प्राप्त किया वहाँ जाकर कोई भी शोकान्वित नहीं होता है ।।४६।। राजन् ! जो इस प्रकार से सफला के उत्तम व्रत को करते हैं वे इस लोक में सुख प्राप्त करके मृत्यु के बाद मोक्ष प्राप्त करते हैं ।।४७।। सफला एकादशीव्रत करने वाले मनुष्य धन्य हैं । उनका जन्म सफल है, उनके विषय में कोई भी विचार करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है ।।४८।। राजन् ! इसको पढ़ने, सुनने तथा इस व्रत को करने से राजसूय यज्ञ करने का फल मनुष्य प्राप्त करता है ।।४९।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत पौष कृष्णा की सफला एकादशी का वर्णन नामक एकतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४१।।

बयालीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

कथिता वै त्वया कृष्ण सफलैकादशी शुभा ।
कथयस्वप्रसादेन शुक्लपक्षस्य या भवेत् ॥१॥
किन्नाम को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ।
कस्मै तुष्टो हृषीकेशस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ॥२॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि शुक्ला पौषस्य या भवेत् ।
कथयामि महाराज ! लोकानां हितकाम्यया ॥३॥
पूर्वेण विधिना राजन्कर्त्तव्यैषा प्रयत्नतः । पुत्रदा नाम नाम्ना सा सर्वपापहरापरा ॥४॥
नारायणोऽधिदेवोऽस्याः कामदः सिद्धिदायकः ।
नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥५॥
विद्यावन्तं यशस्वन्तं करोति च नरं हरिः । शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापहरां पराम् ॥६॥
भद्रावत्यां पुरा ह्यासीत्पुर्यां राजा सुकेतुमान् ।
तस्य राज्ञस्तथा राज्ञी चम्पका नाम वर्त्तते ॥७॥
पुत्रहीनेन राज्ञा च कालोनीतो मनोरथैः। नैवात्मजं नृपो लेभे वंशकर्त्तारमेव च ॥८॥
तेनैव राज्ञाधर्मेण चिन्तितं बहुकालतः। किं करोमि क्वगच्छामि सुतप्राप्तिः कथं भवेत्॥९॥
न राष्ट्रे न पुरे सौख्यं लेभे राजा सुकेतुमान् ।
साध्व्या स्वकान्तया सार्धं प्रत्यहं दुःखितोऽभवत् ॥१०॥

पौष मास के शुक्ल पक्ष की पुत्रदा एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— हे कृष्ण ! आपने शुभ सफला एकादशी का वर्णन किया अब आप कृपा करके पौष शुक्ल पक्ष की एकादशी का वर्णन करें ॥१॥ उस एकादशी का नाम क्या हैं ? उसकी कौन सी विधि है, उस एकादशी में किस देवता का पूजन होता है ? हे हृषीकेश ! पुरुषोत्तम इस एकादशी से आप किस पर प्रसन्न हुए हैं ॥२॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा**— राजन् ! मैं पौष मास की शुक्ला एकादशी का वर्णन लोक कल्याण के लिए करता हूँ, उसे आप सुनें ॥३॥ हे राजन् ! इस एकादशी का भी व्रत पूर्वोक्त विधि से ही करना चाहिए । इसका नाम पुत्रदा एकादशी है । यह सभी पापों को विनष्ट करने वाली है।॥४॥ इस एकादशी के अधि देवता भगवान् नारायण हैं । वे सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा सिद्धि प्रदान करने वाले हैं । सचराचर त्रैलोक्य में इससे बढ़कर कोई एकादशी नहीं है ॥५॥ इस व्रत को करने वाले मनुष्य को श्रीहरि विद्वान् और यशस्वी बना देते हैं । राजन् ! आप सुनें मैं पाप विनाशिका श्रेष्ठ कथा को कहता हूँ ॥६॥ प्राचीन काल में भद्रावती पुरी के राजा सुकेतुमान थे । उस राजा की रानी का नाम चम्पका था ॥७॥ पुत्र रहित राजा केवल मनोरथ करते हुए बहुत समय बिता दिए । किन्तु राजा को वंश बढ़ाने वाले पुत्र की प्राप्ति नहीं हुयी ॥८॥ राजा ने बहुत समय तक धर्म पूर्वक विचार किया । वे सोचते

तावुभो दम्पती नित्यं चिन्ताशोकपरायणौ । पितरोऽस्य जलं दत्तं कवोष्णमुपभुञ्जते ॥११॥
राज्ञःपश्चान्न पश्यामो योऽस्मान्संतर्पयिष्यति। इत्येवं संस्मरन्तोऽस्य दुःखिताः पितरोऽभवन्॥१२॥
न बान्धवा न मित्राणि नामात्याः सुहृदस्तथा ।
रोचयन्त्यस्य भूपस्य न गजाश्वाः पदातयः ॥१३॥
नैराश्यं भूपतेस्तस्य नित्यं मनसिवर्त्तते। नरस्य पुत्रहीनस्य नास्ति वै जन्मनःफलम् ॥१४॥
अपुत्रस्य गृहं शून्यं हृदयं दुःखितं सदा । पितृदेवमनुष्याणां नानृणत्वं सुतं विना ॥१५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सुतमुत्पादयेन्नरः । इहलोके यशस्तेषां परलोके शुभागतिः ॥१६॥
येषां तु पुण्यकर्तॄणां पुत्रजन्म गृहे भवेत्। आयुरारोग्य संपत्तिस्तेषां गेहे प्रवर्तते ॥१७॥
पुत्रजन्म गृहे येषां लोकानां पुण्यकारिणाम् ।
पुण्यं विना न च प्राप्तिर्विष्णुभक्तिं विना नृप ॥१८॥
पुत्राश्च संपदो वापि निश्चयादिति मे मतिः। एवं चिन्तयमानोऽसौ न शर्म लभते नृपः ॥१९॥
प्रत्यूषेऽचिन्तयद्राजा निशीथेऽचिन्तयत्ततः । स्वयमात्मविनाशं च चिन्तयामास केतुमान् ॥२०॥
अत्मघाते दुर्गतिं च चिन्तयित्वा तदानृपः। दृष्ट्वाऽऽत्मदेहं पतितमपुत्रत्वं तथैव च ॥२१॥
पुनर्विचार्यात्मबुद्ध्या आत्मनो हितकारणम्। अश्वारूढस्ततो राजा जगाम गहनं वनम् ॥२२॥
पुरोहितादयः सर्वे न जानन्ति गतं नृपम्। गम्भीरे विपिने राजा मृगपक्षिनिषेविते ॥२३॥
विचचार तदा राजा वनवृक्षान्विलोकयन्। वटानश्वत्थबिल्वांश्च खर्जूरान्पनसांस्तथा ॥२४॥

थे कि मैं क्या करूँ कि मुझे पुत्र की प्राप्ति हो ?॥९॥ राजा को न तो अपने राष्ट्र में और न तो अपने नगर में सुख मिलता था । वे अपनी पत्नी के साथ दुःखी रहते थे ॥१०॥ वे दोनों पति-पत्नी चिन्तित और शोक युक्त थे । उनके द्वारा दिए गये गर्म-गर्म आँसू के जल को उनके पितृगण पीते थे ॥११॥ उनके पितृगण यह सोचकर दुःखी थे कि राजा के बाद कोई ऐसा नहीं दिखायी देता है जो हमलोगों का तर्पण करेगा ॥१२॥ राजा के बान्धव, मित्र, मन्त्री, तथा सुहृदों को राजा के हाथी, घोड़े तथा पैदल सेना अच्छे नहीं लगते थे ॥१३॥ राजा के मन में सदा निराशा छायी रहती थी । पुत्र हीन मनुष्य को जन्म का फल नहीं मिलता है ॥१४॥ पुत्रहीन का गृह शून्य होता है, हृदय सदा दुःखी रहता है । पुत्र के बिना पितरों, देवताओं और मनुष्यों का ऋण नहीं चुकता होता है ॥१५॥ अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह हर प्रकार का प्रयास करके पुत्र उत्पन्न करे । जिन पुण्यवान् पुरुषों के गृह में पुत्र जन्म होता है, उनको इस लोक में यश प्राप्त होता है और न परलोक में सद्गति की प्राप्ति होती है । आयु, आरोग्य और सम्पत्ति उन लोगों के घर में रहती है जिन पुण्यवानों के घर में पुत्र का जन्म होता है । राजन् ! पुण्य और विष्णु भक्ति के बिना पुत्र की प्राप्ति नहीं होती है ॥१६-१७॥ पुत्र सम्पत्ति से भी प्रिय होते हैं, इस तरह से सोचते हुए राजा को कहीं सुख नहीं मिलता था ॥१८-१९॥ राजा केतुमान् प्रातःकाल और आधी रात को भी सोचते हुए आत्मनाश करने का विचार कर लिए ॥२०॥ उस समय आत्महत्या करने पर होने वाली दुर्गती का विचार करके अपने शरीर को पतित तथा पुत्रहीनता का विचार किया ॥२१॥ फिर राजा अपने कल्याण के साधन का विचार करके अश्व पर सवार होकर घोर वन में चले गये ॥२२॥ गये हुए राजा के विषय में उनके पुरोहित इत्यादि भी नहीं जान पाये । राजा घोर वन में जहाँ मृग और पक्षी विद्यमान

बकुलान्सप्तपर्णांश्च तिन्दुकांस्तिलकानपि । शालांस्तालांस्तमालांश्च ददर्श सरलान्नृपः ॥२५॥
इङ्गुदी ककुभांश्चैव श्लेष्मातकनगांस्तथा । शल्लकान्करमर्दांश्च पाटलान्बदरानपि ॥२६॥
अशोकांश्च पलाशांश्च शृगालाञ्शशकानपि। वनमार्जारमहिषाञ्छल्लकांश्चमरानपि ॥२७॥
ददर्श भुजगान्राजा वल्मीकादर्धनिःसृतान् । तथा वनगजान्मत्तान्कलभैःसह संगतान् ॥२८॥
यूथपांश्च चतुर्दन्तान्करिणीयूथमध्यगान्। तान्दृष्ट्वा चिन्तयामास आत्मनः स गजान्नृपः॥२९॥
तेषां च विचरन्मध्ये राजा शोभामवाप ह । महदाश्चर्यसंयुक्तं ददृशे विपिनं नृप॥३०॥
मार्गे शिवारुताञ्छृण्वन्नुलूकविरुतं तथा । तांस्तानृक्षमृगान्पश्यन्बभ्राम वनमध्यतः ॥३१॥
एवं ददर्श गहनं नृपो मध्यगते रवौ । क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो राजा इतश्चेतश्च धावति॥३२॥
नृपतिश्चिन्तयामास संशुष्कगलकन्धरः । मया तु किं कृतं कर्म प्राप्तं दुःखं यदीदृशम्॥३३॥
मया वै तोषिता देवा यज्ञैःपूजाभिरेव च। तथैव ब्राह्मणादानैस्तोषिता मिष्टभोजनैः ॥३४॥
प्रजाश्चैव सदाकालं पुत्रवत्पालिता भृशम्। कस्माद्दुःखं मया प्राप्तमीदृशं दारुणं महत् ॥३५॥
इति चिन्तापरो राजा जगामैवाग्रतो वनम् । सुकृतस्य प्रभावेण सरोदृष्टमनुत्तमम् ॥३६॥
मीनसंस्पृश्यमानं च पद्मैश्च परिशोभितम् । कारडैश्चक्रवाकैश्च राजहंसैश्च शोभितम्॥३७॥
मकरैर्बहुभिर्मत्स्यैरन्यैर्जलचरैर्युतम् । समीपे सरसस्तस्य मुनीनामाश्रमान्बहून॥३८॥
ददर्श राजा लक्ष्मीवाञ्छकुनैःशुभशंसिभिः । दक्षिणं प्रास्फुरन्नेत्रमथ सव्येतरःकरः ॥३९॥

थें, उस वन के वृक्षों को देखते हुए विचरण करने लगे । वे वड़, पिप्पल, बिल्व, खर्जूर, कटहल, मौलिश्री, सप्तवर्ण, तिन्दुक, तिलक, शाल, ताल, तमाल तथा सरल नामक वृक्षों को देखे ॥२३-२५॥ इङ्गुदी, कुङ्कुम, श्लेष्मातक, नग, शल्लक, करमर्द, पाटल, बैर, अशोक, पलाश, इत्यादि वृक्षों तथा शृङ्गाल, खरगोश, वनबिलाव, महिष, छलक तथा चमर आदि पशुओं को भी देखे ॥२६-२७॥ राजा ने सर्पों को देखा जो वल्मीक से बाहर आधा निकले हुए थे । तथा छोटे-छोटे बच्चों के साथ विद्यमान वनैले हाथियों को भी देखा ॥२८॥ उन्होंने चार दाँतों वाले यूथप हाथियों को देखा, जो मादा हाथियों के समूह के बीच में विद्यमान थे । उन सबों को देखकर राजा अपने हाथियों के विषय में सोचे और उन सबों के बीच में विचरण करते हुए सुशोभित हुए । राजा ने महान् आश्चर्य से युक्त वन को देखा ॥२९-३०॥ रास्ते में स्यारिन की ध्वनि, कौए तथा उल्लुओं की ध्वनि को सुनते हुए राजा विभिन्न ऋक्षों तथा मृगों को देखते हुए वन के बीच में भ्रमण करते रहे ॥३१॥ इस तरह से वन को देखते रहे और दोपहर की वेला हो गयी । भूख और प्यास से व्याकुल होकर राजा इधर-उधर दौड़ने लगे ॥३२॥ राजा ने सोचा । मेरा गला सूख गया, मैंने यह कौन सा कर्म कर दिया जिसके कारण मुझको इस प्रकार का कष्ट मिल रहा है ॥३३॥ मैंने यज्ञों तथा पूजाओं से देवताओं को सन्तुष्ट किया है । दान तथा मधुर भोजन प्रदान करके ब्राह्मणों को संतुष्ट किया है ॥३४॥ मैंने प्रजाओं का पुत्र के समान पालन किया है, कौन सा ऐसा कारण है जिसके कारण मुझको इतना कठोर दुःख प्राप्त हुआ है ॥३५॥ इस तरह से सोचते हुए राजा वन में आगे जाते रहे । पुण्य के प्रभाव से उन्होंने एक सुन्दर सरोवर देखा ॥३६॥ उसमें मछलियाँ चल रही थीं, कमल से वह सुशोभित था । वह सरोवर करण्ड, चक्रवाक तथा राजहंसों से सुशोभित तथा ॥३७॥ उसमें मगरमच्छ, मछली, तथा दूसरे भी जलजीव थे । राजा ने सरोवर के निकट मुनियों के बहुत से आश्रमों को देखा॥३८॥

प्रास्फुरन्नृपतेस्तस्य कथयञ्शोभनं फलम् । तस्यतीरे मुनीन्दृष्ट्वा कुर्वाणान्नैगमंजपम् ॥४०॥
हर्षेण महताविष्टो बभूव नृपसत्तमः । अवतीर्य हयात्तस्मान्मुनीनामग्रतः स्थितः ॥४१॥
पृथक्पृथग्ववन्देऽसौ मुनींस्ताञ्शंसितव्रतान् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा दण्डवच्च पुनःपुनः ॥
प्रत्यूचुस्तेऽपि मुनयःप्रसन्ना नृपते ! वयम् ॥४२॥

राजोवाच

के भवन्तोऽत्र कथ्यन्तां का चाख्या भवतामपि ।
किमर्थं संगता यूयं सत्यं वदतमेऽग्रतः ॥४३॥

मुनय ऊचुः

विश्वेदेवा वयं राजन्स्नानार्थमिह चागताः । माघो निकटमायात एतस्मात्पञ्चमेऽहनि ॥४४॥
अद्य चैकादशी राजन्पुत्रदा नाम नामतः । पुत्रं ददात्यसौ तस्मात्पुत्रदाकारिणां नृणाम् ॥४५॥

राजोवाच

एष वै संशयोमह्यं पुत्रस्योत्पादने महान्। यदितुष्टा भवन्तो वै पुत्रो मे दीयतां तदा॥४६॥

मुनयः ऊचुः

अद्यैव दिवसे राजन्पुत्रदा नाम वर्तते। एकादशीति विख्यातं क्रियतां व्रतमुत्तमम्॥४७॥
अभिषेकात्ततोऽस्माकं केशवस्य प्रसादतः । अवश्यं तव राजेन्द्र पुत्रप्राप्तिर्भविष्यति ॥४८॥
इत्येवं वचनात्तेषां कृतं राज्ञा व्रतोत्तमम्। मुनीनामुपदेशेन पुत्रदाया विधानतः ॥४९॥
द्वादश्यां पारणांकृत्वा मुनीन्नत्वा पुनःपुनः । आजगाम गृहं राजा राज्ञीगर्भमथादधौ ॥५०॥

कल्याण को सूचित करने वाले शकुनों से युक्त लक्ष्मी सम्पन्न राजा ने इन सबों को देखा । उनका दाहिना हाथ और दाहिना नेत्र फड़क रहा था ॥३९॥ ये सब फड़ककर राजा को सुन्दर फल को सूचित कर रहे थे । सरोवर के तट पर वैदिक जप करते हुए मुनियों को देखकर ॥४०॥ राजा अत्यन्त हर्षित हुए वे घोड़े से उतर कर मुनियों के सामने खड़े हो गये ॥४१॥ उन श्रेष्ठ व्रत करने वाले सभी मुनियों को राजा ने अलग-अलग वन्दना की उन्होंने हाथ जोड़कर बार-बार साष्टाङ्ग प्रणाम किया । उन मुनियों ने राजा से कहा कि हमलोग प्रसन्न हैं ॥४२॥ **राजा ने कहा**— आप लोग कौन हैं ? आपलोगों का नाम क्या हैं ? आप लोग किसलिए एकत्रित हुए हैं ? सत्य-सत्य बतलायें ॥४३॥ **मुनियों ने कहा**— हे राजन् ! हम सभी विश्वेदेव हैं, यहाँ स्नान करने के लिए आये हैं । माघ का महीना निकट आ गया है, आज से पाँचवें दिन पुत्रदा नाम की एकादशी है । पुत्रदा एकादशी व्रत करने वालों को यह पुत्र प्रदान करती है । इसीलिए इसका नाम पुत्रदा है ॥४४-४५॥ **राजा ने कहा**— यह मुझको संशय है कि मुझको पुत्र होगा कि नहीं? यदि आप लोग प्रसन्न हैं तो मुझको पुत्र प्रदान करें ॥४६॥ **मुनियों ने कहा**— राजन् ! आज ही पुत्रदा एकादशी है । आप पुत्रदा नाम से विख्यात एकादशी का व्रत करें ॥४७॥ स्नान करने के पश्चात् हमलोगों तथा भगवान् केशव की कृपा से आपको अवश्य पुत्र की प्राप्ति होगी ॥४८॥ उन लोगों की वाणी को सुनकर राजा ने उस उत्तम व्रत को किया । मुनियों के उपदेशानुसार उन्होंने विधि पूर्वक पुत्रदा का व्रत किया॥४९॥ द्वादशी के दिन पारण करके उन्होंने मुनियों को बार-बार प्रणाम करके राजा घर आये । उसके

पुत्रोजातःसूतिकाले तेजस्वी पुण्यकर्मणा। पितरं तोषयामास प्रजापालो बभूव सः॥५१॥
तस्माद्राजन्प्रकर्त्तव्यं पुत्रदाव्रतभुत्तमम् । लोकानां तु हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया॥५२॥
एकचित्तास्तु ये मर्त्याः कुर्वन्ति पुत्रदाव्रतम् ।
पुत्रान्प्राप्येहलोके तु मृतास्ते स्वर्गगामिनः ॥
पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ॥५३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे पौषशुक्लपुत्रदैकादशी नाम द्विचत्वारिंशोऽऽध्यायः ॥४२॥

तिरालिसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

साधु कृष्ण जगन्नाथ आदिदेव जगत्पते। कथयस्व प्रसादेन कृपां कुरु ममोपरि॥१॥
माघस्य कृष्णपक्षे तु का वा चैकादशी भवेत् ।
किं नाम को विधिस्तस्या एतद्विस्तरतो वद ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु त्वं नृपशार्दूल ! कृष्णा माघस्य या भवेत् ।
षट्तिला नाम विख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥३॥

पश्चात् रानी गर्भवती हुयी ॥५०॥ समयानुसार उस पुण्य कर्म के कारण तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ । उसने अपने पिता को सन्तुष्ट किया और प्रजापालक बना ॥५१॥ अतएव हे राजन् ! पुत्रदा का उत्तम व्रत करना चाहिए । जीवों का कल्याण करने के लिए मैंने इस कथा को आपके समक्ष कहा है ॥५२॥ जो मनुष्य एकाग्र मन से पुत्रदा का व्रत करते हैं, इस लोक में पुत्र को प्राप्त करके मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग जाते हैं । राजन् ! इस आख्यान को पढ़ने और सुनने से अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त होता है ॥५३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत पौष मास के शुक्ल पक्ष की पुत्रदा एकादशी माहात्म्य वर्णन नामक बयालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४२।।

माघ कृष्णपक्ष की षट्तिला एकादशी का माहात्म्य वर्णन

महाराज युधिष्ठिर ने कहा— हे जगत् के स्वामिन् ! हे जगत् पते ! हे आदिदेव भगवान् कृष्ण! आप कृपा करें और बतलायें कि माघमास के कृष्णपक्ष में होने वाली एकादशी का नाम क्या है ? उसकी विधि को आप मुझे विस्तार से बतलाइये ॥१-२॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे राजवर्य ! आप सुनें; माघ मास के कृष्णपक्ष की जो एकादशी होती है वह षट्तिला के नाम से विख्यात है, वह सभी पापों का

षट्तिलायाः शृणुष्व त्वं कथां पापहरां शुभाम् ।
यां पुलस्त्यो मुनिश्रेष्ठो दाल्भ्यंप्रति समुक्तवान् ॥४॥

दाल्भ्य उवाच

मर्त्यलोकमनुप्राप्ताःपापं कुर्वन्ति जन्तवः । ब्रह्महत्यादिपापैश्च युक्ता ये गोवधादिभिः ॥५॥
परद्रव्यापहाराश्च परव्यसनमोहिताः । कथं न यान्ति नरकं ब्रह्मंस्तद्ब्रूहि तत्त्वतः ॥६॥
अनायासेन भगवान्दानेनाल्पेन केनचित् । पापं प्रशमनं याति एतन्मे वक्तुमर्हसि॥७॥

पुलस्त्य उवाच

साधुसाधु महाभाग गुह्यमेतत्सुदुर्ल्लभम् । यन्न कस्यचिदाख्यातं विष्णुब्रह्मेन्द्रदैवतैः ॥८॥
तदहं कथयिष्यामि त्वया पृष्टो द्विजोत्तम ! ।
माघमासे तु संप्राप्ते शुचिस्नातो जितेन्द्रियः ॥९॥
कामक्रोधाभिमानेर्ष्यालोभपैशुन्यवर्जितः । देवदेवं च संस्मृत्य पादौप्रक्षाल्यवारिभिः ॥१०॥
भूमावपतितं गृह्यगोमयं तत्र मानवः । तिलान्प्रक्षिप्य कार्पासं पिण्डिकाश्चैव कारयेत्॥११॥
अष्टोत्तरशतं चैव नात्रकार्या विचारणा । ततो माघे च संप्राप्ते ह्याषाढर्क्षं भवेद्यदि ॥१२॥
मूलं वा कृष्णपक्षस्यैकादशी नियमांस्ततः । गृह्णीयात्पुण्यकाले चविधानं तत्र मे शृणु॥१३॥
देवदेवं समभ्यर्च्य सुस्नातः प्रयतः शुचिः । कृष्णनामानि संकीर्त्य पुनः प्रस्खलितादिषु॥१४॥
रात्रै जागरणं कुर्यादादौ होमं च कारयेत् । अर्चयेद्देवदेवेशं द्वितीयेऽह्नि पुनर्हरिम्॥१५॥

विनाश करने वाली है ॥३॥ आप षट्तिला एकादशी की पाप विनाशिनी शुभ कथा को सुनें । उस कथा को महर्षि पुलस्त्य ने दाल्भ्य महर्षि को सुनाया था ॥४॥ **दालभ्य महर्षि ने कहा**— मर्त्य लोक में आये हुए मनुष्य पापों को करते हैं । ये मनुष्य ब्रह्महत्या तथा गोवध आदि के पापों से युक्त हैं ॥५॥ दूसरे के द्रव्य को चुराते हैं तथा दूसरे के व्यसन से मोहित हैं वे कैसे नरक में नहीं जाते हैं ? हे ब्रह्मन् ! उसे आप ठीक-ठीक बतलायें ॥६॥ किसी प्रयास को किए बिना ही वे थोड़ा सा दान देते हैं और उसी से उनका पापशान्त हो जाता है, यह कैसे ? उस बात को आप मुझे बतलायें ॥७॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— हे महाभाग ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न पूछा यह बात अत्यन्त गोपनीय है, इसको देवता भी नहीं जानते हैं। इस बात को ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र देवताओं ने किसी को भी नहीं बतलाया है ॥८॥ आपने मुझसे जो पूछा है उसको मैं आपको बतलाता हूँ । माघ के महीने के आने पर पवित्र और जितेन्द्रिय होकर स्नान करे॥९॥ काम, क्रोध, अभिमान, इर्ष्या, लोभ और पिशुनता से रहित होकर देवाराध्य श्रीभगवान् का स्मरण करके तथा जल से दोनों पैरों को धोए । ऐसे गाय के गोबर को एकत्रित करे जो पृथिवी पर पूरा नहीं गिरा हो । उसमें तिल और रुई डालकर पिण्डी बनाये । ऐसी एक सौ आठ पिण्डी बनाये । उसके बाद माघ मास के आने पर यदि आषाढ नक्षत्र आये तो ॥१०-१२॥ अथवा यदि मूल नक्षत्र हो तो उस दिन कृष्ण पक्ष की एकादशी तिथि के नियमों को प्रारम्भ करे । उसके पुण्यकाल में होने वाले विधान को मैं बतलाता हूँ ॥१३॥ सावधानी पूर्वक पवित्र रहे । स्नान करके श्रीभगवान् की अच्छी तरह से पूजा करे । यदि कोई गलती हो जाय तो भगवान् के नामो का उच्चारण करके पहले होम करे, उसके बाद रात्रि में

चन्दनागुरुकपूरैर्नैवेद्यं कृसरं तथा। संस्मृत्य नाम्ना च ततः कृष्णाख्येन पुनःपुनः ॥१६॥
कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च ह्यथवा बीजपूरकैः। सर्वाभावेऽपि विप्रेन्द्र ! शस्त पूगफलैर्वृतम् ॥
अर्घं दद्याद्विधानेन पूजयित्वा जनार्दनम् ॥१७॥
कृष्णकृष्णकृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव। संसारार्णवमग्नानां प्रसीद पुरुषोत्तम ! ॥१८॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुषपूर्वज ॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते! ॥१९॥

इत्यर्घमन्त्रः

ततस्तु पूजयेद्विप्रमुदकुम्भं प्रदापयेत्। छत्रोपानहवस्त्रैश्च कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥२०॥
कृष्णाधेनुः प्रदातव्या यथाशक्ति द्विजोत्तमे । तिलपात्रं द्विजश्रेष्ठ दद्यात्पात्रविचक्षणः ॥२१॥

स्नाने प्राशनके शस्ता तथा कृष्णातिला मुने ।
तान्प्रदद्यात्प्रयत्नेन यथाशक्तिद्विजोत्तमे ! ॥२२॥
तिलप्ररोहजाःक्षेत्रे यावत्सङ्ख्यास्तिला द्विज ! ।
तावद्वर्ष सहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥२३॥
तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी ।
तिलदाता च भोक्ता च षट्तिलाः पापनाशनाः ॥२४॥

युधिष्ठिर उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो नमस्ते विश्वभावन ! ।
षट्तीलैकादशीभूतं कीदृशं फलमस्ति वै ॥
सोपाख्यानं मम ब्रूहि यदि तुष्टोऽसि यादव ! ॥२५॥

जागरण करे । फिर दूसरे दिन श्रीहरि की पुनः पूजा चन्दन, अगरु और कर्पूर से करे और खिचड़ी का भोग लगाये । उसके बाद श्रीभगवान् के नामों का बार-बार स्मरण करे ॥१४-१६॥ कोहड़ा, नारियल अथवा बीजपूर सबों के अभाव में श्रेष्ठ सुपारी से घेरकर विधि पूर्वक अर्घ प्रदान करें । उसके पहले भगवान् जनार्दन की पूजा करे ॥१७॥ अर्घ का मन्त्र इस तरह है । हे भगवान् कृष्ण ! आप कृपालु हैं । आप गतिहीनों के लिए गति बन जायँ । हे पुरुषोत्तम ! संसार सागर में डूबते हुए जीव पर आप प्रसन्न हो जायँ॥१८॥ हे पुण्डरीकाक्ष भगवन् ! आपको नमस्कार है । हे विश्व का कल्याण करने वाले आपको नमस्कार है । हे सुब्रह्मण्य महापुरुष पूर्वज ! आपको नमस्कार है । हे जगत्पते ! मेरे द्वारा दिए गये अर्घ्य को आप स्वीकार करें ॥१९॥ उसके बाद ब्राह्मण की पूजा करें और उनको जल का घड़ा दान करें । उसके साथ छत्र, उपानह और वस्त्र भी दें और कहे कि इस कर्म से भगवान् कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों ॥२०॥ अपनी शक्ति के अनुसार श्रेष्ठ ब्राह्मण को काली गौ प्रदान करें । हे द्विजश्रेष्ठ ! तिल का पात्र भी दान करें॥२१॥ स्नान करने में, प्राशन में काली तिल ही श्रेष्ठ है । अतएव काले तिलों में श्रेष्ठ ब्राह्मण को अवश्य देना चाहिए ॥२२॥ तिल के जमने पर उस क्षेत्र में जितने तिल जमते हैं, उतने हजार वर्षों तक दाता स्वर्ग लोक में पूजित होता है ॥२३॥ तिल से स्नान करने वाले, तिल का उबटन लगाने वाले, तिल से होम करने वाले, जल में तिल मिलाकर जल पीने वाले, तिल दान करने वाले और तिल खाने वाले

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन्यथावृत्तं दृष्टं तत्कथयामिते। मर्त्यलोके पुराह्यासीद्ब्राह्मण्येका च नारद ! ॥२६॥
व्रतचर्यारता नित्यं देवपूजारता सदा। मासोपवासनिरता ममभक्ता च सर्वदा॥२७॥
कृष्णोपवाससंयुक्ता ममपूजापरायणा। शरीरंक्लेशितं चैव उपवासैर्द्विजोत्तम ! ॥२८॥
देवानां ब्राह्मणानां च कुमारीणां च भक्तितः ।
गृहादिकं प्रयच्छन्ती सर्वकालं महासती ॥२९॥
अतिकृच्छ्ररता सा तु सर्वकालं तु वैद्विज!। न दत्ताभिक्षुकेभिक्षा ब्राह्मणा न च तर्पिताः ॥३०॥
ततः कालेन महता मया वै चिन्तितं द्विज ! ।
शुद्धमस्या शरीरं हि व्रतैःकृच्छ्रैर्न संशयः ॥३१॥
अर्चितो वैष्णवो लोकः कायक्लेशेन वै तया ।
न दत्तमन्नदानं हि येन तृप्तिः परा भवेत् ॥३२॥
एवं ज्ञात्वा अहं पार्थ ! मर्त्यलोकमुपागतः ।
कापालं रूपमास्थाय भिक्षापात्रे च याचिता ॥३३॥
कस्मात्त्वमागतो ब्रह्मन्क्व यासि वद मेऽग्रतः ।
पुनरेव मयाप्रोक्तं देहि भिक्षां च सुन्दरि ॥३४॥
तया कोपेन महता मृत्पिण्डस्ताम्रभाजने। क्षितो यावदहं ब्रह्मन्पुनःस्वर्गं गतस्ततः ॥३५॥
ततःकालेन महता तापसी सुमहाव्रता। सदेहा स्वर्गमायाता व्रतचर्याप्रभावतः ॥३६॥

ये ही षट्तिल हैं और पाप का विनाश करने वाले हैं ॥२४॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** हे महाबाहो श्रीकृष्ण! हे विश्वभावन ! आपको नमस्कार हैं । षट्तिला एकादशी करने से किस फल की प्राप्ति होती है ? हे यादव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो इस बात को आप उपाख्यान पूर्वक बतलाये ॥२५॥ **श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजन् ! जैसा मैंने देखा है, उसे मैं कह रहा हूँ उसे आप सुनें । हे नारद ! मर्त्यलोक में एक ब्राह्मणी थी ॥२६॥ वह सदैव व्रत तथा देवपूजन किया करती थी । वह मेरी भक्ता थी और मास व्रत करती थी॥२७॥ वह कृष्ण पक्ष में उपवास करती थी तथा मेरी पूजा करती थी । हे द्विजोत्तम ! वह सदैव उपवास करके अपने शरीर को कष्ट देती रहती थी ॥२८॥ वह महासती सदैव भक्ति पूर्वक देवताओं, ब्राह्मणों और कुमारियों को गृह इत्यादि दिया करती थी ॥२९॥ हे द्विज ! वह सदैव अत्यन्त कृच्छ्र व्रतों को करती रहती थी किन्तु उसने न तो किसी भिक्षुक को भिक्षा दी और न ब्राह्मण को भोजन कराया ॥३०॥ हे द्विज ! बहुत दिन बीत जाने एर मैंने सोचा कि निश्चित रूप से कृच्छ्र व्रतों के करने से इसका शरीर तो शुद्ध है ॥३१॥ इसने अपने शरीर को कष्ट देकर वैष्णवों की पूजा की है । किन्तु इसने अत्यन्त तृप्ति करने वाले अन्न का दान नहीं किया है ॥३२॥ हे पार्थ ! इस बात को सोचकर मैं मर्त्य लोक में गया मैंने कापालिक का रूप धारण किया और पात्र में भिक्षा माँगा ॥३३॥ उसने कहा— ब्रह्मन् ! आप कहाँ से आये हैं ? और यहाँ से कहाँ जायेंगे ? मैंने उससे फिर कहा सुन्दरि ! भिक्षा दो ॥३४॥ उसने अत्यन्त क्रोध करके ताम्र पात्र में मिट्टी का ढेला डाल दिया । उसके बाद मैं वहाँ से स्वर्ग चला गया ॥३५॥ उसके बाद महान् व्रत करने वाली वह तापसी अपनी व्रतचर्या के प्रभाव से निसंदेह स्वर्ग में आयी ॥३६॥ मृत्पिण्ड प्रदान करने के कारण

मृत्पिण्डिकाप्रदानेन गृहं प्राप्तं मनोरमम्। संजातं चैव राजर्षे ! धान्यराशिविवर्जितम् ॥३७॥
गृहं यावन्निरीक्षेत न किंचितत्त पश्यति। तावद्गृहाद्विनिष्क्रान्ता ममान्ते चागतानृप ॥३८॥
क्रोधेन महताविष्टमिदं वचनमब्रवीत् । मया व्रतैश्च कृच्छ्रैश्च उपवासैरनेकशः ॥३९॥
पूजयाऽऽराधितोदेवःसर्वलोकस्य पालकः । न तत्र दृश्यते किंचिद्गृहे मम जनार्दन ॥४०॥
ततश्चोक्तं मया तस्यैगृहं गच्छ महाव्रते । आगमिष्यन्ति सुतरां कौतूहलसमन्विताः॥४१॥

देवपत्न्यो हि द्रष्टुं त्वां विस्मयाभिसमन्विताः ।
द्वारं नोद्धटय विना षट्तिलापुण्यवाचनात् ॥४२॥
एवमुक्ता मया सा तु गता वै मानुषी तदा ।
अत्रान्तारे समायाता देवपत्न्यश्च पाण्डव ॥४३॥
ताभिश्च कथितं तत्र त्वां द्रष्टुं हि समागताः ।
द्वारमुद्धाटयस्वाद्यत्वां प्रपश्याम शोभने ॥४४॥

मानुष्युवाच

यदि मद्दर्शनं कार्यं सत्यंवाच्यं विशेषतः । दत्तं मे षट्तिला पुण्यं द्वारोद्धाटनकारणात् ॥४५॥

श्रीकृष्ण उवाच

एकापि नावदत्तत्र षट्तीलैकादशीव्रतम् । अन्यया कथितं तत्र द्रष्टव्या मानुषी मया ॥४६॥
ततो द्वारं समुद्धाट्य दृष्टाताभिश्च मानुषी । न देवी न च गन्धर्वी नासुरी न च पन्नगी ॥४७॥
दृष्टा पूर्वं तथा नारी यादृशीयं नृपर्षभ । देवीनामुपदेशेन षट्तिलाया व्रतं कृतम् ॥४८॥
मानुष्या सत्यव्रतया भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्। रूपकान्ति समायुक्ता क्षणेनसमवाप सा॥४९॥

उसको मनोहर गृह मिला किन्तु हे राजर्षे ! उस गृह में अन्न बिल्कुल नहीं था ॥३७॥ जब उसने घर को देखा तो वहाँ कुछ नहीं था । वह उस गृह से निकल कर मेरे पास आयी ॥३८॥ वह अत्यन्त क्रोध करके कही मैंने व्रतों, कृछ्रों और उपवासों से ॥३९॥ तथा पूजा के द्वारा सर्वलोक पालक श्रीभगवान् की आराधना की है किन्तु हे जनार्दन ! उस गृह में तो कुछ भी नहीं दिखता है ॥४०॥ उसके बाद मैंने कहा हे महाव्रते! तुम उस गृह में जाओ कुछ लोग कौतूहल से युक्त तुम्हारे पास आयेंगे ॥४१॥ विस्मय से युक्त देवताओं की पत्नियाँ तुम्हें देखने के लिए आयेंगी जब षट्तिला की पवित्र वाणी नहीं बोले तब तक दरवाजा मत खोलना ॥४२॥ इस तरह से मेरे कहने पर वह मानुषी चली गयीं । हे पाण्डव ! उसी समय वहाँ देवपत्नियाँ आयीं ॥४३॥ उन सबों ने कहा कि हमलोग तुमको देखने आयी हैं । हे सुन्दरि ! दरवाजा खोलो हमलोग देखना चाहती हैं ॥४४॥ **मानुषी ने कहा**— यदि आपलोगों को मेरा दर्शन करना है तो आपलोग कहें कि दरवाजा खोलने के लिए हमलोगों ने तुम्हें षट्तिला एकादशी का पुण्य प्रदान किया॥४५॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा**— उनमें से कोई भी षट्तिला एकादशी व्रत की बात नहीं कही । दूसरी ने कहा कि मैं मानुषी को देखना चाहती हूँ ॥४६॥ उसके बाद उन सबों ने दरवाजा खोलकर उस मानुषी को देखा। वहाँ न तो देवी थी, न गन्धर्वी थी, न आसुरी थी और न सर्पिणी थी ॥४७॥ राजवर्य उन सबों ने पहले उसी तरह की नारी देखी जैसी यह है । देवियों के द्वारा उपदिष्ट होकर उसने षट्तिला का उस सत्यव्रता मानुषी ने व्रत किया । यह व्रत भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है । उसने क्षणभर में ही रूप और कान्ति

धनं धान्यं च वस्त्रादि सुवर्णं रौप्यमेव च। भवनं सर्व सम्पन्नं षट्तिलायाःप्रभावतः ॥५०॥
रूपकान्तिसमायुक्ता क्षणेन समपद्यत। अतितृष्णा न कर्त्तव्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥५१॥
आत्मवित्तानुसारेण तिलान्वस्त्राणि दापयेत् । लभते चैवमारोग्यं नरो जन्मनि जन्मनि॥५२॥
न दारिद्र्यं न कष्टत्वं न च दौर्भाग्यमेव च ।
सम्भवेद्वै नृपश्रेष्ठ षट्तिला समुपोषणात् ॥५३॥
अनेनविधिना भूप तिलदाता न संशयः। मुच्यते पातकैःसर्वैरनायासेन मानवः ॥५४॥
दानं च विधिवत्पात्रे सर्वपातकनाशनम्। नानर्थः कश्चिन्नायसःशरीरे नृपसत्तम ! ॥५५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे माघकृष्णाषट्तिलैकादशी माहात्म्यं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

चौवालिसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

साधु कृष्ण त्वया प्रोक्तामादिदेवो भवान्प्रभो ।
स्वेदजा अण्डजाश्चैव उद्भिज्जाश्च जरायुजाः ॥१॥

को प्राप्त कर लिया ॥४८-४९॥ षट्तिला के प्रभाव से उसने, धन, धान्य, वस्त्र, सुवर्ण, चाँदी, को प्राप्त कर लिया । उसका भवन इन सभी वस्तुओं से भर गया ॥५०॥ क्षणभर में ही उसको रूप और कान्ति की प्राप्ति हो गयी । इस व्रत में अत्यन्त लालच नहीं करना चाहिए और कंजूसी भी नहीं करनी चाहिये॥५१॥ अपनी सम्पत्ति के अनुसार वस्त्र तथा तिल दान देना चाहिए । अपनी सम्पत्ति के अनुसार वस्त्र तथा तिल दान देना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य प्रत्येक जन्मों में आरोग्य प्राप्त करता है ॥५२॥ हे राजश्रेष्ठ! षट्तिला का उपवास करने से दरिद्रता, कष्ट एवं दौर्भाग्य नहीं होते हैं ॥५३॥ राजन् ! इसी विधान से तिलदान करने वाला अनायास ही सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥५४॥ योग्य पात्र को विधि पूर्वक दिया गया दान सभी पापों का विनाश कर देता है । उसको न तो कोई अनर्थ होता है और न उसके शरीर में कोई आयास होता है ॥५५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत माघमास के कृष्णपक्ष की षट्तिला एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक तैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४३।।

माघमास के शुक्लपक्ष की जया एकादशी का माहात्म्य वर्णन

महाराज युधिष्ठिर ने कहा— हे कृष्ण ! हे प्रभो ! आप आदि देव हैं । स्वेदज, अण्डज, उद्भिज तथा जरायुज ॥१॥ जितने भी जीव हैं उन सबों के कर्ता और पालक आप ही हैं । आपने बतलाया है

तेषां कर्त्ता विकर्त्ता त्वं पालकः क्षयकारकः ।
माघस्य कृष्णपक्षे तु षट्‌तिला कथिता त्वया ॥२॥
शुक्ले च का भवेद्देव कथयस्व प्रसादतः। किं नाम कोविधिस्तस्यःकोदेवस्तत्र पूज्यते॥३॥

श्रीकृष्ण उवाच

कथयिष्यामि राजेन्द्र शुक्ले माघस्य या भवेत् ।
जया नामेति विख्याता सर्वपाप हरापरा ॥४॥
पवित्रा पापहर्त्री च कामदा मोक्षदा नृणाम् ।
ब्रह्महत्यापहन्त्री च पिशाचत्व विनाशिनी ॥५॥
नैव तस्य व्रतेचीर्णे प्रेतत्वं जायते नृणाम्। नातःपरतरा काचित्पापघ्नी मोक्षदायिनी ॥६॥
एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्त्तव्या सा प्रयत्नतः। श्रूयतां राजशार्दूल कथा पौराणिकी शुभा॥७॥
पङ्कजे च पुराणेऽस्या महिमा कथितो मया ।
एकदानाकलोके वा इन्द्रोराज्यं चकारह ॥८॥
देवास्तत्र सुखेनैव निवसन्ति मनोरमे। पीयूषपानतिरता अप्सरोगण सेविताः॥९॥
नन्दनं तु वन तत्र पारिजातोपसेवितम्। रमयन्ति रमन्तेऽत्र अप्सरोभिर्दिवौकसः॥१०॥
एकदा रममाणोऽसौ देवेन्द्रःस्वेच्छया नृप!। नर्त्तयामास वै हर्षात्पञ्चाशत्कोटिनायकः॥११॥
गन्धर्वास्तत्र गायन्ति गन्धर्वःपुष्पदन्तकः। चित्रसेनस्तु तत्रैव चित्रसेनसुता तथा॥१२॥
मालिनीति च नाम्ना तु चित्रसेनस्य योषिता ।
मालिन्यास्तु समुत्पन्ना पुष्पवन्ती च नामतः ॥१३॥

कि माघमास के कृष्ण पक्ष में षट्‌तिला एकादशी होती है ॥२॥ हे देव ! शुक्ल पक्ष में कौन सी एकादशी होती है ? इसे आप कृपा करके बतलाइये । उसकी विधि क्या है ? तथा उसमें किस देवता की पूजा होती है ॥३॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजेन्द्र ! उसे मैं बतलाता हूँ । माघ मास के शुक्ल पक्ष में होने वाली एकादशी का नाम जया है वह सर्वश्रेष्ठ पाप विनाशिका है ॥४॥ वह पवित्र तथा पापों का विनाश करने वाली एवं मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाली तथा मोक्ष प्रदान करने वाली है । वह ब्रह्महत्या को दूर करने वाली तथा पिशाचत्व का विनाश करने वाली है ॥५॥ इस एकादशी का व्रत कर लेने से जीव पिशाच की योनि में नहीं जाता है । इससे बढ़कर कोई भी एकादशी पापों को नष्ट करने वाली और मोक्ष प्रदान करने वाली नहीं है ॥६॥ हे राजन् ! इसी कारण से इस एकादशी का व्रत सप्रयास करना चाहिए । हे राजश्रेष्ठ ! आप इससे संबद्ध पुराण की कथा सुनें ॥७॥ मैंने इस एकादशी की महिमा का वर्णन पद्मपुराण में किया है । एक बार स्वर्ग लोक में इन्द्र राज्य कर रहे थे ॥८॥ वहाँ पर देवता सुख पूर्वक निवास करते थे । देवता अमृत पान करते रहते थे और अप्सराएँ उनकी सेवा करती थीं ॥९॥ वहाँ पर नन्दन वन पारिजात वृक्ष से युक्त था । देवगण अप्सराओं के साथ रमण करते थे और वे रमण कराती थीं ॥१०॥ हे राजन् ! एक बार अपनी इच्छा के अनुसार रमण करते हुए पचास करोड़ देवों के स्वामी इन्द्र नृत्य करने लगे ॥११॥ वहाँ पर गन्धर्व गीत गाते थे । पुष्प दन्त नामक गन्धर्व चित्रसेन, चित्रसेन की पुत्री, चित्रसेन की पत्नी मालिनी, मालिनी के गर्भ से उत्पन्न पुष्पवन्ती और पुष्पदन्त के पुत्र माल्यवान् ये

पुष्पदन्तस्य पुत्रोऽसौ माल्यवान्नाम नामतः। पुष्पवन्त्याश्च रूपेण माल्यवानतिमोहितः॥१४॥
तयाह्येवं कटाक्षैश्च माल्यावांश्च वशीकृतः। लावण्यरूपसंपन्नं तस्या रूपं निशामय॥१५॥
बाहू तस्याश्च कामेन कण्ठपाशौ कृताविव। कर्णायते तु नयने रक्तान्ते घूर्णिते तथा॥१६॥

कर्णौ तु शोभनौ तस्याः कुण्डलाभ्यां नृपोत्तम !।
कम्बुग्रीवायुता सैव दिव्याभरणभूषिता ॥१७॥
पीनोन्नतौ कुचौ तस्यास्तौ हेमकलशाविव ।
मध्यं क्षामं च चार्वङ्ग्या मुष्टिग्राह्यमनुत्तमम् ॥१८॥
नितम्बौ विस्तृतौ चास्या विस्तीर्णा जघनस्थली ।
चरणौ शोभमानौ च रक्तोत्पलसमद्युती ॥१९॥

ईदृश्या पुष्पवन्त्या स माल्यवानतिमोहितः। शक्रस्य परितोषाय नृत्यार्थं तौसमागतौ॥२०॥
गायमानौ तु तौ तत्र अप्सरोगणसेवितौ। मदनाधिपरीताङ्गौ पुष्पवन्ती च माल्यवान्॥२१॥
परस्परनुरागेण व्यामोहवशमागतौ। न शुद्धगानं गायेतां चित्तभ्रमसमन्वितौ॥२२॥
बद्धदृष्टी तथाऽन्योन्यं कामबाणवशंगतौ। ज्ञात्वा लेखर्षभस्तत्र संगतं मानसं तयोः॥२३॥
तालक्रिया मानलोपात्तथा गीतविसर्जनात्। चिन्तयित्वा तु मघवा ह्यवमानं तथात्मनः॥२४॥
कुपितश्च तयोरर्थे शापं दास्यन्निदं जगौ। धिग्धिग्वां पतितौ मूढावाज्ञाभङ्गकृतौ मम॥२५॥
युवां पिचाशौ भवतां दम्पतीभावधारिणौ। मर्त्यलोकमनुप्राप्तौ भुञ्जानौ कर्मणःफलम्॥२६॥
एवं मघवता शप्तवुभौ दुःखितमानसौ। हिमवन्तं गिरिप्राप्ताविन्द्रशापद्विमोहितौ॥२७॥

सब वहाँ पर गाते थे। पुष्पवन्ती के रूप पर माल्यवान् अत्यन्त मोहित था ॥१२-१४॥ पुष्पवन्ती के कटाक्षों से माल्यवान् उसके वश में हो गया। उसके रूप सम्पन्न सौन्दर्य को देखकर उसकी कामना से पुष्पवान्ती के गले में अपनी दोनों भुजाओं को डाल दिया। कानों तक फैले हुए उसके दोनों नेत्र मदघूर्णित हो रहे थे ॥१५-१६॥ राजन् ! कुण्डलों के द्वारा उसके दोनों कान सुशोभित हो रहे थे। उसकी ग्रीवा शङ्ख के समान थी तथा वह दिव्य अलङ्कारों से अलंकृत थी ॥१७॥ उसके बड़े-बड़े स्तन सुवर्ण कलश के समान मनोहर थे। उस सुन्दरी की कमर इतनी पतली थी कि वह मुट्ठी में आ जाय ॥१८॥ उसके नितम्ब विस्तृत थे और जङ्घे भी विस्तीर्ण थे। उसके दोनों सुन्दर चरणों की कान्ति लाल कमल के समान थी ॥१९॥ इस तरह की पुष्पवन्ती पर माल्यवान् अत्यन्त मोहित था। इन्द्र के सन्तोष के लिए वे दोनों नृत्य करने के लिए आये थे ॥२०॥ वे दोनों जब गा रहे थे तो अप्सराएँ उन दोनों की सेवा में थी। माल्यवान् और पुष्पवन्ती दोनों अत्यन्त कामाविष्ट थे ॥२१॥ परस्पर में प्रेम होने के कारण दोनों व्यामोहित हो गये। चित्तभ्रम युक्त होने के कारण वे दोनों शुद्ध गीत नहीं गा रहे थे ॥२२॥ काम बाण के वश में होकर दोनों एक टक से एक दूसरे को देख रहे थे। उन दोनों को कामार्त जानकर ॥२३॥ ताल के प्रमाण का भङ्ग होने तथा गीत का परित्याग देखकर इन्द्र ने अपना अपमान समझ लिया ॥२४॥ और उन दोनों को शाप देते हुए उन्होंने कहा तुम दोनों को धिक्कार है। मेरी आज्ञा का भङ्ग करने वाले मूर्ख हो ॥२५॥ पति पत्नी के भाव से युक्त होकर तुम दोनों पिशाच हो जाओ। मर्त्यलोक में जाकर अपने कर्म का फल भोगो ॥२६॥ इस तरह से इन्द्र के द्वारा अभिशप्त होकर वे दोनों दुःखी हो गये और इन्द्र

उभौ पिशाचतां प्राप्तौ दारुणं दुःखमेव च ।
संतप्तमानसौ तत्र हिमकृच्छ्रगतावुभौ ॥२८॥
गन्धर्वत्वमप्सरस्त्वं न जानीतो विमोहितौ। पीड्यमानो निदाघेन देहपातकजेन च ॥२९॥
न निशायां सुखं शान्ति लभेते कर्मपीडितौ ।
परस्परं वदमानौ चेरतुर्गिरिगह्वरे ॥३०॥
पीड्यमानौ तु शीतेन तुषारप्रभवेण तौ। दन्तघर्षं प्रकुर्वाणौ रोमाञ्चितवपुर्धरौ ॥३१॥
ऊचे पिशाचः स तदा तां पत्नीं स्वां पिशाचिकाम् ।
किमनल्पं कृतं पापं दारुणं रोमहर्षणम् ॥३२॥
येन प्राप्तं पिशाचत्वं स्वेन दुष्कृतकर्मणा। नरकं दारुणं मत्वापिशाचत्वं च दुःखदम् ॥३३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पातकं न समाचरेत्। इति चिन्तापरौ तत्रतावास्तां दुःखकर्शितौ ॥३४॥
दैवयोगात्तयोःप्राप्ता माघस्यैकादशी तिथिः। जयानामेति विख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥३५॥
तस्मिन्दिने तु संप्राप्ते तावाहारविवर्जितौ। आसाते तत्र नृपते ! जलपानविवर्जितौ ॥३६॥
न कृतो जीवघातश्च न पत्रफलभक्षणम्। अश्वत्थस्य समीपे तौ सर्वादादुःखसंयुतौ ॥३७॥
ररिस्तंगतो राजंस्तथैव स्थितयोस्तयोः। प्राप्ताचैव निशाघोरादारुणा प्राणहारिणी ॥३८॥
वेपमानौ ततस्तौ तु ततःसुषुपतुःक्षितौ। परस्परेण संलग्नौ गात्रयोर्भुजयोरपि ॥३९॥
न निद्रां न रतं तत्र न तौ सौख्यमविंदताम् ।
एवं तौ राजशार्दूल ! शापेनेन्द्रस्य पीडितौ ॥४०॥
इत्थं तयोर्दुःखितयोर्निर्जगाम निशीथिनी। मार्तण्ड उदयं प्राप्तो द्वादशी दिवसागमे ॥४१॥

के शाप से मोहित होकर हिमालय पर्वत पर चले गये ॥२७॥ वे दोनों पिशाच होकर भयङ्कर कष्ट भोग रहे थे । उन दोनों का मन संतप्त था और हिम का कष्ट भोग रहे थे ॥२८॥ वे अपने गर्न्धवत्व और अप्सरत्व को भूल गये थे । वे शरीर को जला देने वाली गर्मी से पीड़ित होते थे ॥२९॥ अपने कर्म से पीड़ित होने के कारण उन दोनों को सुख शान्ति नहीं मिलती थी । एक दूसरे से बात करते हुए पर्वत की गुफा में घूमते रहते थे ॥३०॥ बर्फीली ठंढ़ी हवा से वे पीड़ित होते थे । उनका शरीर रोमाञ्चित होता था और वे दाँत पीसते रहते थे ॥३१॥ पिशाच ने अपनी पत्नी पिशाची से कहा न जाने हमदोनों ने कौन सा भयङ्कर पाप किया है ?॥३२॥ जिसके कारण अपने पाप के कारण पिशाच हो गये हैं । पिशाचत्व को दुखद तथा भयङ्कर नरक समझकर प्रयास करना चाहिये कि हमसे कोई पाप न हो जाय । इस तरह से चिन्तित होकर वे दोनों वहीं दुःखी होकर पड़े रहे ॥३३-३४॥ उन दोनों के भाग्य से माघ मास की एकादशी तिथि आयी । वह जया नाम की उत्तम तिथि थी ॥३५॥ उस दिन उन दोनों को आहार नहीं मिला । राजन् ! वे दोनों पानी भी नहीं पी पाये ॥३६॥ उन दोनों ने किसी जीव को भी नहीं मारा और न फल खाया । पिप्पल वृक्ष के निकट दुःखी होकर वे पड़े रहे ॥३७॥ उसी तरह उन दोनों के पड़े रहते हुए सूर्यास्त हो गया और भयङ्कर प्राणहारिणी रात्रि आ गयी ॥३८॥ वे दोनों काँपते हुए पृथिवी पर सो गये वे दोनों एक दूसरे से अपने शरीर और भुजाओं को सटाये थे ॥३९॥ वे दोनों न सोए न रति किए। उन दोनों को सुख भी नहीं मिला । हे राजवर्य ! इस तरह से वे दोनों इन्द्र के शाप से पीड़ित थे ॥४०॥

मया तु राजशार्दूल तयोर्मुक्तिर्धृता हृदि। जयायाः सुव्रतं चीर्णं रात्रौ जागरणं कृतम् ॥४२॥
तस्माद्व्रतप्रभावाच्च यथाजातं तथा शृणु। द्वादशीदिवसे प्राप्ते तथाचीर्णे जयाव्रते ॥४३॥
विष्णोःप्रभावान्नृपते पिशाचत्वं तयोर्गतम्। पुष्पवन्ती माल्यवन्तौ पूर्वरूपौ बभूवतुः ॥४४॥
पुरातनस्नेहयुतौ पूर्वालङ्कारधारिणौ। विमानमधिरूढौ तौ गतौ नाके मनोरमे ॥४५॥
देवेन्द्रस्याग्रतो गत्वा प्रणामं चक्रतुर्मुदा ।
तथाविधौ तु तौ दृष्ट्वा मघवा विस्मितोऽब्रवीत् ॥४६॥

इन्द्र उवाच

वदतं केन पुण्येन पिशाचत्वं हि वां गतम् ।
ममशापं च संप्राप्तौ केन देवेन मोचितौ ॥४७॥

माल्यवानुवाच

वासुदेवप्रसादेन जयायास्तु व्रतेन च। पिशाचत्वं गतं स्वामिंस्तवभक्ति प्रभावतः ॥४८॥
इति श्रुत्वा तु मघवा प्रत्युवाच पुनस्तथा। पवित्रौ पावनौजातौ वन्दनीयौ ममापिच ॥४९॥
हरिवासरकर्तारौ विष्णुभक्तिपरायणौ। हरिवासरसँल्लीना ये च कृष्णपरायणाः ॥५०॥
अस्काकमपि मर्त्यास्ते पूज्याश्चैव न संशयः ।
विहरस्व यथासौख्यं पुष्पवन्त्या सुरालये ॥५१॥

श्रीकृष्ण उवाच

एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्त्तव्यो हरिवासरः। जया तु राजशार्दूल ब्रह्महत्यापहारिणी ॥५२॥

इस तरह से दुःखी रहते हुए रात बीत गयी । द्वादशी के दिन सूर्योदय हो गया ॥४१॥ राजेन्द्र ! मैंने अपने हृदय में उन दोनों की मुक्ति को निश्चित कर लिया था । जया एकादशी का व्रत हो गया रात्रि में उन दोनों ने जागरण किया ॥४२॥ उस व्रत के प्रभाव से जो हुआ उसको आप सुनें । द्वादशी तिथि के आ जाने पर तथा जयाव्रत का अनुष्ठान हो जाने पर ॥४३॥ राजन् ! भगवान् विष्णु के प्रभाव से उन दोनों का पिशाचत्व समाप्त हो गया । पुष्पवन्ती और माल्यवान् अपने पूर्व रूप में आ गये ॥४४॥ वे पहले के ही स्नेह से युक्त थे । तथा पहले के ही अलङ्कार को धारण किए हुए थे । विमान पर चढ़कर वे दोनों मनोहर स्वर्ग लोक में गये ॥४५॥ इन्द्र के सामने जाकर खुशी से प्रणाम किए । उन दोनों को उस प्रकार का देखकर इन्द्र आश्चर्यित हो गये ॥४६॥ **इन्द्र ने कहा—** बतलाओ किस पुण्य के करने से तुम दोनों का पिशाचत्व मिटा । दोनों को मेरा शाप लगा था किस देवता ने तुम दोनों को शाप मुक्त किया ॥४७॥ **माल्यवान् ने कहा—** भगवान् वासुदेव की कृपा से तथा जया एकादशी के व्रत के प्रभाव से आपकी भक्ति के प्रभाव से स्वामिन् हम दोनों का पिशाचत्व समाप्त हुआ ॥४८॥ इस बात को सुनकर इन्द्र ने फिर कहा तुम दोनों पवित्र और पावन हो गये हो । मेरे लिए भी वन्दनीय हो ॥४९॥ तुम दोनों एकादशी व्रत को करने वाले, भगवान् विष्णु की भक्ति करने वाले हो । जो लोग एकादशी व्रत करते हैं और भगवान् कृष्ण की भक्ति करते हैं ॥५०॥ वे मनुष्य हमलोगों के लिए भी पूज्य हैं इसमें कोई संशय नहीं है । तुम देवलोक में पुष्पवन्ती के साथ अपने मनोनुकूल विहार करो ॥५१॥ **श्रीकृष्णभगवान् ने कहा—** हे राजन् ! इसी

सर्वदानानि तेनैव सर्वयज्ञा अशेषतः। दत्तानि कारिताश्चैव जयायास्तु व्रतं कृतम् ॥५३॥
कल्पकोटिर्भवेत्तावद्वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम्। पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नग्निष्टोफलं लभेत् ॥५४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे माघशुक्लजयैकादशीमाहात्म्यं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

पैंतालिसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

फाल्गुनस्यासितेपक्षे किं नामैकादशी भवेत्।
कथयस्व प्रसादेन वासुदेव ममाग्रतः ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

नारदःपरिपप्रच्छ ब्रह्माणं कमलासनम्। फालगुनस्यासितेपक्षे विजयानाम नामतः ॥
तस्याः पुण्यं द्विजश्रेष्ठ ! कथयस्व प्रसादतः ॥२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि कथां पापहरां पराम्।
यन्नकस्यचिदाख्यातं मयैतद्विजयाव्रतम् ॥३॥

पुरातनं व्रतं ह्येतत्पवित्रं पापनाशनम्। जयं ददाति विजया नृपाणां वै न संशयः ॥४॥

कारण से एकादशी व्रत करना चाहिए। राजवर्य जया एकादशी ब्रह्महत्या को भी दूर कर देती है ॥५२॥ जिसने जया का व्रत करके दान दिया है, उसने सभी दानों और सभी यज्ञों को कर लिया है ॥५३॥ वह व्यक्ति करोड़ों कल्पों तक वैकुण्ठ में आनन्दानुभव करता है। हे राजन् ! इस आख्यन को पढ़ने तथा सुनने से अग्निष्टोम याग का फल मिलता है ॥५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत माघशुक्ल की जया एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक चौवालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४४।।

फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की विजया एकादशी का माहात्म्य

युधिष्ठिर ने कहा— फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष में होने वाली एकादशी का नाम क्या है ? हे वासुदेव ! कृपा करके आप मुझे बतलाइये ॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा कि फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष में जो विजया नाम की एकादशी होती है, हे द्विजश्रेष्ठ ! आप कृपा करके उसका माहात्म्य मुझे बतलाइये ॥२॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे नारद ! मैं सर्वश्रेष्ठ पाप विनाश करने वाली कथा को कह रहा हूँ उसे आप सुनिये। मैंने इस विजया व्रत को किसी को भी नहीं बतलाया है ॥३॥

पुरा रामो वनं यातो वर्षाण्येव चतुर्दश। न्यवसत्पञ्चवट्यां तु सहसीतः सलक्ष्मणः ॥५॥
तत्रैव वसतस्तस्य रामस्य विजयात्मनः । रावणेनहृता लौल्याद्भार्यासीता यशस्विनी ॥६॥
तेन दुःखेन रामोऽपि मोहमभ्यागतस्तदा । भ्रमञ्जटायुषमथो ददर्श विगतायुषम् ॥७॥
कबन्धो निहतः पश्चाद्भ्रमताऽरण्यमध्यतः । सुग्रीवेण समं तस्य सखित्वं समपद्यत ॥८॥
वानराणामनीकानि रामार्थं संगतानि च। ततो हनुमता दृष्टा लङ्कोद्याने तु जानकी ॥९॥
रामसंज्ञापनं तस्यै दत्तं कर्म महत्कृतम् । पुनः समेत्य रामेण सर्वं तत्र निवेदितम् ॥१०॥
अथ श्रुत्वा रामचन्द्रो वाक्यंचैव हनूमतः। सुग्रीवानुमतेनैव प्रस्थानं समरोचयत् ॥११॥
सौमित्रे केन पुण्येन तीर्यते वरुणालयः। अगाद्यो नितरामेष यादोभिश्च समाकुलः ॥
उपायं नैव पश्यामि येनासौ सुतरो भवेत् ॥१२॥

लक्ष्मण उवाच

आदिदेवस्त्वमेवासि पुराणपुरुषोत्तमः। बकदाल्भ्यो मुनिश्चात्र वर्तते द्वीपमध्यतः ॥१३॥
अस्मात्स्थानाद्योजनार्धमाश्रमस्तस्य राघव !। अन्ये च ब्राह्मणास्तत्र बहवो रघुनन्दन॥१४॥
तं पृच्छ गत्वा राजेन्द्र पुराणमृषिपुङ्गवम् । इति वाक्यं ततः श्रुत्वा लक्ष्मणस्यातिशोभनम्॥१५॥
जगाम राघवो द्रष्टुं बकदाल्भ्यं महामुनिम् । प्रणनाम मुनिं मूर्ध्ना रामो विष्णुमिवामरः ॥१६॥
ज्ञात्वा मुनिस्ततो रामं पुराणं पुरुषोत्तमम्। केनापि कारणेनैव प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ॥१७॥
उवाच स ऋषिस्तुष्टः कुतो राम तवागमः ॥१८॥

यह प्राचीन व्रत है यह पवित्र तथा पाप विनाशक है । यह निश्चित रूप से राजाओं को विजय प्रदान करती हैं ॥४॥ प्राचीन काल में श्रीरामचन्द्रजी चौदह वर्षों के लिए वन में गये और वे सीताजी तथा लक्ष्मणजी के साथ पञ्चवटी में निवास किए ॥५॥ जब वहाँ पर विजय स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी निवास करते थे उसी समय अपनी लालच के कारण रावण ने उनकी पत्नी का अपहरण कर लिया ॥६॥ उसी दुःख से दुःखी श्रीरामचन्द्रजी घूमते हुए मुमुर्षु जटायू को देखे ॥७॥ वन में भ्रमण करते हुए उन्होंने कबन्ध को मारा । उनकी सुग्रीव के साथ मित्रता हो गयी ॥८॥ उन्होंने श्रीराम का कार्य करने के लिए वानरों की सेना को अपने साथ लिया । उसके पश्चात् हनुमानजी ने लङ्का के उद्यान में जानकीजी को देखा ॥९॥ उन्होंने श्रीराम की बातों को सीताजी को सुनाया और महान् कार्य किया । फिर वे लौटकर श्रीरामजी के पास आये और सारी बातें श्रीरामचन्द्रजी को बतलायें ॥१०॥ उन बातों को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव की सहमति से प्रस्थान किए ॥११॥ उन्होंने कहा; लक्ष्मण समुद्र अगाध है और जल जंतुओं से भरा है किस पुण्य के द्वारा इसको पार किया जा सकता है । इसको आसानी से पार करने का कोई भी उपाय नहीं प्रतीत होता है॥१२॥ **लक्ष्मणजी ने कहा—** आप आदि देव पुराण पुरुषोत्तम हैं इस द्वीप में दाल्भ्य मुनि रहते हैं॥१३॥ हे राघव ! यहाँ से आधे योजन की दूरी पर उनका आश्रम है । हे रघुनन्दन ! वहाँ पर दूसरे भी बहुत से ब्राह्मण रहते हैं ॥१४॥ आप उन प्राचीन ऋषि के पास जाकर पूछें । लक्ष्मणजी की उस अत्यन्त सुन्दरवाणी को सुनकर ॥१५॥ श्रीरामचन्द्रजी महामुनि बकदाल्भ्य के पास गये श्रीरामजी ने मुनि को उसी तरह से प्रणाम किया जिस तरह देवता भगवान् विष्णु को प्रणाम करते हैं ॥१६॥ मुनि ने जान लिया कि ये श्रीराम पुराण पुरुषोत्तम है, विशेष कारण से मानव शरीर धारण किए हैं ॥१७॥ सन्तुष्ट होकर मुनि ने पूछा

राम उवाच

त्वत्प्रसादादहं विप्र तीरं नदनदीपतेः । आगतोऽस्मि ससैन्योऽत्र लङ्कां जेतुं सराक्षसाम्॥१९॥
भवतश्चानुकूलत्वात्तीर्यतेऽब्धिर्यथा मया । तमुपायं वद मुने प्रसादं कुरु साम्प्रतम्॥२०॥
एतस्मात्कारणादेव द्रष्टुं त्वाहमिहागतः । रामस्य वचनं श्रुत्वा बकदाल्भ्यो महामुनिः ॥२१॥
उवाच सुप्रसन्नात्मा रामं राजीवलोचनम्। कर्तव्यमद्य ते राम व्रतानां व्रतमुत्तमम्॥२२॥
कृतेन येन सहसा विजयस्ते भविस्यति ।
लङ्का जित्वा राक्षसांश्च स्वच्छां कीर्तिमवाप्स्यसि ॥२३॥
एकाग्रमानसो भूत्वा व्रतमेतत्समाचर । फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजयैकादशीभवेत्॥२४॥
तस्या व्रतेन हेराम विजयस्ते भविष्यति। निःसंशयं समुद्रं त्वं तरिष्यसि स वानरः ॥२५॥
विधिस्तु श्रूयतां राजन्व्रतस्यास्य फलप्रदः। दशम्यान्दिवसे प्राप्तेकुम्भमेकं तु कारयेत् ॥२६॥
हैमं वा राजतं वाऽपि ताम्रं वाप्यथ मृण्मयम् ।
स्थापयेच्छोभितञ्चैव जलपूर्ण सपल्लवम् ॥२७॥
सप्तधान्यान्यधस्तस्य यवानुपरि विन्यसेत्। तस्योपरि न्यसेद्देवं हैमं नारायणं प्रभुम्॥२८॥
एकादशी दिने प्राप्ते प्रातःस्नानं समाचरेत्। निश्चलं स्थापयेत्कुम्भंकण्ठमाल्यानुलेपनैः ॥२९॥
पूगीफलैर्नालिकेरैःपूजयेच्चविशेषतः । गन्धैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि॥३०॥
कुंभाग्रे तद्दिनं राम नीयते सत्कथादिभिः । रात्रौ जागरणंचैव तस्याग्रे कारयेद्बुधः॥३१॥
प्रकाशयेद् घृतदीपमखण्डंव्रतहेतवे । द्वादशीदिवसे प्राप्ते मार्तण्डस्योदये सति ॥३२॥

कि हे श्रीरामचन्द्र ! आपका आगमन किस प्रयोजन से हुआ है ॥१८॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— हे विप्र! आपकी कृपा से मैं सागर के तट पर राक्षसों सहित लङ्का पर विजय प्राप्त करने के लिए आया हूँ ॥१९॥ आपकी कृपा से यह समुद्र जिस तरह आसानी से पार किया जा सके उस उपाय को आप बतलायें । आप मुझ पर कृपा करें ॥२०॥ मैं इसी प्रयोजन से आपका दर्शन कराने के लिए आया हूँ । श्रीरामचन्द्रजी की वाणी को सुनकर बकदाल्भ्य मुनि ॥२१॥ अत्यन्त प्रसन्न होकर कमलनयन श्रीराम से कहे— हे राम ! आज आप सर्वोत्तम व्रत करें ॥२२॥ इस व्रत को करने से आप आसानी से लङ्का पर विजय प्राप्त कर लेंगे । लङ्का तथा राक्षसों को जीतकर निर्मल यश प्राप्त करेंगे ॥२३॥ एकाग्रमन होकर आप इस व्रत को करें । फाल्गुन के कृष्ण पक्ष में विजया एकादशी होती हैं ॥२४॥ हे श्रीराम । उसका व्रत करने से आपको विजय की प्राप्ति होगीं और आप निश्चित रूप से वानरों के साथ समुद्र को पार कर जायेंगे ॥२५॥ हे राजन् ! इस व्रत की फलप्रद विधि को आप सुनें । दशमी तिथि को सुवर्ण या चाँदी या ताम्बे का या मिट्टी का एक घड़ा ले । उसमें जल और पल्लव डालकर उसकी स्थापना करे ॥२६-२७॥ उसके नीचे सप्तधान्य डाले और ऊपर यव रखें । उसके ऊपर भगवान् नारायण की सुवर्ण निर्मित मूर्ति स्थापित करें॥२८॥ एकादशी के दिन प्रातः स्नान करें । उस घट के गले में माला डाल दे और उसमें अनुलेपन लगाये । फिर उसको स्थापित करें ॥२९॥ उसकी सुपारी तथा नारियल से विशेष रूप से पूजा करें । गन्ध, धूप, दीप तथा अनेक प्रकार के नैवेद्य का भोग लगाये ॥३०॥ उस घट के सामने ही बैठकर सत्य कथाओं आदि से दिन बिताये । उसी के समक्ष रात्रि में जागरण करे ॥३१॥ व्रत के लिए घी तथा अखण्ड दीप

नीत्वा कुम्भं जलोद्देशे नद्याःप्रस्रवणे तथा। ताडगे स्थापयित्वा तं पूजयित्वा यथाविधि ॥३३॥
दद्यात्स देवं तं कुम्भं ब्राह्मणे वेदपारगे। कुम्भेन सह राजेन्द्र महादानानि दापयेत् ॥३४॥
अनेन विधिना राम यूथपैःसह संगतः । कुरु व्रतं प्रयत्नेन विजयस्ते भविष्यति ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा ततो रामो यथोक्तमकरोत्तदा । कृतेव्रते स विजयी बभूव रघुनन्दनः ॥३६॥
प्राप्तासीता जितालङ्का पौलस्त्यो निहतो रणे ।
अनेन विधिना पुत्र ये कुर्वन्तिनराव्रतम् ॥३७॥
इहलोके जयप्राप्तिः परलोकस्तथाक्षयः। एतस्मात्कारणात्पुत्र कर्तव्यं विजयाव्रतम् ॥३८॥
विजयायाश्च माहात्म्यं सर्वकिल्बिषनाशनम्। पठनाच्छ्रवणाच्चैव वाजपेयफलं लभेत् ॥३९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे फाल्गुनकृष्णविजयामाहात्म्यं पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

जलायें । द्वादशी के दिन जब सूर्योदय हो जाय ॥३२॥ उस घट को, नदी या झरना या सरोबर आदि जलाशय पर लाकर उसकी स्थापना करें और उसकी सविधि पूजा करके ॥३३॥ भगवान् की मूर्ति के साथ उसे वेदज्ञ ब्राह्मण को दान कर दें । घट के साथ ही महादानों को भी देना चाहिए ॥३४॥ हे श्रीराम ! इसी तरह आप यूथपों के साथ व्रत को करें आपकी विजय होगी ॥३५॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** इस तरह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने उसी प्रकार से व्रत किया । व्रत करने के बाद वे विजयी हुए ॥३६॥ उन्होंने लङ्का को जीत लिया सीताजी को प्राप्त किया । हे पुत्र ! इस विधि से जो मनुष्य व्रत करते हैं ॥३७॥ इस लोक में विजय प्राप्त करते हैं और अक्षय परलोक को प्राप्त करते हैं । अतएव हे पुत्र ! विजया एकादशी का व्रत करना चाहिए ॥३८॥ विजया का माहात्म्य सभी पापों को विनष्ट करने वाला है । इसके पढ़ने तथा श्रवण करने से वाजपेय याग का फल प्राप्त होता है ॥३९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत फाल्गुन मास के कृष्णपक्षीय विजया एकादशी के माहात्म्य का वर्णन नामक पैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४५।।

छियालिसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

माहात्म्यंविजयायाश्च श्रुतं कृष्णमहाफलम् । फाल्गुनस्यार्जुनेपक्षेयन्नमी तां वदाधुना ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

धर्मपुत्र महाभाग शृणुवक्ष्यामि तेऽधुना । योक्ता पृष्टेन मान्धात्रा वसिष्ठेन महात्मना॥२॥
फाल्गुनस्य विशेषेण विशेषःकथितो नृप। आमलकीव्रतं पुण्यं विष्णुलोकफलप्रदम् ॥३॥
आमलक्यास्तले गत्वा जागरं तत्र कारयेत् ।
कृत्वा जागरणं रात्रौ गोसहस्र फलंलभेत् ॥४॥

मान्धातोवाच

आमलकी कदाह्येषा उत्पन्ना द्विजसत्तम । एतत्सर्वं ममाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे ॥५॥
कस्मादियं पवित्रा च कस्मात्पाप प्रणाशिनी ।
कस्माज्जागरणं कृत्वा गोसहस्र फलं लभेत् ॥६॥

वसिष्ठ उवाच

कथयामि महाभाग यथेयमभवत्क्षितौ । आमलकीमहावृक्षः सर्वपापप्रणाशनः ॥७॥
एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावरजङ्गमे। नष्टे देवासुरगणे प्रनष्टोरगराक्षसे॥८॥
तत्र देवादि देवेशःपरमात्मा सनातनः । जगाम ब्रह्मपरममात्मनः पदमव्ययम् ॥९॥
ततोऽस्य जाग्रतो ब्रह्ममुखाच्छशिसमप्रभः । ष्ठीवनाद्बिन्दुरुत्पन्नः स भूमौनिपपात ह॥१०॥

फाल्गुन शुक्ल पक्ष की आमलकी एकादशी के माहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— हे कृष्ण ! महान् फल प्रदान करने वाली विजया एकादशी का माहत्म्य मैंने सुना । फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी का जो नाम है, उसे आप मुझे बतलायें ॥१॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा— हे महाभाग धर्मपुत्र ! आप सुने मैं बतला रहा हूँ । मान्धाता के द्वारा पूछे जाने पर उसको महर्षि वसिष्ठ ने बतलाया था ॥२॥ हे राजन् ! फाल्गुन मास की आमलकी एकादशी विशेष रूप से आमलकी कही गयी है । यह पवित्र तथा भगवान् विष्णु के लोक को प्रदान करने वाली है ॥३॥ आँवला के पेड़ के नीचे जाकर वहीं जागरण करना चाहिए । रात्रि जागरण करने से एक हजार गोदान करने का फल होता है ॥४॥ **मान्धाता ने कहा**— हे द्विजश्रेष्ठ ! आमलकी एकादशी कब उत्पन्न हुयी । यह मुझको अत्यन्त कौतूहल है । अतएव इन सारी बातों को आप मुझे बतलायें ॥५॥ किस कारण से यह पवित्र तथा पाप विनाशक है ? और जागरण करने से यह हजार गोदान का फल प्रदान करती हैं ?॥६॥ **महर्षि वसिष्ठ ने कहा**— हे महाभाग ! यह पृथिवी पर कैसे हुयी इस बात को मैं आपको बतलाता हूँ। आँवला का वृक्ष सभी पापों को विनष्ट करने वाला है ॥७॥ जब एकार्णव (महाप्रलय) हो गया था सभी स्थावर जङ्गम विनष्ट हो गये थे । देवता, असुर, उरग तथा राक्षस विनष्ट हो गये थे ॥८॥ उस समय देवेश श्रीभगवान् अपने अव्यय धाम में चले गये ॥९॥ उसके बाद जब भगवान् जगे उस समय परंब्रह्म के मुख से चन्द्र के समान थूक निकला और वह पृथिवी पर गिरा ॥१०॥ उस बिन्दु से धात्री नग (आँवले का

तस्माद् बिन्दोः समुत्पन्नःस्वयं धात्री नगो महान् ।
शाखाप्रशाखाबहुलः फलभारेण नामितः ॥११॥
सर्वेषांचैव वृक्षाणामादिरोहःप्रकीर्तितः । ब्रह्मणाऽथ ततःपश्चात्संसृष्टाश्च इमा प्रजाः ॥१२॥
देवदानवगन्धर्वयक्षसपन्नगान् । असृजद्भगवान्देवो महर्षींश्च तथामलान्॥१३॥
आजग्मुस्तत्र देवास्ते यत्र धात्री हरिप्रिया। तां दृष्ट्वा ते महासभागपरं विस्मयमागताः ॥१४॥
न जानीम इवं वृक्षं चिन्तयन्तोऽभिसंस्थिताः ।
एवं चिन्तयतां तेषां वागुवाचाशरीरिणी ॥१५॥
आमलकी नगोह्येष प्रवरो वैष्णवोमत्तः। अस्य संस्मरणादेव लभेन्नोदानजं फलम् ॥१६॥
स्पर्शनाद् द्विगुणं पुण्यं त्रिगुणं भक्षणात्तथा ।
तस्मात्सर्वप्रयत्येन सेव्या आमलकी सदा ॥१७॥
सर्वपापहरा प्रोक्ता वैष्णवी पापनाशिनी। तस्या मूलेस्थितो विष्णुस्तदूर्ध्वे च पितामहः ॥१८॥
स्कन्धे च भगवान्रुद्रः संस्थितः परमेश्वरः। शाखासु मुनयःसर्वे प्रशाखासु च देवताः ॥१९॥
पर्णेषु चासते देवाः पुष्पेषु मरुतस्तथा। प्रजानां पतयः सर्वे फलेष्वेव व्यवस्थिताः॥२०॥
सर्वदेवमयीह्येवा धात्री च कथिता मया। तस्मात्पूज्यतमाह्येषा विष्णुभक्तिपरायणैः॥२१॥

ऋषय ऊचुः

को भवान्नहि जानीमः कस्मात्कारणतां गतः ।
देवो वा यदि वा चान्यःकथयस्व यथातथम् ॥२२॥

वृक्ष) उत्पन्न हुआ । उसकी अनेक शाखा प्रशाखायें थीं और वह फल के भार से झुक गया था ॥११॥ उसको सभी वृक्षों का प्रथम प्ररोह कहा गया है । उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने इन प्रजाओं की सृष्टि की ॥१२॥ श्रीभगवान् ने देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा पन्नग (सर्पों) की सृष्टि की । उन्होंने निर्मल महर्षियों की सृष्टि की ॥१३॥ वे भी देवता आये जहाँ पर श्रीहरि को प्रिय धात्री (आँवला) थी । हे महाभाग ! उस आँवला को देखकर वे अत्यन्त आश्चर्यित हुए ॥१४॥ वे सोच रहे थे कि इस वृक्ष का क्या नाम है, हमलोग इसको नहीं जानते हैं । जब वे सोच रहे थे उसी समय आकाशवाणी हुयी ॥१५॥ यह आँवले का वृक्ष है और भगवान् विष्णु को यह अत्यन्त प्रिय हैं । इसका स्मरण करने मात्र से गोदान का फल होता है ॥१६॥ स्पर्श करने से दो गुना और इसको खाने से तीन गुना फल होता है । अतएव धात्री का सेवन अवश्य करना चाहिए ॥१७॥ यह वैष्णवी है, सभी पापों को दूर करने वाली है । धात्री के मूल में भगवान् विष्णु का निवास होता है । और उसके ऊपर ब्रह्माजी का निवास होता है ॥१८॥ इसकी स्कन्धों में भगवान् शिव का निवास है । शाखाओं में सभी मुनिगण रहते है और प्रशाखाओं में देवताओं का निवास होता है ॥१९॥ इसके पत्तों में देवता रहते हैं और पुष्प में मरुत देवता का निवास होता है । इसके फलों में प्रजापतिगण रहते हैं ॥२०॥ जिस धात्री आँवला का मैंने वर्णन किया है, वह सर्व देवमयी है । अतएव यह भगवान् विष्णु के भक्तों के लिए पूज्यतमा है ॥२१॥ **ऋषियों ने कहा—** आप कौन हैं ? आपको हमलोग नहीं जानते हैं आप किसके कारण हुए हैं । आप देवता हैं या कोई दूसरे हैं ? आप ठीक-ठीक बतलायें ॥२२॥ **आकाशवाणी ने कहा—** जो सभी भूतों तथा भुवनों की सृष्टि करते हैं,

वागुवाच

य कर्ता सर्वभूतानां भुवनानां च सर्वशः। विदुषामपि दुष्प्रेक्षस्सोऽहं विष्णुःसनातनः ॥२३॥
तच्छ्रुत्वा देवदेवस्य भाषितं ब्रह्मणःसुताः। अनादिनिधनं देवं स्तोतुं तत्र प्रचक्रमुः ॥२४॥
नमो भूतात्मभूताय आत्मने परमात्मने। अच्युताय नमो नित्यमनन्ताय नमोनमः ॥२५॥
दामोदराय कवये यज्ञेशाय नमोनमः ॥२६॥
एवं स्तुतस्तु ऋषिभिस्तुतोष भगवान्हरिः। प्रत्युवाच महर्षींस्तानभीष्टं किं ददामिवः ॥२७॥

ऋषय ऊचुः

यदि तुष्टोऽसि भगवन्नस्माकं हितकाम्यया। व्रतं किंचित्समाख्याहि स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥२८॥
धनधान्यप्रदं पुण्यमात्मनस्तुष्टिकारकम्। अल्पायासं बहुफलं व्रतानामुत्तमंव्रतम् ॥
कृतेन येन देवेश ! विष्णुलोके महीयते ॥२९॥

विष्णुरुवाच

फाल्गुने शुक्लपक्षे तु पुष्येण द्वादशी यदि ।
भवेत्सा च महापुण्या महापातकनाशिनी ॥३०॥
विशेषस्तत्र कर्त्तव्यः शृणुध्वं द्विजसत्तमाः। आमलकी च संप्राप्य जागरं तत्र कारयेत्॥३१॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो गोसहस्रफलं लभेत्। एतद्वःकथितं विप्रा व्रतानां व्रतमुत्तमम् ॥
अर्चयित्वाऽच्युतं तस्यां विष्णुलोकान्न मुच्यते ॥३२॥

ऋषय ऊचुः

व्रतस्यास्य विधिं ब्रूहि परिपूर्णं कथं भवेत् ।
के मन्त्राः के नमस्कारा देवता का प्रकीर्तिता ॥३३॥

जिनका साक्षात्कार विद्वान् भी नहीं कर पाते हैं मैं वही सनातन विष्णु हूँ ॥२३॥ देवा साध्य श्रीभगवान का वह वचन सुनकर ब्रह्माजी के पुत्रों ने उनकी स्तुति की ॥२४॥ सभी भूतों की आत्मा स्वरूप आप को नमस्कार है । आत्मा स्वरूप, परमात्मा स्वरूप, अच्युत आपको नमस्कार है । नित्य तथा अनन्त आपको नमस्कार है ॥२५॥ दामोदर, कवि तथा यज्ञेश आपको नमस्कार है ॥२६॥ ऋषियों के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर श्रीहरि सन्तुष्ट हो गये । उन्होंने महर्षियों से कहा आपलोगों को मैं कौन सी अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँ ॥२७॥ **ऋषियों ने कहा—** हे भगवन् ! यदि आप हमलोगों का कल्याण करने के लिए संतुष्ट हैं तो आप हमलोगों को वह उत्तम व्रत बतलाइये जिसके करने में आयास तो अल्प हो और उसका फल बहुत हो । हे देवेश ! जिसके करने से जीवों को विष्णु लोक की प्राप्ति हो ॥२८-२९॥ **विष्णु भगवान् ने कहा—** फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को यदि पुष्य नक्षत्र का योग हो तो वह एकादशी महापुण्यप्रद तथा महापापों का विनाश करने वाली होती है ॥३०॥ उस तिथि को आँवला के नीचे जागरण करें, यह उसकी विधि है ॥३१॥ ऐसा करने वाला सभी पापों से मुक्त होकर हजार गोदान का फल प्राप्त करता है । हे विप्रों ! मैंने आपलोगों को सर्वोत्तम व्रत बतलाया है । उस एकादशी को भगवान् विष्णु की अर्चना करने वाला मनुष्य सदा विष्णु लोक में रहता है ॥३२॥ **ऋषियों ने कहा—** आप इस व्रत की विधि बतलाएँ जिससे कि यह व्रत परिपूर्ण हो । इसके मन्त्र और नमस्कार कौन हैं ?

कथं दानं कथं स्नानं कश्च पूजाविधिःस्मृताः ।
अर्घार्चनस्यमन्त्रंतु कथयस्वयथातथम् ॥३४॥

विष्णुरुवाच

श्रूयतां यो विधिः सम्यग्व्रतस्यास्य द्विजर्षभाः ।
एकादश्यां निराहारः स्थित्वा चैव परेऽहनि ॥३५॥
भोक्ष्येऽहं पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ! ।
इति कृत्वा तु नियमं दन्तधावनपूर्वकम् ॥३६॥

नालपेत्पतितांश्चौरांस्तथापाषण्डिनोनरान् । दुर्वृत्तान्भिन्नमर्यादान्गुरुदारप्रधर्षकान् ॥३७॥
अपराह्ने ततः स्नानं विधिना कारयेद्बुधः । नद्यां तडागे कूपे वा गृहे वा नियतात्मवान् ॥३८॥
मृत्तिकालम्भनं पूर्वं ततःस्नानं च कारयेत् । अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुकान्तेवसुन्धरे ॥३९॥
मृत्तिके ! हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥४०॥

इति मृत्तिकामन्त्रः

त्वमम्बु सर्वभूतानां जीवनं तनुरक्षकम् । स्वेदजोद्भिज्जजातीनां रसानां पतये नमः ॥४१॥
स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु ह्रदप्रस्रवणेषु च । नदीषु देवखातेषु इदं स्नानं तु मे भवेत् ॥४२॥

इति स्नानमन्त्रः

जामदग्न्यं मुनिंचैव कारयित्वा हिरण्मयम् । माषकस्य सुवर्णस्य तदर्धार्धेन वा पुनः ॥४३॥
गृहमागत्य पूजायाः पूजाहोमं तु कारयेत् । ततश्चामलकीं गच्छेत्सर्वोपस्करसंयुतः ॥४४॥
आमलकीं ततो गत्वा परिशोध्य समन्ततः । स्थापयेत्सततं कुम्भमव्रणं मन्त्रपूर्वकम् ॥४५॥

तथा इस व्रत के देवता कौन है ?॥३३॥ इस व्रत में क्या दान दिया जाता है ? स्नान कैसे करना चाहिए? इसकी पूजा की विधि क्या है ? आप इसके अर्घ तथा अर्चना के मन्त्रों को ठीक-ठीक बतलाएँ॥३४॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठों ! आपलोग इस व्रत की पूजा की विधि को सुनें । व्रती यह नियम करे कि मैं एकादशी को निराहार रहूँगा और द्वादशी के दिन भोजन करूँगा । हे पुण्डरीकाक्ष ! हे अच्युत! आप मेरी रक्षा करें । इस तरह से नियम करके दतौन करें ॥३५-३६॥ उस दिन चोरों, पतितों और पाखण्डियों से बात न करें । दुराचारियों, मर्यादाभङ्ग करने वालों तथा गुरु की पत्नी का अपहरण करने वालों से भी बातें न करें । उसके बाद विद्वान् को चाहिए कि वह अपराह्न में स्नान करें । अपने को संयमित रखने वाला नदी या सरोवर, या कुँआ या घर पर स्नान करें ॥३७-३८॥ पहले अपने शरीर में शुद्ध मिट्टी लगाये और उसके बाद स्नान करें । मिट्टी लगाने का मन्त्र है वसुन्धरे ! तुम पर अश्व चलते हैं, रथ चलते हैं तथा वामन रूप धारी भगवान् विष्णु चले हैं । हे मृत्तिके ! मैंने जो पाप किया है, उसको तुम दूर कर दो ॥३९-४०॥ हे जल ! तुम सभी जीवों के जीवन और शरीर की रक्षा करते हो, स्वेदज और उद्भिज जाति के जीवों के तुम रक्षक रसों के स्वामी तुमको नमस्कार है । मैंने यह जो स्नान किया है वह सभी तीर्थों, ह्रदों, प्रस्रवणों (झरनों) नदियों और सभी देव कुण्डों में स्नान करने का फल प्रदान करें ॥४१-४२॥ यह स्नान करने का मन्त्र है । उसके बाद घर आकर एक मासा या आधा मासा का परशुरामजी की मूर्ति बनवाकर उनकी पूजा करे तथा होम करें । उसके बाद सभी सामग्री के साथ आँवले

पञ्चरत्नसमोपेतं दिव्यगन्धाधिवासितम् । छत्रोपानद्युगोपेतं सितचन्दनचर्चितम् ॥४६॥
स्रग्दामलम्बितग्रीवं सर्वधूपविधूपितम् । दीपमालाकुलं कुर्यात्सर्वतः सुमनोहरम् ॥४७॥
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं दिव्यजालैः प्रपूरितम् । पात्रोपरि न्यसेद्देवं जामदग्न्यं महाप्रभम् ॥४८॥
विशोकाय नमः पादौ जानुनी विश्वरूपिणे । उग्राय च ततोऽप्यूरूकटीदामोदराय च ॥४९॥
उदरं पद्मनाभायउरःश्रीवत्सधारिणे । चक्रिणे वामबाहुं च दक्षिणं गदिने नमः ॥५०॥
वैकुण्ठाय नमःकण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै । नासां विशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी ॥५१॥
ललाटं वामनायेति रामायेति भ्रुवौ नमः । सर्वात्मने तु तच्छीर्षं नम इत्यभिपूजयेत् ॥५२॥

इति पूजामन्त्रः

ततो देवाधिदेवाय अर्घंचैव प्रदापयेत् । फलेन चैव शुभ्रेण भक्ति युक्तेन चेतसा ॥५३॥
नमस्ते देवदेवेश जामदग्न्य नमोऽस्तु ते। गृहाणार्घ्यमिमं दत्तमामलक्यायुतो हरे ! ॥५४॥

अर्घ्य मन्त्रः

ततो जागरणं कुर्याद्भक्तियुक्तेन चेतसा । नृत्यैर्गीश्च वादित्रैर्धर्माख्यानैःस्तवैरपि ॥५५॥
वैष्णवैश्च तथाऽऽख्यानैः क्षपयेत्सर्वशर्वरीम् ।
प्रदक्षिणां ततः कुर्याद्धात्र्या वै विष्णुनामभिः ॥५६॥
अष्टाधिकं शतंचैव अष्टाविंशतिरेव वा । ततःप्रभाते समये कृत्वा नीराजनं हरेः ॥५७॥

के पेड़ के पास जाय ॥४३-४४॥ आँवला के पास जाकर उसके चारो ओर सफाई करे । उसके बाद मन्त्र पूर्वक वहाँ निश्छिद्र घट की स्थापना करे ॥४५॥ उसमें पञ्चरत्न डाले और उसको दिव्य सुगन्धित से सुगन्धित करे । फिर छत्र, उपानह और श्वेत चन्दन चढाये ॥४६॥ उसके गले में माला पहनाये । हर प्रकार के धूप से उसे धूपित करे और सर्वत्र सुन्दर दीपों के प्रज्वलित करे ॥४७॥ उसके ऊपर दिव्य लावा से भरकर पात्र रखें । उसके ऊपर महाकान्ति सम्पन्न परशुरामजी के मूर्ति को स्थापित करें ॥४८॥ विशोकाय नमः कहकर उनके पैरों की पूजा करें, विश्वरूपिणे नमः से दोनों घुटनों की पूजा करे । **दामोदराय नामः** से उनके ऊरुओं की पूजा करे, दामोदराय नमः से कटि की पूजा करे ॥४९॥ **पद्मनाभाय नमः** से उदर की पूजा करे **श्रीवत्सधारिणे नमः** से हृदय की पूजा करे । **चक्रिणे नमः** से वाम बाहु की पूजा करे, **गदिने नमः** से दाहिने बाहु की पूजा करे ॥५०॥ **वैकुण्ठाय नमः** से कण्ठ की पूजा करे और यज्ञमुखाय नमः से मुख की पूजा करे । **विशोक निधये नमः** से नाम की पूजा करे । **वासुदेवायः नमः** से दोनों नेत्रों की पूजा करे ॥५१॥ **वामनाय नमः** से ललाट की पूजा करे । **रामाय नमः** से दोनों भौहों की पूजा करे । **सर्वात्मने नमः** से उनके शिर की पूजा करे ॥५२॥ इस तरह से पूजा का मन्त्र समाप्त हुआ । उसके बाद भक्तिपूर्ण अन्तःकरण से श्वेत फल से श्रीभगवान् को अर्घ प्रदान करे ॥५३॥ हे देवदेवेश ! जामदग्न्य आपको नमस्कार है । हे हरे ! आप आमलकी के साथ दिए इस अर्घ को स्वीकार करें । यह अर्घ्य का मन्त्र है । उसके पश्चात् भक्तिपूर्वक नृत्य, गीत, वाद्य तथा धार्मिक कथा के द्वारा रात्रि जागरण करे और स्तोत्र पाठ करे ॥५४-५५॥ भगवान् विष्णु की कथा के द्वारा पूरी रात बिता दे । उसके बाद भगवान् विष्णु के नामों से आँवला की परिक्रमा करे ॥५६॥ एक सौ आठ परिक्रमा करे या अठाइस परिक्रमा करे । उसके पश्चात् सबेरा होने पर श्रीहरि की आरती करे ॥५७॥ ब्राह्मण की पूजा करके सारी सामग्री ब्राह्मण को दे

ब्राह्मणं पूजयित्वा तु सर्वं तस्मै निवेदयेत् । जामदग्न्यघटे तत्र वस्त्रयुग्ममुपानहौ ॥५८॥
जामदग्न्यस्वरूपेण प्रीयतां मम केशवः । ततश्चामलकीं स्पृष्ट्वा कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ॥५९॥
स्नानं कृत्वा विधानेन ब्राह्मणान्भोजतेत्ततः । ततश्च स्वयमश्नीयात्कुटुम्बेन समावृतः ॥६०॥
एवं कृतेन यत्पुण्यं तत्सर्वं कथयामि ते । सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥६१॥
सर्वयज्ञाधिकं चैव लभते नात्र संशयः । एतद्वः सर्वमाख्यातं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥६२॥
एतावदुक्त्वा देवेशस्तत्रैवान्तरधीयत । ते चापि ऋषयः सर्वे चक्रुः सर्वमशेषतः ॥६३॥
तथा त्वमपि राजेन्द्र कर्तुमर्हसि सत्तम ! । व्रतमेतद्दुराधर्षं सर्वपापप्रमोचनम् ॥६४॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे फाल्गुनशुक्लमलक्येकादशी माहात्म्यं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

सैंतालिसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

फाल्गुनस्य सितेपक्षे श्रुताचामलकी तथा। चैत्रस्य कृष्णपक्षे तु किं नामैकादशीभवेत् ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजेन्द्र ! वक्ष्यामि आख्यानं पापनाशनम् ।
यल्लोमशोऽब्रवीत्पृष्टो मान्धात्रा चक्रवर्तिना ॥२॥

दे दे । परशुरामजी के घड़े पर दो वस्त्र और दो उपानह रखे और कहे— परशुराम स्वरूप भगवान् केशव मुझ पर प्रसन्न हों । उसके बाद आँवला का स्पर्श करके उसकी प्रदक्षिणा करे ॥५८-५९॥ फिर स्नान करके ब्राह्मणों को भोजन कराये । उसके पश्चात् परिवार के साथ भोजन करे ॥६०॥ इस तरह से इस व्रत को करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है उसे मैं तुम्हें बतलाता हूँ । सभी तीर्थों के तथा सभी दानों के करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, तथा सभी यज्ञों से भी इस व्रत को करने से अधिक पुण्य की प्राप्ति होती है मैंने आपलोगों को सर्वोत्तम व्रत बतलाया है ॥६१-६२॥ इतना ही कहकर श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये । उन ऋषियों ने पूर्णरूप से उस व्रत को किया ॥६३॥ हे राजेन्द्र ! आप भी इस व्रत को करें । यह दुराधर्ष व्रत है तथा सभी पापों से मुक्त करने वाला है ॥६४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की आमलकी एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक छियालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४६।।

चैत्रकृष्ण पक्ष की पापमोचनी एकादशी का माहात्म्य

युधिष्ठिर ने कहा— फाल्गुन शुक्ल पक्ष की आमलकी एकादशी माहात्म्य को मैंने सुना । चैत्र मास के कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम क्या है ?॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजेन्द्र ! मैं पाप

मान्धातोवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि लोकानां हितकाम्यया। चैत्रस्य प्रथमे पक्षे का नामैकादशीभवेत् ॥
को विधिः किं फलं तस्याः कथयस्व प्रसादतः ॥३॥

लोमश उवाच

चैत्रमास्यसिते पक्षे नाम्नावैपापमोचिनी । एकादशी समाख्याता पिशाचत्वविनाशिनी ॥४॥
शृणु तस्याः प्रवक्ष्यामि कामदां सिद्धिदां नृप ।
कथां विचित्रां शुभदां पापघ्नीं धर्मदायिनीम् ॥५॥
पुरा चैत्ररथोद्देशे ह्यप्सरोगणसेविते । वसन्तसमये प्राप्ते षट्पदाकुलिते वने ॥६॥
गन्धर्वकन्या वादित्रै रमन्ते सहकिन्नरैः । पाकशासनमुख्याश्च क्रीडन्ति त्रिदिवौकसः ॥७॥
नापरं सुखदं किंचिद्विनां चैत्ररथाद्वनम्। तस्मिन्वने तु मुनयस्तपन्ति बहुलं तपः ॥८॥
मेधाविनामानमृषिं तत्रस्थं ब्रह्मचारिणम् । अप्सरास्तं मुनिवरं मोहनायोपचक्रमे ॥९॥
मञ्जुघोषेति विख्याता भावं तस्य वितन्वती ।
क्रोशमात्रं स्थिता तस्य भयादाश्रम सन्निधौ ॥१०॥
गायन्ती मधुरं साधु पीडयन्ती विपञ्चिकाम् ।
गायन्तीं तामथालोक्य पुष्पचन्दनसेविताम् ॥११॥
कामोऽपि विजयाकाङ्क्षी शिवभक्तान्मुनीश्वरान् ।
तस्याः शरीरे संवासमकरोन्मनसः सुतः ॥१२॥

नाशक आख्यान कह रहा हूँ उसे आप सुनें । चक्रवर्ती महाराज मान्धाता के द्वारा पूछे जाने पर उसे महर्षि लोमश ने कहा था ॥२॥ **मान्धता ने कहा—** हे भगवन् ! संसारी जीवों के कल्याण की कामना से मैं यह जानना चाहता हूँ कि चैत्र मास के कृष्ण पक्ष में होने वाली एकादशी का नाम क्या है ? आप कृपा करके बतलायें कि उसकी विधि क्या है ? तथा उसका फल क्या है ?॥३॥ **लोमश महर्षि ने कहा—** चैत्र मास के कृष्णपक्ष में होने वाली एकादशी का नाम पापमोचनी है । यह एकादशी पिशाचत्व का विनाश करती है ॥४॥ राजन् ! मैं उस एकादशी की कामनाओं को पूर्ण करने वाली तथा सिद्धि प्रदान करने वाली कथा कहता हूँ उसको आप सुनें । वह कथा विचित्र शुभ देने वाली, पापों का विनाश करने वाली तथा धर्म को प्रदान करने वाली है ॥५॥ प्राचीन काल में अप्सराओं से सेवित तथा भ्रमरों से भरे हुए चैत्ररथ वन में गन्धर्वों की कन्यायें किन्नरों के साथ वाद्य बजाते हुए रमण कर रहे थे । इन्द्र इत्यादि देवता भी क्रीड़ा कर रहे थे ॥६-७॥ चैत्ररथ से भिन्न कोई दूसरा स्थान सुखद नहीं था । उस वन में बहुत से मुनिगण तपस्या करते हैं ॥८॥ वहाँ पर मेधावी नामक ब्रह्मचारी मुनि को मोहित करने के लिए उन अप्सराओं ने उपक्रम किया ॥९॥ मञ्जुघोषा नाम की विख्यात अप्सरा उनके प्रति अपने भावों को अभिव्यक्त करती हुयी। उनके भय से वह उस आश्रम से एक कोश दूर रहती थी ॥१०॥ वह मधुर गीत गाती थी और वीणा बजाती थी । पुष्प तथा चन्दन से अलंकृत तथा गाने वाली उसको देखकर ॥११॥ शिव भक्तों तथा मुनीश्वरों पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से मन का पुत्र काम भी उसके शरीर में निवास करता था॥१२॥

कृत्वा भ्रुवौ धनुष्कोटिं गुणं कृत्वा कटाक्षकम् ।
मार्गणौ नयने कृत्वा पक्ष्मयुक्ते यथाक्रमम् ॥१३॥
कुचौ कृत्वा पटकुटीं विजयायोपचक्रमे। मञ्जुघोषा भवत्तस्य कामस्यैव वरुथिनी ॥१४॥
मेधाविनं मुनिं दृष्टवासापि कामेनपीडिता। यौवनोद्भिन्नदेहोऽसौ मेधाव्यपिविराजते॥१५॥
सितोपवीतसहितो दृष्टः स्मर इवापरः। मेधावी वसते चासौ च्यवनस्याश्रमे शुभे ॥१६॥
मञ्जुघोषा स्थितं तत्र दृष्ट्वा सा मुनिपुङ्गवम् ।
मदनस्य वशंप्राप्ता मन्दम्मन्दमगायत ॥१७॥
रणद्वलयसंयुक्तां शिञ्जन्नूपुरमेखलाम् । गायन्तीं तां तथाभूतां विलोक्य मुनिपुङ्गवः ॥१८॥
मदनेन ससैन्येन नीतो मोहवशं बलात् । मञ्जुघोषा समागम्य मुनिं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥१९॥
हावभावकटाक्षैस्तं मोहयामास चाङ्गना। अथः संस्थाप्य वीणां सा सस्वजे तं मुनीश्वरम्॥२०॥
वलितेव लतावृक्षं वातवेगेन कम्पितम्। सोऽपि रेमे तया सार्धं मेधावी मुनिपुङ्गवः॥२१॥
तस्मिन्नेव ततो दृष्ट्वा तस्यास्तं देहमुत्तमम् । शिवतत्त्वं गतं तस्य कामतत्त्ववशं गतः ॥२२॥
न निशां न दिनं सोऽपि रमञ्जानाति कामुकः ।
बहुवर्षो गतःकालो मुनेराचार लोपतः ॥२३॥
मञ्जुघोषा देवलोकगमनायोपचक्रमे । गच्छन्तीं तं प्रत्युवाच रमन्तं मुनिसत्तमम् ॥
आदेशो दीयतां ब्रह्मन्स्वदेशगमनाय मे ॥२४॥

मेधाव्युवाच

अद्यैव त्वं समायाता प्रदोषादौ वरानने । यावत्प्रभात सन्ध्यास्यात्तावत्तिष्ठ ममान्तिके ॥२५॥

वह उसके दोनों भौहों को ही अपने धनुष का दोनों कोर, उसके कटाक्षों को प्रत्यञ्चा, उसके दोनों नेत्रों की जो पपनी से युक्त थे को अपना बाण बनाकर उसके शरीर में निवास करता था ॥१३॥ उसके दोनों स्तनों को अपना पटकुटी बनाकर वह विजयी होने का प्रयास कर रहा था उस काम की सेना मञ्जघोषा ही बन गयी थी ॥१४॥ मेधावी मुनि को देखकर वह भी कामार्त हो गयी । उमड़ती हुयी युवावस्था से मेधावी मुनि सुशोभित थे ॥१५॥ श्वेत यज्ञोपवीत धारण किए हुए वे दूसरे कामदेव के समान सुशोभित होते थे ! मेधावी मुनि महर्षि च्यवन के आश्रम में रहते थे ॥१६॥ वहाँ पर विद्यमान मुनि को देखकर वह मञ्जुघोषा कामार्त हो गयी और मन्द स्वर से गीत गाने लगी ॥१७॥ उसके हाथों के कङ्गन बज रहे थे और उसकी करधनी तथा नूपुर की ध्वनि हो रही थी । उसको उस तरह से गाते हुए देखकर मुनि श्रेष्ठ सेना से युक्त कामदेव के अधीन हो गये । मञ्जुघोषा आकर उस प्रकार के मुनि को देखी ॥१८-१९॥ उसने अपने हाव, भाव तथा कटाक्षों से मुनि को मोहित कर ली । उसने अपनी वीणा नीचे रख दी और मुनि का आलिङ्गन की॥२०॥ वायु के वेग से काँपते हुए वृक्ष के समान मुनि से वह लता के समान लिपट गयी ॥२१॥ मुनिपुङ्गव मेधावी भी उसके साथ रमण करने लगे । उसके उत्तम शरीर को देखकर कामार्त बने हुए मुनि का शिवत्व उसी में लीन हो गया ॥२२॥ कामुक बने मुनि को न तो दिन का पता चलता था । न रात का, वे उसके साथ रमण करते रहते थे । इस तरह से अनेक वर्ष बीत गये । मुनि के आचार का लोप हो गया ॥२३॥ मञ्जुघोषा देवलोक जाना चाहती थी । जाती हुयी उसने मुनि से कहा हे ब्रह्मन् ! मुझे अपने

इति श्रुत्वा मनुर्वाक्यं भयभीता बभूव सा। पुनर्वै रमयामास तमृषिं नृपसत्तम ! ॥२६॥
मुनेः शापभयाद्भीता बहुलान्परिवत्सरान् । वर्षाणां पञ्चपञ्चाशन्नवमासान्दिनत्रयम् ॥२७॥
सा रेमे मुनिना तस्य निशार्धमिव चाभवत् ।
सा तं पुनरुवाचाथ तस्मिन्काले गते मुनिम् ॥
आदेशो दीयतां ब्रह्मन्गान्तव्यं स्वगृहे मया ॥२८॥

मेधाव्युवाच

प्रभातमधुनाचास्ते श्रूयतां वचनं मम। सन्ध्यांयावच्च कुर्वेऽहं तावत्त्वं वै स्थिराभव ॥२९॥
इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा जातानन्दसमाकुला ।
स्मितं कृत्वा तु सा किंचित्प्रत्युवाच शुचिस्मिता ॥३०॥

अप्सरा उवाच

कियत्प्रमाणा विप्रेन्द ! तव सन्ध्या गताऽनघ ! ।
मयि प्रसादं कृत्वा तु गतःकालो विचार्यताम् ॥३१॥
इति तस्यावचः श्रुत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
गतकालस्य विप्रेन्द्रः प्रमाणमकरोत्तदा ॥३२॥
समाश्च सप्तपञ्चाशद्गतास्तस्य तया सह। चुक्रोध स ततस्तस्यै ज्वालामाली बभूव ह॥३३॥
नेत्राभ्यां विस्फुलिङ्गान्स मुञ्चमानोऽतिकोपनः ।
कालरूपां तु तां दृष्ट्वा तपसः क्षयकारिणीम् ॥३४॥
दुःखार्जितं क्षयं नीतं तपोदृष्ट्वा तयासह। सकम्पोष्ठो मुनिस्तत्र प्रत्युवाचाकुलेन्द्रियः ॥३५॥

देश जाने का आदेश दीजिये ॥२४॥ **मेधावी मुनि ने कहा—** सुन्दरि ! तुम आज ही प्रदोष से पहले आयी थी । प्रात:काल होने तक तो तुम मेरे पास रहो ॥२५॥ मुनि के इस वाक्य को सुनकर वह डर गयी। हे राजवर्य ! वह पुनः मुनि के साथ रमण करने लगी ॥२६॥ मुनि के शाप से भयभीत उसके कई परिवत्सर बीत गये । पचपन वर्ष नव महीने तथा तीन दिन बीत गये । वह मुनि के साथ रमण करती रही मुनि को लगा कि आधी रात हो गयी है । उस समय के बीत जाने पर उसने पुनः मुनि से कहा हे ब्रह्मन्! आज्ञा दीजिये मुझे अपने घर जाना है ॥२७-२८॥ **मेधावी ने कहा—** अब सबेरा हो गया है, मेरी बात सुनो, जब तक मैं संध्या कर लूं तब तक तुम ठहरो ॥२९॥ मुनि के इस वाक्य को सुनकर वह आनन्दमग्न हो गयी सुन्दर मुस्कान वाली उसने थोड़ा मुस्कुरा कर कहा ॥३०॥ **अप्सरा ने कहा—** हे विप्रेन्द्र ! आपकी कितनी संध्यायें बीत गयीं । मेरे ऊपर कृपा किए हुए आपका कितना समय बीत गया इस पर विचार करें॥३१॥ इस तरह की उसकी वाणी को सुनकर आश्चर्य चकित नेत्र वाले मुनि ने बीते हुए समय के प्रमाण को जाना तो ॥३२॥ वे उसके ऊपर क्रुद्ध हो गये जैसे वे क्रोध की ज्वाला समूह हों, क्योंकि उसके साथ रहते हुए उनके सत्तावन वर्ष बीत गये थे ॥३३॥ अत्यन्त क्रोधी उन मुनि के नेत्रों से क्रोध की चिन्गारियाँ निकलने लगीं । काल स्वरूप तथा तपस्या को नष्ट करने वाली उसको देखकर ॥३४॥ दुःख से अर्जित तपस्या का उसके साथ से क्षय देखकर अपने ओठों को कँपाते हुए वे कहे । उस समय उनकी

तां शशापाथ मेधावी त्वं पिशाची भवेति च ।
धिक्तवां पापे दुराचारे कुलटे पातकप्रिये ॥३६॥

तस्य शापेन सा दग्धा विनयावनतास्थिता। उवाच वचनं सुभ्रू प्रसादं वाञ्छतीमुनिम् ॥३७॥
प्रसादं कुरु विप्रेन्द्र शापस्यानुग्रहं कुरु। सतां संगो हि भवति वचोभिःसप्तभिःपदैः ॥३८॥
त्वयासह मम ब्रह्मन्नीता वै बहुवत्सराः। एतस्मात्कारणात्स्वामिन्प्रसादं कुरु सुव्रत ॥३९॥

मुनिरुवाच

शृणु मे वचनं भद्रे शापानुग्रहकारकम्। किं करोमि त्वया पापे क्षयंनीतं महत्तपः ॥४०॥
चैत्रस्य कृष्णपक्षे तु भवेदेकादशी शुभा। पापमोचनिका नाम सर्वपापक्षयङ्करी ॥४१॥

तस्या व्रते कृते शुभ्रे पिशाचत्वं प्रयास्यति ।
इत्युक्त्वा सोऽपि मेधावी जगाम पितुराश्रमम् ॥४२॥

तमागतं समालोक्य च्यवनःप्रत्युवाचतम्। किमेतिद्विहितं पुत्र ! त्वया पुण्यक्षयःकृतः ॥४३॥

मेधाव्युवाच

पातकं वै कृतं तात रमिता चाप्सरा मया। प्रायश्चित्तं ब्रूहि तात येन पापक्षयो भवेत्॥४४॥

च्यवन उवाच

चैत्रस्य चासिते पक्षे नाम्ना वै पापमोचनी। अस्या व्रते कृते पुत्र ! पापराशिः क्षयं व्रजेत्॥४५॥
इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं कृतं तेन व्रतोत्तमम्। गतं पापं क्षयं तस्य तपोयुक्तो बभूव सः ॥४६॥

साप्येवंमञ्जुघोषा च कृत्वैतद्व्रतमुत्तमम्। पिशाचत्वाद्विनिर्मक्तापापमोचनिकाव्रतात् ॥
दिव्यरूपधरा सा वै गता नाके वराप्सरा ॥४७॥

इन्द्रियाँ व्याकुल थीं ॥३५॥ मेधावी ने उसको शाप दिया कि तुम पिशाची हो जाओ । अरे पापिनी ! दुराचारिणी, कुलटे तुमको पाप ही प्रिय है, धिक्कार है तुमको ॥३६॥ उनके शाप से दग्ध हुयी वह नम्रता पूर्वक खड़ी रही मुनि की कृपा प्राप्त करने की इच्छा से उसने कहा ॥३७॥ हे विप्रेन्द्र ! कृपा कीजिये, अपने शाप का अनुग्रह कीजिये । सज्जनों की सङ्गति तो बात कर लेने और सात डग एक साथ चल लेने से ही हो जाती है ॥३८॥ ब्रह्मन् ! आपके साथ तो मैंने अनेक वर्षों को बिताया है । अतएव हे सुव्रत! स्वामिन् आप कृपा कीजिये ॥३९॥ **मुनि ने कहा—** हे भद्रे ! शापानुग्रह करने वाले मेरे वचन को तुम सुनों । पापिनि ! मैं क्या करूँ । तुमने बहुत अधिक तपस्या का नाश कर दिया है ॥४०॥ चैत्र मास के कृष्णपक्ष में जो एकादशी होती है, उसका नाम पापमोचनी है । वह सभी पापों का नाश कर देती है॥४१॥ शुभे ! जब उसका व्रत कर लोगी तो तुम्हारा पिशाचत्व समाप्त हो जायेगा । इस तरह से कहकर मेधावी भी अपने पिता के आश्रम में चले गये ॥४२॥ उनके आये हुए देखकर च्यवन महर्षि ने कहा हे वत्स ! तुमने यह क्या किया, तुमने पुण्य का नाश कर दिया है ॥४३॥ **मेधावी ने कहा—** तात ! मैंने पाप किया है । मैंने अप्सरा के साथ रमण किया है । पितः आप प्रायश्चित्त बतलायें जिससे पाप का नाश हो॥४४॥ **च्यवन महर्षि ने कहा—** चैत्र मास के कृष्णा पक्ष में पापमोचनी एकादशी होती है पुत्र उसका व्रत करने से सम्पूर्ण पाप समूह का नाश हो जाता है ॥४५॥ पिता के इस वाक्य को सुनकर मेधावी ने

श्रीकृष्ण उवाच

पापमोचनिकां राजन्ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः। तेषां पापं च यत्किंचित्तत्सर्वं च क्षयं व्रजेत्॥४८॥
पठनाच्छ्रवणाद्राजन्गोसहस्रफलं लभेत्। ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः॥४९॥
व्रतस्य चास्य करणात्पापमुक्ता भवन्ति ते। बहुपुण्यप्रदं ह्येतत्करणाद्व्रतमुत्तमम्॥५०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे चैत्रकृष्णैकादशीपापमोचिनी नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अड़तालिसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

वासुदेव नमस्तुभ्यं कथयस्व ममाग्रतः। चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु किं नामैकादशी भवेत् ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्वैकमना राजन्कथां पुण्यां पुरातनीम्। वसिष्ठो यामकथयत्प्राग्दिलीपाय पृच्छते॥२॥

दिलीप उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कथयस्वप्रसादतः। चैत्रमासि सितेपक्षे किं नामैकादशीभवेत् ॥३॥

उस उत्तम व्रत को किया। उससे उनके पाप का नाश हो गया और वे तपोयुक्त हो गये ॥४६॥ इसी तरह उस मञ्जुघोषा ने भी उस व्रत को किया और पापमोचनी एकादशी का व्रत करने से पिशाचत्व से मुक्त हो गयीं। वह श्रेष्ठ अप्सरा दिव्य रूप धारण करके स्वर्गलोक में चली गयी ॥४७॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजन्! जो लोग पाप मोचनी एकादशी का व्रत करते हैं, उनके जो भी पाप रहते हैं वे विनष्ट हो जाते हैं ॥४८॥ हे राजन्! इस आख्यान को पढ़ने और सुनने से हजार गोदान का फल होता है। ब्रह्मघाती, स्वर्ण चुराने वाला, सुरापायी तथा गुरुतल्पग इस व्रत के करने से पाप मुक्त हो जाते हैं इस व्रत करने से बहुत पुण्य की प्राप्ति होती है ॥४९-५०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत चैत्रमास के कृष्णपक्ष की पापमोचनी एकादशी का वर्णन नामक सैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४७॥

चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की कामदा एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— हे वासुदेव! आपको नमस्कार है। आप मुझे बतलाइये कि चैत्रमास के शुक्ल पक्ष में जो एकादशी होती है उसका नाम क्या है?॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजन्! आप एकाग्रमन से इस पवित्र तथा प्राचीन कथा को सुनें। इस कथा को प्राचीन काल में महर्षि वसिष्ठ ने राजा दिलीप को सुनाया था ॥२॥ **दिलीप ने कहा—** हे भगवन्! मैं सुनना चाहता हूँ। आप कृपा

वसिष्ठ उवाच

साधु पृष्टं त्वया राजन्कथयामि तवाग्रतः। चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु कामदा नाम नामतः ॥४॥
एकादशी पुण्यतमा पापेन्धनदवानलः। शृणुराजन्कथामेतां पापघ्नीं पुण्यदायिनीम्॥५॥
पुरा नागपुरे रम्ये हेमरत्नविभूषते। पुण्डरीकमुखानागा निवसन्ति महोत्कटाः ॥६॥
तस्मिन्पुरे पुण्डरीको राजा राज्यं चकार सः।
गन्धर्वैः किन्नरैश्चैव अप्सरोभिश्च सेव्यते ॥७॥
वराप्सरास्तु ललिता गन्धर्वो ललितस्तथा। उभौ रागेणसंरक्तौ दम्पतीकामपीडितौ ॥८॥
रेमाते स्वगृहे रम्ये धनधान्ययुते तदा। ललितायाश्च हृदये पतिर्वसति सर्वदा॥९॥
हृदये तस्य ललिता नित्यं वसति भामिनी। एकदा पुण्डरीकोऽथ क्रीडते सदसि स्थितः ॥१०॥
गातं गानं प्रकुरुते ललितोदयितां विना। पदबन्धस्खलज्जिह्वो बभूव ललितां स्मरन्॥११॥
मनोभावं विदित्वास्य कर्कटो नागसत्तमः। पदबन्धच्युतिं तसय पुण्डरीके न्यवेदयत् ॥१२॥
श्रुत्वा कर्कोटकवचःपुण्डरीके भुजङ्गराट्। क्रोधसंरक्तनयनो बभूवातिभयङ्करः ॥१३॥
शशाप ललितं तत्र गायन्तं मदनातुरम्। राक्षसो भव दुर्बुद्धे क्रव्यादः पुरुषादकः॥१४॥
यतःपत्नीवशोपेतो गायमानो ममाग्रतः। वचनात्तस्य राजेन्द्र रक्षोरूपो बभूव सः ॥१५॥
रौद्राननो विरूपाक्षो दृष्टमात्रो भयङ्करः। बाहू योजनविस्तीर्णौ मुखं कन्दरसन्निभम् ॥१६॥
चन्द्रसूर्यनिभे नेत्रे ग्रीवा पर्वतसन्निभा। नासारन्ध्रे तु विवरे अधरौ योजनायतौ ॥१७॥

करके बतलायें कि चैत्रमास के शुक्ल पक्ष में होने वाली एकादशी का नाम क्या है ॥३॥ **महर्षि वसिष्ठ ने कहा—** राजन् ! आपने अच्छा प्रश्न किया है। आपको मैं बतला रहा हूँ। चैत्रमास के शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम कामदा है ॥४॥ यह एकादशी अत्यन्त पवित्र है और पाप रूपी इन्धन के लिए यह दावानल के समान है। हे राजन् ! आप इस पाप विनाशिका तथा पुण्य को प्रदान करने वाली कथा को सुनें ॥५॥ प्राचीन काल में मनोहर नागपुर जो सुवर्णों तथा रत्नों से विभूषित था। उसमें पुण्डरीक आदि भयङ्कर नाग रहते थे ॥६॥ उस नगर में पुण्डरीक नामक राजा राज करते थे। गन्धर्व, किन्नर और अप्सरायें उनकी सेवा करते थे ॥७॥ ललिता नाम की श्रेष्ठ अप्सरा और ललित नामक गन्धर्व दोनों पति-पत्नी काम पीड़ित तथा परस्पर में अनुरक्त थे ॥८॥ वे अपने मनोहर गृह में रमण करते थे। उनका गृह धन-धान्य से सम्पन्न था। ललिता के हृदय में उसके पति का सदा निवास रहता था ॥९॥ वह सुन्दरी ललिता भी ललित के हृदय में सदा बनी रहती थी। एक बार पुण्डरीक अपनी सभा में क्रीड़ा कर रहा था ॥१०॥ ललित पत्नी के बिना ही मनोहर गीत गाता था। ललिता का स्मरण करने के कारण उसकी जीभ पदबन्ध में स्खलित हो गयी ॥११॥ उसके मन के भाव को जानकर कर्कोटक नामक श्रेष्ठ नाग पुण्डरीक पदबन्ध में होने वाली त्रुटि को बतलाया ॥१२॥ कर्कोटक की वाणी सुनकर सर्पराज पुण्डरीक क्रोध से आँखें लाल करके भयंकर बन गया ॥१३॥ मनोहर गान करने वाले तथा कामातुर ललिता को शाप दे दिया। दुर्बुद्धि तुम मांसभक्षी तथा पुरुषभक्षी राक्षस हो जाओ ॥१४॥ क्योंकि तुम मेरे सामने गाते हुए पत्नी के वश में हो गये। राजेन्द्र ! उसके कहने से ललित राक्षस हो गया ॥१५॥ उसका मुख भयङ्कर हो गया विरूपाक्ष वह देखने में भयङ्कर था। उसकी भुजाएँ योजन भर लम्बी और मुख पर्वत की कन्दरा के समान

शरीरं तस्य राजेन्द्र ! उत्थितं योजनाष्टकम् ।
ईदृशो राक्षसो भूत्वा भुञ्जानः कर्मणः फलम् ॥१८॥
ललिता तु तथालोक्य स्वपतिं विकृताकृतिम् ।
चिन्तयामास मनसा दुःखेनमहतार्दिता ॥१९॥
किं करोमि क्व गच्छामि पतिः शापेन पीडितः ।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य मनसा शर्म नालभत् ॥२०॥
चचार पतिनासार्धं ललिता गहनेवने। बभ्राम विपनि दुर्गे कामरूपी स राक्षसः ॥२१॥
निर्घृणःपापनिरतो विरूपःपुरुषादकः। न सुखं लभते रात्रौ न दिवा पापपीडितः ॥२२॥
ललिता दुःखिताऽतीव पतिं दृष्ट्वा तथाविधम् ।
बभ्राम तेनसार्धं रुदती गहनेवने ॥२३॥
दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं रम्यं मुनिं संशान्तविग्रहम्। शीघ्रं जगाम ललिता नमस्कृत्याग्रतः स्थिता ॥२४॥
तां दृष्ट्वा स मुनिः प्राह दुःखितां हि दयापरः ।
का त्वं कस्मादिहायाता सत्यं वद ममाग्रतः ॥२५॥

ललितोवाच

वीरधन्वेति गन्धर्वःसुतातस्य महात्मनः। ललितां नाम मांविद्धिपत्यर्थमिह चागताम् ॥२६॥
भर्ता मे पापदोषेण राक्षसोऽभून्महामुने। रौद्ररूपो दुराचारस्तं दृष्ट्वा नास्ति मे सुखम् ॥२७॥
साम्प्रतं शाधि मां ब्रह्मन्यत्कृत्यं तद्वद प्रभो ।
येन पुण्येन विप्रेन्द्र राक्षसत्वाद्विमुच्यते ॥२८॥

हो गया ॥१६॥ उसके दोनों नेत्र चन्द्रमा और सूर्य के समान थे और ग्रीवा पर्वत के समान हो गयी । उसकी नाक की विल और ओठ योजन भर फैले हुए हो गये ॥१७॥ राजेन्द्र ! उसका शरीर आठ योजन लम्बा हो गया इस तरह का राक्षस होकर वह अपने कर्म का फल भोगने लगा ॥१८॥ ललिता ने अपने पति को उस प्रकार के विकृत आकार वाला देखकर अत्यन्त दुःखी होकर मन से सोचने लगी ॥१९॥ मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ मेरे पति शाप से पीड़ित हैं । इस बात को सोच-सोचकर उसको शान्ति नहीं मिलती थी ॥२०॥ वह अपने पति के साथ घोर वन में घूमने लगी । अपनी इच्छा के अनुसार रूप बनाने वाला वह राक्षस दुर्गम वन में घूम रहा था ॥२१॥ वह निर्दय, पापी विरूप और मनुष्यों को खाने वाला था । पाप से पीड़ित होने के कारण वह दिन और रात में कभी भी सुख नहीं पाता था ॥२२॥ अपने पति को वैसा देखकर ललिता अत्यन्त दुःखी थी । वह उसके साथ रोती हुयी गहन वन में घूम रही थी ॥२३॥ उसने एक आश्रम को देखा और उसमें विद्यमान शान्त मुनि को देखा । ललिता शीघ्र गयी और नमस्कार करके उनके सामने खड़ी हो गयी ॥२४॥ उस दुखिता को देखकर दयालु मुनि ने कहा तुम कौन हो किस कारण से मेरे सामने आयी हो सत्य बतलाओ ॥२५॥ **ललिता ने कहा**— मैं वीरधन्वा नामक गन्धर्व की पुत्री हूँ । मेरा नाम ललिता है, मैं अपने पति के लिए आयी हूँ ॥२६॥ हे महामुने ! पापजन्य दोष के कारण मेरे पति राक्षस हो गये हैं । उनका रूप भयङ्कर है वे दुराचारी हो गये हैं । उनको देखकर मुझे दुःख होता है ॥२७॥ हे ब्रह्मन् ! आप मुझे ऐसे उपाय को वतलायें जिस पुण्य से मेरे पति राक्षसत्व से मुक्त हो जायँ ॥२८॥ **ऋषि ने कहा**— सुन्दरि ! इस समय चैत्रमास का शुक्ल पक्ष है । इसमें होने वाली

ऋषिरुवाच

चैत्रमासस्य रम्भोरु शुक्लपक्षोऽस्ति साम्प्रतम् ।
कामदैकादशी नाम पापघ्नी ललितेपरा ॥२९॥

कुरुष्व तद्व्रतं भद्रे विधिपूर्वं मयोदितम् । अस्य व्रतस्य यत्पुण्यं तत्स्वभर्त्रे प्रदीयताम् ॥३०॥
दत्तेपुण्ये क्षणात्तस्य शापदोषःप्रयास्यति । इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यंललिता हर्षिताऽभवत् ॥३१॥
उपाष्यैकादशी राजन्द्वादशीदिवसे तथा। विप्रस्यैव समीपे तद्वासुदेवस्य चाग्रतः ॥३२॥
वाक्यमुवाच ललिता स्वपत्युस्तारणाय वै । मया तु तद्व्रतं चीर्णं कामदाया उपोषणम् ॥३३॥
तस्य पुण्यप्रभावेण गच्छत्यस्य पिशाचता । ललितावचनादेव वर्त्तमानोऽपि तत्क्षणे ॥३४॥
गतपापःस ललितो दिव्यदेहो बभूव ह । राक्षसत्वं गतं तस्य प्राप्ता गन्धर्वता पुनः ॥३५॥
हेमरत्नसमाकीर्णो रेमे ललितया सह । विमानवरमारूढौ पूर्वरूपाधिकौ च तौ ॥३६॥
दम्पती अत्यशोभेतां कामदायाः प्रभावतः । इति ज्ञात्वा नृपश्रेष्ठ कर्तव्यैषा प्रयत्नतः ॥३७॥
लोकानां तु हितार्थाय तवाग्रे कथिता मया ॥३८॥

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्महत्यादि पापघ्नी पिशाचत्वविनाशिनी । नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥
पठनाच्छ्रवणाद्राजन्वाजपेयफलं लभेत् ॥३९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे चैत्रशुक्लकामदामाहात्म्यं नामाष्टचत्वारिंशोध्यायः ॥४८॥

कामदा एकादशी सभी पापों को नष्ट करने वाली है ॥२९॥ हे भद्रे ! मेरे द्वारा बतलायी गयी विधि के अनुसार तुम उस व्रत को करो । और इस व्रत के पुण्य को अपने पति को समर्पित कर दो ॥३०॥ पुण्य प्रदान करते ही उसका उसी क्षण शाप का दोष मिट जायेगा । इस वाक्य को सुनकर ललिता हर्षित हो गयी॥३१॥ राजन् ! एकादशी का व्रत करके द्वादशी के दिन उन ब्राह्मण के समीप ही तथा भगवान् वासुदेव के समक्ष। **ललिता ने कहा—** मैंने कामदा का व्रत अपने पति के उद्धार के लिए किया है ॥३२-३३॥ उस पुण्य के प्रभाव से मेरे पति की पिशाचता समाप्त हो जाय । ललिता के कहते ही उस समय राक्षस रूप में वर्तमान भी ललित निष्पाप हो गया । उसका शरीर दिव्य हो गया । उसका राक्षसत्व समाप्त हो गया और वह गन्धर्व हो गया ॥३४-३५॥ वह स्वर्ण तथा रत्न से अलंकृत होकर ललिता के साथ रमण करने लगा। श्रेष्ठ विमान पर बैठे हुए पहले से भी अधिक रूपवान् वे दोनो पति-पत्नी कामदा एकादशी के प्रभाव से अत्यन्त सुशोभित होते थे । हे नृपश्रेष्ठ ! इस बात को जानकर इस एकादशी को श्राद्ध पूर्वक करना चाहिए । संसारियों का कल्याण करने के लिए मैंने इसका वर्णन आपके समक्ष किया है ॥३६-३८॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** इस एकादशी से बढ़कर कोई दूसरी एकादशी नहीं है जो ब्रह्महत्या आदि के पापों को विनष्ट करे और पिशाचत्व को विनष्ट करें । हे राजन् ! इस आख्यान को पढ़ने तथा सुनने से वाजपेय याग का फल प्राप्त होता है ॥३९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत चैत्रमास के शुक्लपक्ष की कामदा एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक अड़तालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४८।।

उनचासवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

वैशाखस्यासितेपक्षे किं नामैकादशी भवेत् ।
मध्मिानं कथय मे वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

सौभाग्यदायिनी राजन्निहलोके परत्र च। वैशाखकृष्णपक्षे तु नाम्ना चैव वरुथिनी॥२॥
करुथिन्ना व्रतेनैव सौख्यं भवति सर्वदा। पापहानिश्च भवति सौभाग्यप्राप्तिरेव च ॥३॥
दुर्गभा या करोत्येनां सा स्त्री सौभाग्यमाप्नुयात् ।
लोकानां चैव सर्वेषां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥४॥
सर्वपापहरा नृणां गर्भवासनिकृन्तनी। वरूथिन्या व्रतेनैव मान्धाता स्वर्गतिं गतः॥५॥
धुन्धुमारादयश्चान्ये राजानो बहवस्तथा। ब्रह्मकपालनिर्मुक्तो बभूव भगवान्भवः ॥६॥
दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्यति यो नरः। रविग्रहे कुरुक्षेत्रे स्वर्णभारं ददाति यः॥७॥
तत्तुल्यं फलमाप्नोति वरूथिन्या व्रतं चरन् । श्रद्धावान्यस्तु कुरुते वरुथिन्या व्रतं नरः ॥८॥
वाञ्छितं लभते सोऽपि इहलोके परत्र च। पवित्रा पावनी ह्येषा महापातकनाशिनी ॥९॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा चैव कर्तॄणां नृपसत्तम। अश्वदानान्नृपश्रेष्ठ गजदानं विशिष्यते॥१०॥
गजदानाद् भूमिदानं तिलदानं ततोऽधिकम्। तस्माच्च स्वर्णदानं वा अन्नदानं ततोऽधिकम्॥११॥
अन्नदानात्परंदानं न भूतं न भविष्यति। पितृदेवमनुष्याणां तृप्तिरन्नेन जायते॥१२॥

वैशाख मास के कृष्ण पक्ष की वरूथनी एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— वैशाख मास के कृष्णपक्ष में होने वाली एकादशी का नाम क्या है ? हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है । आप मुझे उसका माहात्म्य बतलायें ॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजन् ! वैशाख मास के कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम वरुथनी है । वह इस लोक में तथा परलोक में सौभाग्य प्रदान करने वाली है ॥२॥ वरूथिनी एकादशी के करने से सदा सुख मिलता है । उसका व्रत करने से पाप का नाश होता है और सौभाग्य की प्राप्ति होती है ॥३॥ यदि कोई दौर्भाग्यग्रस्त नारी इस व्रत को करती है तो वह सौभाग्य सम्पन्न हो जाती है । यह एकादशी सभी मनुष्यों को भोग एवं मोक्ष प्रदान करती है ॥४॥ यह मनुष्यों के पापों को हर लेती है तथा गर्भवास जन्य कष्ट को विनष्ट करती है । वरुथिनी का यह व्रत करने के कारण मान्धाता स्वर्ग गये ॥५॥ धुन्धुमार इत्यादि दूसरे राजा भी स्वर्ग प्राप्त किए । स्वयं भगवान् शिव इसके प्रभाव से ब्रह्मकपाल से मुक्त हुए ॥६॥ जो मनुष्य दश हजार वर्षों तक तपस्या करता है तथा सूर्यग्रहण के समय जो एक भर सुवर्ण दान देता है । उससे प्राप्त होने वाले फल के समान ही बरुथिनी एकादशी व्रत का फल उस व्यक्ति को प्राप्त होता है । जो इस व्रत को श्रद्धा पूर्वक करता है ॥७-८॥ वह भी मनुष्य इस लोक और परलोक में अपने अभिप्रेत अर्थ को प्राप्त करता है । यह एकादशी पवित्र तथा महापापों का विनाश करने वाली है ॥९॥ हे नृपश्रेष्ठ ! यह व्रत करने वालों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली है, राजन् ! अश्वदान की अपेक्षा गजदान का अधिक फल होता है ॥१०॥

तत्समं कविभिःप्रोक्तं कन्यादानं नृपोत्तम। धेनुदानं च तत्तुल्यमित्याह भगवान्स्वयम् ॥१३॥

प्रोक्तेभ्यः सर्वदानेभ्यो विद्यादानं विशिष्यते ।
तत्फलं समवाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम् ॥१४॥

कन्यावित्तेन जीवन्ति ये नराःपापमोहितः। पुण्यक्षयात्ते गच्छन्तिनिरयं यातनामयम् ॥१५॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न ग्राह्यं कन्यकाधनम् । यश्च गृह्णाति लोभेन कन्यां क्रीत्वा च तद्धनम्॥१६॥

सोऽन्यजन्मनि राजेन्द्र ! ओतुर्भवति निश्चितम् ।
कन्यां पुण्येन यो दद्याद्यथाशक्ति स्वलङ्कृताम् ॥१७॥
तत्पुण्यसङ्ख्यां गदितुं चित्रगुप्तो न शक्नुयात् ।
तत्तुल्यं फलमाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम् ॥१८॥
कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान्कोद्रवांस्तथा ।
शाकं मधुपरान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ॥१९॥

वैष्णवो व्रतकर्ता च दशम्यां दश वर्जयेत्। द्यूतं क्रीडां च निद्राञ्च ताम्बूलं दन्तधावनम्॥२०॥

परापवादं पैशुन्यं स्तेयं हिसां तथा रतिम्। क्रोधं चैवानृतंवाक्यमेकादश्यां विवर्जयेत्॥२१॥

कास्यं मांसं सुरां क्षौद्रं तैलं पतितभाषणम् ।
व्यायामं च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुम् ॥२२॥

वृषपृष्ठं मसूरान्नं द्वादश्यां परिवर्जयेत्। अनेन विधिना राजन्विहितार्यैर्वरूथिनी॥२३॥

गजदान की अपेक्षा भूमिदान और भूमिदान की अपेक्षा तिलदान का अधिक फल होता है । उसकी अपेक्षा स्वर्ण दान का अधिक महत्त्व है और उससे भी अन्न दान का अधिक फल होता है ॥११॥ अन्नदान से वढ़कर न तो कोई दान हुआ और न होगा । पितर, देवता और मनुष्य सबों की अन्न से ही तृप्ति होती है ॥१२॥ हे नृपश्रेष्ठ ! अन्नदान के समान विद्वानों ने कन्यादान को बतलाया है । स्वयं भगवान् ने कन्यादान के समान धेनुदान को बतलाया है ॥१३॥ इन सभी दानों से विद्या दान का अधिक महत्त्व है। बरुथिनी एकादशी का व्रत करने वाला मनुष्य विद्यादान के फल के समान फल प्राप्त करता है ॥१४॥ पापी मनुष्य कन्या के धन से जीवित रहते हैं । पुण्य का नाश हो जाने के कारण वे यातनामय नरक में जाते हैं ॥१५॥ अतएव कन्या का धन किसी भी हालत में नहीं लेना चाहिए । लोभ के कारण जो लोग कन्या को बेंचकर उसका धन लेते हैं ॥१६॥ वे अगले जन्म में निश्चित रूप से विडाल होंते हैं । जो मनुष्य पुण्य के कारण अपनी शक्ति के अनुसार अलंकृत करके कन्या का दान करते हैं उस पुण्य को चित्रगुप्त भी नहीं गिना सकते हैं । वरुथिनी एकादशी करने वाला मनुष्य उसके समान ही फल प्राप्त करता है ॥१७-१८॥ व्रत करने वाले वैष्णव को चाहिए कि वह कांस्य, मांस, मसूर, चना, कोदव, शाक, मदिरा, परान्न, पुनभोजन तथा मैथुन इन दश चीजों का दशमी तिथि को न करे । और एकादशी को जूआ, निद्रा, पान, दतौन, दूसरे की निन्दा, चुगली, चोरी, हिंसा, रतिक्रीडा, क्रोध, मृषाभाषण इन सबों का परित्याग कर देना चाहिए ॥१९-२१॥ द्वादशी के दिन कांस्य, मांस, मदिरा, शहद, तेल, पतित भाषण, व्यायाम, तथा प्रभास, दूसरे बार भोजन तथा मैथुन य वृष पृष्ठ तथा मसूर अन्न इन सबों का त्याग कर देना चाहिए । हे राजन् ! पूज्य पुरुषों ने इसी प्रकार से वरुथिनी एकादशी का विधान किया है ॥२२-२३॥

सर्वपापपक्षयं कृत्वा दद्यात्प्रान्तेऽक्षयांगतिम्। रात्रौ जागरणं कृत्वा पूजितो मधुसूदनः ॥२४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति परमांगतिम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या पापभीरुभिः ॥२५॥
क्षपारितनयाद्भीतो नरःकुर्याद्वरूथिनीम्। पठनाच्छ्रवणाद्राजन्गोसहस्रफलं लभेत्॥२६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥२७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे वैशाखकृष्णवरूथिन्येकादशीमाहात्म्यं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

पचासवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

वैशाखशुक्लपक्षे तु किन्नामैकादशी भवेत् ।
किं फलं को विधिस्तत्र कथयस्व जनार्दन ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

इदमेव पुरापृष्टं रामचन्द्रेण धीमता। वसिष्ठं प्रति राजेन्द्र यत्त्वं मामनुपृच्छसि ॥२॥

राम उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमंव्रतम् । सर्वपापक्षयकरं सर्वदुःखनिकृन्तनम्॥३॥

ऐसा करने से यह एकादशी सभी पापों का नाश करके अन्त में अक्ष्यगति को प्रदान करती है । रात्रि में जागरण करके भगवान् मधुसूदन की पूजा करने से सभी पापों से मुक्त होकर व्रत करने वाले परमागति को प्राप्त करते हैं । अतएव पाप से डरने वाले लोगों को हर प्रकार का प्रयास करके इस व्रत को करना चाहिए ॥२४-२५॥ क्षपारितनय (यमराज) से भयभीत रहने वाले मनुष्य को वरुथिनी एकादशी करना चाहिए । इस आख्यान को पढ़ने और श्रवण करने से हजार गौओं के दान करने का फल प्राप्त होता है॥२६॥ वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में पूजित होता है ॥२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत वैशाख मास के कृष्णक्ष की वरुथिनी एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक उनचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४९।।

वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की मोहिनी एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में होने वाली एकादशी का नाम क्या है ? हे जनार्दन ! आप उसकी विधि तथा फल को बतलायें ॥१॥ **भगवान् कृष्ण ने कहा—** हे राजन् ! आप जो मुझसे पूछ रहे हैं, इसी को बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र ने वसिष्ठ महर्षि से पूछा ॥२॥ **श्रीरामचन्द्र ने कहा—** हे भगवन् ! मैं ऐसे व्रत को सुनना चाहता हूँ जो सर्वोत्तम हो सभी पापों तथा दुःखों को दूर करने वाला

मया दुःखानि भुक्तानि सीताविरहजानि तु ।
ततोऽहं भयभीतोऽस्मि पृच्छामि त्वां महामुने ॥४॥

वसिष्ठ उवाच

साधुपृष्टं त्वया राम तवैषा नैष्ठिकीमतिः। त्वन्नामग्रहणेनैव पूतो भवति मानवः ॥५॥
तथाऽपि कथयिष्यामि लोकानां हितकाम्यया ।
पवित्रं पावनानांचव्रतानामुत्तमंव्रतम् ॥६॥
वैशाखस्य सिते पक्षे राम ! चैकादशी भवेत् ।
मोहिनी नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा परा ॥७॥
मोहजालात्प्रमुच्यन्ते पातकानां समूहतः। अस्या व्रतप्रभावेण सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥८॥
अतः कारणतो राम ! कर्तव्यैषा भवादृशैः ।
पातकानां क्षयकारी महादुःखविनाशनी ॥९॥
शृणुष्वैकमना राम कथां पापहारां पराम् । यस्याः श्रवणमात्रेण महापापं प्रणश्यति ॥१०॥
सरस्वत्यास्तटे रम्ये पुरी भद्रावती शुभा। द्युतिमान्नाम नृपतिस्तत्र राज्यं करोति वै ॥११॥
चन्द्रवंशोद्भवो नाम्ना धृतिमान्सत्यसङ्गरः। तत्र वैश्यो निवसति धनधान्यसमृद्धिमान् ॥१२॥
धनपाल इतिख्यातः पुण्यकर्मप्रवर्त्तकः। प्रपाकूपमठारामतडागगृहकारकः ॥१३॥
विष्णुभक्तिरतःशान्तस्तस्यालन्पञ्चपुत्रकाः । सुमना द्युतिमांश्चैव सुकृतस्तथा ॥१४॥
पञ्चमो धृष्टबुद्धिश्च महापापरतः सदा। परस्त्रीसङ्गनिरतो विटगोष्ठीविशारदः॥१५॥
द्यूतादि व्यसनासक्तः परस्त्रीरतीलालसः। न च देवार्चने बुद्धिर्नपितॄन्नद्विजान्प्रति ॥१६॥

हो ॥३॥ हे महामुने ! मैंने सीता के विरह जन्य दुःखों को भोगा है, अतएव दुःखों से भयभीत होने के कारण मैं आपसे पूछ रहा हूँ ॥४॥ **महर्षि वसिष्ठ ने कहा**— हे राम ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है आपकी बुद्धि नैष्ठिकी है । आपका नाम लेने मात्र से मानव पवित्र हो जाता है ॥५॥ फिर भी लोक कल्याण की दृष्टि से मैं इसे कहता हूँ । यह सभी पवित्र व्रतों में उत्तम व्रत है ॥६॥ हे राम ! वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में जो एकादशी होती है, उसका नाम मोहिनी है, वह सर्वश्रेष्ठ पाप विनाशिका है ॥७॥ मैं यह सत्य कह रहा हूँ कि इस व्रत के प्रभाव से मनुष्य मोहजाल से तथा पाप समूह से मुक्त हो जाते हैं॥८॥ अतएव आप जैसे लोगों को इस व्रत को करना चाहिए । यह पापों का क्षय करती है और महान् दुःख का विनाश करती है ॥९॥ श्रीराम ! एकाग्रमन से आप पापों को हरने वाली कथा को सुनें । इसके श्रवण मात्र से महापाप विनष्ट हो जाता है ॥१०॥ सरस्वती नदी के तट पर भद्रावती पुरी थी । वहाँ द्युतिमान् नामक राजा राज्य करते थे ॥११॥ वे चन्द्रवंश मे उत्पन्न थे वे सत्य वक्ता और धैर्य सम्पन्न थे । वहाँ धन-धान्य से समृद्ध धनपाल नामक वैश्य रहते थे । वे पुण्य कर्मों को करते थे । वे पौशाला उद्यान, कूप, मठ, सरोवर तथा गृह आदि बनवाते थे ॥१२-१३॥ वे शान्त स्वभाव वाला और भगवान् विष्णु के भक्त थे । उसके पाँच पुत्र थे । उनके नाम थे सुमन, द्युतिमान्, मेधावी, सुकृत तथा धृष्ट बुद्धि । यह पाँचवाँ महापापी था । सदा परस्त्री से सम्बन्ध रखता था और विटों की गोष्ठी में निपुण था ॥१४-१५॥ वह जूआ आदि के व्यसन में लगा रहता था और दूसरे की स्त्री के साथ सङ्गम की लालसा करता था । वह कभी

अन्यायवर्ती दुष्टात्मा पितुर्द्रव्यक्षङ्करः। अभक्ष्यभक्षकः पापी सुरापानेरतःसदा ॥१७॥
वेश्याकण्ठे क्षिप्तबाहुर्भ्रमन्दुष्टश्चतुष्पथे। पित्रा निष्काशितो गेहात्परित्यक्तश्च बान्धवैः ॥१८॥
स्वदेहभूषणान्येव क्षयं नीतानि तेन वै। गणिकाभिः परित्यक्तो निन्दतश्च धनक्षयात् ॥१९॥
ततश्चिन्तापरो जातो वस्त्रहीनःक्षुधादितः। किं करोमि क्वगच्छामि केनोपायेन जीव्यते ॥२०॥
तस्करत्वं समारब्धं तत्रेव नगरे पितुः। गृहीतो राजपुरुषैर्मुक्तश्च पितृगौरवात् ॥२१॥
पुनर्बद्धःपुनस्त्यक्तः पुनर्बद्धः स वै भटैः। धृष्टबुद्धिर्दुराचारो निबध्य निगडैर्दृढैः ॥२२॥
कशाघातैस्ताडितश्च पीडितश्च पुनः पुनः। न स्थातव्यं हि मन्दात्मंस्त्वया मद्देशगोचरे ॥२३॥
एममुक्त्वा ततो राज्ञा मोचितो दृढबन्धनात्।
निर्जगाम भयात्तस्य गतोऽसौ गहनं वनम् ॥२४॥
क्षुत्तृषा पीडितश्चायमितश्चेतश्च धावति। सिंहवन्निजघानासौ मृगशूकरचित्रलान् ॥२५॥
आमिषाहारनिरतो वने तिष्ठति सर्वदा। करे शरासनं कृत्वा निषङ्गं पृष्ठसंगतम् ॥२६॥
अरण्यचारिणो हन्ति पक्षिणश्च चतुष्पदान्। चकोरांश्च मयूरांश्च कङ्कतित्तिरिमूषकान् ॥२७॥
एतानन्यान्हिनस्त्यन्यो धृष्टबुद्धिस्तु निर्घृणः। पूर्वजन्मकृतैः पापैर्निमग्नः पापकर्दमे ॥२८॥
दुःखशोकसमाविष्टः पीड्यमानो दिवानिशम्।
कोण्डिन्यस्याश्रमपदं प्राप्तः पुण्यागमात्क्वचित् ॥२९॥
माधवे मासि जाह्नव्यां कृतस्नानं तपोधनम्। आससाद धृष्टबुद्धिः शोकभारेण पीडितः ॥३०॥

देवता, पितृ तथा ब्राह्मणों की पूजा नहीं करता था ॥१६॥ वह अन्याय करने वाला, दुष्ट स्वभाव का और अपने पिता के धन का क्षय करने वाला था। वह पापी अभक्ष्य भक्षण करता था और सदैव शराब पीता रहता था ॥१७॥ वह दुष्ट वेश्या के गले में हाथ डालकर चौराहे पर घूमता रहता था। पिता ने उसको घर से निकाल दिया और बान्धवों ने उसको त्याग दिया ॥१८॥ उसने अपने देह के भूषणों को ही विनष्ट कर दिया। धन का क्षय होने से वेश्याओं ने भी उसकी निन्दा की और उसका परित्याग कर दिया ॥१९॥ वस्त्रहीन, भूख से व्याकुल होकर सोचने लगा कि मैं क्या करूँ, कैसे जीवित रहुँ ॥२०॥ उसने अपने पिता के ही नगर में चोरी करना शुरु कर दिया। सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया किन्तु पिता के गौरव के कारण उसे छोड़ दिया ॥२१॥ वह बार-बार सिपाहियों द्वारा बाँधा गया और छोड़ा गया। धृष्टबुद्धि दुराचारी था हथकड़ी बेड़ी में बाँधकर उसको कोड़ों से पीटकर दुःख दिया गया और कहा गया कि मूर्ख तुम मेरे देश में कभी रहना मत ॥२२-२३॥ इस तरह से कहकर राजा ने उसको कठोर बँधन से छोड़ दिया। वह राजा के भय से वहाँ से निकल गया और घोर वन में चला गया ॥२४॥ भूख और प्यास से व्याकुल होकर वह इधर-उधर दौड़ रहा था। वह सिंह के समान मृग, शूकर और चित्तर को मारता था ॥२५॥ वह माँस खाता था और वन में रहता था। हाथ में धनुष बाण और पीठ पर तुणीर बाँधे रहता था ॥२६॥ वह वन में रहने वाले पक्षियों को मारता था और पशुओं को मारता था। निर्दय धृष्ट बुद्धि चकोरों, मयूरों, कंको, तित्तिरों तथा चूहों आदि को तथा दूसरे जीवों को मारता था। वह पूर्व जन्म में किए गये पापों के कारण सदा पाप कर्म में ही लगा रहता था ॥२७-२८॥ दुःख तथा शोक से संतप्त, दिन-रात पीड़ित होता हुआ वह एक बार किसी पुण्य के कारण महर्षि कौण्डिन्य के आश्रम में चला गया ॥२९॥ वैशाख के महीने

तद्वस्त्रबिन्दुस्पर्शेन गतपापो हताशुभः ।
कौण्डिन्यस्याग्रतः स्थित्वा प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ॥३१॥

धृष्टबुद्धिरुवाच

भो भो ब्रह्मन्द्विजश्रेष्ठ दयांकृत्वा ममोपरि। येन पुण्यप्रभावेण मुक्तिर्भवति तद्वद ॥३२॥

कौण्डिन्य उवाच

शृणुष्वैकमनाभूत्वा येन पापक्षयस्तव। वैशाखस्य सितेपक्षे मोहिनी नाम विश्रुता ॥३३॥
एकादशीव्रतं तस्याःकुरु मद्वाक्यनोदितः । मेरुतुल्यानि पापानि क्षयं नयति देहिनाम्॥३४॥
बहुजन्मार्जितान्येषा मोहिनी समुपोषिता । इतिवाक्यं मुनेःश्रुत्वाधृष्टबुद्धिः प्रसन्नधीः ॥३५॥
व्रतं चकार विधिवत्कौण्डिन्यस्योपदेशेतः। कृते व्रते नृपश्रेष्ठ ! गतपापो बभूव सः ॥३६॥
दिव्यदेहस्ततो भूत्वा गरुडोपरि संस्थितः। जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥३७॥
इतीदृशं रामचन्द्र ! उत्तमं मोहिनीव्रतम्। नातःपरतरं किंचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥३८॥

श्रीकृष्ण उवाच

यज्ञादि तीर्थदानानि कलां नार्हन्तिषोडशीम्। पठनाच्छ्रवणाद्राजन्गोसहस्त्रफलं लभेत् ॥३९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे
वैशाखशुक्ले मोहिन्येकादशी नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

में गङ्गा में स्नान करने वाले तपस्वी के पास शोक भार से पीड़ित होकर गया ॥३०॥ उनके वस्त्र के जल की बूंद का स्पर्श होने से उसका पाप विनष्ट हो गया । वह कौण्डिन्य के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ा हो गया ॥३१॥ **धृष्टिबुद्धि ने कहा**— हे द्विज श्रेष्ठ ! आप हमारे ऊपर कृपा करके उस उपाय को बतलायें जिससे मुझे मुक्ति मिल जाय ॥३२॥ **कौण्डिन्य ने कहा**— जिससे तुम्हारे पापों का नाश होगा उसको तुम एकाग्रमन से सुनो । वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में विख्यात मोहिनी एकादशी होती है ॥३३॥ तुम मेरे वाक्य से प्रेरित होकर उस एकादशी व्रत को करो । वह शरीर धारियों के सुमेरु के समान भी पाप राशि का नाश कर देती है ॥३४॥ उपवास करने से यह मोहिनी एकादशी अनेक जन्मों के पापों को नष्ट कर देती है । मुनि के इस वाक्य को सुनकर धृष्ट बुद्धि प्रसन्न हो गया ॥३५॥ वह कौण्डिन्य के उपदेशानुसार विधि पूर्वक व्रत को किया । हे नृपश्रेष्ठ ! व्रत कर लेने पर वह निष्पाप हो गया ॥३६॥ उसके बाद दिव्य देह धारण कर तथा गरुड़ पर बैठकर समस्त उपद्रवों से रहित भगवान् विष्णु के लोक में चला गया॥३७॥ हे रामचन्द्र ! मोहिनी एकादशी का व्रत इस तरह से उत्तम है । चराचरात्मक त्रैलोक्य में इससे श्रेष्ठ दूसरा कोई व्रत नहीं है ॥३८॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा**— यज्ञ आदि तथा तीर्थ व्रत इस व्रत के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है । हे राजन् ! इस आख्यान को पढ़ने तथा सुनने से एक हजार गौओं के दान का फल होता है ॥३९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की मोहिनी एकादशी के माहात्म्य वर्णन नामक पचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५०॥

एकावनवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

ज्येष्ठस्य कृष्णपक्षे तु किं नामैकादशी भवेत् ।
श्रोतुमिच्छामिमाहात्म्यंतद्वदस्व जनार्दन ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टं त्वया राजन्लोकानां हितकाम्यया ।
बहुपुण्यप्रदा ह्येषा महापातकनाशिनी ॥२॥

अपरा नाम राजेन्द्र अपरा पुत्रदायिनी। लोके प्रसिद्धतां याति अपरां यस्तु सेवते ॥३॥
ब्रह्महत्याभिभूतोऽपि गोत्रहाभ्रूणहा तथा। परापवादवादी च परस्त्रीरसिकोऽपि च ॥४॥
अपरासेवनाद्राजन्विपाप्मा भवति ध्रुवम् । कूटसाक्ष्यं कूटमानं तुलाकूटं करोति यः ॥५॥
कूटवेदं पठेद्यस्तु कुटशास्त्रं तथैव च । ज्योतिषां गणकःकूटःकूटायुर्वैदिकोभिषक् ॥६॥
कूटसाक्ष्यसमायुक्तो विज्ञेया नरकौकसः। अपरासेवनाद्राजन्पापैर्मुक्ता भवन्ति ते॥७॥

क्षत्रियः क्षात्रधर्मं यस्त्यक्त्वा युद्धात्पलायते ।
स याति नरकं घोरं स्वीयधर्मबहिष्कृतः ॥८॥
अपरा सेवनात्सोऽपि पापं त्यक्त्वा दिवं व्रजेत् ।
विद्यावान्यःस्वयं शिष्यो गुरुनिन्दां करोति च ॥९॥

स महापातकैर्युक्तो निरयं याति दारुणम्। अपरासेवनात्सोऽपि सद्गतिं प्राप्नुयान्नरः ॥१०॥
महिमानमपरायाःशृणु राजन्वदाम्यहम् । मकरस्थे रवौ माघे प्रयागे यत्फलं नृणाम्॥११॥

ज्येष्ठमास के कृष्ण पक्ष की अपरा नामक एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— ज्येष्ठ मास के कृष्णपक्ष में होने वाली एकादशी का नाम क्या है ? हे जनार्दन ! मैं उसका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ उसे आप मुझे बतलायें ॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजन् ! लोक कल्याण की दृष्टि से आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । यह एकादशी बहुत अधिक पुण्य प्रदान करने वाली है और महापातकों का नाश करती है ॥२॥ हे राजेन्द्र ! इसका नाम अपरा है । यह पुत्र प्रदान करने वाली है । अपरा का व्रत करने वाला मनुष्य संसार में प्रसिद्ध हो जाता है ॥३॥ ब्रह्महत्या से अभिभूत, गोत्रहा, गर्भपात कराने वाला, दूसरों की निन्दा करने वाला, दूसरे की स्त्री में आसक्त रहने वाला भी पुरुष हे राजन् ! अपरा का व्रत करके निष्पाप हो जाता है । जो झूठी गवाही करता है, कूटमान तथा तुलाकूट (डंडी मारकर तौलने वाला) ॥४-५॥ जो कूटवेद तथा कूटशास्त्र पढ़ता है, झूठा ज्योतिषी, झूठी दवा करने वाला वैद्य ॥६॥ ये सभी तथा कूट साक्ष्य करने वाला नरकवासी होते हैं । किन्तु हे राजन् ! अपरा एकादशी का सेवन करने से ये सभी निष्पाप हो जाते हैं ॥७॥ जो क्षत्रिय क्षात्र धर्म को त्याग कर युद्ध से पलायन कर जाता है, वह अपने धर्म से वहिष्कृत होकर घोर नरक में जाता है ॥८॥ अपरा का सेवन करके वह भी स्वर्गलोक चला जाता है । जो विद्याध्ययन करने वाला शिष्य अपने गुरु की निन्दा करता है ॥९॥ वह महापातक से युक्त होकर नरक में जाता है । किन्तु अपरा

काश्यां यत्प्राप्यते पुण्यमुपरागे निमज्जनात् ।
गयायां पिण्डदानेनपितृणां तृप्तिदो यथा ॥१२॥
सिंहस्थिते देवगुरौ गौतम्यां स्नातको नरः । कन्यागते गुरौ राजन्कृष्णावेणीनिमज्जनात् ॥१३॥
यत्फलं समवाप्नोति कुम्भकेदारदर्शनात् । बदर्याश्रमयात्रायां तत्तीर्थसेवनादपि॥१४॥
यत्फलं समावाप्नोति कुरुक्षेत्रे रविग्रहे । गजाश्वहेमदानेन यज्ञं कृत्वा सदक्षिणम् ॥१५॥
तादृशं फलमाप्नोति अपराव्रतसेवनात् । प्रसद्यःसूतां गां दत्त्वा सुवर्णं वसुधां तथा ॥१६॥
नरो यत्फलमाप्नोति अपराया व्रतेन तत् । पापद्रुमकुठारीयं पापेन्धनदवानलः ॥१७॥
पापान्धकारतरणिः पापसारङ्गकेसरी । बुद्बुदा इव तोयेषु पुत्तिका इव जन्तुषु॥१८॥
जायन्ते मरणायैव एकादशाव्रतं विना । अपरां समुपोष्यैव पूजयित्वा त्रिविक्रमम् ॥१९॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥२०॥
लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया। पठनाच्छ्रवणाद्राजन्गोसहस्रफलं लभेत्॥२१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे ज्येष्ठकृष्णापरैकादशीनामैकपञ्चशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

एकादशी का व्रत करने से वह भी सद्गति को प्राप्त कर लेता है ॥१०॥ हे राजन् ! अपरा एकादशी का माहात्म्य मैं बतलाता हूँ उसे आप सुने । मकर राशि के सूर्य के होने पर प्रयाग में मनुष्यों को जिस फल की प्राप्ति होती है । ग्रहण के समय में काशी में स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है ॥११॥ जिस तरह से गया में पिण्डदान करने से पितरों को तृप्ति होती है ॥१२॥ सिंह राशि के गुरु के होने पर गौतमी नदी (गोदावरी नदी) में स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, कन्या राशि के गुरु के होने पर कृष्णा वेणी में स्नान करने से ॥१३॥ जिस फल की प्राप्ति होती है जिस तरह कुम्भ केदार का दर्शन करने से तथा बदरिकाश्रम की यात्रा करने और उस तीर्थ का सेवन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है॥१४॥ कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण के अवसर पर हाथी, घोड़ा तथा सुवर्ण का दान करने से एवं तथा दक्षिणा पूर्वक यज्ञ करने से जिस फल की प्राप्ति होती है ॥१५॥ उसी तरह का फल अपराव्रत का सेवन करने से प्राप्त होता है । सद्य प्रसूत गौ का दान करके सुवर्ण तथा भूमि का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल की प्राप्ति अपरा का व्रत करने से होती है । यह एकादशी पापरूपी अन्धकार के लिए सूर्य के समान है, और यह पाप रूपी मृग के लिए सिंह के समान है । एकादशी का व्रत नहीं करने वाले लोग जल के बुलबुले तथा जीवों में पूतिका के समान केवल मरने के ही लिए जन्म लेते हैं । अपरा एकादशी का व्रत करके तथा भगवान् त्रिविक्रम का पूजन करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में पूजित होता है ॥१६-२०॥ संसारी जीवों का कल्याण करने के लिए मैंने इसका आपके समक्ष वर्णन किया है । हे राजन् ! इस आख्यान को पढ़ने और सुनने से एक हजार गोदान करने का फल होता है ॥२१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की अपरा एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक एकावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५१।।

बावनवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

अपरायाश्च माहात्म्यं श्रुतं सर्वं जनार्दन। ज्येष्ठस्य शुक्लपक्षे तु स्याद्या तां वद मानद॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

एनां वक्ष्यति धर्मात्मा व्यासः सत्यवतीसुतः।
सर्वशास्त्रर्थतत्त्वज्ञो वेदवेदाङ्गपारगः॥२॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुता मे मानवा धर्मा वासिष्ठाश्च श्रुता मया।
द्वैपायन यथावत्त्वं वैष्णवान्वक्तुमर्हसि॥३॥

श्रीवेदव्यास उवाच

श्रुतास्तु मानवा धर्मा वैदिकाश्च श्रुतास्त्वया।
कलौ युगे नशक्यन्ते ते वै कर्तुंनराधिप॥४॥

सुखोपायमल्पधनमल्पक्लेशं महाफलम्। पुराणानां च सर्वेषां सारभूतं महामते !॥५॥
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि। द्वादश्यां तु शुचिर्भूत्वापुष्पैः संपूज्य केशवम्॥६॥
अन्नं भुञ्जीत सत्कृत्य पश्चाद्विप्रपुरःसरम्। सूतकेऽपि न भोक्तव्यंनाशौचे च जनाधिप॥७॥
यावज्जीवं व्रतमिदं कर्तव्यं पुरुषर्षभ। स्वर्गतिं प्राप्तुमिच्छद्भिरत्र नैवास्ति संशयः॥८॥
अपि पापा दुराचाराः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः।एकादश्यां न भुञ्जाना न ते यान्ति यमान्तिकम्॥९॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्यपत्रवत्। भीमसेनो महाबाहुर्नत्वोवाच गुरुम्प्रति॥१०॥

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की निर्जला एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— हे जनार्दन ! मैंने अपरा का माहात्म्य सुना अब आप ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष में होने वाली एकादशी को वतलाइये ॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** इस एकादशी का वर्णन माता सत्यवती के पुत्र धर्मात्मा वेदों तथा वेदाङ्गों में पारङ्गत एवं सभी शास्त्रों के तत्त्वों के ज्ञाता महर्षि व्यास करेंगे ॥२॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** मनु द्वारा प्रोक्त धर्मों का मैंने श्रवण किया है तथा महर्षि वसिष्ठ द्वारा वर्णित धर्मों को भी मैंने सुना है। हे द्वैपायन ! आप वैष्णव धर्मों का यथायथ रूप से वर्णन करें॥३॥ **श्रीवेद व्यास ने कहा—** आपने मानव धर्मों को और वैदिक धर्मों को सुना है। राजन् ! कलियुग में उन धर्मों का अनुष्ठान सम्भव नहीं है ॥४॥ हे महामते ! जिसको आसानी से किया जा सकता है जिनमें अल्पधन और अल्पक्लेश का व्यय होता है, जिन सबों का फल महान होता है तथा जो पुराणों के सार सर्वस्व हैं ॥५॥ जो लोग स्वर्ग प्राप्त करना चाहते हैं उन लोगों को दोनों पक्षों की एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिए, द्वादशी के दिन पवित्र होकर पुष्पों से भगवान् केशव की पूजा करके ब्राह्मणों का सत्कार करने के पश्चात् अन्न खाना चाहिए। सूतक में भी भोजन न करे। अशौच में भी भोजन न करें हे पुरुषर्षभ, इस व्रत को जीवन पर्यन्त करना चाहिए। ऐसा करने से निश्चित रूप से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥६-८॥ एकादशी के दिन भोजन नहीं करने वाले पापी, दुराचारी, पापिष्ठ तथा अधार्मिक मनुष्य भी

पितामह महाबुद्धे श्रृणु मे परमं वचः। युधिष्ठिरश्च कुन्ती च तथा द्रुपदनन्दिनी ॥११॥
अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवस्तथैव च। एकादश्यां न भुञ्जन्ति कदाचिदपि सुव्रताः ॥१२॥

ते मां ब्रुवन्ति वै नित्यं मा भुङ्क्ष्व त्वं वृकोदर ! ।
अहं तानब्रवं तात बुभुक्षा दुःसहा मम ॥१३॥
दानं दास्यामि विधिवत्पूजयिष्यामि केशवम् ।
भीमसेनवचः श्रुत्वा व्यासो वचनमब्रवीत् ॥१४॥

व्यास उवाच

यदि स्वर्गमभीष्टं ते नरकं दुष्टमेव च। एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि ॥१५॥

भीमसेन उवाच

पितामह ! महाबुद्धे ! कथयामि तवाग्रतः। एकभक्ते न शक्नोमि उपवासे कुतः प्रभो ॥१६॥

वृको हि नाम यो वह्निःस सदा जठरे मम ।
अतिवेलं यदाऽश्नामि तदा समुपशाम्यति ॥
नैकं शक्नोम्यहं कर्तुमुपवासं महामुने ! ॥१७॥

येनैव प्राप्यतेस्वर्गस्तत्कर्त्तास्मि यथातथम्। तदेकंवदनिश्चित्ययेन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥१८॥

व्यास उवाच

वृषस्थे मिथुनस्थे वा यदा चैकादशी भवेत् ।
ज्येष्ठमासे प्रयत्नेन सोपोष्योदकवर्जिता ॥१९॥

गण्डूषाचमनं वारि वर्जयित्वोदकं बुधः। उपभुञ्जीत नैवेह व्रतभङ्गोऽन्यथा भवेत् ॥२०॥

यमलोक में नहीं जाते हैं ॥९॥ व्यासजी के इस वचन को सुनकर महाबाहु भीमसेन पिप्पल के पत्ते के समान काँपने लगे, वेद व्यासजी को नमस्कार करके कहे ॥१०॥ **भीमसेन ने कहा—** हे महाबुद्धे पितामह! आप मेरी बात सुनें युधिष्ठिर, कुन्ती, द्रौपदी, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये सभी सुन्दर व्रत वाले हैं एकादशी के दिन कभी भी भोजन नहीं करते हैं ॥११-१२॥ वे मुझको हमेशा कहते हैं वृकोदर तुम मत भोजन करो । हे तात ! मैंने इन सबों से कहा कि मुझसे भूख नहीं बर्दास्त होती है ॥१३॥ मैं विधिवत् दान दूँगा और भागवान् केशव की पूजा भी करूँगा । भीमसेन की बात सुनकर व्यासजी ने कहा ॥१४॥ **व्यासजी ने कहा—** यदि तुमको स्वर्ग अभीष्ट हो और नरक खराब लगे तो दोनों पक्षों में एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिए ॥१५॥ **भीमसेन ने कहा—** हे महाबुद्धे पितामह ! मैं आपसे कहता हूँ कि दिन में एकबार भोजन करके भी मैं नहीं रह सकता हूँ, उपवास करने की कौन सी बात है ?॥१६॥ मेरे पेट में वृक नामक अग्नि का सदा निवास करता है, जब मैं बार-बार भोजन करता हूँ तो वह शान्त होती है । हे महामुने ! मैं एक भी उपवास नहीं कर सकता हूँ ॥१७॥ जिसके द्वारा स्वर्ग प्राप्त होता है, उसको मैं कर लूँगा । अतएव आप निश्चित करके कोई एक एकादशी का व्रत बतलाइये, जिससे कि मेरा कल्याण हो ॥१८॥ **व्यासजी ने कहा—** यदि वृष राशि अथवा मिथुन राशि के सूर्य के रहने पर ज्येष्ठ मास की एकादशी आये तो उस दिन बिना जल पिये ही उपवास करे ॥१९॥ इस व्रत में कुल्ला अथवा आचमन के जल को छोड़कर दूसरा जल न पिए अन्यथा व्रत का भङ्ग होता है ॥२०॥ सूर्योदय काल से सूर्योदय

उदयादुदयं यावद्वर्जयित्वोदकं नरः। श्रूयतां समवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम् ॥२१॥
ततःप्रभातेविमले द्वादश्यांस्नानमाचरेत्। जलं सुवर्णं दत्त्वा च द्विजातिभ्योयथाविधि ॥२२॥
भुञ्जीत कृतकृत्यस्तु ब्राह्मणैः सहितो वशी ।
एवं कृते च यत्पुण्यंभीमसेन शृणुष्व तत् ॥२३॥
संवत्सरे तु याश्चैव एकादश्यो भवन्ति हि ।
तासां फलमवाप्नोति ह्यत्र मे नास्ति संशयः ॥२४॥
इति मां केशवः प्राह शङ्खचक्रगदाधरः। सर्वान्परित्यज्य पुमान्मामेकं शरणं व्रजेत्॥२५॥
एकादश्यां निराहारस्ततः पापात्प्रमुच्यते ।
द्रव्यशुद्धिः कलौ नास्ति संस्कारः स्मार्त्त एव च ॥२६॥
वैदिकस्तु कुतश्चापि प्राप्ते दुष्टे कलौ युगे। किंनु ते बहुनोक्तेन वायुपुत्र ! पुनः पुनः ॥२७॥
एकादश्यांन भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि। एकादश्यां सिते पक्षे ज्येष्ठे मास्युदकं विना ॥२८॥
पुण्यं फलमवाप्नोति तच्छृणुष्व वृकोदर ! ।
संवत्सरे तु या प्रोक्ताः शुक्ला कृष्णा वृकोदर ! ॥२९॥
उपोसिता हि सर्वाः स्युरेकादश्यो न संशयः ।
धनधान्यप्रदा पुण्या पुत्रारोग्यशुभप्रदा ॥३०॥
उपोषिता नरव्याघ्र इति सत्यं ब्रवीमि ते। यमदूता महाकायाः कराला: कृष्णरूपिणः ॥३१॥
दण्डपाशधरा रौद्रा नोपसर्पन्ति तं परम्। पीताम्बरधराः सौम्याश्चक्रहस्तामनोजवाः ॥३२॥
अन्तकाले नयन्त्येते वैष्णवान्वैष्णवीं पुरीम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन उपोष्योदकवर्जिता ॥३३॥

काल पर्यन्त जल का परित्याग करके मनुष्य बारह एकादशियों का फल प्राप्त कर लेता है ॥२१॥ उसके बाद जब स्वच्छ प्रात:काल हो जाये तो स्नान करना चाहिए । उसके बाद ब्राह्मणों के साथ भोजन करना चाहिए । हे भीमसेन ! ऐसा करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसे आप सुनें ॥२२-२३॥ एक वर्ष में जितनी एकादशियाँ होती हैं उन सबों का फल उसको प्राप्त हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥२४॥ इस बात को मुझे शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले भगवान् केशव ने कहा था कि सभी पुरुषों की आशा छोड़कर जो केवल मेरी शरणागति एकादशी निराहार रहकर करता है तो वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । हे वायु पुत्र भीमसेन ! तुमको बार-बार क्या बतलाना है ? इस दोष दूषित कलियुग में न द्रव्य की शुद्धि और न संस्कार की शुद्धि है फिर वैदिक संस्कारों के विषय में क्या कहें?॥२५-२७॥ दोनों पक्षों में एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिए । ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन निर्जल एकादशी व्रत का जो फल होता है, उसको आप सुनें । पूरे वर्ष में जितनी भी शुक्ला तथा कृष्णा एकादशियाँ होती हैं, उन सबों का फल मिल जाता है । वह एकादशी धन-धान्य प्रदान करने वाली पवित्र, आरोग्य एवं पुत्र-प्रदान करने वाली है ॥२८-३०॥ जो एकादशी का व्रत करता है उसके पास महाकाय, भयङ्कर तथा काले-काले यमदूत नहीं आते हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ । इन वैष्णवों को अन्तिम समय में पीताम्बरधारी, सौम्य स्वभाव वाले, हाथ में चक्र धारण किए हुए मन के समान वेग वाले विष्णु दूत आकर भगवान् विष्णु के लोक में ले जाते हैं । अतएव सभी प्रकार के प्रयास से

जलधेनुं तदा दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते । ततस्त्वमस्यां कौन्तेय सोपवासोऽर्चनं हरेः ॥३४॥
कुरु सर्वप्रयत्नेन सर्वपापप्रशान्तये। स्वप्ने न मेऽपराधोऽस्ति दन्तरागतयाऽपिवा ॥३५॥
भाक्ष्येऽपरेऽह्निदेवेश ह्यशनं वासराद्धरेः । इत्युच्चार्य ततो मन्त्रमुपवासपरो भवेत् ॥३६॥
सर्वपापविनाशाय श्रद्धादमसमन्वितः । मेरुमन्दरमात्राघं स्त्रियां पुंसा च यत्कृतम् ॥३७॥

सर्वं तद्भस्मतां याति एकादश्याः प्रभावतः ।
न शक्नुवन्ति ये दातुं जलधेनुं नराधिप ! ॥३८॥
सकाञ्चनः प्रदातव्यो घटको वस्त्रसंयुतः ।
तोयस्य नियमं योऽस्यां कुरुते वै स पुण्यभाक् ॥३९॥
फलं कोटिसुवर्णस्य यामे यामे श्रुतं फलम् ।
स्नानं दानं जपं होमं यदस्यां कुरुते नरः ॥४०॥

तत्सर्वं चाक्षयं प्राप्तमेतत्कृष्णप्रभाषितम्। किं वापरेण धर्मेण निर्जलैकादशीं विना ॥४१॥
उपोष्य सम्यग्विधिवद्वैष्णव पदमाप्नुयात्। सुवर्णमन्नं वासो वा यदस्यां सम्प्रदीयते॥४२॥

तदस्य कुरुशार्दूल ! सर्वं चाप्यक्षयं भवेत् ।
एकादश्यां दिने योऽन्नं भुङ्क्ते पापं भुनक्ति सः ॥४३॥
इह लोके च चाण्डालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम् ।
ये च दास्यन्ति दानानि द्वादश्यां समुपोषिताः ॥४४॥

ज्येष्ठमासे सितेपक्षे प्राप्स्यन्ति परमं परम् । ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुद्वेषी सदानृती ॥४५॥

निर्जला एकादशी करना चाहिए ॥३१-३३॥ उस व्रत के समय जल धेनु का दान करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । अतएव हे कौन्तेय तुम इस एकादशी को उपवास करके श्रीहरि की पूजा करो॥३४॥ सभी पापों की शान्ति के लिए उपवास से पहले भगवान् से प्रार्थना करे कि हे भगवन् ! मेरा स्वप्न में कोई अपराध नहीं है । दन्तरोग के कारण भी मेरा अपराध नहीं है । प्रार्थना करने के बाद उपवास प्रारम्भ करें ॥३५॥ हे देवेश ! एकादशी के बाद द्वादशी में मैं भोजन करूँगा । समस्त पापों का विनाश करने के लिए श्रद्धा तथा दम पूर्वक इस व्रत को करना चाहिए । किसी स्त्री अथवा पुरुष के द्वारा यदि सुमेरु अथवा मन्दराचल के समान महान पाप किया गया हो तो वह एकादशी के प्रभाव से पूर्ण रूप से भस्म हो जाता है । हे राजन् ! जो लोग जल धेनु का दान नहीं दे सकते हैं ॥३६-३८॥ उन लोगों को सुवर्ण डालकर जल भरा घड़ा दान करना चाहिए और वस्त्र भी देना चाहिए । इस व्रत में जो लोग जल का नियम पालन करते हैं वे पुण्यवान् हैं ॥३९॥ जो मनुष्य इस एकादशी में स्नान, दान, जप और होम करते हैं, उनको प्रत्येक प्रहर में करोड़ सुवर्ण मुद्रा दान करने का फल प्राप्त होता है । वह सबकुछ अक्षय होता है, यह भगवान् कृष्ण ने कहा है । निर्जला एकादशी किए बिना दूसरे धर्म के करने से कौन सा लाभ है ?॥४०-४१॥ इस एकादशी का विधि पूर्वक व्रत करके मनुष्य भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । हे कुरुश्रेष्ठ ! सुवर्ण, अन्न, वस्त्र इत्यादि जो कुछ भी दान दिया जाता है, वह अक्षय होता है । अतएव वह सबकुछ करो । एकादशी के दिन अन्न खाता है, वह पाप ही खाता है ॥४२-४३॥ इस लोक में वह चाण्डाल हो जाता है और मरने के बाद उसकी दुर्गति होती है । जो लोग ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में

मुच्यन्ते पातकैः सर्वैर्निर्जला यैरुपोषिता। विशेषं शृणु कौन्तेय निर्जलैकादशी दिने ॥४६॥
यत्कर्त्तव्यं नरैः स्त्रीभिर्दानं श्रद्धासमन्वितैः । जलशायी च संपूज्यो देया धेनुस्तथाम्मयी॥४७॥
प्रत्यक्षा वा नृपश्रेष्ठ घृतधेनुरथापि वा। दक्षिणाभिः सुपुष्टाभिर्मिष्टान्नैश्च पृथग्विधैः ॥४८॥
तोषणीयाः प्रयत्नेन द्विजा धर्मभृतांवर ! । तुष्टा भवन्ति वै विप्रास्तंस्तुष्टैर्मोक्षदो हरिः ॥४९॥
आत्मद्रोहः कृतस्तैर्हि यैरेषा न ह्युपोषिता । पापात्मानो दुराचारा दुष्टास्ते नात्रसंशयः ॥५०॥
कुलानां शतमागामि अतीतानां तथाशतम् । आत्मना सह तैर्नीतं वासुदेवस्य मन्दिरम् ॥५१॥
शान्तैर्दान्तैर्दानपरैरर्चयद्भिस्तथाहरिम् । कुर्वद्भिर्जागरं रात्रौ यैरेषा समुपोषिता ॥५२॥

अन्नं वस्त्रं तथा गावो जलं शय्यासनं शुभम् ।
कमण्डलुस्तथा छत्रं दातव्यं निर्जलादिने ॥५३॥

उपानहौ यो ददाति पात्रभूते द्विजोत्तमे। ससौवर्णेन यानेन स्वर्गलोके महीयते ॥५४॥
यश्चेमां शृणुयाद्भक्तया यश्चापि परिकीर्तयेत्। तावुभावाप्नुतः स्वर्गं नात्र कार्या विचारणा ॥५५॥
यत्फलं सन्निहत्यायां राहुग्रस्ते दिवाकरे। कृत्वा श्राद्धं लभेन्मर्त्यस्तदस्या श्रवणादपि ॥५६॥
नियमश्च प्रकर्त्तव्यो दन्तधावनपूर्वकम्। एकादश्यां निराहारो वर्जयिष्यामि वै जलम्॥५७॥
केशवप्रीणनार्थाय अन्यदाचमनादृते। द्वादश्यां देवदेवेशः पूजनीयस्त्रिविक्रमः ॥५८॥
गन्धैर्धूपैस्तथा पुष्पैर्वासोभिः प्रियदर्शनैः। पूजयित्वा विधानेन मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥५९॥

द्वादशी का उपवास करके दान देते हैं वे परम पद को प्राप्त करेंगे । ब्रह्मघाती, मद्यप, चोर, गुरु से द्वेष करने वाले, हमेशा झूठ बोलने वाले ये सभी निर्जला एकादशी का व्रत करने से पाप रहित हो जाते हैं। हे कौन्तेय ! निर्जला एकादशी के विषय में विशेष बात यह है कि उस दिन स्त्री तथा पुरुष को श्रद्धा पूर्वक दान करना चाहिए । भगवान् जलशायी का पूजन करके जल धेनु का दान करना चाहिए ॥४४-४७॥ अथवा धेनु दान करें या घृत धेनु दान करें । उसके साथ अच्छी दक्षिणा और अनेक प्रकार का मिष्ठान दान करें ॥४८॥ हे धार्मिकों में श्रेष्ठ ! ब्राह्मणों को प्रयास पूर्वक सन्तुष्ट करना चाहिए । ब्राह्मणों के सन्तुष्ट हो जाने पर मोक्ष देने वाले श्रीहरि भी सन्तुष्ट होते हैं ॥४९॥ जो लोग निर्जला एकादशी नहीं करते हैं वे आत्मद्रोह करते हैं । ऐसे लोग पापी, दुराचारी तथा निश्चित रूप से दुष्ट हैं ॥५०॥ वे आगामी सौ पीढ़ी को तथा अतीत कालिक सौ पीढ़ी को अपने साथ श्रीभगवान् के लोक में ले जाते हैं जो लोग उस दिन शान्त दान्त रहकर दान करते हुए श्रीहरि की पूजा करते हैं । रात्रि में जागरण करते हैं तथा निर्जला एकादशी व्रत करते हैं ॥५१-५२॥ निर्जला एकादशी के दिन, अन्न, वस्त्र, गौ, जल, शय्या, आसन, कमण्डलु तथा छाता दान करना चाहिए ॥५३॥ जो लोग योग्य श्रेष्ठ ब्राह्मण को जूता दान देते हैं वे सुवर्ण निर्मित विमान से स्वर्ग लोक में जाकर पूजित होते हैं ॥५४॥ जो इस आख्यान को भक्ति पूर्वक सुनता है तथा जो इसको पढ़ता है, वे दोनों निश्चित रूप से स्वर्ग में जाते हैं ॥५५॥ सूर्य ग्रहण के समय अमावास्या के समय श्राद्ध करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति इस आख्यान का श्रवण करने से भी होती है ॥५६॥ पहले मुँह धोकर फिर इस व्रत का नियम करना चाहिए। नियम करें कि मैं एकादशी के दिन निराहार रहूँगा, जल भी नहीं पीऊँगा । भगवान् केशव को प्रसन्न करने के लिए मैं आचमन को छोड़कर दूसरा पानी नहीं पीऊँगा । द्वादशी के दिन भगवान् त्रिविक्रम की पूजा

देवदेव ! हृषीकेश ! संसारार्णवतारक ! । उदकुम्भप्रदानेन नय मां परमां गतिम्॥६०॥
ज्येष्ठे मासि तु वै भीम ! या शुक्लैकादशी शुभा ।
निर्जला समुपोष्यात्र जलकुम्भान्सशर्करान् ॥६१॥
प्रदाय विप्रमुखेभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ । ततः कुम्भाः प्रदातव्या ब्राह्मणानां च भक्तितः॥६२॥
भोजयित्वा ततो विप्रान्स्वयं भुञ्जीत तत्परः। एवं यःकुरुते पूर्णां द्वादशीं पापनाशिनीम्॥६३॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं गच्छत्यनामयम्। ततः प्रभृति भीमेन कृता ह्येकादशी शुभा ॥
पाण्डवद्वादशी नाम्ना लोके ख्याता बभूव ह ॥६४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे ज्येष्ठशुक्लनिर्जलैकादशीमाहात्म्यं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

आषाढकृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् । कथयस्व प्रसादेन वासुदेव ! ममाग्रतः ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

व्रतानामुत्तमं राजन्कथयामि तवाग्रतः। सर्वपापक्षयकरं सर्वमुक्तिप्रदायकम् ॥२॥

करनी चाहिए ॥५७-५८॥ चन्दन, धूप, पुष्प, तथा अच्छे-अच्छे वस्त्रों से विधि पूर्वक भगवान् की पूजा करके इस मन्त्र को पढ़े ॥५९॥ हे देवदेव हृषीकेश, हे संसार सागर से पार करने वाले ! जल कुम्भ प्रदान करने के कारण आप मुझे मुक्ति प्रदान करें ॥६०॥ हे भीम ! ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन निर्जला एकादशी का व्रत करके चीनी मिश्रित जल के घड़ों का दान करने वाला मनुष्य भगवान् विष्णु के लोक में जाकर आनन्दानुभव करता है । इसलिए ब्राह्मणों को भक्ति पूर्वक कुम्भदान करें ॥६१-६२॥ उसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराये फिर स्वयं भोजन करे । इस तरह से जो पाप विनाशिनी द्वादशी व्रत को पूर्ण करता है वह सभी पापों से रहित होकर मुक्ति को प्राप्त करता है । उसी समय से भीम ने इस शुभ एकादशी को किया । और यह उसी समय से पाण्डव द्वादशी के नाम से लोक में विख्यात हुयी ॥६३-६४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में होने वाली निर्जला एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक बावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५२।।

आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष की योगिनी एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— हे वासुदेव ! आप कृपा करके मुझे बतलायें कि आषाढ मास के कृष्ण पक्ष में कौन सी एकादशी होती है ॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** राजन् ! मैं आपके समक्ष सभी पापों

आषाढस्यासिते पक्षे योगिनी नाम नामतः। एकादशी नृपश्रेष्ठ महापातकनाशिनी ॥३॥
संसारार्णवमग्नानां पोतभूता सनातनी। जगत्त्रये सारभूता योगिनी व्रतकारिणाम् ॥४॥
कथयामि तवाग्रेऽहं कथां पौराणिकीं शुभाम्।
अलकायां राजराजः शिवभक्तिपरायणः ॥५॥
तस्यासीत्पुष्पबटुको हेममालीति नामतः। तस्य पत्नी सुरूपा च विशालाक्षीतिनामतः॥६॥
स तस्यां चासक्तमनाः कामपाशवशंगतः। मानसात्पुष्पनिचययमानीय स्वगृहे स्थितः ॥७॥
पत्नी प्रेमरसासक्तो न कुबेरालयं गतः। कुबेरो देवसदने करोति शिवपूजनम्॥८॥
मध्याह्नसमये राजन्पुष्पागमसमीक्षकः। हेममाली स्वभवने रमते कान्तया सह॥९॥
यक्षराट् प्रत्युवाचाथ कालातिक्रमकोपितः।
कस्मान्नायाति भोक्षया ! हेममाली दुरात्मवान्।
निश्चयः क्रियतामस्य इत्युवाच पुनः पुनः ॥१०॥

यक्षा ऊचुः

चनिताकामुको गेहे रमते स्वेच्छया नृप। तेषां वाक्यं समाकर्ण्य कुबेरः कोपपूरितः ॥११॥
आह्वयामास तं तूर्णं बटुकं हेममालिनम्।
ज्ञात्वा कालात्ययं सोऽपि भयव्याकुललोचनः ॥१२॥
अस्नात एव आगत्य कुबेरस्याग्रतः स्थितः। तं दृष्ट्वा धनदः क्रुद्धः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥
प्रत्युवाच रुषाविष्टः कोपप्रस्फुरिताधरः ॥१३॥

धनद उवाच

आः पाप दुष्टदुर्वृत्त कृतवान्देवहेलनाम्। अष्टादशकुष्ठचितो वियुक्तः कान्तया तया॥१४॥

के विनाशक, सबों को मुक्ति प्रदान करने वाले उत्तम व्रत को बतला रहा हूँ ॥२॥ आषाढ मास के कृष्ण पक्ष में होने वाली एकादशी का नाम योगिनी एकादशी है। वह महा पाप का विनाश करने वाली है ॥३॥ संसार सागर में डूबने वाले जीवों के लिए यह सनातन नौका स्वरूप है। योगिनी व्रत करने वालों के लिए यह त्रैलोक्य का सार है ॥४॥ मैं आपको पौराणिक कथा सुनाता हूँ। अलकापुरी में शिवजी की भक्ति करने वाले कुबेर के माली का नाम हेममाली था। उसकी सुन्दरी पत्नी का नाम विशालाक्षी था ॥५-६॥ हेममाली का मन अपनी पत्नी मे लगा था, वह कामान्ध हो गया वह मानसरोवर से पुष्पों को लाकर अपने घर ही रह गया ॥७॥ अपनी पत्नी में आसक्त होने के कारण वह कुबेर के घर नहीं गया। कुबेर देवालय में शिवजी की पूजा करते थे ॥८॥ दोपहर की बेला में वे फूल के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, किन्तु हेममाली अपने घर में अपनी पत्नी के साथ रमण करता रहा ॥९॥ समय का अतिक्रमण हो जाने के कारण कुबेर ने कहा यक्षों ! दुष्ट हेममाली क्यों नहीं आ रहा है ? उन्होंने बार-बार कहा कि जाकर पता लगाओ ॥१०॥ यक्षों ने कहा— राजन् ! वह कामुक अपनी पत्नी के साथ अपने गृह में रमण कर रहा है। उन सबों की बात सुनकर कुबेर क्रोध से भर गये ॥११॥ उन्होंने शीघ्र उस हेममाली को बुलवाया। समय का अतिक्रमण जानकर वह भी भयभीत हो गया था ॥१२॥ विना स्नान किए ही आकर कुबेर के

अस्मात्स्थानादपध्वस्तो गच्छस्व प्रमथाधम ! ।
इत्युक्ते वचने तस्य तस्मात्स्थानात्पपात सः ॥१५॥
महादुःखाभिभूतश्च कुष्ठैः पीडितविग्रहः । न सुखं दिवसे तस्य न निद्रां लभते निशि ॥१६॥
छायायां पीडिततनुर्निदाघेऽत्यन्तपीडितः । शिवपूजाप्रभावेण स्मृतिस्तस्य न लुप्यते ॥१७॥
पातकेनाभिभूतोऽपि पूर्वं कर्मस्मरत्यसौ । भ्रममाणस्ततो गच्छन्हिमाद्रिं पर्वतोत्तमम् ॥१८॥
तत्रापश्यन्मुनिवरं मार्कण्डेयं तपोनिधिम् । ययायुर्विद्यते राजन्ब्रह्मणो वयसा समम् ॥१९॥
ववन्दे चरणो तस्य दूरतः पापकर्मकृत् । मार्कण्डेयो मुनिवरो दृष्ट्वा तं कम्पितं तथा ॥२०॥
परोपकरणार्थाय समाहूयेदमब्रवीत् ॥२१॥

मार्कण्डेय उवाच

कस्मात्कुष्ठाभिभूतस्त्वं कुतो निन्द्यतरो ह्यसि ।
इत्युक्तः स प्रत्युवाच मार्कण्डेयं महामुनिम् ॥२२॥

हेममाल्युवाच

राजराजस्यानुचरो हेममालीति नामतः । मानसात्पद्मनिचयमानीय प्रत्यहं मुने ! ॥२३॥
शिवपूजनवेलायां कुबेराय समर्पये । एकस्मिन्दिवसे चैव कालश्चाविदितो मया ॥२४॥
पत्नी सौख्यप्रसक्तेन शोकव्याकुलचेतसा । ततः क्रुद्धेन शप्तोऽस्मि राजराजेन वै मुने ॥२५॥
कुष्ठाभिभूतः संजातो वियुक्तः कान्तया तया ।
अधना तव सान्निध्यं प्राप्तोऽस्मि शुभकर्मणा ॥२६॥

सामने खड़ा हो गया । उसको देखकर कुबेर क्रोध से अपनी आँखें लाल कर लिए । क्रोध से आविष्ट होने के कारण उनके ओष्ठ फड़फड़ा रहे थे ॥१३॥ **कुबेर ने कहा—** अरे पापी ! दुष्ट दुर्वृत्त ! तुमने देवता का अपमान किया है । तुम्हें अठारहों प्रकार के कुष्ट हो जायँ, तुम अपनी पत्नी से वियुक्त हो जाओगे॥१४॥ तुम स्थान से पतित हो जाओ । ऐ प्रमथाधम ! तुम यहाँ से जाओ । कुबेर के इतना कहते ही वह उस स्थान से पतित हो गया ॥१५॥ वह कुष्ठ से पीड़ित था महादु:खों से अभिभूत था । न उसको दिन में सुख मिलता था और न रात में नींद आती थी ॥१६॥ छाया में भी उसका शरीर पीड़ित रहता था धूप में वह अत्यन्त पीड़ित रहता था । शिवजी की पूजा के प्रभाव से उसकी स्मृति नष्ट नहीं होती थी ॥१७॥ पाप से अभिभूत होने पर भी उसको पूर्व कर्म का स्मरण था । जहाँ से वह घूमता हुआ वह सर्वोत्तम पर्वत पर गया ॥१८॥ वहाँ पर उसने तनोनिधि मार्कण्डेय मुनि को देखा । राजन् ! मार्कण्डेय मुनि की आयु ब्रह्माजी की आयु के बराबर थी ॥१९॥ उस पापी ने दूर से ही उनके चरणों की वंदना की । मार्कण्डेय मुनि ने उसको उस तरह से काँपते हुए देखा ॥२०॥ परोपकार करने के लिए उसको बुलाकर पूछा ॥२१॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—** तुम किस कारण से कुष्ठ से अभिभूत हो ? तुम अत्यन्त निन्दित क्यों हो? इस तरह से कहने पर उसने महामुनि मार्कण्डेय महर्षि से कहा ॥२२॥ **हेममाली ने कहा—** मैं कुबेर का अनुचर हूँ और मेरा नाम हेममाली है । हे मुने ! मैं प्रतिदिन मान सरोवर से कमल पुष्प समूह को लाता था ॥२३॥ और शिव पूजन की बेला में उसे कुबेर को समर्पित करता था । एक दिन मुझको समय का पता नहीं चला ॥२४॥ शोक से व्याकुल अन्त:करण वाला मैं पत्नी के सुख को प्राप्त करने लगा । हे

सतांस्वभावतश्चितं परोपकरणेक्षमम् । इति ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ मां प्रशाधि कृतागसम् ॥२७॥

मार्कण्डेय उवाच

त्वया सत्यमिह प्रोक्तं नासत्यं भाषितं यतः ।
अतो व्रतोपदेशं ते कथयामि शुभप्रदम् ॥२८॥

आषाढे कृष्णपक्षे तु योगिनीव्रतमाचर। अस्यव्रतस्य पुण्येन कुष्ठं यास्यति वैध्रुवम् ॥२९॥
इति वाक्यमृषेः श्रुत्वा दण्डवत्पतितो भुवि। उत्थापितः स मुनिना बभूवातीवहर्षितः ॥३०॥
मार्कण्डेयोपदेशेन व्रतं तेन कृतं यथा। अष्टादशैव कुष्ठानि गतानि तस्य सर्वशः ॥३१॥
मुनेर्वाचा ततः सम्यग्व्रते चीर्णेऽभत्सुखी । ईदृग्विधं नृपश्रेष्ठ कथितं योगिनीव्रतम् ॥३२॥
अष्टाशीति सहस्राणि द्विजान्भोजयते तु यः। तत्समं फलमाप्नोति योगिनीव्रतकृन्नरः ॥३३॥
महापापप्रशमनं महापुण्यफलप्रदम्। पठनाच्छ्रवणान्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे आषाढ़कृष्णयोगिन्येकादशीमाहात्म्यं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

मुने ! उससे क्रुद्ध होकर कुबेर ने मुझे शाप दे दिया ॥२५॥ मैं कुष्ठ रोग से अभिभूत तथा अपनी पत्नी से वियुक्त हो गया हूँ । अपने पुण्य के कारण मैं इस समय आपके सन्निकट आ गया हूँ ॥२६॥ सज्जन पुरुष स्वभाव से ही परोपकार करने में समर्थ होते हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं पापी हूँ आप मेरा प्रशासन करें॥२७॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—** तुमने इस विषय में सत्य कहा और झूठ नहीं बोला है अतएव मैं तुमको कल्याण प्रद व्रत बतलाता हूँ ॥२८॥ आषाढ मास के कृष्ण पक्ष में होने वाली योगिनी एकादशी का व्रत करो । इस व्रत के प्रभाव से तुम्हारा कुष्ठ समाप्त हो जायेगा यह निश्चित है ॥२९॥ ऋषि के इस वाक्य को सुनकर उसने पृथिवी पर दण्ड के समान गिरकर महर्षि को प्रणाम किया मुनि ने उसको उठाया, उसके कारण वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥३०॥ महर्षि मार्कण्डेय के उपदेश से उसने योगिनी व्रत किया और उसके अठारहों प्रकार के कुष्ठ समाप्त हो गये ॥३१॥ मुनि के कथनानुसार व्रत करने के कारण वह सुखी हो गया । हे नृपश्रेष्ठ ! यह इस प्रकार का योगिनी व्रत कहा गया है ॥३२॥ अठासी हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने से जिस फल की प्राप्ति होती है, योगिनी व्रत का भी उसी के समान फल होता है ॥३३॥ यह आख्यान महापाप को शान्त करने वाला है तथा महान् पुण्य रूपी फल प्रदान करने वाला है । इसको पढ़ने तथा सुनने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥३४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष की योगिनी एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक तिरपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५३।।

चौवनवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

आषाढस्य सितेपक्षे का चैवैकादशी भवेत्। किंनामकोविधिस्तस्याएतद्विस्तरतोवद ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

कथयामि महापुण्यां स्वर्गमोक्षप्रदायिनीम्। शयनी नाम नामेति सर्वपापहरां पराम् ॥२॥
यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत्। सत्यं सत्यं मया प्रोक्तं नातःपरतरं नृणाम् ॥३॥
पापिनां पापनाशाय सृष्टा धात्रा महोत्तमा। अतः परा न राजेन्द्र ! वर्त्तते मोक्षदायिनी ॥४॥
एतस्मात्कारणाद्राजञ्छ्रूयतां गतिरुत्तमा। भवेन्नराणां श्रोतृणांकथायाः श्रवणादपि ॥५॥
ते सदा वैष्णवा राजन्ममभक्तिपरायणाः। आषाढे वामनश्चैव पूज्यते परमेश्वरः ॥६॥
वामनः पूजितो येन कमलैः कमलेक्षणः। आषाढस्य सितेपक्षे शयन्याश्च दिने तथा ॥७॥
येनार्चितं जगत्सर्व त्रयो देवाः सनातनाः। कृता चैकादशी येन हरिवासरमुत्तमम् ॥८॥

युधिष्ठिर उवाच

संशयोऽस्ति महान्मेऽत्र श्रूयतां पुरुषोत्तम। कथं सुप्तोऽसि देवेश कथं च बलिमाश्रितः ॥९॥
कथं च भूमौ संवेशः किं कुर्वन्ति जनाः परे।
एतद्वद महाप्राज्ञ संशयोऽस्ति महान्मम ॥१०॥

श्रीकृष्ण उवाच

श्रूयतां राजशार्दूल कथा पापहरा परा। यस्याःश्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥११॥

आषाड शुक्ल पक्ष की हरि शयनी एकादशी का माहात्मय वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— आषाढ मास के शुक्ल पक्ष में कौन सी एकादशी होती है ? उसका नाम क्या है ? तथा उसकी विधि क्या है ? इस बात को आप विस्तार पूर्वक बतलायें ॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** मैं स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली हरि शयनी नाम की एकादशी को बतलाता हूँ। यह समस्त पापों को दूर करने वाली महापुण्यमय एकादशी है ॥२॥ इसके श्रवण मात्र से मनुष्य को वाजपेय याग करने का फल प्राप्त होता है। मैं सत्य कह रहा हूँ, मनुष्यों के लिए इससे बढ़कर कोई भी व्रत नहीं है॥३॥ ब्रह्माजी ने इसकी सृष्टि पापियों का पाप नाश करने के लिए की है। हे राजेन्द्र ! इससे बढ़कर कोई दूसरी एकादशी मोक्ष देने वाली नहीं है ॥४॥ हे राजन् ! इस व्रत के करने से प्राप्त होने वाली उत्तम गति को आप सुनें। इस व्रत की कथा का श्रवण करने से भी उत्तम गति की प्राप्ति होती है ॥५॥ हे राजन् ! इस व्रत को करने वाले वैष्णव मेरी भक्ति करते हैं। आषाढ मास में वामन भगवान् की पूजा की जाती हैं ॥६॥ जो व्यक्ति आषाढ मास की शयनी एकादशी के दिन कमलों से कमलनयन भगवान् वामन की पूजा करते हैं तथा इस उत्तम एकादशी का व्रत करते हैं, उन लोगों को सम्पूर्ण जगत् और तीनों सनातन देवों (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) की पूजा करने का फल प्राप्त होता है ॥७-८॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** हे पुरुषोत्तम ! आप मेरी बात सुनें। इस विषय में मुझको महान संशय है। हे देवेश ! आप कैसे सोते हैं और कैसे बलि को आपने अपना शरणागत बनाया ॥९॥ आप का भूमि पर आगमन कैसे होता है ? और

बलिनामा पूर्वमासीद्दैत्यस्त्रेतायुगे नृप । पूजयंश्चैव मां नित्यं मद्भक्तो मत्परायणः ॥१२॥
यज्ञैस्तु विधिवद्दैत्यो यजते मां सनातनम् । भक्त्या च परया राजन्यज्ञकृत्व्रतकृत्तथा ॥१३॥
परं विचार्य बहुधा मघोना चैव सूक्तिभिः । गुरुणा दैवतैः सार्धं बहुधापूजितोऽप्यहम् ॥१४॥
ततो वामनरूपेण अवतारे च पञ्चमे । अत्युग्ररूपेण तदा सर्वब्रह्माण्डरूपिणा ॥१५॥

वाक्छलेन जिता दैत्याः सत्यमाश्रित्य संस्थितः ।
शुक्रस्तं वारयामास यन्नारायण इत्ययम् ॥१६॥

याचिता बसुधा राजन्सार्धत्रयपदी मया । सङ्कल्पोदकमात्रेतु करे तेनैव चार्पिते ॥१७॥
रूपमीदृग्विधं राजंस्तदा शृणु मया कृतम् । भूलोके चरणौ न्यस्य भुवर्लोके तु जानुनी ॥१८॥

स्वर्लोके च कटिं न्यस्य महार्लोके तथोदरम् ।
जनलोके चहृदयं तपोलोके तु कण्ठकम् ॥१९॥
सत्यलोके मुखं स्थाप्य मस्तकं च तदूर्ध्वकम् ।
चन्द्रसूर्यग्रहाश्चैव नक्षत्राणि तथैव च ॥२०॥
देवाः सेन्द्राश्च नागाश्च यक्षगन्धर्व किन्नराः ।
स्तुवन्तो वेदसंभूतैः सूक्तैश्च विविधैस्तथा ॥२१॥

करे गृहित्वा च बलिं त्रिपदैः पूरितामही । अर्धं च तस्य पृष्ठे च पदंन्यस्तं मया तदा ॥२२॥
गतो रसातलं राजन्दानवो मम पूजकः । क्षिप्तोऽधो दानवश्चैव किमकुर्वं ततः परम् ॥२३॥
विनयेनानतोऽसौ वै सुप्रसन्नो जनार्दनः । आषाढशुक्लपक्षे तु शयनी हरिवासरः ॥२४॥

दूसरे लोग क्या करते हैं । हे महाप्राज्ञ ! आप मुझको इस बात को बतलायें । मुझको अत्यन्त संशय है॥१०॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजश्रेष्ठ ! आप सर्वोत्तम कथा को सुनें । उसके सुनने मात्र से समस्त पापों का नाश हो जाता है ॥११॥ हे राजन् ! प्राचीन त्रेता युग में बलि नामक दैत्य थे । वे मेरी भक्ति करते थे और मेरी पूजा करते थे ॥१२॥ वे यज्ञों के द्वारा मेरी सविधि पूजा करते थे । राजन् ! वे परा भक्ति के द्वारा यज्ञ और व्रत करते थे ॥१३॥ इन्द्र ने खूब विचार करके वृहस्पति तथा देवताओं के साथ मेरी बहुत प्रकार से पूजा की ॥१४॥ उसके कारण पाञ्चवें अवतार में मैं अत्यन्त उग्र रूप से तथा ब्रह्माण्ड शरीरक वामन रूप से अवतीर्ण हुआ ॥१५॥ सत्य वक्ता बलि को मैंने अपनी छलमयी वाणी से जीत लिया । शुक्राचार्य ने उसको यह कहकर रोका कि ये नारायण हैं ॥१६॥ राजन् ! मैंने बलि से साढ़े तीन डग पृथिवी माँगा । बलि ने अपने सङ्कल्प का जल जब मेरे हाथ पर डाल दिया तो ॥१७॥ उस समय जैसा अपना रूप बनाया उसको आप सुनें । भूलोक में मेरे चरण थे । भुवर्लोक में मेरे दोनों घुटने थे । स्वर्गलोक तक मेरी कमर पहुँच गयी, महर्लोक में मेरा पेट था । जन लोक में मेरा हृदय था और सत्य लोक में मेरा कण्ठ था ॥१८-१९॥ सत्य लोक में अपने मुख को स्थापित करके मेरा मस्तक सत्य लोक से ऊपर पहुँच गया । चन्द्रमा, सूर्य आदि ग्रह तथा नक्षत्र इन्द्र सहित सभी देवता नाग, यक्ष, किन्नर आदि सभी वैदिक मन्त्रों से स्तुति कर रहे थे ॥२०-२१॥ बलि के हाथ को पकड़कर मैंने तीन डग में सारी पृथिवी को नाप लिया । आधे डेग के लिए मैंने बलि के पीठ पर अपना पैर रखा ॥२२॥ हे राजन्! मेरी पूजा करने वाला वह दानव रसातल में चला गया । मैंने बलि को नीचे के लोक में डाल दिया,

तस्यामेका च मूर्तिर्मे बलिमाश्रित्य तिष्ठति। द्वितीया शेषपृष्ठे वै क्षीरसागरमध्यतः ॥२५॥
स्वपित्येव महाराज यावदागामि कार्तिकीम् ।
तावद्भवेत्सुधर्मात्मासर्वधर्मोत्तमोत्तमः ॥२६॥
व्रतं च कुरुते मर्त्यः सयाति परमांगतिम्। एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्त्तव्या च प्रयत्नतः ॥२७॥
नातःपरतरा काचित्पवित्रा पापनाशिनी । यस्यां स्वपिति देवेशः शङ्खचक्रगदाधरः ॥२८॥
तस्यां च पूजयेद्देवं शङ्खचक्रगदाधरम् । रात्रौ जागरणं कृत्वा भक्तयाचैव विशेषतः ॥२९॥
नास्याःपुण्यस्य सङ्ख्यानां कर्तुं शक्तश्चतुर्मुखः ।
एवं यःकुरुते राजन्नैकादश्या व्रतोत्तमम् ॥३०॥
सर्वपापहरंचैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। स च लोके मम सदा श्वपचोऽपि प्रियङ्करः ॥३१॥
दीपदानेन पालाशपत्रे भुक्तयाव्रतेन च। चातुर्मास्यं नयन्तीह ते नरा मम वल्लभाः ॥३२॥
चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते भूमिशायी भवेन्नरः। श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा ॥३३॥
दुग्धमाश्वयुजि त्याज्यं कार्त्तिके द्विदलं त्यजेत् ।
अथवा ब्रह्मचर्यस्थःस याति परमांगतिम् ॥३४॥
एकादश्याव्रतेनैव पुमान्पापैर्विमुच्यते। कर्तव्या सर्वदा राजन्विस्मर्तव्या न कर्हिचित् ॥३५॥

उसके बाद मैं क्या करूँ ?॥२३॥ वह दानव विनय से झुक गया । उससे भगवान् जनार्दन प्रसन्न हो गये। आषाढ शुक्ल पक्ष में हरिशयनी एकादशी होती है ॥२४॥ उस एकादशी को मेरी एक मूर्ति बलि के यहाँ रहती है । मेरी दूसरी मूर्ति क्षीरसागर के बीच शेष के ऊपर रहती है ॥२५॥ मेरी वह मूर्ति तब तक सोती है जब तक कार्तिक शुक्लपक्ष की हरिप्रबोधिनी एकादशी न आ जाय । इन चार महीनों में अच्छी तरह से धर्म का पालन करना चाहिए । यह सर्वोत्तम धर्म है ॥२६॥ जो मनुष्य इतने समय तक व्रत करता है वह परमागति को प्राप्त करता है । अतएव हे राजन् ! इस एकादशी के व्रत को प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए॥२७॥ इस एकादशी से बढ़कर न तो कोई पवित्र एकादशी है और न पाप विनाशिका एकादशी है । जिस एकादशी को शङ्ख, चक्र और गदाधारी भगवान् सोते हैं ॥२८॥ उस एकादशी को शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले श्रीभगवान् की पूजा करनी चाहिए । रात्रि में भक्ति पूर्वक जागरण करे और भगवान् की पूजा करे ॥२९॥ इस एकादशी के करने से जिन पुण्यों की प्राप्ति होती है, उन पुण्यों की गणना करने में ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं है । हे राजन् ! जो मनुष्य इस उत्तम व्रत को इस प्रकार से करता है ॥३०॥ सभी पापों को विनष्ट करने वाले भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले इस व्रत को लोक में करने वाला यदि चाण्डाल भी हो तो वह मुझको प्रिय होता है ॥३१॥ चातुर्मास्य व्रत में जो मनुष्य दीपदान करता है तथा पलाश के पतल में भोजन करता है वह मनुष्य मेरा प्रिय होता है ॥३२॥ चातुर्मास्य में श्रीहरि शयन करते हैं, अतएव मनुष्य को पृथिवी पर सोना चाहिए । श्रावण में शाक न खाए, भाद्रपद में दधि न खाए और आश्विन में दुग्ध न पिए और कार्तिक में दाल का त्याग कर देना चाहिए । अथवा जो चातुर्मास्य में ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह परमपद को प्राप्त करता है ॥३३-३४॥ एकादशी का व्रत करने से ही मनुष्य पापों से छूट जाता है । अतएव हे राजन् ! एकादशी व्रत सदैव करना चाहिए इसको भूलना नहीं चाहिए ॥३५॥ हरिशयनी एकादशी से लेकर प्रबोधिनी एकादशी पर्यन्त जितनी भी

शयनी बोधनी मध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् ।
सौवोपोष्या गृहस्थस्य नान्याकृष्णा कदाचन ॥३६॥
शृणुयाच्चैव यो राजन्कथां पापहरां पराम्। अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥३७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे देवशयन्येकादशीमाहात्म्यं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

पचपनवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

श्रावणस्यासितेपक्षे किं नामैकादशी भवेत्। तन्नः कथयगोविन्द वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि आख्यानं पापनाशनम् ।
यत्प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छते नारदायवै ॥२॥

नारद उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽहंकमलासन। श्रावणस्यासितेपक्षे किं नामैकादशभवेत्॥३॥
को देवःको विधिस्तस्याःकिं पुण्यं कथय प्रभो ।
इति तस्य वचःश्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥४॥

कृष्णपक्ष की एकादशियाँ होती हैं उन्हीं कृष्णा एकादशी का व्रत गृहस्थों को करना चाहिए । उनसे भिन्न कृष्णा एकादशी का व्रत नहीं करना चाहिए ॥३६॥ राजन् ! जो मनुष्य इस पाप प्रणाशिका एकादशी की कथा को सुनता है तो वह अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥३७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत देवशयनी एकादशी के माहात्म्य का वर्णन नामक चौवनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५४।।
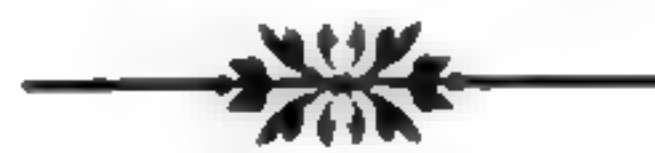
श्रावण कृष्ण पक्ष की कामिका एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— श्रावण के कृष्ण पक्ष में किस नाम वाली एकादशी होते हैं । हे गोविन्द ! हे वासुदेव ! आप इस बात को बतलायें; आपको नमस्कार है । **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजन्! आप सुनें । आपको पाप विनाशक आख्यान मैं सुनाता हूँ । इसे नारदजी को ब्रह्माजी ने कहा था ॥१-२॥ **नारदजी ने कहा—** हे ब्रह्माजी ! मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में होने वाली एकादशी का नाम क्या हैं ? ॥३॥ हे प्रभो ! आप बतलायें कि इसमें किस देव की पूजा की जाती है ? उसकी विधि क्या है ? इसके करने से किस पुण्य की प्राप्ति होती है ? नारदजी की इस वाणी

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद ते वच्मि लोकानां हितकाम्यया ।
श्रावणैकादशी कृष्णा कामिका नाम नामतः ॥५॥
अस्याःश्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत्। अस्यां यजति देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥६॥
श्रीधराख्यं हरिं विष्णुं माधवं मधुसूदनम्। पूजयेद्ध्यायते यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु ॥७॥
न गङ्गायां न काश्यां च नैमिषे न च पुष्करे ।
तत्फलं समवाप्नोति यत्फलं कृष्णपूजनात् ॥८॥
गोदावर्यां गुरो सिंहे व्यतीपाते च दण्डके। यत्फलं समवाप्नोति तत्फलं कृष्णपूजनात् ॥९॥
ससागरवनोपेतां यो ददाति वसुन्धराम् । कामिकाव्रतकारी च ह्युभौ समफलौस्मृतौ ॥१०॥
प्रसूयमानां यो धेनुं दद्यात्सोपसकरां नरः। तत्फलं समवाप्नोति कामिकाव्रतकारकः ॥११॥
श्रावणे श्रीधरं देवं पूजयेद्यो नरोत्तमः। तेनैव पूजिता देवा गन्धर्वोरगपन्नगाः॥१२॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कामिकादिवसे हरिः । पूजनीयो यथाशक्ति मानुषैःपापभिरुभिः ॥१३॥
ये संसारार्णवेमग्नाःपापपङ्कसमाकुले । तेषामुद्धरणार्थाय कमिकाव्रतमुत्तमम् ॥१४॥
नातःपरतरा काचित्पवित्रा पापहारिणी । एवं नारद जानीहि स्वयमाहपरो हरिः ॥१५॥
अध्यात्मविद्या निरतैर्यत्फलं प्राप्यते नरैः । ततो बहुतरंविद्धि कामिकाव्रतसेविनाम् ॥१६॥

को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा ॥४॥ हे नारद ! लोक का कल्याण करने के लिए मैं उसको आपको बतला रहा हूँ । श्रावण के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम कामिका है ॥५॥ इसका श्रवण करने मात्र से ही वाजपेय याग का फल प्राप्त होता है । इस एकादशी में शङ्ख, चक्र और गदाधारी भगवान् की पूजा की जाती है ॥६॥ श्रीधर नामक श्रीहरि, विष्णु, माधव तथा मधुसूदन नाम से जो श्रीभगवान् की पूजा करता है, उससे होने वाले पुण्य को तुम सुनो ॥७॥ काशी में जाकर गङ्गा में स्नान करने, नैमिष तथा पुष्कर तीर्थ में जाने से भी उस फल की नहीं प्राप्ति होती है, जिस फल की प्राप्ति भगवान् कृष्ण के पूजन से होती है ॥८॥ सिंह राशि के गुरु के होने पर गोदावरी नदी में स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है तथा दण्डकारण्य में व्यतीपातयोग में जिस फल की प्राप्ति होती है मनुष्य उस फल की प्राप्ति श्रीभगवान् के पूजन से प्राप्त कर लेता है ॥९॥ जो सागर एवं वन के साथ पृथिवी का दान करता है, उसको जिस फल की प्राप्ति होती है उसी फल को कामिका एकादशी का व्रत करने वाला प्राप्त कर लेता है ॥१०॥ जो बच्चा देती हुयी गौ का दान भी सामग्रियों के साथ देता है, उससे होने वाले फल को कामिका एकादशी का व्रत करने वाला प्राप्त कर लेता है ॥११॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य श्रावण के महीने में भगवान् श्रीधर की पूजा करता है उसी से उसके द्वारा समस्त देवों, गन्धर्वों, उरगों एवं पन्नगों की पूजा हो जाती है ॥१२॥ अतएव पाप से डरने वाले मनुष्यों को कामिका एकादशी के दिन श्रीहरि की अपनी शक्ति के अनुसार पूजा करना चाहिए ॥१३॥ जो लोग पाप रूपी कीचड़ से भरे हुए संसार सागर में डूब रहे हैं उन लोगों का ही कामिका एकादशी उद्धार करती है ॥१४॥ इससे बढ़कर कोई भी दूसरी एकादशी पवित्र और पाप विनाशिका नहीं है । हे नारद ! इसी तरह से इस बात को स्वयं परब्रह्म श्रीहरि ने कहा है ॥१५॥ जो मनुष्य निरन्तर अध्यात्म विद्या में ही लगे रहते हैं, उन लोगों को जिस फल की प्राप्ति होती है, कामिका का व्रत

रात्रौ जागरणं कृत्वा कामिकाव्रतकृन्नरः। न पश्यति यमं रौद्रं नैव गच्छति दुर्गतिम् ॥१७॥
न पश्यति कुयोनिं च कामिकाव्रतसेवनात्। कामिकाया व्रतेचीर्णे कैवल्यं यागिनो गताः ॥१८॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या नियतात्मभिः। तुलसीप्रभवैःपत्रैर्यो नरःपूजयेद्धरिम् ॥१९॥
न लिप्यसे स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा। सुवर्णभारेमेकं तु रजतं च चतुर्गुणम् ॥२०॥
तत्फलं समवाप्नोति तुलसीदल पूजनात्। रत्नमौक्तिकवैडूर्य प्रवालादिभिरर्चितः ॥२१॥
न तुष्यति तथा विष्णुस्तुलसीदलतो यथा। तुलसीमञ्जरीभिश्च पुजितो येन केशवः ॥
आजन्म पातकं तस्य निश्चयं याति संक्षयम् ॥२२॥

या दृष्टा निखिलाघसङ्घशमनी स्पृष्टा वपुःपावनी ।
रोगाणामभिवन्दिता निरसिनी सिक्तान्तकत्रासिनी ॥
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतःकृष्णस्य संरोपिता ।
नयस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः ॥२३॥
दीपं ददाति यो मर्त्यो दिवारात्रं हरेर्दिने ।
तस्य पुण्यस्य सङ्ख्यातुं चित्रगुप्तो न वेत्त्यलम् ॥२४॥

कृष्णाग्रेदीपको यस्य ज्वलत्येकादशीदिने। पितरस्तस्य तृप्यन्ति अमृतेनदिविस्थिताः ॥२५॥
घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा पुनः। प्रयाति सूर्यलोकं च दीपकोटि शतार्चितः ॥२६॥

करने वालों को उससे भी अधिक फल की प्राप्ति होती है ॥१६॥ कामिका व्रत करने वाला मनुष्य रात्रि में जागरण करके न तो यमराज के भयङ्कर रूप का दर्शन करता है और न दुर्गति प्राप्त करता है ॥१७॥ कामिका व्रत का सेवन करने के कारण वह निन्दित योनि में भी नहीं जाता है । कामिका का ही व्रत करके योगिजन कैवल्य को प्राप्त कर लिए ॥१८॥ अतएव आत्म परायण पुरुषों को प्रयास करके इस व्रत को करना चाहिए । जो मनुष्य तुलसी दल से श्रीहरि की पूजा करता है वह पापों से उसी तरह नहीं संलिप्त होता है जिस तरह कमल दल जल से असंपृक्त रहता है । एक भार सुवर्ण और चार भार चाँदी दान करने का जो फल होता है ॥१९-२०॥ उसीं फल को वह तुलसी दल से श्रीभगवान् का पूजन करके प्राप्त करता है । रत्न, मोती, वैडूर्य तथा प्रवाल आदि से पूजन करने से श्रीहरि को उतना संतोष नहीं होता है, जितना सन्तोष तुलसी दल से पूजन करने से होता है । जो मनुष्य तुलसी की मञ्जरी से श्रीभगवान् की पूजा करता है ॥२१॥ उसके जीवन भर के सारे पाप निश्चित रूप से विनष्ट हो जाते हैं ॥२२॥ तुलसी दर्शन करने से समस्त पाप समूह को विनष्ट कर देती हैं, स्पर्श करने वाले के शरीर को पवित्र बना देती है, स्तुति करने से रोगों को विनष्ट कर देती हैं, सिंचने से यमराज को भयभीत कर देतीं हैं, रोपने से श्रीभगवान् के सान्निध्य को प्रदान करतीं हैं, तथा श्रीभगवान् के चरणों पर चढ़ाने से मुक्ति प्रदान करतीं हैं, उन तुलसी देवी को नमस्कार है ॥२३॥ जो मनुष्य एकादशी के दिन श्रीहरि को दिन-रात दीपक दान करते हैं, उनको जिस पुण्य की प्राप्ति होती है उस पुण्य को चित्रगुप्त भी ठीक से नहीं जानते हैं ॥२४॥ एकादशी के दिन जो श्रीभगवान् के समक्ष दीपक जलाता है उसके पितृगण स्वर्ग लोक में अमृत से तृप्त होकर रहते हैं॥२५॥ जो मनुष्य श्रीभगवान् के समक्ष एकादशी के दिन घी अथवा तिल के तेल का दीपक जलाता है वह मृत्यु के पश्चात् सैकड़ों दीपकों से अर्चित होकर सूर्य लोक में जाता है ॥२६॥ मैंने आपके समक्ष

अयं तवाग्रे कथितः कामिका महिमा मया ।
अतो नरैःप्रकर्त्तव्या सर्वपातकहारिणी ॥२७॥
ब्रह्महत्यापहरणी भ्रूणहत्याविनाशिनी। वैष्णवस्थानदात्री च महापुण्यफलप्रदा॥२८॥
श्रुतवा माहात्म्यमेतस्या नरः श्रद्धासमन्वितः ।
विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे श्रावणकृष्णैकादशीमाहात्म्यं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

छप्पनवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

श्रावणस्य सितेपक्षे किं नामैकादशी भवेत् ।
कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्वावहितो राजनकथां पापहरां पराम् । यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं भवेत् ॥२॥
द्वापरस्य युगस्यादौ पुरा माहिष्मती पुरे। राजा महीजिदाख्यातो राज्यं पालयति स्वकम् ॥३॥
पुत्रहीनस्य तस्यैव न तद्राज्यं सुखप्रदम्। अपुत्रस्य सुखं नास्ति इह लोके परत्र च ॥४॥

कामिका एकादशी की महिमा का वर्णन किया, अतएव मनुष्यों को सर्व पाप विनाशिनी कामिका एकादशी का व्रत करना चाहिए ॥२७॥ कामिका एकादशी ब्रह्म हत्या को दूर करती है, वह भ्रूणहत्या जन्य पापों का विनाश करती है, भगवान् विष्णु के लोक को प्रदान करती है तथा महान् पुण्य रूपी फल को प्रदान करती है ॥२८॥ जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक इस एकादशी का माहात्म्य सुनता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत श्रवण मास के कृष्णपक्ष की कामिका एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक पचपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५५।।

श्रावण मास के शुक्लपक्ष की पुत्रदा एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में कौन सी एकादशी होती है ? हे मधुसूदन ! मेरे ऊपर कृपा करके आप इस बात को बतलायें ॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजन् ! सावधानी पूर्वक इस पाप विनाशिनी कथा को सुनें इसके सुनने मात्र से वाजपेय याग का फल प्राप्त होता है ॥२॥ प्राचीन काल में द्वापर युग के प्रारम्भ में माहिष्मतीपुरी में महीजित नामक राजा राज्य करते थे ॥३॥ राजा

चिन्तमानस्य तस्यैवं कालो बहुतरो गतः। न प्राप्तश्च सुतो राज्ञा सर्वसौख्यप्रदो नृणाम् ॥५॥
दृष्ट्वात्मानं प्रवयसं राजाचिन्तापरोऽभवत्। सदोगतःप्रजामध्य इदं वचनमब्रवीत् ॥६॥
इह जन्मनि भोलोका न मया पातकं कृतम् ।
अन्यायोपार्जितं वित्तं क्षिप्तं कोशे मया न हि ॥७॥
ब्रह्मस्वं देवद्रविणं न गृहीतं मया क्वचित्। न्यासापहारो न कृतः परस्य बहु पापदः ॥८॥
पुत्रवत्पालितो लोको धर्मेण विजिता मही। दुष्टेषु पातितो दण्डो बन्धुपुत्रोपमेष्वपि ॥९॥
शिष्टास्तु पूजिता नित्यं न द्वेष्याश्च मया जनाः ।
इत्येवं ब्रुवतो मार्गं धर्मयुक्तं द्विजोत्तमाः ! ॥१०॥
कस्मान्मम गृहे पुत्रो न जातस्तद्विमृश्यताम् ।
इति वाक्यं द्विजाः श्रुत्वा सप्रजाः स पुरोहिताः ॥११॥
मन्त्रयित्वा नृपहितं जग्मुस्ते गहनं वनम्। इतस्ततश्च पश्यन्त आश्रमानृषिसेवितान् ॥१२॥
नृपतेर्हितमिच्छन्तो ददृशुर्मुनिसत्तमम्। तप्यमानं तपो घोरं निरालम्बं निरामयम् ॥१३॥
निराहारं जितात्मानं जितक्रोधं सनातनम्। लोमशं धर्मतत्त्वज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥१४॥
दीर्घायुषं महात्मानं सकेशं ब्रह्मसंमितम्। कल्पे कल्पे गते तस्य एकं लोमविशीर्यते ॥१५॥
अतो लोमश नामाशं त्रिकालज्ञो महामुनिः ।
तं दृष्ट्वा हर्षिताः सर्व आजग्मुस्तस्य सन्निधिम् ॥१६॥

के पुत्रहीन होने के कारण वह राज्य सुख नहीं प्रदान करता था । वे सोचते थे कि पुत्रहीन पुरुष को न तो लोक में और न परलोक में कहीं भी सुख नहीं मिलता है । इस तरह सोचते हुए उनका बहुत अधिक समय बीत गया । किन्तु मनुष्यों को सभी प्रकार के सुख को प्रदान करने वाले पुत्र को वे नहीं प्राप्त कर सके ॥४-५॥ आपने को बूढ़ा देखकर राजा चिन्तित हो गये । प्रजाओं के बीच में सभा में बैठे हुए वे कहने लगे ॥६॥ प्रजाओं मैंने इस जन्म में कोई भी पाप नहीं किया है और न तो अन्याय पूर्वक अर्जित सम्पत्ति को अपने कोश में संचित किया है ॥७॥ मैंने कहीं भी ब्राह्मण की अथवा देवता की सम्पत्ति को भी नहीं लिया है और बहुत अधिक पाप प्रदान करने वाले किसी के धरोहर को भी नहीं हड़पा है ॥८॥ मैंने प्रजा का पुत्र के समान पालन किया है और धर्म पूर्वक पृथिवी को जिता है, बन्धु तथा पुत्रों के भी दुष्ट हो जाने पर उनको दण्ड दिया है ॥९॥ मैंने शिष्ट पुरुषों का ही पूजन किया है मेरा पुरुष कोई भी नहीं है । ब्राह्मणों ! आप लोग इस प्रकार के कहने वाले मुझको धर्मोपदेश करें ॥१०॥ आपलोग विचार करें कि किस कारण से मेरे घर में पुत्र का जन्म नहीं हुआ । प्रजाओं और पुरोहितों के साथ राजा की इस बात को सुनकर ब्राह्मण गण राजा का कल्याण करने के लिए इधर-उधर ऋषियों का आश्रम देखते हुए वन में चले गये ॥११-१२॥ राजा का कल्याण चाहते हुए उन्होंने एक श्रेष्ठ मुनि को देखा जो निरालम्व तथा निरामय थे और घोर तपस्या कर रहे थे ॥१३॥ वे निराहार थे जितेन्द्रिय थे । क्रोध को उन्होंने अपने वश में कर लिया था । वे सनातन ऋषि थे । धर्मतत्त्व को जानने वाले थे तथा सभी शास्त्रों में निपुण थे लोमश मुनि ॥१४॥ वे दीर्घायु, महात्मा थे, उनके केश बढ़े थे वे दूसरे ब्रह्माजी के समान थे । एक-एक कल्प के बीत जाने पर उनका एक-एक केश गिर जाता था ॥१५॥ इसीलिए उनका नाम

यथान्यायं यथार्हंते नमश्चक्रुर्यथोदितम् । विनयावनताः सर्व ऊचुस्ते च परस्परम् ॥१७॥
अस्मद्भाग्यवशादेव प्राप्तोऽयं मुनिसत्तमः । तांस्तथा सप्रजान्वीक्ष्य उवाच ऋषिसत्तमः ॥१८॥

लोमश उवाच

किमर्थमिह संप्राप्ताः कथयध्वं सकारणम् । दर्शनाद्धृष्टमनसः स्तुवन्तश्चैव मां किमु ॥१९॥
असंशयं करिष्यामि भवतां यद्धितं भवेत् । परोपकृतये जन्म मादृशानां न संशयः ॥२०॥

जना ऊचुः

श्रूयतामभिधास्यामो वयं स्वागमकारणम् । संशयच्छेदनार्थाय तव सान्निध्यमागताः ॥२१॥
पद्मयोनेः परतरस्त्वत्तः श्रेष्ठोनविद्यते । अतः कार्यवशात्प्राप्ता समीपं भवतो वयम् ॥२२॥

महीजिन्नाम राजाऽसौपुत्रहीनोऽस्ति सांप्रतम् ।
वयं तस्य प्रजा ब्रह्मन्पुत्रवत्तेन पालिताः ॥२३॥
तं पुत्ररहितं दृष्ट्वा तस्य दुःखेन दुःखिताः ।
तपः कर्तुमिहायाता मतिं कृत्वा तु नैष्ठिकीम् ॥२४॥
तस्य भाग्येन दृष्टोऽसि ह्यस्माभिस्त्वं द्विजोत्तम ! ।
महतां दर्शनेनैव कार्यसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥२५॥

उपदेशं वद मुने राज्ञः पुत्रो यथा भवेत् । इति तेषां वचः श्रुत्वा मुहूर्त्तं ध्यानमास्थितः ॥
प्रत्युवाच मुनिर्ज्ञात्वा तस्य जन्म पुरातनम् ॥२६॥

लोमश उवाच

पुरा जन्मनि वैश्योऽयंधनहीनो नृशोषकृत् । वाणिज्यकर्मनिरतोग्रामाद्ग्रामान्तरंभ्रमन् ॥२७॥

लोमश था वे त्रिकालज्ञ मुनि थे । उनको देखकर सभी ब्राह्मण प्रसन्न हो गये और उनके पास आये ॥१६॥ वे न्यायानुकूल यथायोग्य उनको नमस्कार किए । विनयावनत वे सभी परस्पर में कहे । हमलोगों के भाग्यवशात् से मुनि हमलोगों को प्राप्त हुए हैं । उन ब्राह्मणों को प्रजा के साथ देखकर मुनियों में श्रेष्ठ लोमश मुनि ने कहा ॥१७-१८॥ **लोमश महर्षि ने कहा**— आप लोग यहाँ किस काम के लिए आये हैं, अपने आने का प्रयोजन बतलायें । मुझको देखकर प्रसन्न होकर मेरी स्तुति क्यों कर रहे हैं ?॥१९॥ मैं निश्चित रूप से आप लोगों का कल्याण करूँगा । हमारे जैसे लोगों का जन्म तो परोपकार के ही लिए होता है ॥२०॥ **लोगों ने कहा**— हमलोग अपने आने का प्रयोजन बतलाते हैं आप सुनें । अपने संशय का विनाश करने के लिए आपके सन्निकट आये हैं ॥२१॥ ब्रह्माजी को छोड़कर आपसे श्रेष्ठ कोई नहीं है । अतएव हमलोग कार्यवश आपके सन्निकट आये हैं ॥२२॥ ये महीजित नामक राजा पुत्रहीन हैं । हे ब्रह्मन्! हमलोग उनकी प्रजा हैं । उन्होंने हमलोगों का पुत्र के समान पालन किया है ॥२३॥ राजा को पुत्रहीन देखकर उनके दुःख से हमलोग दुःखी हैं । अतएव निष्ठायुक्त बुद्धि बनाकर यहाँ तपस्या करने के लिए आये हैं ॥२४॥ उनके ही सौभाग्यवशात् हमलोगों को आपका दर्शन मिला है । महापुरुषों का दर्शन हो जाने से ही मनुष्यों का कार्य होता है ॥२५॥ हे मुने ! आप ऐसा उपदेश दें कि राजा को पुत्र की प्राप्ति हो सके । उन सबों की इस तरह की बात सुनकर मुनि मुहूर्त पर्यन्त ध्यान मग्न हो गये ॥२६॥ मुनि ने राजा के पूर्वजन्म की बात को जान लिया । **लोमश महर्षि ने कहा**— पूर्व जन्म में राजा धनहीन वैश्य

ज्येष्ठे मासि सितेपक्षे दशमी दिवसे तथा। मध्यगते द्युमणौप्राप्ते ग्रामसीम्नितृषाकुलः ॥२८॥
रम्यं जलशयं दृष्ट्वा जलपाने मनो दधे। सद्यस्ततः सवत्सा च धेनुस्तत्र समागता ॥२९॥
तृष्णातुरा निदाघार्ता तस्यामम्बु पपौ तु सा ।
पीबन्तीं वारयित्वा तामसौ तोयं पपौ स्वयम् ॥३०॥
कर्मणा तेन पापेन पुत्रहीनो नृपोऽभवत्। कस्यापि जन्मनः पुण्यात्प्राप्तं राज्यमकण्टकम्॥३१॥

लोकाऊचुः

पुण्यात्पापं क्षयं याति पुराणे श्रूयते मुने। पुण्योपदेशं कथय येन पापक्षयो भवेत् ॥
यथा भवत्प्रसादेन पुत्रो भवति भूपतेः ॥३२॥

लोमश उवाच

श्रावणे शुक्लपक्षे तु पुत्रदा नाम विश्रुता। एकादशी वाञ्छितदा कुरुध्वं तद्व्रतं जनाः ॥३३॥
इति श्रुत्वा नमस्कृत्य मुनिमेत्यपुरंव्रतम्। यथाविधि यथान्यायं कृतं तैर्जागरान्वितम् ॥३४॥
तस्य पुण्यं सुविमलं दत्तं नृपतयेजनैः। दत्ते पुण्येऽथ सा राज्ञी गर्भमाधत्त शोभनम् ॥३५॥
प्राप्ते प्रसवकाले सा सुषुवे पुत्रमूर्जितम्। श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थेदिवाकरे॥३६॥
द्वादश्यां वासुदेवाय पवित्रारोपणं स्मृतम्। हेमरौप्यताम्रक्षौमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः ॥३७॥
कुशैः काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मण्याकर्तितैः शुभैः ।
स्नात्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत् ॥३८॥
गोदोहान्तरिते काले पूर्वेद्युरधिवासनम्। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य गुरुपादौ प्रणम्य च ॥३९॥

थे, लोगों का शोषण करते थे । वे गाँव-गाँव घूमकर व्यापार करते थे ॥२७॥ ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में दशमी तिथि को दोपहर की बेला में ग्राम की सीमा पर इन्होंने मनोहर जलाशय देखा । उस समय ये प्यासे थे । अतएव जल पीना चाहे । उस समय वहाँ पर एक गौ अपने बछड़े के साथ आयी ॥२८-२९॥ वह प्यास से घवरायी थी, धूप से व्याकुल थी, उसी जलाशय में उसने जल पिया । जल पीती हुयी उसको हटाकर इन्होंने स्वयं जल पी लिया ॥३०॥ उसी पाप के कारण पुत्र हीन हुए हैं । किसी जन्म के पुण्य के कारण इन्होंने अकण्टक राज्य प्राप्त किया है ॥३१॥ **लोगों ने कहा—** मुने ! पुराणों में बतलाया गया है कि पुण्य से पाप का नाश होता है अतएव आप उस पुण्य का उपदेश करें जिससे कि पाप का नाश हो । जिससे कि आपकी कृपा से राजा को पुत्र की प्राप्ति हो सके ॥३२॥ श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में लोक विख्यात पुत्रदा नामक एकादशी होती है वह वाञ्छिल अर्थ को प्रदान करती । आपलोग उसी का व्रत करें ॥३३॥ इस बात को सुनकर वे सब नगर में आये विधि पूर्वक उस व्रत को किए और रात्रि जागरण किए ॥३४॥ उससे जो पुण्य हुआ लोगों ने उसको राजा को प्रदान कर दिया । पुण्य प्रदान करने के बाद रानी ने सुन्दर गर्भ धारण किया ॥३५॥ समय हो जाने पर रानी ने तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया । श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में जब सूर्य कर्क राशि पर हों तो द्वादशी तिथि को भगवान् वासुदेव के लिए पवित्रारोपण बतलाया गया है । सुवर्ण, चाँदी, ताम्बा तथा रेशमी सूत्रों से कौशेय पद्म से उत्पन्न कुश तथा काश एवं कपास से जो ब्राह्मणी के द्वारा काता गया हो ऐसा सूत्र को स्नान करके त्रिगुण वनाकर पवित्र करे ॥३६-३८॥ उसका गोदोहन काल आने पर अधिवासन करे । अधिवासन से पूर्व ब्राह्मणों को तथा

गीतमङ्गलनिर्घोषैः कुर्याज्जागरणं ततः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्या भिल्लाः शूद्रास्तथैव च ॥४०॥
स्वधर्मावस्थिताः सर्वे भक्तया कुर्युः पवित्रकम् ।
ततः पवित्रं गुरवे दद्याद्वै विधिपूर्वकम् ॥४१॥
ब्राह्मणान्वैष्णवांश्चैव गन्धपुष्पादिनार्चयेत्। अतोदेवेति मन्त्रेण द्विजो विष्णौ निवेदयेत् ॥४२॥
शूद्रस्तु मूलमन्त्रेण यथाविष्णौ तथा शिवे । वर्षे वर्षे प्रकर्त्तव्यं पवित्रारोपणं नरैः ॥४३॥
भुक्तिं मुक्तिं च वाञ्छद्भिः संसारे शोकसागरे ।
न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तुयः ॥४४॥
तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला वैष्णवस्य तु ।
श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्या नरःपापात्प्रमुच्यते । इह पुत्रसुखं प्राप्य परत्र स्वर्गति लभेत् ॥४५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे श्रावणशुक्लपवित्रारोपणीपुत्रदैकादशी नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

गुरु को नमस्कार करे । उसके बाद गीत आदि के मङ्गलमय ध्वनि के द्वारा जागरण करें । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भिल्ल तथा शूद्र भी अपने धर्म का पालन करते हुए भक्ति पूर्वक पवित्रक करें । उसके बाद वे भक्ति पूर्वक सर्वप्रथम अपने गुरु को पवित्र प्रदान करें ॥३९-४१॥ ब्राह्मणों तथा वैष्णवों की चन्दन तथा पुष्प आदि से पूजा करे । **अतो देवा०** इत्यादि मन्त्र को पढ़कर पवित्रक भगवान् विष्णु को समर्पित करे ॥४२॥ शूद्रों को मूलमन्त्र से भगवान् विष्णु और शिवजी को पवित्रक प्रदान करना चाहिए । भोग तथा मोक्ष चाहने वाले को प्रत्येक वर्ष पवित्रारोपण करना चाहिए ॥४३॥ जो मनुष्य विधि पूर्वक पवित्रारोपण नहीं करता है, उस वैष्णव की सांवत्सरी पूजा व्यर्थ हो जाती है ॥४४॥ इस एकादशी के माहात्म्य को सुनकर मनुष्य पाप मुक्त हो जाता है । वह इस लोक में पुत्र का सुख प्राप्त करके परलोक में स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥४५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत श्रावण शुक्ल पक्ष की पुत्रदा एकादशी और पवित्रारोपण वर्णन नामक छप्पनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५६॥

सतावनवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

भाद्रस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कथयस्व जनार्दन ॥१॥

श्रीकृष्ण उवच

शृणुष्वैकमना राजन्कथयिष्यामि विस्तरात्। अजेति नामतः प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी॥२॥
पूजयित्वा हृषीकेशं व्रतमस्यां करोति यः। पापानि तस्य नश्यन्ति व्रतस्य श्रवणादपि॥३॥
नातः परतरा राजँल्लोकद्वयहितायवै। सत्यमुक्तं मया ह्येतन्नासत्यं मम भाषितम्॥४॥
हरिश्चन्द्र इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरा। चक्रवर्ती सत्यसन्धः समस्ताया भुवः पतिः॥५॥

कस्यापि कर्मणः प्राप्तौ राज्यभ्रष्टो बभूव सः ।
विक्रीतौ वनितापुत्रौ स चकारात्मविक्रयम् ॥६॥
पुल्कसस च दासत्वं गतो राजा स पुण्यकृत् ।
सत्यमालम्ब्य राजेन्द्र ! मृतचैलापहारकः ॥७॥

सोऽभवन्नृपतिश्रेष्ठो न सत्याच्चलितस्तथा। एवं च तस्या नृपतेर्बहवो वत्सरागताः॥८॥
ततश्चिन्तापरो राजा स बभूवातिदुःखितः। किं करोमि क्व गच्छामि निष्कृतिर्मे कथं भवेत्॥९॥
इति चिन्तयतस्तस्य मग्नस्यवृजिनार्णवे। आजगाम मुनिः कश्चिज्ज्ञात्वा राजानमातुरम्॥१०॥
परोपकरणार्थाय निर्मिता ब्रह्मणा द्विजाः। स तं दृष्ट्वा द्विजवरं ननाम नृपसत्तमः॥११॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा गौतमस्याग्रतः स्थितः ।
कथयामास वृत्तान्तमात्मनो दुःखसंयुतम् ॥१२॥

भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अजा एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष में होने वाली एकादशी का क्या नाम है ? हे जनार्दन ! मैं इसे सुनना चाहता हूँ आप बतलायें ॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजन् ! आप एकाग्रमन से सुनें मैं इसे विस्तार से बतलाता हूँ । इस एकादशी का नाम अजा है, यह सभी पापों का विनाश कर देती हैं ॥२॥ जो व्यक्ति भगवान् हृषीकेश की पूजा करके इस एकादशी का व्रत करता है इस व्रत को सुनने से भी उसके पाप का नाश हो जाता है ॥३॥ हे राजन् ! दोनों लोकों में इससे बड़ा कोई कल्याण का साधन नहीं है । मैंने यह सत्य कहा है । मेरी बाणी झूठी नहीं है ॥४॥ प्राचीन काल में राजा हरिश्चन्द्र हुए । वे सम्पूर्ण पृथिवी के स्वामी चक्रवर्ती तथा सत्य वक्ता थे । किसी कर्म के फल स्वरूप वे राज्य भ्रष्ट हो गये । उन्होंने अपनी पत्नी और पुत्र को भी बेंच दिया, अपने को भी बेंच दिया । वे धार्मिक राजा चाण्डाल के दास बन गये । वे सत्य का सहारा लेकर मूर्दे का कफन वसूलने लगे ॥५-७॥ फिर भी वे राजा सत्य का कभी परित्याग नहीं किए । इस तरह उस राजा के अनेक वर्ष बीत गये ॥८॥ उसके वाद वे राजा अत्यन्त चिन्तित हो गये, वे सोचते थे कि मैं क्या करूँ ? कहा जाऊँ ? मेरा उद्धार कैसे होगा ?॥९॥ इस तरह से दुःख सागर में पड़े हुए तथा चिन्तित राजा को जानकर कोई मुनि उनके पास आये ॥१०॥ ब्रह्माजी ने ब्राह्मणों को तो परोपकार करने के ही लिए बनाया है । उन मुनिश्रेष्ठ को देखकर राजा ने नमस्कार किया ॥११॥ वे हाथ जोड़कर उन गौतम ऋषि के समक्ष खड़े हो गये । उन्होंने अपने

श्रुत्वा नृपतिवाक्यानि, गौतमो विस्मयान्वितः ।
उपदेशं नृपतये व्रतस्यास्य ददौ मुनिः ॥१३॥
मासि भाद्रपदे राजन्कृष्णपक्षेऽति शोभना । एकादशीसमायाताअज नामेति पुण्यदा ॥१४॥
अस्याः कुरु व्रतं राजन्पापस्यान्तो भविष्यति ।
तव भाग्यवशादेषा सप्तमेऽह्नि समागता ॥१५॥
उपवासपरो भूत्वा रात्रौ जागरणं कुरु । एवमस्या व्रते चीर्णे तव पापक्षयो ध्रुवम् ॥१६॥
तव पुण्यप्रभावेण चागतोऽहं नृपोत्तम । इत्येवं कथयित्वा च मुनिरन्तरधीयत ॥१७॥
मुनिवाक्यं नृपः श्रुत्वा चकार व्रतमुत्तमम् । कृते तस्मिन्व्रते राज्ञा पापस्यान्तोऽभवत्क्षणात् ॥१८॥
श्रूयतां राजशार्दूल प्रभावोऽस्य व्रतस्य च । यद्दुःखंबहुभिर्वर्षैर्भोक्तव्यं तत्क्षयोभवेत् ॥१९॥
निस्तीर्णदुःखोराजासीद्व्रतस्यास्य प्रभावतः । पत्न्यासहसमायोगं पुत्रजीवनमाप सः ॥२०॥
दिवि दुन्दुभयो नेदुःपुष्पवर्षमभूद्दिवः । एकादश्याः प्रभावेण प्राप्य राज्यमकण्टकम् ॥२१॥
स्वर्गं लेभे हरिश्चन्द्रः सपौरः सपरिच्छदः । ईदृग्विधं व्रतं राजन्येकुर्वन्ति च मानवाः ॥२२॥
सर्वपापाविनिर्मुक्तास्त्रिदिवं यान्ति ते नृप । पठनाच्छ्रवणाद्वापि अश्वमेधफलं लभेत् ॥२३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे भाद्रपदकृष्णाजैकादशीमाहात्म्यं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

दुःखपूर्ण वृत्तान्त को सुनाया ॥१२॥ राजा के वाक्यों को सुनकर आश्चर्यित होकर मुनि ने इस एकादशी व्रत का उपदेश दिया ॥१३॥ उन्होंने कहा कि राजन् ! भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष में अजा नाम की अत्यन्त सुन्दर एकादशी आती है ॥१४॥ हे राजन् ! इस एकादशी का आप व्रत करें तो आपके पाप की शान्ति हो जायेगी । आपके सौभाग्यवशात् यह आज के सातवें दिन होगी ॥१५॥ इस व्रत का उपवास करके आप रात्रि में जागरण करें । इस तरह से इस व्रत को करने से आपके पाप का अन्त हो जायेगा ॥१६॥ आपके पुण्य के प्रभाव के ही कारण मैं आया हूँ इस तरह से कहकर मुनि वहाँ से अन्तर्धान हो गये ॥१७॥ मुनि के वाक्य को सुनकर राजा ने उस उत्तम व्रत को किया । उस व्रत के करते ही राजा के पाप का अन्त उसी क्षण हो गया ॥१८॥ हे राजवर्य ! आप इस व्रत के प्रभाव को सुनें । जिस दुःख को अनेक वर्षों तक राजा को भोगना था तब जाकर उस पाप का क्षण होता, उस दुःख से राजा इस व्रत के प्रभाव से मुक्ति प्राप्त कर लिए । उनका पत्नी के साथ संयोग हो गया और मरा हुआ पुत्र जीवित हो गया ॥१९-२०॥ आकाश में दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाश से फूलों की वर्षा हुयी । एकादशी के प्रभाव से अकण्टक राज्य प्राप्त करके राजा हरिश्चन्द्र अपने परिवार और पुरवासियों के साथ स्वर्ग प्राप्त किए । हे राजन् ! इस प्रकार के व्रत को मनुष्य करते हैं ॥२१-२२॥ तो वे सभी पापों से रहित होकर स्वर्ग जाते हैं । इस आख्यान को पढ़ने और सुनने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक सत्तावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५७॥

अंठावनवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

नभस्यस्यसिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् । कोदेवः कोविधिस्तस्यएतदाख्याहि केशव ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

कथयामि महीपाल कथामाश्चर्यकारिणीम् । कथयामास यां ब्रह्मा नारदाय महात्मने ॥२॥

नारद उवाच

कथयस्व प्रसादेन चतुर्मुख ! नमोऽस्तु ते ।
नभस्य शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विष्णोराराधनाय वै ॥३॥

ब्रह्मोवाच

वैष्णवोऽसि मुनिश्रेष्ठ साधुपृष्टं किलत्वया। नातः परतरा लोके पवित्रा हरिवासरात् ॥४॥
पद्मा नामेति विख्याता नभस्यैकादशी सिता ।
हृषीकेशः पूज्यतेऽस्यां कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥५॥
कथयामि तवाग्रेऽहं कथांपौराणिकीं शुभाम् ।
यस्याः श्रवणमात्रेणमहापापं प्रणश्यति ॥६॥
मान्धाता नाम राजर्षिर्विवस्वद्वंशसंभवः । बभूव चक्रवर्ती स सत्यसन्धः प्रतापवान् ॥७॥
धर्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् । न तस्य राज्ये दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयस्तथा ॥८॥
निरातङ्काः प्रजास्तस्य धनधान्यसमेधिताः । न्यायेनोपार्जितं वित्तं तस्य कोशे महीपतेः ॥९॥

भाद्रपद शुक्ल पक्ष की पद्मा एकादशी का माहात्म्य वर्णन

राजा युधिष्ठिर ने कहा— हे केशव ! भाद्रपदमास के शुक्ल पक्ष में कौन सी एकादशी होती है? उसकी कौन सी विधि होती है ?इस बात को आप मुझे बतलायें ॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजन् ! मैं आश्चर्य करने वाली कथा को सुनाता हूँ । नारदजी के पूछने पर इस कथा को ब्रह्माजी ने उन्हें सुनाया था ॥२॥ **नारदजी ने कहा—** हे ब्रह्माजी ! आपको नमस्कार है, आप कृपा करके बतलाइये कि भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में होने वाली एकादशी का नाम क्या है ? भगवान् विष्णु की आराधना करने के लिए मैं इस बात को सुनना चाहता हूँ ॥३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! आप वैष्णव हैं । आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । इस एकादशी से बढ़कर कोई भी एकादशी नहीं है ॥४॥ भाद्रपद मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम पद्मा है । इस एकादशी में भगवान् हृषीकेश की पूजा की जाती है, इस उत्तम व्रत को करना चाहिए ॥५॥ तुम्हारे समक्ष मैं पुराण की शुभ कथा कहता हूँ उसको सुनने मात्र से महापाप का विनाश हो जाता है ॥६॥ सूर्य वंश में मान्धाता नामक राजा हुए थे । वे प्रतापी, सत्यवक्ता तथा चक्रवर्ती राजा थे ॥७॥ वे प्रजाओं का पालन धर्मानुसार अपने औरस पुत्र के समान करते थे । उनके राज्य में न तो दुर्भिक्ष होता था और न आधियाँ व्याधियाँ होती थीं ॥८॥ धन-धान्य से समृद्ध प्रजायें उनके राज्य में भय रहित थीं । उस राजा के कोश में न्यायार्जित धन था ॥९॥ सभी वर्णों और आश्रमों के लोग अपने-

स्वस्वधर्मे प्रवर्तन्ते सर्वे वर्णाश्रमास्तथा। कामधेनुसमा भूमिस्तस्य राज्ये महीपतेः ॥१०॥
तस्यैवं कुर्वतो राज्यं बहुवर्षगणागताः । अथैकस्मिंश्च संप्राप्ते विपाकः कर्मणः खलु ॥११॥
वर्षत्रयं तद्विषये न ववर्ष बलाहकः । तेन भग्नाः प्रजास्तस्य बभूवुः क्षुधयार्दिताः ॥
स्वाहास्वधावट्कारवेदाध्ययनवर्जिताः ॥१२॥
बभूव विषयस्तस्याभाग्येन दैवपीडितः। अथ प्रजाः समागम्य राजानमिदमब्रुवन्॥१३॥

प्रजा ऊचुः

श्रोतव्यं नृपशार्दूल प्रजानां वचनं त्वया। आपो नरा इति प्रोक्ताः पुराणेषुमनीषिभिः ॥१४॥
अयनं ता भगवतस्तस्मान्नारायणः स्मृतः। पर्जन्यरूपो भगवान्विष्णुःसर्वगतः स्थितः ॥
स एवं कुरुते वृष्टिं वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥१५॥
तदभावे नृपश्रेष्ठ क्षयं गच्छन्ति वै प्रजाः । तथा कुरु नृपश्रेष्ठ योगः क्षेमो यथा भवेत् ॥१६॥

राजोवाच

सत्यमुक्तं भवद्भिश्च नमिथ्याऽभिहितंक्वचित् ।
अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१७॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते। इत्येवं श्रूयते लोके पुराणे बहुविस्तरे॥१८॥
नृपाणामपचारेण प्रजानां पीडनं भवेत्। नाहं पश्याम्यात्मकृतमेवं बुद्ध्या विचारयन्॥१९॥
तथाऽपि प्रयतिष्येऽहं प्रजानां हितकाम्यया। इति कृत्वा मतिं राजा परिमेयपरिच्छदः॥२०॥

नमस्कृत्य विधातारं जगाम गहनं वनम् ।
चचार मुनिमुख्यैश्चाप्याश्रमांतापसैः श्रितान् ॥२१॥

अपने धर्म का पालन करते थे। उस राजा के राज्य की भूमि कामधेनु के समान थी ॥१०॥ उस राजा के राज्य करते हुए अनेक वर्ष बीत गये। एक बार उनके कर्मों का परिणाम हुआ ॥११॥ उनके राज्य में तीन वर्षों तक वर्षा नहीं हुयी। उसके कारण उनके राज्य की प्रजा भूख से व्याकुल होकर मरने लगी॥१२॥ उसके कारण भाग्य से पीड़ित होकर उनका राज्य स्वाहाकार तथा स्वधाकार एवं वेदाध्ययन से रहित हो गया। इसके प्रश्चात् प्रजाओं ने आकर राजा से कहा ॥१३॥ **प्रजाओं ने कहा—** राजन्! आपको प्रजाओं की बात सुननी चाहिए। पुराणों में मनीषियों ने जल को नार कहा है। जल ही भगवान् के आश्रय हैं। इसीलिए वे नारायण कहलाते हैं। पर्जन्य स्वरूप भगवान् विष्णु सबों में व्यापक हैं। वे ही वृष्टि करते हैं और वृष्टि से ही अन्न होता है। अन्न से प्रजायें होती है ॥१४-१५॥ हे राजश्रेष्ठ! जल के अभाव में प्रजाओं का क्षय हो जाता है। हे राजन्! आप ऐसा कार्य करें जिससे कि योगक्षेम होता रहे ॥१६॥ **राजा ने कहा—** आपलोगों ने सत्य कहा है इसमें मिथ्या कुछ भी नहीं है। इसीलिए अन्न को ब्रह्म कहा गया है। अन्न में ही सम्पूर्ण जगत् स्थित है ॥१७॥ अन्न से ही भूतों की उत्पत्ति होंती है, जगत् अन्न पर ही टिका है। इस तरह से लोक में तथा पुराणों में बहुत विस्तार के साथ कहा गया है ॥१८॥ राजाओं के ही पाप से प्रजाओं को कष्ट मिलता है। मैं विचार करके अपने किसी पाप का स्मरण नहीं कर पा रहा हूँ ॥१९॥ फिर भी मैं प्रजाओं का कल्याण करने के लिए प्रयास करूँगा। इस तरह से कहकर राजा थोड़े से लोगों के साथ ॥२०॥ ब्रह्माजी को प्रणाम करके घोर वन में चले गये। वे प्रधान मुनियों तथा तपस्वियों

ददर्शाथ ब्रह्मसुतमृषिमाङ्गिरसं नृपः । तेजसा द्योतितदिशं द्वितीयमिव पद्मजम् ॥२२॥
तं दृष्ट्वा हर्षितो राजा अवतीर्य स्ववाहनात् ।
नमश्चक्रेऽस्य चरणौ कृताञ्जलिपुटो वशी ॥२३॥
मुनिस्तमभिनन्द्याथस्वस्तिवाचनपूर्वकम् । पप्रच्छ कुशलं राज्ये सप्तस्वङ्गेषु भूपतेः ॥२४॥
निवेदयित्वा कुशलं पप्रच्छानामयं नृप। दत्तासनो गृहीतार्घ्य उपविष्टोऽस्य संनिधौ॥२५॥
प्रत्युवाच मुनिं राजा पृष्ठो ह्यागमकारणम् ॥२६॥

राजोवाच

भगवन्धर्मविधिना ममपालयतो महीम् । अनावृष्टिश्च संवृत्ता नाहं वेद्म्यत्रकारणम्॥२७॥
संशयच्छेदनायात्र आगतोऽहं तवान्तिके। योगक्षेमविधानेन प्रजानां कुरु निर्वृतिम्॥२८॥

ऋषिरुवाच

एतत्कृतयुगं राजन्युगानामुत्तमं मतम् । अत्र ब्रह्मपरा लोका धर्मश्चात्र चतुष्पदः ॥२९॥
अस्मिन्युगे तपोयुक्ता ब्राह्मणा नेतरे जनाः । विषये तव राजेन्द्र वृषलोऽयं तपस्यति॥३०॥
एतस्मात्कारणाच्चैव नवर्षति बलाहकः । कुरु तस्य वधे यत्नं येन दोषः प्रशाम्यति॥३१॥

राजोवाच

नाहमेनं हनिष्यामि तपस्यन्तमनागसम् । धर्मोपदेशं कथय उपसर्गविनाशनम्॥३२॥

ऋषिरुवाच

यद्येवं तर्हि नृपते कुरुष्वैकादशीव्रतम् । नभस्यस्यसिते पक्षे पद्मानामेति विश्रुता ॥३३॥
तस्या व्रतप्रभावेण सुवृष्टिर्भविता ध्रुवम् । सर्वसिद्धिप्रदाह्येषा सर्वोपद्रवनाशिनी ॥३४॥

से युक्त आश्रमों में विचरण कर रहे थे ॥२१॥ वे ब्रह्माजी के पुत्र अङ्गिरा मुनि को देखे । उनके तेज से दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं । वे दूसरे ब्रह्मा के समान लग रहे थे ॥२२॥ उनको देखकर राजा प्रसन्न हो गये । वे अपने अश्व से उतर कर हाथ जोड़कर मुनि के चरणों में प्रणाम किए ॥२३॥ मुनि ने राजा का स्वस्ति वाचन करके उनका अभिनन्दन किया । उन्होंने राज्य के सातों अङ्गों के विषय में कुशल पूछा॥२४॥ राजा ने अपना कुशल बतलाया और महर्षि का कुशल पूछा । ऋषि ने उन्हें अपने सन्निकट बैठने का आसन दिया । और वे बैठ गये ॥२५॥ पूछने पर राजा ने अपने आने का कारण मुनि को बतलाया॥२६॥ **राजा ने कहा**— भगवन् ! मैं धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करता हूँ फिर भी अनावृष्टि हो गयी है । इसका कारण क्या है ?॥२७॥ इस संशय को दूर करने के लिए मैं यहाँ आया हूँ । आप योगक्षेम के विधान के द्वारा प्रजाओं का कल्याण करें ॥२८॥ **ऋषि ने कहा**— हे राजन् ! यह सभी युगों में उत्तम सत्ययुग हैं । इस युग में सभी जीव ब्रह्म परायण होते हैं और धर्म के चारों चरण विद्यमान रहते हैं ॥२९॥ इस युग में केवल ब्राह्मण ही तपस्या करते हैं दूसरे वर्ण के लोग नहीं । हे राजन् ! आपके राज्य में शूद्र तपस्या करता है ॥३०॥ यही कारण है कि वर्षा नहीं होती है । उसको मारने का प्रयत्न करें उसी से दोष की शान्ति होगी ॥३१॥ **राजा ने कहा**— तपस्या करने वाला शूद्र निर्दोष है उसको मैं नहीं मार सकता हूँ अतएव अनावृष्टि विनाशक धर्म का आप उपदेश करें ॥३२॥ **ऋषि ने कहा**— राजन् ! यदि ऐसो बात है तो आप भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में होने वाली पद्मा नाम की एकादशी का व्रत करें ॥३३॥ उस एकादशी

अस्या व्रतं कुरु नृप सप्रजः सपरिच्छदः । इतिवाक्यमृषेः श्रुत्वा राजा स्वगृहमागतः ॥३५॥
भाद्रमासे सिते पक्षे पद्माव्रतमथाकरोत् । प्रजाभिः सह सर्वाभिश्चातुर्वर्ण्यसान्वितः ॥३६॥
एवं व्रते कृते राजन्प्रववर्ष बलाहकः । जलेन प्लाविता भूमिरभवत्सस्यशालिनी ॥३७॥
ऋषीश्वरप्रभावेण लोकाः सौख्यं प्रपेदिरे । एतस्मात्कारणादेवं कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥३८॥
दध्योदनयुतं तस्यां जलपूर्णं घटं द्विजे । वस्त्रसंवेष्टितं दत्त्वा छत्रोपानहमेव च ॥३९॥
नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक । अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥४०॥
भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव लोकानां सुखदायकः । पठनाच्छ्रवणाद्राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे भाद्रपदशुक्लपद्मैकादशी माहात्म्यं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

उनसठवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन । इषस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥१॥

के प्रभाव से सुवृष्टि अवश्य होगी । यह एकादशी सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाली और समस्त उपद्रवों का नाश करने वाली है ॥३४॥ इसी एकादशी का आप अपनी प्रजा और परिवार के साथ व्रत करें । ऋषि के इस वाक्य को सुनकर राजा अपने घर आये ॥३५॥ उन्होंने भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की पद्मा एकादशी का व्रत किया । उनके साथ चारों वर्णों की प्रजाओं ने उस व्रत को किया ॥३६॥ राजन् ! उस व्रत के करने से वर्षा हुयी । सारी भूमि जल से सींच गयी सस्य सम्पति से सुशोभित हुयी ॥३७॥ ऋषिवर के प्रभाव से सारी प्रजा सुखी हो गयी । इसीलिए इस उत्तम व्रत को करना चाहिए ॥३८॥ इस एकादशी के व्रत में दध्योदन से भरकर ब्राह्मण को जल भरा घड़ा प्रदान करना चाहिए । उसको वस्त्र से लपेटे तथा साथ में छाता और उपानह दान करें ॥३९॥ फिर प्रार्थना करें कि हे बुध श्रवण संज्ञक गोविन्द ! आपको बारम्बार नमस्कार है । आप मेरे पाप समूह का नाश करके मुझे हर प्रकार का सुख प्रदान करें ॥४०॥ हे राजन् ! यह पढ़ने और श्रवण करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । यह व्रत लोगों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है तथा सुख देने वाला है ॥४१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की पद्मा एकादशी का माहात्म्य वर्ण नामक अठावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५८॥

आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की इन्दिरा एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— हे मधुसूदन ! आप कृपा करके मुझे बतलाइये कि आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में होने वाली एकादशी का क्या नाम हैं ?॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा**— कि अश्विन मास के कृष्ण

श्रीकृष्ण उवाच

आश्विने कृष्णपक्षे तु इन्दिरा नामनामतः। तस्या व्रतप्रभावेन महापापं प्रणश्यति॥२॥
अधोयोनिगतानां च पितॄणां गतिदायिनी। शृणुष्वावहितो राजन्कथां पापहरां पराम्॥३॥
यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत्। पुरा कृतयुगे राजन्बभूव नृपनन्दनः॥४॥
इन्द्रसेन इति ख्यातः पुरा महिष्मती पतिः।
स राजा पालयामास धर्मेण यशसान्वितः॥५॥
पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यसमन्वितः। माहिष्मत्यधिपो राजा विष्णुभक्तिपरायणः॥६॥
जपन्गोविन्दनामानि मुक्तिदानि नराधिपः। कालं नयति विधिवदध्यात्मध्यानचिन्तकः॥७॥
एकस्मिन्दिवसे राज्ञिसुखासीने सदोगते। अवतीर्यागमत्तत्र ह्यम्बरान्नारदो मुनिः॥८॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः। पूजयित्वाऽथ विधिना चासने संन्यवेशयत्॥
सुखोपविष्टः स मुनिः प्रत्युवाच नृपोत्तमम्॥९॥

मुनिरुवाच

कुशलं तव राजेन्द्र सप्तस्वङ्गेषु वर्तते।
धर्मे मतिवर्तते तेविष्णुभक्तिरतिस्तथा। इति वाक्यं तु देवर्षेः श्रुत्वा राजा तमब्रवीत्॥१०॥

राजोवाच

त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ सर्वं च कुशलं मम।
अद्य क्रतुक्रियाः सर्वाः सफलास्तव दर्शनात्।
प्रसादं कुरु देवर्षे ब्रूह्यागमनकारणम्॥११॥

नारद उवाच

श्रूयतां नृपशार्दूल मद्वचो विस्मयप्रदम्। ब्रह्मलोकदाहं प्राप्तो यमलोकं नृपोत्तम॥१२॥

पक्ष में इन्दिरा नाम की एकादशी होती है। उसके व्रत के प्रभाव से महापाप का विनाश होता है॥२॥ यह अधो योनि में गये हुए पितरों को सद्गति प्रदान करती है। हे राजन्! आप सावधानी पूर्वक पाप विनाशिनी कथा को सुनें॥३॥ उस कथा को सुनने से बाजपेय याग का फल प्राप्त होता है। हे राजन्! पहले के सत्ययुग में माहिष्पती नगरी के राजा इन्द्रसेन हुए। वे यशस्वी राजा धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करते थे॥४-५॥ माहिष्मती के स्वामी राजा भगवान् विष्णु के भक्त थे और पुत्र-पौत्र तथा धन-धान्य से सम्पन्न थे। वे आध्यात्म तथा ध्यान करने में ही समय बिताते थे। वे मुक्ति प्रदान करने वाले भगवान् गोविन्द के नामों का जप करते रहते थे॥६-७॥ एक दिन राजा सुख पूर्वक जब अपनी सभा में बैठे थे उसी समय आकाश से उतर कर वहाँ नारद मुनि आये। उनको आये हुए देखकर राजा हाथ जोड़कर खड़ा हो गये फिर उन्होंने नारदजी की पूजा की। उसके बाद विधि पूर्वक उनको आसन पर बैठाये। सुख पूर्वक बैठै हुए मुनि ने राजा से कहा॥८-९॥ **मुनि ने कहा—** राजन्! आपके राज्य के सातों अङ्गों में कुशल तो है न? आपकी धर्म में बुद्धि तथा भगवान् विष्णु की भक्ति में प्रेम है न। देवर्षि के इस वचन को सुनकर राजा ने उनसे कहा॥१०॥ **राजा ने कहा—** देवर्षे! आपकी कृपा से मेरा हर प्रकार से कुशल है। आज आपका दर्शन हो जाने से हमारे सारे यज्ञ सफल हो गये॥११॥ **नारदजी ने कहा—** हे

शमनेनार्चितो भक्तया उपविष्टो वरासने । धर्मशीलाः सत्यवन्तो भास्करिं समुपासते ॥१३॥
बहुपुण्यप्रकर्ता च व्रतवैकल्यदोषतः । सभायां श्राद्धदेवस्य मयादृष्टः पिता तव ॥१४॥
कथितस्तेन संदेशस्तं निबोध जनेश्वर !। इन्द्रसेन इति ख्यातो राजा माहिष्मतीपतिः॥१५॥
तस्याग्रे कथय ब्रह्मन्स्थितं मां यमसंनिधौ। केनापि चान्तरायेण पूर्वजन्मोद्भवेन च॥१६॥
स्वर्गं प्रषेय मां पुत्र इन्दिरापुण्यदानतः । इत्युक्तोऽहं समायातः समीपं तव पार्थिव ॥१७॥
पितुः स्वर्गकृते राजन्निन्दिराव्रतमाचर । तेन व्रतप्रभावेण स्वर्गं यास्यति ते पिता ॥१८॥

राजोवाच

कथयस्व प्रसादेन भगवन्निन्दिराव्रतम् । विधिना केन कर्त्तव्यं कस्मिन्पक्षे तिथौ तथा ॥१९॥

नारद उवाच

शृणु राजेन्द्र ! ते वच्मि व्रतस्यास्य विधिं शुभम् ।
आश्विनस्यासिते पक्षे दशमी दिवसे शुभे ॥२०॥

प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत श्रद्धायुक्तेन चेतसा । ततो मध्याह्नसमये स्नानं कृत्वा समाहितः ॥२१॥
पितॄणां प्रीतये श्राद्धं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः । एकभक्तं ततः कृत्वारात्रौ भूमौ शयीत च ॥२२॥
प्रभाते विमले जाते प्राप्ते चैकादशीदिने । मुखप्रक्षालनं कुर्याद्दन्तधावनवर्जितम् ॥२३॥
उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभावतः। अद्य स्थित्वा निराहारः सर्वभोगविवर्जितः॥२४॥

श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ।
इत्येवं निमं कृत्वा मध्याह्नसमये तथा ॥२५॥

राजश्रेष्ठ ! आप मेरे विस्मित करने वाले वचन को सुनें । राजन् ! मैं ब्रह्मलोक से यमलोक में गया ॥१२॥ यमराज ने मेरी भक्ति पूर्वक पूजा की और मैं श्रेष्ठ आसन पर बैठा । धर्मशील तथा सत्यवक्ता पुरुष यमराज की सेवा में थे ॥१३॥ अनेक पुण्यों को करने वाले, किन्तु व्रत में कमी होने के कारण आपके पिता को मैंने यमराज की सभा में देखा ॥१४॥ उन्होंने जो सन्देश दिया है, उसे आप सुनें । हे ब्रह्मण ! माहिष्मती के प्रख्यात राजा इन्द्रसेन से आप कहेंगे कि पूर्व जन्म में उद्भूत किसी पाप के कारण मैं यमराज के सन्निकट हूँ ॥१५-१६॥ हे पुत्र ! इन्दिरा एकादशी के व्रत से उत्पन्न पुण्य का मेरे लिए दान करके तुम मुझे स्वर्ग में भेज दो । इस तरह से कहने के कारण मैं आपके पास आया हूँ ॥१७॥ हे राजन् ! पिता को स्वर्ग प्राप्ति करने के लिए आप इन्दिरा एकादशी का व्रत करें उस व्रत के प्रभाव से आपके पिता स्वर्ग चले जायेंगे ॥१८॥ **राजा ने कहा—** हे भगवन् ! आप मुझे इन्दिरा व्रत को बतलाइये । वह व्रत किस विधि से किस पक्ष में तथा किस तिथि को करना चाहिए ॥१९॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजन् ! मैं आपको इस व्रत की विधि को बतलाता हूँ उसे आप सुनें । आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की दशमी तिथि को ॥२०॥ प्रातः स्नान श्रद्धा पूर्वक करना चाहिए । उसके बाद दोपहर की बेला में सावधानी पूर्वक स्नान करें ॥२१॥ पितरों की प्रसन्नता के लिए श्राद्ध करना चाहिए । फिर दिन में एक बार भोजन करके रात्रि में भूमि पर शयन करें ॥२२॥ पुनः स्वच्छ प्रभात होने पर एकादशी के दिन दतौन किए बिना ही मुख को धो ले ॥२३॥ उसके पश्चात् भक्तिभाव से उपवास करने का नियम करे यह कहे— हे पुण्डरीकाक्ष ! आज निराहार रहकर सभी भोगों का परित्याग करके मैं कल भोजन करूँगा । हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा

शालग्रामशिलाग्रे तु स्नानं कुर्याद्यथाविधि । पूजयित्वा हृषीकेशं धूपगन्धादिभिस्तथा ॥२६॥
रात्रौ जागरणं कुर्यात्केशवस्य समीपतः । ततः प्रभातसमये प्राप्ते वै द्वादशीदिने ॥२७॥
अर्चयित्वा हरिं भक्त्या श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ।
पितृणां प्रीयते श्राद्धं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥२८॥
गोधूमचूर्णैर्यच्छ्राद्धं कृतं मेध्यं कृतं भवेत् । यवैर्व्रीहितिलैर्माषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा ॥२९॥
ब्राह्मणान्भोजयेद्राजन्दक्षिणाभिः प्रपूजितान् । बन्धुदौहित्रपुत्राद्यैः स्वयं भुञ्जीतवाग्यतः ॥३०॥
अनेन विधिना राजन्कुरुव्रतमतन्द्रितः । विष्णुलोकं प्रयास्यन्ति पितरस्तव भूपते ॥३१॥
इत्युक्त्वा नृपतिं राजन्मुनिरन्तरधीयत । यथोक्तविधिना राजा चकार व्रतमुत्तमम् ॥३२॥
अन्तःपुरेण सहितः पुत्रभृत्यसमन्वितः । कृते व्रते तु कौन्तेय पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ॥३३॥
तत्पिता गरुडारूढो जगाम हरिमन्दिरम् । इन्द्रसेनोऽपि राजर्षिः कृत्वा राज्यमकण्टकम् ॥३४॥
राज्ये निवेश्य तनयं जगाम त्रिदिवं स्वयम् ।
इन्दिराव्रतमाहात्म्यं तवाग्रे कथितं मया ॥३५॥
पठनाच्छ्रवणाद्राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
भुक्त्वेह निखिलान्भोगान्विष्णुलोके वसेच्चिरम् ॥३६॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे आश्विनकृष्णेन्दिरैकादशीमाहात्म्यं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

करें । इस तरह से नियम करके दोपहर की बेला में ॥२४-२५॥ शालग्राम शिला के समक्ष विधि पूर्वक स्नान करे । फिर धूप तथा चन्दन आदि से भगवान् हृषीकेश की पूजा करके ॥२६॥ रात्रि में श्रीभगवान् के सन्निकट जागरण करे । फिर द्वादशी तिथि को सबेरा होने पर ॥२७॥ श्रीभगवान् की पूजा करके श्रद्धा पूर्वक श्राद्ध करे ॥२८॥ गेहूँ के चूर्ण से किया जाने वाला श्राद्ध पवित्र होता है । यव, तिल, व्रीहि, उणद, गेहूँ तथा चना से भी किया हुआ श्राद्ध पवित्र होता है ॥२९॥ ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करे उसके बाद बन्धु, दौहित्र तथा पुत्रों आदि के साथ मौन होकर भोजन करें ॥३०॥ राजन् ! इसी विधि से. आप व्रत करे ऐसा करने से आपके पितृगण विष्णु लोक में चले जायेंगे ॥३१॥ हे राजन् ! इस तरह से कहकर नारदजी अन्तर्धान हो गये । उपर्युक्त विधि से राजा ने उस उत्तम व्रत को किया ॥३२॥ अपनी पत्नियों के साथ तथा पुत्रों एवं भृत्यों के साथ जब राजा ने व्रत किया तो आकाश से पुष्प की वृष्टि हुयी॥३३॥ राजा के पिता गरुड पर सवार होकर श्रीभगवान् के लोक में चले गये । राजा इन्द्रसेन भी अकण्टक राज्य करके ॥३४॥ अपने पुत्र को राज्य प्रदान करके स्वर्ग चले गये । मैंने आपके समक्ष इन्दिरा व्रत का माहात्म्य बतलाया ॥३५॥ हे राजन् ! इस माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है इस लोक में सभी भोगों को भोग करके वह दीर्घ काल तक विष्णु लोक में रहता है ॥३६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में होने वाली इन्दिरा एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक उनसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५९॥

साठवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन। इषस्य शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत्॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजेन्द्र ! वक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ।
शुक्लपक्षे चाश्विनस्य भवेदेकादशी तु या ॥२॥

पाशाङ्कुशेति विख्याता सर्वपापहरा परा। पद्मनाभाभिधानं मां पूजयेत्तत्र मानवः ॥३॥
सर्वाभीष्टफलप्राप्त्यै स्वर्गमोक्षप्रदं नृणाम् । तपस्तप्त्वा पुतस्तीव्रं चिरं सुनियतेन्द्रियः ॥४॥
यत्फलं समवाप्नोति तन्नत्वा गरुडध्वजम्। कृत्वाऽपि बहुशः पापं नरो मोहसमन्वितः ॥५॥
न याति नरकं नत्वा सर्वपापहरं हरिम्। पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥६॥

तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्त्तनात् ।
देवं शार्ङ्गधरं विष्णुं ये प्रपन्ना जनार्दनम् ॥७॥
न तेषां यमलोकस्य यातना जायते क्वचित् ।
उपोष्यैकादशीमेकां प्रसङ्गेनापि मानवः ॥८॥
न याति यातनां यामीं पापं कृत्वाऽपि दारुणम् ।
वैष्णवः पुरुषो भूत्वा शिवनिन्दां करोति यः ॥९॥
न विन्देद्वैष्णवं लोकं स याति नरकं ध्रुवम् ।
शैवः पाशुपतोभूत्वा विष्णुनिन्दां करोति चेत् ॥१०॥

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की पाशाङ्कुशा एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— हे मधुसूदन ! आप कृपा करके मुझे बतलाइये कि आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में कौन सी एकादशी होती है ?॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा**— हे राजेन्द्र ! आश्विन शुक्ल पक्ष में होने वाली एकादशी का मैं पाप विनाशक माहात्म्य बतला रहा हूँ उसे आप सुनें ॥२॥ वह एकादशी पाशाङ्कुशा के नाम से विख्यात है । उस एकादशी में मेरी पूजा पद्मनाभ नाम से करे । यह एकादशी सभी पापों को विनष्ट करने वाली है ॥३॥ अभीष्ट फल करने के लिए, मनुष्यों को स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली तीव्र तपस्या करके कोई जितेन्द्रिय पुरुष जिस फल को प्राप्त करता है उस फल की प्राप्ति भगवान् गरुडध्वज को नमस्कार करने से ही हो जाती है । मोह युक्त पुरुष अनेक प्रकार के पापों को करके भी यदि सर्वपाप विनाशक श्रीहरि को नमस्कार करता है तो वह नरक में नहीं जाता है । पृथिवी पर जितने भी पवित्र तीर्थ तथा मन्दिर हैं ॥४-६॥ उन सबों का फल मनुष्य भगवान् के नामों का संकीर्तन करके प्राप्त कर लेता है । शार्ङ्ग धनुषधारी जनार्दन भगवान् के जो मनुष्य शरणागत हो जाते हैं ॥७॥ उन सबों को कभी यम की यातना नहीं भोगनी पड़ती है । यदि कोई मनुष्य प्रसङ्गवशात् भी एकादशी कर लेता है ॥८॥ वह सारे पाप करके भी यम की यातना को नहीं भोगता है । जो मनुष्य वैष्णव भी होकर शिवजी की निन्दा करता है ॥९॥ वह भगवान् विष्णु के लोक में नहीं जाता है, वह नरक में निश्चित रूप से जाता है । जो शैव

रौरवे पच्यते घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश। नेदृशं पावनं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥११॥
यादृशं पद्मनाभस्य व्रतं पातकनाशनम्। तावत्पापानि देहेऽस्मिंस्तिष्ठन्ति मनुजाधिप ॥१२॥
यावन्नोपवसेज्जन्तुः पद्मनाभदिनं शुभम्। अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥१३॥
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
एकादशीसमं किंचिद्व्रतंलोके न विद्यते ॥१४॥
व्याजेनापि कृता यैश्च न ते यान्ति हि भास्करिम् ।
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी ॥१५॥
कलत्रसुतदा ह्येषा धनमित्रप्रदायिनी। न गङ्गा न गया राजन्न च काशी च पुष्करम्॥१६॥
न चापि कौरवं क्षेत्रं पुण्यं भूप हरेर्दिनात्। रात्रौ जागरणं कृत्वा समुपोष्य हरेर्दिनम्॥१७॥
अनायासेन भूपाल प्राप्यते वैष्णवं पदम्। दशैव मातृके पक्षे राजेन्द्र ! दशपैतृके॥१८॥
प्रियायादशपक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः। चतुर्भुजा दिव्यरूपा नागारिकृतकेतनाः ॥१९॥
स्रग्विणः पीतवस्त्राश्च प्रयान्ति हरिमन्दिरम्। बालत्वे यौवने चैव वृद्धत्वे च नृपोत्तम ! ॥२०॥
उपोष्यैकादशीं नूनं नैव प्राप्नोति दुर्गतिम्। पाशाङ्कुशामुपोष्यैव आश्विनस्य सितेनरः॥२१॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिलोकं स गच्छति। दत्त्वा हेमतिलान्भूमिं गामन्नमुदकं तथा ॥२२॥
उपानच्छत्र वस्त्रादीन्न पश्यति यमं नरः। यस्य पुण्यविहीनानि दिनान्यायान्ति यान्ति च॥२३॥

तथा पाशुपत होकर भी भगवान् विष्णु की निन्दा करता है, वह तब तक रौरव नरक में पकाया जाता है, जब तक चौदह इन्द्रों का समय रहता है। त्रैलोक्य में ऐसा कोई भी व्रत नहीं है जैसा भगवान् पद्मनाभ की यह पाशाङ्कुशा एकादशी का व्रत है। राजन् ! इस शरीर में तब तक ही पाप स्थित रहते हैं ॥१०-११॥ जब तक मनुष्य इस भगवान् पद्मनाभ के व्रत के दिन उपवास नहीं करता है, तब तक ही पाप रहते हैं। हजार अश्वमेध तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञों के फल इस व्रत के सोलहवें भाग के बराबर नहीं होते हैं। संसार में एकादशी के समान कोई भी व्रत नहीं है ॥१२-१४॥ यदि कोई किसी व्याज से भी इस व्रत को कर लेता है तो वह यमलोक में नहीं जाता है। एकादशी स्वर्ग, मोक्ष तथा शरीर के आरोग्य को प्रदान करने वाली है ॥१५॥ यह पत्नी, पुत्र, धन तथा मित्र प्रदान करती है। राजन् गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर तथा कुरुक्षेत्र भी एकादशी से अधिक पुण्य प्रदान करने वाले नहीं है। एकादशी का व्रत करके तथा रात्रि में जागरण करके ॥१६-१७॥ राजन् ! बिना किसी-प्रयास के ही मनुष्य विष्णु लोक को प्राप्त कर लेता है। इस व्रत को करने वाला मनुष्य, पिता के दश पीढ़ी के पूर्वजों का, माता के दश पीढ़ी के पूर्वजों का तथा पत्नी के दश पीढ़ी के पूर्वजों का उद्धार कर देता है। वे सभी चार भुजा वाले दिव्य रूप वाले तथा गरुड के चिह्न से युक्त पताका वाले, माला तथा पीताम्बर धारण किए हुए श्रीहरि के लोक में जाते हैं। हे राजन्! बाल्यावस्था में, युवावस्था में तथा वृद्धावस्था में ॥१८-१९॥ एकादशी का व्रत करके मनुष्य दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है। वह आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी का व्रत करके सभी पापों से मुक्त होकर श्रीहरि के लोक में जाता है। उस दिन सुवर्ण, तिल, भूमि, गौ, अन्न, जल, उपानह तथा छत्र का दान करने वाला मनुष्य कभी यमलोक में नहीं जाता है। जिस मनुष्य के पुण्य किए बिना ही दिन आते और जाते रहते हैं ॥२०-२३॥ जीवित रहकर भी लोहार की भाथी के समान जीवित रहता है। हे राजश्रेष्ठ !

स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति। अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दरिद्रोऽपिनृपोत्तम॥२४॥
सदाचरन्यथाशक्ति स्नानदानादिकाःक्रियाः। होमस्नानजपध्यानसत्रादि पुण्यकर्मणाम् ॥२५॥
कर्त्तारो नैव पश्यन्ति घोरां तां यमयातनाम् ।
दीर्घायुषो धनाढ्याश्च कुलीना रोगवर्जिताः ॥२६॥
दृश्यन्ते मानवालोके पुण्यकर्त्तार ईदृशाः। किमत्र बहुनोक्तेन यान्त्यधर्मेण दुर्गतिम् ॥२७॥
आरोहन्ति दिवं धर्मैर्नात्र कार्याविचारणा। इतिते कथितं राजन्यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥
पाशाङ्कुशाया माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे आश्विनशुक्लपाशाङ्कुशैकादशीमाहात्म्यं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

एकसठवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

कथयस्व प्रसादेन मयि स्नेहाज्जनार्दन। कार्तिकस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

श्रूयतां राजशार्दूल कथयामि तवाग्रतः। कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु रमा नामसुशोभना॥२॥

दरिद्र को भी चाहिए कि वह बिना पुण्य किए दिन न बितने दे ॥२४॥ अपनी शक्ति के अनुसार चार का पाल करने वाले, स्नान, दान आदि कार्यों को करने वाले होम, स्नान, जप तथा ध्यान तथा सत्र आदि पुण्यकर्मों को करने वाले भयङ्कर यम यातना को नहीं प्राप्त करते हैं । ऐसे लोग दीर्घायु, धनी, कुलीन तथा निरोग हो जाते हैं ॥२५-२६॥ इस तरह के कर्मों को करने वाले मनुष्य ऐसा ही दिखते हैं । बहुत क्या कहना है, अधर्म करने वाले दुर्गति को प्राप्त करते हैं ॥२७॥ धर्मों को करने वाले स्वर्ग लोक जाते हैं, इस विषय में कोई भी विचार करने का अवसर नहीं है । राजन् ! आपने जो पूछा था उस पाशांकुशा का वर्णन मैंने कर दिया, अब आप क्या सुनना चाहते हैं ?॥२८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत आश्विन शुक्ल पक्ष की पाशाङ्कुशा एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक साठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६०।।

कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की रमा एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— हे जनार्दन ! मुझ पर स्नेह होने के कारण आप कृपा करके इस बात को बतलायें कि कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में किस नाम वाली एकादशी होती है ?॥१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा**— राजवर्य ! आप सुनें कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में रमा नाम की एकादशी होती है ॥२॥ यह

एकादशी समाख्याता महापापहरापरा। अस्याः प्रसङ्गतो राजन्माहात्म्यं प्रवदामि ते॥३॥
मुचुकुन्द इति ख्यातो बभूवनृपतिः पुरा । देवेन्द्रेण समं तस्य मित्रत्वमभवन्नृप॥४॥
यमेन वरुणेनैव कुबेरेणापि सर्वथा। विभीषणेन यस्यैव सखित्वमभवन्नृप ॥५॥
विष्णुभक्तः सत्यसन्धो बभूव नृपतिः परः। तस्यैव शासतो राजन्राज्यं निहतकण्टकम् ॥६॥
बभूव दुहिता गेहे चन्द्रभागा सरिद्वरा। शोभनाय च सा दत्ता चन्द्रसेनसुताय वै ॥७॥
स कदाचित्समायातः श्वशुरस्य गृहे नृप । एकादशी व्रतदिनं समायातं सुपुण्यदम्॥८॥
समागते व्रतदिने चन्द्रभागा त्वचिन्तयत्। किंभविष्यति देवेश मम भर्त्ताऽतिदुर्बलः ॥९॥
क्षुधां न क्षमते सोढुं पिता चैवोग्रशासनः । पटहस्ताड्यते यस्य संप्राप्ते दशमीदिने ॥१०॥

न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं हरेर्दिने ।
श्रुत्वा पटहनिर्घोषं शोभनस्त्वब्रवीत्प्रियाम् ॥११॥
किं कर्त्तव्यं मया कान्ते ब्रूह्युपायं सुशोभने ।
कृतेन येन मे सम्यग्जीवितं न विनश्यति ॥१२॥

चन्द्रभागोवाच

मत्पितुर्वेश्मनि प्रभो ! भोक्तव्यं नाद्य केनचित् ।
गजैरश्वैश्च कलभैरन्यैः पशुभिरेव च ॥१३॥

तृणमन्नं तथा वारि न भोक्तव्यं हरेर्दिने। मानवैश्च कुतः कान्त ! भुज्यते हरिवासरे॥१४॥

यदि त्वं भोक्ष्यसे कान्त ततो गर्हां प्रयास्यसि ।
एवं विचार्य मनसा सुदृढं मानसंकुरु ॥१५॥

शोभन उवाच

सत्यमेतत्प्रिये वाक्यं करिष्येऽहमुपोषणम्। दैवेन विहितं यद्धि तत्तथैव भविष्यति॥१६॥

एकादशी महापापों को विनष्ट करने वाली है । इसका माहात्म्य मैं प्रसङ्गानुसार कह रहा हूँ ॥३॥ प्राचीन काल में मुचुकुन्द नामक प्रख्यात राजा हुए उनकी इन्द्र के साथ मित्रता हो गयी ॥४॥ उनकी यम, वरुण, कुबेर तथा विभीषण से भी मित्रता हो गयी थी ॥५॥ वे राजा भगवान् विष्णु के भक्त और सत्यवादी थे। इस तरह से प्रशासन करने वाले उस राजा का राज्य अकण्टक था ॥६॥ उनके घर में चन्द्रभागा नामक पुत्री हुयी । वह श्रेष्ठ नदी हो गयी । उसका विवाह उन्होंने चन्द्रसेन के पुत्र शोभन से किया ॥७॥ राजन्! वे एक बार अपने श्वशुर के घर आये । उसी दिन पुण्यप्रद एकादशी का दिन आया ॥८॥ व्रत का दिन आने पर चन्द्रभागा ने भगवान् से प्रार्थना किया कि हे भगवन् क्या होगा ? मेरे पति अत्यन्त दुर्बल हैं । वे भूख बर्दास्त नहीं कर सकते हैं और हमारे पिता का शासन उग्र हैं । वे दशमी के ही दिन नगाड़ा बजवा देते हैं ॥९-१०॥ एकादशी के दिन किसी को भोजन नहीं करना चाहिए । नगाड़े की ध्वनि सुनकर शोभन ने अपनी पत्नी से कहा ॥११॥ हे प्रिये ! मैं क्या करूँ ? जिसके करने से मेरा जीवन नष्ट न हो ॥१२॥
चन्द्रभागा ने कहा— मेरे पिता के घर में कोई भी भोजन नहीं करता है, हाथी, घोड़े, हाथी के बच्चे, दूसरे पशु भी एकादशी के दिन तृण, अन्न तथा जल का उपभोग नहीं करते हैं । अतएव हे कान्त ! मनुष्य कैसे भोजन कर सकते है ?॥१३-१४॥ कान्त यदि आप भोजन करेंगे तो आपकी निन्दा होगी । इस तरह

इति दृढां मतिं कृत्वा चकार नियमं व्रते । क्षुधया पीडिततनुः स बभूवातिदुःखितः ॥१७॥
इति चिन्तयतस्तस्य आदित्योऽस्तमगाद्गिरिम् ।
वैष्णवानां नराणां सा निशा हर्षविवर्धनी ॥१८॥
हरिपूजारतानां च जागरासक्तचेतसाम् । बभूव नृपशार्दूल ! शोभनस्यातिदुःखदा ॥१९॥
रवेरुदयवेलायां शोभनः पञ्चतां गतः । दाहयामास राजा तं राजयोग्यैश्च दारुभिः ॥२०॥
चन्द्रभागा नात्मदेहं ददाह पतिना सह । कृत्वौर्ध्वदैहिकं तस्य तस्थौ जनकवेश्मनि ॥२१॥
शोभनश्च नृपश्रेष्ठ ! रमाव्रतप्रभावतः । प्राप्तो देवपुरं रम्यंमन्दराचलसानुनि ॥२२॥
अनुत्तममनाधृष्यमसङ्ख्येयगुणान्वितम् । हेमस्तम्भमयैः सौधै रत्नवैडूर्यमण्डितैः ॥२३॥
स्फाटिकैर्विविधाकारैर्विचित्रैरुपशोभितैः । सिंहासनसमारूढः सुश्वेतच्छत्रचामरः ॥२४॥
किरीटकुण्डलयुतो हारकेयूरभूषितः । स्तूयमानश्च गन्धर्वैरप्सरोगणसेवितः ॥२५॥
शोभनः शोभते यत्र राजराजोऽपरो यथा । सोमशर्मेति विख्यातो मुचुकुन्दपुरेऽभवत् ॥२६॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन भ्रमन्विप्रो ददर्श तम् । नृपजामातरं ज्ञात्वा तत्समीपं जगाम सः ॥२७॥
शोभनोऽपि तदा ज्ञात्वा सोमशमर्माणमागतम् ।
आसनादुत्थितः शीघ्रं नमश्चक्रे द्विजोत्तमम् ॥२८॥
चकार कुशलप्रश्नं श्वशुरस्य नृपस्य च । कान्तायाश्चन्द्रभागायास्तथैव नगरस्य च ॥२९॥

से विचार करके आप अपने मन को सुदृढ़ बनाइये । **शोभन ने कहा—** हे प्रिये ! तुम्हारा यह वाक्य सत्य है, मैं उपवास करूँगा । भाग्य में जो लिखा होगा वही होगा ॥१५-१६॥ इस तरह से अपनी सुदृढ़ बुद्धि बनाकर उन्होंने व्रत का नियम किया । भूख से पीड़ित होने के कारण वे अत्यन्त दुःखी हो गये ॥१७॥ इस तरह से उसके सोचते हुए सूर्यास्त हो गया । वह रात्रि वैष्णव मनुष्यों के हर्ष को बढ़ाने वाली थी॥१८॥ श्रीहरि की पूजा में लगे हुए तथा जागरण करने वाले लोग जब हर्षित थे उसी समय अत्यन्त दुःखी शोभन की सूर्योदय की बेला में मृत्यु हो गयी । राजा ने दाह के योग्य काष्ठों से शोभन का दाह कर्म किया ॥१९-२०॥ चन्द्रभागा ने अपने पति के साथ अपने शरीर को नहीं जलाया । अपने पति की और्ध्व दैहिक क्रिया करके अपने पिता के ही घर बनी रही ॥२१॥ रमा एकादशी के प्रभाव से शोभन मन्दराचल पर्वत के शिखर पर विद्यमान मनोहर देवताओं की नगरी में चला गया ॥२२॥ वह नगर सर्वोत्तम, अनाधृष्य तथा असंख्य गुणों से युक्त था । वहाँ के महल सुवर्ण के स्तम्भों से युक्त थे, रत्नों तथा वैडूर्यमणि से अलंकृत थे तथा अनेक प्रकार की स्फटिक मणियों से उसकी उपशोभा बनायी गयी थी। अत्यन्त श्वेत छत्र तथा चामर से युक्त वह सिंहासन पर बैठा था ॥२३-२४॥ किरीट, केयूर, कुण्डल तथा हार से अलंकृत था शोभन । गन्धर्व उसकी स्तुति कर रहे थे और अप्सरायें उसकी सेवा कर रही थीं॥२५॥ वहाँ पर शोभन दूसरे कुबेर के समान सुशोभित होता था । मुचकुन्दपुर में सोमशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहते थे । तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में भ्रमण करते हुए उन्होंने शोभन को देखा । उसको राजा का दामाद जानकर वे उसके पास गये ॥२६-२७॥ उस समय सोमशर्मा को आये हुए जानकर शोभन भी अपने आसन से उठकर उनको प्रणाम किए ॥२८॥ उन्होंने अपने राजा श्वसुर का कुशल पूछा । अपनी पत्नी चन्द्रभागा तथा नगर का भी कुशल पूछा ॥२९॥ **सोमशर्मा ने कहा—** हे राजन् ! आपके श्वसुर के गृह

सोमशर्मोवाच

कुशलं वर्त्तते राजञ्छ्वशुरस्य गृहे तव। चन्द्रभागा कुशलिनी सर्वतः कुशलं पुरे॥३०॥
स्ववृत्तं कथ्यतां राजन्नाश्चर्यं विद्यतेऽद्भुतम्।
पुरं विचित्रं रुचिरं न दृष्टं केनचित्क्वचित्। एतदाक्ष्व नृपते कुतः ! प्राप्तमिदं त्वया ॥३१॥

शोभन उवाच

कार्त्तिकस्यासिते पक्षे या नामैकादशी रमा ।
तामुपोष्य मया प्राप्तं द्विजेन्द्रपुरमध्रुवम् ॥
ध्रुवं भवति येनैव तत्कुरुष्व द्विजोत्तम ! ॥३२॥

द्विज उवाच

कथमध्रुवमेतद्धि कथं हि भवति ध्रुवम्। तत्त्वं कथय राजेन्द्र ! तत्करिष्यामि नान्यथा ॥३३॥

शोभन उवाच

मयैतद्विहितं विप्र श्रद्धाहीनं व्रतोत्तमम्। तेनाहमध्रुवं मन्ये ध्रुवं भवति तच्छृणु ॥३४॥
मुचुकुन्दस्य दुहिता चन्द्रभागा सुशोभना। तस्यै कथय वृत्तान्तं ध्रुवमेतद्भविष्यति ॥३५॥

श्रीकृष्ण उवाच

स श्रुत्वा वचनं तस्य मुचुकुन्दपुरं गतः। उवाच सर्वं वृत्तान्तं चन्द्रभागाग्रतो द्विजः ॥३६॥

सोमशर्मोवाच

प्रत्यक्षं दयितः कान्तस्तवदृष्टो मया शुभे ! ।
स्वर्गतुल्यमनाधृष्यं दृष्टं तस्य पुरं मया ॥
अध्रुवं तेन तत्प्रोक्तं ध्रुवं भवति तत्कुरु ॥३७॥

चन्द्रभागोवाच

तत्र मां नयविप्रर्षे पतिदर्शनलालसाम्। आत्मनो व्रतपुण्येन करिष्यामि पुरं ध्रुवम् ॥३८॥

में कुशल है। आपकी पत्नी चन्द्रभागा और नगर का भी कुशल है ॥३०॥ हे राजन् ! आप अपना वृत्तान्त बतलाइये आपके विषय में अद्भुत आश्चर्य है। इस अद्भुत नगर को किसी ने नहीं देखा है। आप बतलायें कि आपको यह नगर कैसे प्राप्त हुआ ?॥३१॥ **शोभन ने कहा—** कार्तिक मास की जो रमा नाम की एकादशी है उसी का व्रत करके मैंने इस नगर को प्राप्त किया है। हे द्विजोत्तम ! जो व्रत को करता है, उसका कल्याण निश्चित रूप से होता है। अतएव आप भी इसको करें ॥३२॥ **ब्राह्मण ने कहा—** यह तो अध्रुव है, यह ध्रुव कैसे हो सकता है ? इसको आप ठीक-ठीक कहें तो मैं भी इस व्रत को करूँगा। नहीं तो नहीं ॥३३॥ **शोभन ने कहा—** हे द्विजोत्तम ! मैंने इस व्रत को बिना श्रद्धा के ही किया था अतएव मैं अपने राज्य को अध्रुव मानता हूँ। यह जैसे ध्रुव होता है, उसे आप सुनें ॥३४॥ मुचकुन्द की सुन्दरी पुत्री चन्द्रभागा को आप इस बात को बतला दें तो यह ध्रुव हो जायेगा ॥३५॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** उसको सुनकर वे ब्राह्मण मुचकुन्द पुर में गये। उन्होंने सारी बातें चन्द्रभागा को बतलाया ॥३६॥ **सोमशर्मा ने कहा—** हे शुभे ! मैंने तुम्हारे पति को प्रत्यक्ष देखा है। मैंने उसके स्वर्ग के समान अनाधृष्य (अपराजेय) नगर को भी देखा है। उन्होंने उस नगर को अध्रुव बतलाया है, तुम

आवयोर्द्विज संयोगो यथा भवति तत्कुरु। प्राप्यते हि महत्पुण्यं कृत्वा योगं वियुक्तयोः ॥३९॥
इति श्रुत्वा सह तया सोमशर्मा जगाम ह। आश्रमं वामदेवस्य मन्दराचलसन्निधौ ॥४०॥
वामदेवोऽश्रृणोत्सर्वं वृत्तान्तं कथितं तयोः। अभ्यषिञ्चच्चन्द्रभागां वेदमन्त्रैरथोज्ज्वलाम् ॥४१॥
ऋषिमन्त्रप्रभावेण विष्णुवासरसेवनात्। दिव्यदेहा बभूवाऽसौ दिव्यां गतिमवापह ॥४२॥
पत्युः समीपमगमत्प्रहर्षोत्फुल्ललोचना। जहर्ष शोभनोऽतावद् दृष्ट्वा कान्तां समागताम्॥४३॥
समाहूय स्वके वामे पार्श्वे तासंन्यवेशयत्। अथोवाचप्रियं हर्षाच्चन्द्रभागाप्रियं वचः ॥४४॥
श्रृणु कान्त ! हितं वाक्यं यत्पुण्यं विद्यते मयि।
अष्टवर्षाधिका जाता यदाऽहं पितृवेश्मनि ॥४५॥
ततः प्रभृति यच्चीर्णं मया चैकादशीव्रतम्। यथोक्तविधिसंयुक्तं श्रद्धायुक्तेन चेतसा॥४६॥
तेन पुण्यप्रभावेण भविष्यति पुरं ध्रुवम्। सर्वकामसमृद्धं च यावदाभूतसंप्लवम् ॥४७॥
एवं सा नृपशार्दूल रमते पतिना सह। दिव्यभोगा दिव्यरूपा दिव्याभरणभूषिता ॥४८॥
शोभनोऽपि तया सार्द्धं रमते दिव्यविग्रहः। रमाव्रतप्रभावेण मन्दराचलसानुनि ॥४९॥
चिन्तामणिसमा ह्येषा कामधेनुसमावथा। रमाभिधाना नृपते तवाग्रे कथिता मया॥५०॥
तस्या माहात्म्यमनघ ! श्रुतं सर्वं त्वया नृप !।
गया तवाग्रे कथितं माहात्म्यं पापनाशनम् ॥५१॥

उसको ध्रुव बना दो ॥३७॥ **चन्द्रभागा ने कहा—** हे विप्रर्षे ! आप मुझे वहाँ ले चलिए मैं अपने पति का दर्शन करना चाहती हूँ। अपने व्रत के पुण्य से उसको मैं ध्रुव बना दूँगी। हे द्विज ! हमदोनों का संयोग जैसे हो वैसा आप करें। हम दोनों वियुक्त हुओं का संयोग कराने से आपको महान पुण्य की प्राप्ति होगी ॥३८-३९॥ इस तरह से सुनकर सोमशर्मा उसके साथ वहाँ मन्दराचल के सन्निकट महर्षि वामदेव का आश्रम था। महर्षि वामदेव ने उन दोनों के कहे गये वृत्तान्त को सुना। उन्होंने शुद्ध चन्द्रभागा का वेद मन्त्रों से अभिषेक किया ॥४०-४१॥ ऋषि के मन्त्र के प्रभाव से तथा एकादशी व्रत का सेवन करने के कारण चन्द्रभागा का शरीर दिव्य हो गया और उसने दिव्य गति को प्राप्त कर लिया ॥४२॥ आनन्द से विकसित नेत्रों वाली वह अपने पति के सन्निकट चली गयी। वह अपनी आयी हुयी प्रियतमा को देखकर प्रसन्न हो गया ॥४३॥ उसको बुलाकर उन्होंने अपने बायें भाग में बैठाया। इसके पश्चात् चन्द्रभागा ने अपने पति से प्रिय वाणी कहा ॥४४॥ हे कान्त ! मेरी प्रिय वाणी आप सुनें मुझसे जो पुण्य है उसे बतलाती हूँ। आठ वर्ष से अधिक बीत गये हैं तब से मैं अपने पिता के घर में हूँ। उसी समय से मैंने श्रद्धा पूर्वक विधि विधान के साथ एकादशी व्रत का पालन किया है ॥४५॥ उसी समय से मैंने एकादशी व्रत का पालन विधि पूर्वक और श्रद्धा युक्त अन्तःकरण से किया है ॥४६॥ उसी पुण्य के प्रभाव से यह नगर ध्रुव हो जायेगा और महाप्रलय काल पर्यन्त यह समस्त काम्य पदार्थो से समृद्ध बना रहेगा॥४७॥ हे राजवर्य ! इस प्रकार वह अपने पति के साथ रमण करती है। वह दिव्य भोगों, दिव्य रूप तथा दिव्य आभरण से भूषित है ॥४८॥ शोभन भी रमा एकादशी व्रत के प्रभाव से मन्दराचल पर्वत के शिखर पर दिव्य देह धारण करके उसके साथ रमण करते हैं ॥४९॥ हे राजन् ! यह रमा एकादशी जिसका वर्णन मैंने आपके समक्ष किया है, वह चिन्मामणि अथवा कामधेनु के समान है ॥५०॥ आपने उसका सम्पूर्ण माहात्म्य

एकादशीव्रतानां च पक्षयोरुभयोरपि। यथा कृष्ण तथा शुक्ला विभेदं नैव कारयेत्॥५२॥
सेवितेकादशी नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी। धेनुःश्वेतायथा कृष्णा उभयोः सदृशं पयः॥५३॥
तथैव तुल्यफलदं स्मृतमेकादशीद्वयम् ॥५४॥
एकादशीव्रतानां यो माहात्म्यं शृणुते नरः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥५५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे कार्त्तिककृष्णरमेकादशी माहात्म्यं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

बासठवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतं रमाया महात्म्यं त्वत्तः कृष्ण यथातथम् ।
कार्त्तिकेशुक्लपक्षे या तां मे कथयमानद ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि शुक्ले चोर्जदले तु या ।
सा यथा नारदायोक्ता ब्रह्मणा लोककारिणा ॥२॥

नारद उवाच

प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं वद विस्तरतो मम। यस्यां जागर्ति गोविन्दो धर्मकर्मप्रवर्त्तकः ॥३॥

सुना है। मैंने आपके समक्ष पाप विनाशक माहात्म्य कहा है ॥५१॥ दोनों पक्षों की एकादशी व्रतों में किसी प्रकार का भेद नहीं करना चाहिए। जैसी शुक्ल पक्ष की एकादशी है उसी तरह की कृष्ण पक्ष की भी एकादशी है ॥५२॥ जिस तरह धेनु चाहे श्वेत हो या काली हो दोनों का दूध एक समान होता है उसी तरह से ये एकादशियाँ हैं। इन सबों का सेवन करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥५३॥ इसी तरह दोनों पक्षों की एकादशी एक समान फल देने वाली बतलायी गयी हैं ॥५४॥ जो मनुष्य एकादशियों के माहात्म्य का श्रवण करता है वह सभी पापों से रहित होकर भगवान् विष्णु के लोक में पूजित होता है ॥५५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की रमा एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक एकसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६१।।

कार्तिक शुक्ल पक्ष की प्रबोधिनी एकादशी का माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— हे कृष्ण ! मैंने आपसे रमा एकादशी का यथावत् माहात्म्य सुना है। हे मानद! कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में जो एकादशी होती है, आप मुझे उसका ही माहात्म्य सुनाइये ॥१॥
भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा— राजन् ! मैं कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में होने वाली एकादशी का माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्धनम्। मुक्तिप्रदं सुबुद्धीनां शृणुश्व मुनिसत्तम ॥४॥
तावन्नर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च। यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्तिके ॥५॥
तावन्नर्जन्ति विपेन्द्र गङ्गाभागीरथीक्षितौ। यावन्नायाति पापघ्नी कार्तिके हरिबोधिनी॥६॥
अश्वमेधसहस्त्राणि राजसूयशतानि च। एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्या लभेन्नरः ॥७॥
यद्दुर्लभं यदप्राप्यं त्रैलोक्यम्य न गोचरम्। तदप्यप्रार्थितं पुत्र ! ददाति हरिबोधिनी ॥८॥
ऐश्वर्य संपदं प्रज्ञां राज्यं च सुखसंपदः। ददात्युपोषिता भक्तया जनेभ्योहरिबोधिनी ॥९॥
मेरुमन्दरमात्राणि पापान्युक्तानि यानि च। एकेनैवोपवासेन दहते पापनाशिनी ॥१०॥
पूर्वजन्मसहस्त्रेषु यत्पापं समुपार्जितम्। निशि जागरणं चास्यादहतेतूलराशिवत् ॥११॥
उपवासंप्रबोधिन्यां यः करोतिस्वभावतः। विधिवन्मुनिशार्दूलयथोक्तंलभतेफलम् ॥१२॥
यथोक्तं कुरुतेयस्तु विधिवत्सुकृतं नरः। स्वल्पं मुनिवरश्रेष्ठ ! मेरुतुल्यं भवेत्फलम् ॥१३॥
विधिहीनं तु यः कुर्यात्सुकृतं मेरुमात्रकम्। अणुमात्रं तदाप्नोति फलं धर्मस्य नारद॥१४॥

ये ध्यायन्ति मनोवृत्त्या ये करिष्यन्ति बोधिनीम्।
वसन्ति पितरो हृष्टा विष्णुलोके च तस्य वै ॥१५॥
विमुक्ता नारकैर्दुःखैर्यान्ति विष्णोः परंपदम्।
कृत्वा तु पातकंघोरं ब्रह्महत्यादिकंनरः ॥१६॥

मैं उसी प्रकार से बतला रहा हूँ जैसा कि नारदजी के पूछने पर ब्रह्माजी ने कहा था ॥२॥ **नारदजी ने कहा—** जिस एकादशी को धर्म कर्मों के प्रवर्तक श्रीभगवान् जागते हैं, आप उस प्रबोधिनी एकादशी का माहात्म्य विस्तार से मुझे सुनायें ॥३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रबोधिनी एकादशी का महात्म्य पाप विनाशक तथा सुन्दर बुद्धि वालों के पुण्य को बढाने वाला है ॥४॥ समुद्र से लेकर सरोवर पर्यन्त के सभी तीर्थ तक गर्जना करते हैं जब तक भगवान् विष्णु के जगने की कार्तिक मास में तिथि नहीं आती है ॥५॥ हे विप्रेन्द्र ! पृथिवी पर तब तक ही गङ्गा तथा भागीरथी इत्यादि तीर्थ गरजते हैं, जब तक कार्तिक मास में हरि प्रबोधिनी एकादशी नहीं आ जाती है ॥६॥ हजारों अश्वमेध तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञ के फलों को मनुष्य प्रबोधिनी एकादशी के एक ही उपवास से प्राप्त कर लेता है ॥७॥ जो वस्तु दुर्लभ और अप्राप्य है, जो त्रैलोक्य का विषय नहीं बनता है। हे पुत्र ! उस अप्रार्थित वस्तु को भी हरिप्रबोधिनी एकादशी प्रदान करती है ॥८॥ विधिपूर्वक उपवास करने पर हरि प्रबोधिनी ऐश्वर्य सम्पत्ति प्रज्ञा राज्य तथा सुख प्रदान करती है ॥९॥ सुमेरु पर्वत तथ मन्दराचल पर्वत के समान भी विशाल जो पाप बतलाये गये हैं, उन सबों को भी पाप विनाशिनी यह एकादशी जला देती है ॥१०॥ हजारों पूर्व जन्मों में किए गये पापों को प्रबोधिनी एकादशी को रात्रि जागरण करने मात्र से यह एकादशी भस्म कर देती है ॥११॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रबोधिनी एकादशी के दिन जो विधि पूर्वक उपवास स्वाभाविक रूप से करता है वह इसके समस्त फलों को प्राप्त करता है ॥१२॥ जो मनुष्य नियम पूर्वक छोटा भी पुण्य करता है तो उसको सुमेरु के समान महान् फल प्राप्त होता है ॥१३॥ जो मनुष्य विधि रहित महान् भी पुण्य करता वह मनुष्य अत्यन्त अल्प फल प्राप्त करता है ॥१४॥ जो लोग मनोवृत्ति पूर्वक प्रबोधिनी एकादशी का व्रत उनके पितृगण प्रसन्नता पूर्वक

कृत्वातुजागरंविष्णोर्द्धौतपापोभवेन्नरः । दुष्प्राप्यं यत्फलं विप्र अश्वमेधादिकैर्मखैः ॥१७॥
प्राप्यते तत्सुखेनैव प्रवोधिन्यास्तु जागरे । आप्लुत्य सर्वतीर्थेशु प्रदाय काञ्चनं महीम् ॥१८॥
यत्फलं समवाप्नोति तत्कृत्वा जागरं हरेः । जातः स एवसुकृतीकुलंतेनैवपावितम् ॥१९॥
कार्तिके मुनिशार्दूल कृतायेन प्रबोधिनी । यथाध्रुवंनृणांमृत्युर्धनंगात्रंतथाध्रुवम् ॥२०॥
इति ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ कर्त्तव्यं वैष्णवं दिनम् ।
यानि कानि च तीर्थानि त्रैलोक्ये संभवन्ति च ॥२१॥
तानि तस्य गृहे सम्यग्यः करोति प्रबोधिनीम् ।
किं तस्य बहुभिः पुण्यैः कृता येन प्रबोधिनी ॥२२॥
पुत्रपौत्रप्रदा ह्येषा कार्तिके हरिबोधिनी । स ज्ञानी च स योगी च स तपस्वी जितेन्द्रियः॥२३॥
भोगो मोक्षश्च तस्यास्ति य उपास्ते प्रबोधिनीम् ।
विष्णोः प्रियतरा ह्येषा धर्मसारसहायिनी ॥२४॥
यः करोति नरो भत्तया मुक्तिभाक्सभवेन्नरः ।
प्रबोधिनीमुपोषित्वागर्भे न विशते नरः ॥२५॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य तस्मात्कुर्वीत नारद। कर्मणा मनसा वाचा पापंयत्समुपार्जितम् ॥२६॥
तत्क्षालयति गोविन्दः प्रबोधिन्यां तु जागरे। स्नानं दानं जपं पूजां समुदिश्य जर्नार्दनम् ॥२७॥
नरो यत्कुरुतेवत्सप्रबोधिन्यांतदक्षयम् । येऽर्चयन्ति नरास्तस्यांभत्तया देवं च माधवम् ॥२८॥

विष्णुलोक में निवास करेंगे ॥१५॥ जो लोग भगवान् विष्णु का जागरण करता है वह मनुष्य निष्पाप हो जाता है, अश्वमेध आदि के जो दुष्प्राप्य फल हैं उन सबों को प्राप्त कर लेता है, नारकीय दुःखों से रहित होकर ब्रह्महत्या आदि भयङ्कर पापों को करने पर भी भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥१६-१७॥ प्रबोधिनी एकादशी को जागरण करके वह सुख पूर्वक उपर्युक्त फलों को प्राप्त कर लेता है । सभी तीर्थो में स्नान करके तथा सुवर्ण एवं पृथिवी का दान करके जो फल प्राप्त होता है ॥१८॥ उस फल को श्रीहरि का जागरण करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है और वह अपने वंश को पवित्र कर देता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! कार्तिक मास में प्रबोधिनी एकादशी करने वाले को उसी तरह से निश्चित रूप से धन और सुन्दर शरीर प्राप्त होता है जिस तरह से मृत्यु निश्चित रूप से होता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! इस बात को जानकर वैष्णव व्रत को करना चाहिये। त्रैलोक्य में जितने भी तीर्थ हैं वे सभी प्रबोधिनी एकादशी करने वाले के घर में आ जाते हैं । प्रबोधिनी एकादशी करने वाले को अनेक पुण्यों को करने से कोई भी लाभ नहीं है ॥१९-२२॥ कार्तिक मास की हरि प्रबोधिनी एकादशी पुत्रों तथा पौत्रों को प्रदान करती है जो प्रबोधिनी एकादशी करने वाला मनुष्य है, वह योगी, ज्ञानी, तपस्वी और जितेन्द्रिय है, वह भोग तथा मोक्ष को प्राप्त करता है । यह एकादशी भगवान् विष्णु को अत्यन्त प्रिय है तथा धर्म के सार भाग की सहायिका है ॥२३-२४॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसे करता है । हे राजन् ! वह मुक्ति प्राप्ति का अधिकारी होता है । प्रबोधिनी एकादशी करने वाला मनुष्य गर्भ में नहीं जाता है ॥२५॥ हे नारद ! इसीलिए सभी सामान्य धर्मों (पुण्य कर्मो) को छोड़कर प्रबोधिनी एकादशी करना चाहिए मन, वाणी और कर्म से जितने भी पापों को मनुष्य किए रहता है उन सबों को प्रबोधिनी एकादशी को जागरण करने पर भगवान् गोविन्द विनष्ट कर देते हैं । स्नान, दान,

समुपोष्य प्रमुच्यन्ते पापैस्तैः शतजन्मजैः । महाव्रतमिदं पुत्र महापापौघनाशनम् ॥२९॥
प्रबोधवासरं विष्णोर्विधिवत्समुपोषयेत् । व्रतेनानेन देवेशं परितोष्य जनार्दनम् ॥३०॥
विराजयन्दिशः सर्वाः प्रयाति हरिमन्दिरम् ।
कर्त्तव्यैषा प्रयत्नेन नरैः कान्तिधनार्थिभिः ॥३१॥
बाल्ये यत्संचितं पापं यौवने वार्द्धके तथा । शतजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥३२॥
तत्क्षालयति गोविन्दश्चास्यामभ्यर्चितो नृणाम् ।
धनधान्यवहा पुण्या सर्वपापहरा परा ॥३३॥
तामुपोष्य हरेर्भक्तया दुर्लभं न भवेत्क्वचित् ।
चन्द्रसूर्योपरागे च यत्फलं परिकीर्तितम् ॥३४॥
तत्सहस्रगुणं प्रोक्तं प्रबोधिन्यां प्रजागरे। स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायोऽभ्यर्चनं हरेः॥३५॥
तत्सर्वंकोटिगुणितं प्रबोधिन्यां कृतं तु यत् । जन्मप्रभृति यत्पुण्यं नरेणोपार्जितं भवेत्॥३६॥
वृथा भवति तत्सर्वमकृत्वा कार्तिके व्रतम् । अकृत्वा नियमं विष्णोः कार्तिकं यः क्षिपेन्नरः॥३७॥
न जन्मार्जितपुण्यस्य फलं प्राप्नोति नारद । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवदेवं जनार्दनम्॥३८॥
उपसेवेत विप्रेन्द्र सर्वकामफलप्रदम् । परान्नं वर्जयेद्यस्तु कार्तिके विष्णुतत्परः ॥३९॥
परान्नवर्जनाद्वत्स चान्द्रायणफलं लभेत् । नित्यं शास्त्रविनोदेन कार्त्तिकं यः क्षिपेन्नरः ॥४०॥
स दहेत्सर्वपापानि यज्ञायुतफलं लभेत् । न तथा तुष्यते यज्ञैर्न दानै र्वा जपादिभिः ॥४१॥

जप, प्रबोधिनी एकादशी का करता है, वह अक्षय हो जाता है । जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवान् माधव की पूजा॥२६-२८॥ प्रबोधिनी एकादशी को उपवास करके करते हैं वे सैकड़ों जन्मों के पापों से छूट जाते हैं। हे पुत्र ! यह महान् व्रत पापों के महान् समूह को विनष्ट करने वाला है ॥२९॥ भगवान् विष्णु के जगने के समय (अर्थात् प्रबोधिनी एकादशी को) विधि विधान पूर्वक उपवास करना चाहिए । इस व्रत के द्वारा भगवान् जनादर्न को प्रसन्न करके मनुष्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करते हुए भगवान् के धाम में जाता है । अतएव कान्ति एवं धन चाहने वालों को यह व्रत प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ॥३०-३१॥ बचपन, जवानी, और वृद्धावस्था में मनुष्य जो पाप किए रहता है, उन सैकड़ों जन्मों के पापों को चाहे वे छोटे हों या बड़े उन समस्त पापों को भगवान् गोविन्द नष्ट कर देते हैं । धन-धानय प्रदान करने वाली और सर्वश्रेष्ठ पुण्य प्रदान करने वाली प्रबोधिनी एकादशी को भक्तिपूर्वक उपवास करने वाले को कहीं भी कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती है । चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के अवसर पर जो पुण्य बतलाये गये है उस के हजार गुना अधिक पुण्य प्रबोधिनी एकादशी को जागरण करने पर होता है । प्रबोधिनी एकादशी को किए गये स्नान, दान, जप और होम के करोड़ गुना फल होते हैं । जन्म से लेकर जो पुण्य किए गये रहते हैं ॥३२-३६॥ वे सबके सब कार्तिक में एकादशी व्रत नहीं करने पर व्यर्थ हो जाते हैं । भगवान् विष्णु का व्रत किए बिना जो कार्तिक का महीना बिता देता है ॥३७॥ वह जन्म भर के किए हुए पुण्यों का फल नहीं प्राप्त करता है। अतएव सभी प्रकार के प्रयासों से भगवान् जनार्दन ॥३८॥ की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली एकादशी की सेवा करनी चाहिए । भगवान् विष्णु के भक्त को कार्तिक मास में परान्न का परित्याग कर देना चाहिए॥३९॥ हे वत्स! परान्न का कार्तिक के महीने में परित्याग करने से चान्द्रायण व्रत का फल मिलता है । जो शास्त्राध्ययन

यथाशास्त्रकथालापैः कार्त्तिके मधुसूदनः ।
ये कुर्वन्ति कथां विष्णोर्ये श्रृण्वन्ति शुभान्विताः ॥४२॥
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा कार्त्तिके गोशतं फलम् ।
सर्वधर्मान्परित्यज्य कार्त्तिके केशवाग्रतः ॥४३॥
शास्त्रावधारणं कार्यं श्रोतव्यं च महामुने ! ।
श्रेयसा लोभबुद्ध्या च यः करोति हरेः कथाम् ॥४४॥
कार्त्तिके मुनिशार्दूल कुलानां तारयेच्छतम् । नियमेन नरो यस्तु शृणुते वैष्णवींकथाम्॥४५॥
कार्त्तिके तु विशेषेण गोसहस्रफलं लभेत् । प्रबोधवासरे विष्णोः शृणुते यो हरेः कथाम्॥४६॥
सप्तद्वीपवतीदाने यत्फलं तल्लभेन्मुने ! । श्रुत्वा विष्णुकथां दिव्यां येऽर्चयन्ति कथाविदम्॥४७॥
स्वशक्तया मुनिशार्दूल तेषां लोकोऽक्षयः स्मृतः ।
गीतशास्त्रविनोदेन कार्त्तिकं यो नयेन्नरः ॥४८॥
न तस्य पुनरावृत्तिर्मया दृष्टा कलिप्रिय ! ।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च भव्यां विष्णुकथां मुने ! ॥४९॥
यः करोति स पुण्यात्मा त्रैलोक्योपरि संस्थितः ।
बहुपुष्पैर्बहुफलैः कर्पूरागुरुकुङ्कुमैः ॥५०॥
हरेः पूजा विधातव्याकार्त्तिके बोधवासरे । यस्मात्पुण्यमसङ्ख्यातं प्राप्यते मुनिसत्तम ॥५१॥
फलैर्नानाविधैर्द्रव्यैः प्रबोधिन्यां तु जागरे । शङ्खे तोयं समादाय अर्घोदेयो जनार्दने ॥५२॥

करते हुए कार्तिक का महीना बिताता है ॥४०॥ वह अपने समस्त पापों को भस्म करके दश हजार जन्मों का फल प्राप्त करता है । भगवान् मधुसूदन यज्ञ दान अथवा जप आदि से उतना प्रसन्न नहीं होते हैं॥४१॥ जितना शास्त्रीय कथाओं से प्रसन्न होते है । कल्याणमयी भगवान् विष्णु की कथा जो कहते हैं अथवा जो लोग सुनते हैं । वे कल्याण प्राप्त करते हैं ॥४२॥ समस्त पुण्य कर्मो को छोड़कर जो भगवान् केशव के सामने आधा श्लोक अथवा शास्त्रीय श्लोक के एक चरण को भी सुनाते हैं, वे सौ गौओं के दान करने का फल प्राप्त करते हैं ॥४३॥ हे महामुने ! शास्त्र का चिन्तन तथा श्रवण करना चाहिए । हे मुनिश्रेष्ठ! जो लोग कल्याण अथवा लोभवश भी कार्तिक के महीने में श्रीहरि की कथा कहते है वह अपनी सौ पीढ़ी के पूर्वजों को तार देते हैं । जो मनुष्य नियम पूर्वक श्रीहरि की कथा सुनता है ॥४४-४५॥ विशेष कर कार्तिक के महीने में वह एक हजार गौ के दान करने का फल प्राप्त करता है । प्रबोधिनी एकादशी को श्रीहरि की कथा सुनते हैं ॥४६॥ हे मुने ! वे सप्तद्वीपा पृथिवी के दान करने का फल प्राप्त करते हैं। भगवान् विष्णु की दिव्य कथा को सुनकर जो लोग कथावाचक की पूजा अपनी शक्ति के अनुसार करते हैं ॥४७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उनको अक्षय लोक की प्राप्ति होती है । जो मनुष्य गीताशास्त्र का चिन्तन करते हुए कार्तिक का महीना बिताता है ॥४८॥ हे नारद ! वह इस लोक में पुनः नहीं आता है । हे मुने ! जो गीत, वाद्य तथा नृत्य के द्वारा भगवान् विष्णु की भव्य कथा करता है ॥४९॥ वह पुण्यात्मा त्रैलोक्य से ऊपर जाता है । अनेक प्रकार के पुण्य, फल कर्पूर अगरु एवं कुङ्कुम से भगवान् श्रीहरि की पूजा कार्तिक के महीने में प्रबोधिनी एकादशी को करना चाहिए । हे मुनिश्रेष्ठ ! उससे असंख्य पुण्य की प्राप्ति होती है ॥५०-५१॥

यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वदानेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं दत्त्वाऽर्घं बोधवासरे ॥५३॥
गुरुपूजा ततः कार्या भोजनाच्छादनादिभिः । दक्षिणाभिश्च देवर्षे तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः ॥५४॥
भागवतं शृणुते यस्तु पुराणं च पठेन्नरः । प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलादानजं फलम् ॥५५॥

कार्त्तिके मुनिशार्दूल स्वशक्त्या वैष्णवं व्रतम् ।
यः करोति यथोक्तं तु मुक्तिस्तस्य सुनिश्चला ॥५६॥

केतक्या एकपत्रेण पूजितो गरुडध्वजः । समाः सहस्रं सुप्रीतो भवति मधुसूदनः ॥५७॥
अगस्तिकुसुमैर्देवं पूजयेद्यो जनार्दनम् । दर्शनात्तस्य देवर्षे नरकाग्निः प्रणश्यति ॥५८॥
मुनिपुष्पार्चितो विष्णुः कार्त्तिके पुरुषोत्तमः । ददात्यभिमतान्कामाञ्छशिसूर्यग्रहे यथा ॥५९॥
विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम् । कार्त्तिके योऽर्चयेद्भक्तया वाजिमेधफलं लभेत् ॥६०॥

तुलसीदलानि पुष्पाणि ये यच्छन्ति जनार्दने ।
कार्त्तिके सकलं पापं वत्सजन्मायुतं दहेत् ॥६१॥
दृष्टा स्पृष्टाथवा ध्याता कीर्तिता नामतः स्तुता ।
रोपिता सेचिता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा ॥६२॥

नवधातुलसी भक्तिं ये कुर्वन्ति दिने दिने । युगोटिसहस्राणि तन्वन्ति सुकृतं मुने ॥६३॥
यावच्छाखाप्रशाखाभिर्बीजपुष्पदलैर्मुने । रोपिता तुलसीपुम्भिर्वर्धते वसुधातले ॥६४॥

तेषां वंशे तु ये जाता ये भविष्यन्ति ये गताः ।
आकल्पवर्षसाहस्रं तेषां वासो हरेर्गृहे ॥६५॥

प्रबोधिनी एकादशी को जागरण के समय अनेक प्रकार के द्रव्यों से युक्त जल शङ्ख में भरकर भगवान् जनार्दन को अर्घ्य देना चाहिए ॥५२॥ सभी तीर्थों में सभी प्रकार के दानों को करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसके करोड़ गुना फल प्रबोधिनी एकादशी को भगवान् विष्णु को अर्घ्य देने से प्राप्त होता है ॥५३॥ उसके बाद भोजन, वस्त्र और दक्षिणा से कथा वाचक की पूजा भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए करनी चाहिए ॥५४॥ जो मनुष्य कार्तिक के महीने में भागवत पढ़ता अथवा सुनता है उसको प्रत्येक अक्षर पर कपिला गौ के दान करने का फल प्राप्त होता है ॥५५॥ केवड़ा के एक पत्र से भी पूजा करने पर भगवान् मधुसूदन हजार वर्षों तक प्रसन्न रहते हैं ॥५६-५७॥ हे नारद ! जो अगस्त के फूल से भगवान् जनार्दन की जो पूजा करता है, उस मनुष्य के दर्शन करने से नरक का भय विनष्ट हो जाता है॥५८॥ मुनि पुष्प (अगस्त के फूल) से पूजा कार्तिक के महीने में करने से भगवान् उसी तरह से सारी कामनओं को पूर्ण करते है जैसे चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण के अवसर पर पूजा करने से ॥५९॥ सभी पुष्पों को छोड़कर जो कार्तिक के महीने में अगस्त पुष्प से श्रीभगवान् की पूजा करता है वह अश्वमेधयाग का फल प्राप्त करता है ॥६०॥ हे वत्स ! जो मनुष्य तुलसी दल तथा उसके पुष्प को भगवान् पर चढ़ता है उसके दश हजार जन्मों के पाप भस्म हो जाते हैं ॥६१॥ प्रतिदिन तुलसी का दर्शन करने, स्पर्श करने या ध्यान करने या उसका नाम लेने या स्तुति करने, या रोपने, या सींचने तथा पूजा करने से मङ्गल होता है ॥६२॥ हे मुने ! जो तुलसी की उपर्युक्त नव प्रकार की भक्ति करता है उसके हजार करोड़ वर्षों तक पुण्य बने रहते हैं ॥६३॥ जिसके द्वारा रोपी गयी तुलसी अपनी शाखाओं और प्रशाखाओं के साथ बढ़ती है उसके वंश

यत्फलं सर्वपुष्पेषु सर्वपत्रेषु नारद। तुलसीदलेन चैकेन कार्त्तिके प्राप्यते तु तत् ॥६६॥
सम्प्राप्तं कार्त्तिकं दृष्ट्वा नियमेन जनार्दनः। पूजनीयो महाविष्णुः कोमलैस्तुलसीदलैः ॥६७॥
इष्ट्वा क्रतुशतैर्देवान्दत्त्वा दानान्यनेकशः। तुलसीदलैस्तु तत्पुण्यं कार्त्तिके केशवार्चने ॥६८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे कार्त्तिकशुक्लैकादशीमाहात्म्यं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥
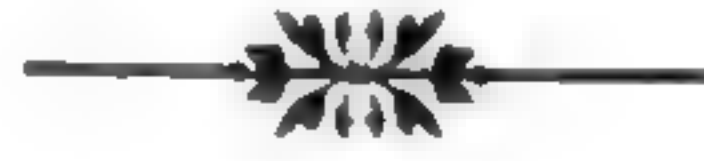
तिरसठवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम्। सर्वपापहरं विष्णोः फलदं व्रतिना चयत् ॥१॥
पुरुषोत्तममासस्य कथां ब्रूहि जनार्दन। कोविधिः किं फलं तस्य को देवस्तत्र पूज्यते ॥२॥

अधिमासे च सम्प्राप्ते व्रतं ब्रूहि जनार्दन।
कस्य दानस्य किं पुण्यं किं कर्त्तव्यं नृभिः प्रभो! ॥३॥
कथं स्नानं च किं जाप्यं कथं पूजाविधिः स्मृतः।
किंभोज्यमुत्तमं चान्नं मासेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे ॥४॥

में उत्पन्न होने वाले तथा मृत सभी लोग कल्प वर्ष पर्यन्त श्रीहरि के लोक में निवास करते हैं ॥६४-६५॥ हे नारद! सभी पुष्पों तथा सभी पत्रों की हरि पर चढ़ाने से जो पुण्य होता है, कार्तिक के महीने में तुलसी का एक पत्र श्रीभगवान् पर चढ़ाने से ही उतने पुण्य की प्राप्ति हो जाती है ॥६६॥ कार्तिक के महीने के आने पर महाविष्णु जनार्दन की तुलसी से नियम पूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥६७॥ सैकड़ों यज्ञों के द्वारा देवताओं की पूजा करने तथा अनेक दानों के देने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है उस पुण्य की प्राप्ति कार्तिक में तुलसीदल से भगवान् केशव की अर्चना करने से होती है ॥६८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तरे खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत कार्तिक शुक्ल एकादशी के माहात्म्य वर्णन नामक बासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६२॥

पुरुषोत्तम मास के कृष्णपक्ष की कमला एकादशी का माहात्म्य

युधिष्ठिर ने कहा— हे भगवन्! मैं सभी पापों को विनष्ट करने वाले, व्रतियों को फल प्रदान करने वाले, व्रतियों को फल प्रदान करने वाले सर्वोत्तम व्रत को सुनना चाहता हूँ ॥१॥ हे जनार्दन! आप पुरुषोत्तम मास की कथा कहें उसकी विधि क्या है? उसके फल कौन हैं? तथा उसके देवता कौन है?॥२॥ अधिक मास के आने पर हे जनार्दन! कौन सा व्रत करना चाहिए? हे प्रभो! मनुष्यों को क्या करना चाहिए? तथा किस दान के करने से कौन सा पुण्य होता है?॥३॥ हे राजन्! उसे कैसे स्नान करना चाहिए? किस

श्रीकृष्ण उवाच

कथयिष्यामि राजेन्द्र ! भवतः स्नेहकारणात् ।
पुरुषोत्तममासस्य माहात्म्यं पापनाशनम् ॥५॥

अधिमासे तु संप्राप्ते भवेदेकादशी तु या । कमला नाम सा नाम्ना तिथीनामुत्तमा तिथिः॥६॥
तस्या व्रतप्रभावेण कमलाभिमुखी भवेत्। ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय संस्मृत्य पुरुषोत्तमम्॥७॥
स्नात्वा चैव विधानेन नियमं कारयेद्व्रती । गृहे त्वेकगुणं जाप्यं नद्यां तु द्विगुणं स्मृतम्॥८॥
गवां गोष्ठे सहस्रोर्ध्वमान्यगारे शतान्वितम्। शिवक्षेत्रेषु तीर्थेषु देवतानां चसन्निधौ॥९॥
लक्षं तुलस्याः सान्निध्ये ह्यनन्तं विष्णुसन्निधौ ।
अवन्त्यामभवत्कश्चिच्छिवशर्मा द्विजोत्तमः ॥१०॥
तस्यात्मजास्तु पञ्चासन्कनिष्ठो दोषवानभूत्। तदा पित्रा परित्यक्तस्त्यक्तः स्वजनबान्धवैः ॥११॥
कुकर्मणः प्रभावेण गतो दूरतरं वनम् । एकदा दैवयोगेन तीर्थराजं समागतः ॥१२॥
क्षुत्क्षामो दीनवदनस्त्रिवेण्यां स्नानमाचरत् । मुनीनामाश्रमांस्तत्र विचिन्वन्क्षुधयार्दितः ॥१३॥
हरिमित्रमुनेस्तत्र ददर्शाश्रममुत्तमम् । पुरुषोत्तममासे वै जानानां च समागमे॥१४॥
तत्राश्रमे कथयतां कथां कल्मषनाशिनीम् । ब्राह्मणानां मुखात्तेन श्रद्धया कमलाश्रुता ॥१५॥
एकादशी पुण्यतमा भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी। जयशमी विधानेन श्रुत्वेमां कमलातिथिम्॥१६॥
एकादशी पुण्यतमा भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी। व्रतकृतं च तैः सार्द्धं स्थित्वा शून्यालये तदा॥१७॥
निशीथे समनुप्राप्ते लक्ष्मीस्तत्र समागताः। वरं ददामि भोविप्र कमलायाःप्रभावतः॥१८॥

मन्त्र का जप करना चाहिए ? और उसकी पूजा विधि कौन है ? इस पुरुषोत्तम मास में किस अन्न का भोजन उत्तम होता है ? **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजेन्द्र ! आपसे स्नेह होने के कारण मैं पाप नाशक पुरुषोत्तम मास का माहात्म्य कहता हूँ ॥५॥ अधिक मास के आने पर जो एकादशी होती है उसका नाम कमला है । वह सभी तिथियों में उत्तम तिथि है ॥६॥ उसके प्रभाव से लक्ष्मीजी प्रसन्न होती है । ब्राह्ममुहूर्त में जगकर भगवान् पुरुषोत्तम का स्मरण करके ॥७॥ विधि पूर्वक स्नान करके व्रती को नियम करना चाहिए । घर में जप का एक गुना फल होता है । नदी में जप करने से दो गुना फल कहा गया है ॥८॥ गोशाला में जप करने से हजार गुना से अधिक फल होता है और यज्ञशाला में जप करने से सौ गुना फल होता है ॥९॥ तुलसी के सन्निकट जप करने से मन्त्र का लाख गुना फल होता है और भगवान् विष्णु के सन्निकट जप करने से अनन्त गुना फल होता है । अवन्ती में कोई शिवशर्मा नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे ॥१०॥ उनके पाञ्च पुत्र थे उनमें सबसे छोटा पापी हो गया । पिता ने और उसके बन्धुओं ने भी उसको त्याग दिया ॥११॥ कुकर्म के प्रभाव से वह दूर वन में चला गया और एक बार वह तीर्थराज प्रयाग में आया ॥१२॥ भूख से व्याकुल उसका मुख दीन हो गया था, उसने त्रिवेणी में स्नान किया । भूख से व्याकुल वह मुनियों के आश्रम को देखकर ॥१३॥ उसने हरि मित्र मुनि के आश्रम को देखा । पुरुषोत्तम मास में लोगों के समागम में उसने कथा कहने वाले ब्राह्मणों के मुख से पापनाशिनी कमला एकादशी की कथा श्रद्धा पूर्वक सुना कि यह एकादशी अत्यन्त पवित्र है और भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाली है। इस कमलातिथि को विधि पूर्वक सुनकर जय शर्मा ने उसको उनलोगों के साथ उस व्रत को किया ॥१४-१७॥

जयशर्मोवाच

का त्वं कस्यासि रम्भोरु प्रसन्नाच कथं मम ।
इन्द्राणी सुरनाथस्यभवानी शङ्करस्यवा ॥१९॥
गन्धर्वी किन्नरी वाथ वधूर्वा चन्द्रसूर्ययोः । त्वत्सदृक्षा न दृष्टा च न श्रुता च शुभानने !॥२०॥

लक्ष्मीरुवाच

प्रसन्ना साम्प्रतं जाता वैकुण्ठादहमागता। प्रेरिता देवदेवेन कमलायाः प्रभावतः ॥२१॥
पुरुषोत्तममासस्य या पक्षे प्रथमे भवेत् । तस्या व्रतन्त्वया चीर्णं प्रयागे मुनिसंनिधौ ॥२२॥
व्रतस्यास्य प्रभावेण वशगाऽहं न संशयः । तव वंशे भविष्यन्ति मानवा द्विजसत्तम ॥
मत्प्रासादादवाप्स्यन्ति सत्यं ते व्याहृतं मया ॥२३॥

ब्राह्मण उवाच

प्रसन्ना यदि मे पद्मे विस्तरतो वद। यत्कथासु प्रवर्तन्ते साधवो ये जना द्विजाः ॥२४॥

लक्ष्मीरुवाच

श्रोतृणां परमं श्रव्यं पवित्राणामनुत्तमम् । दुःस्वप्ननाशानं पुण्यं श्रोतव्यं यत्नतस्ततः ॥२५॥
उत्तमःश्रद्धयायुक्तःश्लोकं श्लोकार्धमेव वा। पठित्वा मुच्यतेसद्यो महापातककोटिभिः ॥२६॥
मासानां परमो मासः पक्षिणां गरुडो यथा ।
नदीनां च यथा गङ्गा तिथीनां द्वादशीतिथिः ॥२७॥
अद्यापि निर्जराःसर्वे भारते जन्मलिप्सवः। तमर्चयन्ति विविधा नारायणमनामयम् ॥२८॥

आधी रात को वहाँ लक्ष्मीजी आयीं और कहीं हे विप्र ! कमला के प्रभाव से आप को वरदान दे रही हूँ॥१८॥ **जय शर्मा ने कहा—** हे सुन्दरि ! तुम कौन हो और किसकी पत्नी हो ? मुझ पर क्यों प्रसन्न हुयी हो ? तुम इन्द्र की इन्द्राणी हो अथवा शङ्करजी की पत्नी भवानी हो ? अथवा कोई गान्धर्वी अथवा किन्नरी हो या चन्द्रमा या सूर्य की पत्नी हो ? हे सुन्दर मुख वाली ! तुम्हारे सदृश किसी नारी को मैंने तो नहीं देखा है और न सुना है ॥१९-२०॥ **लक्ष्मीजी ने कहा—** कमला एकादशी के प्रभाव से श्रीभगवान् के द्वारा प्रेरित होकर मैं साक्षात् वैकुण्ठ से आयी हूँ ॥२१॥ पुरुषोत्तम मास के प्रथम पक्ष में होने वाली कमला एकादशी का व्रत तुमने प्रयाग में मुनि के सन्निकट किया है ॥२२॥ इस व्रत के प्रभाव से मैं तुम्हारे वश में हो गयी हूँ । हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे वंश में होने वाले मनुष्य मेरी कृपा को प्राप्त करेंगे यह मैंने सत्य कहा है ॥२३॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे लक्ष्मीजी ! आप यदि मुझ पर प्रसन्न हैं तो आप इस व्रत को मुझे विस्तार से बतलाइये । जिसके प्रभाव से ब्राह्मणजन इस व्रत को करते हैं ॥२४॥ **लक्ष्मीजी ने कहा—** यह माहात्म्य सुनने वालों के लिए सर्वश्रेष्ठ सुनने योग्य है, यह सर्वाधिक पवित्र है। यह दुःस्वप्न को विनष्ट करता है अतएव इसको प्रयत्न पूर्वक सुनना चाहिये ॥२५॥ उत्तम पुरुष इसके श्रद्धा पूर्वक एक श्लोक अथवा आधा श्लोक भी पढ़कर करोड़ों महापातकों से छूट जाते हैं ॥२६॥ यह सभी मासों में उसी तरह श्रेष्ठ मास है जिस तरह पक्षियों में गरुड हैं, नदियों में गङ्गा हैं और तिथियों में द्वादशी तिथि है ॥२७॥ आज भी बहुत से देवता भारत वर्ष में जन्म प्राप्त करने की इच्छा से भगवान् नारायण की आराधना करते हैं ॥२८॥ जो लोग सदा भक्ति पूर्वक भगवान् नारायण की पूजा करते हैं

ये यजन्ति सदा भक्त्या देवं नारायणं प्रभुम् ।
तानर्चयन्ति सततं ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥२९॥

येऽपि नामपरा ये च हरिकीर्त्तनतत्पराः । हरिपूजापरा ये च ते कृतार्थाःकलौयुगे ॥३०॥

शुक्ले वा यदि वा कृष्णे भवेदेकादशी द्वयम् ।
गृहस्थानां भवेत्पूर्वा यतीनामुत्तरा स्मृता ॥३१॥

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी । तत्र क्रतुशतंपुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे ॥३२॥
एकादश्यां निराहारःस्थित्वाहमपरेऽहनि । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥३३॥
अमुं मन्त्रं समुच्चार्य देवदेवस्य चक्रिणः । भक्तिभावेन तुष्टात्मा उपवासं समाचरेत् ॥३४॥
कुर्याद्दिवस्य पुरतो जागरं नियतो व्रती । गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणपठनादिभिः ॥३५॥
ततः प्रातः समुत्थाय द्वादशी दिवसे व्रती । स्नात्वा विष्णुं समभ्यर्च्य विधिवत्प्रयतेन्द्रियः ॥३६॥
पञ्चामृतेन संस्नाप्य एकादश्यां जनार्दनम् । द्वादश्यां च पयःस्नानाद्धरेःसारूप्यमश्नुते ॥३७॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥३८॥
एवं विज्ञाप्य देवेशं देवदेवं गदाधरम् । ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्तयातेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥३९॥
ततःस्वबन्धुभिः सार्धं नारायणपरायणः । कृत्वा पञ्चमहायज्ञान्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥४०॥
एवं यःप्रयतःकुर्यात्पुण्यमेकादशी व्रतम् । स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥४१॥

इत्युक्त्वा कमला तस्मै वरं दत्त्वा तिरोदधे ।
सोऽपि विप्रो धनी भूत्वा पितुर्गेहं समागतः ॥४२॥

उनकी पूजा ब्रह्मा आदि देवता करते हैं ॥२९॥ वे लोग कलियुग में कृतार्थ हैं जो श्रीहरि का नाम जपते हैं, या उनका कीर्तन करते हैं या उनकी पूजा करते हैं ॥३०॥ शुक्ल अथवा कृष्णपक्ष में जो दो एकादशियाँ होती है, उनमें कृष्ण पक्ष की एकादशी का व्रत गृहस्थों को करना चाहिए और शुक्ल पक्ष की एकादशी का व्रत यतियों को करना चाहिये ॥३१॥ जिस दिन एकादशी के दिन द्वादशी हो और रात्रि के अन्तिम प्रहर में त्रयोदशी हो उस एकादशी का पारण त्रयोदशी में करने से सैकड़ों यज्ञों को करने का फल प्राप्त होता है ॥३२॥ हे पुण्डरीकाक्ष मैं एकादशी को निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा, आप मेरी रक्षा करें, श्रीभगवान् के इस मन्त्र का उच्चारण करके मनुष्य श्रद्धा पूर्वक उपवास करे ॥३३-३४॥ व्रती को चाहिए कि वह श्रीभगवान् के समक्ष गीत, वाद्य, नृत्य तथा पुराण पाठ करते हुए नियत रूप से रात्रि जागरण करे ॥३५॥ उसके बाद द्वादशी के दिन प्रातःकाल जगकर व्रती स्नान करके जितेन्द्रिय रहकर भगवान् विष्णु की अच्छी तरह से पूजा करे ॥३६॥ एकादशी के दिन भगवान् जनार्दन को पञ्चामृत से स्नान कराकर द्वादशी के दिन दुग्ध से स्नान कराने से सारूप्य की प्राप्ति होती है ॥३७॥ इसके बाद प्रार्थना करे कि हे केशव ! अज्ञानान्धकार से लुप्त दृष्टि वाले मुझपर प्रसन्न होकर आप ज्ञान दृष्टि, प्रदान करें । इस तरह श्रीभगवान् की प्रार्थना करके भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे ॥३८-३९॥ उसके बाद भगवान् की भक्ति युक्त वह पञ्चयज्ञों को करके अपने बान्धवों के साथ भोजन करे ॥४०॥ इस तरह से सावधानी पूर्वक जो पवित्र एकादशी व्रत करता है वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है, फिर कभी वह संसार में नहीं आता ॥४१॥ इस तरह से कहकर लक्ष्मीजी उंसको वरदान देकर

श्रीकृष्ण उवाच

एवं यः कुरुते राजन्मलाव्रतमुत्तमम् । शृणुयाद्वासरे विष्णोः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।४३।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे पुरुषोत्तममासस्य कृष्णाकमलैकादशीमाहात्म्यं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।।६३।।

चौसठवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतानि बहुधर्माणि व्रतानि च जगत्प्रभो । एकादशीं समं किंचिच्छ्रुतं नैव जनार्दन ।।१।।
पुनस्त्वेकादशीं ब्रूहिपापघ्नीं पुण्यदायिनीम् । यां कृत्वामनुजोलोके प्राप्नुयात्परमंपदम् ।।२।।

श्रीकृष्ण उवाच

शुक्ले वा यदि वा कृष्णे यदा चैकादशी भवेत् ।
न त्याज्या जगतीपाल मोक्षसौख्यविवर्धनी ।।३।।
एकादशी कलौ राजन्भवबन्धविमोचिनी । कामदा सर्वकामानांपापानां पापहा भुवि।।४।।
रविवारेऽथ माङ्गल्ये संक्रमे वा नृपोत्तम । एकादशी सदोपोष्या पुत्रपौत्रविवर्धनी।।५।।

अन्तर्धान हो गयीं और वह ब्राह्मण भी धनी होकर अपने पिता के घर आया ।।४२।। **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजन् ! जो मनुष्य इस प्रकार कमला एकादशी का व्रत करता है और भगवान् की कथा सुनता है वह सभी पापों से छूट जाता है ।।४३।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत पुरुषोत्तम मास की कमला एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक तिरसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६३।।

पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की कामदा एकादशी का माहात्म्य

युधिष्ठिर ने कहा— हे जगत् प्रभो ! मैंने अनेक धर्मों और व्रतों को सुना है किन्तु एकादशी के समान हे जनार्दन कोई भी नहीं सुना है ।।१।। आप पुनः उस एकादशी का माहात्म्य बतलायें जो पापों को विनष्ट करने वाली और पुण्य प्रदान करने वाली है । जिसका व्रत करके मनुष्य परम पद को प्राप्त कर सके ।।२।। **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजन् ! एकादशी चाहे शुक्ल पक्ष की हो अथवा कृष्ण पक्ष की हो किन्तु इसको छोड़ना नहीं चाहिए, क्योंकि सभी एकादशी सुख तथा मोक्ष प्रदान करने वाली हैं।।३।। हे राजन् ! कलियुग में एकादशी संसार के बन्धन से मुक्त करने वाली है । कामदा एकादशी सभी कामनाओं को पूर्ण करती है और पापियों के पाप को विनष्ट करती है ।।४।। हे राजन् ! रविवार या मङ्गलवार या संक्रान्ति के समय होने वाली एकादशी का अवश्य व्रत करे, क्योंकि यह व्रत करने से पुत्र

एकादशी व्रतं क्वापि न त्याज्यं विष्णुवल्लभैः ।
आयुः कीर्तिप्रदं नित्यं सन्तानारोग्यवित्तदम् ॥६॥
मोक्षदं रूपदं राजन्नित्यमेकादशी व्रतम् । ये कुर्वन्ति महीपाल श्रद्धया परयायुताः॥७॥
यथोक्तविधिना लोके ते नरा विष्णुरूपिणः ।
जीवन्मुक्तास्तु भूपाल दृश्यन्ते नात्र संशयः ॥८॥

युधिष्ठिर उवाच

जीवन्मुक्ताःकथं कृष्ण विष्णुरूपाःकथं पुनः ।
पापरूपाश्च दृश्यन्ते परं कौतूहलं हि मे ॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच

ये च राजन्कलौ भक्तया निर्जलं व्रतमुत्तमम् ।
एकादश्याः प्रकुर्वन्ति विधिदृष्टेन कर्मणा ॥१०॥
न कथं विष्णुरूपास्ते जीवन्मुक्ताःकथं न हि ।
सर्वपापहरं पुण्यं व्रतमेकादशी समम् ॥११॥
न किंचिद्विद्यते राजन्सर्वकामप्रदं नृणाम् । एकाशनं दशम्यां च नन्दायां निर्जलं व्रतम् ॥१२॥
पारणं चैव भद्रायां कृत्वा विष्णुसमा नराः ।
श्रद्धावान्यस्तु कुरुते कामदाया व्रतं शुभम् ॥१३॥
वाञ्छितं लभते सोऽपि इहलोके परत्र च । पवित्रा पावनी ह्येषा महापातकनाशिनी ॥१४॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा चैव कर्तॄणां नृपसत्तम । कामदायां विधानेन पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥१५॥
पुष्पधूपादिभिश्चैव नैवेद्यैर्विविधैस्तथा । कांस्यमांसमसूरांश्च चणन्कोद्रवांस्तक्षा ॥१६॥

तथा पौत्र प्रदान करती है ॥५॥ विष्णु भक्तों को कोई भी एकादशी नहीं त्यागना चाहिए । यह व्रत आयु तथा कीर्ति प्रदान करने वाला है और सन्तान, आरोग्य तथा वित्त प्रदान करता है ॥६॥ हे राजन् ! एकादशी व्रत मोक्ष तथा रूप प्रदान करता है । हे राजन् ! जो लोग विधिपूर्वक तथा अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक इस व्रत को करते हैं वे मनुष्य संसार में विष्णु स्वरूप हैं । वे इस लोक में ही जीवन मुक्त हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ॥७-८॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** हे कृष्ण ! मुझे इस विषय में अत्यन्त कौतूहल है कि जीवन मुक्त, विष्णु स्वरूप और पापी कैसे दिखते हैं ॥९॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे राजन्! जो लोग कलियुग में विधि पूर्वक एकादशी का निर्जल व्रत भक्ति पूर्वक करते हैं ॥१०॥ वे विष्णु स्वरूप क्यों नहीं है ? पवित्र एकादशी व्रत के समान कोई भी व्रत पाप विनाशक नहीं है ॥११॥ मनुष्यों की सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला कोई भी व्रत नहीं है । दशमी को एक बार भोजन करके एकादशी के दिन निर्जल व्रत करके द्वादशी के दिन जो पारण करते हैं, वे विष्णु स्वरूप हैं । जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक कामदा एकादशी का व्रत करता है ॥१२-१३॥ वह भी इस लोक में तथा परलोक में अपने अभिप्रेत वस्तु को प्राप्त करता है । यह एकादशी पवित्र है और पवित्र बनाने वाली है तथा संसार के महापातकों का विनाश करती है ॥१४॥ हे राजश्रेष्ठ ! व्रत करने वालों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली है । कामदा एकादशी को विधि पूर्वक भगवान् पुरुषोत्तम की पूजा धूप, दीप तथा अनेक प्रकार के नैवेद्यों से करनी

शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुनम्। वैष्णवो व्रतकर्त्ता च दशम्यां दशवर्जयेत्॥१७॥
द्यूतं क्रीडां तथा निद्रां ताम्बूलं दन्तधावनम् ।
परापवादं पैशुन्यंस्तेयं हिंसांतथाररतिम् ॥१८॥
क्रोधं च वितथं वाक्यमेकादश्यां विवर्जयेत् ।
कांस्यं मासं मसूरांश्च तैलं वितथभाषणम् ॥१९॥
व्यायामं च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुनम् । वृषपृष्टं परान्नं च शाकं च द्वादशीदिने॥२०॥
अनेन विधिना राजन्विहितायैश्च कामदा। रात्रौ जागरणं कृत्वा पूजितःपुरुषोत्तमः॥२१॥
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेयान्ति परमां गतिम्। पठनाच्छ्रवणाद्राजन्गोसहस्रफलं लभेत्॥२२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापितनारदसंवादे पुरुषोत्तममास्य शुक्लकामदा नामैकादशीमाहात्म्यं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

पैंसठवाँ अध्याय

नारद उवाच

चातुर्मास्ये तु नियमा ये केचिद्भुवि विश्रुताः ।
तानहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महेश्वर ॥१॥
चातुर्मास्ये हरौसुप्ते कर्तव्यं किं जनार्दने । षड्रसानां परित्यागे नखकेशविधारणे ॥

चाहिए । व्रत करने वाले को दशमी तिथि को दश वस्तुओं का त्याग करना चाहिए । कांसे के पात्र में भोजन, मांस, मसूर, कोदव, शाक, मधु, परान्न, दूसरे वार भोजन, तथा मैथुन ॥१५-१७॥ एकादशी के दिन निम्न वस्तुओं को त्याग दे जूआ, क्रीडा, नींद, पान, दतौन, दूसरों की निन्दा, चुगली, चोरी, हिंसा, रतिक्रीडा, क्रोध और व्यर्थ वाक्य । द्वादशी के दिन निम्न वस्तुओं का त्याग करे कांस्य, मांस, मसूर, तेल, व्यर्थ की बातें, व्यायाम, परदेश गमन, दूसरे बार भोजन, मैथुन, वृषपृष्ठ, परान्न तथा शाक ॥१८-२०॥ हे राजन् ! इस विधि से जिसने कामदा एकादशी किया है रात्रि में जागरण करके भगवान् पुरुषोत्तम की पूजा की है वह सभी पापों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है । हे राजन् ! इसको पढ़ने तथा सुनने से हजार गायों के दान करने का फल प्राप्त होता है ॥२१-२२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष के कामदा एकादशी का माहात्म्य वर्णन नामक चौसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६४।।

चातुर्मास्य व्रत की विधि का वर्णन

नारदजी ने कहा— संसार में चातुर्मास्य के जो नियम प्रख्यात हैं, हे महेश्वर ! उन नियमों को मैं सुनना चाहता हूँ; उन सबों को आप बतलायें ॥१॥ चातुर्मास्य में श्रीहरि के सो जाने पर क्या करना

अन्यैश्च नियमैः स्वामिन्यत्फलं तद्वदाधुना ॥२॥

सूत उवाच

एतच्छुत्वा त्वसौ देवःप्रहस्योत्फुल्ललोचनः। प्रोवाच तं द्विजवरं नारदं तपसांनिधिम् ॥३॥

महादेव उवाच

शृणु त्वमिह देवर्षे कथयामि सविस्तरम्। आषाढस्य सितेपक्षे एकादश्यामुपोषितः ॥४॥
चातुर्मास्यव्रतानीह गृह्णीयाद्भक्तिपूर्वकम्। भूमिशय्यासमारूढो योगनिद्रां गते हरौ ॥५॥
नयेत चतुरोमासान्यावद्भवति कार्तिकी। प्रतिष्ठा न प्रवर्त्तन्ते तथा यज्ञादिकाः क्रियाः ॥६॥
विवाहव्रतसम्बन्धां अन्यन्माङ्गल्यकर्म च। भूपयानं तथा यात्रा अन्याश्च विविधाः क्रियाः ॥७॥
प्रसुप्ते च जगन्नाथे त्वच्युते गरुडध्वजे। व्रतक्रियां चरेद्यस्तु तस्य व्रतफलं शृणु ॥८॥
अश्वमेधसहस्त्रैस्तु यत्फलं प्राप्नुयान्नरः। चातुर्मास्य व्रतैश्चीर्णैस्तत्फलं समवाप्नुयात् ॥९॥
मिथुनस्थे सहस्रांशौ स्वापयेन्मधुसूदनम्। तुलाराशौ गतेसूर्ये पुनरुत्थापयेद्धरिम् ॥१०॥
अधिमासे तु पतिते तदा चैष विधिक्रमः। स्थापयेत्प्रतिमां विष्णोःशङ्खचक्रगदाधराम्॥११॥
पीताम्बरधरां सौम्यांपर्यङ्के स्थापयेच्छुचौ। श्वेतवस्त्रसमाच्छन्ने सोपधाने तु नारद ॥१२॥
इतिहासपुराणज्ञो विष्णुभक्तोऽथवा पुनः। स्नापयित्वा दधिक्षीरमधुलाजघृतैस्तथा ॥१३॥
समालभ्य शुभैर्गन्धैर्धूपै पुष्पैर्मनोरमैः। पूजितां कुसुमै शुभ्रैर्मन्त्रेणानेन वाडव ॥१४॥
सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम्। विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत्सर्वं चराचरम् ॥१५॥

चाहिए? हे स्वामिन् षड्रसों का परित्याग करने तथा नख एवं केश को नहीं काटने तथा अन्य नियमों का पालन करने से कौन सा फल प्राप्त होता है ॥२॥ **सूतजी ने कहा—** इस बात को सुनकर भगवान् शिव जोर से हँसकर तथा प्रसन्न नेत्रों से तपस्वियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रेष्ठ नारदजी से कहे ॥३॥ **महादेवजी ने कहा—** हे देवर्षि ! आप सुनें इसे मैं विस्तार से कहता हूँ। आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन उपवास करके चातुर्मास्य के व्रतों को भक्ति पूर्वक आरम्भ करें। श्रीभगवान् के योगनिन्द्रा में चले जाने पर भूमि पर सोना चाहिए ॥४-५॥ इस तरह से जब तक कार्तिक की एकादशी न आये तब तक इन नियमों का पालन करे। इस समय में देव प्रतिष्ठा तथा यज्ञादि क्रियाएँ नहीं होती हैं ॥६॥ विवाह व्रत सम्बन्धी दूसरे मङ्गल कर्म, राजाओं की यात्रा तथा दूसरी अनेक प्रकार की क्रियाएँ भी नहीं होती है ॥७॥ जगन्नाथ भगवान् अच्युत के शयन कर जाने पर जो व्रत करता है उसका फल आप सुनें ॥८॥ हजारों अश्वमेधों के करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसी फल की प्राप्ति चातुर्मास्य व्रत करने से होती है ॥९॥ जब मिथुन राशि के सूर्य हो जायँ तो भगवान् मधुसूदन को शयन कराये और जब अधिक मास आ जाय तो उस समय की यह विधि है कि भगवान् विष्णु की शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण की हुयी मूर्ति स्थापित करे॥११॥ पीताम्बर धारण की हुयी सुन्दर प्रतिमा को पवित्र पलङ्ग पर स्थापित करे शय्या को श्वेत वस्त्र से ढंकी हुयी तथा उपधान से युक्त होनी चाहिए ॥१२॥ इतिहास पुराण अथवा विष्णु भक्त को चाहिए कि वह मूर्ति को दधि, दुग्ध, मधु तथा लावा से स्नान कराकर उसका आलिङ्गन करे फिर सुन्दर गन्ध, धूप तथा मनोहर पुष्पों से पूजा करके पुष्पों को हाथ में लेकर प्रार्थना करे। हे जगन्नाथ ! आपके सो जाने पर सारा जगत् सो जायेगा और आपके जगने पर सम्पूर्ण जगत् जग जायेगा ॥१३-१५॥ हे नारद ! इस तरह से

एवं तां प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा तु नारद ।
तस्यैवाग्रे स्वयं वाचा गृह्णीयान्नियमं ततः ॥१६॥
स्त्री वा नरो वा तद्भक्तो धर्माधर्मविभागतः ।
चतुरो वार्षिकान्मासान्देवस्योत्थापनावधि ॥१७॥
गृह्णीयान्नियमानेतान्दन्तधावन पूर्वकम्। उपवासं ततःकृत्वा प्रभाते विमले सति॥१८॥
नित्यं कर्म चरित्वा तु विष्णोरग्रे जितात्मवान् ।
तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्कर्तॄणां पृथक्पृथक् ॥१९॥
मधुरत्वं लभेद्विद्वान्पुरुषो गुडवर्जनात्। तथैव सन्ततिं दीर्घां तैलस्य वर्जनाद्यतः॥२०॥
घृतस्य वर्जनाद्विप्र सुन्दराङ्गप्रजायते। कट्टुतैलपरित्यागी शत्रुनाशमवाप्नुयात् ॥२१॥
सुगन्धतैलत्यागेन सौभाग्यमतुलं लभेत् । पुष्पभोगपरित्यागी स्वर्गे विद्याधरो भवेत् ॥२२॥
योगाभ्यासी नरो यस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात्। कट्वम्लमधुरक्षारतीक्ष्णकाषायषड्रसान् ॥२३॥
वर्जयेद्यस्तु वैरूप्यं दौर्गन्ध्यं नाप्नुयान्नरः । ताम्बूलवर्जनाद्भोगी रक्तकण्ठस्तु जायते॥२४॥
घृतत्यागाच्च लावण्यं सदा स्निग्धतनुर्भवेत् ।
फलत्यागाच्चविप्रेन्द्र बहुपुत्रश्च जायते ॥२५॥
पलाशपत्राशनकृद्रूपवान्भोगवान्भवेत् । दीप्तिमान्दीप्तिकरणः साक्षाद्द्रव्यपतिर्भवेत्॥२६॥
दधिदुग्धपरित्यागी गोलोकं लभते नरः। मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्याज्ञाऽस्खलिता भवेत् ॥२७॥
इन्द्रासनमवाप्नोति स्थालीपाकस्य वर्जनात्। एवमादिपरित्यागाद्धर्मस्थो धर्मनन्दनः॥२८॥

उस प्रतिमा को स्थापित करके उसके सामने कहकर नियम को ग्रहण करे ॥१६॥ भगवद् भक्त चाहे स्त्री हो या पुरुष धर्म एवं अधर्म का विभाग करके श्रीभगवान् के जागने के समय तक बरसात के चार महीनों को बिताये ॥१७॥ पहले दतौन करके इन नियमों को धारण करे । उसके बार उपवास करके सबेरा होने पर ॥१८॥ जितेन्द्रिय होकर नित्य कर्म करके भगवान् विष्णु के समक्ष इन नियमों को करे । उसका फल मैं अलग-अलग बतलाता हूँ ॥१९॥ गुड का त्याग करने से वह मधुरता को प्राप्त करता है । तेल का त्याग करने से अधिक सन्तान की प्राप्ति होती है ॥२०॥ घी का त्याग करने से सुन्दर अङ्गों को प्राप्त करता है । कडुआ तेल का त्याग करने से शत्रु का नाश होता है ॥२१॥ सुगन्धित तेल का त्याग करने से अतुलनीय सौभाग्य की प्राप्ति होती है पुष्पों को धारण नहीं करने से मनुष्य स्वर्ग में जाकर विद्याधर होता है ॥२२॥ योगाभ्यास करने वाला मनुष्य ब्रह्मपद को प्राप्त करता है । तीता, खट्टा, मीठा, नमकीन, तीक्ष्ण तथा कषाय ये ही षड्रस कहलाते हैं ॥२३॥ जो विरूपता का त्याग करता है उसको कभी दुगन्धि नहीं आती चातुर्मास्य में पान का त्याग करने वाले का गला सुरीला होता है ॥२४॥ घी का त्याग करने से सुन्दरता होती है और कोमल शरीर की प्राप्ति होती है । हे नारद ! फल का त्याग करने से अनेक पुत्रों की प्राप्ति होती है ॥२५॥ पलाश के पत्ते में भोजन करने वाला सुन्दर होता है और भोगों को प्राप्त करता है । वह दीप्ति सम्पन्न और स्वस्थ इन्द्रियों वाला तथा द्रव्यों का स्वामी होता है ॥२६॥ दधि एवं दुग्ध का त्याग करने वाला मृत्यु के पश्चात् गोलोक में जाता है । जो मौन व्रत का पालन करता है उसकी आज्ञा कोई उल्लंघन नहीं करता है । हे युधिष्ठिर ! धार्मिक व्यक्ति के इस प्रकार का त्याग करने पर

नमो नारायणायेति जप्त्वाशतगुणफलम्। एक एव स वै स्वर्गे विद्याधरपतिर्भवेत् ॥२९॥

पुष्करः स्नानमात्रेण गङ्गायाःस्नानजं फलम् ।
भूमौ भुङ्क्ते सदा यस्तु स पृथिव्यधिपो भवेत् ॥३०॥

विष्णोश्चैव गृहे कुर्यादुपलेपनमार्जनम् । कल्पस्थायी भवेद्विद्वन्वैकुण्ठे नात्र संशयः ॥३१॥
प्रदक्षिणं च यःकुर्याच्छतमष्टोत्तरं नरः। हंसयुक्तविमानेन दिव्येन सह गच्छति ॥३२॥
गीतवाद्यकरो विष्णोर्गान्धर्वं लोकमाप्नुयात्। पञ्चगव्याशनो विद्वंश्चान्द्रायणफलं लभेत् ॥३३॥
नित्यं शास्त्रविनोदेनलोकान्यस्तुप्रवोधयेत्। स व्यासरूपीविष्णवग्रेतततोविष्णुपदंलभेत् ॥३४॥
तुलसीदलपूजां तु कृत्वा विष्णुपुरं व्रजेत्। कृत्वा प्रोक्षणकं दिव्यं स्थानमप्सरसां लभेत् ॥३५॥
शीताम्बुना गृहे स्नानान्निर्मलं देहमाप्नुयात् । उष्णोदकं परित्यज्य स्नानं वै पौष्करं लभेत् ॥३६॥

पत्रेषु यो नरो भुङ्क्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत् ।
भुङ्क्ते शिलायां यो नित्यं तस्य पुण्यं प्रयागजम् ॥३७॥

दिनत्रयजलत्यागी न रोगैःपरिभूयते । ताम्रपात्रेषु भुञ्जानो नैमिषं फलमाप्नुयात्॥३८॥
कांस्यपात्रं परित्यज्य शेषपात्रमुपाचरेत्। अलाभे सर्वपात्राणां मृण्मयं पात्रमुत्तमम् ॥३९॥
स्वगृहीतैःकृतैर्वापि पात्रैःपालाशसंभवैः । यस्तु संवत्सरं पूर्णमग्निहोत्रं करोति वै ॥४०॥
पात्रैर्वा भोजनं विद्वान्सेवते तत्समं स्मृतम्। चान्द्रायणसमं प्रोक्तं ब्रह्मपात्रेषु भोजने ॥४१॥

ये सभी फल प्राप्त होते हैं ॥२७-२८॥ चातुर्मास्य में ओम् नमो नारायणाय मन्त्र का जप करने से सौ गुना फल होता है । वह स्वर्ग में अकेले विद्याधरों का स्वामी होता है ॥२९॥ पुष्कर में स्नान करने मात्र से गङ्गा स्नान का फल प्राप्त होता है । जो मनुष्य सदैव पृथिवी पर बैठकर भोजन करता है वह पृथिवी का स्वामी होता है ॥३०॥ जो विद्वान् भगवान् के मन्दिर को लिपता है और पार्षदों को साफ करता है उसका वैकुण्ठ में कल्प पर्यन्त निवास होता है । जो मनुष्य भगवान् की एक सौ आठ परिक्रमा करता है वह हंस युक्त दिव्य विमान से स्वर्ग जाता है ॥३१-३२॥ भगवान् विष्णु के मन्दिर में गीत गाने वाला और बजाने वाला गन्धर्व लोक में जाता है पञ्चगव्य का पान करने वाला विद्वान् चान्द्रायण व्रत का फल प्राप्त करता है ॥३३॥ जो चातुर्मास्य पर्यन्त व्यास के समान भगवान् विष्णु के समक्ष जो शास्त्रोपदेश लोगों को करता है, वह विष्णुलोक में जाता है ॥३४॥ भगवान् की तुलसी दल से पूजा करने वाला विष्णु लोक में जाता है। भगवान् के मन्दिर को अच्छी तरह से पोंछने वाला अप्सराओं के लोक में जाता है ॥३५॥ घर में ठंढ़े पानी से स्नान करने वाला निर्मल शरीर को प्राप्त करता है । चातुर्मास्य भर गर्म पानी से स्नान नहीं करने वाला पौष्कर स्नान का फल प्राप्त करता है ॥३६॥ पत्तों में भोजन करने वाला कुरुक्षेत्र में स्नान का फल प्राप्त करता है जो मनुष्य शिला पर भोजन करता है वह प्रयाग जाने का फल प्राप्त करता है ॥३७॥ तीन दिन तक जल नहीं पीने वाले को रोग नहीं होता है । ताम्बे के पात्र में भोजन करने वाला नैमिष क्षेत्र में स्नान करने का फल प्राप्त करता है ॥३८॥ चातुर्मास्य में कांसे के पात्र को त्यागकर सभी पात्रों का उपयोग करना चाहिए । सभी पात्रों के नहीं मिलने पर मिट्टी का पात्र उत्तम होता है ॥३९॥ अपने से खरीदे गये या बनाये गये पलाश के पात्र में जो वर्षभर अग्निहोत्र करता है ॥४०॥ अथवा उन पात्रों से भोजन करता है तो दोनों एक समान होते है । इन ब्रह्म पात्रों में भोजन करना चान्द्रायण व्रत के समान कहा गया

एकैकं भोजनं विद्वन्ब्रह्मपत्रेषु भुञ्जतः । त्रिरात्रेणसमं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥४२॥
एकादश्युपवासेन यत्पुण्यं परिकीर्तितम् । सर्वदानफलं चैव सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥४३॥
न चापि नरकं परयेत्पद्मपत्रेषु भोजनात् । ब्राह्मणो याति वैकुण्ठेऽन्यो जनः स्वर्गमाप्नुयात् ॥४४॥
एष ब्रह्म महावृक्षःपापहा सर्वकामदः । मध्यमं वर्जितं पत्रं शूद्रजातेर्नृपोत्तम ॥४५॥
भुञ्जन्नरकमाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश । वर्जयेन्मध्यमं पत्रं शेषपत्रेषु भोजनम् ॥४६॥
मध्यपत्रे च यःशूद्रो भोजनं कुरुते द्विज । कपिलां ब्राह्मणे दत्त्वा शुद्धिर्भवति नान्यथा ॥४७॥
कपिलां दोहयेद्यस्तु शूद्रो भुङ्क्ते निजेगृहे । दशवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥४८॥
कृमियोनिविनिर्मुक्तः पशुयोनिमवाप्नुयात् । कपिलां यो ह्यनड्वाहं शूद्रो भूत्वाऽत्र वाहयेत् ॥४९॥
यावन्ति तस्य रोमाणि तावद्वर्षाणि नारद । कुम्भीपाकेषु पच्येत स नरो नात्र संशयः ॥५०॥
अजाचैव गृहे तस्य शूद्रस्य च विशेषतः । तस्या वै दुग्धपानेन शूद्रो यातीहरौरवम् ॥५१॥
ब्राह्मणैःसह व्यापारो यस्य शूद्रस्य दृश्यते । स विप्रो वेदबाह्यः स्याच्छूद्रः कौलिक उच्यते ॥५२॥
व्यापारे प्रेरितो विप्रःशूद्राज्ञां च करोति यः ।
यावत्पदानि चलते तावद्भवति नारकी ॥५३॥
उदकार्थं तु यो विप्रः शूद्रेण प्रषितो गृहे । तदुदकं मद्यतुल्यं पीत्वा वै नरकं व्रजेत् ॥५४॥
शूद्रेण सर्वदा नित्यं दानं देयं द्विजन्मने । तेषां चैव तु वै भक्तिःकर्त्तव्या च विशेषतः ॥५५॥
इहलोके सुखंभुक्त्वा परलोकं च गच्छति । पाञ्चभौतिकमेतद्धि अनर्थकमुदाहृतम् ॥५६॥

है ॥४१॥ जो विद्वान् एक ही पात्र में भोजन करता है, तो वह भोजन त्रिरात्र भोजन के समान कहा गया है, वह महापातकों को विनष्ट करता है ॥४२॥ एकादशी के दिन उपवास करने से होने वाला पुण्य सभी प्रकार के दानों तथा तीर्थों के फल के समान होता है । कमल के पत्ते पर भोजन करने वाला कभी नरक में नहीं जाता है । कमल के पत्ते पर भोजन करने वाला वैकुण्ठ जाता है और दूसरे लोग स्वर्ग में जाते हैं ॥४३-४४॥ यह ब्रह्म महावृक्ष है, सभी कामनाओं को पूर्ण करता है हे राजन् ! कमल के बीच के पत्ते पर शूद्र को भोजन नहीं करना चाहिए ॥४५॥ यदि वह उस पत्ते पर भोजन करता है तो वह चौदह इन्द्रों के काल तक नरक में रहता है । अतएव मध्यम पत्र का त्याग करके शेष पत्तों पर वह भोजन करे ॥४६॥ हे नारद ! जो शूद्र मध्यम पत्रों में भोजन करता है, वह ब्राह्मण को कपिला गौ का दान करके ही शुद्ध होता है ॥४७॥ जो शूद्र कपिला गौ को दूहकर अपने ही खा लेता है वह दश हजार वर्षों तक विष्ठा का कृमि होता है ॥४८॥ फिर कृमि योनि से निकलकर पशु योनि में जन्म लेता है । हे नारदजी ! कपिला सांड को जो जोतता है वह उतने वर्षों तक कुम्भीपाक नरक में पकाया जाता है, जितने उस सांड के शरीर में रोएँ होते हैं ॥४९-५०॥ उस शूद्र के घर में विशेष रूप से बकरी होती है । उसका दूध पीने से वह शूद्र रौरव नरक में जाता है ॥५१॥ जिस शूद्र का व्यापार ब्राह्मणों के साथ होता है, वह ब्राह्मण वेद वाह्य हो जाता है और वह शूद्र कौलिक (कसाई) हो जाता है ॥५२॥ व्यापार में शूद्र की आज्ञा का पालन करने वाला ब्राह्मण जितने युग चलता है उतने नरकों में जाता है ॥५३॥ शूद्र के द्वारा पानी के लिए घर भेजा गया ब्राह्मण वह जल मदिरा के समान होता है और उसको पीकर वह नारकी हो जाता है ॥५४॥ शूद्र को चाहिए कि वह ब्राह्मणों को दान दे और विशेष रूप से ब्राह्मणों की भक्ति करे ॥५५॥ वह शूद्र इस लोक

अतोदेयं हि गुरवे यतोऽनन्तफलं लभेत् । अस्मिन्कलियुगे घोरे पापाचारे दुरात्मनः ॥५७॥
निन्दां कुर्वन्ति विप्रेन्द्र जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
निन्दया लभते दुःखं यावदाभूतसंप्लवम् ॥५८॥
नानाधर्माः प्रवर्त्तन्ते कलौचैव महामते । धर्मोऽयं दुर्लभो लोके धर्मकामार्थमोक्षदः ॥५९॥
भूमिशायी भवेद्यस्तु नरः कोऽपि महीतले। दशवर्षसहस्राणि न रोगैः परिपीड्यते॥६०॥
बहुपुत्रो धनैर्युक्तो ह्यकुष्ठी जायते नरः । नक्तभोजी नरो यस्तु तीर्थयात्राफलं लभेत्॥६१॥
अयाचितेन चाप्नोति वापीकूपक्रियाफलम् । वर्जयेद्यस्तु वै द्रोहं प्राणिहिंसापराङ्मुख ॥६२॥
अहिंसा परमोधर्म इति वेदेषु गीयते। दानं दया दम इति सर्वत्र हि श्रुतं मया ॥६३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्य वै महतामपि । गुरवे ये प्रयच्छन्ति शरीरं पुत्रपौत्रकम् ॥६४॥
तत्र दानप्रभावेण विष्णोर्वल्लभतामियात् । शूद्रेण दीक्षितो यस्तु शूद्रः शूद्रेण दीक्षितः ॥६५॥
उभौ तौ पापिनौ प्रोक्तौ यावदाभूतसंप्लवम् ।
हिंसामतिं यदादत्ते शूद्रो वै पापसत्तमः ॥६६॥
एकविंशतिकुलं तेन नरकंप्रति पात्यते। कलौ पाखण्डिनः शूद्रा दृश्यन्ते बहवोभुवि॥६७॥
तेषां संभाषणादेव नरको भवति द्विज !। ब्रह्मज्ञानरता ये च गायत्रीजापिनो द्विज ! ॥६८॥
तेषां दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या दिनेदिने । शङ्खचक्रधरा विप्रा विष्णुधर्मेषु संमताः ॥६९॥
वेदधर्मरता नित्यं पङ्क्तिपावनपावनाः । चातुर्मास्यमिदं कर्म कर्त्तव्यं तैः सदानरैः ॥७०॥

में सुख भोगकर परलोक में जाता है । इस पाञ्चभौतिक शरीर को अनर्थकारी कहा गया है ॥५६॥ अतएव गुरु को ही दान देना चाहिए जिससे कि अनन्त फल की प्राप्ति हो । हे विप्रेन्द्र इस घोर तथा पापाचारमय कलियुग में दुष्ट लोग पुण्य कर्म करने वालों की निन्दा करते हैं और उस निन्दा के कारण महाप्रलय काल, पर्यन्त दुःख भोगते हैं ॥५७-५८॥ हे महामते ! कलियुग में अनेक धर्म प्रचलित हो जाते हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाला धर्म दुर्लभ है ॥५९॥ यदि कोई मनुष्य भूमि पर शयन करता है तो वह दश हजार वर्षों तक रोगों से पीड़ित नहीं होता है ॥६०॥ वह अनेक पुत्रों वाला, धनी, कुष्ठरोग से रहित होता है । जो मनुष्य नक्तकाल में भोजन करता है, वह तीर्थ याग का फल प्राप्त करता है ॥६१॥ अयाचित अन्न खाने वाला मनुष्य बावली और कुआँ बनवाने का पुण्य प्राप्त करता है । प्राणियों की हिंसा से दूर रहने वाले से कोई द्रोह नहीं करता है ॥६२॥ वेदों में अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा गया है । दान, दया और दम (इन्द्रियों को वश में करने) को भी मैंने सर्वत्र परम धर्म सुना है । अतएव सारे प्रयासों से इन सबों का पालन करना चाहिए । जो मनुष्य गुरु को शरीर, पुत्र तथा पौत्र को प्रदान करते हैं वे उस दान के प्रभाव से भगवान् विष्णु के प्रिय हो जाते हैं । जो कोई शूद्र से दीक्षा ग्रहण करता है अथवा कोई शूद्र यदि शूद्र से दीक्षा ग्रहण करता है ॥६३-६५॥ वे दोनों महाप्रलय काल तक पापी रहते हैं, जो महापापी शूद्र हिंसा करने का मन बनाता है ॥६६॥ वह अपने वंश के इक्कीस पीढ़ी के पुरुषों को नरक में डाल देता है । संसार में कलियुग में अनेक शूद्र पाखण्डी हो जाते हैं ॥६७॥ हे ब्राह्मण ! उन सबों से बात करने पर भी नरक होता है । वे जब ब्रह्मज्ञान की बातें करते हैं और गायत्री का जप करने लगते हैं उनके देखने मात्र से भी प्रतिदिन ब्रह्महत्या लगती है । शङ्ख, चक्र धारण करने वाले ब्राह्मण विष्णु धर्म

किमन्यद्बहुनोक्तेन भूयोभूपश्च वाडव । ते धन्याः पृथ्वी मध्ये नरा ये वैष्णवा भुवि ॥७१॥
तेषां कुलं धन्यतमं जातिर्धन्यतमा स्मृता । मधु भक्षयते यस्तु सुप्ते देवे जनार्दने ॥७२॥
महत्पापं भवेत्तस्य वर्जने यच्छृणुष्व तत् । सर्वयज्ञैश्च विविधैर्यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥७३॥
दाडिमं मातुलिङ्गं च नालिकेरं च वजयेत् । देवो वैमानिकोभूत्वा ह्यन्तेविष्णुपदंव्रजेत् ॥७४॥
वित्तवान्सुभगश्चैव कुले श्रीमति जायते । यः क्षिपेदेकभक्तेन नरोमासचतुष्टयम् ॥७५॥
यावन्ति च मुहूर्तानि उदितोदितभास्करे । तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ॥७६॥
व्रीहींश्च यवगोधूमान्वर्जयेद्यस्तु मानवः । अश्वमेधादिके कृते विधिवद्वै सदक्षिणे ॥७७॥
यत्फलं मुनिभिःप्रोक्तं तत्फलं लभते नरः । धनधान्यसमायुक्तो बहुपुत्रश्च जायते ॥७८॥
तुलसीतिलदर्भैश्च ये कुर्वन्ति च तर्पणम् । तत्फलं कोटिगुणितं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥७९॥
यदा सुप्ते हृषीकेशे कुर्याच्चैतत्त्रयान्वितम् । तेऽपि युगसस्राणि मोदन्तेविष्णुसन्निधौ ॥८०॥
पदं वा पदमर्धं वा ऋचांचार्धऋचा तथा । विष्णवग्रेये प्रयागन्तिमुक्तास्ते वै नसंशयः ॥८१॥
मैथुनं वर्जयेद्यस्तु सुप्ते देवे जनार्दने । एकमन्वन्तरं सोऽपि विष्णुलोके महीयते ॥८२॥
दधि दुग्धं तथा तक्रं गुडं शाकं तथैव च। वर्जनादेव भो विप्र ! मुक्तिभागी न संशयः ॥८३॥
स्नानमामलकेनैव ये कुर्वन्ति च मानवाः । दिने दिने महत्पुण्यं प्राप्नुवन्ति च ते मुने ॥८४॥
धात्रीफलं पापहरं प्रवदन्ति मनीषिणः । त्रैलोक्यतारणार्थाय निर्मिता ब्रह्मणा पुरा ॥८५॥

के अनुकूल हैं ॥६८-६९॥ सदा वेद धर्म का पालन करने वाले पंक्ति को भी पवित्र बना देते हैं । चातुर्मास्य के इस धर्म को मनुष्यों को सदा पालन करना चाहिए ॥७०॥ हे ब्राह्मण ! दूसरी बातों को बार-बार कहने से क्या लाभ है ? संसार में जो मनुष्य वैष्णव हैं वे धन्य हैं ॥७१॥ उनका वंश धन्य है तथा जाति धन्यतम है । भगवान् जनार्दन के सो जाने पर जो मधु का भक्षण करते है ॥७२॥ उनको बहुत पाप लगता है । चातुर्मास्य में मधु त्यागने से सभी यज्ञों को करने से जो फल प्राप्त होता है उसी की प्राप्ति होती है ॥७३॥ अनार, मातुलिङ्ग तथा नारियल का त्याग करने वाला वैमानिक देवता होकर अन्त में भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥७४॥ वह धनिक वंश में विद्वान् और सुन्दर जन्म लेता है । जो मनुष्य चार महीने को एक बार भोजन करके बिताता है वह जितने मुहूर्त तक चातुर्मास्य में उदित रहते हैं उतने हजार वर्ष तक विष्णु लोक में पूजित होता है ॥७५-७६॥ जो मनुष्य चातुर्मास्य में चावल, यव तथा गेहूँ का त्याग करता है वह अश्वमेध आदि यज्ञों को सविधि दक्षिणा के साथ करने का जो फल होता है, उसी फल को प्राप्त करता है । वह धन-धान्य से युक्त होकर अनेक पुत्रों को प्राप्त करता है ॥७७-७८॥ विशेषकर चातुर्मास्य में जो तुलसी, तिल तथा कुश से तर्पण करता है उसको उसका करोड़ गुणा फल प्राप्त करता है ॥७९॥ श्रीभगवान् के शयन कर जाने पर जो लोग इन तीनों से तर्पण करते हैं वे लोग भी हजारों युग तक भगवान् विष्णु के लोक में आनन्दानुभव करते हैं ॥८०॥ जो लोग भगवान विष्णु के समक्ष एक ऋचा या आधा ऋचा या उसके एक पाद अथवा आधा पाद भी गाते हैं वे निश्चित रूप से मुक्त हो जाते हैं ॥८१॥ जो लोग चातुर्मास्य तक मैथुन का परित्याग करते है वे भी एक मन्वन्तर पर्यन्त विष्णु लोक में पूजित होते हैं ॥८२॥ हे विप्र ! चातुर्मास्य में दही, दूध, मट्ठा, गुड तथा शाक का त्याग करने वाला मुक्ति का भागी होता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥८३॥ हे मुने ! जो मनुष्य आँवला से स्नान

सन्ध्या मौनं चरेद्यस्तुं भुङ्क्ते मासचतुष्टयम् । मन्वन्तराणि चत्वारि वैकुण्ठे मोदते पुनः ॥८६॥
स्वयंपाकी नरो यस्तु भुङ्क्ते मासचतुष्टयम् । दशवर्षसहस्राणि इन्द्रलोके महीयते ॥८७॥
चतुरोवार्षिकान्मासान्मौनंचैव समाचरेत्। स च विष्णुपुरं गच्छेद्ब्राह्मं च तदनन्तरम्॥८८॥
मौनभोजी नरो यस्तु कदाचिन्नावसीदति । मौनेन भुञ्जमानास्तु राक्षसास्त्रिदिवं गताः ॥८९॥
कृमिकीटसमायुक्तं पक्कान्नमशुची भवेत् । गवां मांससमंज्ञेयमन्नं चापि द्विजोत्तम ! ॥९०॥
तदन्नमशुचि ज्ञेयं ग्रसते मानुषो यदि। एतद्वै भोजनं प्रोक्तं राक्षसानां प्रियं सदा॥९१॥
तोषितो हि पुरा ब्रह्मा तेन दत्तं महात्मना । मौनेन भोजयित्वा तु स्वर्गं प्राप्ता न संशयः ॥९२॥
संजल्पन्भुञ्जते यस्तु तेनान्नमशुची भवेत्। पापं स केवलं भुङ्क्ते तस्मान्मौनं समाचरेत् ॥९३॥
उपवाससमं भोज्यं ज्ञेयं मौनेन नारद। पञ्चप्राणाहुतीर्यस्तु मौनभोजी नरोत्तमः॥९४॥
पञ्चवै पापकान्यस्य नश्यन्ति नात्रसंशयः । न कुर्यात्संहितं वस्त्रं पितृकर्मणि वाडव ! ॥९५॥
अशुच्यङ्गे स्थितं चैव वस्त्रं तदशुची भवेत्। कटिपृष्ठस्थिते वस्त्रे पुरीषं कुरुते तु यः ॥९६॥
मूत्रं वा मैथुनं वापि तद्वस्त्रं परिवर्जयेत्। पितृकर्मविशेषेण वर्जनीयं च वाडव॥९७॥
सर्वदा च मुने प्राज्ञैर्देवार्चा चक्रपाणिनः। कर्त्तव्या च विशेषेण शुचिभिर्विजितेन्द्रियैः॥९८॥
संप्रसुप्ते हृषीकेशे तृणशाककुसुम्भिकाः। संहितानि च वस्त्राणि वर्जितानि प्रयत्नतः ॥९९॥

करते हैं वे भी महान् पुण्य प्राप्त करते हैं ॥८४॥ मनीषी पुरुष आँवला को पाप विनाशक कहते हैं । ब्रह्माजी ने इसका निर्माण संसार से पार करने के लिए किया है ॥८५॥ जो मनुष्य मौन होकर चातुर्मास्य में सन्ध्या और भोजन करते हैं वैकुण्ठ में चार मन्वन्तरों तक आनन्दानुभव करते हैं ॥८६॥ जो मनुष्य चार महीनों तक स्वयं पाकी होकर भोजन करता है वह इन्द्र लोक में दश हजार वर्षों तक पूजित होता है।॥८७॥ वर्षा के चार महीनों तक जो मौन रहता है वह भी पहले विष्णुलोक में जाता है और उसके बाद ब्रह्मलोक में जाता है ॥८८॥ मौन होकर भोजन करने वाला कभी भी दुःखी नहीं होता है । मौन होकर भोजन करने वाले राक्षस भी स्वर्गलोक में चले गये ॥८९॥ कृमियों और कीड़ों से युक्त पका हुआ अन्न अपवित्र होता है । हे द्विजश्रेष्ठ ! उस अन्न को गो मांस के समान समझना चाहिए । उस अन्न से युक्त भोजन को अपवित्र समझना चाहिए । उसको जो मनुष्य खाता है । इस तरह का भोजन राक्षसों को प्रिय होता है ॥९०-९१॥ प्राचीन काल में उस माहात्मा के द्वारा दिये जाने से ब्रह्माजी संतुष्ट हो गये मौन होकर भोजन करने वाले अवश्य स्वर्ग जाते हैं ॥९२॥ बातें करते हुए जो भोजन करता है उसका वह अन्न अपवित्र हो जाता है और वह केवल पाप खाता है अतएव मौन होकर भोजन करना चाहिए ॥९३॥ मौन होकर भोजन करना उपवास के समान होता । जो श्रेष्ठ पुरुष पाँच प्राणाहुति मौन होकर करता है उसके पाँच पाप अवश्य विनष्ट हो जाते है । हे ब्राह्मण ! पितृकर्म में कपड़ा पहनकर भोजन नहीं करना चाहिए ॥९४-९५॥ अपवित्र अङ्ग पर विद्यमान वस्त्र अपवित्र हो जाता है । कमर और पीठ पर कपड़ा धारण करके मल त्याग करने से वस्त्र अपवित्र हो जाता है । मूत्र त्याग और मैथुन के समय वस्त्र अपवित्र हो जाता है । हे ब्राह्मण! पितृकर्म में विशेष रूप से वस्त्र धारण वर्जित है ॥९६-९७॥ हे मुने ! बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि भगवान् विष्णु की पूजा और देवताओं की पूजा सदा पवित्र और जितेन्द्रिय होकर करे ॥९८॥ भगवान् हृषीकेश के शयन कर जाने पर शाक, कुसुम्भ तथा सिले हुए वस्त्र विशेष रूप से वर्जित हैं ॥९९॥

चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते यस्तु एतानि वर्जयेत्। नरकं न तु संगच्छेद्यावदाभूतसंप्लवम् ॥१००॥
मद्यं मांसं न भक्षेत शाशकं सौकरं तथा। चातुर्मास्ये विशेषेण सुप्ते देवे जनार्दने॥१०१॥
सोऽपि देवत्वमाप्नोति अहिंसानिरतो नरः । मिथ्याक्रोधं तथा रौक्ष्यं तथा पर्वसु मैथुनम्॥१०२॥
वर्जितं येन विप्रेन्द्र ! सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
ब्रह्मचर्ये प्रजावृद्धिरायुर्वृद्धिस्तथैव च ॥१०३॥
पुष्पं पत्रं फलं शय्या अभ्यङ्गं च विलेपनम् ।
वृथाःदुग्धानि मांसं च मद्यं च परिवर्जयेत् ॥१०४॥
चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते नियतं यद्विवर्जितम्। प्रथमं तत्तु दातव्यं ब्राह्मणाय न संशयः ॥१०५॥
तद्धनं चाक्षयं विद्वन्प्रदत्तं यदुद्विजातये । कोटिकोटिगुणं विप्र ! लभते नात्र संशयः॥१०६॥
येन केनापि विप्रेन्द्र ! नियमेनार्चितोहरिः। ददाति विष्णुभवनं नात्रकार्याविचारणा॥१०७॥
चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते नियमं यो न कारयेत् ।
सोऽपि नरकमाप्नोति तस्य जन्म वृथा गतम् ॥१०८॥
यःपुमान्कारयेन्नित्यं द्विजोक्तं विधिमुत्तमम् । तथोक्तान्नियमांश्चैव स याति परमंपदम्॥१०९॥
त्रिवर्गरहितं दानं दत्तं भवति निष्फलम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवदेवं जनार्दनम् ॥११०॥
तोषयेन्नियमैर्दानैर्यथाशत्तया नरोत्तमः । अकृतस्नानदानं च ब्राह्मणानां च पूजनम् ॥१११॥
वृथा गतं तु तत्सर्वं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥११२॥

नारद उवाच

कीदृशं ब्रह्मचर्यं च वद विश्वेश्वर प्रभो !। येन चीर्णेन गोविन्दः परितुष्टोभवेन्नृणाम्॥११३॥

चातुर्मास्य में श्रीहरि के सो जाने पर जो इन सबों को त्याग देता है वह महाप्रलय काल पर्यन्त नरक में नहीं जाता है ॥१००॥ चातुर्मास्य में विशेष रूप से श्रीहरि के सो जाने पर मद्य, मांस, खरगोश तथा सूकर का मांस त्याग देना चाहिए ॥१०१॥ अहिंसा का पालन करने वाला मनुष्य देवत्व को प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य झूठ, क्रोध, रुक्षवाणी तथा संक्रान्ति के समय मैथुन का त्याग कर देता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है । ब्रह्मचर्य का पालन करने से आयु और सन्तान की वृद्धि होती है ॥१०२-१०३॥ चातुर्मास्य में पत्र, पुष्प, शय्या, तैलमर्दन, अङ्गराग, वृथा दुग्ध, मद्य और मांस का परित्याग कर देना चाहिए ॥१०४॥ चातुर्मास्य में श्रीहरि के शयन कर जाने पर जिस वस्तु का नियमतः त्याग किया जाता है, उन वस्तुओं को खाने से पहले ब्राह्मण को उसका दान दे देना चाहिए ॥१०५॥ हे विद्वन् ! ब्राह्मण को दान किया हुआ धन अक्षय होता है । वह जन्मान्तर में उसके करोड़ों गुणा होकर उसको प्राप्त करता है ॥१०६॥ हे विप्र श्रेष्ठ !जो कोई भी नियम पूर्वक श्रीहरि की पूजा करता है उसको श्रीहरि निश्चित रूप से विष्णुलोक प्रदान करते हैं ॥१०७॥ चातुर्मास्य में श्रीहरि के सो जाने पर जो नियम का पालन नहीं करता है वह नरक में जाता है और उसका मानव जन्म व्यर्थ हो जाता है ॥१०८॥ जो मनुष्य ब्रह्माजी के द्वारा कहे गये उत्तम नियमों का पालन करता है वह परम पद को प्राप्त करता है ॥१०९॥ त्रिवर्ग से रहित दिया गया दान व्यर्थ हो जाता है । हे नरोत्तम ! इसीलिए हर प्रयासों से तथा दानों से भगवान् विष्णु को सन्तुष्ट करना चाहिए। स्नान, दान तथा ब्राह्मणों की पूजा नहीं करने से व्यक्ति के द्वारा कल्प पर्यन्त का किया हुआ सब कुछ व्यर्थ

महादेव उवाच

स्वदारनिरतश्चैवब्रह्मचारी स्मृतोबुधैः। चाण्डालादधिको विद्धन्यःस्वभार्यां परित्यजेत्॥११४॥
ऋतावभिगमं कृत्वा ब्रह्मचर्यविधीयते । परित्यजति यो भार्यां भक्तां दोषविवर्जिताम्॥११५॥
पापकर्मा नरो लोके भ्रूणहत्यामवाप्नुयात् । स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायं देवतार्चनम्॥११६॥
चातुर्मास्यकृतं यच्च सर्वं हि चाक्षयं भवेत् ।
एककालं द्विकालं वा पुराणं शृणुते तु यः ॥११७॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति । हरौसुप्ते विशेषेण हरेर्नामपठञ्जपन्॥११८॥
तत्फलं कोटिगुणितं लभते द्विजसत्तम !। वैष्णवो ब्राह्मणो यस्तु विष्णुपूजां करोति हि॥११९॥
स एव सर्वधर्मात्मा पूज्य एव न संशयः । चातुर्मास्यमिदं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥
श्रुत्वा तु लभते पुण्यं गङ्गास्नानभवं मुने ! ॥१२०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे चातुर्मास्यमहिमानाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

हो जाता है ॥११०-११२॥ **नारदजी ने कहा—** हे विश्वेश्वर ! आप ब्रह्मचर्य का स्वरूप बतलायें जिसका पालन करने से मनुष्य पर भगवान् गोविन्द प्रसन्न होते हैं ॥११३॥ **महादेवजी ने कहा—** जो अपनी पत्नी से ही प्रेम करता है वह ब्रह्मचारी होता है । जो अपनी पत्नी का परित्याग करता है वह चाण्डाल से भी अधिक पापी है ॥११४॥ ऋतुकाल में अभिगमन करने से भी ब्रह्मचर्य बना रहता है । जो भक्ति सम्पन्न निर्दोष पत्नी का परित्याग करता है वह मनुष्य पापी होता है और उसको गर्भ नष्ट करने का पाप लगता है । स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजन ये सब जो चातुर्मास्य में किए जाते हैं, वे सब अक्षय होते हैं । जो दिन में एक बार या दो बार पुराण सुनता है ॥११५-११७॥ वह सभी पापों से रहित होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । श्रीहरि के सो जाने पर विशेष रूप से जो अनेक नामों का पाठ करता है या जप करता है ॥११८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! वह उसका करोड़ों गुणा फल प्राप्त करता है । जो वैष्णव ब्राह्मण पूजा करता है वही सभी धर्मों को जानता है और वह पूज्य है । यह चातुर्मास्य पवित्र और पाप विनाशक है । इसका माहात्म्य सुनने से पुण्य की प्राप्ति होती है और गङ्गा स्नान का फल प्राप्त होता है ॥११९-१२०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत चातुर्मास्य की महिमा का वर्णन नामक पैंसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६५।।

छाछठवाँ अध्याय

नारद उवाच

चातुर्मास्यव्रतानां च प्रब्रूह्युद्यापनं विभो। उद्यापने कृते सर्वं संपूर्णं भवति ध्रुवम् ॥१॥

महादेव उवाच

व्रतं कृत्वा महाभाग ! यदि नोद्यापनं चरेत् ।
यस्तु कर्त्ता कर्मणां स न सम्यक्फलभाग्भवेत् ॥२॥

व्रतवैकल्यमासाद्य कुष्ठी चान्धःप्रजायते। एतस्मात्कारणाच्चैव कुर्यादुद्यापनं द्विज !॥३॥
गहीत्वा नियमानेतान्पालयित्वा यथाविधि। सुप्तोत्थिते जगन्नाथे गत्वा ब्राह्मणसन्निधौ॥४॥
क्षमापयेद्देवदेवं यथाविधि च विस्तरात्। तैलत्यागे घृतं दद्याद् घृतत्यागे पयःस्मृतम् ॥५॥

मौने पिण्डास्तिलादेयाःस हिरण्याः द्विजातेय ।
भोजनेभोजनं दद्याद्दध्योदनसमन्वितम् ॥६॥

अन्नं दद्याद्विशेषेण हिरण्येन समन्वितम्। अन्नदानान्मुनिश्रेष्ठ विष्णुलोके महीयते॥७॥
पालाशपत्रे यो भुङ्क्ते नरो मासचतुष्टयम्। भाजनंघृतपूर्णं तु दद्यादुद्यापने द्विज॥८॥
षड्रसं भोजनं दद्याद्ब्राह्मणे नक्तभोजने। अयाचिते ह्यनड्वाहं सहिरण्यं प्रदापयेत्॥९॥

माषं त्यजन्मुनिश्रेष्ठ ! गां च दद्यात्सवत्सिकाम् ।
धात्रीस्नाने नरो दद्यात्स्वर्णं माषिकमेव च ॥१०॥

फलानां नियमे चैव फलानि च प्रदापयेत्। धान्यानां नियमे धान्यमथवा शालयः स्मृताः ॥११॥

चातुर्मास्य व्रत की उद्यापन की विधि

नारदजी ने कहा— हे विभो ! आप चातुर्मास्य व्रत के उद्यापन की विधि बतलायें। क्योंकि उद्यापन करने पर ही सब कुछ पूर्ण होता है ॥१॥ **महादेवजी ने कहा—** हे महाभाग ! यदि व्रत करके उसका उद्यापन नहीं किया जाय तो व्रत के कर्ता को अच्छी तरह से फल नहीं मिलता है ॥२॥ व्रत के विफल हो जाने से व्रती कुष्ठी तथा अन्धा हो जाता है। इसीलिए उद्यापन करना चाहिए ॥३॥ इन नियमों को धारण करके उसका विधि पूर्वक पालन करके भगवान् के जग जाने पर ब्राह्मण के पास जाकर ॥४॥ श्रीभगवान् से विधि पूर्वक विस्तार से क्षमा प्रार्थना करें। तेल का त्याग किए रहने पर घी का दान करे घी का त्याग किए रहने पर दुग्ध दान दे। मौन होने पर तिल की पिण्डी सुवर्ण के साथ ब्राह्मण को देना चाहिए। भोजन का त्याग किए रहने पर ब्राह्मण को दध्योदन के साथ भोजन कराये ॥५-६॥ विशेष रूप से अन्न सुवर्ण के साथ दे। हे मुनिश्रेष्ठ ! अन्न दान करने वाला विष्णु लोक में पूजित होता है ॥७॥ जो मनुष्य चार महीनों तक पलाश के पतल पर भोजन करता है उसको घृतप्लुत भोजन ब्राह्मण को कराना चाहिए ॥८॥ नक्त भोजी को षड्रस भोजन ब्राह्मण को करना चाहिए। अययाचित अन्न का भोजन करने वाले को सुवर्ण के साथ सांड का दान करना चाहिए ॥९॥ उड़द का त्याग करने वाले को बछिया के साथ गौ का दान करना चाहिए। आँवले से स्नान करने वाले को एक मासा सुवर्ण दान देना चाहिए ॥१०॥ फलों का त्याग करने पर उन फलों का दान देना चाहिए। धान्यों का त्याग करने पर धान के चावल का दान

तद्वद्भूशयने शय्यां सतूलां गेन्दुकान्विताम् । ब्रह्मचर्यं कृतं येन चातुर्मास्ये द्विजोत्तम ॥१२॥
दम्पत्योर्भोजनं देयमुभयोर्भक्तिपूर्वकम् । सभोगं दक्षिणोपेतं स शाकं लवणं तथा ॥१३॥
नित्यस्नाने नरो दद्यान्निस्नेहे सर्पिसक्तवः । नखकेशव्रतेचैव ह्यादर्शं परिकल्पयेत् ॥१४॥
उपानहौ प्रदातव्यावुपानहविवर्जनात् । आमिषस्य परित्यागात्सवत्सा कपिला स्मृता॥१५॥
नित्यं दीपप्रदो यस्तु सौवर्णं दीपमावहेत् । तं दीपं घृतसंयुक्तं दद्याच्चैव द्विजन्मने॥१६॥
विष्णुभक्ताय विप्राय परिपूर्णव्रतेप्सया । शाकस्य नियमे शाकंमाषे सौवर्णमाषकम् ॥१७॥
मैथुनानां तु नियमे रौप्यं दद्याद्द्विजायते । नागवल्ल्यास्तु नियमे कर्पूरं सहिरण्यकम् ॥१८॥
कालेकाले द्विजश्रेष्ठ यत्कृतं नियमेन तु । तत्तद्देयं विशेषेण परलोकगतीप्सया॥१९॥
आदौ स्नानादिकं कृत्वा विष्णोरग्रे प्रकारयेत् ।
अनादिनिधनोदेवःशङ्खचक्रगदाधरः ॥
तस्याग्रे के न कुर्वन्ति यतो विष्णुस्तु पापहा ॥२०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे चातुर्मास्योद्यापनं नामषट्षष्टतमोऽध्यायः ॥६६॥

देना चाहिए ॥११॥ चातुर्मास्य भर भूमि पर सोने वाले को रजाई, गद्दा तथा गेंद के साथ शय्या दान करना चाहिए । हे द्विजोत्तम ! ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले को ॥१२॥ भक्ति पूर्वक ब्राह्मण दम्पत्ती को भोजन करना चाहिए । दक्षिणा के साथ भोजन, शाक एवं नमक तथा दक्षिणा देना चाहिए ॥१३॥ बिना तेल लगाये नित्य स्नान करने वाले को घी, सत्तू दान करना चाहिए । चातुर्मास्य भर नख तथा केश नहीं काटने वाले को दर्पण दान करना चाहिए ॥१४॥ जूते का परित्याग करने वाले को जूता दान करना चाहिए । मांस का परित्याग करने वाले को बछड़ी के साथ कपिला गौ दान करना चाहिए ॥१५॥ नित्य दीप देने वाले को सुवर्ण दीप का दान करना चाहिए । उस दीप को घी के साथ ब्राह्मण को देना चाहिए ॥१६॥ शाक का त्याग किए रहने पर शाक का दान करे और उड़द का त्याग किए रहने पर सुवर्ण का उड़द व्रत के परिपूर्ण फल प्राप्त करने की इच्छा वाले को विष्णु भक्त ब्राह्मण को दान देना चाहिए ॥१७॥ मैथुन का परित्याग करने वाले को चाँदी दान करना चाहिए । नागवल्ली का त्याग करने वाले को सुवर्ण के साथ कर्पूर दान करना चाहिए ॥१८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! समय से जिस-जिस वस्तु का नियम करे परलोक में सद्गति प्राप्त करने की इच्छा से उसका-उसका दान करे ॥१९॥ व्रत के प्रारम्भ में स्नान आदि करके भगवान् विष्णु के समक्ष यह प्रार्थना करें कि हे अनादिनिधन भगवन् ! हे शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले भगवन् ! उनके समक्ष कौन प्रार्थना नहीं करता है । भगवान् विष्णु तो पाप विनाशक है ॥२०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापतिनारद संवादान्तर्गत चातुर्मास्य उद्यापन नामक छियासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६६।।

सड़सठवाँ अध्याय

नारद उवाच

यमस्याराधनं ब्रूहि मद्धितार्थं सुरोत्तम !। कथं न गम्यते देव नरेण नरकान्तरम् ॥१॥
श्रूयते यमलोके तु सदा वैतरणी नदी । अनाधृष्या त्वपारा च दुस्तरा बहुशोणिता ॥२॥
दुस्तरा सर्वभूतानां सा कथं सुतरा भवेत् । भयमेतन्महादेव यमलोकंप्रति प्रभो ॥३॥
तस्य निर्मोचनार्थाय ब्रूहि कृत्यमशेषतः । भगवन्देवदेवेश कृपां कृत्वा ममोपरि ॥४॥

महादेव उवाच

द्वारवत्यां पुरा विप्र ! स्नातोऽहंलवणाम्भसि ।
ददृशे मुनिमायान्तं मुद्गलं नाम वाडव ! ॥५॥

ज्वलन्तमिव चादित्यं तपसाद्योतिताङ्गकम् । मां प्रणम्य मुनिः प्राह मुद्गलो विस्मयान्वितः॥६॥

मुद्गल उवाच

अकस्मान्मूर्च्छितो देव पतितोस्मि धरातले । प्रज्वलन्ति ममाङ्गानि गृहीतो यमकिङ्करैः ॥७॥
बलादाकृष्यमाणोऽहं पुरुषोऽङ्गुष्ठमात्रकः । बद्धो यमभटैर्गाढं नीतोऽस्मि शमनान्तिकम्॥८॥

क्षणात्सभायां पश्यामि यमं पिङ्गललोचनम् ।
कृष्णमुखं महारौद्रं मृत्युव्याधिशतान्वितम् ॥९॥

वातपित्तश्लेष्मदोषैर्मूर्तिमद्भिस्तु सेवितम्। कासशोषज्वरातङ्कस्फोटिकालूतकादिभिः ॥१०॥
ज्वालाङ्गमर्दशीर्षार्तिभगन्दरबलक्षयैः । कण्ठमालक्षिरोगैश्च मूत्रकृच्छ्रज्वरव्रणैः॥११॥
विमूर्च्छिकागलग्राध्हद्रोगैर्भूततस्करैः । इत्थं बहुविधै रौद्रैर्नानारूपैर्भयङ्करैः॥१२॥

यम की आराधन तथा वैतरणी व्रत का विधान वर्णन

नारदजी ने कहा— हे सुरोत्तम ! आप मेरे कल्याण के लिए यम की आराधना का वर्णन करें। हे देव ! मनुष्य कैसे दूसरे नरकों में नहीं जाता है ?॥१॥ सुना जाता है कि यमलोक में वैतरणी नदी है उसको पार करना कठिन है । उसका आर-पार नहीं है तथा वह बहुत खून से भरी रहती हैं ॥२॥ सभी जीवों के लिए यह सुतर कैसे हो जाती है ? हे प्रभो ! यमलोक के विषय में यह महान् भय है ॥३॥ उससे बचने के लिए आप जो करना हो उसे हे देवेश ! मुझपर कृपा करके पूर्ण रूप से बतलायें ॥४॥ **महादेवजी ने कहा—** हे विप्र ! प्राचीन काल में मैंने द्वारका में क्षार समुद्र में स्नान किया और मैंने देखा की मुद्गल मुनि आ रहे हैं ॥५॥ तपस्या के कारण उनके अङ्ग सूर्य के समान चमक रहे थे । विस्मित होकर मुद्गल मुनि ने मुझको प्रणाम करके कहा ॥६॥ **मुद्गल मुनि ने कहा—** हे देव ! मैं अकस्मात् पृथिवी पर मूछित होकर गिर पड़ा । मेरे अङ्ग जलने लगे और यमदूतों ने मुझे पकड़ लिया ॥७॥ अङ्गुष्ठ प्रमाणक पुरुष मुझको बलपूर्वक खींचने लगे । यमदूतों ने मुझे कसकर पकड़ लिया और यमराज के पास मुझे ले गये ॥८॥ क्षणभर में मैंने पीले नेत्रों वाले यमराज को देखा, उनका मुख काला और अत्यन्त भयङ्कर था तथा मृत्यु सम्बन्धी सैकड़ों व्याधियों से वे युक्त थे ॥९॥ वात, पित्त आदि कफ दोष मूर्ति मानदोष उनकी सेवा में थे । कास, शोष, ज्वर, आतङ्क, घाव तथा लूता आदि ॥१०॥ ज्वाला, अङ्गमर्द, शिरदर्द,

कपालशिरोहस्तैश्च सङ्ग्रामे नरके तथा । राक्षसैर्दानवैर्घोरैरुपविष्टैः पुरः स्थितैः ॥१३॥
धर्माधिकारिभिश्चात्र चित्रगुप्तादि लेखकैः । व्याघ्रसिंहवराहैश्च शिवासर्पैः सुदुर्धरैः ॥१४॥
वृश्चिकै दंष्ट्रिभिर्भूतैः कीटकैर्मत्कुणादिभिः । वृकचित्रादिशुनकैः कङ्कैर्गृध्रैश्च जम्बुकैः ॥१५॥
तस्करैर्भूतदारिद्रैर्मारिभिर्डाकिनीग्रहैः । मुक्तकेशैः श्वासकासैर्भ्रुकुटीकुटिलाननैः ॥१६॥
बृहत्प्रतापैर्नो भीतैः शासकैः पापकर्मणाम् । यमः सभायां शुशुभे सेव्यमानः परिग्रहैः ॥१७॥
भीमाटविकजीवैश्च यथा व्यालाञ्जनोगिरिः । ततो विश्वेश्वरः प्राह यमः किङ्करान्प्रति ॥१८॥
नामभ्रान्तैर्भवद्भिश्च समानीतः कथं मुनिः । भीमकस्यात्मजो ग्रामे कौण्डिन्ये मुद्गलाभिधः ॥१९॥

क्षीणायुः क्षत्रियः सोऽस्ति आनेयो मुच्यतामसौ ।
श्रुत्वैतत्ते गतास्तस्मादायाताः पुनरेव ते ॥२०॥

धर्मराजं पुनः प्राहुः सर्वे ते यमकिङ्कराः । तत्रास्माभिर्गतैर्देही क्षीणायुर्नोपलक्षितः ॥

भानुसूनो ! न जानीमः कथंचिद् भ्रान्तचेतसः ॥२१॥

यम उवाच

किङ्कराणामदृश्यास्ते प्रायेण भवतां नराः । सुकृता द्वादशी यैस्तु ख्याता वैतरणीति या ॥२२॥

उज्जयिन्यां प्रयागे वा यमुनायां च ये मृताः ।
तिलहस्तिहिरण्यादि दत्तं यैस्तु गवादिकम् ॥२३॥

ते ऊचुः

तद्व्रतं कीदृशं स्वामिन्ब्रूहि सर्वमशेषतः । किं तत्र देव कर्त्तव्यं पुरुषैस्तव तोषदम् ॥२४॥

भगन्दर, वलक्षय, कण्ठमाला, नेत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र, जवर, व्रण ॥११॥ विमूर्छिका, गलग्राह, हृदय रोग, भूत, और तस्कर इस तरह से बहुत से भयङ्कर, अनेक प्रकार के सङ्गम तथा नरक में भयङ्कर कपाल, शिर तथा हाथों वाले भयङ्कर राक्षस एवं दानव उनके (यमराज के) सामने बैठे थे ॥१२-१३॥ धर्माधिकारी चित्रगुप्त आदि लेखक बाघ, सिंह, वराह, स्यारिन, भयङ्कर सर्प, बिच्छी, दाँत वाले भूत, कीड़े, खटमल, वृक, चित्रा आदि कुत्ते, कङ्क, गृध्र, स्यार, चोर, भूत, दरिद्रता, अपना केश खोले हुए टेढी भौहों वाले भयङ्ककर मुख वाले बड़े प्रताप वाले तथा नहीं डरने वाले पापियों को दण्ड देने वाले श्वास तथा कास यमराज की सेवा कर रहे थे । उसी सभा में यम सुशोभित हो रहे थे ॥१४-१७॥ भयङ्कर जङ्गली जीवों से वे उसी तरह लगते थे जैसे सर्पो से सुशोभित अञ्जनाचल हो उसके बाद शङ्करजी ने कहा ॥१८॥ कि उसके बाद यमराज ने दूतों से कहा कि इन मुनि को तुम लोग कैसे लाये । कौण्डिन्य ग्राम में भीमक का पुत्र है उसका पुत्र मुद्गल है । तुम लोगों को नाम का भ्रम हो गया है । उस क्षत्रिय की आयु समाप्त हो गयी है । उसी को तुम्हे लाना है । इनको छोड़ दो । यह सुनकर वे गये और वहाँ से पुनः आये ॥१९-२०॥ वे सभी यमदूत यम से कहे कि हमलोग वहाँ गये थे किसी शरीरी को क्षीण आयु वाला नहीं देखे । हे सूर्य पुत्र! भ्रमित होने के कारण उसको नहीं जान पाते हैं ॥२१॥ **यम ने कहा**— प्रायः वे लोग तुमलोगों को नहीं दिखायी पड़ते हैं जो पवित्र द्वादशी व्रत तथा वैतरणी विधि करते हैं ॥२२॥ उज्जयिनी या प्रयाग में या यमुना नदी में मरते हैं या जो तिल, हाथी सा सुवर्ण का या गौ आदि का दान किए रहते हैं ॥२३॥ **उन सबों ने कहा**— हे स्वामिन् ! वह व्रत कैसा है, इन सारी बातों को आप पूर्ण रूप से बतलायें । आपको प्रसन्न

येन कृता नरश्रेष्ठ ! द्वादशी कृष्णपक्षजा। उपवासे न तेनैव कथं पापात्प्रमुच्यते ॥२५॥
तद्व्रतं केन विधिना कर्तव्यं च यथा वद। सुप्रसन्नेन वक्तव्यं दयां कृत्वा दयानिधे ! ॥२६॥

श्रीमुद्गल उवाच

दूतानां वचनं श्रुत्वा उवाच मधुरं तदा । सर्वं वदामि भोदूता ! यथादृष्टं यथा श्रुतम्॥२७॥

यम उवाच

मार्गशीर्षादि मासे तु या इमाः कृष्णपक्षजाः ।
तासु सर्वासु विधिवद् दूता वैतरणीव्रतम् ॥२८॥

प्रतिमासं च कर्त्तव्यं यावद्वर्षं भवेद्ध्रुवम्। यत्तु कृत्वा तु भो दूता मुच्यते नात्र संशयः ॥२९॥
उपवासस्य नियमःकर्त्तव्यो विष्णुतुष्टिदः। अद्य मे देवदेवेश उपवासो भविष्यति॥३०॥

द्वादश्यां पूज्य गोविन्दं भक्तिभावसमन्वितम् ।
स्वप्न इन्द्रियवैकल्याद्भोजनं यच्च मैथुनम् ॥३१॥

तत्सर्वं क्षम मे देव कृपां कृत्वा ममोपरि । एवं वै नियमं कृत्वा मध्याह्ने तीर्थमाव्रजेत् ॥३२॥
मृद्गोमयतिलान्नीत्वा गन्तव्यं विधिपूर्वकम्। स्नानं तत्र प्रकर्तव्यं व्रतसम्पूर्त्तिहेतवे ॥३३॥
अश्वक्रान्तेतिमन्त्रेण स्नानं कुर्याद्विशेषतः। अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे॥३४॥
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंवितम् । तया हतेन पापेन सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३५॥

काश्याञ्चैव तु संभूतास्तिला वै विष्णुरूपिणः ।
तिलस्नानेन गोविन्दः सर्वपापं व्यपोहति ॥३६॥

विष्णुदेहोद्भवे देवि महापापापहारिणी। सर्वं पापं हरत्वं वै सर्वौषधि नमोऽस्तु ते ॥३७॥

करने के लिए उसमें क्या करना होता है ?॥२४॥ हे नरश्रेष्ठ ! जिसने कृष्ण पक्ष की द्वादशी का व्रत किया है, उस दिन उपवास करने मात्र से कैसे पाप मुक्त हो जाता है ॥२५॥ उस व्रत को किस विधि से करना चाहिए उसे आप बतलायें । हे दयासागर ! आप प्रसन्न होकर कहें ॥२६॥ **श्रीमुद्गल मुनि ने कहा**— दूतों की वाणी को सुनकर यमराज ने मधुर शब्दों में कहा । हे दूतों ! मैंने जैसा देखा और सुना है उन सारी बातों को बतलाता हूँ । **यम ने कहा**— मार्गशीर्ष इत्यादि महीनों में जो कृष्ण पक्ष द्वादशी हो उन सबों में वैतरणी व्रत विधि पूर्वक करनी चाहिए ॥२७-२८॥ प्रत्येक महीने में एक वर्ष तक इस व्रत करना चाहिए । दूतों ! इस व्रत को करके मनुष्य पाप मुक्त हो जाता है ॥२९॥ भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाले उपवास के नियमों को करना चाहिए । भगवान से प्रार्थना करे कि हे देवदेवेश ! आज मेरा उपवास होगा ॥३०॥ द्वादशी के दिन भगवान् की पूजा भक्ति पूर्वक करके स्वप्न में यदि इन्द्रियों की विकलता के कारण भोजन हो अथवा मैथुन हो तो उसे आप मुझ पर कृपा करके क्षमा करेंगे । इस तरह नियम करके तीर्थ में जाय ॥३१-३२॥ मिट्टी और तिल लेकर जाना चाहिए और व्रत की पूर्ति के लिए स्नान करे॥३३॥ विशेष रूप से अश्वक्रान्त इत्यादि मन्त्र से स्नान करना चाहिए । हे अश्व क्रान्ते, रथक्रान्ते और भगवान् विष्णुक्रान्त वसुन्धरे ! हे मृत्तिके ! मेरे जो पूर्वकृत पाप हैं उनको आप हर लें । उसके द्वारा पाप के विनष्ट कर देने के कारण मनुष्य पाप मुक्त हो जाता है ॥३४-३५॥ विष्णु स्वरूप तिल काशी में उत्पन्न हुए हैं। तिल से स्नान करने से भगवान् विष्णु सभी पापों को दूर कर देते हैं ॥३६॥ इसके बाद सर्वौषधि

तुलसीपत्रकं धृत्वा नामोच्चारणपूर्वकम्। स्नानं सुकृतिभिः प्रोक्तं कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥३८॥
एवं स्नात्वा समुत्तीर्य परिधाय सुवाससी । तर्पयित्वा पितृन्देवांस्ततो विष्णोस्तु पूजनम्॥३९॥
संस्थाप्य चाव्रणं कुम्भं पञ्चपल्लवसंयुतम्। पञ्चरत्नसमोपेतं दिव्यस्रग्गन्धवासितम् ॥४०॥
सद्द्रव्यं जलपूर्णं च ताम्रपात्रसमन्वितम्। तत्रस्थं श्रीधरं देवं देवदेवं तपोनिधिम्॥४१॥
पूर्णेन विधिना राजन्कुर्यात्पूजां गरीयसीम् । मृद्गोमयादि रचितं मण्डलं कारयेच्छुभम् ॥४२॥
तण्डुलैःशुक्लधौतैश्चाप्यम्बुपिष्टैश्च कारयेत् । धर्मराजःप्रकर्त्तव्यो हस्ताद्यवयवान्वितः ॥४३॥
नदीं वैतरणीं ताम्रां स्थापयित्वा तदग्रतः । पूजयेच्च पृथक्सम्यक्समावाहनपूर्वकम् ॥४४॥
आवाहयामि देवेशं यमं वै विश्वरूपिणम्। इहाभ्येहि महाभाग सान्निध्यं कुरु केशव ॥४५॥

इदं पाद्यं श्रियःकान्त ! सोपविष्टं हरे ! प्रभो ! ।
विश्वोद्यानरतो नित्यं कृपां कुरु ममोपरि ॥४६॥

भूतिदाय नमःपादावशोकाय च जानुनी। ऊरूनमःशिवायेति विश्वमूर्ते नमःकटिम् ॥४७॥
कन्दर्पाय नमो मेढ्रमादित्याय फलं तथा । दामोदराय जठरं वासुदेवाय वै स्तनौ॥४८॥
श्रीधराय मुखं केशान्केशवायेति वै नमः । पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति चरणौ वरदाय च॥४९॥
स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदापरशुपाणये। सर्वात्मने नमस्तुभ्यं शिर इत्यभिधीयते ॥५०॥

मत्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनम् ।
रामं रामं च कृष्णं च बुद्धं कल्किं नमोऽस्तु ते ॥५१॥

से स्नान करते हुए कहे हे भगवान् ! विष्णु के देह से उत्पन्न तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाले सर्वौषिधि !आप मेरे पापों को हर लें आपको नमस्कार है ॥३७॥ तुलसी का पत्ता लेकर अपना नाम लेकर विधि पूर्वक स्नान करना चाहिए यह पुण्यवानों ने कहा है ॥३८॥ इस तरह स्नान करके निकले, फिर दो वस्त्र धारण करके पितरों तथा देवताओं का तर्पण करके भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए ॥३९॥ पञ्चपल्लव, पञ्चरत्न तथा दिव्य चन्दन, माला से सुगन्धित द्रव्य और जल से परिपूर्ण ताम्रपात्र से युक्त निश्छिद्र कलश पर तपोनिधि भगवान् श्रीधर की स्थापना करके विधि पूर्वक इस महान् पूजा को करना चाहिए । मिट्टी और गोबर से सुन्दर मण्डल बनाये ॥४०-४२॥ फिर धोए हुए उजले चावल को पानी में पीसकर हाथ आदि अवयवों से युक्त धर्मराज की मूर्ति बनाये । उनके सामने ताम्बे की वैतरणी नदी रखे। अलग बाहन से युक्त यम की अच्छी तरह आवाहन् पूर्वक पूजा करें ॥४३-४४॥ मैं विश्वरूप यमदेव का आवाहन करता हूँ हे महाभाग ! यहाँ भगवान् केशव के सन्निकट आयें । यह आवाहन का मन्त्र है ॥४५॥ **पाद्य का मन्त्र**— हे श्रियः कान्त ! हे हरे ! हे प्रभो ! मुझ पर कृपा करके विश्वरूपी उद्यान में लगे रहने वाले आप इस पाद्य को स्वीकार करें ॥४६॥ फिर भूतिदाय नमः से दोनों पैरों की पूजा करे, अशोकाय नमः से घुटनों की पूजा करे, नमः शिवाय से ऊरु की पूजा करे, विश्वमूर्तये नमः से कटि की पूजा करे, कन्दर्पाय नमः से मेढ्र की पूजा करे, आदित्याय नमः से फल की पूजा करे, दामोदराय नमः से पेट की पूजा करे, वासुदेवाय नमः से दोनों स्तनों की पूजा करे, श्रीधराय नमः से मुख की पूजा करे, केशवाय नमः से केशों की पूजा करे, शङ्खपाणये नमः से शङ्ख की, चक्रपाणये नमः से चक्र की, असिपाणये नमः से कृपाण की परशुपाणाये नमः से फरसे की पूजा करें, और सर्वात्मने नमः से शिर की पूजा करे ॥४७-५०॥ फिर प्रार्थना

सर्वपापौघनाशार्थं पूजयामि नमोनमः। एभिश्च सर्वशो मन्त्रैर्विष्णुं ध्यात्वा प्रपूजयेत्॥५२॥
धर्मराज नमस्तेऽस्तु धर्मराज नमोऽस्तु ते। दक्षिणाशापते तुभ्यं नमो महिषवाहन॥५३॥
चित्रगुप्त ! नमस्तुभ्यं विचित्राय नमोनमः। नरकार्तिप्रशान्त्यर्थं कामान्यच्छ ममेप्सितान्॥५४॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥५५॥
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः। नीलाय चैव दध्नाय नित्यं कुर्यान्नमोनमः॥५६॥
एवं द्वादशभिःपूज्यो नामभिर्धर्मराट् प्रभुः। वैतरणि सुदुष्पारे पापघ्नि सर्वकामदे ॥५७॥
इहाभ्येहि महाभागे गृहाणार्घं मया कृतम्। यमद्वारपथे घोरे ख्याता वैतरणीनदी॥५८॥
तस्या उद्धरणार्थाय जन्ममृत्युजरातिगा। या दुस्तरा दुष्कृतिभिः सर्वप्राणिभयापहा॥५९॥

यस्यां भयात्प्रमज्जन्ति प्राणिनो यातनापराः ।
तर्तुकामस्तु तां घोरां जयादेवि नमोनमः ॥६०॥
तस्यां देव हि तिष्ठन्ति या सा वैतरणी नदी ।
सा चापि पूजिता भक्तया प्रीत्यर्थं केशवस्य च ॥६१॥

यस्यास्तटे प्रतिष्ठन्ति ऋषयः पितरस्तथा। सा चापि सिन्धुरूपेण पूजिता पापहारिका॥६२॥
तुरीतुं तां प्रदास्यामि सर्वपापविमुक्तये। पुण्यार्थं संवप्रक्ष्यामि तुभ्यं वैतरणीनदीम्॥६३॥

मयासि पूजिताभक्तया प्रीत्यर्थं केशवस्य च ।
कृष्णकृष्ण जगन्नाथ संसारादुद्धरस्व माम् ॥६४॥

करें कि पाप समूह का नाश के लिए मत्स्य, कूर्म, वाराह, नारसिंह, वामन, श्रीराम, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि शरीर धारण करने वाले आपको नमस्कार है । मैं इन सबों की पूजा करता हूँ इन सभी मन्त्रों से भगवान् विष्णु का ध्यान करके उनकी पूजा करें ॥५१-५२॥ हे धर्मराज ! आप को बार-बार नमस्कार है। हे दक्षिण दिशा के स्वामिन्, हे महिषवाहन ! आपको नमस्कार है ॥५३॥ हे चित्रगुप्त ! आप विचित्र को बारम्बार नमस्कार है नारकीय कष्ट को दूर करने के लिए आप मेरी कानमाओं को पूर्ण करें ॥५४॥ इसके बाद निम्नांकित बारह नामों से धर्मराज की पूजा करें, यमाय नमः, धर्मराजाय नमः, मृत्यवे नमः, अन्तकाय नमः, वैवस्वताय नमः, कालाय नमः, सर्वभूत क्षयाय नमः, वृकोदराय नमः, चित्राय नमः, चित्रगुप्ताय नमः, नीलाय नमः, और दध्नाय नमः । इसके बाद वैतरणी की प्रार्थना करे हे दुष्पार ! पापों को विनष्ट करने वाली, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली वैतरणि, हे महाभागे, यहाँ आओ मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ को स्वीकार करो । यमलोक के मार्ग में वैतरणी नदी प्रख्यात है ॥५५-५८॥ जन्म, मृत्यु, तथा जरा से रहित जो पापियों के लिए दुस्तर है और सभी प्राणियों के भय और पाप को विनष्ट करने वाली है । यम यातना वाले जीव जिसमें भय के कारण डूब जाते हैं, उससे उद्धार करने के लिए, उस घोर नदी को पार करने की इच्छा से हे देवि ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥५९-६०॥ उसमें देवता रहते हैं, ऐसी वह वैतरणी नदी है । उसकी भी पूजा भगवान् केशव की प्रसन्नता के लिए मैंने की है ॥६१॥ जिसके तट पर ऋषिगण और पितृगण रहते है, उस पापविनाशिनी नदी रूप से मैंने पूजा की है ॥६२॥ उसको पार करने के लिए तथा सभी पापों से छूटने के लिए मैंने उसकी पूजा की है । पुण्य प्राप्त करने के लिए तुम वैतरणी नदी से पूछता हूँ ॥६३॥ भगवान् केशव की प्रसन्नता के लिए मैंने भक्ति पूर्वक तुम्हारी पूजा की

नामग्रहणमात्रेण सर्वं पापं हरस्व मे। यज्ञोपवीतं परमं कारितं नवतन्तुभिः॥६५॥
प्रतिगृह्लीष्व देवेश ! प्रीतो यच्छ ममेप्सितम् ।
इदं तव च ताम्बूलं यथा शक्तया सुशोभिनम् ॥६६॥
प्रतिगृह्लीष्व देवेशं मामुद्धर भवार्णवात्। पञ्चवर्ती प्रदीपोऽयं देवेशारार्तिकं तव॥६७॥
मोहान्धकारद्युमणे भक्तियुक्तो भवार्तिहत्। परमान्नं सुपक्वान्नं समस्तरससंयुतम्॥६८॥
निवेदितं मया भक्तया भगवन्प्रतिगृह्यताम्। द्वादशाक्षरमन्त्रेण यथासङ्ख्यजपेन च॥६९॥
प्रीयतां मे श्रियःकान्तः प्रीतो यच्छतु वाञ्छितम् ।
पञ्चगावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ ॥७०॥
तासां मध्ये तु या नन्दातस्यै धेन्वै नमोनमः ।
गां संपूज्य विधानेन अर्घ्यं दद्यात्समाहितः ॥७१॥
सर्वकामदुधे देवि सर्वान्तकनिवारिणि। आरोग्यं सन्ततिं दीर्घादेहि नन्दिनि मे सदा ॥७२॥
पूजिता च वसिष्ठेन विश्वामित्रेण धीमता। कपिले हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम्॥७३॥
गावो ममाग्रतःसन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः। नाके मामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्ग्यःपयोमुचः॥७४॥
सुरभ्यःसौरभेयाश्च सरितःसागरा यथा। सर्वदेवमये देवि सुभद्रे भक्तवत्सले॥७५॥
एवं संपूज्य विधिवद्दद्याद् गोषु गवाह्निकम् ।
सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पापनाशनाः ॥७६॥
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः। गं गदायै नमो भूत्यै सर्वपापप्रहाणये॥७७॥

है । हे जगन्नाथ भगवान् कृष्ण आप मेरा संसार से उद्धार करें ॥६४॥ केवल नाम लेने से ही आप मेरे सभी पापों को हर लें । मैने नव तन्तुओं से यज्ञोपवीत का निर्माण किया है ॥६५॥ हे देवेश ! इसे आप ग्रहण करें और प्रसन्न होकर मेरे अभिप्रेत अर्थ को प्रदान करें । अपनी शक्ति के अनुसार मैंने आपके लिए यह सुन्दर ताम्बूल ॥६६॥ लाया है, इसे आप स्वीकार करें और भवसागर से मेरा उद्धार करें । हे देवेश! यह पाँच बत्तियों वाला प्रदीप ही आपकी आरती है ॥६७॥ मोहान्धकार को दूर करने के लिए सूर्य के समान भगवन् ! हे संसार भय को दूर करने वाले ! सभी रसों से युक्त तथा अच्छी तरह से पके हुए परमान्न को मैंने भक्ति पूर्वक निवेदित किया है, हे भगवन् ! इसे आप स्वीकार करें, यथा संख्य द्वादशाक्षर मन्त्र के जप से प्रसन्न होकर हे लक्ष्मीपते ! मुझे अभिप्रेत अर्थ प्रदान करे । महोदधि के मथे जाने के समय पाँच गायें उत्पन्न हुयीं ॥६८-७०॥ उन सबों में जो नन्द गौ है उसको बार-बार नमस्कार है । उस गौ का पूजन करके सावधानी पूर्वक अर्घ्य देना चाहिए ॥७१॥ हे कामनाओं को पूर्ण करने वाली ! और समस्त भयों को दूर कर देने वाली नन्दिनी आप मुझे आरोग्य तथा बहुत सन्तान प्रदान करें ॥७२॥ वसिष्ठ महर्षि ने आपकी पूजा की है तथा विश्वामित्र महर्षि ने भी आपकी पूजा की है । हे कपिले ! मेरे पूर्व संचित पापों को आप हर लें ॥७३॥ गायें मेरे आगे और पीछे रहें स्वर्ग में दुधारु रूप से तथा सुवर्ण शृङ्गी रूप से मुझे प्राप्त हों ॥७४॥ गायें और गायों के बच्चे नदियों और सागरों के समान, हे सर्वदेवमयी सुभद्रे देवि! हे भक्तवत्सले ! ॥७५॥ इस तरह विधि पूर्वक पूजन करके गाय के लिए भोजन प्रदान करे और कहे गौएँ सबों का कल्याण करने वाली हैं, पवित्र तथा पाप विनाशक हैं ॥७६॥ ये त्रैलोक्य की माता हैं । मेरे द्वारा

अनेनैव तु मन्त्रेण गदां वै धारयेद्बुधः। पं नमःपद्मनाभाय पद्मं वै धारयेत्सुधीः ॥७८॥
चं चक्ररूपिणे विष्णो धारणं चक्रजं स्मृतम् ।
शं शङ्खरूपिणे तुभ्यं नमोऽस्तु सुखकारिणे ॥७९॥
मन्त्रेणानेन वै दूता धारणं शङ्खजं स्मृतम् । चतुर्णामायुधानां तु धारणं मुनिभिःस्मृतम् ॥८०॥
अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं तथा। ब्राह्मणस्य अथैवेदं तप्तमुद्रादि धारणम् ॥८१॥
चन्दनेन सुगन्धेन गोपिकाचन्दनेन तु। धारणं च विशेषेण ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥८२॥
चाण्डालोऽपि भवेच्छुद्धो धारणाच्च न संशयः ।
ऊर्ध्वपुण्डणमृजुं सौम्यं सचिह्नं धारयेद्यदि ॥८३॥
स चाण्डालोऽपि शुद्धात्मा पूज्य एव सदा द्विजैः ।
चाण्डालानां गृहे दूतास्तुलसी यत्र दृश्यते ॥८४॥
तत्रत्या तुलसी ग्राह्या भक्तिभावेन चेतसा ॥८५॥

महेश्वर उवाच

इति श्रुतं धर्ममुखान्मुद्गलो द्विजसत्तमः। कथयित्वा ममाग्रे वै गतो यादृच्छिको मुने ॥८६॥
गोपिकाचन्दनं यत्र तिष्ठते वै द्विजोत्तम। तद्गृहं तीर्थरूपं च विष्णुना भाषितं किल ॥८७॥
शोकमोहौ न तत्रस्तो न भवत्यशुभं क्वचित् ।
गोपिकाचन्दनं यस्य तिष्ठति द्विज ! सद्मनि ॥८८॥
सुखिनःपूर्वजास्तेषां सन्ततिर्वर्धते सदा। गोपिकाचन्दनं यस्य वर्त्ततेऽहर्निशं गृहे ॥८९॥
गोपीपुष्करजा मृतस्ना पवित्रा कायशोधिनी ।
उद्धर्त्तनाद्विनश्यंति व्याधयो ह्याधयश्चये ॥९०॥

प्रदत्त ग्रास को स्वीकार करें कल्याण तथा सभी पापों का नाश करने के लिए **गं गदाये नमः** इस मन्त्र से गदा धारण करें ॥७७॥ **पं नमः पद्मनाभाय नमः** इस मंत्र से पद्म धारण करें ॥७८॥ **चं चक्ररूपिणे नमः** इस मन्त्र से चक्र धारण करें **शंशङ्खरूपिणे विष्णवे नमः** ॥७९॥ इस मन्त्र से हे दूतों शङ्ख को धारण करे। हे दूतों ! इस मन्त्र से शङ्ख धारण कहा गया है । मुनियों ने चारों आयुधों का धारण बतलाया है ॥८०॥ ब्राह्मणों को जैसे नित्य, अग्निहोत्र और वेदाध्ययन विहित है, उसी तरह तप्त मुद्रा आदि धारण विहित है॥८१॥ सुगन्धित चन्दन या गोपी चन्दन से वेद पारंगत ब्राह्मणों को ऊर्ध्व पुण्ड्र विशेष रूप से धारण विहित है ॥८२॥ यदि चाण्डाल भी सीधा तथा सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है तो वह शुद्ध हो जाता है ॥८३॥ वह शुद्धात्मा चाण्डाल भी द्विजों के लिए पूज्य है । हे दूतों ! जिन चाण्डालों के घर में तुलसी दिखायी पड़ती है ॥८४॥ तो वहाँ की तुलसी भक्ति पूर्वक ले लेना चाहिए ॥८५॥ **महेश्वर ने कहा—** इस तरह से मुद्गल मुनि ने धर्मराज के मुख से सुनी हुयी बात को मुझे कहा और उसके बाद वे चले गये ॥८६॥ हे द्विजोत्तम ! जहाँ गोपी चन्दन रहता है वह गृह तीर्थ स्वरूप होती है इस बात को भगवान् विष्णु ने कहा॥८७॥ हे द्विज ! जिसके घर में गोपी चन्दन रहता है उसके घर में कभी भी शोक, मोह या अमङ्गल नहीं रहता है ॥८८॥ उनके पूर्वज सुखी रहते हैं और सन्तान की वृद्धि होती है । जिनके घर में गोपी चन्दन दिन-रात रहता है ॥८९॥ गोपी पुष्कर की मिट्टी पवित्र और शरीर को शुद्ध करने वाली है । उसको

अतो देहे धृतं पुम्भिर्मुक्तिदं सर्वकामिकम्। तावद् गर्जन्ति तीर्थानि तावत्क्षेत्राणि सर्वदा ॥९१॥
गोपिकाचन्दनं यावन्न दृष्टं न श्रुतं द्विज। इदं ध्येयमिदं पूज्यं मलदोषविनाशनम्॥९२॥
यस्य संस्पर्शनादेव पूतो भवति मानवः। अन्तकाले तु मर्त्यानां मुक्तिदं पावनं परम्॥९३॥
किं वदामि द्विजश्रेष्ठ मुक्तिदं गोपिचन्दनम् ।
विष्णोस्तु तुलसीकाष्ठं तथा वै मूलमृत्तिका ॥९४॥
गोपिकाचन्दनं चैव तथा वै हरिचन्दनम्। चत्वार्येतानि संमेल्य अङ्गमुद्वर्तयेत्सुधीः॥९५॥
तेन तीर्थं कृतं सर्वं जम्बूद्वीपेषु सर्वदा। तिलकं कुरुते यस्तु गोपिकाचन्दनद्रवैः॥९६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परंपदम् ।
पितुः श्राद्धादिकं तेन गयां गत्वा तु वै कृतम् ॥९७॥
येन वा पुरुषेणापि विधृतं गोपिचन्दनम्। मद्यपो ब्रह्महा चैव गोघ्नो वा बालहा तथा ॥
मुच्यते तत्क्षणादेव गोपीचन्दनधारणात् ॥९८॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे गोपीचन्दनमाहात्म्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

शरीर में लगाने से आधि व्याधियाँ विनष्ट हो जाती हैं ॥९०॥ अतएव शरीर में धारण करने से वह मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करता है और सारी कामनाओं को पूर्ण करता है । सभी तीर्थ और क्षेत्र तब तक गर्जते हैं ॥९१॥ जब तक मनुष्य गोपी चन्दन का न तो दर्शन किए रहता है और न तो उसके विषय में सुने रहता है । इस चन्दन का ध्यान और पूजन करना चाहिए यह मल तथा दोषों का विनाशक है ॥९२॥ उसका स्पर्श करने मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है । और मनुष्यों को यह सर्वश्रेष्ठ मुक्ति प्रदान करने वाला है ॥९३॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं क्या कहूँ गोपी चन्दन मुक्तिप्रद है । विद्वान् को चाहिए कि वह भगवान् विष्णु के अङ्गों में तुलसी का काष्ठ, तुलसी के जड़ की मिट्टी, गोपी चन्दन तथा हरिचन्दन इन चारों को मिलाकर लगाये ॥९४-९५॥ ऐसा करने वाले जो मनुष्य को जम्बूद्वीप के सभी तीर्थों को करने का फल मिलता है, जो गोपी चन्दन से तिलक लगाता है वह सभी पापों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त कराता है और उसे गया जाकर अपने पिता के श्राद्ध करने का भी फल मिलता है ॥९६-९७॥ जो पुरुष गोपी चन्दन धारण करता है चाहे वह शराबी हो, ब्रह्मघाती हो या बालघाती हो वह भी उसी क्षण सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥९८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत गोपी चन्दन का माहात्म्य वर्णन तथा वैतरणी विधि वर्णन नामक सड़सठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६७।।

अड़सठवाँ अध्याय

महेश्वर उवाच

श्रृणु नारद वक्ष्यामि वैष्णवानां च लक्षणम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते लोको ब्रह्महत्यादि पातकात् ॥१॥
तेषां वै लक्षणं यादृक्स्वरूपं यादृशं भवेत् ।
तादृशं मुनिशार्दूल श्रृणु त्वं वच्मिसांप्रतम् ॥२॥
विष्णोरयं यतो ह्यासीत्तस्माद्वैष्णव उच्यते। सर्वेषां चैव वर्णानां वैष्णवःश्रेष्ठ उच्यते ॥३॥
येषां पुण्यतमाहारास्तेषां वंशे तु वैष्णवः। क्षमा दया तपःसत्यं येषां वै तिष्ठति द्विज ! ॥४॥
तेषां दर्शनमात्रेण पापं नश्यति तूलवत् ।
हिंसाधर्माद्विनिर्मुक्ता यस्य विष्णौ स्थिता मतिः ॥५॥
शङ्ख चक्र गदा पद्मं नित्यं वै धारयेत्तु यः ।
तुलसीकाष्ठजां मालां कण्ठे वै धारयेद्यतः ॥६॥
तिलकानि द्वादशधा नित्यं वै धारयेद्बुधः। धर्माधर्मं तु जानाति यः सवैष्णवउच्यते ॥७॥
वेदशास्त्ररतो नित्यं नित्यं वै यज्ञयाजकः। उत्सवाश्च चतुर्विंशत्कुर्वन्ति च पुनःपुनः ॥८॥
तेषां कुलं धन्यतमं तेषां वे यश उच्यते। ते वै लोके धन्यतमा जाता भागवतानराः ॥९॥
एक एव कुले यस्य जातो भागवतो नरः ।
तत्कुलं तारितं तेन भूयो भूयश्च वाडव ! ॥१०॥
उद्भिजा अण्डजाश्चैव ये जरायुजयोनयः। ते तु सर्वेऽपि विज्ञेया शङ्खचक्रगदाधराः ॥११॥

वैष्णव का लक्षण तथा माहात्म्य वर्णन

महेश्वर ने कहा— हे नारद ! सुनों मैं वैष्णव का लक्षण बतलाता हूँ। उसके सुनने मात्र से मनुष्य ब्रह्महत्या आदि के पापों से मुक्त हो जाता है ॥१॥ वैष्णवों के जैसे लक्षण और स्वरूप होते हैं उसे मैं बतला रहा हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ ! उसे तुम सुनो ॥२॥ चूंकि वह विष्णु का भक्त होता है अतएव वैष्णव कहलाता है। सभी वर्णों में वैष्णव श्रेष्ठ है ॥३॥ जिनके आहार अत्यन्त पवित्र होते हैं उन्हीं के वंश में वैष्णव उत्पन्न होते है। वैष्णव में क्षमा, दया, तप एवं सत्य ये गुण रहते हैं ॥४॥ उन वैष्णवों के दर्शन मात्र से पाप रुई के समान नष्ट हो जाता है। जो हिंसा और अधर्म से रहित तथा भगवान् विष्णु में मन लगा रहता है ॥५॥ जो सदा शङ्ख, चक्र, गदा, एवं पद्म को धारण किए रहता है। गले में तुलसी काष्ठ की माला धारण करता है ॥६॥ प्रत्येक दिन द्वादश तिलक लगाता है, धर्म एवं अधर्म का जो ज्ञान रखता है वह वैष्णव कहलाता है ॥७॥ जो सदा वेद शास्त्र में लगा रहता है और सदा यज्ञ करता है, बार-बार चौबीस उत्सवों को करता है ॥८॥ ऐसे वैष्णवों का वंश अत्यन्त धन्य है, उन्हीं का यश बढ़ता है। जो भागवत हो जाते हैं वे मनुष्य अत्यन्त धन्य हैं ॥९॥ जिसके वंश में एक भी भगवत हो जाता है, हे ब्राह्मण वह उस वंश को बार-बार तार देता है ॥१०॥ उद्भिज, अण्डज तथा जरायुज योनियों में जो उत्पन्न होते हैं उन सबों को शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए हुए जानना चाहिए ॥११॥ जिनके दर्शन मात्र से

येषां दर्शनमात्रेण ब्रह्मघ शुध्यते सदा। किंतु वक्ष्यामि देवर्षे तेभ्यो धन्यतमा भुवि ॥१२॥
वैष्णवा ये तु दृश्यन्ते भुवनेऽस्मिन्महामुने ।
ते वै विष्णुसमाश्चैव ज्ञातव्यास्तत्त्वकोविदैः ॥१३॥
कलौ धन्यतमा लोके श्रुतामे नात्र संशयः। विष्णोःपूजा कृता तेन सर्वेषां पूजनं कृतम् ॥१४॥
महादानं कृतं तेन पूजिता येन वैष्णवाः । फलं तत्र तथा शाकमन्नं वा वस्त्रमेव च॥१५॥
वैष्णवेभ्यः प्रयच्छन्ति ते धन्या भुवि सर्वदा ।
अर्चितो वैष्णवो यैस्तु सर्वेषां चैव पूजनम् ॥१६॥
कृतं यैरर्चितो विष्णुस्ते वै धन्यतमा मताः। तेषां दर्शनमात्रेण शुध्यते पातकान्नरः ॥१७॥
किमन्यद्बहुनोक्तेन भूयोभूयश्च वाडव। अतो वै दर्शनं तेषां स्पर्शने सुखदायकम् ॥१८॥
यथा विष्णुस्तथा चायं नान्तरं वर्तते क्वचित् ।
इति ज्ञात्वा तु भोवत्स ! सर्वदा पूजयेद् बुधः ॥१९॥
एक एव तु यैर्विप्रो वैष्णवो भुवि भोज्यते ।
सहस्त्रं भोजितं तेनद्विजानां नात्र संशयः ॥२०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे वैष्णवमाहात्म्यं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥
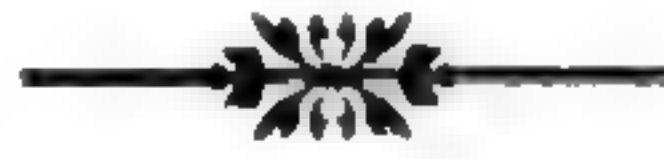
ब्रह्मघाती भी शुद्ध हो जाता है । हे देवर्षे ! मैं बतलाता हूँ कि संसार में उनसे भी धन्यतम श्रीवैष्णव हैं॥१२॥ हे महामुने ! जो संसार में वैष्णव दिखते हैं उन सभी तत्त्वज्ञ पुरुषों को विष्णु के समान जानना चाहिए ॥१३॥ मैंने उनको कलियुग में धन्यतम सुना है इसमें कोई संसय नहीं है । जिसने भगवान् विष्णु की पूजा की है उसने सबों की पूजा कर ली ॥१४॥ जिसने वैष्णव की पूजा की है जो वैष्णवों को फल, अन्न तथा वस्त्र देता है ॥१५॥ जिसने वैष्णव की पूजा की है उसने सबों की पूजा कर ली है ॥१६॥ जिसने भगवान् विष्णु की पूजा की है वे धन्यतम् है । उसका दर्शन करने मात्र से मनुष्यों के पाप मिट जाते हैं ॥१७॥ हे ब्राह्मण ! बार-बार कहने से क्या लाभ है ? वैष्णवों के दर्शन और स्पर्श करने से सुख मिलता है ॥१८॥ विष्णु तथा वैष्णव में कोई भेद नहीं है, दोनों एक समान हैं । हे वत्स ! इस बात को जानकर वैष्णवों की पूजा करनी चाहिए ॥१९॥ जो लोग एक ही वैष्णव ब्राह्मण को भोजन करते हैं उनको हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल प्राप्त होता है ॥२०॥

इसतरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत वैष्णव माहात्म्य वर्णन नामक अड़सठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६८॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

नारद उवाच

उपवाससमर्थानां सदैवामरसत्तम। एका या द्वादशी पुण्यातां वदस्व ममानघ ।।१।।

शिव उवाच

मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादशी श्रवणान्विता ।
सा वै सर्वदा पुण्या ह्युपवासे महाफला ।।२।।

सङ्गमे सरितां स्नात्वा द्वादशीं तामुपोषितः। अयत्नात्समवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम्।।३।।
बुधश्रवणसंयुक्ता या च वै द्वादशी भवेत्। अतीव महती तस्यां कृतं सर्वमथाक्षयम्।।४।।
द्वादशी श्रवणोपेता यदा भवति नारद। सङ्गमे सरितां स्नात्वा लभेद्गोदानजं फलम् ।।५।।

जलपूर्णं तदा कुम्भं स्थापयित्वा विचक्षणः ।
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं स्थापयित्वा जनार्दनम् ।।६।।

ततस्तस्याग्रतो देयं नैवेद्यं घृतपाचितम्। नवकुम्भान्सोदकांश्च दद्याच्छत्तया विचक्षणः ।।७।।
एवं संपूज्य गोविन्दंजागरं तत्र कारयेत्। प्रभाते विमले स्नात्वासंपूज्य गरुडध्वजम्।।८।।
पूष्पधूपादि नैवेद्यैःफलैर्वस्त्रैःसुशोभनैः। पुष्पाञ्जलिं ततो दद्यान्मन्त्रमेतमुदीरयेत्।।९।।
नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंयुत !। अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव।।१०।।
अन्नं तु ब्राह्मणे पूतं वेदवेदाङ्गपारगे। पुराणज्ञे विशेषेण विधिवत्संप्रदापयेत् ।।११।।
अनेन विधिना चैव नद्यास्तीरे नरोत्तमः। सर्वं निवर्त्तयेत्सम्यगेकचित्तरतोऽपि सन् ।।१२।।

श्रावण द्वादशी व्रत की विधि का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे श्रेष्ठ देव ! उपवास करने में जो समर्थ है उनके लिए आप जो द्वादशी पुण्यतम हो उसे आप मुझे बतलायें ।।१।। **शिवजी ने कहा—** भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में जो श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी हो वह अत्यन्त पुण्यप्रद है । उस दिन उपावास करने से महान् फल की प्राप्ति होती है ।।२।। नदियों के सङ्गम में स्नान करके उस द्वादशी का व्रत करना चाहिए । ऐसा करके वह बिना प्रयास के बारह द्वादशियों का फल प्राप्त कर लेता है ।।३।। बुधवार और श्रवण नक्षत्र से युक्त जो द्वादशी होती है वह अत्यन्त महान् है उस दिन किए गये समस्त पुण्यों का अक्षय फल होता है ।।४।। हे नारद ! श्रवण नक्षत्र से युक्त जो एकादशी होती है उस दिन सङ्गम में स्नान करने से गोदान का फल प्राप्त होता है ।।५।। बुद्धिमान् मनुष्य पहले जल से पूर्ण कुम्भ की स्थापना करके उसके ऊपर पात्र रखे और उस पर भगवान् जनार्दन की स्थापना करे ।।६।। उसके बाद भगवान् के समक्ष घी में पकाया हुआ नैवेद्य रखे । उसके बाद अपनी शक्ति के अनुसार नव कुम्भों का दान करे ।।७।। इस तरह भगवान् की पूजा करके जागरण करें । स्वच्छ प्रभात हो जाने पर स्नान करके श्रीभगवान् की पूजा करे ।।८।। पुष्प, धूप, नैवेद्य, फल तथा सुन्दर पुष्पों से करें । इसके बाद पुष्पाञ्जलि देकर निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करे ।।९।। हे बुध तथा श्रवण से युक्त भगवन् आपको बार-बार नमस्कार है । पाप समूह को विनष्ट करके आप सभी सुखों को प्रदान करे।।१०।। विशेष रूप से पवित्र, वेद-वेदाङ्ग पारङ्गत पुराणों के ज्ञाता ब्राह्मण को विधि पूर्वक पवित्र अन्नदान

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । महत्यरण्ये यद्वृत्तं भूमिदेव ! शृणुष्व तत् ॥१३॥
यंश्रुत्वा मानवो लोके महादु:खात्प्रमुच्यते । देशोदासरको नाम तस्य भागे च पश्चिमे ॥१४॥
तत्र विद्वन्मरुर्देश:सर्वसत्त्वभयङ्कर: । सुतप्तसिकताभूमिर्यत्र दुष्टा महोरगा: ॥१५॥
अल्पच्छाया द्रुमाकीर्णा मृतप्राणिसमाकुला । शमीखदिरपालाशकरीरै:पीलुभि:सह ॥१६॥
तत्र भीमा द्रुमगणा: कण्टकैराचिता दृढै: ।
दग्धप्राणजनाकीर्णा यत्र भूर्दृश्यते क्वचित् ॥१७॥
तथापि जीवा जीवन्तिसर्वे कर्मनिबन्धनात् । नोदकं नोदकाधरा विद्वंस्तत्र बलाहकाः॥१८॥
पक्षान्तरगतै:कश्चिच्छिशुभिस्तृषितै:समम् । उत्क्रान्तजीवनाविप्रदृश्यन्ते नु खगोत्तमा ॥१९॥
तस्मिंस्तथाविधे देशे कश्चिछैववशाद्वणिक् । निजसार्थपरिभ्रष्ट:प्रविष्टो मरुजाङ्गले ॥२०॥
बभ्रामोद्भ्रान्तहृदय:क्षुत्तृड्भ्यां श्रमपीडित: । क्व ग्राम: क्व जलं क्वाहं यास्यामि नबुबोधह॥२१॥
अथ प्रेतान्ददर्शासौ क्षुत्तृषाव्याकुलेन्द्रियान्। उत्कटान्खलिनो भीमान्निर्मांसान्रौद्रदर्शनान् ॥२२॥
प्रेतस्कन्धसमारूढमेकं विकृतदर्शनम् । ददर्श बहुभि: प्रेतै:समन्तात्परिवारितम् ॥२३॥
आगच्छमानमत्युग्रं प्रेतशब्दपुर:सरम् । प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तां घोरामटवीमागतं नरम्॥२४॥
प्रेतस्कन्धान्महीं गत्वा तस्यान्तिकमुपागतम् । प्रणिपत्य वणिक्छ्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत् ॥२५॥
अस्मिन्घोरतरे देशे प्रवेशो भवत:कथम् । तमुवाच वणिग्धीमान्सार्थभ्रष्टस्य मे वने॥२६॥
प्रवेशो दैवयोगेन पूर्वकर्मकृतेन च । तृषा मे बाधतेऽत्यर्थं क्षुधाचैव भृशं तथा ॥२७॥

दें ॥११॥ श्रेष्ठ मनुष्य को इस कार्य को नदी के तट पर विधिपूर्वक एकाग्र मन से पूरा करना चाहिए॥१२॥ इस विषय में यह पुराना इतिहास कहा जाता है । वह माहान् वन में हुआ था, हे ब्राह्मण ! उसे सुनो॥१३॥ उसको सुनकर मनुष्य महान् दु:ख से छूट जाता है । देशो दासरक नामक देश के पश्चिम भाग में ॥१४॥ हे विद्वन् ! वहा सभी जीवों के लिए भयङ्कर मरुभूमि थी । वहाँ का बालू जलता रहता था और वहाँ बड़े-बड़े सर्प थे॥१५॥ थोड़ी छाया वाले वृक्ष थे और वे मरे हुए जीवों से भरे थे । वे वृक्ष शमी, खैर, पलाश, करीर तथा पीलु के थे ॥१६॥ वहाँ के भयङ्कर वृक्ष काँटों से भरे थे, वहाँ के लोग प्राय: जल गये थे और कहीं भूमि दिखती थी ॥१७॥ हे विद्वान् कर्म के बन्धन में बँधे जीव जी रहे थे । वहाँ न तो जल था और न जल भरे मेघ ॥१८॥ पङ्खों के भीतर छिपे हुए पक्षियों के बच्चे प्यासे थे और पक्षी मरे पड़े थे ॥१९॥ वहाँ पर अपने साथियों से छूटा हुआ भाग्यवशात् कोई व्यापारी उस मरुजाङ्गल में चला गया ॥२०॥ भूखे, प्यासा और थका हुआ वह भूलकर घूम रहा था । उसे पता नहीं चलता था कि ग्राम कहाँ है ? और मैं कहाँ जाऊँ ॥२१॥ उसके बाद उसने भूख से व्याकुल कुछ प्रेतों को देखा वे सब उत्कट, नाटे तथा भयङ्कर मांस रहित, तथा देखने में डरावने थे ॥२२॥ प्रेत के कन्धे पर बैठे हुए देखने में विकृत एक प्रेत को देखा और बहुत से प्रेत उसकी सेवा में थे ॥२३॥ वह आता हुआ अत्यन्त उग्र था प्रेत की बोली बोल रहा था । प्रेत ने भी उस भयङ्कर वन में आये हुए मनुष्य को देखा ॥२४॥ प्रेत के कन्धे से भूमि पर आकर वह उस बनिये के पास आया । उस श्रेष्ठ बनिये को प्रणाम करके कहा ॥२५॥ इस भयङ्कर वन में आप कैसे आ गये ? उस बनिये ने बतलाया कि मैं समूह से छूट गया हूँ ॥२६॥ पूर्व कर्मानुसार भाग्यवशात् इस वन में आ गया हूँ । मुझे बहुत अधिक भूख और प्यास लगी है ॥२७॥ प्राण निकल रहे हैं शरीर

प्राणान्तिकमनुप्राप्तं शरीरं भ्रमतीव मे। अत्रोपायं न पश्यामि जीवेयं येन केनचित् ॥२८॥
इत्येवमुक्ते प्रेतस्तं वणिजं वाक्यमब्रवीत् । फुल्लां शमीं समाश्रित्य प्रतीक्षस्व मुहूर्त्तकम् ॥२९॥
कृतातिथ्यो मया पश्चाद्गमिष्यसि यथा सुखम् ।
एवमुक्तस्तथा चक्रे स वणित्तृष्णयार्दितः ॥३०॥
मध्याह्नसमये प्राप्तं प्रेतस्तं देशमागतः। फुल्लां सवृक्षां शीतोदां वारिधानीं मनोरमाम् ॥३१॥
दध्योदनसमायुक्तां वर्धमानेन संयुताम् । अवतार्य ततःस्वन्नं प्रादादतिथये तदा ॥३२॥
स तत्राशनमात्रेण परांतृप्तिमुपागतः। वितृष्णो विज्वरश्चैव क्षणेन समपद्यत ॥३३॥
ततः प्रेताश्च संप्राप्ताः सोऽस्माद्भागं क्रमाद्ददौ ।
दध्योदनात्सपानीयात्प्रेतास्तृप्तिं परांगताः ॥३४॥
अतिथिं तर्पयित्वा तु प्रेतलोकं च सर्वतः । ततःस्वयं स बुभुजे भुक्तशेषं यथासुखम् ॥३५॥
तस्य भुक्तवतःस्वन्नं पानीयं च क्षयं ययौ । प्रेताधिपं ततस्तं वै वणिग्वचनमब्रवीत् ॥३६॥
आश्चर्यमेतत्परमं वनेऽस्मिन्प्रतिभाति मे । अन्नं पानं च परमं संप्राप्तं च कुतस्तव ॥३७॥
स्वल्पेनैव तथाऽन्नेन त्वमेतांस्तु बहूनपि । अतर्पयःकथं त्वेते निर्मांसा भिन्नकुक्षयः ॥३८॥
कथमस्यां सुघोरायामटव्यां च कृतालयाः । तदेतत्संशयं छिन्धि परं कौतूहलं मम ॥३९॥
एवमुक्तःस वणिजो प्रेतो वचनमब्रवीत् । वाणिज्यसक्तस्य पुरा जन्मातीतं ममानघ ॥४०॥
सकले नगरे नास्ति ममान्यो हि दुरात्मकः ।
धनलोभान्न कस्यापि दत्ता भिक्षा मया तदा ॥४१॥
सखाचैव ततश्चासीद्ब्राह्मणो गुणवान्मम। श्रवणद्वादशीयोगे मासिभाद्रपदे ततः ॥४२॥

घूम-सा रहा है । अब यहाँ जीने का कोई उपाय मुझे नहीं दिखता है ॥२८॥ इस तरह से कहने पर प्रेत ने उस बनिये से कहा— विकसित शमी वृक्ष के नीचे तुम थोड़ी प्रतीक्षा करो ॥२९॥ मेरे द्वारा अतिथि सत्कार कर लेने के बाद आ जायँ । इस तरह से कहने पर प्यासा हुआ बनिया वैसा ही किया ॥३०॥ दोपहर के समय वह प्रेत वहाँ आया । वह सभी वृक्ष विकसित था, शीतल जल से युक्त जल पात्र था॥३१॥ वह दध्योदन से युक्त तथा सदा बढ रहा था । उस पर से अन्न उतार कर उसने अतिथि को दिया ॥३२॥ वह वहाँ खाकर अत्यन्त तृप्त हो गया । क्षणभर में प्यास और कष्ट से रहित हो गया॥३३॥ उसके बाद वहाँ आये और उस प्रेत ने उन सबों को भगा दिया । दध्योदन तथा जल से प्रेत अत्यन्त तृप्त हो गये ॥३४॥ अतिथि को तृप्त करके उसने प्रेतों को तृप्त किया । उसके बाद बचा हुआ वह स्वयं खाया॥३५॥ उसके खा लेने पर वह सुन्दर अन्न और जल समाप्त हो गया । उसके बाद प्रेतों के स्वामी ने कहा ॥३६॥ इन वन में मुझको यह आश्चर्य लगता है आपको यह अन्न और जल कहाँ से प्राप्त हुए॥३७॥ अपने अत्यन्त थोड़े अन्न से आपने इन सबों को कैसे तृप्त किया ? ये सब मांस रहित सटे पेट वाले क्यों हैं ॥३८॥ क्यों इस भयङ्कर वन में ये सब रहते हैं ? मेरे इस संशय को आप दूर करें यह मुझको अत्यन्त कुतूहल है ॥३९॥ बनिया के द्वारा इस तरह पूछने पर प्रेत ने कहा— हे अनघ ! पहले के जन्म में मैं व्यापार करता था ॥४०॥ सम्पूर्ण नगर में मुझसे भिन्न कोई दुष्ट नहीं था । धन के लोभ में मैने किसी को भिक्षा भी नहीं दी ॥४१। मेरा मित्र गुणी ब्राह्मण था, भाद्रपद के महीने में श्रवण

स कदाचिन्मया सार्धं तापीं नाम नदीं ययौ ।
तस्याश्च सङ्गमः पुण्यो यत्रासीच्चन्द्रभागया ॥४३॥
चन्द्रभागा चन्द्रसुता तापी चैवार्कनन्दिनी । तयोःशीतोष्णसलिले प्रविवेश सहद्विजः ॥४४॥
श्रवणद्वादशीयोगे नराश्च समुपोषिताः । चन्द्रभागासुतो येन वारिधानीं ददुर्द्विजे॥४५॥
दध्योदनयुतां सार्धं संपूर्णैर्वर्धमानकैः । छत्रोपानद्युगंवस्त्रं प्रतिमां च तथा हरेः ॥४६॥
प्रददौ विप्रमुख्येभ्यो हरस्याग्रे महामते। वित्तसंरक्षणार्थाय तस्यास्तीरे व्रते मया ॥४७॥
समोपवासेन दत्तैका वारिधानी मनोरमा। तत्कृत्वाहं गृहं प्राप्तःततःकालेन केनचित् ॥४८॥
पञ्चत्वमहमासाद्य नास्तिक्यात्प्रेततां गतः । अस्यामटव्यां घोरायां यथा ह्यहिकुलं तथा ॥४९॥
श्रवणद्वादशीयोगे वारिधान्यर्पिता मया। सेयं मध्याह्नसमये लभ्यते च दिनेदिने ॥५०॥
ब्रह्मस्वहारिणः सर्वे पापाःप्रेतत्वमागताः। परदारगताःकेचित्स्वामिद्रोहरताश्च ये॥५१॥
भूतप्रेतजरूपेण ते जाता ह्यत्र मानवाः। देशे मरुस्थले त्वस्मिन्ममैते मित्रतां गताः ॥५२॥
अक्षयो भगवान्विष्णुःपरमात्मा सनातनः । दीयते यत्समुद्दिश्य ह्यक्षयं तत्प्रकीर्तितम् ॥५३॥
अक्षयेनापि चान्नेन तृप्ता एते पुनः पुनः । प्रेतस्वभावं दौर्बल्यं न विमुञ्चन्ति कर्हिचित् ॥५४॥
पूजयित्वाऽहमन्नैस्त्वामतिथिं समुपस्थितम्। प्रेतभावाद्विनिर्मुक्तो यास्यामि परमांगतिम् ॥५५॥
मया विहीनाः किंत्वेते वनेऽस्मिन्भृशदारूणे ।
पीडामनुभविष्यन्ति दारुणां कर्मयोनिजाम् ॥५६॥
एतेषां तु महाभाग ममानुग्रहकाम्यया । प्रत्येकं नाम गोत्राणि गृह्णीष्व लिखितानिच॥५७॥

से युक्त द्वादशी को वह मेरे साथ तापी नदी में गया उस नदी का वहाँ पर चन्द्रभागा नदी से सङ्गम था ॥४२-४३॥ चन्द्रभागा चन्द्रमा की पुत्री है और तापी सूर्य की उन दोनों गर्म और ठंढे जल में उस ब्राह्मण के साथ मैंने प्रवेश किया ॥४४॥ श्रावण द्वादशी के योग में लोग उपवास किए थे उससे चन्द्रभागा के पुत्र ने ब्राह्मण को वारिधनि दिया ॥४५॥ वह दध्योदन से युक्त वह पूर्ण रूप से बढ रही थी । छाता उपानह दो वस्त्र तथा श्रीहरि की प्रतिमा दिया ॥४६॥ मैंने शङ्करजी के समक्ष मुख्य ब्राह्मणों को धन की संरक्षा करने के लिए उस नदी के तट पर दिया ॥४७॥ उपवास करके एक जल का पात्र दिया यह करके मैं घर आया और कुछ समय बाद मेरी मृत्यु हो गयी और मैं इस भयङ्कर वन में सर्पो के समान प्रेत हो गया ॥४८-४९॥ श्रावण द्वादशी के योग में मैंने जो जलपात्र दिया वही मैं प्रतिदिन दोपहर में प्राप्त करता हूँ ॥५०॥ ब्राह्मण की सम्पत्ति चुराने वाले सभी प्रेत हो गये कुछ दूसरे की पत्नी से प्रेम करने वाले तथा अपने स्वामी से द्रोह करने वाले वे सभी भूत प्रेत के रूप में मनुष्य यहाँ आ गये हैं । यहाँ मरुस्थल देश में प्रेत हो गये उन सबों से मेरी मित्रता हो गयी ॥५१-५२॥ सनातन परमात्मा भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए जो कुछ दान दिया जाता है वह अक्षय हो जाता है ॥५३॥ अक्षय अन्न से ये बार-बार तृप्त होते हैं । प्रेतों का स्वभाव ही दुर्बलता है, वह कभी भी उन्हें नहीं छोड़ती है ॥५४॥ तुम मेरे अतिथि हो तुम्हारी अन्न से पूजा करके मैं प्रेतत्व से मुक्त होकर मुक्ति को प्राप्त कर लूगाँ ॥५५॥ किन्तु मेरे बिना ये सभी इस भयंकर वन में दुःखद प्रेतयोनि के कारण पीड़ित होयेंगे ॥५६॥ हे महाभाग ! मुझपर कृपा करने के लिए आप इन सबों का नाम और गोत्र लिख लीजिये ॥५७॥ तुम्हारी कक्षा में शुभ सम्पुटिका है, हिमालय

अस्ति कक्षागता चैव तव सम्पुटिका शुभा ।
हिमवन्तमथासाद्य तत्र त्वं लप्स्यसे निधिम् ॥५८॥
गयाशीर्षं ततो गत्वा श्राद्धं कुरु महामते। इत्याज्ञाप्य सवै प्रेतोवणिजं च यथासुखम् ॥५९॥
विसर्जयामास तदा स वै प्रायात्समुत्सुकः । समासाद्य गृहं तत्र पश्चात्प्रायाद्धिमालयम् ॥६०॥
ततो दृष्टं निधिं तत्र गृहीत्वास समागतः । षष्ठांशं प्रतिगृह्याथगयाशीर्षं ततोऽभ्यगात् ॥६१॥
तत्र गत्वा गायायां स श्राद्धं कृत्वा महामतिः ।
प्रेतानां तु यथोद्दिष्टं श्राद्धं सम्यग्विधानतः ॥६२॥
प्रत्येकं नाम गोत्राणि गृहीत्वा पिण्डमत्यजत् ।
यस्य यस्य भवेच्छ्राद्धं स करोति दिने वणिक् ॥६३॥
स स तस्य तदा स्वप्ने दर्शयत्यात्मनस्तनुम् ।
ब्रवीति च महाभाग प्रसादाद्भवतोऽनघ ॥६४॥
प्रेतभावं मयात्यक्तं प्राप्तोऽस्मि परमांगतिम्। एवं कृत्वा विधानेनगयाशीर्षं महामनाः ॥६५॥
पश्चाज्जागाम स्वगृहं विष्णुं ध्यायन्पुनःपुनः ।
मासि भाद्रपदे प्राप्ते शुक्लपक्षे तथासुधीः ॥६६॥
श्रवणद्वादशीयोगे सङ्गमे सरितां पुनः । जगाम स महाबुद्धिः सर्वोपस्करसंयुतः ॥६७॥
सङ्गमे सरितां स्नात्वा द्वादशीं तामुपोषितः । तत्र स्नात्वाऽपि दत्त्वा तु पूजयित्वा जनार्दनम् ॥६८॥
अनन्तरं ब्राह्मणस्य ह्युपहारांस्तदा ददौ। शास्त्रोक्तेनापि विधिना ह्येकचित्तरतोऽपिसः ॥६९॥
निवर्त्तयामास तदा वणिजो बुद्धिमान्स वै। वर्षे वर्षे तु संप्राप्ते मासि भाद्रपदे तथा ॥७०॥
श्रवणद्वादशीयोगे सङ्गमे सरितां पुनः । एवं वै कृतवान्सर्वं विष्णुमुद्दिश्य सत्वरम् ॥७१॥

पर जाकर आप खजाना प्राप्त कर लेंगे ॥५८॥ वहाँ से आप गयाशीर्ष पर जाकर इन सबों का श्राद्ध कर देंगे । इस तरह से वह प्रेत उस व्यापारी को सुख पूर्वक ॥५९॥ जब भेज दिया तो वह उत्सुकता पूर्वक चला गया । घर जाने के बाद वह हिमालय पर गया ॥६०॥ वहाँ पर उसने निधि को देखा और उसको लेकर आया । उसके षष्ठ भाग को लेकर वह गयाशीर्ष (गया) गया ॥६१॥ वहाँ जाकर उसने गया में श्राद्ध किया । प्रेतों का जैसा श्राद्ध बतलाया गया है उसी तरह से उसने विधि पूर्वक श्राद्ध किया ॥६२॥ प्रत्येक प्रेतों का नाम और गोत्र लेकर उसने पिण्ड दान किया । जिस-जिस प्रेत का वह दिन में श्राद्ध करता था ॥६३॥ वह-वह प्रेत स्वप्न अपने शरीर को उसे रात्रि में दिखाता था और कहता था कि हे महाभाग! आप की कृपा से ॥६४॥ मैंने प्रेत भाव को छोड़ कर मुक्ति को प्राप्त कर लिया है । इस तरह विधिपूर्वक वह महामना गया में श्राद्ध करके ॥६५॥ भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए अपने घर गया । भाद्रपद महीने के शुक्लपक्ष में उसने ॥६६॥ श्रावण द्वादशी के योग में नदियों के सङ्गम में सभी सामग्री के साथ गया ॥६७॥ नदियों के सङ्गम स्थल में स्नान करके उस द्वादशी को उपवास किया वहाँ स्नान तथा दान करके भगवान् जनार्दन की पूजा करके ॥६८॥ ब्राह्मणों को उपहार दिया । शास्त्रीय विधि से एकाग्रमना होकर उसने सबकुछ किया ॥६९॥ वहाँ से वह बुद्धिमान लौट जाता था । प्रत्येक वर्ष वह भाद्रपद मास में ॥७०॥ श्रवण द्वादशी के योग में नदियों के सङ्गम में भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए सब कुछ

कालेन चातिमहता पञ्चत्वं समुपागतः। अवाप परमंस्थानं दुर्लभं सर्वमानवैः ॥७२॥
क्रीडतेऽद्यापि वैकुण्ठे विष्णुदूतैःस सेवितः ।
एवं कुरुत्वं भो ब्रह्मञ्छ्रवणद्वादशीव्रतम् ॥७३॥
सर्वसौभाग्यदं चैव इहलोके परत्र च। सुबुद्धिजननं चैव सर्वपापहरं परम् ॥७४॥
श्रवणद्वादशीयोगे यःकुर्याद्व्रतमीदृशम्। व्रतस्यास्य प्रभावेण विष्णुलोकं चगच्छति ॥७५॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहास्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे
श्रवणद्वादशीव्रतं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

सत्तरवाँ अध्याय

नारद उवाच

देवदेव ! जगन्नाथ ! भुक्तिमुक्तिप्रदायक। कथयस्व सुरश्रेष्ठ ! येन दुःखं न पश्यति ॥१॥

महेश उवाच

शृणु वाडव वक्ष्यामि त्रिरात्रं सरितःशुभम्। येन चीर्णेन नरको मानवानां न जायते ॥२॥
आयुरोराग्यमतुलं सौभागयं सुखसंपदम् । सन्तानं चाक्षयं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥३॥
आषाढमासि संप्राप्ते नदीपूरेण संयुता। सततं तोयसंस्थाने पुराणे सा च विश्रुता ॥४॥
वर्षर्तौ घनसंपूर्णे कर्तव्या सा व्रतेन वा। तोयौघैः परिपूर्णा सा सकलैःस्यान्नदी यदा ॥५॥

करता था ॥७१॥ बहुत दिनों के बाद उसकी मृत्यु हो गयी और उसने सभी मनुष्यों के लिए दुर्लभ परम पद को प्राप्त किया ॥७२॥ वह विष्णु दूतों से सेवित होकर आज भी वैकुण्ठ में क्रीड़ा करता है । हे ब्रह्मन्! तुम इसीतरह श्रवण द्वादशी व्रत किया करो ॥७३॥ यह व्रत लोक तथा परलोक में समस्त सौभाग्यों को देने वाला, सुबुद्धि को देने वाला तथा समस्त पापों को विनष्ट करने वाला है ॥७४॥ श्रवण द्वादशी के योग में जो इस प्रकार का व्रत करता है, वह इस व्रत के प्रभाव से विष्णु लोक में जाता है ॥७५॥

इस तरह पद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत श्रवण द्वादशी व्रत वर्णन नामक उनहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६९॥

नदी त्रिरात्र व्रत का माहात्म्य वर्णन

नारदजी ने कहा— हे देवाराध्य जगन्नाथ ! हे भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले ! हे सुरश्रेष्ठ ! आप उस व्रत को बतलायें जिससे दुःख न हो ॥१॥ **शङ्करजी ने कहा—** हे ब्राह्मण ! सुनो मैं नदी त्रिरात्र व्रत का वर्णन करता हूँ । उस व्रत को करने से मनुष्यों को नरक नहीं होता है ॥२॥ वह आयु, आरोग्य, अतुलनीय सौभाग्य, सुख, सम्पत्ति तथा अक्षय सन्तान को प्राप्त करके स्वर्ग लोक में पूजित होता है ॥३॥

व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य तदा कार्यं प्रयत्नतः । कृतं प्रतिपदाच्छन्दो दर्शनं तु दिनत्रयम् ॥६॥
यथा प्राप्तं नदीपूरं स्त्रीभिस्तीरजलस्य तु। अथवा तज्जलं कुम्भेकृष्णे कृत्वा गृहं नयेत् ॥७॥
प्रातःस्नायी तथा नद्यां गत्वा ह्यभ्यर्चयेत्सुधीः ।
त्रिरात्रस्योपवासस्य यथा शक्तो भवेद् द्विज ! ॥८॥
अशक्तश्चैकभक्तेन कुर्याच्चैवाप्युपोषणम् । दीपं दद्यादविच्छिन्नं प्रातः सायं च पूजनम् ॥९॥
महानदीं समुच्चार्य नाम्ना च वरुणं तथा। जलमूले तु संस्थाप्य केशवं जलशायिनम् ॥१०॥
नमो देव्यै च गङ्गेति गौतमीति नदीति च ।
सिन्धो चैव च कावेरि सरस्वति नमोऽस्तु ते ॥११॥
तापी पयोष्णी पूर्णेति महेन्द्रसुखदेति च । काश्यपी गण्डकी चैव सिन्धुनद्यै नमोनमः ॥१२॥
वरुणाय नमस्तेऽस्तु जलवास हरिप्रिय। यादोनाथ रसेशान कल्याणं देहि मे सदा ॥१३॥
गृहाणार्घं मया दत्तं देहि मे वाञ्छितं फलम् ।
कूष्माण्डैर्नालिकेरैश्च फलैः कालोद्भवैः शुभैः ॥१४॥
नैवेद्यं घृतपक्वं तु सरितः संप्रकल्पयेत्। नमस्ते केशवानन्त जलशायिन्नमोऽस्तु ते ॥१५॥
परिपालय मामीश गोविन्द वरदो भव। एवं पूजा प्रकर्तव्या यथाकालं क्रमेण तु ॥१६॥
प्रार्थनाचोपचारैस्तु त्रिरात्रनियमः शुचिः। पारणेन तु सम्पूज्य जलपात्र समाचरेत्॥१७॥
फलपुष्पैस्तथा विद्वन्स्त्रीभिर्बालैर्नरैरपि। गीतवादित्रसहितैर्नदीकुम्भपरिप्लुतैः ॥१८॥

आषाढ मास के आ जाने पर जब नदी में बाढ आ जाय, जिसमें सदा जल रहता हो और पुराणो में जो प्रख्यात हो ॥४॥ वर्षा ऋतु में आकाश के मेघ से भर जाने पर, अथवा नदी जब जल से भर जाय तब उस व्रत को करना चाहिए ॥५॥ उसी प्रयत्न पूर्वक त्रिरात्र व्रत करें । प्रतिपदा से लेकर अपनी इच्छानुसार तीन दिन तक व्रत करे ॥६॥ उस समय नदी का प्रवाह तट तक रहे ऐसे ही समय में स्त्रियों को वह व्रत करना चाहिये । अथवा नदी के जल को काले घड़े में रखकर अपने घर ले जाए ॥७॥ प्रातः स्नान करने वाले को नदी में जाकर उसकी पूजा करनी चाहिए । जिससे वह तीन रात्रियों तक उपवास करने में समर्थ हो सके ॥८॥ यदि उपवास करने में असमर्थ हो तो एक बार भोजन करके उपावास करे अखण्ड दीपक जलाये और प्रातःकाल तथा सायंकाल नदी की पूजा करे ॥९॥ महानदी का नाम लेकर तथा वरुण का नाम लेकर जल के निकट जलशायी भगवान् केशव की स्थापना करे ॥१०॥ फिर प्रार्थना करे कि, गङ्गा, गौतमी नदी, सिन्धु नदी, कावेरी नदी तथा सरस्वती नदी को नमस्कार है ॥११॥ तापी, पयोष्णी, पूर्णा, महेन्द्रसुखदा, काश्यपी, गण्डकी तथा सिन्धु नदी को बारम्बार नमस्कार है ॥१२॥ श्रीहरि के प्रिय, यादोनाथ जल में रहने वाले एवं रस के स्वामी वरुण को नमस्कार है । वे हमें कल्याण प्रदान करें ॥१३॥ कुष्माण्ड, नारियल तथा मौसमी फलों से मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ को आप स्वीकार करें, और मुझे अभिप्रेत फल प्रदान करें । नदी को घी में पके नैवेद्य चढाये । इसके बाद भगवान् केशव की प्रार्थना करे हे केशव, हे अनन्त ! हे जलशायिन् आपको नमस्कार है ॥१५॥ हे स्वामिन् ! हे गोविन्द ! आप मेरी रक्षा करें । इस तरह समयानुसार पूजा क्रमशः करे ॥१६॥ प्रार्थना तथा उपचारों से पूजा करके त्रिरात्र व्रत करके पवित्र होकर पारण के द्वारा जल पात्र की पूजा करे ॥१७॥ हे विद्वन् ! फल, पुष्प, स्त्री तथा बालकों के साथ

जले जले समास्थाप्य फलपुष्पैः प्रपूजयेत्। धान्यैर्नानाविधैश्चैव जलप्रक्षेपणैरपि ॥१९॥
हास्यैर्गीतैश्च नृत्यैश्च गृहमागत्य यत्नतः। सप्तधान्यैः पूरितानि वंशपात्राणि पूजयेत् ॥२०॥
सप्त वा पञ्च वा त्रीणि यथा शक्त्या प्रपूरयेत् ।
त्रिरात्रं च नदीतोयं न पिबेद्धितमुल्लसन् ॥२१॥
पारणे तु हविष्यान्नंहृतं वाह्यन्यथाभवेत्। कृते स्नानार्चने चैव नोपयोज्यं नदीजलम् ॥२२॥
शुच्यन्नानि च भोज्यानि दापयेत्त्रितयं तथा। सप्तैव वंशपात्राणि सप्त वै मणिकास्तथा॥२३॥
हविष्यान्नं च भुञ्जीत कट्वम्लमधुवर्जितम्। माषान्नं च शिलापिष्टंयत्नेन परिवर्जयेत् ॥२४॥
एवं वर्षत्रयं कुर्याद् व्रतमेतद् द्विजोत्तम !। वर्षत्रये समाप्यैवं तस्योद्यापनमाचरेत्॥२५॥
कृष्णा गां कृष्णवस्त्रां च तिलान्दद्याच्च नारद ! ।
दम्पती परिदाप्यैवं सुवर्णं चापि शक्तितः ॥२६॥
हैमं च वरुणं कुर्यान्नदीरूपेण नारद। मण्डलं वारुणं चैव सर्वतोभद्रमेव च॥२७॥
कुम्भं तत्रप्रतिष्ठाप्यसोपहारं प्रतिष्ठितम्। संपूज्य विधिवद्भक्तया ततो विप्राय दापयेत् ॥२८॥
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्तया यथावित्तानुसारतः। गुरवेऽर्चितशीलाय सर्वशास्त्ररताय च॥२९॥
एवं कृते तदा विद्वन्परिपूर्णं व्रतं भवेत्। सौभाग्यसुखसंपत्तिः सन्ततिश्च यदा भवेत्॥३०॥
न दुर्गतिमवाप्नोति चिरं स्वर्गे महीयते। देवपत्नीभिराचीर्णमृषिपत्नीभिरेव च ॥३१॥

गीत, वाद्य के साथ जल भरे घड़े से नदी के जल में पूजा, फल, पुष्प अनेक प्रकार के अन्न तथा जल को छिड़ककर पूजा करे ॥१८-१९॥ घर आक हास्य तथा गीतों के साथ सप्तधान्य से भरे बांस के पात्रों (सूपों) की पूजा करें ॥२०॥ अपनी शक्ति के अनुसार सात, पाँच अथवा तीन पात्रों को भरे । कल्याण की दृष्टि से तीन रात तक नदी का जल न पिए ॥२१॥ पारण में बाहर से लाये गये हविष्य को ले । अर्चन तथा स्नान कर लेने के बाद नदी के जल का उपयोग न करे ॥२२॥ पवित्र अन्न ब्राह्मणों को खिलाकर तीन या सात बाँस के पात्र तथा सात मणिक (बड़ा घड़ा दान करे) ॥२३॥ तीता, खट्टा तथा मधु से रहित हविष्यान्व का भोजन करे उड़द तथा शिला पर पिसे हुए अन्न का परित्याग करे ॥२४॥ हे द्विजोत्तम ! इस तरह इस व्रत को तीन वर्ष तक करे । तीसरे वर्ष इस व्रत को समाप्त करके उसका उद्यापन करे ॥२५॥ काले वस्त्र से ढँककर काली गौ का दान करे तथा तिल दान करे । इस तरह ब्राह्मण दम्पत्ती को दान देकर अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण दे ॥२६॥ हे नारद ! नदी के रूप में सुवर्ण की वरुण की मूर्ति बनाकर, वारुण मण्डल तथा सर्वतोभद्र बनाकर उसमें कुम्भ को स्थापित करे और उपहारों से उसकी विधिवत् पूजा करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को दान दे ॥२७-२८॥ अपनी शक्ति के अनुसार अर्चना करके और शास्त्रज्ञ गुरु को तथा ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥२९॥ हे विद्वन् ! इस तरह करने से व्रत परिपूर्ण होता है । इससे सौभाग्य, सुख तथा सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ॥३०॥ ऐसा करने वाला दुर्गति नहीं प्राप्त करता है और स्वर्ग में पूजित होता है । इस व्रत को देवताओं तथा ऋषियों की पत्नियों ने किया है ॥३१॥ प्राचीन काल

नागसिद्धाङ्गनाभिश्च व्रतमेतत्पुराकृतम्। नदीत्रिरात्रमतुलं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३२॥
सौभाग्यं सन्ततिं चैव निश्चयं प्राप्नुते सदा ॥३३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे नदीत्रिरात्रव्रतं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

एकहत्तरवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

सूत जीव चिरं साधो त्वयातिकरुणात्मना। संवादो ह्यद्भुतःप्रोक्तो यश्चासीन्नारदेशयोः ॥१॥
भगवन्नाममहिमा नारदेनमहात्मना। कीदृक्छ्रुतः समाख्याहि श्रद्धया शृण्वतां गुरो ॥२॥

सूत उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे पुरावृत्तं वदाम्यहम्। यस्मिच्छ्रु ते द्विजश्रेष्ठाःकृष्णे भक्तिर्विवर्धते॥३॥
एकदा नारदोद्रष्टुं पितरं सुसमाहितः। जगाम मेरुशिखरं सिद्धचारणसेवितम् ॥४॥
तत्र देवं समासीनं ब्रह्माणं जगतांपतिम्। नमस्कृत्याब्रवीद्विप्रा नारदो मुनिसत्तमः ॥५॥

नारद उवाच

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिर्वद विश्वेश्वर ! प्रभो ! ।
कीदृक्तु नाम महिमा अव्ययस्य महात्मनः ॥६॥

में नागों तथा सिद्धों की पत्नियों ने इस व्रत को किया है। यह नदी त्रिरात्रव्रत है और क्या सुनना चाहते हो ॥३२॥ इसे करने वाला सौभाग्य और सन्तान को प्राप्त करता है ॥३३॥

इस तरह श्रीपद्म महापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत नदी त्रिरात व्रत वर्णन नामक सत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७०॥

भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे सूतजी ! आप चिरंजीवी हैं, आप अत्यन्त करुणा करने वाले हैं। आपने अद्भुत नारद और उमापति संवाद का वर्णन किया है ॥१॥ हे गुरो ! महात्मा नारदजी ने भगवान्‌नाम की कैसी महिमा सुनी उसे आप बतलायें ॥२॥ **सूतजी ने कहा—** हे मुनियों ! आपलोग सुनें मैं पुराना इतिहास सुनाता हूँ। हे श्रेष्ठ द्विजों ! उसके सुनने से भगवान् कृष्ण की भक्ति बढती है ॥३॥ एक बार नारदजी सिद्धों तथा चारणों से सेवित सुमेरु पर्वत के शिखर पर अपने पिता श्रीब्रह्माजी का दर्शन करने के लिए गये ॥४॥ वहाँ पर जगत् के स्वामी ब्रह्माजी बैठे थे, हे विप्रों ! उनको नमस्कार करके नारदजी बोले ॥५॥ **नारदजी ने कहा—** विश्वेश्वर जो साक्षात् श्रीहरि नारायण हैं उनके नाम की जितनी महिमा है ? हे विश्वेश्वर प्रभो ! उन अव्यय श्रीभगवान् की कैसी महिमा है ? उसे आप मुझे बतलायें। सभी जीवों के साथ रहने वाले

योऽयं विश्वेश्वरः साक्षादयं नारायणो हरिः ।
परमात्मा हृषीकेशः सर्वजीवेषु संगतः ॥७॥
मायाविमोहिताः सर्वेभगवन्तमधोक्षजम्। नैव जानन्त्यसारेऽस्मिन्नरा मूढाः कलौ युगे ॥८॥

ब्रह्मोवाच

अस्मिन्कलौ विशेषेण नामोच्चारणपूर्वकम्। भक्तिः कार्या यथा वत्स तथा त्वं श्रोतुमर्हसि ॥९॥
दृष्टं परेषां पापानामनुक्तानां विशोधनम् । विष्णोर्जिष्णोः प्रयत्नेन स्मरणं पापनाशनम् ॥१०॥
मिथ्या ज्ञात्वा ततः सर्वं हरेर्नामपठञ्जयन। सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णो परपंदम् ॥११॥
ये वेदन्ति नरा नित्यं हरिरित्यक्षरद्वयम् । तस्योच्चारणमात्रेण विमुक्तास्तेन संशयः ॥१२॥
प्रायश्चित्तानि सर्वाणि तपःकर्म्मात्मकानि वै। यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥१३॥
प्रातर्निशि तथा सायं मध्याह्नादिषु संस्मरन्। नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयं नरः ॥१४॥
विष्णुसंस्मरणादेव समस्तक्लेशसंक्षये ।
मुक्तिं प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य विष्णोस्तु कीर्त्तनात् ॥१५॥
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु । तदक्षयं विजानीयाद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१६॥
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम् । क्व जपो वासुदेवस्य मुक्तिबीजमनुत्तमम् ॥१७॥
तन्मुखं परमंतीर्थं यत्रावर्त्तं वितन्वती । नमो नारायणायेति भाति प्राची सरस्वती ॥१८॥
तस्मादहर्निशं विष्णुस्मरणात्पुरुषोत्तमः । न याति नरकं पुत्र ! संक्षीणकलिकल्मषः ॥१९॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं भाषितं मम सुव्रत । नमोच्चारणमात्रेण महापापात्प्रमुच्यते ॥२०॥

परमात्मा हृषीकेश हैं उनकी माया से मोहित होने के कारण कलियुग में सभी मनुष्य मूर्ख हो गये हैं और वे इसको नहीं जानते हैं ॥६-८॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे वत्स ! इस कलियुग में श्रीहरि के नामों का उच्चारण करते हुए जैसी भक्ति करनी चाहिए उसे तुम सुनो ॥९॥ श्रीभगवान् विष्णु का प्रयास पूर्वक नाम स्मरण को देखा गया है कि वह दूसरों के अनुक्त पापों को विनष्ट कर देते हैं ॥१०॥ इन समस्त विषयों को मिथ्या जानकर श्रीहरि के नामों का जो पाठ अथवा जप करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के परमपद में जाता है ॥११॥ जो मनुष्य नित्य ही श्रीहरि के दो अक्षरों वाले नाम को जपते हैं उसके उच्चारण मात्र से वे मुक्त हो जाते हैं इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥१२॥ सभी प्रायश्चित्त और तप कर्मात्मक हैं । उन सबों में श्रीहरि का स्मरण ही श्रेष्ठ है ॥१३॥ प्रातः रात्रि, सायंकाल तथा मध्याह्न आदि सभी कालों में नारायण इस नाम का जप करने वालों के सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥१४॥ भगवान् विष्णु का स्मरण करने से सभी पापों का नाश हो जाता है । भगवान् विष्णु का कीर्तन करने वाला स्वर्ग प्राप्त करता है और उसकी मुक्ति हो जाती है ॥१५॥ जप, होम, पूजा आदि कर्मों में जिसका मन भगवान् विष्णु में लगा रहता है उसके सारे कर्म चौदह इन्द्रों के काल तक अक्षय रहते हैं ॥१६॥ कहाँ तो पुनर्जन्म से युक्त स्वर्ग जाना और कहाँ मुक्ति प्रदान करने वाला भगवान् वासुदेव का नाम जप दोनों में कोई समता नहीं है ॥१७॥ वही मुख सर्वश्रेष्ठ तीर्थ प्राची सरस्वती प्रतीत होता है जिससे ओम् नमो नारायणाय यह उच्चारण होता रहता है ॥१८॥ हे पुत्र ! इसीलिए रात-दिन विष्णु का स्मरण करने वाला उत्तम पुरुष कलि के पापों का नाश हो जाने से नरक में नहीं जाता है ॥१९॥ हे वत्स ! मेरा कथन परम सत्य है

रामरामेति रामेति रामेति च पुनर्जपन्। स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः॥२१॥

कुरुक्षेत्रं तथा काशी गया वै द्वारिका तथा ।
सर्वं तीर्थं कृतं तेन नामोच्चारणमात्रतः ॥२२॥
कृष्णकृष्णोतिकृष्णोति इति वा योजपन्पठन् ।
इहलोकं परित्यज्य मोदते विष्णुसंनिधौ ॥२३॥

नृसिंहेति मुदा विप्र सततंप्र जपन्पठन्। महापापात्प्रमुच्येत कलौ भागवतो नरः॥२४॥
ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥२५॥
एतज्ज्ञात्वा निमग्नाश्च जगदात्मनि केशवे। सर्वपापपरिक्षीणा यान्ति विष्णोः परं पदम्॥२६॥

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा ।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की ततः स्मृतः ॥२७॥

एते दशावताराश्च पृथिव्यां परिकीर्तिताः। एतेषां नाममात्रेण ब्रह्महा शुध्यते सदा॥२८॥
प्रातः पठञ्जपन्ध्यायन्विष्णोर्नाम यथा तथा। मुच्यते नात्र संदेहः स वै नारायणो भवेत्॥२९॥

सूत उवाच

श्रुत्वा वै नारदो ह्येतद्विस्मयं परमं गतः। उवाच पितरं तत्र किमुक्तं देवसत्तम॥३०॥

देवाः सहस्रशः सन्ति रुद्राः सन्ति सहस्रशः ।
पितरः सन्ति शतशो यक्षाश्च किन्नरास्तथा ॥३१॥
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ये केचिद्देवयोनयः ।
तेषां नाम्नां च माहात्म्यं श्रुतं दृष्टं तथा न च ॥३२॥

कि मनुष्य केवल नाम का उच्चारण करने मात्र से महापापों से छूट जाता है ॥२०॥ राम-राम जपने वाला चाण्डाल भी पवित्र हो जाता है इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥२१॥ भगवान् के नामोच्चारण करने मात्र से कुरुक्षेत्र, काशी, गया तथा द्वारका आदि सभी तीर्थों के करने का फल प्राप्त हो जाता है ॥२२॥ भगवान् कृष्ण के नामों का जप तथा पाठ करने वाला इस लोक को छोड़कर भगवान् विष्णु की सन्निधि को प्राप्त करता है ॥२३॥ हे विप्र ! नृसिंह इस नाम को जपने वाला मनुष्य कलियुग में भागवत है और महापापों से मुक्त हो जाता है ॥२४॥ सत्ययुग में ध्यान करने से, त्रेतायुग में यज्ञों को करने से तथा द्वापर युग में पूजन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है कलियुग में भगवान् नाम संकीर्तन से ही उस फल की प्राप्ति हो जाती है ॥२५॥ इस बात को जो जगदात्मा भगवान् केशव में ही मग्न रहते हैं वे सभी पापों से रहित होकर भगवान् विष्णु के परम पद में जाते हैं ॥२६॥ मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध एवं कल्की ये पृथिवी पर दश अवतार बतलाये गये हैं। इन सबों का नाम जपने मात्र से ब्रह्मघाती भी शुद्ध हो जाता है ॥२८॥ प्रातःकाल भगवान् विष्णु के नाम का जैसे-तैसे पाठ, जप तथा ध्यान करने वाला निःसंदेह मुक्त हो जाता है और वह नारायण के सदृश हो जाता है ॥२९॥ **सूतजी ने कहा**— इस बात को सुनकर आश्चर्यित होकर नारदजी ने ब्रह्माजी से कहा— हे देवश्रेष्ठ ! आपने क्या कहा ?॥३०॥ देवता हजारों हैं, रुद्र भी हजारों हैं, सैकड़ों पितृगण हैं, यक्ष, किन्नर भी सैकड़ों हैं, भूत, प्रेत, पिशाच इत्यादि जितने भी देवयोनियों के जीव हैं, उन सबों के नाम का ऐसा माहात्म्य न तो देखा गया है और

श्रीविष्णोर्नाममाहात्म्यं यादृशं च श्रुतं मया ।
यस्य वै नाममात्रेण मुच्यते नात्र संशयः ॥३३॥

किं वै तीर्थकृते देव पृथिव्यामटने कृते । यस्य वै नाम महिमा श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥३४॥
तन्मुखं तु महत्तीर्थं तन्मुखं क्षेत्रमेव च । यन्मुखे रामरामेति तन्मुखं सर्वकामिकम् ॥३५॥
कानि वै तस्य नामानि कीर्तनीयानि सुव्रत। तत्सर्वं च विशेषेण मम ब्रूहि पितामह ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

व्यापकोऽयं सदा विष्णुः परमात्मा सनातनः ।
अनादिनिधनः श्रीमान्भूतात्मा भूतभावनः ॥३७॥
यस्मादहं हि संजातः सोऽयं विष्णुः सदाऽवतु ।
सोऽयं कालस्य कालो वै सोऽयं मम तु पूर्वजः ॥३८॥

अक्षयः पुण्डरीकाक्षो मतिमानव्ययःपुमान् । शेषशायीसदाविष्णुः सहस्रशीर्षा महाप्रभुः ॥३९॥
सर्वभूतमयः साक्षाद्विश्वरूपो जनार्दनः । कैटभारिरयं विष्णुर्धाता देवो जगत्पतिः ॥४०॥
तस्याहं नामगोत्रं च न वेद्मि पुरुर्षभ। वेदवाद्यप्यहं तात नाहं ज्ञाता कदाचन॥४१॥

अतस्त्वं गच्छ देवर्षे यत्रास्ति किल विश्वराट् ।
स च तत्त्वं मुनिश्रेष्ठ सर्वं ते कथयिष्यति ॥४२॥

स एव पुरुषः श्रीमान्कैलासाधिपतिः सदा। सर्वेषां विष्णुभक्तानामयं श्रेष्ठः परात्परः ॥४३॥
पञ्चवक्त्रो ह्युमाकान्तः सर्वदुःखनिबर्हणः। विश्वेश्वरो विश्वनाथः सर्वदाभक्तवत्सलः ॥४४॥
तत्र गच्छ सुरश्रेष्ठ तत्सर्वं कथयिष्यति। पितुर्वचनमाकर्ण्य तत्र गन्तुं प्रचक्रमे ॥४५॥

न सुना गया है, जैसा कि भगवान् विष्णु के नाम का माहात्म्य मैंने सुना है । उनके नाम का स्मरण मात्र से मनुष्य निश्चित रूप से पापों से मुक्त हो जाता है ॥३१-३३॥ हे देव ! तीर्थ करने के लिए पृथिवी पर घूमने से क्या लाभ है ? क्योंकि भगवान् के नाम की महिमा सुनने मात्र से मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥३४॥ जिस मुख में राम का नाम है वही मुख महान् तीर्थ है, वही महान् क्षेत्र है तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ॥३५॥ हे पितामह ! भगवान् के कौन से नाम जपने योग्य हैं उन्हें आप मुझे विशेष रूप से बतलायें ॥३६॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— भगवान् विष्णु सनातन परमात्मा, नित्य, सभी जीवों की आत्मा, श्रीमान् तथा जीवों का कल्याण करने वाले हैं ॥३७॥ जिनसे मैं स्वयं उत्पन्न हुआ हूँ, वे भगवान् विष्णु अक्षय, पुण्डरीकाक्ष, सर्वज्ञ, और अव्यय पुरुष हैं । सहस्रशीर्षा महाप्रभु सदा शेष की शय्या पर शयन कर रहे हैं ॥३९॥ वे सर्व भूतमय, साक्षात्, विश्वरूप हैं सम्पूर्ण जगत् शरीरक हैं जनार्दन दुष्टों का विनाश करने वाले हैं । ये कैटभारि हैं धाता (पालक) हैं और जगत् के स्वामी हैं ॥४०॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! मैं उनके नाम और गोत्र को नहीं जानता हूँ । वेद का वक्ता भी मैं उसे नहीं जानता हूँ ॥४१॥ हे देवर्षे ! तुम शङ्कर जी के पास जाओ । हे महामुने ! वे ही तुमको सारी बातें बतलायेंगे ॥४२॥ वे ही पुरुष हैं श्रीमान् हैं कैलास के स्वामी हैं । वे सभी विष्णु भक्तों में श्रेष्ठ हैं, परात्पर हैं ॥४३॥ वे पञ्चवक्त्र, उमाकान्त तथा सभी दुःखों को दूर करने वाले हैं । विश्वेश्वर, विश्वनाथ तथा सदा भक्तवत्सल हैं ॥४४॥ हे देव श्रेष्ठ ! वे सारी बातें बतलायेंगे । ब्रह्माजी के वचन को सुनकर नारदजी शिवजी के पास नाम का माहात्म्य जानने के लिए जहाँ

विज्ञातुं नाम माहात्म्यं कैलासभवनं इति। यत्र विश्वेश्वरो देवोनित्यं तिष्ठति भूतिदः ॥४६॥
ददर्श नारदस्तत्र देवं तं सुरपूजितम्। कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ॥४७॥
पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् ।
कपालिनं सखट्वाङ्गं तीक्ष्णशूलासिधारिणम् ॥४८॥
पिनाकधारिणं भीमं वरदं वृषवाहनम्। भस्माङ्गं व्यालशोभाढ्यं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥४९॥
नीलजीमूतसङ्काशं सूर्यकोटिसमप्रभम्। क्रीडन्तं तत्र देवेशं गणैश्च परिवारितम् ॥५०॥
तं ददर्श सुरश्रेष्ठं नारदश्चर्षिसत्तमः। नमश्चक्रे तदा तत्र साष्टाङ्गं दण्डवत्पुनः ॥५१॥
तं दृष्ट्वा तु महादेवो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
वैष्णवानां परः श्रेष्ठः प्राह वाडवसत्तमम् ॥
कस्मादिह समायातो वद देवर्षिसत्तम ! ॥५२॥

नारद उवाच

एकस्मिन्नेव काले तु गतोऽहं ब्रह्मणोऽन्तिकम् ।
श्रुतं तत्र मया देव विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥५३॥
ब्रह्मणा कथितं तत्र ममाग्रेदेवसत्तम। नाम्नोऽस्य यावतीशक्तिः सा श्रुता ब्रह्मणोमुखात्॥५४॥
तत्र पृष्ठं मया पूर्वं विष्णोर्नामसहस्रकम्। तदाहं ब्रह्मणा चोक्तो नाहं जानामि नारद ॥५५॥
जानात्ययं महारुद्रस्तत्सर्वं कथयिष्यति। महाश्चर्यं तु संप्राप्य ह्यागतस्तव सन्निधौ ॥५६॥
अस्मिन्कलियुगे घोरेऽल्पायुष्चैव मानवाः। विधर्मेषु रता नित्यं नामनिष्ठा न वैपुनः ॥५७॥
पाखण्डिनस्तथा विप्रा धर्मेषु विरताः सदा। सन्ध्याहीना व्रतभ्रष्टा दुष्टामलिनरूपिणः ॥५८॥

भगवान् विश्वेश्वर सदा रहते हैं उस कैलास के लिए चल पड़े । उन्होंने कैलास पर्वत के शिखर पर बैठे हुए देवाराध्य, जगद्गुरु शङ्करजी को देखा ॥४५-४७॥ शङ्करजी के पाँच मुख और दश भुजायें और तीन नेत्र थे । त्रिशूल, कपाल, खट्वाङ्ग, तीक्ष्ण और कृपाण धारण किए थे ॥४८॥ पिनाकधारी वे वरदान देने वाले हैं । उनका सवारी वृषभ था वे शरीर में भस्म लगाये थे, शिर पर चन्द्रमा को धारण किए थे । उनके शरीर में सर्प लिपटे थे । वे नीले मेघ के समान थे । उनकी कान्ति करोड़ों सूर्य के समान थी । वे क्रीड़ा कर रहे थे और देवगण उनको घेरे थे ॥४९-५०॥ ऋषिश्रेष्ठ नारदजी ने उनको देखा उन्होंने शङ्करजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥५१॥ आश्चर्य चकित नेत्रों से उनको देखकर सर्वश्रेष्ठ वैष्णव शङ्करजी ने नारदजी से पूछा— हे देवर्षि श्रेष्ठ ! बतलाएँ कि आप यहाँ किस लिए आये हैं ॥५२॥ **नारदजी ने कहा—** एक वार मैं ब्रह्माजी के पास गया था । हे देव ! उनसे मैंने भगवान् विष्णु के उत्तम माहात्म्य को सुना । उनके नाम में जितनी शक्ति है उसे मैंने सुना । हे देव ! उसे उन्होंने मेरे सामने सुनाया ॥५३-५४॥ उसके बाद मैंने उनसे विष्णु भगवान् के हजार नामों को पूछा तो ब्रह्माजी ने कहा कि नारद उसे मैं नहीं जानता हूँ। इसे महारुद्र जानते हैं वे ही उसे बतलायेंगे । अत्यन्त आश्चर्यित होकर मैं आपके सन्निकट आया हूँ ॥५५-५६॥ इस भयङ्कर कलियुग में मनुष्य की आयु छोटी है, वे सदा विधर्म में लगे रहते हैं उनकी नाम में निष्ठा नहीं है ॥५७॥ ब्राह्मण पाखण्डी हैं, धर्म पराङ्मुख हैं, वे मलीन तथा सन्ध्या भ्रष्ट है दुष्ट तथा मलिन रूप वाले हैं ॥५८॥ ब्राह्मणों के ही समान क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा दूसरे लोग भी हो गये हैं,

यथाविप्रास्तथा क्षत्त्रा वैश्याश्चैव पुनः पुनः। एवं शूद्रास्तथान्येच नवै भागवतानराः ॥५९॥
शूद्रा द्विजातिबाह्याश्च कलौ विश्वेश्वर प्रभो। धर्माधर्मौ न जानन्ति हितं वाऽहितमेव वा॥६०॥
एवं ज्ञात्वा ह्यहं स्वामिन्नागतः सन्निधौ तव ।
पुनश्च नाममाहात्म्यं श्रुतं वै ब्रह्मणोमुखात् ॥६१॥
त्वं देवः सर्वदेवानां त्वं नाथो मम सर्वदा। त्रिपुरारिश्च विश्वात्मा धाता त्वं च पुनः पुनः॥६२॥
कथयस्व प्रसादेन विष्णोर्नामसहस्रकम्। सौभाग्यजननं पुंसां परं भक्तिकरं सदा॥६३॥
ब्राह्मणानां ब्रह्मदं च क्षत्त्रियाणां जयप्रदम्। वैश्यानां धनदंनित्यंशूद्राणां सुखदायकम् ॥६४॥
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्सकाशान्महेश्वर। त्वं समर्थोऽसि भक्तानां सर्वदा केशवंप्रति॥६५॥
कथयस्व प्रसादेन यदि गोप्यं न सुव्रत। इदं पवित्रं परमं सर्वतीर्थमयं सदा॥६६॥
अतो वै श्रोतुमिच्छामि वद विश्वेश्वर ! प्रभो ! ।
श्रुत्वा नारदवाक्यानि विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
रोमाञ्चितस्ततो जातो विष्णोर्नामानि संस्मरन् ॥६७॥

ईश्वर उवाच

एतद्गोप्यं परं ब्रह्मन्विष्णोर्नामसहस्रकम्। एतच्छ्रुत्वा नरो वत्स न लभेद्दुर्गतिं क्वचित्॥
कदाचिच्च गते काले पार्वती मामुवाच ह ॥६८॥

पार्वत्युवाच

कैलासाधिपते मह्यं कथयस्व यथातथम्। त्वं किं जपसि देवेश परैश्वर्यसमन्वितः॥६९॥
तदा त्वं भस्मलिप्ताङ्गः कृत्तिवासाः सदा कथम् ।
जटाधरः कथं जातो वद विश्वेश्वर ! प्रभो ! ॥७०॥

कोई भगवद् भक्त नहीं है ॥५९॥ हे विश्वेश्वर ! द्विज बाह्य और शूद्र कलियुग में, धर्म, अधर्म, कल्याण अकल्याण को नहीं जानते हैं ॥६०॥ हे स्वामिन् ! इस बात को जानकर मैं आपके सन्निकट आया हूँ। फिर मैंने ब्रह्माजी के मुख से नाम का माहात्म्य सुना है ॥६१। आप सभी देवताओं के पूज्य तथा मेरे स्वामी हैं आप त्रिपुरारि, विश्वात्मा और धाता हैं ॥६२॥ आप सौभाग्यप्रद तथा लोगों में भक्ति उत्पन्न करके विष्णुसहस्र नाम को सुनायें। वह ब्राह्मणों को ज्ञान देने वाला और क्षत्रियों को विजय प्रदान करने वाला, वैश्यों को सदा धन देने वाला और शूद्रों को सुख देने वाला है ॥६४॥ उसे मैं आपसे सुनना चाहता हूँ। आप ही भगवान् के भक्तों में श्रेष्ठ हैं उसे सुनाने में समर्थ हैं ॥६५॥ हे सुव्रत ! यदि वह गोप्य न हो तो कृपा करके बतलायें। यह सदा परम पवित्र तथा सर्वतीर्थमय है ॥६६॥ हे विश्वेश्वर ! प्रभो इसीलिए मैं सुनना चाहता हूँ। नारदजी के वचनों को सुनकर विस्मय चकित नेत्रों वाले शिवजी भगवान् विष्णु के नामों को स्मरण करते हुए रोमाञ्चित हो गये ॥६७॥ **ईश्वर ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! यह विष्णु सहस्रनाम परं गोप्य है। हे वत्स ! इसको सुनकर मनुष्य कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है। एक बार पार्वतीजी ने मुझसे कहा। **पार्वती ने कहा—** हे कैलास के स्वामिन् ! आप मुझे सच बतलायें कि परम ऐश्वर्य से युक्त आप क्या जपते हैं ?॥६८-६९॥ हे विश्वेश्वर प्रभो ! उस समय सदैव आप शरीर में भस्म लगाये हुए, गज चर्म

त्वं देवः सर्वदेवानां त्वं गुरुः सर्वकर्मणाम् ।
त्वं पतिर्मम विश्वेश ! विश्नाथ ! जगत्प्रभो ! ॥७१॥

महादेव उवाच

इति पृष्टं मम ब्रह्मन्पार्वत्या च पुनः पुनः । तदा सर्वं मयाऽऽख्यातंतस्याश्चाग्रे विशेषतः ॥७२॥
शृणु नारद वक्ष्यामि यदुक्तं पार्वतीं प्रति । येन प्रसन्नो भगवान्मुक्तिदाता न संशयः ॥७३॥
ममायं तु पिता साक्षाद्बन्धुश्चैव तु सर्वदा । तस्याहं सर्वदाभक्तो ह्ययं मम पतिःसदा ॥
तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्व गदतोःमम ॥७४॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा नारदाय कथयामासवै द्विजाः । उमायै यत्पुराप्रोक्तं विष्णोर्नामसहस्त्रकम् ॥७५॥
महेशाच्चैव तत्प्राप्तं कैलासे नारदेन वै । कदाचिद्दैवयोगेन कैलासात्स समागतः ॥७६॥
नैमिषारण्यसंज्ञं तु तीर्थं वै परमाद्भुतम् । तत्रस्था ऋषयः सर्वेदृष्ट्वा तं ऋषिसत्तमम् ॥७७॥
पूजां चक्रुविशेषेण नारदाय महात्मने । आगतं नारदं ज्ञात्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥७८॥
पुष्पवृष्टिं प्रचक्रुस्ते वैष्णवा द्विजसत्तमाः । पाद्यमर्घ्यं ततः कृत्वा कृत्वाचारार्तिकं ततः ॥७९॥
निवेद्य फलमूलानि दण्डवत्पतिता भुवि । ऊचुश्च कृतकृत्याः स्म देशेह्यस्मिन्महामुने ॥८०॥
भवतो दर्शनं जातं पवित्रं पापनाशनम् । त्वत्प्रसादाश्च देवर्षे पुराणानि श्रुतानि च ॥८१॥
ब्रह्मन्केन प्रकारेण सर्वपापक्षयो भवेत् । विना दानेन तपसा विना तीर्थतपोमखैः ॥८२॥
विनादानैर्विना ध्यानैर्विना चेन्द्रियनिग्रहैः । विना शास्त्रसमूहैश्च कथं मुक्तिरवाप्यते ॥८३॥

ओढे हुए जटा धारण किए रहते हैं ॥७०॥ हे विश्वनाथ ! हे जगत्प्रभो ! आप अभी सभी देवताओं के पूज्य हैं, सभी कर्मों के गुरु हैं और मेरे पति हैं ॥७१॥ **महादेवजी ने कहा—** इस वात को जब पार्वती ने बार-बार पूछा तो मैंने सारी बातें उसके समक्ष कह दी ॥७२॥ नारदजी सुनें जो मैंने पार्वती से कहा और जिससे गुप्त दाता भगवान् प्रसन्न रहते हैं ॥७३॥ वे ही मेरे सदा साक्षात् पिता और वन्धु हैं । मैं उनका सदा भक्त रहता हूँ । और वे मेरे स्वामी हैं । उसी को मैं कहता हूँ उसे तुम सुनो ॥७४॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से कहकर पार्वतीजी से कहा था उस विष्णु सहस्रनाम को नारदजी को उन्होंने वतलाया ॥७५॥ कैलास पर्वत पर नारदजी ने उसे शङ्करजी से प्राप्त किया । एक बार वे दैव योग से कैलास से ॥७६॥ अत्यन्त अद्भुत नैमिषारण्य तीर्थ में आये । उन ऋषिश्रेष्ठ को देखकर सभी ऋषियों नारदजी की विशेष रूप से पूजा की । आये हुए नारदजी को जानकर उनके नेत्र विस्मय से विकसित हो गये थे ॥७७-७८॥ वे सभी द्विजश्रेष्ठ वैष्णवों ने पुष्प वृष्टि की फिर पाद्य, अर्घ्य आदि करके उनकी आरती की ॥७९॥ फल-मूल निवेदित करके उन लोगों ने दण्डवत् प्रणाम किया और कहे कि हे महामुने ! आपके यहाँ आने से हमलोग कृत-कृत्य हो गये ॥८०॥ आपका पवित्र तथा पाप विनाशक दर्शन हुआ । हे देवर्षे! आपकी कृपा से हमलोगों ने पुराणों को सुना है ॥८१॥ हे ब्रह्मन् ! दान, तपस्या, तीर्थ और यज्ञ किए बिना सभी पापों का नाश कैसे हो सकता है ॥८२॥ दान, ध्यान, इन्द्रियनिग्रह तथा शास्त्राध्ययन किए बिना कैसे मुक्ति प्राप्त की जा सकती है ॥८३॥ **नारदजी ने कहा—** कैलास के शिखर पर बैठे हुए

नारद उवाच

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम्। प्रणिपत्य महादेवं पर्यपृच्छदुमा प्रियम्॥८४॥

पार्वत्युवाच

भगवंस्त्वं परो देवः सर्वज्ञः सर्वपूजितः। स त्वमभ्यर्च्यते देवैरिन्द्रसूर्यादिकैरपि ॥८५॥

लभन्तेऽभिमतां सिद्धिं सर्वेऽभ्यचर्य वरप्रदम् ।
त्वं जन्ममृत्युरहितः स्वयम्भूः सर्वशक्तिमान् ॥८६॥
सदा ध्यायसि किं स्वामिन्दिग्वासा मदनान्तकः ।
तपश्चरसि कस्मात्त्वं जटिलो भस्मधूसरः ॥८७॥

किं वा जपसि देवेश परं कौतूहलं हि मे। अनुग्राह्यायदा तेऽस्मि तत्त्वं कथय सुव्रतम्॥८८॥

महादेव उवाच

नेदं कस्यापि कथितं गोपनीयमिदं मम ।
किं तु वक्ष्यामि ते भद्रे ! त्वं भक्ताऽसि प्रियाऽसि मे ॥८९॥

पुरा सत्ययुगे देवि विशुद्धमतयोऽखिलाः। यजन्ति विष्णुमेवैकं ज्ञात्वा सर्वेश्वरेश्वरम् ॥९०॥
प्रयान्ति परमामृद्धिमैहिकामुष्मिकीं प्रिये। यां न प्राप्ताः सुराः सर्व ऋषयः क्लेशसंयुताः॥९१॥
ते तां गतिं प्रपद्यन्ते ये नामकृतनिश्चयाः। मन्मुखादपि संश्रुत्य देवा विष्णुबहिर्मुखाः ॥९२॥

वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैर्भिन्नैर्विभ्रान्तचेतसः ।
निश्चयं नाधिगच्छन्ति किं तत्त्वं किं परं पदम् ॥९३॥

तुलापुरुषदानाद्यैरश्वमेधादिभिर्मखैः । वाराणसी प्रयागादितीर्थस्नानादिभिः प्रिये॥९४॥

देवदेव, जगद्गुरु शङ्करजी को प्रणाम करके पार्वतीजी ने पूछा ॥८४॥ **पार्वतीजी ने कहा**— हे भगवन्! आप परमदेव, सर्वज्ञ तथा सबों से पूजित हैं। इन्द्र तथा सूर्य आदि देवता भी आपकी पूजा करते हैं॥८५॥ वरप्रद आपकी पूजा करके सभी देवता परम सिद्धि को प्राप्त करते हैं। आप जन्म और मृत्यु से रहित स्वयम्भुव और सर्वशक्तिमान् हैं ॥८६॥ हे दिगम्बर ! हे कामविनाशक ! आप किसका ध्यान करते हैं। जटा धारण किए हुए तथा भस्म स्नान किए हुए तपस्या क्यों करते हैं ?॥८७॥ हे देवेश ! मुझको परम कौतूहल है कि आप क्या जपते हैं ? हे सुव्रत ! यदि मैं आपकी कृपा का पात्र हूँ तो उसे तत्त्वतः बतलायें॥८८॥ इस गोपनीय वस्तु को मैंने किसी को नहीं बतलाया है। किन्तु हे भद्रे ! तुमको मैं बतलाता हूँ क्योंकि तुम मेरी भक्ता और प्रियतमा हो ॥८९॥ प्राचीन काल में सत्य युग में सभी विशुद्ध बुद्धि वाले लोग भगवान् विष्णु की ही पूजा करते थे क्योंकि वे उन्हें सर्वेश्वर जानते थे ॥९०॥ हे प्रिये ! वे लौकिक तथा पारलौकिक परमा सिद्धि को प्राप्त कर लेते थे। उस सिद्धि को क्लेश उठाने वाले ऋषिगण और देवता भी नहीं प्राप्त किए थे ॥९१॥ जो लोग नाम पर विश्वास रखते थे वे विष्णु भगवान् के अभक्त भी मुझसे सुनकर देवता भी उस सिद्धि को प्राप्त करते थे ॥९२॥ वेदों, पुराणों तथा विभिन्न सिद्धान्तों से भ्रान्त चेतना वाले लोग इस बात का निश्चय नहीं कर पाते थे कि तत्त्व और परम पद क्या है ?॥९३॥ हे प्रिये! तुला पुरुष के दान आदि से अश्वमेध आदि यज्ञों में वाराणसी, प्रयाग आदि तीर्थों

गयाश्राद्धादिभिः पित्र्यैर्वेदपाठादिभिर्जपैः । तपोभिरुग्रैर्नियमैर्यमैर्भूतदयादिभिः ॥९५॥
गुरुशुश्रूषणैः सेव्यैर्धर्मैर्वर्णाश्रमान्वितैः । ज्ञानध्यानादिभिः सम्यक्चरितैर्जन्मकोटिभिः ॥९६॥
न यान्ति तत्परं श्रेयो विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् । सर्वभावैः समाश्रित्य पुराणपुरुषोत्तमम् ॥९७॥
अनन्यगतयो मर्त्या भोगिनोऽपि परन्तप। ज्ञानवैराग्यरहिता ब्रह्मचर्यादिवर्जिताः ॥९८॥

सर्वधर्मोज्झिता विष्णोर्नाममात्रैकजल्पिनः ।
सुखेन यां गतिं यान्ति न तां सर्वेऽपि धार्मिकाः ॥९९॥
स्मर्त्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् ।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतस्यैव विधिङ्कराः ॥१००॥

किं तु ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च निरंहसः । निर्भयं विष्णुनाम्नैव यथेष्टं पदमागताः ॥१०१॥

अलब्ध्वा चात्मनः पूजां सम्यगाराधितो हरिः ।
मयाऽस्मादपि च श्रेष्ठं वाञ्छिताऽर्थं कृतात्मना ॥१०२॥
ततः साक्षाज्जगन्नाथः प्रसन्नो भक्तवत्सलः ।
अंशांशेनात्मनैवैतान्पूजयामास केशवः ॥१०३॥

देवान्पितृन्द्विजान्हव्यकव्याद्यैः करुणामयः। ततः प्रभृति पूज्यन्ते त्रैलोक्ये सचराचरे॥१०४॥

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रसादाच्छार्ङ्गधन्वनः ।
मां चोवास यथा मत्तः पूज्यः श्रेष्ठो भविष्यसि ॥१०५॥
त्वामाराध्य तथा शम्भो ग्रहीष्यामि वरं सदा ।
द्वापरादौ युगे भूत्वा कलया मानुषादिषु ॥१०६॥

में स्नान आदि करने से, गया में श्राद्ध आदि करने से, वेदपाठ तथा जप करने से, उग्र तपस्या तथा नियमों का पालन करने से, जीवों पर दया आदि करने से ॥९४-९५॥ गुरुजनों की सेवा करने से, वर्णाश्रम धर्म से युक्त सेवनीय धर्मों से ज्ञान तथा ध्यान आदि को अच्छी तरह से करोड़ों जन्मों तक करने से मनुष्य परमकल्याण स्वरूप सर्वेश्वर के लोक में नहीं जाते हैं । पूर्णरूप से पुराण पुरुष की शरणागति करके अनन्यगति, भोग परायण, ज्ञान वैराग्य से रहित, तथा ब्रह्मचर्य आदि से रहित तथा सभी धर्मों का त्याग करने वाले किन्तु भगवान् विष्णु का सदा नाम जपने वाले मनुष्य आसानी से जिस गति को प्राप्त कर लेते हैं । उसे कोई धार्मिक नहीं कर पाते हैं ॥९६-९९॥ निरन्तर भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिए कभी भूलना नहीं चाहिए । सभी विधि निषेध वाक्य इसी का विधान करते हैं ॥१००॥ सभी ब्रह्मा आदि देवता और अहङ्कार रहित ऋषिगण भगवान् विष्णु के नाम से ही निर्भय यथेष्ट पद को प्राप्त कर लिए ॥१०१॥ अपनी पूजा प्राप्त किए बिना अच्छी तरह से पूजित श्रीहरि कृत-कृत्य मेरे द्वारा इससे भी श्रेष्ठ अभिप्रेत अर्थ प्रदान किए ॥१०२॥ उसके पश्चात् साक्षात् जगत् के स्वामी भक्त वत्सल करुणामय भगवान् केशव प्रसन्न होकर अपने एक छोटे से अंश से देवताओं, पितरों तथा ब्राह्मणों की हव्य तथा कव्य से पूजा की उसी समय से वे चराचरात्मक त्रैलोक्य में पूजे जाते हैं ॥१०३-१०४॥ ब्रह्मा आदि सभी देवता श्रीभगवान् की कृपा से मुझको कहे कि तुम हमसे भी श्रेष्ठ होओगे ॥१०५॥ हे शम्भो ! तुम्हारी आराधना करने से मैं सदा वरदान प्राप्त करूँगा । द्वापर आदि युगों में मैं अपने वंश से मनुष्य आदि

स्वागमैः कल्पितैस्त्वं च जनान्मद्विमुखान्कुरु ।
मां च गोपय येन स्यात्सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा ॥१०७॥
एष मोहं सृजाम्याशु योजनान्मोहयिष्यति । त्वं च रुद्रमहाबाहो मोहशास्त्राणि कारय ॥१०८॥
अतथ्यानि वितथ्यानि दर्शयस्व महाभुज । प्रकाशंकुरु चात्मानप्रकाशं च मां कुरु ॥१०९॥
ततस्तं प्रणिपत्याहमवोचं परमेश्वरम् । ब्रह्महत्यासहस्रस्य पापं शाम्येत्कथंचन ॥११०॥
न पुनस्तवद्विज्ञानं कल्पकोटिशतैरपि । तस्मान्मया कृता स्पर्धा पवित्रः स्यां कथंहरे॥१११॥
तन्मे कथय गोविन्द प्रायश्चित्तं यदिच्छसि । ततः प्रसन्नो भगवानवोचत्तत्त्वमात्मनः ॥११२॥
येनाहमधिकस्तस्मादभवं नगनन्दिनि । तमेव तपसा नित्यं भजामि स्तौमि चिन्तये ॥११३॥
परमो विष्णुरेवैकस्तज्ज्ञानं मुक्तिसाधनम् । शास्त्राणां निर्णयस्त्वेष तदन्यन्मोहनायच ॥११४॥
ज्ञानं विना च या मुक्तिः साम्यं च मम विष्णुना ।
तीर्थादि मात्रतो ज्ञानं ममाधिक्यं च विष्णुतः ॥११५॥
अभेदश्चास्मदादीनां मुक्तानां हरिणा तथा ।
इत्यादि सर्वं मोहाय कथ्यते सति नान्यथा ।
तेनाद्वितीयमहिमो जगत्पूज्योऽस्मि पार्वति ! ॥११६॥

पार्वत्युवाच

तन्मे कथय देवेश यथाऽहमपि शङ्कर । सर्वेश्वरी निरूपमा तव स्यां सदृशी प्रभो !॥११७॥

महादेव उवाच

साधु साधु त्वया पृष्टं विष्णोर्भगवतः प्रिये ! ।
नाम्नां सहस्रं वक्ष्यामि मुख्यं त्रैलोक्यमुक्तिदम् ॥११८॥

योनियों में जन्म लूँ ॥१०६। कलिगत अपने आगमो द्वारा लोगों को मेरे प्रतिकूल बनाओ और मेरी रक्षा करो जिससे कि उत्तरोत्तर सृष्टि हो ॥१०७॥ मैं शीघ्र ही माया की सृष्टि करता हूँ जो लोगों को मोहित करेगी । हे महाबाहो ! रुद्र आप भी माया शास्त्र का निर्माण करे ॥१०८॥ हे महाभुज ! सत्य तथा विपरीत शास्त्र को दिखाएँ । अपना प्रकाश करें और मुझको अप्रकाशित करें ॥१०९॥ उसके बाद परमेश्वर को प्रणाम करके मैंने कहा हजारों ब्रह्म हत्या जन्य पाप कैसे शान्त हो ?॥११०॥ आपके विषय में मुझे ज्ञान करोड़ों कल्पों में भी नहीं हो सकता अतएव मैंने आपसे स्पर्धा की अब मैं कैसे पवित्र होऊँ ॥१११॥ हे गोविन्द ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न होंते मुझे उस प्रायश्चित को बतलाइये । उससे प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने अपने तत्त्व को बतलाया ॥११२॥ जिसके कारण हे पार्वति ! मैं पहले से भी अधिक पवित्र हो गया। उन श्रीभगवान् को ही मैं तपस्या से भजता हूँ, स्तुति करता हूँ और चिन्तन करता हूँ ॥११३॥ केवल भगवान् विष्णु ही परतत्त्व हैं और उनका ज्ञान ही मुक्ति का साधन है । शास्त्रों का यही निर्णय है और उससे भिन्न अज्ञान मात्र है ॥११४॥ ज्ञान के बिना जो मुक्ति है, मेरी भगवान् विष्णु से समानता, केवल तीर्थ आदि करने से मुक्ति होती है, भगवान् विष्णु से मेरी अधिकता ॥११५॥ हम सबों का अभेद, मुक्त जीवों की श्रीहरि की समता, ये सारी बातें अज्ञान के साधन हैं, सत्य नहीं है । हे पार्वति ! इसी कारण मैं अद्वितीय महिमा सम्पन्न और पूज्य हूँ ॥११६॥ **पार्वतीजी ने कहा**— हे देवेश ! आप उसे मुझे बतलायें जिससे मैं

विनियोगः

अस्य श्रीविष्णोर्नामसहस्रस्तोत्रस्य श्रीमहादेवऋषिरनुष्टुप्छन्दः परमात्मा देवता ह्रीं बीजं श्रीं शक्तिः क्लीं कीलकं चतुवर्गधर्मकामार्थमोक्षार्थे जपे विनियोगः ॥ ॐ वासुदेवाय विद्महे महाहंसाय धीमहि॥ तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ अङ्गन्यासकरन्यासौ विधिपूर्वं यदा पठेत् । तत्फलं कोटिगुणितं भवत्येव न संशयः ।

श्री वासुदेवः परं ब्रह्म इति हृदये । मूलप्रकृतिरिति शिरसि । महावराह इति शिखायाम् । सूर्यवंशध्वज इति कवचम् । ब्रह्मादिकाम्यललितजगदाश्चर्यशैशव इति नेत्रयोः । यथार्थखण्डिताशेष इत्यस्त्रम् । नमोनारायणायेति न्यासं सर्वत्रकारयेत् । ओं नमोनारायणाय पुरुषाय महात्मने । विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि । तन्नोदेवःप्रचोदयात् । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः । क्लीं कृष्णाय विद्महे ह्रीं रामाय धीमहि तन्नो देवः प्रचोदयात् । क्ष्रौं नृसिंहाय विद्महे श्रींश्रीकण्ठाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । ओं वासुदेवाय विद्महे देवकीसुताय धीमहि । तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः । क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः स्वाहा।

इति मन्त्रं समुच्चार्य जपेद्वा विष्णुमव्ययम् ।
श्रीनिवासं जगन्नाथं तस्य स्तोत्रं पठेत्सुधीः ॥१२०॥

अनुपम सर्वेश्वरी आपके समान हो जायँ ॥११७॥ **महादेवजी ने कहा**— हे प्रिये ! बहुत अच्छा प्रश्न तुमने पूछा है मैं भगवान् विष्णु के मुख्य सहस्रनाम को बतलाता हूँ वह त्रैलोक्य से मुक्ति देने वाला मुख्य साधन है ॥११८॥

विनियोग

इस श्रीविष्णु सहस्रनाम स्तोत्र मन्त्र के श्रीमहादेव ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, परमात्मा देवता हैं ह्रीं बीज है, श्रींशक्ति है, कलीं कीलक है, चतुर्वर्ग, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति,में इसका विनियोग है । **विष्णु गायत्री** हम वासुदेव का तत्त्व समझने के लिए ज्ञान प्राप्त करते हैं । महाहंस स्वरूप नारायण का हम ध्यान करते हैं । श्रीविष्णु हमें प्रेरित करें । पहले अङ्गन्यास और करन्यास की विधि पूरी करके इस सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ किया जाय तो उसका फल करोड़ गुना होता है । इसमें कोई संशय नहीं है । **अङ्गन्यास ओं वासुदेवः परं ब्रह्म** इस मन्त्र से दाहिने हाथ की अङ्गुलि से हृदय का स्पर्श करें । **मूल प्रकृतिः** इस मंत्र से शिर का स्पर्श करें **महावराहः** इस मन्त्र से शिला का स्पर्श करें, **सूर्यवंशध्वजः** इस मंत्र से दोनों हाथों से दोनों भुजाओं का स्पर्श करे । **ब्रह्मादि काम्य लालित्य जगदाश्चर्य शैशवः** इस मंत्र से दोनों नेत्रों का स्पर्श करे । **यथार्थ खण्डिताशेषः** इस मन्त्र से ताली बजाये । अन्त में **नमो नारायणाय** इस मन्त्र से सर्वाङ्ग का स्पर्श करे ।

ओङ्कार स्वरूप महापुरुष नारायण को नमस्कार है । महाहंस स्वरूप तथा विशुद्ध सत्त्व के आश्रय भगवान् विष्णु का हम ध्यान करते हैं । अतएव भगवान् विष्णु हमें सत्कार्य में लगाये । उसके बाद ह्रां ह्रीं ह्रूं हैं रौं: ह्रो: इसका उच्चारण करे । क्लीं स्वरूप कृष्ण भगवान् के तत्त्व को जानने के लिए ज्ञान प्राप्त करें । ह्रीं स्वरूप श्रीराम का हम ध्यान करते हैं । वे ही हमें सत्कार्य में लगायें । क्ष्रौं स्वरूप भगवान् नृसिंह का ध्यान करने के लिए हम ज्ञान प्राप्त करते हैं । श्रीकण्ठ का हम ध्यान करते हैं । भगवान् विष्णु

ॐ वासुदेवः परं ब्रह्म परमात्मा परात्परः ।
परंधाम परंज्योतिः परं तत्त्वं परं पदम् ॥१२१॥
परःशिवः परो ध्येयः परं ज्ञानं परागतिः ।
परमार्थ परंश्रेयः परानन्दः परोदयः ॥१२२॥
परोव्यक्तात्परं व्योम परमर्द्धि परमेश्वरः। निरामयो निर्विकल्पो निर्विकारो निराश्रयः ॥१२३॥
निरञ्जनो निरातङ्को निर्लेपो निरवग्रहः ।
निर्गुणो निष्कलोऽनन्तोऽभयो चिन्त्योऽचलोऽच्चितः ॥१२४॥
अतीन्द्रियोऽमितोऽपाराऽनीशोऽनीहोऽव्ययोऽक्षयः ।
सर्वज्ञः सर्वगः सर्वः सर्वदः सर्वभावनः ॥१२५॥

हमें सत्कार्य में लगायें । ओङ्कार स्वरूप वासुदेव तत्त्व को जानने के लिए हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, देवकी पुत्र का हम ध्यान करते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण हमें सत्कार्य में लगायें । ओम् ह्रां, ह्रीं ह्रें ह्रौं ह्रः । क्लीं स्वरूप भगवान् कृष्ण को नमस्कार है, गोविन्द को नमस्कार है, गोपीजन बल्लभ को नमस्कार है । इन मन्त्रों का उच्चारण करके अव्यय श्रीनिवास जगन्नाथ भगवान् विष्णु के नामों का स्तोत्र विद्वानों को पढ़ना चाहिए ॥१२०॥

विष्णु सहस्र नाम स्तोत्र

१. **ओम वासुदेवः=** ओंकार स्वरूप सबों के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहने वाले और महाप्रलय में सबको अपने भीतर बसाने वाले २. **परंब्रह्म=** सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म, ३. **परमात्मा=** आत्मा के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहने वाले, ४. **परात्परः=** परा देवता स्वरूप, ५. **परं धाम=** मुक्त जीवों के लिए परं प्राप्य स्वरूप, ६. **परं ज्योतिः=** सभी सूर्य चन्द्रमा आदि ज्योतियों को भी अपने प्रकाश से प्रकाशित करने वाले श्रेष्ठ ज्योति स्वरूप, ७. **परंतत्त्व=** जड़, जीव आदि तीनों तत्त्वों में सर्वश्रेष्ठ अथवा उपनिषदों के सर्वश्रेष्ठ प्रतिपाद्य, ८. **परं पदम्=** समस्त जीवों के लिए परं प्राप्य ॥१२१॥ ९. **परः शिवः=** सर्व श्रेष्ठ कल्याणकारी, १०. **परोध्येयः=** सर्वश्रेष्ठ ध्यान करने योग्य देवता, ११. **परंज्ञानम्=** सर्वश्रेष्ठ ज्ञान स्वरूप, १२. **परा गतिः=** सबों के सर्वश्रेष्ठ प्राप्य तथा आश्रय स्वरूप, १३. **परमार्थः=** परम पुरुषार्थ स्वरूप, १४. **परं श्रेयः=** परं कल्याण स्वरूप, १५. **परानन्दः=** सर्वोत्कृष्ट आनन्द स्वरूप, १६. **परोदयः=** सर्वोत्कृष्ट अभ्युदय से युक्त, १७. **परोऽव्यक्तात्=** अव्यक्त पद वाच्य प्रकृति से भी परे, १८. **परंव्योम=** परमाकाश स्वरूप, १९. **परमर्द्धि=** सर्वाधिक ऐश्वर्य सम्पन्न, २०. **परेश्वरः=** सभी स्वामियों के भी स्वामी, २१. **निरामय=** सभी प्रकार के रोगादि से रहित, २२. **निर्विकार=** सत्ता, उत्पत्ति, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय और विनाश, इन षड्विकारों से रहित, २३. **निर्विकल्पः=** भेद रहित, २४. **निराश्रयः=** स्वेतर समस्त वस्तुओं के आश्रय होने के कारण स्वयं आश्रय रहित ॥१२२-१२३॥ २५. **निरञ्जनः=** सभी दोषों से रहित, २६. **निरालम्बः=** सबों के आलम्बन होने के कारण स्वयं आलम्बन निरपेक्ष, २७. **निर्लेपः=** आसक्ति आदि दोषों से रहित, २८. **निरवग्रहः=** समस्त विघ्न बाधाओं से रहित, २९. **निर्गुण=** प्रकृति के सत्त्व, रजस् एवं तमस् गुणों से रहित, ३०. **निष्कलः=** अवयव शून्य, ३१. **अनन्तः=** देश, काल एवं वस्तु की सीमा से रहित, ३२. **अभयः=** सभी प्रकार के भयों से रहित, ३३. **अचलः=** अपनी मर्यादा से

सर्वशास्ता सर्वसाक्षी पूज्यः सर्वस्य सर्वदृक् ।
सर्वशक्तिः सर्वसारः सर्वात्मा सर्वतोमुखः ॥१२६॥
सर्वावासः सर्वरूपः सर्वादिः सर्वदुःखहा । सर्वार्थः सर्वतोभद्रः सर्वकारणकारणम् ॥१२७॥
सर्वातिशयितः सर्वाध्यक्षः सर्वसुरेश्वरः । षड्विंशको महाविष्णुर्महागुह्यो महाविभुः ॥१२८॥
नित्योदितो नित्ययुक्तो नित्यानन्दः सनातनः ।
मायपतिर्योगपतिः कैवल्यपतिरात्मभूः ॥१२९॥
जन्ममृत्युजरातीतःकालातीतो भवातिगः । पूर्णःसत्यः शुद्धबुद्धस्वरूपो नित्यचिन्मयः ॥१३०॥
योगप्रियो योगगम्यो भवबन्धैकमोचकः । पुराणपुरुषः प्रत्यक्चैतन्यः पुरुषोत्तमः ॥१३१॥

कभी विचलित नहीं होने वाले, **३४. अचिन्त्यः=** मन की गति से भी परे होने के कारण चिन्तनका विषय नहीं बनने वाले, **३५. अञ्चितः=** सबों के पूजनीय ॥१२४॥ **३६. अतीन्द्रियः=** प्राकृतिक इन्द्रियों के विषय नहीं बनने वाले, **३७. अमितः=** अपारीच्छिन्न, **३८. अपारः=** सभी प्रकार की सीमाओं से रहित, **३९. अनीशः=** भक्तों के अधीन रहने के कारण अनीश, **४०. अनीहः=** इच्छा करते ही उसके पूर्ण हो जाने के कारण अनीह, **४१. अव्ययः=** सभी प्रकार के विकारों से रहित, **४२. अक्षयः=** विनाश रहित, **४३. सर्वज्ञः=** सवकुछ साक्षात् जानने वाले, **४४. सर्वगः=** सर्वत्र व्यापक रहने वाले, **४५. सर्वः=** सर्व स्वरूप, **४६. सर्वदः=** अपने भक्तों को सबकुछ प्रदान करने वाले, **४७. सर्वभावनः=** सबों को उत्पन्न करने वाले ॥१२५॥ **४८. सर्वशास्ता=** सबों का प्रशासन करने वाले, **४९. सर्वसाक्षी=** सबकुछ साक्षात् देखने वाले, **५०. सर्वस्य पूज्यः=** सबों के पूज्य, **५१. सर्वसारः=** सबों के सार स्वरूप, **५२. सर्वशक्तिः=** सर्वशक्तिमान्, **५३. सर्वसारः=** सबों के सार स्वरूप, **५४. सर्वात्मा=** सबों की आत्मा, **५५. सर्वतोमुखः=** सब ओर मुख वाले, विराट् स्वरूप ॥१२६॥ **५६. सर्वावासः=** सबों को अपने में वसाने वाले, **५७. सर्वरूपः=** सम्पूर्ण जगत् शरीरक, **५८. सर्वादिः=** सबों के आदि कारण, **५९. सर्वदुःखहा=** भक्तों के सभी कष्टों को विनष्ट करने वाले, **६०. सर्वार्थः=** समस्त पुरुषार्थ स्वरूप, **६१. सर्वतोभद्रः=** सब प्रकार से कल्याण स्वरूप, **६२. सर्वकारणकारणम्=** सम्पूर्ण कारणों के भी कारण ॥१२७॥ **६३. सर्वातिशयितः=** सबों से उत्कृष्ट, **६४. सर्वाध्यक्षः=** सबों के स्वामी, **६५. सर्वसुरेश्वरः=** समस्त देवताओं के स्वामी, **६६. षड्विंशकः=** छब्बीसवाँ तत्त्व, **६७. महाविष्णुः=** सभी देवताओं से महान् है भगवान् विष्णु, **६८. महागुह्यः=** परम गोपनीय तत्त्व, **६९. महाबिभुः=** व्यापक आकाश आदि में भी व्यापक॥१२८॥ **७०. नित्योदितः=** सदैव उदित ही रहने वाले, **७१. नित्ययुक्तः=** चराचरात्मक सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मा रूप से विद्यमान रहने वाले, **७२. नित्यानन्दः=** सदैव आनन्द स्वरूप रहने वाले, **७३. सनातनः=** सदैव एक समान विद्यमान रहने वाले, **७४. मायापतिः=** माया के भी स्वामी, **७५. योगपतिः=** योगेश्वर, **७६. कैवल्यपतिः=** कैवल्य के स्वामी, **७७. आत्मभूः=** अपनी इच्छा से ही विभिन्न रूपों में अवतीर्ण होने वाले ॥१२९॥ **७८. जन्ममृत्युजरातीतः=** जन्म, मरण, वार्द्धक्य आदि शरीर के धर्मों से रहित, **७९. कालातीत=** काल के अधीन नहीं रहने वाले, **८०. भवातिगः=** संसार के वन्धन से रहित, **८१. पूर्णः=** ज्ञान, शक्ति, बल तथा ऐश्वर्य आदि से परिपूर्ण, **८२. सत्यः=** भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों कालों में

वेदान्तवेद्यो दुर्ज्ञेयस्तापत्रयविवर्जितः। ब्रह्मविद्याश्रयो नाद्यः स्वप्रकाशः स्वयं प्रभुः॥१३२॥
सर्वोपेय उदासीनः प्रणवः सर्वत समः। सर्वानवद्यो दुष्प्राप्यस्तुरीयस्तमसः परः॥१३३॥
कूटस्थः सर्वसंश्लिष्टो वाङ्मनो गोचरातिगः।
सङ्कर्षणः सर्वहरः कालः सर्वभयङ्करः॥१३४॥
अनुल्लङ्घ्यश्चित्रगतिर्महारुद्रो दुरासदः। मूलप्रकृतिरानन्दः प्रद्युनो विश्वमोहनः॥१३५॥
महामायो विश्वबीजं परशक्तिः सुखैकभूः। सर्वकाम्योऽनन्तलीलः सर्वभूतवशङ्करः॥१३६॥

विद्यमान रहने वाले, ८३. **शुद्ध बुद्ध स्वरूपः=** स्वाभाविक रूप से शुद्ध तथा ज्ञान से सम्पन्न रहने वाले, ८४. **नित्यचिन्मय=** सदैव ज्ञान स्वरूप, ८५. **योगप्रियः=** चित्तवृत्ति के निरोध स्वरूप योग के प्रेमी, ८६. **योगगम्यः=** निर्विकल्प समाधि के द्वारा जानने योग्य, ८७. **भवबन्धैक मोचकः=** संसार के बन्धन से एकमात्र छुड़ाने वाले, ८८. **पुराण पुरुषः=** ब्रह्मा आदि देवताओं से भी प्राचीन या आदि पुरुष, ८९. **प्रत्यक् चैतन्यः=** स्वयं प्रकाश ज्ञान स्वरूप, ९०. **पुरुषोत्तमः=** क्षर एवं अक्षर पुरुषों से श्रेष्ठ ॥१३०-१३१॥ ९१. **वेदान्तवेद्यः=** उपनिषदों के द्वारा जानने योग्य, ९२. **दुर्ज्ञेयः=** कठिनाई से जानने योग्य, ९३. **तापत्रय विवर्जितः=** दैहिक, दैविक एवं भौतिक इन तीनों तापों से रहित, ९४. **ब्रह्मविद्याश्रयः=** ब्रह्मविद्या के आधार स्वरूप, ९५. **अनघः=** निष्पाप, ९६. **स्वप्रकाशः=** अपने ही प्रकाश से सदा प्रकाशित होने वाले, ९७. **स्वयम्प्रभुः=** स्वयं समर्थ किसी दूसरे के सामर्थ्य की अपेक्षा नहीं रखने वाले ॥१३२॥ ९८. **सर्वोपेयः=** सबों के प्राप्य, ९९. **उदासीनः=** किसी वस्तु की अपेक्षा न होने के कारण उदासीन रहने वाले, १००. **प्रणवः=** ओङ्कार स्वरूप अथवा ओम् शब्द वाच्य, १०१. **सर्वतः समः=** सबों पर समान दृष्टि रखने वाले, १०२. **सर्वानवद्यः=** अखिल हेय प्रत्यनीक, १०३. **दुष्प्राप्यः=** कठिनाई से प्राप्त किए जाने योग्य, १०४. **तुरीयः=** जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर तुरीयावस्था स्वरूप १०५. **तमसः परः=** प्रकृति से परे ॥१३३॥ १०६. **कूटस्थः=** निहाइ के समान अविचल रहने वाले, निर्विकार, १०७. **सर्वसंश्लिष्टः=** जड़ चेतनात्मक समस्त वस्तु में व्यापक, १०८. **वाङ्मनोऽगोचरातीतः=** पूर्ण रूप से मन और वाणी का विषय नहीं बनने वाले, १०९. **सङ्कर्षणः=** चतुव्यूहों में सङ्कर्षण स्वरूप, ११०. **सर्वहरः=** प्रलयकाल में सम्पूर्ण जगत् का संहार करने वाले, १११. **कालः=** युग, वर्ष, मास, दिवस रूप से सबों को अपना ग्रास बनाने वाले, ११२. **सर्वभयङ्करः=** मृत्यु रूप से सबों को भयभीत करने वाले ॥१३४॥ ११३. **अनुल्लङ्घ्यः=** काल आदि भी जिनकी आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं कर सकते, ११४. **चित्रगतिः=** विचित्र प्रकार की लीलाओं को करने वाले (लीला पुरुषोत्तम), ११५. **महारुद्रः=** ग्यारह रुद्रों से भी श्रेष्ठ महेश्वरः (मायापति)· ११६. **दुरासदः=** बड़े-बड़े दानवों को भी जिनका सामना करना कठिन है, ११७. **मूलप्रकृतिः=** प्रकृति के भी कारण, ११८. **आनन्दः=** आनन्द स्वरूप, ११९. **प्रद्युम्नः=** चतुर्व्यूहों में प्रद्युम्न स्वरूप, १२०. **विश्वमोहनः=** अपने अद्भुत सौन्दर्य से सबों को मोहित करने वाले ॥१३५॥ १२१. **महामायः=** मायावियों पर भी माया डालने वाले, महामायावी, १२२. **विश्वबीजम्=** सम्पूर्ण जगत् के आदि कारण १२३. **पराशक्तिः=** पराशक्ति सम्पन्न, १२४. **सुखैकभूः=** सुख के एकमात्र उत्पत्ति स्थान, १२५. **सर्वकाम्यः=** सुख के एकमात्र उत्पत्ति स्थान, १२६. **सर्वकाम्यः=** सबों द्वारा चाहे जाने योग्य, १२७. **अनन्त लीलः=** जिनकी लीलाओं का कोई अन्त नहीं है, १२८. **सर्वभूतवशंकरः=** सभी जीवों को अपने वश में रखने वाले श्रीभगवान् ॥१३६॥ १२९. **अनिरुद्धः=**

अनिरुद्धः सर्वजीवो हृषीकेशो मनः पतिः। निरुपाधिप्रियो हंसोऽक्षरः सर्वनियोजकः ॥१३७॥
ब्रह्मप्राणेश्वरः सर्वभूतभृद्देहनायकः। क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः स्वामी पुरुषो विश्वसूत्रधृत् ॥१३८॥
अन्तर्यामी त्रिधामान्तः साक्षी त्रिगुण ईश्वरः ।
योगिगम्यः पद्मनाभः शेषशायी श्रियः पतिः ॥१३९॥
श्रीसदोपास्यपादाब्जो नित्यश्रीः श्रीनिकेतनः ।
नित्यं वक्षस्थलस्थश्रीः श्रीनिधिः श्रीधरो हरिः ॥१४०॥
वश्यश्रीर्निश्चलः श्रीदो विष्णु क्षीराब्धिमन्दिरः ।
कौस्तुभोद्भासितोरस्को माधवो जगदार्तिहा ॥१४१॥
श्रीवत्सवक्षा निःसीमाकल्याणगुणभाजनम् ।
पीताम्बरो जगन्नाथो जगत्त्राता जगत्पिता ॥१४२॥

चतुर्व्यूहों में अनिरूद्ध स्वरूप अथवा सग्रांम में जिनको गति को कोई रोक नहीं सकता, **१३०. सर्वजीवः=** सृष्ट सभी जीवों को जीवित रखने वाले, **१३१. हृषीकेशः=** सबों की इन्द्रियों के स्वामी, **१३२. मनःपतिः=** मन के स्वामी, **१३३. निरुपाधिप्रियः=** स्वाभाविक रूप से सबों को प्रिय लगने वाले, **१३४. हंसः=** हंस के रूप में अवतीर्ण होकर सनकादिकों को उपदेश देने वाले, **१३५. अक्षरः=** कभी भी विकृत नहीं होने वाले, **१३६. सर्वविनियोजकः=** सबों को विभिन्न कामों में लगाने वाले ॥१३७॥ **१३७. ब्रह्मप्राणेश्वरः=** ब्रह्माजी के प्राणों के स्वामी, **१३८. सर्वभूतभृत्=** सभी जीवों को धारण करने वाले, **१३९. देहनायकः=** सबों के शरीर को संचालित करने वाले ॥१३६॥ **१४०. क्षेत्रज्ञः=** सभी शरीरों के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहकर उनको जानने वाले, **१४१. प्रकृति=** प्रकृति शरीरक, **१४२. स्वामी=** सबों के स्वामी, **१४३. पुरुषः=** समस्त शरीरों में शयन करने वाले, अन्तर्यामी, **१४४. विश्वसूत्रधृक्=** संसार रूपी नाटक के सूत्रधार, **१४५. अन्तर्यामी=** सबों के भीतर प्रवेश करके उनका नियमन करने वाले, **१४६. त्रियामा=** त्रैलोक्य के स्वामी, **१४७. अन्तःसाक्षी=** सबों के अन्तःकरण में रहकर सबों के कृत्यों को साक्षात् देखने वाले, **१४८. निर्गुणः=** प्राकृतिक मिश्रसत्त्वादि गुणों से रहित, **१४९. ईश्वरः=** सम्पूर्ण जगत् के नियामक, **१५०. योगिगम्यः=** योगियों के द्वारा जानने योग्य, **१५१. पद्मनाभः=** अपनी नाभि से कमल प्रकट करने वाले, **१५२. शेषशायी=** शेषनाग की शय्या पर शयन करने वाले, **१५३. श्रियःपतिः=** लक्ष्मीजी के पति ॥१३९॥ **१५४. श्रीसदोपास्यपादाब्जः=** लक्ष्मीजी जिनके चरण कमल की सदैव उपासना करती हैं, **१५५. नित्यश्रीः=** कभी अलग नहीं होने वाली लक्ष्मीजी की शोभा से सम्पन्न, **१५६. श्रीनिकेतनः=** लक्ष्मीजी के हृदय रूपी मन्दिर में निवास करने वाले, **१५७. नित्य वक्षःस्थलस्थश्रीः=** जिनके वक्षः स्थल में लक्ष्मीजी सदैव निवास करती है, **१५८. श्रीनिधिः=** समस्त सम्पत्तियों के एकमात्र आश्रय, **१५९. श्रीधरः=** अपने हृदय में लक्ष्मीजी को सदा धारण करने वाले, **१६०. हरिः=** अपने भक्तों के समस्त पापों को विनष्ट करने वाले ॥१४०॥ **१६१. वश्य श्रीः=** लक्ष्मीजी को सदा अपने वश में रखने वाले, **१६२. निश्चलश्रीः=** अपने उपासकों को निश्चल लक्ष्मी प्रदान करने वाले, **१६३. विष्णुः=** सर्वत्र व्यापक रहने वाले भगवान्, **१६४. क्षीराब्धि मन्दिरः=** क्षीर सागर में निवास करने वाले, **१६५. कौस्तुभोदभासितोरस्कः=** कौस्तुभ मणि से जिसका हृदय सदैव प्रकाशित होता रहता है, **१६६.माधवः=**

जगद्बन्धुर्जगत्स्रष्टा जगद्धाता जगन्निधिः । जगदेकस्फुरद्वीर्योऽनहंवादी जगन्मयः ॥१४३॥
सर्वाश्चर्यमयः सर्वसिद्धार्थः सर्वरञ्जितः । सर्वामोघोद्यमो ब्रह्मरुद्राद्युत्कृष्टचेतनः ॥१४४॥
शम्भोः पितामहो ब्रह्मपिता शक्राद्यधीश्वरः । सर्वदेवप्रियः सर्वदेवमूर्तिरनुत्तमः ॥१४५॥
सर्वदेवैकशरणं सर्वदेवैकदैवतम् । यज्ञभुग्यज्ञफलदो यज्ञेशो यज्ञभावनः ॥१४६॥
यज्ञत्राता यज्ञपुमान्वनमाली द्विजप्रियः । द्विजैकमानदो विप्रकुलदेवोऽसुरान्तकः ॥१४७॥
सर्वदुष्टान्तकृत्सर्वसज्जनानन्यपालकः । सप्तलोकैकजठरः सप्तलोकैकमण्डनः ॥१४८॥
सृष्टिस्थित्यन्तकृच्चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः । शङ्खभृन्नन्दकी पद्मपाणिर्गरुडवाहनः ॥१४९॥

जगन्माता लक्ष्मीजी के पति, **१६७. जगदार्तिहा=** समस्त संसार के कष्ट को दूर करने वाले ॥१४१॥ **१६८. श्रीवत्सवक्षाः=** जिनके वक्षःस्थल में श्रीवत्सचिह्न विद्यमान है, **१६९. निःसीमकल्याणगुणभाजनम्=** असंख्य कल्याण गुणो के आश्रय, **१७०. पीताम्बरः=** पीताम्बर धारण करने वाले, **१७१. जगन्नाथः=** जगत् के स्वामी, **१७२. जगत्त्राता=** सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले, **१७३. जगत्पिता=** समस्त जगत् के पिता ॥१४२॥ **१७४. जगत् बन्धुः=** सम्पूर्ण जगत् के बन्धु, **१७५. जगत् स्रष्टा=** सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले, **१७६. जगद्धाता=** सम्पूर्ण जगत् का पालन पोषण करने वाले, **१७७. जगन्निधिः=** प्रलय काल में सम्पूर्ण जगत् के बीज को धारण करने वाले, **१७८. जगदेकस्फुरद्वीर्यः=** सम्पूर्ण जगत् में एकमात्र प्रख्यात पराक्रमी, **१७९. नाहंवादी=** अहङ्कार रहित, **१८०. जगन्मयः=** सम्पूर्ण जगत् स्वरूप ॥१४३॥ **१८१. सर्वाश्चर्यमयः=** जिनका सबकुछ आश्चर्यमय है, **१८२. सर्वसिद्धार्थः=** जिनके सभी मनोरथ पूर्ण ही होते हैं, **१८३. सर्वरञ्जित=** सम्पूर्ण जगत् जिनके मनोरञ्जन (लीला) का साधन है, **१८४. सर्वामोघोद्यमः=** जिनके सम्पूर्ण प्रयास सफल ही होते हैं, **१८५. ब्रह्मरुद्राद्युत्कृष्टचेतनः=** ब्रह्मा और रुद्र इत्यादि से उत्कृष्ट ज्ञानवान् ॥१४४॥ **१८६. शम्भोः पितामहः=** शङ्करजी के पितामह हैं भगवान्, **१८७. ब्रह्मपिता=** ब्रह्माजी के पिता हैं भगवान्, **१८८. शक्राद्यधीश्वरः=** इन्द्र इत्यादि देवताओं के स्वामी, **१८९. सर्वदेवप्रियः=** सभी देवताओं के प्रिय, **१९०. सर्वदेवमूर्ति=** सभी देवता जिनके शरीर हैं, **१९१. अनुत्तमः=** जिनसे उत्तम कोई नहीं है ॥१४५॥ **१९२. सर्वदेवैकशरणम्=** सभी देवताओं के एकमात्र रक्षक, **१९३. सर्वदेवैक देवता=** सभी देवताओं के एकमात्र आराध्य, **१९४. यज्ञभुक्=** समस्त यज्ञों के भोक्ता, **१९५. यज्ञफलदः=** सभी यज्ञों का फल प्रदान करने वाले, **१९६. यज्ञेशः=** सभी यज्ञों के स्वामी, **१९७. यज्ञभावनः=** अपनी वेदमयी वाणी के द्वारा यज्ञों को प्रकट करने वाले॥१४६॥ **१९८. यज्ञत्राता=** यज्ञविरोधी असुरों का विनाश करके यज्ञों की रक्षा करने वाले, **१९९. यज्ञपुमान्=** यज्ञाधिष्ठाता यज्ञ पुरुष, **२००. वनमाली=** वनमाला धारण करने वाले, **२०१. द्विजप्रियः=** ब्राह्मणों के प्रिय, **२०२. द्विजैकमानदः=** एकमात्र ब्राह्मणों को सम्मात्र देने वाले, **२०३. विप्रकुलदेवः=** ब्राह्मणों को अपना आराध्य मानने वाले, **२०४. असुरान्तकः=** असुरों का विनाश करने वाले ॥१४७॥ **२०५. सर्वदुष्टान्तकृत्=** सभी दुष्टों को मारने वाले, **२०६. सर्वसज्जनानन्यपालकः=** सम्पूर्ण सज्जन पुरुषों के एकमात्र पालन करने वाले, **२०७. सप्तलोकैकजठरः=** भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक इन सातों लोकों को प्रलयकाल में अपने पेट मे रखने वाले, **२०८. सप्तलोकैकमण्डनः=** अपने सौन्दर्य के द्वारा सातों लोकों को अलंकृत करने वाले ॥१४८॥ **२०९. सृष्टिस्थित्यन्तकृत्=** सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करने वाले, **२१०. चक्री=** सुदर्शन चक्र

अनिर्देश्यवपुः सर्वपूज्यस्त्रैलोक्यपावनः । अनन्तकीर्तिर्निःसीमपौरुषः सर्वमङ्गलः ॥१५०॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशो यमकोटिदुरासदः । मयकोटिजगत्स्रष्टा वायुकोटिमहाबलः ॥१५१॥
कोटीन्दुजगदानन्दी शम्भुकोटि महेश्वरः । कन्दर्पकोटिलावण्यो दुर्गाकोट्यरिमर्दनः ॥१५२॥
समुद्रकोटिगम्भीरस्तीर्थकोटिसमाह्वयः । कुबेरकोटिलक्ष्मीवाञ्छक्रकोटिविलासवान् ॥१५३॥
हिमवत्कोटिनिष्कम्पः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः । कोट्यश्वमेधपापघ्नो यज्ञकोटिसमार्चनः ॥१५४॥
सुधाकोटिस्वास्थ्यहेतुः कामधुक्कोटिकामदः ।
ब्रह्मविद्याकोटिरूपः शिपिविष्टः शुचिश्रवाः ॥१५५॥
विश्वम्भरस्तीर्थपादः पुण्यश्रवणकीर्तनः। आदिदेवो जगज्जैत्रो मुकुन्दः कालनेमिहा॥१५६॥

को धारण करने वाले, **२११. शार्ङ्गधन्वा=** शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले, **२१२. गदाधरः:=** कौमेदकी गदा को धारण करने वाले, **२१३. शङ्खभृत्=** पाञ्चजन्य नामक शङ्ख को धारण करने वाले, **२१४. नन्दकी=** नन्दक नामक कृपाण को धारण करने वाले, **२१५. पद्मपाणिः:=** अपने हाथ में कमल धारण करने वाले, **२१६. गरुडवाहनः:=** गरुड़ पर सवारी करने वाले ॥१४९॥ **२१७. अनिर्देश्यपुः** जिनके दिव्य शरीर का पूर्ण रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता **२१८. सर्वपूज्यः:=** देव, दानव एवं मानव सबके पूजनीय, **२१९. त्रैलोक्यपावनः:=** अपने दर्शन और स्पर्श से त्रैलोक्य को पवित्र बनाने वाले, **२२०. अपनाकीतिः:=** जिनके सुयश का पूर्ण से शेष और शारदा भी वर्णन नहीं कर सकते, **२२१. निःसीम पौरुषः:=** जिनके पराक्रम की कोई भी सीमा नहीं है, **२२२. सर्वमङ्गलः:=** सबका मङ्गल करने वाले ॥१५०॥ **२२३. सूर्यकोटिप्रतीकाशः:=** करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान, **२२४. यमकोटि दुरासदः:=** करोड़ों यमराज के लिए दुर्घर्ष, **२२५. कन्दर्पकोटि लावण्यः:=** करोड़ों कामदेव के सौन्दर्य से भी अधिक सौन्दर्य सम्पन्न, **२२६. दुर्गाकोट्यरिमर्दनः:=** करोड़ों दुर्गाओं के समान शत्रुओं को मार डालने वाले ॥१५१-१५२॥ **२२७. समुद्र कोटि गम्भीरः:=** करोड़ों समुद्र के समान दुरवगाह, **२२८. तीर्थकोटि समाह्वयः:=** करोड़ो तीर्थ के समान पवित्र नाम वाले, **२२९. कुबेर कोटि लक्ष्मीवान्=** करोड़ों कुबेर से भी अधिक लक्ष्मी सम्पन्न, **२३०. शक्रकोटि विलासवान्=** करोड़ों इन्द्र से भी अधिक विलास सम्पन्न॥१५३॥ **२३१. हिमवत् कोटि निष्कम्पः:=** करोड़ों हिमालय से भी अधिक अविचाल्य, **२३२. कोटिब्रह्माण्ड विग्रह=** जिनके दिव्य विग्रह (शरीर) में करोड़ों ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं **२३३. कोट्यश्वमेधपापघ्नः:=** करोड़ों अश्वमेध के समान पाप विनाशक **२३४. यज्ञकोटि समार्चनाः:=** करोड़ों यज्ञों के समान पूजन सामग्री से पूजित ॥१५४॥ **२३५. सुधाकोटिस्वास्थ्यहेतुः:=** करोड़ों अमृतों के समान स्वास्थ्य रक्षक, **२३६. कामधुक् कोटि कामदः:=** करोड़ों कामधेनु के समान कामनाओं को पूर्ण करने वाले, **२३७. ब्रह्मविद्या कोटिरूपः:=** करोड़ों ब्रह्मविद्याओ के समान ज्ञान स्वरूप, **२३८. शिपिविष्टः:=** सूर्य की किरणों में स्थित रहने वाले, **२३९. शुचिश्रवाः:=** पवित्र यश वाले ॥१५५॥ **२४०. विश्वम्भरः:=** सम्पूर्ण जगत् का पालन पोषण करने वाले, **२४१. तीर्थपादः:=** तीर्थों के समान पवित्र चरण वाले, **२४२. पुण्यश्रवणकीर्तनः:=** जिनके नाम, गुण आदि का श्रवण और कीर्तन पवित्रकारक है, **२४३. आदिदेवः:=** सर्वप्रथम देवता या सर्वप्रधान देवता, **२४४. जगज्जैत्रः:=** विश्व विजयी, **२४५. मुकुन्दः:=** अपने उपासकों को मोक्ष तथा भोग प्रदान करने वाले, **२४६. कालनेमिहा=** कालनेमि नामक राक्षस को मारने वाले ॥१५६॥ **२४७. वैकुण्ठः:=**

वैकुण्ठोऽनन्तमहात्म्यो महायोगेश्वरोत्सवः ।
नित्यतृप्तो लसद्भावो निःशङ्को नरकान्तकः ॥१५७॥
दीनानाथैकशरणं विश्वैकव्यसनापहः । जगत्कृपाक्षमो नित्यं कृपालुः सज्जनाश्रयः ॥१५८॥
योगेश्वरः सदोदीर्णो वृद्धिक्षयविवर्जितः । अधोक्षजो विश्वरेताः प्रजापतिशताधिपः ॥१५९॥
शक्रब्रह्मार्चितपदः शम्भुब्रह्मोर्ध्वधामगः । सूर्यसोमक्षणो विश्वभोक्ता सर्वस्य पारगः ॥१६०॥
जगत्सेतुर्धर्मसेतुधरो विश्वधुरन्धरः ।
निर्ममोऽखिललोकेशो निःसङ्गोऽद्भुत भोगवान् ॥१६१॥
वश्यमायो वश्यविश्वो विष्वक्सेनः सुरोत्तमः ।
सर्वश्रेयः पतिर्दिव्यानर्घ्यभूषणभूषितः ॥१६२॥
सर्वलक्षणलक्षण्यः सर्वदैत्येन्द्रदर्पहा। समस्तदेवसर्वस्वं सर्वदैवतनायकः ॥१६३॥
समस्तदेवकवचं सर्वदेवशिरोमणिः । समस्तदेवतादुर्गः प्रपन्नाशनिपञ्जरः ॥१६४॥

परम धाम स्वरूप, २४८. **अनन्त माहात्म्यः=** जिनकी महिमा का कोई अन्त नहीं है, २४९. **महायोगेश्वरोत्सवः=** योगेश्वरों के लिए जिनका दर्शन उत्सव के समान आह्लादक है, २५०. **नित्यतृप्तः=** अपने आप में ही सदैव तृप्त रहने वाले, २५१. **लसद्भावः=** मनोज्ञ स्वभाव वाले, २५२. **निःशङ्कः=** किसी भी प्रकार की शङ्का और भय नहीं करने वाले, २५३. **नरकान्तकः=** नरकासुर को मारने वाले॥१५७॥ २५४. **दीनानाथैकशरणम्=** दीन तथा अनाथ जीवों के एकमात्र रक्षक, २५५. **विश्वैकव्यसनापह=** सम्पूर्ण जगत् की विपत्ति को एकमात्र विनाश करने वाले, २५६. **जगत् कृपाक्षमः=** सम्पूर्ण जगत् पर कृपा करने में समर्थ, २५७. **नित्यं कृपालुः=** स्वभाव से ही सदैव कृपा करने वाले, २५८. **सज्जनाश्रय=** सज्जनों को शरण देने वाले ॥१५८॥ २५९. **योगेश्वरः=** समस्त योगों तथा उनसे प्राप्त होने वाली सिद्धियों के स्वामी, २६०. **सदोदीर्णः=** सदैव अभ्युदय सम्पन्न, २६१. **वृद्धिक्षय विवर्जितः=** बृद्धि और ह्रास रूपी विकारों से रहित, २६२. **अधोक्षज=** इन्द्रियों के विषयों से ऊपर उठे हुए, २६३. **विश्वरेताः=** जिसके वीर्य से सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है, २६४. **प्रजापतिशताधिनः=** सैकड़ों प्रजापतियों के स्वामी ॥१५९॥ २६५. **शक्रब्रह्मार्चितपदः=** इन्द्र तथा ब्रह्माजी जिनके चरणों की पूजा करते हैं, २६६. **शम्भुब्रह्मोर्ध्वधामगः=** शिवजी तथा ब्रह्माजी के धाम से ऊपर जिनका धाम है उसमें रहने वाले, २६७. **सूर्यसोमेक्षणः=** सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, २६८. **विश्वभोक्ता=** सम्पूर्ण विश्व का उपभोग करने वाले, २६९. **सर्वस्यपारगः=** सबसे ऊपर विराजमान रहने वाले ॥१६०॥ २७०. **जगत्सेतु=** जगत् के समस्त चेतना चेतनों को प्रलय काल में असंकीर्ण तया अपने भीतर रखने वाले, २७१. **धर्मसेतुधरः=** धर्म की मर्यादा का पालन करने वाले, २७२. **विश्वधुरन्धरः=** शेषनाग के रूप में सम्पूर्ण जगत् के भार को अपने ऊपर धारण करने वाले, २७३. **निर्ममः=** आसक्ति मूलक ममता से रहित, २७४. **अखिललोकेशः=** सम्पूर्ण लोकों के स्वामी, २७५. **निःसङ्गः=** आसक्ति रहित, २७६. **अद्भुतभोगवान्=** आश्चर्य जनक भोग सामग्री से सम्पन्न॥१६१॥ २७७. **माया वशः=** माया को अपने वश में रखने वाले, २७८. **वश्यविश्वः=** सम्पूर्ण जगत् को अपने वश में रखने वाले, २७९. **विष्वक्सेनः=** युद्ध के लिए की गयी तैयारी मात्र से दैत्यों की सेना को तितर-वितर कर देने वाले, २८०. **सुरोत्तमः=** देवताओं में सबसे श्रेष्ठ, २८१. **सर्वश्रेयःपतिः=**

समस्तभयहन्नामा भगवान्विष्टरश्रवाः। विभुःसर्वहितोदर्को हतारिः स्वर्गतिप्रदः ॥१६५॥
सर्वदैवतजीवेशो ब्राह्मणादि नियोजकः। ब्रह्मशम्भुपरार्धायुर्ब्रह्मज्येष्ठः शिशुःस्वराट् ॥१६६॥
विराड् भक्तपराधीनः स्तुत्यः स्तोत्रार्थसाधकः।
परार्थकर्त्ता कृत्यज्ञः स्वार्थकृत्यसदोज्झितः ॥१६७॥
सदानन्दः सदाभद्रः सदाक्षान्तः सदाशिवः। सदाप्रियः सदातुष्टःसदापुष्टःसदार्चितः ॥१६८॥
सदापूतः पावनाग्र्यो वेदगुह्यो वृषाकपिः। सहस्रनामा प्रियुगश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्भुजः ॥१६९॥

समस्त कल्याण के साधनो के स्वामी, **२८२. दिव्यानर्घ्य भूषण भूषितः=** दिव्य तथा बहुमूल्य भूषणों से अलंकृत ॥१६२॥ **२८३. सर्वलक्षणलक्षण्यः=** समस्त शुभ लक्षणों से युक्त, **२८४. सर्वदैत्येन्द्रदर्पहा=** सभी बड़े-बड़े दैत्यों के घमण्ड को चूर-चूर करने वाले, **२८५. समस्त देव सर्वस्वम्=** सभी देवताओं के सर्वस्व, **२८६. सर्वदैवतनायकः=** सभी देवताओं के नायक ॥१६३॥ **२८७. समस्त देव कवचम्=** सभी देवताओं की कवच के समान रक्षा करने वाले, **२८८. सर्वदेव शिरोमणिः=** सभी देवताओं में श्रेष्ठ, **२८९. समस्त देवतादुर्गः=** सभी देवताओं की किले के समान रक्षा करने वाले, **२९०. प्रपन्नाशनिपञ्जरः=** शरणागत जीवों के लिए वज्र निर्मित पिञ्जड़े के समान ॥१६४॥ **२९१. समस्तभयहन् नामा=** अपने के प्रताप से भक्तों के सारे भयों को विनष्ट करने वाले, **२९२. भगवान्=** षड्विध ऐश्वर्य सम्पन्न, **२९३. विष्टरश्रवाः=** कुशमुष्टि के समान कान वाले, **२९४. विभुः=** व्यापक, **२९५. सर्वहितोदर्कः=** सबों के कल्याणकारी परिणाम वाले, **२९६. हतारिः=** जिनके सभी शत्रु विनष्ट हो चुके हैं, **२९७. स्वर्गतिप्रदः=** उत्तमगति प्रदान करने वाले ॥१६५॥ **२९८. सर्वदैवतजीवेशः=** सभी देवताओं के जीवन के स्वामी, **२९९. ब्राह्मणादि नियोजकः=** ब्राह्मण आदि सभी वर्णों को अपने-अपने धर्म में लगाने वाले, **३००. ब्रह्मशम्भुपरार्धायुः=** ब्रह्माजी तथा शिवजी की आयु से कई गुना बड़ी आयु वाले, **३०१. ब्रह्मज्येष्ठः=** ब्रह्माजी से भी बड़े, **३०२. शिशुस्वराट्=** बालमुकुन्द रूप से सुशोभित होने वाले॥१६६॥ **३०३. विराट्=** सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमय विराट् रूप धारण करने वाले, **३०४.** भक्तों के प्रेम के कारण उनके अधीन रहने वाले, **३०५. स्तुत्यः=** स्तुति करने योग्य, **३०६. स्तोत्रार्थ साधकः=** स्तोत्र के अर्थ को सिद्ध करने वाले, **३०७. परार्थकर्ता=** परोपकार करने वाले, **३०८. कर्तव्यज्ञः=** अपने कर्तव्य को जानने वाले, **३०९. स्वार्थकृत्यसदोज्झितः=** अपने स्वार्थ सिद्धि की सिद्धि के कार्यों को सदा त्यागने वाले ॥१६७॥ **३१०. सदानन्दः=** सर्वदा आनन्द स्वरूप रहने वाले, **३११. सदाभद्रः=** सदा कल्याण स्वरूप रहने वाले, **३१२. सदाशान्तः=** सदैव शान्त रहने वाले, **३१३. सदाशिवः=** सदा कल्याण करने वाले, **३१४. सदाप्रियः=** सर्वदा सबको प्रिय लगने वाले, **३१५. सदातुष्टः=** सदैव सन्तुष्ट रहने वाले, **३१६. सदापुष्टः=** क्षुधा, पिपासा, आधि व्याधि से रहित होने के कारण सदैव पुष्ट रहने वाले, **३१७. सदार्चितः=** सदैव पूजित होने वाले ॥१६८॥ **३१८. सदापूतः=** सदैव पवित्र रहने वाले, **३१९. पावनाग्र्यः=** पवित्र करने वालों में सर्वश्रेष्ठः, **३२०. वेदगुह्य=** वेदों के रहस्य स्वरूप, **३२१. वृषाकपिः=** धर्म को सुदृढ़ रखने वाले भगवान् विष्णु, **३२२. सहस्रनामा=** हजारों नाम वाले, **३२३. प्रियगुः=** जिनको गौए प्रिय है, **३२४. चतुर्मूतिः=** चार व्यूह रूपो को धारण करने वाले अथवा राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चार रूपों में अवतीर्ण होने वाले, **३२५. चतुर्भुजः=** चार भुजाओं वाले ॥१६९॥ **३२६. नारायणः=** नारायण नाम वाले अथवा नित्य जीवों के एकमात्र आश्रय, **३२७.**

नारायणो मञ्जुकेशः सर्वयोगविनिःसृतः ॥१७०॥
वेदसारो यज्ञसारः सामसारस्तपोनिधिः ।
साध्यश्रेष्ठः पुराणर्षिर्निष्ठाशान्तिः परायणम् ॥१७१॥
शिवःत्रिशूलविध्वंसी श्रीकण्ठैकवरप्रदः। नरः कृष्णो हरिर्धर्मनन्दनो धर्मजीवनः ॥१७२॥
आदिकर्त्ता सर्वसत्यः सर्वस्त्रीरत्नदर्पहा। त्रिकालजितकन्दर्प उर्वशीसृण्मुनीश्वरः ॥१७३॥
आद्यः कविर्हयग्रीवः सर्ववागीश्वरेश्वरः । सर्वदेवमयो ब्रह्मगुरुर्वागीश्वरीपतिः ॥१७४॥
अनन्तविद्याप्रभवो मूलाविद्याविनाशकः । सर्वज्ञदो जगज्जाड्यनाशको मधुसूदनः ॥१७५॥
अनेकमन्त्रकोटिशः शब्दब्रह्मैकपारगः । आदिर्विद्वान्वेदकर्त्ता वेदात्मा श्रुतिसागरः ॥१७६॥

मञ्जुकेशः= मनोहर केशों वाले, ३२८. **सर्वयोगविनिःसृतः**= योग के समस्त साधनों को जानने योग्य॥१७०॥ ३२९. **वेदसारः**= वेद के सार स्वरूप ३३०. **यज्ञसारः**= यज्ञों के सार तत्त्व, ३३१. **सामसारः**= सामवेद के सार तत्त्व, ३३२. **तपोनिधिः**= तपस्या के भण्डार नर-नारायण रूप, ३३३. **साध्यश्रेष्ठः**= साध्य देवताओं में श्रेष्ठ, ३३४. **पुराणर्षिः**= सबसे प्राचीन ऋषि भगवान् नारायण, ३३५. **निष्ठा**= निष्ठा स्वरूप, ३३६. **शान्तिः**= शान्ति स्वरूप, ३३७. **परायणम्**= परम प्राप्य स्वरूप ॥१७१॥ ३३८. **शिवः**= कल्याण स्वरूप, ३३९. **त्रिशूल विध्वंशी**= आध्यात्मिक आदि तीनों शूलों को विनष्ट करने वाले, ३४०. **श्रीकण्ठैकवरप्रदः**= भगवान् शिव के एकमात्र वरदान देने वाले, ३४१. **नरः**= बदरिकाश्रम में तपस्या रत नर स्वरूप, ३४२. **कृष्णभगवान**= श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण होने वाले, अथवा भक्तों के मन को आकृष्ट करने वाले, ३४३. **हरिः**= गजेन्द्र की रक्षा करने के लिए प्रकट होकर ग्राह के प्राणों का अपहरण करने वाले, ३४४. **धर्मनन्दनः**= धर्म के पुत्र रूप से अवतीर्ण होने वाले, ३४५. **धर्मजीवनः**= असुरों का विनाश करके धर्म को जीवित रखने वाले ॥१७२॥ ३४६. **आदिकर्ता**= संसार के आदि कारण ब्रह्माजी को भी उत्पन्न करने वाले, ३४७. **सर्वसत्यः**= पूर्णरूप से सत्य स्वरूप, ३४८. **सर्वस्त्रीरत्नदर्पहा**= जितेन्द्रिय होने के कारण सम्पूर्ण सुन्दरियों के दर्प को चूर्ण करने वाले, ३४९. **त्रिकालजितकन्दर्पः**= भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान इन तीनों कालों में कामदेव को परास्त करने वाले, ३५०. **उर्वशीसृक्**= उर्वशी नामक अप्सरा की सृष्टि करने वाले भगवान् नारायण, ३५१. **मुनीश्वरः**= तपस्वी मुनियों में सर्वश्रेष्ठ नर नारायण ॥१७३॥ ३५२. **आद्यः**= आदि पुरुष, ३५३. **कविः**= वेदों के ज्ञाता, ३५४. **हयग्रीवः**= हयग्रीवावतार धारण करने वाले, ३५५. **सर्ववागीश्वरेश्वरः**= समस्त वागीश्वरों के स्वामी, ३५६. **सर्वदेवमयः**= समस्त देवता स्वरूप, ३५७. **ब्रह्मगुरुः**= ब्रह्माजी को वेद का उपदेश देने वाले, ३५८. **वागीश्वरीपतिः**= वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी के स्वामी ॥१७४॥ ३५९. **अनन्तविद्याप्रभवः**= अनन्त विद्याओं की उत्पत्ति स्थान, ३६०. **मूलाविद्याविनाशकः**= संसार बन्ध के कारण भूत अविद्या का विनाश करने वाले, ३६१. **सर्वज्ञदः**= सर्वज्ञता प्रदान करने वाले, ३६२. **जगज्जाड्यनाशकः**= जगत् के अज्ञान को विनष्ट करने वाले, ३६३. **मधुसूदनः**= मधुनामक दैत्य को मारने वाले ॥१७५॥ ३६४. **अनेकमन्त्रकोटीशः**= अनेक करोड़ मन्त्रों के स्वामी, ३६५. **शब्दब्रह्मैकपारगः**= शब्दब्रह्म (वेद-वेदाङ्गों) में एकमात्र पारंगत, ३६६. **आदि विद्वान्**= सर्वप्रथम वेद का ज्ञान प्रकाशित करने वाले, ३६७. **वेदकर्ता**= अपने निःश्वास से वेदों को प्रकट करने वाले, ३६८. **वेदात्मा**= वेदों के सार

ब्रह्मार्थवेदहरणः सर्वविज्ञानजन्मभूः । विद्याराजो ज्ञानमूर्तिर्ज्ञानसिन्धुरखण्डधीः ॥१७७॥
मत्स्यदेवो महाशृङ्गो जगद्बीजवहित्रदृक् । लीलाव्याप्ताखिलाम्भोधिश्चतुर्वेदप्रवर्त्तकः ॥१७८॥
आदिकूर्मोऽखिलाधारस्तृणीकृतजगद्भरः । अमरीकृतदेवौघः पीयूषात्पत्तिकारणम् ॥१७९॥
आत्माधारो धराधारो यज्ञाङ्गो धरणीधरः। हिरण्याक्षहरः पृथ्वीपतिः श्राद्धादिकल्पकः ॥१८०॥
समस्तपितृभीतिघ्नः समस्तपितृजीवनम् । हव्यकव्यैकभुग्घव्यकव्यैकफलदायकः ॥१८१॥
रोमान्तर्लीनजलधिः क्षोभिताशेषसागरः । महावराहो यज्ञघ्नध्वंसको याज्ञिकाश्रयः ॥१८२॥
श्रीनृसिंहो दिव्यसिंहः सर्वानिष्टार्थदुःखहा। एकवीरोऽद्भुतबलो यन्त्रमन्त्रैक भञ्जनः ॥१८३॥
ब्रह्मादिदुःसहज्योतिर्युगान्ताग्न्यतिभीषणः । कोटिवज्राधिकनखो जगद्दुष्प्रेक्ष्यमूर्तिधृत् ॥१८४॥

तत्त्व, **३६९. श्रुतिसागरः=** वैदिक ज्ञान के समुद्र ॥१७६॥ **३७०. ब्रह्मार्थवेदाहरणः=** ह्यग्रीव नामक दैत्य को मारकर ब्रह्माजी के लिए वेदों को लाने वाले, **३७१. सर्वविज्ञानजन्मभूः=** सभी प्रकार के विज्ञानों के उत्पत्ति स्थान, **३७२. विद्याराजो=** सभी विद्याओं के राजा, **३७३. ज्ञानमूर्तिः=** ज्ञान स्वरूप, **३७४. ज्ञानसिन्धुः=** ज्ञान के सागर, **३७५. अखण्डधीः=** संशय विपर्यय आदि के द्वारा कभी खण्डित नहीं होने वाली बुद्धि सम्पन्न ॥१७७॥ **३७६. मत्स्य देवः=** मस्यावतार ग्रहण करने वाले श्रीभगवान, **३७७. महाशृङ्गः=** मत्स्य शरीर में महान् शृङ्ग को धारण करने वाले, **३७८. जगद्बीजवहित्रधृक्=** मत्स्यावतार में जगत् के बीजों को नौका में रखकर उसे अपने सीग में धारण करने वाले, **३७९. लीलाव्याप्ताखिलम्भोधिः=** अपने मत्स्य शरीर से लीला पूर्वक सम्पूर्ण समुद्र में व्याप्त होने वाले, **३८०. ऋग्वेदादि प्रवर्तकः=** ऋग्वेद आदि वेदों के आदि प्रवर्तक ॥१७८॥ **३८१. आदिकूमः=** सर्वप्रथम कच्छपावतार धारण करने वाले, **३८२. अखिलाधारः=** सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आधार, **३८३. तृणीकृत जगद्भरः=** सम्पूर्ण जगत् के भार को तृण के समान समझने वाले, **३८४. अमरीकृत देवौघः=** देव समूह को अमर बना देने वाले, **३८५. पीयूषोत्पत्तिकारणम्=** अमृत उत्पन्न होने के आदि कारण ॥१७९॥ **३८६. आत्माधारः=** अन्य आधारों की अपेक्षा न कर अपने ही आधार पर स्थित रहने वाले, **३८७. धराधरः=** पृथिवी के आधार स्वरूप, **३८८. यज्ञाङ्गः=** यज्ञमय शरीर वाले, **३८९. धरणीधरः=** पृथिवी को वाराहावतार में अपने दाढों पर धारण करने वाले, **३९०. हिरण्याक्षहरः=** हिरणयाक्ष नामक दैत्य को मारने वाले, **३९१. पृथिवीपतिः=** पृथिवी के स्वामी, **३९२. श्राद्धादिकल्पकः=** पितरों के लिए श्राद्ध आदि की व्यवस्था करने वाले ॥१८०॥ **३९३. समस्तपितृभीतिघ्नः=** समस्त पितरों के भय को दूर करने वाले, **३९४. समस्त पितृजीवनम्=** समस्त पितरों के जीवनाधारा, **३९५. हव्यकव्यैकभुक्=** यज्ञ और श्राद्ध के एकमात्र भोक्ता, **३९६. हव्यकव्यैक फलदायकः=** यज्ञ तथा श्राद्ध के एकमात्र फल को प्रदान करने वाले॥१८१॥ **३९७. रोमन्तर्लीनजलधिः=** अपने रोमकूपों में समुद्र को लीन कर लेने वाले महावराह, **३९८. क्षोभिताशेष सागरः=** वाराहावतार में पृथिवी को खोजते हुए सम्पूर्ण समुद्र को क्षुब्ध कर देने वाले, **३९९. महाबराहः=** पृथिवी का उद्धार करने के लिए वाराहातवार धारण करने वाले, **४००. यज्ञघ्नध्वंसकः=** असुरों का विनाश करने वाले, **४०१. याज्ञिकाश्रयः=** यज्ञ करने वालों के आश्रय स्वरूप ॥१८२॥ **४०२. श्रीनृसिंहः=** प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए नृसिंहावतार धारण करने वाले, **४०३. दिव्यसिंहः=** अलौकक सिंह का रूप धारण करने वाले, **४०४. सर्वानिष्टार्थदुःखहा=** सभी प्रकाकर के अनिष्टों और दुःखों को विनष्ट करने

मातृचक्रप्रमथनो महामातृगणेश्वरः । अचिन्त्यामोघवीर्याढ्यः समस्तासुरघस्मरः ॥१८५॥
हिरण्यकशिपुच्छेदी कालः सङ्कर्षणीपतिः । कृतान्तवाहनस्सद्यस्समस्तभयनाशनः ॥१८६॥
सर्वविघ्नान्तकः सर्वसिद्धिदः सर्वपूरकः। समस्तपातकध्वंसी सिद्धिमन्त्राधिकाह्वयः ॥१८७॥
भैरवेशो हरार्तिघ्नः कालकोटिदुरासदः । दैत्यगर्भस्त्राविनामास्फुटद्ब्राह्मण्डगर्जितः ॥१८८॥
स्मृतमात्राखिलत्राताऽद्भुतरूपो महाहरिः ।ब्रह्मचर्यशिरः पिण्डी दिक्पालोऽर्धाङ्गभूषणः॥१८९॥
द्वादशार्कशिरो दामा रुद्रशीर्षैकनूपुरः । योगिनीग्रस्तगिरिजात्राता भैरवतर्जकः ॥१९०॥
वीरचक्रेश्वरोऽत्युग्रो यमारिः कालसंबरः । क्रोधेश्वरो रुद्रचण्डी परिवारादिदुष्टभुक् ॥१९१॥

वाले, ४०५. **एकवीरः**= अद्वितीय वीर, ४०६. **अद्भुतबलः**= अद्भुतबल सम्पन्न, ४०७. **यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनः**= शत्रुओं के यन्त्र मन्त्रों को एक मात्र विनष्ट करने वाले ॥१८३॥ ४०८. **ब्रह्मादिदुःसहज्योतिः**= जिनके दिव्य शरीर की ज्योति ब्रह्मा आदि देवताओं के लिए दु:सह है, ४०९. **युगान्ताग्न्यतिभीषणः**= प्रलय कालीन अग्नि के समान अत्यन्त भयङ्कर श्रीनृसिंह भगवान्, ४१०. **कोटिवज्राधिकनखः**= करोड़ों व्रजों से भी अधिक तीक्ष्ण नखवाले, ४११. **जगद्दुष्प्रेक्ष्यमूर्तिधृत्**= सम्पूर्ण जगत् जिनको कठिनाई से देख सके॥१८४॥ ४१२. **मातृचक्रप्रमथनः**= डाकिनीशकिनी आदि मातृ मण्डल को मथ डालने वाले, ४१३. **महामातृगणेश्वरः**= अपनी शक्ति रूपी दिव्य महामातृगणों के अधीश्वर, ४१४. **अचिन्त्यामोघा वीर्याढ्यः**= कभी व्यर्थ नहीं होने वाले अचिन्त्य पराक्रम से सम्पन्न, ४१४. **समस्तासुरथस्मरः**= समस्त असुरों को अपना ग्रास बनाने वाले ॥१८५॥ ४१५. **हिरण्यकशिपुच्छेदी**= हिरण्यकशिपु नामक दैत्य को मारने वाले, ४१६. **कालः**= असुरों के लिए काल स्वरूप, ४१७. **सङ्कर्षणीपतिः**= संहार करने वाली शक्ति के स्वामी, ४१८. **कृतान्तवाहनः**= काल को अपना वाहन बनाने वाले, ४१९. **सद्यः समस्तभयनाशनः**= शरणागत भक्तों के सारे भयों को शीघ्र विनष्ट करने वाले ॥१८६॥ ४२०. **सर्वविघ्नान्तकः**= सम्पूर्ण विघ्नों का नाश करने वाले, ४२१. **सर्वसिद्धिदः**= सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाले, ४२२. **सर्वपूरकः**= सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले, ४२३. **समस्त पातकध्वंसी**= सभी पापों का विनाश करने वाले, ४२४. **सिद्धिमन्त्राधिकाह्वयः**= अपने नाममात्र से ही समस्त मन्त्रों की सिद्धि प्रदान करने वाले ॥१८७॥ ४२५. **भैरवेशः** सभी भैरवों के स्वामी, ४२६. **हरार्तिघ्नः**= भगवान् शिव की पीड़ा को दूर करने वाले, ४२७. **कालकोटिदुराधर्षः**= करोड़ों कालों के लिए भी दुर्घर्ष, ४२८. **दैत्य गर्भ स्त्राविनाम**= जिनका नाम ही सुनकर दैत्यो के पत्नियों के गर्भ गिर जाते है ऐसे भगवान् नृसिंह, ४२९. **स्फुटब्रह्माण्डगर्जितः**= जिनकी गर्जना सुनकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड फटने लगता है ॥१८८॥ ४३०. **स्मृतमात्रखिलत्राता**= स्मरण करने मात्र से सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले, ४३१. **अद्भुतरूपः**= अद्भुत रूप वाले भगवान् नृसिंह, ४३२. **महाहरिः**= महान् सिंह का रूप धारण करने वाले, ४३३. **ब्रह्मचर्य शिरः पिण्डी**= अपने शिर में ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले, ४३४. **दिक्पालः**= दिक्पाल स्वरूप, ४३५. **अर्धाङ्ग भूषणः**= अपने आधे अङ्ग में आभूषण धारण करने वाले भगवान् नृसिंह ॥१८९॥ ४३६. **द्वादशार्कशिरोदामा**= अपने शिर में द्वादश सूर्य के तेज को धारण करने वाले, ४३७. **रुद्रशीषैक नूपुर**= जिनको प्रणाम करते समय रुद्र का शिर एक नूपुर के समान सुशोभित होता है, ४३८. **योगिनीग्रस्तगिरिजात्राता**= योगिनियों के चङ्गुल में फसी हुयी पार्वतीजी की रक्षा करने वाले, ४३९. **भैरवतर्जकः**= भैरवों को डाँटने वाले ॥१९०॥ ४४०. **वीरचक्रेश्वरः**= वीरमण्डल के स्वामी, ४४१. **अत्युग्रः**= अत्यन्त भयङ्कर, ४४२. **यमारिः**= यमराज के

सर्वाक्षोभ्यो मृत्युमृत्युः कालमृत्युनिवर्त्तकः । असाध्यसर्वरोगघ्नः सर्वदुर्ग्रहसौम्यकृत् ॥१९२॥
गणेशकोटिदर्पघ्नो दुःसहाशेषगोत्रहा । देवदानवदुर्दर्शो जगद्भयदभीषणः ॥१९३॥
समस्तदुर्गतित्राता जगद्भक्षकभक्षकः । उग्रेशोऽम्बरमार्जारः कालमूषकभक्षकः ॥१९४॥
अनन्तायुधदोर्दण्डी नृसिंहो वीरभद्रजित् । योगिनीचक्रगुह्येशः शक्रारिपशुमांसभुक् ॥१९५॥
रुद्रो नारायणो मेषरूपशङ्करवाहनः । मेषरूपशिवत्राता दुष्टशक्तिसहस्रभुक् ॥१९६॥
तुलसीवल्लभो वीरो वामाचारोऽखिलेष्टदः । महाशिवः शिवारूढो भैरवैककपालधृत् ॥१९७॥
झिल्लीचक्रेश्वरः शक्रदिव्यमोहनरूपदः । गौरीसौभाग्यदो मायानिधिर्मायाभयापहः ॥१९८॥
ब्रह्मतेजोमयोब्रह्म श्रीमयश्च त्रयीमयः । सुब्रह्मण्यो बलिध्वंसी वामनोऽदितिदुःखहा॥१९९॥

शत्रु, ४४३. **कालसंबरः=** काल को आच्छादित करने वाले, ४४४. **क्रोधेश्वरः=** क्रोध पर शासन करने वाले, ४४५. **रुद्रचण्डीपरिवारादिदुष्टभुक्=** रुद्र तथा चण्डी के पार्षदों में रहने वाले दुष्टों के भक्षक॥१९१॥ ४४६. **सर्वाक्षोभ्यः=** किसी के भी द्वारा विचलित नहीं किए जा सकने वाले, ४४७. **मृत्युमृत्युः=** मृत्यु को भी मारने वाले, ४४८. **कालमृत्यु निवर्तकः=** काल तथा मृत्यु का निवारण करने वाले, ४४९. **असाध्य रोगघ्नः=** अपने भक्तों के असाध रोगों को भी विनष्ट करने वाले, ४५०. **सर्वदुर्ग्रह सौम्य=** समस्त दुष्ट ग्रहों को शान्त करने वाले ॥१९२॥ ४५१. **गणेशकोटिदर्पघ्नः=** करोड़ों गणपतियों के अभिमान को चूर करने वाले, ४५२. **दुःसहसशेषगोत्रहा=** समस्त दुःसह शत्रुओं के वंश को मारने वाले, ४५३. **देवदानवदुर्दर्शः=** ऐसे नृसिंह भगवान् जिनको देखने में देवताओं और दानवों को भी कठिनाई होती है, ४५४. **जगदभयदभीषणः=** संसार को भयभीत करने वाले असुरों को भी भयभीत करने वाले॥१९३॥ ४५५. **समस्तदुर्गतित्राता=** सम्पूर्ण दुर्गतियों से उद्धार करने वाले, ४५६. **जगद्भक्षकभक्षकः=** जगत् का भक्षण करने वाले काल का भी भक्षण करने वाले, ४५७. **उग्रेशः=** उग्रशक्तियों का प्रशासन करने वाले, ४५८. **अम्बरमार्जरः=** आकाशरूपी बिलाव, ४५९. **कालमूषक भक्षकः=** काल रूपी चूहे को खाने वाले ॥१९४॥ ४६०. **अनन्तायुधदोर्दण्डी=** अपनी अनेक भुजाओं को ही आयुध के रूप में धारण करने वाले, ४६१. **नृसिंहः=** नृसिंह रूप धारण करने वाले, ४६२. **वीरभद्रजीत्=** वीरभद्र को परास्त करने वाले, ४६३. **योगिनीचक्र गुत्येशः=** योगिनी मण्डल के रहस्यों के ज्ञाता, ४६४. **शक्रारिपशुमांसभुक्=** इन्द्र के शत्रुरूपी असुर पशुओं का भक्षण करने वाले ॥१९५॥ ४६५. **रुद्रः=** रुद्रशरीर वाले, ४६६. **नारायणः=** नित्य जीव समूह के लिए एकमात्र आश्रय, ४६७. **मेष रूपशङ्कर वाहनः=** मेष रूपधारी शङ्करजी को अपना वाहन बनाने वाले मेष रूप शिव त्राता मेष रूपधारी शिवजी की रक्षा करने वाले, तुलसी के प्रियतम, ४६८. **दुष्टशक्तिसहस्रभुक्=** हजारों दुष्टशक्तियों का विनाश करने वाले॥१९६॥ ४६९. **तुलसीवल्लभः=** तुलसी के प्रियतम, ४७०. **वीरः=** शूरवीर, ४७१. **वामाचाराखिलेष्टदः=** सुन्दर आचरण करने वालों को सम्पूर्ण अभिप्रेत वस्तुओं को प्रदान करने वाले, ४७२. **महाशिवः=** अत्यन्त मङ्गल स्वरूप, ४७३. **शिवारूढः=** ध्यानस्थ शिवजी के हृदय कमल में विद्यमान, ४७४. **भैरवैककपालधृक्=** रुद्ररूप धारण कर अपने हाथ में एक भयंकर कपाल धारण करने वाले ॥१९७॥ ४७५. **झिल्ली चक्रेश्वरः=** झींगुर समूह के स्वामी, ४७६. **शक्रदिव्यमोहन रूपदः=** इन्द्र को दिव्य तथा मोहक रूप प्रदान करने वाले, ४७७. **गौरी सौभाग्यदः=** श्रीपार्वतीजी को सौभाग्य प्रदान करने वाले, ४७८. **मायानिधिः=** माया

उपेन्द्रो नृपतिर्विष्णुः कश्यपान्वयमण्डनः । बलिस्वराज्यदः सर्वदेवविप्रान्नदोऽच्युतः ॥२००॥
उरुक्रमस्तीर्थपादस्त्रिपदस्थस्त्रिविक्रमः । व्योमपादःस्वपादाम्भः पवित्रितजगत्त्रयः ॥२०१॥
ब्रह्मेशाद्यभिवन्द्याङ्घ्रिर्द्रुतधर्माङ्घ्रिधावन । अचिन्त्याद्भुतविस्तारो विश्ववृक्षोमहाबलः ॥२०२॥
राहुमूर्धापराङ्गच्छिद् भृगुपत्नीशिरोहरः । पापात्रस्तः सदापुण्यो दैत्याशानित्यखण्डनः ॥२०३॥
पूरिताखिलदेवाशो विश्वार्थैकावतारकृत् ।
स्वमायानित्यगुप्तात्मा भक्तचिन्मामणिः सदा ॥२०४॥
वरदः कार्तवीर्यादिराजराज्यप्रदोऽनघः । विश्वश्लाघ्यामिताचारो दत्तात्रेयो मुनीश्वरः ॥२०५॥

के भण्डार, ४७९. **मायाभयापहः**:= माया के भय को दूर करने वाले, ॥१९८॥ ४८०. **ब्रह्मतेजोमयः**:= ब्रह्मतेज स्वरूप, ४८१. **ब्रह्मश्रीमयः**:= ब्राह्मणोचित शोभा से सम्पन्न भगवान् वामन, ४८२. **त्रयीमयः**:= ऋग् यजु: एवं साम वेद स्वरूप, ४८३. **सुब्रह्मण्यः**:= ब्राह्मणत्व से सम्पन्न, ४८४. **बलिध्वंसी**= राजा बलि को स्वर्ग से हटाने वाले, ४८५. **वामनः**:= वामनावतार धारण करने वाले, ४८६. **अदितिदुःखहा**= देवमाता आदिति के दुःख को दूर करने वाले ॥१९९॥ ४८७. **उपेन्द्रः**:= इन्द्र के छोटे भाई, ४८८. **नृपतिः**:= राजा, ४८९. **विष्णुः**:= द्वादशादित्यों में से एक, ४९०. **कश्यपान्वयमण्डनः**:= महर्षि कश्यप के वंश को अलंकृत करने वाले, ४९१. **बलिस्वाराज्यदः**:= राजा वलि को अगले जन्म में इन्द्र बनाकर स्वर्ग का राज्य प्रदान करने वाले, ४९२. **सर्व देव विप्रान्नदः**:= सभी देवताओं तथा ब्राह्मणों को अन्न देने वाले, ४९३. **अच्युतः**:= अपनी महिमा से कभी च्युत नहीं होने वाले ॥२००॥ ४९४. **उरुक्रमः**:= राजा बलि के यज्ञ में विराट् रूप धारण करके लम्बे डग से त्रैलोक्य को नापने वाले, ४९५. **तीर्थपादः**:= अपने चरणोदक से गङ्गाजी को प्रकट करने के कारण तीर्थपाद, ४९६. **त्रिपदस्थः**:= तीन स्थानों पर पैर रखने वाले, ४९७. **त्रिविक्रमः**:= तीन बड़े-बड़े डग वाले, ४९८. **व्योमपादः**:= सम्पूर्ण आकाश को अपने चरणों से नापने वाले, ४९९. **स्वपादाम्भःपवित्रित जगत्त्रयः**:= अपने चरणोदक गङ्गाजी से त्रिलोक को पवित्र बनाने वाले ॥२०१॥ ५००. **ब्रह्मेशाद्यभिवन्द्याङ्घ्रिः**:= ब्रह्माजी तथा शङ्करजी आदि देवताओं द्वारा वन्दनीय चरण कमल वाले, ५०१. **द्रुतधर्मा**= शीघ्रता पूर्वक धर्म की रक्षा करने वाले, ५०२. **अह्रिधावनः** सर्प की भाँति तेज दौड़ने वाले, ५०३. **अचिन्त्याद्भुतविस्तारः**:= अचिन्त्य तथा अद्भुत विस्तार वाले, ५०४. **विश्ववृक्षः**:= संसार रूपी वृक्ष, ५०५. **महाबलः**:= महाबलवान् महान् वल से सम्पन्न ॥२०२॥ ५०६. **राहुमूर्धापराङ्गछिद**= राहु के शिर और घड़ को काटकर अलग-अलग करने वाले, ५०७. **भृगुपत्नी शिरोहरः**:= महर्षि भृगु की पत्नी ख्याति देवी के शिर को काट देने वाले, ५०८. **पापात्रस्तः**:= महर्षि भृगु की पत्नी को मारने के कारण पाप से डरने वाले, ५०९. **सदापुण्यः**:= सर्वदा पवित्र रहने वाले, ५१०. **दैत्याशनित्य खण्डनः**:= धर्म विरोधी दैत्यों की आशा को सदा खण्डित करने वाले ॥२०३॥ ५११. **पूरिताखिलदेवाशाः**:= देवताओं की सारी आशाओं को पूर्ण करने वाले, ५१२. **विश्वार्थैकावतारधृत**= केवल विश्व का कल्याण करने के लिए अनेक अवतारों को धारण करने वाले, ५१३. **स्वमायानित्यगुप्तात्मा**= अपनी माया से अपने स्वरूप को छिपाये रखने वाले, ५१४. **भक्तचिन्तामणिः**:= सदैव भक्तों की कामनाओं को चिन्तामणि के समान पूर्ण करने वाले ॥२०४॥ ५१५. **वरदः**:= अपने उपासकों को वरदान देने वाले, ५१६. **कार्तवीर्यादिराजाराज्यदः**:= कृतवीर्य के पुत्र सहस्रार्जुन आदि राजाओं को राज्य देने वाले, ५१७. **अनघः**:= स्वभावतः पापरहित, ५१८. **विश्वश्लाघ्यः**:= सम्पूर्ण विश्व के द्वारा प्रशंसनीय,

पराशक्ति सदाश्लिष्टो योगानन्दः सदोन्मदः ।
समस्तेन्द्रारितेजोहृत्परमामृतपद्मपः ॥२०६॥
अनसूयागर्भरत्नं भोगमोक्षसुखप्रदः । जमदग्निकुलादित्यो रेणुकाद्भुतशक्तिकृत् ॥२०७॥
मातृहत्यादिनिर्लेपः स्कन्दजिद्विप्रराज्यदः । सर्वक्षत्रान्तकृद्वीरदर्पहा कार्त्तवीर्यजित् ॥२०८॥
सप्तदीपवतीदाता शिवार्चकयशःप्रदः । भीमः परशुरामश्च शिवाचार्यैकविश्वभुक् ॥२०९॥
शिवाखिलज्ञानकोशो भीष्माचार्योऽग्निदैवतः । द्रोणाचार्यगुरुर्विश्वजैत्रधन्वाकृतान्तजित् ॥२१०॥
अद्वितीयपतोमूर्त्तिर्ब्रह्मचर्यैकदक्षिणः । मनुः श्रेष्ठः सतांसेतुर्महीयान्वृषभो विराट् ॥२११॥
आदिराजः क्षितिपिता सर्वरत्नैकदोहकृत् । पृथुर्जन्माद्येकदक्षो गीःश्रीःकीर्त्तिस्वयं वृतः ॥२१२॥
जगद्वृत्तिप्रदश्चक्रवर्त्तिश्रेष्ठोऽद्वयास्त्रधृत् । सनकादिमुनिप्राप्य भगवद्भक्तिवर्धनः ॥२१३॥

---

५१९. अमिताचारः= अपरिमित सदाचारों का पालन करने वाले, **५२०. दत्तात्रेयः=** दत्तात्रेय के रूप में अवतीर्ण होने वाले, **५२१. मुनीश्वरः=** मुनियों के स्वामी ॥२०५॥ **५२२. पराशक्ति सदाश्लिष्टः=** सदैव पराशक्ति से सम्पन्न रहने वाले, **५२३. योगानन्दः सदोन्मदः=** योगानन्द से सदैव आत्मविभोर रहने वाले, **५२४. समस्तेन्द्रारितेजोहन=** इन्द्र के सभी शत्रुओं के तेज को विनष्ट करने वाले, **५२५. परमामृत पद्मपः=** परम अमृत रूपी कमल के रस का पान करने वाले ॥२०६॥ **५२६. अनसूयागर्भरत्नम्=** महर्षि अत्रिकी पत्नी अनसूया के पुत्रों में सबसे श्रेष्ठ, **५२७. भोगमोक्ष सुखप्रदः=** अपने भक्तों को भोग तथा मोक्ष का सुख देने वाले, **५२८. जमदग्निकुलादित्यः=** महर्षि जमदग्नि के वंश को परशुरामजी के रूप में अवतीर्ण होकर प्रकाशित करने वाले, **५२९. रेणुकाद्भुत शक्तिकृत्=** रेणुका में अद्भुत शक्ति उत्पन्न करने वाले ॥२०७॥ **५३०. मातृहत्यादिनिर्लेपः=** अपनी माता की हत्या जन्य पाप से निर्लिप्त रहने वाले, **५३१.** कार्तिकेयजी को जीतने वाले, **५३२. विप्रराज्यदः=** ब्राह्मण को राज्य प्रदान करने वाले, **५३३. सर्वक्षत्रान्त कृत=** सभी क्षत्रियों का नाश करने वाले, **५३४. वीरदर्पहा=** वीरों के अभिमान को विनष्ट करने वाले, **५३५. कार्तवीर्यजित्=** सहस्रार्जुन को परास्त करने वाले ॥२०८॥ **५३६. सप्तदीपवती दाता=** सातों दीपों वाली पृथिवी का दान करने वाले, **५३७. शिवार्चकयशःप्रदः=** शिवजी की पूजा करने वाले को यश प्रदान करने वाले, **५३८. भीमः=** भयङ्कर पराक्रम सम्पन्न, **५३९. परशुरामः=** परशुरामजी के रूप में अवतीर्ण होने वाले, **५४०. शिवाचार्यैक विश्वभूः=** भगवान् शिव को अपना गुरु वनाकर सारी विद्या सीखने वाले परशुरामजी ॥२०९॥ **५४१. शिवाखिलज्ञानकोशः=** शिवजी से ही सम्पूर्ण ज्ञान का कोष प्राप्त करने वाले परशुरामजी, **५४२. भीष्माचार्यः=** भीष्म पितामह के आचार्य परशुरामजी, **५४३. अग्निदैवतः=** अग्नि देवता के उपासक, **५४४. द्रोणाचार्यगुरुः=** द्रोणाचार्य के गुरु परशुरामजी, **५४५. विश्वजैत्रधन्वा=** विश्व विजयी धनुष धारण करने वाले, **५४६. कृतान्तजित्=** काल को भी परास्त करने वाले ॥२१०॥ **५४७. अद्वितीय तपोमूर्तिः=** अद्वितीयतपस्या करने वाले, **५४८. ब्रह्मचर्यैकदक्षिणः=** ब्रह्मचर्य पालन में एकमात्र दक्ष, **५४९. मनुश्रेष्ठः=** मनुष्यों में श्रेष्ठ महाराज पृथुरूप, **५५०. सतांसेतुः=** सेतु के समान सज्जन पुरुषों की मर्यादा का पालन करने वाले, **५५१. महीयान्=** वड़े-से-बड़े महापुरुष, **५५२. वृषभः=** प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण करने वाले श्रेष्ठ राजा, **५५३. विराट्=** तेजस्वी राजा, ॥२११॥ **५५४. आदिराजः=** सर्वप्रथम राजा, **५५५. क्षितिपिता=** पृथिवी को

वर्णाश्रमादिधर्माणां कर्त्ता वक्ता प्रवर्त्तकः। सूर्यवंशध्वजो रामो राघवः सद्‌गुणार्णवः ॥२१४॥
काकुत्स्थो वीरराड्रजा राजधर्मधुरन्धरः। नित्यस्वस्थाश्रयःसर्वभद्रग्राही शुभैकदृक् ॥२१५॥
नररत्नं रत्नगर्भो धर्माध्यक्षो महानिधिः। सर्वश्रेष्ठाश्रयः सर्वशास्त्रार्थग्रामवीर्यवान् ॥२१६॥
जगद्वशो दाशरथिः सर्वरत्नाश्रयो नृपः। समस्तधर्मसूः सर्वधर्मद्रष्टाऽखिलाघहा ॥२१७॥
अतीन्द्रो ज्ञानविज्ञानपारदश्च क्षमाम्बुधिः। सर्वप्रकृष्टशिष्टेष्टोहर्षशोकाद्यनाकुलः ॥२१८॥
पित्राज्ञात्यक्तसाम्राज्यः सम्पन्नोदयनिर्भयः। गुहादेशार्पितैश्वर्यः शिवस्पर्धाजटाधरः ॥२१९॥

अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार करने वाले, ५५६. **सर्वरत्नैकदोहकृतः=** गोरूप धारिणी पृथिवी से सभी रत्नों का दोहन करने वाले महाराज पृथु, ५५७. **पृथुः=** अपने यश के कारण प्रख्यात पृथु नामक राजा, ५५८. **जन्माद्येक दक्षः=** सृष्टि, स्थिति तथा संहार करने में एकमात्र दक्ष, ५५९. **गीः श्रीकीर्ति स्वयंवृतः=** वाणी, लक्ष्मी तथा कीर्ति के द्वारा स्वयं वरण किए गये ॥२१२॥ ५६०. **जगद्वृत्तिपदः=** संसार को जीविका प्रदान करने वाले, ५६१. **चक्रवतिश्रेष्ठः=** चक्रवर्ती राजाओ में श्रेष्ठ, ५६२. **अद्वयास्त्रधृक्=** अद्वितीय अस्त्र को धारण करने वाले, ५६३. **सनकादिमुनिप्रप्य भगवद्भक्ति वर्धनः=** सनकादिक मुनियों से प्राप्त होने वाली भगवद्भक्ति का विस्तार करने वाले ॥२१३॥ ५६४. **वर्णाश्रमादिधर्माणांकर्ता=** वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों को बनाने वाले, ५६५. **वक्ता=** वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों का उपदेश करने वाले, ५६६. **प्रवर्तकः=** उपर्युक्त धर्मों का प्रचार करने वाले, ५६७. **सूर्यवंशध्वजः=** सूर्यवंश की कीर्ति पताका को फहराने वाले भगवान् श्रीराम, ५६८. **रामः=** श्रीरामचन्द्रजी के रूप में अवतीर्ण होने वाले, ५६९. **राघवः=** रघुकुल में जन्म लेने वाले, ५७०. **सद्गुणर्णवः=** सद्‌गुणों के सागरा ॥२१४॥ ५७१. **काकुत्स्थः=** महराज ककुत्स्थ के वंश में उत्पन्न होने वाले, ५७२. **वीरराजार्यः=** वीर राजाओं में श्रेष्ठ, ५७३. **राजधर्मधुरन्धरः=** राजधर्म का पालन करने वाले, ५७४. **नित्यस्वस्थाश्रयः=** सदैव अपनी आत्मा में ही स्थित रहने वाले महात्माओं के आश्रय, ५७५. **सर्वभद्रग्राही=** सभी कल्याणों को प्राप्त करने वाले, ५७६. **शुभैकदृक=** सदा शुभ की ओर ही दृष्टि रखने वाले ॥२१५॥ ५७७. **नररत्नम्=** मनुष्यों में रत्न के समान श्रेष्ठ,५७८. **रत्नगर्भः=** अपने भीतर रत्न रूपी सद्गुणों को रखने वाले, ५७९. **धर्माध्यक्षः=** धर्म के स्वामी, ५८०. **महानिधिः=** सम्पूर्ण पृथिवी के सम्राट् होने के कारण बहुत बड़े कोष वाले, ५८१. **सर्वश्रेष्ठाश्रयः=** सर्वाधिक श्रेष्ठ आश्रय, ५८२. **सर्वशस्त्रास्त्रग्राम वीर्यवान्=** सभी शस्त्रास्त्र समूह की शक्ति से सम्पन्न ॥२१६॥ ५८३. **जगदीशः=** जगत् के स्वामी, ५८४. **दाशरथिः=** महाराज दशरथ के पुत्र, ५८५. **सर्वरत्नाश्रयानृपः=** सभी रत्नों के आश्रयभूत राजा, ५८६. **समस्त धर्मसूः=** सभी धर्मों को उत्पन्न करने वाले, ५८७. **सर्वधर्मद्रष्टा=** सभी धर्मो को जानने वाले, ५८८. **अखिलाघहा=** सभी पीड़ाओं को दूर करने वाले ॥२१७॥ ५८९. **अतीन्द्रः=** इन्द्र से भी अधिक ऐश्वर्य सम्पत्र, ५९०. **ज्ञानविज्ञान पारद्रष्टा=** सभी ज्ञान एवं विज्ञानों में पारङ्गत, ५९१. **क्षमाम्बुधिः=** क्षमा के सागर, ५९२. **सर्वप्रकृष्टः=** सबसे श्रेष्ठ, ५९३. **शिष्टेष्टः=** शिष्ट पुरुषों के इष्ट देव, ५९४. **हर्षशोकाद्यनाकुलः=** हर्ष और शोक के कारण कभी विचलित नहीं होने वाले ॥२१८॥ ५९५. **पित्राज्ञात्यक्तसाम्राज्यः=** अपने पिता की आज्ञा प्राप्त करके साम्राज्य का परित्याग करने वाले, ५९६. **सपत्नोदय निर्भयः=** शत्रुओं की उन्नति से भयभीत नहीं होने वाले, ५९७. **गुहादेशार्पितैश्वर्यः=** वनवास काल में कन्दराओं को ऐश्वर्य समर्पित करने

चित्रकूटाप्तरत्नाद्रिर्जगदीशो वनेचरः । यथेष्टामोघसर्वास्त्रो देवेन्द्रतनयाक्षिहा ॥२२०॥
ब्रह्मेन्द्रादिनतैषीको मारीचघ्नो विराधहा । ब्रह्मशापहताशेषदण्डकारण्यपावनः ॥२२१॥
चतुर्दशसहस्रोग्ररक्षोघ्नैकशरैकधृत् । खरारिस्त्रिशिरोहन्ता दूषणघ्नो जनार्दनः ॥२२२॥
जटायुषोऽग्निगतिदोऽगस्त्यसर्वस्वमन्त्रराट् । लीलाधनुः कोट्यपास्तदुन्दुभ्यस्थिमहाचयः ॥२२३॥
सप्ततालव्याधाकृष्टध्वस्तपातालदानवः । सुग्रीवराज्यदो हीनमनसैवाऽभयप्रदः ॥२२४॥
हनुमद्रुद्रमुख्येश समस्तकपिदेहभृत् । सनागदैत्यबाणैकव्याकुलीकृतसागरः ॥२२५॥
सम्लेच्छकोटिबाणैकशुष्कनिर्दग्धसागरः । समुद्राद्भुतपूर्वैकबद्धसेतुर्यशोनिधिः ॥२२६॥
असाध्यसाधको लङ्कासमूलोत्कर्षदक्षिणः । वरदृप्तजगच्छल्यपौलस्त्यकुलकृन्तनः ॥२२७॥

वाले, **५९८. शिवस्पर्धाजटाधरः=** शिवजी की जटाओं से स्पर्धा करने वाली जटा को धारण करने वाले॥२१९॥ **५९९. चित्रकूटाप्तरत्नाद्रिः=** चित्रकूट को अपना निवासस्थान बनाकर उसको रत्नमय पर्वत की महत्ता प्रदान करने वाले, **६००. वनेचरः=** वन में विचरण करने वाले, **६०१. यथेष्टामोघसर्वास्त्रः=** जिनके सभी अस्त्र उनकी इच्छा के अनुसार चलने वाले और अमोघ हैं, **६०२. देवेन्द्रतनयाक्षिहा=** इन्द्र के पुत्र जयन्त की एक आँख फोड़ने वाले ॥२२०॥ **६०३. ब्रह्मेन्द्रादिनतैषीकः=** जिनके सींक के बाण को ब्रह्मा तथा इन्द्र ने भी मस्तक झुकाया, **६०४. मारीचघ्नः=** मायामय मृग का रूप धारण करने वाले मारीच का वध करने वाले **६०५. विराधहा=** विराध को मारने वाले, **६०६. ब्रह्मशापहताशेषदण्डकारण्यपावनः=** शुक्राचार्य के शाप से विनष्ट हुए दण्डकरण्य को अपने निवास के द्वारा पवित्र बनाने वाले ॥२२१॥ **६०७. चतुर्दशसहस्रोग्ररक्षोघ्नैक शरैकधृक्=** चौदह हजार भयङ्कर राक्षसों को मारने की शक्ति से युक्त बाण को धारण करने वाले, **६०८. खरारिः=** खर नामक राक्षस के शत्रु, **६०९. त्रिशरोहन्ता=** त्रिशिरा नामक राक्षस के शिर को काटने वाले, **६१०. दूषणघ्नः=** दूषण नामक राक्षस को मारने वाले, **६११. जनार्दनः=** भक्तगण जिनसे अभ्युदय एवं मुक्ति रूपी परमपुरुषार्थ की याचना करते हैं ॥२२२॥ **६१२. जटायुषोऽग्निगतिदः=** जटायु का दाह संस्कार करके उन्हें उत्तम गति प्रदान करने वाले, **६१३. अगस्त्य सर्वस्व मन्त्रराट्=** जिनका नाम महर्षि अगस्त्य का सर्वस्व और मन्त्रों का राजा है, **६१४. लीलाधनुषकोट्यपारस्तदन्दुभ्यस्थिमहाचलः=** बिना किसी प्रयास के ही अपने धनुष के एक नोक से दुन्दुभि नामक राक्षस की हड्डी के पर्वत को दूर फेंक देने वाले ॥२२३॥ **६१५. सप्ततालव्यधाकृष्टध्वस्तपातालदानवः=** सात ताल वृक्षों के बेध से आकृष्ट होकर आये हुए पाताल के दानवों का विनाश करने वाले, **६१६. सुग्रीव राज्यदः=** सुग्रीव को राज्य देने वाले, **६१७. अहीनसनसैवाभयप्रदः=** उदारचित्त से अभय प्रदान करने वाले ॥२२४॥ **६१८. हनुमद्रुद्रमुख्येशः=** हनुमानजी और शिवजी के मुख्य स्वामी, **६१९. समस्त कपिदेहभृत=** सभी वानरों के शरीर का पोषण करने वाले, **६२०. सनागदैत्यबाणैकव्याकुलीकृत सागरः=** एक ही बाण से नागों और दैत्यों से युक्त समुद्र को क्षुब्ध बना देने वाले ॥२२५॥ **६२१. सम्लेच्छकोटिबाणैकशुष्कनिर्दग्धसागरः=** करोड़ों म्लेच्छों से युक्त सागर को एक ही बाण से शुष्क बनाकर जला डालने वाले, **६२२. समुद्राद्भुत पूर्वैकबद्धसेतुयशोनिधिः=** समुद्र पर सबसे पहले एक अद्भुत सेतु को बनाने वाले ॥२२६॥ **६२३. असाध्य साधकः=** असम्भव को भी सम्भव बनाने वाले, **६२४. लङ्कासमूलोत्कर्ष दक्षिणः=** लङ्का को जड़ मूल से विनष्ट करने में दक्ष, **६२५. वरदृप्तजगच्छल्यपौलस्त्यकुलकृन्तनः=** वरदान पाकर अभिमान से भरे हुए संसार के कण्टक रावण

रावणिघ्नः प्रहस्तच्छित्कुम्भकर्णभिदुग्रहा । रावणैकशिरश्छेत्ता निःशङ्केन्द्रैकराज्यदः ॥२२८॥
स्वर्गास्वर्गत्वविच्छेदी देवेन्द्रानिन्द्रताहरः । रक्षोदेवत्वहद्धर्माधर्मत्वघ्नः पुरुष्टुतः ॥२२९॥
नतिमात्रदशास्यारिर्दत्तराज्यविभीषणः । सुधावृष्टिमृताशेषस्वसैन्योज्जीवनैककृत् ॥२३०॥
देवब्राह्मणनामैकधाता सर्वामरार्चितः। ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवृन्दार्पितसतीप्रियः ॥२३१॥
अयोध्याखिलराजाग्यः सर्वभूतमनोहरः । स्वामितुल्यकृपादण्डो हीनोत्कृष्टैकसत्प्रियः ॥२३२॥
श्वापक्ष्यादिन्यायदर्शी हीनार्थाधिकसाधकः। वधव्याजानुचितकृत्तारकोऽखिलतुल्यकृत् ॥२३३॥
पार्वत्याधिक्यमुक्तात्मा प्रियात्यक्तः स्मरारिजित् ।
साक्षात्कुशलवच्छद्मन्द्राविततोऽपराजितः ॥२३४॥

का वंश सहित विनाश करने वाले ॥२२७॥ ६२६. **रावणिघ्नः=** इन्द्रजित् को मरने वाले, ६२७. **प्रहस्तछित्=** प्रहस्त का शिरकाटने वाले, ६२८. **कुम्भकर्णभित्=** कुम्भकर्ण को मरने वाले, ६२९. **उग्रहा=** भयङ्कर राक्षसों का वध करने वाले, ६३०. **रावणैक शिरच्छेत्ता=** रावण के शिर को एकमात्र काटने वाले, ६३१. **निःशंकेन्द्रैकराज्यदः** निःशङ्कहोकर इन्द्र को एकमात्र राज्य प्रदान करने वाले ॥२२८॥ ६३२. **स्वर्गास्वर्गत्वविच्छेदी=** स्वर्ग की अस्वर्गता को मिटाने वाले, ६३३. **देवेन्द्रानिन्द्राताहरः=** देवराज इन्द्र की अनिन्द्रता को दूर करने वाले, ६३४. **रक्षोदेवत्वहृत्=** राक्षसगण जो देवताओं को हटाकर देवता बन गये थे उनके देवत्व को दूर करने वाले, ६३५. **धर्माधर्मत्वघ्नः=** धर्म की अधर्मता का नाश करने वाले, ६३६. **पुरुष्टुतः=** बहुत से लोगों द्वारा स्तुति किए जाने वाले ॥२२९॥ ६३७. **नतिमात्रदशास्यारिः=** मृत्युकाल पर्यन्त ही रावण को अपना शत्रु मानने वाले, ६३८. **दत्तराज्यविभीषणः=** विभीषणजी को लङ्का का राज्य प्रदान करने वाले, ६३९. **सुधावृष्टिमताशेष स्वसैन्योज्जीवनैककृत्=** इन्द्र द्वारा अमृत की वृष्टि कराकर मरे हुए अपने सैनिकों को जीवन प्रदान करने वाले ॥२३०॥ ६४०. **देवब्राह्मणनामैकधाता=** देवताओं और ब्राह्मणों के नाम के एकमात्र रक्षक, ६४१. **सर्वामरार्चितः=** सभी देवताओं द्वारा पूजित होने वाले, ६४२. **ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवृन्दादि समर्पित सतीप्रियः=** ब्रह्मा, सूर्य, इन्द्र तथा रुद्र आदि देवसमूह के द्वारा शुद्ध प्रमाणित करके समर्पित की गयी सती सीताजी के प्रियतम ॥२३१॥ ६४३. **अयोध्याखिलराजाग्र्यः=** अयोध्या के समस्त राजाओं में श्रेष्ठ, ६४४. **सर्वभूतमनोहरः=** समस्त जीवों के मन को अपनी ओर आकृष्ट करने वाले, ६४५. **स्वाम्यतुल्यकृपादण्डो=** अपनी प्रभुता के अनुकूल किसी पर कृपा करने वाले अथवा दण्ड देने वाले, ६४६. **हीनोत्कृष्टैकसत्प्रियः=** नीच ऊँच सबको प्रिय लगने वाले ॥२३२॥ ६४७. **श्वापक्ष्यादिन्यायदर्शी=** कुत्ते तथा पक्षी आदि के भी प्रति न्याय करने वाले, ६४८. **हीनार्थाधिकसाधकः=** असहाय पुरुषों के कार्यो को अधिक सिद्ध करने वाले, ६४९. **वध व्याजानुचितकृत तारकः=** अनुचित कर्म करने वालों को वध के बहाने उद्धार करने वाले, ६५०. **अखिलतुल्यकृत्=** सबों के साथ उनकी योग्यता के अनुसार व्यवहार करने वाले ॥२३३॥ ६५१. **पावित्र्याधिक्यमुक्तात्मा=** अधिक पवित्रता के कारण नित्यमुक्त स्वभाव, वाले, ६५२. **प्रियात्यक्तः=** अपनी प्रियतमा पत्नी सीताजी से कुछ काल के लिए वियुक्त, ६५३. **स्मरारिजित्=** कामदेव के शत्रु शङ्करजी को जीतने वाले, ६५४. **साक्षात्कुशलवाच्छद्मदावितः=** कुश और लव के रूप में अपने आप से पराजित होने वाले, ६५५. **अपराजितः=** किसी से भी परास्त नहीं होने वाले ॥२३४॥ ६५६. **कोसलेन्द्रः=** कोसलदेश के ऐश्वर्य सम्पन्न

कोशलेन्द्रो वीरबाहुः सत्यार्थत्यक्तसोदरः। शरसंधाननिर्धूतधरणीमण्डलोजयः ॥२३५॥
ब्रह्मादिकाम्यसांनिध्यसनाथीकृतदैवतः । ब्रह्मलोकाप्तचाण्डालाद्यशेषप्राणिसार्थकः ॥२३६॥
स्वनीतगर्दभाश्वादिश्चिरायोध्यावनैककृत् । रामद्वितीयः सौमित्रिर्लक्ष्मणः प्रहतेन्द्रजित् ॥२३७॥
विष्णुभक्ताप्तरामाङ्घ्रिपादुकाराज्यनिर्वृतः । भरतोऽसह्यगन्धर्वकोटिघ्नो लवणान्तकः ॥२३८॥
शत्रुघ्नो वैद्यराजायुर्वेदगर्भौषधीपतिः। नित्यामृतकरो धन्वन्तरिर्यज्ञो जगद्धरः॥२३९॥
सूर्यारिघ्नः सुराजीवो दक्षिणेशो द्विजप्रियः। छिन्नमूर्धापदेशार्कः शेषाङ्गस्थापितामरः ॥२४०॥
विश्वार्थाशेषकृद्राहुशिरश्छेत्ता क्षताकृतिः। वाजपेयादिनामाग्निर्वेदधर्मपरायणः ॥२४१॥
श्वेतद्वीपपतिः साङ्ख्यप्रणेता सर्वसिद्धिराट्। विश्वप्रकाशितज्ञानयोगमोहतमिस्रहा ॥२४२॥

सम्राट्, ६५७. **वीरबाहुः=** शक्तिसम्पन्नभुजाओ वाले, ६५८. **सत्यार्थत्यक्तसहोदरः=** सत्य की रक्षा करने के लिए अपने छोटे भाई लक्ष्मणजी का त्याग करने वाले, ६५९. **शरसंधाननिर्धूतधरणीमण्डलः=** अपने बाणो के सन्धान से सम्पूर्ण पृथिवी को कँपा देने वाले, ६६०. **जयः=** विजय प्राप्त करने वाले॥२३५॥ ६६१. **ब्रह्मादिकाम्यसानिध्य सनाथीकृत दैवतः=** ब्रह्मा आदि देवता भी जिनके सन्निधान को प्राप्त करना चाहते है उसके द्वारा देव समूह को सनाथित करने वाले, ६६२. **ब्रह्मलोकाप्तचाण्डालाद्यशेषप्राणिसार्थक=** चाण्डाल आदि अयोध्या के समस्त प्राणियों को ब्रह्मलोक पहुँचाकर उनके जीवन को सार्थक बनाने वाले॥२३६॥ ६६३. **स्वर्नीत गर्दभादिः=** अयोध्या के गधे तथा कुत्ते जैसे जीवों को स्वर्गलोक ले जाने वाले, ६६४. **चिरायोध्यावनैककृत्=** चिरकाल तक एकमात्र अयोध्या की रक्षा करने वाले, ६६५. **रामः=** मुनियो के मान को अपने में रमण कराने वाले, ६६६. **द्वितीयसौमित्रिः=** लक्ष्णमजी को सदा अपने साथ रखने वाले, ६६७. **लक्ष्मणः=** शुभ लक्षण वाले, **प्रहतेन्द्रजित्=** इन्द्रजीत को मारने वाले, ॥२३७॥ ६६८. **विष्णुभक्तः=** भगवान् विष्णु के अवतार भूत श्रीरामजी के भक्त भरतजी । ६६९. **सरामाङ्घ्रिपादुकाराज्यनिर्वृतिः=** श्रीरामजी की चरण पादुका के साथ प्राप्त राज्य से सन्तुष्ट रहने वाले भरतजी, ६७०. **भरतः=** प्रजाओं का भरण पोषण करने वाले, ६७१. **असह्यगन्धर्वकोटिघ्नः=** करोड़ों दुःसह गन्धर्वों को मारने वाले, ६७२. **लवणान्तकः=** लवणासुर को मारने वाले, ६७३. **शत्रुघ्नः=** शत्रुओं को मारने वाले, ६७४. **वैद्यराट्=** वैद्यों के राजा धन्वन्तरि ६७५. **आयुर्वेदगर्भौ वधीपतिः=** आयुर्वेद में वर्णित औषधियों के स्वामी, ६७६. **नित्यामृतकरः=** अपने हाथ में सदा अमृत लिए रहने वाले ६७७. **धन्वन्तरिः=** धन्वन्तरि नाम से प्रसिद्ध, ६७८. **यज्ञः=** यज्ञस्वरूप, ६७९. **जगद्धरः=** संसार को धारण करने वाले॥२३९॥ ६८०. **सूर्यारिघ्नः=** सूर्य के शत्रु केतु को मारने वाले, ६८१. **सुराजीवः=** अमृत के द्वारा देवताओं को जीवन प्रदान करने वाला, ६८२. **दक्षिणेशः=** धर्मराज रूप से दक्षिण दिशा के स्वामी, ६८३. **द्विजप्रियः=** ब्राह्मणों के प्रिय ६८४. **छिन्नमूर्धापदेशार्कः=** जिसका शिर कटा हुआ है ऐसे स्वर्भानु नाम से कहे जाने वाला राहु भी ग्रह होने के कारण और ग्रहों के समान भगवद् विभूति है ६८५. **शेषाङ्गस्थापितामरः=** जिसके अवशिष्ट अङ्गों में अमरत्व स्थित है ऐसा राहु ॥२४०॥ ६८६. **विश्वर्थाशेषकृत्** संसार का कल्याण करने के लिए सारे कार्यो को करने वाले, ६८७. **राहुशिरश्छेत्ता=** राहु का चक्र से शिर काटने वाले, ६८८. **अक्षताकृति=** किसी भी प्रकार की क्षति से रहित शरीर वाले, ६८९. **वाजपेयआदि नामाग्निः=** वाजपेय आदि नाम वाले अग्निशरीरक, ६९०. **वेद धर्मपरायणः=** वैदिक धर्मों के

देवहूत्यात्मजः सिद्धः कपिलः कर्दमात्मजः ।
योगस्वामी ध्यानभङ्गसगरात्मजभस्मकृत् ॥२४३॥
धर्मो वृषेन्द्रः सुरभीपतिः शुद्धात्मभावितः । शम्भुस्त्रिपुरदाहैकस्थैर्यविश्वरथोद्वहः ॥२४४॥
भक्तशम्भुजितो दैत्यामृतवापीसमस्तपः । महाप्रलयविश्वैकद्वितीयाखिलनागराट् ॥२४५॥
शेषदेवः सहस्राक्षः सहस्रास्यशिरोभुजः । फणामणिकणाकार योजिताब्ध्यम्बुदक्षितिः ॥२४६॥
कालाग्निरुद्रजनको मुसलास्त्रो हलायुधः। नीलाम्बरो वारुणीशोमनोवाक्कायदोषहा ॥२४७॥
असन्तोषो दृष्टिमात्रपातितैकदशाननः । बलिसंयमनो घोरो रौहिणेयः प्रलम्बहा ॥२४८॥
मुष्टिकघ्नो द्विविदहा कालिन्दीकर्षणोबलः । रेवतीरमणः पूर्वभक्तिखेदाच्युताग्रजः ॥२४९॥

परमाश्रय॥२४१॥ **६९१. श्वेतद्वीपपतिः=** श्वेतद्वीप के स्वामी, **६९२. सांख्य प्रणेता=** कपिल महर्षि रूप से सांख्य शास्त्र का प्रवर्तन करने वाले, **६९३. सर्वसिद्धिराट्=** सभी सिद्धियों के राजा, **६९४. विश्वप्रकाशितज्ञानयोगमोहतमिस्रहा=** सम्पूर्ण संसार में ज्ञानयोग का प्रकाश करके अज्ञानान्धकार को दूर करने वाले ॥२४२॥ **६९५. देवहूत्यात्मजः=** माता देवहूति के पुत्र रूप से उत्पन्न होने वाले, **६९६. सिद्धः=** सभी प्रकार की सिद्धियों से सम्पन्न, **६९७. कपिलः=** कपिल नाम से अवतीर्ण होने वाले, **६९८. कर्दमात्मजः=** महर्षि कर्दम के पुत्र भगवान कपिल, **६९९. योगस्वामी=** सांख्ययोग के स्वामी, **७००. ध्यानभङ्गसगरात्मजभस्मकृत्=** ध्यानभङ्ग करने वाले राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को भस्म कर देने वाले ॥२४३॥ **७०१. धर्मः=** जगत् को धारण करने वाले धर्म स्वरूप, **७०२. वृषेन्द्रः=** श्रेष्ठ वृषभ की आकृति धारण करने वाले धर्म स्वरूप, **७०३. सुरभीपतिः=** सुरभी गौ के स्वामी, **७०४. शुद्धात्मभावितः=** शुद्ध मन से चिन्तन किये जाने वाले, **७०५. शम्भुः=** कल्याण की उत्पत्ति स्थान शङ्कर शरीरक **७०६. त्रिपुरदाहैकस्थैर्यविश्वरथोद्वहः=** त्रिपुरदाह के समय एकमात्र स्थिर रहने वाले और विश्वरूप रथ का वहन करने वाले ॥२४४॥ **७०७. भक्तशम्भुजितः=** अपने भक्त शम्भु के द्वारा पराजित होने वाले, **७०८. दैत्यामृतवापीसमस्तपः=** त्रिपुरदाह के समय दैत्यों की अमृत से भरी हुयी वापी को गौ रूप धारण कर पी जाने वाले, **७०९. महाप्रलयविश्वैकनिलयः=** महाप्रलय काल में सम्पूर्ण विश्व के एकमात्र निवास स्थान, **७१०. अखिलगराट्=** सम्पूर्ण नागों के राजा शेषनाग शरीरक ॥२४५॥ **७११. शेषदेवः=** महाप्रलय में भी बचे रहने वाले, **७१२. सहस्राक्षः=** हजारों नेत्र वाले, **७१३. सहस्रास्य शिरोभुजः=** हजारों मुख, शिर और भुजाओं वाले विराट् रूप भगवान, **७१४. फणामणिकणाकारयोजिता-च्छाम्बुदक्षितिः=** अपने फणों की मणियों के कणों के आकार से पृथिवी पर श्वेत बादलों की घटा के समान छा जाने वाले॥२४६॥ **७१५. कालाग्नि रुद्रजनकः=** भयङ्कर कालग्नि और संहारमूर्ति रुद्र को उत्पन्न करने वाले, **७१६. मुसलास्त्रः=** मुसल को अस्त्र के रूप में धारण करने वाले, **७१७. हलायुधः=** हल को आयुध के रूप में धारण करने वाले, **७१८. नीलाम्बरः=** नीलवस्त्र धारण करने वाले, **७१९. वारुणीशः=** वारुणी के स्वामी, **७२०. मनोवाक्कायदोषहा=** मन, वाणी और शरीर के दोष को दूर करने वाले॥२४७॥ **७२१. असंतोषदृष्टिमात्र पातितैकदशानः=** अपनी असंतोष पूर्ण दृष्टि से केवल देखकर पाताल में गये हुए रावण को गिरा देने वाले शेषनाश, **७२२. बिल संयमनः=** सातों पाताल लोकों को अपने वश में रखने वाले, **७२३. घोरः=** प्रलय के समय भयङ्कर आकार धारण करने वाले, **७२४. रौहिणेयः=** रोहिणी के पुत्र,**७२५.प्रलम्बहा=** प्रलम्बासुर को मारने वाले बलरामजी ॥२४८॥**७२६. मुष्टिकघ्नः=** कंस की

देवकीवसुदेवाह्वकश्यपादितिनन्दनः । वार्ष्णेयः सात्वतां श्रेष्ठः शौरियदुकुलोद्वहः॥२५०॥
नराकृतिः परंब्रह्म सव्यसाची वरप्रदः। ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्चर्यशैशवः ॥२५१॥
पूतनाघ्नः शकटभिद्यमलार्जुनभञ्जनः । वातासुरारिः केशिघ्नो धेनुकारिर्गवीश्वरः॥२५२॥
दामोदरो गोपदेवो यशोदानन्ददायकः । कालीयमर्दनः सर्व गोपगोपी जनप्रियः॥२५३॥
लीलागोवर्धनधरो गोविन्दो गोकुलोत्सवः । अरिष्टमथनः कामोन्मत्तगोपीविमुक्तिदः ॥२५४॥
सद्यः कुवलयापीडघाती चाणूरमर्दनः । कंसारिरुग्रसेनादिराज्यव्यापारितापरः ॥२५५॥
सुधर्माङ्कितभूलोको जरासन्धबलान्तकः । त्यक्तभग्नजरासन्धो भीमसेनयशःप्रदः॥२५६॥

मल्लशाला में मुष्टिक को मारने वाले, ७२७. **द्विविदघ=** द्विविद नामक दुष्ट वानर को मारने वाले, ७२८. **कालिन्दीकर्षणः=** युमनाजी की धारा को खीचने वाले, ७२९. **बलः=** वल के मूर्तिमान रूप, ७३०. **रेवतीरमणः=** अपनी पत्नी रेवती के साथ रमण करने वाले, ७३१. **पूर्वभक्तिखेदाच्युताग्रजः=** पूर्वजन्म में लक्ष्मणजी के रूप में भगवान् राम की सेवा करने के कारण थक जाने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण के अग्रज के रूप में अवतीर्ण होने वाले ॥२४९॥ ७३२. **देवकी वसुदेवाह्व कश्यपादितिनन्दनः=** देवकी और वसुदेव के रूप में अवर्तीर्ण महर्षि कश्यप और आदिति को आनन्द देने वाले, ७३३. **वार्ष्णेयः=** वृष्टिवंश मे अवतार लेने वाले, ७३४. **सत्त्वतांश्रेष्ठः=** सात्त्वत वंश में सबसे श्रेष्ठ, ७३५. **शौरिः=** शूरसेन के वंश में अवतार लेने वाले, ७३६. **यदुकुलेश्वरः=** यदुवंश के स्वामी ॥२५०॥ ७३७. **नराकृतिः=** मानवशरीर धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण, ७३८. **परंब्रह्म=** परंब्रह्म स्वरूप, ७३९. **सव्यसाचीवरप्रदः=** अर्जुन को वरदान देने वाले, ७४०. **ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्चर्यशैशवः=** ब्रह्मा आदि देवता भी जिन्हें देखना चाहते है और संसार को आश्चर्य में डालने वाली मनोहर लीलाओं को करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ॥२५१॥ ७४१. **पूतनाघ्नः=** पूतना नामक राक्षसी को मारने वाले, ७४२. **शकटभित्=** शकटासुर को कारने वाले, ७४३. **यमलार्जुन भञ्जकः=** जुड़वे अर्जुन के वृक्ष को तोड़ देने वाले, ७४४. **वातासुरारि=** तृणावर्त के शत्रु, ७४५. **केशिघ्नः=** केशी नामक राक्षस को मारने वाले, ७४६. **धेनुकारिः=** धेनुकासुर के शत्रु, ७४७. **गवीश्वरः=** गायों के स्वामी, ७४८. **दामोदरः=** यशोदाजी द्वारा रस्सी से बाधे गये भगवान् के उदर में रस्सी का चिह्न है उसी के कारण भगवान् का नाम दामोदर है, ७४९. **गोपदेवः=** ग्वालों के इष्टदेव, ७५०. **यशोदानन्ददायकः=** यशोदाजी को आनन्द देने वाले ७५१.**कलियमर्दनः=** कालिय नामक नाग का मर्दन करने वाले, ७५२. **सर्वगोपगोपीजनप्रियः=** सभी गोपों तथा गोपियों के प्रियतम ॥२५३॥ ७५३. **लीलागोवर्धनधरः=** बिना किसी प्रयास को गोवर्धन पर्वत को अपनी अङ्गुलि पर उठाये रखने वाले, ७५४. **गोविन्दः=** इन्द्र के द्वारा वर्षा किए जाने पर गौओं की रक्षा करने पर कामधेनु द्वारा गोविन्द पद पर अभिषिक्त किए जाने वाले, ७५५. **गोकुलोत्सवः=** गोकुल निवासियों को सदैव आनन्द देने के कारण उत्सव स्वरूप, ७५६. **अरिष्टमथनः=** अरिष्टासुर को मारने वाले, ७५७. **कामोन्मत्तगोपीविमुक्तिदः=** प्रेम विभोर गोपी को सायुज्य मुक्ति प्रदान करने वाले ॥२५४॥ ७५८. **सद्यः कुवलयापीडघाती=** शीघ्र ही कुवलयापीड नामक कंस की हाथी को मारने वाले, ७५९. **चाणूरमर्दनः=** कंस के चाणूर नामक मल्ल को मारने वाले, ७६०. **कंसारिः=** कंस के शत्रु, ७६१. **उग्रसेनादिराज्यव्यापारितामरः=** राज्य सम्बन्धी कार्यों में उग्रसेन आदि के रूप में देवताओं को लगाने

सान्दीपनिमृतापत्यदाता कालान्तकादिजित्। समस्तनारकित्राता सर्वभूपतिकोटिजित् ॥२५७॥
रुक्मिणीरमणो रुक्मिशासनो नरकान्तकः। समस्तसुन्दरीकान्तो मुरारिर्गरुडध्वजः ॥२५८॥
एकाकी जितरुद्रार्कमरुदाद्यखिलेश्वरः। देवेन्द्रदर्पहा कल्पद्रुमालङ्कृतभूतलः ॥२५९॥
बाणबाहुसहस्रच्छिन्नन्द्यादिगणकोटिजित्। लीलाजितमहादेवो महादेवैकपूजितः ॥२६०॥
इन्द्रार्थार्जुननिर्भङ्गजयदः पाण्डवैकधृत्। काशिराजशिरश्छेत्ता रुद्रशक्तैयेकमर्दनः ॥२६१॥
विश्वेश्वरप्रसादाक्षः काशीराजसुतार्दनः। शम्भुप्रतिज्ञाविध्वंसी काशीनिर्दग्धनायकः ॥२६२॥
काशीशगणकोटिघ्नो लोकशिक्षाद्विजार्चकः। शिवतीव्रतपोवश्यः पुरा शिववरप्रदः ॥२६३॥
शङ्करैकप्रतिष्ठाधृत्स्वांशशङ्करपूजकः। शिवकन्याव्रतपतिः कृष्णरूपशिवारिहा ॥२६४॥

वाले॥२५५॥ ७६२. **सुधर्माङ्कितभूलोकः=** इन्द्र की सभा में विद्यमानसुधर्मासभा से भूलोक को सुशोभित करने वाले, ७६३. **जरासन्धबलान्तकः=** जरासन्ध की सेना को मार डालने वाले, ७६४. **त्यक्त भग्न जरासन्धः=** युद्ध से भगे हुए जरासन्ध को जीवित छोड़ देने वाले, ७६५. **भीमसेनयशःप्रदः=** युक्ति से जरासन्ध को मरवाकर भीम को यश प्रदान करने वाले ॥२५६॥ ७६६. **सांदीपनिमृतापत्यदाता=** अपने गुरु सान्दीपनि के मरे हुए पुत्र को लाकर देने वाले, ७६७. **कालान्तकादिजित्=** काल तथा अन्तक आदि पर विजय प्राप्त करने वाले, ७६८. **समस्त नारकित्राता=** शरणागत समस्त नारकी जीवों का उद्धार करने वाले, ७६९. **सर्वभूपतिकोटिजित्=** रुक्मिणीजी के विवाह में आये हुए करोड़ों राजाओं को परास्त करने वाले ॥२५७॥ ७७०. **रुक्मिणीरमणः=** अपनी पत्नी रुक्मिणी के साथ रमण करने वाले, ७७१. **रुक्मिशासनः=** रुक्मिणीजी के बड़े भाई रुक्मी पर प्रशासन करने वाले, ७७२. **नरकान्तकः=** नरकासुर को मारने वाले भगवान् श्रीकृष्ण, ७७३. **समस्तसुन्दरीकान्त=** सभी सुन्दरियाँ जिन्हें प्राप्त करना चाहती है, ७७४. **मुरारिः=** मुर नामक राक्षस के शत्रु, ७७५. **एकाकिजितरुद्रार्कमरुदाद्यखिलेश्वरः=** अकेले ही रुद्र, सूर्य, मरुत् आदि लोकपालों को जीतने वाले, ७७६. **देवेन्द्रदर्पहा=** इन्द्र के गर्व को विनष्ट करने वाले, ७७७. **कल्पद्रुमालंकृतभूतलः=** स्वर्ग से कल्पवृक्ष को लाकर उससे पृथिवी को अलंकृत करने वाले॥२५९॥ ७७८. **बाणबाहुसहस्ररित्=** बाणासुर की हजार भुजाओं को काटने वाले, ७७९. **नन्द्यादिगणकोटिजित्=** नन्दी आदि करोड़ो शिवजी के गणों को परास्त करने वाले, ७८०. **लीलाजित महादेवः=** बड़ी आसानी से शिवजी को परास्त करने वाले, ७८१. **महादेवैकपूजितः=** महादेवजी के द्वारा एकमात्र पूजित ॥२६०॥ ७८२. **इन्द्रार्थार्जुननिर्भङ्गजयदः=** इन्द्र की प्रसन्नता के लिए अर्जुन को अखण्ड विजय प्रदान करने वाले, ७८३. **पाण्डवैकधृक्=** पाण्डवों के एकमात्र रक्षक, ७८४. **काशिराजशिरश्छेत्ता** काशिराज का शिर काटने वाले, ७८५. **रुद्रशक्तयेकमर्दन=** रुद्र की शक्ति का एकमात्र मर्दन करने वाले॥२६१॥ ७८६. **विश्वेश्वरप्रसादाद्यः=** काशी विश्वनाथ की प्रसन्नता प्राप्त करने वाले, ७८७. **काशिराजसुतार्दनः=** काशिराज के पुत्र को पीड़ित करने वाले, ७८८. **शम्भुप्रतिज्ञाविध्वंशी=** शङ्करजी की प्रतिज्ञा को तोड़ने वाले, ७८९. **काशीनिर्दग्धनायकः=** काशी को जलाकर अनाथ जैसे कर देने वाले भगवान् श्रीकृष्ण॥२६२॥ ७९०. **काशीशगणकोटिघ्नः=** काशीपति विश्वनाथ के करोड़ों गणों को मारने वाले, ७९१. **लोकशिक्षाद्विजार्चकः=** संसार को शिक्षा देने के लिए सुदामा आदि ब्राह्मणों की पूजा करने वाले, ७९२. **शिवतीव्रतपोवश्यः=** शिवजी की तीव्र तपस्या के वशीभूत होने वाले, ७९३. **पुराशिववरप्रदः=** पूर्वकाल

महालक्ष्मीवपुर्गौरीत्राता वैदलवृत्रहा । स्वधाममुचुकुन्दैकनिष्कालयवनेष्टकृत् ॥२६५॥
यमुनापतिरानीतपरिलीनद्विजात्मजः । श्रीदामरङ्कभक्तार्थभूम्यानीतेन्द्रवैभवः ॥२६६॥
दुर्वृत्तशिशुपालैकमुक्तिदो द्वारकेश्वरः । आचाण्डालादिकप्राप्य द्वारकानिधिकोटिकृत॥२६७॥
अक्रूरोद्धवमुख्यैकभक्तस्वच्छन्दमुक्तिदः । सबालस्त्रीजलक्रीडामृतवापीकृतार्णवः ॥२६८॥
ब्रह्मास्त्रदग्धगर्भस्थपरीक्षिज्जीवनैककृत् । परिलीनद्विजसुतानेताऽर्जुनमदापहः ॥२६९॥
गूढमुद्राकृतिग्रस्तभीष्माद्यखिलकौरवः । यथार्थखण्डिताशेषदिव्यास्त्रपार्थमोहहृत् ॥२७०॥
गर्भशापच्छलध्वस्तयादवोर्वीभयापहः । जराव्याधारिगतिदः स्मृतिमात्राखिलेष्टदः ॥२७१॥
कामदेवो रतिपतिर्मन्मथः शम्बरान्तकः ।
अनङ्गो जितगौरीशो रतिक्रान्तः सदेप्सतः (सदेप्सितः) ॥२७२॥

में शिवजी को वरदान देने वाले ॥२६३॥ ७९४. **शङ्करैकप्रतिष्ठाधृक्=** एकमात्र शङ्करजी को प्रतिष्ठा प्रदान करने वाले, ७९५. **स्वांशशङ्करपूजकः=** अपने अंश भूत शङ्करजी की पूजा करने वाले, ७९६. **शिवकन्याव्रतपतिः=** शिवजी की कन्या के व्रत की रक्षा करने वाले, ७९७. **कृष्णरूपशिवारिहा=** कृष्णरूप से शिव के शत्रु भस्मासुर का विनाश करने वाले ॥२६४॥ ७९८. **महालक्ष्मीवपुगौरीत्राता=** महालक्ष्मी का रूप धारण करने वाली पार्वतीजी के व्रत की रक्षा करने वाले, ७९९. **वैदलवृत्रहा=** वैदलवृत्र नामक राक्षस को मारने वाले, ८००. **स्वधाममुचकुन्दैकनिष्कालयवनेष्टकृत्=** अपने अंश भूत मुचकुन्द द्वारा कालयवन को भस्म कराकर महाराज मुचकुन्द को अभिष्ट वरदान देने वाले ॥२६५॥ ८०१. **यमुनापतिः=** यमुनाजी को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करने वाले, ८०२. **आनीत परिलीन द्विजात्मजः=** ब्राह्मण के मरे हुए पुत्रों को लाने वाले, ८०३. **श्रीदामरङ्कभक्तार्थ भूम्यानीतेन्द्रवैभवः=** अपने दरिद्र भक्त श्रीदामा (सुदामा) के लिए पृथिवी पर इन्द्र के वैभव को उपस्थित करने वाले ॥२६६॥ ८०४. **दुर्वृत्तशिशुपालैकमुक्तिदः=** दुराचारी शिशुपाल को मारकर उसे मुक्तिप्रदान करने वाले, ८०५. **द्वारकेश्वर=** द्वारका के स्वामी, ८०६. **आचाण्डालादिकप्राप्यद्वारकानिधिकोटिकृत्=** द्वारका में चाण्डाल तक के लिए सुलभ होने वाली करोड़ों निधियों का संग्रह करने वाले ॥२६७॥ ८०७. **अक्रूरोद्धवमुख्यैकभक्तः=** अक्रूर तथा उद्धव आदि जिनके मुख्य भक्त हैं, ८०८. **स्वच्छन्दमुक्तिदः=** अपनी इच्छा के अनुसार मुक्ति प्रदान करने वाले, ८०९. **सबाल स्त्रीजलक्रीडामृतवापीकृतार्णवः=** द्वारका में बालकों तथा स्त्रियों के जलक्रीडा करने के लिए समुद्र में अमृतमयी बावली बना देने वाले ॥२६८॥ ८१०. **ब्रह्मास्त्रदग्धगर्भस्थपरीक्षिज्जीवनैककृत्=** अश्वथामा के ब्रह्मास्त्र से दग्ध हुए परीक्षित् को एकमात्र जीवन दान देने वाले, ८११. **परिलीनद्विजसुतानेता=** मरे हुए ब्राह्मण के पुत्रों को ले आने वाले, ८१२. **अर्जुनमदापहः=** अर्जुन के घमंण्ड को चूर करने वाले ॥२६९॥ ८१३. **गूढमुद्राकृतिग्रस्तभीष्माद्यखिलकौर=** गम्भीर मुद्रायुक्त अपनी आकृति बनाकर भीष्म आदि समस्त कौरवों को काल का ग्रास बनाने वाले, ८१४. **यथार्थखण्डिताशेषदिव्यास्त्रपार्थमोहकृत्=** सभी दिव्यास्त्रों का खण्डन करने वाले अर्जुन के मोह को दूर करने वाले ॥२७०॥ ८१५. **गर्भशापच्छलध्वस्त यादवोर्वीभरापहः=** स्त्रीरूप धारण करके गये हुए साम्ब के गर्भ को मुनियों द्वारा शाप दिलाने के बहाने पृथिवी के भारभूत समस्त यादवों का संहार कराने वाले, ८१६. **जरा व्याधारि गतिदः=** शत्रु का काम करने वाले जरा नामक बहेलिए को सद्गति प्रदान करने वाले, ८१७. **स्मृतमात्राखिलेष्टः=** केवल स्मरण

पुष्पेषुविश्वविजयीस्मरः कामेश्वरीप्रियः। उषापतिर्विश्वकेतुविश्वतृप्तोऽधिपूरुषः ॥२७३॥
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्युगविधायकः। चतुर्वेदैकविश्वात्मा सर्वोत्कृष्टांशकोटिसूः ॥२७४॥
आश्रमात्मापुराणर्षिर्व्यासःशाखासहस्रकृत्। महाभारतनिर्माताकवीन्द्रोबादरायणः ॥२७५॥
कृष्णद्वैपायनःसर्वपुरुषार्थैकबोधकः। वेदान्तकर्ता ब्रह्मैकव्यञ्जकः पुरुवंशकृत् ॥२७६॥
बुद्धो ध्यानजिताशेषदेवदेवो जगत्प्रियः। निरायुधो जगज्जैत्रः श्रीधरो दुष्टमोहनः ॥२७७॥
दैत्यवेदबहिष्कर्त्ता वेदार्थश्रुतिगोपकः। शौद्धोदनिर्दष्टदिष्टः सुखदः सदसस्पतिः ॥२७८॥
यथायोग्याखिलकृपः सर्वशून्योऽखिलेष्टदः। चतुष्कोटि पृथक्तत्त्वं प्रज्ञापारमितेश्वरः ॥२७९॥

करने मात्र समस्त अभिप्रेत पदार्थों को प्रदान करने वाले ॥२७१॥ ८१८. **कामदेवः**= कामदेव शरीरक, ८१९. **रतिपतिः**= रति के स्वामी, ८२०. **मन्मथः**= विचार करने की शक्ति को नष्ट करके मन को मथ देने वाले, ८२१. **शम्बरान्तकृत**= शम्बरासुर का वध करने वाले, ८२२. **अनङ्ग**= शरीर रहित कामदेव स्वरूप, ८२३. **जितगौरीशः**= गौरीपति शङ्करजी को भी जीत लेने वाले, ८२४. **रतिकान्तः**= रति के प्रियतम, ८२५. **सदेप्सितः**= कामी पुरुषों को सदा अभिप्रेत ॥२७२॥ ८२६. **पुष्पेषु**= पुष्पमय बाणों वाले, ८२७. **विश्वविजयी**= सम्पूर्ण जगत् पर विजय प्राप्त करने वाले, ८२८ **स्मरः**= विषयों का स्मरण करने मात्र से मन में प्रकट हो जाने वाले, ८२९. **कामेश्वरीप्रियः**= कामेश्वरी रति के प्रियतम, ८३०. **ऊषापतिः**= बाणासुर की पुत्री के पति अनिरुद्ध स्वरूप, ८३१. **विश्वकेतुः**= विश्व में विजय पताका फहराने वाले, ८३२. **विश्वतृप्तः**= विश्व को तृप्त करने वाले, ८३३. **अधिपूरुषः**= अन्तर्यामी ॥२७३॥ ८३४. **चतुरात्मा**= मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्तरूप चार प्रकार के अन्तःकरण वाले, ८३५. **चतुर्व्यूहः**= वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध चार व्यूह रूप वाले, ८३६. **चतुर्युगाविधायकः**= सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चार युगों को बनाने वाले, ८३७. **चतुर्वेदैकविश्वात्मा**= चारों वेदों द्वारा प्रतिपादित सम्पूर्ण जगत् की आत्मा, ८३८. **सर्वोत्कृष्टांशकोटिसूः**= सर्वश्रेष्ठ करोड़ों अशोकों को उत्पन्न करने वाले॥२७४॥ ८३९. **आश्रमात्मा**= आश्रम धर्म स्वरूप, ८४०. **पुराणषिः**= पुराणों की रचना करने वाले ऋषि, ८४१. **व्यासः**= वेदों का विस्तार करने वाले महर्षि व्यास स्वरूप, ८४२. **शाखासहस्रकृत**= सामवेद की एक हजार शाखाओं का निर्माण करने वाले, ८४३. **महाभारत निर्माता**= महाभारत का निर्माण करने वाले, ८४४. **कवीन्द्रः**= कवियों के स्वामी, ८४५. **बादरायणः**= बदरी वन में उत्पन्न होने वाले महर्षि व्यास स्वरूप ॥२७५॥ ८४६. **कृष्णद्वैपायनः**= द्वीप में उत्पन्न होने वाले श्यामवर्ण के व्यासजी, ८४७. **सर्वपुरुषार्थैकबोधः**= सभी पुरुषार्थों का बोध कराने वाले, ८४८. **वेदान्तकर्ता**= वेदान्त सूत्रों के प्रणेता महर्षि व्यास ८४९. **ब्रह्मैकव्यञ्जकः**= एकमात्र ब्रह्म की अभिव्यक्ति कराने वाले, ८५०. **पुरुवंशकृत**= पुरुवंश की परम्परा को सुरक्षित रखने वाले ॥२७६॥ ८५१. **बुद्धः**= भगवान् के बुद्धावतार, ८५२. **ध्यानजिताशेषदेवदेवीजगतप्रियः**= ध्यान के द्वारा जगत् के सभी देवों और देवियों को जीतने वाले संसार के प्रिय, ८५३. **निरायुधः**= किसी भी आयुध को नहीं धारण करने वाले, ८५४. **जगज्जैत्रः**= विश्व विजयी, ८५५. **श्रीधनः**= शोभा के धनी, ८५६. **दुष्टमोहनः**= दुष्ट जीवों को मोहित करने वाले ॥२७७॥ ८५७. **दैत्यवेदवहिष्कर्ता**= दैत्यों को वेद से बहिष्कृत करने वाले, ८५८. **वेदार्थश्रुति गोपकः**= वेद की श्रुतियों और अर्थ को गुप्त रखने वाले, ८५९. **शौद्धोदनिः**= राजा शुद्धोदन के पुत्र बुद्ध स्वरूप, ८६०. **दुष्टदिष्टः**=

पाखण्डवेदमार्गेशः पाखण्डश्रुतिगोपकः । कल्की विष्णुयशःपुत्र कलिकालविलोपकः॥२८०॥
समस्तम्लेच्छदुष्टघ्नः सर्वशिष्टद्विजातिकृत् । सत्यप्रवर्तको देवद्विजदीर्घक्षुधापहः ॥२८१॥
अश्वारादिरेवन्तः पृथ्वीदुर्गतिनाशनः। सद्यः क्ष्माऽनन्तलक्ष्मीकृन्नष्टनिःशेषधर्मावित् ॥२८२॥
अनन्तस्वर्णयोगैकहेमपूर्णाखिलद्विजः । असाध्यैकजगच्छास्ता विश्ववन्द्यो जयध्वजः ॥२८३॥
आत्मतत्त्वाधिपः कर्तृश्रेष्ठो विधिरूमापतिः। भर्तृश्रेष्ठः प्रजेशाग्र्यो मरीचिर्जनकाग्रणीः ॥२८४॥
कश्यपो देवराजेन्द्रः प्रह्लादो दैत्यराट्छशी । नक्षत्रेशो रविस्तेजः श्रेष्ठः शुक्रः कवीश्वरः॥२८५॥
महर्षिराड् भृगुर्विष्णुरादित्येशो बलिः स्वराट् ।
वायुर्वह्निः शुचिः श्रेष्ठः शङ्करो रुद्रराड् गुरुः ॥२८६॥

दैव के विधान को प्रत्यक्ष देखने वाले, ८६१. **सूखदः=** सबों को सुख प्रदान करने वाले, ८६२. **सदसस्पतिः=** सत्पुरुषों की सभा के अध्यक्ष ॥२७८॥ ८६३. **यथायोग्याखिलकृपः=** सबों पर यथायोग्य कृपा करने वाले, ८६४. **सर्वशून्यः=** सभी पदार्थों को शून्य रूप मानने वाले, ८६५. **सकलेष्टदः=** सबों के अभिप्रेत पदार्थों को देने वाले, ८६६. **चतुष्कोटिपृथककृत=** स्थावर आदि चार कोटि की सृष्टि से पृथक, ८६७. **तत्त्वप्रज्ञापारमितेश्वरः=** तत्त्वभूत बुद्धि की पराकाष्ठा के स्वामी ॥२७९॥ ८६८. **पाखण्डवेदमार्गेशः=** पाखण्ड वेदमार्ग के स्वामी, ८६९. **पाखण्डश्रुतिगोपकः=** पाखण्ड के द्वारा श्रुतियों को छिपाने वाले, ८७०. **कल्की=** कल्की अवतार धारण करने वाले, ८७१. **विष्णुयशःपुत्रः=** विष्णु यश के पुत्र भगवान् कल्की, ८७२. **कलिकाल विलोपकः=** कलियुग का लोप करके सत्ययुग का प्रवेश कराने वाले ॥२८०॥ ८७३. **समस्तमलेच्छदुष्टघ्नः=** सम्पूर्ण म्लेच्छों और दुष्टों का वध करने वाले, ८७४. **सत्यप्रवर्तकः=** सत्ययुग का प्रारम्भ करने वाले, ८७५. **देवद्विजदीर्घक्षुधापहः=** देवताओं और ब्राह्मणों की बढ़ी हुयी भूख को शान्त करने वाले ॥२८१॥ ८७६. **अश्ववारादिः=** घुड़सरवारों में सबसे श्रेष्ठ, ८७७. **एकान्तपृथिवीदुर्गतिनाशनः=** पृथिवी की दुर्गति का पूर्ण रूप से नाश करने वाले, ८७८. **सद्यःक्षमानन्त लक्ष्मीकृत्=** पृथिवी को शीघ्र ही अनन्त लक्ष्मी से परिपूर्ण करने वाले, ८७९. **नष्टनिःशेषधर्मवित्=** नष्ट हुए सम्पूर्ण धर्मों को जानने वाले ॥२८२॥ ८८०. **अनन्त स्वर्णयोगैकेहेमपूर्णाखिलद्विजः=** अनन्त सुवर्ण की दक्षिणाओं से युक्त यागों का अनुष्ठान कराकर सम्पूर्ण ब्राह्मणों को सुवर्ण से सम्पन्न करने वाले, ८८१. **असाध्यैकजगच्छास्ता=** किसी के वश में नहीं होने वाले सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र प्रशासक, ८८२. **विश्वबन्ध्यः=** सम्पूर्ण विश्व को अपनी माया से बाँधने वाले, ८८३. **जयध्वजः** सर्वत्र अपनी विजय पताका फहराने वाले ॥२८३॥ ८८४. **आत्मतत्त्वाधिपः=** आत्मतत्त्व के स्वामी, ८८५. **कर्तृश्रेष्ठः=** समस्त करने वालों में श्रेष्ठ, ८८६. **विधिः** शास्त्रीय विधि स्वरूप, ८८७. **उमापतिः=** उमा के स्वामी, ८८८. **भर्तृश्रेष्ठः=** भरण पोषण करने वालो में सबसे श्रेष्ठ, ८८९. **प्रजेशाग्र्यः=** प्रजापतियों में सबसे श्रेष्ठ, ८९०. **मरीचिः=** मरीचि नामक प्रजापति रूप, ८९१. **जनकाग्रणीः=** जन्म देने वाले प्रजापतियों में सर्वश्रेष्ठ ॥२८४॥ ८९२. **कश्यपः=** कश्यप महर्षि स्वरूप, ८९३. **देवराट्=** देवताओं के राजा, ८९४. **इन्द्रः=** परम ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र स्वरूप, ८९५. **प्रह्लादः=** परम आह्लाद पूर्ण रहने वाले प्रह्लाद स्वरूप, ८९६. **दैत्यराट्=** दैत्यों के राजा प्रह्लाद स्वरूप, ८९७. **शशी=** चन्द्रमा शरीरक, ८९८. **नक्षत्रेशः=** नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमारूप, ८९९. **रविः=** सूर्यस्वरूप, ९००. **तेजः श्रेष्ठः=** श्रेष्ठ तेज स्वरूप, ९०१.

विद्वत्तमश्चित्ररथो गन्धर्वाग्र्योऽक्षरोत्तमः। वर्णादिरग्र्यस्त्री गौरीशक्त्यग्र्याश्रीश्चनारदः ॥२८७॥
देवर्षिराट् पाण्डवाग्र्योऽर्जुनो वादः प्रवादराट्।
पवनः पवनेशानो वरुणो यादसांपतिः ॥२८८॥
गङ्गातीर्थोत्तमो द्यूतं छलकाग्र्यं वरौषधम्। अन्नं सुदर्शनोऽस्त्राग्र्युं वज्रं प्रहरणोत्तमम्॥२८९॥
उच्चैःश्रवा वाजिराज ऐरावत इभेश्वरः। अरुन्धत्येकपत्नीशो ह्यश्वत्थोऽशेषवृक्षराट् ॥२९०॥
अध्यात्मविद्याविद्याग्र्यः प्रणवश्छन्दसां वरः।
मेरुर्गिरिपतिर्मार्गो मासाग्र्युः कालसत्तमः ॥२९१॥

शुक्रः= शुक्राचार्य स्वरूप, १०२. **कवीश्वरः**= कवियों के स्वामी, १०३. **महर्षिराट्**= महर्षियों में सर्वश्रेष्ठः १०४. **भृगुः**= ब्रह्माजी के पुत्र भृगु स्वरूप, १०५. **विष्णुः**= बारह आदित्यों में से एक, १०६. **आदित्येशः**= सूर्य के स्वामी, १०७. **बलिस्वराट्**= राजा बलि को इन्द्र बनाने वाले, १०८. **वायुः**= वायु के अधिष्ठाता, १०९. **बह्निः**= अग्नि तत्त्व के अधिष्ठाता, ११०. **शुचिश्रेष्ठः**= सर्वश्रेष्ठ पवित्र, १११. **शङ्करः**= सबों का कल्याण करने वाले शिवस्वरूप, ११२. **रुद्रराट्**= एकादशरुद्रों के स्वामी, ११३. **गुरुः**= महर्षि अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति स्वरूप ॥२८५-२८६॥ ११४. **विद्वत्तमः**= विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ, ११४. **चित्ररथः**= गन्धर्वों के राजा चित्ररथस्वरूप, ११५. **गन्धर्वाग्र्यः**= गन्धर्वों में सर्वश्रेष्ठ, ११६ **अक्षरोत्तमः**= अक्षरों में उत्तम ओङ्कार स्वरूप, ११७. **वर्णादिः**= वर्णों में प्रथम आकार स्वरूप, ११८. **अग्रयस्त्री**= स्त्रियो में सर्वश्रेष्ठ, ११९. **गौरी**= पार्वती स्वरूप, १२०. **शक्त्यग्र्या**= भगवान् की शक्तियों में श्रेष्ठ लक्ष्मी स्वरूप, १२१. **श्रीः**= भगवान् विष्णु की पत्नी श्रीदेवी स्वरूप, १२२. **नारदः**= सबों के ज्ञान देने वाले नारद स्वरूप ॥२८७॥ १२३. **देवर्षिराट्**= देवर्षियों के स्वामी, १२४. **पाण्डावाग्र्यः**= अपने गुण के कारण पाण्डवों में सर्वश्रेष्ठ अर्जुन स्वरूप, १२५. **अर्जुनः**= अर्जुन स्वरूप, १२६. **वादः**= तत्त्व निर्णय की दृष्टि से किए जाने वाले शास्त्रार्थ स्वरूप, १२७. **प्रवादराट्**= उत्तमवाद करने वालों में श्रेष्ठ, १२८. **पावनः**= सबको पवित्र बनाने वाले, १२९. **पवनेशानः**= पवित्र वस्तुओं के स्वामी, १३०. **वरुणः**= जल के अधिष्ठातृ देवता वरुण स्वरूप, १३१. **यादसांपतिः**= जल-जन्तुओं के स्वामी ॥२८८॥ १३२. **गङ्गा**= भगवद् विभूति गङ्गानदी स्वरूप, १३३. **तीर्थोत्तमः**= तीर्थों में उत्तम गङ्गा स्वरूप, १३४. **द्युत्तम्**= भगवद् विभूतिभूत द्यूतरूप, १३५. **छलकाग्र्यम्**= छल की पराकाष्ठा जूआ रूप, १३६. **वरौषधम्**= औषधियों में श्रेष्ठ जीवन रक्षक अन्न स्वरूप ॥२८९॥ १३७. **अन्नम्**= अन्न स्वरूप, १३८. **सुदर्शनः**= सुदर्शन चक्र स्वरूप, १३९. **अस्त्राग्रयम्**= अस्त्रों में सर्वश्रेष्ठ सुदर्शन चक्र स्वरूप, १४०. **वज्रम्**= इन्द्र के आयुध वज्र स्वरूप, १४१. **प्रहरणोत्तमम**= अस्त्रों में सर्वश्रेष्ठ वज्र स्वरूप ॥२८९॥ १४२. **उच्चैःश्रवा**= ऊँचे कानों वाला दिव्य अश्व, १४३. **वाजिराजः**= अश्वों में सर्वश्रेष्ठ, १४४. **ऐरावतः**= समुद्र से निस्सृत इन्द्र का हाथी, १४५. **इभेश्वरः**= हाथियों के स्वामी ऐरावत स्वरूप, १४६. **अरुन्धती**= पतिव्रताओं में श्रेष्ठ अरुन्धती, १४७. **एकपत्न्येशः**= महर्षियों मे श्रेष्ठ अरुन्धती के पति वसिष्ठ, १४८. **अश्वत्थः**= पीपलवृक्ष स्वरूप, १४९. **अशेषवृक्षराट्**= सम्पूर्ण वृक्षों के स्वामी पिपल समूह स्वरूप ॥२९०॥ १५०. **अध्यात्मविद्या**= आत्म तत्त्व का ज्ञान कराने वाली अध्यात्म विद्या, १५१. **विद्याग्र्यः**= सभी विद्याओं में श्रेष्ठ १५२. **प्रणवः**= ओङ्कार स्वरूप, १५३. **छन्दसांवरः**= वेदों

दिनाद्यात्मा पूर्वसिद्धः कपिलः सामवेदराट् ।
ताक्ष्र्यः खगेन्द्रऋत्वग्यो वसन्तः कल्पपादपः ॥२९२॥
दातृश्रेष्ठः कामधेनुरार्तिघ्नाग्यः सुहृत्तमः । चिन्तामणिर्गुरुश्रेष्ठो माता हिततमः पिता ॥२९३॥
सिंहो मृगेन्द्रो नागेन्द्रो वासुकिर्नृवरो नृपः । वर्णेशो ब्राह्मणश्चेतःकरणाग्यं नमोनमः ॥२९४॥
इत्येतद्वासुदेवस्य विष्णोर्नामसहस्त्रकम् । सर्वापराधशमनं परं भक्तिविवर्धनम् ॥२९५॥
अक्षयं ब्रह्मलोकादिसर्वस्वर्गैकसाधनम् । विष्णुलोकैकसोपानं सर्वदुःखविनाशनम् ॥२९६॥
समस्तसुखदं सद्यः परनिर्वाणदायकम् । कामक्रोधादिनिःशेषमनोमलविशोधनम् ॥२९७॥
शान्तिदं पावनं नृणां महापातकिनामपि । सर्वेषां प्राणिनामाशु सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥२९८॥
समस्तविघ्नशमनं सर्वारिष्टविनाशनम् । घोरदुःखप्रशमनं तीव्रदारिद्र्यनाशनम् ॥२९९॥
ऋणत्रयापहं गुह्यं धनधान्ययशस्करम् । सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वसिद्धिदं सर्वधर्मदम् ॥३००॥

का आदिभूत ओङ्कार स्वरूप, **९५४. मेरुः=** प्रर्वतों में श्रेष्ठ सुमेरु पर्वत स्वरूप, **९५५. गिरिपतिः=** पर्वतों के राजा, **९५६. मार्गः=** मार्गशीर्ष अगहन का महीना स्वरूप, **९५७. मासाग्र्यः=** सभी महीनों में श्रेष्ठ भगवद् विभूति रूप मार्गशीर्ष मास, **९५८. कालसत्तमः=** कालों में सर्वश्रेष्ठ ब्राह्ममुहूर्त ॥२९१॥ **९५९. ताक्ष्र्यः=** गरुड स्वरूप, **९६०. खगेन्द्रः=** पक्षियों के स्वामी गरुड स्वरूप, **९६१. ऋत्वग्र्यः=** ऋतुओं में श्रेष्ठ वसन्त ऋतुरूप, **९६२. वसन्तः=** वसन्त ऋतु स्वरूप, **९६३. कल्पपादपः=** कल्पवृक्ष स्वरूप॥२९२॥ **९६४. दातृश्रेष्ठः=** दाताओं में श्रेष्ठ, **९६५. कामधेनुः=** भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाले, **९६६. आर्तिघ्नाग्र्यः=** दुःख दूर करने वालों में श्रेष्ठ, **९६७. सुहृत्तमः=** सबों के उत्तम मित्र, **९६८. चिन्तामणिः=** मन में चिन्तन की हुयी इच्छा को पूर्ण करने वाली भगवत्स्वरूप दिव्य मणि स्वरूप, **९६९. गुरुश्रेष्ठः=** गुरुओं में श्रेष्ठ, **९७०. माता=** सम्पूर्ण जगत् को जन्म देने वाले मातृरूप, **९७१. हिततमः=** सबसे बड़े हितकारी, **९७२. पिता=** सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले पिता स्वरूप॥२९३॥ **९७३. सिंहः=** सिंह स्वरूप, **९७४. मृगेन्द्रः=** समस्त पशुओं के राजा सिंह स्वरूप, **९७५. नाग्रेन्द्र=** नागों के राजा, **९७६. वासुकिः=** नागों के राजा वासुकी रूप, **९७७. नृवरः=** मनुष्यों में श्रेष्ठ, **९७८. नृपः=** प्रजाओं का पालन करने वाले राजा रूप, **९७९. वर्णेशः=** सभी वर्णों के स्वामी ब्राह्मण स्वरूप, **९८०. ब्राह्मणः=** ब्रह्मज्ञानी, **९८१. चेतः=** चिन्तन की शक्ति सम्पन्न चित्त स्वरूप, **९८२. करणाग्र्यम्=** इन्द्रियों के प्रेरक होने के कारण उनमें सबसे श्रेष्ठ इन सभी नामों को बारम्बार नमस्कार है ।

नोट- मोर प्रकाशन और नाग प्रकाशन में विष्णु सहस्त्रनाम में पाठ भेद है श्लोक भी कम अधिक है । इसीलिए यहाँ नाम कम हो गये हैं । नाग प्रकाशन में पूरे १००० नाम हैं ।

यह भगवान् विष्णु का सहस्रनाम स्तोत्र है । यह सभी अपराधों को शान्त करने वाला तथा भक्तिवर्धक है ॥२९४-२९५॥ अक्षय ब्रह्मलोक का कारण स्वरूप सभी स्वर्गों की प्राप्ति का साधन है । यह विष्णु लोक की प्राप्ति का सोपान स्वरूप है तथा सभी दुःखों का विनाश करने वाला है ॥२९६॥ यह सभी प्रकार के सुखो को देने वाला है, शीघ्र ही परम शान्ति को देने वाला है मन के काम, क्रोध आदि समस्त दोषों को दूर करने वाला है ॥२९७॥ यह शान्ति प्रदान करने वाला है, महापातकी मनुष्यों को भी पवित्र करने वाला, और सभी प्राणियों को समस्त अभीष्ट वस्तु प्रदान करने वाला है ॥२९८॥ यह समस्त विघ्नों को

तीर्थयज्ञतपोदानव्रतकोटिफलप्रदम् । जगज्जाड्यप्रशमनं सर्वविद्याप्रवर्त्तकम् ॥३०१॥
राज्यदं भ्रष्टराज्यानां रोगिणां सर्वरोगहृत्। वन्ध्यानां सुतदं चायु क्षीणानां जीवितप्रदम्॥३०२॥
भूतग्रहविषध्वंसि ग्रहपीडाविनाशनम् । माङ्गल्यं पुण्यमायुष्यं श्रवणातपठनाज्जपात्॥३०३॥

सकृदस्याखिला वेदाः साङ्गा मन्त्राश्च कोटिशः ।
पुराणशास्त्रस्मृतयः श्रुताः स्युः पठितास्तथा ॥३०४॥
जप्त्वा चैकाक्षरं श्लोकं पादं वा पठति प्रिये ।
नित्यं सिध्यति सर्वेष्टमचिरात्किमुताखिलम् ॥३०५॥

नानेन सदृशं सद्यःप्रत्ययं सर्वकर्मसु । इदं भद्रे त्वया गोप्यं पाठ्यं स्वार्थैकसिद्धये॥३०६॥
नरावैष्णवाय दातव्यं विकल्पोपहतात्मने। भक्तिश्रद्धाविहीनाय विष्णुसामान्यदर्शिने ॥३०७॥
देयं पुत्राय शिष्टाय सुहृदे हितकाम्यया। मत्प्रसादादृतेनेदं ग्रहीष्यन्त्यल्पमेधसः ॥३०८॥

कलौ सद्यः फलं कल्पग्रामं नेष्यति नारदः ।
लोकानां भाग्यहीनां येन दुःखं विनश्यति ॥३०९॥
द्वित्रेषु वैष्णवेष्येतदार्यावर्ते भविष्यति ।
नास्ति विष्णोः परं धाम नास्ति विष्णोः परं तपः ॥३१०॥

शान्त करने वाला है, सारे अरिष्टों का नाश करने वाला है । भयङ्कर दुःख को शान्त करने वाला है और भयङ्कर दारिद्रय का नाश करने वाला है ॥२९९॥ तीनों ऋणों का रहस्यात्मक नाशक है, धन, धान्य और यश को बढ़ाने वाला है । सभी ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाला है, सभी सिद्धियों को देने वाला है, तथा सभी पुण्यों को प्रदान करने वाला है ॥३००॥ करोड़ों तीर्थों, यज्ञों, तपस्याओं, दानों ओर व्रतों का फल प्रदान करने वाला है । संसार के अज्ञान को विनष्ट करने वाला है तथा सभी विद्याओं का प्रर्वतक है॥३०१॥ जिसका राज्य नष्ट हो गया हो उसको राज्य प्रदान करने वाला है, रोगियों के सभी रोगों को नष्ट करने वाला है बन्ध्या स्त्रियों को पुत्र प्रदान करने वाला है । क्षीण आयु वालों को आयु प्रदान करने वाला है॥३०२॥ भूतों, ग्रहों तथा विषों को विनष्ट करने वाला तथा ग्रहों से होने वाली पीड़ा को विनष्ट करने वाला है । इसका पाठ करने वाले तथा सुनने वालों को यह मङ्गलमय तथा पवित्र आयु देने वाला है, इसका एकबार पाठ करने मात्र से अङ्गों सहित सारे वेदों, करोड़ों मन्त्रों, पुराणों, शास्त्रों तथा स्मृतियों के श्रवण करने और पढ़ने का फल प्राप्त हो जाता है ॥३०३-३०४॥ हे प्रिये ! पार्वति इसके एक अक्षर, श्लोक का एक चरण अथवा एक श्लोक पढ़ने वाला सिद्ध हो जाता है, तथा शीघ्र ही उसके समस्त अभिप्रेत अर्थों की प्राप्ति हो जाती है ॥३०५॥ हे कल्याणमयि ! इसके समान सभी कर्मों में ज्ञान प्रदान करने वाला कोई साधन नहीं है । अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए तुम्हें गुप्त रखकर पाठ करना चाहिए॥३०६॥ इसे अवैष्णवों तथा संशयग्रस्तों को नहीं बतलाना चाहिए । जो भक्ति और श्रद्धा से रहित तथा भगवान् विष्णु को सामन्य देवता माने उसे भी नहीं बतलाना चाहिए ॥३०७॥ पुत्र, शिष्य तथा मित्र का कल्याण करने की इच्छा से बतलाना चाहिए । कोई भी अल्पबुद्धि वाला मेरी कृपा के बिना इसे नहीं प्राप्त कर सकता है ॥३०८॥ हे नारद ! यह कलियुग में सद्यःफल देने वाला तथा कलापग्राम में ले जायेगा । जिसके कारण भाग्यहीन मनुष्यों का दुःख विनष्ट हो जायेगा ॥३०९॥ इसे दो तीन वैष्णव इसका अनुष्ठान करेंगे।

नास्ति विष्णोः परो धर्मो नास्ति मन्त्रो ह्यवैष्णवः ।
नास्ति विष्णोः परं सत्यं नास्ति विष्णोः परो मखः ॥३११॥
नास्ति विष्णोः परं ध्यानं नास्ति विष्णोः परागतिः ।
किं तस्य बहुभिमन्त्रै शासत्रैर्वा बहुविस्तरैः ॥३१२॥
वाजपेयसहस्त्रैर्वा भक्तिर्यस्य जनार्दने । सर्वतीर्थमयो विष्णुः सर्वशास्त्रमयः प्रभुः ॥३१३॥
सर्वक्रतुमयो विष्णुः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
आब्रह्मसारसर्वस्वं सर्वमेतन्मयोदितम् ॥३१४॥

पार्वत्युवाच

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि कृतार्थाऽस्मि जगत्पते ! ।
यन्मयेदं श्रुतं स्तोत्रं त्वद्रहस्यं सुदुर्लभम् ॥३१५॥
अहो व्रत महत्कष्टं समस्तदुःखहे हरौ। विद्यमानेऽपि देवेशे मूढाः क्लिश्यन्ति संसृतौ॥३१६॥
यमुद्दिश्य सदानाथ महेशोऽपि दिगम्बरः । जटिलो भस्मलिप्ताङ्गो तपस्वी वीक्ष्यते जनैः॥३१७॥
ततोऽधिकोऽस्ति देवः को लक्ष्मीकान्तान्मधुद्विषः ।
यत्तत्वं चिन्त्य ते नित्यं त्वया योगेश्वरेण हि ॥३१८॥
ततः परं किमधिकं पदं श्रीपुरुषोत्तमात्। तमविज्ञाय कं मूढा यजन्ते ज्ञानिमानिनः ॥३१९॥
मुषिताऽस्मि त्वया नाथ चिरं यदयमीश्वरः । प्रकाशितो न मे यस्मात्त्वदाद्या दिव्यशत्तयः॥३२०॥
अहो सर्वेश्वरो विष्णुः सर्वदेवोत्तमोत्तमः । भवदादिगुरुर्मूढैः सामान्य इव वीक्ष्यते ॥३२१॥

विष्णु से बढ़कर कोई श्रेष्ठ धाम नहीं है और विष्णु भगवान् से बढकर कोई श्रेष्ठ तप नहीं है ॥३१०॥ भगवान् विष्णु से बढकर धर्म नहीं है और कोई भी मन्त्र अवैष्णव नहीं हैं । विष्णु भगवान् से बढ़कर कोई सत्य नहीं है और न तो भगवान् विष्णु से बढ़कर कोई यज्ञ है ॥३११॥ भगवान् विष्णु के ध्यान से बढ़कर कोई ध्यान नहीं है भगवान् विष्णु से बढ़कर कोई श्रेष्ठ प्राप्य नहीं है । जिसकी भगवान् जनार्दन में भक्ति है उसको अनेक मन्त्रों के जपने से या अनेक विस्तृत शास्त्रों को पढ़ने से हजारों वाजपेय यज्ञों को करने से क्या लाभ है ? भगवान् विष्णु सर्वतीर्थ स्वरूप तथा सर्वशास्त्र स्वरूप, सबों के स्वामी हैं ॥३१२-३१३॥ मैं परं सत्य कहता हूँ कि भगवान् विष्णु सम्पूर्ण क्रतु स्वरूप हैं । ब्रह्म पर्यन्त सबों के सार हैं मैंने तुम्हे सारी बातें बता दी ॥३१४॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे जगत्पते ! मैं धन्य, अनुगृहीत तथा कृतार्थ हो गयी, क्योंकि आपने मुझे इस अत्यन्त दुर्लभ रहस्य को सुनाया है ॥३१५॥ यह अत्यन्त कष्ट की बात है कि सभी दुःखों को दूर करने वाले तथा देवों के स्वामी श्रीहरि के विद्यमान रहने पर भी अज्ञानी जीव इस संसार में कष्टों को सहते रहते हैं ॥३१६॥ जिनका नाम लेकर दिगम्बर जटाधारी, तथा शरीर में भस्म लपेटे रहने वाले शिवजी को लोग तपस्वी मानते हैं ॥३१७॥ उन लक्ष्मीजी के पति भगवान् मधुसूदन से बढ़कर कौन देवता हो सकता है, जिस तत्त्व का योगेश्वर आप भी सदा चिन्तन करते हैं ॥३१८॥ श्रीपुरुषोत्तम भगवान् से श्रेष्ठ प्राप्य क्या हो सकता है ? उनको जाने बिना अज्ञानी जीव अपने को ज्ञानी मानकर किसकी पूजा करते हैं ॥३१९॥ हे नाथ ! आपने मुझको बहुत दिनों तक ठगा, क्योंकि आपने अपनी आदि तथा दिव्य शक्तियों को मुझें नहीं बतलाया ॥३२०॥ अरे ! भगवान् विष्णु सबों के स्वामी,

महीयसां हि माहात्म्यं भजमानान्भजन्ति ते ।
द्विषतोऽपि वृथा पापानुपेक्षन्ते क्षमान्विताः ॥३२२॥
मयापि बाल्ये स्वपितुः प्रजा दृष्ट्वा बुभुक्षिताः ।
दुःखादशक्तया पोष्टुं श्रियमाराध्य वै भृताः ॥३२३॥
तया संनिहिताभ्याश्च प्रजाभ्यो भवदादयः । विलसन्ति सशक्राद्याः समुहृन्मित्रबान्धवाः ॥३२४॥
तया बिना क्व देवत्वं क्वैश्वर्यं क्व परिग्रहः ।
सर्वे भवन्ति जीवन्तो यातनास्वेव संस्थिताः ॥३२५॥
तामृतेनैव धर्मोऽर्थः कामो मोक्षोऽपि दूरतः ।
क्षुधितानांदुर्गतानां कुतोयोगसमाधयः ॥३२६॥
स च संसारसारैकः सर्वलोकैकनायकः । वशगा कमला यस्य त्यक्त्वात्वामपि शङ्कर॥३२७॥
अनौद्धत्येन शौचेन रूपेणार्जवसंवदा। सर्वातिशयवीर्येण संपूर्णस्य महात्मनः॥३२८॥
अस्तेन तुल्यतामेति देवदेवेन विष्णुना। यस्यांशांशावतारेण बिना सर्वं विलीयते॥३२९॥
जगदेतत्तथाप्याहुर्दोषायैतद्विमोहिताः । नास्य जन्म न वा मृत्युर्नाप्राप्यं स्वार्थमेव च॥३३०॥
कामाद्यासक्तचित्तत्वात्किंतु सर्वेश्वर प्रभो। त्वन्मयत्वात्प्रमादाद्वा शक्नोमि पठितुं न चेत्॥३३१॥
विष्णोः सहस्रनामैतत्प्रत्यहं वृषभध्वज। नाम्नैकेनं तु येन स्यात्तत्फलं ब्रूहि मे प्रभो॥३३२॥

सभी देवताओं से उत्तम और आपके आदि गुरु हैं और अज्ञानी जीव उन्हें सामान्य देवता के समान जानते हैं ॥३२१॥ वे महान् लोगों द्वारा सेवित देवताओं के माहात्म्य की सेवा करते हैं । क्षमाशील वे व्यर्थ द्वेष करने वाले पापियों की उपेक्षा कर देते हैं ॥३२२॥ मैंने भी बाल्यावस्था में अपने पिता की प्रजाओं को भूखो देखकर उनका पोषण करने में असमर्थ दुःखी हो गयी और लक्ष्मीजी की आराधना करके उनका पालन पोषण की ॥३२३॥ लक्ष्मीजी की सन्निधि में रहने वाली प्रजाओं से आपलोगों की प्रजाएँ इन्द्र आदि अपने मित्रों तथा बान्धवों के साथ विलास करती हैं ॥३२४॥ उन लक्ष्मीजी के बिना देवत्व, ऐश्वर्य तथा परिग्रह इत्यादि कैसे हो सकते है ? उनके विना सवके सव नरकों में पड़े रहकर जीवित रहते हैं ॥३२५॥ उन लक्ष्मीजी के बिना धर्म नहीं हो सकता, काम और मोक्ष की प्राप्ति तो बहुत दूर की बात है । भूखे तथा दुर्गति ग्रस्त जीव योग और समाधि कैसे कर सकते हैं ?॥३२६॥ भगवान् विष्णु ही संसार के एकमात्र सार स्वरूप हैं, वे सभी लोगों के एकमात्र नेता हैं । हे शङ्करजी ! आपको भी त्यागकर लक्ष्मीजी उनकी ही वशवर्तिनी हैं ॥३२७॥ उद्धतता के अभाव, पवित्रता, रूप, सदैव ऋजुता, सबों का अतिक्रमण करने वाले सम्पूर्ण पराक्रम देवराध्य महात्मा विष्णु के सदृश कौन हो सकता है ? उनके अत्यन्त छोटे से अंशावतार के बिना सब कुछ विनष्ट हो जाता है ॥३२८-३२९॥ फिर भी उनकी माया से मोहित जीव उनमें यह दोष वतलाते हैं कि उनका जन्म होता है और न उनकी मृत्यु होती है । उनको कुछ भी अप्राप्य नही है । वे स्वार्थ के लिए ही सब कुछ करते हैं ॥३३०॥ किन्तु हे सर्वेश्वर प्रभो ! काम आदि में चित्त के आसक्त रहने के कारण अथवा आपमें ही लगे रहने के कारण यदि मैं सम्पूर्ण विष्णु सहस्रनाम का पाठ प्रतिदिन नहीं कर सकूँ तो आप भगवान् विष्णु के उस नाम को बतलाइये, जिसका स्मरण कर लेने से सम्पूर्ण विष्णु

महादेव उवाच

रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥३३३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे विष्णोर्नामसहस्रनामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

बहत्तरवाँ अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

ब्राह्मणा वा क्षत्रिया वा वैश्या वा गिरिकन्यके ।
शूद्रा वाथ विशेषेण पठन्त्यनुदिनंयदि ॥१॥
धनधान्यसमायुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ।
श्लोकं वा श्लोकमर्धं वा पादं पादार्धमेव वा ॥२॥
पठनान्मोक्षमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम्। विन्यासेन युतं देवि विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥३॥
ये पठन्ति नरश्रेष्ठास्ते यान्ति पदमव्ययम् । एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वाऽथ यः पठेत्॥४॥
धनायुर्वर्धते तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश । पुत्रपौत्रांस्तथा लक्ष्मीं संपदं विपुलां लभेत् ॥५॥
किमन्यद्बहुनोक्तेन भूयो भूयो वरानने । विष्णोर्नामसहस्रं तु परं निर्वाणदायकम् ॥६॥

नाम के पाठ का फल मिले ॥३३१-३३२॥ **महादेवजी ने कहा—** हे सुन्दरि ! भगवान् राम का दो चार वार नाम का स्मरण ही सहस्रनाम स्तोत्र के पाठ के समान फल देता है ॥३३३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत विष्णु सहस्रनाम वर्णन नामक एकहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७१॥

विष्णुसहस्रनाम की महिमा का वर्णन

श्रीमहादेवजी ने कहा— हे पार्वति ! यदि कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र इस विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करता है तो ॥१॥ वह लोग में धन-धान्य से सम्पन्न होकर अन्त में भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । एक श्लोक या आधा श्लोक या श्लोक के एक चरण या आधा चरण प्रतिदिन पढ़ता है तो उसे मोक्ष की प्राप्ति महाप्रलय काल तक के लिए होती है । हे देवि ! इस स्तोत्र के न्यास पूर्वक पाठ करने वाले लोग सर्वदा के लिए मुक्त हो जाते हैं । यदि कोई विष्णुसहस्र नाम का पाठ एक बार या दो बार या तीन बार करता है तो ॥२-४॥ चौदह इन्द्रों के काल तक उसकी आयु और धन बढ़ते हैं और वह विपुल मात्रा में पुत्र, पौत्र, लक्ष्मी तथा सम्पत्ति को प्राप्त करता है ॥५॥ हे सुन्दरि ! दूसरी बहुत सी बातें कहने से क्या लाभ है ? श्रीविष्णुसहस्रनाम स्तोत्र परमामुक्ति को प्रदान करता है ॥६॥ जिस मनुष्य ने विष्णु सहस्रनाम की पूजा की है, उसको पूरे वर्ष भर भगवान् विष्णु की

पूजनं प्रथमं तस्य कृतं येन नरेण तु। संपूर्णं पूजिते विष्णौ तस्य पूजा च वार्षिकी ॥७॥
व्यग्रत्वं च न कर्त्तव्यं पठने तु विशेषतः। यदि चेत्क्रियते पाठे ह्यायुवित्तं च नश्यति ॥८॥
यावन्ति भुवि तीर्थानि जम्बूद्वीपेषु सर्वदा। तानि तीर्थानि तत्रैव विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥९॥
तत्रैव गङ्गा यमुना त्रिवेणी गोदावरी तत्र सरस्वती च ।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्र स्थितं नाम सहस्रकं तत् ॥१०॥
इदं पवित्रं परमं भक्तानां बल्लभं सदा । ध्येयं हि दासभावेन भक्तिभावेन चेतसा ॥११॥
परं सहस्रनामाख्यं ये पठन्ति मनीषणः। सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति हरिसंनिधौ ॥१२॥
अरुणोदयकाले तु ये पठन्ति जपन्ति च। आयुर्बलं चे तेषां श्रीर्वर्धते च दिनेः दिनेः ॥१३।
रात्रौ जागरणे प्राप्ते कलौ भागवतो नरः। पठनान्मुक्तिमाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१४॥
एकैकेन तु नाम्ना वै हरौ तुलसिकारणात्। पूजा सा चैवविज्ञेया कोटियज्ञफलाधिका॥१५॥
मार्गे च गच्छमानास्तु ये पठन्ति द्विजातयः ।
न दोषा मार्गजास्तेषां भवन्ति किल पार्वति ! ॥१६॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि महात्म्यं केशवस्य तु ।
ये शृण्वन्ति नरश्रेष्ठास्ते पुण्याः पुण्यरुपिणः ॥१७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां सहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे सहस्रनाममहिमा नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

पूजा करने का फल प्राप्त होता है ॥७॥ विष्णु सहस्रनाम का पाठ करने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए, यदि कोई उसमें शीघ्रता करता है तो उसके आयु और धन का नाश होता है ॥८॥ जम्बूद्वीप में जितने तीर्थ हैं वे सभी तीर्थ विष्णु सहस्रनाम में है ॥९॥ जहाँ पर विष्णु सहस्रनाम का पाठ होता है वहाँ ही गङ्गा, यमुना, त्रिवेणी, गोदावरी और सरस्वती इत्यादि सभी तीर्थो का निवास होता है ॥१०॥ यह स्तोत्र अत्यन्त पवित्र और भक्तों को प्रिय है इसका सदा भक्तिभाव पूर्वक तथा दास भाव से ध्यान करना चाहिए॥११॥ जो बुद्धिमान पुरुष सदा विष्णु सहस्रनाम का पाठ करते हैं वे समस्त पापों से मुक्त होकर श्रीहरि के लोक में जाते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य अरुणोदय काल मे इसका पाठ और जप करते है उनकी आयु, बल तथा लक्ष्मी प्रतिदिन बढ़ती हैं ॥१३॥ कलियुग में रात्रि में जागने के समय जो भागवत लोग इस स्तोत्र का पाठ करते हैं वे इसका पाठ करने मात्र से पूरे कल्प पर्यन्त के लिए मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥१४॥ पूजा करते समय भगवान् के प्रत्येक नाम के साथ भगवान् पर तुलसी चढ़ाने से वहाँ की जाने वाली पूजा करोड़ों यज्ञों से प्राप्त होने वाले फल से अधिक फल प्रदान करती है ॥१५॥ जो ब्राह्मण रास्ते में चलते समय इसका पाठ करते हैं, हे पार्वति ! उनको रास्ते में होने वाले दोष नहीं लगते हैं ॥१६॥ हे देवि ! मैं भगवान् केशव का माहात्म्य बतलाता हूँ उसे तुम सुनो । जो श्रेष्ठ मनुष्य इसका श्रवण करते हैं वे पवित्र मनुष्य मूर्तिमान पुण्य रूप हैं ॥१७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तरखण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत विष्णु सहस्रनाम की महिमा का वर्णन नामक बहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७२॥

तिहतरवाँ अध्याय

महादेव उवाच

ॐ रामरक्षास्तोत्रस्य श्रीमहर्षिविश्वामित्रऋषिः । श्रीरामो देवता । अनुष्टुप्छन्दः विष्णुप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम्। ध्यात्वा वै पुण्डरीकाक्षं श्रीरामं विष्णुमव्ययम् ॥१॥

पातु मे हृदयं रामः श्रीकण्ठः कण्ठमेव च ।
नाभिं पातु मखत्राता कटिं मे विश्वरक्षकः ॥२॥
करौ पातु दाशरथिः पादौ मे विश्वरूपधृत् ।
चक्षुषी पातु वै देवस्सीतापतिरनुत्तमः ॥३॥
शिखां मे पातु विश्वात्मा कर्णौ मे पातु कामदः ।
पार्श्वयोस्तु सुरत्राता कालकोटिदुरासदः ॥४॥

अनन्तः सर्वदा पातु शरीरं विश्वनायकः । जिह्वां मे पातु पापघ्नो लोकशिक्षाप्रवर्त्तकः ॥५॥
राघवः पातु मे दन्तान्केशांत्रक्षतु केशवः। सक्थिनीपातु मे दत्तविजयो नाम विश्वसृक्॥६॥
एतां रामबलोपेतां रक्षां यो वै पुमान्पठेत् । स चिरायुःसुखी विद्वान्लभते दिव्यसंपदम् ॥७॥

रक्षां करोति भूतेभ्यः सदा रक्षातु वैष्णवी ।
रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति यः स्मरेत् ॥८॥

श्रीराम रक्षा स्तोत्र

महादेवजी ने कहा— श्रीरामरक्षा स्तोत्र के महर्षि विश्वामित्र ऋषि हैं, श्रीरामचन्द्रजी इसके देवता हैं। इसका अनुष्टुप छन्द है । भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए इसका पाठ करने में विनियोग है । अलसी के पुष्प के सदृश वर्ण वाले, पीताम्बरधारी, भगवान् अच्युत जो कमल के सदृश नेत्र वाले हैं श्रीराम स्वरूप निर्विकार भगवान् विष्णु का ध्यान करके इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए ॥१॥ मेरे हृदय की रक्षा श्रीराम करें, मेरे कण्ठ की रक्षा श्रीकण्ठ करें । यज्ञ रक्षक भगवान् मेरी नाभि की रक्षा करें और कमर की रक्षा विश्वरक्षक भगवान् करें ॥२॥ भगवान् दाशरथि मेरे दोनों हाथों की रक्षा करें । विश्वरूप को धारण करने वाले भगवान् मेरे दोनों पैरों की रक्षा करें । मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा सीताजी के पति श्रीभगवान् करें ॥३॥ विश्वात्मा भगवान मेरी शिखा की रक्षा करें और कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् मेरे दोनों कानों की रक्षा करें । देवताओं की रक्षा करने वाले भगवान् दोनों पार्श्व भाग की रक्षा करें जिनका करोड़ों काल भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं ॥४॥ विश्वनायक भगवान् अनन्त सदा मेरे शरीर की रक्षा करें । लोक शिक्षा के प्रवर्तक पाप नाशक भगवान् मेरी जिह्वा की रक्षा करें ॥५॥ मेरे दाँतों की रक्षा राघव करें और केशों की रक्षा भगवान् केशव करें और दत्त विजय नामक विश्व की सृष्टि करने वाले भगवान् मेरी सक्थियों की रक्षा करें ॥६॥ इस राम के बल से युक्त रक्षा का पाठ जो मनुष्य करता है, वह चिरायु, सुख और विद्वान् होता है । उसको दिव्य सम्पत्तियों की प्राप्ति होती है ॥७॥ वैष्णवी देवी मेरी रक्षा सदा भूतों से करती है जो मनुष्य, राम, रामभद्र तथा रामचन्द्र इन नामों का स्मरण करता है वह पापों से मुक्त होकर सार्वकालिक

विमुक्तः सनरः पापन्मुक्तिं प्राप्नोतित शाश्वतीम् ।
वसिष्ठेन त्विदं प्रोक्तं गुरवे विष्णुरूपिणे ॥९॥
ततो मे ब्रह्मणः प्राप्तं मयोक्तं नारदं प्रति। नारदेन तु भूलोक प्रापितं सुजनेष्विह॥१०॥
सुप्त्वा वाथ गृहे वापिमार्गे गच्छन्तएव वा। ये पठन्तिनरश्रेष्ठास्ते नराः पुण्यभागिनः॥११॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदं संवादे रामरक्षास्तोत्रं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

महादेव उवाच

श्रृणु देविप्रवक्ष्यामि धर्ममाहात्म्यमुत्तमम्। यच्छ्रुत्वा न पुनर्जन्म जायतेभुवि कर्हिचित् ॥१॥
धर्मादर्थं च कामं च मोक्षंचैव त्रयंलभेत्। तस्माद्धर्मसमीहेतविद्वान्यःसबुधःस्मृतः ॥२॥
तपसा चैव दानेन व्रतेन नियमेन च। तपसा प्राप्यते स्वर्ग सात्त्विकेन तथैव च॥३॥
इहायातो लभेद्राज्यं क्रोधलोभविवर्जितः ।
जन्मान्तरेण मुक्तिः स्यात्पद विन्दति वैष्णवम् ॥४॥
तप्तवा राजसेनेह राजसश्चैव जायते। तप्त्वा तामसभावेन क्रूरकर्मा हि निष्ठुरः॥५॥

परमामुक्ति को प्राप्त करता है । महर्षि वसिष्ठ ने इसको विष्णु स्वरूप अपने गुरु को सुनाया था ॥८-९॥ उन्होंने ब्रह्माजी से उसे प्राप्त किया, ब्रह्माजी ने मुझे सुनाया, मैंने नारदजी को सुनाया । नारदजी ने इसका सज्जनों में प्रचार किया ॥१०॥ सोकर या घर में अथवा मार्ग में चलते हुए जो मनुष्य इसका पाठ करते हैं वे मनुष्य पुण्यवान् हैं ॥११॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत श्रीराम रक्षा स्तोत्र का वर्णन नामक तिहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७३।।

धर्म प्रशंसा पूर्वक दान धर्म का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे देवि ! मैं धर्म का उत्तम माहात्म्य बतलाता हूँ उसे सुनो । उसके सुनने पर पृथिवी पर कहीं भी जन्म नहीं होता है ॥१॥ मनुष्य को धर्म से अर्थ, काम तथा मोक्ष इन तीनों की प्राप्ति होती है । इसीलिए जो धर्म प्राप्त करना चाहता है उसे विद्वान् और सुधी (सुन्दर बुद्धि वाला) कहा गया है । तपस्या, दान, व्रत और नियम तथा सात्त्विक तपस्या के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥२-३॥ पुनः वह इस संसार में आकर राज्य प्राप्त करता है । दूसरे जन्म में उसकी मुक्ति हो जाती है और वह भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करता है ॥४॥ राजस तपस्या करके मनुष्य राजस हो जाता है । तामस तपस्या करने

तपस्तद्रक्षसां चोक्तं भुक्तिदं तामसात्मनाम् । यत्तप्तं सात्त्विकं चैव तत्तपो भवति ध्रुवम् ॥६॥
रजस्तमोभ्यां नियतं तपस्यतां वने सतां वायुभुजां सुनिर्जने ।
तपस्विनां चैव धनादिवाञ्छतां वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम् ॥७॥
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपस्त्वकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते ।
निवृत्तरागस्य तपोवनं गृहं गृहाश्रमोऽतो गदितः स्वधर्मः ॥८॥
सुदुस्तरः सत्त्वजितेन्द्रियाणां संहन्यते श्रेष्ठतमः शुभाश्रमः ।
गृहस्तु धर्मः प्रवदो मनीषिणा ब्रह्मादिभिश्चाभिहितो नगात्मजे ! ॥९॥
तप्त्वा तपस्वी विपिने क्षुधार्तो गृहं समायाति सदान्नदातुः ।
भक्त्या स चान्नं प्रददाति तस्मै तपोविभागं भजते हि तस्य ॥१०॥
गृहाश्रमं ज्येष्ठमिहाश्रमाणां सम्यक्त्व चः पालयते मनुष्यः ।
इहैव भुञ्जन्स मनुष्यभोगान्स्वर्गं प्रयातीति न संशयोऽत्र ।
गृहं सदा पालयतां नराणां पापं समायाति कथं हि देवि ! ॥११॥
गृहाश्रमः पुण्यतमः सर्वदा तीर्थवद्गृहम् । अस्मिन्गृहाश्रमे पुण्ये दानं देयं विशेषतः ॥१२॥
देवानां पूजनं यत्र अतिथीनां च भोजनम् । पथिकानां च शरणमतो धन्यतमो मतः ॥१३॥
तद्गृहं तु समाश्रित्य येऽर्चयन्ति द्विजान्नराः ।
आयुर्लक्ष्मीस्तथा पुत्रा न हीयन्ते कदाचन ॥१४॥
श्रृणु सुन्दरि वक्ष्यामि महापापविशोधनम् । सर्वसंपत्करं दानमिहामुत्रफलप्रदम् ॥१५॥

वाला मनुष्य क्रूर कर्मों को करने वाला और निष्ठुर होता है ॥५॥ उस तपस्या को राक्षसों की तपस्या कहा गया है । वह तामस प्रकृति के लोगों को मुक्ति देने वाली होती है । जो सात्त्विक तप होता है वह निश्चल होता है ॥६॥ रजोगुण और तमोगुणी तपस्या करने वाले सज्जनों के वायु निर्जन वन में तपस्या करते हैं वे धन आदि को प्राप्त करना चाहते हैं, रागी पुरुषों को वन में राग उत्पन्न होते है ॥७॥ जो लोग घर में अपने पाँचों इन्द्रियों को निगृहीत कर तपस्या करते हैं, निन्दित कर्मों को नहीं करते हैं, उस राग रहित पुरुष के लिए गृह ही तपोवन होता है, इसीलिए गृहस्थाश्रम को स्वधर्म कहा गया है ॥८॥ सात्त्विक तथा जितेन्द्रिय पुरुषों के लिए संसार के बन्ध को पार करना आसान है, वह श्रेष्ठतम शुभाश्रय को प्राप्त कर लेता है । हे पार्वति! ब्रह्मा आदि मनीषियों ने गृह को धर्म बतलाया है ॥९॥ वन में तपस्या करके तपस्वी भूख लगने पर पवित्र अन्न देने वाले के घर भोजन करने आते हैं । वह उस तपस्वी को भक्ति पूर्वक अन्न देकर उसकी तपस्या को बाँट लेता है ॥१०॥ जो मनुष्य अच्छी तरह से गृह के धर्मो का पालन करता है वह इस लोक में मानवोचित भोगों को भोग कर अन्त में स्वर्ग जाता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है। हे देवि ! सदागृह धर्मो के पालन करने वाले के पास पाप कैसे आ सकता है ॥११॥ गृहाश्रम पवित्र है वह गृहतीर्थ के समान है । इस पवित्र गृहस्थाश्रम में विशेष रूप से दान देना चाहिए ॥१२॥ जिस गृह में देवताओं का पूजन होता है, अतिथियों को भोजन दिया जाता है और पथिकों को ठहरने के लिए शरण दिया जाता है, वह गृह धन्यतम कहा गया है ॥१३॥ उस गृह को अपनाकर जो मनुष्य ब्राह्मणों की पूजा करते हैं उनकी आयु, लक्ष्मी तथा पुत्र कभी नष्ट नहीं होते हैं ॥१४॥ हे सुन्दरि ! मैं महापापों को विनष्ट करने वाले सभी

शुभे काले समायाते समभ्यर्च्यस्वदैवतम्। नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा दद्याद्दानं स्वशक्तितः॥१६॥
गृहीत्वा परद्रव्यं च द्विजदेवेभ्य एव हि। दद्यात्सनिरयं दृष्ट्वा पश्चाद्याति परांगतिम्॥१७॥
शतानीको यथादानात्सपुत्रश्चैव तारितः। दत्त्वान्ये चद्विजेभ्यश्च सगन्ताधर्मतोदिवम्॥१८॥
धर्मस्थानेषु यैर्दत्तं तेषां धर्ममुदाहृतम्। शृणु देविप्रवक्ष्यामि वित्तदानं समासतः॥१९॥
देहशुद्धिकरं दानं न भूतं न भविष्यति। पापहीनो येन पुमाञ्जायते नात्र संशयः॥२०॥
भोगान्भुक्त्वा ततश्चायं याति विष्णुं सनातनम्।
पुरा वै ब्रह्मणा प्रोक्तं भार्गवाय महात्मने॥२१॥
पापयुक्ताय रामाय तुलावृषभमेव च। पापकर्मरतश्चैव बधबन्धक्रियो नृपः॥२२॥
अभक्ष्यभक्षणरतो भ्रूणहा गुरुतल्पगः। एतेऽप्यनृतवादी च प्रसूयन्ते वियोनिषु॥२३॥
अयाज्ययाजनं कृत्वा याजयित्वा तु निन्दितान्।
सदा कोपसमायुक्ताःसाधूनांपीडनेरताः॥२४॥
विश्वासोपहताश्चैषामसुभिधर्मनिन्दकाः। पापैरेभिःसमायुक्ता ज्ञात्वात्मानं गतायुषम्॥२५॥
इति ज्ञात्वा तु तैर्देवि दानंदेयं विशेषतः। बहवो धर्मकर्त्तारो वैष्णवा भुविविश्रुताः॥२६॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे दानधर्मो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥७४॥

सम्पत्तियों को प्रदान करने वाले और लोक तथा परलोक में फल देने वाले दान को बतलाता हूँ। इसे तुम सुनो॥१५॥ शुभ काल के आने पर अपने देवताओं की पूजा करके तथा नित्य नैमित्तिक क्रियाओं को करके अपनी शक्ति के अनुसार दान देना चाहिए॥१६॥ जो दूसरे के द्रव्य को लेकर ब्राह्मणों को दान देता है, वह नरक को देखकर परमगति को प्राप्त करता है॥१७॥ दान के द्वारा जैसे शतानीक अपने पुत्रों के साथ तर गये दूसरे लोग ब्राह्मणों को दान देकर अपने धर्म के द्वारा स्वर्ग लोक जाते हैं॥१८॥ जो लोग धार्मिक स्थानों में दान देते हैं उनके धर्म को मैंने कहा। हे देवि! संक्षेप में मैं वित्तदान का वर्णन करता हूँ॥१९॥ शरीर की शुद्धि करने वाला कोई दान न हुआ और न होगा जिससे कि मनुष्य निष्पाप हो जाय। वह इस लोक में भोगों को भोगकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है इस बात का प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने भार्गव को बतलाया था॥२०-२१॥ पाप युक्त परशुरामजी को तुला, वृषभ का दान करने के लिए ब्रह्माजी को बतलाया था। पाप कर्म को करने वाले, वध और बन्धन करने वाले राजा, अभक्ष्य भक्षण करने वाले, गर्भपात करने वाले, गुरु की शय्या पर सोने वाले ये सभी तथा झूठ बोलने वाले निन्दित योनियों में जन्म लेते हैं॥२२-२३॥ जो यज्ञ करने के योग्य नहीं है उससे यज्ञ कराकर अथवा निन्दितों की पूजा कराकर सर्वदा क्रोध करने वाले, सज्जनों को पीड़ा देने वाले॥२४॥ इन सबों पर विश्वास करने के कारण भ्रान्त सुधी पुरुषों के द्वारा धर्म की निन्दा करने वाले इन पापों को करने वाले से युक्त पुरुष आत्मज्ञ होकर भी गतायुष हो जाता है इस बात को जानकर हे देवि! विशेष रूप से दान देना चाहिए। धर्म को करने वाले बहुत से लोग पृथिवी पर विख्यात है॥२५-२६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत दानधर्म वर्णन नामक चौहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥७४॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

महादेव उवाच

गण्डिकायास्तु माहात्म्यं वक्ष्ये देवि ! विधानतः ।
यथा गङ्गा तथा सा च कथिता नगनन्दिनि ! ॥१॥
शालग्रामशिला यत्र जायते बहुधा तथा । माहात्म्यं चैव तस्याश्च कथितं मुनिसत्तमैः ॥२॥
उद्भिज्जा अण्डजा यत्र स्वेदजाश्च जरायुजाः ।
यस्या दर्शनमात्रेण पुण्यरूपास्तु पार्वति ! ॥३॥
उत्तरे सा तु संभूता गण्डिका तु महानदी । संस्मृता संस्मृता नूनं पापं हन्त्यगनन्दिनि ॥४॥
यत्र नारायणो देवो नित्यं तिष्ठति भूतिदः । शङ्खचक्रधरास्तस्य समीपे निवसन्ति ये ॥५॥
मे मृत्युं समनुप्राप्य दिव्यरूपाश्चतुर्भुजाः । ऋषयस्तत्रतिष्ठन्ति देवाश्चैव विशेषतः ॥६॥
रुद्रा नागास्तथा यक्षा नात्र कार्या विचारणा ।
तस्याः समीपे ह्येकोऽयं स्थलो वै विष्णुरूपधृत् ॥७॥
स्थलेऽस्मिन्वर्तते मूर्तिर्बहुरूपा च मुक्तिदा। चतुर्विंशतिभूतानां जातयःसन्ति तत्र वै॥८॥
एका वै मत्स्यरूपा च कूर्मरूपा तथैव च। वाराही नारसिंही च वामनी च शुभप्रदा॥९॥
रामाख्या परशुरामा च कृष्णरूपातिमुक्तिदा ।
अन्या च या बुधैः प्रोक्ता स्थले वै विष्णुसंज्ञके ॥१०॥
कल्किनाम्नी तथा पुण्या कपिलाया मयोदिता ।
अन्यास्तु विविधाकारा दृश्यन्ते बहुधा अपि ॥११॥

गण्डिका तीर्थ का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे देवि ! मैं गण्डिका तीर्थ का माहात्म्य विधि पूर्वक बतलाता हूँ । हे पार्वति! गङ्गा नदी के ही समान गण्डिका भी बतलायी गयी है ॥१॥ वहाँ पर बहुत प्रकार के शालग्राम शिला जैसे उत्पन्न होती है उसे उसका माहात्म्य श्रेष्ठ मुनियो ने कहा है ॥२॥ हे पार्वति ! उस नदी का दर्शन करने मात्र से उद्‌भिज, अण्डज, स्वेदज तथा जरायुज, जीव दर्शन करके पुण्य स्वरूप हो जाते हैं॥३॥ वह गण्डिका (गण्डकी) उत्तर दिशा में उत्पन्न हुयी है । वह स्मरण करने मात्र से पापों का विनाश करती है ॥४॥ वहाँ पर ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भगवान् सदैव रहते है । उस नदी के समीप शङ्ख, चक्र धारण किए हुए जो लोग निवास करते हैं वे मृत्यु के पश्चात् दिव्य तथा चतुर्भुज रूप वाले हो जाते है । वहाँ विशेष रूप से ऋषिगण और देवता निवास करते हैं ॥५-६॥ रुद्र, नाग तथा यक्ष भी निवास करते हैं इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है । उस नदी के समीप एक विष्णु रूपधारी स्थान है ॥७॥ इस स्थान में अनेक रूप वाली तथा मुक्ति प्रदान करने वाली मूर्ति है । वहाँ पर चौबीस प्रकार के जीवों की जातियाँ है॥८॥ एक मत्स्य के रूप वाली है, दूसरी कूर्म के रूप वाली है तीसरी बारह के रूप वाली है, चौथी नृसिंह के रूप वाली है तथा पाँचवी वामन के रूप वाली है । ये सभी कल्याण करने वाली मूर्तियाँ है ॥९॥ रामनाम की परशुराम नाम की, कृष्ण रूप की मूर्तियाँ मुक्ति प्रदान करने वाली हैं । अन्य भी मूर्तियाँ जिनका विद्वान् वर्णन

तिष्ठन्ति मूर्त्तयः सर्वानानारूपा ह्यनेकशः। सा गङ्गा महती पुण्या धर्मकामार्थमुक्तिदा ॥१२॥
यस्यां भूमौ हृषिकेशो नियमेन समन्वितः। वर्त्ततेऽद्यापि तत्रैव मयासह न संशयः ॥१३॥
भ्रूणहत्या बालहत्या गोहत्या व विशेषतः। यस्याः स्पर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥१४॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चैवान्यजातयः ।
सर्वे ते वै विमुच्यन्ते दर्शनाद्गण्डिकाम्बुना ॥१५॥
इयं वेणीसमा पुण्या पापिनां तु विशेषतः। मुच्यते ब्रह्महा यत्र इतरेषां तु का कथा ॥१६॥
सर्वदा सर्वकाले तु अहं गच्छामि पार्वति। तीर्थानां तीर्थराजोऽयं ब्रह्मणा भाषितःकिल ॥१७॥
तत्र स्नानंच दानंच मुनिभिःपरिकल्पितम्। आषाढे पुण्यकाले तु तत्र गच्छामि सुन्दरि ॥१८॥
मासैकं विधिना चैव स्नानं तत्र करोम्यहम् ।
तारकं तत्र विशदं जपामि तु निरन्तरम् ॥१९॥
अतोऽहं वैष्णवो जातो विष्णुक्षेत्रे यतो गतः ।
विष्णुना निर्मितं पूर्वं क्षेत्रं तत्तु महत्तरम् ॥२०॥
वैष्णवानां च गतिदं पावनं परमं स्मृतम्। भवेऽस्मिन्मानुषेजन्म दुर्लभं देवि सर्वदा ॥२१॥
दुर्लभं गण्डिकातीर्थं विष्णुक्षेत्रं तु दुर्लभम् ।
अतो ह्याषाढमासे तु गन्तव्यं द्विजसत्तमैः ॥२२॥
तत्र गत्वा विशेषेण शङ्खचक्रादि धारणम्। कर्त्तव्यं तु द्विजश्रेष्ठैःपवित्रं परमं स्मृतम् ॥२३॥

करते हैं वे इस विष्णु संज्ञक स्थान पर हैं ॥१०॥ कल्की भगवान् तथा कपिल महर्षि की भी यहाँ मूर्ति हैं। वहाँ दूसरी भी अनेक प्रकार की मूर्तियाँ देखी जाती है ॥११॥ वहाँ पर अनेक रूपों वाली उनकी मूतियाँ विद्यमान हैं। वह गङ्गा अत्यन्त पवित्र है, अर्थ, धर्म, काम तथा मुक्ति को प्रदान करने वाली है॥१२॥ उस भूमि में भगवान् हृषीकेश मेरे साथ नियम पूर्वक आज भी विद्यमान हैं, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥१३॥ विशेष रूप से उन नदी का स्पर्श करने मात्र से मनुष्य, गर्भपात, बाल हत्या तथा गोहत्या जन्य पाप से मुक्त हो जाता है ॥१४॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा दूसरी जातियों के लोग इन गण्डकी नदी के जल का दर्शन करके मुक्त हो जाते है ॥१५॥ यह विशेष रूप से पापियों के लिए त्रिवेणी के समान पवित्र है यहाँ पर ब्रह्मघाती भी पापों से मुक्त हो जाता है तो दूसरे लोगों की क्या बात हैं ?॥१६॥ हे पार्वति ! मैं हमेशा वहाँ जाता हूँ, वह सभी तीर्थों में तीर्थ राज है। यह ब्रह्माजी ने कहा है ॥१७॥ मुनियों ने वहाँ पर स्नान और दान करने को बतलाया है। हे सुन्दरि ! आषाढ मास के पुण्य काल में मैं वहाँ जाता हूँ ॥१८॥ वहाँ पर मैं विधि पूर्वक एक महीना स्नान करता हूँ और वहाँ विशद रूप से सदा तारक मन्त्र का जप करता हूँ ॥१९॥ उस विष्णु क्षेत्र में जाने के कारण मैं वैष्णव हो गया हूँ। उस महान् क्षेत्र का निर्माण प्राचीन काल में भगवान् विष्णु ने किया ॥२०॥ वह वैष्णवों को सद्गति प्रदान करने वाला और परम पवित्र है। हे देवि ! इस संसार में मनुष्य जन्म दुर्लभ है ॥२१॥ गण्डिका तीर्थ दुर्लभ है और विष्णु क्षेत्र दुर्लभ है। अतएव श्रेष्ठ ब्राहाणों को वहाँ आषाढ मास में जाना चाहिए ॥२२॥ वहाँ जाकर विशेष रूप से ब्राह्मण को शङ्ख, चक्र इत्यादि को धारण करना चाहिए क्योंकि ऐसा करना परम पवित्र कहा गया है ॥२३॥ बायीं भुजा में शङ्ख और दाहिने भुजा में चक्र धारण करें।

शङ्खतीर्थं तु वामे वै दक्षिणे चक्रचिन्हितम् ।
द्विजानां मुक्तिदं प्रोक्तं धारितव्यं प्रयत्नतः ॥२४॥
ब्राह्मणैश्च विशेषेण शङ्खचक्रादि धारणे। कृतेसति महादेवि वैष्णवास्तेहि मानवाः ॥२५॥
न गण्डिकासमं तीर्थं न व्रतं द्वादशी समम् ।
न देवःकेशवादन्यो भूयोभूयो वरानने ॥२६॥
गण्डिकायास्तु माहात्म्यं ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा विष्णुलोकं हि यान्ति ते ॥२७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदंसवादे गण्डिकातीर्थमाहात्म्यं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

महादेव उवाच

शृणु सुन्दरि वक्ष्यामि स्तोत्रं चाभ्युदयं ततः ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापी ब्रह्मदा नात्र संशयः ॥१॥
धाता वै नारदं प्राह तदहं तु ब्रवीमि ते । तमुवाच ततो देवः स्वयम्भूरमितद्युतिः ॥२॥
प्रगृह्य रुचिरं बाहुं स्मारयेच्चौर्ध्वदेहिकम् । भगवान्नारायणःश्रीमान्देवश्चक्रायुधो हरिः ॥३॥

इसको ब्राह्मणों को मुक्ति प्रदान करने वाला कहा गया है अतएव प्रयत्न पूर्वक शङ्ख, चक्र धारण करे॥२४॥ विशेष रूप से ब्राह्मणों से शङ्ख, चक्र धारण करने पर हे महादेवि ! वे मनुष्य वैष्णव हो जाते हैं ॥२५॥ हे सुन्दरि ! मैं बार-बार कहता हूँ कि गण्डिका तीर्थ के समान कोई तीर्थ नहीं है, द्वादशी के समान कोई व्रत नहीं है और भगवान् केशव के समान कोई देवता नही है ॥२६॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य गण्डिका तीर्थ का माहात्म्य सुनते हैं वे इस लोक में सुख भोगकर विष्णुलोक में जाते हैं ॥२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत गण्डिका तीर्थ का माहात्म्य वर्णन नामक पचहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७५।।

आभ्युदयिकौर्ध्वदेहिक स्तोत्र

महादेवजी ने कहा— हे देवि ! मैं अभ्युदय स्तोत्र को बतलाता हूँ उसे तुम सुनो इसका श्रवण करके ब्रह्मघाती पापी भी पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥१॥ ब्रह्माजी ने इसे नारद को बतलाया था, उसी को मैं कह रहा हूँ । ब्रह्माजी निःसीम कान्ति सम्पन्न स्वयम्भू ने बतलाया था ॥२॥ मनोहर भुजा को पकड़कर और्ध्वदेहिक को याद दिलाये कि आप चक्रायुध श्रीहरि नारायण हैं ॥३॥ आप

शार्ङ्गधारी हृषीकेशःपुराणपुरुषोत्तमः। अजितःखड्गभृज्जिष्णुःकृष्णश्चैव सनातनः ॥४॥
एकश्रृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यं भवात्मकः। अक्षरं ब्रह्मसत्यं तु आदौ चान्ते च राघव ॥५॥
लोकानां तु परोधर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः। सेनानी रक्षणस्त्वं च वैकुण्ठस्त्वं जगत्प्रभुः ॥६॥
प्रभावश्चाव्ययस्त्वं च उपेन्द्रो मधुसूदनः। पृश्निगर्भोधृतार्चिस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत् ॥७॥
शरण्यं शरणं च त्वामाहुःसेन्द्र महर्षयः। ऋक्साम श्रेष्ठो वेदात्मा शतजिह्वो महर्षयः ॥८॥
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परन्तपः। शतधन्वा वसुःपूर्वं वसूनां त्वं प्रजापतिः ॥९॥
त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः। रुद्राणामष्टमो रुद्रःसाध्यानामपि पञ्चमः ॥१०॥
आश्विनौ चापि कर्णौते सूर्यचन्द्रो च चक्षुषी ।
अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे त्वं परन्तपः ॥११॥
प्रभवो निधनं चास्य न विदुःको भवानिति ।
दृश्यसे सर्वलोकेषु गोषु च ब्राह्मणेषुच ॥१२॥
दिक्षु सर्वासुगगने पर्वतेषु गुहासु च। सहस्त्रनयनःश्रीमाञ्छतशीर्षःसहस्त्रपात् ॥१३॥
त्वं धारयसि भूतानि वसुधां च स पर्वताम् ।
अन्तः पृथिव्यां सलिले सर्वसत्त्व महोरगः ॥१४॥
त्रींल्लोकान्धारयन्रासे देवगन्धर्वदानवान्। अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥१५॥
देवा रोमाणि गात्रेषु निर्मितास्ते स्वमायया। निमिषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा ॥१६॥

शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले, हृषीकेश, पुराण पुरुषोत्तम, किसी से पराजित नहीं होने वाले, खड्ग धारण करने वाले, विजयिषु तथा सनातन कृष्ण हैं ॥४॥ आप एक श्रृङ्गधारी मत्स्य तथा वाराह तथा सर्वकालात्मक हैं । आप ही अक्षर ब्रह्म, सत्य तथा हे राघव ! आप सबों के आदि और अन्त में रहने वाले हैं ॥५॥ संसारियों के सर्वश्रेष्ठ धर्म तथा चतुर्भुज विष्वक्सेन हैं । आप सेनापति रक्षक, वैकुण्ठ तथा जगत् के स्वामी हैं ॥६॥ आप निर्विकार प्रभाव, उपेन्द्र और मधुसूदन हैं । आप ही पृश्निगर्भ और घृतार्चि हैं । आप ही पद्मनाभ और युद्ध का अन्त करने वाले हैं ॥७॥ आपको इन्द्र तथा महर्षियों ने शरण्य (आश्रय) तथा रक्षक कहा है । महर्षियों ने आपको, श्रेष्ठ ऋग्वेद तथा सामवेद शातजिह्वा और वेदात्मा कहा है ॥८॥ आप ही यज्ञ, वषट्कार, ओङ्कार परन्तप शत्रुओं को सन्ताप्त करने वाले, शतधन्वा, सर्वश्रेष्ठ, वसु प्रजापति हैं॥९॥ आप तीनों लोकों के आदिकर्ता, स्वयंप्रभु, एकादशरुद्रों में आठवाँ रुद्र, तथा पाँचवाँ साध्य देव हैं ॥१०॥ दोनों अश्विनी कुमार आपके दोनों कान हैं, सूर्य और चन्द्रमा आपके दोनों नेत्र है । आदि अन्त और मध्य में आप ही दिखायी देते हैं आप परन्तप हैं ॥११॥ आपकी उत्पत्ति और निधन को कोई भी नहीं जानता है कि आप कौन हैं ? आप सभी लोको, गौओं और ब्राह्मणों में दिखायी देते हैं ॥१२॥ सभी दिशाओं में, आकाश में, पर्वतों की गुफाओं में भी आप दिखते हैं । आप हजारों नेत्र वाले हैं, सैकड़ों शिर वाले और हजारो चरण वाले हैं ॥१३॥ आप ही सभी भूतों तथा पर्वत सहित पृथिवी को धारण करते हैं । आप पृथिवी के भीतर है जल में सम्पूर्ण जीव स्वरूप हैं तथा महान् सर्प हैं ॥१४॥ आप तीनों लोकों को धारण किए हैं देवताओं और गन्धर्वों को धारण किए हैं । हे राम ! मैं आपका हृदय हूँ, सरस्वती देवी आपकी जिह्वा हैं ॥१५॥ आपने अपने अङ्गों में अपनी माया के द्वारा देवताओं को रोम बना लिया है । रात्रि

संस्कारस्ते भवेद्देहो न तदस्ति विना त्वया। जगत्सर्वं शरीरं तत्स्थैर्यं चवसुधातलम् ॥१७॥
अग्निःकोपःप्रसादस्ते शेषःश्रीमांश्च लक्ष्मणः ।
त्वया लोकास्त्रयःक्रान्ताः पुराणैर्विक्रमैस्त्रिभिः ॥१८॥
त्वयेन्द्रश्च कृतो राजा बलिर्बद्धो महासुरः ।
लोकान्संहृत्य कालस्त्वं निवेश्यात्मनि केवलम् ॥१९॥
करोष्येकार्णवं घोरं दृश्यादृश्ये च नान्यथा ।
त्वया सिंहवपुः कृत्वा परमं दिव्यमुत्तमम् ॥२०॥
भयदःसर्वभूतानां हिरण्यकशिपुर्हतः । त्वमश्ववदनो भूत्वा पातालतलमाश्रितः ॥२१॥
संहृतं परमं हव्यं रहस्यं वै पुनः पुनः । यत्परं श्रूयते ज्योतिर्यत्परं श्रुयते परः ॥२२॥
यत्परं परतश्चैव परमात्मेति कथ्यते। परोमन्त्रःपरंतेजस्त्वमेव हि निगद्यसे ॥२३॥
हव्यं कव्यं पवित्रं च प्राप्तिःस्वर्गापवर्गयोः ।
स्थित्युत्पत्तिविनाशांस्ते त्वमाहुः प्रकृतेः परम् ॥२४॥
यज्ञश्च यजमानश्च होताचाध्वर्युरेव च। भोक्ता यज्ञफलानां च त्वं वै वेदैश्च गीयसे ॥२५॥
सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ।
वधार्थ रावणस्य त्वं प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ॥२६॥
तदिदं च त्वया कार्यं कृतं धर्मभृतांवर। निहतो रावणो राम प्रहृष्टा देवताःकृताः ॥२७॥
अमोघं देववीर्यं ते न ते मोघःपराक्रमः । अमोघदर्शनं राम न च मोघस्तवस्तवः ॥२८॥

आपका निमेष हैं और दिन आपका आँखें खोलना (उन्मेष) है ॥१६॥ संस्कार आपका देह है, वह आपके बिना नहीं हो सकता है । सारा जगत् आपका शरीर है और पृथिवी ही उसका स्थैर्य है ॥१७॥ आपके कोप और प्रसन्नता अग्नि हैं श्रीमान् लक्ष्मणजी ही शेष है । आपने अपने प्राचीन तीन डगों में तीनों लोकों को नाप लिया है ॥१८॥ आपने इन्द्र को राजा बनाया और महाअसुर बलि को बाँध दिया आप केवल अपने भीतर समस्त लोकों को समेट लेने वाले काल हैं ॥१९॥ आप ही दृश्य तथा अदृश्य भयङ्कर एकार्णव करते हैं । आपने परम दिव्य तथा उत्तम सिंह का शरीर धारण कर सभी जीवों के लिए भयङ्कर हिरण्यकशिपु को मारा । आप हयग्रीव बनकर पाताल में चले गये ॥२०-२१॥ आपने बार-बार परम रहस्यात्मक हविष्य को विनष्ट किया । श्रुति जिसे सर्वश्रेष्ठ ज्योति बतलाती हैं, जिसे परात्पर कहती है॥२२॥ जिसे परात्पर परमात्मा कहा जाता है, सर्वश्रेष्ठ मन्त्र और सर्वश्रेष्ठ तेज कहा जाता है, वह आप ही हैं॥२३॥ पवित्र हव्य, कव्य, स्वर्ग तथा अपवर्ग की स्थिति उत्पत्ति तथा विनाश आप ही करते हैं । आपको ही प्रकृति से परे कहा गया है ॥२४॥ वेद आपको ही यज्ञ, यजमान, होता, अध्वर्यु तथा यज्ञ के फलों का भोक्ता ही बतलाते हैं ॥२५॥ सीताजी लक्ष्मी है और आप विष्णु हैं आप ही कृष्ण देव और प्रजापति हैं । रावण का वध करने के लिए आप मानव शरीर में प्रवेश किए हैं ॥२६॥ हे धर्म को धारण करने वालें में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ! आपने इस कार्य को कर लिया । रावण मारा गया, सभी देवता प्रसन्न हो गये ॥२७॥ हे देव ! आपका पराक्रम अमोघ है, वह कभी मोघ (व्यर्थ) नही हो सकता । हे श्रीराम !

अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ।
ये च त्वां देवसभक्ताःपुराणं पुरुषोत्तमम् ॥२९॥
इममार्षस्तवं पुण्यमितिहासं पुरातनम्। ये नराःकीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः ॥३०॥
कथमिह हि पराभवं व्रजेयुः पुरुषवराःपुरुषोत्तमे हि भक्ताः ।
न हि जगति चतुर्भुजप्रियाणां त्रिदश इहास्ति वरप्रदो विशिष्टः ॥३१॥
स्तोत्राणां प्रवरं स्तोत्रं राघवस्य महात्मनः । त्रिकाले तु पठन्मुक्तो महापातकवानपि ॥३२॥
सन्ध्याकाले द्विजश्रेष्ठैःश्राद्धकाले विशेषतः। पठनीयं प्रयत्नेन भक्तिभावेन चेतसा ॥३३॥
इदं गोप्यं हि परमं नाख्येयं कर्हिचित्क्वचित् ।
पठनान्मुक्तिमाप्नोति सात्त्वतः स भवेद् ध्रुवम् ॥३४॥
प्रथमं पिण्डपूजा ते ब्राह्मणैर्द्विजसत्तमैः। पठितव्यमिदं स्तोत्रं श्राद्धमक्षयमाप्नुयात्॥३५॥
इदं पवित्रं परमं जनानां मुक्तिदायकम् । लिखित्वा वै गृहे यस्तु धारयेत्सुसमाधिना॥३६॥
आयुःश्रीश्च बलं तस्य वृद्धिं याति दिनेदिने ।
लिखित्वा ब्राह्मणे दद्याद्धीमान्यो वै कदाचन ॥३७॥
विमुक्ताःपूर्वजास्तस्य यान्ति विष्णोः परंपदम् ।
चतुर्णां चैव वेदानां पाठेचैव तु यत्फलम् ॥३८॥
समवाप्नोति जापेन नरःस्तोत्रं पठञ्जपन् । धृत्वा वै शङ्खचक्रादि ब्राह्मणैर्वेदतत्परैः ॥३९॥
श्राद्धकाले महादेवि अक्षयं तद्भवेद्ध्रुवम्। कण्ठे पद्माक्षमालां च शङ्खचक्रादिधारणम् ॥४०॥

आपका दर्शन अमोघ है, आपकी स्तुति कभी व्यर्थ नहीं हो सकती है ॥२८॥ संसार में आपकी भक्ति करने वाले मनुष्य सदा सफल हैं । हे देव ! जो लोग पुराण पुरुषोत्तम आपके भक्त हैं वे सदा सफल ही हैं॥२९॥ यह वैदिक स्तुति पवित्र है तथा प्राचीन इतिहास है । जो मनुष्य इसका पाठ करेंगे उनका कभी भी पराभव नहीं होगा ॥३०॥ भगवान् पुरुषोत्तम की भक्ति करने वाले श्रेष्ठ मनुष्यों का पराजय कैसे हो सकता है ? भगवान् के भक्तों को संसार में कोई भी देवता विशिष्ट वरदान देने वाला नहीं है ॥३१॥ भगवान् श्रीराम का यह सबसे श्रेष्ठ स्तोत्र हैं । महापापी भी यदि इसका त्रिकाल में पाठ करे तो वह भी मुक्त हो जायेगा ॥३२॥ श्राद्ध के समय सायं काल श्रेष्ठ ब्राह्मणों को इसे भक्ति पूर्वक पढ़ना चाहिए ॥३३॥ परम गोप्य स्तोत्र हैं, इसे कभी कहना नहीं चाहिए । इसका पाठ करने वाला मुक्ति प्राप्त करके वैष्णव हो जाता है ॥३४॥ पहले पिण्ड की पूजा करके ब्राह्मणों को इसका पाठ करना चाहिए । ऐसा करने से श्राद्ध अक्षय हो जाता है ॥३५॥ यह परम पवित्र है, भक्तो को मुक्ति देने वाला है । जो व्यक्ति इसको लिखकर घर में सावधानी पूर्वक धारण करता है, उसके आयु, श्री तथा बल प्रतिदिन बढ़ते हैं । यदि कोई बुद्धिमान इसको लिखकर ब्राह्मण को प्रदान करे ॥३६-३७॥ उसके पूर्वज मुक्त होकर भगवान् विष्णु के परम पद में जाते हैं । चारो वेदों का पाठ करने का जो फल होता है ॥३८॥ इस स्तोत्र का पाठ और जप करने वाला मनुष्य उसी फल को प्राप्त करता है । यदि वैदिक ब्राह्मण शङ्ख, चक्र धारण करके श्राद्ध के समय इसका पाठ करें तो वह श्राद्ध अक्षय हो जाता है । गले में कमलाक्ष की माला तथा शङ्ख, चक्र को धारण ॥३९-४०॥ करके इस स्तोत्र का पाठ करते हुए श्राद्ध करना चाहिए विधि पूर्वक करने से ही श्राद्ध

ततःश्राद्धं प्रकुर्वीत इदं स्तोत्रं पठञ्जपन्। विधिना भक्तिभावेन पूर्णं भवति नान्यथा ॥४१॥
अतो भक्तिमता पुंसा पठनीयं प्रयत्नतः। पठनात्सर्वमाप्नोति स नरःसुखमेधते ॥४२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे आभ्युदयिकमौर्ध्वदैहिकस्तोत्रं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

महादेव उवाच

पप्रच्छाहं जगन्नाथ व्रतानामुत्तमंव्रतम्। पुत्रपौत्र विवृद्ध्यर्थं सुखसौभागयदायकम् ॥१॥
तवाग्रे संप्रवक्ष्यामि शृणु सुन्दरि साम्प्रतम्। इदं कथानकं दिव्यमृषीणां व्रतमुत्तमम् ॥२॥
रजस्वला तु या नारी सहसा पापरूपिणी। कृतेन न व्रतेनैव महापापैःप्रमुच्यते ॥
पितृणामक्षयं देयं धर्मकामार्थसाधनम् ॥३॥

श्रीविष्णुरुवाच

पूर्वमासीन्महाबाहुर्ब्राह्मणो वेदपारगः। सदाध्ययनशीलस्तु देवशर्मा इतिद्विजः ॥४॥
अग्निहोत्र क्रियायुक्तःषट्कर्मनिरतःसदा। सर्ववर्णेषु संपूज्यः सपुत्रपशुबान्धवः ॥५॥
तस्य ब्राह्मणमुख्यस्य भग्ना च गृहवाहिनी। प्राप्ते भाद्रपदे मासे शुक्लपक्षे तु पञ्चमी ॥६॥
पितुःक्षयाहं कुरुते यतात्मा च जितेन्द्रियः। रात्रौ निमन्त्रयेद्विप्रान्सुखसौभाग्यदायकान् ॥७॥

पूर्ण होता है, अन्यया नहीं ॥४१॥ अतएव भक्ति सम्पत्र पुरुष को प्रयास करना चाहिए। इसका पाठ करने से वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है और वह मनुष्य सुख को प्राप्त करता है ॥४२॥

इस तरह श्रीपद्ममहा पुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत आभ्युदयिक और वैदेहिक स्तोत्र वर्णन नामक छिहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७६।।

ऋषि पञ्चमी व्रत की विधि

महादेवजी ने कहा— मैंने जगत् के स्वामी श्रीभगवान् से सर्वोत्तम व्रत पूछा जो पुत्रों और पौत्रों की वृद्धि करे और सुख सौभाग्य को प्रदान करे ॥१॥ हे सुन्दरि ! उसे मैं तुम्हें बतलाता हूँ तुम सुनो। यह कथानक ऋषियों का उत्तम व्रत का है ॥२॥ रजस्वला नारी पाप स्वरूपिणी होती है। इस व्रत को करके वह महापाप से मुक्त हो जाती है। पितरों को धर्म, काम तथा अर्थ का अक्षय साधन प्रदान करना चाहिए॥३॥ **विष्णु भगवान् ने कहा—** प्राचीन काल में महाबाहु, वेद पारङ्गत देवशर्मा नामक ब्राह्मण थे। वे सदा वेदाध्ययन करते थे ॥४॥ वे अग्निहोत्र तथा षट्कर्म का पालन करते थे। पुत्र, पशु तथा बान्धवों से युक्त सभी वर्णो के पूज्य थे ॥५॥ उन ब्राहाण मुख्य की भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि

प्रभाते विमले प्राप्ते भाण्डान्यन्यानि कारयेत् ।
पाकं सर्वेषुपात्रेषु सकारयति जायया ॥८॥
अष्टादशरसोपेतं पितृणां प्रीतिदायकम्। आकारणं ततो दत्त्वाविप्राणां च पृथक्पृथक् ॥९॥
सर्वे विप्रास्तु संप्राप्ता मध्याह्ने वेदपाठकाः। अर्घपाद्यादि विधिवत्कृतवान्द्विजसत्तमः॥१०॥
रजसा दूषिताःश्राद्धे प्रक्षाल्य विधिवत्तदा। गृहमध्ये गताःसर्वे आसने ते निरूपिताः ॥११॥
प्रदत्तं भोजनं तेन मिष्टान्नेन विशेषतः। विधिना च कृतं श्राद्धं पिण्डदानप्रवूर्वकम् ॥१२॥
ताम्बूलं दक्षिणां चैव वस्त्राणि विविधानि च ।
सर्वं ददौ द्विजेभ्यो वै पितृध्यानपरायणाः ॥१३॥
विप्रा विसर्जिताःसर्वे आशीर्वादपरायणः। गोत्रिणां बान्धवानां च अन्येषां च बुभुक्षताम्॥१४॥
दत्तमन्नं तदा तेन भोजने विधिपूर्वकम्। निशायां तु कुटीद्वार उपविष्टो यदा तदा ॥१५॥
ब्राह्मण्यावारिसंगृह्य पादप्रक्षालनं कृतम्। तदा शुनी बलीवर्दौ परस्परमभाषताम्॥१६॥
शृणुकान्तवचो मह्यं यादृक्कृतवती वधूः। तादृशं संप्रवक्ष्यामि नान्यथा प्रब्रवीम्यहम् ॥१७॥
कदाचिद्दैवयोगेन गताहं पुत्रसद्मनि। तत्र स्थितं पयः पीतं वध्वा दृष्टं न तत्पुनः ॥१८॥
पीतं पयस्तु सर्पेण तद्दृष्टं तु यया पुनः। पश्चात्पीतं मया सम्यक्दृष्टं वध्वा तदा पुनः ॥१९॥
तेन संपर्कदोषेण कटिर्भग्ना च मे सदा। तेन दुःखेन भोस्वामिञ्जाताहं दुःखभागिनी ॥
भग्ना कटिश्च संजाता ह्याहारो नैव रोचते ॥२०॥

को पत्नी रजस्वला हो गयी ॥६॥ अपने मन को वश में रखकर जितेन्द्रिय वे अपने पिता की क्षयाहन तिथि को श्राद्ध कर रहे थे । उन्होंने रात्रि में ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया जिससे सुख सौभाग्य प्राप्त कर सके ॥७॥ प्रात:काल उन्होंने दूसरे वर्तनों को लाया और सभी पात्रों में अपनी पत्नी से पाक वनवाया ॥८॥ अठारह प्रकार के रसों से युक्त पितरों को प्रसन्न करने वाला पाक वनवाया । इसके वाद में वे सभी ब्राह्मणों को अलग-अलग बुलाये ॥९॥ सभी वैदिक ब्राह्मण दोपहर की वेला में आये । उन श्रेष्ठ ब्राह्मण ने विधि पूर्वक अर्घ पाद्य इत्यादि प्रदान किया ॥१०॥ धूल भरे वे लोग श्राद्ध में पैर धोकर सभी ब्राह्मण घर में गये और अपने-अपने आसन पर बैठे ॥११॥ ब्राह्मण ने विशेष रूप से मिष्ठान युक्त अन्न प्रदान किया, उन्होंने पिण्ड दान करके सविधि श्राद्ध किया ॥१२॥ वे पितरों का ध्यान करते हुए ब्राह्मणों को ताम्बूल, दक्षिणा अनेक प्रकार के वस्त्र प्रदान किया ॥१३॥ आशीर्वाद देकर सभी ब्राह्मण चले गये । सगोत्रीयों, बान्धवों तथा दूसरे भूखे लोगों को ॥१४॥ उन्होंने विधि पूर्वक भोजन कराया । रात्रि में जव वे अपनी कुटी के द्वार पर बैठे थे उस समय ॥१५॥ ब्राह्मणी ने जल लेकर उनका पैर धोया । उसी समय एक कुतिया तथा वैल दोनों परस्पर में वातें करने लगे ॥१६॥ हे कान्त ! आप मेरे वातें सुने । वहू ने जो व्यवहार किया उसे मैं सत्य-सत्य वतलाती हूँ ॥१७॥ एक वार मैं दैवयोग से अपने पुत्र के घर गयी। वहाँ पर विद्यमान दुग्ध को मैंने पी लिया और वहू ने उसे नहीं देखा ॥१८॥ फिर उस दुग्ध को सांप ने पी लिया और वहू ने उसे देख लिया । उसके वाद मैंने पिया और उसे भी वहू ने देखा ॥१९॥ उसी संपर्क जन्य दोष के कारण मेरी कमर टूट गयी । हे स्वामिन् ! उसी दुःख के कारण मैं दुःखी हूँ । मेरी कमर टूट गयी है, इसलिए मुझे आहार अच्छा नहीं लगता है ॥२०॥ **बलिवर्द ने कहा—** शुनि !

बलीवर्द उवाच

श्रृणु त्वं शुनि ! वक्ष्यामि मम दुःखस्य कारणम् ।
अस्मिन्वै दिवसे प्राप्ते ब्राह्मणानां तु भोजनम् ॥२१॥
कारितं मम पुत्रेण मम चिन्ता तु नो कृता ।
नोदकं न तृणं चैव न दत्तं केनचित्क्वचित् ॥२२॥
अनाहारो ह्यहं पापी बद्धोऽस्मिन्पापभावितः ।
पूर्वपापविशेषेण जातं शुनि न संशयः ॥२३॥
तद्वाक्यं तु तदा देवि श्रुतं पुत्रेण धीमता। ममायं तु पिता साक्षाज्जातो ममगृहेपशुः॥२४॥
इयं तु जननी साक्षान्मम चैव न संशयः। दैवयोगाच्छुनी जाता किं करोमि सुनिश्चयम् ॥२५॥
एवं विचार्यासौ विप्रो नैव निद्रामवाप सः। रात्रौ चिन्तापरो भूत्वा स्मरन्विश्वेश्वरंपरम्॥२६॥
नानाधर्मपरोऽहं च ममैवं च कथं शुभम् । विचारयित्वा च ततो रात्रौ सुप्तस्तदापुनः ॥२७॥
प्रभाते विमले प्राप्त ऋषीणां पुरतो गतः । तेषां मध्ये वसिष्ठेनतस्य सुस्वागतं कृतम् ॥२८॥
ब्रूहि त्वं ब्राह्मणश्रेष्ठ तवागमनकारणम्। इति पृष्टस्तदा विप्रः प्रणाममकरोत्तदा॥२९॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफला क्रिया ।
अद्य मे पितरस्तृप्ता दुर्लभात्तव दर्शनात् ॥३०॥
यथोक्तं च कृतं श्राद्धं द्विजाश्चैव सुभोजिताः ।
कुटुम्बिनां तु सर्वेषां भोजनं कारितं तथा ॥३१॥
भोजनानन्तरं प्राप्ता शुनी तत्र उवाचह। अस्माकं तु गृहे ह्येको बलीवर्दस्तु वर्त्तते॥३२॥
तं पतिं प्रति वाक्यंयद्द्विजमत्तःश्रृणुष्व तत् ।
गृहेस्थितं दुग्धमाण्डमहिना दूषितं मया ॥३३॥

तुम मेरे दुःख का कारण सुनो । आज दिन में मेरे पुत्र ने ब्राह्मणों को भोजन कराया किन्तु उसने मेरी चिन्ता नहीं की । किसी ने भी मुझको न तो पानी पिलाया और न घास दिया ॥२१-२२॥ मैं पापी अनाहार (भूखा) हूँ और उस पाप के कारण बृद्ध हूँ । पूर्व जन्म के किसी पाप के कारण बैल हुआ हूँ॥२३॥ हे देवि ! उस वाक्य को बुद्धिमान पुत्र ने सुना और जान गया कि ये तो मेरे पिता हैं और मेरे यहाँ पशु हुए हैं ॥२४॥ और यह मेरी माता हैं इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥२४॥ ये दैव योग से शुनी हुयी हैं मैं इनके लिए क्या करूँ ॥२५॥ इस तरह विचार करके उस ब्राह्मण को रात्रि में नींद नहीं आयी । रात्रिभर चिन्तित होकर श्रीविश्वेश्वर का स्मरण करते रहे ॥२६॥ मैं अनेक धर्मो का पालन करता हूँ, किन्तु मेरा कल्याण कैसे हो ? इस तरह से विचार करके वे बाद में सोए ॥२७॥ प्रातःकाल हो जाने पर वे ऋषियों के समक्ष गये । उन सबों में वसिष्ठ महर्षि ने उस ब्राह्मण का स्वागत किया ॥२८॥ उन्होंने कहा ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आप अपने अने का कारण बतलाएँ । इस तरह से पूछने पर ब्राह्मण ने उनको प्रणाम किया ॥२९॥ आपके दुर्लभ दर्शन पाने के कारण मेरा जन्म सफल हो गया, मेरी सारी क्रियायें सफल हो गयीं ओर मेरे पितृगण तृप्त हो गये ॥३०॥ मैंने शास्त्रीय विधि से श्राद्ध किया और ब्राह्मणों को अच्छी तरह से भोजन कराया मैंने अपने सभी कुटुम्बियों को भोजन कराया ॥३१॥ भोजन के बाद एक कुतिया

दृष्टं मे महती चिन्ता तदा जाता न संशयः ॥३४॥
तदात्र सर्वे विप्राश्च म्रियन्ते भोजनात्ततः। एवं विचार्य तत्स्वामिन्दुग्धं पीतं तदामया ॥३५॥
तदा दृष्टं तु वध्वा वै तया मे ताडनं कृतम् ।
चरामि तेन संभग्ना किं करोमि सुदुःखिता ॥३६॥
तस्या दुखं तु संस्मृत्य वृषःप्राह शुनीं प्रति ।
शृणु शुनि ! प्रवक्ष्यामि मम दुःखस्य कारणम् ॥३७॥
अस्याहं तु पिता साक्षात्पूर्वजन्मनि वै शुनि ! ।
अद्य वै भोजिता विप्रा दत्तमन्नं तु भूरिशः ॥३८॥
न तृणं नोदकं चैव ममाग्रे संनिवेदितम्। तेन दुःखेन मे दुखं जातं बहुतरं तदा ॥३९॥
एतत्कथानकं श्रुत्वा रात्रौ निद्रामवाप न । ममचिन्ता तु तत्रैव जाता वा ऋषिसत्तम॥४०॥
वेदाध्ययनशीलोऽहं कुशलो वेदकर्मणि। अनयोश्च महद्दुखं किं करोमीति चिन्तयन् ॥
आगतस्त्वत्समीपे तु मम कष्टं निवाराय ॥४१॥

ऋषिरुवाच

उग्रजन्मञ्छृणुष्व त्वं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । अयं वै तु द्विजश्रेष्ठःकुण्डिने नगरे शुभे ॥४२॥
मासे भाद्रपदेचैव पञ्चमी या समागता। तद्व्रतं तेन नाज्ञातं पितुःश्राद्धादि कारणात् ॥४३॥
स्त्रीधर्मेण तु संप्राप्ता क्षयाहे तु तदानघ। तया चैव कृतं सर्व ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥४४॥
न ज्ञातं च कृतं तेन पापिष्ठेन दुरात्मना । प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥४५॥

आयी और बोली । मेरे घर एक बलीवर्द भी है ॥३२॥ उसने अपने पति के प्रति जो कहा उसे आप सुनें। घर में विद्यमान दुग्ध के पात्र जो सर्प ने दूषित कर लिया था उसे मैंने ॥३३॥ उसको देखकर मुझे बड़ी चिन्ता हुयी ॥३४॥ ऐसे तो सभी ब्राह्मण भोजन करके मर जायेंगे । इस तरह से विचार करके हे स्वामिन् उस दुग्ध को मैंने पी लिया ॥३५॥ उसे मेरे बहु ने देख लिया और मुझे उसने मारा उसीसे मेरी कमर टूट गयी और दुःखी होकर मैं चलती हूँ ॥३६॥ उसके दुःख को सुनकर बैल ने कुतिया से कहा— हे शुनि ! तुम मेरे दुख का कारण सुनो ॥३७॥ मैं पूर्वजन्म में इसका पिता था । आज इसने ब्राह्मण को खिलाया और अन्न दान भी खूब किया ॥३८॥ किन्तु मुझको न तो पानी दिया और न घास । इसके कारण मुझे बहुत कष्ट हुआ ॥३९॥ इस कथानक को सुनकर मुझे रात में नींद नहीं आयी । हे ऋषिश्रेष्ठ! मुझे इसके विषय में चिन्ता हो गयी ॥४०॥ मैं वेदाध्ययन करता हूँ और वैदिक कर्मों में कुशल भी हूँ । किन्तु इन दोनों को महान् दुःख है, क्या करूँ इसी का विचार करते हुए मैं आपके पास आया हूँ आप मेरी चिन्ता दूर करें ॥४१॥ **ऋषि ने कहा**— तुम सुनो; ये पहले कुण्डीन नगर में श्रेष्ठ ब्राह्मण थे और उग्र कर्मों को करते थे ॥४२॥ भादप्रद मास के जो पञ्चमी तिथि आयी अपने पिता के श्राद्ध आदि के कारण उस व्रत को नहीं किये ॥४३॥ पिता की पुण्य तिथि के दिन यह रजस्वला हो गयी । उसने ही ब्राह्मणों का सारा भोजन बनाया ॥४४॥ उस दुष्ट पापी ने इस बात को नहीं जाना । रजस्वला पहले दिन चाण्डाली होती है और दूसरे दिन, ब्रह्मघाती होती है । तीसरे दिन वह धोबिन होती है और चौथे दिन शुद्ध होती है । उसी पाप के कारण यह अपने घर में घूमने वाली कुतिया हो गयी । हे सुव्रत ! अपने कर्म के कारण

तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति । तेन पापेन सा जाता शुनी स्वगृहचारिणी ॥
बलीवर्दस्त्वयं जातःकर्मणानेन सुव्रत ! ॥४६॥

उग्रजन्मोवाच

व्रतं दानं तथा यज्ञं तीर्थं वा मम सुव्रत् । ब्रूहि येन विशेषेण मुक्तिःपित्रोर्भवेन्मम ॥४७॥

ऋषिरुवाच

मासे भाद्रपदे शुक्ले जायते ऋषिपञ्चमी । रजसा विकृतं पापं नश्यते करणाद्यतः ॥४८॥
पुत्रपौत्रप्रदात्री च पितृणां मुक्तिदायिनी । नद्यां कूपे तडागे वा ब्राह्मणस्य गृहे तथा ॥४९॥
गोमयं मण्डलं कुर्यात्कुम्भं तत्रैव विन्यसेत् ।
तस्योपरि न्यसेत्पात्रमृषिधान्येन पूरितम् ॥५०॥
यज्ञोपवीतसूत्रं च सहिरण्यं फलं तथा । स्थाप्याश्च ऋषयःसप्त सुखसौभाग्यदायकाः ॥५१॥
आवाहयित्वा ते सर्वे पूजनीया व्रतस्थितैः । नैवेद्यमृषिधान्यं च ऋषिधान्यं तु भोजनम् ॥५२॥
एकभक्तेन कर्त्तव्यमृषीणामर्चनं तदा । पूजयेत्परया भक्तया मन्त्रेण विधिपूर्वकम् ॥५३॥
निर्वापं सघृतं देयं दक्षिणा संयुतं तदा । देयं विप्राय विधिवदृषीणां प्रीयतामिति ॥५४॥
कथां श्रुत्वा विधानेन कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ।
धूप दीपं च नैवेद्यमर्घ्यं दद्यात्पृथकपृथक् ॥५५॥
ऋषयःसन्तु मे नित्यं व्रत संपूर्तिकारिणः । पूजां गृह्णन्तु मद्दत्तामृषिभ्योऽस्तु नमोनमः ॥५६॥
पुलस्त्यःपुलहश्चैव क्रतुःप्राचेतसस्तथा । वशिष्ठ मारिचात्रेया अर्घं गृह्णन्तु वा नमः ॥५७॥
एवं पूजा प्रकर्त्तव्या धूपैर्दीपैर्मनोरमैः । पितृणां जायते मुक्तिःकृतस्यास्य प्रभावतः ॥५८॥

यह बलीवर्द हुआ ॥४५-४६॥ **उग्रजन्मा ने कहा—** आप उस व्रत, दान तीर्थ और यज्ञ विशेष को बतलायें जिससे मेरे माता पिता की मुक्ति हो जाय ॥४७॥ **ऋषि ने कहा—** भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में ऋषि पञ्चमी तिथि होती है । उस व्रत के करने से रजस्वला के सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥४८॥ वह पञ्चमी पुत्रों तथा पौत्रों को प्रदान करने वाली और पितरों को मुक्ति देने वाली होती है । नदी के तट पर या कुएँ पर, या सरोवर पर या किसी ब्राह्मण के घर पर गोबर का मण्डल बनाये और वहीं कलश स्थापित करे । उसके ऊपर ऋषिधान्य (तीनी) से भरकर पूर्ण पात्र रखे ॥४९-५०॥ यज्ञोपवीत, सुवर्ण तथा फल के साथ सप्तर्षियों की स्थापना करे । ये ऋषि सुख तथा सौभाग्य प्रदान करने वाले हैं ॥५१॥ व्रतियों को चाहिए कि उन सबों का आवाहन करके पूजन करे । ऋषि धान्य का ही नैवेद्य चढाये और ऋषिधान्य का ही भोजन करे ॥५२॥ एक बार ही खाकर ऋषियों की पूजा भक्ति पूर्वक मन्त्रों से करना चाहिए ॥५३॥ दक्षिणा के साथ निर्वाप के साथ देना चाहिए । ऋषियों की प्रसन्नता के लिए उसे ब्राह्मण को दान दे देना चाहिए ॥५४॥ विधि पूर्वक कथा सुनकर प्रदक्षिणा करनी चाहिए । सभी ऋषियों के धूप, दीप और नैवेध एवं अर्घ्य अलग-अलग समर्पित करे ॥५५॥ फिर प्रार्थना करे कि ऋषिगण मेरे व्रत की पूर्ति करें । मेरे द्वारा की गयी पूजा को स्वीकार करें । आप लोगों को बारम्बार नमस्कार है ॥५६॥ पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, मारीच और अत्रि ऋषि मेरे अर्घ को स्वीकार करें । आप लोगों को नमस्कार है ॥५७॥ मनोहर

पूर्वकर्म विपाकेन रजसा दोषभावतः । कृतं ह्येवं तु भोवत्स मुक्तिस्तस्य न संशयः ॥५९॥
तद्व्रतं च कृतं तेन मुक्त्यर्थं पितृहेतवे । ते गता मुक्तिमार्गेण आशीर्वादपरायणाः ॥६०॥
ऋषीपञ्चमीव्रतं पुण्यं विप्राय परिकीर्तितम् । ये कुर्वन्ति नराः श्रेष्ठास्ते ज्ञेयाः पुण्यभागिनः ॥६१॥
ये कुर्वन्ति नरश्रेष्ठा ऋषिव्रतमनुत्तमम् । भुक्त्वाऽत्र भोगान्विपुलान्यान्ति विष्णोःपदं तु ते॥६२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे ऋषिपञ्चमीव्रतं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

अठहतरवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अथातःसंप्रवक्ष्यामि अपामार्जनमुत्तमम् । पुलस्त्येन यथोक्तं तु दालभ्याय महात्मने ॥१॥
सर्वेषां रोगदोषाणां नाशनं मङ्गलप्रदम् । तत्तेऽहं तु प्रवक्ष्यामि शृणुत्वं नगनन्दिनि ॥२॥

श्रीदालभ्य उवाच

भगवन्प्राणिनःसर्वे विषरोगाद्युपद्रवैः । कुष्ठग्रहाभिभूताश्च सर्वकाले ह्युपद्रुताः ॥३॥
आभिचारिककृत्याद्या बहुरोगाश्च दारुणाः । न भवन्ति मुनिश्रेष्ठ ! तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥४॥

धूप, दीप से इसी तरह से पूजा करनी चाहिए । इस व्रत के प्रभाव से पितरों की मुक्ति हो जाती है ॥५८॥ हे वत्स ! पूर्व कर्म के फलस्वरूप तथा रजस्वला दोष के कारण हुए पाप इस तरह से व्रत करने से इन दोनों की मुक्ति हो जायेगी ॥५९॥ उस ब्राह्मण ने अपने माता-पिता की मुक्ति के लिए उस व्रत को किया और वे उस ब्राह्मण को आशीर्वाद देकर मुक्त हो गये ॥६०॥ उस ब्राह्मण के लिए ऋषि पञ्चमी व्रत कहा गया है । उस व्रत को करने वाले मनुष्य पुण्यवान् होते हैं ॥६१॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य उत्तम ऋषि व्रत को करते हैं वे इस लोक में सभी भोगों को भोगकर विष्णु लोक में जाते हैं ॥६२॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवादान्तर्गत ऋषि पञ्चमी व्रत वर्णन नामक सतहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७७।।

अपामार्जनस्तोत्र

महादेवजी ने कहा— अब मैं अपामार्जन स्तोत्र का वर्णन करता हूँ । इसे महर्षि पुलस्त्य ने महात्मा दाल्भ्य को बतलाया था ॥१॥ यह सभी रोगों और दोषों का नाश करने वाला और मङ्गल प्रदान करने वाला है । हे पार्वति ! उसे मैं तुम्हें बतलाता हूँ सुनो ॥२॥ **श्रीदाल्भ्य महर्षि ने कहा—** हे भगवन् ! सभी जीव, विष तथा रोग आदि उपद्रवों, कुष्ठ तथा ग्रहों से अभिभूत होकर सदा उपद्रव ग्रस्त रहते हैं॥३॥ अभिचार कर्म तथा भयङ्कर बहुत से रोग जिस साधन से नहीं होते हैं आप उसे मुझे बतलाइये ॥४॥

पुलस्त्य उवाच

व्रतोपवासनियमैर्विष्णुर्वै तोषितस्तु यैः। ते नरा नैव रोगार्त्ता जायन्ते मुनिसत्तम ॥५॥
यैर्न कृतं व्रतं पुण्यं न दानं न तपस्तदा। न तीर्थं देवपूजा च नान्नं दत्तं तु भूरिशः ॥६॥
ते वै लोकास्तथा ज्ञेया रोगदोषैःप्रपीडिताः ।
आरोग्यं परमामृद्धिं मनसा यद्यदिच्छति ॥७॥
तत्तदाप्नोत्यसन्दिग्धं विष्णोःसेवी विशेषतः। नाधिं प्राप्नोति न व्याधिं न विषग्रहबन्धनम् ॥८॥
कृत्यास्पर्शभयंनापि तोषिते मधुसूदने। समस्तदोषनाशश्च सर्वदा च शुभाग्रहाः ॥९॥
देवानामप्यधृष्योऽसौ तोषिते च जनार्दने। यःसर्वेषु च भूतेषु यथात्मनि तथापरे ॥१०॥
उपवासादिना तेन तोषितो मधुसूदनः। तोषिते तत्र जायन्ते नराःपूर्णमनोरथाः ॥११॥
अरोगाःसुखिनो भोगभोक्तारो मुनिसत्तम !। तेषां च शत्रवो नैव न च रोगाभिचारिकम्!॥१२॥
ग्रहरोगादिकंचैव पापकार्यं न जायते। अव्याहतानि कृष्णस्य चक्रादीन्यायुधानि वै ॥
रक्षन्ति सकलापद्भ्यो ये न विष्णुरुपासितः ॥१३॥

श्रीदालभ्य उवाच

अनाराधितगोविन्दा ये नरा दुःखभागिनः । तेषां दुःखाभिभूतानां यत्कर्त्तव्यं दयालुभिः ॥१४॥
पश्यद्भिःसर्वभूतस्थं वासुदेवं सनातनम् । समदृष्टिभिरप्यत्र तन्मे ब्रूहि विशेषतः ॥१५॥

श्रीपुलस्त्य उवाच

तद्वक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठ समाहितमनाःश्रृणु। रोगदोषाशुभहरं विज्वरादि विनाशनम्॥१६॥

पुलस्त्य महर्षि ने कहा— जो मनुष्य व्रत, उपवास तथा नियमों के द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न करते हैं हे मुनिश्रेष्ठ ! वे मनुष्य रोगग्रस्त नहीं होते हैं ॥५॥ जो लोग व्रत, पुण्य, दान, तपस्या, तीर्थ, देवपूजा तथा बहुत अधिक अन्न दान नहीं करते हैं, ये ही लोग रोग आदि से पीड़ित होते हैं । जो भगवान् विष्णु की सेवा करने वाला आरोग्य, अत्यधिक समृद्धि आदि मन से जो-जो चाहता है, वह प्राप्त करता है । वह अधि, व्याधि, विष तथा ग्रह को नहीं प्राप्त करता है ॥६-८॥ भगवान् मधुसूदन के सन्तुष्ट रहने पर कृत्या के भी स्पर्श का भय नहीं रहता है । सभी दोषों का नाश हो जाता है और सभी ग्रह शुभ कारक रहते हैं ॥९॥ भगवान् जनार्दन के प्रसन्न रहने पर कोई देवता भी कुछ नहीं कर पाते हैं । जो सभी जीवों को अपने ही समान मानते हैं ॥१०॥ जिसने उपवास आदि के द्वारा भगवान् मधुसूदन को सन्तुष्ट कर दिया है । भगवान् के प्रसन्न होने पर सारे मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥११॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वे रोग रहित, सुखी, भोगों को भोगने वाले होते है, उन लोगों का कोई शत्रु नहीं होता है और न रोग होता है और न अभिचार कर्म॥१२॥ जिसने भगवान् विष्णु की उपासना की है, उन लोगों को ग्रह, रोग तथा पाप नहीं सताते हैं। भगवान् विष्णु के अव्याहत चक्र आदि आयुध उसकी रक्षा करते हैं ॥१३॥ **श्रीदालभ्य महर्षि ने कहा**— जिन लोगों ने भगवान् गोविन्द की आराधना नहीं की है और दुःख भोग रहे हैं, उन दुःखी जीवों के लिए दयालु सभी जीवों में भगवान् वासुदेव को देखने वाले समदृष्टि पुरुषों को जो करना चाहिए उसे आप मुझे बतलायें ॥१४-१५॥ **श्रीपुलस्त्य महर्षि ने कहा**— हे मुनिश्रेष्ठ ! उसे मैं बतलाता हूँ आप सावधानी पूर्वक

शिखायां श्रीधरं न्यस्त शिखाधःश्रीकरं तथा ।
हृषीकेशंतु केशेषु मूर्ध्नि नारायणंपरम् ॥१७॥
ऊर्ध्वश्रोत्रे न्यसेद्विष्णुं ललाटे जलशायिनम् ।
विष्णुं वै भ्रूयुगे न्यस्य भ्रूमध्ये हरिमेव च ॥१८॥
नरसिंह नासिकाग्रे कर्णयोरर्णवेशयम् । चक्षुषोःपुण्डरीकाक्षं तदधो भूधरं न्यसेत् ॥१९॥
कपोलयोःकल्किनाथं वामनं कर्णमूलयोः । शङ्खिनं शङ्खयोर्न्यस्त गोविन्दं वदने तथा ॥२०॥
मुकुन्दं दन्तपङ्क्तौ तमु जिह्वायां वाक्यपतिं तथा ।
रामं हनौ तु विन्यस्य कण्ठे वैकुण्ठमेव च ॥२१॥
बलघ्नं बाहुमूलाधश्चांसयोःकंसघातिनम् । अजं भुजद्वये न्यस्य शार्ङ्गपाणिं करद्वये ॥२२॥
सङ्कर्षणं कराङ्गुष्ठेगोपमङ्गुलिपङ्क्तिषु । वक्षस्यधोक्षजं न्यस्य श्रीवत्सं तस्य मध्यतः ॥२३॥
स्तनयोस्त्वनिरुद्धं च दामोदरमथोदरे । पद्मनाभं तथा नाभौ नाभ्यधश्चापि केशवम् ॥२४॥
मेढ्रे धराधरं देवं गुदेचैव गदाग्रजम् । पीताम्बरधरं कट्यामूरुयुग्मे मधोर्द्विषम् ॥२५॥
मुरद्विषं पिण्डकयोर्जानुयुग्मे जनार्दनम् । फणीशं गुल्फयोर्न्यस्य क्रमयोश्च त्रिविक्रमम् ॥२६॥
पादाङ्गुष्ठे श्रीपतिं च पादाधो धरणीधरम् । रोमकूपेषु सर्वेषु विष्वक्सेनं न्यसेद्बुधः ॥२७॥

सुनें । वह रोग तथा दोष आदि अशुभों को दूर करने वाला तथा विशेष ज्वर आदि का विनाशक है॥१६॥ शिखा में श्रीधर का न्यास करे, शिखा के नीचे श्रीकर भगवान् का न्यास करे । केशों में हृषीकेश का न्यास करे शिर में नारायण का न्यास करे ॥१७॥ कानों के ऊपर विष्णु भगवान् का न्यास करे, ललाट में जलशायी भगवान् का न्यास से करे । दोनों भौंहों में विष्णु भगवान् का न्यास करे, भौंहें के बीच में श्रीहरि का न्यास करे ॥१८॥ नासिका के अग्रभाग में नरसिंह का न्यास करे । कानों में समुद्रशायी भगवान् का न्यास करे दोनों नेत्रों में पुण्डरीकाक्ष का न्यास करे, उसके नीचे भूधर भगवान् का न्यास करें ॥१९॥ दोनों गालों में कल्कि नाथ का न्यास करे, कानों के मूल भाग में वामन भगवान् का न्यास करे । दोनों शङ्खों में शङ्खधारी भगवान् का न्यास करे, मुख में गोविन्द भगवान् का न्यास करे ॥२०॥ दन्तपंक्ति में मुकुन्द भगवान् का न्यास करे जिह्वा में वाक्पति का न्यास करे । ठढी में श्रीराम का न्यास करे कण्ठ में वैकुण्ठ का न्यास करे ॥२१॥ बाहुमूल के अधो भाग में बलघ्न का न्यास करे, कन्धों में कंस विनाशक श्रीकृष्ण भगवान् का न्यास करे । दोंनो भुजाओं में अज का न्यास करे दोनों हाथों में शार्ङ्गपाणि का न्यास करे॥२२॥ हाथ के अङ्गूठे में संकर्षण भगवान् का न्यास करे, अङ्गुलियों में गोप का न्यास करे । वक्षःस्थल में अधोक्षज भगवान् का न्यास करके उसके बीच श्रीवत्स का न्यास करे ॥२३॥ दोनों स्तनों में अनिरुद्ध भगवान् का न्यास करे, उदर में दामोदर का न्यास करे । नाभि में पद्मनाभ भगवान का न्यास करे और नाभि के नीचे केशव भगवान् का न्यास करे ॥२४॥ मेढ्र में धराधर भगवान् का न्यास करे, गुदस्थान में गदाग्रज का न्यास करे । कमर में पीताम्बर का न्यास करे, दोनों जङ्घों में मधुसूदन भगवान् का न्यास करे॥२५॥ पिण्डलियों में मुरारि का न्यास करे दोनों घुटनों मे जमदग्नि का न्यास करे । गुल्फों में फणीश का न्यास करके, डगों में त्रिविक्रम भगवान् का न्यास करे ॥२६॥ पैरों के अङ्गूठें में श्रीपति का न्यास करे पैरों के नीचे धरणीधर का न्यास करे । सभी रोमकूप में विष्वक्सेन का न्यास करे ॥२७॥ मांस में मत्स्य

मत्स्यं मांसे तु विन्यस्य कूर्मं मेदसि विन्यसेत् ।
वाराहं तु वसामध्ये सर्वास्थिषु तथाच्युतम् ॥२८॥
द्विजप्रियं तु मज्जायां शुक्रे श्वेतपतिन्तथा। सर्वाङ्गे यज्ञपुरुषं परमात्मानमात्मनि ॥२९॥
एवं न्यासविधिं कृत्वा साक्षान्नारायणो भवेत् ।
यावन्न व्याहरेत्किंचित्तावद्विष्णुमयः स्थितः ॥३०॥
गृहीत्वा तु समूलाग्रान्कुशाञ्छुद्धान्समाहितः। मार्जयेत्सर्वगात्राणि कुशाग्रैरिह शान्तिकृत् ॥३१॥
विष्णुभक्तो विशेषेण रोगग्रहविषार्दिते। विषार्त्तानां रोगिणां च कुर्याच्छान्तिमिमां शुभाम्॥३२॥
जायते तेन भो विप्र सर्वरोगप्रणाशनम्। ॐ नमः श्रीपरमार्थाय पुरुषाय महात्मने॥३३॥
अरूपबहुरूपाय व्यापिने परमात्मने। वाराहं नारसिंहं च वामनं च सुप्रखदम् ॥३४॥
ध्यात्वा कृत्वा नमो विष्णोर्नामान्यङ्गेषु विन्यसेत् ।
निष्कल्मषाय शुद्धाय व्याधिपापहराय वै ॥३५॥
गोविन्द पद्मनाभाया वासुदेवाय भूभृते । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिध्यतु य वचः ॥३६॥
त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नराय च। श्रीवाराहनृसिंहाय वामनाय महात्मने ॥३७॥
हयग्रीवाय शुभ्राय हृषीकेश हराशुभम्। परोपतापमहितं प्रयुक्तं चाभिचारिकम् ॥३८॥
गरस्पर्श महारोग प्रयोगं जरया जर। नमोऽस्तु वासुदेवाय नमःकृष्णाय खड्गिने ॥३९॥
नमःपुष्करनेत्राय केशवायादि चक्रिणे। नमःकिंजल्कवर्णाग्य पीतनिर्मलवाससे ॥४०॥

भगवान् का न्यास करके मेदा में कूर्म भगवान् का न्यास करे । वसा में वराह भगवान् का न्यास करे सभी हरिक्रमो में अच्युत भगवान् का न्यास करे ॥२८॥ मज्जा में द्विजप्रिय भगवान् का न्यास करे शुक्र में श्वेत पति का न्यास करे । सम्पूर्ण अङ्गों में यज्ञ पुरुष का न्यास करे और आत्मा में परमात्मा का न्यास करे॥२९॥ इस प्रकार से न्यास विधि को करने वाला साक्षात् नारायण हो जाता है । जब तक वह कुछ नहीं बोलता है तब तक वह विष्णु स्वरूप रहता है ॥३०॥ शान्ति करने वाले को चाहिए कि जड़ सहित शुद्ध कुशों का सावधानी पूर्वक कुश के अग्रभाग से सम्पूर्ण शरीर का मार्जन करे ॥३१॥ विशेष रूप से भगवान् विष्णु रोग, ग्रह या विष जन्य कष्ट होने पर विष्णु से दुःखी बने रोगियों का यह शुभ शान्ति करे॥३२॥ हे विप्र ! उसके द्वारा सभी रोगों का नाश हो जाता है । कहे कि श्रीपरमार्थ स्वरूप महात्मा ओङ्कार स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है । किसी रूप विशेष से रहित तथा अनेक रूपों वाले परमात्मा को नमस्कार है । इसके बाद सुख देने वाले वाराह, नरसिंह एवं वामन भगवान् का ध्यान करके फिर नमः पद के साथ भगवान् विष्णु के नामों का अङ्गों में न्यास करे । पाप रहित शुद्ध तथा व्याधियों को दूर करने वाले गोविन्द, पद्मनाभ, वासुदेव और पृथिवी को धारण करने वाले भगवान् को नमस्कार करके मैं इसलिए कहता हूँ कि मेरी वाणी सत्य हो ॥३३-३६॥ त्रिविक्रम, श्रीराम, वैकुण्ठ, नर, श्रीवाराह, नृसिंह तथा महात्मा वामन को नमस्कार है ॥३७॥ हयग्रीव, शुभ्र, हृषीकेश आप इस अशुभ को दूर करें । इस पर भयङ्कर उपताप युक्त अभिचार कर्म का प्रयोग किया गया है ॥३८॥ विष स्पर्श महारोग तुम जरा जीर्ण हो जाओ । वासुदेव, कृष्ण तथा खड्गधारी भगवान् को नमस्कार है ॥३९॥ कमलनयन को नमस्कार है, केशव तथा चक्रधारी को नमस्कार है । पराग के सदृश श्रेष्ठ वर्ण वाले पीताम्बरधारी भगवान् को नमस्कार

महादेववपुःस्कन्धधृतचक्राय चक्रिणे। दंष्ट्रोद्धृतक्षितितलत्रिमूर्तिपतये नमः ॥४१॥
महायज्ञवराहाय श्रीवल्लभ नमोऽस्तु ते। तप्तहाटककेशान्तज्वलत्पावकलोचन ॥४२॥
वज्राधिकनखस्पर्शदिव्यसिंह नमोऽस्तु ते। कश्यपायातिह्रस्वाय ऋग्युजुःसामलक्षण ॥४३॥
तुभ्यं वामनरूपाय क्रमते गां नमोनमः। वाराहाशेषदुःखानि सर्वपापफलानि च ॥४४॥
मर्दमर्द महादंष्ट्र मर्दमर्द च तत्फलम्। नरसिंह करालास्य दन्तप्रान्तनखोज्ज्वल॥४५॥
भङ्क्ष्य भङ्क्ष्व निनादेन दुःखान्यस्यार्त्तिनाशन्।
ऋग्यजुःसामभिर्वाग्भिःकामरूपधरादिधृत् ॥४६॥
प्रशमं सर्वदुःखानि नयत्वस्य जनार्दन। ऐकाहिकं द्व्याहिकं च तथा त्रिदिवसज्वरम् ॥४७॥
चातुर्थिकं तथात्युग्रं तथा वैसततज्वरम्। दोषोत्थं सन्निपातोत्थं तथैवागन्तुकज्वरम् ॥४८॥
शमं नयतु गोविन्दो भित्त्वा च्छित्त्वाऽस्य वेदनाम्।
नेत्रदुःखं शिरो दुःखं दुःखं तूदरसंभवम् ॥४९॥
अनुच्छ्वासं महाश्वासंपरितापं सवेपथुम्। गुदघ्राणांघ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगं तथाक्षयम्॥५०॥
कामलादींस्तथा रोगान्प्रमेहादींश्च दारुणान्। ये वातप्रभवा रोगा लूताविस्फोटकादयः ॥५१॥
ते सर्वे विलयं यान्तु वासुदेवापमार्जिताः। विलयं यान्तु ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेनवा ॥५२॥
क्षयं गच्छन्तु चाशेषास्ते चक्राभिहता हरेः। अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजात्॥५३॥
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।
स्थावरं जङ्गमं यच्च कृत्रिमं चापि यद्विषम् ॥५४॥

है ॥४०॥ महादेव के समान शरीर वाले, कन्धे पर चक्र धारण करने वाले चक्री भगवान् को नमस्कार है। अपने दाँतों पर पृथिवी को धारण करने वाले त्रिमूर्तियों के स्वामी को नमस्कार है ॥४१॥ महायज्ञ वाराह रूप धारी हे श्रीबल्लभ ! आपको नमस्कार है। जिनके केश का ऊपरी हिसा तप्त सुवर्ण के समान चमकता है और जलती हुयी अग्नि के समान जिनके नेत्र हैं हे दिव्यसिंह आपको नमस्कार है। अत्यन्त छोटे महर्षि कश्यप के पुत्र ऋग्यजुःसाम स्वरूप ॥४२-४३॥ पृथिवी को लाँघ जाने वाले वामन भगवान् को नमस्कार है। हे वाराह ! सम्पूर्ण दुःखों तथा सभी पापों के फलों का आप मर्दन करें, और उसके फलों का मर्दन करें। हे भयङ्कर मुख वाले, हे उज्जवल दाँतों के अग्रभाग तथा नखों वाले नरसिंह भगवान् ! हे दुःखों को विनष्ट करने वाले ! अपनी गर्जना से इसके दुःखों को विनष्ट करें। ऋग्यजु तथा सामस्वरूप वाणियों वाले, अपने मनोनुकूल रूप धारण करने वाले, तथा पृथिवी को धारण करने वाले भगवान् जनार्दन इसके दुःखों को दूर करें। एकाहिक, द्वयाहिक तथा तीन दिन पर होने वाले ज्वर को ॥४४-४७॥ चातुर्थिक ज्वर, उग्रज्वर तथा हमेशा बने रहने वाले ज्वर, दोष जन्य सन्निपात ज्वर, और आगन्तुक ज्वर को वेदना को विनष्ट करके भगवान् गोविन्द विनष्ट करें। नेत्र दुःख, शिर का दुःख तथा पेट के दुःख को ॥४८-४९॥ उच्छ्वास राहित्य, महाश्वास, कँपकपी के साथ परिताप, गुदास्थान, नासिका, पैर के रोग, कुष्ठ रोग, क्षयरोग, पीलिया रोग, प्रमेह आदि भयङ्कर रोग, वायुजन्य रोग लूता, विस्फोटक आदि जो रोग हैं, वे वासुदेव के द्वारा अपमार्जित होकर शान्त हो जायँ। अथवा वे भगवान् विष्णु का नाम उच्चारण करने के कारण विनष्ट हो जायँ ॥५०-५२॥ सभी रोग श्रीहरि के चक्र के द्वारा प्रताड़ित होकर विनष्ट हो

दन्तोद्भवं नखोद्भूतमाकाशप्रभवं च यत्। भूतादि प्रभवं यच्च विषमत्यन्तदुःसहम्॥५५॥
शमं नयतु तत्सर्वं कीर्तितोऽस्य जनार्दनः। ग्रहान्प्रेतग्रहांश्चैवतथान्याञ्छाकिनीग्रहान् ॥५६॥
मुखमण्डलिकान्क्रूरान्रेवतीं वृद्धिरेवतीम्। वृद्धिकाख्यान्ग्रहांश्चोग्रांस्तथामातृग्रहानपि ॥५७॥
बालस्य विष्णोश्चरितं हन्तु बालग्रहानपि।
वृद्धानां ये ग्रहाः केचिद् बालानां चापि ये ग्रहाः॥५८॥
नृसिंहदर्शनादेव नश्यन्ते तत्क्षणादपि। दंष्ट्राकरालवदनो नृसिंहो दैत्यभीषणः॥५९॥
तं दृष्ट्वा ते ग्रहासर्वे दूरं यान्ति विशेषतः। श्रीनृसिंहमहासिंह ज्वालामालोज्ज्वलानन॥६०॥
ग्रहानशेषान्सर्वेश नुदस्वास्य विलोचन। ये रोगा ये महोत्पाता ये द्विषो ये महाग्रहाः॥६१॥
यानि च क्रूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारुणाः। शस्त्रक्षतेषु ये रोगा ज्वालगर्दभिकादयः॥६२॥
विस्फोटकादयो ये च ग्रहा गात्रेषु संस्थिताः।
त्रैलोक्यरक्षाकर्त्तस्त्वं दुष्टदानववारण ! ॥६३॥
सुदर्शन महातेजश्छिन्धि छिन्धी महाज्वरम्।
छिन्धि वाता च लूतां च च्छिन्धि घोरं महाविषम्॥६४॥
उद्दण्डामरशूलं च विषज्वाला स गर्दभम्। ओंह्रां ह्रां हूं हूं प्रधारेण कुठारेण जहि द्विषः॥६५॥
ओं नमो भगवते सुदर्शनाय दुःखदारणविग्रह।
यानि चान्यानि दुष्टानि प्राणिपीडाकराणि वै॥६६॥
तानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा जनार्द्दनः।
किंचिद्रूपं समास्थाय वासुदेव ! नमोऽस्तु ते॥६७॥

जायँ। भगवान् के अच्युत, अनन्त, गोविन्द के नामोच्चारण रूपी औषध से सभी रोग नष्ट हो जायेंगे यह मैं सत्य कह रहा हूँ। स्थावर, जङ्गम, कृत्रिम जो विष हैं॥५३-५४॥ दाँत में उत्पन्न होने वाले, नख से उत्पन्न आकाश से उत्पन्न तथा भूत इत्यादि से उत्पन्न जो दुःसह विष श्रीभगवान् जनार्दन के कीतन से शान्त हो जायँ। ग्रह, प्रेतग्रह तथा दुःसह शाकिनी ग्रह, क्रूर मुख मण्डलिका, खेती, वृद्ध रेवती, तथा वृद्धिका कहे जाने वाले उग्र ग्रह तथा मातृग्रह भी, बालक विष्णु का चरित बालग्रहों को भी विनष्ट कर दे। बालकों तथा वृद्धों के जो ग्रह हैं॥५५-५८॥ वे सब भगवान् नृसिंह का दर्शन करने से क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं। तथा तीक्ष्ण दाँतों के कारण भयङ्कर मुख वाले दैत्यों के लिए भयङ्कर हैं॥५९॥ भगवान् नृसिंह को देखकर बड़े-बड़े दैत्य दूर भाग जाते हैं। हे नृसिंह, महासिंह, हे ज्वाला समूह से चमकते हुए मुख वाले भगवन्! हे विशिष्ट नेत्र वाले भगवन्! इसके सभी ग्रहों को आप भगा दें। जितने रोग हैं, जितने महाउत्पात हैं, जितने शत्रु हैं, जितने महाग्रह हैं, जितने क्रूर जीव हैं, ग्रहों से होने वाली भयङ्कर पीड़ा हैं, शस्त्र से कटे हुए स्थानों में होने वाले ज्वाला गर्दभिका आदि रोग हैं, जो फोड़े इत्यादि हैं, इसके शरीर में विद्यमान जो ग्रह हैं हे दुष्ट दानवों को भगाने वाले ! तथा त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले भगवन् उन सबों को हटा दें॥६०-६३॥ हे महातेजस्वी ! सुदर्शन चक्र आप महाज्वर को काट दें। अन्य वायु और लूता को विनष्ट करें और भयङ्कर महाविष को विनष्ट करें॥६४॥ उद्दण्ड अमर शूल विषज्वाल, गर्दभरोग, तीव्र धार वाले कुठार से आप शत्रुओं को मार दें। ओम् ह्रां ह्रीं हूं॥६५॥ दुःखों को विनष्ट करने वाले

क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालाविभीषणम् ।
सर्वदुष्टोप्रशमनं कुरुदेव वराच्युत ॥६८॥
सुदर्शन महाचक्र गोविन्दस्य वरायुध। तीक्ष्णधार महावेग सूर्यकोटि समद्युते॥६९॥
सुदर्शन महाज्वाल च्छिन्धि च्छिन्धि महारव ।
सुर्वदुःखानि रक्षांसि पापानि च विभीषण ॥७०॥
दुरितं जहि चारोग्यं कुरुत्वं भो सुदर्शन। प्राच्यांचैव प्रतीच्यां च दक्षिणोत्तरतस्तथा॥७१॥
रक्षां करोति विश्वात्मानरसिंहःस्वगर्जितैः। भुव्यन्तरिक्षे च तथा पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः॥७२॥
रक्षांकरो तु भगवान्बहुरूपी जनार्दनः। यथा विष्णुमयं सर्वं सदेवासुर मानुषम्॥७३॥
तेन सत्येन सकलं दुःखमस्य प्रणश्यतु। यथा योगेश्वरो विष्णुःसर्व देवेषुगीयते॥७४॥
तेन सत्येन सकलं दुःखमस्य प्रणश्यतु। परमात्मा यथा विष्णुर्वेदाङ्गेषु च गीयते॥७५॥
तेन सत्येन विश्वात्मा सुखदोऽस्त्वस्य केशवः ।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु प्रणाशं यातु चासुखम् ॥७६॥
वासुदेवशरीरोत्थैःकुशैःसंमार्जितं मया। अपामार्जित गोविन्द नमो नारायणस्तथा॥७७॥
तथापि सर्व दुःखानां प्रशमोवचनाद्धरेः। शान्ताःसमस्तदोषास्ते ग्रहाःसर्वे विषाणि च ॥
भूतानि च प्रशाम्यन्ति संस्मृतेमधुसूदने ॥७८॥
एते कुशा विष्णुशरीरसंभवा जनार्दनोऽहं स्वयमेव चाग्रतः ।
हतं मया दुःखमशेषमस्य वै स्वस्थो भवत्वेष वचो यथा हरेः ॥७९॥

भगवान् सुदर्शन को नमस्कार है । प्राणियों को दुःख देने वाले जितने भी दूसरे दुष्ट हैं उन सबों को सबों की आत्मा स्वरूप भगवान् जनार्दन किसी रूप को धारण करके विनष्ट करें । हे भगवन् वासुदेव, आपको नमस्कार है ॥६६-६७॥ आप ज्वाला समूह से भयङ्कर बने हुए सुदर्शन चक्र को फेंक कर सभी दुष्टों को शान्त कर दें ! हे अच्युत भगवन् ॥६८॥ हे महाचक्र सुदर्शन ! हे भगवन् गोविन्द के श्रेष्ठ आयुध ! हे तीक्ष्ण धार तथा महावेग सम्पन्न करोड़ों सूर्य के समान कान्ति वाले ! घोर ध्वनि करने वाले, महाज्वाला से युक्त, हे अत्यन्त भयङ्कर ! आप सभी दुःखों, पापों और राक्षसों को विनष्ट कर दें ॥६९-७०॥ हे सुदर्शन ! आप पाप को विनष्ट करके आरोग्य प्रदान करें । पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर दिशाओं में विश्वात्मा भगवान् नरसिंह अपनी गर्जना से रक्षा करें । पृथिवी तथा अन्तरिक्ष में आगे, पीछे, बगल में अनेक रूपों को धारण करने वाले भगवान् जनार्दन रक्षा करें । जिस तरह देवता, असुर तथा मनुष्य इत्यादि सबके सब विष्णु स्वरूप हैं ॥७१-७३॥ इसी सत्य के द्वारा इसके सभी दुःख शान्त हो जायँ । सभी देवता भगवान् विष्णु को योगेश्वर बतलाते हैं ॥७४॥ इसी सत्य के द्वारा इसके सम्पूर्ण दुःख विनष्ट हो जायँ । सभी वेदाङ्गों में भगवान् विष्णु का ही वर्णन किया जाता है, इसी सत्य के द्वारा विश्वात्मा भगवान् केशव इसको सुख प्रदान करे, इसकी शान्ति हो, कल्याण हो तथा इसके दुःख विनष्ट हो जायँ ॥७५-७६॥ भगवान् वासुदेव के शरीर से उत्पन्न होने वाले कुशों से मैंने इसका अपामार्जन किया है । भगवान् गोविन्द तथा नारायण को नमस्कार है ॥७७॥ श्रीहरि के वचनानुसार सभी दानव नष्ट हो जायँ । सभी दोष, ग्रह और विष शान्त हो जायँ । भगवान् मधुसूदन का स्मरण करने से सभी भूत शान्त हो जाते हैं ॥७८॥ ये

शान्तिरस्तु शिवं चास्तु प्रणश्यत्वसुखं च यत् ।
यदस्य दुरितं किंचित्क्षिप्तं तल्लवणाम्भसि ॥८०॥
स्वास्थ्यमस्य सदैवास्तु हृषीकेशस्य कीर्तनात् ।
यद्यतोऽत्रागतं पापं तत्तु तत्र प्रगच्छतु ॥८१॥
एतद्रोगेषु पीडासु जन्तूनां हितमिच्छुभिः। विष्णुभक्तैश्च कर्त्तव्यमपामार्जनकं परम् ॥८२॥
अनेन सर्वदुःखानि विलयं यान्त्यशेषतः । सर्व पापविशुद्ध्यर्थं विष्णोश्चैवापमार्जनम् ॥८३॥
आर्द्रं शुष्कं लघुस्थूलं ब्रह्महत्यादिकं तु यत् ।
तत्सर्वं नश्यते तूर्णं तमोवद्रविदर्शनात् ॥८४॥
नश्यन्ति रोगा दोषाश्च सिंहात्क्षुद्रमृगा यथा ।
ग्रहभूतपिशाचादि श्रवणादेव नश्यति ॥८५॥
द्रव्यार्थं लोभपरमैर्न कर्त्तव्यं कदाचन । कृतेऽपामार्जने किंचिन्न ग्राह्यं हितकाम्यया ॥८६॥
निरपेक्षैः प्रकर्तव्यमादिमध्यान्तबोधकैः। विष्णुभक्तैः सदाशान्तैरन्यथाऽसिद्धिदं भवेत् ॥८७॥
अतुलेयं नृणां सिद्धिरियं रक्षापरा नृणाम् । भेषजं परमं ह्येतद्विष्णोर्यदप मार्जनम् ॥८८॥

महादेव उवाच

उक्तं हि ब्रह्मणा पूर्वं पुलस्त्याय सुताय वै। एतत्पुलस्त्यमुनिना दालभ्यायोदितं स्वयम् ॥८९॥
सर्वभूतहितार्थाय दालभ्येन प्रकाशितम् । त्रैलोक्ये तदिदं विष्णोःसमाप्तं चापमार्जनम् ॥९०॥

भगवान् विष्णु के शरीर से उत्पन्न हुए हैं । इसके सामने मैं स्वयं जनार्दन स्वरूप हूँ । मैंने इसके सभी दुःखों को विनष्ट कर दिया । श्रीहरि के वचनों के अनुसार यह स्वस्थ हो जाय ॥७९॥ शान्ति कल्याण हो, सारे दुःख विनष्ट हो जायँ, इसके समस्त पापों को मैंने क्षार समुद्र में डाल दिया ॥८०॥ भगवान् हृषीकेश का कीर्तन करने के कारण इसका स्वास्थ्य सदा बना रहे । यहाँ-जहाँ से पाप आया है वहीं चला जाय ॥८१॥ रोगों से पीड़ा होने वाले जीवों का कल्याण चाहने वाले भगवान् विष्णु के भक्तों को इसका अपामार्जन को करना चाहिये ॥८२॥ उसके द्वारा सभी दुःख विनष्ट हो जाते हैं । सभी पापों से मुक्त होने के लिए भगवान् विष्णु का अपामार्जन करना चाहिए ॥८३॥ जिस तरह सूर्योदय होते ही अन्धकार मिट जाता है, उसी तरह आर्द्र, शुष्क, छोटा, बड़ा, ब्रह्महत्या आदि पाप हैं वे नष्ट हो जाते हैं ॥८४॥ इसके सुनने मात्र से रोग और दोष उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे सिंह की ध्वनि से छोटे-छोटे जानवर भाग जाते हैं । भूत, ग्रह तथा पिशाच आदि भी नष्ट हो जाते हैं ॥८५॥ द्रव्य के लोभी से इस अपामार्जन को नहीं कराना चाहिए । अपामार्जन करने वाले को इसे कल्याण की कामना से करना चाहिए कुछ लेना नहीं चाहिए ॥८६॥ आदि, मध्य और अन्त को बतलाने वाले निरपेक्ष व्यक्ति को इसे करना चाहिए । उसे विष्णु भक्त और सदा शान्त रहने वाला होना चाहिए नही तो सिद्धि नहीं होती है ॥८७॥ मनुष्यों की रक्षा करने वाली यह सर्वश्रेष्ठ सिद्धि है । यह भगवान् विष्णु का अपामार्जन सर्वश्रेष्ठ औषधि है ॥८८॥ **महादेवजी ने कहा—** इसे सर्व प्रथम ब्रह्माजी ने अपने पुत्र पुलस्त्य महर्षि को बतलाया । पुलस्त्य महर्षि ने इसे दाल्भ्य महर्षि को बतलाया ॥८९॥ सभी जीवों का कल्याण करने के लिए इस विष्णु अपामार्जन को त्रैलोक्य मे

तवाग्रे कथितं देवि यतो भक्ताऽसि मे सदा ।
श्रुत्वा तु सर्वं भक्तया च रोगान्दोषान्व्यपोहति ।।९१।।
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे
उमापतिनारदसंवादेऽपामार्जनस्तोत्रं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।।७८।।

उन्नासीवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अपामार्जनकं दिव्यं परमाद्भुतमेव च। पठितव्यं विशेषेण पुत्रकामार्थसिद्धये ।।१।।
एतत्स्तोत्रं पठेत्प्राज्ञः सर्वकामार्थसिद्धये। एककालं द्विकालं वा ये पठन्ति द्विजातयः ।।२।।
आयुश्च श्रीर्बलंतेषांवृद्धिं यान्तिदिने दिने। ब्राह्मणो लभते विद्यांक्षत्रियो राज्यमेववा ।।३।।
वैश्यो धनसमृद्धिं च शूद्रो भक्तिं च विन्दति ।
अन्यश्च लभते भक्तिं पठनाच्छ्रवणाज्जपात् ।।४।।
सामवेदफलं तस्य जायते नगनन्दिनि। अखिलं पापसङ्घातं तत्क्षणादेव नश्यति।।५।
इति ज्ञात्वा तु भोदेवि ! पठितव्यं समाहितैः ।
पुत्राश्चैव तथा लक्ष्मीः संपूर्णा भवति ध्रुवम् ।।६।।
लिखित्वा भूर्जपत्रे तु यो धारयति वैष्णवः ।
इल लोके सुखं भुक्तवा याति विष्णोः परं पदम् ।।७।।

प्रकाशित किया ।।९०।। हे देवि ! मैंने तुमको इसलिए बतलाया कि तुम भक्त हो । भक्ति पूर्वक सुनने वाले के सभी रोग तथा दोष दूर हो जाते हैं ।।९१।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत अपामार्जन स्तोत्र वर्णन नामक अठहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७८।।

अपामार्जन स्तोत्र के पाठ की विधि और उसका माहात्म्य

महादेवजी ने कहा— अपामार्जन स्तोत्र दिव्य तथा अद्भुत है । पुत्र प्राप्ति की कामना से इसका पाठ करना चाहिए ।।१।। प्राज्ञ पुरुष को अपनी सभी कामनाओं की प्राप्ति के लिए इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए । इसको जो द्विज एक बार या दो बार पढ़ते हैं उनकी आयु, श्री और वल की वृद्धि प्रतिदिन होती है । इसके पाठ से ब्राह्मण को विद्या, क्षत्रिय को राज्य, वैश्य को धन की समृद्धि तथा शूद्र को भक्ति की प्राप्ति होती है । इसके पाठ, श्रवण तथा जप से दूसरे लोग भक्ति प्राप्त करते हैं ।।२-४।। हे पार्वति! ऐसा करने वाले को सामवेद का पाठ का फल मिलता है । उसके उसी समय सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ।।५।। हे देवि ! इस बात को जानकर सावधानी पूर्वक इसका पाठ करना चाहिए कि इससे पुत्र तथा सम्पत्ति पूर्ण होते हैं ।।६।। जो वैष्णव इसे भोज पत्र पर लिखकर इसको धारण करता है, वह इस लोक

पठित्वा श्लोकमेकं तु तुलसीं यः समर्पयेत् ।
सर्वं तीर्थं कृतं तेन तुलस्याः पूजने कृते ॥८॥
एतत्स्तोत्रं तु परमं वैष्णवं मुक्तिदायकम् । पृथ्वीदानसमं पाठाद्विष्णुलोकं तु गच्छति ॥९॥
जपेत्स्तोत्रं विशेषेण विष्णुलोकस्य वाञ्छया ।
बालानां जीवानार्थाय पठितव्यं समाहितैः ॥१०॥
रोगग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् । भूतग्रहविषंचैव पठनादेव नश्यति ॥११॥
कण्ठे तुलसिजां मालां धृत्वा विप्रो हि यः पठेत् ।
स च वै वैष्णवो ज्ञेयो विष्णुलोकं स गच्छति ॥१२॥
कण्ठेमाला धृता येन शङ्खचक्रादि चिह्नितः ।
वैष्णवःप्रोच्यते विप्रःस्तोत्रं चैतत्पठन्सदा ॥१३॥
इहलोकं परित्यज्यविष्णुलोकं सगच्छति । मोहमाया परित्यक्तोदम्भतृष्णाविवर्जितः ॥१४॥
एतत्स्तोत्रं पठेद्दिव्यं परंनिर्वाणमाप्नुयात् ।
ते धन्याःसन्ति भूलोके ये विप्रा वैष्णवाःस्मृताः॥१५॥
स्वात्मा वै तारितस्तैस्तु सकुलं नात्रसंशयः ।
ते वै धन्यतमालोके नारायणपरायणाः ॥
तैर्भक्तिश्च सदा कार्या ते वै भागवता नराः ॥१६॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादेऽपामार्जनमहिमा नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

में सुख भोगकर भगवान् विष्णु के परमपद में जाता है ॥७॥ जो इसके एक-एक श्लोक पढ़कर भगवान् पर तुलसी चढ़ाने से सभी तीर्थों को करने का फल होता है ॥८॥ यह परम वैष्णव स्तोत्र मुक्ति दायक है इसका पाठ करने से पृथिवी का दान करने के समान फल होता है और वह विष्णु लोक में जाता है ॥९॥ विशेष रूप से विष्णु लोक की प्राप्ति की इच्छा से इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए । बालकों के जीवन के लिए सावधानी पूर्वक करना चाहिए ॥१०॥ यह रोग तथा ग्रह से अभिभूत हुए बालकों के लिए शान्ति प्रद है । इसके पढ़ने मात्र से भूत, ग्रह तथा विष नष्ट हो जाते हैं ॥११॥ जो ब्राह्मण गले में तुलसी की माला पहनकर इसका जो पाठ करता है उसको वैष्णव समझना चाहिए वह विष्णुलोक में जाता है ॥१२॥ जो कोई शङ्ख, चक्र के चिह्न से युक्त गले में माला धारण करता है । वह इस स्तोत्र का पाठ करने के कारण वैष्णव कहलाता है ॥१३॥ मोह, माया से रहित तथा गर्व और तृष्णा से रहित इस स्तोत्र का पाठ करने वाला इस लोक में सुख भोग कर विष्णु लोक में जाता है ॥१४॥ इस दिव्य स्तोत्र का पाठ करने वाला मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । भगवान् नारायण के जो भक्त हैं वे इस लोक में धन्यतम हैं । उन लोगों का सदा भक्ति करनी चाहिए ऐसे लोग भागवत हैं ॥१५-१६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड को उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत अपामार्जन महिमा वर्णन नामक उनासीवें अध्याय के शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७९।।

अस्सीवाँ अध्याय

श्रीपार्वत्युवाच

अहो विष्णोश्च माहात्म्यंवद विश्वेश्वरप्रभो। यन्माहात्म्यंपुनः श्रुत्वानभवेजायतेक्वचित् ॥१॥

महादेव उवाच

श्रृणु सुन्दरि वक्ष्यामि विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
श्रुत्वा तु लभते पुण्यं ह्यन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥२॥

देवव्रतं महाप्राज्ञं ध्यानयोगपरायणम्। आश्रयं सर्वशास्त्राणां यतेन्द्रियमकल्मषम् ॥३॥
अप्रधृष्यं महाभागं देवैरपि सवासवैः। सत्यसन्धं जितक्रोधं समत्वे परिनिष्ठितम् ॥४॥
नारायणे जगन्नाथे शरण्ये भक्तवत्सले। परांनिष्ठामनुप्राप्तं वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥५॥
गुणानामाश्रयं शान्तं भीष्मंकुरु पितामहम्। प्रणम्य शिरसाभूमौ पप्रच्छेदं युधिष्ठिरः ॥६॥

युधिष्ठिर उवाच

केचिदाहुःपरं धर्मं केचिदाहुः परंधनम्। केचिद्दानं प्रशंसन्ति समुदायं तथापरे ॥७॥
साङ्ख्यं केचित्प्रशंसन्तियोगमन्ये तथापरम्। केचिज्ज्ञानं प्रशंसन्ति केचिदाहुःपरंश्रुतम् ॥८॥
सम्यग्ध्यानं परंकेचित्केचिद्वैराग्यमुतमम्। अग्निष्टोमादिकं कर्म तथा केचित्परंविदुः ॥९॥
आत्मज्ञानं परंकेचित्समलोष्टाश्म काञ्चनाः। यमांश्च नियमांश्चैव केचित्प्रोचुर्मनीषिणः ॥१०॥
कारुण्यं च परेकेचिदहिंसां च तपस्विनः। शौचं केचित्परं प्राहुःकेचिद्देवार्चनं नराः ॥११॥

भगवान् विष्णु का माहात्म्य वर्णन

श्रीपार्वतीजी ने कहा— हे विश्वेश्वर प्रभो ! आप भगवान् विष्णु का माहात्म्य बतलायें। उनका माहात्म्य सुन लेने से संसार में कहीं भी जन्म नहीं होता है ॥१॥ **महादेवजी ने कहा—** हे सुन्दरि ! सुनों मैं भगवान् विष्णु का उत्तम माहात्म्य बतलाता हूँ। इसके सुनने से पुण्य की प्राप्ति होती है और अन्त में मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है ॥२॥ एक बार युधिष्ठिर ने प्रणाम करके, महाबुद्धिमान, ध्यानयोग में लगे रहने वाले, सभी शास्त्रों के ज्ञाता, निष्पाप एवं जितेन्द्रिय वसुगण और देवगण भी जिन्हें नहीं परास्त कर सकते थे, सत्य वक्ता, क्रोध को अपने वश में रखने वाले, समता की बुद्धि से सम्पन्न, भक्त वत्सल तथा सबके आश्रय जगत् के स्वामी भगवान् नारायण की वाणी, मन, शरीर और कर्मों से परमा भक्ति सम्पन्न समस्त सद्गुणों से युक्त कुरुकुल के पितामह, देवव्रत भीष्म जी से पूछे ॥३-६॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** कुछ लोग धर्म को श्रेष्ठ कहते हैं, कुछ लोग धन को श्रेष्ठ मानते हैं, कुछ लोग दान की प्रशंसा करते हैं और कुछ लोग इन तीनों के समुदाय को श्रेष्ठ कहते हैं ॥७॥ कुछ लोग सांख्य की प्रशंसा करते हैं तो कुछ लोग योग की, कुछ लोग ज्ञान की प्रशंसा करते है तो कुछ लोग श्रवण की ॥८॥ कुछ लोग ध्यान को अच्छा मानते हैं तो कुछ लोग वैराग्य को उत्तम बतलाते हैं। कुछ लोग अग्निष्टोम याग आदि कर्मों को श्रेष्ठ बतलाते हैं ॥९॥ कुछ लोग आत्मज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं। आत्मज्ञानी ढेला, पत्थर और सुवर्ण को एकसमान उपेक्ष्य मानते हैं। कुछ मनीषियों ने यम, नियम आदि को श्रेष्ठ कहा है ॥१०॥ कुछ तपस्वी करुणा अहिंसा को श्रेष्ठ मानते हैं। कुछ लोग शौच को श्रेष्ठ कहते हैं और कुछ लोग देवार्चन को ॥११॥ पाप के कारण

व्यामोहं चात्र गच्छन्ति व्यामुग्धाःपापकर्मभिः ।
यदेतेषु परंकृत्यमनुष्ठेयं महात्मभिः ॥
वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ सर्वशास्त्रभृतांवर ! ॥१२॥

महादेव उवाच

भूलोके या कथा जाता भैष्मी यौधिष्ठिरी सति ।
तामहं संप्रवक्ष्यामि लोकानां च हिताय वै ।
एतान्प्रश्नांस्तदा श्रुत्वा प्राह भीष्मो युधिष्ठिरम् ॥१३॥

भीष्म उवाच

श्रूयतामिदमत्यन्तं गूढं संसारमोचनम्। श्रोतव्यं यत्त्वया सम्यग्ज्ञातव्यं धर्मनन्दन ! ॥१४॥
अत्रैवोदाहरन्तीमं पुण्यं चैव पुरातनम्। पुण्डरीकस्य संवादं महर्षेर्नारदस्य च ॥१५॥
ब्राह्मणःश्रुतिसंपन्नःपुण्डरीको महामतिः। आश्रमे प्रथमे तिष्ठन्गुरूणां वशगःसदा॥१६॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधःसन्ध्योपासनतत्परः। वेदवेदाङ्गनिपुणःशास्त्रेषु च विचक्षणः ॥१७॥
समिद्धिःसाधुहव्येन सायं प्रातर्हुतानलः। ध्यात्वा जगत्पतिं विष्णुं सम्यगाराधयद्विभुम्॥१८॥
तपःस्वाध्यायनिरतः साक्षाद्ब्रह्मसुतो यथा। उदकेन्धनपुष्पाद्यैरसकृत्पूजयन्गुरुम् ॥१९॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषुर्भिक्षाहारी विमत्सरः। ब्रह्मविद्यामधीयानःप्राणायामपरायणः ॥२०॥
तस्य सर्वात्मभूतस्य संसारे निःस्पृहस्य च। महात्मनो बुद्धिरासीत्संसारार्णवतारिणी॥२१॥
मातरं पितरं चैवभ्रातृनथसुहज्जनान्। मित्राणि मातुलांश्चैवसखीन्सम्बन्धिबान्धवान्॥२२॥
धनधान्यसमृद्धं च गृहं वंशक्रमागतम्। क्षेत्राणि सुमहार्हाणि सर्वसस्योद्भवानि च॥२३॥

भ्रान्त जीव इसी भ्रम में पड़ जाते हैं कि इनमें से श्रेष्ठ अनुष्ठेय क्या है ? हे सभी शास्त्रों के ज्ञाता, धर्मज्ञ, बतलाइये कि महात्माओं के द्वारा अष्ठेय क्या है ॥१२॥ **महादेवजी ने कहा—** भूलोक में भीष्म और युधिष्ठर में जो बातें हुयीं उन्हें मैं तुम्हें बतला रहा हूँ । यह लोकों का कल्याणकारी है । इन सभी प्रश्नों को सुनकर भीष्मजी युधिष्ठिर से कहे ॥१३॥ **भीष्म ने कहा—** तुम संसार के बन्धन को छुड़ाने वाले अत्यन्त रहस्यात्मक इस बात को सुनो । हे धर्मनंदन ! इसे तुम्हें अच्छी तरह सुनना और जानना चाहिए।१४॥ इस विषय में महापुरुष पुण्डरीक और नारदजी के पवित्र और प्राचीन संवाद को बतलाते हैं ॥१५॥ वेदज्ञ ब्राह्मण पुण्डरीक महाबुद्धिमान थे । वे ब्रह्मचर्याश्रम में रहकर सदा गुरुओं के वश में रहते थे ॥१६॥ वे जितेन्द्रिय, जित काहे, सन्ध्योपासन करने वाले, वेद वेदाङ्ग के ज्ञाता और शास्त्रों में निपुण थे ॥१७॥ वे प्रातःकाल समिधा तथा शुद्ध हविष्य से अग्निहोत्र करते थे । वे जगत् के स्वामी विष्णु का ध्यान करके उनकी अच्छी तरह से आराधना करते थे ॥१८॥ तपस्या और वेदाध्यनन करने वाले साक्षात् ब्रह्माजी के पुत्र प्रतीत होते थे । वे बार-बार अपने गुरु को इन्धन, जल तथा पुष्प आदि देकर समादर करते थे ॥१९॥ माता-पिता के सेवा करने वाले थे और भिक्षा का आहार करते थे । किसी के द्वेष नहीं करते थे । ब्रह्मविद्या का अध्ययन करते हुए सदा प्राणायाम करते रहते थे ॥२०। सबों को अपने ही समान जानते थे और संसार से निस्पृह थे । उनकी बुद्धि संसार सागर से पार करने वाली थी ॥२१॥ वे माता, पिता, भाई,

परित्यज्य महासत्त्वस्तृणानीव माहसुखी। विचचार महीं रम्यां शाकमूलफलाशनः ॥२४॥
गङ्गाञ्च यमुनाञ्चैव गोमतीमथ गण्डिकाम्। शतद्रुं च पयोष्णीं च सरयूं च सरस्वतीम् ॥२५॥
प्रयागं नर्मदांचैव शोणंचैव महानदम्। प्रभासं विन्ध्यतीर्थानि हिमवत्प्रभवाणि च॥२६॥
आश्रमेषु च यानिस्युर्नैमिषे पुष्करादिषु। कुरुक्षेत्रे च यानिस्युस्तथा गोवर्धनादिषु ॥२७॥
अन्यानि सुमहातेजास्तीर्थानि सुसमाहितः। विचचार महायोगी यथाकाले यथाविधि ॥२८॥
कदाचिदात्मवान्धीरःशालग्रामं तपोधनः। पुण्डरीको महाभागः पूर्वकर्मवशानुगः ॥२९॥
संसेव्यमानं मुनिभिस्तत्त्वविद्भिस्तपोधनैः। मुनीनामास्पदंरम्यं पुराणेष्वपि विश्रुतम् ॥३०॥
भूषितंचैव चक्राद्यैश्चक्राङ्कित शिलातलम्। रम्यं विविक्तविस्तीर्णं सदा विष्णुप्रसादकम् ॥३१॥
किं च चक्राङ्कितास्तेप्राणिनःपुण्यदर्शनाः। विचरन्ति यथाकामं पुण्यतीर्थप्रदर्शिनः ॥३२॥
तस्मिन्क्षेत्रे महापुण्ये शालग्रामे महामतिः। स्नात्वा देवह्रदे तीर्थे सरस्वत्यां च सुव्रतः॥३३॥
जातिस्मर्यां चक्रकुण्डे चक्रनद्याश्रितेषु च। तथाऽन्यान्यपि तीर्थानि तस्मिन्नेव चचार सः ॥३४॥
ततःक्षेत्रप्रभावेण तीर्थानां चैव तेजसा। मनःप्रसादमभजत्तस्मिन्नेव महामनाः ॥३५॥

सोऽपि तीर्थविशुद्धात्मा पुण्डरीकस्तपोधनः ।
तत्रैव वसतिं चक्रे ध्यानयोगपरायणः ॥३६॥
तत्रैव सिद्धिमाकाङ्क्षन्नाराध्य गरुडध्वजम् ।
शास्त्रोक्तेन विधानेन भक्तया परमया पुनः ॥३७॥

उवास चिरमेकाकी निर्द्वन्द्वःस जितेन्द्रियः। शाकमूलफलाहारःसंतुष्टःसमदर्शनः ॥३८॥

सुहृद, मित्र, मामा, सखा, सम्बन्धियों तथा बान्धवों को धन, धान्य से समृद्ध पैतृक गृह, अत्यन्त मूल्यवान खेत सबकुछ उत्पन्न होता था, सबों को तृण के समान त्याग कर महाज्ञानी वे शाक, मूल तथा फल का आहार करते थे और महासुखी होकर पृथिवी पर विचरण करते थे ॥२२-२४॥ गङ्गा, यमुना, गोमती, गण्डकी, शतद्रु, पयोष्णी, सरयू, सरस्वती ॥२५॥ प्रयाग, नर्मदा, महानद, शोण, प्रभास क्षेत्र, विन्ध्य तीर्थ हिमालय को आश्रमों में नैमिष पुष्कर, कुरुक्षेत्र के सभी तीर्थों में तथा गोवर्धन आदि अन्य तीर्थों में वे महातेजस्वी विधि पूर्वक समयानुसार विचरण करते थे ॥२६-२८॥ एक बार धैर्य सम्पन्न तथा तपस्वी पुण्डरीक अपने पूर्वकर्मानुसार तत्त्ववेत्ता तपोधन मुनियों के द्वारा सेवित शालग्राम को जो मुनियों के मनोहर पूज्य थे, पुराणों में भी विख्यात हैं को देखे ॥२९-३०॥ वह शिला चक्र आदि से चक्रांकित मनोहर, स्पष्ट, विस्तृत तथा भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाली थी ॥३१॥ वे शालग्राम चक्रांकित थे। पवित्र प्राणियों को दर्शन देने वाले पवित्र तीर्थ को बोधित करके अपने मनोनुकूल विचरण करते हैं ॥३२॥ महामति पुण्डरीक अत्यन्त पुण्यमय शालग्राम क्षेत्र में देवहृद में स्नान करके तथा सरस्वती नदी में स्नान करके, पूर्वजन्म को याद दिलाने वाली चक्र नदी के दूसरे तीर्थों में चक्रकुण्ड में स्नान करके विचरण करने लगे ॥३३-३४॥ उसके बाद तीर्थ क्षेत्र के प्रभाव से तथा तीर्थों के तेज से महामना वे प्रसन्न मन वाले हो गये ॥३५॥ विशुद्धात्मा तथा तपस्वी पुण्डरीक भी वहीं निवारा करने लगे और ध्यान योग में लग गये ॥३६॥ वहीं पर सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा से शास्त्रीय विधि से परम भक्ति पूर्वक भगवान् गरुडध्वज की आराधना करके जितेन्द्रिय, निर्द्वन्द्व वे अकेले बहुत दिनों तक रहे। समदर्शी वे शाक, मूल तथा फल के आहार से संतुष्ट रहते

यमैश्च नियमैश्चैव तथैवासन बन्धनैः । प्राणायामैश्च तीर्थैश्च प्रत्याहारैश्च सन्ततैः ॥३९॥
धारणाभिस्तथा ध्यानैःसमाधिभिरतन्द्रितः । योगाभ्यासं सदा सम्यक्चक्रे विगतकिल्बिषः ॥४०॥
वैदिकैश्चाङ्गिकैश्चैव तथा पौराणिकैरपि । आराधयति सर्वेशं ततःशुद्धिमवाप सः ॥४१॥
रागद्वेषविनिर्मुक्तः स्वधर्म इव रूपवान् । आराधयामास देवं तद्गतेनान्तरात्मना ॥४२॥
तुतोष भगवान्विष्णुः पुण्डरीकायतेक्षणः । ततःकदाचित्तं देशं नारदः परमार्थवित् ॥४३॥
जगाम सुमहातेजाःसाक्षादादित्यसन्निभः । तं द्रष्टुकामो भगवान्पुण्डरीकं तपोनिधिम् ॥४४॥
विष्णुभक्तिपरीतात्मा वैष्णवानां हितेरतः । स दृष्ट्वा नारदं प्राप्तं तेजोमण्डलमण्डितम् ॥४५॥
महामतिर्महोदारःसर्ववेदैकभाजनम् । प्राञ्जलिःप्रणतो भूत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥४६॥
अर्घं दत्त्वा विधानेन प्रणाममकरोत्पुनः । कोऽयमत्यद्भुताकारस्तेजस्वी हृद्यवेषधृत् ॥४७॥
आतोद्यहस्तः सुमुखो जटामण्डलमण्डितः । विवस्वानथवा वह्निरिन्द्रो वरुण एव वा ॥४८॥
इति संचिन्तयन्स्थित्वा जगाद परमद्युतिम् ॥४९॥

पुण्डरीक उवाच

को भवानिह संप्राप्तःकृतो वा परमद्युतिः । त्वद्दर्शनं हि भगवन्प्रायेण भुविदुर्लभम् ॥५०॥
नैवदृष्टःपुमान्कोऽपि मया तव समःप्रभो । वक्तुमर्हस्यशेषेण यत्प्रदिष्टं मयानघ ! ॥५१॥

नारद उवाच

नारदोऽहमनुप्राप्तस्त्वद्दर्शनकुतूहलात् । दुर्दर्शो भगवद्भक्तस्त्वादृशःसततं द्विज ॥५२॥

थे ॥३७-३८॥ यम नियम, आसन, प्राणायाम, पवित्र प्रत्याहारों, धारणा, ध्यान तथा समाधि के द्वारा सावधानी पूर्वक सदा योगाभ्यास करते थे । उनके सारे पाप विनष्ट हो गये थे ॥३९-४०॥ वैदिक, वेदाङ्गों के तथा पौराणिक मन्त्रों से अपनी अन्तरात्मा से भगवान् में ही मन लगाकर आराधना करते थे । उसके कारण उनकी शुद्धि हो गयी ॥४१॥ राग तथा द्वेष से रहित वे मूर्तिमान अपने धर्म के समान श्रीभगवान् की आराधना करते थे ॥४२॥ उससे कमल नयन भगवान् प्रसन्न हो गये । उसके पश्चात् एक वार परमार्थ वेत्ता नारदजी वहाँ आये ॥४३॥ वे महातेजस्वी सूर्य के समान चमक रहे थे । वे तपस्वी पुण्डरीक से मिलने के लिए आये थे ॥४४॥ भगवान् विष्णु की भक्ति से परिपूर्ण तथा वैष्णवों के कल्याण करने वाले पुण्डरीक तेजो मण्डल से अलंकृत नारदजी को आये हुए दुखेकर ॥४५॥ महाबुद्धिमान्, अत्यन्त उदार, सभी वेदों के ज्ञाता वे हाथ जोड़कर अत्यन्त प्रसन्न मन से प्रणाम करके विधि पूर्वक अर्घ प्रदान किए और फिर प्रणाम किए । और सोचने लगे कि मनोहर वेषधारी, तेजस्वी तथा अद्भुत आकार वाले ये कौन है?॥४६॥ इनका मुख सुन्दर है, वाद्य हाथ में लिए हैं, जटा धारण किए हैं । ये सूर्य हैं, या अग्नि हैं, या इन्द्र हैं या वरुण देवता है ?॥४७-४८॥ इस तरह से विचार करके कहे ॥४९॥ **पुण्डरीक ने कहा**— परम कान्ति सम्पन्न आप कौन हैं ? और कहाँ से आये हैं ? हे भगवन् ! संसार में आपका दर्शन दुर्लभ है ॥५०॥ हे प्रभो ! आपके समान किसी पुरुष को मैंने नहीं देखा । हे अनघ ! मैंने जो पूछा है, उसे आप पूर्ण रूप से बतलायें ॥५१॥ **नारदजी ने कहा**— मैं तुमको देखने की उत्कण्ठा से आया हुआ नारद हूँ । हे द्विज ! आपके सदृश भगवद् भक्त संसार में कठिनाई से दिखते हैं ॥५२॥ हे द्विजोत्तम ! भगवद्

स्मृतः संतोषितो वापि पूजितो या द्विजोत्तम ।
पुनाति भगवद्भक्तश्चाण्डालोऽपि यदृच्छया ॥५३॥
दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः। शङ्खचक्रगदापाणेस्त्रैलोक्यस्यैकचक्षुषः ॥५४॥
इत्युक्तो नारदेनासौ भक्तिपर्याकुलात्मना। प्रोवाच मधुरं विप्रं तद्दर्शनसुविस्मितः ॥५५॥

पुण्डरीक उवाच

धन्योऽहं देहिनां मध्ये सुपूज्योऽहं सुरैरपि। कृतार्थाः पितरो मेऽद्य सम्प्राप्तं जन्मनःफलम्॥५६॥
अनुगृह्णीष्व देवर्षे त्वद्भक्तस्य विशेषतः। तं करिष्याम्यहं विद्वन्भ्राम्यमाणःस्वकर्मभिः ॥५७॥
कर्तव्यं परमं गुह्यमुपदेष्टुं त्वमर्हसि। त्वं गतिः सर्वभूतानां वैष्णवानां विशेषतः॥५८॥

नारद उवाच

अनेकानीह शास्त्राणि कर्माणि च तथा द्विज ।
धर्मवृन्दं बहुविधं तथैव भुवि मानव ॥५९॥
वैलक्षण्यं च जगतस्तस्मादेव द्विजोत्तम। अन्यथा सर्वसत्त्वानां सुखं वा दुःखमेव च ॥६०॥
विज्ञानमात्रं क्षणिकं निरात्मकमिदं जगत्। इति कैश्चित्परिज्ञातं वाह्यार्थनिरपेक्षकम्॥६१॥
अव्यक्ताज्जायते नित्यं नित्यान्नित्यमिदं जगत् ।
इत्येवं प्राहुरपरे तत्रैव लयमेति च ॥६२॥
आत्मानो बहवः प्रोक्ता नित्याः सर्वगतास्तथा ।
अन्ये मतिमतां श्रेष्ठास्तत्त्वालोकनतत्पराः ॥६३॥
यावच्छरीरमात्मानं प्रतिपन्नास्तथापरे। हस्तिकीटादि देहेऽपि महान्तमण्डमेव च ॥६४॥
यथाऽद्यजगतोवृत्तिस्तथा कालान्तरेष्वपि। प्रवाहो नित्यमेवैष कःकर्त्तेति च केचन॥६५॥

भक्त चाण्डाल को भी स्मरण करने, या प्रसन्न किए जाने पर पूजा किए जाने से स्वाभाविक रूप से पवित्र कर देते हैं ॥५३॥ मैं शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले त्रैलोक्य को एकमात्र प्रकाशित करने वाले भगवान् वासुदेव का दास हूँ ॥५४॥ नारदजी के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर भक्ति से परिपूर्ण मन से नारदजी के दर्शन से आश्चर्यित पुण्डरीक ने मधुर वाणी में नारदजी से कहा ॥५५॥ **पुण्डरीक ने कहा**— मैं शरीर धारियों में धन्य हूँ, देवताओं के लिए भी मैं पूज्य हो गया हूँ । आज मेरे पितृगण कृतार्थ हो गये और मैंने अपने जन्म का फल प्राप्त कर लिया ॥५६॥ हे देवर्षे ! मैं विशेष रूप से आपका भक्त हूँ आप मुझे अनुगृहीत करें । हे विद्वन् ! अपने कर्मों के अनुसार इस संसार चक्र में पड़ा हुआ मैं उसी का पालन करूँगा ॥५७॥ आप मुझे परम रहस्य का उपदेश दें आप सभी जीवों के कल्याण कर्ता हैं और वैष्णवों के तो विशेष रूप से ॥५८॥ **नारदजी ने कहा**— हे द्विज ! इस संसार में अनेक शास्त्र तथा कर्म हैं । हे मानव ! संसार में धर्म समूह भी अनेक प्रकार के हैं ॥५९॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इसी के कारण संसार में विभिन्नता देखी जाती है । नहीं तो संसार के सभी जीव या तो केवल सुखी ही रहते या दुःखी ही रहते॥६०॥ कुछ लोगों ने यह जाना है कि यह जगत् ज्ञान मात्र क्षणिक तथा निरात्मक है । यह बाह्य अर्थ निरपेक्ष है ॥६१॥ दूसरे लोगों ने यह कहा कि नित्य तथा यह जगत् प्रकृति (अव्यक्त) से सदा उत्पन्न होता है । और अव्यक्त में ही लीन हो जाता है ॥६२॥ दूसरे ज्ञानियों में श्रेष्ठ पुरुषों ने कहा कि जीवात्मा अनेक नित्य और सबों में है, ऐसे लोग तत्त्व के ज्ञाता हैं ॥६३॥ दूसरे लोगों ने कहा कि आत्मा तब तक है जब

यद्यत्प्रत्यक्षविषयं तस्मादन्यन्न विद्यते। कुतः स्वर्गादयः सन्तीत्यन्ये विजितमानसाः ॥६६॥
निरीश्वरमिदं प्राहुः सेश्वरं च तथापरे। अत्यन्तभिन्नमतयः परमार्थ पराङ्मुखाः ॥६७॥
एवमन्येऽपि कुहका यथामति यथा श्रुतम्। वदन्ति विविधैर्भेदैः स्वयुक्तिस्थितिकारकाः ॥६८॥
तर्केष्ववहितो भूत्वा कथयामि तपोधन। परमार्थमिमं पुण्यं घोरं संसारनाशनम्॥६९॥
तन्मूलमनुजानन्ति ततो देवादयो नराः। प्रमाणे नोंपलभ्यन्ते न प्रमाणं विमोहितैः॥७०॥
अनागतमतीतं च विप्रकृष्टमतीव यत्। न गृहीतं यथाशक्त्या वर्त्तमानार्थनिष्ठितम्॥७१॥
आगमो मुनिभिः प्रोक्तः पूर्वरूपक्रमागतः। प्रमाणं स तु विज्ञेयः परमार्थप्रसाधकः॥७२॥
यदभ्यासबलाज्ज्ञानं रागद्वेषमलापहम्। उत्पद्यते द्विजश्रेष्ठ सोऽयमागमसंज्ञकः॥७३॥
फलं कर्म च यत्तत्वं विज्ञानं दर्शनं विभुम्।
जात्यादि कल्पनाहीनं द्वितीयागमलक्षणम् ॥७४॥
आत्मसंवेदनं नित्यं सनातनमतीन्द्रियम्। चिन्मात्रममृतं ज्ञेयमनन्तमजमव्ययम् ॥७५॥
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण व्यक्तस्थितमनञ्जनम्। व्याप्तो विष्णुरितिख्यातं ख्यातभिन्नमवस्थितम्॥७६॥
योगिध्येयमविज्ञेये परमार्थपराङ्मुखैः। लक्ष्यते बुद्धिभिर्भिन्नमपि भिन्नं न चात्मनि॥७७॥
शृणुष्वावहितस्तात कथयामि तवानघ !। यत्प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छतो मम सुव्रत !॥७८॥

तक शरीर है, हाथी और कीड़े के भी शरीर में महान तथा अण्डाकार है ॥६४॥ कुछ लोग कहते हैं जगत् को बनाने वाला कोई नहीं है। इसका प्रवाह सदा चलता रहता है। यह जैसा आज है वैस ही कालान्तर में भी रहता है ॥६५॥ अपने मन को जीतने वाले कुछ लोग कहते हैं कि जो कुछ दिखता है उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। स्वर्ग इत्यादि कहाँ हैं ?॥६६॥ कुछ लोगों ने कहा जगत् ईश्वर रहित है कुछ लोग इसे सेश्वर मानते हैं। इन सबों की बुद्धि अत्यन्त भिन्न-भिन्न प्रकार की है ये वास्तविकता को नहीं जानते है ॥६७॥ दूसरे भी अपनी बुद्धि और ज्ञान के अनुसार अपनी युक्तियों को स्थापित करने वाले हैं ये अनेक भेदों को बतलाते हैं ॥६८॥ हे तपोधन ! मैं तर्कों से सावधान होकर कहता हूँ, तुम्हे पवित्र परमार्थ को बतलाता हूँ यह भयङ्कर संसार बन्ध को विनष्ट करने वाला है ॥६९॥ इसीलिए देवता आदि, मनुष्य इस जगत् को ब्रह्म मूलक ही जानते हैं। प्रमाणों से मोहित लोग उसे प्रमाणों के द्वारा नहीं प्राप्त करते हैं ॥७०॥ केवल वर्तमान अर्थ में ही निष्ठा रखने वाले लोग अत्यन्त दूर रहने वाले भविष्यत् और भूत कालिक को अपनी शक्ति से नहीं जान पाते हैं ॥७१॥ इसीलिए मुनियों ने पूर्वकाल के अनुसार आगम को कहा है। वह परमार्थ का बोधक प्रमाण है ॥७२। उसी के द्वारा राग और द्वेष रूपी मल को दूर करने वाला ज्ञान उत्पन्न होता है। हे द्विजश्रेष्ठ ! उसी को आगम कहते हैं ॥७३॥ जो तत्त्व फल और कर्म विज्ञान, दर्शन, विभु तथा जाति आदि की कल्पना से रहित है वही आगम है, यह आगम का दूसरा लक्षण है ॥७४॥ आत्मज्ञान, नित्य, सनातन और अतीन्द्रिय है। उसे ज्ञान स्वरूप अनन्त, अज तथा निर्विकार जानना चाहिए ॥७५॥ निर्दोष व्यक्त तथा अव्यक्त रूप से रहता है। भगवान् विष्णु सभी आत्माओं में व्याप्त हैं उनका कोई नाम विशेष नहीं है ॥७६॥ योगिजन उनका ध्यान करते हैं परमार्थ को नहीं जानने वालों के लिए वे ज्ञातव्य नहीं हैं। वह भिन्न बुद्धियों के द्वारा भिन्न प्रतीत होते हैं किन्तु उस परमात्म तत्त्व में कोई भी भिन्नता नहीं है॥७७॥ एक बार ब्रह्मलोक में विद्यमान अज तथा अव्यय ब्रह्माजी को प्रणाम करके नियमानुसार मैंने ब्रह्माजी

कदाचिद्‌ब्रह्मलोकस्थं ब्रह्माणं च पितामहम् ।
प्रणिपत्य यथान्यायमपृच्छमजमव्ययम् ॥७९॥
किमुज्ञानं परंप्रोक्तं कश्च योगः परोमतः । एतन्मे तत्त्वतो ब्रह्मन्समाचक्ष्व पितामह ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्वावहितस्तात ज्ञानयोगमनुत्तमम् । अल्पग्रन्थं प्रभूतार्थमदुःखोपासनक्रियम् ॥८१॥
यःपरम्परया प्रोक्तः पुरुषःपञ्चविंशकः । स एव सर्वभूतात्मा तेन इत्यभिधीयते ॥८२॥
नारायणो जगद्धाम परमात्मा सनातनः । जगतःसृष्टिसंहारपरिपालनतत्परः ॥८३॥
त्रयाणामात्मनां चैको देवदेवः सनातनः । आराध्यःसर्वदा ब्रह्मन्पुरुषेण हितैषिणा ॥८४॥
निस्स्पृहा नित्यसन्तुष्टा ज्ञानिनस्ते जितेन्द्रियाः ।
निर्ममा निरहङ्कारा रागद्वेषविवर्जिताः ॥८५॥
अक्षयं यान्ति ते शान्तास्सर्वसङ्गविवर्जिताः । ध्यानयोग पराब्रह्मंस्ते पश्यन्ति जगत्पतिम् ॥८६॥
यथा जगदवस्थानं यथा कालान्तरे पुनः । भूतं भव्यं भविष्यं च विप्रकृष्टं तथैव च ॥८७॥
स्थूलं सूक्ष्मं तथा चान्यत्पश्यन्ति ज्ञानक्षुषा । तच्चित्तास्तद्गतप्राणा नारायणपरायणाः ॥८८॥
अन्यथा मन्दबुद्धीनां प्रतिभाति दुरात्मनाम् । कुतर्कज्ञानदुष्टानां विभक्तेन्द्रिवादिनाम्॥८९॥

नारद उवाच

श्रूयतामन्यदपि वै कथ्यमानं मयानघ। ब्रह्मणैव पुराप्रोक्तं जगतःकारणात्मना॥९०॥
देवानामिन्द्रमुख्यानामृषीणां चैव सुव्रत। हितानि कथयामास पृच्छतां कमलासनः ॥९१॥

से पूछा ॥७८-७९॥ सर्वश्रेष्ठ ज्ञान कौन है ? सर्वश्रेष्ठ योग कौन है ? हे पितामह ! ब्रह्मन् ! इस बात को आप मुझे बतलाइये ॥८०॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे तात ! सावधान होकर सर्वश्रेष्ठ ज्ञान योग को तुम सुनो । यह थोड़े ग्रन्थ में वर्णित है, किन्तु इसका अर्थ अत्यन्त विस्तृत है और उसकी उपासना करने में कोई कष्ट नहीं है ॥८१॥ जिसको परम्परातः पच्चीसवाँ तत्त्व कहा गया है वही वह है अतः यह सभी जीवों की आत्मा कहा जाता है ॥८२॥ वे ही जगत् के आश्रय नारायण हैं, सनातन परमात्मा हैं जगत् की सृष्टि, पालन और संहार वे ही करते हैं ॥८३॥ तीनों प्रकार के जीवों में वे अकेले देव-देव हैं और सनातन हैं। हे ब्रह्मन् ! कल्याणकामी पुरुषों के आराध्य हैं ॥८४॥ संसार से निस्पृह सदा सन्तुष्ट रहने वाले, रोगद्वेष से रहित ममता और अहङ्कार से रहित, जितेन्द्रिय ज्ञानी उपासना करने वाले सभी प्रकार की आसक्तियों से रहित और शान्त हाते हैं । अक्षय लोक में जाते हैं, वे ध्यान योग के द्वारा जगत् के स्वामी श्रीभगवान् का साक्षात्कार करते हैं ॥८५-८६॥ वे अपने ज्ञान नेत्र के द्वारा जिस प्रकार की जगत् की स्थिति है, भूतकाल में थी और भविष्यत् काल में जैसी होगी उसी प्रकार से स्थूल तथा सूक्ष्म आदि वस्तुओं को देखते हैं । वे नारायण के भक्त होते हैं । भगवान् में ही उनका चित्त और प्राण लगा रहता है ॥८७-८८॥ जो मन्द बुद्धि दुरात्मा, जिनका कुतर्क करने के कारण ज्ञान दूषित हो गया तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की इन्द्रियों को बतलाने वाले को जगत् दूसरी ही प्रकार का प्रतीत होता है ॥८९॥ **नारदजी ने कहा—** हे अनघ ! मेरे द्वारा कही जाने वाली दूसरी बात को आप सुनें । हे कल्याण के साधन के विषय में इन्द्र इत्यादि देवताओं और ऋषियों के द्वारा पूछे जाने पर पहले कमलासन ब्रह्माजी को ही जगत् का कारण बतलाया

ब्रह्मोवाच

नारायणपरोधर्मस्तथालोकाश्च शाश्वताः । नारायणपरा यज्ञाःशास्त्राणि विविधानि च ॥९२॥
वेदाःसाङ्गास्तथा चान्ये विष्णुर्विश्वेश्वरो हरिः ।
पृथिव्यादीनि विबुधाःपञ्चभूतानिसोऽव्ययः ॥९३॥
सर्वं विष्णुमयं ज्ञेयं विबुधैः सकलं जगत्। तथापि मानुषाः पापा न जानन्ति विमोहिताः॥९४॥
तस्यैव मायया व्याप्तं चराचरमिदंजगत्। तन्मनास्तद्गतप्राणो जानाति परमार्थवित् ॥९५॥
ईश्वरः सर्वभूतानां विष्णुस्त्रैलोक्यपालकः। तस्मिन्नेतज्जगत्सर्वं तिष्ठति प्रभवत्यपि॥९६॥
जगत्संहरतेरुद्रः पालने विष्णुरुच्यते। उत्पत्तौ चाहमेवाऽत्र तथान्ये लोकपालकाः॥९७॥
सर्वाधारो निराधारः सकलो निष्कलस्तथा ।
अणुर्महांस्तथाप्यन्यत्तस्माच्चपरतःपरः ॥९८॥
तमेव शरणं यात सर्वं संहारकारकम् । स पिताजनितास्माकं कीर्तितो मधुसूदन ! ॥९९॥
एवमुक्ताः सुरा सर्वे ब्रह्मणा पद्मयोनिना । प्रणेमुः सर्वलोकेशं देवं विष्णुं जनार्दनम्॥१००॥
तस्मात्त्वमपि विप्रर्षे नारायणपरोभव। तदन्यः को महोदारः प्रार्थितं दातुमर्हति॥१०१॥
पितरं मातरं चैव तमेव पुरुषोत्तमम्। परिगृह्णीष्वलोकेशं देव देवं जगत्पतिम् ॥१०२॥
अग्निकार्येण भैक्षेण तपसा ध्ययनेन वै। तोषयेद्देवदेवेशं गुरुं नित्यमतन्द्रितः॥१०३॥
स्वर्गेऽक्षयं तथाभोगमनुष्ठेयं तथैव च। परिगृह्णीष्वविप्रर्षे तमेव पुरुषोत्तमम् ॥१०४॥

गया है ॥९०-९१॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** भगवान् नारायण ही सर्वश्रेष्ठ धर्म हैं वे ही शाश्वत लोक हैं। सभी यज्ञ और शास्त्र भगवान् नारायण परक ही हैं ॥९२॥ साङ्गवेद तथा दूसरे भी श्रीहरि, विश्व के स्वामी भगवान् विष्णु ही हैं। पृथिवी आदि देवता पञ्चमहाभूत, निर्विकार भगवान् ही हैं ॥९३॥ विद्वानों को सम्पूर्ण जगत् विष्णु स्वरूप ही जानना चाहिए फिर भी पापी मनुष्य अज्ञानी होने के कारण ऐसा नहीं जानते हैं॥९४॥ भगवान् विष्णु की माया से ही जगत् व्याप्त है इस बात को भगवान् का चिन्तन करने से उनमें ही जिनका मन सदा लगा रहता है, उसे परमार्थ के ज्ञाता ही जानते हैं ॥९५॥ भगवान् विष्णु ही सभी जीवों के स्वामी हैं, वे ही त्रैलोक्य का पालन करते हैं। उन्हीं में यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है और उनसे ही यह उत्पन्न होता है ॥९६॥ रुद्र जगत् का संहार करते हैं विष्णु पालन करते हैं और मैं जगत् की सृष्टि करता हूँ यह जो कहा जाता है। इन सबों के आधार वे ही हैं, उनका कोई आधार नहीं है, वे सम्पूर्ण जगत् स्वरूप है उनका कोई भी विभाग नहीं है। उनसे ही अणु, और महान् सबके सब उत्पन्न होते है। वे परात्पर हैं ॥९७-९८॥ सम्पूर्ण जगत् का संहार करने वाले उनकी ही शरणागति करो। हमलोगों के उत्पन्न करने वाले भगवान् मधुसूदन ही कहे गये हैं ॥९९॥ इस तरह से पद्मयोनि ब्रह्माजी से कहे जाने पर सभी देवताओं ने सभी लोकों के स्वामी देवेश तथा जनार्दन भगवान् विष्णु को प्रणाम किया ॥१००॥ अतएव हे विप्रर्षे ! आप भी भगवान् नारायण की भक्ति करें। उनसे भिन्न कौन ऐसा उदार है ? जो उचित वस्तु को प्रदान कर सके ॥१०१॥ उन्हीं पुरुषोत्तम को तुम पिता-माता मानो। वे लोकों के स्वामी देवों के आराध्य और जगत्पति हैं ॥१०२॥ अग्निहोत्र भिक्षाटन, तपस्या और ध्यान के द्वारा सदा सावधान होकर देवाराध्य जगद्‌गुरु उन भगवान् को ही प्रसन्न करना चाहिए ॥१०३॥ हे विप्रर्षे ! स्वर्ग में अक्षय भोग तथा

किं तैस्तुमन्त्रैर्बहुभिः किं तैस्तु बहुभिर्व्रतैः ।
ओं नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थ साधकः ॥१०५॥
चीरवासा जटी विप्र ! दण्डी मुण्डित एव वा ।
विभूषितो वा विप्रेन्द्र ! न लिङ्गं धर्म कारणम् ॥१०६॥
ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचारपराः सदा। तेऽपियान्ति परंस्थानं नारायणपरायणाः ॥१०७॥
लिप्यन्ते नचपापौघैर्वैष्णवा वीतकिल्विषाः । पुनन्तिसकलं लोकमहिंसाजितमानसाः ॥१०८॥
क्षत्रबन्धुरिति ख्यातो राजाप्राणिविहिंसकः । प्राप्तवान्परमं धाम वैष्णवंकेशवाश्रयात्॥१०९॥
अम्बरीषो महासत्त्वो राजा परमतत्त्ववित् । हृषीकेशं समाराध्य वैष्णवं पदमाप्वान्॥११०॥
अन्ये ब्रह्मर्षयः शान्ताः वहवः संशितव्रताः ।
ध्यात्वा च परमात्मानं संसिद्धिं परमां गताः ॥१११॥
प्रह्लादः परमाह्लादः पुरा नारायणं हरिम् । सेविताऽभ्यर्चिता ध्याता तेनैव परिरक्षितः ॥११२॥
भरतो नाम तेजस्वी राजा परमधार्मिकः । उपास्यैनं चिरं कालं परां मुक्तिमवाप्तवान् ॥११३॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।
केशवाराधनं हित्वा नैव याति परांगतिम् ॥११४॥
जन्मान्तरसहस्रेषु यस्यस्यान्मतिरीदृशी । दासोऽहं विष्णुभक्तानामिति सर्वार्थसाधकः ॥११५॥
स याति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः ।
किंपुनस्तद्गतप्राणाःपुरुषाः संशितव्रताः ॥११६॥
अनन्यमानसैर्नित्यं ध्यातव्यस्तत्त्वचिन्तकैः। नारायणो जगद्व्यापीपरमात्मासनातनः ॥११७॥

अनुष्ठेय उन पुरुषोत्तम को मानो ॥१०४॥ अनेक मन्त्रों तथा अनेक व्रतों से क्या लाभ है ? **'ओम् नमो नारायणाय'** यह मन्त्र ही सबकुछ प्रदान करने वाला है ॥१०५॥ हे विप्र ! वल्कल पहनना, जटा धारण करना, दण्ड धारण करना, शिर मुड़ाये रखना, अलंकृत रहना ये सब धर्म के कारण नहीं है ॥१०६॥ भगवान् नारायण की भक्ति करने वाले दुष्ट दुरात्मा, तथा पापी भी जीव परंपद को प्राप्त करते हैं ॥१०७॥ निष्पाप वैष्णवों को पाप नहीं लगता है । जिनके मन को अहिंसा ने जीत लिया है, सम्पूर्ण लोकों को पवित्र करते हैं ॥१०८॥ क्षत्रिय धर्म रूप से विख्यात प्राणियों को मारने वाला भगवान् केशव का आश्रयण करने के कारण भगवान् (विष्णु) के परंधाम में चला गया ॥१०९॥ परम सात्त्विक राजा अम्बरीष परतत्त्व के ज्ञाता थे वे भगवान् हृषीकेश की आराधना करके परम पद को प्राप्त किए ॥११०॥ बहुत से दूसरे ब्रह्मर्षि जो शान्त और पवित्रता करने वाले थे वे श्रीभगवान् का ध्यान करके मुक्ति प्राप्त कर लिए ॥१११॥ सदा प्रसन्न रहने वाले प्रह्लाद प्राचीन काल में श्रीभगवान् की सेवा, पूजा और ध्यान करते थे उसी से उनकी रक्षा भगवान् ने की ॥११२॥ परम धार्मिक राजा भरत श्रीभगवान् की उपासना करके मुक्ति प्राप्त कर लिए।॥११३॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या सन्यासी कोई भी हो भगवान् केशव की आराधना किए बिना मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता है ॥११४॥ हजारों जन्मान्तरों तक जो यह जानता है कि मैं भगवान् विष्णु के भक्तों का दास हूँ तो उसी से उसकी मुक्ति हो जाती है ॥११५॥ वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है, जिसका मन सदा भगवान् में ही लगा रहता है उसके विषय में क्या

भीष्म उवाच

इत्येवमुक्त्वा देवर्षिस्तत्रैवान्तरधीयत। परोपकारनिरतो नारदः परमार्थवित्॥११८॥
पुण्डरीकोऽपि धर्मात्मा नारायणपरायणः। ॐ नमोनारायणायेति मन्त्रमष्टाक्षरं जपन् ॥११९॥
प्रसीद मम विश्वात्मन्निति वाचं वदन्सदा । हृत्पुण्डरीके गोविन्दं प्रतिष्ठाप्यामृतात्मकम् ॥१२०॥
तपस्वी विमले सौम्यें शालग्रामै तपोधनः । उवास चिरमेकाकी निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥१२१॥
स्वप्नेऽपि केशवान्नान्यत्पश्यतीतिमहामतिः । निद्रापिनैव तस्यासीत्पुरुषार्थविरोधिनी ॥१२२॥
तपसा ब्रह्मचर्येण शौचेन च विशेषतः । जन्मजन्मान्तरारूढे संस्कारे च यथा तथा॥१२३॥
प्रसादाद्देवदेवस्य सर्वलोकस्य साक्षिणः। अवाप परमां सिद्धिंवैष्णवीं वीतकिल्विषः ॥१२४॥
शङ्खचक्रगदापाणिं पीतवाससमच्युतम् । श्यामलं पुण्डरीकाक्षं स ददर्श सदाकृतिम् ॥१२५॥

सिंहव्याघ्रास्तथा चान्ये मृगाः प्राणिविहिंसकाः ।
विरोधं सहजं हित्वा समेतास्तस्य संन्निधौ ॥१२६॥

विचरन्ति यथाकामं प्रसन्नेन्द्रियवृत्तयः । परस्परहितं रम्यं सप्राप्तं पाण्डुनन्दन ॥१२७॥
तथा प्रसन्नं ललितं सरसां सरितामपि। ऋतवः सुप्रसन्नाश्च विमलेन्द्रियसंयुताः ॥१२८॥

मारुताश्च सुखस्पर्शा वृक्षाः पुष्पफलान्विताः ।
आनुकूल्यं ययुः सर्वे पदार्थास्तस्य धीमतः ॥१२९॥

प्रसन्नमभवत्तस्मै प्रसन्नं सचराचरम् । प्रसन्ने देवदेवेशे गोविन्दे भक्तवत्सले ॥१३०॥

कहना है ॥११६॥ तत्त्वों का चिन्तन करने वालों को चाहिए कि वे अनन्यमना होकर भगवान् नारायण का ध्यान करें, वे ही जगत् में व्यापक और सनातन परमात्मा हैं ॥११७॥ **भीष्मजी ने कहा—** इस तरह से कहकर देवर्षि वहीं अर्न्धान हो गये । नारदजी परोपकार में लगे रहने वाले तथा परमार्थ के ज्ञाता हैं॥११८॥ धर्मात्मा पुण्डरीक भी भगवान् नारायण की भक्ति करते हुए तथा **'ओम नमो नारायणाय'** इस अष्टाक्षर मन्त्र को जपते हुए हे विश्वात्मन् ! मेरे ऊपर कृपा करें, इस तरह से कहते हुए अपने हृदय कमल में भगवान् गोविन्द को स्थापित करके तपस्यारत, स्वच्छ, सुन्दर, शालग्राम क्षेत्र में निर्द्वन्द्व और परिग्रह रहित होकर दीर्घ काल तक निवास किए ॥११९-१२१॥ वे स्वप्न में भी भगवान् केशव को ही देखते थे । उनको पुरुषार्थ विरोधी नींद भी नहीं आती थी ॥१२२॥ तपस्या ब्रह्मचर्य विशेष रूप से पावित्र्य जन्म जन्मान्तरों से सुदृढ़ संस्कार के हो जाने से सर्व लोक साक्षी देव-देव श्रीभगवान् की कृपा से, निष्पाप वे विष्णु लोक में चले गये ॥१२३-१२४॥ उन्होंने सुन्दर आकार वाले, शङ्ख, चक्र, और गदा धारण करने वाले श्याम वर्ण के श्रीभगवान् का साक्षात्कार किया ॥१२५॥ सिंह, व्याघ्र तथा दूसरे जानवर जो प्राणियों को मारने वाले थे, अपने स्वाभाविक विरोध को त्यागकर उनकी सन्निधि में एक साथ रहते थे ॥१२६॥ इन्द्रियों की प्रसन्न वृत्ति वाले होकर उनके साथ अपनी इच्छानुसार विचरण करते थे । हे युधिष्ठिर ! वे सब परस्पर में मनोहर कल्याण प्राप्त किये थे ॥१२७॥ उसी तरह सरोवर और सरिताओं का जल स्वच्छ और प्रसन्न रहता था विमल इन्द्रियों से युक्त ऋतुएँ भी प्रसन्न रहती थी ॥१२८॥ सुखद हवा चलती थी, वृक्ष, फल और पुष्प से भरे रहते थे । अब बुद्धिमान् के लिए सभी पदार्थ सदा अनुकूल ही रहते थे ॥१२९॥ देवताओं के स्वामी, भक्तवत्सल भगवान् गोविन्द के प्रसन्न होने पर उनके लिए चराचरात्मक जगत् प्रसन्न

ततः कदाचिदभगावान्पुण्डरीकस्य धीमतः। आविरासीज्जगन्नाथः पुण्डरीकायतेक्षणः॥१३१॥
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासाः समुज्ज्वलः ।
पुण्डरीकविशालाक्षश्चन्द्रबिम्बनिभाननः ॥१३२॥
कङ्कणी कुण्डली हारी केयूरी कटिसूत्रवान् ।
श्रीवात्साङ्कः पीतवासा कौस्तुभेन विभूषितः ॥१३३॥
वनमालापरीताङ्गः स्फुरन्मुकुटकुण्डलः। स्फुरता ब्रह्मसूत्रेण मुक्तादामविलम्बिना ॥१३४॥
विराजमानो देवेशश्चामरव्यजनादिभिः। देवैः सिद्धैः सदेवेन्द्रैर्गन्धर्वैर्मुनिभिर्वरैः ॥१३५॥
यक्षैर्नागवरैश्चैव सेव्यमानोऽप्सरोगणैः। तं दृष्ट्वा देशदेवेशं पुण्डरीकोऽनघः स्वयम्॥१३६॥
ततो बुद्ध्वामहात्मानं तुष्टाव च जनार्दनम्। प्राञ्जलिः प्रणतोभूत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥१३७॥

पुण्डरीक उवाच

नमाऽस्तु विष्णवे तुभ्यं सर्वलोकैकचक्षुषे। निरञ्जनाय नित्यायह निर्गुणाय महात्मने ॥१३८॥
त्वमीशः सर्वभूतानां तथैव च निरीश्वरः। तथा भयार्तिनाशाय गोविन्द गरुड़ध्वज ॥१३९॥
अनुग्रहेण भूतानामनेकाकारधारिणे। त्वयि सर्वमिदं प्राहुस्त्वन्मयं चैव केवलम्॥१४०॥
त्वमस्माज्ज्गतोऽभिन्नो निर्मितं च जगत्त्वया ।
नमोऽस्तुनाभिप्रसवनलिनाय नमोनमः ॥१४१॥
नमः समस्तवेदान्तविश्रुतात्मविभूतये। त्वमेव सर्वदेवेश ! कारणं कैटभार्दन ॥१४२॥
प्रसीद हृदयावास ! शङ्खचक्रगदाधर !। नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते ॥१४३॥

हो गया था ॥१३०॥ उसके बाद एक बार कमल नयन जगत् के स्वामी श्रीभगवान् पुण्डरीक के समक्ष प्रकट हुए ॥१३१॥ वे हाथ में शङ्ख, चक्र और गदा लिए थे चमचमाता हुआ उनका पीताम्बर था, कमल के समान बड़े-बड़े नेत्र थे तथा चन्द्रमा के समान आह्लादक मुख था ॥१३२॥ वे कङ्कण, कुण्डल, हार, केयूर, कटिसूत्र, श्रीवत्सचिह्न, पीताम्बर और कौस्तुभ मणि से अलंकृत थे ॥१३३॥ वनमाला धारण किए थे, मुकुट और कुण्डल चमक रहे थे, यज्ञोपवीत चमकता था मोती की माला लटक रही थी ॥१३४॥ श्रीभगवान् चामर तथा व्यजन से सुशोभित थे। देवता सिद्ध, इन्द्र, गन्धर्व, श्रेष्ठ मुनिगण, यक्ष, श्रेष्ठनाग तथा अप्सराएँ उनकी सेवा में लगी थीं। उन देवदेवेश को देखकर निष्पाप पुण्डरीक ने स्वयम् अपनी आत्मा जानकर उनकी स्तुति हाथ जोड़कर और झुककर, प्रसन्न मन से स्तुति की ॥१३५-१३७॥ **पुण्डरीक ने कहा—** सम्पूर्ण लोकों के एकमात्र नेत्र स्वरूप आप विष्णु भगवान् को नमस्कार है। निरञ्जन, नित्य, निर्गुण महात्मा को नमस्कार है ॥१३८॥ आप सभी जीवों के स्वामी हैं आपका कोई स्वामी नहीं है। हे गोविन्द ! गरुडध्वज तथा भय एवं कष्ट को दूर करने वाले को नमस्कार है ॥१३९॥ जीवों पर कृपा करने के कारण अनेक आकारों को धारण करने वाले भगवान् को नमस्कार है। मुनियों नें कहा है कि आपमें ही सारा जगत् है और आपसे व्याप्त है ॥१४०॥ आप इस जगत् से भिन्न हैं और आपने इस जगत् का निर्माण किया है। अपनी नाभि से कमल को उत्पन्न करने वाले आपको बारम्बार नमस्कार है ॥१४१॥ सम्पूर्ण वेदान्तों में जिनकी विभूति का वर्णन है ऐसे भगवान् को नमस्कार है। हे सभी देवों के स्वामी ! आप जगत् के कारण हैं और कैटभ को मारने वाले हैं ॥१४२॥ हे हृदय में निवास करने वाले भगवन्

अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे। यस्य ब्रह्मादयो देवा न विदन्ति सुरेश्वराः ॥१४४॥
महिमानं तपोमेयं तस्मै तुभ्यं नमाम्यहम् । वाचामगोचरो यस्य महिमा तव नाप्यते ॥१४५॥

जात्यादिभिरसंस्पृष्टः सदाध्येयोऽसि तत्त्वतः ।
तथा विभेदरूपेण भक्तानामनुकम्पया ॥
मत्स्यकूर्मादिरूपेण दृश्यसे पुरुषोत्तम ॥१४६॥

भीष्म उवाच

पुण्डरीको जगन्नाथं स्तुत्वैवं पुरुषोत्तमम् । तमेवालोकयद्वीर चिरप्रार्थितदर्शनम् ॥१४७॥
तमाह भगवान्विष्णुः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः । पुण्डरीकं महाभागं तथा गम्भीरया गिरा ॥१४८॥

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि वत्सभद्रं ते पुण्डरीकमहामते । वरं वृणीष्व दास्यामि यत्ते मनसि वर्त्तते ॥१४९॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं देवदेवस्य भाषितम् । एवं विज्ञापयामास पुण्डरीको महामतिः ॥१५०॥

पुण्डरीक उवाच

क्वाहमत्यन्तदुर्बुद्धिः क्व भवन्तो हितैषिणः ।
यद्धितं मम देवेश ! तदाज्ञापय माधव ! ॥१५१॥

एवमुक्तः स भगवान्सुप्रीतश्च ततोऽब्रवीत्। पुण्डरीकं महाभागं कृताञ्जलिमुपस्थितम्॥१५२॥
आगच्छ कुशलं तेऽस्तु मयैव सह सुव्रत । उपकारी च नित्यात्मामयात्वं सर्वदा सह ॥१५३॥

भीष्म उवाच

एवमुक्तवतिप्रीत्या श्रीधरे भक्तवत्सले । दिवि दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षं पपात ह ॥१५४॥

हे शङ्ख चक्र, गदा धारण करने वाले ! आप प्रसन्न होइये सभी भूतों के कारण स्वरूप तथा पृथिवी को धारण करने वाले आपको नमस्कार है ॥१४३॥ अनेक रूपों को धारण करने वाले, सब को जीतने वाले भगवान् विष्णु को नमस्कार है । जिनकी महिमा को ब्रह्माजी आदि देवता भी नहीं जानते केवल तपस्या के द्वारा जानने योग्य आपको मैं नमस्कार करता हूँ । जिनकी महिमा का वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता है ॥१४४-१४५॥ आपकी कोई जाति नहीं है, आपको केवल तत्त्वतः ध्यान किया जा सकता है । आप विभिन्न प्रकार के जीवों पर कृपा करते हैं । हे पुरुषोत्तम ! आप मत्स्य तथा कूर्म रूप से भी देखे जाते हैं ॥१४६॥ **भीष्मजी ने कहा—** पुण्डरीक इस तरह से जगत् के स्वामी पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति करके चिरकाल से जिनका दर्शन करना चाहते थे उन्हीं भगवान् को देखने लगे । उनको पद्मनाभ त्रिविक्रम भगवान् विष्णु ने पुण्डरीक से गम्भीर वाणी में कहा ॥१४७॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे महामते ! वत्स पुण्डरीक मैं तुमसे प्रसन्न हूँ अपने मनोनुकूल वरदान माँगो ॥१४८॥ देवाराध्य श्रीभगवान् की इस प्रकार की वाणी सुनकर महाबुद्धिमान् पुण्डरीक ने कहा ॥१४९-१५०॥ **पुण्डरीक ने कहा—** हे देवेश ! माधव कहाँ तो मैं बुद्धिवाला और कहाँ सबों के कल्याणकारी आप मेरे लिए जो कल्याणकारी हो वही आज्ञा दें ॥१५१॥ इस तरह से कहने पर अत्यन्त प्रसन्न भगवान् ने हाथ जोड़कर खड़े हुए महाभाग पुण्डरीक से कहा॥१५२॥ हे सुव्रत ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम मेरे ही साथ आओ उपकार करने वाले नित्यात्मा तुम मेरे साथ सदा रहो ॥१५३॥ **भीष्मजी ने कहा—** इस तरह से प्रेमपूर्वक भक्त वत्सल श्रीभगवान् के कहने पर, आकाश

ब्रह्मादयस्तथा देवाः साधुसाध्विति चाब्रुवन् ।
जगुः सिद्धाश्च गन्धर्वाः किन्नराश्च विशेषतः ॥१५५॥

तत्रैव तमुपादाय देवदेवो जगत्पतिः । जगाम गरुडारूढः सर्वलोकनमस्कृतः ॥१५६॥
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र विष्णुभक्ति समन्वितः। तच्चित्तस्तद्गतप्राणस्तद्भक्तानां हितेरतः ॥१५७॥
अर्चयित्वा यथायोग्यं भजस्व पुरुषोत्तमम् । शृणुष्व तत्कथां पुण्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥१५८॥
येनोपायेन राजेन्द्र विष्णुभक्तिसमन्वितः । प्रीतो भवति विश्वात्मा तत्कुरुष्व सुविस्तरम्॥१५९॥
अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतैरपि । प्राप्नुवन्ति नरा नैव नारायणपराङ्मुखाः॥१६०॥
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥१६१॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः । येषामिन्दीवरश्यामोहृदयस्थो जनार्दनः ॥१६२॥
य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वापि समाहितः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥१६३॥

ईश्वर उवाच

एतद्वै नाममाहात्म्यं श्रुत्वा वै नगनन्दिनि। धर्मार्थकाममोक्षास्तु भवन्ति च न संशयः॥१६४॥

शुक्ले कुलेऽवतीर्णो यो ब्राह्मणो वेदतत्परः ।
वैष्णवो विष्णुरूपोऽसौ नान्यो विप्रस्तु कर्हिचित् ॥१६५॥

मुखे नामोचरन्विष्णोर्हृदये ध्यानतपरः । शङ्खचक्रधरो विद्वान्मालां तुलसिजां दधत् ॥१६६॥

जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो भुक्त्वा भोगांस्त्वनेकशः ।
एकविंशतिकुलैः सार्धं विष्णुलोके स मोदते ॥१६७॥

में दुन्दुभियाँ बजने लगीं और पुष्पों की वर्षा हुयी ॥१५४॥ ब्रह्मा आदि देवताओं ने कहा बहुत अच्छा, बहुत अच्छा विशेष रूप से सिद्धों, गन्धर्वों और किन्नरों ने गान गया ॥१५५॥ वहीं पर पुण्डरीक को लेकर स्वर्गलोक नमस्कृत जगत् के स्वामी गरुड पर बैठ कर चले गये ॥१५६॥ अतएव हे राजवर्य ! तुम भी भगवान् विष्णु की भक्ति से युक्त होकर उनमें ही मन और प्राण को लगाकर, भगवद् भक्तों का कल्याण करो ॥१५७॥ उनकी यथायोग्य पूजा करके भगवान् पुरुषोत्तम का भजन करो और सभी पापों को विनष्ट करने वाली भगवान् की कथा सुनो ॥१५८॥ हे राजेन्द्र ! भगवान् विष्णु की भक्ति के साथ जिस उपाय से विश्वात्मा श्रीभगवान् प्रसन्न हो उसे विस्तृत रूप से करो ॥१५९॥ सैकड़ों अश्वमेध तथा वाजपेय याग करके भी नारायण पराङ्मुख मनुष्य उन्हें नहीं प्राप्त कर पाते हैं ॥१६०॥ जिसने एक बार भी हरि इन दो अक्षरों का उच्चारण किया है उसने मोक्ष प्राप्ति के लिए कमर कस लिया है ॥१६१॥ जिनके हृदय में नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले भगवान् जनार्दन हैं, उनको ही लाभ और विजय की प्राप्ति होती है, उनका कहीं पराजय नहीं होता है ॥१६२॥ जो इस कथन को सदा पढ़ता और सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में जाता है ॥१६३॥ **ईश्वर ने कहा**— हे पार्वति ! इस नाम माहात्म्य के सुनने से, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥१६४॥ जो वैदिक ब्राह्मण शुक्ल वंश में उत्पन्न है वह वैष्णव विष्णु स्वरूप है, कोई दूसरा ब्राह्मण नहीं ॥१६५॥ जो मुख से भगवान् का नामोच्चारण करते हुए हृदय में भगवान् का ध्यान करता है । शङ्ख, चक्रांकित वह विद्वान् तुलसी की माला धारण करता है ॥१६६॥ उसको जीवन्मुक्त जानना चाहिए । वह इस लोक में

पुण्डरीको यथाशक्तया मुक्तो ह्यत्र न संशयः ।
भक्तिभावेन गोविन्दस्तुष्टिं प्राप्नोति शाश्वतीम् ॥१६८॥
कलौ वै हरिगीतं तु स्वगृहे वा विशेषतः। सामगानसमं प्रोक्तं देवार्चनसमाधिषु ॥१६९॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे विष्णुमहिमा नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

एकयासीवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

गङ्गायाश्चैव माहात्म्यं पुनर्वद महामते !। यच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे वीतरागाः पुनः पुनः ॥
माहात्म्यं कीदृशं चैव तस्याः सर्वेश्वर ! प्रभो !॥१॥
उत्पत्तिश्च श्रुता पूर्वं महिमा न श्रुतो मया। त्वमाद्यः सर्वभूतानां त्वं देवश्च सनातनः ॥२॥

महादेव उवाच

बृहस्पतिसमं बुद्ध्या शक्रतुल्य पराक्रमम् । शरतल्पगतं भीष्ममृषयो द्रष्टुमाययुः॥३॥
अत्रिर्वशिष्ठश्च भृगुः पुलःस्त्यः पुलहक्रतुः ।
अङ्गिरा गोमतोऽगस्त्यः सुमतिस्त्वायुरात्मवान् ॥४॥
विश्वामित्रः स्थूलशिराः सर्वज्ञः प्रमथाधिपः ।
रैभ्यो बृहस्पतिर्व्यासः पावनः कश्यपो ध्रुवः ॥५॥

अनेक भोगों को भोगकर अपने इक्कीस पूर्वजों के साथ विष्णु लोक में आनन्दानुभव करता है ॥१६७॥ जिस तरह शक्ति के अनुसार पुण्डरीक मुक्त हो गये इसमें कोई संशय नहीं है । भक्तिभाव से भगवान् गोविन्द शाश्वत तुष्टि प्राप्त करते हैं ॥१६८॥ कलियुग में अपने घर में पूजा आदि के समय श्रीहरि का कीर्तन साम गान के समान कहा गया है ॥१६९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत विष्णु महिमा वर्णन नामक असीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८०।।

गङ्गा माहात्म्य वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— हे महामते ! आप अब गङ्गाजी का माहात्म्य बतलायें । जिसको वीतराग मुनिगण बार-बार सुनते हैं । हे सर्वेश्वर प्रभो ! उस गङ्गा का माहात्म्य कैसा है ?॥१॥ पहले मैं गङ्गा की उत्पत्ति सुन चुकी हूँ किन्तु महिमा मैंने नहीं सुना है । आप सभी जीवों के आदि हैं और आप सनातन देव हैं ॥२॥ **महादेवजी ने कहा—** बृहस्पति के समान बुद्धिमान तथा इन्द्र के समान पराक्रमी शरशय्या पर पड़े हुए भीष्मजी को ऋषिगण देखने के लिए आये ॥३॥ अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलहक्रतु,

दुर्वासा जमदग्निश्च मार्कण्डेयोऽथ गालवः। उशनाश्च भरद्वाजः क्रतुरास्तीक एव च॥६॥
स्थूलाक्षः सर्वलोकाक्षः कण्वो मेधातिथिः कुशः।
नारदः पर्वतश्चैव सुधन्वा च्यवनो द्विजः॥७॥
मतिभूर्भुवनो धौम्यः शतनन्दोऽकृतव्रणः। जामदग्न्योऽथ रामश्च ऋचीकश्चैवमादयः॥८॥
तान्प्रणम्य यथान्यायं धर्मपुत्रः सहानुजः। पूजयामास विधिज्जगत्पूज्यान्सुतेजसः॥९॥
ते पूजिता महात्मानः सुखसीनास्तपोधनाः। भीष्माश्रिताः कथाश्चक्रुर्दिव्यधर्माश्रितास्तथा॥१०॥
कथान्ते तु ततस्तेषामृषीणां भावितात्मनाम्। प्रणम्य शिरसा भीष्मं पप्रच्छेदं युधिष्ठिरः॥११॥

युधिष्ठिर उवाच

के देशास्तु महापुण्याः के शैलाः केऽपि चाश्रमाः।
सेव्या धर्मार्थिभिर्नित्यं तन्मे ब्रूहि पितामहः !॥१२॥

भीष्म उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं नरोत्तमम्!। शिलोञ्छवृत्तेः संवादंसिद्धस्य च युधिष्ठिर॥१३॥
कश्चित्सिद्धः परिक्रम्य समस्तां पृथिवीमिमाम्।
उञ्छवृत्तेः शिबे राजन्गृहं प्राप्तो महात्मनः॥१४॥
आत्मविद्यासुतत्त्वज्ञः सर्वदा सजितेन्द्रियः। रागद्वेषपरित्यक्तः कुशलो ज्ञानमकर्मसु॥१५॥
वैष्णवेषु सदाश्रेष्ठो विष्णुधर्मपरायणः। अनिन्दको वैष्णवानां सदाधर्मपरायणः॥१६॥
योगाभ्यासरतो नित्यं शङ्खचक्रविधारकः। त्रिकालपूजातत्त्वज्ञः श्रीकण्ठेऽनुरतः सदा॥१७॥
वेदविद्यासु निपुणो धर्माधर्मविचारकः। वेदपाठव्रतो नित्यं नित्यं चातिथिपूजकः॥१८॥

अङ्गिरा, गौतम, अगस्त्य, सुमति, आत्मज्ञ, आयु, विश्वामित्र, स्थूल शिरा सर्वज्ञ, प्रमथाधिप, रैभ्य, बृहस्पति, व्यास, पावन, कश्यप, ध्रुव, दुर्वासा, जमदग्नि, मार्कण्डेय, गालव, उशना, भरद्वाज, क्रतु, आस्तीक, स्थूलाक्ष, सर्वलोकाक्ष, कण्व, मेघातिथि, कुश, नारद, पर्वत, सुधन्वा, महर्षि च्यवन, मतिभू, भुवन, धौम्य, शतानन्द, अकृतव्रण, परशुरामजी, राम तथा ऋचीक आदि वे ऋषि थे॥४-८॥ उन जगत् पूज्य तथा महातेजस्वी ऋषियों को प्रणाम करके अपने भाइयों के साथ विधि से पूजा की॥९॥ पूजा के पश्चात् सुख पूर्वक बैठे हुए उन तपोधन महात्माओं ने दिव्य धर्म विषयक भीष्मजी के विषय में चर्चा की॥१०॥ उन पवित्रात्मा ऋषियों की चर्चा समाप्त हो जाने पर युधिष्ठिर ने प्रणाम करके भीष्मजी से पूछा॥११॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** कौन सा देश अत्यन्त पवित्र हैं, धर्म चाहने वाले को कौन से पर्वत और कौन से आश्रम का सेवन करना चाहिए। हे पितामह! इसे मुझे बतलाइये॥१२॥ **भीष्मजी ने कहा—** हे नरोत्तम! इस विषय में शिलोञ्छ वृत्ति वाले राजा शिवि और सिद्ध के संवाद को मुनिजन बतलाते हैं॥१३॥ कोई सिद्ध सम्पूर्ण पृथिवी की परिक्रमा करके उञ्छ वृत्ति वाले महात्मा शिवि के घर आये॥१४॥ वे सिद्धि आत्म विद्या के तत्त्व के ज्ञाता सर्वदा जितेन्द्रिय रहते थे। राग और द्वेष का उन्होंने परित्याग कर दिया था। वे ज्ञानयोग और कर्मयोग में निपुण थे॥१५॥ वे वैष्णवों में श्रेष्ठ थे और विष्णु धर्म का पालन करते थे। वे वैष्णवों की निन्दा नहीं करते थे और सदा धर्म का पालन करते थे॥१६॥ वे शङ्ख, चक्र धारण

सतीर्थमतियुक्तस्तु शिलोञ्छेषु स्थितः सदा ।
चतुर्वेदेषु यद्ध्यानं गीतं यद्यात्स्वयम्भुवा ॥१९॥
तत्सर्वं स च जानाति द्विजो विष्णुस्वरूपधृत् ।
नानाधर्मार्थविशदो ह्यव्ययेष्टमतिः सदा ॥२०॥
एकस्मिन्नेव काले तु गतोऽसौ वै शिवेर्गृहम् ।
तं दृष्ट्वा विधिवच्चैव कृत्वाऽऽतिथ्यं महामनाः ॥२१॥
शिबिः पप्रच्छ तं सिद्धं देशानां हितकारणम् ॥२२॥

उञ्छवृत्तिरुवाच

के देशाः के जनपदाःकेशैलाः केऽपि चाश्रमाः ।
पुण्या द्विजवरप्रीत्या मह्यं निर्देष्टुमर्हसि ॥२३॥

सिद्ध उवाच

ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपि चाश्रमाः ।
पुण्यास्त्रिपथगा येषां मध्ये नित्यं सरिद्वरा ॥२४॥
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः । गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गङ्गांसंसेव्य यां लभेत् ॥२५॥
स्नातानां तत्र पयसि गाङ्गे ये नियतात्मनाम् ।
तुष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥२६॥
अपहृत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।
तथाऽपहत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलाप्लुतः ॥२७॥
अग्निंप्राप्य यथा विप्र तूलराशिर्विनश्यति । तथा गङ्गावगाहश्च सर्वं पापं व्यपोहति ॥२८॥

किये थे तथा सदा योगाभ्यास करते रहते थे । वे त्रिकाल पूजा के तत्त्व को जानते थे और सदा श्रीकण्ठ की भक्ति करते थे ॥१७॥ वे वेद विद्या में दक्ष तथा धर्म एवं अधर्म का विचार करते थे । वे सदा वेद पाठ करते थे तथा अतिथियों की पूजा करते थे ॥१८॥ वे पवित्र बुद्धि वाले तथा शिलोञ्छ वृत्ति से रहते थे । ब्रह्माजी ने चारो वेदों में जिस-जिस ध्यान का गायन किया है ॥१९॥ वे विष्णु रूपधारी द्विज उन सबों को जानते थे । वे अनेक धर्मों के विशद रूप से पूर्ण ज्ञाता थे ॥२०॥ एक बार वे महाराज शिवि के घर गये । उनको देखकर महामना शिवि ने उनका सविधि आतिथ्य किया ॥२१॥ शिवि ने उस सिद्ध से देशों के हितकारी साधन के विषय में पूछा ॥२२॥ **उञ्छवृत्ति वाले शिवि ने कहा**— कौन से देश, कौन से जनपद तथा कौन पर्वत तथा कौन आश्रम पवित्र है । हे द्विजश्रेष्ठ ! आप प्रसन्नता पूर्वक मुझे बतलायें ॥२३॥ **सिद्ध ने कहा**— जिन देशों, जनपदों, पर्वतों तथा आश्रमों में तथा नदियों में श्रेष्ठ पवित्र त्रिपथगा गङ्गा विद्यमान हैं ॥२४॥ गङ्गाजी का सेवन करके मनुष्य जिस गति को प्राप्त करता है उस गति की प्राप्ति तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ तथा त्याग के द्वारा नहीं हो सकती है ॥२५॥ नियमित रूप से गङ्गा में स्नान करने से मनुष्यों को जैसा सन्तोष होता है, वैसा सन्तोष सैकड़ों यज्ञों को करने से नहीं हो सकता है ॥२६॥ जिस तरह घोर अन्धकार को दूर करके उदित होने वाले सूर्य सुशोभित होते हैं उसी तरह पाप को दूर करके गङ्गा में स्नान करके मनुष्य सुशोभित होता है ॥२७॥ हे विप्र ! जिस तरह अग्नि को प्राप्त

यस्तु सूर्यांशु संतप्तं गाङ्गेयं सलिलं पिबेत् ।
सद्यो नीहारनिर्मुक्तःपावकाद्धि विशिष्यते ॥२९॥
चान्द्रायणसहस्रं तु चरेद्यो नियतःपुमान् ।
संप्लुतश्चापि गङ्गायां यो नरः स विशिष्यते ॥३०॥
लम्बेताधः शिरायस्तु वर्षाणामयुतं नरः। मासमेकं तु गङ्गाम्भःसेवते यो नरोत्तमः ॥३१॥
ब्रह्महत्या विनिर्मुक्तो याति विष्णोरनामयम् ।
इयं वेणिसमा पुण्या पवित्रा पापनाशिनी ॥३२॥
यस्याःस्मरणमात्रेण वालहा मुच्यते क्षणात् ।
स प्रयागस्तीर्थराजो वैष्णवानां हि दुर्लभः ॥३३॥
स्नात्वा यत्र नरश्रेष्ठो वैकुण्ठ सत्वंर व्रजेत् ।
प्रियाप्रिये न जानाति धर्माधर्मौ न विन्दति ॥३४॥
स्नात्वा चैव तु गङ्गायां महापापात्प्रमुच्यते ॥३५॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥३६॥
ब्रह्मदा चैव गोघ्नो वा सुरापी बालघातकः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो दिवं याति च सत्वरम् ॥३७॥
दर्शनं माधवस्याय वटस्य दर्शनं तथा। वेण्यां स्नानंप्र कुर्वाणो वैकुण्ठं प्रतिगच्छति॥३८॥
उदिते च यथा सूर्ये विलयं याति वै तमः ।
तथैव तस्यां पापानिनश्यन्ति स्नानमात्रतः ॥३९॥
गङ्गाद्वारे कुशावर्ते गल्लिके नीलपर्वते । स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥४०॥

करके रुई का ढेर नष्ट हो जाता है उसी तरह गङ्गा में स्नान करके सभी पापों को नष्ट कर देता है ॥२८॥ जो सूर्य की किरणों से संतप्त गङ्गा का जल पीता है वह कुहरा से रहित अग्नि से भी अधिक सुशोभित होता है ॥२९॥ जो मनुष्य हजारो चान्द्रायण व्रत को नियम पूर्वक करे उससे भी अधिक गङ्गा में स्नान करने वाला पवित्र होता है ॥३०॥ जो मनुष्य नीचे शिर करके दश हजार वर्षों तक लटका रहे, उससे अधिक फल एक मास तक गङ्गा स्नान करने वाले को होता है ॥३१॥ यह नदी त्रिवेणी के समान पवित्र और पापों को नष्ट करने वाली है । गङ्गास्नायी मनुष्य विष्णु लोक में जाता है ॥३२॥ गङ्गाजी का स्मरण करने वाला तथा बालहत्या करने वाला भी क्षणभर में पाप मुक्त हो जाता है । वह तीर्थराज प्रयाग वैष्णवों के लिए दुर्लभ है । प्रयाग में स्नान करने वाला, श्रेष्ठ मनुष्य वैकुण्ठ में जाता है । वह प्रिय और अप्रिय को नहीं जानता है और न धर्म-अधर्म को प्राप्त करता है । गङ्गा में स्नान करने वाला महा पाप से छूट जाता है ॥३३-३५॥ जो सैकड़ों योजन दूर से गङ्गाजी का नाम लेता है वह पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥३६॥ ब्रह्मघाती, गौ हत्यारा, मदिरा पायी और बालकों को मारने वाले भी पापों से मुक्त होकर शीघ्र स्वर्ग चले जाते है ॥३७॥ वेणी माधव का दर्शन तथा अक्षय वट का दर्शन एवं त्रिवेणी में स्नान करने वाला वैकुण्ठ में जाता है ॥३८॥ जिस तरह सूर्योदय हो जाने पर अन्धकार विनष्ट हो जाता है उसी तरह गङ्गा में स्नान करने मात्र से सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं । हरिद्वार, कुशावर्त, गल्लिक, नील

एवं ज्ञात्वा नरश्रेष्ठो गङ्गास्नायी पुनः पुनः ।
स्नानमात्रेण भो राजन्मुच्यते किल्बिषादतः ॥४१॥
देवानां प्रवरो विष्णुर्यज्ञानां चाश्वमेधकः। अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां नदी भागीरथी सदा॥४२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति नारदसंवादे गङ्गामाहात्म्यं नामैकाशीतितमोऽध्याय: ॥८१॥

बयासीवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

वैष्णावानां लक्षणं च कीदृशं प्रतिपादितम्। महिमा कीदृशश्चैव वद विश्वेश्वर प्रभो॥१॥

महादेव उवाच

विष्णोरयं यतःप्रोक्तो ह्यतोवे वैष्णवोमतः। सर्वस्यादिस्तु विज्ञेयो ब्रह्मरूपधरस्ततः ॥२॥
यतःसकाशात्संजाता ब्राह्मणा वेदपारगाः। ते वैष्णवास्तु विज्ञेया नैवान्ये तु कदाचन॥३॥
शौचसत्यक्षान्तियुक्तो रागद्वेषविवर्जितः। वेदविद्याविचारज्ञो यः स वैष्णव उच्यते ॥४॥
अग्निहोत्ररतो नित्यं नित्यं चातिथिपूजकः। पितृभक्तोमातृभक्तः स वै वैष्णव उच्यते ॥५॥
दयाधर्मेण संयुक्तास्तथा पापपराङ्मुख। शङ्खचक्राङ्कितो वै स वै वैष्णव उच्यते ॥६॥

पर्वत तथा कनखल तीर्थ में स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता है ॥३९-४०॥ इस बात को जानकर गङ्गा में बार-बार स्नान करने वाला मनुष्य स्नान करने मात्र से सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥४१॥ देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् विष्णु हैं, यज्ञों में अश्वमेध श्रेष्ठ है, सभी वृक्षों में पिप्पल श्रेष्ठ है और नदियों में भागीरथी श्रेष्ठ है ॥४२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमापति नारद संवाद के अन्तर्गत गङ्गा माहात्म्य वर्णन नामक एकासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८१॥

वैष्णव का लक्षण वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— हे विश्वेश्वर प्रभो ! वैष्णवों का लक्षण कैसा बतलाया गया है तथा वैष्णवों की महिमा कैसी है ? इसे आप बतलायें ॥१॥ **महादेवजी ने कहा—** चूकि वह विष्णु भगवान् का भक्त होता है अतएव वह वैष्णव कहलाता है । भगवान् विष्णु सबके आदि कारण है और ब्रह्म हैं ॥२॥ उन्हीं से वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं । उन्हीं को वैष्णव जानना चाहिए दूसरों को नहीं ॥३॥ शौच, सत्य और क्षान्ति से युक्त, राग तथा द्वेष से रहित तथा वेद विद्या का जो विचार करने वाला होता है वही वैष्णव है ॥४॥ जो प्रतिदिन अग्निहोत्र करता है और सदा अतिथियों की पूजा करता है, और जो माता-पिता का

कण्ठे मालाधरो यस्तु मुखे रामं सदोच्चरेत् ।
गानं कुर्यात्सदाभक्तया स नरो वैष्णवः स्मृतः ॥७॥
पुराणेषुरता नित्यं यज्ञेषु च रताः सदा। ते नरा वैष्णवा ज्ञेयाःसर्वधर्मेषु संमताः ॥८॥
तेषां निन्दां प्रकुर्वन्ति ये नराःपापकारिणः। ते मृतास्तु कुयोनिं वै गच्छन्ति च पुनःपुनः ॥९॥
गोपालनाम्नीं मूर्तिं च येऽर्चयन्ति द्विजाः सदा ।
धातुमात्रमयीं कृत्वा चतुर्हस्तां सुशोभिताम् ॥१०॥
पूजां कुर्वन्ति ये विप्रास्ते ज्ञेयाःपुण्यभागिनः ।
कृत्वा पाषाणजां मूर्तिं कृष्णाख्यां रूपसुन्दरीम् ॥११॥
पूजां कुर्वन्ति ये विप्रास्ते ज्ञेयाःपुण्यमूर्त्तयः ।
शालग्रामशिला यत्र यत्रद्वारावतीशिला ॥१२॥
उभयोःसङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः। मूर्तिमन्त्रेण संस्थाप्य पूजनं क्रियते यदि ॥१३॥
तदर्चनं कोटिगुणं धर्मकामार्थ मोक्षदम्। नवधा तत्र वे भक्तिः कर्तव्या च जनार्दने॥१४॥
अतःपाषाणजामूर्तिस्तथा धातुमयी त्वया। तस्यां भक्तैःप्रकर्त्तव्यं ध्यानं पूजनमेव च ॥१५॥
राजोपचारिकीं पूजां मूर्तौ तत्र प्रकल्पयेत्। सर्वात्मानं स्मरेन्नित्यं भगवन्तमधोक्षजम्॥१६॥
दीनानाथैकशरणं लोकानां वृत्तिकारणम्। मूर्त्तौ तत्र स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥१७॥
गोपालोऽयं तथा कृष्णो रामोऽयमिति च ब्रुवन् ।
पूजां करोति यः सम्यक्स वै भागवतोनरः ॥१८॥
गोकुले तु यथारूपं धृतं वै केशवेन तु। तादृग्रूपं प्रकर्त्तव्यं वैष्णवैर्नरसत्तमैः ॥१९॥

भक्त होता है वह वैष्णव कहलाता है ॥५॥ दया, धर्म करने वाला, पापों को नहीं करने वाला तथा शङ्खचक्रांकित वैष्णव कहलाता है ॥६॥ जो हमेशा गले में माला धारण किए है और मुख से राम के नाम का उच्चारण करे तथा भक्तिपूर्वक कीर्तन करे उसे वैष्णव कहते हैं ॥७॥ जो सदा पुराणों तथा यज्ञों में लगा रहे वह मनुष्य वैष्णव जानने योग्य है और सभी धर्मो के अनुकूल है ॥८॥ जो पापी मनुष्य उन वैष्णवों की निन्दा करते हैं वे मृत्यु के बाद निन्दित योनि में जाते हैं ॥९॥ जो ब्राह्मण चार हाथों वाली गोपालजी की मूर्ति धातु की बनाकर उसकी सदा पूजा करते हैं उसको पुण्यवान् समझना चाहिए। भगवान् कृष्ण की पाषाण की सुन्दर मूर्ति बनाकर जो ब्राह्मण पूजा करते हैं उनको पुण्यमूर्ति जानना चाहिए। जहाँ पर शालग्राम शिला तथा जहाँ गोमती चक्र रहते है। उन दोनों का जहाँ सङ्गम हो वहीं मुक्ति रहती है। यदि मन्त्र से मूर्ति की स्थापना करके पूजा किया जाय ॥१०-१२॥ वह पूजन करोड़ गुना फलवान् तथा धर्म, अर्थ और काम को देने वाला होता है। वहाँ पर भगवान् जनार्दन की नवधाभक्ति करनी चाहिए ॥१३-१४॥ अतएव पाषाण तथा धातुमयी मूर्ति की तुम्हें तथा भक्तों को उसी का ध्यान और पूजन करना चाहिए॥१५॥ उसी मूर्ति को राजोपचार पूजा करनी चाहिए। और सर्वात्मा अधोक्षज भगवान् का सदा स्मरण करें ॥१६॥ लोकों के व्यवहार के कारण स्वरूप भगवान् दीनानाथ को एकमात्र रक्षक रूप से उस मूर्ति को माने, ऐसा करना महान् पाप को नष्ट करने वाला होता है ॥१७॥ जो यही गोपाल, राम तथा कृष्ण इस तरह से कहते हुए जो पूजा करता है वही मनुष्य भागवत है ॥१८॥ भगवान् केशव ने गोकुल में जैसा रूप धारण किया

आत्मसंतोषणार्थाय स्वरूपं कारयेद् बुधः। यतो भक्तिस्तु बहुला जायते नात्रसंशयः ॥२०॥
शङ्खचक्रगदादीनि विष्णोश्चैवायुधानि च। तस्यां मूर्तौ विशेषेण कर्त्तव्यानि प्रमाणतः ॥२१॥
चतुर्भुजां द्विनेत्रां च शङ्खचक्रगदाधराम्। पीतवासः परीधानां शोभनानां गरीयसीम् ॥२२॥
वनमालांदधानां तां लसद्वैडूर्यकुण्डलाम्। मुकुटेन समायुक्तां कौस्तुभोद्भसितां सदा॥२३॥

सौवर्णि चाथ रौप्यां वा ताम्रजां चाथ पैत्तलीम्।
कारयेत्परया भक्तया वैष्णवैर्द्विजसत्तमैः ॥२४॥

आगमोक्तैर्वेदमन्त्रैःप्रतिष्ठाय विशेषतः। पश्चाद्वा अर्चनं कार्यं यथाशास्त्रानुसारतः ॥२५॥
षोडशोपचारैर्मन्त्रैःपूजनं विधिपूर्वकम्। विजिते तु जगन्नाथे सर्वे देवाश्च पूजिताः ॥२६॥
अतोऽनेन प्रकारेण पूजनीयो महाप्रभुः। अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥
सर्वं ददाति सर्वेशो वैष्णवान्पुण्यरूपिणः ॥२७॥

पार्वत्युवाच

के दासा वैष्णवाः के तु केभक्ता भुविकीर्तितः।
तेषां वै लक्षणं ब्रूहि यथार्यं वै महेश्वरः ॥२८॥

महादेव उवाच

शूद्रा भवन्ति वै दासा वैष्णवा नारदादयः। प्रह्लादश्चाम्बरीषाद्या भक्तास्ते नगनन्दिनि॥२९॥
ब्रह्मक्रियारतो नित्यं वेदवेदाङ्गपाठकः। शङ्खचक्राङ्कितो यस्तु स वै वैष्णव उच्यते ॥३०॥
द्विजसेवारतो नित्यं नित्यं विष्णुप्रपूजकः। श्रृणोति बहुधा चैव पुराणं वेदसम्मितम् ॥३१॥
स शूद्रो हरिदासस्तु इत्युक्तो नगनन्दिनि। पञ्चवर्षत्वमाश्रित्य कृता भक्तिरनेकधा॥३२॥

उसी तरह भगवान् का रूप श्रेष्ठ वैष्णव मनुष्यों को करना चाहिए ॥१९॥ भगवान् के जिस रूप में मनुष्य की भक्ति हो उसी तरह का रूप आत्म सन्तोष के लिए बनाना चाहिए ॥२०॥ उसी मूर्ति में भगवान् विष्णु के शङ्ख, चक्र आदि आयुधों को प्रमाणानुसार बनाना चाहिए ॥२१॥ श्रेष्ठ वैष्णव ब्राह्मणों को चार भुजाओं, वाली, दो नेत्रों वाली, शङ्ख, चक्र और गदा धारए किए हुयी, पीत वस्त्र धारण की हुयी, अत्यन्त अलंकृत, वनमाला धारण की हुयी, वैडूर्य निर्मित कुण्डल धारण की हुयी, मुकुट तथा कौस्तुभ मणि से सुशोभित सुवर्ण, चाँदी या ताम्बा या पित्तल की मूर्ति बनवानी चाहिए ॥२२-२४॥ विशेष रूप से आगमोक्त वेद मन्त्रों से प्रतिष्ठित करके उसके बाद शास्त्रानुसार पूजा करनी चाहिए ॥२५॥ षोडशोपचार के मन्त्रों से विधि पूर्वक भगवान् की पूजा करने पर सभी देवताओं की पूजा हो जाती है ॥२६॥ अतएव शङ्ख, चक्र, गदाधारी अनादि निधन (नित्य) महाप्रभु की पूजा इसी प्रकार से करने से सर्वेश भगवान् वैष्णवों को सबकुछ दे देते हैं ॥२७॥ हे महेश्वर ! दास कौन है ? वैष्णव कौन हैं तथा संसार में भक्त किनको कहा जाता है ? आप उन सबों का यथार्थ लक्षण बतलाएँ ॥२८॥ **महादेवजी ने कहा—** हे पार्वति ! शूद्रों को दास कहते है, नारद आदि वैष्णव हैं और प्रह्लाद, अम्बरीष आदि भक्त हैं ॥२९॥ जो सदा ब्रह्मकार्य करता है, वेदों तथा वेदाङ्गों का पाठ करता है तथा शङ्ख, चक्रांकित होता है वही वैष्णव कहलाता है॥३०॥ जो शूद्र सदा ब्राह्मणों की सेवा करता है, सदा भगवान् विष्णु की पूजा करता है तथा वेद के समान पुराणों

स वै भक्त इति प्रोक्तः सर्व साधुषु संमतः ।
ध्रुवादयस्ते विज्ञेया अम्बरीषादयश्च ये ॥३३॥
भक्ताश्च मुनिभिः प्रोक्ताः सर्वकालेषु भामिनि ! ।
कलौ धन्यतमा शूद्रा विष्णुध्यानपरायणाः ॥३४॥
इहलोके सुखं भुत्तवा यान्ति विष्णुं सनातनम् ।
शङ्खचक्राङ्कितो यस्तु विष्णुभक्तिप्रकारकः ॥३५॥
चतुर्विधमहोत्साहकर्त्ता चैव विशेषतः । स शूद्रो विष्णुदासस्तु यथादृष्टं यथा श्रुतम् ॥३६॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे दासवैष्णवानां महिमानाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

तिरासीवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

सर्वेषा चैव मासानां विधिं ब्रूहि महेश्वर। महोत्सवः प्रकर्त्तव्यःको विधिस्तत्र संमतः ॥१॥
को देवः पूजनं कस्य महिमा कीदृशो भवेत् ।
कस्यां तिथौ प्रकर्त्तव्यं तन्मे वद सुरेश्वर ! ॥२॥
मासंप्रति किमुक्तं च वैष्णवान्पुण्यकर्मणः । धन्याहं कृतकृत्याहं शुभगाहं धरातले ॥
विष्णोःकथां श्रृणोमीति दर्शनात्स्पर्शनात्तव ॥३॥

को प्रायः सुनता है वह श्रीहरि का दास है । जिसने पाँच वर्ष की अवस्था से ही अनेक प्रकार से भक्ति की है । वह सभी सज्जनों के समस्त भक्त कहा गया है । ऐसे ध्रुव तथा अम्बरीष आदि हैं ॥३१-३३॥ हे पार्वति ! सभी कालों में इन लोगों को मुनियों ने भक्त कहा है । कलियुग में भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाले धन्यतम हैं ॥३४॥ वे इस लोक में सुख भोगकर सनातन भगवान् विष्णु को प्राप्त करते हैं । जो शङ्ख, चक्रांकित तथा भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाला शूद्र होता है तथा विशेष रूप से चार प्रकार का महोत्सव करता है, वह शूद्र भगवान् विष्णु का दास होता है, ऐसा ही मैंने देखा और सुना है ॥३५-३६॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत दास वैष्णवों की महिमा वर्णन नामक बयासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८२।।

सभी मासों की विधि का वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— हे महेश्वर ! आप सभी मासों की विधि का वर्णन करें महोत्सव करने की उचित विधि क्या है ॥१॥ किस देवता की महिमा कैसी है ? किस विधि को किस तिथि को करना चाहिए

शिव उवाच

उत्सवानां विधिं ब्रूमो मासं प्रति तवानघे। यानाकर्ण्य पुनर्देवि गीतवादित्रहर्षिता ॥४॥
तत्रादौ च सितेपक्षे चैत्रमासे सुशोभने। एकादश्यां विशेषेण दोलारूढं प्रपूजयेत्॥५॥
कुर्याद्भक्तया सदा देवि चोत्सवं विधिपूर्वकम् ।
दोलारूढं प्रपश्यन्ति कृष्णं कलिमलापहम् ॥६॥
अपराधसहस्त्रैस्तु मुक्तास्ते नगनन्दिनि। तावत्तिष्ठन्ति पापानि कोटिजन्मकृतान्यपि ॥७॥
यावन्नान्दोलयेद्देवं विश्वेशं विश्वनायकम् । कलौ वै ये प्रपश्यन्ति दोलारूढं जनार्दनम् ॥८॥
गोघ्नादिकाःप्रमुच्यन्ते का कथा त्वितरेष्वपि ।
दोलोत्सवे प्रहृष्टास्तु रुद्रेण सहिताः सुराः ॥९॥
कुर्वन्ति प्राङ्गणे नृत्यं गीतवाद्यं च हर्षिताः ।
ऋषयोगणगन्धर्वारम्भाद्यप्सरसांगणाः ॥१०॥
वासुकिप्रमुखानागास्तथा देवाः सुरेश्वराः । दोलायां च समायान्ति विष्णुदर्शनलालसाः ॥११॥
दोलायात्रा निमित्तं तु दोलाह्ने मधुमाधवे । भूतानि सन्ति भूपृष्ठे ये केचिद्देवयोनयः ॥१२॥
समायन्ति महादेवि कृष्णे दोलास्थिते ध्रुवम् ।
विष्णुं दोलास्थितं दृष्ट्वा त्रैलोक्यस्योत्सवो भवेत् ॥१३॥
तस्मात्कार्यशतं त्यक्त्वा दोलाह्ने चोत्सवं कुरु ।
प्रह्लादस्तु समायाति विष्णुं दोलाधिरोहणम् ॥१४॥
कुरुते च महादेवि वरदं तमनुस्मरन्। दोलास्थितस्य कृष्णस्य ये कुर्वन्ति प्रजागरम्॥१५॥

उसे आप मुझे बतलायें ॥२॥ प्रत्येक मास में पुण्य कर्म करने वाले वैष्णवों को क्या कहा गया है ? पृथिवी पर मैं धन्य, कृतकृत्य तथा सौभाग्यवती हूँ, क्योंकि आपके दर्शन और स्पर्श के कारण भगवान् विष्णु की कथा सुनती हूँ ॥३॥ **शिवजी ने कहा**— हे निष्पाप पार्वति ! प्रत्येक मास के उत्सवों की विधि मैं बतला रहा हूँ जिसको सुनकर गीत, वाद्य हर्षित होते हैं ॥४॥ सर्वप्रथम सुन्दर चैत्रमास के शुक्ल पक्ष में एकादशी के दिन विशेष रूप से दोलारूढ भगवान् की पूजा करे ॥५॥ हे देवि ! विविध उत्सव पूर्वक इस उत्सव को करना चाहिए । हे पार्वति जो लोग दोलारूढ श्रीभगवान् का दर्शन करते हैं वे लोग हजारों अपराधों से मुक्त हो जाते हैं । करोड़ों जन्म में किए गये पाप तब तक रहते हैं ॥६-७॥ जब तक मनुष्य विश्व नायक, विश्वेश श्रीभगवान् को झूले पर नहीं झुलाता है । कलियुग में जो दोलारूढ श्रीभगवान् का दर्शन करते हैं ॥८॥ वे गो हत्यारे भी मुक्त हो जाते है, दूसरों की कौन सी बात है ? दोलोत्सव के समय रुद्र के साथ देवता ॥९॥ हर्षित होकर आङ्गन में गीत, नृत्य और वाद्य करते हैं । दोला के समय भगवान् विष्णु के दर्शन की लालसा से ऋषिगण, गन्धर्व, रम्भा आदि अप्सराओं का समूह, वासुकी आदि नाग इन्द्र इत्यादि देवता आते हैं ॥१०-११॥ दोला यात्रा के निमित्त चैत्र और वैशाख मास में देवयोनि के सभी जीव पृथिवी पर रहते हैं ॥१२॥ भगवान् के दोलारूढ होने पर वे निश्चित रूप से आते हैं । भगवान् विष्णु को दोलारूढ देखकर त्रैलोक्य में उत्सव होता है ॥१३॥ अतः सैकड़ों कार्यों को छोड़कर तुम दोलोत्सव करो। विष्णु भगवान् के दोलारूढ होने पर प्रह्लादजी आते हैं ॥१४॥ और उनको भगवान् का स्मरण करते हुए

सर्वपुण्यफलाप्तिर्निमेषैकेन जायते। दोलायां संस्थितं विष्णुं पश्यन्ति मधुमाधवे ॥१६॥
क्रीडन्ति विष्णुनासार्द्धं देवदेवेन वन्दिताः। दक्षिणाभिमुखं देवं दोलारूढं सुरेश्वरि ॥
सकृद् दृष्ट्वा तु गोविन्दं मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥१७॥

ओं दोलारूढाय विद्महे माधवाय च धीमहि ।
तन्नो देवः प्रचोदयात् ॥१८॥

इदं गायत्र्या पूजनम्

माधवाय गोविन्दाय श्रीकण्ठाय नमोनमः । पूजनं मन्त्रपूर्वं च कर्त्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥१९॥
गुरवे दक्षिणां दद्याद्यथाशक्तया समाहितः। गायन्विष्णोःसदाभक्तया परिपूर्णं ततो भवेत् ॥२०॥
किमन्यद्बहुनोक्तन भूयो भूयो वरानने । दोलायां संस्थिता विष्णुःसर्वपापापहारकः ॥२१॥
पूजितो यैर्नरैःसम्यक्सदा सर्वं ददाति च। यत्र देवाः सगन्धर्वाःकिन्नरा ऋषयस्तथा ॥२२॥
आयान्ति बहुधा तत्र दोलारूढेन संशयः ॥२३॥

ओं नमो भगवते वासुदेवायेति मन्त्रेण पूजनं तत्र कारयेत् ।
षोडशोपचारैःपूजा कर्तव्या विधिपूर्वकम् ।
धर्मार्थमुख्या ये कामास्तान्सर्वान्प्राप्नुयुर्ध्रुवम् ॥२४॥

अङ्गन्यासं करन्यासं न्यासं शारीरकं च यत् ।
तत्सर्वं तु प्रकर्त्तव्यं मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥२५॥
आगमोक्तेन मन्त्रेण कर्त्तव्यो हि महोत्सवः ।
श्रीलक्ष्म्या सहितं देवं दोलायां च प्रकल्पयेत् ॥२६॥

दोलोत्स्व करते हैं । भगवान् के दोलारोहण में रात्रि जागरण करते हैं ॥१५॥ उनको एक ही क्षण में समस्त पुण्यों का फल मिल जाता है । चैत्र, वैशाख में जो लोग दोलारूढ भगवान् का दर्शन करते हैं वे देवाराध्य देवताओं के द्वारा वन्दित होकर भगवान् विष्णु के साथ क्रीड़ा करते हैं । हे सुरेश्वरि ! दक्षिणाभिमुख दोलारूढ श्रीभगवान् का एक बार दर्शन करके मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है ॥१६-१७॥ ओङ्कार स्वरूप दोलारूप माधव का हम ध्यान करते हैं अतएव वे भगवान् हमे सत्कार्य में लगायें ॥१८॥ इस गायत्री मन्त्र से विधि पूर्वक पूजन करें ॥१९॥ सावधानी पूर्वक आचार्य को दक्षिणा दें । भगवान् की स्तुति करते हुए यह करें तो पूर्णफल होता है ॥२०॥ हे सुन्दर मुखवाली ! दूसरी बहुत सी बातें कहने से क्या लाभ है दोलारूढ श्रीभगवान् सभी पापों को नष्ट करने वाले हैं ॥२१॥ जो मनुष्य श्रीभगवान् की अच्छी तरह पूजा करते हैं उन मनुष्यों को श्रीभगवान् सब कुछ प्रदान करते हैं । दोला रोहण के समय वहाँ देवता, गन्धर्व, किन्नर और ऋषिगण अवश्य आते हैं ॥२२-२३॥ भगवान् की पूजा **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** इस मन्त्र से करनी चाहिए । विधि पूर्वक षोडशोपचार पूजा करनी चाहिए । ऐसा करने वाले को धर्म, अर्थ सम्बन्धी कामनाओं को भगवान् अवश्य पूर्ण करते हैं ॥२४॥ इसी मन्त्र से अङ्गन्यास, करन्यास तथा शारीरिक न्यास करना चाहिए ॥२५॥ आगमोक्त मन्त्रों से महोत्सव करना चाहिए दोला (झूला) पर श्रीलक्ष्मीजी के साथ भगवान् की स्थापना करनी चाहिए । भगवान् के समक्ष वैष्णवों नारद आदि देवर्षियों की स्थापना

देवाग्रे वैष्णवा:स्थाप्य नारदाद्या:सुरर्षय: ।
विष्वक्सेनादिका भक्ताः स्थाप्यास्ते ह्यग्रतः सदा ॥२७॥
पञ्चवादित्रनिर्घोषै:कुर्यादारार्तिकं बुधः । यामे यामे तथा देवि पूजनीयः प्रयत्नतः ॥२८॥
नालिकेरैस्तथा शुभ्रै:कदलैर्वा तथा पुनः । अर्घं दद्यात्ततो देवि पूजनीय:प्रयत्नतः ॥२९॥
देवदेव जगन्नाथ शङ्खचक्रगदाधर। अर्घं गृहाण मे देव कृपां कुरु ममोपरि ॥३०॥
तच्छेषं वैष्णवानां तु दद्यात्प्रासादिकं पुनः । वादनं नर्त्तनं तत्र कर्त्तव्यं वैष्णवैर्नरैः॥३१॥
आन्दोलनं ततः सर्वैः कर्त्तव्यं च विशेषतः ।
पृथिव्यां यानि तिर्थानि क्षेत्राणि च सुरेश्वरि ॥३२॥
सर्वाण्येतानि वै तत्र द्रष्टुमायान्ति तद्दिने ।
एवं ज्ञात्वा सदा देवि कर्त्तव्यः सोत्सवो महान् ॥३३॥
ब्राह्मणा:क्षत्त्रिया वैश्या:शूद्रायाश्चान्यजातयः ।
शङ्खचक्रगदाधाराः ज्ञातव्यानगनन्दिनि ॥३४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशतसहस्यां षष्ठे उत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे दोलामहोत्सवो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

करनी चाहिए। विष्वक्सेन आदि भक्तों की भी आगे स्थापना करनी चाहिए ॥२६-२७॥ विद्वान् को चाहिए कि पाँच वाद्यों से भगवान् की आरती करें। प्रत्येक प्रहर पर प्रयत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥२८॥ नारियल अथवा पीले केले से भगवान् को अर्घ देना चाहिए। फिर भगवान् की पूजा करे ॥२९॥ हे देव! शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले जगत् के स्वामिन् आप अर्घ स्वीकार करे, मुझ पर कृपा करें॥३०॥ यह अर्घ का मन्त्र है। अवशिष्ट वस्तुओं का प्रसाद वैष्णवों को दे। वहाँ पर वैष्णवों को नृत्य तथा वाद्य करना चाहिए ॥३१॥ उसके बाद सबों को झूला झुलाना चाहिए। पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं और क्षेत्र हैं हे पार्वति ! वे सभी उस दिन वहाँ उत्सव देखने आते हैं। इस बात को जानकर उस महान् उत्सव को करना चाहिए ॥३२-३३॥ हे पार्वति ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र दूसरी जाति के जितने जीव हैं उन सबों को शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण किए हुए समझना चाहिए ॥३४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत दोला महोत्सव वर्णन नामक तिरासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८३।।

चौरासीवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अस्मिन्वै चैत्रमासे तु कार्यो दमनकोत्सवः। द्वादश्यां तु तथा सम्यग्विधिः कार्यो विशेषतः ॥१॥
वैष्णवैःश्रद्धयापुण्यो जनतानन्दवर्धनः । देवानन्दसमुद्भूता दिव्या दमनमञ्जरी ॥२॥
निवेद्या वैष्णवैर्भक्तैःसर्वपूजा फलेप्सुभिः । चैत्र तु शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां नगनन्दिनि॥३॥
कारयेत्परयाभक्तया महोत्सवमनास्तथा । तत्रादौ च स्वयं गत्वा आरामंप्रति चानघे॥४॥
कर्तव्यं रतियुक्ततस्य कामदेवस्य पूजनम्। कामदेव नमस्तेऽस्तु विश्वमोहनकारक ॥५॥
विष्णोरर्थे विचेष्यामि कृपां कुरु ममोपरि । गीतवादित्रनिर्घोषैरानेतव्यो गृहंप्रति ॥६॥
एकादश्यां सुरश्रेष्ठ ह्यधिवासन पूर्वकम् । कर्तव्यं पूजनं तत्र रात्रौ भक्तया तु वैष्णवैः ॥७॥
कर्त्तव्यमग्रस्तस्तस्य सर्वतोभद्रमण्डलम्। स्थापयित्वा तु देवेशं रत्यायुक्तं च तत्र वै ॥८॥
आच्छाद्य श्वेतवस्त्रेण दमनं स्थापयेद्बुधः । तत्र वै पूजनं कार्यं वैष्णवैर्द्विजसतत्तमैः ॥९॥

क्लीं कामदेवाय नमो ह्रीं रत्यै च तथा नमः ।
ऐन्द्रयादि दिशि संस्थाप्य कन्दर्पं पूजयेद् बुधः ॥१०॥

गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपमारार्तिकं तथा । रात्रौ भक्तया प्रकर्त्तव्यां विधिनात्र सुरेश्वरि ॥११॥

मदनाय नम इति प्राच्याम् । मन्मथाय नम इति आग्नेय्याम् । कन्दर्पाय नम इति याग्मे । अनङ्गाम नम इति रक्षोदिशि । भस्मशरीराय नम इति वारुण्याम् । स्मराय नम इति वायव्याम्। ईश्वराय नम इति कौबेर्याम् । पुष्पवाणाय नम इतीशान्याम् । चतुर्दिक्षु च सर्वासु पूजनं तत्र कारयेत् । पूजिते केशवे चात्र सर्वे देवाःसुपूजिताः ।

चैत्र शुक्ल द्वादशी के दिन दमनक महोत्सव का वर्णन

महादेवजी ने कहा— इस चैत्र शुक्ल द्वादशी के दिन दमनक महोत्सव विशेष रूप से विधि पूर्वक वैष्णवों को श्रद्धा पूर्वक करना चाहिए । यह महोत्सव पवित्र तथा मनुष्यों के आनन्द को बढ़ाने वाला है। देवताओं के आनन्द से दिव्य दमन मञ्जरी उत्पन्न हुयी है ॥१-२॥ पूजा के सम्पूर्ण फल को चाहने वाले वैष्णवों को इसे श्रीभगवान् को समर्पित करना चाहिए । हे पार्वति ! चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन श्रेष्ठ भक्ति पूर्वक महोत्सव मनाना चाहिए । सर्व प्रथम स्वयम् उद्यान में जाय ॥३-४॥ वहाँ रति के साथ कामदेव की पूजा करे । कहे कि हे सम्पूर्ण विश्व को मोहित करने वाले कामदेव आपको नमस्कार है ॥५॥ आपका चयन मैं भगवान् विष्णु के लिए करता हूँ आप मुझ पर कृपा करें । उसके बाद गीत, वाद्य का पोषण करते हुए दमनक को अपने घर लाये ॥६॥ हे सुरश्रेष्ठ ! एकादशी के दिन अधिवास पूर्वक, और वैष्णवों को रात्रि में भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥७॥ उसके आगे सर्वतोभद्र मण्डल बनाये वहाँ पर रति के साथ देवेश की स्थापना करें ॥८॥ श्वेत वस्त्र से ढँक कर वहाँ दमनक की स्थापना करे और वैष्णव ब्राह्मणों को पूजा करनी चाहिए ॥९॥ पूर्वदिशा में कामदेव की स्थापना करके **क्लीं कामदेवाय नमः, ह्रीं रत्यै नमः** इस मन्त्र से कामदेव की पूजा करें ॥१०॥ हे सुरेश्वरि ! रात्रि में भक्ति पूर्वक गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा आरती से पूजा करे ॥११॥ **मदनाय नमः** इस मन्त्र से पूर्व दिशा में, **मन्मथाय नमः**

अक्षतगन्धधूपदीपैर्नैवेद्यैस्ताम्बूलैश्च दमनकं पूजयित्वा तु ।
तत्पुरुषाय विद्महे कामदेवाय धीमहि । तन्नोऽनङ्गप्रचोदयात् ॥१३॥

इति वै कामगायत्र्या अष्टोत्तरशतवारन्तं दमनकमभिमन्त्र्य नमस्कुर्यात् । नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे । मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिकराय च ।

देवदेव नमस्तेऽस्तु श्रीविश्वेश नमोऽस्तु ते । रतिपते नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वमण्डन ! ॥१५॥
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ सर्वबीज नमोऽस्तुते । एतैर्नानाविधैर्मन्त्रैरागमोक्तैर्विशेषतः ॥१६॥
पूजनीयःप्रयत्नेन रत्यासह जनार्दनः । ततो निवेद्य तत्कर्म जागरं कारयेद् बुधः ॥१७॥
देवदेव जगन्नाथ ! वाञ्छितार्थप्रदायक ! । हृत्स्थान्पूरय मे विष्णो कामान्कामेश्वरीप्रिय !॥१८॥
इत्येतैर्बहुभिमन्त्रैःपूजनीयःप्रयत्नतः । श्रीनिवासो जगन्नाथो भक्तानां शुभकामुकः ॥१९॥

ततो दमनकमुष्टिं गृहीत्वा तत्र मूलमन्त्रेण । श्री श्री विष्णवादि देवेभ्योदमनकं निवेदयेत् । ततो गन्धादिभिर्महतीपूजा गीतवाद्यनृत्यैश्च महोत्सवःकार्यः । देवाग्रे स्थापितकलशोदकं देवस्य पादयोर्निक्षिप्य जलक्रीडा तस्मिन्दिने कर्त्तव्या । ततः स्वगुरुं वस्त्रालङ्कारद्रविणैःश्रद्धया प्रपूजयेत् । ततः स्वयं वैष्णवैर्बन्धुभिः सहाश्नीयात् । ततो दमनमञ्जर्या यो वै विष्णु प्रपूजयेत् ॥
पूजित वै जगन्नाथे ह्ययं वै पूजितः सदा ॥२०॥
ब्रह्महा हेमहारी च मद्यपो मांसभक्षकः । मुच्यते पातकादेवि दृष्ट्वा दमनकोत्सवम् ॥२१॥

से अग्निकोण में **कन्दर्पाय नमः** से दक्षिण दिशा में **अनङ्गाय नमः** से नैऋत्व दिशा में, **भस्म शरीराय नमः** से पश्चिम दिशा में **स्मराय नमः** से वायव्यकोण में, **ईश्वराय नमः** से उत्तर दिशा में, तथा **पुष्पवाणाय नमः** से ईशान कोण में इस तरह से सभी दिशाओं में पूजन करे । भगवान् केशव की पूजा कर लेने से सभी देवताओं की पूजा हो जाती है ॥१२॥ अक्षत, चन्दन, धूप, दीप और नैवेद्य एवं ताम्बूल से दमन की पूजा करके । हम तत्पुरुष को जानते हैं, कामदेव का ध्यान करते हैं, वे कामदेव हमारी बुद्धि को सत्कर्म में प्रेरित करें ॥१३॥ इस काम गायत्री से दमनक को एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित करके उसको नमस्कार करे । फिर प्रार्थना करे जगत् को आह्लादित करने वाले मन्मथ तथा जगत् को ले चलने वाली रति में प्रीति उत्पन्न करने वाले कामदेव को नमस्कार है ॥१४॥ देवताओं के भी देवता को नमस्कार है, श्रीविश्वेश को नमस्कार है । रति के पति को नमस्कार है, विश्व को मण्डित करने वाले कामदेव को नमस्कार है ॥१५॥ हे जगत् के स्वामिन् आपको नमस्कार है सम्पूर्ण जगत् के कारण भूत आपको नमस्कार है । इन सभी आगमोक्त मन्त्रों के द्वारा रति के साथ केशव की पूजा करनी चाहिए । उसके पश्चात् उस कर्म को भगवान् को समर्पित करके जागरण करना चाहिए ॥१६-१७॥ हे देवाराध्य ! जगत् के स्वामिन्, हे अभिप्रेत अर्थो को प्रदान करने वाले, हे कामेश्वरी प्रिय ! विष्णों मेरे हृदय में विद्यमान कामनओं को पूरा करें ॥१८॥ इन सभी अनेक मन्त्रों से भक्तों को शुभ प्रदान करने के इच्छुक जगत् के स्वामी भगवान् श्रीनिवास की पूजा प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ॥१९॥ उसके बाद दमनकी मुट्ठी को लेकर उसे मूल मन्त्र से श्रीदेवी तथा भगवान् विष्णु आदि को निवेदित करे । उसके बाद चन्दन आदि से विस्तार पूर्वक पूजा करके गीत, वाद्य, तथा नृत्य आदि से महोत्सव करना चाहिए । श्रीभगवान् के समक्ष स्थापित कलश के जल को श्रीभगवान् के चरणों पर डालकर, उस दिन जल क्रीड़ा करनी चाहिए । उसके पश्चात् अपने गुरु की वस्त्र,

एवं दमनको देवि पूजितो यैःसुवैष्णवैः । सर्वं तीर्थं कृतं तैस्तु मञ्जर्या पूजनं कृतम् ॥२२॥
वेदाध्यायःकृतस्तेन शास्त्राध्ययनमेव च । अग्निहोत्रं कृतं तेन मञ्जर्या पूजितो हरिः ॥२३॥

तत्कुलं तु महज्ज्ञेयं ब्राह्मं वा चाथ क्षात्त्रियम् ।
शौद्रं वैश्यं च यच्चान्यद्धन्यं धन्यतरं स्मृतम् ॥२४॥
यस्मिन्कुलेऽवतीर्याथोत्सवो दमनकः कृतः ।
स च धन्यस्तु धन्यो वै येन विष्णुः प्रपूजितः ॥२५॥

दमनकेन तु संप्राप्ते मधुमाधवे। संपूज्य गोसहस्रस्य देवि संलभते फलम् ॥२६॥
मल्लिकाकुसुमैर्देवं वसन्ते गरुडध्वजम् । योऽर्चयेत्परयाभक्तया मुक्तिभागी भवेत्तु सः ॥२७॥
मरुकोदमनश्चैव सद्यस्तुष्टिकरो हरेः । अतः पूजाप्रकर्त्तव्या वैष्णवैर्नरसत्तमैः ॥२८॥
गोसहस्रं कृतं तेन कन्यादानं तथैव च । पृथ्वीदानं कृतं तेन विष्णोर्वै पूजनेकृते ॥२९॥
एकामेकां गृहीत्वा तु मञ्जरीं दमनस्य तु। यःपूजयति देवेशं संप्राप्ते मधुमाधवे॥३०॥
पुण्यसङ्ख्यां न जाने वै तस्याहं नगनन्दिनि। स वै चतुर्भुजो भूत्वा इहलोके परत्र च॥३१॥
धर्मानार्थांश्च कामांश्च प्रभुङ्क्ते वैष्णवं पदम् ॥३२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे
दमनकमहोत्सवो नाम चतुरशीतिततमोऽध्यायः ॥८४॥

अलङ्कार तथा मुद्रा आदि से भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए । उसके पश्चात् वैष्णवों तथा बान्धवों के साथ स्वयं भोजन करे । उसके बाद दमनक की मञ्जरी से जो भगवान् विष्णु की पूजा करता है वह जगन्नाथ की पूजा करके भी सदा पूजित होता है ॥२०॥ हे देवि ! दमनकोत्सव का दर्शन करने वाला यदि, ब्रह्मघाती सुवर्ण चुराने वाला, या मदिरा पायी या मांस खाने वाला भी हो तो वह पाप मुक्त हो जाता है॥२१॥ हे देवि ! जिन वैष्णवों के द्वारा मञ्जरी से दमनक की पूजा की जाती है, उनको सभी तीर्थों के करने का पुण्य प्राप्त हो जाता है ॥२२॥ जिसने मञ्जरी के द्वारा श्रीहरि की पूजा कर ली है उसको वेदाध्ययन, शास्त्राध्ययन तथा अग्निहोत्र का फल प्राप्त हो जाता है ॥२३॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र के उस कुल को महान् तथा धन्य जानना चाहिए ॥२४॥ जिस वंश में अवतरित होकर दमनक महोत्सव किया जाता है, वह अत्यन्त धन्य है जिसने भगवान् विष्णु की पूजा की है ॥२५॥ चैत्र वैशाख के महीने में दमनक के द्वारा पूजा करने वाला स्वर्गलोक में हजारों गायों के दान करने का फल प्राप्त करता है ॥२६॥ जो वसन्त ऋतु में मालती के पुष्प से श्रीभगवान् का भक्ति पूर्वक पूजा करने वाला मुक्ति का पात्र होता है ॥२७॥ मरुआ और दमनक श्रीहरि को शीघ्र प्रसन्न करने वाले हैं । अतएव वैष्णवों तथा श्रेष्ठ मनुष्यों को उसीसे पूजा करनी चाहिए ॥२८॥ जिसने इस महोत्सव में भगवान् विष्णु का पूजन किया है उसको हजार गौओं का दान करने तथा पृथिवी दान करने का फल प्राप्त होता है ॥२९॥ चैत्र वैशाख में जो दमन की एक-एक मञ्जरी भगवान् विष्णु को समर्पित करता है, हे पार्वति ! उसको कितना पुण्य मिलता है, इसको मैं भी नहीं जानता वह चतुर्भुज होकर इस लोक तथा परलोक में धर्म, अर्थ और काम को भोगकर भगवान् विष्णु के परम पद में जाता है ॥३०-३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड में दमनक महोत्सव वर्णन नामक चौरासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८४।।

पच्चासीवाँ अध्याय

महादेव उवाच

वैशाख्यां पौर्णमास्यां वै जलस्थं जगदीश्वरम् ।
पूजयेद्वैष्णवो भक्तया कृतोत्साहो मुदान्वितः ॥१॥
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं कृत्वा पुण्यं महोत्सवम् ।
एकादश्यां सुरश्रेष्ठं पश्येद्वाथ प्रहर्षितः ॥२॥
गीतं गायन्हरेर्भक्तया कर्त्तव्यश्चोत्सवः शुभः ।
शयनं कुरु देवेश जलेऽस्मिन्वै सुरेश्वर ॥३॥
त्वयि सुप्ते जगत्सुप्तं भवत्येव न संशयः । घनागमे प्रकुर्वन्ति जलस्थं वै जनार्दनम् ॥४॥
ये नरास्तु सुरश्रेष्ठे न दाहो नरके भवेत् । स्वर्णपात्रे तथा रौप्ये ताम्रे वा च सुरेश्वरि ॥५॥
मृण्मये वाथ कर्त्तव्यं शयनं विष्णुसंज्ञकम् । तत्र तोयं च संस्थाप्य शीतलं गन्धवासितम् ॥६॥
तस्मिंस्तोये ततो विष्णोःस्थापनं कारयेद्बुधः ।
गोपलनाम्नी मूर्त्तिश्च रामनाम्नी तथापि वा ॥७॥
शालग्रामशिलावापिस्थापनीया विशेषतः । प्रतिमां वा महाभागे तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥८॥
यावद्धराधरालोका यावचन्द्र दिवाकरौ । तावत्तस्य कुले कश्चिन्न भवेद्देवि नारकीं ॥९।
तस्माज्जेष्ठे महादेवि तोयस्थं पूजयेद्धरिम् । वीततापो नरस्तिष्ठेद्यावदाभूतसंप्लवम् ॥१०॥
सुशीतले तथा तोये तुलसीदलवासितम् । शुचिशुक्रगते काले पूजयेद्धरणीधरम् ॥११॥

वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ महीनों में श्रीभगवान् का जलशयन महोत्सव वर्णन

महादेवजी ने कहा— वैशाखी पूर्णिमा के दिन जल में स्थित वैष्णवों को महा उत्साह और प्रसन्नता पूर्वक जगदीश्वर की पूजा करनी चाहिए ॥१॥ अथवा गीत, वाद्य और नृत्य करके एकादशी के दिन महोत्सव करके प्रसन्नता पूर्वक श्रीभगवान् का दर्शन करे ॥२॥ गीत गाते हुए भक्ति पूर्वक यह शुभ उत्सव करना चाहिए और प्रार्थना करे कि हे देवेश ! हे सुरेश्वर ! आप इस जल में शयन करें । आपके सोने पर सारा संसार सो जायेगा, इसमें कोई भी संशय नहीं है । जो मनुष्य मेघ के आने पर भगवान् जनार्दन को जल में रखते हैं उन लोगों को नरक में भी कोई कष्ट नहीं होता है । हे सुरेश्वरि ! सुर्वण या चाँदी या ताम्बे या मिट्टी के पात्र में भगवान् विष्णु को सुलाना चाहिए । उसमें शीतल और सुगन्धित जल रखकर ॥३-६॥ उस जल में भगवान् विष्णु को स्थापित करे । मूर्ति गोपालजी की अथवा रामजी की होनी चाहिए ॥७॥ अथवा विशेष रूप से शालग्राम शिला को स्थापित करे । हे महाभागे ! जो प्रतिमा को स्थापित करता है उसको अनन्त पुण्य होता है ॥८॥ हे देवि ! संसार में जब तक पर्वत, चन्द्रमा, सूर्य रहते हैं तब तक ऐसा करने वाले के वंश में कोई नारकी नहीं होता है ॥९॥ हे देवि ! इसीलिए ज्येष्ठ के महीने में श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए ऐसा करने वाला मनुष्य महाप्रलय काल तक संताप रहित रहता है ॥१०॥ ज्येष्ठ के महीने में तुलसी दल से सुवासित शीतल जल में श्रीभगवान् की पूजा करनी चाहिए॥११॥

शुचिशुक्रगते काले येऽर्चयिष्यन्ति केशवम् ।
जलस्थं विविधैः पुष्पैर्मुच्यन्ते यमपीडीनात् ॥१२॥
जलप्रेष्ठो यातो विष्णुर्जलशायी जलप्रियः ।
तस्माद्ग्रीष्मे विशेषेण जलस्थं पूजयेद्धरिम् ॥१३॥
नीरमध्ये स्थितं कृत्वा शालग्राम समुद्भवम् ।
येनार्चि महाभक्तयास भवेत्कुलपावनः ॥१४॥

कर्कराशिगते सूर्ये मिथुनस्थे विशेषतः। येनार्चितो हरिर्भक्तया जलमध्ये तु सुन्दरि॥१५॥
द्वादश्यां तु विशेषेण जलस्थजलशायिनः। येनार्चनं कृतं तेन कोटियज्ञ शतं कृतम् ॥१६॥
निक्षिप्य जलपात्रे तु मासे माधवसंज्ञके। माधवं येऽर्चयिष्यन्ति देवास्ते तु नरा भुवि ॥१७॥
पात्रेगन्धोदकं कृत्वा यःक्षिपेद्गरुडध्वजम्। द्वादश्यां पूजयैद्रात्रौ मुक्तिभागी भवेत्तु सः ॥१८॥

अश्रद्दधानःपापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न पूजा फलभागिनः ॥१९॥

तथा महादेवि प्रभुं जलस्थं जगदीश्वरम्। पूजयेद्यो नरो नित्यं महापापैःप्रमुच्यते॥२०॥

ॐ ह्रां ह्रीं रामाय नमः इति मन्त्रेण देवेशि पूजनं तत्र वै स्मृतम् ।
ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः ।
इति मन्त्रेण गिरिज उदकं चाभिमन्त्रयेत् ॥२१॥

देवदेव महाभाग ! श्रीवत्सकृतलाञ्छन ! ।
महादेव ! नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन ! ।
अर्घं गृहाण भो देव ! मुक्तिं मे देवि सर्वदा ॥२२॥

ज्येष्ठ के महीने में जो लोग जल में स्थित भगवान् केशव की अनेक पुष्पों से पूजा करते हैं वे यमयातना से मुक्त हो जाते हैं ॥१२॥ चूकि भगवान् विष्णु को जल प्रिय है वे जलशायी और जल प्रिय हैं इसीलिए ग्रीष्मऋतु में जल में रखकर श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए ॥१३॥ शालग्राम शिला को जल में रखकर जिसने पूजा भक्ति पूर्वक की है वह अपने वंश को पवित्र करने वाला हो जाता है ॥१४॥ जब सूर्य कर्क राशि के हो जायँ या विशेष रूप से मिथुन राशि के हों उस समय हे सुन्दरि ! जो भक्ति पूर्वक श्रीहरि की पूजा जल में रखकर करता है । विशेष रूप से द्वादशी के दिन जल में विद्यमान जलशायी की पूजा करता है उसको करोड़ों यज्ञों को करने का फल प्राप्त होता है ॥१५-१६॥ वैशाख के महीने में श्रीभगवान् को जल में रखकर जो पूजा करता है वह पृथिवी पर देवता है ॥१७॥ पात्र में चन्दन मिश्रित जल में श्रीभगवान् को रखकर द्वादशी के दिन रात्रि में पूजन करता है वह मुक्ति का भागी होता है ॥१८॥ श्रद्धा रहित, पापी, नास्तिक, संशय युक्त, किसी प्रयोजन से पूजा करने वाले पूजा करने के फल को नहीं प्राप्त करते हैं॥१९॥ हे महादेवि ! जो मनुष्य नित्य ही श्रीभगवान् को जल में रखकर उनकी पूजा करते हैं । वे नहापाप से मुक्त हो जाते हैं ॥२०॥ हे देवि ! **ह्रीं रामाय नमः** इस मन्त्र से पूजा करनी चाहिए । हे पार्वति ! **क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन बल्लभाय नमः** इस मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करना चाहिए ॥२१॥ फिर निम्न मन्त्र से अर्घ दें । हे श्रीवत्स चिह्न से अलंकृत भगवन् हे महादेव, आपको नमस्कार है हे विश्व का पालन

नानाविधैः सुपुष्पैश्च पूजयेद्गरुडासनम् । सर्वबाधा विनिर्मुक्तो विष्णोःसायुज्यमाप्नुयात् ॥२३॥
रात्रौ जागरणं तत्र द्वादश्यां सुसमाहितः । भक्तिपूर्वंभजेद्देवं विष्णुभव्ययमक्षयम् ॥२४॥
एवं वैशाखसंबन्धी भक्तिभावेन तत्परैः । उत्सवो विष्णुसंज्ञस्तु कर्त्तव्यो भक्तिमिच्छुभिः ॥२५॥
आगमोक्तेन मन्त्रेण विधिं तत्र प्रकारयेत् । कृतेसति महादेवि कोटिसंज्ञसमं फलम् ॥२६॥
रागद्वेषविनिर्मुक्तो महामोहनिवर्त्तकः । इहलोके सुखं भुक्तवा याति विष्णोः सनातनम्॥२७॥
ब्राह्मणो भक्तिभावेन यःकरोत्युत्सवं भुवि । सर्वपापविनिर्मुक्तो वैकुण्ठं गच्छति ध्रुवम् ॥२८॥
वेदाध्ययनहीनोऽपि शास्त्राध्ययनवर्जितः । हरिभक्तस्तु संप्राप्य लभते वैष्णवं पदम् ॥२९॥
आत्माराम सदामुक्तो विजितात्मा भवेत्तु सः ।
स वै विष्णुपदं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥३०॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे शयनमहोत्सवो नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

करने वाले आपको नमस्कार है आप मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ को स्वीकार करके मुझे शाश्वत मुक्ति प्रदान करें॥२२॥ अनेक प्रकार के पुष्पों से भगवान् की जो पूजा करता है वह सभी बाधाओं से रहित होकर भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥२३॥ द्वादशी के दिन रात्रि में सावधानी पूर्वक जागरण करे। भक्ति पूर्वक अव्यय तथा अक्षय भगवान् विष्णु की पूजा करें ॥२४॥ इस तरह भक्ति चाहने वालों को वैशाख मास में भगवान् विष्णु के उत्सवों को भक्ति पूर्वक करना चाहिए ॥२५॥ आगमोक्त मन्त्र से उत्सव विधि को करना चाहिए । हे महादेवि ! ऐसा करने से करोड़ों यज्ञों का फल प्राप्त होता है ॥२६॥ राग, द्वेष से रहित तथा महामोह को दूर करने वाला यह उत्सव है । उस समय हरिभक्त की प्राप्ति हो जाने से इस लोक में सुख भोगकर भगवान् विष्णु के सनातन लोक में वह जाता है ॥२७॥ जो ब्राह्मण भक्तिभाव पूर्वक संसार में उत्सव करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर निश्चित रूप से वैकुण्ठ जाता है ॥२८॥ वेदाध्ययन से रहित तथा शास्त्राध्ययन से रहित भी श्रीभगवान् का भक्त, उनकी सेवा करके विष्णुलोक में जाता है ॥२९॥ जो आत्माराम अपने मन को वश में रखने वाला होता है वह विष्णु लोक में तब तक निवास करता है जब तक सूर्य चन्द्रमा रहते हैं ॥३०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत शयन महोत्सव वर्णन नामक पचासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८५॥

छियासीवाँ अध्याय

महादेव उवाच

श्रावणेमासि संप्राप्तेपवित्रारोपणो विधिः । यस्मिन्कृते तु देवेशिदिव्यभक्तिःप्रजायते ॥१॥
पवित्रारोपणं विष्णोःकर्तव्यं श्रद्धया बुधैः । संपूर्णा जायते तस्य पूजा पार्वति ! वार्षिकी ॥२॥
पवित्रारोपणे विष्णोर्जायते सुखमात्मनः । संपूजिते सदा विष्णौ नानासुखमवाप्नुयात् ॥३॥
सूत्रग्रामं समानीय ब्राह्मण्याकर्तितं तथा । स्वेनैव कर्तितं सूत्रं तेनैव प्रकारयेत् ॥४॥
सच्छूद्रयाकर्तितं सूत्रं तद्ग्राह्यं वा तथैव च ।
अन्यथा विक्रयेणापि ग्राह्यं चापि यथातथम् ॥५॥
क्षौमनैव प्रकर्तव्यःपवित्रारोपणोविधिः । रौप्येण वा तथा कार्यं पवित्रं विष्णुदैवतम् ॥६॥
सौवर्णेनापि देवेशि कर्त्तव्यं विधिपूर्वकम् । अभावे सर्वधातूनांग्राह्यं सूत्रं तथा बुधैः ॥७॥
कृत्वा तु त्रिवृतं सूत्रं प्रक्षाल्यमुदकेन तु । लिङ्गेलिङ्गिप्रमाणं च प्रतिमायां यथाविधि॥८॥
पादौ वै जानुपर्यन्तं तथा नाभिसमं स्मृतम् । ज्येष्ठं मध्यं कनिष्ठं च पवित्रं कारयेद् बुधः ॥९॥
संवत्सरदिनैस्तद्वत्तदर्धार्धेन सङ्ख्यया । सूत्रेणैव प्रकर्त्तव्यं ग्रन्थिनाष्टोत्तरंशतम् ॥१०॥
तदर्धसङ्ख्यकेनापि युक्तं वा तत्र पार्वति । लिङ्गे वै लिङ्गसंज्ञ तु गङ्गानागैश्चसंयुतम् ॥११॥
प्रतिमायां तथा देवि पवित्रंवनमालकम् । यथा शोभा तथा कार्यं येन विष्णुःप्रसीदति ॥१२॥
एकं वै सुपवित्रं तु गन्धाख्यं कारयेत्सदा । तन्तुनायच्च संयुक्तं कर्त्तव्यं वैष्णवैर्नरैः ॥१३॥

पवित्रारोपण विधि का वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे देवेशि ! श्रावण मास के आने पर पवित्रारोपण करना चाहिए । उसके करने पर दिव्य भक्ति उत्पन्न होती है ॥१॥ विद्वानों को भगवान् विष्णु का पवित्रारोपण करना चाहिए, हे पार्वति उसके करने पर वार्षिकी पूजा होती है ॥२॥ भगवान् विष्णु का पवित्रारोण करने पर आत्म सुख मिलता है । भगवान् विष्णु की पूजा करने से अनेक प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है ॥३॥ किसी ब्राह्मणी या स्वयं द्वारा काते हुए सूत्रों से पवित्रारोपण करना चाहिए ॥४॥ सच्छूद्र के द्वारा काते गये सूत्र को लेना चाहिए यदि ऐसा न हो तो खरीद कर भी सूत्र के लिया जा सकता है ॥५॥ रेशमी सूत्र से ही पवित्रारोपण विधि करना चाहिए अथवा चाँदी के सूत्र से भगवान् विष्णु का पवित्रक बनाये ॥६॥ हे देवेशि! सुवर्ण सूत्र से भी विधि पूर्वक पवित्रारोपण करना चाहिए । इसके अभाव में किसी भी धातु के सूत्र को लिया जा सकता है ॥७॥ सूत्र को त्रिवृत करके उसे जल से धोए । शिवलिङ्ग पर लिङ्ग के प्रमाणानुसार अथवा प्रतिमा के प्रमाणानुसार पवित्रारोपण करना चाहिए ॥८॥ पैरों पर घुटने पर्यन्त तथा नाभि के बराबर पवित्रक बतलाया गया है । विद्वान् को चाहिए कि वह ज्येष्ठ, मध्यम अथवा कनिष्ठ पवित्रक बनाये ॥९॥ संवत्सर में जितने दिन हो उतना अथवा उसके आधे अथवा उसके भी आधे सूत्र की एक सौ आठ गाँठ लगाये । उसके आधी संख्यावा पवित्रक बनाये । लिङ्ग पर लिङ्ग संज्ञक अथवा गङ्गा और नाग से युक्त बनाना चाहिए ॥१०-११॥ प्रतिमा पर वनमाला को चढ़ाये जिससे की शोभा बढ़े ऐसा करने पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥१२॥ एक सुन्दर पवित्रक गन्ध नामक बनाना चाहिए । जो सूत्र से युक्त हो और

देवानाञ्च तथा प्रोक्तं पवित्रंविष्णुदैवतम्। अम्बरीषाद्याभक्ताश्चअन्येऽपि च ध्रुवादयः ॥१४॥
पवित्राणि ततःपश्चाद्दातव्यानीहि पार्वति। प्रतिपद्धनस्योक्ता पवित्रारोपणे तिथिः ॥१५॥
लक्ष्म्या देव्या द्वितीया तु तिथीनामुत्तमातिथिः ।
तृतीया तु तव प्रोक्ता चतुर्थी गणपस्य च ॥१६॥
पञ्चमी चन्द्रमसश्चैव षष्ठी वै कार्त्तिकस्य च ।
सप्ती च रवेः प्रोक्ता दुर्गायाश्चाष्टमी स्मृता ॥१७॥
नवमीचैव मातृणां यमस्य दशमी तथा। एकादशी तु सर्वेषां द्वादशी माधवस्य च ॥१८॥
त्रयोदशी तु कामस्य शर्वस्योक्ता चतुर्दशी। तद्वत्पञ्चशीख्याता धातुर्वै ह्यर्चने पुनः ॥१९॥
एता वै तिथयःप्रोक्ताःपवित्रारोपणोचिताः। कनिष्ठे द्वादश प्रोक्ताः मध्यमे द्विगुणाःस्मृताः॥२०॥
त्रिगुणाश्चोत्तमे चैव ग्रन्थयश्च पवित्रके। कर्पूरकेसराभ्यां वा चन्दनेन हरिद्रयाः॥२१॥
रञ्जयित्वा तु तत्सर्वं स्थाप्यं नवकरण्डके। देवस्य यजनं यत्र स्थाप्यानि देववत्तदा ॥२२॥
आदौ देवार्चनं कृत्वा वासनंसपवित्रकम्। अधिवासितेपवित्रे तु ततौ वै पूजनं स्मृतम्॥२३॥
पवित्रेषु च यद्देवास्तेषां निकटामाचरेत्। ब्रह्माविष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयो वै सूत्रदेवताः॥२४॥
क्रिया च पौरुषी वीरा चतुर्थी चापराजिता ।
जया च विजया चैव मुक्तिदा च सदाशिव ॥२५॥
मनोन्मनी तु नवमी दशमीं सर्वतोमुखि। ग्रन्थीनां देवताश्चैव सूत्रेषु विनिवेशयेत्॥२६॥
आवाहनमुद्रया वै शास्त्रोक्तविधिना ततः। आवाह्य तत्र ताःसम्यक्संनिधीकरणं स्मृतम्॥२७॥

उसे वैष्णवों को बनाना चाहिए ॥१३॥ देवताओं को पवित्रक विष्णु दैवता होना चाहिए । अम्बरीष तथा ध्रुव इत्यादि जो भक्त हैं उन लोगों को पवित्रक बाद में देना चाहिए । पवित्रारोपण में प्रतिपद कुबेर की तिथि बतलायी गयी है ॥१४-१५॥ सभी तिथियों में उत्तम द्वितीया तिथि लक्ष्मी देवी की है तृतीया तिथि पार्वतिजी की है और चतुर्थी गणेशजी की तिथि है ॥१६॥ पञ्चमी चन्द्रमा की तिथि है, षष्ठी कार्त्तिकेय की तिथि है । सप्तमी सूर्य की तिथि बतलायी गयी है और अष्टमी दुर्गाजी की तिथि है ॥१७॥ नवमी मातृकाओं की तिथि है और दशमी यमराज की तिथि है । एकादशी सबों की तिथि और द्वादशी भगवान् विष्णु की तिथि है ॥१८॥ त्रयोदशी कामदेव की तिथि है और चतुर्दशी शङ्करजी की तिथि है । ब्रह्माजी की पूजा में पूर्णिमा तिथि बतलायी गयी है ॥१९॥ पवित्रारोपण के योग्य ये तिथियाँ बतलायी गयी हैं । कनिष्ठ पवित्रक में बारह गाठ बतलाया गया है और मध्यम में चौबीस ॥२०॥ उत्तम में छत्तीस गन्थियाँ होनी चाहिए । जहाँ पर श्रीभगवान् की पूजा हो वहीं पर इन सबों की देवता के समान स्थापना करनी चाहिए। इन सबों को कर्पूर और केसर से या हल्दी से रङ्गकर नवीन पात्र में रखना चाहिए ॥२१-२२॥ पहले देवता की पूजा करके पवित्रक का अधिवास करना चाहिए । पवित्रक का अधिवास करा लेने पर उसकी पूजा करे ॥२३॥ जिन देवताओं का पवित्रक हो उन्हीं के निकट पूजा करे । ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र ये तीनों सूक्त के देवता हैं ॥२४॥ ग्रन्थियों में क्रिया, पौरुषी, वीरा, अपराजिता, जया, विजया, मुक्तिदा, सदाशिवा, मनोन्मनी तथा सर्वतोमुखी इन देवताओं की स्थापना क्रमशः करनी चाहिए ॥२५-२६॥ शास्त्रोक्त विधि से

संनिधीकरणमुद्रया संनिधीकरणम् । रक्षामुद्रया संरक्ष्य धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य आनीय देवस्याग्रे कलशोदकं गृहीत्वा आगमोक्तेन मन्त्रेण प्रोक्षणं विधाय क्लीं कृष्णाय नमः इति मन्त्रेण प्रोक्षणं गन्धधूपदीपनैवेद्यादिकं दत्त्वा ताम्बूलदिकं दत्त्वा षोडशोपवारादिना पवित्रदेवता अभ्यर्च्य गन्धपवित्रं धूपितं कृत्वा देवाभिमुख सन्नमस्कारमुद्रया देवमभिमन्त्रयीत ।

आमन्त्रितो महादेव सार्द्धदेव्या गणादिभिः । मन्त्रैर्वा लोकपालैश्च सहितःपरिवारिकैः ॥२८॥
आगच्छ भगवन्विष्णो विधिसंपूर्णहेतवे । प्रातस्त्वत्पूजनं कुर्म सान्निध्यं नियतं कुरु ॥२९॥

तद्गन्धं च पवित्रं च देवस राघवस्य च श्रीविष्णोश्चरणे तन्निक्षिप्य प्रातस्वक्रियां विधाय पुण्याहस्वस्तिवावनजयजयशब्दैर्घण्टादिवादित्रनिर्घोषतुर्यादिशब्दै पवित्रै पूजां कुर्यात् । ततः प्रथमं ज्येष्ठं ततो मध्यमं कनिष्ठं च । एभिः सर्वैर्यथाक्रमेण पूजां कुर्यात् ।

ॐ वासुदेवाय विद्महे विष्णुदेवाय धीमहि । तन्नो देवः प्रचोदयात् ॥३०॥
इति पवित्रदानमथवा स्वमन्त्रैः ।
ततो वै महतीं पूजां विष्णोः कुर्यात्प्रसादिनीम् ॥
यया वै कृतया देवि विष्णुरात्मा प्रसीदति ॥३१॥

समन्ताद्दीपमाला च कर्त्तव्या च विधानतः । चतुर्विधं तथा चात्रं नैवेद्यं कारयेद्बुधः ॥३२॥
पवित्राणि ततो दद्यात्पूजितानि तु शोभने । भक्तया चैवविशेषेण श्रीगुरुं पूजयेत्ततः ॥३३॥
वस्त्रालङ्कारविधिना पूजनीयो गुरुर्महान् । पूजयित्वा गुरुं तत्र पवित्रं धारयेत्ततः ॥३४॥

आवाहन मुद्रा के द्वारा आवाहन करके इन देवताओं की स्थापना करे ॥२७॥ संनिधिकरण मुद्रा संनिधि करे। रक्षा मुद्रा से रक्षा करके धेनु मुद्रा से अमृतीकरण करे । उसके पश्चात् श्रीभगवान् के समक्ष कलश का जल लेकर आगमोक्त मन्त्र से प्रोक्षण करके **क्लीं कृष्णाय नमः** इस मन्त्र से प्रोक्षण, धूप, दीप, नैवेद्य आदि प्रदान करके, ताम्बूल आदि देकर षोडशोपचार आदि से पवित्र देवता की पूजा करके चन्दन पवित्र तथा धूप देकर देवता के समक्ष नमस्कार मुद्रा से देवता को अभिमन्त्रित करे । देवी और गण आदि के साथ आमन्त्रित महादेव, मन्त्रों या परिवारिकों के साथ लोकपालों के साथ हे विष्णु भगवन् ! आप आइये जिससे कि विधि पूर्ण हो जाय प्रातःकाल हमलोग आपकी पूजा करेंगे आप निश्चित रूप से सान्निध्य बनाये रखें ॥२८-२९॥ उस चन्दन और पवित्र को श्रीराघव तथा भगवान् विष्णु के चरणों पर चढ़ाकर, प्रातःकाल अपना नित्यकृत्य करके पुण्याहवाचन, स्वस्ति वाचन जय-जयकार शब्दों के द्वारा घण्टा आदि वाद्यों से ध्वनि तथा तुरी आदि पवित्र शब्दों से पूजा करे । उसके पश्चात् पहले ज्येष्ठ उसके बाद मध्यम और कनिष्ठ इन तीनों पवित्रों से क्रमशः पूजा करे । **वासुदेवाय विद्महे विष्णुदेवाय धीमहि । तन्नो देवः प्रचोदयात्**॥३०॥ इस मन्त्र से अथवा अपने मन्त्रों से पवित्र प्रदान करें । उसके पश्चात् भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाली बड़ी पूजा करे । हे देवि ! उसके करने से जगदात्मा विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥३१॥ चारों ओर विधि पूर्वक दीपक जलाये और नैवेद्य में चार प्रकार के अन्न का भोग लगाये ॥३२॥ हे सुन्दरि ! उसके पश्चात् पवित्रों को प्रदान करे । उसके बाद भक्ति पूर्वक आचार्य की पूजा करे । गुरु की पूजा वस्त्र एवं अलङ्कार से करे। उनकी पूजा करके पवित्र धारण कराये ॥३३-३४॥ उसके पश्चात् जो वैष्णव रहें उन लोगों को ताम्बूल

अथ ये वैष्णवाः सन्ति तेभ्यस्ताम्बूलादिकं दत्त्वा पूर्णाहुतिमग्नये दत्त्वा श्रीनिवासाय श्रीकृष्णाय कर्मनिवेदयेत् ।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं तु केशव !। यत्पूजितो मया सम्यक्सम्पूर्णं यातु मे ध्रुवम् ॥३५॥

तत उद्वास्य इष्टबन्धुभिस्तथा वैष्णवैर्विप्रैर्वा सहितःसन्मृष्टमन्नं स्वयं भुञ्जीत् ।

एतत्पूजनकं दिव्यं ये शृण्वन्ति द्विजोत्तमाः। सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परम्पदम् ॥३६॥

यावत्तपति वै चन्द्रो यावत्तपति वै रविः । पवित्रारोपकस्तद्वत्तप्यते नात्र संशयः ॥३७॥

पृथिव्यां यानि दानानि नियमाश्च तथा पुनः ।
सर्वे वैपूर्णतां यान्ति पवित्रारोपणेकृते ॥३८॥

उत्सवानां च राजाऽयं पवित्रारोपणोविधिः। ब्रह्महा शुध्यते तत्र नात्र कार्या विचारणा ॥३९॥

सत्यंसत्यं पुनःसत्यं यदुक्तं नगनन्दिनि। पवित्रारोपणे पुण्यं दर्शने तु तथा स्मृतम् ॥४०॥

शूद्रैर्वाथ महाभागे पवित्रारोपणोविधिः । कृतोयैर्भक्तिभावेन ते वै धन्यतमाः स्मृताः॥४१॥

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सौभाग्यो धरणीतले ।
मया तु या कृता भक्तिर्वैष्णवी मुक्तिदायिनी ॥४२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे पवित्रारोपणं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥
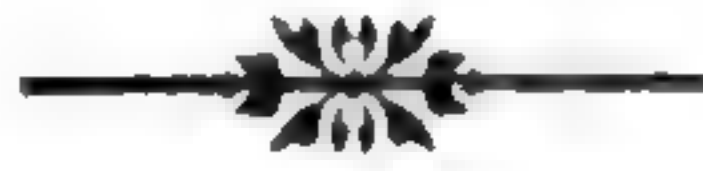
देकर अग्नि में पूर्णाहुति दे । उसके पश्चात् श्रीनिवास भगवान् श्रीकृष्ण को कर्म समर्पित निम्नांकित मन्त्र से करे । हे केशव ! जो मन्त्र रहित या क्रिया रहित तथा भक्ति रहित मैने पूजा की हो वह निश्चित रूप से सम्पूर्ण हो जाय ॥३५॥ उसके पश्चात् इष्ट बान्धवों या ब्राह्मण वैष्णवों के साथ स्वयं मीठा अन्न भोजन करे। इस दिव्य पूजन को जो ब्राह्मण श्रेष्ठ सुनते हैं वे सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के परम्पद में जाते हैं ॥३६॥ चन्द्रमा और सूर्य जैसे चमकते हैं उसी तरह पवित्रारोपण करने वाला भी कान्तिमान् हो जाता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥३७॥ पृथिवी में जितने भी दान और नियम हैं वे सब पवित्रारोपण करने से पूर्ण हो जाते हैं ॥३८॥ यह पवित्रारोपण विधि उत्सवों का राजा है । इसको करने वाला ब्रह्मघाती भी शुद्ध हो जाता है ॥३९॥ हे पार्वति ! मैंने परम सत्य बतलाया है कि पवित्रारोपण का पुण्य जैसा कहा गया है वैसा ही देखा भी जाता है ॥४०॥ हे महाभागे ! यदि किसी शूद्र ने भी भक्ति पूर्वक पवित्रारोपण किया है तो वह भी धन्यतम है ॥४१॥ पृथिवी पर मैं धन्य, कृतकृत्य और सौभाग्य सम्पन्न हूँ, क्योंकि मैंने मुक्ति प्रदान करने वाला वैष्णवी भक्ति की है ॥४२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत पवित्रारोपण वर्णन नामक छियासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८६।।

सत्तासीवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

कानि कानि च पुष्पाणि कस्मिन्मासे प्रकल्पयेत् ।
तन्मे वद सुरेशत्वं विस्तराज्जगतः प्रभो ! ॥१॥

महेश्वर उवाच

चैत्रे तु चम्पकेनैव जातीपुष्पेण वा पुनः । पूजनीयःप्रयत्ने केशवःक्लेशनाशनः ॥२॥
दमनकैर्मरुकैश्चैव बिल्वपुष्पैरथापि वा । पूजयेज्जगतामीशं विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥३॥
शतपत्रैस्तथा दिव्यै रक्तैर्वा सुसमाहिताः । पूजयन्ति नरा विष्णुं चैत्रमासे सुरेश्वरि ॥४॥
वैशाखे तु सदा देवि ह्यर्चनीयो महाप्रभुः । केतकीपत्रमादाय वृषस्थे च दिवाकरे ॥५॥
येनार्चितो हरिर्भक्तया प्रीतो मन्वन्तरंशतम् । ज्येष्ठेमासे तु संप्राप्ते नानापुष्पैःप्रपूजयेत् ॥६॥
पूजिते देवदेवेशं सर्वे देवाःसुपूजिताः । कृत्वा पापसहस्राणि महापाप शतानि च ॥७॥
तेऽपि यास्यन्ति भो देवि यत्र विष्णुःश्रियासह ।
आषाढ़ेमासि संप्राप्ते पूजां कुर्याद्विशेषतः ॥८॥
करवीरैरक्तपुष्पैस्तथाब्जैर्बा सदा नराः । पूजांकुर्वन्ति ये विष्णोस्ते ज्ञेयाःपुण्यभागिनः ॥९॥
जातरूपनिभैर्विष्णुं कदम्बकुसमैस्तथा । येऽर्चयिष्यन्ति गोविन्दं न तेषां सौरिजंभयम् ॥१०॥
घनागमे घनश्यामःकदम्ब कुसुमार्चितः । ददाति वाञ्छितान्कामान्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥११॥
यथा पद्मालयां प्राप्य प्रीतो भवति माधवः ।
कदम्बकुसुमं लब्ध्वा प्रीतो भवति लोककृत् ॥१२॥

चैत्र आदि मासों के क्रम से चम्पा इत्यादि के पुष्पों से भगवान् विष्णु का पूजन

पार्वतीजी ने कहा— हे सुरेश ! हे जगत् के स्वामिन् ! किस-किस मास में भगवान् की किस-किस फूल से पूजा करनी चाहिए इसे आप विस्तार से बतलाये ॥१॥ **महेश्वर ने कहा—** क्लेशों को नष्ट करने वाले भगवान् केशव की पूजा चम्पा अथवा जाती के फूल से करनी चाहिए । दमनक, मरुआ अथवा विल्व के पुष्पों से जगत् के स्वामी सर्वेश्वर भगवान् विष्णु की पूजा करने अथवा दिव्य लाल कमलों से सावधानी पूर्वक हे सुरेश्वरि मनुष्य चैत्रमास में पूजा करते हैं ॥२-४॥ हे देवि ! वैशाख मास में केतकी पत्र लेकर महाप्रभु भगवान् की पूजा करनी चाहिए । अथवा वृष राशि के सूर्य के होने पर जिसने भगवान् की केतकी पत्र से पूजा की है । उस पर भगवान् सौ मन्वन्वतरों तक प्रसन्न रहते हैं । ज्येष्ठ मास के आने पर अनेक पुष्पों से पूजा करनी चाहिए ॥५-६॥ देवताओं के स्वामी श्रीभगवान् की पूजा करने पर सभी देवताओं की पूजा हो जाती है । जो लोग हजारों पापों और सैकड़ों महापापों को करके पूजा करते हैं, वे भी मृत्यु के बाद वहाँ जाते हैं जहाँ पर श्रीदेवी के साथ श्रीभगवान् विद्यमान रहते हैं । आषाढ़ मास के आने पर विशेष रूप से पूजा ॥७-८॥ करवीरों, लाल पुष्पों तथा कमलों से करने वाले लोगों को विष्णु स्वरूप जानना चाहिए। वे लोग पुण्य के पात्र हैं ॥९॥ आषाढ़ के महीने में सुवर्ण के समान,कदम्ब के पुष्पों से जो लोग श्रीभगवान् की पूजा करते हैं, उनको शनि का भय नहीं होता है । बरसाने में घनश्याम भगवान् कदम्ब

तुलसी कृष्णतुलसी वञ्जुलैर्वा सुरेश्वरि। सर्वदा पूजितो विष्णुःकष्टं हरति नित्यशः ॥१३॥
श्रावणेमासि संप्राप्ते येऽर्चयन्ति जनार्दनम् । अतसीपुष्पमादाय तथा दूर्वादलेन तु ॥१४॥
नानापुष्पैर्विशेषेण पूजनीयःप्रयत्नतः। ददाति विपुलान्कामान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥१५॥
भाद्रमासे तु संप्राप्ते शृणुत्वं नगनन्दिनि । चम्पकैर्वा श्वेतपुष्पै रक्तसिन्दूरकैस्तथा ॥१६॥
कह्लारैर्वा महादेवि सर्वकामफलंलभेत्। आश्विने वै शुभेमासे कर्त्तव्यं विष्णुपूजनम्॥१७॥
यूथिकानवजातीभिस्तथा नानाविधैःशुभः। पूजनीयःप्रयत्नेन भक्तिपूर्वं सदाजनैः ॥१८॥
पद्मान्येव समानीय येऽर्चयन्ति जनार्दनम् । धर्मार्थकाममोक्षांस्ते लभन्ते मानवा भुवि ॥१९॥
कार्तिकेमासिसंप्राप्ते पूजनीयो महेश्वरः। यावन्ति ऋतुपुष्पाणि देयानि माधवस्य च ॥२०॥
तिलानि तिलपुष्पाणि तैर्वा ह्यर्चनकंचरेत्। पूजिते सति देवेशि अनन्तफलमश्नुते ॥२१॥
बकुलपुष्पैःपुन्नागैश्चम्पकैर्वा जनार्दनम् । कार्तिके पूजयिष्यन्ति ते देवा न हि मानवाः ॥२२॥
मार्गशीर्षे प्रयत्नेन पूजनीयः सदाप्रभुः। नानापुष्पैःसनैवेद्यैर्धूपैर्नीराजनैस्तथा ॥२३॥
मार्गशीर्षे विशेषेण दिव्यैःपुष्पैःप्रपूजयेत्। पौषमासे महादेवि स्वर्चनं शुभदं स्मृतम् ॥२४॥
नाना तुलसिपत्रैश्च मृगनाभिजलैस्तथा । माघमासे तु संप्राप्ते नानापुष्पैः प्रपूजयेत् ॥२५॥
पूजिते देवदेवेशे वाञ्छितं लभते ध्रुवम्। कर्पूरजा तथा पूजा नानानैवेद्य मोदकैः॥२६॥
फाल्गुने चैव संप्राप्ते ह्यर्चनं माधवस्य च । कृत्वा वासन्तिकीं पूजां पुष्पाण्यादाय सर्वशः॥२७॥

पुष्पों से पूजित होकर चौदह इन्द्रों के काल पर्यन्त पूजा करने वाले की कामनाओं की पूर्ति करते हैं ॥१०-११॥ जैसे लक्ष्मीजी को प्राप्त करके भगवान् प्रसन्न होते हैं, उसी तरह कदम्ब पुष्पों से पूजित होकर वे प्रसन्न होते हैं ॥१२॥ तुलसी काली तुलसी अथवा बञ्जुल से सदा पूजा करने पर भगवान् पूजक के कष्टों को दूर करते हैं ॥१३॥ श्रावण के महीने में जो लोग अलसी का पुष्प लेकर तथा दुर्वादल से तथा विशेष रूप से अनेक पुष्पों से भगवान् जनार्दन की पूजा करते हैं उन लोगों की सारी कामनाओं को वे महाप्रलय काल तक पूर्ण करते हैं ॥१४-१५॥ हे पार्वति ! भाद्रमास आने पर चम्पा, या श्वेत पुष्प, तथा लाल सिन्दूर से तथा कमल से जो लोग पूजा करते हैं, उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं । शुभ आश्विन मास के आने पर भगवान् विष्णु की पूजा, यूथिका, जाती तथा अनेक पुष्पों से सप्रयास भक्ति पूर्वक करना चाहिए ॥१६-१७॥ जो लोग अश्विन में केवल कमल को ही लाकर पूजा करते हैं, वे मनुष्य धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करते हैं ॥१८-१९॥ कार्तिक के महीने में श्रीभगवान् की पूजा सभी ऋतु पुष्पों से करनी चाहिए ॥२०॥ तिल अथवा तिल के फूल से जो लोग इस महीने में भगवान् की पूजा करते है वे अनन्त फलों को प्राप्त करते हैं ॥२१॥ कार्तिक के महीने में जो लोग बकुल, पुन्नाग अथवा चम्पा के फूलों से जनार्दन की पूजा करते हैं वे देवता हैं मनुष्य नहीं ॥२२॥ मार्गशीर्ष के महीने में अनेक प्रकार के पुष्पों, धूप, दीप, नैवेद्यों तथा आरती के द्वारा भगवान् की पूजा करनी चाहिए ॥२३॥ मार्गशीर्ष के महीने में विशेष रूप से दिव्य पुष्पों से पूजा करनी चाहिए । हे महादेवि! पौष मास में अनेक तुलसी पत्रों तथा कस्तूरी के जल से अच्छी तरह पूजा शुभ कारक होती है । माघ मास के आने पर अनेक पुष्पों, कर्पूर तथा अनेक प्रकार की मिठाइयों से पूजा करने पर पूजक अपने अभिप्रेत फल को प्राप्त करता है ॥२४-२६॥ फाल्गुन का महीना आने पर भगवान् माधव की वसन्त ऋतु की पूजा करके

नवीनैर्वाऽथ देवेशि ! सर्वैर्वा पूजयेत्ततः ॥२८॥
पूजिते तु जगन्नाथे वैकुण्ठपदमव्ययम्। प्राप्नोति पुरूषो नित्यं श्रीविष्णोश्च प्रसादतः ॥२९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे सासिकपुष्पो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

अठ्ठासीवाँ अध्याय

सूतउवाच

एकदा द्वारकामागादृषिःकृष्णदिदृक्षया। पुष्पाण्यादाय दिव्यानि कल्पवृक्षोत्थितानि च॥१॥
नारदं स्वागतेनासौ कृष्णः सत्कारमाचरत्। इदमर्घ्यमिदंपाद्यमित्युवाचासनं ददत्॥२॥
नारदस्तानि पुष्पाणि कृष्णायोपाजहार च । कृष्णः षोडशसाहस्त्रस्त्रीभ्यस्तानि व्यबीभजत्॥३॥
विस्मृत्य सत्यभामां तु सर्वाभ्यस्तान्यदात्प्रभुः ।
सत्यभामा ततःक्रुधा क्रोधागारं समाविशत् ॥४॥
समाज्ञाय ततः कृष्णस्तत्र गत्वा समाहितः। सत्यभामां मानयित्वा गरुड़ं मनसाऽस्मरत् ॥५॥
स्मृतमात्रस्तु गरुड़स्तदागत्याग्रतःस्थितः । आरुह्य वेगात्पत्रंतमित्युवाच प्रियां प्रभुः ॥६॥
सत्ये ! त्वं मा कृथाः क्रोधं त्वत्कृते दैवतैः सह ।
विरुध्य देवराजं च रोपयिष्ये तवाङ्गणे ॥७॥

तथा नवीन पुष्पों से अथवा सभी पुष्पों से भगवान् की पूजा करनी चाहिए ॥२७-२८॥ जगत् के स्वामी की पूजा करके मनुष्य भगवान् विष्णु की कृपा से निर्विकार वैकुण्ठ में जाता है ॥२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत मासिक पुष्पों के वर्णन नामक सत्तासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८७।।

कार्तिक माहात्म्य वर्णन

सूतजी ने कहा— एक बार कल्पवृक्ष के दिव्य पुष्पों को लेकर नारदजी द्वारका आये । भगवान् श्रीकृष्ण ने उनका सत्कार किया, अर्घ्य पाद्य आदि देकर उन्होंने उनको आसन प्रदान किया ॥१-२॥ नारदजी ने उन पुष्पों को भगवान् को उपहार के रूप में प्रदान किया और भगवान् ने उन पुष्पों को अपनी सोलह हजार पत्नियों में बाँट दिया ॥३॥ सत्यभामा को भूल कर उन्होंने अपनी सभी पत्नियों को उन पुष्पों को दे दिया । उसके बाद क्रुद्ध होकर सत्यभामा क्रोधागार में चली गयीं ॥४॥ उसको जानकर भगवान् वहाँ जाकर उनको मनाकर मन से गरुड़ का स्मरण किया ॥५॥ स्मरण करते ही गरुड़ भगवान् के सामने आ गये, वेग पूर्वक गरुड़ पर चढ़कर भगवान् ने सत्यभामाजी से कहा ॥६॥ सत्ये ! तुम क्रोध न करो तुम्हारे लिए देवराज से विरोध करके मैं तुम्हारे आङ्गन में कल्पवृक्ष को रोपूंगा । हे महाभागे ! मेरे अपराध को

कल्पद्रुमं महाभागेऽपराधं मे क्षमां कुरु। इति कृत्वा प्रतिज्ञां तु कृष्णःस सत्यभामया॥८॥
देवलोकमगात्तूर्णं यत्र देवःस वृहत्रा। याचितःकल्पवृक्षार्थमुत्तरं दत्तवान् प्रभुम्॥९॥
नायं देवद्रुमो भूम्यां नेतुं योगयस्त्वया प्रभो ।
तदा क्रुधो महावाहुर्वृक्षमुत्पाट्यमूलतः ॥१०॥
वाहमारोपयामास वेगेन बलबत्तरः। तदा बज्रधरो वेगाद्वज्रमुद्यम्य वीर्यवान्॥११॥
गरुड़ं ताडयामास कल्पवृक्षं त्यजेरिति। तदा पत्ररथःपत्रं कुलिशस्यापि गौरवात्॥१२॥
एकं विसर्जयामास त्वरया प्रजगाम च। तेन वज्रप्रहारेण त्रयोऽभूवन्पतत्रिणः॥
मयूरो नकुलश्चाषःकृष्णो द्वारावतीमगात् ॥१३॥
आगत्य सत्यभामाया गृहे चैनमारोपयत्। तदेव नारदोऽभ्यागात्सत्यया मानितोबहु॥१४॥

सत्यभामोवाच

ईदृशःकल्पबृक्षोऽयं पतिरेतादृशःप्रभुः। भवेभवे कथं प्राप्यस्तदाख्यातु भवान्मम॥१५॥
इति पृष्ठस्तदा प्राह नारदो मुनिसत्तमः। प्राप्यते सत्यभामेयं तुलापुरुषदानतः॥१६॥
सत्यभामा तदा कृष्णं कल्पवृक्षसमन्वितम्।
नारदायैव सा प्रादात्तोलयित्वा विधानतः। सर्वोपस्करमाकृष्य नारदस्त्रिदिवं ययौ॥१७॥

सूत उवाच

श्रियःपतिमथामन्त्र्य गते देवर्षिसत्तमे। हर्षोत्फुल्लानना सत्या वासुदेवमथाब्रवीत्॥१८॥

सत्यभामोवाच

धन्याऽस्मि कृतकृत्याऽस्मि सफलं जीवितं च मे ।
मज्जन्मनि निदाने च धन्यो तौ पितरो मम ॥१९॥

क्षमा करो। सत्यभामा से इस तरह की प्रतिज्ञा करके भगवान् शीघ्र ही देवलोक में चले गये। उन्होंने इन्द्र से कल्पवृक्ष को माँगा तो इन्द्र ने कहा हे प्रभो! आप इस देववृक्ष को पृथिवी पर न ले जायँ। इस पर क्रुध होकर भगवान् ने कल्पवृक्ष को जड़ सहित उखाड़ लिया॥७-१०॥ और अपने वाहन पर उसको रख लिया। उसके बाद इन्द्र ने वज्र उठाकर गरुड़ को मारा और कहा कल्पवृक्ष को रख दो। उस समय गरुड़ वज्र के गौरव के कारण एक पङ्ख को त्याग दिया और उससे तीन पक्षी हो गये मयूर, नकुल और चाष और भगवान् शीघ्रता से द्वारका चले गये॥११-१३॥ आकर इस कल्पवृक्ष को सत्यभामा के आङ्गन में रोप दिए। उस समय नारदजी आये और सत्यभामा ने उनका खूब सत्कार किया॥१४॥ **सत्यभामा ने कहा**— इस कल्प वृक्ष तथा ऐसे पति को प्रत्येक जन्म में कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इस बात को आप मुझे बतलायें॥१५॥ इस तरह से पूछने पर नारदजी ने कहा कि सत्यभामे! यह तुला पुरुष के दान से प्राप्त होता है॥१६॥ उस सत्यभामा ने कल्पपृक्ष के साथ भगवान् कृष्ण को तोलकर विधि पूर्वक दान दे दिया और नारदजी भी सम्पूर्ण सामग्री को लेकर स्वर्गलोक चले गये॥१७॥ **सूतजी ने कहा**— श्रीभगवान् से विदा लेकर देवर्षि जब स्वर्ग चले गये तो प्रसन्न होकर सत्यभामा ने भगवान् वासुदेव से कहा॥१८॥ **सत्यभामाजी ने कहा**— मैं धन्य और कृत-कृत्य हो गयी मुझे जन्म देने वाले मेरे माता-पिता

यौ मां त्रैलोक्य सुभगां जनयामासतुर्ध्रुवम्। षोडशस्त्रीसहस्राणां वल्लभाहं यतस्तव: ॥२०॥
यस्मान्मयाऽदिपुरुष: कल्पवृक्षसमन्वित:। यथोक्तविधिनासम्यङ् नारदाय समर्पित:॥२१॥
यद्वार्तामपि जानन्ति भूमिसंस्थान जन्तव:। सोऽयं कल्पद्रुमो गेहेममतिष्ठतिसाम्प्रतम् ॥२२॥
त्रैलोक्याधिपतेश्चाहं श्रीपतेरतिवल्लभा। अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि किंचित्वां मधुसूदन ॥२३॥
यदि त्वं मत्प्रियकर:कथयस्वात्र विंस्तरात्। श्रुत्वा तच्च पुनश्चाहं करोमि हितमात्मन: ॥२४॥
यथा कल्पं त्वया देव वियुक्ता स्यां न कर्हिचित् ॥२५॥

सूत उवाच

इति प्रियावच:श्रुत्वा स्मेरास्योऽयं गदाग्रज: ।
सत्याकरे करं कृत्वाऽगमत्कल्पतरोस्तलम् ॥२६॥

निषिध्यानुचरं लोकंसविलासं प्रियान्वित:। प्रहस्य सत्यामामन्त्यप्रोवाच जगतांपति: ॥
तत्प्रीतिपरितोषार्थं लसत्पुलकिताङ्गज: ॥२७॥

कृष्ण उवाच

न मे त्वत्त:प्रियतमाकाचिदन्यानितम्बिनी। षोडशस्त्रीसहस्राणांप्रिये प्राणसमाह्यसि ॥२८॥
त्वदर्थं देवराजेन विरोधो दैवतै: सह। त्वया यत्प्रार्थितं कान्ते शृणु यच्च महाद्भुतम्॥२९॥
अदेयमथवा कार्यमकथ्यमपि यत्पुन:। त्वत्कृतं तु कथं प्रश्नं कथयामि न तु प्रिये॥
पृच्छस्व सर्वं कथये यत्ते मनसि वर्तते ॥३०॥

सत्योवाच

दानं व्रतं तपो वापि किं नु पूर्वं मयाकृतम् ।
येनाहं मर्त्यजामर्त्यभावातीताऽभवं किल ॥३१॥

भी धन्य हो गये ॥१९॥ क्योंकि उन दोनों ने त्रैलोक्य सुन्दरी मुझको जन्म दिया । इसीलिए मैं सोलह हजार स्त्रियों में आपको सर्वाधिक प्रिय हूँ ॥२०॥ इसी कारण कल्पवृक्ष के साथ आदि पुरुष आपको विधि पूर्वक नारदजी को समर्पित कर सकी ॥२१॥ इस बात को पृथिवी पर रहने वाले जीव भी जानते हैं कि वह कल्पवृक्ष मेरे घर में विद्यमान है ॥२२॥ चूकि मैं त्रैलोक्य के स्वामी लक्ष्मीपति को प्रिय लगी हूँ । अतएव हे मधुसूदन ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ ॥२३॥ यदि आप मेरे प्रेमी हैं तो आप विस्तार पूर्वक बतलाइये जिसे जानकर मैं इस लोक में आत्म कल्याण कर सकूँ । हे देव ! जिसको करके मैं आप से कभी वियुक्त न होऊँ ॥२४-२५॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह अपनी पत्नी की बात कर मुस्कुराते हुए श्रीभगवान् सत्यभामा के हाथ पर हाथ रखकर कल्पतरु के नीचे गये ॥२६॥ अपने अनुचर समूह को रोककर विलास पूर्वक प्रियतमा के साथ गये और जोर से हँसकर उन्होंने सत्यभामा से कहा । उस समय सत्यभामा के प्रेम और सन्तोष के लिए उनके अङ्गों में रोमाञ्च हो रहा था ॥२७॥ **भगवान् कृष्ण ने कहा—** तुमसे अधिक कोई पत्नी मुझको प्रिय नहीं है । हे प्रिये ! सोलह हजार पत्नियों में तुम मुझे प्राण के समान प्रिय हो ॥२८॥ तुम्हारे लिए मैंने देवताओं से विरोध किया । हे कान्ते ! तुमने जो पूछा है उस अत्यन्त अद्भुत बात को तुम सुनो ॥२९॥ हे प्रिये ! तुम्हारे लिए अदेय या अकार्य, या अकथ्य कुछ भी नहीं

तवाङ्गार्धहरा नित्यं गरुडोपरि गामिनी। इन्द्रादि देवतावासमगमं च त्वया सह॥३२॥
अतस्त्वां प्रष्टुमिच्छामि किं कृतं तु मया शुभम् ।
जन्मान्तरे च किं शीला का चाहं कस्य कन्यका ॥३३॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्वैकमनाःकान्ते यत्त्वं वै पूर्वजन्मनि । पुण्यं व्रतं कृतवती तत्सर्वं कथयामिते ॥३४॥
आसीत्कृतयुगस्यान्ते मयापुर्यां द्विजोत्तमः । आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदाङ्गपारगः ॥३५॥
आतिथेयोऽग्नि शुश्रूषुः सौरव्रतपरायणः । सूर्यमाराधयन्नित्यं साक्षात्सूर्यइवापरः ॥३६॥
तस्यातिवयसश्चासीन्नाम्ना गुणवती सुता । अपुत्रःस स्वशिष्याय चन्द्रनाम्ने ददौ सुताम् ॥३७॥
तमेव पुत्रवन्मेने स च तं पितृवद्वशी। तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्महरणार्थिनौ ॥३८॥
हिमाद्रिपादजवने चेरतुस्तौ यतस्ततः । तौ ततो राक्षसं घोरमायान्तं समपश्यताम् ॥३९॥
भयविह्वलसर्वाङ्गावसमर्थौ पलायितुम् । निहतौ रक्षसा तेन कृतान्तसमरूपिणा॥४०॥
तौ तु क्षेत्रप्रभावेण धर्मशीलतया पुनः । वैकुण्ठं भवनं नीतौ मद्गणैर्मत्समीपगैः ॥४१॥
यावज्जीवं तु यत्ताभ्यां सूर्यपूजादिकं कृतम् ।
तेन वै कर्मणा ताभ्यां सुप्रीतोऽहं किलाभवम् ॥४२॥
शैवाःसौराश्च गाणेशा वैष्णवाःशक्तिपूजकाः ।
मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापःसागरं यथा ॥४३॥

है । तुमने कैसे प्रश्न किया उसे मैं कहता हूँ । तुम्हारे मन में जो हो वह पूछो उसे मैं बतलाता हूँ ॥३०॥ **सत्यभामाजी ने कहा—** मैंने पूर्वजन्म में कौन सा दान, तपस्या या व्रत किया है, जिसके कारण मैं मनुष्य होकर अमर्त्यों से भी श्रेष्ठ हो गयी हूँ ॥३१॥ मैं आपकी अर्धाङ्गिनी हूँ, गरुड़ से चलती हूँ, मैं आपके साथ इन्द्र इत्यादि के भी निवास स्थान पर गयी हूँ ॥३२॥ अतएव मैं आपसे पूछती हूँ कि कौन सा पुण्य कर्म मैनें किया है ? दूसरे जन्म में मेरा शील कैसा था और किसकी पुत्री थी ?॥३३॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे प्रिये ! तुम शान्त मन से सुनो तुमने पूर्व जन्म में पुण्य व्रत किया है उसे मैं बतला रहा हूँ ॥३४॥ सत्ययुग में हरिद्वार में अत्रिगोत्र में उत्पन्न देवशर्मा नामक ब्राह्मण थे । वेदों तथा वेदाङ्गों में वे पारंगत थे ॥३५॥ वे अतिथि सत्कार, अग्निहोत्र तथा सूर्य का व्रत करते थे । वे प्रतिदिन सूर्य की आराधना करते थे और दूसरे सूर्य के समान कान्ति सम्पन्न थे ॥३६॥ अत्यन्त बूढ़े उनकी गुणवती नाम की पुत्री थी । पुत्रहीन वे अपने शिष्य चन्द्र के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिये ॥३७॥ वे चन्द्र को पुत्र के समान मानते थे और जितेन्द्रिय चन्द्र भी उनको पिता के समान मानते थे । एक बार वे दोनों वन में कुश तथा समिधा लाने गये ॥३८॥ हिमालय की तराई में, वन में वे दोनों इधर-उधर घूम रहे थे । उन दोनों ने भयङ्कर राक्षस को आते हुए देखा ॥३९॥ अत्यन्त भयभीत और भागने में असमर्थ, यमराज के समान उस राक्षस के द्वारा वे दोनों मार दिए गये ॥४०॥ वे दोनों धर्मशील होने के कारण तथा क्षेत्र के प्रभाव से मेरे ही समान गुणों वाले मेरे पार्षदों द्वारा वैकुण्ठ में लाये गये ॥४१॥ चूकि वे दोनों जीवनभर सूर्य की पूजा किए थे अतएव मैं उन दोनों के कर्मो से प्रसन्न हो गया ॥४२॥ शैव, सूर्यभक्त, गणेश भक्त, वैष्णव तथा

एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडयन्नामभिःकिल ।
देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः ॥४४॥
ततश्च तौ मद्भवनाधिवासिनौ विमानयानौ रविवर्चसावुभौ ।
मत्तुल्यरूपौ ममसन्निधानगौ दिव्याङ्गनाचन्दनभोगभोगिनौ ॥४५॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे श्रीकृष्णसत्यभामासंवादेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

उन्नासीवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण उवाच

ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहतावुभौ। पितृभर्तृजदुःशार्ता करुणं पर्यदेवयत् ॥१॥

गुणवत्युवाच

हा नाथ हा पितस्त्यक्त्वा गच्छ तं क्व मयाविना ।
बालाहं किं करोभ्यद्य ह्यनाथा भवता विना ॥२॥
कोनुमामास्थितां गेहे भोजनाच्छादनादिभिः। अकिंचित्कुशलां स्नेहात्पालयिष्यति दुःखिताम् ॥३॥
हतभाग्या हतसुखा हतेशा हतजीविता । शरणं कंव्रजाम्यद्य त्वन्नाथा बत बालिशा ॥४॥

शक्ति की पूजा करने वाले मेरे पास उसी तरह आते है जैसे वर्षा का जल समुद्र में जाता है ॥४३॥ एक ही मैं भिन्न-भिन्न नाम से क्रीड़ा करता हुआ पाञ्च प्रकार का हो गया जैसे देवदत्त पुत्र इत्यादि के नाम से अनेक प्रकार के हो जाते हैं ॥४४॥ उसके बाद वे दोनों मेरे भवन में रहते थे और विमान से चलते थे। उनकी कान्ति सूर्य और चन्द्रमा के समान थी उन दोनों का रूप मेरे समान था, मेरे साथ चलते थे दिव्य चन्दन स्त्री तथा भोगों को भोगते थे ॥४५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के श्रीकृष्ण सत्यभामा सवांद के अन्तर्गत अठासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८८।।

गुणवती द्वारा कार्तिक मास का सेवन करने से सत्यभामात्व की प्राप्ति

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा— उसके बाद उन दोनों के राक्षस द्वारा मारे जाने की बात सुनकर गुणवती अपने पिता तथा पति के दुःख के कारण दुखार्त होकर करुण क्रन्दन करने लगी ॥१॥ **गुणवती ने कहा—** हाय नाथ ! हाय पितः मुझको छोड़कर मेरे बिना आप दोनों कहाँ चले गये ? आप दोनों के बिना अनाथ मैं क्या करूँ ? ॥२॥ आपके बिना घर में रहने वाली मुझको भोजनवस्त्र से मेरा पालन कौन करेगा ? मैं किसी कार्य को करने में निपुण भी नहीं हूँ ॥३॥ दुर्भाग्य युक्त दुखिनी, स्वामी रहित

श्रीकृष्ण उवाच

एवं बहुविलप्याथ कुररीव भृशातुरा। पपात भूमौ विकला रम्भा वातहता यथा ॥५॥
चिरादाश्वस्य सा भूमौ विलप्य करुणं बहु ।
निमग्नादुःखजलधौ शोकार्ता समवर्तत ॥६॥
साग्रहोपस्करान्सर्वान्विक्रीय शुभकर्मकृत् । तयोश्चक्रे यथाशक्ति पारलौकिकसत्क्रियाम्॥७॥
तस्मिन्नेव पुरे ठ ासं चक्रे प्रभृतिजीवनी । विष्णुभक्तिपरा शान्ता सत्यशौचा जितेन्द्रिया॥८॥
व्रतद्वयं तया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम् । एकादशीव्रतं सम्यक्सेवनं कार्त्तिकस्य च ॥९॥
एतद्व्रतद्वयं कान्ते ममातीव प्रियङ्करम्। भुक्तिमुक्तिपरं सम्यक्पुत्रसंपत्ति कारकम् ॥१०॥
कार्तिके मासि ये नित्यं तुलासंस्थे दिवाकरे ।
प्रातः स्नास्यन्ति ते मुक्ता महापातकिनोऽपि च ॥११॥
संमार्जनं गृहे विष्णोःस्वस्तिकादिनिवेदनम् । विष्णुपूजां प्रकुर्वन्तिजीवन्मुक्ताश्चते नराः ॥१२॥
स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनसेवनम्। कार्त्तिके ये प्रकुर्वन्ति ते नरा विष्णुमूर्तयः॥१३॥
इत्थं दिनत्रयमपि कार्त्तिके ये प्रकुर्वते। देवानामपि ते वन्द्याःकिं यैराजन्मतःकृतम् ॥१४॥
इत्थं गुणवती सम्यक्प्रत्यब्दं प्रति नीयते । नित्यं विष्णोःपरिकरे भक्ततत्परमानसा ॥१५॥
कदाचिज्जरसा साथ कृशाङ्गी ज्वरपीडिता। स्नातुं गङ्गागता कान्ते कथंचिच्छनकैस्तथा॥१६॥
यावज्जलान्तरगता कम्पिताशीतपीडिता । तावत्सा विह्वलापश्यद्विमानं प्राप्तमम्बरात्॥१७॥

तथा जीविका रहित मैं किसकी शरण में जाऊँ मैं तो मूर्ख हूँ । आप ही मेरे स्वामी हैं ॥४॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** इस तरह अत्यन्त दुःखी वह कुररी के समान बहुत बिलाप करके विकल होकर पृथिवी पर वायु के झोंके से गिरे केले के समान गिर पड़ी ॥५॥ बहुत देर से होश में आकर पृथिवी पर करुण विलाप करके दुःख सागर में डूबी हुयी वह शोकार्त हो गयी ॥६॥ शुभकर्म करने के लिए आग्रह पूर्वक अपने सभी सामानों को बेंचकर अपनी शक्ति के अनुसार उन दोनों की और्ध्वदेहिक पारलौकिक क्रियाओं को की ॥७॥ उसी समय से उसी नगर में वह रहने लगी । सत्य और शौच का पालन करती हुयी जितेन्द्रिय वह शान्त मन से भगवान् विष्णु की भक्ति में लग गयी ॥८॥ उसने जीवन पर्यन्त दो व्रत को किया एकादशी और अच्छी तरह से कार्तिक मास का सेवन ॥९॥ हे प्रिये ! ये दोनों व्रत मुझको अत्यन्त प्रिय हैं ये दोनों भोग और मोक्ष देने वाले और पुत्र एवं सम्पत्ति को देने वाले हैं ॥१०॥ तुला राशि के सूर्य के होने पर जो लोग प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करते हैं ऐसे महापातकी भी मुक्त हो जाते हैं ॥११॥ जो लोग भगवान् विष्णु के मंदिर को झाड़ते हैं तथा स्वस्तिक आदि बनाते हैं तथा भगवान् विष्णु की पूजा करते हैं वे मुक्त मनुष्य हैं ॥१२॥ कार्तिक में जो लोग स्नान, जागरण तथा दीप जलाते हैं तुलसी वन की सेवा करते हैं वे भगवान् विष्णु की मूर्ति हैं ॥१३॥ इस तरह जो तीन दिन भी करते हैं वे देवताओं के वन्दनीय हैं और जो जीवन भर यह करते हैं उनके विषय में क्या कहना है ॥१४॥ इस तरह गुणवती प्रत्येक वर्ष करती थी नित्य ही भगवान् के परिकरों में भक्ति पूर्वक लगी रहती थी ॥१५॥ एक बार बूढ़ापे के कारण दुर्बल बनी हुयी तथा ज्वर से पीड़ित वह स्नान करने के लिए धीरे-धीरे गङ्गा में गयी ॥१६॥

शङ्खचक्रगदापद्महस्तैरासन्नम्बरात् । विष्णुरूपधरैः सम्यग्वैनतेयध्वजाङ्कितैः ॥१८॥
आरोहयन्विमानं तमप्सरोगणसेवितम् । चामरैर्वीज्यमानां तां वैकुण्ठमनयन्गणाः ॥१९॥
अथ सा तद्विमानस्था ज्वलदग्निशिखोपमा । कार्त्तिकव्रतपुण्येन मत्सान्निध्यगताऽभवत् ॥२०॥
अथ ब्रह्मादि देवानां यथा प्रार्थनया भुवम् । आगच्छता गणाःसर्वे यातास्तेऽपि मया सह ॥२१॥

एतेऽपि यादवाः सर्वे मद्गणा एव भामिनी ! ।
पिता ते देवशर्माभूत्सत्राजिदधिपो ह्ययम् ॥२२॥
यश्चन्द्रशर्मा सोऽक्रूरस्त्वं सा गुणवती शुभे ।
कार्त्तिकव्रतपुण्येन बहुमत्प्रीतिवर्धनी ॥२३॥

ममद्वारे त्वया पूर्वं तुलसीवाटिका कृता । तस्मादयं कल्पवृक्षस्तवाङ्गणगतःशुभे ॥२४॥
कार्त्तिके दीपदानं च यत्त्वया तु कृतं पुरा । त्वद्देहगेहसंस्थेयं तस्माल्लक्ष्मीःस्थिराभवत् ॥२५॥
यच्च व्रतादिकं सर्वं विष्णवे भर्तृरूपिणे । निवेदितवती तस्मान्मम भार्यात्वमागता ॥२६॥
आजन्ममरणात्पूर्वं कार्त्तिके यद्व्रतं कृतम् । कदाचिदपि तेनैव मद्वियोगं न पश्यसि ॥२७॥

एवं ये कार्त्तिकेमासि नरा व्रतपरायणाः ।
मत्सान्निध्यं गतास्तेऽपि प्रीतिदा त्वं यथा मम ॥२८॥

यज्ञदानव्रततपःकारिणो मानवाःखलु । कार्त्तिकव्रतपुण्यस्य नाप्नुवन्ति कलामपि ॥२९॥

जब जल में डुबकी लगायी ठण्डी के कारण काँपने लगी । उसी समय घबरायी हुयी वह आकाश से आये विमान को देखी ॥१७॥ शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किए हुए आकाश से आये, विष्णुरूप धारी लोग जिनकी ध्वजा पर गरुड़ का चिह्न था वे उसको विमान पर चढ़ाये । वह विमान अप्सराओं से सेवित था । चामर से हवा करते हुए वे उसको वैकुण्ठ में लाये ॥१८-१९॥ उसके पश्चात् जलती हुयी अग्नि के समान चमकती हुयी वह कार्तिक व्रत के पुण्य से मेरे सन्निध्य को प्राप्त की ॥२०॥ जिस तरह ब्रह्मा आदि देवताओं की प्रार्थना से मेरे गण पृथिवी पर आये और मेरे ही साथ चले गये ॥२१॥ हे भामिनि ! ये सभी यादव मेरे गण हैं । तुम्हारे पिता देवशर्मा राजा सत्राजित् हुए ॥२२॥ चन्द्रशर्मा ही अक्रूर हैं और तुम गुणवती हो । कार्तिक व्रत के पुण्य से मेरी प्रियतमा हुयी हो ॥२३॥ तुमने मेरे द्वारा पहले तुलसी की बाटिका लगाया है उसी के कारण यह कल्पवृक्ष तुम्हारे आङ्गन में आया है ॥२४॥ पूर्व जन्म में तुमने दीपदान किया है इसीलिए तुम्हारे शरीर की शोभा तथा तुम्हारे घर की लक्ष्मी स्थिर है ॥२५॥ चूकि तुमने पति स्वरूप भगवान् विष्णु को समर्पित किया है इसीलिए तुम मेरी पत्नी हुयी ॥२६॥ मरने से पहले जीवन भर तुमने कार्तिक व्रत किया है इसीलिए जीवन भर तुम्हें मेरा वियोग नहीं होगा ॥२७॥ इस तरह कार्तिक महीने में जो लोग व्रत करते हैं मेरी सन्निकटता को मुझको तुम्हारे ही समान प्रसन्न करते हैं ॥२९॥ यज्ञ, व्रत, दान तथा तप करने वाले मनुष्य कार्तिक व्रत के पुण्य का सोलहवाँ भाग भी नहीं कर पाते

इत्थं निशम्य भुवनाधिपतेस्तदानीं प्राक्पुण्यजन्मभववैभव जातहर्षा ।
विश्वेश्वरं त्रिभुवनैकनिदानभूतं कृष्णं प्रणम्य वचनं निजगाद सत्या ॥३०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे सत्यापूर्वजन्मवर्णनं नामैकोननवतितमोऽध्याय: ॥८९॥

नब्बेवाँ अध्याय

सत्योवाच

सर्वोऽपिकालावयवास्तवकालस्वरूपिण: । समानास्तु कथंनाथमासानांकार्त्तिकोवर: ॥१॥
एकादशी तिथीनां च मासानां कार्तिक: प्रिय: ।
कथं ते देवदेवश ! कारणं किं च कथ्यताम् ॥२॥

श्रीकृष्ण उवाच

साधृ पृष्टं त्वया सत्ये शृणुष्वैकाग्रमानसा। पृथोर्वैन्यस्य संवादंदेवर्षेर्नारदस्य च ॥३॥
एवमेव पुरापृष्टो नारद:पृथुना प्रिये। उवाच कार्त्तिकाधिक्ये कारणं सर्वविन्मुनि: ॥४॥

नारद उवाच

शङ्ख नामाऽभवत्पूर्वमसुर:सागरात्मज:। त्रिलोकीमथनेशक्तो महाबलपराक्रम: ॥५॥
जित्वा देवान्निराकृत्य स्वर्गलोकान्महासुर: । इन्द्रादिलोकपालानामधिकारांस्तथाऽहरत् ॥६॥

हैं॥२९॥ इस तरह संसार के स्वामी की बातों को सुनकर पूर्वजन्म के पुण्य के ऐश्वर्य से प्रसन्न हुयी सत्यभामाजी ने त्रैलोक्य के एक मात्र कारण भगवान् को प्रणाम करके कहा ॥३०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के अन्तर्गत सत्यभामा के पूर्व जन्म का वर्णन नामक नवासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८९।।

पृथु नारद संवाद के अन्तर्गत शङ्खासुर के आख्यान का वर्णन

सत्यभामा ने कहा— हे कालस्वरूप भगवन् ! सम्पूर्ण काल तो आपके अङ्ग होने के कारण एक समान हैं फिर सभी मासों में कार्तिक का महीना क्यों श्रेष्ठ हैं ॥१॥ तिथियों में एकादशी और मासों में कार्तिक हे देव देवेश आपको क्यों प्रिय हैं । उसका कारण क्या है ? यह आप बतलाये ॥२॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे सत्ये ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, इसे तुम एकाग्रमना होकर सुनो और नारद के सवांद को सुनो ॥३॥ हे प्रिये ! इसी प्रकार से पृथु ने प्राचीन काल में पूछा था तो सर्वज्ञ मुनि कार्तिक के आधिक्य का कारण बतलाते हुए कहे ॥४॥ **नारदजी ने कहा—** प्राचीन काल में सागर का पुत्र शङ्खासुर हुआ । महान् बल एवं पराक्रम सम्पन्न वह त्रिलोकी को जीतने में समर्थ था ॥५॥ उस महान्

तद्भयादथ ते देवा:सुवर्णाद्रिगुहां गता: । न्यवसन्बहुवर्षाणि सावरोधा:सवासवा: ।।७।।
सुवर्णाद्रिगुहां दुर्गसंस्थितास्त्रिदशा यदा । तद्वश्या न बभूवुस्ते तदादैत्यो व्यचारयत् ।।८।।
हताधिकारास्त्रिदशा मया यद्यपि निर्जिता: । भवन्ति बलयुक्तास्ते करणीयं ममात्र किम् ।।९।।
अद्य ज्ञातं मया देवावेदमन्त्रबलान्विता: । तान्हरिष्ये तत:सर्वे बलहीना भवन्ति हि ।।१०।।
इति मत्वा ततो दैत्यो विष्णुमालक्ष्य निद्रितम् ।
सत्यलोकाज्जहाराशु वेदानां च गणं प्रभु: ।।११।।
नीतास्तु ते न ते वेदास्तद्भयात्त निराक्रमन् । तोये निविविशुस्तेऽत्र यज्ञमन्त्रसमन्विता: ।।१२।।
तान्मार्गमाण:शङ्खोऽपि समुद्रान्तर्गतो भ्रमन् । न ददर्श ततो दैत्य: क्वचिदेकत्र संस्थितान् ।।१३।।
अथ ब्रह्मासुरै सार्धं विष्णुं शरणमन्वयात् । पूजोपकरणं गृह्य वैकुण्ठभवनं गता: ।।१४।।
तत्र तस्य प्रबोधाय गीतवाद्यादिका:क्रिया: । चक्रुर्देवा गन्धपुष्पधूपदीपान्मुहुर्मुहु: ।।१५।।
अथ प्रबुद्धो भगवांस्तद्भक्ति: परितोषित: । ददृशे तै:सुरैस्तत्र सहस्रार्कसमद्युति: ।।१६।।
उपचारै: षोडशभि: संपूज्य त्रिदशास्तदा । दण्डवत्पतिता भूमौ तानुवाचाथ केशव: ।।१७।।

विष्णुरुवाच

वरदोऽहं सुरगणां गीतवाद्यादिमङ्गलै: । मनोऽभिलषितान्कामान्सर्वानेव ददामि व: ।।१८।।
इषस्य शुक्लैकादश्या यावदुद्बोधिनी भवेत् ।
निशातुर्यां शशषेण गीतवाद्यादिमङ्गलै: ।।१९।।
कुर्वन्ति मनुजा नित्यं भवद्भिर्यद्यथाकृतम् । ते मत्प्रियकरानित्यं मत्सांनिध्यंव्रजन्तिहि ।।२०।।

असुर ने लोकों को जीतकर स्वर्ग से देवताओं को निकाल दिया । उसने इन्द्र आदि लोकपालों का अधिकार छिन लिया ।।६।। उसके भय से देवता सुमेरु पर्वत की गुफा में चले गये । और वे अपनी पत्नियों और इन्द्र के साथ वे अनेक वर्षों तक वहाँ रहे ।।७।। सुमेरु पर्वत में रहने वाले देवता जब उसके वशवर्ती नहीं हुए तो उस दैत्य ने विचार किया ।।८।। यद्यपि अधिकार छिन लेने से वे मेरे द्वारा पराजित हैं, फिर भी वे बलवान हैं । इसके लिए मुझे क्या करना चाहिए ?।।९।। आज मैंने जान लिया कि देवता वेद केवल से युक्त हैं अतएव मैं सम्पूर्ण वेदों का हरण कर लूंगा । जिससे कि देवता बलहीन हो जायेंगे ।।१०।। इस बात को जानकर वह दैत्य भगवान् विष्णु को सोए हुए जानकर उसने सत्यलोक से वेदों का हरण कर लिया ।।११।। लाये गये वेद उस असुर का निरादर उसके भय से नहीं किए । वे यज्ञमन्त्र के साथ जल में प्रवेश कर गये ।।१२।। उन सबों को खोजते हुए शङ्खासुर समुद्र के भीतर जाकर घूम रहा था । उसने कहीं पर एकत्र स्थित वेदों को नहीं देखा ।।१३।। उसके पश्चात् ब्रह्मा आदि देवताओं के साथ देवता भगवान् विष्णु के शरण में गये । वे पूजन की सामग्री लेकर वैकुण्ठ में गये ।।१४।। वहाँ पर भगवान् को जगाने के लिए गीत और वाद्य की क्रिया की और धूप, दीप, गन्ध, पुष्प आदि को बार-बार चढ़ाया ।।१५।। इसके बाद जगकर भगवान् देवताओं के भक्ति से प्रसन्न हो गये । देवताओं ने उनको हजारों सूर्य क समान कान्ति सम्पन्न देखा ।।१६।। उस समय देवता षोडशोपचार से भगवान् की पूजा किए, साष्टाङ्ग प्रणाम किए उसके बाद भगवान् केशव ने देवताओं से कहा ।।१७।। **भगवान् विष्णु ने कहा**— हे देवताओं ! मैं आपलोगों को समस्त मनोभिलषित कामना की पूर्ति का वरदान देता हूँ, कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष में जब प्रबोधिनी एकादशी रहे रात्रि के चतुर्थांश जब शेष रहे तो गीत वादित्र आदि मङ्गलों के द्वारा ।।१८-१९।। जो लोग आप लोगों के समान मेरी पूजा करेंगे, वे सदा मुझको प्रसन्न करने वाले हैं और मेरे सान्निध्य को प्राप्त करते

पाद्यार्घाचमनीयाद्यैर्भवद्भिर्यद्यथाकृतम् । तदद्भुतगुणं यस्माज्जातं वः सुखकारणम् ॥२१॥
वेदाः शङ्खहताःसर्वे तिष्ठन्त्युदकसंस्थिताः ।
तानानयाम्यहं देवा हत्वा सागरनन्दनम् ॥२२॥
अद्यप्रभृति वेदास्तु मन्त्रबीजमखान्विताः। प्राप्यब्दं कार्तिकेमासिविश्राम्यंत्वप्सुसर्वदा ॥२३॥
अद्यप्रभृत्यहमपि भवामि जलमध्यगः। भवन्तोऽपि मयासार्द्धमायान्तु समुनीश्वराः ॥२४॥
कालेऽस्मिन्नेव कुर्वन्ति प्रातःस्नानंद्विजोत्तमाः ।
ते सर्वयज्ञावभृथैः सुस्नाताःस्युर्न संशयः ॥२५॥
ये कार्तिके व्रतंसम्यङ्नित्यं कुर्वन्ति मानवाः ।
ते देहान्ते त्वयाशक्रप्राप्यामद्भवसंसदा ॥२६॥
विघ्नेभ्यो रक्षणं तेषां त्वयाकार्यं ममाज्ञया। देया त्वया च वरुण पुत्रपौत्रादिसंतिः ॥२७॥
धनवृद्धिर्धनाध्यक्ष त्वयाकार्या ममाज्ञया। ममरूपधराः साक्षाज्जीवन्मुक्ताश्च ते नराः ॥२८॥
आजन्ममरणाद्यैश्च कृतमेतद्व्रतोत्तमम्। यथोक्तविधिना सम्यक्ते मान्या भवतामपि ॥२९॥
एकादश्यां यतश्चाहं भवद्भिः प्रतिबोधितः । अतश्चैषातिथिर्मान्या सदैवप्रीतिदा मम ॥३०॥
व्रतद्वयं सम्यगिदं नरैः कृतं कृष्णास्य सान्निध्यदमस्ति नान्यत् ।
दानानि तीर्थानि तपांसि यज्ञाः स्वर्लोकदानेन सदा सुरोत्तमाः ॥३१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे शङ्खासुरवधोद्यमो नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

हैं॥२०॥ आप लोगों ने पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीय के द्वारा पूजा मेरी की है, उसने मेरे अद्भुत सुख को उत्पन्न किया है ॥२१॥ शङ्खासुर ने वेदों का अपहरण कर लिया है, इस समय वे जल के भीतर हैं । हे देवताओं मैं उस सागर के पुत्र शङ्खासुर को मरकर उन वेदों को लाऊँगा ॥२२॥ आप मन्त्र, बीज और यज्ञों के साथ वेदों को कार्तिक मास के आने पर वर्ष पूरा होने पर वेद जल मे विश्राम करेंगे ॥२३॥ आज से मैं भी जल के भीतर जाऊँगा और आपलोग भी मुनीश्वरों के साथ जायें ॥२४॥ इस कार्तिक के महीने में जो प्रातः स्नान प्रतिदिन करेंगे उनलोगों को सभी यज्ञों के अन्त में अवभृथ स्नान का फल प्राप्त होगा इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥२५॥ जो मनुष्य कार्तिक में सदैव स्नान का व्रत करते हैं उनको हे इन्द्र ! तुम्हे मेरे लोक में पहुँचाना चाहिए । मेरी आज्ञा है कि तुम उन लोगों को विघ्नों से रक्षा करना। और हे वरुण ! आप उन लोगों का सदा पुत्र-पौत्र प्रदान करना ॥२६॥ हे कुबेर ! मेरी आज्ञा से तुम उन लोगों को धन सम्पत्ति प्रदान करना । मेरे रूप को धारण करने वाले वे मनुष्य साक्षात् जीवन मुक्त हैं॥२७॥ जो लोग जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त इस व्रत का पालन विधि पूर्वक करें वे आपलोगों के भी समादरणीय होंगे॥२८॥ चूकि आपलोगों ने मुझे एकादशी तिथि को जगाया है, अतएव मुझे प्रसन्न करने वाली इस तिथि का व्रत करना चाहिए ॥२९॥ इन दोनों व्रतों को जो करता है उसको श्रीभगवान् का सान्निध्य प्राप्त होता है। हे श्रेष्ठ देवताओं ! दान, तीर्थ, तपस्या तथा यज्ञ और दान के द्वारा स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है ॥३०-३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्यान्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा के संवाद में शङ्खासुर के वध के लिए प्रयास वर्णन नामक नबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९०॥

एकयानबेवाँ अध्याय

नारद उवाच

इत्युक्तवाभगवान्विष्णुःशफरीतुल्यपधृत् । स पपाताञ्जलौविन्ध्ये निवासकश्यपस्यच ॥१॥
सतं कमण्डलौ क्षिप्र कृपयाक्षिप्तवान्मुनिः । तावत्स न ममौ तत्र ततः कूपे न्यवेशयत् ॥२॥
तत्रापि न ममौ तावत्कासारे प्राक्षिपत्स ताम् ।
एवं सा सागरे क्षिप्तस्तत्र सोऽप्यन्ववर्द्धत ॥३॥
ततोऽवधीत्स तं शङ्खं विष्णुर्वैर्मत्स्यरूपधृत् । अथ तं स्वकरे धृत्वा बदरीवनमागतः ॥४॥
तत्राहूय ऋषीन्सर्वानिदमालापयद्विभुः ॥५॥

श्रीकृष्ण उवाच

जलान्तरे विशीर्णां स्तुयूयंवेदान्प्रमार्जथ । आनयध्वं च त्वरिताः सरहस्यंजलान्तरात् ॥
तावत्प्रयागे तिष्ठामि देवतागणसंयुतः ॥६॥

नारद उवाच

ततस्तैःसर्वमुनिभिस्तपोबलसमन्वितैः । उद्धारिताः षडङ्गास्ते वेदा यज्ञसमन्विताः ॥७॥
तेषु यावन्मितं येन लब्धं तावन्मितस्य हि । स स एव ऋषिर्जातस्तदा प्रभृति पार्थिव ॥८॥
अथ सर्वेऽपि संगम्य प्रयागं मुनयो ययुः । विष्णवे सविधात्रे ते लब्ध्यान्वेदान्व्यवेदयन् ॥९॥
लब्ध्वा वेदान्स यज्ञांस्तु ब्रह्मा हर्षसमन्वितः । अयजच्चाश्वमेधेन देवर्षिगणसंवृतः ॥१०॥
यज्ञा ते देवदेवेशं सिद्धपन्नगगुह्यकाः । निपत्य दण्डवद् भूमौ विज्ञप्तिं तत्र चक्रिरे ॥११॥

भगवान् विष्णु का मत्स्यावतार धारण करके शङ्खासुर के वध का वर्णन

नारदजी ने कहा— इस तरह से कहकर भगवान् विष्णु ने छोटी सी मछली के समान रूप धारण करके विन्ध्य पर्वत पर निवास करने वाले कश्यप महर्षि की अञ्जलि में गिर पड़े ॥१॥ वे मुनि कृपा करके उस मछली को शीघ्र ही अपने कमण्डलु में डाल दिए । अब वह मछली कमण्डलु में नहीं अँट पा रही थी तो उसको उन्होंने उसे कूएँ में डाल दिया ॥२॥ वह मछली जब कुएँ में भी नहीं अँट पा रही थी तो उसको उन्होंने सरोवर में डाल दिया । उस मछली को समुद्र में डाल देने पर वहाँ भी वह बढ़ गयी ॥३॥ उसके बाद मत्स्य रूपधारी भगवान् विष्णु ने शङ्खासुर का वध कर दिया । उसके बाद शङ्खासुर को हाथ में पकड़कर भगवान् बदरिकाश्रम में आ गये ॥४॥ उसके बाद सभी ऋषियों को बुलाकर वे यह आज्ञा दिये॥५॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** जल के भीतर पड़े हुए वेदों का आप लोग मार्जन करें । आपलोग जल में छिपे वेदों को शीघ्र लाएँ । मैं तब तक देवताओं के साथ प्रयाग में ठहरता हूँ ॥६॥ **नारदजी ने कहा—** उसके पश्चात् वे तपोबल से युक्त उन मुनियों ने यज्ञों से युक्त षडङ्ग वेदों का उद्धार किया ॥७॥ हे राजन् ! उन वेदों के जिसने जितने वेदांश को पाया उतने अंश के वे ऋषि हो गये ॥८॥ उसके पश्चात् वे सभी मुनि एकत्रित होकर प्रयाग गये और ब्रह्माजी के साथ विद्यमान भगवान् विष्णु को उन लोगों ने वेदों को प्रदान किया ॥९॥ यज्ञों के साथ वेदों को प्राप्त करके ब्रह्माजी हर्षित होकर देवर्षि समूह के साथ अश्वमेध यज्ञ के द्वारा भगवान् विष्णु का यजन किये ॥१०॥ वे यज्ञ, सिद्ध, पन्नग

देवाऊचुः

देवदेव जगन्नाथ विज्ञप्तिं शृणुनः प्रभो। हर्षकालोऽयमस्माकं तस्मात्त्वं वरदो भव॥१२॥
स्थानेऽस्मिन्नृषयो वेदान्नष्टान्प्रापुः पुनःस्वयम् ।
यज्ञभागान्वयं प्राप्तास्त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥१३॥
स्थानमेतदपि श्रेष्ठं पृथिव्यां पुण्यवर्द्धनम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं चास्तु प्रसादाद्भवतः सदा ॥१४॥
कालोऽप्ययं महापुण्यो ब्रह्मघ्नादि विशुद्धिकृत् ।
दत्ताऽक्षयकरश्चास्तु वरमेतद्वदस्वनः ॥१५॥

श्रीविष्णुरुवाच

ममाप्येतन्मतं देवा यद्भवद्भिरुदाहृतम्। तत्तथास्तु लभत्वेतद्ब्रह्मक्षेत्रमिति प्रथाम् ॥१६॥
सूर्यवंशोद्भवो राजा गङ्गामत्रानयिष्यति। सा सूर्यकन्यया चात्र कालिन्द्या सङ्गमिष्यते ॥१७॥
यूयं च सर्वे ब्रह्माद्या निवसध्वं मयासह । तीर्थराजेति विख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति ॥१८॥
दानं तपो व्रतं होमो जपपूजादिकाःक्रियाः। अनन्तफलदाःसन्तु मत्सान्निध्यप्रदाःसदा ॥१९॥
ब्रह्महत्यादि पापानि बहुजन्मकृतान्यपि। दर्शनादस्य तीर्थस्य विनाशं यान्तुतत्क्षणात्॥२०॥
देहत्यागं तथा धीराःकुर्वन्ति मम सन्निधौ । मत्तनुं प्रविशन्त्येव पुनर्जन्मनि नो नराः ॥२१॥
पितॄन्निर्दिश्य ये श्राद्धं कुर्वन्त्यत्र समागताः। तेषां पितृगणाः सर्वे यान्तु ते मत्सलोकताम् ॥२२॥
कालोऽप्येष महापुण्य फलदोऽस्तु सदा नृणाम् ।
सूर्ये मकरगे प्रातः स्नायिनां पापनाशनम् ॥२३॥
मकरस्थरवौ माघे प्रातःस्नानं प्रकुर्वताम्। दर्शनादेव पापानि यान्ति सूर्याद्यथा तमः ॥२४॥

तथा गुह्यक भूमि पर दण्डे के समान गिरकर वहाँ पर श्रीभगवान् से प्रार्थना किए ॥११॥ हे देव देव ! आप हमलोगों की प्रार्थना को सुनें । यह हमलोगों के हर्ष का समय है अतएव आप हमलोगों को वरदान दें ॥१२॥ **देवताओं ने कहा—** हे रमापते ! आप की कृपा से यहाँ पर ऋषियों ने नष्ट हुए वेदों को पुनः प्राप्त किया है । और हमलोगों ने यज्ञों के भाग को प्राप्त किया है ॥१३॥ अतएव आप की कृपा से यह स्थान पृथिवी पर श्रेष्ठ, भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला और पुण्य को बढ़ाने वाला बन जाय॥१४॥ यह समय भी अत्यन्त पुण्यमय, ब्रह्मघाती आदि को शुद्ध करने वाला बन जाय तथा दिये हुए दान को अक्षय बनाने वाला बन जाय । यह वरदान आप हमलोगों को दीजिए । **श्रीविष्णु भगवान् ने कहा—** देवताओं आप लोगों ने जो कहा है यह हम को भी अभिप्रेत है । अतएव आपलोग जैसा कहते हैं वैसा ही हो । और इस क्षेत्र की ब्रह्मक्षेत्र के नाम से प्रख्याति हो ॥१५-१६॥ सूर्य वंश में उत्पन्न होने वाला राजा यहाँ पर गङ्गाजी को लायेगा और गङ्गा यहाँ पर यमुना से मिल जायेगी ॥१७॥ ब्रह्मा आदि आप सभी देवता भी यहाँ पर मेरे साथ निवास करें और यह तीर्थ क्षेत्र तीर्थराज के नाम से विख्यात हो ॥१८॥ यहाँ पर किए गये दान, तप, होम, जप तथा पूजा आदि क्रियाएँ अनन्त फल देने वाली बन जायँ और वे मेरा सन्निधान प्रदान करें ॥१९॥ अनेक जन्मों में की गयी ब्रह्महत्या आदि पाप इस तीर्थ के दर्शन मात्र से विनष्ट हो जायँ ॥२०॥ यहाँ पर आकर पितरों के उद्देश्य से जो श्राद्ध करेंगे उन लोगों के पितृगण मेरे लोक को प्राप्त करेंगे॥२१॥ जो ज्ञानी पुरुष मेरे सन्निकट शरीर त्यागेंगे वे मेरे शरीर में प्रवेश कर जायँ॥२२॥

सलोकत्वं सरूपत्वं समीपत्वं त्रयं क्रमात्। नृणां ददाम्यहं स्नानान्माघे मकरगे रवौ ॥२५॥
यूयं मुनीश्वराः सर्वेश्शृणुध्यं वरदोऽस्मि वः। बदरीवनमध्येऽहं सदा तिष्ठामि सर्वगः ॥२६॥
अन्यत्र दशभिर्वर्षैस्तपसाऽऽवाप्यते फलम्। तदत्र दिवसैकेन भवद्भि प्राप्यते सदा ॥२७॥
स्थानस्य दर्शनं तस्य ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः। जीवन्मुक्तास्तदा तेषु पापं नैवावतिष्ठते ॥२८॥

सूत उवाच

एवं देवान्देवदेवस्तदुक्त्या तत्रैवान्तर्धानमामात्सवेधाः ।
देवाः सर्वेऽप्यंशकैस्तत्र तस्थुश्चान्तर्धानं प्रापुरिन्द्रादयस्ते ॥२९॥
इमां च गाथां शृणुयान्नरोत्तमो यः श्रावयेद्वापि विशुद्धचित्तः ।
स तीर्थराजं बदरीवनं यत्कृत्वा फलं मां समवाप्नुयाच्च ॥३०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे शङ्खासुरवधोवेदागमे प्रयागमाहात्म्यं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

मकर राशि के सूर्य होने पर प्रात: स्नान करने वालों के लिए यह काल सदा फलप्रद और पाप नाशक हो ॥२३॥ मकर राशि के सूर्य के होने पर माघ मास में स्नान करने वाले को देखने मात्र से सभी पाप उसी तरह विनष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्य के उदित होते ही अन्धकार विनष्ट हो जाता है ॥२४॥ मैं माघ मास में मकर राशि के सूर्य के होने पर प्रयाग स्नान करने वाले मनुष्यों को क्रमशः सालोक्य, सारूप्य और समीपत्व प्रदान करता हूँ ॥२५॥ हे मुनीश्वरों ! आपलोग सुनें मैं वरदान देने वाला हूँ । मैं बदरिकाश्रम में सदैव रहता हूँ ॥२६॥ दूसरी जगह दश वर्षों तक तपस्या करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति बदरिकाश्रम में एक दिन तपस्या करने से हो जाती है ॥२७॥ जो श्रेष्ठ मानव इस स्थान का दर्शन करते हैं वे उसी समय जीवन्मुक्त हो जाते हैं और उनमें कोई पाप नहीं रह जाता है ॥२८॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से देवताओं को कहकर देवाराध्य श्रीभगवान् ब्रह्माजी के साथ वहीं पर अन्तर्धान हो गये । देवता भी अपने अंशों से ही स्थित हो गये और इन्द्र इत्यादि सभी देवता भी अन्तर्धान हो गये ॥२९॥ जो नरोत्तम अपने विशुद्ध मन से इस कथा को सुनता अथवा सुनाता है वह वदरीवन अथवा तीर्थराज में जाने का फल प्राप्त करता है और मुझको भी प्राप्त कर लेता है ॥३०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के प्रसङ्ग में श्रीकृष्ण सत्यभामा संवादान्तर्गत शङ्खासुर वध, वेदों की प्राप्ति तथा प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक एकानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९१॥

बानबेवाँ अध्याय

पृथुरुवाच

महाफलं त्वया प्रोक्तं मुने कार्तिकमाघयोः ।
तयोः स्नानविधिं सम्यङ् नियमानपि नारद ।
उद्यापनविधिं चैव यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१॥

नारद उवाच

त्वं विष्णोरंशसंजातो नाज्ञातं विद्यते तव। तथापिवदतःसम्यङ् माहात्म्यंशृणु वेनज ॥२॥
आश्विनस्यतुमासस्ययाशुक्लैकादशी भवेत् । कार्त्तिकव्रतनियमं तस्यांकुर्यादतन्द्रितः ॥३॥
रात्र्यां तुर्यंशिशेषायां मुदोत्तिष्ठेत्सदाव्रती। नैर्ऋत्यांसंव्रजेद्वासाद्बहिःसोदकभाजनः ॥४॥
दिवासध्यासु कर्णस्थ ब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः । अन्तर्धाय तृणंभूमौ शिरःप्रावृत्य वाससा ॥५॥
वक्त्रं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनश्वासवर्जितः । कुर्यान्मूत्रपुरीषे च रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥६॥
गृहीतशिश्नश्चोत्थाय गृहीत्वा शुचि मृत्तिकाम् ।
गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः ॥७॥
एका लिङ्गे गुदे पञ्च तथा वामकरे दश । उभयोः सप्त दातव्यास्तथा त्रिस्त्रस्तु पादयोः ॥८॥
एतद्द्वित्रिगुणं प्रोक्तं ब्रह्मचारिवनस्थयोः। यतेश्चतुर्गणं रात्रौ तदर्धं शौचमाचरेत्॥९॥
तदर्धमपि मार्गस्थस्त्रीशूद्राणां तदर्धकम् । शौचकर्मविहीनस्य सकला निष्फलाःक्रियाः॥१०॥
मुखशुद्धिविहीनस्य नो मन्त्राः फलदाः स्मृताः ।
दन्तजिह्वाविशुद्धिं च ततः कुर्यात्प्रयत्नतः ॥११॥

कार्तिक व्रत करने वालों के नियमों का वर्णन

महाराज पृथु ने कहा— हे मुने ! आपने कार्तिक तथा माघ इन दोनों महीनों के महान् फल का वर्णन किया । हे नारदजी ! अब आप उन दोनों मासों में स्नान की विधि, नियम तथा उद्यापन आदि विधियों का यथावत् वर्णन करें ॥१॥ **नारदजी ने कहा—** हे वेनकुमार ! आप तो भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न है, आपको कुछ भी अज्ञात नहीं है, फिर भी मैं कहता हूँ आप सुनें ॥२॥ अश्विन मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी जिस दिन हो उसी दिन से कार्तिक व्रत के नियम को करना चाहिए ॥३॥ रात्रि का जब चतुर्थ भाग बच जाय उस समय अपने निवास स्थान से नैर्ऋत्य दिशा में पात्र में जल लेकर जाय॥४॥ दिन में अथवा संध्याकालों में कान पर यज्ञोपवीत चढ़ाकर उत्तराभिमुख होकर भूमि पर तृण रखकर और शिर को वस्त्र से ढँककर ॥५॥ न थूके और न श्वास ले, मुँह बन्द रखे और मल-मूल त्याग करे और रात्रि में दक्षिणाभिमुख होकर मल-मूत्र त्याग करे ॥६॥ वह लिङ्ग पकड़कर खड़ा हो और पवित्र मिट्टी लेकर सावधानी पूर्वक हाथों में मिट्टी लगाये, जिससे कि दुर्गन्ध न रहे ॥७॥ लिङ्ग में एक बार, मल स्थान में पाँच बार, बायें हाथ में दश बार तथा दोनों हाथ में सात बार मिट्टी लगाये और दोनों पैरों में तीन बार मिट्टी लगायें ॥८॥ ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी को इसके दो गुना मिट्टी लगाना चाहिए । और संन्यासी को चार गुना मिट्टी लगाये । रात्रि में इसके आधा शौच करे ॥९॥ मार्ग में इसके भी आधा शौच करे और

आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनि च। ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते॥१२॥
इति मन्त्रं समुच्चार्य द्वादशङ्गुलकं सदा। समिधाक्षीरवृक्षस्य क्षयाहोपोषंविना॥१३॥
प्रतिपद्दर्शनवमी षष्ठीश्चार्कदिनं विना। चन्द्रसूर्योपरागे च न कुर्याद्दन्तधावनम्॥१४॥
कण्टकीवृक्षकार्पासनिर्गुण्डीब्रह्मवृक्षजम् । बिल्वैरण्डविगन्ध्याढ्यं वर्जयेद्दन्तधावनम् ॥१५॥
ततो विष्णोः शिवस्यापि गृहं गच्छेत्प्रसन्नधीः ।
गन्धपुष्पसुताम्बूलान्गृहीत्वा भक्तितत्परः ॥१६॥
तत्र देवस्य पाद्यार्घाद्युपचारान्पृथक्पृथक्। कृत्वास्तुत्वा पुनर्नत्वा कुर्याद्गीतादिमङ्गलम् ॥१७॥
तालवेणुमृदङ्गादि ध्वनियुक्तान्सनृत्तकान् । पुष्पैर्गन्धैःसताम्बूलैर्गायनानपि चार्चयेत् ॥१८॥
देवालये गानपरा यतस्ते विष्णुमूर्त्तयः। तपांसि यज्ञदानानि कृतानि च जगद्गुरोः ॥१९॥
तुष्टिदानि कलौ नित्यं भक्तया देवस्य सत्पतेः ।
क्व त्वं वससि देवेश ! मया पृष्टस्तु पार्थिव ! ॥२०॥
विष्णुरेवं तदा प्राह मद्भक्तिपरितोषितः ॥२१॥

विष्णुरुवाच

नाहं वसामि वैकुण्ठेःयोगिनां हृदयेन च। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद !॥२२॥
सत्पुराणकथां श्रुत्वा मद्भक्तानां च गायनम् ।
नेच्छन्ति ये नरा मूढा मद् द्वेष्यास्ते भवन्ति हि ॥२३॥
तेषां पूजादिकं गन्धपुष्पादिक्रियते नरैः। तेन प्रीतितथा यामि न तथा मत्प्रपूजनात्॥२४॥

स्त्रियों तथा शूद्रों को उसके भी आधा शौच करना चाहिए । शौच कर्म नहीं करने वाले की सारी क्रियाएँ निष्फल होती हैं ॥१०॥ जो मुख की शुद्धि नहीं करता है उसके मन्त्र फल नहीं देते हैं । अतएव सावधानी पूर्वक दाँतों तथा जीभ की शुद्धि करनी चाहिए ॥११॥ हे वनस्पते ! आप मुझे आयु, बल, यश, कान्ति, प्रजा, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान तथा मेधा प्रदान करें ॥१२॥ इस मन्त्र को पढ़कर दूध वाले वृक्ष के बारह अङ्गुली की दतौन करे किन्तु क्षयाह्न और उपवास के दिन दतौन न करे ॥१३॥ प्रतिपद् अमावस्या, नवमी, षष्ठी, रविवार, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के दिन भी दतौन न करे ॥१४॥ कटीला वृक्ष, कपास, निगुण्डी, ब्रह्मवृक्ष (पलाश) बिल्व, रेण, दुर्गन्धि युक्त वृक्ष का दतौन न करे ॥१५॥ उसके बाद प्रसन्न मन से शिवजी अथवा भगवान् विष्णु के मन्दिर में जाय, गन्ध (चन्दन) पुष्प और ताम्बूल को भक्ति पूर्वक लेकर ॥१६॥ वहाँ पर विद्यमान देवता के अलग-अलग पाद्य तथा अर्घ्य आदि उपचारों को समर्पित करके तथा उनकी स्तुति करके फिर प्रणाम करके गीत आदि मङ्गल कार्यों को करें ॥१७॥ ताल, वेणु, मृदङ्ग आदि की ध्वनि करते हुए नृत्य करने वाले तथा गाने वालों की चन्दन, पुष्प तथा ताम्बूल से पूजा करें ॥१८॥ क्योंकि मन्दिर में गीत गाने वाले विष्णु स्वरूप होते हैं । तपस्या, मन्त्र, जप, यज्ञ तथा दान करना कलियुग में श्रीभगवान् को प्रसन्न करने वाले होते हैं । हे राजन् ! मैंने जब पूछा कि हे देवेश ! आप कहाँ रहते हैं तो मेरी भक्ति से सन्तुष्ट होकर श्रीभगवान् ने कहा ॥१९-२१॥ **भगवान् विष्णु ने कहा**— मैं वैकुण्ठ या योगियों के हृदय में नहीं अपितु जहाँ मेरे भक्त गायन करते हैं वहीं रहता हूँ ॥२२॥ सात्त्विक पुराणों की कथा सुनकर जो लोग मेरे भक्तों के गायन को नहीं सुनना चाहते हैं वे मूर्ख मेरे द्वेष के पात्र हो जाते

नारद उवाच

शिरीषोन्मत्तगिरिजामल्लिकाशाल्मलीभवैः । अर्कजैः कर्णिकारैश्च विष्णुर्नार्च्यस्तथाऽक्षतै ॥२५॥
जपाकुन्दशिरीषैश्च यूथिकामालतीभवैः। केतकीभवपुष्पैश्च नैवार्च्यः शङ्करस्तथा ॥२६॥
गणेशं तुलसीपत्रैर्दुर्गां नैव च दूर्वया। मुनिपुष्पैस्तथा सूर्यं लक्ष्मीकामो न चार्चयेत् ॥२७॥
सुगन्धीनि प्रशस्तानि पूजायां सर्वदैव तु । एवं पूजाविधिं कृत्वा देवदेवं क्षमापयेत् ॥२८॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर । यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२९॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च । पुनः क्षमापयेद्देवं गायनाद्यं क्षमापयेत् ॥३०॥

विष्णोः शिवरूपि च पूजनादिकं कुर्वन्ति सम्यङ् निशि कार्तिके ये ।
निर्धूतपापाः सह पूर्वजैस्ते प्रयान्ति विष्णोर्भवनं मनुष्याः ॥३१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामसंवादे नियमवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

हैं।।२३।। उन लोगों की जो लोग चन्दन पुष्पों से पूजा करते हैं उनसे जितनी मुझे प्रसन्नता होती है उतनी प्रसन्नता अपनी पूजा से नहीं होती है ॥२४॥ **नारदजी ने कहा—** शिरीष, धतूर, पर्वतीय मालती, सेमर, अकौन और कर्णिकार (कनैल) के पुष्पों से भगवान् विष्णु की पूजा नहीं करनी चाहिए ॥२५॥ और, जपा कुन्द, शिरीष, जूही, मालती और केवड़ा के फूल से शिवजी की पूजा करनी चाहिए ॥२६॥ लक्ष्मी चाहने वाले को गणेशजी की पूजा तुलसी दल से दुर्गाजी की पूजा दूबसे और सूर्य की पूजा अगस्त्य पुष्प से नहीं करनी चाहिए ॥२७॥ पूजा में प्रशस्त और सुगन्धित पुष्पों का ही प्रयोग करें । इस तरह से पूजा विधि करके श्रीभगवान् से क्षमा प्रार्थना करे ॥२८॥ हे सुरेश्वर ! हे देव ! जो मैंने, मन्त्र, क्रिया तथा भक्ति से हीन पूजा की है वह आपकी कृपा से पूर्ण हो जाय ॥२९॥ उसके बाद प्रदक्षिणा करके तथा साष्टाङ्ग प्रणाम करें फिर श्रीभगवान् से क्षमा माँगकर आदि के लिए क्षमा प्रार्थना करें ॥३०॥ इस तरह कार्तिक में रात्रि में जो लोग भगवान् विष्णु अथवा शिवजी की पूजा आदि करते हैं वे मनुष्य पाप रहित होकर अपने पूर्वजों के साथ विष्णु लोक में जाते हैं ॥३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहाम्त्यान्तर्गत श्रीकृष्णसत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में नियम वर्णन नामक बानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९२।।

तिरनबेवाँ अध्याय

नारद उवाच

नाडीद्वयावशिष्टायां रात्रौ गच्छेज्जलाशयम्। तिलगन्धाक्षतैः पुष्पैर्दीपाद्यैः सहितः शुचिः॥१॥
मानुषे देवखाते च नद्यां नद्योश्च सङ्गमे। क्रमाद्दशगुणं स्नानं तीर्थेऽनन्तफलं स्मृतम्॥२॥
विष्णुं स्मृत्वा ततः कुर्यात्सङ्कल्पं सवनस्य तु।
तीर्थादि देवतादिभ्यः क्रमादर्घादि दापयेत्॥३॥
ओं नमः कमलनाभायनमस्ते जलशायिने। नमस्तेऽस्तु हृषीकेशगृहाणार्घ्यं नमोऽस्तुते॥४॥
वैकुण्ठे च प्रयागे च तथाबदरिकाश्रमे। यतोविष्णुर्विचक्रमेत्रेधा स निदधेपदम्॥५॥
अतो देवा मामवन्तु यतोविष्णुर्विचक्रमे। तैरेव सहितैः सर्वैर्मुनिदेवसमन्वितैः॥६॥
कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातः स्नानं सुरोत्तम।
प्रीत्यर्थं देवदेवेश दामोदर त्वया सह॥७॥
ध्यात्वाऽहं त्वां च देवेश! जलेऽस्मिन्स्नातुमुद्यतः।
तव प्रसादात्पापं मे दामोदर! विनश्यतु॥८॥

अर्घ्यमन्त्रौ

नित्ये नैमित्तिके कृष्णे कार्त्तिके पापनाशने। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे॥९॥
व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तंराधया सहितोहरे॥१०॥
स्मृत्वा भागीरथीं विष्णुं शिवं सूर्यं जले विशेत्।
नाभिमात्रे जले तिष्ठन्व्रती स्नायाद्यथाविधि॥११॥

कार्तिक स्नान और अर्घ्य आदि का वर्णन

नारदजी ने कहा— जब रात्रि दो घड़ी बच जाय तब तिल, चन्दन, अक्षत, पुष्प दीप इत्यादि लेकर जलाशय पर जाय मनुष्य निर्मित, देवता निर्मित जलाशय, नदी, दो नदियों के सङ्गम इन सबों में क्रमशः उत्तरोत्तर दशगुना पुण्य होता है॥१-२॥ पहले स्नान करके सवन का सङ्कल्प करे फिर क्रमशः तीर्थ आदि देवताओं को अर्घ प्रदान करे॥३॥ ओम् कमलनाभ भगवान् को नमस्कार है, जलशायी भगवान् को नमस्कार है। हे हृषीकेश! आपको नमस्कार है। आप अर्घ्य स्वीकार करें॥४॥ चूकि वैकुण्ठ, प्रयाग, वदरिकाश्रम में भ्रमण करते हुए अपना पदन्यास किया॥४॥ अतएव देवगण मेरी रक्षा करे। उन्हीं सभी देवताओं और मुनीश्वरों के साथ भगवान् विष्णु ने भ्रमण किया॥५-६॥ हे सुरोत्तम! देवदेवेश, दामोदर आप में मैं कार्तिक में प्रातः स्नान करूँगा॥७॥ हे देवेश! मैं आपका ध्यान करके इस जल में स्नान करने के लिए उद्यत हूँ। हे दामोदर आपकी कृपा से मेरा पाप विनष्ट हो जाय॥८॥ **अर्घ्य के दो मन्त्र निम्नांकित हैं—** हे कृष्ण! हे हरे!! श्रीराधाजी के साथ आप पाप विनाशक कार्तिक में मेरे द्वारा प्रदत अर्घ्य को स्वीकार करें। व्रती मैंने विधि पूर्वक कार्तिक मास में स्नान किया है, हे हरे! राधाजी के साथ आप मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ्य को स्वीकार करें॥९-१०॥ इसके बाद गङ्गा, विष्णु भगवान्, शिवजी तथा सूर्य

तिलामलकचूर्णेन गृही स्नानं समाचरेत्। वनस्थानां यतीनां च तुलसीमूलमृत्तिका ॥१२॥
सप्तमीदर्शनवमीद्वितीयादशमीषु च । त्रयोदश्यां च न स्नायाद्धात्रीफलतिलेः सह ॥१३॥
आदौ कुर्यान्मलस्नानं मन्त्रस्नानं ततःपरम् । स्त्रीशूद्राणांन वेदोक्तैर्मन्त्रैस्तेषां पुराणजैः ॥१४॥

स्नानमन्त्राः

त्रिधाभूद्देवकार्याय यः पुरा भक्तिभावतः । स विष्णुः सर्वपापघ्नः पुनातु कृपयात्रमाम् ॥१५॥
विष्णोराज्ञामनुप्राप्यकार्तिकव्रतकारणात् । रक्षन्त देवास्ते सर्वेमांपुनन्तु सदैव ते॥१६॥
वेदमन्त्राः सबीजास्तुसरहस्थाःसवीर्यकाः । कश्यपाद्याश्च मुनयो मां पुनन्तु सदैव ते ॥१७॥

गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदा नदाः ।
ससप्तसागराः सर्वे मां पुनन्तु जलाशयाः ॥१८॥
पतिव्रतास्त्वदित्याद्या यक्षाः सिद्धाः सपन्नगाः ।
ओषध्यः पर्वताश्चाशु मां पुनन्तु त्रिलोकजाः ॥१९॥

एभिः स्नात्वाव्रती मन्त्रैहस्तन्यस्तपवित्रकः । देवर्षीन्मानवान्पितृंस्तर्पयेच्च यथाविधि ॥२०॥
यावन्तः कार्त्तिके मासि वर्तन्ते पितृतर्पणे । तिलास्तत्सङ्ख्यकाब्दानि पितरः स्वर्गवासिनः ॥२१॥
ततो जलाद्विनिष्क्रम्य शुचिवस्त्रावृतो व्रती। प्रातःकालोदितं कर्म समाप्यार्चेद्धरिंपुनः॥२२॥
तीर्थादिदेवान्संस्मृत्य पुनरर्चां प्रदापयेत्। गन्धपुष्पफलैर्युक्तो भक्तितत्परमानसः॥२३॥

अर्घ्यमन्त्रः

व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दनुजेन्द्रनिषूदन ॥२४॥

का स्मरण करके जल में प्रवेश करे । नाभिमात्र जल में खड़ा होकर व्रती को विधि पूर्वक स्नान करना चाहिए ॥११॥ गृहस्थ को तिल तथा आँवले के चूर्ण से स्नान करना चाहिए । वानप्रस्थी और संन्यासी को मिट्टी लगाकर स्नान करना चाहिए ॥१२॥ सप्तमी, आमावस्या, दशमी, द्वितीया और नवमी को तथा त्रयोदशी को आँवले से स्नान नहीं करना चाहिए ॥१३॥ पहले मल स्नान करे, उसके बाद मन्त्र से स्नान करना चाहिए स्त्रियों तथा शूद्रों को वैदिक मन्त्रों से नहीं पौराणिक मन्त्रों से स्नान करना चाहिए ॥१४॥ **स्नान के मन्त्र—** देवताओं की भक्ति भावना के कारण देवताओं का कार्य करने के लिए जो भगवान् विष्णु तीन प्रकार के हो गये वे सभी पापों को विनष्ट करने वाले विष्णु भगवान् कृपा पूर्वक मेरी यहाँ रक्षा करें॥१५॥ कार्तिक व्रत करने के कारण भगवान् विष्णु की आज्ञा प्राप्त करके वे सभी देवता मेरी रक्षा करें और पवित्र बनायें ॥१६॥ बीज, रहस्य और पराक्रम से युक्त वेदों के मन्त्र तथा कश्यप आदि मुनिगण मुझे सदा पवित्र करें ॥१७॥ गङ्गा आदि नदियाँ सभी तीर्थ, जल देने वाले नदी सातों सागरों के साथ सभी जलाशय मुझे सदा पवित्र करें ॥१८॥ सभी पतिव्रताएँ, आदित्य देवता, यक्ष, सिद्ध, पन्नग, सभी ओषधियाँ तथा सभी पर्वत जो त्रैलोक्य में हैं वे मुझे पवित्र करें ॥१९॥ व्रती को चाहिए कि वह इन मन्त्रों से स्नान करके हाथ में पवित्री धारण करें और विधि पूर्वक देवताओं, ऋषियों और पितरों का तर्पण करें ॥२०॥ कार्तिक मास में तर्पण करने से जितने तिलों का प्रयोग होता है उतने वर्ष तक व्रती के पितृगण स्वर्ग में निवास करते हैं ॥२१॥ उसके बाद जल से निकलकर व्रती पवित्र वस्त्र धारण करे फिर प्रातः कालिक क्रियायों को करके श्रीहरि की पूजा करे ॥२२॥ फिर तीर्थ आदि देवता का स्मरण करके उनकी पूजा चन्दन, पुष्प तथा फलों से भक्ति पूर्वक पूजा करे ॥२३॥ **अर्घ्य के मन्त्र—** कार्तिक मास में विधि पूर्वक

ततश्च ब्राह्मणान्भक्तया भोजयेद्वेदपारगान्। गन्धपुष्पैः सताम्बूलैः प्रणमेच्च पुनः पुनः ॥२५॥
तीर्थानि दक्षिणे पादे वेदाश्च मुखमाश्रिताः। सर्वाङ्गे संस्थिता देवाः पूजिताः स्युर्द्विजार्चनात्॥२६॥
अव्यक्तरूपिणो विष्णोः स्वरूपं ब्राह्मणा भुवि ।
नावमान्या नो विरोध्याः कदाचिच्छुभमिच्छता ॥२७॥
तां वै हरिप्रियां देवि तुलसीमर्चयेद्व्रती। प्रयागस्नानयुक्तानां काश्यां प्राणविमोक्षणे ॥२८॥
यत्फलंविहितं वेदैस्तुलसीपूजनेन तत्। युक्तो यदि सदा पापैः सुकृतं नार्जितं क्वचित्॥२९॥
तथापि गीयते मोक्षतुलसी पूजिता यदि। प्रदक्षिणांनमस्कारान्कुर्यादिकाग्रमानसः ॥३०॥
देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चिताऽसि मुनीश्वरैः। नमो नमस्ते तुलसि ! पापं हर हरिप्रिये ! ॥३१॥
ततो विष्णुकथां श्रुत्वा पौराणीं स्निग्धमानसः ।
तं ब्राह्मणां मुनिं विप्रं पूजयेद्भक्तिमान्व्रती ॥३२॥
एवं पूर्णविधिं सम्यक्पूर्वोक्तं भक्तिमान्नरः ।
करोति यः स लभते नारायणसलोकताम् ॥३३॥
रोगापहं पापविनाशकृत्परं सद्बुद्धिदं पुत्रधनादिसाधनम् ।
मुक्तेर्निदानं न हि कार्त्तिकव्रताद्विष्णुप्रियादन्यदिहास्ति भूतले ॥३४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायांषष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये
श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे स्नानविधिवर्णनंनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

स्नान करने वाले मुझ व्रती के द्वारा दिये गये अर्घ्य को हे दनुजेन्द्र ! विनाशक आप स्वीकार करें ॥२४॥ उसके बाद वेदपारङ्गत ब्राह्मणों को भोजन कराये और चन्दन, पुष्प तथा ताम्बूल के साथ उनका बार-बार प्रणाम करे ॥२५॥ जिनके दाहिने चरण में सभी तीर्थों का निवास है और मुख में वेदों का निवास है तथा जिनके सभी अङ्गों में देवता रहते हैं, ये सब ब्राह्मण पूजन से पूजित हो जाये ॥२६॥ पृथिवी पर रहने वाले ब्राह्मण अव्यक्त रूपधारी विष्णु स्वरूप हैं । कल्याण चाहने वाले को इनसे न तो विरोध करना चाहिये और न इनका अपमान करना चाहिए ॥२७॥ श्रीहरि की प्रिया तुलसी की अर्चना व्रती को करना चाहिए। प्रयाग में स्नान करने वाले तथा काशी में प्राण त्यागने वालों को जो फल मिलता है वही फल वेदों ने तुलसी पूजन का बतलाया है । यदि सदा पाप करने वाले किसी पापी ने पुण्य किया ही नहीं है ॥२८-२९॥ फिर भी तुलसी की पूजा करने से उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है यह वेद बतलाता है । तुलसी की प्रदक्षिणा और नमस्कार एकाग्रमना होकर करना चाहिए और प्रार्थना करे प्राचीन काल में देवताओं ने आपका निर्माण किया और मुनीश्वरों ने आपकी पूजा की । हे तुलसी ! आपको बार-बार नमस्कार है । आप मेरे पापों को दूर करें ॥३०-३१॥ उसके बाद शान्तमन से पुराणों की कथा सुनकर व्रती को चाहिये कि उन ब्राह्मण मुनि की पूजा करें ॥३२॥ भक्तिमान पुरुष इस तरह से पूर्वोक्त पूर्ण विधि से करता है वह भगवान् नारायण के लोक में जाता है ॥३३॥ भगवान् विष्णु को प्रिय कार्तिक व्रत से बढ़कर कोई दूसरा साधन नहीं है ॥३४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में स्नान विधि वर्णन नामक तिरानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९३॥

चौरानबेवाँ अध्याय

नारद उवाच

कार्तिकव्रतिनां पुंसां नियमा ये प्रकीर्तिताः। ताञ्छृणुष्वमयाराजन्कथ्यमानान्समन्ततः ॥१॥
अन्नदानं गवां ग्रासो वैष्णवैः सह संकथा। बोधनात्परदीपस्य धर्ममाहुर्मनीषिणः ॥२॥
परान्नं परशय्याञ्च परवादं पराङ्गनाम् । सदा च वर्जयेत्प्राज्ञो विशेषेण तु कार्त्तिके ॥३॥
सर्वांमिषाणि मांसानि क्षौद्रं सौवीरकं तथा ।
राजमाषादिकं चापि नैवाद्यात्कार्त्तिकव्रती ॥४॥
द्विलं तिलैतैलंचतथान्नमश्रुदूषितम् । भावदुष्टं शब्ददुष्टं वर्जयेत्कार्तिकव्रती ॥५॥
परान्नञ्च परद्रोहं परदारागमं तथा। तीर्थे प्रतिग्रहं नापिगृह्णीयात्कार्त्तिकव्रती ॥६॥
देवदेवद्विजानां च गुरोश्च व्रतिनस्तथा । स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ॥७॥
प्राण्यङ्गमामिषं चूर्णं फले जम्बीरमामिषम् । धान्ये मसूरिकाप्रोक्ता चान्नंपर्युषितं तथा ॥८॥
अजागोमहिषीक्षीरादन्यदुग्धादिचाभिषम् । द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा ॥९॥
ताम्रपात्रस्थितं गव्यं जलं पल्वजसंस्थितम् । आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः ॥१०॥
ब्रह्मचर्यमधः सुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ।
चतुर्थकाले भुञ्जीत कुर्यादेवं सदाव्रती ॥११॥
नरकस्य चतुर्दश्यां तैलाभ्यङ्गं च कारयेत् । अन्यत्र कार्त्तिकस्नायी तैलाभ्यङ्गंनकारयेत् ॥१२॥
पलाण्डुं लशुनं शिग्रुं छत्राकं गृञ्जनं तथा । नालिकां मूलकं हिङ्गुवर्जयेत्कार्त्तिकव्रती॥१३॥

कार्तिक मास में अनुष्ठेय नियमों का वर्णन

नारदजी ने कहा— कार्तिक मास में व्रत करने वालों के लिए जो नियम बतलाये गये हैं हे राजन्! उन्हें मैं बतलाता हूँ आप सुनें ॥१॥ अन्न दान करना, गौओं को ग्रास प्रदान करना, वैष्णवों के साथ कथा सुनना, परमात्मा को दीप देना इन सभी धर्मों को मनीषियों ने बतलाया है ॥२॥ कार्तिक में परान्न न खाय, दूसरे की शय्या पर न सोयें, दूसरे की निन्दा न करे और पर स्त्री का सेवन कभी न करें विशेष कर कार्तिक में तो नहीं ही ॥३॥ कार्तिक व्रती सभी प्रकार के मांसो, मध, यव वीरक और काली उड़द आदि नहीं ही खाये ॥४॥ दाल, तिल का तेल, जिसमें आँसू गिर पड़ा है ऐसे दूषित अन्न, भावदुष्ट और शब्द दुष्ट अन्न का भी कार्तिक व्रत त्याग करे ॥५॥ कार्तिक व्रती परान्न, पर द्रोह पर स्त्री सेवन तथा तीर्थ में दान कभी न ले ॥६॥ कार्तिक व्रती देवता, ब्राह्मण, गुरु तथा व्रती एवं स्त्री राजा और महापुरुषों की निन्दा का त्याग करे । प्राणियों के अङ्ग का मास, चूर्ण, जाम्बीर फल तथा अन्नों में मसूर, वासी अन्न, अजा, गौ, तथा भैंस के दुग्ध से भिन्न का दुग्ध आदि मांस है । ब्राह्मण से खरीदे गये रस तथा भूमि से उत्पन्न लवण (ऊषर) ताम्बे के पात्र में रखा गब्य, बाबली का जल तथा अपने खाने के लिए पकाये गये अन्न को विद्वानों ने आमिष (मांस) कहा है ॥७-१०॥ ब्रह्मचर्य का पालन, भूमि पर शयन, पतल में भोजन तथा चौथे प्रहर में भोजन ये सब व्रती को सदैव करना चाहिए ॥११॥ कार्तिक व्रती को छोड़कर ही नरक चतुर्दशी को तेल लगाना चाहिये व्रती को तेल नहीं लगाना चाहिए ॥१२॥ लहसुन, प्याज, शिगु, कुकुरमुत्ता, गृंजन, नालिका

अलाबुं चापि वृन्ताकं कृष्माण्डं बृहतीफलम् ।
श्लेष्मातकं कपित्थं च वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ॥१४॥
रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैः सह । द्विजातिवेदबाह्यैश्च न वदेत्कार्त्तिकव्रती ॥१५॥
श्वभिर्दुष्टं च काकैश्च सूतकान्नंचवर्जयेत् । द्विष्पाचितं च दग्धान्नंवर्जयेत्कात्तिकव्रती ॥१६॥
तैलाभ्यङ्गं तथा शय्यां परान्नं कांस्यभोजनम् ।
कार्तिकेवर्जयेद्यस्तु परिपूर्णव्रतीभवेत् ॥१७॥
एतानिवर्जयेन्नित्यं व्रती सर्वव्रतेष्वपि । कृच्छ्राद्यं चापि कुर्वीत स्वशक्तयोविष्णुतुष्टये ॥१८॥
क्रमात्कूष्माण्डवृन्ताकबृहतीमूलकं तथा । श्रीफलं च कलिङ्गं च फलं धात्रीभवंतथा ॥१९॥
नारिकेरं महालाबुं पटोलं बदरीफलम् । चर्मवैकतकं चापि बिसं वै कट्फलं तथा ॥२०॥
शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात्प्रतिपदादिषु । धात्रीफलं रवौ तद्वद्वर्जयेत्सर्वदा गृही ॥२१॥
एभ्योऽपि वर्जयेत्किंचिद्यद्विष्णुप्रीतये नरः । तत्पुनर्ब्राह्मणे दत्त्वा भक्षयेत्सर्वदैव हि ॥२२॥
एवमेव हि माघेऽपि कुर्याद्वै नियमान्व्रती । हरिजागरणं तत्र विधिप्रोक्तं च कारयेत् ॥२३॥
यथोक्तकारिणं दृष्ट्वा कार्त्तिकव्रतिनं नरम् । यमदूताः पलायन्ते गजाः सिहार्दिता यथा ॥२४॥
वरं विष्णुव्रतं ह्येतदथ यज्ञशताधिकम् । यज्ञकृत्प्राप्नुयात्स्वर्गं वैकुण्ठं कार्त्तिकव्रती ॥२५॥
भुक्तिमुक्तिप्रदानीय यानि क्षेत्राणि भूतले । वसन्ति तानि तद्गेहे कार्त्तिकव्रतकारिणः ॥२६॥
दुःस्वप्नं दुष्कृतं किंचिन्मनोवाक्वायकर्मजम् ।
कार्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥२७॥

(कमलदण्ड) मूली तथा हिङ्ग को कार्तिक व्रती त्याग दें ॥१३॥ गोल लौकी, वैंगन, कोंहडा, बृहती फल, बहेड़ा और कैंथ को व्रती त्याग दें ॥१४॥ रजस्वला, शूद्र, म्लेच्छ, पतित, व्रात तथा वेद वाह्य ब्राह्मण से व्रती बातें न करे ॥१५॥ कुत्तों से स्पृष्ट, कौओं से तथा सूतकों के अन्न को न खाये । कार्तिक व्रती दो बार पकाये गये तथा दग्ध अन्न का परित्याग करे ॥१६॥ जो, तेल लगाना, शय्या, परान्न, कांसे के पात्र में भोजन का परित्याग करता है, वही परिपूर्ण व्रती है ॥१७॥ व्रती को सभी व्रतों में इन वस्तुओं का परित्याग कर देना चाहिए । भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए अपनी शक्ति के अनुसार कृछ्र आदि को करना चाहिए ॥१८॥ क्रमशः कोंहड़ा, वैगन, बृहती फल, मूली, श्रीफल, कलिङ्ग, आँवला, नारियल, लम्बी लौकी, परवल, वैर, चमैर्वकतक, कट्फल, इन शाकों को उक्त तिथियों के क्रम से त्याग देना चाहिए । गृहस्थ को रविवार के दिन कभी भी आँवला नहीं खाना चाहिए ॥१९-२१॥ भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए इनमें जिन वस्तुओं का त्याग करे उन सबों को ब्राह्मण को दान देकर खाना प्रारम्भ करे॥२२॥ व्रती को माघ में भी इसी तरह नियमों का पालन करना चाहिए और विधि के अनुसार हरि जागरण भी करायें ॥२३॥ नियमानुसार कार्तिक व्रत करने वाले मनुष्य को देखकर यमदूत उसी तरह पलायन कर जाते हैं जैसे सिंह से डरे हुए हाथी । यह विष्णुव्रत सैकड़ों यज्ञों से भी श्रेष्ठ है । यज्ञ करने वाला स्वर्ग प्राप्त करता है और व्रती वैकुण्ठ प्राप्त करता है ॥२४-२५॥ पृथिवी पर भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले जितने भी तीर्थ क्षेत्र हैं वे सबके सब कार्तिक व्रत करने वाले के गृह में निवास करते हैं ॥२६॥ दुःस्वप्न तथा मन, वाणी और कर्म से किए गये सभी पाप कार्तिक व्रत करने वाले को देखकर उसी क्षण विनष्ट हो जाते

कार्त्तिकव्रतिनः पुंसो विष्णुवाक्यप्रणोदिताः ।
रक्षां कुर्वन्ति शक्राद्या राज्ञो वै किङ्करा यथा ॥२८॥
विष्णुव्रतकरा नित्यं यत्र तिष्ठन्ति पूजिताः। ग्रहभूतपिशाचाद्या नैव तिष्ठन्ति तत्र वै ॥२९॥
कार्त्तिकव्रतिनः पुण्यं यथोक्तव्रतकारिणः । न समर्थो भवेद्वक्तुं ब्रह्माऽपीह चतुर्मुखः ॥३०॥
विष्णुप्रियं सकलकल्मषनाशनं च सर्वत्र पुत्रधनधान्यसमृद्धिकारि ।
ऊर्जे व्रतं सनियमं कुरुते मनुष्यः किं तस्य तीर्थपरिशीलनसेवाय च ॥३१॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे नियमवर्णनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

पंचनाबेवाँ अध्याय

नारद उवाच

अथौर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं नृप। तच्छृणुष्व मयाख्यातं किंविधानं समासतः ॥१॥
ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती। व्रतसंपूर्णतार्थाय विष्णुपीत्यर्थमेव च ॥२॥
तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां शुभम्। सुतोरणां चतुर्द्वारां पुष्पचामरशोभिताम्॥३॥
द्वारेषु द्वारपालांश्च पूजयेन्मृण्मयान्पृथक्। पुण्यशीलं सुशीलं च जयं विजयमेव च॥४॥

हैं ॥२७॥ कार्तिक व्रत करने वाले पुरुष की भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित होकर इन्द्र आदि उसी तरह रक्षा करते हैं जैसे किसी राजा की रक्षा उसके नौकर करते हैं ॥२८॥ जहाँ पर भगवान् विष्णु का व्रत करने वाले लोगों की पूजा की जाती है वहाँ पर ग्रह, भूत और पिशाच आदि नहीं रहते हैं ॥२९॥ विधि पूर्वक पवित्र कार्तिक व्रत करने वाले को बोलने में ब्रह्मा भी नहीं बोल सकते हैं ॥३०॥ कार्तिक मास में नियम पूर्वक जो मनुष्य भगवान् विष्णु के प्रिय, सारे पापों के विनाशक तथा पुत्र, धन धान्य की समृद्धि करने वाले व्रत करते हैं उसको तीर्थो के परिशीलन और सेवा करने से कोई लाभ नहीं है ॥३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्यान्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में नियम वर्णन नामक चौरानबेंवे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआर ।।९४।।

कार्तिक व्रत के उद्यापन की विधि का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे राजन् ! कार्तिक व्रत के उद्यापन विधि को मैं बतला रहा हूँ उसे आप सुनें॥१॥ कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी के दिन व्रत की सम्पूर्णता और भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए उद्यापन करना चाहिए ॥२॥ तुलसी के ऊपर सुन्दर छोटा मण्डप बनाये । उसके चार द्वार, सुन्दर तोरण और पुष्प एवं चामर से सुशोभित होना चाहिए ॥३॥ उसके द्वारों पर मिट्टी के बने पुण्यशील, सुशील,

तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमालिखेत्। चतुर्भिर्वर्णकैः सम्यक्छोभाढ्यं समलंकृतम्॥५॥
तस्योपरिष्टात्सपिधानं पञ्चरत्नसमन्वितम्। महाफलेन संयुक्तं कुम्भं तत्र निधाय च ॥६॥
पूजयेत्तत्र देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम्। कौशेयपीतवसनं युक्तं जलधिकन्यया॥७॥
इन्द्रादिलोकपालांश्च पूजयेन्मण्डले व्रती। द्वादश्यां प्रतिबुद्धः स त्रयोदश्यां यतः सुरैः ॥८॥
दृष्टोऽर्चितश्चतुर्दश्यां तस्मात्पूज्यस्तथाधिकम् ।
तस्यामुपवसेद्भक्तया शान्तः प्रयतमानसः ॥९॥
पूजयेद्देवदेवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया। उपचारैःषोडशभिर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥१०॥
रात्रौ जागरणं कुर्याद् गीतवाद्यादिमङ्गलैः। गीतं कुर्वन्ति ये भक्तया जागरे चक्रपाणिनः ॥११॥
जन्मान्तरशतोद्भूतैस्ते मुक्ताः पापसंचयैः। जागरे वासरे विष्णोर्गीतं नृत्यं च कुर्वताम् ॥१२॥
गोसहस्रं च ददतां तत्फलं ससुदाहृतम्। गीतनृत्यादिकं कुर्वन्दर्शयेत्कौतुकानि च॥१३॥
पुरतो वासुदेवस्य रात्रौ च हरिजागरे। पठन्विष्णुचरित्राणि यो रञ्जयति वैष्णवान् ॥१४॥
मुखेन कुरुते वाद्यं स्वेच्छालापांश्चदर्शयन्। भावैरेतैर्नरो यस्तु कुरुते हरिजागरम्॥१५॥
दिने दिने तस्य पुण्यं तीर्थकोटिसमं स्मृतम् ।
ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान्द्विजोत्तमान् ॥१६॥
त्रिंशन्मितानकेकान्वा स्वशक्तया वा निमन्त्रयेत् ।
वरान्दत्त्वा यतो विष्णु मत्स्यरूप्यभवत्तदा ॥१७॥
तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षयफलं स्मृतम्। अतस्तान्भोजयेद्विप्रान्पायसान्नदिना व्रती॥१८॥

जय तथा विजय इन चारों द्वारपालों की पूजा अलग-अलग करे ॥४॥ तुलसी के मूल में चार रङ्गों से सुशोभित तथा अलंकृत सर्वतोभद्र बनाये ॥५॥ उसके ऊपर तकिया, पञ्चरत्न तथा महाफल से युक्त कलश रखे ॥६॥ वहीं पर पीताम्बर और शङ्ख, चक्र, गदा धारण किए हुए लक्ष्मीजी के साथ श्रीभगवान् की पूजा करे ॥७॥ व्रती को मण्डल में इन्द्र आदि लोकपालों की पूजा करनी चाहिए क्योंकि द्वादशी और त्रयोदशी के दिन देवताओं ने श्रीभगवान् को जगाया था ॥८॥ देवताओं ने चतुर्दशी के दिन भगवान् का दर्शन करके उनकी पूजा की थी । अतएव शान्तमना होकर भगवान् की पूजा करे और उपवास करें ॥९॥ आचार्य की आज्ञा से सुवर्ण निर्मित श्रीभगवान् की अनेक प्रकार के भोज्य प्रदार्थो से युक्त षोडशोपचार के द्वारा पूजा करो ॥१०॥ रात्रि में गीत-वाद्य आदि मङ्गलों के द्वारा जागरण करे । जो लोग जागरण के समय भक्तिपूर्वक भगवान् की गीत गाते हैं ॥११॥ जागरण के दिन जो लोग गीत और नृत्य करता है उनके सौ जन्मों के संचित पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥१२॥ उन लोगों को वही फल प्राप्त होता है जो एक हजार गौओं के दान करने से होता है । गीत और नृत्य करते हुए कौतुकों का भी प्रदर्शन करना चाहिए ॥१३॥ श्रीहरि के जागरण के समय जो श्रीवासुदेव भगवान् के समक्ष भगवान् विष्णु के चरित्रों को पढ़ते हुए वैष्णवों को प्रसन्न करता है ॥१४॥ मुँह से बाजा बजाता है और अपने मनोनुकूल आलाप भरता है इन भावों से जो श्रीहरि का जागरण करता है ॥१५॥ उस व्यक्ति की प्रतिदिन करोड़ों तीर्थ के समान पुण्य प्राप्त होता है । उसके पश्चात् पूर्णिमा के दिन तीस अथवा अनेक सपत्नीक ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे । चूंकि

अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम् ।
प्रीत्यर्थदेवदेवस्य देवानां च पृथकपृथक् ॥१९॥
दक्षिणां च यथाशक्ति प्रदद्यात्प्रणमेच्च तान् ।
पुनर्देवं समभ्यर्च्च देवांश्च तुलसीं तथा ॥२०॥
ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिवद्व्रती । गुरुं व्रतोपदेष्टारं वस्त्रालङ्कारणादिभिः ॥२१॥
सपत्नीकं समभ्यर्च्य गां च तस्मै प्रदापयेत् ।
युष्मत्प्रसादाद्देवेशः प्रसन्नो मे भवेत्तदा ॥२२॥
व्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया। तत्सर्वंनाशमायातुस्थिरां मे चास्तु सन्ततिः ॥२३॥
मनोरथाश्च सफलाः सन्तु नित्यं ममार्चनात् ।
देहान्ते वैष्णवं स्थानं प्राप्नुयामतिदुर्लभम् ॥२४॥
इति क्षमाप्य तान्विप्रान्प्रसाद्य च विसर्जयेत् ।
तामर्चां गुरवे दद्याद्रत्नयुक्तां तदाव्रती ॥२५॥
तदा सुहृद्गुरुयुतः स्वयं भुञ्जीत भक्तिमान् ।
कार्त्तिके वाथ तपसि विधिरेवंविधः स्मृतः ॥२६॥
एवं यः कुरुते सम्यक्कार्त्तिकस्य व्रतं नरः ।
विपाप्मा स विनिर्मुक्तो विष्णुसान्निध्यागो भवेत् ॥२७॥
सर्वव्रतैःसर्वतीर्थैः सर्वदानैश्च यत्फलम्। तत्कोटिगुणितं ज्ञेयं सम्यगस्य विधानतः ॥२८॥
ते धन्यास्ते महापुण्यास्तेषां सर्वफलोदयः। विष्णुभक्तिरता ये स्युः कार्त्तिके व्रतकारिणः॥२९॥

भगवान् विष्णु वरदान देकर मत्स्य रूप धारण कर लिए ॥१६-१७॥ उस पूर्णिमा के दिन जो दान, होम, किया जाता है वह अक्षय होता है । अतएव उन ब्राह्मणों को पायस (खीर) आदि के द्वारा भोजन करायें॥१८॥ **अतोदेवा** इत्यादि दो मन्त्रों से तिल तथा खीर से श्रीभगवान् और देवताओं को प्रसन्न करने के लिए होम करे ॥१९॥ अपनी शक्ति के अनुसार उन ब्राह्मणों को दक्षिणा दे और बार-बार प्रणाम करे । फिर श्रीभगवान् देवताओं और तुलसी की पूजा करके ॥२०॥ व्रती को चाहिए कि कपिला गौ की विधिवत् पूजा करे । सपत्नीक गुरु को सविधि वस्त्रों और अलङ्कारों से पूजा करके उनको गौ दान में दें । आपलोगों की कृपा से भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥२१-२२॥ सात जन्मों में मैंने जो पाप किया है वह इस व्रत के द्वारा नष्ट हो जाय और मेरी सन्तान स्थिर हो ॥२३॥ इस पूजन से मेरे सारे मनोरथ सफल हों और मृत्यु के पश्चातर अति दुर्लभ लोक में जाऊँ ॥२४॥ इससे क्षमा प्रार्थना पूर्वक उन ब्राह्मणों को प्रसन्न करके विदा करे । उसके बाद व्रती उस रत्नयुक्त अर्चा को आचार्य को दे दे ॥२५॥ उसके बाद भक्ति पूर्वक आचार्य तथा सुहृदों के साथ भोजन करे । कार्तिक व्रत तथा तपस्या की यही विधि कही गयी है ॥२६॥ जो मनुष्य इस तरह से विधि पूर्वक कार्तिक व्रत करता है वह पाप रहित मुक्त होकर भगवान् विष्णु की सन्निधि में जाता है ॥२७॥ सभी व्रतों, तीर्थों तथा दानों के करने से जो फल होता है विधि पूर्वक कार्तिक व्रत करने से उसके करोड़ गुना फल होता है ॥२८॥ भगवान् विष्णु की भक्ति में रत रहकर कार्तिक व्रत करने वाले धन्य तथा माहापुण्यवान हैं उनको समस्त फलों की प्राप्ति होती है ॥२९॥ उसके देह में स्थित पाप व्रत

देहस्थितानिपापानिवितर्कं यान्तितद्भयात्। क्व यास्यामो वदन्त्येवं यद्ययं व्रतकृन्नरः ॥३०॥
इत्यूर्जव्रतनियमाञ्छृणोति भक्त्या यो वै तत्कथयति वैष्णवाग्रतो यः ।
तौ सम्यग्व्रतकरणात्फलं लभेतां दृष्ट्वा तो कलुषविनाशनं लभन्ते ॥३१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे उद्यापनवर्णनं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

छियानबेवाँ अध्याय

पृथुरुवाच

यत्त्वया कथितं ब्रह्मन्व्रतमूर्जस्य विस्तरात्। तत्र या तुलसीमूले विष्णोः पूजा त्वयोदिता ॥१॥
तेनाहं प्रष्टुमिच्छामि माहात्म्यं तुलसीभवम् । कथं साऽतिप्रिया विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥२॥
कथमेषा समुत्पन्नाकस्मिन्स्थाने च नारद । एतद्ब्रूहि समासेनसर्वज्ञोऽसि मतो हि मे ॥३॥

नारद उवाच

श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं तुलसीभवम् ।
सेतिहासं पुरावृत्तं तत्सर्वं कथयामि ते ॥४॥

पुरा शक्रः शिवं द्रष्टुमगात्कैलासपर्वतम् । सर्वदेवैः परिवृतस्त्वप्सरोगणसेवितः ॥५॥
यावद्गतः शिवगृहं तावत्तत्राशु दृष्ट्वान्। पुरुषं भीमकर्माणं दंष्ट्रानयनभीषणम् ॥६॥

भय से विचार करते हैं कि यदि यह व्रत करता है तो हमलोग कहाँ जायेंगे ?॥३०॥ इस कार्तिक व्रत के नियमों को जो सुनता है और जो वैष्णवों के समक्ष उसे बतलाता है वे दोनों व्रत करने के फल को प्राप्त करते हैं और उस व्रत को करने वाले के दर्शन से पापों का नाश हो जाता हैं ॥३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में कार्तिक व्रत के उद्यापन नामक पच्चानबेवे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९५।।

तुलसी माहात्म्य के प्रसङ्ग में जालन्धर की उत्पत्ति का वर्णन

महाराज पृथु ने कहा— हे ब्रह्मन् ! आपने जो विस्तार पूर्वक कार्तिक व्रत का वर्णन किया है उसमें आपने तुलसी के मूल में भगवान् विष्णु की पूजा बतलायी है ॥१॥ उसके कारण मैं तुलसी का माहात्म्य जानना चाहता हूँ । देवाराध्य शर्ङ्ग धनुषधारी भगवान् विष्णु को तुलसी क्यों अत्यन्त प्रिय हैं ॥२॥ हे नारदजी ! तुलसी किस स्थान पर क्यों उत्पन्न हुयी आपको मैं सर्वज्ञ मानता हूँ आप इसे संक्षेप में बतलायें ॥३॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजन् ! मैं पहले घटित इतिहास के साथ तुलसी के सम्पूर्ण माहात्म्य कहता हूँ ॥४॥ प्राचीन काल में इन्द्र शिवजी का दर्शन करने के लिए कैलास पर्वत पर गये । उनके साथ

सपृष्टस्तेन कस्त्वं भोः क्व गतो जगदीश्वरः ।
एवं पुनः पुनः पृष्टः स यदा नोचिवान्नृप ॥७॥
ततः क्रुद्धो वज्रपाणिस्तं निर्भर्त्स्य वचोऽब्रवीत् ॥८॥

शक उवाच

रे मया पृछ्यमानोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि। अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्राताऽस्ति दुर्मते !॥९॥
इत्युदीर्य ततो वज्रीवज्रेणाहंश्च तं दृढम्। तेनास्यकण्ठोनीलत्वमगाद्वज्रं च भस्मताम् ॥१०॥
ततो रुद्रः प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ।
दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटोऽभवत्। इन्द्रश्च दण्डवद्भूमौ कृत्वा स्तोतुं प्रचक्रमे॥११॥

बृहस्पतिरुवाच

नमो देवाधिदेवाय त्र्यम्बकाय कपर्दिने। त्रिपुराघ्नाय शर्वाय नमोऽन्यकनिषूदिने ॥१२॥
विरूपायातिरूपाय बहुरूपाय शम्भवे। यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने॥१३॥
कालान्तकाय कालाय कालभोगधराय च। नमो ब्रह्मशिरो हन्त्रे ब्राह्मणाय नमोनमः ॥१४॥

नारद उवाच

एवं स्तुतस्तदा शम्भुर्द्विजर्षभं जगाद ह। संहरन्नयनज्वालां त्रिलोकीदहनक्षमाम्॥१५॥

ईश्वर उवाच

वरं वरय भोब्रह्मन्प्रीतः स्तुत्याऽनया तव। इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज॥१६॥

बृहस्पतिरुवाच

यदि तुष्टोऽसि देव त्वं पाहीन्द्रं शरणागतम् ।
अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः ॥१७॥

सभी देवता और आप्सरायें थीं ॥५॥ जब वे शिवजी के यहाँ गये तो उन्होंने भयङ्कर कर्म करने वाले भयङ्कर दाँत और आँखों वाले एक पुरुष को देखा ॥६॥ इन्द्र ने पूछा तुम कौन हो ? जगदीश्वर कहाँ गये? बार-बार पूछने पर भी जब वह नहीं बोला तब इन्द्र उसको डाँट कर कहे ॥७-८॥ **इन्द्र ने कहा—** अरे! मेरे द्वारा पूछे जाने पर भी तुमने उत्तर नहीं दिया अतएव मैं तुम्हें वज्र से मार देता हूँ तुम्हारा रक्षक कौन है ?॥९॥ यह कहकर इन्द्र ने उस पर वज्र से सुदृढ प्रहार किया उससे उसका कण्ठ नीला हो गया और वज्र भस्म हो गया ॥१०॥ उसके बाद रुद्र अपने तेज से जलते हुए के समान क्रुद्ध हो गये । उस समय बृहस्पति ने हाथ जोड़कर और इन्द्र साष्टाङ्ग प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥११॥ **बृहस्पति ने कहा—** देवाधिदेव, तीन नेत्रों वाले, कपर्दी, त्रिपुर को विनष्ट करने वाले शर्व तथा अन्धकासुर को मारने वाले शिवजी को नमस्कार है ॥१२॥ विरूप, अतिरूप तथा अनेक रूपों वाले, यज्ञविध्वंस करने वाले तथा यज्ञों का फल देने वाले शम्भु को नमस्कार है ॥१३॥ कालविनाशक, काल स्वरूप तथा कालशरीर धारी एवं ब्रह्माजी के शिर को काटने वाले, ब्राह्मण स्वरूप शिवजी को बारम्बार नमस्कार है ॥१४॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से स्तुति किए जाने पर त्रिलोकी को जला डालने में समर्थ नेत्र की ज्वाला को समेटते हुए शिवजी ने कहा ॥१५॥ **ईश्वर ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! आप वरदान माँगे आपकी इस स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ । इन्द्र को जीवनदान देने के कारण आपका नाम जीव होगा ॥१६॥ **बृहस्पति ने कहा—**

ईश्वर उवाच

पुनः प्रवेशमायाति भालनेत्रे कथं त्वयम्। एनं त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत् ॥१८॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा प्राक्षिपल्लवणाम्भसि ।
सोऽपतत्सिन्धुगङ्गायाः सागरस्य च सङ्गमे ॥१९॥

तदा सा बालरूपत्वमगात्तत्र रुरोद च। रुद्रतस्तस्य शब्देन प्राकम्पत मही मुहुः ॥२०॥

स्वर्गश्च सत्यलोकश्च तत्स्वनाद् बधिरीकृतौ ।
श्रुत्वा ब्रह्मा ययौ तत्र किमेतदिति विस्मितः ॥२१॥

तावत्समुद्रस्योत्सङ्गे तं बालं सददर्शह। दृष्ट्वा ब्रह्माणमायान्तंसमुद्रोऽपि कृताञ्जलिः ॥२२॥
प्रणम्य शिरसा बालंतस्योत्सङ्गे न्यवेशयत्। ततो ब्रह्माऽब्रवीद्वाक्यंकस्यायं शिशुरद्भुतः ॥२३॥

सरित्पते कुतो लब्धो बालो ह्येष महाबलः ।
यस्य नादेन संत्रस्ता देवासुरमहोरगाः ॥२४॥

नारद उवाच

निशम्येति वचो धातुर्वाक्यं तु सागरोऽब्रवीत् ॥२५॥

समुद्र उवाच

भोब्रह्मन्सिन्धुगङ्गायांजातोऽयंमम पुत्रकः। जातकर्मादिसंस्कारान्कुरुष्वास्य जगद्गुरो॥२६॥

नारद उवाच

इत्थं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः ।
ब्रह्माणमग्रहीत्कूर्चे विधुन्वंस्तं मुहुर्महुः ॥२७॥

हे देव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो आप अपने शरणागत इन्द्र की रक्षा करें । ललाट के नेत्र से उत्पन्न यह अग्नि शान्त हो जाय ॥१७॥ **ईश्वर ने कहा—** ललाट के नेत्र से उत्पन्न यह अग्नि कैसे नेत्र में प्रवेश कर सकती है ? मैं इसको दूर फेंक देता हूँ जिससे इन्द्र पीड़ित न हों ॥१८॥ यह कहकर अग्नि को हाथ में पकड़कर उन्होंने क्षार समुद्र में फेंक दिया वह अग्नि समुद्र में गङ्गा सागर के सङ्गमस्थल पर गिरी॥१९॥ इसके बाद वह बालक का रूप धारण कर लिया, उसके रोने के शब्द से पृथिवी बार-बार काँपने लगी॥२०॥ उस शब्द की ध्वनि से स्वर्ग से सत्य लोक पर्यन्त अत्यन्त ध्वनित हो गया । उसको सुनकर आश्चर्यित हुए ब्रह्माजी यह क्या यह जानने के लिए उसके पास गये ॥२१॥ उसके बाद उन्होंने समुद्र की गोद में उस बालक को उन्होंने देखा । आते हुए ब्रह्माजी को देखकर सागर ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उस बालक को उन्होंने ब्रह्माजी की गोद में दे दिया । उसके बाद ब्रह्माजी ने पूछा यह किसका अद्भुत बालक है ?॥२२-२३॥ हे सागर ! तुमने इस महाबलवान् बालक को कहाँ से पाया । इसकी ध्वनि से देवता असुर और बड़े-बड़े सर्प काँपने लगे हैं ॥२४॥ **नारदजी ने कहा—** ब्रह्माजी की वाणी सुनकर सागर ने कहा॥२५॥ **समुद्र ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! गङ्गा के गर्भ से यह मेरा बालक उत्पन्न हुआ है । हे जगद्गुरो! हे ब्रह्मन्! इसके जात कर्म आदि संस्कार को आप कर दें ॥२६॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से कहने

धुन्वतस्तस्य कूर्चंतु नेत्राभ्यामागमज्जलम् । कथंचिन्मुक्तकूर्चोऽथब्रह्मा प्रोवाच सागरम् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

नेत्राभ्यां विधृतंयस्मादनेनैतज्जलं मम। तस्माज्जलन्धर इति ख्यातो नाम्ना भवत्वसौ ॥२९॥
अधुनैवैष तरुणः सर्वशस्त्रास्त्रपारगः। अवध्यः सर्वभूतानां विना रुद्रं भविष्यति ॥
याति यत्र समुद्भूतस्तत्रेदानीं गमिष्यति ॥३०॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्यषेचयत् ।
आमन्त्र्य सरितांनाथं ब्रह्माऽन्तर्धानमन्वगात् ॥३१॥

अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा। कालनेमिसुतां वृन्दां तद्भार्यार्थमयाचत ॥३२॥
ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुरास्तस्मै सुतां तां प्रददुः प्रहर्षिताः ।
स चापि तान्प्राप्य सुहृद्वरान्वशी शशास गां शुक्रसहायवान्बली ॥३३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे जालन्धरोत्पत्तिवर्णनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

पर उस बालक ने ब्रह्माजी की दाढी पकड़ ली ओर उसे बार-बार हिलाया ॥२७॥ उसके दाढी के हिलाने से ब्रह्माजी के नेत्रों में आँसू आ गये । किसी तरह दाढ़ी छोडने पर ब्रह्माजी ने सागर से कहा ॥२८॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** चूकि इसने मेरे नेत्रों के जल को धारण किया है अतएव यह जालन्धर के नाम से विख्यात हो ॥२९॥ यह इसी समय युवक तथा सभी शास्त्रास्त्रों में पारङ्गत और रुद्र को छोड़कर सभी जीवों के लिए अबध्य हो जायेगा । यह उत्पन्न प्राणी जहाँ जाते हैं वहाँ यह भी अन्त समय में जायेगा॥३०॥ **नारदजी ने कहा—** यह कहकर उन्होंने शुक्राचार्य को बुलाकर उसे राज्याभिषिक्त कर दिया । सागर से अनुमति लेकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये ॥३१॥ इसके बाद उसके दर्शन से प्रसन्न सागर ने काल नेमि को बुलाकर जालन्धर की पत्नी के लिए वृन्दा की याचना की ॥३२॥ उसके बाद कालनेमि आदि प्रमुख असुर प्रसन्नता पूर्वक उसको अपनी पुत्री प्रदान किए । जितेन्द्रिय, जालन्धर भी उन सुहृदों को प्राप्त कर तथा शुक्राचार्य की सहायता से पृथिवी का प्रशासन करने लगा ॥३३॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य वर्णन नामक श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में जालन्धर की उत्पत्ति वर्णन नामक छियानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९६॥

सत्तानबेवाँ अध्याय

नारद उवाच

ये देवैर्निर्जिता:पूर्वं दैत्या:पातालसंस्थिता: । तेहिभूमण्डले जातानिर्भयास्तमुपासितुम्॥१॥
कदाचिच्छिन्नशिरसं राहुं दृष्ट्वा स दैत्यराट् ।
पप्रच्छ भार्गवं विप्रं केनेदं विहितं प्रभो ॥२॥
भार्गवस्तस्य शिरसश्छेदं राहो शशंसह। अमृतार्थं समुद्रस्य मथने देवकारितम् ॥३॥
रत्नापहरणं चैव दैत्यानां च पराभवम् । तच्छ्रुत्वा क्रोधरक्ताक्ष:स्वपितुर्मथनं तदा ॥४॥
स दूतं प्रेषयामास घस्मरं शक्रसंनिधौ। दूतस्त्रिविष्टपं गत्वा सुधर्मां प्राप्य सत्वरम् ॥
गर्वादखर्वमौलिस्तु देवेन्द्रं वाक्यमब्रवीत् ॥५॥

दूत उवाच

जलन्धरोऽब्धितनय: सर्वदैत्यजनेश्वर: । दूतोऽहं प्रेषितस्तेन स यदाह श्रृणुष्व तत्॥६॥
कस्मात्त्वया मम पितामथित: सागरोऽद्रिणा ।
नीतानि सर्वरत्नानि तानिशीघ्रं प्रयच्छ मे ॥७॥

नारद उवाच

इति दूतवच: श्रुत्वा विस्मितस्त्रिदशाधिप: । उवाच घस्मरं घोरं भयरोषसमन्वित: ॥८॥

इन्द्र उवाच

श्रृणु दूत मया पूर्वं मथित:सागरो यथा । अद्रयो मद्भयाद्भीता स्वकुक्षिस्थास्तथाकृता: ॥९॥
अन्येऽपि मद्द्विषस्तेन रक्षिता दितिजास्तथा ।
तस्मात्तद्रत्नजातं तु मयाऽप्यपहृतं किल ॥१०॥

जलन्धर दैत्य के द्वारा देवताओं की पराजय पूर्वक अमरावती विजय का वर्णन

नारदजी ने कहा— देवताओं से पराजित होकर जो दैत्य पाताल में रहते थे वे निर्भय होकर जालन्धर की सेवा करने के लिए पृथिवी पर आ गये ॥१॥ एक बार राहु के कटे हुए शिर को देखकर दैत्यराज ने शुक्राचार्य से पूछा— इसके शिर को किसने काटा है ?॥२॥ शुक्राचार्य ने राहु के शिर के कटने वाले को बताते हुए कहा— अमृत के लिए समुद्र मन्थन के समय देवताओं ने ऐसा कराया है॥३॥ उन्होंने रत्नों के अपहरण तथा दैत्यों के पराजय को बतलाया । उस समय अपने पिता के मन्थन को सुनकर क्रोध से लाल आँखे करके उसने युद्ध के लिए इन्द्र के पास अपने दूत को भेजा । दूत स्वर्ग में जाकर शीघ्र ही सुधर्मा सभा में चला गया और गर्व से अपने शिर को उठाकर उसने इन्द्र से कहा ॥४-५॥ सागर के पुत्र सभी दैत्यों के स्वामी जालन्धर हैं । उन्होंने मुझे दूत बनाकर भेजा है, उन्होंने जो कहा है उसको आप सुनें ॥६॥ तुमने मेरे पिता का पर्वत से मन्थन क्यों किया ? जिन रत्नों को तुम लाये हो उसे शीघ्र मुझे दो ॥७॥ **नारदजी ने कहा—** दूत की वाणी को सुनकर इन्द्र आश्चर्यित हो गये उन्होंने भय और रोष से भरे कठोर वाणी में कहा ॥८॥ **इन्द्र ने कहा—** दूत ! जिसके कारण मैंने सागर का मन्थन किया उसे सूनो; मेरे भय से भयभीत पर्वतों को सागर ने अपने पेट में रख लिया ॥९॥ मेरे दूसरे भी दैत्य

शङ्खोऽप्येवं पुरा देवानद्विषत्सागरात्मजः। ममानुजेन निहतःप्रविष्टःसागरोदरम्॥११॥
तद् गच्छ कथयस्वास्य सर्वं मथनकारणम् ॥१२॥

नारद उवाच

इत्थं विसर्जितो दूतस्तदेन्द्रेणामगद्गृहम्। तदिन्द्रवचनं दैत्यराजायाकथयत्तदा ॥१३॥
तन्निशम्य तदा दैत्यो रोषात्प्रस्फुरिताधरः। उद्योगमकारोत्तूर्णं सर्वदेवजिगीषया ॥१४॥
तदोद्योगे सुरेन्द्रस्य दिग्भ्यःपातालतस्तथा। दितिजाः प्रत्यपद्यन्त शतशःकोटिशस्तथा॥१५॥
अथ शुम्भनिशुम्भाद्यैर्बलाधिपतिकोटिभिः ।
गत्वा त्रिविष्टपं दैत्यो युद्धायाधिष्ठितोऽभवत् ॥१६॥
निर्ययुस्त्वमरावत्या देवा युद्धाय दंशिताः। पुरमावृत्य तिष्ठन्ति दृष्ट्वा दैत्यबलं महत् ॥१७॥
ततः समभवद्युद्धं देवदानवसेनयोः। मुसलैःपरिघैर्बाणैर्गदापरशुशक्तिभिः ॥१८॥
अन्योन्यं समधावेतां जघ्नतुश्च परस्परम्। क्षणेनाभवतां सेने रुधिरौघपरिप्लुते ॥१९॥
पतितैःपात्यमानैश्च गजाश्वरथपत्तिभिः। व्यराजत रणे भूमिःसन्ध्याभ्रपटलैरिव॥२०॥
तत्र युद्धे हतान्दैत्यान्भार्गवस्तूदतिष्ठिपत्। विद्यया मृतजीविन्या मन्त्रितैस्तोयबिन्दुभिः ॥२१॥
देवानपि तथायुद्धे जीवयेदङ्गिरस्सुतः। दिव्यौषधीःसमानीय द्रोणदेश्याः पुनःपुनः ॥२२॥
दृष्ट्वा देवांस्तथा युद्धे पुनरेव समुत्थितान्। जलन्धरःक्रोधवशोभार्गवं वाक्यमब्रवीत्॥२३॥

जलन्धर उवाच

मया देवा हतायुद्धे उत्तिष्ठन्ति कथं पुनः। तव संजीवनीविद्या नैवान्यत्रेति विश्रुतम्॥२४॥

शत्रुओं को उसने अपने भीतर रख लिया इसीलिए मैंने उसके रत्न समूह को छीन लिया ॥१०॥ इसी तरह से सागर के पुत्र शङ्ख ने भी देवताओं से वैर किया इसीलिए मेरे अनुजने सागर में प्रवेश करके उसे मार दिया ॥११॥ अतएव जाओ और मन्थन के सारे कारणों को बतला दो ॥१२॥ **नारदजी ने कहा**— इसी तरह इन्द्र के द्वारा विदा किया गया दूत अपने घर आया और इन्द्र की सारी बातों को उसने जालन्धर को सुना दिया ॥१३॥ उसको सुनकर जालन्धर के ओष्ठ, क्रोध से फड़कने लगे । और सभी देवताओं को जीत लेने की इच्छा से शीघ्र प्रयास किया ॥१४॥ उसके उद्योग के अनुसार सभी दिशाओं की ओर पाताल से भी सैकड़ों करोड़ दैत्य आ गये ॥१५॥ उसके बाद शुंभ निशुभ आदि करोड़ों दैत्यों के साथ स्वर्ग में जाकर जालन्धर ने डेरा डाल दिया ॥१६॥ क्रुद्ध देवता भी युद्ध करने के लिए अमरावती से निकले और दैत्यों की विशाल सेना को देखकर चारों तरफ से अमरावती को घेर कर खड़े हो गये ॥१७॥ उसके बाद दैत्यों और देवों की सेना से मुसल, परिध, बाण, गदा, फरसा और शक्ति से युद्ध हुआ ॥१८॥ वे एक-दूसरे पर दौड़कर प्रहार करते थे क्षणभर में दोनों सेनाएँ खून से लथपथ हो गयीं ॥१९॥ गिरे हुए तथा गिर रहे घोड़े, हाथी, रथ तथा पैदल सेना से युद्ध भूमि सायंकालीन मेघ समूह के समान सुशोभित होने लगी। युद्ध में मारे गये दैत्यों को शुक्राचार्य ने मृतसंजीवनी विद्या तथा अभिमंत्रित जल से जिला दिया ॥२०-२१॥ बृहस्पति भी द्रोणाचल से दिव्य औषधियों को लाकर देवताओं को बार-बार जिला दिये ॥२२॥ देवताओं को युद्ध में बार-बार जीवित देखकर जालन्धर ने क्रोध से शुक्राचार्य से कहा ॥२३॥ **जालन्धर ने कहा**— मेरे द्वारा मारे गये देवता कैसे पुनः जीवित हो जाते है ? सुना गया है कि आपकी संजीवनी विद्या किसी

भृगुरुवाच

दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेरङ्गिराः सुरान् । जीवयत्येष वै शीघ्रं द्रोणाद्रिं समपाहर ॥२५॥

नारद उवाच

इत्युक्तः स तु दैत्येन्द्रो नीत्वाद्रोणाचलं तदा। प्राक्षिपत्सागरे तूर्णं पुनरागान्महाहवम् ॥२६॥
अथ देवान्हतान्दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद्गुरुः । तावत्तत्र गिरीन्द्रं तं न ददर्श सुरार्चितः ॥२७॥
ज्ञात्वा दैत्यहृतं द्रोणं विषण्णो भयविह्वलः ।
अगत्य दूराद्व्याजह्रे श्वासाकुलितविग्रहः ॥२८॥
पलायध्वं पलायध्वं नायं जेतुं हि शक्यते। रुद्रांशसंभवो ह्येष स्मरध्वं शक्रचेष्टितम् ॥२९॥

नारद उवाच

श्रुत्वा तद्वचनं देवा भयविह्वलितास्तदा। दैत्यैसतैर्वध्यमानास्तेऽपलायन्त दिशोदश ॥३०॥
देवान्विदारितान्दृष्ट्वा दैत्यःसागरनन्दनः । शङ्खभेरीजयरवैःप्रविवेशामरावतीम् ॥३१॥
प्रविष्टे नगरं दैत्ये देवाःशक्रपुरोगमाः । सुवर्णाद्रिगुहां प्राप्य न्यवसन्दैत्यतापिताः ॥३२॥
ततश्च सर्वेष्वसुरोऽधिकारेष्विन्द्रादिकानां विनिवेशयंस्तदा ।
शुम्भादिकान्दैत्यवरान्पृथक्पृथक्स्वयं सुवर्णाद्रिगुहामगात्पुनः ॥३३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादेऽमरावतीविजयो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

को नहीं ज्ञात हैं ॥२४॥ **भृगु पुत्र ने कहा—** द्रोणाचल से दिव्य औषधियों को लाकर अङ्गिरा के पुत्र शीघ्र ही उन सबों को शीघ्र ही जिला देते हैं अतएव तुम शीघ्र द्रोणाचल का अपहरण कर लो ॥२५॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से कहने पर जालन्धर द्रोणाचल को लाकर समुद्र में फेंक दिया उसके बाद वह उस महायुद्ध में आया ॥२६॥ उसके बाद मारे गये देवों को देखकर बृहस्पति द्रोणाचल पर गये और वहाँ पर देव पूजित द्रोणाचल को उन्होंने नहीं देखा ॥२७॥ यह जानकर ही द्रोणाचल का दैत्य ने अपहरण कर लिया है, वे भयभीत तथा उदास होकर श्वास से व्याकुल शरीर वाले होकर कहे ॥२८॥ भागो-भागो इसको जीता नहीं जा सकता है । यह रुद्र के अंश से उत्पन्न है, इन्द्र की चेष्टाओं को याद करो ॥२९॥ **नारदजी ने कहा—** बृहस्पति की बात सुनकर भयभीत देवता दैत्यों के द्वारा मारे जाते हुए दशों दिशाओं में भाग गये ॥३०॥ भागे हुए देवताओं को देखकर सागर पुत्र दैत्य शङ्ख तथा भेरी तथा जय-जयकार ध्वनि के साथ अमरावती में प्रवेश कर गया॥३१॥ अमरावती में दैत्य के प्रवेश कर जाने पर इन्द्र आदि देवता दैत्यों से संतप्त होकर सुमेरु पर्वत की कन्दराओं में रहने लगे ॥३२॥ उसके बाद इन्द्र आदि के पद पर जालन्धर ने शुम्भ आदि श्रेष्ठ दैत्यों को अलग-अलग पद पर बैठा कर सुमेरु पर्वत की कन्दरा में जालन्धर गया ॥३३॥ **इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा के संवाद के प्रसङ्ग में अमरावती विजय वर्णन नामक सत्तानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९७॥**

अन्ठानबेवाँ अध्याय

नारद उवाच

पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाःसवासवाः। भयप्रकम्पिताःसर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥१॥

देवा ऊचुः

नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायार्तिहन्त्रे ।
विधात्रादि सर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे गदाशङ्खपद्मारिहस्ताय तेऽस्तु ॥२॥
रमावल्लभायासुराणां निहन्त्रे भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय ।
मखादिक्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताःस्मः ॥३॥
नमो दैत्यसंतापितामर्त्यदुःखाचलध्वंसदम्भोलये विष्णवे ते ।
भुजङ्गेशतल्पेशायायार्कचन्द्रद्विनेत्राय तस्मै नता स्मो नताःस्म ॥४॥

नारद उवाच

सङ्कष्टनाशनं स्तोत्रं नित्यं यस्तु पठेन्नरः। स कदाचिन्न सङ्कष्टैःपीड्यते कृपया हरेः ॥५॥
इति देवाः स्तुतिं यावत्कुर्वन्ति दनुजप्रियः। तात्सुराणामापत्तिविज्ञाता विष्णुनातदा ॥६॥
सहसोत्थाय दैत्यारिः कृपया खिन्नमानसः। आरुह्य गरुड़ वेगल्लक्ष्मी वचनमब्रवीत् ॥७॥

विष्णुरुवाच

जलन्धरेण ते भ्रात्राः देवानां कदनं कृतम्। तैराहूतो गमिष्यामियुद्धायाद्यत्वरान्वितः ॥८॥

लक्ष्मीरुवाच

अहं ते वल्लभा नाथ भक्ता च यदि सर्वदा ।
तत्कथं ते ममभ्राता युद्धे वध्यःकृपानिधे ॥९॥

जालन्धर दैत्य के भय से भयभीत देवताओं द्वारा सङ्कट नाशक विष्णु स्तोत्र वर्णन

नारदजी ने कहा— फिर आते हुए जालन्धर को देखकर भयभीत देवता भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे ॥१॥ **देवताओं ने कहा—** सदा भक्तों के कार्य को करने के लिए मत्स्य कर्म आदि रूपों को धारण करने वाले भय विनाशक भगवान् विष्णु को मेरा नमस्कार है । ब्रह्मा आदि देवताओं की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करने वाले तथा शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करने वाले भगवान् को नमस्कार है॥२॥ लक्ष्मीजी के पति, असुरों के विनाशक, गरुडवाहन, पीताम्बरधारी, यज्ञादि क्रियाओं को पवित्र करने वाले तथा उनको विनष्ट करने वाले तथा सबों के शरण्य (रक्षक) श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥३॥ दैत्यों से संतप्त देवताओं के दुख रूपी पर्वत को विनष्ट करने वाले भगवान् विष्णु को नमस्कार है । शेषनाग की शय्या पर शयन करने वाले जिनके सूर्य और चन्द्रमा दोनों नेत्र हैं उनको ही हमलोग नमस्कार करते हैं ॥४॥ **नारदजी ने कहा—** इस संकष्ट नाशक स्तोत्र का जो नित्य पाठ करता है वह कभी भी कष्टों से पीडित नहीं होता है ॥५॥ जब देवता भगवान् विष्णु की स्तुति कर रहे थे तब भगवान् ने जान लिया कि देवताओं पर आपत्ति आयी है ॥६॥ दैत्यों के शत्रु कृपा से खिन्न मना होकर शीघ्र ही गरुड़ पर सवार होकर लक्ष्मीजी से कहे ॥७॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** तुम्हारे भाई जालन्धर ने देवताओं को मारा है।

श्रीभगवानुवाच

रुद्रांशसंभवत्वाच्च ब्रह्मणोवचनादपि। प्रीत्या च तव नैवायं मम वध्यो जलन्धरः ॥१०॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा गरुडारूढः शङ्खचक्रगदासिभृत्। विष्णुर्वेगाद्ययौ योद्धुं यत्रदेवाः स्तुवन्तिते ॥११॥
अथारुणानुजात्युग्रपक्षवातप्रपीडिताः। वात्याविवर्तिता दैत्या बभ्रमुःखे यथाधनाः ॥१२॥

ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान्वात्याप्रपीडितान्।
नोवाच वचनं क्रोधात्ततो विष्णुं समभ्ययात् ॥१३॥

ततः समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्महत्। आकाशं कुर्वयोर्बाणैरन्ते निरवकाशवत्॥१४॥
विष्णुर्दैत्यम्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान्। चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेनताडयत् ॥१५॥
ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः। आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले॥१६॥
विष्णुर्गदां च खड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव। तावत्स हृदये विणुं जघान दृढमुष्टिना॥१७॥
ततस्तौ बाहुयुद्धेन ययुधाते महाबलौ। बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम्॥१८॥
एवं सुरुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुःप्रतापवान्। उवाच दैत्यराजं तं मेघगम्भीरया गिरा ॥१९॥

विष्णुरुवाच

वरं वरय दैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात्।
अदेयमपि ते दास्ये यत्ते मनसि वर्तते ॥२०॥

देवताओं से आहूत मैं आज युद्ध करने के लिए शीघ्रता से जा रहा हूँ ॥८॥ **लक्ष्मीजी ने कहा—** नाथ! मैं आपकी प्रियतमा हूँ। अतएव हे नाथ ! युद्ध में आप मेरे भाई को कैसे मार सकते हैं ॥९॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** रुद्र के अंश से उत्पन्न होने तथा ब्रह्माजी के वरदान के कारण भी मैं तथा तुम्हारे प्रेम के कारण जालन्धर मेरा वध्य नहीं है ॥१०॥ **नारदजी ने कहा—** यह कहकर गरुड़ पर सवार शङ्ख, चक्र, गदा और कृपाण धारण किए हुए भगवान् विष्णु वेगपूर्वक वहाँ गये जहाँ देवता उनकी स्तुति कर रहे थे ॥११॥ उसके पश्चात् गरुड़ के पङ्ख की अत्यन्त उग्र वायु से पीड़ित होकर नचाये गये दैत्य आकाश में घूमने वाले मेघ के समान नाच रहे थे ॥१२॥ इस तरह दैत्यों को वात्या से अत्यन्त पीड़ित देखकर जालन्धर क्रोध के मारे कुछ बोला नहीं अपितु विष्णु के पास युद्ध करने आया ॥१३॥ उसके बाद विष्णु भगवान् और जालन्धर में भयङ्कर युद्ध हुआ। वे दोनों अपने बाणों से आकश को भर दिए ॥१४॥ भगवान् विष्णु अपने बाण समूह से जालन्धर के ध्वज, छत्र, अश्व तथा धनुष को काट दिये और एक बाण से उसके हृदय में प्रहार किए ॥१५॥ उसके पश्चात् शीघ्रता से उछल कर हाथ में गदा लेकर जालन्धर गरुड़ को गदा से शिर पर मारकर पृथिवी पर गिरा दिया ॥१६॥ और हँसते हुए श्रीविष्णु ने उसकी गदा को कृपाण से काट दिया। उसी समय जालन्धर ने भगवान् विष्णु के हृदय में कसकर एक मुक्का मारा ॥१७॥ उसके पश्चात् उन दोनों महाबलवान ने भुजाओं, मुक्कों, घुटनों के प्रहार से पृथिवी को ध्वनित करते हुए बाहुयुद्ध करने लगे ॥१८॥ इस तरह महाप्रतापी भगवान् विष्णु सुन्दर युद्ध करके अपनी मेघ के समान गम्भीर वाणी से दैत्यराज को कहे ॥१९॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** दैत्येन्द्र ! मैं तुम्हारे पराक्रम से प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो, तुम्हारे मन में विद्यमान अदेय वस्तु को भी मैं दूँगा ॥२०॥ **जलन्धर ने कहा—** हे बहनोई ! यदि

जलन्धर उवाच

यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेतं ददस्व मे। मद्भगिन्या सह तया मद्गृहे सगणो वस॥२१॥

नारद उवाच

तथेत्युक्त्वा स भगवान्सर्वदेवगणैः सह। जलन्धरं नामपुरमगमद्रमया सह॥२२॥
जलन्धरश्च देवानामधिकारेषु दानवान्। स्थापयित्वा सहर्षः सन्पुनरागान्महीतले॥२३॥
देवगन्धर्वसिद्धेषु यत्किंचिद्रत्नसंज्ञितम्। तदात्मवशगं कृत्वा तिष्ठत्सागरनन्दनः॥२४॥
पातालभवने दैत्यं निशुम्भं च महाबलम्। स्थापयित्वा स शेषादीननयद्भूतलं बली॥२५॥
देवगन्धर्वसिद्धौघान्यक्षराक्षसमानुषान्। स्वपुरे नागरान्कृत्वा शशास भुबनत्रयम्॥२६॥
एवं जलन्धरःकृत्वादेवाश्च वशवर्त्तिनः। धर्मेण पालयामास प्रजाःपुत्रानिवौरसान्॥२७॥

न कश्चिद्व्याधितो नैव दुःखितो न कृशस्तथा।
न दीनो दृश्यते तस्मिन्धर्माद्राज्यं प्रशासति॥२८॥
एवं महीं शासति दानवेन्द्रे धर्मेण सम्यक्च यदृच्छयाऽहम्।
कदाचिदामागथ तस्य लक्ष्मीं विलोकितुं श्रीरमणं च सेवितुम्॥२९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्मये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे जलन्धरप्रवेशो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः॥९८॥

आप प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर दीजिये मेरी बहन और अपने गाण के साथ आप मेरे घर में निवास करें॥२१॥ **नारदजी ने कहा—** ठीक है, यह कहकर भगवान् विष्णु सम्पूर्ण देवताओं के तथा लक्ष्मीजी के साथ जालन्धर पुर में आ गये॥२२॥ जलन्धर भी देवताओं के पद पर दैत्यों को नियुक्त करके हर्ष पूर्वक पृथिवी पर फिर आ गये॥२३॥ देवता, गन्धर्व तथा सिद्धों के पास जो रत्न थे उन सबों को अपने अधीन कर लिया जलन्धर ने॥२४॥ पाताल लोक में महाबलवान् निशुम्भ दैत्य को नियुक्त करके वह शेष आदि को पृथिवी पर लाया॥२५॥ देवता, गन्धर्व तथा सिद्ध समूहों को, यक्षों, राक्षसों और मनुष्यों को अपने नगर का नागरिक बनाकर उसने त्रैलोक्य का प्रशासन किया॥२६॥ जलन्धर इस तरह से देवताओं को अपने वश में करके धर्म पूर्वक प्रजाओं का अपने पुत्रों के समान पालन किया॥२७॥ जलन्धर के धर्म पूर्वक राज्य के पालन काल में कोई भी रोगी, दुःखी कृश तथा दीन नहीं दिखता था॥२९॥ इस तरह धर्मपूर्वक दैत्येन्द्र के अच्छी तरह से प्रशासन काल में एकबार मैं संयोगवशात् श्रीभगवान् और लक्ष्मीजी का दर्शन करने के लिए उसके नगर में गया॥२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य वर्णन के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में जालन्धर घर प्रवेश नामक अठानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥९८॥

निनाबेवाँ अध्याय

नारद उवाच

स मां संपूज्य विधिवद्दानवेन्द्रोऽतिभक्तितः। संप्रहस्य तदा वाक्यं जगादनृपसत्तम ॥१॥

जलन्धर उवाच

कुतस्त्वागम्यते ब्रह्मन्किं च दृष्टं त्वया क्वचित् ।
यदर्थमिह चायातस्तदाज्ञापय मां मुने ॥२॥

नारद उवाच

गतःकैलासशिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया। तत्रोमयासहासीनं दृष्टवानस्मि शङ्करम् ॥३॥
योजनायुतविस्तीर्णे कल्पद्रुममहावने। कामधेनुशताकीर्णे चिन्तामणिसुदीपिते ॥४॥
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं वितर्कोमेऽभवत्तदा। क्वापीदृशीभवेद्वृद्धिस्त्रिलोक्यां वा नवेतिच ॥५॥
तावत्तवापि दैत्येन्द्र ! समृद्धिःसम्भृता मया। तद्विलोकन कामोऽहं त्वत्सान्निध्यमिहागतः ॥६॥
त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन्स्त्रीरनत्नरहिता ध्रुवम्। तर्कयामि शिवादन्यस्त्रिलोक्यां न समृद्धिमान्॥७॥

अप्सरो नागकान्याश्च यद्यपि त्वद्वशे स्थिताः ।
तथाऽपि ता न पार्वत्या रूपेण सदृशा ध्रुव्रम् ॥८॥

यस्या लावण्य जलधौ निमग्नश्चतुराननः। स्वधैर्यममुचत्पूर्वं तया कान्योपमीयते ॥९॥

वीतरागोऽपि हि यया मदनारिःस्वलीलयाः ।
विश्वतन्त्रोऽपितपसा सचात्मवशगःकृतः ॥१०॥

सौन्दर्यगहने भ्राम्यञ्छर्बरीरूपया पुरा। निष्कामःकामयुक्तोऽपि स्ववशोऽपि वशःकृतः॥११॥

नारदजी के मुख से पार्वतीजी के सौन्दर्यातिशय को सुनकर जालन्धर का शिवजी के पास दूत भेजना

नारदजी ने कहा— उस दानवेन्द्र ने भक्ति पूर्वक मेरी पूजा की और जोर से हँसकर उस राजश्रेष्ठ से कहा ॥१॥ **जालन्धर ने कहा**— हे ब्रह्मन् ! आप कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ पर आपने क्या देखा? जिसके कारण आप यहाँ आये मुझे वह आज्ञा दें ॥२॥ **नारदजी ने कहा**— दैत्येन्द्र ! मैं संयोगवशात् कैलास पर्वत पर गया था, वहाँ पर उमा के साथ बैठे हुए शिवजी को मैंने देखा ॥३॥ दश हजार योजन में फैले हुए कल्पवृक्ष के महावन जिसमें सैकड़ों कामधेनु थीं। वह चिन्मामणि से प्रकाशित था। उसको देखकर मेरे मन में विचार आया कि त्रिलोकी में इस प्रकार की कहीं समृद्धि हो सकती है कि नहीं ॥४-५॥ उसके पश्चात् हे दैत्येन्द्र ! आपकी समृद्धि को मैंने सुना और उसको देखने के लिए यहाँ आ गया ॥६॥ तुम्हारी इस समृद्धि को देखकर मैंने सोचा कि आपकी समृद्धि वैसी तो है किन्तु इसमें स्त्री रत्न का अभाव है। अब मुझे लगता है कि त्रिलोकी में शिव से भिन्न कोई समृद्धि सम्पन्न नहीं है ॥७॥ यद्यपि तुम्हारे वश में अप्सरायें और नाग कन्यायें भी हैं, किन्तु उन सबों का पार्वती के समान रूप नहीं है ॥८॥ जिसके सौन्दर्य सागर में डूबे हुए ब्रह्माजी भी अपना धैर्य खो दिए उसके साथ किसी दूसरी स्त्री की उपमा नहीं दी जा सकती है ॥९॥ उसने अपनी तपस्या से वीतराग शङ्करजी को भी अपने वश में कर लिया ॥१०॥ प्राचीन

यस्याः पुनःपुनःपश्यन्रूतिधाता पि सर्जने। ससर्जाप्सरसस्तास्तास्तत्समैकाऽपि नाभवत्॥१२॥
अतःस्त्रीरत्न संभोक्तुःसमृद्धिस्तस्य सा वरा। तथा न तव दैत्येन्द्र सर्वरत्नाधिपस्य च ॥१३॥
एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य गते मयि स दैत्यराट्। तद्रूपश्रवणादासीदनङ्गज्वरपीडितः ॥१४॥
अथ संप्रेषयामास दूतं च सिंहिकासुतम्। त्र्यम्बकाय तदाकिंचिद्विष्णुमायाविमोहितः॥१५॥
कैलासमगमद्राहुःसर्वशुक्लेन्दुवर्चसम्। कार्त्स्न्येय कृष्णपक्षेन्दुवर्चसं स्वाङ्गजेन तु ॥१६॥
निवेदितस्तदादेशान्नन्दिना च प्रवेशितः। त्र्यम्बकभ्रूलतासंज्ञाप्रेरितो वाक्यमब्रवीत्॥१७॥

राहुरुवाच

देवपन्नगसेव्यस्य त्रैलोक्याधिपतेःप्रभोः। सर्वरत्नेश्वरस्य त्वामज्ञां श्रृणु वृषध्वज ! ॥१८॥
श्मशानवासिनो नित्यं मुण्डमालाधरस्य च। दिगम्बरस्य ते भार्या कथं हैमवतीशुभा ॥१९॥
अहं रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्रीरत्नसंज्ञिका।
तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव ॥२०॥

नारद उवाच

वदत्येवं तदा राहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः। अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः॥२१॥
सिंहास्यः प्रचलज्जिह्वः सज्वलन्नयनो महान्।
ऊर्ध्वकेशःशुष्कतनुर्नृसिंह इव चापरः ॥२२॥
स तं खादितुमारेभे दृष्ट्वाराहुर्भयातुरः। अथावदति वेगेन बहिःस च दधार तम्॥२३॥

काल में सौन्दर्य वन में घुमते हुए शर्वरीरूपवाली के द्वारा निष्काम तथा कामयुक्त भी शङ्करजी को उसने अपने वश में कर लिया ॥११॥ उसके रूप को बार-बार देखते हुए सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी ने भी विभिन्न अप्सराओं की सृष्टि की किन्तु कोई भी उसके सदृश नहीं हुयी ॥१२॥ अतएव स्त्रीरत्न का उपभोग करने वाले शिवजी की समृद्धि श्रेष्ठ है, हे सभी रत्नों के स्वामी दैत्येन्द्र ! आपकी समृद्धि वैसी नहीं है ॥१३॥ इस तरह से कहकर तथा उससे विदा होकर मेरे चले जाने पर वह दैत्यराज पार्वती के उस रूप को सुनकर कामज्वर से पीड़ित हो गया ॥१४॥ उसके पश्चात् उसने राहू को दूत बनाकर विष्णु भगवान् की माया से मोहित वह उसे शङ्करजी के पास भेजा ॥१५॥ पूर्ण रूप से चन्द्रमा की कान्ति वाले कैलास पर्वत पर वह आया। अपने शरीर के अमावस्या के कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा के समान कान्ति वाले शिवजी के पास आया॥१६॥ निवेदन करने पर शङ्करजी ने आदेश से नन्दी ने उसे प्रवेश कराया। शङ्करजी के भौंहों के इसारे से प्रेरित होकर राहू ने कहा ॥१७॥ **राहू ने कहा—** हे शङ्कर ! देवता और सर्प जिनकी सेवा करते हैं, त्रैलोक्य के स्वामी तथा सभी रत्नों के स्वामी तुम्हें आज आज्ञा देते हैं उसे सुनो ॥१८॥ सदा श्मशान में रहने वाले मुण्डों की माला धारण करने वाले तथा दिगम्बर आपकी सुन्दरी पार्वती पत्नी कैसे हो सकती हैं ?॥१९॥ मैं रत्नों का स्वामी हूँ और पार्वती स्त्रीरत्न है, अतएव वह मेरे ही योग्य है तुम भिक्षुक के योग्य नहीं है॥२०॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से राहू के कहने पर शूलपाणि के भौंहों से एक भयङ्कर और वज्र के समान ध्वनि वाला पुरुष उत्पन्न हो गया ॥२१॥ उसका मुँह सिंह के समान था और जीभ चञ्चल थी। उसकी आँखे चमक रही थी, उसके केश खड़े थे, शरीर रुक्ष था वह दूसरे नृसिंह के समान था ॥२२॥ वह राहु

स च राहुर्महाबाहुर्मेघगम्भीरयागिरा। उवाच देवदेवेशं पाहि मां शरणागतम् ॥२४॥
ब्राह्मणं मां महादेव खादितुं समुपागतः। एतस्माद्रक्ष देवेश शरणागतवत्सल॥२५॥
रक्षरक्ष महादेव त्वामहं शरणंगतः। महादेवो वचःश्रुत्वा ब्राह्मणस्य तदाऽब्रवीत् ॥२६॥
नैवासौ वध्यतामेति दूतोऽयं परवान्यतः। मुञ्चेति पुरुषः श्रुत्वा राहुं तत्याजसोऽम्बरे ॥
राहुं त्यक्त्वा स पुरुषो महादेवं व्यजिज्ञपत् ॥२७॥

पुरुष उवाच

क्षुधा मां बाधते स्वामिन्क्षुत्क्षामक्षास्मि सर्वथा ।
किं भक्ष्यं मम देवेश ! तदाज्ञापय मां प्रभो ॥२८॥

ईश्वर उवाच

संभक्षयात्मनःशीघ्र मासं त्वं हस्तपादयोः ॥२९॥

नारद उवाच

स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषःस्वयम्। हस्तपादोद्भवं मासं शिरःशेषो यदाऽभवत्॥३०॥
दृष्ट्वा शिरोऽवशेषं तु सुप्रसन्नःसदाशिवः। पुरुषं भीमकर्माणं तमुवाच सविस्मयः ॥३१॥

ईश्वर उवाच

त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो हि भव मद्द्वारगः सदा ।
त्वदर्चां ये न कुर्वन्ति नैव ते मत्प्रियङ्कराः ॥३२॥

नारद उवाच

तदा प्रभृति देवस्य द्वारे कीर्तिमुखः स्थितः ।
नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत् ॥३३॥

को खाने लगा। उसको देखकर भयभीत राहु चिल्लाकर वेग से बाहर भागा तो उसने उसको पकड़ लिया॥२३॥ महाबाहु राहु ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहा मैं आपका शरणागत हूँ आप मेरी रक्षा करें ॥२४॥ हे देवेश महादेव ! मैं ब्राह्मण हूँ यह मुझको खाने के लिए आ रहा है शरणगत वत्सल इससे आप मेरी रक्षा करें ॥२५॥ हे महादेव ! आप रक्षा करें। मैं आपके शरण में हूँ। उस समय ब्राह्मण की वाणी सुनकर महादेवजी ने कहा ॥२६॥ यह बध के योग्य नहीं है यह दूसरे के अधीन रहने वाला दूत है, इसे छोड़ दो। राहू को छोड़कर उस पुरुष ने महादेवजी से कहा ॥२७॥ **पुरुष ने कहा—** हे स्वामिन! मुझे भूख लगी है, मैं भूखा हूँ। हे देवेश ! मेरा भक्ष्य क्या है ? उसे आप बतलायें ॥२८॥ **ईश्वर ने कहा—** तुम शीघ्र ही अपने हाथों और पैरों के मांस को खा लो ॥२९॥ **नारदजी ने कहा—** शिवजी की आज्ञा पाकर उस पुरुष ने अपने हाथ और पैर के मांस को खा लिया केवल उसका शिर बच गया॥३०॥ उसके शिर मात्र को बचा हुआ देखकर सदा शिव ने प्रसन्न होकर उस भयङ्कर कर्म करने वाले पुरुष को कहा ॥३१॥ **ईश्वर ने कहा—** तुम सदैव कीर्तिमुख नामक मेरा द्वारपाल बने रहो। जो लोग तुम्हारी अर्चा नहीं करें वे मेरे प्रिय नहीं है ॥३२॥ **नारदजी ने कहा—** उसी समय से सदाशिवजी के द्वार पर रहने वाले कीर्तिमुख की पूजा नहीं करते हैं, उनकी पूजा व्यर्थ हो जाती है ॥३३॥ उसने जो राहु को

राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपतद्बर्बररस्थले । अतःस बर्बरोद्भूत इति भूमौ प्रथांगतः ॥३४॥
ततश्च राहुःपुनरेव जातमात्मानमस्मिन्निति मन्यमानः ।
समेत्य सर्वं कथयाम्बभूव जलन्धरायेशविचेष्टितं तत् ॥३५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे दूतसंवादो नामैकोनशततमोऽध्यायः ॥९९॥

सौवाँ अध्याय

नारद उवाच

जलंधरस्तु तच्छ्रुत्वा कोपाकुलितविग्रहः। निर्जगामाशु दैत्यानां कोटिभिःपरिवारितः॥१॥
गतस्तस्याग्रतःशुक्रो राहुर्दृष्टिस्थिताऽभवत् । मुकुटश्चापतद्भूमौ वेगत्प्रस्खलितस्तदा ॥२॥
दैत्यसैन्यावृतैस्तत्र विमानानांशतैस्तदा। व्यराजतनभःपूर्णं प्रावृषीव बलाहकैः॥३॥
तस्योद्योगं तदादृष्ट्वा देवाःशक्रपुरोगमाः। अलक्षितत्वराजग्मुःशूलिनं ते व्यजिज्ञपन् ॥४॥

देवा ऊचुः

न जानासि कथं स्वामिन्देवा विज्ञापयन्ति भोः ।
तदस्मद्रक्षणार्थाय जहि सागरनन्दनम् ॥५॥

नारद उवाच

इति देववचःश्रुत्वा प्रहस्य वृभभध्वजः। महाविष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥६॥

छोड़ दिया उससे वह वर्वर स्थान पर गिरा । इसीलिए लोक में राहु वर्वर उत्पन्न के नाम से विख्यात हुआ॥३४॥ उसके बाद राहु ने इसी से उत्पन्न अपने को मानता हुआ आकर जालन्धर से शिवजी की सारी चेष्टाओं को बतलाया ॥३५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में दूत संवाद वर्णन नामक निन्यानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९९।।

शिवजी द्वारा सभी देवताओं के तेज से चक्र का निर्माण

नारदजी ने कहा— उस बात को सुनकर क्रोध से व्याकुल मन वाला जालन्धर करोड़ों दैत्यों के साथ शीघ्र ही निकल पड़ा ॥१॥ उसके आगे शुक्राचार्य चलते थे और राहु उसी दृष्टि में बैठ गया ॥१॥ वेग के कारण उसका मुकुट भूमि पर गिर पड़ा ॥२॥ दैत्य सेना से घिरे हुए सैकड़ों विमानों से वर्षा काल में मेघ से घिरे हुए के समान आकाश सुशोभित हुआ ॥३॥ उसके उद्योग को देखकर इन्द्र आदि देवता अलक्षित हो गये और शङ्करजी को बतलाये ॥४॥ **देवताओं ने कहा—** हे स्वामिन् ! आप इस बात को

ईश्वर उवाच

जलन्धरःकथं विष्णो न हतःसङ्गरे त्वया । तद्भयाच्चापयातोऽसि त्यक्तवावैकुण्ठमात्मनः ॥७॥

श्रीभगवानुवाच

तवांशसंभवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः ।
न मया निहतः सङ्ख्ये त्वमेन जहि दानवम् ॥८॥

ईश्वर उवाच

नायमेभिर्महातेजाःशस्त्रास्त्रैर्वध्यते मया । देवैःसर्वैःस्वतेजोऽशःशस्त्रार्थे दीयतां मम ॥९॥

नारद उवाच

अथ विष्णुमुखादेवाःस्वतेजांसिददुस्तदा । तान्येकत्वं गतानीशो दृष्ट्वा तेजोमहत्तदा ॥१०॥
तेनाकरोन्महादेवो महसाशस्त्रमुत्तमम् । चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालातिभीषणम् ॥११॥
तेजः शेषेण च तदा वज्रं च कृतवान्हरः । तावज्जलन्धरो दृष्टः कैलासतलभूमिषु ॥१२॥
हस्त्यश्वरथपत्तीनां कोटीभिःपरिवारितः । तं दृष्ट्वा हर्षिताःसर्वे देवाजग्मुर्यथागतम् ॥१३॥
गणाश्च समनह्यन्त युद्धायातित्वरान्विताः । नन्दीभवक्त्रसेनानीमुखाः सर्वे शिवाज्ञया ॥१४॥
अवतेरुर्गणाःसर्वे कैलासाद्युद्धदुर्मदाः । ततःसमभवद्युद्धं कैलासोपत्यका भुवि ॥१५॥
प्रमथाधिपदैत्यानां घोरं शस्त्रास्त्रसङ्कुलम् । भेरीमृदङ्गशङ्खौघनिःस्वनैर्वीरहर्षणैः ॥१६॥
गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकम्पत । शक्तितोमरबाणौघैर्मुशलप्रासपट्टिशैः ॥१७॥
व्यराजत नभःपूर्णमुल्काभिरिव संवृतम् । निहतैरथनागाश्वैःसर्वाभूमिर्व्यराजत ॥१८॥

क्यों नहीं जानते हैं देवता आपको विज्ञापित करते हैं । उससे रक्षा करने के लिए आप जालन्धर को मार दें ॥५॥ **नारदजी ने कहा—** इस बात को सुनकर शङ्करजी जोर से हँसकर और विष्णु भगवान् को बुलाकर कहे ॥६॥ **ईश्वर ने कहा—** विष्णो ! आपने जलन्धर को युद्ध में क्यों नहीं मारा और उसके भय से आप वैकुण्ठ का परित्याग करके भाग गये ॥७॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** उसके आपके अंश से उत्पन्न होने के कारण और लक्ष्मीजी का भाई होने के कारण मैंने उसको युद्ध में नहीं मारा आप उस दानव को मारें ॥८॥ **ईश्वर ने कहा—** वह महातेजस्वी इन शस्त्रास्त्रों से नहीं मारा जा सकता है । सभी देवता अपने तेजांश को मुझे प्रदान करें ॥९॥ **नारदजी ने कहा—** उसके बाद विष्णु आदि सभी देवता अपना-अपना तेज प्रदान किए । उन सभी एकत्रित तेजों को देखकर शङ्करजी ने उस तेज से सुदर्शन चक्र का निर्माण किया । वह ज्वाला समूह से अत्यनत भयङ्कर था ॥१०-११॥ बचे हुए तेज से शङ्करजी ने वज्र बनाया तब तक कैलास के नीचे पृथिवी पर जालन्धर दिखायी दिया ॥१२॥ वह करोड़ों हाथी, घोड़ा और पैदल सेना से घिरा था । उसको देखकर प्रसन्न देवता जैसे आये थे वैसे ही लौट गये ॥१३॥ शिवजी की आज्ञा से नन्दी हस्तिमुखआदि शिवगण शीघ्र ही युद्ध के लिए तैयार हो गये ॥१४॥ युद्ध में दुर्मद सभी गण कैलास से नीचे उतरे । उसके पश्चात् कैलास की उपत्यका में पृथिवी पर युद्ध होने लगा ॥१५॥ शिव गण और दैत्यों के भयङ्कर शस्त्रास्त्र से व्याप्त तथा वीरों को हर्षित करने वाले भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख समूह के शब्दों से, हाथी, घोड़े तथा रथ के शब्दों से पृथिवी काँपने लगी और शक्ति, तोमर, वाण समूह, मूशल,

वज्राहताचलशिरःशकलैरिव संवृता । प्रमथाहतदैत्यौघैर्दैत्याहतगणैस्तथा ॥१९॥
वसासृङ्मांसपङ्काद्यैर्भूरगम्याभवत्तदा । प्रमथाहतदैत्यौघान्भार्गवः समजीवयत् ॥२०॥
युद्धे पुनःपुनश्चैव मृतसंजीवनीबलात् । तं दृष्ट्वा व्याकुली भूत्वा गणाःसर्वे भयार्दिताः॥२१॥
शशंसुर्देवदेवेशं तत्सर्वं शुक्रचेष्टितम् । अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवाऽतीव भीषणा ॥२२॥
तालजङ्घा दरीवक्त्रास्तनापीडितभूरुहा । स युद्धभूमिमासाद्य भक्षयन्ती महासुरान् ॥२३॥
भार्गवं स्वभगे कृत्वा जगामान्तर्हिता नभः । विधृतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं गणास्तदा ॥२४॥
अम्लानवदना दर्पान्निजघ्नुर्युद्धदुर्मदाः । अथाभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता ॥२५॥
वायुवेगहता यद्वत्प्रकीर्णा तृणसंहतिः । भग्नां गणभयात्सेनां दृष्ट्वा हर्षं गणा ययुः ॥२६॥
निशुम्भशुम्भसेनान्यौ कालनेमिश्च वीर्यवान् । त्रयस्ते वारयामासुर्गणसेनां महाबलाः ॥२७॥
मुञ्चन्तःशरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः । ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः ॥२८॥
रुरुधुःखं दिशः सर्वा गणसेनामकम्पयन् । गणाःशरशतैर्भिन्ना रुधिराऽसारवर्षिणः ॥२९॥
वसन्ते किंशुकाभासा न प्राज्ञायत किंचन । पतिताः पात्यमानाश्चः छिन्ना भिन्नास्तदा गणाः॥३०॥
त्यक्तवा सङ्ग्रामभूमिं ते सर्वेऽपि विमुखा भवन् ॥३१॥

प्रास तथा पट्टिस रूपी उल्काओं से आकाश सुशोभित होने लगा । मारे गये हाथी घोड़ों से सारी पृथिवी सुशोभित होने लगी ॥१६-१८॥ वज्र से मारे गये पर्वतों के टुकड़ों जैसे शिरों से पृथिवी भर गयी । प्रमथों के द्वारा मारे गये दैत्यों और दैत्यों से मारे गये प्रमथों के वसा, रुधिर और मांस के कीचड़ से पृथिवी अगम्य हो गयी । प्रमथों के द्वारा मारे गये दैत्य समूह को शुक्राचार्य ने जीवित कर दिया । युद्ध में मृत संजीवनी विद्या द्वारा बार-बार जिलाये गये दैत्यों को देखकर शिवगण घबरा गये ॥१९-२१॥ उन सबों ने शुक्राचार्य की चेष्टाओं को जाकर शङ्करजी को वतलाया । उसके बाद रुद्र के मुख से भयङ्कर कृत्या उत्पन्न हो गयी ॥२२॥ उसके जङ्घे ताड़ के समान थे, गुफा के समान उसका मुख था । उसके स्तन पर्वतों के समान थे । वह बड़े-बड़े असुरों को खाती हुयी युद्ध में आकर शुक्राचार्य को अपनी योनि में डालकर आकाश में अन्तर्धान हो गयी । पकड़े गये शुक्राचार्य को देखकर सभी गण प्रसन्न हो गये ॥२३-२४॥ और युद्ध में दुर्मद वे दैत्य सेना को मारने लगे और गणों के भय से दैत्यों की सेना भाग चली । वायु के वेग से तितर-वितर किए गये तृण समूह के समान गणों के भय से भागी हुयी सेना को देखकर गण प्रसन्न हो गये ॥२५-२६॥ निशुम्भ, शुम्भ नामक सेनापति और पराक्रमी कालनेमि ने गणों को रोक दिया॥२७॥ बरसात में मेघ के समान बाणों की वर्षा करते हुए वे वाण समूह कीड़ों के समूह के समान सारी दिशाओं और आकाश को छेंक लिए और गणों की सेना भयभीत हो गयी ॥२८॥ सैकड़ों बाणों से छिदे हुए खून की वर्षा जैसे लग रहा था जैसे वसन्त ऋतु में पलास खिले हों । दूसरा कुछ भी नहीं प्रतीत होता था केवल गिरे हुए दैत्य और गिरे हुए गणों के अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये थे । वे सङ्ग्राम भूमि को त्यागकर

ततः प्रभग्नं स्वबलं विलोक्य गजास्यनन्दीश्वरकार्तिकेयाः ।
चिरान्विता दैत्यवरान्प्रसह्य निवारयामासुरमर्षणास्ते ॥३२॥
इति श्रीपाद्मे महारपुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे दैत्यसेनावधो नाम शततोऽध्यायः ॥१००॥

एक सौ एकवाँ अध्याय

नारद उवाच

ते गणाधिपतीन्दृष्ट्वा नन्दीभमुखषणमुखान् । अमर्षादभ्यधावन्त द्वन्द्वयुद्धाय दानवाः ॥१॥
नन्दिनं कालनेमिश्च शुम्भो लम्बोदरं तथा । निशुम्भः षणमुखं वेगादभ्यधावत दंशितः ॥२॥
निशुम्भःकार्त्तिकेयस्य मयूरं पञ्चभिःशरैः । हृदि विव्याध वेगेन मूर्च्छितःस पपात च ॥३॥
ततःशक्तिधरःशक्तिं यावज्जग्राह रोषितः । तावन्निशुम्भो वेगेन स्वशत्तया तमपातयत् ॥४॥
ततो नन्दीश्वरो बाणैः कालनेमिमविध्यत । सप्तभिश्च हयान्केतूंस्त्रिभिः सारथिमच्छिनत् ॥५॥
कालनेमिस्तु संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नन्दिनः । तदपास्य स शूलेन तं वक्षस्यहनद्दृढम् ॥६॥
स शूलभिन्नहृदयो हताश्वो हतसारथिः । अद्रेःशिखरमामुच्य शैलादिं सोऽप्यपातयत् ॥७॥

भाग चले ॥२९-३१॥ उसके पश्चात् अपने गणों को भागते हुए देखकर गणेश, कार्तिकेय और नन्दीश्वर देर से युद्ध करने वाले श्रेष्ठ दैत्यों को रोक दिए ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक महात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में दैत्यसेना का वध वर्णन नामक सौवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१००॥

नन्दी आदि का कालनेमि आदि के साथ द्वन्द युद्ध

नारदजी ने कहा— वे दानव नन्दी इभमुख, कार्तिकेय आदि को देखकर द्वन्द युद्ध करने के लिए दौड़ पड़े ॥१॥ नन्दी के पास कालनेमि, गणेशजी के पास शुम्भ, कार्तिकेय के पास निशुम्भ क्रोध करके दौड़कर आये ॥२॥ निशुम्भ ने कार्तिकेय के मयूर को पाँच बाणों से मारकर उसके हृदय को छेद दिया और मूर्छित होकर वह गिर पड़ा ॥३॥ उसके बाद कार्तिकेय ने जब तक शक्ति धारण किया तब तक निशुम्भ ने अपनी शक्ति से उसको गिरा दिया ॥४॥ उसके पश्चात् नन्दीश्वर ने बाणों से कालनेमि को छेद डाला। सात बाणों से घोड़ों और ध्वज को तथा तीन बाणों से सारथि को काट दिया ॥५॥ कालनेमि क्रुद्ध होकर नन्दी के धनुष को काट दिया । उसको त्यागकर नन्दी ने शूल से उसके हृदय में जोरदार प्रहार किया। त्रिशूल से विदीर्ण हृदय वाला जिसके घोड़े और सारथि मार दिये गये थे पर्वत के शिखर को उठाकर उसे शिखर को नन्दी के ऊपर गिराया ॥६-७॥ उसके बाद चूहे और रथ वाहन वाले गणेश और शुम्भ बाण

अथ शुम्भो गणेश्च रथमूषकवाहनौ । युध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम् ॥८॥
अथ शुम्भं गणाध्यक्षो हृदि विव्याध पत्रिणा ।
सारथिं पञ्चभिर्बाणैः पातयामास भूतले ॥९॥
ततः शुम्भोऽतिक्रुद्धोऽपि बाणषष्ट्या गणाधिपम् ।
मूषकं च त्रिभिर्विद्ध्वा ननाद जलदस्वनः ॥१०॥
मूषकः शरभिन्नाङ्गश्चचाल कृतवेदनः । लम्बोदरः समुत्तीर्य पदातिरभवन्नृप ॥११॥
ततो लम्बोदरः शुम्भं हत्वा परशुना हृदि । अपातयत्तदा भूमौ मूषकं चारुहत्पुनः ॥१२॥
कालनेमिर्निशुम्भश्च उभौ लम्बोदरं शरैः । युगपज्जघ्नतुः कोपात्तोत्त्रेणेव महाद्विपम् ॥१३॥
तं पीड्यमानमालोक्य वीरभद्रो महाबलः । अभ्यधावत वेगेन भूतकोटियुतस्तदा ॥१४॥
कुष्माण्डा भैरवाश्चापि वेताला योगिनीगणाः ।
पिशाचा योगिनीसङ्घा गणाश्चापि तमन्वयुः ॥१५॥
ततः किलकिलाशब्दैः सिंहनादैः सघुर्घुरैः । विनादिता डमरुकैः पृथिवी समकम्पत ॥१६॥
ततो भूतान्यधावन्त भक्षयन्तिस्म दानवान् । उत्पतन्ति पतन्तिस्म ननृतुश्च रणाङ्गणे ॥१७॥
नन्दी च कार्तिकेयश्च समायातौ त्वरान्वितौ ।
निजघ्नतू रणे दैत्यान्निरन्तरशरव्रजैः ॥१८॥
छिन्नभिन्नाहतैर्दैत्यैः पातितैर्भत्सितैस्तथा । व्याकुला साऽभवत्सेना विषण्णवदनातदा ॥१९॥
प्रविध्वस्तां ततः सेना दृष्ट्वा सागरनन्दनः । रथेनातिपताकेन गणानभिययौ बली ॥२०॥
हस्त्यश्वरथसंह्लादः शङ्खभेरीरवस्तदा । अभवत्सिंहनादश्च सेनयोरुभयोस्तदा ॥२१॥
जलन्धरशरव्रातैर्नीहारपटलैरिव । द्यावापृथिव्योराच्छन्नमन्तरं समपद्यत ॥२२॥

समूह से युद्ध करते हुए एक दूसरे को छेद डाले ॥८॥ इसके वाद शुम्भ के बाण ने गणेशजी के हृदय को छेद दिया और पाञ्च बाणों से सारथि को पृथिवी पर गिरा दिया ॥९॥ उसके पश्चात् अत्यन्त क्रुद्ध शुम्भ ने साठ बाणों से गणेशजी को और तीन बाणों से चूहे को छेदकर मेघ के समान गर्जना किया ॥१०॥ बाणों से अङ्गों के छिद जाने से चूहा कष्ट से काँपने लगा । गणेशजी उस पर से उतरकर पैदल हो गये॥११॥ उसके पश्चात् गणेशजी ने परशु से शुम्भ के हृदय पर प्रहार करके उसको गिरा दिया और उसके बाद वे चूहे पर चढ गए ॥१२॥ कालनेमि और निशुम्भ दोनों गणेशजी को एक ही साथ उसी तरह मारने लगे जैसे कोई चाबुक से महाद्वीप को मारता हो ॥१३॥ गणेशजी को पीड़ित देखकर महाबलवान वीरभद्र वेग पूर्वक करोड़ों भूतों के साथ दौड़ पड़े ॥१४॥ उनके पीछे कुष्माण्ड, भैरव, वेताल और योगिनियाँ चल रहीं थीं॥१५॥ उस समय कड़-कड़ शब्दों से घुर्घुराते सिंहनादों तथा डमरू के शब्दों से पृथिवी काँप उठी॥१६॥ उसके बाद भूत बड़े और दानवों को खाने लगे । वे युद्धाङ्गण में उछल रहे थे, गिर रहे थे तथा नृत्य कर रहे थे ॥१७॥ नन्दी और कार्तिकेय भी शीघ्रता से आकर दैत्यों को लगातार बाण समूह से मारने लगे॥१८॥ कटे-पिटे, मारे गये, गिरे तथा डाँटे गये दैत्यों से विषण्णमुखवाली दैत्य सेना व्याकुल हो गयी ॥१९॥ उसके पश्चात् विनष्ट हुयी अपनी सेना को देखकर बली जालन्धर पताकों से भरे रथ के द्वारा गणों के प्रति दौड़ पड़ा ॥२०॥ उस समय दोनों सेनाओं में हाथी, घोड़े और रथ की ध्वनि शङ्ख और भेरी के शब्द तथा

गणेशं पञ्चभिर्विद्ध्वा शैलाद्रिमपि पञ्चभिः ।
वीरभद्रं च विंशत्या ननाद जलदस्वनः ॥२३॥
कार्तिकेयस्ततो दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरः ।
व्याघूर्णः शक्तिनिर्भिन्नः किंचिद्व्याकुलमानसः ॥२४॥
ततःक्रोधपरीताक्षःकार्तिकेयं जलन्धरः । गदया ताडयामास स च भूमितलेऽपतत् ॥२५॥
तथैव नन्दिनं वेगादपातयत भूतले । ततो गणेश्वरःक्रुद्धो गदां परशुनाच्छिनत् ॥२६॥
वीरभद्रस्त्रिभिबाणैर्हृदिविव्याध दानवम् । सप्तभिश्च हयान्केतून्धनुश्छत्रं च चिच्छिदे॥२७॥
ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रः शक्तिमुद्यम्य दारुणम् ।
गणेशं पातयामास रथमन्यं समारुहत् ॥२८॥
अभ्ययादथ वेगेन वीरभद्रं रुषान्वितः । ततस्तौ सूर्यसङ्काशौ युयुधाते परस्परम् ॥२९॥
वीरभद्रस्तस्य हयांस्तथा बाणैरपातयत्। धनुश्चिच्छेद दैत्येन्द्रो युयुधे परिघायुधः ॥३०॥
स वीरभद्रं त्वरयाऽभिगम्य जघान दैत्यःपरिघेन मूर्ध्नि ।
स चापि दैत्यः प्रविभिन्नमूर्द्धा पपात भूमौ रुधिरं समुद्गिरन् ॥३१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे दैत्यसेनापराभावो नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

सिंहनाद होने लगे ॥२१॥ जालन्धर ने कुहरा समूह के समान बाण समूह के द्वारा द्युलोक और पृथिवी के अन्तराल को ढँक दिया ॥२२॥ उसने गणेशजी को पाँच बाणो से छेद कर शौभाद्रि को भी पाञ्च बाणों से तथा वीरभद्र को बीस बाणों से मारा ॥२३॥ उस समय कार्तिकेय ने शीघ्रता से शक्ति से छेद दिया। वह शक्ति से छिदा हुआ कुछ मूर्छित सा होकर व्याकुल हो गया ॥२४॥ उसके पश्चात् क्रोध भरे नेत्रों वाला जालन्धर कार्तिकेय को गदा से मारा और वे पृथिवी पर गिर पड़े ॥२५॥ उसी तरह उसने वेग पूर्वक नन्दी को भी पृथिवी पर गिरा दिया । उस समय क्रुद्ध होकर गणेशजी ने उसकी गदा को फरसे से काट दिया॥२६॥ वीरभद्र ने तीन बाणों से जलन्धर के हृदय में प्रहार किया । सात बाणों से उन्होंने उसके घोड़े, ध्वज, धनुष और छत्र को काट दिया ॥२७॥ उस समय अत्यन्त क्रुद्ध दैत्येन्द्र ने भयङ्कर शक्ति को उठाकर गणेशजी को गिरा दिया और वह दूसरे रथ पर चढ़ गया ॥२८॥ उसके पश्चात् क्रुद्ध वह वीरभद्र के समक्ष दौड़ा । उसके बाद सूर्य के समान वे दोनों परस्पर में युद्ध करने लगे ॥२९॥ वीरभद्र ने बाणों से उसके घोड़ों को गिरा दिया । दैत्येन्द्र ने भी परिघ धारण कर बीरभद्र के धनुष को काट दिया ॥३०॥ वह शीघ्रता से वीरभद्र के पास आकर परिघ से उनके शिर पर प्रहार किया । वह दैत्य भी शिर फट जाने के कारण खून उगलते हुए पृथिवी पर गिर पड़ा ॥३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुरण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में दैत्य सेना के पराभव वर्णन नामक एक सौ एकवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०१॥

एक सौ दूसरा अध्याय

नारद उवाच

पतितं वीरभद्रं तु दृष्ट्वा रुद्रगणा भयात् । आगतास्ते रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम् ॥१॥
अथ कोलाहलंश्रुत्वा गणानां चन्द्रशेखरः । अभ्ययाद्वृषभारूढःसङ्ग्रामं प्रहसन्निव॥२॥
रुद्रमायान्तमालोक्य सिहनादैर्गणाःपुनः । निवृत्ताःसङ्गरे दैत्यान्निजघ्नुशरवृष्टिभिः ॥३॥
दैत्याश्च भीषणं रुदं दृष्ट्वा सर्वे विदुद्रुवुः । कार्त्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा पातकानीव तद्भयात् ॥४॥
अथ जालन्धरो दैत्यान्विद्रुतान्प्रेक्ष्य सङ्गरे । रोषदधावच्चडीशं मुञ्चन्बाणान्सहस्रशः ॥५॥
शुम्भो निशुम्भोऽश्वमुखःकालनेमिर्बलाहकः। खड्गरोमा प्रचण्डश्च घस्मरश्च शिवं ययुः ॥६॥
बाणान्धकारसंछन्नं दृष्ट्वा गणबलं शिवः । तद्बाणजालं विच्छिद्य स्वबाणैरावृणोन्नभः ॥७॥
दैत्यांश्च बाणवात्याभिःपीडितानकरोत्तदा। प्रचण्डजालबाणौघैरपातयत भूतले॥८॥
खड्गरोम्णः शिरः कोपात्तथा परशुनाऽच्छिनत् ।
बलाहकस्य च शिरः खट्वाङ्गेनाकरोद् द्विधा ॥९॥
बद्ध्वा च घस्मरं दैत्यं पाशेनाभ्याहनद्भुवि। वृषभेण हताः केचित्केचिद्बाणैर्निराकृताः ॥१०॥
नुशेकुरसुराःस्थातुं गजाः सिंहार्दिता यथा । ततःकोप परीतात्मा वेगाद्रुदं जलन्धरः ॥११॥
आह्वयामास समरे तीव्राशनिसमस्वनः ॥१२॥

जलन्धर उवाच

युध्यस्वाद्य मया सार्धं किमेभिर्निहतैरतव । यच्च किंचिद्बलं तेऽस्ति तद्दर्शय जटाधरः ॥१३॥

शिवजी द्वारा जालन्धर का पराजय वर्णन

नारदजी ने कहा— गिरे हुए वीरभद्र को देखकर भयभीत रुद्र के गण युद्ध त्याग कर चिल्लाते हुए शङ्करजी के पास आये ॥१॥ उसके पश्चात् कोलाहल सुनकर चन्द्रशेखर हँसते हुए बैल पर चढ़कर संग्राम में आये ॥२॥ शङ्करजी को आते हुए देखकर रुद्रगण सिंहनाद करते हुए लौट पड़े और बाण की वृष्टि से दैत्यों को मारने लगे ॥३॥ दैत्य भी भयङ्कर रुद्र को देखकर उसी तरह भाग चले जैसे कार्तिक व्रत करने वाले को देखकर पाप भाग चलते हैं ॥४॥ इसके पश्चात् जलन्धर भागे हुए दैत्यों को देखकर हजारों बाणों को छोड़ते हुए शङ्करजी के समक्ष दौड़ा ॥५॥ शुम्भ, निशुम्भ, अश्वमुख, कालनेमि, बलाहक, खड्गरोमा, प्रचण्ड और घस्मर युद्ध करने के लिए शिवजी के समक्ष गये ॥६॥ बाणों के अन्धकार से ढँके हुए गणों की सेना को देखकर शिवजी ने उस बाण समूह को काटकर अपने बाणों से आकाश को ढँक दिया ॥७॥ उन्होंने दैत्यों को अपने बाणों की वायु से पीड़ित कर दिया । भयङ्कर बाण समूह से उन्होंने उन सबों को पृथिवी पर गिरा दिया ॥८॥ फिर उन्होंने क्रोध करके खड्गरोमा के शिर को फरसे से काट दिया । खट्वाङ्ग से उन्होंने बलाहक के शिर को दो टुकड़ा कर दिया ॥९॥ घस्मर दैत्य को पाश से बाँधकर उन्होंने पृथिवी पर दे मारा । कुछ दैत्यों को वृषभ ने मार दिया और कुछ बाणों से मार दिए गये ॥१०॥ सिंह के द्वारा मर्दित गज के समान असुर उनके समक्ष नहीं ठहर सके । उसके पश्चात् क्रुद्ध जालन्धर ने तीव्र वज्र के समान ध्वनि करते हुए शङ्करजी को युद्ध करने के लिए आवाहित किया ॥११-१२॥ **जालन्धर ने कहा—**

नारद उवाच

इत्युक्त्वा बाणसप्तत्या जघान वृषभध्वजम्। तानप्राप्तांश्छितैर्बाणैश्चिच्छेद प्रहसन्निव ॥१४॥
ततो हयान्ध्वजं छत्रं धनुश्चिच्छेद सप्तभिः। सच्छिन्नधन्वा विरथो गदामादाय वीर्यवान् ॥१५॥
अभ्यधावच्छिवस्तावद्गदाऽबाणैर्द्विधाकरोत्। तथापिमुष्टिमुद्यम्य ययो रुद्रजिघांसया ॥१६॥
तावच्छिवेन बाणौघैःक्रोशमात्रमपाकृतः। ततो जालन्धरो दैत्यो मत्वा रुद्रं बलाधिकम्॥१७॥
ससर्जमायां गान्धर्वीमद्भुतां रुद्रमोहीनीम्। ततो जगुश्च ननृतुर्गन्धर्वाप्सरसांगणाः॥१८॥
तालवेणुमृदङ्गांश्च वादयन्तःपरस्परम्। तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रुद्रो नादविमोहितः ॥१९॥

पतितान्यपि शास्त्राणिकरेभ्यो न विवेद सः।
एकाग्रभूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलन्धरः ॥२०॥
कामार्त्तः सञ्जगामाशु यत्र गौरीस्थिताऽभवत्।
युद्धे शुम्भनिशुम्भाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ ॥२१॥

दशदोर्दण्डपञ्चास्यं स्त्रिनेत्रश्च जटाधरः। महावृषभमारूढः स बभूव जलन्धरः ॥२२॥
अथ रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा। अभ्याययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥२३॥
यावद्ददर्श चार्वङ्गीं पार्वतीं दनुजेश्वरः। तावत्स वीर्यं मुमुचे जडाङ्गश्चाभवत्तदा ॥२४॥
अथ ज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला। जगामान्तर्हिता तावत्सा तदोत्तरमानसम् ॥२५॥
तामदृष्ट्वा तदा दैत्यःक्षणाद्विद्युल्लतामिव। जवेनायात्पुनर्युद्धं यत्र देवो वृषध्वजः ॥२६॥

तुम मेरे साथ युद्ध करो इन सबों के साथ युद्ध करने से क्या लाभ है ? जटाधारी अपना बल मुझे दिखाओ ॥१३॥ **नारदजी ने कहा—** यह कहकर उसने सत्तर बाणों से शङ्करजी को मारा। उन बाणों को हँसते हुए शङ्करजी ने अपने पास पहुँचने से पहले ही काट दिया। इसके पश्चात् सात बाणों से उसके घोड़े, ध्वज, छत्र और धनुष को काट दिया। धनुष के कट जाने पर रथहीन वह बलवान् गदा लेकर ॥१४-१५॥ शिवजी पर दौड़ा तब तक शिवजी ने बाणों से उसकी गदा के दो टुकड़े कर दिया। फिरे भी मुठी उठाकर वह शिवजी को मारने की इच्छा से गया ॥१६॥ तब तक शिवजी ने बाण समूह से उसे एक कोश दूर फेंक दिया। उसके बाद बलवान् जालन्धर रुद्र को अधिक बलवान् जानकर ॥१७॥ उसने रुद्र को मोहित करने वाली अद्भुत गान्धर्वी माया की सृष्टि कर दी। उसी समय गन्धर्व और अप्सराओं के गण नाचने और गीत गाने लगे ॥१८॥ परस्पर में ताल, वेणु और मृदङ्ग को बजाने लगे उसको देखकर रुद्र उस ध्वनि से मोहित हो गये ॥१९॥ उनके हाथ से छूटकर शस्त्र गिर पड़े और शङ्करजी को इसका पता नहीं चला एकाग्र हुए शङ्करजी को देखकर जालन्धर दैत्य कामार्त होकर शीघ्र ही युद्ध में महाबलवान् शुम्भ और निशुम्भ को रखकर पार्वतीजी के पास गया ॥२०-२१॥ दश भुजाएँ, पाँच मुख और तीन नेत्र वाला जटा धारण कर तथा वृषभ पर आरूढ जालन्धर पार्वतीजी के पास गया ॥२२॥ उसके बाद आते हुए शङ्करजी को देखकर वे सखियों के बीच से शङ्करजी के समक्ष गयीं ॥२३॥ पार्वतीजी को देखते ही उस दैत्येश्वर का वीर्यपात हो गया उसके अङ्ग जड़ हो गये ॥२४॥ पार्वतीजी उसको दैत्येन्द्र जानकर भयभीत हो गयी और वे अर्न्तधान होकर मान सरोवर के उत्तर तट पर चली गयी ॥२५॥ पार्वतीजी को न देखकर दैत्य क्षणभर में बिजली के समान युद्ध में शङ्करजी के पास आया ॥२६॥ पार्वतीजी ने भी मन

पार्वत्यपि महाविष्णुं सस्मार मनसा तदा। तावद्ददर्श तं देवी सोपविष्टं समीपगम् ॥२७॥

पार्वत्युवाच

विष्णो जलन्धरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम्। तत्किं न विदितं तेऽस्ति चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

तेनैव दर्शितः पन्था वयमप्यन्वयाहमहे । नान्यथा स भवेद्वध्यः पातिव्रत्यासुरक्षितः ॥२९॥

नारद उवाच

जगाम विष्णुरित्युक्त्वा पुनर्जालन्धरंपुरम्। अथ रुद्रश्च गान्धर्वाद्विमुक्तः सङ्गरेस्थितः ॥३०॥
अन्तर्धानगतां मायां दृष्ट्वा तु बुबुधे तदा ॥३१॥

ततःशिवो विस्मितमानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा ।
स चापि दैत्यःपुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैःसमवाकिरद्रणे ॥३२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे दैत्यकपटवर्णनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

से भगवान् विष्णु का स्मरण किया और उन्होंने देखा कि उनके पास ही भगवान् विष्णु बैठे हैं ॥२७॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे विष्णो ! जालन्धर दैत्य ने अत्यन्त उत्पात मचा रखा है । आपको उस दुष्ट की चेष्टा ज्ञात नहीं है क्या ?॥२८॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** उसने जिस मार्ग को दिखाया है हम भी उसका अनुसरण कर रहे हैं । दूसरी रीति से वह मारा नहीं जा सकता है, वह पातिव्रत्य से सुरक्षित है ॥२९॥ **नारदजी ने कहा—** यह कहकर भगवान् विष्णु जालन्धरपुर में चले गये । उसके बाद युद्ध में स्थित रुद्र भी गन्धर्वी माया से मुक्त हो गये ॥३०॥ माया के अन्तर्धान हुए देखकर वे जाग गये ॥३१॥ उसके बाद आश्चर्यित भगवान् शिव युद्ध करने के लिए जालन्धर के समक्ष गये । वह दैत्य भी पुनः आये हुए शिव को देखकर युद्ध में बाण समूह से प्रहार किया ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में दैत्य के कपट वर्णन नामक एक सौ दोवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०२॥

एक सौ तिसरा अध्याय

नारद उवाच

विष्णुर्जालन्धरं गत्वा तद्दैत्यपुटभेदनम्। पातिव्रत्यस्य भङ्गाय वृन्दयाश्चाकरोन्मतिम् ॥१॥
अथ वृन्दारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्शह। भर्त्तारं महिषारूढं तैलाभ्यक्तं दिगम्बरम् ॥२॥
कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम्। दक्षिणाशांगतं मुण्डं तपसा व्यावृतं तदा ॥३॥
स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवात्मना सह। ततःप्रबुद्धा सा बाला स्वस्वप्नं प्रविचिन्वती ॥४॥
ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निश्चलं मुहुः। तदनिष्टमिति ज्ञात्वा रुदती भयविह्वला ॥५॥
कुत्रचिन्नालभच्छर्म गोपुराट्टालभूमिषु। ततःसखीद्वययुता नगरोद्यानमागगमत् ॥६॥
तत्रापि सा गता बाला नालभत्कुत्रचित्सुखम्।
वनाद्वनान्तरं याता नैव वेदात्मनस्तदा ॥७॥
ततो भ्रमन्ती सा बाला ददर्शातीविभीषणौ। राक्षसौ सिंहवदनौ दंष्ट्रानयनभीश्षणौ ॥८॥
तौ दृष्ट्वा विह्वलातीव पलायनपरा तदा। ददश्र तापसं शान्तं सशिष्यं मौनमास्थितम् ॥९॥
ततस्तत्कण्ठ आसज्य निजां बाहुलतां भयात्।
मुने मां रक्ष शरणमागतामित्यभाषत ॥१०॥
मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसानुगतां तदा। हुङ्करेणैव तो घोरौ चकार विमुखौ रुषा ॥११॥
तद्धुङ्कारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा तौ गमनं गतौ। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वृन्दावचनमब्रवीत् ॥१२॥

दुःस्वप्न देखकर उद्विग्न वृन्दा का वनों में भ्रमण

नारदजी ने कहा— भगवान् विष्णु ने जालन्धरपुर में जाकर उस दैत्य के पुटभेदन और वृन्दा के पतिव्रत्पा को भङ्ग करने का मन बनाया ॥१॥ देवी वृन्दा ने स्वप्न में अपने पति को महिष पर सवार, तेल लगाये हुए और नग्न ॥२॥ काले पुष्पों की माला पहने हुए, प्रेतों के समूह से सेवित देखा। उसका शिर दक्षिण दिशा में चला गया है। वह अन्धकार से रहित है ॥३॥ उसने देखा की उसकी नगरी उसके साथ समुद्र में अचानक डूब गयी। उसके बाद जगकर वह अपने स्वप्न का विचार करने लगी ॥४॥ उसने छिद्र से युक्त सूर्य को उदित हुए तथा निश्चल देखा उसको अनिष्ट समझकर भयभीत होकर वह रोने लगी॥५॥ गोपुर, अटारी पर या जमीन पर उसको कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी। उसके बाद अपनी दो सखियों के साथ नगर के उद्यान में आयी ॥६॥ वहाँ पर भी जाकर वृन्दा कहीं सुख नहीं पायी। उसे अपना भी ख्याल नहीं रहा, वह एक वन से दूसरे वन में गयी ॥७॥ घूमती हुयी उसने सिंह के समान मुख वाले तथा भयानक दाँत और नेत्र वाले दो भयङ्कर राक्षसों को देखा ॥८॥ उन दोनों को देखकर भयभीत वह भागने लगी। तब उसने शिष्यों के साथ मौन धारण किए हुए एक तपस्वी को बैठे देखा॥९॥ उसके बाद वह भयभीत उनके गले में अपनी बाहुओं को डाल दी और कही मुने मैं आपके शरण में हूँ आप मेरी रक्षा करें ॥१०॥ मुनि ने उसको भयभीत देखकर और उसके पीछे राक्षसों को आते देखकर अपने हुङ्कार मात्र से उन दोनों को भगा दिया ॥११॥ ऋषि के हुङ्कार से डरकर आकाश में गये हुए उन दोनों को देखकर वृन्दा ने मुनि को साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहा ॥१२॥ **वृन्दा ने कहा—** हे मुने! आपने भयङ्कर इन दोनों

वृन्दोवाच

रक्षिताहं त्वया घोराद्भयात्तस्मात्कृपानिधे । किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि कृपयातन्निशामय ॥१३॥

जलन्धरो हि मे भर्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो ! ।
स तत्रास्ति कथं युद्धे तन्मे कथय सुव्रत ॥१४॥

नारद उवाच

मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत। तावत्कपीशावायातौ तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ ॥१५॥
ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ। गत्वा क्षणार्धादागत्य वानरावग्रतःस्थितौ ॥१६॥

शिरःकबन्धहस्तौ तौ दृष्ट्वाब्धितनयस्य सा ।
पपात मूर्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता ॥१७॥
कमण्डलुजलैः सिक्ता मुनिनाऽऽश्वासिता तदा ।
स्वभर्तृभाले सा भालं कृत्वा खिन्ना रुरोद ह ॥१८॥

वृन्दोवाच

यःपुरा सुखसंवादैर्विनोदयसि मां विभो। स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसाम् ॥१९॥
येन देवाः सगन्धर्वा निर्जिता हरिणा सह । स कथं तापसेन त्वं त्रैलोक्यविजयी हतः॥२०॥

नारद उवाच

रुदित्वेति तदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥२१॥

वृन्दोवाच

कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीवनं मेऽस्य सुप्रियम् ।
त्वमेवास्यापुनःशक्तो जीवनाय मतो मम ॥२२॥
अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहस्य मुनिरब्रवीत् ॥२३॥

राक्षसों से मेरी रक्षा की है । आपसे कुछ कहना चाहती हूँ उसे आप सुनें ॥१३॥ हे प्रभो ! मेरे पति जालन्धर हैं रुद्र से युद्ध करने गये हैं, वे वहाँ पर कैसे हैं इसे मुझे बतलायें ॥१४॥ **नारदजी ने कहा—** उसकी वाणी को सुनकर मुनि ने कृपा पूर्वक ऊपर की ओर देखा उसी समय वहाँ दो वानर आये और मुनि को प्रणाम करके उनके सामने बैठ गये ॥१५॥ उसके पश्चात् उनके भौंहों का इशारा पाकर वे दोनों आकाश में चले गये । जाकर आधा क्षण में आकर उनके सामने बैठ गये ॥१६॥ जलन्धर के शिर और कबन्ध को हाथ में लिए हुए उन दोनों को देखकर पति की मृत्यु से दुःखी वृन्दा मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ी ॥१७॥ उसके बाद मुनि द्वारा कमण्डलु के जल से सींचने तथा मुनि के द्वारा आश्वस्त वह अपने पति के ललाट पर अपना ललाट रखकर रोने लगी ॥१८॥ पहले सुखमय बातों से जो आप मुझे प्रसन्न करते थे वही आप निरपराध और प्रियतमा मुझसे क्यों नहीं बोलते हैं ?॥१९॥ आपने श्रीहरि, देवता और गन्धर्वों को जीत लिया था उसी त्रैलोक्य विजयी आपको एक तपस्वी ने कैसे मार दिया ?॥२०॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से रोकर वृन्दा मुनि से बोली ॥२१॥ **वृन्दा ने कहा—** हे कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ ! इसका जीवन मुझको अतिप्रिय है मैं मानती हूँ कि आपही इनको फिर जीवित कर सकते हैं ॥२२॥ उसकी बात सुनकर मुनि जोर से हँसकर कहे ॥२३॥ **मुनि ने कहा—** इसको रुद्र ने युद्ध में मारा है अतएव यह

मुनिरुवाच

नायं जीवयितुं शक्यो रुद्रेण निहतो युधि। तथापि त्वत्कृपाविष्ट एनं संजीवयाम्यहम्॥२४॥

नारद उवाच

इत्युक्तवान्र्दधे यावत्तावत्सागरनन्दनः। वृन्दामालिङ्ग्य तद्वक्त्रं चुचुम्बे प्रीतिमानसः॥२५॥
अथ वृन्दापि भर्त्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा। रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम्॥२६॥

कदाचित्सुरतस्यान्ते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव हि ।
निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥२७॥

वृन्दोवाच

धिक्तवेदं हरेशीलं परदाराभिगामिनः। ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ् मायाप्रत्यक्षतापसः॥२८॥

यौ त्वया मायया द्वाःस्थौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ।
तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः ॥२९॥
त्वं चापि भार्यादुःखार्तो वने कपिसहायवान् ।
भ्रम सर्पेश्वरेणायं यस्तोशिष्यत्वमागतः ॥३०॥
इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम् ।
विष्णुना वार्यमाणापि तस्मिन्नासक्तमानसा ॥३१॥
ततो हरिस्तामनुसंस्मरन्मुहुर्वृन्दाचिताभस्मरजोऽवगुण्ठितः ।
तत्रैव तस्थौ मुनिसिद्धसङ्घैःप्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शान्तिम् ॥३२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशतसाहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे वृन्दाचिताग्निप्रवेशो नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

जी नहीं सकता है फिर भी तुम पर करुणा करके मैं इसे जीवित कर रहा हूँ ॥२४॥ **नारदजी ने कहा—** यह कहकर मुनि ज्यो ही अन्तर्धान हुए त्यों ही जलन्धर ने वृन्दा का आलिङ्गन किया और उसके मुख को प्रेम से चूम लिया ॥२५॥ वृन्दा ने भी अपने पति को देखकर प्रसन्न होकर उसी वन में कई दिनों तक रहकर उसके साथ रमण करने लगी ॥२६॥ एक बार सुरति क्रिया के अन्त में उसको विष्णु देखकर वृन्दा ने उनको डाँटा और क्रोध पूर्वक कही ॥२७॥ **वृन्दा ने कहा—** हे परस्त्रीगामी ! श्री हरे आपके शील को धिक्कार है । मैंने प्रत्यक्ष जान लिया कि तुम ही तपस्वी बने थे ॥२८॥ तुमने माया से जिन दो द्वारपालों को दिखाया था वे ही दोनों राक्षस होकर तुम्हारी पत्नी का अपहरण करेंगे ॥२९॥ तुम भी वन में पत्नी के दुःख से दुःखी होकर वानरों की सहायता प्राप्त करोगे । जो तुम्हारा शिष्य बना था उस सर्पेश्वर (शेषनाग) के साथ वन में भ्रमण करोगे ॥३०॥ यह कहकर वृन्दा अग्नि में प्रवेश कर गयी । यद्यपि विष्णु ने उसे रोकना चाहा फिर भी वह रूकी नहीं क्योंकि उसका मन उसी में लगा था ॥३१॥ उसके पश्चात् विष्णु ने वृन्दा का स्मरण करते हुए उसकी चिता के भस्म को अपने शरीर पर लगा लिया मुनियों और सिद्ध समुदाय के द्वारा समझाये जाने पर भी उनको शान्ति नहीं मिली ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में वृन्दा का चिताग्नि में प्रवेश वर्णन नामक एक सौ तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०३।।

एक सौ चौथा अध्याय

नारद उवाच

ततो जलन्धरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम्। चकार मायया गौरीं त्र्यम्बकं मोहयंस्तदा॥१॥
रथोपरिगतां दृष्ट्वा रुदतीं च तदा शिवः। शुम्भनिशुम्भदैत्यैश्च वध्यमानां ददर्श सः॥२॥
गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा शिवोऽप्युद्विग्नमानसः।
अवाङ्मुखःस्थितस्तूष्णीं विस्मृत्य स्वपराक्रमम्॥३॥
ततो जलन्धरो वेगात्त्रिभिर्विव्याध सायकैः।
आपुङ्खमग्नैस्तं रुद्रं शिरस्युरसि चोदरे॥४॥
ततो जज्ञे स तां मायां विष्णुना संप्रबोधितः।
रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालातिभीषणः॥५॥
तस्यातीव महारौद्रं रूपं दृष्ट्वा महासुरः। न शेकुःप्रमुखेस्थातं भेजिरे च दिशोदश॥६॥
ततःशापं ददौ देवस्तयोःशुम्भनिशुम्भयोः। मम युद्धादपक्रान्तौ गौर्यावध्यौ भविष्यथः॥७॥
पुनर्जलन्धरो वेगाद्ववर्ष निशितैःशरैः। बाणान्धकारसंछन्नं यथा भूमितलं महत्॥८॥
यावद्रुद्रःप्रचिच्छेद तस्य बाणांस्त्वरान्वितः। तावत्स परिघेणाशु जघान वृषभं बली॥९॥
वृषस्तेन प्रहारेण परावृत्तो रणाङ्गणात्। रुद्रेणाकृष्यमाणोऽपि न तस्थौ रणभूमिषु॥१०॥
ततःपरमसंक्रुद्धो रुद्रो रौद्रवपुर्धरः। चक्रं सुदर्शनं वेगाच्चिक्षेपादित्यवर्चसम्॥११॥
प्रदहद्रोदसी वेगात्तदासाद्य जलन्धरम्। जहार तच्छिरःकायान्महदायतलोचनम्॥१२॥

शङ्करजी द्वारा युद्ध में जालन्धर का वध

नारदजी ने कहा— उसके पश्चात् अद्भुत पराक्रम वाले शङ्करजी को देखकर जलन्धर ने माया से गौरी का निर्माण करके शिवजी को मोहित कर दिया॥१॥ पार्वतीजी को रोती हुयी और रथ के ऊपर शुम्भ निशुम्भ के द्वारा मारी जाती हुयी शिवजी ने देखा॥२॥ उस तरह की गौरी को देखकर शिवजी भी उद्विग्न हो गये। वे अपने पराक्रम को भूलकर चुपचाप नीचे मुँह करके बैठ गये॥३॥ उस समय जलन्धर ने तीन बाणों से वेग पूर्वक शङ्करजी को छेद दिया वे तीनों बाण शिवजी के शिर और पेट में पुङ्ख पर्यन्त धस गये॥४॥ उस समय विष्णु के द्वारा बोधित होकर उन्होंने जान लिया कि यह माया है। उन्होंने ज्वाला समूह से युक्त अपना भयङ्कर रूप को धारण कर लिया॥५॥ शङ्करजी का अत्यन्त भयङ्कर रूप देखकर महाअसुर उनके सामने ठहर न सके और दशों दिशाओं में भागने लगे। उसके पश्चात् शङ्करजी ने शुम्भ और निशुम्भ को शाप दिया कि मेरे युद्ध से भागे हुए तुमलोगों को गौरी मारेंगी॥६-७॥ इसके पश्चात् जालन्धर ने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की उसके बाणों से ढँकी हुयी पृथिवी पर अन्धकार फैल गया॥८॥ जब तक रुद्र ने उसके बाणा को तीक्ष्ण बाणों से काटा तब तक जालन्धर ने वृषभ को परिघ से मारा॥९॥ उस प्रहार से वृषभ युद्धाङ्गण से भाग चला। रुद्र के द्वारा रोके जाने पर वह युद्धभूमि में रुका नहीं॥१०॥ उसके पश्चात् अत्यन्त क्रुद्ध रौद्र शरीरधारी शङ्करजी ने सूर्य के समान कान्ति वाले सुदर्शन चक्र को फेंका॥११॥ अपने वेग से आकाश और पृथिवी को संतप्त करता हुआ वह जालन्धर के विशाल नेत्रों वाले

रथात्कायःपपातोर्व्यां नादयन्वसुधातलम्। तेजश्च निर्गतं देहात्तद्रुदे लयमागतम् ॥१३॥
दृष्ट्वा देहोद्भवं तेजस्तद्गौरीशे लयंगतम्। अथ चन्द्रादयो देवा हर्षादुत्फुल्लोचनाः ॥
प्रणम्य शिरसा रुद्रं शशंसुर्विष्णुचेष्टितम् ॥१४॥

देवा ऊचुः

महादेव त्वया देवा रक्षिताःशत्रुजाद्भयात्। किंचिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किं करवामहे॥१५॥
वृन्दालावण्यसंभ्रान्तो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः ॥१६॥

ईश्वर उवाच

गच्छध्वं शरणं देवा विष्णोर्मोहापनुत्तये। शरण्यां मोहिनीं मायां सावःकार्यं करिश्यति॥१७॥

नारद उवाच

इत्युत्तवान्तर्दधे देवःसहभूतगणैस्तथा। देवाश्च तुष्टवुर्मूलप्रकृतिंभक्तवत्सलाम् ॥१८॥

देवा ऊचुः

यदुद्भवाः सत्त्वरजस्तमोगुणाःसर्गस्थितिध्वंसनिदानकारणम् ।
यदिच्छया विश्वमिदं भवाभवौ तनोति शुद्धां प्रकृतिं नताःस्म ताम् ॥१९॥
याहि त्रयोविंशतिभेदसंज्ञिता जगत्यशेषे समधिष्ठिता पुरा ।
यद्रूपकर्माणि जडास्त्रयोऽपि ते देवा विदुर्न प्रकृतिं नताःस्म ताम् ॥२०॥
यद्भक्तियुक्ताःपुरुषांस्तु नित्यं दारिद्र्यव्यामोहपरा भवादिकम् ।
न प्राप्नुवत्येव हि भक्तवत्सलां सदैव विष्णोःप्रकृतिं नताःस्म ताम् ॥२१॥

नारद उवाच

स्तोत्रमेतत्त्रिसन्ध्यं यःपठेदेकाग्रमानसः। दारिद्र्यमोहदुःखानि न कदाचित्स्पृशन्तितम् ॥२२॥

शिर को शरीर से काट दिया ॥१२॥ पृथिवी को ध्वनित करता हुआ जालन्धर का शरीर रथ से पृथिवी पर गिर पड़ा। जालन्धर के शरीर से निकला तेज रुद्र के शरीर में लीन हो गया ॥१३॥ उसके देह से उत्पन्न तेज के शङ्करजी में लीन होते देखकर हर्ष से विकसित नेत्र वाले चन्दमा आदि देवता शङ्करजी को प्रणाम करके उनको भगवान् विष्णु की चेष्टाओं को बतलाया ॥१४॥ **देवताओं ने कहा—** महादेव ! आपने शत्रु के भय से देवताओं की रक्षा की है। दूसरी कुछ बातें जो हुयी हैं उसके विषय में हमलोग क्या कहें ? वृन्दा के सौन्दर्य से मोहित विष्णु वहीं रह रहे हैं ॥१५-१६॥ **ईश्वर ने कहा—** हे देवताओं ! विष्णु का मोह दूर करने के लिए आपलोग उनकी शरणागति करें। रक्षा करने वाली मोहिनी माया आपलोगों का कार्य करेगी ॥१७॥ **नारदजी ने कहा—** यह कहकर भूतगणों के साथ शङ्करजी अन्तर्धान हो गये और देवताओं ने भक्त वत्सला मूल प्रकृति की स्तुति की ॥१८॥ **देवताओं ने कहा—** सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण सत्त्व, रजस्, एवं तमोगुण जिससे उत्पन्न हुए हैं जो अपनी इच्छा से संसार की सृष्टि, स्थिति और संहार करती हैं हम उन शुद्ध प्रकृति को नमस्कार करते है ॥१९॥ तेइस भेदों वाली जिसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् अधिष्ठित था, जिसके तीनों रूप और कर्म जड़ होने पर भी उन्हें देवता नहीं जान सके उस प्रकृति को हमलोग नमस्कार करते हैं ॥२०॥ जिनकी भक्ति करने वाले पुरुषों को कभी भी दारिद्र्य और व्यामोह युक्त संसार इत्यादि नहीं होते हैं उस भगवान् विष्णु को, भक्त वत्सल प्रकृति को हमलोग नमस्कार

इति स्तुवन्तस्ते देवास्तेजोमण्डलमास्थिताम् ।
ददृशुर्गगने तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तराम् ॥२३॥
तन्मध्याद्भारतीं सर्वे ददृशुर्व्योमचारिणीम् । अहमेव त्रिधाभिन्ना तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः ॥२४॥
गौरी लक्ष्मीःस्वरा चेति रजःसत्त्वतमोगुणैः ।
तत्र गच्छत तत्कार्यं विधास्यन्ति च वः सुराः ॥२५॥

नारद उवाच

शृण्वतामिति देवानामन्तर्धानमगान्महः । देवानां विस्मयोत्फुल्लनेत्राणां तत्तदा नृप ॥२६॥
ततःसर्वेऽपि ते देवा गत्वा तद्वाक्यनोदिताः ।
गौरीं लक्ष्मीं स्वरां चैव प्रणेमुर्भक्तितत्पराः ॥२७॥
ततस्तास्तान्सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान्भक्तवत्सलाः । बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यान्यूचुश्च भूमिप ! ॥२८॥

देव्य ऊचुः

इमानि क्षेत्रबीजानि विष्णुर्यत्रावतिष्ठते । निर्वपध्वं ततःकार्यं भवतां सिद्धिमेष्यति ॥२९॥
ततस्तु हृष्टाः सुरसिद्धसङ्घाः प्रगृह्य बीजानि विचिक्षिपुस्ते ।
वृन्दान्वितो भूमितले स यत्र विष्णुःसदा तिष्ठति सौख्यहीनः ॥३०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशतसहस्यां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे जालन्धरवधो नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

करते हैं ॥२१॥ **नारदजी ने कहा—** जो व्यक्ति इस स्तोत्र को तीनों कालों में पढ़ता है उसको कभी भी दरिद्र्य, मोह और दुःख नहीं होता है ॥२२॥ इस तरह स्तुति करते हुए देवताओं ने आकाश में तेजो मण्डल के बीच बैठी हुयी प्रकृति को देखा जिसके ज्वाला से सारी दिशाएँ व्याप्त थीं । उसके बीच में विद्यमान तथा आकाश में संचरण करने वाली सरस्वती को देवताओं ने देखा । **सरस्वती ने कहा—** मैं ही तीन प्रकार के गुणों से तीन शरीर में रहती हूँ ॥२३-२४॥ जो गुण, सत्त्वगुण स्वरूप क्रमशः गौरी, लक्ष्मी,सरस्वती हैं । तुम लोग उन्हीं के पास जाओ, वे ही आपलोगों का कार्य करेंगी ॥२५॥ **नारदजी ने कहा—** इन बातों को देवताओं के सुन लेने पर वह तेज अन्तर्धान हो गया । हे राजन् ! उस समय देवताओं के नेत्र विस्मय से विकसित हो गये थे ॥२६॥ उसके पश्चात् उस वाक्य से प्रेरित होकर सभी देवता जाकर भक्तिपूर्वक, गौरी, लक्ष्मी और सरस्वती को प्रणाम किए ॥२७॥ उसके पश्चात् उन देवताओं को देखकर हे राजन् ! भक्त वत्सला उन सबों को वे बीज प्रदान कीं और कहीं ॥२८॥ **देवियों ने कहा—** जहाँ पर विष्णु बैठे हैं वहीं पर इन बीजों को बो दो उससे आपलोगों का कार्य सिद्ध हो जायेगा ॥२९॥ उसके पश्चात् प्रसन्न हुए देवता और सिद्धगण उन बीजों को लेकर वहाँ फेंक दिये जहाँ पर वृन्दा से युक्त पृथिवी पर दुःखी भगवान् विष्णु बैठे थे ॥३०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में जालन्धर वध वर्णन नामक एक सौ चारवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०४।।

एक सौ पाचवाँ अध्याय

नारद उवाच

क्षिप्तेभ्यस्तबीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रयोऽभवन्। धात्री च मालतीचैवतुलसी च नृपोत्तम॥१॥

धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री मा भवा मालती स्मृता ।
गौरीभवा च तुलसी तमःसत्त्वरजोगुणाः ॥२॥
स्त्रीरूपिण्यौ वनस्पत्यौ दृष्ट्वा विष्णुस्तदा नृपः ।
उत्तस्थौ संभ्रमाद् वृन्दारूपातिशयमोहितः ॥३॥

ददर्श तास्तदा मोहात्कामासक्तेन चेतसा । तं चापि तुलसी धात्री रागेणैव व्यलोकयत् ॥४॥
यच्च लक्ष्म्या पुराबीजं माययैव समर्पितम्। तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यायुताऽभवत् ॥५॥
अतःसा बर्बरीत्याख्या माधवस्यातिगर्हिता । धात्री तुलस्यैतद्रागात्तस्यप्रीतिप्रदे सदा॥६॥

ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु ।
वैकुण्ठमगमद्धृष्टःसर्वदेव नमस्कृतः ॥७॥
कार्तिकोद्यापने विष्णोस्तस्मात्पूजा विधीयते ।
तुलसीमूलदेशे तु प्रीतिदा सा यतः स्मृता ॥८॥

तुलसीकाननं राजन्गृहे यस्यावतिष्ठते । तद्गृहं तीर्थरूपं तु नायान्ति यमकिङ्कराः ॥९॥
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम् । रोपयन्ति नरश्रेष्ठा न ते पश्यन्ति भास्करीम् ॥१०॥
दर्शनं नर्मदायास्तु गङ्गास्नानं तथैव च । तुलसीवनसंसर्गः सममेतत्त्रयं स्मृतम् ॥११॥

तीन बीजों से उत्पन्न आँवला, मालती और तुलसी को देखने से भगवान् विष्णु के भ्रम का नाश

नारदजी ने कहा— हे नृपोत्तम ! उन बोये गये बीजों से तीन वनस्पतियाँ उत्पन्न हुयीं आँवला, मालती और तुलसी । ब्रह्मणी से आँवला उत्पन्न हुआ, लक्ष्मी से मालती उत्पन्न हुयी और गौरी से तुलसी उत्पन्न हुयी । ये क्रमशः तमोगुणी, सत्त्वगुणी और रजोगुणी हैं ॥१-२॥ हे राजन् ! उन स्त्री रूपधारिणी वनस्पतियों को देखकर भगवान् वृन्दा के रूप से मोहित विष्णु वहाँ से शीघ्रता से उठे ॥३॥ और मोह के कारण कामार्त अन्तःकरण से उन तीनों को उन्होंने देखा तुलसी और आँवला ने भी उनको प्रेम पूर्वक देखा ॥४॥ चूकि माया ने प्राचीन काल में लक्ष्मी के बीज को समर्पित किया उसी के कारण उससे उत्पन्न नारी उससे ईर्ष्या करने लगी ॥५॥ अतएव उसका नाम बर्बरी हुआ और श्रीभगवान् के लिए वह अत्यन्त निन्दित है, धात्री और तुलसी का प्रेम होने के कारण वे दोनों भगवान् को अत्यन्त प्रसन्न करने वाली है ॥६॥ उसके बाद दुःख को भूलकर भगवान् विष्णु उन दोनों के साथ ही प्रसन्न होकर वैकुण्ठ आये॥७॥ इसलिए भगवान् के व्रत कार्तिक के उद्यापन में तुलसी के मूल में भगवान् की पूजा की जाती है, क्योंकि तुलसी भगवान् को प्रसन्न करने वाली हैं ॥८॥ हे राजन् ! जिसके घर में तुलसी वन रहता है वह घर तीर्थ स्वरूप है, वहाँ यमदूत नहीं आते हैं ॥९॥ तुलसी वन सभी पापों का विनाशक और कामनाओं को पूर्ण करने वाला है, जो श्रेष्ठ तुलसी रोपते हैं वे यमराज के लोक में नहीं जाते हैं ॥१०॥

रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् । तुलसी दहते पापंवाङ्मनःकायसंचितम् ॥१२॥
तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्धरिहरार्चनम् । न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी न संशयः ॥१३॥
पुष्करादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा । वासुदेवादयो देवास्तिष्ठन्ति तुलसीदले॥१४॥
तुलसीमञ्जरीयुक्तो यदि प्राणान्विमुञ्चति । विष्णोःसायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यं नृपोत्तम ॥१५॥
तुलसीमृत्तिकालिप्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति । यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि॥१६॥
तुलसीकाष्ठजं यस्तु चन्दनं धारयेन्नरः । तद्देहं नस्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत्॥१७॥
तुलसीविपिनच्छाया यत्रयत्र भवेन्नृप । तत्र श्राद्धं प्रकर्त्तव्यं पितृणां दत्तमक्षयम्॥१८॥
धात्रीछायासु यः कुर्यात्पिण्डदानं नृपोत्तम। तृप्तिं च यान्ति पितरस्तस्य ये नरके स्थिताः॥१९॥
मूर्ध्निपाणौमुखेचैव देहे च नृपसत्तम । धत्ते धात्रीफलं यस्तु स विज्ञेयो हरिःस्वयम् ॥२०॥
धात्रीफलं च तुलसी मृत्तिका द्वारकोद्भवा । यस्य देहे स्थिता नित्यं स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२१॥
धात्रीफलविमिश्रैस्तु तुलसीदलमिश्रितैः । जलैः स्नाति नरस्तस्य गङ्गास्नानफलं स्मृतम्॥२२॥
देवार्चनं नरःकुर्याद्धात्रीपत्रैःफलैरपि। सुवर्णपुष्पैर्विविधैरर्चनस्याप्नुयात्फलम् ॥२३॥

तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञाःसर्वेऽपि कार्त्तिके ।
नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलाश्रिते ॥२४॥

द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्तिके । लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान्॥२५॥

नर्मदा का दर्शन, गङ्गा में स्नान और तुलसी का सान्निध्य ये तीनों एक समान हैं ॥११॥ रोपने, पोसने, सींचने, दर्शन करने और स्पर्श करने वाले मनुष्यों के कायिक, वाचिक तथा मानसिक पापों को तुलसी भस्म कर देती हैं ॥१२॥ जो तुलसी की मञ्जरी से श्रीहरि की अर्चना करता है वह कभी गर्भ में नहीं आता है, वह मोक्ष का पात्र है, इससे कोई संशय नहीं है ॥१३॥ पुष्कर आदि तीर्थ, गङ्गा आदि नदियाँ और वासुदेव आदि देवता तुलसी दल में विद्यमान रहते हैं ॥१४॥ तुलसी की मञ्जरी धारण करके यदि कोई मरता है तो हे राजन् ! मैं सत्य कहता हूँ कि वह भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥१५॥ तुलसी की मिट्टी को लेपकर जो प्रणत्याग करता है उसके सैकड़ों पापों के रहने पर भी यम उसको नहीं देख सकते हैं ॥१६॥ जो तुलसी के काष्ठ का चन्दन लगाता हैं, राजन् उसके शरीर को इस लोक में किए हुए पाप स्पर्श नहीं कर सकते है ॥१७॥ हे राजन् ! जहाँ-जहाँ तुलसी वन की छाया पड़ती है वहाँ पर किया गया पितरों का श्राद्ध अक्षय हो जाता है ॥१८॥ नृपोत्तम ! जो आँवले की छाया में श्राद्ध करता है, उसके नरक में भी विद्यमान पितृगण तृप्त हो जाते हैं ॥१९॥ जो अपने शिर, हाथ, मुँह और देह में आँवला धारण करता है उसको साक्षात् श्रीहरि स्वरूप जानना चाहिए ॥२०॥ आँवला का फल तुलसी और द्वारका की मिट्टी को जो अपने देह में धारण करता है वह जीव मुक्त कहलाता ॥२१॥ आँवला के फल से मिश्रित जल में तुलसी दल डालकर जो मनुष्य स्नान करता है उसको गङ्गा स्नान का फल मिलता है॥२२॥ जो मनुष्य आँवला के पत्ते और फल से देवार्चना करता है, उसको अनेक प्रकार के सुवर्ण पुष्पों से अर्चना करने का फल मिलता है ॥२३॥ कार्तिक के महीने में जब तुला राशि के सूर्य होते हैं तब सभी तीर्थ मुनिगण, देवता और यज्ञ आँवलें की जड़ में निवास करते हैं ॥२४॥ जो मनुष्य द्वादशी के दिन तुलसी के पत्ते को और कार्तिक में आँवले के पत्ते को तोड़ता है वह अति निन्दित नरकों में जाता

धात्रीच्छायां समाश्रित्य कार्त्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः ।
अन्नसंसर्गजं पापमावर्षं तस्य नश्यन्ति ॥२६॥
धात्रीमूले तु यो विष्णुं कार्त्तिकेऽर्चयते नरः ।
विष्णुक्षेत्रेषु सर्वेषु पूजितस्तेन सर्वदा ॥२७॥
धात्री तुलस्योर्माहात्म्यमपि देवश्चतुर्मुखः। न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः॥२८॥
धात्रीतुलस्युद्भवकारणं यः शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या ।
विधूतपाप्मा सह पूर्वजैश्च स्वर्गं व्रजत्यग्र्यविमानसंस्थः ॥२९॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायांषष्ठे उत्तरेखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥
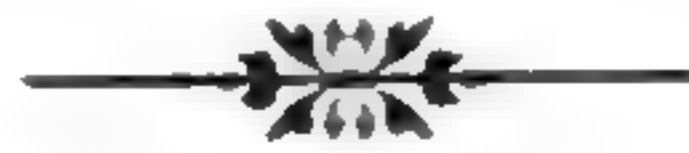
एक सौ छठा अध्याय

पृथुरुवाच

सेतिहासमिदं ब्रह्मन्माहात्म्यंकथितं त्वया। अत्याश्चर्यकरंसम्यक्तुलस्यास्तु श्रुतं महत्॥१॥
यदूर्जव्रतिनःपुंसः फलं महदुदाहृतम्। तत्पुनर्ब्रूहि माहात्म्यं केन चीर्णमिदं कथम् ॥२॥

नारद उवाच

आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा। ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिर्द्धमदत्तेति विश्रुतः ॥३॥

है॥२५॥ जो मनुष्य आँवले की छाया में बैठकर कार्तिक में भोजन करता है उसके वर्ष भर के अन्न संसर्ग जन्य दोष विनष्ट हो जाते हैं ॥२६॥ जो मनुष्य आँवले की जड़ में बैठकर भगवान् विष्णु की पूजा करता है उसने सदा-सदा के लिए विष्णु क्षेत्रों की पूजा कर दी ॥२७॥ आँवला और तुलसी दोनों के माहात्म्य को श्रीभगवान् के ही समान ब्रह्माजी भी नहीं वर्णन कर सकते हैं ॥२८॥ जो आँवला और तुलसी दोनों की उत्पत्ति की कथा को सुनता है, वह पाप रहित अपने पूर्वजों के साथ श्रेष्ठ विमान पर चढकर स्वर्ग जाता है ॥२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में आँवला और तुलसी के माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०५।।

कलहा चरित्र वर्णन

महाराज पृथु ने कहा— हे ब्रह्मन् ! आपने इतिहास पूर्वक माहात्म्य का वर्णन किया है । मैंने अत्यन्त आश्चर्यकारी तुलसी का माहात्म्य सुना ॥१॥ जो कार्तिक व्रत करने वालों का माहात्म्य आपने बतलाया कि इस व्रत को किसने किया ॥२॥ **नारदजी ने कहा—** प्राचीन काल में सह्याद्रि, के करवीरपुर

विष्णुव्रतकरः शश्वद्विष्णुपूजारतः सदा । द्वादशाक्षरविद्यायां जपनिष्ठोऽतिथिप्रियः ॥४॥
कदाचित्कार्तिके मासि हरिजागरणाय सः । रात्र्यां तुर्यांशशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् ॥५॥
हरिपूजोपकरणान्प्रगृह्य व्रजता तदा । तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमनिःस्वना ॥६॥
वक्रदंष्ट्रा ललज्जिह्वा निमग्ना रक्तलोचना । दिगम्बरा शुष्कमांसा लम्बोष्ठी घर्घस्वना ॥७॥
तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तः कम्पितावयवस्तदा । पूजोपकरणैर्वेगात्पयोभिश्चाहनद्भयात् ॥८॥
संस्मृत्य च हरेर्नाम तुलसीयुतवारिणा । स हता पातकं तस्मात्तभ्याः सर्वमगात्क्षयम् ॥९॥
अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजाम् । स्वांदशामब्रवीत्सर्वां दण्डवत्तं प्रणम्यसा ॥१०॥

कलहोवाच

पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गता ह्यहम् । तत्कथं तु पुनर्विप्र ! याम्युत्तमगतिं शुभाम् ॥११॥

नारद उवाच

तां दृष्ट्वा प्रणतामग्रे वदमानां स्वकर्म तत् । अतीवविस्मिता विप्रस्तदा वचनमब्रवीत् ॥१२॥

धर्मदत्त उवाच

केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं गता । कुतस्त्वं का च किं शीला तत्सर्वं कथयस्व मे ॥१३॥

कलहोवाच

सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन्भिक्षुनामाऽभवद्द्विजः । तस्याऽयं गृहिणी पूर्वं कलहाख्याऽतिनिष्ठ्रा ॥१४॥
न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसाऽपि शुभं कृतम् ।
नार्पितं तस्य मिष्टान्नं भर्तुर्वचनभङ्गया ॥१५॥

में एक धर्मदत्त नामक धार्मिक ब्राह्मण रहते थे ॥३॥ वे सदा विष्णु भगवान् का व्रत करत थे और भगवान् विष्णु की पूजा करते थे । द्वादशाक्षर विद्या **(ओ नमो भगवते वासुदेवाय)** के जप में उनकी निष्ठा बनी रहती थीं और वे अतिथियों से प्रेम करते थे ॥४॥ एक बार वे कार्तिक के महीने में जब रात्रि का चतुर्थ प्रहर अवशिष्ट था तो हरि जागरण करने के लिए श्रीहरि के मन्दिर में गये ॥५॥ जब वे पूजा की सामग्री लेकर जा रहे थे उसी समय उन्होंने भयङ्कर ध्वनि करने वाली आती हुयी राक्षसी को देखा ॥६॥ उसके दाँत टेढ़े थे, जीभ लपलपा रही थी उसकी धसी हुयी आँखें लाल थीं उसके मांस सूख गये थे, वह नङ्गी थी, उसके ओष्ठ लम्बे थे और वह घर्घर ध्वनि करती थी ॥७॥ उसको देखकर भयभीत वे काँपने लगे उन्होंने भय के कारण पूजा की सामग्री और जल से उसे मारा ॥८॥ श्रीहरि के नाम का उच्चारण करके तुलसी युक्त जल से वह चूकी मारी गयी थी उसी के कारण उसके सारे पाप विनष्ट हो गये ॥९॥ उसके पश्चात् उसने अपने पूर्वजन्म के कर्मों के परिणाम जन्य अपनी दशा को दण्डवत् प्रणाम करके कहा ॥१०॥ **कलहा ने कहा—** पूर्व जन्म के कर्मों के परिणाम स्वरूप मैंने इस दशा को प्राप्त किया है । अतएव हे विप्र ! कैसे उत्तम गति को प्राप्त कर सकती हूँ ?॥११॥ **नारदजी ने कहा—** उसको अपने समक्ष प्रणत होकर अपने कर्मों को बतलाते हुए देखकर ब्राह्मण बोले ॥१२॥ **धर्मदत्त ने कहा—** तुम अपने किस प्रकार के कर्मों के परिणाम स्वरूप इस दशा को प्राप्त हुयी हो । तुम कहाँ से आयी हो और कौन हो ? तुम्हारा शील कैसा है ? इन सारी बातों को बतलाओ ॥१३॥ **कलहा ने कहा—** हे ब्रह्मा ! सौराष्ट्र नगर में भिक्षु नाम के ब्राह्मण थे, मैं उनकी पत्नी थी मैं अत्यन्त निष्ठुर थी और मेरा नाम कलहा था ॥१४॥ मैंने

कलहप्रिययानित्यं भयोद्विग्नस्तदा द्विजः। परिणेतुं तदाऽन्यां स मतिचक्रे पतिर्मम ॥१६॥

ततो गरं समादाय प्राणास्त्यक्ता मया द्विज ! ।
अथ बद्ध्वा बध्यमानां मां विनिन्युर्यमानुगाः ।
यमश्च मान्तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत ॥१७॥

यम उवाच

अनया किं कृतं कर्म चित्रगुप्त ! विलोकय ।
प्राप्नोत्वेषा कर्मफलं शुभं वाऽशुभमेव च ॥१८॥

कलहोवाच

चित्रगुप्तस्ततो वाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच ह ॥१९॥

चित्रगुप्त उवाच

अनया तु शुभं कर्म कृतं किं चिन्न विद्यते ।
मिष्टान्नं भुक्तमनया न भर्तारि तदर्पितम् ॥२०॥

अतश्च वल्गुलीयोन्यां स्वविष्टादावतिष्ठताम्। भर्तुर्द्वेषकरी त्वेषा नित्यं कलहकारिणी ॥२१॥
विष्ठादाशूकरीयोन्यां ततस्तिष्ठत्वियं हरे। पाकभाण्डे सदा भुक्तं नित्यं चैवानया यतः॥२२॥

तस्माद्दोषाद् बिडाली तु स्वजातापत्यभक्षिणी ।
भर्तारमनयोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतो यतः ॥२३॥

तस्मात्प्रेतपिशाचेषु तिष्ठत्वेषाऽतिनिन्दिता। ततश्चैव मरुंदेशं प्रापितव्या भटैः सह ॥२४॥
तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः। इत्थं योनित्रय त्वेषा भुनक्तवशुभकारिणी ॥२५॥

कलहोवाच

साऽहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल ।
क्षुत्तृड्भ्यां पीड़िता नित्यं दुःखिना स्वेन कर्मणा ॥२६॥

पति के कहने पर कभी अच्छा काम नहीं किया, मैं पति की आज्ञा नहीं मानती थी । मैंने अपने पति को कभी भी अच्छा भोजन नहीं दिया ॥१५॥ कलह प्रिय के भय से उद्विग्न होकर उस ब्राह्मण ने दूसरा विवाह करने का मन बनाया ॥१६॥ उससे मैंने विष खा लिया और अपने प्राणों को त्याग दिया । इसके बाद यमूदत मुझको बाँधकर लाये । उस समय मुझको देखकर यम ने चित्रगुप्त से कहा ॥१७॥ **यम ने कहा**— चित्रगुप्त देखो इसने कौन सा कर्म किया है ? यह अपने कर्मों के शुभफल प्राप्त करे या अशुभ ?॥१८॥ **कलहा ने कहा**— उस समय मुझको डाँटते हुए चित्रगुप्त ने कहा ॥१९॥ **चित्रगुप्त बोले**— इसने कभी भी पुण्य कर्म नहीं किया है यह स्वयं मिठाई खा लेती थी और पति को नहीं देती थी ॥२०॥ अतएव यह वगुली की योनि में अपनी विष्ठा आदि में निवास करे । यह अपने पति से द्वेष करती थी और सदा कलह करती थी ॥२१॥ हे यम ! विष्ठा के बाद यह शूकरी की योनि में जाय । चूकि यह भोजन बनाने के ही वर्तन में सदा खाती थी अतएव यह अपने बच्चों को खाने वाली बिल्ली की योनि में जाय । इसने चूकि अपने पति के कारण आत्मघात किया है ॥२२-२३॥ अतएव अत्यन्त निन्दित यह प्रेतों और पिशाचों की योनि में जाय । उसके बाद इसको यमदूत मरुस्थल प्रदेश में पहुँचा दें ॥२४॥ वहाँ यह

ततः क्षुप्तीड़िताऽविश्य शरीरं वणिजस्त्वहम् ।
आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्यास्तु सङ्गमे ॥२७॥
तत्तीरसंश्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः। शिवविष्णुगणैर्दूरमपाकृष्टा बलादहम्॥२८॥
ततःक्षुत्यामया दृष्टो भ्रमन्त्या त्वं मया द्विज ।
प्रक्षिप्ततुलसीवारिसंसर्गगतपापया ॥२९॥
तत्कृपां कुरु विप्रेन्द्र ! कथं मुक्तिमवाप्नुयाम् ।
योनित्रयादतिभयादस्माच्च प्रेतदेहतः ॥३०॥

नारद उवाच

इत्थं निशम्य कलहावचनं द्विजश्च तत्कर्मपाकभवविस्मयदुःखयुक्तः ।
तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्तिर्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात् ॥३१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे कलहोपाख्यानं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

दीर्घकाल तक प्रेत शरीर में निवास करे । इस तरह से यह तीन अशुभ योनियों में कष्ट भोगें ॥२५॥ इस तरह मैं पाँच सौ वर्ष तक प्रेत शरीर में रही मैं भूखी-प्यासी अपने कर्मों के फल स्वरूप रहती थी ॥२६॥ उसके बाद भूख से पीड़ित बनियें के शरीर में प्रवेश कर गयी । मैं दक्षिण भारत में कृष्णावेणी के सङ्गम स्थल पर आयी । उसके तट पर जब तक रही तब तक शिव और विष्णु के दूतों ने मुझको बल पूर्वक दूर भगा दिया ॥२७-२८॥ उसके बाद भूख से व्याकुल घूमती हुयी मैंने आपको देखा तुलसी का जल पड़ जाने से मेरे पाप विनष्ट हो गये ॥२९॥ अतः हे विप्र ! आप मुझ पर कृपा करे जिससे मैं मुक्ति प्राप्त कर लूँ । अत्यन्त भयङ्कर तीन योनियों और इस प्रेत योनि से मैं मुक्त हो जाऊँ ॥३०॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से कलहा के वचनों को सुनकर उसके कर्मों के परिणाम को सुनकर दुःखी उसके कष्ट भरी बातों को सुनकर चञ्चलचित्त वृत्ति वाले वे दीर्घ काल तक विचार कर दुःखी होकर कहे ॥३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में कलहोपाख्यान वर्णन नामक एक सौ छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०६।।

एक सौ सातवाँ अध्याय

धर्मदत्त उवाच

विलयं यान्ति पापानि तीर्थदानव्रतादिभिः। प्रेतदेहस्थितायास्ते तेषु नैवाधिकारिता ॥१॥
त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम् ।
नैव निवृतिमाया तं त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम् ॥२॥
पातकं च तवाऽत्युग्रं योनत्रियविपाकदम्। नैवान्यैक्षीयते पुण्यैः प्रेतत्वंचातिगर्हितम् ॥३॥
तस्मादाजन्मजनितं यन्मया कार्त्तिकव्रतम्। तत्पुण्यस्यार्धभागेन सद्गतिं त्वमवाप्नुहि॥४॥
कार्त्तिकव्रतपुण्येन न साम्यंयान्ति सर्वथा। यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतान्यपि यतोध्रुवम्॥५॥

नारद उवाच

इत्युत्तवा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत्। तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन्द्वादशाक्षरम् ॥६॥
तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा। दिव्यवपुर्धरा जाता लावण्याद्भासिता दिशः ॥७॥
ततः सा दण्डवद्भूमौ प्रणनामाथ तं द्विजम् ।
उवाच च तदा वाक्यं हर्षगद्गदभाषिणी ॥८॥

कलहोवाच

त्वत्प्रसाद् द्विजश्रेष्ठ ! विमुक्ता निरयादहम् ।
पापाब्धौ मज्जमानायास्त्वं नौ भूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥९॥

नारद उवाच

इत्थं सा वदती विप्रं ददशायातमम्बरात्। विमानं भास्वरं युक्तं विष्णुरूपधरैर्गणैः ॥१०॥

तुलसी मिश्रित जल के प्रक्षेप से कलहा को दिव्य देह की प्राप्ति का वर्णन

धर्मदत्त ने कहा— तीर्थ, दान और व्रत आदि करने से पाप विनष्ट हो जाते हैं, किन्तु प्रेत शरीर में रहने वाली तुम्हारा उन कर्मों को करने का अधिकार नहीं है ॥१॥ तुम्हारे इस कष्ट को देखकर मेरा मन दुःखी हो गया है तुम्हारा उद्धार किए बिना मेरा मन शान्त नहीं हो रहा है ॥२॥ तुम्हें तीन योनियों को देने वाले तुम्हारे कर्म अत्यन्त उग्र हैं । अत्यन्त निन्दित प्रेतत्व अन्य पुण्यों से नहीं नष्ट होता है ॥३॥ अतएव जीवन भर मैंने जो कार्तिक व्रत किया है उसके पुण्य के आधे भाग से तुम सद्गति को प्राप्त करो॥४॥ चूकि यज्ञ, दान, तीर्थ तथा दूसरे कार्तिक व्रत से उत्पन्न पुण्य के समान नहीं होते हैं । **नारदजी ने कहा—** इस तरह से कहकर धर्मदत्त ने उसको द्वादशाक्षर मन्त्र को सुनकार तुलसी मिश्रित जल से अभिषिक्त किया । उसी समय प्रेतत्व से मुक्त होकर जलती हुयी अग्नि के समान दिव्य शरीर धारण करके अपने सौन्दर्य से दशो दिशाओं को प्रकाशित करती हुयी वह दिव्य शरीर वाली हो गयी ॥५-७॥ उसके बाद दण्ड के समान पृथिवी पर गिरकर उसने उस ब्राह्मण को प्रणाम किया । हर्ष के कारण गद्गदवाणी में उसने कहा ॥८॥ **कलहा बोली—** हे द्विजश्रेष्ठ ! आपकी कृपा से मैं नरक से मुक्त हो गयी हूँ पाप सागर में डूबती हुयी मेरे लिए आप निश्चित रूप से नौका बन गये हैं ॥९॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से

अथ सा तद्विमानाग्र्यंद्वा:रथाभ्यामधिरोहिता ।
पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरोगणसेवितम् ॥११॥
तद्विमानं तदापश्यद्धर्मदत्तः सविस्मयः । पपात दण्डवद्भूमौ दृष्ट्वा तौ पुण्यरूपिणौ ॥१२॥
पुण्यशीलसुशीलौ तमुत्थाप्य प्रणतं द्विजम् । अभ्यनन्दयतां वाक्यचतुर्धर्मशीलिनौ ॥१३॥

गणावूचतुः

साधु साधु द्विजश्रेष्ठ यस्त्वं विष्णुरतःसदा। दीनानुकम्पी धर्मज्ञो विष्णुव्रतपरायणः ॥१४॥
आजन्म सच्छुभं ह्येतत्त्वया कार्तिकव्रतम् । कृतं तस्यार्धदानेन यदस्याःपूर्वसंचितम् ॥१५॥
जन्मान्तरशतोद्भूतं पापं तद्विलयंगतम्। हरिजागरणाद्यैश्च विमानमिदमास्थिता ॥१६॥
वैकुण्ठं नीयते साधो नानाभोगयुता त्वियम् ।
दीपदानभवैः पुण्यैस्तैजसं रूपमास्थिता ॥१७॥
तुलसीपूजनाद्यैस्तु कार्तिकव्रतकैःशुभैः । विष्णुसान्निध्यगा जाता त्वया दत्तै कृपालुना॥१८॥
त्वमप्यस्य भवस्याऽन्ते भार्याभ्यां सह यास्यसि ।
वैकुण्ठभवनं विष्णो सान्निध्यं च स्वरूपता ॥१९॥
ते धन्याः कृतकृत्यास्ते तेषां च सफलोभवः ।
यैर्भत्तयाऽऽराधितो विष्णुर्धर्मदत्त ! त्वया यथा ॥२०॥
सम्यगाराधितो विष्णुः किं न यच्छति देहिनाम् ॥२१॥
औत्तानचरणिर्येन ध्रुवत्वे स्थापितःपुरा। यन्नाम स्मरणादेव देहिनो यान्ति सद्गतिम् ॥२२॥

ब्राह्मण को कहती हुयी उसने आकाश आये हुए देदीप्यमान तथा विष्णुरूप धारण किए हुए गणों से धारण किए गये विमान को देखा ॥१०॥ उसके वाद विमान के द्वारपालों ने उसको विमान पर चढ़ाया । गणों का नाम पुण्यशील और सुशील वह विमान अप्सरा समूह से सेवित था ॥११॥ उस विमान को धर्मदत्त ने अत्यन्त आश्चर्यित होकर देखा उन पुण्यरूप धारण किए द्वारपालों को उन्होंने साष्टाङ्ग, प्रणाम किया॥१२॥ उन प्रणत द्विज को पुण्यशील और सुशील उठाकर धर्मशील उन दोनों को अभिनन्दित किये ॥१३॥ दोनों विष्णु के गणों ने कहा हे द्विज श्रेष्ठ ! बड़ी अच्छी बात है कि आप भगवान् विष्णु की भक्ति करते हैं । आप दीनों पर कृपा करने वाले धर्मज्ञ तथा विष्णुव्रत को करते हैं ॥१४॥ आपने आजीवन जो कार्तिक व्रत किया है, उसके आधे भाग का दान करने से इसके सैकड़ों जन्म के पूर्व सञ्चित पाप नष्ट हो गये । हरि जागरण आदि करने के फलस्वरूप यह विमान आया है ॥१५-१६॥ हे साधो ! यह अनेक प्रकार के भोगों के साथ वैकुण्ठ ले जायी जा रही है । दीपदान के प्रभाव से इसने तैजस रूप प्राप्त किया है ॥१७॥ कार्तिक व्रत में शुभ तुलसी आदि के प्रभाव से जिसे आपने प्रदान किया है यह विष्णु के सन्निकट जायेगी॥१८॥ आप भी इस जन्म के अन्त में अपनी दोनों पत्नियों के साथ वैकुण्ठ लोक में जाकर भगवान् विष्णु के सान्निध्य और सारूप्य को प्राप्त करेंगे ॥१९॥ हे धर्मदत्त ! वे लोग धन्य हैं उनका जन्म सफल है जो आपके समान भक्ति पूर्वक भगवान् विष्णु की आराधना करते हैं ॥२०॥ अच्छी तरह से आराधित होकर भगवान् विष्णु शरीर धारियों को क्या नहीं देते है ॥२१॥ प्राचीन काल में जिन भगवान्! ने उत्तानपाद के पुत्र को ध्रुवत्व प्रदान किया जिनके नाम स्मरण करने मात्र से शरीरधारी सद्गति

ग्राहगृहीतो नागेन्द्रो यन्नामस्मरणात्सुरा। विमुक्तःसन्निधिं प्राप्तो जातो योजयसंज्ञकः ॥२३॥
अतस्त्वयाऽर्चितो विष्णुः स्वसान्निध्यं प्रदास्यति ।
बहून्यब्दसहस्त्राणि भार्याद्वययुतस्य ते ॥२४॥
ततःपुण्यक्षये जाते यदा यास्यसि भूतले। सूर्यवंशोद्भवा राजाविख्यातस्त्वं भविष्यसि॥२५॥
नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतःपुनः। तृतीययाऽनयाचापि या ते पुण्यार्धभागिनी॥२६॥
तत्राऽपि तव सान्निध्यं विष्णुर्यास्यति भूतले ।
आत्मानं तव पुत्रत्वे प्रकल्प्याऽमरकार्यकृत् ॥२७॥
तवाजन्मव्रतादस्माद्विष्णुसंतुष्टकारकात् । न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्य धिकानि ते॥२८॥
धन्योऽसि विप्र ! प्रयतस्त्वयैतद् व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ।
यदर्धभागाच्च फलान्मुरारे प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥२९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे कलहोपाख्यानं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

को प्राप्त करते है ॥२२॥ प्राचीन काल में ग्राह से ग्रस्त गजराज जिनका नाम स्मरण करने के कारण मुक्त होकर वह जब भगवान् का सानिध्य प्राप्त किया ॥२३॥ अतएव आपके द्वारा पूजित भगवान् विष्णु आपका आपकी दोनों पत्नियों के साथ आपको अनेक हजार वर्षों तक अपना सानिध्य प्रदान करेंगे ॥२४॥ उसके बाद पुण्य के क्षीण हो जाने पर आप सूर्यवंश में उत्पन्न होकर विख्यात राजा होंगे ॥२५॥ अपनी दोनों पत्नियों के साथ दशरथ नामक राजा होंगे । तीसरी पत्नी आपके पुण्य के अर्द्ध भाग को भोगने वाली यह होगी ॥२६॥ वहाँ भी आपके सन्निकट पृथिवी पर भगवान् विष्णु होंगे । आपके पुत्र बनकर वे देवताओं का कार्य करेंगे ॥२७॥ भगवान् विष्णु को सन्तुष्ट करने वाले आपके इस व्रत से अधिक पुण्यप्रद यज्ञ, दान और तीर्थ नहीं हो सकते हैं ॥२८॥ हे विप्र ! आप धन्य हैं, जो भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाले इस व्रत को सावधानी पूर्वक किए हैं, जिसके आधे भाग के फल से यह हमलोगों द्वारा भगवान् विष्णु के लोक में ले जायी जा रही है ॥२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्यान्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में कलहोपाख्यान नामक एक सौ सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०७॥

एक सौ आठवाँ अध्याय

नारद उवाच

इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा धर्मदत्तः सविस्मयः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वाक्यमेतदुवाच ह॥१॥

धर्मदत्त उवाच

आराधयन्ति सर्वेऽपि विष्णुंभक्तार्त्तिनाशिनम्।
यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तीर्थस्तपोभिश्च यथाविधि॥२॥

विष्णुप्रीतिकरं तेषां विष्णुसान्निध्यकारकम्। यत्कृत्वा तानि चीर्णानि सर्वाण्यपि भवन्ति हि॥३॥

गणावूचतुः

साधु पृष्टं विप्र शृणुष्वैकाग्रमानसः। सेतिहासांकथां विप्रकथ्यमानां पुराभवम्॥४॥
कान्तिपुर्यां पुरा चोलश्चक्रवर्ती नृपोऽभवत्। यस्य नाम्ना च ते देशाश्चोलाख्या अभवन्किल॥५॥
यस्मिञ्छासति भूचक्रं दरिद्रो नैव दुःखितः। पापबुद्धिःसरुग्वापि नैव कश्चिदभून्नरः॥६॥
यस्याप्यत्यन्तं यज्ञस्य ताम्रपर्णी तटाबुभौ। सुवर्ययूपैःशोभाढ्यावास्तां चैत्ररथोपमौ॥७॥
स कदाचिदगाद्राजा ह्यनन्तशयनं द्विज। यत्रासौ जगतांनाथो योगनिद्रामुपाश्रितः॥८॥
तत्र श्रीरमणं देवं संपूज्य विधवन्नृपः। मणिमुक्ताफलैर्दिव्यैः स्वर्णपुष्पैश्च शोभनैः॥९॥
प्रणम्य दण्डवद्यावदुपविष्टःस तत्र वै। तावद्ब्राह्मणमायान्तमपयद्देवसन्निधौ॥१०॥
देवार्चनार्थमायान्तं तुलस्युदकपाणिकम्। स्वपुरीवासिनं तत्र विष्णुदासाहयं द्विजम्॥११॥
तत्राभ्येत्य स विप्रर्षिर्देवदेवमपूजयत्। विष्णुसूक्तेन संस्नाप्य तुलसीमञ्जरीदलैः॥१२॥

धर्मदत्त और भगवान् विष्णु के गण के संवादान्तर्गत विष्णुव्रत का माहात्म्य

नारदजी ने कहा— इस तरह से उन दोनों के वचन को सुनकर आश्चर्यित धर्मदत्त ने दण्ड के समान भूमि पर गिरकर प्रणाम किया और कहा। **धर्मदत्त बोले—** भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले भगवान् विष्णु की आराधना सबलोग यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ और तपस्या के द्वारा करते हैं॥१-२॥ उन सबों में वह भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाला कौन सा व्रत है जो उन लोगों को भगवान् विष्णु के सान्निध्य को प्रदान करने वाला होता है। जिसके करने से सभी व्रतों का फल मिल जाता है॥३॥ **दोनों गणों ने कहा—** हे विप्र! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, इसे एकाग्र मन से आप सुनें। हे विप्र! आपको पूर्वजन्म के इतिहास युक्त कथा हम कहते हैं॥४॥ प्राचीन काल में कन्तिपुरी के चक्रवर्ती राजा चोल हुए। उनके ही नाम से उस देश को चोल देश कहते हैं॥५॥ उनके प्रशासन काल में पृथिवी पर न तो कोई दरिद्र था और न दुःखी था। कोई भी मनुष्य न तो पापी था और न रोगी था॥६॥ उस राजा को बहुत अधिक यज्ञों के कारण ताम्रपर्णी नदी के दोनों तट सुवर्ण स्तम्भों से चैत्ररथ वन के समान सुशोभित थे॥७॥ वह राजा एक बार अनन्त शयन के पास गया उस समय वहाँ जगत् के स्वामी योगनिद्रा में थें॥८॥ वहाँ पर राजा ने लक्ष्मीपति की विधि पूर्वक पूजा दिव्य मणि, मोती और सुन्दर स्वर्ण पुष्पों से की॥९॥ श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करके जब वे भूमि पर बैठे उस समय उन्होंने देवताओं के साथ भगवान् के पास आते हुए ब्रह्माजी को देखा॥१०॥ श्रीभगवान् की पूजा करने के लिए हाथ में तुलसी का जल लिए हुए अपने नगर

तुलसीपूजया तस्य रत्नपूजां तथा कृताम्। आच्छादितां समालोक्य राजा क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥१३॥

राजोवाच

माणिक्यस्वर्णपूजाऽत्र शोभाढ्या या मयाकृता ।
विष्णुदास ! कथं सेयमाच्छन्ना तुलसीदलैः ॥१४॥
विष्णुभक्तिं न जानासि वराकोऽसि मतो मम ।
यस्त्विमामतिशोभाढ्यां पूजामाच्छादयस्यहो ॥१५॥

गणावूचतुः

इति तद्वचनं श्रुत्वा सक्रोधःस द्विजोत्तमः। राज्ञो गौरवमुल्लङ्घ्य जगाद वचनं तदा ॥१६॥

विष्णुदास उवाच

राजन्मुक्तिं न जानासि गर्वितोऽसि नृपश्रिया: ।
किंस्विद्विष्णुव्रतं पूर्वं त्वया चीर्णं वदस्व तत् ॥१७॥

गणावूचतुः

तद्ब्राह्मणवचःश्रुत्वा प्रहस्य स नृपोत्तमः। विष्णुदासं तदा गर्वादुवाच वचनं द्विज ॥१८॥

राजोवाच

इत्थं ब्रवीषि चेद्विप्र ! विष्णुभक्त्याऽतिगर्वितः ।
भक्तिस्ते कियती विष्णोर्दरिद्रस्याऽधनस्य च ॥१९॥

यज्ञदानादिकं नैव विष्णुतुष्टिकरं कृतम्। नाऽपि देवालयं पूर्वं त्वया विप्र ! क्वचित्कृतम्॥२०॥
ईदृशस्यापि ते गर्व एष तिष्ठति भक्तितः। तच्छृण्वन्तु वचो मेऽद्य सर्वेऽप्येते द्विजोत्तमाः ॥२१॥
साक्षात्कारमहं विष्णोरेष वादो गमिष्यति। यथा तु सर्वेऽपि ततो भक्तिं ज्ञास्यथ चावयोः ॥२२॥

में रहने वाले विष्णुदास नामक ब्राह्मण को उन्होंने देखा ॥११॥ वहाँ पर आकर उन विप्रर्षि ने विष्णु सूक्त से स्नान कराकर तुलसी की मञ्जरियों से श्रीभगवान् की पूजा की ॥१२॥ उस तुलसी की पूजा से राजा की रत्न पूजा ढँक गयी । उसको देखकर क्रुद्ध होकर राजा ने कहा ॥१३॥ **राजा ने कहा—** यहाँ पर जो मैंने माणिक्य और रत्नों से सुन्दर पूजा की थी हे विष्णुदास ! उसको तुमने तुलसी की मञ्जरियों से क्यों ढँक दिया ?॥१४॥ मेरे मतानुसार तुम नीच हो, भगवान् विष्णु की भक्ति को नहीं जानते हो इसीलिए तुम इस अत्यन्त सुन्दर पूजा को ढँक रहे हो ॥१५॥ **दोनों गणों ने कहा—** राजा के इस वचन को सुनकर उस द्विजोत्तम ने क्रोध करके राजा के महत्व पर ध्यान न देकर कहा ॥१६॥ **विष्णुदास ने कहा—** राजन्! आप मुक्ति को नहीं जानते हैं राज्य श्री के कारण घमण्डी हो गये हो । तुमने पूर्वकाल में जो विष्णु व्रत किया है उसे वतलाओ ॥१७॥ **दोनों गणों ने कहा—** ब्राह्मण की वाणी को सुनकर राजा जोर से हँसकर विष्णुदास को गर्व पूर्वक कहे ॥१८॥ हे विप्र ! यदि ऐसी वात है विष्णु भक्ति से गर्वित होकर कहते हो दरिद्र तथा निर्धन तुम्हारी भगवान् विष्णु में कितनी भक्ति है ?॥१९॥ तुमने भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाले यज्ञ तथा दान इत्यादि को नहीं किया है । तुने कहीं पर भगवान् का मन्दिर नहीं वनवाया है ॥२०॥ ऐसा होने पर भी केवल भक्ति के ही कारण तुमको ऐसा गर्व है । अतएव हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! मेरी वात सुनों ॥२१॥ मेरे द्वारा भगवान् विष्णु के साक्षात्कार के द्वारा इस विवाद का निर्णय होगा । जिससे

गणावूचतुः

इत्युक्त्वा स नृपोऽगच्छन्निजं राजगृहं द्विजः ।
आरेभे वैष्णवं सत्रं कृत्वाऽऽचार्यं तु मुद्गलम् ॥२३॥

ऋषिसङ्घसमाजुष्टं बभूव बहुदक्षिणम्। यद्वद्ब्रह्मकृतं पूर्वं गयाक्षेत्रे समृद्धिमत्॥२४॥
विष्णुदासोऽपि तत्रैव तस्थौ देवालये व्रती। पञ्चैतान्नियमान्कृत्या विष्णुतुष्टिकरान्सदा ॥२५॥
मार्घोजयोर्व्रतं सम्यक्तुलसीवनपालनम्। एकादशीव्रतं जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥२६॥
उपचारैः षौडशभिर्गीतनृत्यादिमङ्गलैः। नित्यं विष्णोस्तथा पूजां व्रतान्येतानि सोऽकरोत्॥२७॥
नित्यं संस्मरणं विष्णोर्गच्छन्भुञ्जन्स्वपन्नपि । सर्वभूतस्थितं विष्णुमपश्यत्समदर्शनः॥२८॥
माघकार्त्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि । अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थं सोद्यापनविधि तथा॥२९॥

एवं समाराधयतोः श्रियः पतिं तयोस्तुचोलेश्वरविष्णुदासयोः ।
अगादनेहा बहु तद्व्रतस्थयोस्तान्निष्ठसवन्द्रियकर्मणोस्तयोः ॥३०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे कलहोपाख्याने अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

कि सब लोग हम दोनों की भक्ति को जान सकेंगे ॥२२॥ **दोनों गणों ने कहा**— यह कहकर राजा अपने घर चले गये । उन्होंने मुद्गल ऋषि को आचार्य बनाकर विष्णु सत्र आरम्भ किया ॥२३॥ ऋषि समूह से युक्त वह बहुत दक्षिणा वाला ब्रह्माजी द्वारा किया गया क्षेत्र के समान सत्र था ॥२४॥ व्रत करने वाले विष्णुदास भी उसी मन्दिर में भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाले माघ तथा जय व्रत, अच्छी तरह से तुलसी वन का पोषण, एकादशी व्रत और द्वादशाक्षर मन्त्र का जप इन पाञ्चों नियमों को करके बैठे रहे ॥२५-२६॥ वे प्रतिदिन षोडशोपचार पूजन, गीत वादित्र आदि मङ्गल कार्य से नित्य भगवान् विष्णु की पूजा और इन व्रतों को करते थे ॥२७॥ प्रतिदिन समदर्शी वे चलते, खाते और सोते हुए वे सभी जीवों में भगवान् विष्णु को देखते थे ॥२८॥ माघ और कार्तिक में नित्य ही विशेष नियमों को तथा भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए उद्यापन विधि भी करते थे ॥२९॥ इस तरह से लक्ष्मीपति को पूजा करने वाले राजा और विष्णुदास के अनेक दिन बीत गये । वे दोनों अपनी सभी इन्द्रियों से भगवाननिष्ठ हो गये थे ॥३०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में कलहोपख्यान के एक सौ आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०८॥

एक सौ नवाँ अध्याय

गणावूचतुः

कदाचिद्विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विजः ।
पाककर्माऽकरोद्यावदहरत्कोऽप्यलक्षितः ॥१॥
तमदृष्ट्वाप्यसौ पाकं पुनर्नैवाकरोत्तदा । सायंकालार्चनस्यासौ व्रतभङ्गभयाद्द्विजः ॥२॥
द्वितीयेऽह्नि ततःपाकं कृत्वा यावत्स विष्णवे ।
उपहारार्पणं कर्तुं गतःकोऽप्यहरत्पुनः ॥३॥
एवं सप्तदिनं तस्य पाकं कोऽप्यहरद् द्विज ! ।
जातः स विस्मयःसोऽथ मनस्येवं व्यचारयत् ॥४॥
अहो नित्यं समभ्येत्य कः पाकं हरते मम ।
क्षेत्रसंन्यासिनां स्थानमत्याज्यं सर्वथा मया ॥५॥
पुनःपाकं विधायात्र भुज्यते यदि चेन्मया । सायंकालार्चनं चैतत्परित्याज्यं कथं मया ॥६॥
किंचित्पाकं विधायैतद्भोक्तव्यं तु मया न हि ।
अनिवेद्य हरौ सर्वं वैष्णवैर्नैव भुज्यते ॥७॥
उपोषितोऽहं च कथं तिष्ठाम्यत्र व्रतस्थितः ।
अद्य संरक्षणं सम्यक्पाकस्यात्र करोम्यहम् ॥८॥
इति पाकं विधायाऽसौ तत्रैवाऽलक्षितः स्थितः ।
तावद्ददर्श चाण्डालं पाकान्नहरणे स्थितम् ॥९॥

विष्णुदास ब्राह्मण और चोलराज की निःसीभ भक्ति से वैकुण्ठ की प्राप्ति

दोनों गणों ने कहा— एक बार विष्णु दास नित्य कर्म करके जल से उन्होंने पाक बनाया तब तक कोई उनके पाक का अपहरण कर लिया और वे उसे देख नहीं पाए ॥१॥ उस अपहरण करने वाले को नहीं देखने पर भी उन्होंने फिर भोजन (पाक) नहीं बनाया क्योंकि उनको इस बात का भय था कि सायंकालीन अर्चना भङ्ग हो जायेगी ॥२॥ दूसरे दिन पाक बनाकर जब वे भगवान् विष्णु को उपहार अर्पित करने गये तो उस दिन भी किसी ने पाक का अपहरण कर लिया ॥३॥ हे द्विज ! इसी तरह कोई सात दिन तक उनके पाक का अपहरण करता रहा । यह देखकर वे आश्चर्यित हो गये और मन में उन्होंने विचार किया॥४॥ अरे ! कौन है जो प्रतिदिन आकर मेरे पाक का अपहरण कर लेता है ? मुझे संन्यासियों के क्षेत्र का भी त्याग नहीं करना चाहिए ॥५॥ यदि दूसरी बार पाक बनाकर मैं भोजन करता हूँ तो फिर मैं सायंकालीन अर्चना का परित्याग कैसे करूँ ?॥६॥ थोड़ा सा पाक बनाकर मुझे भोजन करना भी नहीं चाहिए । श्रीभगवान् को सारा पाक समर्पित किए बिना वैष्णव भोजन नहीं करते हैं ॥७॥ उपवास करके मैं यहाँ व्रत कैसे कर सकता हूँ । आज मैं अच्छी तरह से पाक का संरक्षण करता हूँ ॥८॥ इस तरह से पाक बनाकर वे वहीं छिपकर बैठ गये । तब तक उन्होंने एक चाण्डाल को पाकापहार करते हुए

क्षुत्क्षामं दीनवदनमस्थिचर्मावशेषितम्। तमालोक्य द्विजाग्र्योऽभूत्कृपयाखिन्नमानसः ॥१०॥
विलोक्यान्नहरं विप्रस्तिष्ठे तिष्ठेत्यभाषत। कथमत्ति भवान्रूक्षं घृतमेतद् गृहाण भोः ॥११॥
इत्थं ब्रुवन्तं विप्राग्र्यमायान्तञ्च विलोक्य सः।
वेगादधावत्तद्भीत्या मूर्च्छितश्च पपात ह ॥१२॥
भीतं तं मूर्च्छितं दृष्ट्वा चाण्डालं स द्विजोत्तमः।
वेगादभ्येत्य कृपया स्ववस्त्रान्तैरवीजयत् ॥१३॥
अथोत्थितं तमेवासौ विष्णुदासो व्यलोकयत्।
साक्षान्नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥१४॥
पीताम्बरं चतुर्बाहुं श्रीवत्साङ्कं किरीटिनम्। अतसीपुष्पसङ्काशं कौस्तुभोरःस्थलं विभुम्॥१५॥
तं दृष्ट्वा सात्त्विकैर्भावैरावृतो द्विजसत्तमः। स्तोतुं चापि नमस्कर्तुं तदा नालं बभूव सः ॥१६॥
अथ शक्रादयो देवास्तत्रैवाभ्याययुस्तदा। गन्धर्वाप्सरसश्चापि जगुश्च ननृतुर्मुदा ॥१७॥
विमानशतसंकीर्णं देवर्षिगणसङ्कुलम्। गीतावादित्रदित्रनिर्घोषं स्थानं तदभवत्तदा ॥१८॥
ततो विष्णुःसमालिङ्गस्य स्वभक्तं सात्त्विकं तथा।
सायुज्यमात्मनो दत्त्वाऽनयद्वैकुण्ठमन्दिरम् ॥१९॥
विमानवरसंस्थानमास्थितं विष्णुसन्निधौ। दीक्षितश्चोलनृपतिर्विष्णुदासं ददर्श ह॥२०॥
वैकुण्ठभवनं यान्तं विष्णुदासं विलोक्य सः।
स्वगुरुं मुद्गलं वेगादाहूयेत्थं वचोऽब्रवीत् ॥२१॥

चोल उवाच

यत्स्पर्धया मया चैतद्यज्ञदानादिकं कृतम्। स विष्णुरूपधृद्विप्रो याति वैकुण्ठमन्दिरम् ॥२२॥

देखा ॥९॥ वह भूखा और दीन था उसके शरीर में केवल हड्डी और चमड़ा बचा था। उसको देखकर द्विज श्रेष्ठ करुणाक्रान्त होकर उदास हो गये ॥१०॥ उस अन्न चुराने वाले को देखकर उन्होंने कहा ठहरो-ठहरो आप रूक्ष कैसे खायेंगे, यह घी भी ले लीजिये ॥११॥ इस तरह कहने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण को देखकर वह उनके भय से वेग से भागा और मूर्छित होकर गिर पड़ा ॥१२॥ उस चाण्डाल को भयभीत देखकर वे ब्राह्मण कृपा पूर्वक आये और अपने वस्त्रों से हवा करने लगे ॥१३॥ उठने पर विष्णुदास ने उसको देखा कि वे साक्षात् शङ्ख, चक्र और गदाधारी नारायण थे ॥१४॥ पीताम्बरधारी उनकी चार भुजाएँ थी। श्रीवत्स चिह्न और किरीट धारण किए थे। उनका वर्ण अतसी पुष्प के सदृश था उनके वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि सुशोभित हो रही थी ॥१५॥ उनको देखकर सात्त्विक भावों से परिपूर्ण वे द्विजश्रेष्ठ श्रीभगवान् की स्तुति और नमस्कार करने में समर्थ नहीं हुए ॥१६॥ उसके पश्चात् इन्द्र आदि देवता वहीं आ गये। गन्धर्व और अप्सराओं के समूह ने गीत और नृत्य किया ॥१७॥ उस समय उस स्थान पर असंख्य विमान आ गये जो देवताओं और ऋषियों से भरे थे और वहाँ गीत और वाद्य का घोष हुआ ॥१८॥ उसके पश्चात् भगवान् विष्णु अपने सात्त्विक भक्त का आलिङ्गन करके उनको सायुज्य प्रदान करके वैकुण्ठ में लाये ॥१९॥ श्रेष्ठ विमान पर श्रीभगवान् के निकट बैठै हुए विष्णु दास को सत्र की दीक्षा से दीक्षित चोल राज ने देखा॥२०॥ वैकुण्ठ लोक में जाते हुए विष्णुदास को देखकर राजा ने अपने आचार्य मुद्गल महर्षि को बुलाकर

दीक्षितेन मया सम्यक्सत्रेऽस्मिन्वैष्णवे त्वया ।
हुतमग्नौ कृता विप्रा दानाद्यै पूर्णमानसाः ॥२३॥
नैवाद्याऽपि स मे देवः प्रसन्नो जायते ध्रुवम् ।
भक्त्यैव तस्य विप्रस्य साक्षात्कारं ददौ हरिः ॥२४॥
तस्माद्दानैश्च यज्ञैश्च नैव विष्णुप्रसीदति। भक्तिरेव परन्तस्य निदानं दर्शने विभोः ॥२५॥

गणावूचतुः

इत्युक्त्वा भागिनेयं स्वामभिषिच्यनृपासने । आबाल्याद्दीक्षितोयज्ञे सोऽपुत्रत्वमगाद्यतः ॥२६॥
तस्मादद्यापि तद्देशे सदा राज्यांशभागिनः। स्वस्रेया एव जायन्ते तत्कृताचारवर्तिनः॥२७॥
यज्ञवाटं ततोऽभ्येत्य वह्निकुण्डाग्रतः स्थितः ।
त्रिरुच्चैर्व्याजहाराऽऽशु विष्णुं सम्बोधयंस्तदा ॥२८॥
विष्णो ! भक्तिं स्थिरां देहि मनोवाक्कायकर्मभिः ।
इत्युक्त्वा सोऽपतद्वह्नौ सर्वेषामेव प्रश्यताम् ॥२९॥
मुद्गलस्तु तदा क्रोधात्स्वशिखामुदपाटयत् । ततस्त्वद्याऽपि तद् गोत्रे मुद्गला विशिखाभवन्॥३०॥
तावदाविरभूद्विष्णुःकुण्डाग्नौ भक्तवत्सलः । तमालिङ्ग्यविमानाग्र्यं समारोहयदच्युतः ॥३१॥
तमालिङ्ग्यात्मसारूप्यं दत्त्वा वैकुण्ठमन्दिरम् ।
तेनैव सह देवेशो जगाम त्रिदशैर्वृत्तः ॥३२॥

कहा ॥२१-२२॥ **चोल राज ने कहा—** जिसकी स्पर्धा में मैंने यज्ञ, दान किया है वे विष्णुदास ब्राह्मण भगवान् विष्णु का रूप धारण करके वैकुण्ठ जा रहे हैं ॥२२॥ इस सत्र में आपके द्वारा दीक्षित होकर मैंने इस वैष्णव सत्र में पूर्ण रूप से होम किया मेरे दान आदि से ब्राह्मणों का मन भर गया ॥२३॥ फिर भी आज भी श्रीभगवान् मुझ पर प्रसन्न नहीं हुए । उस ब्राह्मण की भक्ति मात्र से श्रीहरि ने उनको दर्शन दिया॥२४॥ अतएव केवल यज्ञ और दान से भगवान् नहीं प्रसन्न होते है, उन व्यापक श्रीभगवान् के दर्शन का सर्वश्रेष्ठ साधन भक्ति ही है ॥२५॥ **दोनों गणों ने कहा—** इस तरह से कहकर राजा अपने भगिने को सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया क्योंकि बचपन से ही यज्ञ में दीक्षित होने के कारण उनको पुत्र नहीं या ॥२६॥ इसीलिए उस देश में आज भी पुत्री के पुत्र ही सदा राजा होते हैं और उस राजा के आचार का पालन करते हैं ॥२७॥ उसके पश्चात् यज्ञशाला में आकर अग्निकुण्ड के सामने खड़ा होकर राजा ने जोर से तीन बार भगवान् विष्णु को सम्बोधित किया ॥२८॥ हे भगवन् विष्णो ! आप मुझे मन, कर्म और वाणी से स्थिर भक्ति प्रदान करें यह कहकर राजा सबों के समक्ष अग्नि में गिर पड़े ॥२९॥ मुद्गल ने उस समय क्रोध के कारण अपनी शिखा को उखाड़ लिए, इसीलिए उस गोत्र में आज भी लोग शिखा रहित होते हैं ॥३०॥ उसी समय भक्तवत्सल भगवान कुण्ड की अग्नि में ही प्रकट हो गये और राजा का आलिङ्गन करके भगवान् श्रेष्ठ विमान पर बैठ गये । राजा का आलिङ्गन करके श्रीभगवान् ने अपना सारूप्य प्रदान करके उस राजा के साथ ही अपने वैकुण्ठ लोक में देवताओं के साथ चले गये ॥३१-३२॥

नारद उवाच

यो विष्णुदासः स तु पुण्यशीलो यश्चोलभूपः स सुशीलनामा ।
एतावुभौ तत्समरूपभाजौ द्वाःस्थो कृतौ तेन रमाप्रियेण ॥३३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे कलहोपाख्यानं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

एक सौ दसवाँ अध्याय

धर्मदत्त उवाच

जयश्च विजयश्चैव विष्णोर्द्वाःस्थौ मया श्रुतौ ।
किंतु ताभ्यां पुरा चीर्णं यस्मात्तद्रूपधारिणौ ॥१॥

गणावूचतुः

तृणबिन्दोस्तु कन्यायां देवहूत्यां पुरा द्विज ! ।
कर्दमस्य तु दृष्ट्यैव पुत्रौ द्वौसंबभूवतुः ॥२॥
ज्येष्ठा जयःकनिष्ठोऽभूद्विजयश्चिति नामतः ।
अन्यस्यामभवत्पश्चात्कपिलो योगधर्मवित् ॥३॥
जयश्च विजयश्चैव विष्णुभक्तिरतौ सदा । संनियम्येन्द्रियग्रामं धर्मशीलौ बभूवतुः ॥४॥
नित्यमष्टाक्षरीजाप्यौविष्णुव्रतकरावुभौ । साक्षात्कारं ददौ विष्णुस्तयोर्नित्यार्चनेसदा ॥५॥

नारदजी ने कहा— पुण्यवान् विष्णुदास और सुशील नामक चोल राज श्रीभगवान् के समान रूप वाले हो गये और लक्ष्मीपति ने उन दोनों को अपना द्वारपाल बना दिया ॥३३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के अन्तर्गत कालछेपाख्यान नामक एक सौ नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०९॥

जय विजय दोनों के पूर्वजन्म के वृत्तान्त का वर्णन

धर्मदत्त ने कहा— मैंने सुना है कि जय और विजय दोनों श्रीभगवान् के द्वारपाल थे किन्तु उन दोनों ने पूर्व जन्म में कौन सी तपस्या की थी कि श्रीभगवान् के रूप को धारण कर लिए ॥१॥ **दोनों गणों ने कहा—** हे राजन् ! प्राचीन काल में राजा तृणविन्दु की पुत्री देवहूती के गर्भ से महर्षि कर्दम के देखने मात्र से दो पुत्र हुए ॥२॥ उनमें बड़े का नाम जय और छोटे का नाम विजय था । पुनः उनकी दूसरी पत्नी के उनसे भगवान् कपिल उत्पन्न हुए ॥३॥ जय और विजय सदा भगवान् विष्णु की ही भक्ति मे रत रहते थे । वे दोनों अपनी इन्द्रियों के समूह को नियन्त्रित करके धर्मशील हो गये ॥४॥ वे दोनों सदा अष्टाक्षर

मरुत्तेन कदाचित्तावाहूतौ यज्ञकर्मणि। जग्मतुर्यज्ञकुशलौ देवर्षिगणसेवितौ ॥६॥

जयस्तत्राऽभवद् ब्रह्मा याजको विजयोऽभवत्।
ततो यज्ञविधिं कृत्स्नं परिपूर्णं च चक्रतुः ॥७॥
मरुत्तोऽवभृत(थ)स्नातस्ताभ्यां वित्तं ददौ बहु।
तत्समादाय तौ वित्तं जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥८॥

यजनाय तदाविष्णोस्तुष्ट्यर्थं तौ तदा मुने। तद्धनं विभजन्तौवै पस्पर्धाते परस्परम् ॥९॥
जयोऽब्रवीत्समोभाग:क्रियतामिति तत्र सः। विजयश्चाब्रवीत्तत्र यल्लब्धं येन तस्यतत् ॥१०॥
ततो जयोऽशपत्क्रोधाद्विजयं क्षुब्धमानसः। गृहीत्वा न ददास्येतत्तस्माद्ग्राहो भवेति तम् ॥११॥

विजयस्तस्य तं शापं श्रुत्वा सोऽप्यशपच्च तम्।
मद्भ्रान्तोऽशपो यस्मात्तस्मान्मातङ्गतां व्रज ॥१२॥
तौ तथाऽऽचख्यतुर्विष्णुं दृष्ट्वा नित्यार्चने विभुम्।
शापयोस्तु निवृत्तिं यौ ययाचाते रमापतिम् ॥१३॥
भक्तावावां कथं देव ! ग्राहमातङ्गयोनिगौ।
भविष्यावः कृपासिन्धो ! तच्छापो विनिवर्त्यताम् ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

मद्भक्तयोर्वचोऽसत्यं न कदाचिद्भविष्यति। मयाऽपि नान्यथा कर्त्तुं शक्यते तत्कदाचन ॥१५॥
प्रह्लादवचनात्स्तम्भेऽप्याविर्भूतो ह्यहं पुरा। तथाम्बरीषवाक्येन जातोमार्गे स्वयं किल ॥१६॥
तस्माद्ध्रुवमिमौ शापावनुभूय स्वयं कृतौ। लभेथां मत्पदं नित्यमित्युक्तवान्तर्दधेहरिः॥१७॥

मन्त्र का जप करते थे और भगवान् विष्णु का व्रत करते थे। उन दोनों को भगवान् प्रतिदिन पूजा के समय दर्शन देते थे ॥५॥ एक बार राजा मरुत्त ने उन दोनों को यज्ञ कर्म में आहूत किया। यज्ञ कर्म में कुशल वे दोनों वहाँ गये। उन दोनों की देवर्षि गण आदर करते थे ॥६॥ उस यज्ञ में जय ब्रह्मा हुए और विजय याजक हुए। उसके पश्चात् उन दोनों ने यज्ञ की विधि को परिपूर्ण किया ॥७॥ अवभृथ स्नान करके मरुत्त ने उन दोनों को बहुत अधिक सम्पत्ति प्रदान की। वे दोनों उस सम्पत्ति को लेकर अपने आश्रम में गये॥८॥ हे मुने ! भगवान् विष्णु का यजन करने के लिए वे दोनों उस धन को बाँटते समय एक दूसरे से स्पर्धा करने लगे ॥९॥ जय ने कहा कि इस सम्पत्ति का समान दो भाग करें। विजय ने कहा कि जिसने जो पाया है वह उसका है ॥१०॥ उसके बाद जय क्षुब्ध मना होकर विजय को शाप दे दिये कि चूकि लेकर तुम इसे मुझे नहीं दे रहे हो अतएव ग्राह हो जाओ। विजय ने उसके उस शाप को सुनकर शाप दिया कि चूकि मदमत्त होकर तुमने शाप दिया है अतएव हाथी हो जाओ ॥११-१२॥ वे दोनों नित्य अर्चना के समय भगवान् विष्णु से इस बात को कहा और भगवान् विष्णु से शाप की निवृत्ति की याचना की ॥१३॥ उन दोनों ने कहा हे देव ! ग्राह और हाथी योनि में गये हुए हम दोनों भक्तों की शाप निवृत्ति कैसे होगी ? उस शाप को आप विनष्ट करें ॥१४॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— भक्त की वाणी कभी असत्य नहीं होती है। मैं भी उसे अन्यथा नहीं कर सकता हूँ ॥१५॥ प्रह्लाद के कहने के ही कारण मैं प्राचीन

गणावूचतुः

ततस्तौ ग्राहमातङ्गावभूतां गण्डकीतटे। जातिस्मरौ च तद्योन्यामपि विष्णुव्रतेस्थितौ॥१८॥
कदाचित्स गजःस्नातुंकार्त्तिके गण्डकींगतः। तावज्जग्राह चग्राहःसस्मरञ्छापकारणम्॥१९॥
ग्राहगृहीतोऽसौ नागःसस्मार श्रीपतिं तदा। तावदाविरभूद्विष्णुःशङ्खचक्रगदाधरः ॥२०॥
ततस्तौ ग्राहमातङ्गौ चक्रं क्षिप्त्वा समुद्धृतौ।
दत्त्वा न निजसारूप्यं वैकुण्ठमनयद्विभुः ॥२१॥
तदा प्रभृति तत्स्थानं हरिक्षेत्रमिति श्रुतम्। चक्रसङ्घर्षणाद्यस्मिन्पाषाणोऽपि हि लाञ्छितः॥२२॥
ताविमौ विश्रुतौ लोके जयश्च विजयश्च ह।
नित्यं विष्णुप्रियौ द्वास्थौ पृष्टौ यौ हि त्वया द्विज!॥२३॥
अतस्त्वमपि धर्मज्ञ नित्यं विष्णुव्रतेस्थितः। त्यक्तमात्सर्यदम्भोहिभवस्व समदर्शनः॥२४॥
तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भव। एकादशीव्रते तिष्ठ तुलसीवनपालकः॥२५॥
ब्राह्मणानपि गाश्चापि वैष्णवांश्च सदा भज। मसूराश्चारनालाश्च वृन्ताकानपि खादमा॥२६॥
एवं त्वमपि देहान्ते तद्विष्णोःपरमम्पदम्। प्राप्नोति धर्मदत्त त्वं तद्भक्तैव यथा वयम्॥२७॥
तवाजन्मव्रतात्तस्माद्विष्णुसंतुष्टिकारकात्। न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै॥२८॥
धन्योऽसि विप्राग्र्यु यतस्त्वयैतद्व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः।
यत्पुण्यभागाप्तफलं मुरारेःप्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम्॥२९॥

काल में स्तम्भ से अविर्भूत हो गया। उसी तरह से अम्बरीष के कहने से मैं रास्ते में उत्पन्न हो गया॥१६॥ अतएव आप दोनों स्वयं दिए हुए शाप को भोगें। तुम दोनों मेरे लोक में आओगे यह कहकर श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये॥१७॥ **दोनों गणों ने कहा**— उसके पश्चात् वे दोनों गण्डकी नदी के तट पर ग्राह और हाथी हुए। उन दोनों को पूर्वजन्म की बात याद थी अतएव उस योनि में भी वे विष्णु व्रत करते थे॥१८॥ एक बार वह गज स्नान करने लिए गण्डकी में गया। उसी समय ग्राह ने शाप के कारण को स्मरण करके उसे पकड़ लिया॥१९॥ ग्राह के द्वारा पकड़े गये हाथी ने श्रीभगवान् का स्मरण किया। उसी समय शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए हुए भगवान् विष्णु प्रकट हो गये। उसके बाद भगवान् ने चक्र को भेजकर उन दोनों का उद्धार किया। उन दोनों को अपना सारूप्य प्रदान कर वैकुण्ठ में लाये॥२०-२१॥ उस समय उस क्षेत्र को हरिक्षेत्र कहते हैं। चक्र के घर्षण से उस क्षेत्र का पत्थर भी चक्रांकित हो गया॥२२॥ वे दोनों संसार में जय और विजय के नाम से विख्यात हैं। वे सदा भगवान् विष्णु को प्रिय द्वारपाल हैं, उन्हीं के विषय में आपने पूछा था॥२३॥ अतएव धर्मज्ञ आप मात्सर्य तथा दम्भ को त्याग कर भगवान् विष्णु का व्रत करते रहें॥२४॥ सूर्य के तुला राशि, मकर राशि और मेष राशि के होने पर सदा प्रातः स्नान किया करें। एकादशी व्रत करें और तुलसी वन का पोषण करें॥२५॥ सदा ब्राह्मण, गौ तथा वैष्णवों की सेवा करें। मसूर, आरनाल (काँजी) और बैगन न खायें॥२६॥ ऐसा करके आप भी शरीर के अन्त में भगवान् के लोक को प्राप्त करेंगे। हे धर्मदत्त! हमलोग भी भगवान् विष्णु के ही भक्त हैं॥२७॥ भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाले जीवन भर के व्रत से यज्ञ, दान और तीर्थों का महत्त्व अधिक नहीं है॥२८॥ हे विप्रश्रेष्ठ! आप धन्य हैं क्योंकि आपने श्रीभगवान् को प्रसन्न

नारद उवाच

इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुपदिश्य विमानगौ । तया कलहया सार्धं वैकुण्ठभवनं गतौ॥३०॥
धर्मदत्तोऽप्यसौ जात प्रत्ययम्तद्व्रते स्थितः ।
देहान्ते तद्विभोःस्थानं भार्याभ्यामन्वितोऽभ्यगात् ॥३१॥
इतिहासमिमं पुराभवं शृणुते यश्च पुमान्यथाविधि ।
हरिसन्निधिकारिणीम्मतिं लभतेऽसौ कृपया जगद्गुरोः ॥३२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशतसाहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे कलहोपाख्याने गणपूर्वपुण्यवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय

पृथुरुवाच

कृष्णावेण्यातटाद्यस्माच्छिवविष्णुगणैःपुरा । वणिक्छरीरात्कलहानिर्गताकथितात्वया ॥१॥
प्रभावोऽयं तयोर्नद्योःकि वा क्षेत्रस्य तम्य वा ।
तन्मे कथय धर्मज्ञ ! विस्मयोऽत्र महान्मम ॥२॥

करने वाले इस व्रत को किए हैं उससे उत्पन्न पुण्य के आधे भाग से हमलोग इसको भगवान् के लोक में ले जा रहे हैं ॥२९॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह विमान पर विद्यमान वे दोनों धर्मदत्त को उपदेश देकर उस कलहा के साथ वैकुण्ठ लोक में चले गये ॥३०॥ उस व्रत को करने वाले धर्मदत्त को भी विश्वास हो गया । शरीर त्याग के पश्चात् वे अपनी दोनों पत्नियों के साथ वैकुण्ठ लोक में चले गये ॥३१॥ इस प्राचीन इतिहास को जो पुरुष विधि पूर्वक श्रवण करता है वह श्रीभगवान् की कृपा से श्रीहरि के सान्निध्य को प्रदान करने वाली बुद्धि को प्राप्त करता है ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में कलहोपाख्यान के गणापूर्व पुण्य वर्णन नामक एक सौ दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११०॥

कृष्णा वेणी आदि अनेक नदियों का माहात्म्य वर्णन

महाराज पृथु ने कहा— जिस कृष्णा वेणी आदि के तट से चूकि शिव तथा विष्णु के गणों द्वारा वणिक के शरीर से कलहा निकल गयी यह आपने कहा ॥१॥ यह प्रभाव उन दोनों नदियों का प्रभाव है अथवा उस क्षेत्र का है इस विषय में मुझको बहुत आश्चर्य है, अतः उसे आप मुझे बतलायें ॥२॥ **नारदजी ने कहा—** कृष्णा साक्षात् भगवान् कृष्ण का शरीर है वेणी महेश्वर स्वरूप है । उन दोनों नदियों के सङ्गम

नारद उवाच

कृष्णा कृष्णतनुःसाक्षाद्वेण्या देवो महेश्वरः। तत्संगमप्रभावं तु नालं वक्तुं चतुर्मुखः॥३॥
तथापि तत्समुत्पत्तिं कीर्तयिष्यामि तच्छृणु। चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वं मनोर्देवःपितामहः ॥४॥
सह्याद्रिशिखरेरम्ये यजनायोद्यतोऽभवत्। स कृत्वा यज्ञसंभारान्सर्वदेवगणैर्वृतः॥५॥
युक्तो हरिहराभ्यां च तद्गिरेः शिखरं ययौ।
भृग्वादयो मुनिगणा मुहूर्ते ब्रह्मदैवते ॥६॥
तस्य दीक्षा विधानाय समाजंतत्र चक्रिरे। अथ ज्येष्ठां स्वारांपत्नीं विष्णुराह्वयतद्विजैः॥
सा शनैराययौ तावद् भृगुर्विष्णुमुवाच ह ॥७॥

भृगुरुवाच

विष्णो! स्वरा तवयाऽहूता आयाति न हि सत्वरा।
मुहूर्तातिक्रमश्चायं कार्यो दीक्षाविधिःकथम् ॥८॥

विष्णुरुवाच

नायाति चेत्स्वरा शीघ्रं गायत्र्यत्र विधीयताम्।
एषाऽपि न भवत्यस्य भार्या कि पुण्यकर्मणि ॥९॥

नारद उवाच

एवमेव हि रुद्रोऽपि विष्णोर्वाक्यममोदत। तच्छ्रुत्वा स भृगुर्वाक्यंगायत्रीं ब्रह्मणस्तदा॥१०॥
निवेश्य दक्षिणे भागे दीक्षाविधिमथाऽकरोत्।
यावद्दीक्षाविधिं तस्य विधेश्चक्रुर्विधानतः ॥११॥
तावदभ्याययौ तत्र स्वरा यज्ञस्थले नृप!। ततस्तां दीक्षितां दृष्ट्वा गायत्रीं ब्रह्मणा सह॥१२॥
सपत्नीर्षापरा क्रोधात्स्वरा वचनमब्रवीत् ॥१३॥

के प्रभाव को ब्रह्माजी भी बतलाने में असमर्थ हैं। फिर भी उसकी उत्पत्ति को मैं बतलाता हूँ। चाक्षुष हे मनवन्तर में पहले ब्रह्माजी मनु का पूजन करने के लिए सहयाचल के मनोहर शिखर पर यजन करने के लिए उद्यत हुए। सभी देवताओं से घिरे हुए ब्रह्माजी ने यज्ञ की सामग्री एकत्रित करके ॥३-४॥ श्रीहरि और शङ्करजी के साथ उस पर्वत के शिखर पर गये। भृगु आदि मुनि समुदाय ने ब्रह्म दैवत मुहूर्त में ब्रह्माजी की दीक्षा विधि करने के लिए समाज जुटाये। उसके पश्चात् उन्होंने ब्रह्माजी की बड़ी पत्नी स्वरा (सरस्वती) को ब्राह्मणों से विष्णु भगवान् ने बुलवाया ॥५-६॥ जब वह धीरे-धीरे आयी तो भृगु महर्षि ने विष्णु भगवान् से कहा ॥७॥ **भृगु महर्षि ने कहा—** विष्णो! आपने स्वरा को बुलाया तो वह शीघ्रता से नहीं आ रही है। दीक्षा का मुहूर्त बीत रहा है तो दीक्षा विधि कैसे की जाय ॥८॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** यदि स्वरा शीघ्र नहीं आती हैं तो गायत्री की दीक्षा विधि करें गायत्री भी तो पुण्य कर्मों में ब्रह्माजी की पत्नी ही हैं ॥९॥ **नारदजी ने कहा—** इसी तरह शङ्करजी ने भी भगवान् विष्णु की बातों का अनुमोदन किया। उसको सुनकर भृगु महर्षि ने गायत्री को ब्रह्माजी की दाहिनी ओर बैठाकर दीक्षा विधि कर दी। जब तक ब्रह्माजी की दीक्षा विधि को ऋषियों ने किया ॥१०-११॥ तब तक हे राजन्! स्वरा भी यज्ञस्थल

स्वरोवाच

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः ।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥१४॥

ममाऽऽसने कनिष्ठेयं भवद्भि सन्निवेशिता। तस्मात्सर्वे जडीभूतानानारूपा भविष्यथः ॥१५॥
इयं च दक्षिणे भागे ह्युपविष्टा मदासने। तस्माल्लोकैःसदाऽदृश्यातनुर्वहतु निम्नगा॥१६॥

नारद उवाच

ततस्तच्छापमाकर्ण्य गायत्री कम्पिता तदा । समुत्थायाऽऽशपद्देवैर्वार्यमाणाऽपि तां स्वराम् ॥१७॥
तव भर्ता यथा ब्रह्माममाप्येष तथा खलु। वृथाऽऽशपस्त्वं यस्मान्मां भवत्वमपि निम्नगा ॥१८॥

नारद उवाच

ततो हाहाकृताः सर्वे शिवविष्णुमुखाःसुरा। प्रणम्यदण्डवद्भूमौ स्वरां तत्र व्यजिज्ञपन् ॥१९॥

देवा ऊचुः

देवि सर्वे वयंशप्ता ब्रह्माद्या यत्त्वयाऽधुना। यदि सर्वे जडीभूता भविष्यामोऽत्रनिम्नगाः ॥२०॥
तदा लोकत्रयं ह्येतद्विनाशं यास्यति ध्रुवम् । अविवेकः कृतस्तस्माच्छापोऽयं विनिर्त्यताम् ॥२१॥

स्वरोवाच

नार्चितो हि गणाध्यक्षो यज्ञादौ यत्सुरोत्तमाः ।
तस्माद्विघ्नं समुत्पन्नं मत्क्रोधजमिदं खलु ॥२२॥

नाऽपि मद्वचनं ह्येतदसत्यं जायते खलु। तस्मात्स्वांशैजडीभूता यूयं भवत निम्नगाः ॥२३॥

आवामपि सपत्न्यौ च स्वांशाभ्यामपि निम्नगे ।
भविष्यावोऽत्र वै देवाः पश्चिमाभिमुखावहे ॥२४॥

पर आ गयी । उसके बाद गायत्री को ब्रह्माजी के साथ दीक्षित देखकर ॥१२॥ सौत से ईर्ष्या करने के कारण क्रोध करके स्वरा ने कहा ॥१३॥ **स्वरा ने कहा**— जहाँ पर अपूज्यों का पूजन किया जाता है और पूज्यों का अतिक्रमण किया जाता है वहाँ पर तीन बातें होती हैं दुर्भिक्ष, मरण और भय ॥१४॥ आपने मेरे आसन पर इस कनिष्ठा को बैठाया है उसके कारण आपलोग जड़ तथा अनेक प्रकार के हो जायेंगे॥१५॥ यह मेरे पवित्र आसन पर दक्षिण भाग में बैठी है अतएव यह लोक में अदृश्य शरीर वाली नदी होकर प्रवाहित हो ॥१६॥ **नारदजी ने कहा**— उसके पश्चात् उस शाप को सुनकर गायत्री भी क्रोध से काँपने लगी और देवताओं से रोके जाने पर भी स्वरा को शाप दे दिया ॥१७॥ ब्रह्माजी जैसे तुम्हारे पति हैं उसी तरह मेरे भी पति हैं । तुमने व्यर्थ ही मुझे शाप दिया है अतएव तुम भी नदी हो जाओ ॥१८॥ **नारदजी ने कहा**— उसके बाद शिव, तथा विष्णु आदि देवता हाहाकार करने लगे । उन लोगों ने साष्टाङ्ग प्रणम करके स्वरा से कहा ॥१९॥ **देवताओं ने कहा**— हे देवि ! आपने हम सभी देवताओं और ब्रह्माजी को जो शाप दिया है, तो हम सभी जड होकर नदी हो जायेंगे ॥२०॥ तो त्रैलोक्य का निश्चित रूप से नाश हो जायेगा । आपने विचार नहीं किया है अतएव इस शाप को आप लौटा लें ॥२१॥ **स्वरा ने कहा**— हे देवताओं ! आप लोगों ने चूकि आदि में गणेश की पूजा नहीं की इसीलिए मेरे क्रोध से उत्पन्न यह बिघ्न हो गया है ॥२२॥ मेरी यह वाणी असत्य नहीं हो सकती है अतएव आपलोग अपने अंशों से

नारद उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । जडीभूताभवन्नद्यःस्वांशैरेव तदा नृप ! ॥२५॥
तत्र विष्णुरभूत्कृष्णा वैण्या देवो महेश्वरः । ब्रह्माककुद्मती गङ्गा पृथगेवाभवत्तदा ॥२६॥
देवाः स्वानपि तानांशाञ्जडीकृत्य विचिक्षिपुः ।
सह्याद्रिशिखरेभ्यस्ताः पृथगासन्सुनिम्नगाः ॥२७॥
देवांशै पूर्ववाहिन्यो बभूवुः पश्चिमावहाः । तत्पत्न्यंशैःपृथक्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥२८॥
गायत्री च स्वरा चैव पश्चिमाभिमुखे तदा । योगेनाभवतां नद्यौ सावित्रीति प्रथां गते ॥२९॥
ब्रह्मणा स्थापितौ तत्र यज्ञे हरिहरावुभौ । महाबलातिबलिनौ नाम्ना देवो बभूवतुः ॥३०॥
तयोर्नद्योस्तु माहात्म्यंनाहं वक्तुं क्षमो नृप ! ।
ययुर्ब्रह्मायोदेवाःस्वांशैस्तिष्ठन्ति चापगाः ॥३१॥
कृष्णोद्भवं पापहरं परं यः शृणोति यःश्रावयते च भक्त्या ।
स्यात्तस्य पुंसः सकलं फलं यत्तद्दर्शनस्नानसमुद्भवं फलम् ॥३२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे कृष्णवेण्यामाहात्म्यवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

जड़ होकर नदी हो जायँ ॥२३॥ हम दोनों सौतें भी अपने अंश से पश्चिमाभिमुखी दो नदियाँ हो जायेंगी॥२४॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से स्वरा की बात सुनकर ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर अपने अंशों से जड़ होकर नदियाँ हो गये ॥२५॥ भगवान् विष्णु कृष्णा हो गये, शिववेणी हो गये, ब्रह्माजी ककुमती गङ्गा हो गये तीनों अलग-अलग हो गये ॥२६॥ देवता भी अपने उन जड़ हुए अंशों को फेक दिया । वे सभी सह्याद्रि से अलग-अलग नदियाँ हुयी है ॥२७॥ देवताओं के अंश से पूर्वाहिनी और उनकी पत्नियों के अंश से पश्चिम वाहिनी सैकड़ों हजार नदियाँ हो गयीं ॥२८॥ गायत्री और सावित्री उस समय पश्चिमाभिमुखी दोनों के सङ्गम स्थल पर उन दोनों का सावित्री नाम हुआ ॥२९॥ ब्रह्माजी ने यज्ञ में वहाँ पर श्रीहरि और शिवजी की स्थापना की । उन दोनों देवताओं का नाम महाबल और अतिबल हुआ ॥३०॥ राजन् ! उन दोनों नदियों का माहात्म्य वतलाने में मैं समर्थ नहीं हूँ । ब्रह्मा आदि देवता तो चले गये किन्तु नदियाँ उनके अंश से वहाँ बनी हुयी हैं ॥३१॥ जो मनुष्य श्रीभगवान् से उत्पन्न, पाप विनाशक इस आख्यान को सुनता और सुनाता है उसको उनके दर्शन और स्नान जन्य सम्पूर्ण फल की प्राप्ति होती है ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में कृष्णा तथा वेणी इन दोनों नदियों के माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१११॥

एक सौ बारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा पृथुर्विस्मितमानसः। संपूज्य नारदं भक्त्या विससर्ज तदा प्रिये ! ॥१॥
तस्माद्व्रतत्रयं ह्येतन्ममातीवप्रियङ्करम्। माघकार्त्तिकयोर्यद्वत्तथैवैकादशीव्रतम् ॥२॥

वनस्पतीनां तुलसी मासानां कार्त्तिकाः प्रियः।
एकादशी तिथीनां च क्षेत्राणां द्वारका मम ॥३॥

एतेषां सेवनं यस्तु करोति च जितेन्द्रियः। स मे वल्लभतां याति न तथा यजनादिभिः॥४॥
पापेभ्यो न भयं तेन कर्तव्यं नियमादपि। एतेषां सेवनं कान्ते ! कुर्वता मत्प्रसादतः॥५॥

सत्यभामोवाच

विस्मापनीयं तन्नाथ यत्त्वया कथितं मम। परदत्तेन पुण्येन कलहा मुक्तिमागता॥६॥

इत्थं प्रभावो मासोऽयं कार्त्तिकस्ते प्रियङ्करः।
स्वामिद्रोहादि पापानि स्नानदानैर्गतानि यत् ॥७॥
दत्तं च लभते पुण्यं यत्परेण कृतं विभो !।
अदत्तं केनमार्गेण लभते चापि मानवः ॥८॥

श्रीकृष्ण उवाच

अदत्तान्यपि पुण्यानि पापानि च यथा नरैः।
प्राप्यन्ते कर्मणा येन तद्यथावन्निशामय ॥९॥

देशग्रामकुलानिस्युर्भागभाञ्जि कृतादिपु। कलौ तु केवलं कर्ता फलभुक्पुण्यपापयोः ॥१०॥
अकृतेऽपि हि संसर्गे व्यवस्थेयमुदाहृता। संसर्गात्पुण्यपापानि यथा यान्ति निबोध तत् ॥११॥

एकादशी, माघ, कार्तिक, तुलसी एवं द्वारका का माहात्म्य वर्णन

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा— इस तरह से नारदजी के वचनों को सुनकर आश्चर्यित मन वाले पृथु भक्ति पूर्वक नारदजी की पूजा करके उनको विदा किए ॥१॥ अतएव ये तीन व्रत मुझको अत्यन्त प्रिय हैं, माघव्रत, कार्तिक व्रत और एकादशी व्रत ॥२॥ वनस्पतियों में तुलसी, मासों में कार्तिक और तिथियों में एकादशी और क्षेत्रों में द्वारका मुझको प्रिय हैं ॥३॥ जो जितेन्द्रिय मनुष्य इन सबों का सेवन करता है वह मेरा जितना प्रिय होता है उतना प्रिय कोई मेरा यजन करने वाला नहीं होता है ॥४॥ इन सबों का सेवन करने वाले को मेरी कृपा प्राप्त होने के कारण नियम तथा पापों से उसको भय नहीं करना चाहिए ॥५॥ **सत्यभामाजी ने कहा—** हे नाथ ! आपने यह जो कहा है कि दूसरे के द्वारा प्रदत्त पुण्य से कलहा मुक्ति प्राप्त कर ली इससे मुझको बड़ा आश्चर्य हो रहा है ॥६॥ इस तरह से आपके प्रिय कार्तिक मास का ऐसा प्रभाव है कि इसमें स्नान और दान करने से स्वामिद्रोहादि जन्य पाप नष्ट हो जाते हैं ॥७॥ हे प्रभो ! यदि दिया गया पुण्य दूसरों को प्राप्त होता है तो बिना दिया गया पुण्य वह किस मार्ग से प्राप्त करता है ॥८॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** बिना दिया गया पुण्य भी मनुष्यों को जिस कर्म से प्राप्त होता है, उसे तुम ठीक से सुनो ॥९॥ सत्ययुग आदि में देश, ग्राम और कुल आदि भाग प्राप्त करने के साधन होते हैं

एकत्रमैथुनाद्यानादेकपात्रस्थभोजनात् । फलार्धं प्राप्नुयान्मर्त्यो यथावत्पुण्यपापयोः ॥१२॥
अध्यापनाद्याजनाद्वाप्येकपङ्क्त्यशनादिप । तुर्यांशं पुण्यपापानां नित्यं प्राप्नोति मानवाः ॥१३॥
एकासनादेकयानान्निःश्वासस्याङ्गसंगतः । षडशफलभागीस्यन्नियतं पुण्यपापयोः ॥१४॥
स्पर्शनाद्भाषणाद्वापि परस्य स्तवनादपि। दशांशं पुण्यपापानां नित्यः प्राप्नोति मानवः ॥१५॥
दर्शनश्रवणभ्यां च मनोध्यानात्तथैव च। परस्य पुण्यपापानां शतांशं प्राप्नुयान्नरः॥१६॥

परस्यनिन्दां पैशुन्यं धिक्कारं च करो त यः ।
तत्कृतं पातकं प्राप्य स्वपुण्यं प्रदादति सः ॥१७॥

कुर्वतः पुण्यकर्माणि सेवां यःकुरुते नरः। पत्नीभृतकशिष्येभ्यो यदन्यः कोऽपि मानवः ॥१८॥
तस्य सेवानुरूपेण द्रव्यंकिंचिन्न दीयते। सोऽपि सेवानुरूपेण तत्पुण्यफलभाग्भवेत् ॥१९॥
एकपङ्क्त्यश्नतां यस्तु लङ्घयेत्परिवेषणम्। तस्य पापषडंशं तु लभेद्वै परिवेषकः ॥२०॥
स्नानसन्ध्यादिकं कुर्वन्यःस्पृशेद्वा प्रभाषते । स पुण्यकर्मषष्ठांशं दद्यात्तस्मै सुनिश्चितम्॥२१॥
धर्मोद्देशेन यो द्रव्यमपरं याचते नरः। तत्पुण्यकर्मजं तस्य धनदस्त्वाप्नुयात्फलम् ॥२२॥
अपहृत्य परद्रव्यं पुण्यकर्म करोति यः। कर्मकृत्पापभाक्तत्र धनिनस्तद्भवं फलम् ॥२३॥
नापनुद्य ऋणं यस्तु परस्य म्रियते नरः। धनीतत्पुण्यमाधत्ते स्वधनस्याऽनुरूपतः॥२४॥

कलियुग में केवल कर्ता ही पाप और पुण्य का फल भोगता है ॥१०॥ सम्बन्ध के बिना भी यह व्यवस्था बतलायी गयी है । सम्बन्ध के द्वारा भी पुण्य पाप जैसे प्राप्त होते हैं उसे तुम सुनो ॥११॥ एक स्थान पर मैथुन करने पर, एक सवारी पर बैठने के कारण, एक ही पात्र में भोजन करने से मनुष्य पुण्य और पाप के फल को आधा फल प्राप्त करते हैं ॥१२॥ एक साथ पढ़ाने, एक साथ पूजन करने, तथा एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने से भी मनुष्य पुण्यों तथा पापों के चतुर्थांश को प्राप्त करते हैं ॥१३॥ एक आसन पर बैठने से, एक सवारी पर चलने से, निःश्वास लेने से तथा शरीर सटाने से मनुष्य पुण्य और पाप के छठे भाग को प्राप्त करता है ॥१४॥ एक दूसरे को छूने से, एक दूसरे को देखने से तथा दूसरे की स्तुति करने से मनुष्य एक दूसरे के पुण्यों तथा पापों के दशवें अंश को प्राप्त करता है । देखने से, सुनने से तथा मन से ध्यान करने से भी मनुष्य दूसरे के पुण्यों और पापों के सौवें अंश को प्राप्त करता है ॥१५-१६॥ जो दूसरे की निन्दा तथा धिक्कार को करता है, चुगली करता है वह उसके पाप को लेकर अपने पुण्य को दे देता है ॥१७॥ पुण्य कर्म करने वाले मनुष्य की यदि कोई मनुष्य अपनी पत्नी, शिष्य तथा नौकर के द्वारा सेवा करवाता है और उसकी सेवा के अनुरूप यदि द्रव्य नहीं दिया जाता है तो वह भी उसके पुण्य के अनुरूप पुण्य का भागी होता है ॥१८-१९॥ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने वालों में परोसने वाला यदि भेद करता है तो उसके पाप के छठे अंश को वह परोसने वाला भोगता है ॥२०॥ स्नान अथवा सन्ध्या करने वाले को यदि कोई स्पर्श करता है या उससे बातें करता है तो वह अपने पुण्य कर्म का छठा हिस्सा उस संध्या करने वाले को दे देता है ॥२१॥ यदि धर्म करने के लिए द्रव्य माँगता है तो उसके पुण्य का फल धन देने वाले को मिल जाता है ॥२२॥ दूसरे की सम्पत्ति चुराकर यदि कोई पुण्य कर्म करता है तो वह पुण्य करने वाला पापी होता है और जिसका धन होता है वह पुण्य प्राप्त करता है ॥२३॥ यदि कोई दूसरे के ऋण को चुकाये बिना मर जाता है तो धनी उसके पुण्य के अनुसार

बुद्धिदस्त्वनुमन्ता च यश्चोपकरणप्रदः । बलकृच्चापि षष्ठांशं प्राप्नुयात्पुण्यपापयोः ॥२५॥
प्रजाभ्यःपुण्यपापानां राजा षष्ठांशमुद्धरेत् ।
शिष्याद्गुरुःस्त्रियो भर्त्ता पिता पुत्रात्तथैव च ॥२६॥
स्वपतेरपि पुण्यस्य योषिदर्धमवाप्नुयात् । चित्तस्यानुव्रता शश्वद्वर्तते तुष्टिकारिणी ॥२७॥
परहस्तेन दानादि कुर्वतः पुण्यकर्मणि। बिना भृतकपुत्राभ्यां कर्त्ता षष्ठांशमुद्धरेत्॥२८॥
वृत्तिदो वृत्तिसंभोक्तुःपुण्यमष्टांशमुद्धरेत् । आत्मनो वा परस्याऽपि यदि सेवां न कारयेत्॥२९॥

श्रीकृष्ण उवाच

इत्थं ह्यदत्तान्यपि पुण्यपापान्यायान्ति नित्यं परसञ्चितानि ।
कलौ त्वयं वै नियमो न कार्यःकर्तैवभोक्ता खलु पुण्यपापयोः ।
शृणुष्व चेमं इतिहासमग्र्यं पुराभवं पुण्यमतिप्रदं च ॥३०॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे पुण्यपापांशकथनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

फल प्राप्त करता है ॥२४॥ बुद्धि देने वाला, अनुमोदन करने वाला तथा उस कर्म को करने का साधन देने वाला और बल प्रदान करने वाला उन पुण्य और पापों का अंश प्राप्त करता है ॥२५॥ प्रजाओं के द्वारा किए गये पुण्य या पाप का छठा अंश राजा को प्राप्त होता है । शिष्य, गुरु, स्त्री, पति, पिता, पुत्र तथा अपने पति द्वारा किए पुण्य का आधा भाग पत्नी को मिलता है यदि वह अपने पति को मनोऽनुरूप कार्यों को करती है तब ही ॥२६-२७॥ किसी पुण्य कर्म में जो दूसरों के हाथ से दान आदि करवाता है तो वह करने वाला उन दानादि के पुण्यों का षठांश प्राप्त करता है । यदि करने वाला पुत्र अथवा भृत्य हो तो उन सबों को पुण्य नहीं प्राप्त होता है । जीविका देने वाला जीविका प्राप्त करने वाले के पुण्य का छठा अंश प्राप्त करता है । यदि वह जीविका के बदले में अपनी अथवा सेवा नहीं करवाता है तब ही ॥२८-२९॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** इसी तरह से दूसरों के पुण्य अथवा पाप दूसरों को प्राप्त होते हैं । किन्तु कलियुग में ऐसा नियम नहीं होता है इस युग में तो पुण्य या पाप करने वालों को ही उसका फल मिलता है । तुम इस प्राचीन तथा पुण्य प्रदान करने वाले इतिहास को सुनो ॥३०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में पुण्यांश तथा पापांश वर्णन नामक एक सौ बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११२।।

एक सौ तेरहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण उवाच

पुराऽवन्तीपुरे वासी विप्र आसीद्धनेश्वरः । ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टः पापनिष्ठः सुदुर्मतिः ॥१॥
रसकम्बलवर्मादिविक्रयानृतवर्त्तनः । स्तेयवेश्यासुरापानद्यूतसंसक्तमानसः ॥२॥
देशाद्देशान्तरं गच्छन्क्रयविक्रयकारणात् । माहिष्मतीं पुरीं यातःकदाचित्स धनेश्वरः ॥३॥
महिषेण कृतापूर्वं तस्मान्माहिष्मती स्मृता । यस्यां वप्रतटाभाति नर्मदा पापनाशिनी॥४॥
कार्त्तिकव्रतिनस्तत्र नानाग्रामागतान्नरान् । स दृष्ट्वा विक्रयं कुर्वन्मासमेकमुवासह॥५॥
स नित्यं नर्मदातीरे भ्रमन्विक्रयकारणात् । ददर्श ब्राह्मणान्स्नाताञ्जपदेवार्चनेरतान् ॥६॥
कांश्चित्पुराणं पठतःकांश्चित्तच्छ्रवणेरतान् । नृत्यगायनवादित्रविष्णुस्तवनतत्परान् ॥७॥
विष्णुमुद्राङ्किताकांश्चिन्माला तुलसिधारिणः । ददर्श कौतुकाविष्टस्तत्र तत्र धनेश्वरः ॥८॥
नित्यं परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणात् । वैष्णवानां तथा विष्णोर्नाम संश्रावितोऽभवत्॥९॥
एवं मासंस्थितःसोऽथ कार्त्तिकोद्यापने विधौ ।
क्रियमाणे ददर्शाऽसौ भक्तैर्जागरणंहरेः ॥१०॥
पौर्णमास्यां ततोऽपश्यद्विविधं पूजनादिकम् । दक्षिणाभोजनाद्यं च दीपदानं व्रतस्थितैः ॥११॥
ततोऽर्कास्तमये चैवं दीपोत्सवविधिं तदा । क्रियमाणं ददर्शाऽसौ प्रीत्यर्थं त्रिपुरद्विषः ॥१२॥
त्रिपुराणां कृतो दाहो यतस्तस्यां शिवेन तु। अतस्तु क्रियते तस्यां तिथौ भक्तैर्महोत्सवः ॥१३॥

कार्तिक व्रत की प्रशंसा और धनेश्वर ब्राह्मण का वृत्तान्त

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा— प्राचीन काल में अवन्ती नगरी में धनेश्वर ब्राह्मण रहता था । वह दुर्मति, ब्रह्म कर्म नहीं करने वाला और पापी था ॥१॥ वह झूठ वोलता था, रस, कमल, तथा चमड़ा आदि बेचता था । चोरी, वेश्या, मदिरापान तथा जूए में उसका मन सदा लगा रहता था ॥२॥ वह क्रय-विक्रय करने के लिए एक देश से दूसरे देश में जाता था । वह धनेश्वर माहिष्मती नामक नगरी में गया॥३॥ प्राचीन काल में उस नगरी को माहिष ने वसाया था अतएव उसका नाम माहिष्मती पड़ा । उस नगरी में वप्रतटा पापनाशिनी नर्मदा नदी सुशोभित होती थी ॥४॥ वहाँ पर अनेक गावों से आये हुए कार्तिक व्रत करने वाले मनुष्यों को वहीं पर बिक्री करते हुए एक महीना उसने निवास किया ॥५॥ वह वेंचने के लिए प्रतिदिन घूमते हुए नर्मदा के तीर पर स्नान करके जप तथा देवार्चन करते हुए ब्राह्मणों को देखा ॥६॥ उनमें कुछ पुराण पढ़ते थे तो कुछ उसे सुन रहे थे । वे लोग, नृत्य, गायन और वाद्य बजा रहे थे ॥७॥ कुछ लोग विष्णु की मुद्रा (शङ्ख चक्र) से चिह्नित थे और कुछ तुलसी की माला धारण किए थे । इस तरह से धनेश्वर उत्कण्ठित होकर विभिन्न स्थानों पर देखा । वहाँ पर सदा अभय करते हुए वह वैष्णवों, दर्शन, स्पर्श तथा भाषण और भगवान् विष्णु का नाम सुनता रहता था ॥८॥ इस तरह से वह वहाँ एक मास रह गया । उसके बाद जब कार्तिक व्रत का उद्यापन किया जा रहा था तो उसने भक्तों द्वारा भगवान् विष्णु का जागरण देखा ॥९॥ उसके बाद सूर्यास्त के समय पूर्णमासी को अनेक प्रकार के पूजन आदि को देखा। उसने देखा कि व्रत करने वाले ब्राह्मण भोजन तथा दीपदान आदि कर रहे थे ॥१०-१२॥ चूकि इसी दिन

मम रुद्रस्य यः कश्चिदन्तरं परिकल्पयेत्। तस्य पुण्यक्रियाःसर्वा निष्फलाःस्युर्न संशयः॥१४॥
तत्र नृत्यादिकं पश्यन्बभ्राम स धनेश्वरः। तावत्कृष्णाहिनादिष्टो विकलःस पपात ह ॥१५॥
जनास्तं पतितं वीक्ष्य परिवव्रुःऽकृपान्विताः ।
तुलसीमिश्रितैस्तोयैस्तन्मुखं सिषिचुस्तदा ॥१६॥
अथ देहे परित्यक्ते तं बद्ध्वा यमकिङ्कराः ।
बाध्यमानं कशाघातैर्निन्युःसंयमिनीं रुषा ॥१७॥
चित्रगुप्तस्तु तं दृष्ट्वा निर्भर्त्स्यावेदयत्तदा। यमायतेन बाल्यात्तु कर्मयद्दुष्कृतं कृतम् ॥१८॥

चित्रगुप्त उवाच

नैवास्य दृश्यते किंचिदाबाल्यात्सुकृतं क्वचित् ।
दुष्कृतं शक्यते वक्तुं शतवर्षैर्नभास्करे ॥१९॥
पापमूर्तिरयं दुष्टःकेवलं दृश्यते विभो। तस्मादाकल्पमर्यादं निरये परिपच्यताम् ॥२०॥

श्रीकृष्ण उवाच

निशम्येत्थं वचःक्रोधाद्यमः प्राह स्वकिङ्करान् ।
दर्शयन्नात्मनो रूपं कालाग्निसदृशप्रभम् ॥२१॥

यम उवाच

भोःप्रेतप नयस्वैनं विध्यमानं स्वमुद्गरैः। कुम्भीपाके क्षिपस्वाशु दुष्टं कल्मषदर्शनम्॥२२॥

श्रीकृष्ण उवाच

ततो मुद्गरनिर्भिन्नमूर्धानं प्रेतपोऽनयत्। कुम्भीपाकेऽक्षिपच्चाशु तैलक्वथनशब्दिते॥२३॥
यावत्क्षिप्तस्तु तत्रासौतावच्छीतलतां ययौ। कुम्भीपाके यथा वह्निः प्रह्लादक्षेपणात्पुरा ॥२४॥

शिवजी ने त्रिपुर दाह किया था इसीलिए भक्त इसी तिथि को महोत्सव मनाते हैं। जो मुझमें और शिवजी में भेद बुद्धि करता है उसके सारे पुण्य कर्म विफल हो जाते हैं ॥१३-१४॥ वहाँ पर नृत्य इत्यादि देखते हुए धनेश्वर घूम रहा था। उसी समय काले सर्प ने उसे काट लिया और वह मूर्छित होकर गिर पड़ा॥१५॥ लोग उसको गिरे हुए देखकर करुणा युक्त होकर परस्पर में कहे। और तुलसी मिश्रित जल से उसके मुख को धोए ॥१६॥ इसके बाद उसके मर जाने पर यमदूत उसको बाँधकर उसको कोड़ों से पीटते हुए संयमनी पुरी लाये ॥१७॥ उसको देखकर चित्रगुप्त ने उसको डाँटकर यमराज से कहा बचपन से ही जो पापकर्म किया था उसको बतलाया ॥१८॥ **चित्रगुप्त ने कहा—** इसने बचपन से जो पाप किया है उसको सौ वर्षों में भी नहीं गिनाया जा सकता है। इसने कोई भी पुण्य कर्म नहीं किया है ॥१९॥ हे स्वामिन्! मालुम पड़ता है कि यह पाप मूर्ति है। अतएव इसको पूरे कल्प भर नरक में पकाया जाय ॥२०॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** इस बात को सुनकर यमराज क्रोध करके अपने दूतों से कहे अपने कालाग्नि के समान भयङ्कर रूप को दिखाते हुए कहे ॥२१॥ **यम ने कहा—** हे प्रेत! इसको अपने मुद्गरों से मारते हुए ले जाओ और शीघ्र ही कुम्भीपाक में डाल दो क्योंकि यह दुष्ट पापी है ॥२२॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** जब मुद्गर के मार से उसका शिर फूट गया था उसे प्रेत ले गये और खौलते हुए कुम्भीपाक में शीघ्र ही फेंक दिया ॥२३॥ जब वह उसमें डाला गया तो वह कुम्भीपाक शीतल उसी तरह हो गया जैसे

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रेतपो विस्मयान्वितः । वेगादागत्य तत्सर्वं यमायाकथयत्तदा ॥२५॥
यमस्तु कौतुकं श्रुत्वा प्रेतपेन निवेदितम् । आः किमेतदिति प्रोच्य सम्यगेतद्व्यचारयत्॥२६॥
तावदभ्यागतस्तत्र नारदः प्रहसंस्त्वरन् । यमेन पूजितः सम्यक्तं दृष्ट्वा वाक्यमब्रवीत्॥२७॥

नारद उवाच

नैवायं निरयान्भोक्तुं क्षमः सवितृनन्दन ? । यस्मादेतस्य संजातं कर्म यन्निरयापहम् ॥२८॥
यः पुण्यकर्मणां कुर्याद्दर्शनस्पर्शभाषणम् । तत्षडंशमवाप्नोति पुण्यस्य नियतं नरः ॥२९॥
असङ्ख्यातैस्तु संसर्गैः कृतवानेप यद्धरेः। कार्त्तिकव्रतिभिर्मासं तस्मात् पुण्यांशभागयम् ॥३०॥
परिचर्याकरस्तेषां संपूर्णव्रतपुण्यभाक् । अतोऽस्योर्जव्रतोद्भूतपुण्यसङ्ख्या न विद्यते ॥३१॥
कार्त्तिकव्रतितां पुसां पातकानि महान्त्यपि। नाशयत्येव सर्वाणि विष्णुः सद्भक्तवत्सलः ॥३२॥
अन्ते च नार्मदैस्तोयैस्तुलसीमिश्रितैस्त्वयम् । वैष्णवैः स्नापितो विष्णोर्नामसंश्रावितोऽपि च॥३३॥
तस्मान्निहतपापोऽयं सद्गतिं प्राप्तुमर्हति। वैष्णवानुग्रहीयस्मान्नरके नैव पच्यते ॥३४॥

आर्द्रैः शुष्कैर्यथापापैर्निरये भोगसंनिधिः ।
प्राप्यते सुकृतैस्तद्वत्स्वर्गभोगस्य संनिधिः ॥३५॥
तस्मादकामपुण्यो हि यक्षयोनिस्थितस्त्वसौ ।
विलोक्य नरकान्सर्वान्पापभोगमवाप्नुयात् ॥३६॥

प्रह्लाद के डालने पर अग्नि शीतल हो गयी थी ॥२४॥ उस महान आश्चर्य को देखकर प्रेत आश्चर्यित हो गया । वह वेग पूर्वक आकर सारी बातें यमराज से कहा ॥२५॥ यम प्रेत से उस कौतुक को सुनकर कहे अरे ? और उन्होंने अच्छी तरह से विचार किया ॥२६॥ उसी समय हँसते हुए वहाँ नारदजी आ गये । यम ने उनकी अच्छी तरह पूजा की और नारदजी से कहा ॥२७॥ **नारदजी ने कहा—** यम यह नरकों को नहीं भोग सकता है । क्योंकि इससे नरकों को दूर करने वाला कार्य हो गया है ॥२८॥ जो पुण्यवान् पुरुषों का दर्शन, स्पर्श करता है उनके साथ बातें करता है, वह मनुष्य उनके पुण्य कर्मों का छठा अंश प्राप्त करता है ॥२९॥ चूकि इसने असंख्य श्रीहरि के कार्तिक व्रत करने वालों से महीने भर सम्बन्ध किया है अतएव यह उनके पुण्यों का भागी है ॥३०॥ जो उन लोगों की सेवा करता है वह सम्पूर्ण व्रत का पुण्य प्राप्त करता है । अतएव कार्तिक मास में उत्पन्न पुण्यों की कोई संख्या नहीं है ॥३१॥ सद्भक्त वत्सल भगवान् विष्णु कार्तिक व्रत करने वालों के महान् पापों को भी विनष्ट कर देते हैं ॥३२॥ अन्त में तुलसी मिश्रित नर्मदा के जल से इसको वैष्णवों ने नहवाया है और भगवान् विष्णु का नाम सुनाया है ॥३३॥ अतएव इसके पाप विनष्ट हो गये हैं और यह सद्गति के योग्य है । जिस पर वैष्णवों का अनुग्रह होता है वह नरक में नहीं पकाया जाता है ॥३४॥ जिस तरह आर्द्र तथा शुष्क पापों के कारण जीव नरक में पकाये जाते है उसी तरह पुण्यों के कारण उन्हें स्वर्ग भोग की प्राप्ति होती है । अतएव अकाम पुण्य करने वाले यक्षों की योनि में यह जाय और सभी नरकों के देखने मात्र से इसको पापों का फल प्राप्त हो

श्रीकृष्ण उवाच

इत्युक्त्वा गतवति नारदेऽथ सौरिस्तद्वाक्यश्रवणविबुद्धतत्सुकर्मा ।
विप्रं तं पुनरनयत्स्वकिङ्करेण तान्सर्वान्निरयगणान्प्रदर्शयिष्यन् ॥३७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे धनेश्वरोपाख्याने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

एक सौ चौदहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण उवाच

ततो धनेश्वरं नीत्वा निरयान्प्रेतपोऽब्रवीत् । प्रदर्शयिष्यंस्तान्सर्वान्यमस्यानुचरस्तदा ॥१॥

प्रेतप उवाच

पश्येमान्निरयान्घोरान्धनेश्वरमहाभयान् । येषु पापकरा नित्यं पच्यन्ते यमकिङ्करैः ॥२॥
तप्तवालुकनामायं निरयो घोरदर्शनः । यस्मिन्नेतेदग्धदेहाःक्रन्दन्ते पापकारिणः ॥३॥
अतिथीन्वैश्वदेवान्ते क्षुत्क्षामानागतान्गृहे । येनार्चन्ति नरास्ते हि पच्यन्ते स्वने कर्मणा ॥४॥
गुर्वग्निब्राह्मणान्देवांस्तथा मूर्धाभिषिक्तवान् । ताडयन्ति पदा ये वै ते निर्दग्धाङ्घ्रयस्त्विमे ॥५॥
षड्भेदस्त्वेष निरयो नानापापैः प्रपद्यते । तथैव चान्धतामिस्रो द्वितीयो निरयो महान् ॥६॥
पश्यसूचीमुखैर्देहो भिद्यते पापकर्मणा । क्रिमिभिर्घोरवत्रैश्च तत्संपर्कागमैर्द्विज ॥७॥

जायेगा ॥३५-३६॥ इस तरह कहकर नारदजी के चले जाने पर यमराज उनकी बातों को सुनकर उसके पुण्यों को जान गये । उन्होंने अपने दूतों से उस ब्राह्मण को मँगवाया और उसको सभी नरकों को दिखाया॥३७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में धनेश्वरोपाख्यान का एक सौ तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११३॥

धनेश्वर का धनयक्ष के नाम से कुबेर के भृत्यत्व की प्राप्ति

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा— उसके बाद धनेश्वर को नरक से लाकर यमदूत ने उनको सभी नरकों को दिखाने की इच्छा से कहा ॥१॥ **प्रेतप ने कहा**— हे धनेश्वर ! तुम महाभय देने वाले इनको भयङ्कर नरकों को तुम देखो । इन सबों में यमदूत पापियों को सदा पकाते रहते हैं ॥२॥ यह भयङ्कर नरक तप्त बालुक नाम वाला है इसमें जले हुए शरीर वाले पापी चिल्ला रहे हैं ॥३॥ बलिवैश्व देखकर जो लोग भूखे अतिथियों की अपने घर में पूजा नहीं करते हैं वे अपने कर्मो के फलस्वरूप इसमें पकाये जाते हैं॥४॥ जो लोग गुरु, अग्नि, ब्राह्मण, देवता तथा मूर्धाभिषिक्त को पैर से मारते हैं वे निर्दग्ध पैर वाले ये लोग हैं ॥५॥ इस नरक के छह भेद हैं, अनेक पापों के फल स्वरूप यह प्राप्त होता है । इसी तरह दूसरा

असावपि स्थितः षोढा श्वकाकमृगपक्षिभिः ।
परमर्मभिदो मर्त्याः पच्यन्ते तेषु पापिनः ॥८॥
तृतीयः क्रकचो ह्येष निरयो घोरदर्शनः । यत्रेमे क्रकचैर्मर्त्याः पाट्यन्ते पापकारिणः ॥९॥
असिपत्रवनाद्यैस्तु षट्प्रकारो व्यवस्थितः । पत्नीपुत्रादिभिर्येवै वियोगंकारयन्ति हि ॥१०॥
इष्टैन्यैरपि परान्पच्यन्ते त इमे नराः । असिपत्रैश्छिद्यमानाश्छेदभीत्या पलायिताः ॥११॥
पच्यन्ते पापिनः पश्यक्रन्दमाना इतस्ततः । अर्गलाख्यो महाधीरतुर्थोनिरयो ह्ययम् ॥१२॥
पश्य नानाविधैः पाशैराबध्य यमकिङ्करैः । मुद्गराद्यैर्वध्यमानाः क्रन्दन्ते ते च पापिनः॥१३॥
सज्जनान्ब्राह्मणाद्यांश्च विरुन्धतीह ये नराः । कण्ठग्रहाद्यैस्ते पापाः पच्यन्ते यमकिङ्करैः ॥१४॥
असावपि हि षड्भेदो वधभेदादिभिःस्थितः ।
कूटशाल्मलिनामानं निरयं पश्य पञ्चमम् ॥१५॥
यत्राङ्गारनिभा एते शालमल्याद्याःस्थिता द्विज ! ।
यत्र षोढा विपच्यन्ते यातनाभिरिमे नराः ॥१६॥
परदारपरद्रव्य परद्रोहरताः सदा। रक्तपूयमिमं पश्य षष्ठं निरयमद्भुतम् ॥१७॥
अधोमुखा विपच्यन्ते यत्र पापकृतो नराः। अभक्ष्यभक्षका निन्दा पैशुन्यादिरता इमे ॥१८॥
भज्यमाना वध्यमानाः क्रन्दन्ते भैरवान्स्वरान् ।
षट्प्रकारैर्विगन्धात्यैरसावपि च संस्थितः ॥१९॥
कुम्भीपाकः सप्तमोऽयं निरयो घोरदर्शनः। षोढा तैलादिभिर्द्रव्यैर्धनेश्वर विलोकय॥२०॥
महापातकिनो यत्र क्वथ्यन्ते यमकिङ्करैः। बहुन्यब्दसहस्राणि सोन्मज्जननिमज्जनैः ॥२१॥

भयङ्कर नरक अन्धतामिस्र हैं ॥६॥ देखो सूई के समान मुख वाले तथा भयङ्कर मुख वाले क्रिमियों से इस पापी का देह काटा जाता है । उसके सम्पर्क में रहने वालों का भी ॥७॥ इसके भी छह भेद हैं । दूसरों के मर्म का भेदन करने वाले पापी मनुष्य कुत्ते, कौए, मृगपक्षियों के द्वारा उनमें पकाये जाते हैं ॥८॥ तीसरा यह भयङ्कर क्रकच नामक नरक है । इसमें पापी लोग के शरीर क्रकच (आरी) से काटे जाते हैं ॥९॥ इसके भी असिपत्र आदि के भेद से छह प्रकार हैं । जो लोग पत्नी, पुत्र आदि से लोगों का वियोग करते हैं ॥१०॥ दूसरे इष्ट मित्रों से भी वियोग करते हैं, वे सभी असिपत्र से काटे जाते हुए काटने के भय से भाग रहे हैं ॥११॥ यह अर्गला नामक चौथा नरक है । इसमें पकाये जाने वाले पापी चिल्ला रहे हैं ॥१२॥ देखो अनेक प्रकार के पाशों से बाँधकर यमदूत इनको मुद्गर आदि से मारते हैं और चे चिल्ला रहे हैं॥१३॥ जो लोग सज्जनों तथा ब्राह्मणों से विरोध करते हैं उनका गला पकड़कर यमदूत दुःख देते हैं ॥१४॥ इसके वध आदि के छह भेद हैं । तुम कूटशाल्मलिनामक पाँचवें नरक को देखो ॥१५॥ हे द्विज! इसमें अङ्गार के समान शाल्मली (सेमर) इत्यादि हैं । इसमें भी पापी लोग छह प्रकार से पकाये जाते हैं॥१६॥ ये लोग परद्रव्य, परस्त्री तथा दूसरों से दोहन करने में लगे रहते हैं । तुम इस रक्तपूय नामक छठे नरक को देखो॥१७॥ इसमें, अभक्ष्य भक्षण करने वाले तथा निन्दा एवं चुगली करने वाले पापीजन नीचे मुँह करके सताये जाते हैं ॥१८॥ यह भी दुर्गन्ध आदि के भेद से छह प्रकार का है इसमें तोड़े जाते हुए और भयङ्कर आवाज करने वाले पापियों को तुम देखो॥१९॥ यह कुम्भीपाक नामक भयङ्कर सातवाँ नरक है। हे धनेश्वर! यह

चत्वारिंशन्मितानेतान्त्र्यधिकान्पश्य रौरवान्। अकामात्पाकं शुष्कं कामादार्द्रमुहाहृतम्॥२२॥
आर्द्रशुष्कादिभिः पापैर्द्विप्रकारानवस्थितान् । चतुरशिति संख्याकैः पृथग्भेदैरवस्थितम् ॥२३॥
यत्प्रकीर्णमपाङ्क्तेयं मलिनीकरणं तथा । ज्ञातिभ्रंशकरं तद्वदुपपातकसंज्ञकम् ॥२४॥
अतिपापं महापापं सप्तधापातकं स्मृतम् । एभिः सप्तसु पच्यन्ते नरयेषु यथाक्रमम्॥२५॥
कार्तिकव्रतिभिर्यस्मात्संसर्गो ह्यभवत्तव। तत्पुण्योपचयादेते निर्हृता निरयाः खलुः॥२६॥

श्रीकृष्ण उवाच

दर्शयित्वेति निरयान्प्रेतपस्तमथाहरत्। धनेश्वरं यक्षलोकं पश्चादासीत्स तत्र हि॥२७॥
धनदस्यानुगः सोऽयं धनयक्षेति संस्मृतः। यदाख्ययाऽकरोत्तीर्थमयोध्यायांतु गाधिजः॥२८॥

एवं प्रभावः खलु कार्तिकोऽयं मुक्तिप्रदो मुक्तिकरश्च यस्मात् ।
प्रयात्यनेकार्जितपातकोऽपि व्रतस्थसंदर्शनतोऽपि मुक्तिम् ॥२९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये धनेश्वरोपाख्याने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥

भी तेल आदि छह प्रकार के द्रव्यों से भरे रहता है ॥२०॥ इस महापाक में लोग यमकिङ्करों द्वारा डुबाकर निकाले जाते हुए अनेक हजार वर्षों तक सताये जाते हैं ॥२१॥ इस तरह से बयालिस प्रकार के रौरव नरक को तुम देखो जो पाप बिना मन के किए जाते हैं वे शुष्क कहलते हैं ॥२२॥ और जो पाप मन से किए जाते हैं वे आर्द्र पाप कहलाते है । इस तरह पापों के दो भेद हैं ॥२३॥ प्रकीर्ण, अपाङ्क, मलिनीकरण तथा जातिभ्रंश करण ये सभी उपपातक हैं ॥२४॥ पाप सात प्रकार के होते हैं । अतिपाप महापाप आदि । इन पापों को करने वाले इन सातों नरकों में क्रमशः पकाये जाते हैं ॥२५॥ चूकि तुम्हारा कार्तिक व्रतियों के साथ सम्बन्ध हो गया था उससे उत्पन्न पुण्य के कारण तुमको इन नरकों को नहीं भोगना पड़ा॥२६॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** प्रेतप ने उन नरकों को दिखाकर धनेश्वर को यक्षलोक में लाया और धनेश्वर वहीं रहने लगे ॥२७॥ वह कुबेर का धनयक्ष नामक अनुचर कहा जाता है । महर्षि विश्वामित्र ने अयोध्या में उसके नाम का तीर्थ बनाया ॥२८॥ कार्तिक महीने का इसी प्रकार का महत्त्व है, वह मुक्ति देने वाला और मुक्त करने वाला है । इसके व्रती को देखने मात्र से अनेक प्रकार के पापों को करने वाला भी मनुष्य मुक्ति प्रात कर लेता है ॥२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा सम्वाद के प्रसङ्ग में धनेश्वरोपाख्यान के अन्तर्गत एक सौ चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११४।।

एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय

सूत उवाच

इत्युक्त्वा बासुदेवोऽसौ सत्यभामामतिप्रियाम् ।
सायं सन्ध्यादिकं कर्तुं जगाम जननीगृहम् ॥१॥
एवं प्रभावः प्रोक्तोऽयं कार्तिकः पापनाशनः ।
विष्णुप्रियकरो नित्यं भुक्तिमुक्तिप्रदः सदा ॥२॥
हरिजागरणं प्रातः स्नानं तुलसिसेवनम् । उद्यापनं दीपदानं व्रतान्येतानि कार्त्तिके ॥३॥
पञ्चकैर्व्रतकैरेभिः सम्पूर्णं कार्त्तिकव्रतम् । फलंप्राप्नोति तत्प्रोक्तं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥४॥

ऋषय ऊचुः

विष्णोः प्रियोऽतिफलदः प्रोक्तोऽयं रोमहर्षणे ! ।
कार्त्तिकस्य विधिः सम्यक्पावनः पापनाशनः ॥५॥
अवश्यमेकर्त्तव्यं प्राप्य दुःखनिवारणः । मोक्षार्थिभिर्नरःसम्यग्भोगकामैरथापिवा ॥६॥
एवं स्थिते यथा कश्चिद्व्रतस्थः सङ्कटे स्थितः ।
दुर्गारण्यस्थितो वाऽपि व्याधिभिः परिपीडितः ।
कथं तेन प्रकर्तव्यं कार्तिकव्रतकं शुभम् ॥७॥

सूत उवाच

यस्मादत्यन्तफलदं कर्तव्यं तु यथानरैः । तत्सर्वं कथयिष्येऽहं श्रृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ॥८॥
विष्णोःशिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ।
शिवविष्णुगृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि ॥९॥

अश्वत्थ वट की प्रशंसा

सूतजी ने कहा— इस तरह से अत्यन्त प्रिय सत्यभामा को कहकर भगवान् वासुदेव सन्ध्या आदि करने के लिए अपनी माता के घर में गये ॥१॥ इस तरह का कार्तिक का प्रभाव बतलाया गया है यह सदा भगवान् विष्णु को प्रिय तथा भोग एवं मोक्ष को प्रदान करने वाला है ॥२॥ श्रीहरि का जागरण, प्रातःकाल स्नान, तुलसी की सेवा, कार्तिक व्रत का उद्यापन और दीपदान से सभी व्रत कार्तिक में किए जाते हैं ॥३॥ इन पाँच व्रतों से कार्तिक व्रत पूरा होता है । उससे मनुष्य भोग तथा मोक्ष प्राप्ति फल को प्राप्त करता है ॥४॥ **ऋषियों ने कहा—** हे सूतजी ! आपने भगवान् विष्णु के प्रिय अत्यन्त फल देने वाले पवित्र तथा पाप विनाशक कार्तिक विधि को अच्छी तरह से कहा है ॥५॥ दुःखों को दूर करने वाले इस व्रत को मोक्ष तथा पूर्ण रूप से भोग चाहने वाले मनुष्यों को अवश्य करना चाहिए ॥६॥ ऐसी स्थिति में यदि कोई कार्तिक व्रत करने वाला भयङ्कर वन, में पड़ जाय या व्याधि से पीड़ित हो जाय तो उसको कार्तिक व्रत कैसे करना चाहिये ?॥७॥ **सूतजी ने कहा—** चूँकि अत्यन्त फल प्रदान करने वाले इस व्रत को जैसे करना चाहिए उन सबों को मैं बतलाता हूँ । हे मुनिश्रेष्ठों ! उसे आपलोग सुनें ॥८॥ भगवान् विष्णु अथवा शिवजी के मन्दिर में हरि जागरण करे । जहाँ शिवजी अथवा विष्णु भगवान् का मन्दिर न

दुर्गारण्यस्थितो यश्च यदि वा यद्गतो भवेत् ।
कुर्यात्तदाश्वत्थमूले तुलसीनां वनेष्वपि ॥१०॥

विष्णुनामप्रधानानां गायनाद्विष्णुसन्निधौ । गोसहस्रप्रदानस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥११॥
वाद्यकृत्पुरुषश्चापि वाजपेयफलं लभेत् । सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात् ॥१२॥
सर्वमेतल्लभेत्पुण्यं तेषां तु द्रव्यदः पुमान् । प्रशंसादर्शनाभ्यां हि तत्षडंशमवाप्नुयात् ॥१३॥

आपन्नतो यदाऽप्यम्भो न लभेत्स्नपनाय सः ।
व्याधितो वा पुनः कुर्याद् विष्णोर्नामापमार्जनम् ॥१४॥
उद्यापनविधिं कर्तुं न शक्तो यो व्रते स्थितः ।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या व्रतसम्पूर्ति हेतवे ॥१५॥

यस्मादत्यन्तफलदो न त्याज्यः सर्वदा नरैः। अव्यक्तरूपिणो विष्णोः स्वरूपं ब्राह्मणा भुवि॥१६॥
तत्संतुष्ट्या सुसंतुष्टः सर्वदास्यां न संशयः। अशक्तो दीपदाने तु परदीपं प्रबोधयेत् ॥१७॥
तेषां वा रक्षणं कुर्याद्वातादिभ्यः प्रयत्नतः। अभावे तुलसीनां तु पूजयेद्वैष्णवं द्विजम् ॥१८॥

यस्मात्संनिहितो विष्णुः स्वभक्तेष्वेव सर्वदा ।
सर्वाभावे व्रती कुर्याद् ब्राह्मणानां गवामपि ॥१९॥
सेवां वाश्वत्थवटयोर्व्रतसम्पूर्तिहेतवे ॥२०॥

ऋषय ऊचुः

कथं त्वयाऽश्वत्थवटौ गोब्राह्मणसमौ कृतौ। सर्वेभ्योऽपि तरुभ्यतौ कस्मात्पूज्यतरौ कृतौ॥२१॥

सूत उवाच

अश्वत्थरूपी भगवान्विष्णुरेव न संशयः। रुद्ररूपीवटस्तद्वत्पालाशो ब्रह्मरूपधृत्॥२२॥

हो वहाँ पर किसी भी देवालय में हरिजारण करे ॥९॥ जो भयङ्कर वन में अथवा उसी के अन्दर पड़ जाय तो पिप्पल वृक्ष के जड़ में अथवा तुलसी वन में हरिजागरण करे ॥१०॥ जिनमें भगवान् विष्णु के नामों की प्रधानता है ऐसे गीतों को भगवान् विष्णु के सन्निकट गाने से मनुष्य एक हजार गोदान करने का फल प्राप्त करता है । और बाजा बजाने वाला पुरुष भी वाजपेय यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है ॥११-१३॥ द्रव्य देने वाला मनुष्य उन सबों का फल प्राप्त करता है जो उसकी प्रशंसा अथवा दर्शन करता है वह उसके षोडश फल को प्राप्त करता है । विपतिग्रस्त मनुष्य यदि स्नान करने को न पाये या व्याधि ग्रस्त मनुष्य को विष्णु नाम का अपमार्जन करें ॥१४॥ जो व्रती उद्यापन करने में समर्थ नहीं हो वह अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण भोजन कराये ॥१५॥ चूकि यह व्रत अत्यन्त फल प्रदान करने वाला है अतएव उसको छोड़े नहीं । पृथिवी पर रहने वाले ब्राह्मण अव्यक्त विष्णु स्वरूप होते हैं ॥१६॥ ब्राह्मणों के सन्तुष्ट होने पर मैं सर्वदा सन्तुष्ट रहता हूँ । दीपदान करने में जो असमर्थ हो वह दूसरे के दीपों को जलाये॥१७॥ अथवा प्रयत्न पूर्वक उन सबों की वायु आदि से रक्षा करें । अभाव में तुलसी तथा ब्राह्मण की पूजा करें॥१८॥ चूकि भगवान् विष्णु अपने भक्तों के सन्निकट में ही रहते हैं । सबों के अभाव में व्रती को ब्राह्मणों और गौओं की पूजा करनी चाहिए ॥१९॥ अथवा व्रत की सम्पूर्ति के लिए पिप्पल और वट की पूजा करे ॥२०॥ **ऋषियों ने कहा—** आपने अश्वत्य और वट को और गौ तथा ब्राह्मण को एक समान

दर्शनं पूजनं सेवा तेषां पापहरा स्मृताः। दुःखापद्व्याधिदुष्टानां विनाशे करणं ध्रुवम् ॥२३॥

ऋषय ऊचुः

कथं वृक्षत्वमापन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। एतत्कथय सर्वज्ञ संशयोऽत्र महान्हि नः ॥२४॥

सूत उवाच

पार्वतीशिवयोर्देवैः सुरतं कुर्वतोः किल। अग्निर्ब्राह्मणरूपेण प्रेषितो विघ्नकृत्पुरा॥२५॥

ततः सा पार्वती क्रुद्धा शशाप त्रिदिवौकसः ।
रतोत्सवसुखभ्रंशात्कम्पमाना रुषातदा ॥२६॥

पार्वत्युवाच

कृमिकीटादयोऽप्येते जानन्तिसुरतं सुखम्। तद्विघ्नकरणाद्देवा ह्युद्भिज्जत्वमवाप्स्यथ ॥२७॥

सूत उवाच

एवं सा पार्वती देवानशपत्क्रुद्धमानसा। तस्माद्वृक्षत्वमापन्नाः सर्वे देवगणाः किल ॥२८॥

तस्मादिमौ विष्णुमहेश्वरावुभौ बभूवतुर्बोधिवटौ मुनीश्वराः ।
बोधिस्त्वगादार्किदिनेऽस्पृशत्वमस्पृश्यतामर्कजविष्टियोगात् ॥२९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्येऽश्वत्थवटप्रशंसनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

कैसे वतलाया ? और वे दोनों सभी वृक्षों से क्यों अधिक पूज्य हैं ?॥२१॥ **सूतजी ने कहा—** भगवान् विष्णु हीं पिप्पल के वृक्ष के रूप में रहते हैं वह रुद्र स्वरूप है और उन सवों के पत्ते ब्रह्मा स्वरूप होते हैं ॥२२॥ उन सबों का दर्शन पूजन और सेवा पाप नाशक है । वे दुःख, आपत्ति और दुष्टों के विनाश में निश्चित साधकतम हैं ॥२३॥ **ऋषियों ने कहा—** ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर वृक्ष कैसे हो गये ? हे सर्वज्ञ इन सारी वातों को आप वतलायें, हमलोगों को महान् संशय है ॥२४॥ **सूतजी ने कहा—** पार्वतीजी एवं शिवजी जब सुरत क्रीड़ा में प्रवृत्त थे उस समय देवताओं ने अग्नि को ब्राह्मण के रूप से विघ्न करने के लिए भेजा ॥२५॥ उस समय क्रुद्ध होकर पार्वतीजी ने देवताओं को शाप दिया । वे रतोत्सव जन्य सुख के भ्रंश हो जाने से क्रोध से काँप रही थीं ॥२६॥ **पार्वतीजी ने कहा—** कृमि तथा कीट भी सुरत जन्य सुख को जानते हैं । उसमें विघ्न करने के कारण तुमलोग उद्भिज हो जाओगे ॥२७॥ **सूतजी ने कहा—** क्रुद्ध होकर पार्वतीजी ने इस तरह से देवताओं को शाप दे दिया उसी के कारण सभी देवता वृक्ष हो गये॥२८॥ मुनीश्वरों ! इसलिए विष्णु और शङ्कर भी पिप्पल और वट हो गये । पिप्पल का वृक्ष शनिवार को अस्पृश्य हो गया क्योंकि उस दिन शनिविष्टि योग होता है ॥२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत अश्वत्थ और वट वृक्ष की प्रशंसा वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११५।।

एक सौ सोलहवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

अस्पृश्यत्वं कथं यातः सूत ! बोधितरुस्त्वयम् ।
स्पृश्यस्त्वं च कथं प्राप्तस्तथा च शनिवासरे ।
एतद्विस्तरतःसर्वं वक्तुमर्हतिनो भवान् ॥१॥

सूत उवाच

समुद्रमथनाद्यानि रत्नान्यापुः सुरेश्वराः। श्रियं च कौस्तुभं तेषां विष्णवे प्रददुःसुराः ॥२॥
यावदङ्गीचकारासौ लक्ष्मीं भार्यार्थमात्मनः। तावद्विज्ञापयामास लक्ष्मीस्तं चक्रपाणिकम् ॥३॥

लक्ष्मीरुवाच

असंसकृत्य कथं ज्येष्ठां त्वं कनिष्ठां प्रणीयसे ।
तस्मान्ममाग्रजामेतामलक्ष्मीं मधुसूदन ॥४॥
विवाह्य नय मां पश्चादेष धर्मः सनातनः ॥५॥

सूत उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा स विष्णुर्लोकभावनः। उद्दालकाय मुनये सुदीर्घतपसे तदा ॥६॥
आत्मवाक्यानुरोधेन तामलक्ष्मीं ददौ किल। स्थूलास्यां शुभ्रदशनां राजतीं बिभ्रतीं तनुम् ॥७॥
विततां रक्तनयनां रूक्षपिङ्गशिरोरुहाम्। समुनिर्विष्णुवाक्यात्तामङ्गीकृत्य स्वमाश्रमम्॥८॥
वेदध्वनिसमायुक्तमानिनाय च धर्मवित्। होमधूमसुगन्धाढ्यं विद्याघोषविनादितम् ॥
आश्रमं तं समालोक्य व्यथिता साऽब्रवीदिदम् ॥९॥

ज्येष्ठोवाच

न हि वासोऽनुरूपोऽयं वेदध्वनियुतो मम । नात्रागमिष्ये भो ब्रह्मन्नयस्वान्यत्र मा चिरम् ॥१०॥

अश्वत्थ वृक्ष की अस्पृश्यता वर्णन के प्रसङ्ग में अलक्ष्मी का वृतान्त वर्णन

ऋषियों ने पूछा— हे सूतजी ! अश्वत्थ वृक्ष अस्पृश्य क्यों हो गया और शनिवार को कैसे स्पृश्य हो गया । आप इन सारी बातों को हमलोगों को विस्तार से बतलायें ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** समुद्र मंथन के समय देवताओं ने जिन रत्नो को प्राप्त किया था उस सबो में से वे श्रीदेवी और कौस्तुभ मणि को देवताओं ने भगवान् विष्णु को प्रदान किये ॥२॥ श्रीभगवान् ने लक्ष्मीजी को अपनी पत्नी बनाने के लिए स्वीकार किया उस समय लक्ष्मीजी ने चक्रपाणि श्रीभगवान् से कहा ॥३॥ **लक्ष्मीजी ने कहा—** आप ज्येष्ठा का विवाह किए बिना मुझ कनिष्ठा के साथ कैसे विवाह कर रहे हैं अतएव हे मधुसूदन आप पहले मेरी बड़ी बहन ज्येष्ठा का विवाह करके बाद में मुझे अपनाएँ यही सनातन धर्म है ॥४-५॥ **सूतजी ने कहा—** लक्ष्मीजी की बात सुनकर संसार पर कृपा करने वाले भगवान् विष्णु दीर्घ तपस्या करने वाले उद्दालक मुनि के साथ अपनी वाणी के अनुसार अलक्ष्मी का विवाह करा दिया । अलक्ष्मी का मुँह मोटा और दाँत उजले थे और सुन्दर शरीर था ॥६-७॥ उनकी बड़ी-बड़ी लाल आँखें थी । उनके केश पीले और रुक्ष थे । वे मुनि भगवान् विष्णु के कहने से अलक्ष्मी को लेकर अपने आश्रम में गये ॥८॥ उनका आश्रम वेद ध्वनि

उद्दालक उवाच

कथं नायासि किं वात्र वर्त्ततेऽसंमतंतव । तव योग्या च वसतिः काभवेच्च वदस्वतत् ॥११॥

ज्येष्ठोवाच

वेदध्वनिर्भवेद्यस्मिन्नतिथीनां च पूजनम्। यज्ञदानादिकं वापि नैव तत्र वसाम्यहम् ॥१२॥
परस्परानुरागेणदाम्पत्यं यत्र वर्तते। पितृदेवार्चनं यत्र नैव तत्र वसाम्यहम् ॥१३॥
दुरोदररतायत्र परद्रव्यापहारिणः। परदाररताश्चापि तत्र स्थाने रतिर्मम ॥१४॥
गोवधो मद्यपानं च यत्र संजायतेऽनिशम्। ब्रह्महत्यादि पापानि तस्मिन्स्थाने रतिर्मम ॥१५॥
वृद्धसज्जनविप्राणां यत्र स्यादपमाननम्। निष्ठुरं भाषणं यत्र तत्र नित्यं वसाम्यहम् ॥१६॥

सूत उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा विषण्णवदनोऽभवत् । उद्दालकमुनिर्विष्णोर्वाक्यं स्मृत्वा न चोचिवान्॥१७॥

सोऽगच्छद्यत्र तत्रास्य पूजामालोक्य साऽब्रवीत् ।
नायामीति ततः सोऽपि भ्रमादत्यातुरोऽभवत्,
उद्दालकस्ततो वाक्यं तामलक्ष्मीमुवाचह ॥१८॥

उद्दालक उवाच

अश्वत्थवृक्षमूलेऽस्मिन्नलक्ष्मीः स्थीयतां क्षणम् ।
आवासस्थानमालोक्य यावदायाम्यहं पुनः ॥१९॥

सूत उवाच

इति तां तत्र संस्थाप्य जगामोद्दालकस्तदा । प्रतीक्षन्तीचिरं तत्र यदा तं न ददर्श सा ॥२०॥

से युक्त था । वह होम की सुगन्धि से सुगन्धित और वेद के घोष से ध्वनित था । उस आश्रम को देखकर वह दुःखी होकर बोली ॥९॥ **ज्येष्ठा ने कहा—** वेद ध्वनि से युक्त यह स्थान मेरे अनुकूल नहीं है । हे ब्रह्मन् ! आप मुझको दूसरी जगह शीघ्र ले चलें ॥१०॥ **उद्दालक महर्षि ने कहा—** तुम क्यों नहीं आ रही हो तुम्हारे प्रतिकूल यहाँ क्या है ? तुम्हारे योग्य निवास स्थान कौन हो सकता है ? मुझे बतलाओ॥११॥ **ज्येष्ठा ने कहा—** जहाँ पर वेद ध्वनि होती हो अतिथियों की पूजा हो रही हो, जहाँ पितरों और देवताओं की पूजा होती है । वहाँ मैं नहीं रह सकती हूँ ॥१२-१३॥ जहाँ पर लोग जुआ खेलने वाले हों, दूसरों के द्रव्य का हरण करने वाले हों तथा जहाँ पर लोग परस्त्रीगामी हों वहाँ पर मेरा मन लगता है ॥१४॥ जहाँ सर्वदा गोवध करने वाले और मदिरापायी लोग हों और ब्रह्महत्या आदि पाप किए जाते हों उसी स्थान में मेरा मन लगता है ॥१५॥ जहाँ पर वृद्ध पुरुषों, सज्जनों और ब्राह्मणों का अपमान किया जाता हो जहाँ के लोग निष्ठुर बोलने वाले हों वहाँ पर मैं सर्वदा निवास करती हूँ ॥१६॥ इस तरह की ज्येष्ठा की वाणी सुनकर मुनि उदास हो गये । भगवान् विष्णु के वाक्य को स्मरण करके कुछ नहीं कहें ॥१७॥ वे वहाँ गये जहाँ पर भगवान् की पूजा हो रही थी ज्येष्ठा ने कहा मैं आपके साथ नहीं चल सकती उसके वाद मुनि अत्यन्त आतुर हो गये । उद्दालक महर्षि ने उस ज्येष्ठा से कहा ॥१८॥ **उद्दालक मुनि ने कहा—** अलक्ष्मी तुम इस पीपल की जड़ में तुम ठहरो तव तक मैं अपने आश्रम को देखकर आता हूँ ॥१९॥

तदा रुरोदकरुणं भर्तृत्यागेन दुःखिता। तत्रस्थां रुदतीं लक्ष्मीर्वैकुण्ठभवनेऽशृणोत् ॥२१॥
तदा विज्ञापयामास विष्णुद्विग्नमानसा ॥२२॥

लक्ष्मीरुवाच

स्वामिन्मद्भगिनीज्येष्ठा भर्तृत्यागेनदुःखिता ।
तामाश्वासयितुं याहि कृपालोयद्यहं प्रिया ॥२३॥

सूत उवाच

लक्ष्म्यासहततोविष्णुस्तत्रागच्छत्कृपान्वितः । आश्वासयदलक्ष्मीमिदं वचनमब्रवीत ॥२४॥

श्रीविष्णुरुवाच

अश्वत्यवृक्षमासाद्य सदाऽलक्ष्मीःस्थिराभव । ममांशसंभवो ह्येषआवासस्ते शनिंविना ॥२५॥
शनौ ते भगिनी ज्येष्ठे ! लक्ष्मीरत्रागमिष्यति ।
तस्मादश्वत्थवृक्षोऽसौ शनौपूज्यो विशेषतः ॥२६॥
प्रत्येऽहं येऽर्चयिष्यन्ति त्वां ज्येष्ठां गृहधर्मिणः ।
तेष्वियं श्रीःकनिष्ठा ते भागिनी निश्चलास्तु वै ॥२७॥

सूत उवाच

इत्यूर्जस्य च माहात्म्यं ये शृण्वन्तिपठन्ति च ।
तेषां विष्णुपुरेवासो भवेदाभूतसंप्लवम् ॥२८॥
रोगापहं पातकनाशकृत्परं सुबुद्धिदं पुत्रधनादिसाधनम् ।
मुक्तेर्निदानं न हि कार्त्तिकव्रताद्विष्णुप्रियादन्यदिहास्ति भूतले ॥२९॥

सूतजी ने कहा— इस तरह से ज्येष्ठा को वहीं पर स्थापित करके उद्दालक मुनि चले गये । बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद उसने जब मुनि को नहीं देखा तो ॥२०॥ उसके बाद पति के परित्याग से दुःखी वह करुण रुदन करने लगी वहाँ रहकर रोती हुयी ज्येष्ठा की रुलायी को लक्ष्मीजी ने वैकुण्ठ में सुना॥२१॥ उस समय वे उद्विग्न होकर भगवान् विष्णु से कहीं ॥२२॥ **लक्ष्मीजी ने कहा—** हे स्वामिन् ! मेरी बहन पति के त्याग देने के कारण दुःखी है । हे कृपालो ! यदि मैं आपकी प्रिया हूँ तो आप उसको आश्वस्त करने के लिए जायँ ।२३॥ **सूतजी ने कहा—** उसके पश्चात् भगवान् विष्णु लक्ष्मीजी के साथ वहाँ गये उस अलक्ष्मी को आश्वस्त करते हुए उन्होंने कहा ॥२४॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** हे अलक्ष्मी ! पिप्पल के वृक्ष के नीचे आकर आप स्थिर हो जायँ । यह मेरे अंश से उत्पन्न है, किन्तु शनिवार को तुम यहाँ नहीं रहना । शनिवार को यहाँ लक्ष्मी का निवास होगा । इसीलिए शनिवार के दिन अश्वत्थ वृक्ष की पूजा विशेष रूप से करनी चाहिए ॥२५-२६॥ जो गृहस्थ प्रतिदिन तुम ज्येष्ठा की पूजा करेंगे उनके गृह में तुम्हारी छोटी बहन लक्ष्मी का निश्चल निवास होगा ॥२७॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से जो लोग कार्तिक मास का माहात्म्य पढ़ते और सुनते हैं, उन लोगों का भगवान् विष्णु के लोक में महाप्रलय काल तक निवास होता है॥२८॥ कार्तिक व्रत रोगों को दूर करने वाला, सर्वश्रेष्ठ पापनाशक पुत्र और धन आदि को देने वाला, सुन्दर बुद्धि देने वाला है । यह मुक्ति का साधन है, कार्तिक व्रत से बढ़कर भगवान् विष्णु को प्रिय इस लोक में दूसरा

विष्णुप्रियं सकलकल्मषनाशनं च सत्पुत्रपौत्रधनधान्यसमृद्धिकारि ।
ऊर्जव्रतं सनियमं कुरुते मनुष्यः किं तस्य तीर्थपरिशीलनसेवया च ॥३०॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चशत्साहस्यां संहितायां षष्ठेउत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादेऽलक्ष्मयुपायानं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्याय: ॥११६॥

एक सौ सत्रहवाँ अध्याय

सूत उवाच

इति सर्वं समाकर्ण्य सत्राजितसुता तदा। हरेर्वाक्यं महाभागा सत्यावचनमब्रवीत्॥१॥

सत्योवाच

कार्त्तिकस्य च माहात्म्यं न श्रुतं विस्तरात्प्रभो ।
सर्वेषामेव मासानां कार्त्तिकप्रवर:कथम् ॥२॥

श्रीकृष्णउवाच

साधु पृष्टं त्वया सत्ये कार्त्तिकव्रतमादरात् । शौनकाय पुराप्रोक्तं सुतेन सुमहात्मना ॥३॥

सूत उवाच

श्रूयतां तत्प्रवक्ष्यामि एतत्प्रश्नोत्तरं शुभम्। ईश्वरेण पुराप्रोक्तं पृच्छते षण्मुखाय वै ॥४॥

कार्त्तिकेय उवाच

बहूनि पद्मनाभस्य रहस्यानि श्रुतानि च। यथा हि प्रोच्यमानानि वैष्णवेन त्वयाप्रभो ॥५॥

कुछ भी नहीं हैं ॥२९॥ यह भगवान् विष्णु को प्रिय, सभी पापों को विनष्ट करने वाला सत्पुत्र, धन-धान्य की समृद्धि करने वाला है । जो मनुष्य नियम पूर्वक कार्तिक व्रत को करते हैं उनको तीर्थ व्रत करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥३०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में अलक्ष्मी वृत्तान्त का वर्णन नामक एक सौ सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११६।।

शिवषडानन संवाद के अन्तर्गत कार्तिक स्नान के महाात्म्य का वर्णन

सूतजी ने कहा— इन सारी बातों को सुनकर सत्राजित् की पुत्री सत्यभामा ने श्रीहरि से कहा ॥१॥ **सत्यभामाजी ने कहा—** हे प्रभो ! मैंने कार्तिक का माहात्म्य विस्तार पूर्वक नहीं सुना है । सभी मासों में कार्तिक कैसे श्रेष्ठ है ?॥२॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** सत्ये ! तुमने कार्तिक व्रत के विषय में आदर पूर्वक बहुत अच्छा प्रश्न किया है । इसका माहात्म्य सूतजी ने शौनक मुनियों को सुनाया था ॥३॥ **सूतजी ने कहा—** आपलोग सुनें । इस प्रश्न का उत्तर जो शिवजी ने कार्तिकेय को दिया था उसे मैं कह रहा

संसारसागरे प्राप्ता दुःखोरुलहरीवृते। तेषामुत्तारणार्थाय कथयस्व प्रयत्नतः ॥६॥
कार्त्तिकस्य विधिश्चैव स्नानस्यवदतांवर। येन दुःखाम्बुधिं तातसंतरिष्यन्ति मानवाः ॥७॥
फलं वैष्णवधर्मस्य कथयस्व सुविस्तरम्। येन धर्मप्रभावेन पदं गच्छन्ति वैष्णवम् ॥८॥
दीपदानस्य माहात्म्यं मुनिपुष्पस्य सुव्रत। गोपीचन्दनमाहात्म्यं तुलस्यास्तु तथा विभो ! ॥९॥
मालतीपुष्पमाहात्म्यंवारिजानांतथा वद। धात्रीफलानांमाहात्म्यं तथा दमनकस्यच॥१०॥
केतकीपुष्पमाहात्म्यं नैवेद्यस्य परन्तप। तीर्थोदकस्य माहात्म्यं माघस्नानफलं विभो ॥११॥
फलंब्रूहि सुरश्रेष्ठ ब्रह्मपत्रेषु भोजनात्। नीराजनफलं स्थाणो परदीपप्रबोधनात्॥१२॥
पुष्करक्षेत्रमाहात्म्यं शूकरस्य तथा विभो। शालग्रामस्य माहात्म्यं स्वस्तिकस्य विधानकम्॥१३॥

दानानां च फलं ब्रूहि परान्नस्य च वर्जनात्।
मासोपवासस्य फलं खट्वाया मोक्षणाद्विभो ॥१४॥

दीपावल्याश्च माहात्म्यं प्रबोधिन्याश्च सुव्रत। पञ्चभीष्मस्य माहात्म्यं कथयस्व सुविस्तरात्॥१५॥

ईश्वर उवाच

साधुपृष्टं त्वया वत्स लोकोद्धरणहेतवे। कथयामि न संदेहस्त्वत्समो नास्ति वैष्णवः ॥१६॥

सत्पुत्रेण त्वया वत्स ! तारितोऽहं न संशयः।
निश्चला केशवे भक्तिस्त्वयि तिष्ठति सर्वदा ॥१७॥
नरेभ्यो वैष्णवं धर्मं यो ददाति द्विजोत्तमः।
स सागर महीदाने तत्पुण्यं लभते हि सः ॥१८॥

हूँ ॥४॥ **कार्तिकेयजी ने शिवजी से पूछा—** हे प्रभो ! आपने जैसा बतलाया है उन श्रीभगवान् पद्मनाभ के बहुत से रहस्यों को मैंने सुना है ॥५॥ दुःखरूपी लहरों से भरे हुए संसार सागर में पड़े हुए जीवों के उद्धार का साधन आप प्रयत्न पूर्वक कहें ॥६॥ हे बोलने वालों में श्रेष्ठ ! आप कार्तिक की विधि, स्नान की विधि, को बतलायें जिससे कि मनुष्य इस दुःख सागर को पार करेंगे ॥७॥ विस्तार पूर्वक वैष्णव धर्म का माहात्य बतलायें, जिससे कि उस व्रत के प्रभाव से मनुष्य वैष्णव पद को प्राप्त करते हैं ॥८॥ दीप दान का माहात्म्य, अगस्त्य पुष्प का माहात्म्य, गोपी चन्दन का माहात्म्य, और तुलसी का माहात्म्य आप बतायें ॥९॥ आप मालती पुष्प, कमल, आँवला फल, दमनक, केतकी पुष्प, नैवेद्य, तीर्थोदक तथा माघ स्नान का माहात्म्य बतलायें ॥१०-११॥ हे शिवजी ! ब्रह्मपत्र (कमल का पत्ता) पर भोजन करने, आरती करने का फल, दूसरे के दीपक को जलाने का फल भी आप बतलायें ॥१२॥ हे विभो ! पुष्कर क्षेत्र, शूकर क्षेत्र, शालग्राम क्षेत्र तथा स्वस्तिक का विधान बतलायें। आप परान्न त्याग तथा दोनों का फल बतलायें। खाट का त्याग करके, महीने भर उपवास का फल बतलाया ॥१३-१४॥ हे सुव्रत ! दीपावली और प्रबोधिनी एकादशी का माहात्म्य बतलाएँ। आप पञ्चभीष्म का माहात्म्य बतलायें ॥१५॥ ईश्वर ने कहा लोक के उद्धार के कारण भूत बहुत अच्छा प्रश्न किया है। इसे मैं बतलाता हूँ तुम्हारे समान कोई वैष्णव नहीं है ॥१६॥ हे वत्स ! तुम सत्पुत्र हो और तुमने मुझे तार दिया। तुममें श्रीभगवान् की निश्चल भक्ति सदैव रहती है ॥१७॥ जो मनुष्य मनुष्यों को वैष्णव धर्म बतलाता है। वह समुद्र सहित पृथिवी के दान

कार्त्तिकस्य च मासस्य कोट्यंशेनापि नार्हति ।
एकतः सर्वतीर्थानि सर्वदानि चैकतः ॥१९॥
एकतो गोप्रदानानि सर्वे यज्ञाः सदक्षिणाः । एकतःपुष्करेवासःकुरुक्षेत्रे हिमालये ॥२०॥
एकतो मथुरातीर्थे वाराणस्यां च शूकरे । एकतःकार्त्तिको वत्स सर्वदा केशवप्रियः ॥२१॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूल पुनर्वाक्यं जगौ हरः ।
कार्त्तिकस्नानमाहात्म्यं कथियिष्ये सुविस्तरात् ॥२२॥

ईश्वर उवाच

ब्राह्मं कृतयुगं प्रोक्तं त्रेता तु क्षत्रियं युगम् ।
द्वापरं वैश्यमित्याहुःशूद्रं कलियुगं स्मृतम् ॥२३॥
कलौ वत्स मनुष्याणां शैथिल्यं स्नानकर्मणि ।
तथापि कथयिष्यामि स्नानं कार्त्तिकमाघयोः ॥२४॥
यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनश्च सुसंयतम् ।
विद्यातपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलभाङ् नरः ॥२५॥
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकश्छिन्नमानसः। हेतुवादी च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः ॥२६॥
प्रातरुत्थाय यो विप्रस्तीर्थास्नायी सदा भवेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तःपरंब्रह्माधिगच्छति ॥२७॥
स्नानं चतुर्विधं प्रोक्तं स्नानविद्भिः षडानन ! ।
वायव्यं वारुणं दिव्यं ब्राह्मं चेति तथा स्मृतम् ॥२८॥
वायव्यं गोरजःस्नानं वारुणं सगरादिराषु ।
ब्राह्मं ब्रह्मणमन्त्रोक्तं दिव्यं मेघाम्बु भास्करम् ॥२९॥

करने का फल प्राप्त करता है ॥१८॥ कार्तिक मास के फल के करोड़वें अंश के बराबर भी पृथिवी का दान फल देने वाला नहीं होता है । हे वत्स ! सभी तीर्थ, सभी दान, गोदान, दक्षिणा सहित सभी यज्ञ पुष्कर, कुरुक्षेत्र तथा हिमालय पर निवास, मथुरा तीर्थ, वाराणसी तथा शूकर क्षेत्र में निवास का फल कार्तिक व्रत के फल के करोड़वें अंश के बराबर भी नहीं होते हैं ॥१९-२१॥ **सूतजी ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! यह कहकर श्रीशिवजी ने पुनः कहा मैं विस्तार पूर्वक कार्तिक का माहात्म्य बतलाता हूँ ॥२२॥ **ईश्वर ने कहा—** सत्ययुग को ब्राह्मयुग, त्रेता को क्षत्रिय युग, द्वापर को वैश्य युग और कलियुग को शूद्र युग कहा गया है ॥२३॥ हे वत्स ! कलियुग में मनुष्यों को स्नान करने में शिथिलता बनी रहती है । फिर भी मैं कार्तिक और माघ का माहात्म्य बतला रहा हूँ ॥२४॥ जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर, मन और वाणी अत्यन्त संयमित रहते हैं वेदाध्ययन करने वाला तथा कीर्ति सम्पन्न मनुष्य तीर्थो का फल प्राप्त करता है॥२५॥ श्रद्धाहीन, पापी, नास्तिक, खिन्न मन वाला और कुतर्कवादी ये पाँच प्रकार के लोगों को तीर्थ का फल नहीं मिलता है ॥२६॥ जो ब्राह्मण प्रातःकाल जगकर सदा तीर्थ में स्नान करता है । वह सभी पापों से मुक्त होकर परब्रह्म को प्राप्त करता है ॥२७॥ हे षडानन ! स्नान वेत्ताओं ने चार प्रकार का स्नान

स्नानानां चैव सर्वेषां विशिष्टं तत्र वारुणम् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो मन्त्रवत्स्नानमाचरेत् ॥३०॥
तूष्णीमेव हि शूद्रस्य स्त्रीणांचैव षडानन । बाला च तरुणी बृद्धा नरनारीनपुंसकाः ॥३१॥
पापैः सर्वैः प्रमुच्यन्ते स्नानात्कार्त्तिकमाघयोः !
स्नाता वै कार्त्तिके लोकाःप्राप्नुवन्तीप्सितं फलम् ॥३२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशतसाहस्यां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीशिवषडाननसंवादे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥
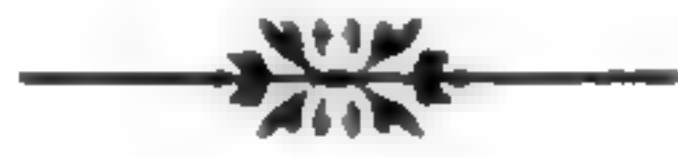
एक सौ अठारहवाँ अध्याय

सूत उवाच

पुनःप्रोवाच भगवान्महादेवो वृषध्वजः । श्रोतारमुपसंगम्य भक्तियुक्तं षडाननम्॥१॥

ईश्वर उवाच

कार्त्तिको वैष्णवो मासः सर्वमासेषु चोत्तमः ।
अस्मिन्मासे त्रयस्त्रिंशद्देवासंनिहिताः कलौ ॥२॥
ऊर्जेमासि महाभाग भोजनानि द्विजातये। तिलधेनुं हिरण्यं च रजतं भूमिवाससी ॥३॥

बतलाया है, व्याव्य, वारुण, दिव्य और ब्राह्म ॥२८॥ गौ के खूर की धूलि से स्नान करना वायव्य स्नान है । सागर आदि में स्नान करना वारुण स्नान है, मन्त्र पूर्वक ब्राह्मण का स्नान करना ब्रह्म स्नान है, तथा सूर्य के रहने पर भी होने वाले मेघ के जल से स्नान करना दिव्य स्नान है ॥२९॥ इन चार प्रकार के स्नानों में वारुण स्नान श्रेष्ठ है । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को मन्त्र पढ़कर स्नान करना चाहिए ॥३०॥ हे षडानन ! शूद्रों तथा स्त्रियों को मौन होकर स्नान करना चाहिए, बाला, तरुणी, वृद्धा, नरनारी तथा नपुंसक कार्तिक और माघ में स्नान करके सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं । कार्तिक में स्नान करने वाले लोग सभी अभिप्रेत फलों को प्राप्तकर लेते हैं ॥३१-३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीशिवषडानन संवाद के प्रसङ्ग में एक सौ सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११७।।

कार्तिक में तिल तथा गो दान का माहात्म्य

सूतजी ने कहा— वृषध्वज भगवान् शिव भक्तियुक्त श्रोता कार्तिकेयजी के पास आकर फिर कहे॥१॥ **ईश्वर ने कहा—** कार्तिक सभी मासों में उत्तम तथा वैष्णव मास है । इस मास में कलियुग में तैंतिस देवता सन्निकट में रहते हैं ॥२॥ हे षडानन ! कार्तिक मास में ब्राह्मण को भोजन, तिल, धेनु

गोप्रदानानि दास्यन्ति सर्वभावेन सुव्रत। सर्वेषामेव दानानां कन्यादानं विशिष्यते ॥४॥
ब्राह्मणायात्र ये कन्या दास्यन्ति विधिवन्नराः ।
वैकुण्ठे वसतिस्तेषां यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥५॥
रोमकाले तु संप्राप्ते सोमो भुङ्क्ते तु कन्यकाम् ।
ऋतुकाले तु गन्धर्वा वह्निस्तु कुचदर्शने ॥६॥
तावद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्। विवाहस्त्वष्टवर्षायाःकन्यायाःशस्यते बुधैः ॥७॥
दातव्या श्रोत्रियायैव ब्राह्मणाय तपस्विने । साक्षादधीतवेदाय विधिना ब्रह्मचारिणे ॥८॥
कन्या वरप्रदानस्य एष एवविधिःस्मृतः। यावन्ति चैव रोमाणि कन्यायाश्च तनौसुत॥९॥
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । सहस्रमेव धेनूनां शतं चानुडुहांसमम्॥१०॥
दशानुडुत्समं यानं दशयानसमो हयः। हयदानसहस्रेभ्यो गजदानं विशिष्यते॥११॥
गजदान सहस्राणां स्वर्णदानं च तत्समम्। स्वर्णभारसहस्राणां विद्यादानं च तत्समम् ॥१२॥
विद्यादानात्कोटिगुणं भूमिदानंविशिष्यते । भूमिदानसहस्रेभ्यो गोप्रदानं विशिष्यते॥१३॥
गोप्रदानसहस्रेभ्यो ह्यन्नदानं विशिष्यते । अन्नाधारमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥१४॥
तस्माद्देयं प्रयत्नेन कार्तिके शिखिवाहन। त्रीणि तुल्यप्रदानानि त्रीणितुल्यफलानि च ॥
सर्वकामदुधा धेनुः पृथ्वी चैव सरस्वती ॥१५॥

कार्तिकेय उवाच

अन्यानपि महादेव धर्मान्मे वक्तुमर्हसि। यान्कृत्वा सर्वपापानि प्रक्षाल्य त्रिदशोभवेत् ॥१६॥

सुवर्ण, रजत, भूमि तथा वस्त्र दान देना चाहिए ॥३॥ भाव पूर्वक गोदान करना चाहिए । हे सुव्रत ! सभी दानों में कन्या दान श्रेष्ठ है ॥४॥ इस मास में जो मनुष्य विधि पूर्वक ब्राह्मण को कन्यादान करते हैं, उन लोगों का वैकुण्ठ में चौदह इन्द्रों के काल (कल्प) तक निवास होता है ॥५॥ कन्या के शरीर में जब रोए आते हैं उस समय सोम उसका भोग करते हैं, ऋतुकाल में गन्धर्व, और जब स्तन दिखायी पड़ने लगे तो उसका अग्नि देवता भोग करते हैं । कन्या का विवाह उसके ऋतुमती होने के पहले ही करना चाहिए। विद्वान आठ वर्ष की कन्या का विवाह श्रेष्ठ बतलाते हैं । कन्या, तपस्वी तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण को देना चाहिए जिसने वेदाध्ययन कर लिया । उस ब्रह्मचारी ब्राह्मण को देना चाहिए ॥८॥ कन्यादान की यही विधि कही गयी है । हे पुत्र ! कन्या के शरीर में जितने रोएँ होते हैं ॥९॥ दाता उतने हजार वर्ष तक ब्रह्मलोक में पूजित होता है । हजार गायों के समान सौ सांढों का दान होता है । दश सांढों के दान के समान एक सवारी का दान होता है । दशसवारी के दान के समान एक घोड़े का दान होता है, एक हजार घोड़ों के दान के समान एक हाथी का दान होता है ॥१०-११॥ हजार हाथी के दान के समान एक भार सुवर्ण का दान होता है । हजार भार सुवर्ण के दान के समान एक विद्यादान होता है ॥१२॥ विद्यादान के करोड़ गुना भूमिदान का फल होता है । हजार भूमिदान से गोदान महत्त्वपूर्ण होता है ॥१३॥ हजार गौओं के दान से अन्न दान श्रेष्ठ है । यह सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक जगत् अन्न के आधार पर टिका है ॥१४॥ अतएव हे षडानन कार्तिक में अवश्य दान देना चाहिए । तीन प्रकार के दान एक समान होते हैं उन तीनों का एक समान फल होता है । १. सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली धेनु, २. पृथिवी और, ३. विद्या का

सूत उवाच

इति पृष्टस्तदा शंभुः पुनर्वक्तुं प्रचक्रमे। पावकिं बहुधा स्तुत्वा तच्छृणुध्वं तपोधनाः ॥१७॥

ईश्वर उवाच

परान्नं वर्जयेद्यस्तु कार्त्तिके नियमे कृते। परान्नवर्जनादेव लभेच्चान्द्रायणं फलम् ॥१८॥

तं प्राप्तं कार्त्तिकं दृष्ट्वा परान्नं यस्तु वर्जयेत् ।
दिने दिने तु कृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥१९॥

कार्तिके वर्जयेत्तैलं कार्त्तिके वर्जयेन्मधु। कार्त्तिके वर्जयेत्कांस्यं सङ्घात्रं च विशेषतः ॥२०॥

राक्षसीं योनिमाप्नोति सकृन्मांसस्य भक्षणात् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां परिपच्यते ॥२१॥
तन्मुक्तो जायते पापो विष्ठाशी ग्रामसूकरः ।
प्रवृत्तानां तु भक्षाणां कार्तिके नियमेकृते ॥२२॥

अवश्यं विष्णुरूपत्वं प्राप्यते मोक्षदं पदम्। न कार्तिकसमोमासो न दैवं केशवात्परम् ॥२३॥

न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गयासमम्। न सत्येन समं वृत्तं न कृतेन समंयुगम् ॥२४॥

न तृप्ती रसनातुल्या न दानसदृशं सुखम्। न धर्मसदृशं मित्रं न ज्योतिश्चक्षुषासमम् ॥२५॥

अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियम्। कर्मभ्रष्टः सविज्ञेयो हीनयोनिषु जायते॥२६॥

कार्त्तिकः प्रवरो मासो वैष्णवानां सदाप्रियः ।
समुद्रगा नदीपुण्या दुर्लभा स्नानशालिना ॥२७॥

दान ॥१५॥ **कार्तिकेयजी ने कहा—** हे महादेव ! आप मुझे अन्य धर्मों को भी वतलायें जिन सबों को करने से मनुष्य पापों से मुक्त होकर देवता हो जाय ॥१६॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से पूछने पर शिवजी ने कार्तिकेय की वहुत अधिक प्रशंसा करके पुनः कहना प्रारम्भ किया ॥१७॥ **ईश्वर ने कहा—** कार्तिक नियम करके जिसने परान्न को त्याग दिया हो तो उस परान्न त्याग से ही चन्द्रायण व्रत करने का फल मिल जाता है ॥१८॥ जो कार्तिक के महीने में परान्न का त्याग कर देता है वह मनुष्य प्रतिदिन कृच्छ्र का फल प्राप्त कर लेता है ॥१९॥ कार्तिक के महीने में तेल, मधु (शहद) कांसे के पात्र में भोजन तथा समुदाय के अन्न को विशेष रूप से त्याग देना चाहिए ॥२०॥ जो कार्तिक के महीने में जो एक वार भी मांस खा लेता है उसको साठ हजार वर्ष तक विष्ठा में रहना पड़ता है और वह उसके बाद राक्षसी योनि को प्राप्त करता है ॥२१॥ उससे मुक्त होने पर वह पापी विष्ठा खाने वाला गाँव का शूकर होता है । कार्तिक व्रत के नियमों के प्रारम्भ हो जाने पर जो नियम पूर्वक भोजन करता है ॥२२॥ वह अवश्य ही मोक्ष तथा विष्णु की सरूपता को व्रत करता है । कार्तिक के समान कोई महीना नहीं है और भगवान् शेष से वढ़कर कोई देवता भी नहीं है ॥२३॥ वेद के समान कोई शास्त्र नहीं है और गङ्गा के समान कोई तीर्थ नहीं है, सत्य के समान कोई व्यवहार नहीं है और सत्ययुग के समान कोई युग नहीं है ॥२४॥ जिह्वा के समान कोई तृप्ति नहीं है, दान के समान कोई सुख नहीं है धर्म के समान कोई मित्र नहीं है और नेत्र के समान कोई प्रकाश नहीं है ॥२५॥ जो मनुष्य विना व्रत किए ही भगवत् प्रिय कार्तिक मास को विता देता है उसको कर्म हीन जानना चाहिए और वह हीन योनियों में चला जाता है ॥२६॥ वैष्णवों को प्रिय कार्तिक

कुलशीलवतीकन्या दुर्लभा दम्पती नृणाम्। दुर्लभा जननीलोके पिताचैव विशेषतः ॥२८॥
दुर्लभं साधुसम्मानं दुर्लभो धार्मिकः सुतः। दुर्लभो द्वारिकावासो दुर्लभं कृष्णदर्शनम् ॥२९॥
दुर्लभं गोमतीस्नानं दुर्लभं कार्तिकव्रतम् । ब्राह्मणेभ्यो महींदत्त्वा ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥३०॥
यत्फलं लभते वत्स तत्फलं भूमिशायिनः। भोजनं द्विजदम्पत्योः पूजयेच्च विलेपनैः ॥३१॥
कम्बलानि च रत्नानि वासांसि विविधानि च ।
तूलकाश्च प्रदातव्याः प्रच्छादनपटैः सह ॥३२॥
उपानहावातपत्रं कार्तिके देहि पावके । यः करोति नरो नित्यं कार्त्तिके पत्रभोजनम् ॥३३॥
न दुर्गतिमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश। सर्वकामफलं तस्य सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥३४॥
न चापि नरकं पश्येद्ब्रह्मपत्रेषु भोजनात्। ब्रह्मा एष स्मृतःसाक्षात्पालाशःसर्वकामदः ॥३५॥
मध्यमं वर्जयेत्पत्रं कार्तिके शिखिवाहन। ब्रह्माः विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयोदेवास्त्रिपत्रके॥३६॥
ऐश्वरं वर्जयेत्पत्रं ब्रह्मविष्णोरनुत्तमम्। सर्वपुण्यमवाप्नोति शेषपत्रेषु भोजनात् ॥३७॥
भोजनान्मध्यपत्रे तु कपिलापयसस्तथा। प्राशनान्मुनिशार्दूल नरो नरकमाप्नुयात् ॥३८॥
अज्ञानाद्बुभुजे यस्तु शूद्रो वा कपिलापयः ।
कपिलां ब्राह्मणे दत्वा शुद्धो भवति कार्तिक ॥३९॥
तिलदानं नदीस्नानं सर्वदा साधुदर्शनम् । भोजनं ब्रह्मपत्रेषु कार्तिके मुक्तिदायकम् ॥४०॥

मास सर्वश्रेष्ठ मास है समुद्रगामिनी पवित्र नदी स्नान करने वालों को दुर्लभ है ॥२७॥ कुल के शील का पालन करने वाली कन्या वाले पति-पत्नी दुर्लभ हैं । संसार में माता दुर्लभ हैं और पिता विशेष रूप से दुर्लभ हैं ॥२८॥ साधु का सम्मान करना दुर्लभ है । और धार्मिक पुत्र दुर्लभ होता है । द्वारका में निवास करना दुर्लभ है और श्रीभगवान् का दर्शन दुर्लभ होता है ॥२९॥ गोमती में स्नान और कार्तिक व्रत दुर्लभ है । चन्द्रमा और सूर्य ग्रहण में ब्राह्मणों को पृथिवी देकर जिस फल की प्राप्ति होती है, वही फल पृथिवी पर शयन करने वाले को प्राप्त होता है । हे कार्तिकेय कार्तिक मास में ब्राह्मण दम्पती को भोजन कराकर चन्दनादि से पूजा करे, कम्बल, रत्न और अनेक प्रकार के वस्त्रों को दे, रजाई चादर के साथ देनी चाहिए। जूता, छाता भी देना चाहिए जो कार्तिक के महीने में नित्य ही पत्तल पर भोजन करता है ॥३०-३३॥ वह सभी कामनाओं रूपी फल और सभी तीर्थों का फल प्राप्त करता है । ब्रह्म पत्र पलाश के पत्ते पर भोजन करने वाला नरक में नहीं जाता है । सभी कामनओं को पूर्ण करने वाला पलाश का पत्र साक्षात् ब्रह्म कहा गया है । उसमें भोजन करने वाला चौदह इन्द्रों के कालतक दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है । पलाश के पत्तों पर भोजन करने के कारण वह कभी नरक में भी नहीं जाता है ॥३४-३५॥ हे कार्तिकेय ! कार्तिक में पलाश के बीच के पत्तों को छोड़ देना चाहिए । उसके बीच के तीन पत्तों को ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर कहा गया है ॥३६॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर के पत्रों को छोड़कर शेष पत्तों पर भोजन करने वाला सभी पुण्यों को प्राप्त कर लेता है ॥३७॥ हे मुनिश्रेष्ठ पलाश के ! बीच के पत्तों पर भोजन करने वाला तथा कपिला गौ के दूध को कार्तिक में पीने वाला नरक में जाता है ॥३८॥ हे कार्तिकेय ! यदि कोई शूद्र कपिला गौ का दुग्ध अज्ञानवशात् पी ले तो वह ब्राह्मण कपिला गौ का दान देकर पवित्र होता है ॥३९॥ कार्तिक के महीने में तिल का दान, नदी में स्नान साधु पुरुषों का दर्शन एवं पलाश पत्र में भोजन करना मुक्ति

मौनी पालाशभोजी च जलस्नायी सदाक्षमी ।
कार्त्तिके क्षितिशायी च हन्यात्पापं युगार्जितम् ॥४१॥

जागरं कार्तिके मासि यःकरोत्यरुणोदये। दामोदराग्रे सेनानीर्गोसहस्रफलं लभेत् ॥४२॥
पितृपक्षेऽन्नदानेन ज्येष्ठाषाढे च वारिणा। कार्त्तिके तत्फलं पुंसां परदीपप्रबोधनात् ॥४३॥
बोधनात्परदीपस्य वैष्णवानां च सेवनात्। कार्त्तिके फलमाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥४४॥
नदीस्नानं कथाविष्णोर्वैष्णवानां च दर्शनम्। न भवेत्कार्त्तिके यस्य हरेत्पुण्यं दशाब्दिकम् ॥४५॥
पुष्करं यःस्मरेत्प्राज्ञःकर्मणा मनसा गिरा। कार्त्तिके मुनिशार्दूललक्षकोटिगुणं भवेत् ॥४६॥
प्रयागो माघामासे तु पुष्करं कार्तिके तथा। अवन्ती माधवे मासि हन्यात्पापं युगार्जितम् ॥४७॥

धन्यास्ते मानवा लोके कलिकाले विशेषतः ।
कुर्वन्ति स्कन्द नित्यं ये सर्वथाहरिसेवनम् ॥४८॥

किं दत्तैर्बहुभिःपिण्डैर्गयाश्राद्धादिभिःसुत। तारितास्तेन पितरो नरकाच्च न संशयः ॥४९॥

क्षीरादि स्नपनं विष्णोःक्रियते पितृकारणात् ।
कल्पकोटिं दिवं प्राप्य वसन्ति त्रिदशैःसह ॥५०॥
कार्त्तिके नार्चितो यैस्तु कृष्णस्तु कमलेक्षणः ।
जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र न तेषां कमला गृहे ॥५१॥

दृष्टामुष्टा विनष्टास्ते पतिताःकलिकन्दरे। यैर्नार्चितो हरिर्भक्त्या कमलैरसितैःसितैः ॥५२॥

प्रदान करने वाले हैं ॥४०॥ मौन होकर पलाश के पत्तों में भोजन करने वाला जल में स्नान करने वाला तथा क्षमाशील तथा कार्तिक में पृथिवी पर सोने वाला एक युग के पापों को विनष्ट कर देता है ॥४१॥ हे कार्तिकेय ! जो कार्तिक मास में श्रीभगवान् के समक्ष अरुणोदय काल पर्यन्त रात्रि जागरण करता है, वह एक हजार गौओं के दान करने का फल प्राप्त करता है ॥४२॥ पितृपक्ष में अन्नदान करने से तथा ज्येष्ठ, आषाढ़ में जल दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है वह फल कार्तिक के महीने में दूसरे के दीप को जलाने वाले को होता है ॥४३॥ कार्तिक में दूसरों के दीपों को जलाने से तथा वैष्णवों की सेवा करने से राजसूय तथा अश्वमेध इन दोनों यागों का फल प्राप्त होता है ॥४४॥ नदी में स्नान, भगवान् विष्णु की कथा तथा वैष्णवों का दर्शन जो कार्तिक मास में नहीं करता है उसके दश वर्षों के पुण्य समाप्त हो जाते हैं ॥४५॥ कार्तिक के महीने में जो मनुष्य मन, वाणी और कर्म से पुष्कर तीर्थ का स्मरण करता है तो हे मुनिश्रेष्ठ ! उसको करोड़ गुना फल मिलता है ॥४६॥ माघ मास में प्रयाग, कार्तिक में पुष्कर तीर्थ और वैशाख में अन्वतीपुरी एक युग के पापों को विनष्ट कर देते हैं ॥४७॥ हे स्कन्द ! कलियुग में वे लोग विशेष रूप से धन्य हैं जो नित्य ही श्रीहरि की सेवा करते हैं ॥४८॥ गया में श्राद्ध आदि के द्वारा अनेक पिण्डों को देने से कोई लाभ नहीं है क्योंकि निश्चित रूप से अपने पितरों को तार दिया है ॥४९॥ जो लोग पितरों के उद्देश्य से श्रीहरि को दुग्ध आदि से स्नान कराते हैं उनके पितृगण करोड़ कल्पों तक देवताओं के साथ द्युलोक में रहते हैं ॥५०॥ जो मनुष्य कार्तिक में कमल नयन भगवान् की पूजा नहीं करते हैं हे विप्रेन्द्र ! उनके घर में करोड़ों जन्मों तक लक्ष्मी का निवास नहीं होता है ॥५१॥ कलिरूपी

पद्मेनैकेन देवेशं योऽर्चयेत्कमलापतिम्। वर्षायुतसहस्रस्य पापस्य कुरुते क्षयम् ॥५३॥
अपराधसहस्राणि तथा सप्तशतानि च । पद्मेनैकेन देवेशः क्षमेत प्रणतोऽर्चितः ॥५४॥
तुलसीपत्रलक्षेण कार्त्तिके योऽर्चयेद्धरिम् । पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम् ॥५५॥
तुलसीगन्धमिश्रं तु यत्किंचित्क्रियते सुत । कल्पकोटि सहस्राणि प्रीतो भवति केशवः ॥५६॥

मुखे शिरसि देहे तु कृष्णोत्तीर्णां तु यो वहेत् ।
तुलसीं षण्मुखप्रीत्या न तस्य स्पृशते कलिः ॥५७॥
कृष्णोत्तीर्णैस्तु निर्माल्यैर्यो गात्रं परिमार्जयेत् ।
सर्वरोगैस्तथा पापैर्मुक्तो भवति षण्मुख ॥५८॥

विष्णोरङ्गारशेषेण यस्याङ्गं स्पृशते सुत। दुरितानि विनश्यन्ति व्याधयो यान्ति संक्षयम् ॥५९॥
शङ्खोदकं हरेर्भक्तिर्निर्माल्यं पादयोर्जलम् । चन्दनं धूपशेषं तु ब्रह्महत्यापहारकम् ॥६०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तर खण्डे कार्त्तिक माहात्म्ये श्रीशिवकार्तिकेयसंवादे प्रश्नोत्तरो नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

कन्दरा में दंष्ट, मुष्ट विनष्ट तथा पतित हैं जो लोग उजले और लाल कमल से श्रीहरि की पूजा करते हैं॥५२॥ जो व्यक्ति एक कमल से श्रीहरि की पूजा करता है उसके दश हजार वर्षों के पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥५३॥ एक कमल से प्रसन्न होकर श्रीहरि सत्रह सौ अपराधों को क्षमा कर देते हैं ॥५४॥ जो कार्तिक के महीने में एक लाख तुलसी से श्रीहरि की अर्चना करता है वह तुलसी के प्रत्येक पत्ते से मोती चढ़ाने का फल प्राप्त करता है ॥५५॥ हे पुत्र ! तुलसी के गन्ध से युक्त जो कुछ करता है, श्रीहरि उस पर हजारों तथा करोड़ों कल्पों तक प्रसन्न रहते हैं ॥५६॥ भगवान पर से उतारी गयी तुलसी को जो अपने मुख में शिर पर और देह पर धारण करता है हे कार्तिकेय ! उसको कलियुग नहीं स्पर्श करता है ॥५७॥ श्रीभगवान् पर से उतारे गये निर्माल्य से अपने शरीर का जो परिमार्जन करता है हे षडानन ! वह सभी रोगों और पापों से मुक्त हो जाता है ॥५८॥ हे पुत्र ! भगवान् विष्णु के बचे हुए अङ्गार शेष भस्म से अपने शरीर का स्पर्श करता है उसके पाप विनष्ट हो जाते हैं और व्याधियों का विनाश हो जाता है॥५९॥ श्रीशङ्ख का जल, श्रीभक्ति और निर्माल्य, उनके चरणों का जल, उन पर चढ़ा हुआ चन्दन, और धूप का भस्म ब्रह्महत्या का विनाश कर देते हैं ॥६०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्यान्तर्गत श्रीशिव कार्तिकेय के प्रश्नोत्तर के प्रसङ्ग में एक सौ अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११८।।

एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

माघस्नानस्य माहात्म्यं शृणु भागवतोत्तम। त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन्विष्णुभक्तो महामते ॥१॥

चक्रतीर्थे हरिं दृष्ट्वा मथुरायां च केशवम् ।
यत्फलं लभते मर्त्यो माघस्नानेन तत्फलम् ॥२॥

जितेन्द्रियःशान्तमनाःसदाचारेण संयुतः । स्नानं करोति यो माघे संसारी न भवेत्पुनः ॥३॥

श्रीकृष्ण उवाच

शूकरस्य च माहात्म्यं कथयिष्ये तवाग्रतः। यस्य विज्ञानमात्रेण सान्निध्यं मम सर्वदा ॥४॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्कृष्णःसत्यायै बहुधा जगौ ।
तदहं संप्रवक्ष्यामि तच्छृणुध्वं तपोधनाः ॥५॥

श्रीकृष्ण उवाच

पञ्चयोजनविस्तीर्णे शूकरे हरिमन्दिरे। यस्मिन्वसति यो जीवो गर्दभोऽपि चतुर्भुजः ॥६॥

त्रीणि हस्तसहस्राणि त्रीणि हस्तशतानि च। त्रयोहस्ताःशूकरस्य परिमाणं विधीयते॥७॥

षष्टिवर्षसहस्राणि योऽन्यत्र कुरुते तपः। तत्फलं लभते देवि प्रहरार्धेन शूकरे॥८॥

सन्निहत्यां कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे। तुलापुरुषदानेन तत्फलं परिकीर्तितम् ॥९॥

काश्यां दशगुणं प्रोक्तं वेण्यां शतगुणं भवेत् ।
सहस्रगुणितं प्रोक्तं गङ्गासागरसङ्गमे ॥१०॥

अनन्तं चैव विज्ञेयं शूकरे हरिमन्दिरे। अन्यत्र ददते लक्षं संविधानेन भामिनि ॥११॥

माघ स्नान आदि का माहात्म्य

ईश्वर ने कहा— हे भागवतोत्तम ! माघ स्नान का महात्म्य सुनो हे महामते ! इस लोक में तुम्हारे समान कोई विष्णु भक्त नहीं हैं ॥१॥ मथुरा में तथा चक्रतीर्थ में श्रीहरि का दर्शन करके जिस फल की प्राप्ति होती है, उसी फल की प्राप्ति माघ स्नान से होती है ॥२॥ जितेन्द्रिय, शान्तमन वाला तथा सदाचारी जो मनुष्य माघ में स्नान करता है वह फिर संसार में नहीं आता है । **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** मैं तुम्हारे समक्ष शूकर क्षेत्र का माहात्म्य बतलाता हूँ । उसको जान लेने मात्र से सदा मेरा सान्निध्य बना रहता है ॥३-४॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से सत्यभामाजी को भगवान् ने कहकर फिर कहा, हे तपस्वियों मैं उसी को कहता हूँ उसे आपलोग सुनें ॥५॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** पाँच योजन में फैला हुआ श्रीभगवान् के शूकर क्षेत्र में यदि कोई गधा भी रहता है तो वह विष्णु स्वरूप है ॥६॥ तीन हजार तीन सौ हाथ शूकर क्षेत्र (वाराह भगवान) का परिमाण बतलाया गया है ॥७॥ जो व्यक्ति दूसरे स्थान में साठ हजार वर्ष तक तपस्या करके जिस फल को प्राप्त करता है उस फल को वह शूकर क्षेत्र में आधे प्रहर में ही प्राप्त कर लेता है ॥८॥ कुरुक्षेत्र के सन्निहत्या तीर्थ में सूर्य ग्रहण के समय तुला पुरुष के दान से जो फल बतलाया गया है ॥९॥ काशी में वह (पुण्य) दश गुना और वेणी के तट पर सौ गुना होता है । गङ्गा

इहैवैकेनः दत्तेन शूकरे तत्समं भवेत्। शूकरे च तथा वेण्यां गंगासागरसङ्गमे ॥१२॥
सकृदेव नरःस्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति। अलर्केण पुरा प्राप्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥
घूकरक्षेत्रमाहात्म्यं श्रुत्वा च गजगामिनि ॥१३॥

कार्त्तिकेय उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम्। विधिं मासोपवासस्य फलं चास्य यथोचितम् ॥१४॥
यथाविधि नरैःकार्या व्रतचर्या यथा भवेत्। आरभ्यते यथापूर्वं समाप्यं हि यथाविधि ॥१५॥
यावत्सङ्ख्यं तु कर्त्तव्यं तत्प्रब्रूहि महेश्वर। व्रतमेतत्सुखश्रीदं विस्तरेण ममानघ ॥१६॥

श्रीरुद्र उवाच

पावके साधु सर्वं ते यत्पृष्टं प्रब्रुवेऽनघ। भक्त्या मतिमतां श्रेष्ठश्रृणुष्व गदतो मम॥१७॥
सुराणां च यथा विष्णुस्तपतां च यथा रविः ।
मेरुः शिखरिणां यद्वद्वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥१८॥
तीर्थानां तु यथा गङ्गा प्रजानां तु यथा वणिक् ।
श्रेष्ठं सर्वव्रतानां तु तद्वन्मासोपवासनम् ॥१९॥

सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु चैव हि। सर्वदानोद्भवं चैव लभेन्मासोपवासकृत् ॥२०॥
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्विविधैर्भूरिदक्षिणैः । न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलङ्घनात् ॥२१॥
तेन जप्तं हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं स्वधा। यः करोति विधानेन नरो मासमुपोषणम्॥२२॥
उद्दिश्य वैष्णवं यज्ञं समभ्यर्च्य जनार्दनम्। गुरोराज्ञां ततो लब्ध्वा कुर्यान्मासोपवासनम् ॥२३॥

सागर सङ्गम स्थल में वह हजार गुना बतलाया गया है ॥१०॥ श्रीहरि के शूकर क्षेत्र में वह पुण्य अनन्त गुना बतलाया गया है । हे भामिनि ! अन्यत्र विधि पूर्वक एक लाख दान करने से जो फल मिलता है शूकर क्षेत्र में एक ही दान करने से वह फल प्राप्त होता है । शूकर क्षेत्र, वेणीतट और गङ्गा सागर के सङ्गम में एक समान फल होता है ॥११-१२॥ इन स्थानों में एक बार ही स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्या को विनष्ट कर देता है । हे गजगामिनि ! प्राचीन काल में शूकर क्षेत्र का माहात्म्य सुनकर आलर्क ने सतद्वीपा वसुन्धरा को प्राप्त किया था ॥१३॥ **कार्तिकेयजी ने कहा—** हे भगवान् ! मैं सर्वोत्तम व्रत को सुनना चाहता हूँ । मैं मासोपवास की विधि और फल को जानना चाहता हूँ ॥१४॥ व्रतचर्या कैसे की जाती है ? उसको आरम्भ और अन्त कैसे करना चाहिए ॥१५॥ हे अनघ ! जिस विधि से लक्ष्मी प्रदान करने वाले व्रत को जितने बार करना चाहिए उसे विस्तार से आप मुझे बतलायें । **श्रीरुद्र ने कहा—** हे निष्पाप कार्तिकेय ! तुमने जो भी पूछा है उसे मैं बतलाता हूँ उसे भक्ति पूर्वक सुनो ॥१६॥ जैसे देवताओं में भगवान् ज्योतियों में सूर्य, पर्वतों में सुमेरु पवर्त, पक्षियों में गरुड ॥१७-१८॥ तीर्थों में गङ्गा और प्रजाओं में वैश्य जैसे श्रेष्ठ हैं उसी तरह व्रतों में मासोपवास श्रेष्ठ है ॥१९॥ जो फल सभी व्रतों को करने से सभी तीर्थों में, सभी दानों के द्वारा मनुष्य प्राप्त करता है उस फल को मासोपवास व्रत करने वाला प्राप्त कर लेता है ॥२०॥ एक मास तक उपवास करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल को अनेक प्रकार की दक्षिणाओं के साथ अग्निष्टोम आदि यज्ञों से नहीं प्राप्त होता है ॥२१॥ मासोपवास करने वाले को जप, होम, तपस्या, दान और श्राद्ध करने का फल प्राप्त होता है ॥२२॥ वैष्णव यज्ञ के उद्देश्य से

वैष्णवानि यथोक्तानि कृत्वा सर्वव्रतानि तु। द्वादश्यादीनि पुण्यानि ततो मासमुपावसेत् ॥२४॥
अतिकृच्छ्रं च पाराकं कृत्वा चान्द्रायणं ततः ।
मासोपवासं कुर्वीत गुरोर्विप्रज्ञायता ततः ॥२५॥
आश्विनस्यामले पक्ष एकादश्यामुपोषितः । व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्रिंशद्दिनानि तु॥२६॥
वासुदेव समभ्यर्च्य कार्तिकं सकलं नरः। मासं चोपवसेद्यस्तु स मुक्तिफलभाग्भवेत् ॥२७॥
अच्युतस्यालये भक्त्या त्रिकालं कुमुदैःशुभैः ।
मालतीन्दीवरैर्बुध्नैःकमलैश्च सुगन्धिभिः ॥२८॥
कुसुमोशीरकर्पूरैर्विलिप्य वरचन्दनैः । नैवेद्यापूपदीपाद्यैरर्चयेच्च जनार्दनम् ॥२९॥
मनसाकर्मणावाचापूजयेद्गरुडध्वजम् । कुर्वन्नरः स्त्री विधवा बृहद्भक्तिर्जितेन्द्रियः ॥३०॥
नाम्नामेव तथालापं विष्णोःकुर्यादहर्निशम् ।
भक्त्या विष्णोःस्तुतिर्वाच्या मिथ्यालापविवर्जिता ॥३१॥
सर्वसत्त्वदयायुक्तःशान्तवृत्तिरहिंसकः । सुप्तो बाह्यासनस्थो वा वासुदेवं प्रकीर्तयेत् ॥३२॥
स्मृत्यालोकनगन्धादि स्वादनं परिकीर्त्तनम् । अन्नस्य वर्जयेद्ग्रासं ग्रासानां सम्प्रमोक्षणम् ॥३३॥
गात्राभ्यङ्गं शिरोऽभ्यङ्गं ताम्बूलं च विलेपनम् ।
व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चान्यच्च निराकृतम् ॥३४॥
न व्रतस्थःस्पृशेत्किंचिद्विकर्मस्थं न चालपेत् ।
देवतायतने तिष्ठन्न गृहस्थश्चरेद्व्रतम् ॥३५॥
कृत्वा मासोपवासं तु यथोक्तविधिना नरः। नारी वा विधवा साध्वी वासुदेवं समर्चयेत्॥३६॥

भगवान् जनार्दन की पूजा करके आचार्य की आज्ञा लेकर मासोपवास व्रत करना चाहिए ॥२३॥ शास्त्रोक्त द्वादशी आदि सभी वैष्णव व्रतों को करके एक मास तक उपवास करना चाहिए ॥२४॥ पहले अतिकृछ्र पाराक करके चान्द्रायण करना चाहिए फिर गुरु की आज्ञा लेकर मासोपवास करे ॥२५॥ आश्विन के शुक्ल पक्ष में एकादशी के दिन उपवास करे उसके पश्चात् तीस दिन तक उपवास करने का यह व्रत करे ॥२६॥ पूरे कार्तिक महीने में भगवान् वासुदेव की अर्चना करके जो मनुष्य मासोपवास व्रत करता है वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥२७॥ श्रीभगवान् के मन्दिर में सुन्दर कुमुद, मालती, कमलबुध्न, कमल अनेक प्रकार के सुगन्धित धृत पुष्प, खस और कर्पूर मिश्रित सुन्दर चन्दन से श्रीभगवान् का लेपन करके नैवेद्य, धूप तथा दीप आदि से भगवान् जनार्दन की पूजा करे ॥२८॥ मन, वाणी और कर्म से भगवान् गरुडध्वज की पूजा करे। ऐसा बृहद्भक्ति से करने वाला पुरुष स्त्री या विधवा जितेन्द्रिय होकर रात-दिन भगवान् विष्णु के नामों का उच्चारण करे। वह कभी झूठ न बोले, भक्ति पूर्वक भगवान् विष्णु की स्तुति करे ॥२९-३१॥ सभी जीवों पर दया करे, शान्त वृत्ति और अहिंसक वह चाहे सोया हो अथवा वाहयासन पर बैठे हो सदा भगवान् वासुदेव का कीर्तन करे ॥३२॥ गन्ध आदि को याद करना या उनको देखना भोजन कहा गया है। वह अन्न को न खाय ग्रासों का वह प्रमोक्षण भी न करें ॥३३॥ शरीर को दबाना, शिर को धोना, ताम्बूल, चन्दन को त्याग दे । व्रती को दूसरी भी अन्य वस्तुओं को त्याग देना चाहिए ॥३४॥ व्रती किसी वस्तु को न तो स्पर्श करे और न तो स्थिर वस्तु को हिलाये-डुलाये गृहस्थ को चाहिये कि मन्दिर में

अन्यूनाधिकमेव तु व्रतं त्रिंशद्दिनैरिदम्। कृत्वा मासोपवासं तु संयतात्मा जितेन्द्रियः ॥३७॥
ततोऽर्चयेद्देवपुण्यं द्वादश्यां गरुडध्वजम्। पूजयेत्पुष्पमालाभिर्गन्धधूपविलेपनैः ॥३८॥
वस्त्रालङ्कारवाद्यैश्च तोषयेदच्युतं नरः। संस्नापयेद्धरिं भक्त्या तीर्थचन्दनवारिभिः॥३९॥
चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं गन्धपुष्पैरलङ्कृतम्। वस्त्रदानादिभिश्चैव भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥४०॥

दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यःप्रणिपत्य क्षमापयेत् ।
एवं मासोपवासाद्धि कृत्वाऽभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥४१॥

भोजयित्वा द्विजांश्चैव विष्णुलोके महीयते। एवं मासोपवासान्ते कृत्वा विप्रांस्त्रयोदश ॥४२॥
निर्यापयेत्ततसतान्वै विधिना येन तच्छृणु। कारयेद्वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः॥४३॥
पूजयित्वा तु देवेशमाचार्यानुज्ञया हरिम्। अर्चयित्वा यथाशक्त्या ह्यभिवाद्यगुरुं तथा॥४४॥
ततोऽनुभोजयेद्विप्रान्नमस्कारपुरःसरम् । विशुद्धकुलचारित्रान्विष्णुपूजनतत्परान् ॥४५॥
पूजयित्वा तथा सर्वान्भोजयित्वा त्रयोदश। ताम्बूलवस्त्रयुग्मानि भोजनाच्छादनानि च ॥४६॥
योगपट्टानि सूत्राणि ब्रह्मसूत्राणि चैव हि। दद्याच्चैव द्विजाग्येभ्यःपूजयित्वा प्रणम्य च ॥४७॥

ततोऽनुपूजयेच्छक्त्या शय्यांस्तरणसंस्कृताम् ।
साच्छादनां शुभां श्रेष्ठां सोपधानामलङ्कृताम् ॥४८॥
कारयित्वात्मनो मूर्त्तिं काञ्चनीं तु स्वशक्तितः ।
न्यस्येत्तस्यां तु शय्यायामर्चयित्वा स्त्रगादिभिः ॥४९॥

आसनं पादुकां छत्रं वस्त्रयुग्ममुपानहौ। पवित्राणि च पुष्पाणि शय्यायामुपकल्पयेत् ॥५०॥

बैठकर व्रत न करे ॥३५॥ विधि पूर्वक एक मास तक उपवास करके पुरुष या नारी या विधवा या साध्वी भगवान् वासुदेव की पूजा करे ॥३६॥ यह व्रत पूरे-पूरे तीस दिन का बतलाया गया है । संपतात्मा और जितेन्द्रिय व्रती एक मास तक उपवास करके ॥३७॥ उसके बाद भगवान् गरुडध्वज की पूजा करे । वह चन्दन, पुष्प, माला गन्ध, धूप, विलेपन, वस्त्र तथा अलङ्कारों से भगवान् वासुदेव को प्रसन्न करे । वह भक्ति पूर्वक तीर्थ और चन्दन के जल से श्रीहरि को स्नान कराये ॥३८-३९॥ शरीर में चन्दन लगाकर और सुगन्धित पुष्पों से अलंकृत वह श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनको वस्त्रादि का दान दे ॥४०॥ ब्राह्मणों को दक्षिणा दे और प्रणाम करके उनसे क्षमा प्रार्थना करे । इस तरह मासोपवास व्रत करके तथा भगवान् जनार्दन की पूजा करके ॥४१॥ और ब्राह्मणों को भोजन कराकर वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है। मासोपवास व्रत में तेरह ब्राह्मणों को इस तरह से पूजन करके उन लोगों को जिस विधि से विदा करे उसे तुम सुनो । वह एकादशी के दिन वैष्णव यज्ञ को उपवास रहकर कराये ॥४२-४३॥ आचार्य की आज्ञा मे श्रीभगवान् की पूजा करे । अपनी यथाशक्ति पूजा करके तथा गुरु को नमस्कार करके उसके पश्चात् ब्राह्मणों को नमस्कार करके उन्हें भोजन कराये । शुद्ध कुल तथा चरित्र वाले विष्णु भगवान् की पूजा में लगे रहने वाले उन त्रयोदशों ब्राह्मणों को भोजन कराकर विदा करे । उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को ताम्बूल दो, वस्त्र, भोजन, योगपट्ट सूत्र तथा यज्ञोपवीत प्रणाम करके प्रदान करे ॥४४-४७॥ उसके बाद विस्तार से युक्त अच्छादन से सुन्दर बनी हुयी तथा मसनद से अलङ्कृत शय्या की अपनी शक्ति के अनुसार पूजा करे ॥४८॥ अपनी सुवर्ण की मूर्ति का निर्माण कराकर उसको उस शय्या पर रखकर तथा माला आदि

एवं शय्यां तु सङ्कल्प प्रणिपत्य च तान्द्विजान् ।
प्रार्थयेच्चानुमोदार्थं विष्णुलोकं व्रजाम्यहम् ॥५१॥
ततो व्रजेन्नरश्रेष्ठो विष्णोःस्थानमनामयम् । मण्डपस्थांतुतान्विप्रानितिवाच्यं मुहुर्मुहुः ॥५२॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं सर्वहीनं द्विजोत्तमाः । सर्वं संपूर्णतां यातु भवद्वाक्यप्रसादतः ॥
विधिर्मासोपवासस्य यथावत्परिकीर्त्तितः ॥५३॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे मासोपवासकथनं नाम एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

एक सौ बीसवाँ अध्याय

सूत उवाच
इतिवाक्यं समाकर्ण्य पुनःपप्रच्छ पावकिः । शालग्रामार्चनं भूयस्तच्छृणुध्वं तपोधनाः ॥१॥
कार्त्तिकेय उवाच
भगवन्योगिनांश्रेष्ठ सर्वेधर्माःश्रुता मया । शालग्रामार्चनं ब्रूहि विस्तरेण मम प्रभो ॥२॥
ईश्वर उवाच
साधुसाधु महाप्राज्ञ यन्मां हि परिपृच्छसि। तदहं संप्रवक्ष्यामि श्रूयतां मम वत्सल ॥३॥
शालग्रामशिलायां तु त्रैलोक्यं सचराचरम् । महाशय महासेन नित्यं तिष्ठति संहितम् ॥४॥

से पूजा करके ॥४९॥ उस शय्या पर आसन, पादुका, छत्र, जूते, दो वस्त्र तथा पवित्र पुष्पों को रखे॥५०॥ इस तरह की शय्या का सङ्कल्प करके उन ब्राह्मणों को प्रणाम करे और कहे कि मैं विष्णुलोक में जा रहा हूँ आपलोग इसका अनुमोदन करें ॥५१॥ उसके पश्चात् वह पुरुष श्रेष्ठ निर्भय विष्णु भगवान् के मन्दिर में जाय मण्डप में विद्यमान ब्राह्मणों की इस प्रकार से बार-बार स्तुति करे ॥५२॥ मन्त्रों से रहित तथा क्रिया से रहित तथा सभी प्रकार की कमी से युक्त यह व्रत हे ब्रह्मणों ! आपलोगों की कृपा से परिपूर्ण हो जाय। मैंने मासोपवास की विधि का यथावत् वर्णन किया है ॥५३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्यान्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में मासोपवास व्रत वर्णन नामक एक सौ उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११९॥

शालग्राम पूजन का वर्णन

सूतजी ने कहा— इस वाक्य को सुनकर कार्तिकेय ने पुनः पूछा हे तपस्वियों ! आपलोग शालग्राम पूजन को सुनें ॥१॥ **कार्तिकेयजी ने कहा—** हे योगियों में श्रेष्ठ भगवन् ! मैंने सभी धर्मों को सुना । हे प्रभो ! आप विस्तार से शालग्राम का वर्णन करें ॥२॥ **ईश्वर ने कहा—** हे महाप्राज्ञ ! तुम मुझसे जो

दृष्टं प्रणमितं येन स्नापितं पूजितं तथा। यज्ञकोटिगुणं पुण्यं गवां कोटिफलं लभेत्॥५॥
छिन्नस्तेन तथा वत्स गर्भवासःसुदारुणः। पीतं येन सदा विष्णोःशालग्रामशिलाजलम् ॥६॥
कामासक्तोऽपि यो नित्यं भक्तिभावविवर्जितः ।
शालग्रामशिलां पुत्र पूजयित्वाऽच्युतो भवेत् ॥७॥
शालग्रामशिलाबिम्बं हत्वा (त्या) कोटिविनाशनम् ।
स्मृतं संकीर्तित ध्यातं पूजितं च नमस्कृतम् ॥८॥
शालग्रामशिलां दृष्ट्वायान्ति पापान्यनेकशः ।
सिंह दृष्ट्वा यथा यान्ति वने मृगगणा भयात् ॥९॥
नमस्कारं तु मनुजःशालग्रामशिलार्चने ।
भक्तया वा यदि वाऽभक्तया कृत्वा मुक्तिमवाप्नुयात् ॥१०॥
वैवस्वतभय नास्ति तथा मरणजमनोः । यःकरोति नरो नित्यं शालग्रामशिलार्चनम्॥११॥
गन्धपाद्यार्घनैवेद्यैर्दीपैर्धूपैर्विलेपनैः । गीतैर्वाद्यैस्तथा स्तोत्रैःशालग्रामशिलार्चनम् ॥१२॥
कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायणः। कल्पकोटिसहस्राणि रमते विष्णुसद्मनि ॥१३॥
शालग्रामनमस्कारो भावेनापि नरैःकृतः। मानुषत्वं कथं तेषां मद्भता ये नरा भुवि॥१४॥
मद्भक्तास्तीव्रपापिष्ठा मत्प्रभुं न नमन्ति ये। वासुदेवं न ते ज्ञेया मद्भक्ताः पापमोहिताः॥१५॥
मद्भक्तोऽपि च यो भूत्वा भुङ्क्ते त्वेकादशीदिने ।
स याति ह्यन्धतामिस्त्रं निरयं मम घातकः ॥१६॥
मल्लिङ्गस्पर्शनं कार्यं नान्याशुद्धिर्विधीयते। या तिथिर्दयिता विष्णोःसा तिथिर्ममवल्लभा॥१७॥

पूछते हो वह बहुत अच्छी बात है । तुम उसे सुनो ॥३॥ हे महासेन ! महाशय शालग्राम शिला पर सचराचर त्रैलोक्य स्थित है ॥४॥ जो मनुष्य शालग्राम शिला का दर्शन, प्रणाम, स्नान और पूजन करता है वह यज्ञ के करोड़ों गुना तथा करोड़ों गौओं के दान का फल प्राप्त करता है ॥५॥ वह गर्भवास के बन्धन को काट देता है जो शालग्राम शिला का जल पीता है ॥६॥ हे वत्स ! कामी पुरुष भी तथा भक्तिभाव से रहित पुरुष भी शालग्राम शिला का पूजन करके अच्युत हो जाता है ॥७॥ शालग्राम शिला का स्मरण, कीर्तन, ध्यान, पूजन और नमस्कार करोड़ों हत्याजन्य पापों को विनष्ट कर देता है ॥८॥ शालग्राम शिला को देखकर सभी पाप इधर-उधर उसी तरह भाग जाते हैं जैसे वन में सिंह को देखकर पशुओं का समूह उसके भय से भाग जाता है ॥९॥ शालग्राम शिला के पूजन के समय भक्ति पूर्वक अथवा बिना भक्ति के ही प्रणाम करके मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥१०॥ जो मनुष्य प्रतिदिन शालग्राम शिला का पूजन करता है उसको यम का भय नहीं होता है ॥११॥ चन्दन, पाद्य, अर्घ, नैवेद्य, धूप, दीप, विलेपन, गीत, वाद्य, तथा स्तोत्र के द्वारा जो शालग्राम शिला का अर्चन करता है, कलियुग में वह भक्ति परायण मनुष्य भगवान् विष्णु के लोक में करोड़ों कल्प तक रमण करता है ॥१२-१३॥ जो मेरे भक्त भक्ति पूर्वक शालग्राम को नमस्कार करते हैं वे मनुष्य संसार में आकर पुनः कैसे मनुष्य हो सकते हैं ॥१४॥ जो मेरे भक्त मेरे स्वामी भगवान् वासुदेव को प्रणाम नहीं करते हैं वे बहुत बड़े पापी हैं वे पाप से मोहित हैं॥१५॥ जो मेरे भक्त होकर भी एकादशी के दिन भोजन करते हैं वे मुझको मारने वाले है और वे अन्धतामिस्र

यस्तां नोपवसेन्मर्त्यः स पापी श्वपचाधिकः ।
शालग्रामशिलायां तु सदा पुत्र वसाम्यहम् ॥१८॥
दत्तं देवेन तुष्टेन स्वस्थानं मम भक्तितः । पद्मकोटिसहस्रैस्तु पूजिते मयि यत्फलम् ॥१९॥
तत्फलं कोटिगुणितं शालग्रामशिलार्चनात् । पूजितोऽहं न तैर्मर्त्यैर्नमितोऽहं न तैर्नरैः ॥२०॥
न कृतं मर्त्यलोके यैः शालग्रामशिलार्चनम् ।
शालग्रामशिलाग्रे तु यःकरोति ममार्चनम् ॥२१॥
तेनार्चितोऽहं सेनानीर्युगानामेकविंशतिम् । किमर्चितैर्लिङ्गशतैर्विष्णुभक्तिविवर्जितैः ॥२२॥
शालग्रामशिलाबिम्बं नार्चितं यदि पुत्रक । अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥२३॥
शालग्रामशिलाग्रे तु सर्वं याति पवित्राताम् । भुक्तवान्यदेवनैवेद्यं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥२४॥
भुक्तवा केशवनैवेद्यं यज्ञकोटिफलं लभेत् । पादोदकेन देवस्य हत्याकोटिसमन्विताः ॥२५॥
शुध्यन्ति नात्र संदेहस्तथा शङ्खोदकेन हि । यो हि माहेश्वरो भूत्वा वैष्णवं च न पूजयेत् ॥२६॥
द्वेष्टा च याति नरकं यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ज्येष्ठाश्रमी गृहे यस्य मुहूर्त्तमपि विश्रमेत् ॥२७॥
पितामहा युगान्यष्टौ भवन्त्यमृतभोजिनः । संसारे दुःखकान्तारे निमज्जन्ति नराधमाः ॥२८॥
वर्षकोटिसहस्राणि कृष्णाराधनवर्जिताः । स्नेहादभ्यर्चितैर्लिङ्गैःशालग्रामसमुद्भवैः ॥२९॥
मुक्तिं प्रयान्ति मनुजा योगसाङ्ख्येन वर्जिताः ।
मल्लिङ्गकोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलं पूजितैः स्तुतैः ॥३०॥

नामक नरक में जाते हैं ॥१६॥ उनकी शुद्धि का दूसरा कोई साधन नहीं है । जो तिथि भगवान् विष्णु को प्रिय है वह मुझे अत्यन्त प्रिय हैं ॥१७॥ जो मनुष्य उस तिथि का सेवन नहीं करता है वह चाण्डाल से भी अधिक पापी है । हे पुत्र ! मैं सदैव शालग्राम शिला में निवास करता हूँ ॥१८॥ श्रीभगवान् मेरी भक्ति से प्रसन्न होकर मुझे शालग्राम शिला में स्थान दिया है । हजार करोड़ कमलों से मेरी पूजा करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसके करोड़ गुना फल शालग्राम शिला की पूजा करने से होती है । जिन मनुष्यों ने इस संसार में शालग्राम शिला की अर्चना नहीं की है उन मनुष्यों के द्वारा न तो मेरी पूजा की गयी है और न नमस्कार किया गया है । जो मनुष्य शालग्राम शिला के सामने मेरी पूजा करता है ॥१९-२१॥ हे कार्तिकेय ! उस मनुष्य को इक्कीस युगों तक मेरी पूजा करने का फल प्राप्त हो जाता है । भागवान् विष्णु की भक्ति से रहित मनुष्यों को मेरी सैकड़ों बार भी पूजा करने से कोई लाभ नहीं होता है ॥२२॥ हे पुत्र ! यदि किसी ने शालग्राम शिला का पूजन नहीं किया है वह मेरे नैवेद्य, पत्र तथा पुष्प के योग्य नहीं है ॥२३॥ शालग्राम शिला के समक्ष सबकुछ पवित्र हो जाता है । दूसरे देवता का नैवेद्य पाकर ब्राह्मण को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥२४॥ भगवान् केशव के नैवेद्य को खाने वालें को करोड़ों यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है । श्रीभगवान् के पादोदक तथा शङ्ख के जल से करोड़ों हत्याओं को करने वाले की भी शुद्धि हो जाती है । जो शिव भक्त होकर वैष्णवों की पूजा नहीं करता है ॥२५-२६॥ वैष्णवों से द्वेष करने वाला चौदह इन्द्रों के काल तक नरक में निवास करता है । जिसके घर में संन्यासी एक मुहूर्त तक भी रुक जाता है ॥२७॥ उसके गृह में पितामह आदि आठ युगों तक देवता बने रहते हैं । भगवान् कृष्ण की आराधना नहीं करने वाले नराधम दुःख भरे संसार में पड़े रहते हैं जिन लोगों ने प्रेम पूर्वक शालग्राम शिला

शालग्रामशिलायां तु एकस्यामिह तद्भवेत् । द्वादशैव शिला यो वै शालग्रामसमुद्भवाः ॥३१॥
अर्चयेद्वैष्णवो नित्यं तस्य पुण्यं निबोध मे ।
कोटिलिङ्गसहस्रैस्तु पूजितैर्जाह्नवीतटे ॥३२॥
काशीवासे युगान्यष्टौ दिनेनैकेन तद्भवेत् । किम्पुनर्बहुना यस्तु पूजयेद्वैष्णवो नरः ॥३३॥
नाहं ब्रह्मादयो देवाःसङ्ख्यां कर्तुं समीशते ।
तस्माद्भक्तया न मद्भक्तैःप्रीत्यर्थं ममपुत्रक ॥३४॥
कर्त्तव्यं मम तद्भक्तया शालग्रामशिलार्चनम् । शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ॥३५॥
तत्र देवा सुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश । सुराणां कीर्तनैःसर्वैःकोटिभिश्च फलं लभेत् ॥३६॥
तत्फलं कीर्त्तनादेव केशवे सुकृतं कलौ । शालग्रामशिलाग्रे तु सकृत्पिण्डेन तर्पिताः ॥३७॥
वसन्ति पितरस्तस्य न सङ्ख्या तत्र विद्यते ।
ये पिबन्ति नरा भक्तया शालग्रामशिलाजलम् ॥३८॥
पञ्चगव्यसहस्रैस्तु प्राशितैःकिं प्रयोजनम् । प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने किं दानैःकिमुपोषणैः ॥३९॥
चान्द्रायणैःसुचीर्णैश्च पीत्वा पादोदकं हरेः । यःकरोति तडागे तु प्रतिमां जलशायिनीम् ॥४०॥
कोटिभिश्चापि किं कार्यमन्यदेवैश्च पूजितैः । विष्णुमुख्यास्तु वै देवास्तत्र जल्पन्ति वै गुह ॥४१॥
प्रमाणमस्ति सर्वस्व सुकृतस्य हि पुत्रक । फलप्रमाणं नैवास्ति शालग्रामशिलार्चने ॥४२॥
यो ददाति शिलां विष्णोःशालग्रामसमुद्भवाम् ।
विप्राय विष्णुभक्ताय तेनेष्टं क्रतुभिःशतैः ॥४३॥

का पूजन किया है ॥२८-२९॥ वे योग तथा सांख्य ज्ञान से रहित भी मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं । मेरे करोड़ों लिङ्गों का दर्शन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है ॥३०॥ उस फल की प्राप्ति शालग्राम की एक शिला का भी दर्शन करने से हो जाता है । जो वैष्णव शालग्राम के बारह शिलाओं की पूजा करता है उसको प्राप्त होने वाले फल को मैं बतलाता हूँ । गङ्गा के तट पर एक हजार करोड़ मेरे लिङ्गों की पूजा करने से तथा आठ युगों तक काशी में निवास करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसको प्राप्ति एक दिन ही द्वादश शालग्राम की पूजा करने से हो जाती है । जो वैष्णव मनुष्य बहुत बार उसकी पूजा करता है उसके विषय में क्या कहना है ?॥३१-३३॥ उसकी संख्या करने में न तो मैं समर्थ हूँ और न ब्रह्मा आदि देवता समर्थ हैं । अतएव हे पुत्र ! इसीलिए मेरे भक्तों को मेरी प्रसन्नता के लिए भक्ति पूर्वक शालग्राम शिला का पूजन करना चाहिए । जहाँ पर शालग्राम शिला रूपी भगवान् केशव का निवास है ॥३४-३५॥ वहाँ पर सभी देवता, यक्ष तथा चौदहों भुवनों का निवास होता है । उन सभी देवताओं को कीर्तन करने से करोड़ गुना फल की प्राप्ति हो जाती है । शालग्राम शिला के समक्ष जो पितरों का तर्पण करता है उसके पितृगण वैकुण्ठ में जितने दिन निवास करते हैं उसकी कोई भी संख्या नहीं है । जो मनुष्य भक्ति पूर्वक शालग्राम शिला का जल पीते हैं ॥३६-३८॥ इस प्रायश्चित के कर लेने पर हजारों बार पञ्चगव्य पीने दान एवं उपवास करने चान्द्रायण व्रतों को करने से कौन सा लाभ है ? जो श्रीहरि के चरणामृत को पीकर सरोवर में श्रीभगवान् की प्रतिमा को शयन कराता है ॥३९-४०॥ उसको दूसरे करोड़ों देवताओं की पूजा करने से कौन सा लाभ है ? क्योंकि सभी देवताओं में विष्णु को प्रधान बतलाया गया

गृहेऽपि वसतस्तस्य गङ्गास्नानं दिनेदिने। स स्नातःसर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥४४॥
शालग्रामशिलातोयैरभिषेकं य आचरेत्। स्वर्गे मर्त्ये च पाताले पाषाणःसन्ति वै गुह ॥४५॥
शालग्रामशिलाग्राव्णा नास्ति नास्ति समा पुनः।
मानुषे दुर्लभे लोके सफलं तस्य जीवितम् ॥४६॥
तिलप्रस्थशतं भक्तया यो ददाति दिने दिने। तत्फलं समवाप्नोति शालग्रामशिलार्चनात्॥४७॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं मूलं दूर्वादलं तथा। जायते मेरुणा तुल्यं शालग्रामे समर्पितम्॥४८॥
विधिहीनोऽपि यःकश्चित्क्रियामन्त्रविवर्जितः।
चक्राङ्कभुज आप्नोति सम्यक्छास्त्रोदितं फलम् ॥४९॥
यत्तु पूर्वं मया दृष्टं केशवे क्लेशनाशनम्। तत्सर्वं कथयिष्यामि तव स्नेहेक पुत्रक ॥५०॥
क्वत्वं वससिहे विष्णो किमाधारः किमाश्रयः।
कथं वा प्रीयसे देव तत्सर्वं कथयस्व मे ॥५१॥

श्रीकृष्ण उवाच

निवसामि सदा शम्भो शालग्रामोद्भवेऽश्मनि।
तत्रैव रथचक्राङ्के यानि नामानिमेशृणु ॥५२॥
द्वारदेशे समे चक्रे दृश्येते नान्तरं यदि। वासुदेवः स विज्ञेयःशुक्लश्चैवातिशोभनः॥५३॥
प्रद्युम्नः सूर्यवक्त्रस्तु नीलदीप्ति स्तथैव च।
सुषिरं छिद्रबहुलं दीर्घाकरं तु तद्भवेत् ॥५४॥

है॥४१॥ हे पुत्र! सबों की सीमा है किन्तु शालग्राम शिला जन्य पुण्य की कोई सीमा नहीं है ॥४२॥ जो विष्णु भक्त ब्राह्मण को शालग्राम शिला का दान देता है उसको सैकड़ों क्रतुओं को करने का फल प्राप्त होता है ॥४३॥ अपने घर में रहने पर भी उसको प्रतिदिन गङ्गा स्नान का फल प्राप्त होता है। उसे सभी तीर्थों में स्नान करने का और सभी यज्ञों के करने का फल प्राप्त होता है ॥४४॥ जो शालग्राम शिला का जल से अभिषेक करता है उसके लिए स्वर्गलोक, मर्त्य लोक और पाताल लोक में पत्थर हैं ॥४५॥ कोई भी शिला शालग्राम शिला के समान नहीं है उसका इस दुर्लभ मनुष्य लोक में जीवन सफल है ॥४६॥ जो फल सौ प्रस्थ तिल का प्रतिदिन भक्ति पूर्वक दान करने से होता है वही फल शालग्राम शिला की अर्चना से प्राप्त होता है ॥४७॥ शालग्राम शिला पर चढ़ाये गये पत्र, पुष्प, जल, मूल और दूर्वा दल सुमेरु पर्वत के समान फलद हो जाते हैं ॥४८॥ यदि कोई चक्राङ्कित पुरुष विधि, क्रिया तथा मन्त्र के बिना भी शालग्राम की पूजा करता है उसे पूर्ण रूप से शास्त्रोक्त फल प्राप्त होते हैं ॥४९॥ पहले जो कुछ मैंने क्लेश विनाशक केशव में देखा है उन सारी बातों को हे पुत्र! तुमको स्नेह पूर्वक बतलाता हूँ ॥५०॥ हे विष्णो! आप कहाँ रहते हैं? आपका आधार और आश्रय क्या है? आप कैसे प्रसन्न होते हैं उन सारी बातों को मुझे बतलायें ॥५१॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा**— हे शम्भो! मैं सदा शालग्राम शिला में निवास करता हूँ। चक्राङ्कित शालग्राम शिला में जो मेरे नाम हैं उसे आप सुनें ॥५२॥ जिस शिला के द्वार देश में सटे हुए दो चक्र दिखते हैं उस शिला का नाम वासुदेव जानना चाहिए। वह शिला श्वेत और अत्यन्त सुन्दर होती है ॥५३॥ जिसका मुख सूर्य की कान्ति के समान है उसे प्रदयुम्न कहते हैं। उसकी

अनिरुद्धस्तु पीताभो वर्त्तुलश्चातिशोभनः। रेखात्रयाङ्कितो द्वारि दृष्टपद्मेन चिह्नवत् ॥५५॥
श्यामो नारायणो देवो नाभिचक्रे तथोन्नते। दीर्घरेखा समोपेतो दक्षिणे सुषिरान्वितः ॥५६॥
ऊर्ध्वं मुखं च जानीयात्सुन्दरं हरिरूपिणम्। कामदं मोक्षदं चैव अर्थदं च विशेषतः ॥५७॥
परमेष्ठी च शुक्लाभःपद्मचक्रसमन्वितः। बिम्बाकृतिस्तथा पृष्ठे सुषिरं चातिपुष्कलम् ॥५८॥
कृष्णवर्णस्तथा विष्णुर्मूलेचक्रे सुशोभने। द्वारोपरि तथा रेखा लक्ष्यते मध्यदेशतः ॥५९॥
कपिलो नरिसिंहश्च पृथुचक्रःसुशोभितः। ब्रह्मचर्येण पूज्योऽसावन्यथा विघ्नदो भवेत् ॥६०॥
वाराहःशक्तिलिङ्गस्तु चक्रे च विषमे स्मृते। इन्द्रनीलनिभःस्थूलस्त्रिरेखो नाभितःशुभः ॥६१॥
दीर्घा काञ्चनवर्णा या विन्दुयत्रविभूषिता। मत्स्याख्या सा शिला ज्ञेया भुक्तिमुक्तिफलप्रदा॥६२॥
कूर्मस्तथोन्नतःपृष्ठे वर्तुलश्चक्रपूरितः। हरितं वर्णमाधत्ते कौस्तुभेन तु चिह्नतः ॥६३॥
हयग्रीवो हयाकारो रेखापञ्चकभूषितः। बहुबिन्दुसमाकीर्णःपृष्ठे नीलं च रूपकम् ॥६४॥
वैकुण्ठमविभिन्नाङ्गं चक्रमेकं तथा ध्वजम्। द्वारोपरि तथा रेखा गुञ्जाकारा सुशोभना ॥६५॥
श्रीधरस्तु तथा देवश्चिह्नितो वनमालया। कदम्बकुसुमाकारो रेखापञ्चकभूषितः ॥६६॥
चर्तुलश्चापि ह्रस्वश्च वामनःपरिकीर्तितः। अतसीकुसुमप्रख्यो बिन्दुना परिशोभितः ॥६७॥
सुदर्शनस्ततो देवःश्यामवर्णो महाद्युतिः। वामापार्श्वे गदाचक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे॥६८॥

कान्ति नीली होती है। उसमें बहुत छिद्र होता है। उसका आकार बड़ा होता है ॥५४॥ अनिरुद्ध नाम की शिला पीली होती है। वह गोल और अत्यन्त सुन्दर होती है। उसके द्वार पर तीन रेखायें होती हैं और वह कमल मे समान दिखता है ॥५५॥ भगवान् नारायण श्याम वर्ण के होते हैं उनकी नाभि का चक्र उठा रहता है। वे लम्बी रेखा से युक्त और उनके दाहिने भाग में छिद्र होता है। श्रीहरि भगवान् का मुख ऊपर और सुन्दर होता है। वे विशेष रूप से कामनाओं को पूर्ण करने वाले मोक्ष और अर्थ देने वाले हैं ॥५६-५७॥ परमेष्ठी भगवान् उजली कान्ति वाले और पद्मचक्र से युक्त होते हैं उनका पृष्ठ बिम्बाकार होता है और छिद्र अत्यन्त पुष्कल होता है ॥५८॥ जिनके मूल मे सुन्दर दो चक्र होते हैं ऐसे कृष्णवर्ण के भगवान् विष्णु होते हैं। उनके द्वार पर मध्य भाग से रेखा निकली रहती है ॥५९॥ भगवान् नृसिंह कपिल वर्ण के होते हैं उनका चक्र बड़ा होता है। उनकी पूजा ब्रह्मचर्य पूर्वक करनी चाहिए नहीं तो वे विघ्न करते हैं ॥६०॥ वाराह भगवान् शक्ति लिङ्गक होते हैं उनके दोनों चक्र विषम होते हैं। इन्द्र नीलमणि के समान उनकी नाभि से ही मोटी रेखा निकली रहती है ॥६१॥ जो शिला सुवर्ण वर्ण की होती है और उसमें तीन विन्दु होते हैं उसका नाम मत्स्य नाम की होती है और वह भोग तथा मोक्ष दोनों को प्रदान करती है ॥६२॥ कूर्म शिला का पीठ उठा हुआ और गोल होता है वह चक्र से युक्त होते हैं। उनका वर्ण हरा होता है तथा वे कौस्तुभ मणि से सुशोभित होते हैं ॥६३॥ हयग्रीव भगवान् अश्व के आकार के होते हैं। वे पाँच रेखाओं से अलंकृत होते हैं। उनके पीठ पर बहुत सी विन्दुएँ होती हैं उनका रूप नीला होता है ॥६४॥ वैकुण्ठ भगवान् के अङ्ग अलग नहीं होते है। उनमें एक चक्र और ध्वज होता है। द्वार पर भुजा के समान सुन्दर रेखा होती है ॥६५॥ भगवान् श्रीधर वनमाला से सुशोभित होते हैं ॥६६॥ वामन भगवान् को गोल तथा छोटा बतलाया गया है। वे अतसी पुष्प के समान और एक विन्दु से सुशोभित रहते हैं ॥६७॥ सुदर्शन भगवान् महान् कान्ति युक्त और श्याम वर्ण के होते हैं। उनके वाम

दामोदरस्तथा स्थूलो मध्ये चक्रं प्रतिष्ठितम् ।
दूर्वाभं द्वारसंकीर्णं पीतरेखं तथैव च ॥६९॥
नानावर्णो ह्यनन्तस्तु नानाभोगेन चिह्नितः । अनेकमूर्तिको भिन्नः सर्वकामफलप्रदः ॥७०॥
विदिक्षु दिक्षु सर्वासु यस्योर्ध्वं दृश्यते मुखम् ।
पुरुषोत्तमः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥७१॥
दृश्यते शिखरे लिङ्गं शालग्रामशिलोद्भवम् । यस्य योगेश्वरो देवो ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥७२॥
आरक्तःपद्मनाभस्तु पङ्कजं वक्त्रसंयुतम् । तयाभ्यर्चनतो नित्यं दरिद्रस्त्वीश्वरो भवेत् ॥७३॥
चक्राङ्कितं हिरण्याङ्गं रश्मिजालं विनिर्दिशेत् ।
सुवर्णरेखाबहुलं स्फटिकद्युतिशोभितम् ॥७४॥
अतिस्निग्धा सिद्धिकरी कृष्णा कीर्तिं ददाति च ।
पाण्डुरा पापदहनी पीता पुत्रफलप्रदा ॥७५॥
नीला प्रयच्छती लक्ष्मीं रक्ता रोगप्रदायिनी । रूक्षा उद्वेगजननी वक्रा दारिद्रयभागिनी ॥७६॥
एकं सुदर्शनं ज्ञेयं लक्ष्मीनारायणं द्वयम् । तृतीयं चाच्युतं विद्याच्चतुर्थं तु जनार्दनम् ॥७७॥
पञ्चमं वासुदेवं च षष्ठं प्रद्युम्नमेव च । सङ्कर्षणं सप्तमं च अष्टमं पुरुषोत्तमम् ॥७८॥
नवमं च नवव्यूहं दशमं तु तदात्मकम् । एकादशं चानिरुद्धं द्वादशं द्वादशात्मकम् ॥७९॥
अतऊर्ध्वं तु चक्राणि दृश्यन्तेऽनन्तसंज्ञके । खण्डिते त्रुटिते भग्ने शालग्रामे न दोषभाक् ॥८०॥
इष्टा च यस्य या मूर्तिः स तां यत्नेन पूजयेत् ।
स्कन्धे कृत्वा तु योऽध्वानं वहते शैलनायकम् ॥८१॥

भाग में गदा और चक्र के चिह्न होते हैं और दाहिने भाग में एक रेखा होती है ॥६८॥ दामोदर भगवान् स्थूल होते हैं उनके बीच में चक्र होता है । दूर्वा के समान कान्ति वाले उनका द्वार सङ्कीर्ण होता है और उनकी पीली रेखा होती है ॥६९॥ अनन्त भगवान् अनेक वर्ण के तथा अनन्त भोग से युक्त होते हैं । उनकी अनेक प्रकार की मूर्तियाँ होती हैं । वे सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले होतें हैं ॥७०॥ भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले जिनका सभी दिशाओं में ऊपर की ओर मुख रहता है उनको पुरुषोत्तम भगवान् जानना चाहिए ॥७१॥ योगेश्वर भगवान् के ऊपर लिङ्ग दिखता है । वे ब्रह्महत्या को दूर करने वाले होते हैं ॥७२॥ रक्त वर्ण के पद्मनाभ भगवान् का मुख कमल के समान होता है । उनकी पूजा करने से धनी भी दरिद्र हो जाता है ॥७३॥ चक्राङ्कित सुवर्ण के समान कान्ति वाले और राशि समूह से युक्त भगवान् सुवर्ण के समान अनेक रेखाओं वाले तथा स्फटिक कान्ति से युक्त हिरण्याङ्ग भगवान् को जाने ॥७४॥ अत्यन्त चिकनी तथा काली मूर्ति सिद्धि देने वाली होती है । पाडुरवर्ण की मूर्ति पापों को भस्म करती है, पीली मूर्ति पुत्र प्रदान करती है ॥७५॥ नीली मूर्ति लक्ष्मी प्रदान करती है, लाल मूर्ति रोगी बनाती है । रूक्षमूर्ति उद्विग्न करती है । टेढ़ी मूर्ति दारिद्र्य प्रदान करती है ॥७६॥ एक चक्र वाले भगवान् सुदर्शन कहलाते हैं । दो चक्रों वाले को लक्ष्मी नारायण जानना चाहिए । तीन चक्र वाले अच्युत भगवान् होते हैं । चार चक्रों वाले भगवान् जनार्दन होते हैं ॥७७-७८॥ वासुदेव भगवान् में पाँच चक्र होते हैं । प्रद्युम्न में छह चक्र होते हैं। सङ्कर्षण भगवान् में सात चक्र होते हैं, आठ चक्र वाले, नव चक्र वाले भगवान् नव व्यूह स्वरूप हैं । दश चक्र वाले भगवान् शालग्राम हैं । एकादश चक्र वाले अनिरुद्ध हैं और बारह चक्र वाले द्वादशात्मक हैं ॥७९॥ इससे अधिक चक्र अनन्त भगवान् में होते हैं । शालग्राम के खण्डित हो जाने पर, टूट जाने पर या भग्न हो जाने पर भी उनकी पूजा करने में कोई दोष नहीं है ॥८०॥ जिसको भगवान् की जो मूर्ति

तस्य वश्यं भवेत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्। शालग्रामशिला यत्र तत्र संनिहितो हरिः ॥८२॥
तत्र दानं जपःस्नानं वाराणस्याःशताधिकम् ।
कुरुक्षेत्रे प्रयागे च नैमिषे पुष्करे तथा ॥८३॥
तत्र कोटिगुणं पुण्यं वाराणस्यां महाफलम् ।
ब्रह्महत्यादिकं पापं यत्किंचित्कुरुते नरः ॥८४॥
तत्सर्वं निर्दहत्याशु शालग्रामशिलार्चनम्। शालग्रामोद्भवो देवो यत्र द्वारावती भवः ॥८५॥
उभयोःसङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः । ब्रह्मचारिगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः ॥८६॥
भोक्तयं विष्णुनैवेद्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ।
तत्पूजने न मन्त्राश्च न जपो न च भावना ॥८७॥
न स्तुतिर्नापि चाचारःशालग्रामशिलार्चने । शालग्रामशिलाग्रे तु कृत्वा स्वस्तिकमादरात् ॥८८॥
कार्त्तिके तु विशेषेण पुनात्यासप्तमंकुलम् । अणुमात्रं तु यःकुर्यान्मण्डलं केशवाग्रतः ॥८९॥
मृदाधातुविकारैश्च कल्पकोटिं वसेद्दिवि । ये तु संवत्सरं पूर्णमग्निहोत्रमुपासते ॥९०॥
कार्त्तिके स्वस्तिकं कृत्वा सममेतन्न संशयः ।
अगम्यागमने चैव ह्यभक्ष्यस्य तु भक्षणे ॥९१॥
तत्पापं नाशमायाति मण्डयित्वा हरेर्गृहम् । मण्डलं कुरुते नित्यं या नारी केशवाग्रतः ॥
सप्तजन्मानि वैधव्यं न प्राप्नोति कदाचन ॥९२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां उत्तरे खण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे शालग्राममाहात्म्यं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

इष्ट हो वह उसी की पूजा करे । जो शालग्राम भगवान् को कन्धे पर रखकर ढोता है ॥८१॥ उसके वश में त्रैलोक्य हो जाता है । जहाँ शालग्राम शिला रहती है वहाँ श्रीभगवान् का निवास होता है ॥८२॥ वहाँ पर जप, ध्यान तथा होम करना वाराणसी के सौ गुना फल देता है । इसी तरह कुरुक्षेत्र, प्रयाग तथा पुष्कर से भी सौ गुना अधिक फलद होता है ॥८३॥ वाराणसी में शालग्राम का पूजन करोड़ गुना अधिक होता है । मनुष्य ब्रह्महत्या आदि जो पाप करता है, उन सभी पापों को शालग्राम शिला का पूजन शीघ्र भस्म कर देता है । जहाँ पर शालग्राम शिला और गोमती चक्र दोनों रहते हैं वहाँ पर मुक्ति होने में किसी प्रकार का संशय नहीं है । ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी तथा संन्यासी सबों को बिना विचार किए ही भगवान् विष्णु का प्रसाद खाना चाहिए । शालग्राम शिला के पूजन में मन्त्र, जप, भावना, स्तुति आचार इन सबों की कोई आवश्यकता नहीं है । शालग्राम शिला के समक्ष प्रेम पूर्वक स्वस्तिक बनाये ॥८४-८८॥ विशेष रूप से कार्तिक के महीने में शालग्राम शिला का पूजन सात पीढी के पूर्वजों को पवित्र बना देता है । जो भगवान् केशव के समक्ष अणुमात्र भी मण्डल बनाता है ॥८९॥ चाहे मिट्टी या धातु का बनाये तो वह करोड़ कल्पों तक द्युलोक में निवास करता है । जो पूरे वर्ष तक अग्निहोत्र करता है ॥९०॥ और जो शालग्राम भगवान् के समक्ष स्वस्तिक बनाता है उन दोनों का फल एक समान होता है । अगम्यागमन तथा अभक्ष्य भक्षण करने से जो पाप होता है उस पाप को श्रीहरि के मन्दिर के अलंकृत करने से नष्ट हो जाता है । जो नारी भगवान् केशव के समक्ष मण्डल बनाती है वह सात जन्मों तक कभी विधवा नहीं होती है ॥९१-९२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद का शालग्राम माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२०।।

एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

धात्रीच्छायां समाश्रित्य कुर्यात्पिण्डं तु यो गुह ।
मुक्तिं प्रयान्ति पितरःप्रसादान्माधवस्य तु ॥१॥
मूर्ध्नि पाणौ मुखे चैव देहे चैव तु यो नरः ।
धत्ते धात्रीफलं वत्स धात्रीफलविभूषितः ॥२॥
धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत्। यःकश्चिद्वैष्णवोलोके धत्ते धात्रीफलं गुह ॥३॥
प्रियो भवति देवानां मनुष्याणां च का कथा ।
न जह्यात्तुलसीमालां धात्रीमालां विशेषतः ॥४॥
यावत्तिष्ठति कण्ठस्था धात्रीमाला नरस्य हि ।
तावत्तस्य शरीरे तु प्रतिष्ठति च केशवः ॥५॥
धात्रीफलं तु तुलसी मृत्तिका द्वारकोद्भवा। सफलं जीवितं तस्य त्रितयं यस्य वेश्मनि ॥६॥
यावद्दिनानि वहते धात्रीमालां कलौ नरः। तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत्॥७॥
मालायुग्मं वहेद्यस्तु धात्रीतुलसिसंभवम्। वहते कण्ठदेशे तु कल्पकोटिं वसेद्दिवि ॥८॥
संनियम्येद्रियग्रामं शालग्रामशिलार्चनम्। यःकुर्यान्मानवो भक्तया पुष्पे पुष्पेऽश्वमेधजम्॥९॥
सुराणां च यथा विष्णुःपुष्पाणां तुलसी तथा ।
तुलस्याऽनुदिनं देवं योऽर्चयेद्गरुडध्वजम् ॥१०॥
जन्मदुःखजरारोगैर्मुक्तोऽसौमुक्तिमाप्नुयात् । तुलसीमालया विष्णुःपूजितो येन कार्तिके ॥११॥

दीप, गन्ध, और आँवले का माहात्म्य

ईश्वर ने कहा— हे गुह ! जो आँवला वृक्ष की छाया में पिण्डदान करता है, उसके पितृगण भगवान् की कृपा से मुक्त हो जाते हैं ॥१॥ हे वत्स ! जो मनुष्य शिर, हाथ, मुख, शरीर में आँवले के फल को धारण करता है, वह आँवले से विभूषित मनुष्य, यदि आँवले के फल का आहार करता है तो वह नर से नारायण हो जाता है । हे कार्तिकेय ! जो कोई वैष्णव मनुष्य धात्री फल को धारण करता है वह देवताओं का भी प्रिय हो जाता है । मनुष्यों की कौन सी बात है कभी भी अपने गले से तुलसी की माला और आँवले की माला को नहीं उतारना चाहिए ॥२-४॥ मनुष्य के गले में जब तक आँवले की माला रहती है तब तक उसके शरीर में भगवान् केशव का निवास होता है ॥५॥ जिसके घर में आँवले का फल, तुलसी और द्वारका की मिट्टी ये तीनों रहते है उसका जीवन सफल है ॥६॥ कलियुग में मनुष्य जितने दिन तक माला धारण किए रहता है उतने हजार युग तक वह वैकुण्ठ में निवास करता है ॥७॥ जो आँवले और तुलसी दोनों की माला को गले में धारण करता है वह करोड़ों कल्प तक द्युलोक में निवास करता है ॥८॥ अपनी इन्द्रियों को वश में करके जो मनुष्य शालग्राम शिला की अर्चना करता है उसके प्रत्येक पुष्प में अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त होता है ॥९॥ जैसे देवताओं में विष्णु हैं उसी तरह पुष्पों में तुलसी पुष्प श्रेष्ठ है । जो व्यक्ति प्रतिदिन तुलसी से श्रीभगवान् की अर्चना करता है ॥१०॥

यमाक्षरकृतां मालां स्फुटं शौरि प्रमार्ष्टि हि ।
श्रीचन्दनं सकर्पूरमगुरुं च सकुङ्कुमम् ॥१२॥
केतकीदीपदानं च सर्वदा केशवप्रियम् । कार्त्तिके केतकीपुष्पं दत्तं येन कलौ युगे ॥१३॥
दीपदानं महासेन कुलानां तारयेच्छतम् । सरोरुहाणि तुलसी केतकी मुनिपुष्पकम् ॥१४॥
कार्त्तिके च दिनान्येव दीपदानं तु पञ्चमम् । केतकीमालया येन कार्त्तिकेपुष्पमण्डपम् ॥१५॥
केशवस्य कृतं वत्स वसतिर्दिवि तस्य च । केतकीपुष्पकेनैव पूजितो गरुडध्वजः ॥१६॥
समाःसहस्रं सुप्रीतो जायते मधुसूदनः । अर्चयित्वा हृषीकेशं कुसुमैःकेतकीभवैः ॥१७॥
पुण्यं तद्भवनंयाति केशवस्य शिवं गुह । दमनकेनापि देवेशं संप्राप्ते मधुमाधवे ॥१८॥
गोशतस्य मुनिश्रेष्ठ ह्यर्चनाल्लभते फलम् । अगस्तिकुसुमैर्देवं योऽर्चयेत जनार्दनम् ॥१९॥
दर्शनात्तस्य भो विप्र नरकाग्निःप्रणश्यति । न तत्करोति विप्रर्षे तपसा तोषितो हरिः ॥२०॥
यत्करोति महासेन मुनिपुष्पैरलङ्कृतः । विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम् ॥२१॥
कार्त्तिके योऽर्चयेद्भक्तया वाजिमेधफलं लभेत् ।
मुनिपुष्पकृतां मालां यो ददाति जनार्दने ॥२२॥
देवेन्द्रोऽपि मुनिश्रेष्ठ कुरुते तस्य सत्कथाम् ।
गवामयुतदानेन यत्फलं प्राप्यते गुह ॥२३॥
मुनिपुष्पेण चैकेन कार्तिके लभते फलम् । कौस्तुभेन यथा प्रीतो यथा च वनमालया॥
तुलसीदलेन संप्रीतःकार्त्तिके च तथा हरिः ॥२४॥

वह जन्म, दुःख वार्द्धक्य और रोगों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है । कार्तिक में जो मनुष्य तुलसी की माला से भगवान् विष्णु की पूजा करता है ॥११॥ उसके शिर की यम की लिपि का भगवान् अवश्य मिटा देते हैं । कर्पूर के साथ श्रीचन्दन और कुङ्कुम के साथ अगरु, केवड़ा और दीपदान ये सब भगवान् को सदा प्रिय है । जो कलियुग में भगवान् केशव को केतकी का फल चढ़ाता है ॥१२-१३॥ हे महासेन! दीपदान सौ पीढ़ी के पूर्वजों को तार देता है । कमल, तुलसी, केतकी तथा अगस्त्य का पुष्प और कार्तिक में तीस दिनों तक दीपदान ये सब सौ पीढ़ी का उद्धार करने वाले हैं । हे वत्स ! जो केतकी की माला से भगवान् के मण्डल को सजाता है उसका निवास द्युलोक में होता है । केतकी के पुष्प से गरुडध्वज पूजित होकर ॥१४-१६॥ उससे एक हजार वर्ष तक भगवान् मधुसूदन प्रसन्न रहते हैं । केतकी के पुष्प से भगवान् हृषीकेश की पूजा करने वाला मनुष्य भगवान् केशव के कल्याणकारी लोक में जाता है । चैत्र और वैशाख के महीने में दमनक (दावना) से भी श्रीभगवान् की पूजा करने वाला सौ गौओं के दान का फल प्राप्त करता है । जो अगस्त के पुष्प से भगवान् की पूजा करता है हे विप्र ! उसका दर्शन कर लेने से नरक का भय समाप्त हो जाता है । श्रीहरि अगस्त्य पुष्प से अलंकृत होकर जितना प्रसन्न होते हैं उतना वे तपस्या करने से नहीं सन्तुष्ट होते हैं जो सभी पुष्पों को छोड़कर अगस्त्य पुष्प से भगवान् केशव की ॥१७-२१॥ भक्ति पूर्वक पूजा करता है वह अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है । जो अगस्त पुष्प की माला भगवान् पर चढ़ाता है ॥२२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उसकी चर्चा इन्द्र भी करते हैं । हे कार्तिकेय दश हजार गायों का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है॥२३॥ उस फल की प्राप्ति कार्तिक में अगस्तय

सूत उवाच

प्रश्रयावनतं दृष्ट्वा कुमारं भक्तितत्परम्। पुनःप्रोवाच भगवान्महादेवो वृषध्वजः ॥२५॥

ईश्वर उवाच

शृणु दीपस्य माहात्म्यं कार्त्तिके शिखिवाहन ! ।
पितरश्चैव वाञ्छन्ति सदा पितृगणैर्वृताः ॥२६॥

भविष्यति कुलेऽस्माकं पितृभक्तःसुपुत्रकः। कार्त्तिके दीपदानेन यस्तोषयति केशवम् ॥२७॥
घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः । ज्वलते यस्य सेनानीरश्वमेधेन तस्य किम् ॥२८॥
तेनेष्टं क्रतुभिःसर्वैःकृतं तीर्थावगाहनम्। दीपदानं कृतं येन कार्त्तिके केशवाग्रतः ॥२९॥
कृष्णपक्षे विशेषेण पुत्र पञ्चदिनानि च। पुण्यानि तेषु यो दत्ते दीपं सोऽक्षयमाप्नुयात् ॥३०॥
एकादश्यां परैर्दत्तं दीपं प्रज्वाल्य मूषिका। मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य परां गतिमवाप सा ॥३१॥
लुब्धकोऽपि चतुर्दश्यां पूजयित्वा महेश्वरम्। निर्भक्षःपरमं प्राप्य विष्णुलोकं जगामसः॥३२॥

श्वपाकी स्वाश्रयाद्वेश्या दीपं कृत्वा परैःकृतम् ।
शुद्धा लीलावती भूत्वा जगाम स्वर्गमक्षयम् ॥३३॥
गोपःकश्चिदमायां तु पूजा दृष्ट्वा तु शार्ङ्गिणः ।
मुहुर्मुहुर्जयेत्युत्तवाराजराजेश्वरोऽभवत् ॥३४॥

तस्माद्दीपाःप्रदातव्या रात्रावस्तमिते रवौ। गृहेषु सर्वगोष्ठेषु सर्वेष्वायतनेषु च ॥३५॥
देवालयेषु देवानां श्मशानेषु सरस्सु च। घृतादिना शुभार्थाय यावत्पञ्चदिनानि च॥३६॥

में एक फूल से हो जाती है । जिस तरह श्रीहरि कौस्तुभमणि और वनमाला से प्रसन्न होते हैं उसी तरह से भगवान् कार्तिक में तुलसी की माला से प्रसन्न होते हैं ॥२४॥ **सूतजी ने कहा—** भक्ति परायण कार्तिकेय को प्रणत देखकर महादेव भगवान् वृषध्वज पुनः कहने लगे ॥२५॥ **ईश्वर ने कहा—** हे मयूर वाहन ! आप दीप दान का माहात्म्य सुनें । पितृगणों के साथ पितर चाहते हैं कि हमारे वंश में कोई पितृभक्ति सम्पन्न सुपुत्र हो जो कार्तिक में दीपदान के द्वारा भगवान् केशव को प्रसन्न करे ॥२६-२७॥ हे सेनानी जो घी का या तिल के तेल का दीपक भगवान् के मन्दिर में जलाता है उसको अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त होता है॥२८॥ जो भगवान् केशव के समक्ष दीपदान करता है उसको सभी यज्ञों और सभी तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है ॥२९॥ हे कार्तिकेय कार्तिक के कृष्ण पक्ष के अन्त में पाँच दिन पवित्र होते हैं । उन दिनों में दीप दान करने वाला अक्षय फल को प्राप्त करता है ॥३०॥ एकादशी तिथि को दूसरे के द्वारा किए गये दीप को प्रज्ज्वलित करके चूहिया ने दुर्लभ मनुष्य शरीर प्राप्त कर परमगति को प्राप्त कर लिया ॥३१॥ चतुर्दशी के दिन लुब्धक (बहेलिया) भगवान् महेश्वर की पूजा करके भूखे रहकर भगवान् विष्णु के लोक में चला गया ॥३२॥ चाण्डाली वेश्या दूसरे के द्वारा जलाये गये दीप को प्रज्ज्वलित कर शुद्ध हो गयी और लीलावती होकर वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त कर ली ॥३३॥ कोई गोप आमावस्या के दिन भगवान् विष्णु की पूजा का दर्शन करके बार-बार भगवान् का जयकार करके राज राजेश्वर हो गया ॥३४॥ इसीलिए सूर्यास्त हो जाने पर रात्रि में दीप घरों में, सभी गोशलाों में सभी मन्दिरों में श्मशानों पर तथा सरोवरों पर

पापिन:पितरो ये च लुप्तपिण्डोदकक्रिया:। तेऽपियान्तिपरां मुक्तिं दीपदानस्य पुण्यत: ॥३७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये दीपगन्धधात्रीमाहात्म्यवर्णनं नाम एकविंशत्यधिकशततमोऽध्याय: ॥१२१॥

एक सौ बाइसवाँ अध्याय

कार्त्तिकेय उवाच

दीपावलिफलं नाथ विशेषाद्ब्रूहि साम्प्रतम्। किमर्थं क्रियते सा तु तस्या:का देवता भवेत् ॥१॥
किं च तत्र भवेद्देयं किं न देयं वद प्रभो। प्रहर्ष:कोऽत्रनिर्दिष्ट:क्रीडा कात्रप्रकीर्तिता॥२॥

सूत उवाच

इति स्कन्दवच:श्रुत्वा भगवान्कामशोषण: । साधूक्त्वा कार्त्तिकं विप्रा:प्रहसन्निदमब्रवीत्॥३॥

श्रीशिव उवाच

कार्त्तिकस्यासितेपक्षे त्रयोदश्यां तु पावके। यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति ॥४॥
मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्यया सह । त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यज:प्रीयतामिति ॥५॥
कार्त्तिके कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यां विधूदये। अवश्यमेव कर्त्तव्यं स्नानं च पापभीरुभि: ॥६॥
पूर्वविद्धा चतुर्दश्या:कार्त्तिकस्यसितेतरे। पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यादतन्द्रित: ॥७॥

कल्याण प्राप्ति के लिए पाँच दिनों तक घी इत्यादि का दीपक जलाना चाहिए ॥३५-३६॥ जो पापी के पितर होते हैं वे भी दीप दान जन्य पुण्य से मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥३७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत दीप, चन्दन और आँवले का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२१।।

दीपावली का माहात्म्य वर्णन

कार्तिकेय ने कहा— हे नाथ ! इस समय आप विशेष रूप से दीपावली का माहात्म्य बतलायें दीपावली क्यों मनानी चाहिए और उसकी देवता कौन हैं ?॥१॥ उस समय क्या देना चाहिए और क्या नहीं देना चाहिए । इसमें कौन सी प्रसन्नता होती है और कौन सी क्रीड़ा की जाती है ॥२॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से स्कन्द की वाणी को सुनकर कामदेव को भस्म करने वाले भगवान् शङ्कर कार्तिक महात्म्य को अच्छी तरह से कहकर ब्राह्मणों से जोर से हँसकर कहे ॥३॥ **शिवजी ने कहा—** हे कार्तिकेय! कार्तिक के कृष्ण पक्ष में घर से बाहर यम दीप देना चाहिए उससे मृत्यु का भय नहीं रहता है ॥४॥ पाश हाथ में लिए मृत्यु तथा काल से युक्त अपनी पत्नी के साथ त्रयोदशी तिथि को दीप दान करने से यमराज प्रसन्न हों ॥५॥ कार्तिक के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी के दिन चन्द्रोदय हो जाने पर पाप से डरने वालों को

तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपावल्यां चतुर्दशीम् ।
प्राप्तःस्नानं हि यःकुर्याद्यमलोकं न पश्यति ॥८॥
अपामार्गस्तथा तुम्बी प्रपुन्नाटं च वाह्वलम् । भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै॥९॥
सीतालोष्टसमायुक्त सकण्टकदलान्वित । हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणःपुनःपुनः ॥१०॥
अपामार्गं प्रपुन्नाटं भ्रामयेच्छिरसोपरि। ततश्च तर्पणं कार्यं यमराजस्य नामभिः॥११॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥१२॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः॥१३॥
नरकाय प्रदातव्यो दीपःसंपूज्य देवताः । ततःप्रदोषसमये दीपान्दद्यान्मनोहरान् ॥१४॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु विशेषतः । कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च॥१५॥
प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च। मन्दुरासु विकिक्तासु हस्तिशालासु चैव हि ॥१६॥
एवं प्रभातसमये ह्यमावास्यां तु पावके । स्नात्वा देवान्पितॄन्भत्तया संपूज्याऽथ प्रणम्य च॥१७॥
कृत्वा तु पार्वणं श्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ।
भोज्यैर्नानाविधैर्विप्रान्भोजयित्वा क्षमापयेत् ॥१८॥
ततोऽपराह्णसमये पोषयेन्नागरान्प्रिय । तेषां गोष्ठीं च मानं च कृत्वा सभाषणं नृपः॥१९॥
वक्तृणां वत्सरं यावतप्रीतिरुत्पद्यते गुह । अप्रबद्धे हरो पर्वं स्त्रीभिर्लक्ष्मीःप्रबोधयेत्॥२०॥

अवश्य स्नान करना चाहिए ॥६॥ कार्तिक कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के पूर्व विद्धा होने पर प्रातःकाल में बिना आलस के स्नान कर लेना चाहिए ॥७॥ तेल में लक्ष्मी, जल में गङ्गा तथा दीपावली के दिन चतुर्दश के प्राप्त होने पर जो प्रातःस्नान करता है वह यमलोक में नहीं जाता है ॥८॥ अपामार्ग (चिचिड़ी) गोल लौकी, प्रपुन्नाट तथा बाह्वल को नरक का नाश करने के लिए जल में घुमाना चाहिए ॥९॥ फिर कहे हे सीतरलोष्ठ से युक्त एवं कण्टक समूह से युक्त अपामार्ग बार-बार घुमाये जाते हुए तुम मेरे पाप को दूर करो ॥१०॥ अपामार्ग और प्रपुन्नाट को अपने शिर पर घुमाये उसके बाद यमराज के नामों से उनका तपर्ण करें ॥११॥ तर्पण करते समय कहे **१. यमाय नमः, २. धर्मराजाय नमः, ३. मृत्यवे नमः, ४. अन्तकाय नमः, ५. कालाय नमः, ६. वैवस्वताय नमः, ७. सर्वभूतक्षयाय नमः, ८. औदुम्ब्बराय नमः, ९. दध्नाय नमः, १०. नीलाय नमः, ११. परमेष्ठिने नमः, १२. वृकोदराय नमः, १३. चित्राय नमः, १४. चित्रगुप्ताय नमः । देवताओं की पूजा करके नरक को दीप दान देना चाहिए । मनोहर दीपों को प्रदोष की बेला में देना चाहिए ।।१२-१४।।** ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि को विशेष रूप से अपने भवन में दीप देना चाहिए । कूटागार, चत्वर, सभा स्थल, नदी, चाहार दिवारी, उद्यान, बावली, प्रतोली की छज्जा, अश्वशाला, तथा हस्तीशाला में भी दीप जलाये ॥१५-१६॥ हे कार्तिकेय! आमावस्या को प्रातःकाल स्नान करके देवताओं तथा पितरों की पूजा करके और प्रणाम करके ॥१७॥ पार्वण श्राद्ध दधि, धृत, क्षीर से करके अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों से ब्राह्मणों को भोजन कराये और क्षमा प्रार्थना करें ॥१८॥ उसके पश्चात् अपराहण में अपने प्रिय नागरिकों का पोषण करे । उनकी गोष्ठी सम्मान तथा भाषण करने से राजा वक्ताओं के लिए वर्ष भर तक प्रीति का पात्र हो जाता है । श्रीहरि के प्रबोधन से स्त्रियों के द्वारा लक्ष्मीजी का प्रबोधन करायें । जगने के समय लक्ष्मीजी को अच्छी स्त्री के द्वारा

प्रबोधसमये लक्ष्मीं बोधियित्वा तु सुस्त्रियाः ।
पुमान्वै वत्सरं यावल्लक्ष्मीस्तं नैव मुञ्चति ॥२१॥
अभयंप्राप्य विप्रेभ्यो विष्णुभीताःसुरद्विषः। सुप्तं क्षीरोदधौ ज्ञात्वा लक्ष्मीं पद्माश्रितां तथा॥२२॥
त्वं ज्योतिःश्रीरविश्चन्द्रो विद्युत्सौवर्णतारकः ।
सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपज्योतिःस्थिता तु या ॥२३॥
या लक्ष्मीर्दिवसे पुण्ये दीपावल्यां च भूतले ।
गवां गोष्ठे तु कार्त्तिक्यां सा लक्ष्मीर्वरदा मम ॥२४॥
शङ्करश्च भवानी च क्रीडयाद्यूतमास्थितौ। भवान्याभ्यर्चितालक्ष्मीर्धेनुरूपेण संस्थिता ॥२५॥
गौर्या जित्वा पुराशम्भुर्नग्नो द्युते विसर्जितः ।
अतोऽयं शङ्करो दुःखी गौरी नित्यं सुखे स्थिता ॥२६॥
प्रथमं विजयो यस्यास्तस्य संवत्सरं सुखम्। एवं गते निशीये तु जने निद्रार्धलोचने ॥२७॥
तावन्नगरनारीभिस्तूर्यडिण्डिमवादनैः । निष्क्रास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीश्च गृहाङ्गणात् ॥२८॥
पराजये विरुद्धं स्यात्प्रतिपद्युदिते रवौ । प्रातर्गोवर्धनःपूज्यो द्यूतं रात्रौ समाचरेत् ॥२९॥
भूषणीयास्तथा गावो वर्ज्यावहनदोहनात् । गोवर्धनधराधार गोकुल त्राणकारक ॥३०॥
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव। या लक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता॥३१॥
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु। अग्रतःसन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः॥
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥३२॥

जगाने वाले पुरुष को एक वर्ष तक लक्ष्मीजी नहीं त्यागती हैं ॥१९-२१॥ ब्राह्मणों से अभयत्व प्राप्त करे दैत्य विष्णु से भयभीत दैत्य तथा क्षीरोदधि में लक्ष्मजी और विष्णु को सोए हुए जानकर प्रार्थना किए॥२२॥ आप ही ज्योति स्वरूप, लक्ष्मी, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् तथा स्वर्णिम तारे हैं । सभी ज्योतियों के ज्योति रूप में स्थित है । जो लक्ष्मी पवित्र दिन में तथा दीपावली में, पृथिवी पर, गोशाले में तथा पूर्णिमा में स्थित हैं, वे मुझको वरदान दें ॥२३-२४॥ क्रीड़ा करते हुए शङ्करजी तथा पार्वतीजी द्यूतक्रीड़ा करने लगे । पार्वतीजी के द्वारा पूजित लक्ष्मीजी धेनु स्वरूप हो गयीं ॥२५॥ प्राचीन काल में द्यूतक्रीड़ा में जीतकर पार्वतीजी ने शिवजी को नङ्गा छोड़ दिया इसीलिए शङ्करजी दुःखी और पार्वती सुखी रहती हैं ॥२६॥ जो सर्वप्रथम विजय प्राप्त करता है वह संवत्सर पर्यन्त सुखी रहता है । इस तरह आधी रात बीत जाने पर तथा पुरुषों के सोने लगने पर नारियाँ तूरी डिण्डिम घोष के साथ अपने घर तथा आङ्गन से दरिद्रा का निष्कासन करती हैं ॥२७-२८॥ जो पराजित होता है द्यूत क्रीड़ा में वह वर्ष भर दुःखी रहता है । प्रतिपत् तिथि को प्रातःकाल सूर्योदय होने पर गोवर्धन पूजा करके द्यूतक्रीड़ा करे ॥२९॥ उस दिन गायों को अलंकृत करे और उन्हें न दूहे और न कहीं ले जाय । फिर प्रार्थना करे कि हे पृथिवी को धारण करने वाले गोवर्धन आप गोकुल की रक्षा करने वाले हैं ॥३०॥ भगवान् विष्णु ने आपको उठा लिया था आप हमें करोड़ों गौ प्रदान करें । लोकपालों की जो लक्ष्मी गौ रूप से विद्यमान हैं और यज्ञों के लिए घृत प्रदान करती है वह हमारे पापों को विनष्ट करें ॥३१॥ गायें मेरे आगे-पीछे और मेरे हृदय में निवास करें । मैं गौओं के बीच

इति गोवर्धनपूजा

सद्भावेनैव संतोष्य देवान्सत्पुरुषान्नरान्। इतरेषामन्नपानैर्वाक्यदानेन पण्डितान् ॥३३॥
वस्त्रैस्ताम्बूलदीपैश्च पुष्पकर्पूरकुङ्कुमैः। भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्तःपुरनिवासिनः ॥३४॥
वृषभान्ग्रासदानैश्च सामन्तान्नृपतिर्धनैः। पदाति जनसङ्घांश्च ग्रैवेयःकटकैःशुभैः ॥३५॥

स्वानमात्यांश्च तान्राजा तोषयेत्स्वजनान्पृथक्।
यथाऽथ तोषयित्वा तु ततो मल्लान्नटांस्तथा ॥३६॥

वृषभांश्च महोक्षांश्चयुध्यमानान्परैः सह। राजन्यांश्चापियोधांश्च पदातीन्समलङ्कृतान् ॥३७॥
मञ्चारूढःस्वयं पश्येन्नटनर्तकचारणान्। योधयेद्वासयेच्चैव गोमहिष्यादिकं च यत् ॥३८॥
वत्सानाकर्षयेद्गोभिरुक्तिप्रत्युक्तिवादनात्। ततोऽपराह्नसमये पूर्वस्यां दिशि पावके ॥३९॥
मार्गपालीं प्रबध्नीयाद्दुर्गस्तम्भेऽथ पादपे। कुशकाशमयीं दिव्यां लम्बकैर्बहुभिर्गुह ॥४०॥

वीक्षयित्वा गजानश्वान्मार्गपाल्यास्तले नयेत्।
गावैर्वृषांश्च महिषान्महिषीर्घण्टिकोत्कटाः ॥४१॥

कृतहोमैर्द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम्। नमस्कारं ततःकुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रतः ॥४२॥
मार्गपाले नमस्तुभ्यं सर्वलोक सुखप्रदे। मार्गपालीतले स्कन्द यान्तिगावोमहावृषाः ॥४३॥
राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः। मार्गपाली समुल्लङ्घ्य नीरुजःसुखिनो हि ते ॥४४॥
कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः। पूजां कुर्यात्ततःसाक्षाद्भूमौमण्डलके कृते ॥४५॥

में रहता हूँ ॥३२॥ **इस तरह से गोर्वधन पूजा पूरी हो गयी।** सद्भाव पूर्वक देवताओं तथा सत्पुरुषों को सन्तुष्ट करके दूसरों को अन्न, पान तथा वाक्यों से सन्तुष्ट करके पण्डितों को ॥३३॥ वस्त्र, ताम्बूल, दीप, पुष्प कर्पूर तथा कुङ्कुम से तथा अन्तःपुर में रहने वालों को विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों से सन्तुष्ट करे। वृषभों को घास देकर और सामन्तों को राजा धन प्रदान से सन्तुष्ट करें। पैदल समूह को गले के हार और सुन्दर कङ्कण से सन्तुष्ट करे। राजा अपने मंत्रियों और स्वजनों को सन्तुष्ट करे। उसके बाद पहलवानों और नटों को यथोचित सत्कार से सन्तुष्ट करें ॥३४-३६॥ एक दूसरे से लड़ने वाले बैलों तथा सांडों को राजन्यों को, योद्धाओं को तथा पदातियों को समलंकृत करके ॥३७॥ स्वयं मञ्च पर बैठकर राजा नटों, नर्तकों और चारणों को देखे। वह गौ और महिष तथा गौओं को लड़ाये तथा अलग करे ॥३८॥ उक्ति तथा प्रत्युक्ति के द्वारा बछड़ों को गौओं से बछड़ों को खींचे। उसके पश्चात् हे पावके दोपहर के बाद पूर्व दिशा में किले के स्तम्भ में अथवा वृक्ष में कुश तथा काशमयी दिव्य मार्गपाली को अनेक लताओं से बाँधे ॥३९-४०॥ हाथियों और घोड़ों को देखकर उन सबों को मार्गपाली के नीचे लाये, जिसमें घण्टियाँ लम्बी हों ऐसी मार्गपाली में गायों के साथ बैलों को तथा भैसों को भैसियों के साथ बाँधे ॥४१॥ जिन लागों ने होम कर लिया हो ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणों के होम कर लेने के पश्चात् उनके द्वारा मार्गपाली को बँधवाये। सुन्दर व्रत युक्त राजा इस मंत्र से मार्गपाली को नमस्कार करें ॥४२॥ हे सम्पूर्ण लोगों को सुख देने वाली मार्गपाली तुमको नमस्कार है। हे स्कन्द ! मार्गपाली के नीचे गायों और सांडों को ले जाय॥४३॥ राजा, राजकुमार तथा ब्राह्मण मार्गपाली को लाँघकर निरोग और सुखी होते हैं ॥४४॥ इस तरह से सभी कार्यों को करके रात्रि में दैत्यों के राजा बलि की पृथिवी मण्डल पर पूजा करे। पाँच रङ्गों

बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैःपञ्चरङ्गकैः। सर्वाभरणसंपूर्णविन्ध्यावलिसमन्वितम् ॥४६॥
कृष्माण्डमयजम्भोरु मधुदानव संवृतम्। संपूर्णं दृष्टवदनं किरीटोत्कटकुण्डलम्॥४७॥
द्विर्भुजं दैत्यराजं च कारयित्वा स्वके पुनः ।
गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत् ॥४८॥
मातृभ्रातृजनैःसार्धं सन्तुष्टो बन्धुभिःसह। कमलैःकुमुदैःपुष्पैःकह्लारै रक्तकोत्पलैः॥४९॥
गन्धपुष्पान्ननैवेद्यैःसक्षीरैर्गुडपायसैः । मद्यमांससुरालेह्यचोष्यभक्ष्योपहारकैः ॥५०॥
मन्त्रेणानेन राजेन्द्रः समन्त्री सपुरोहितः। पूजां करष्यिते यो वै सौख्यं स्यात्तस्य वत्सरम्॥५१॥
बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो। भविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥५२॥
एवं पूजाविधिं कृत्वा रात्रौ जगारणं ततः। कारयेद्वै क्षणं रात्रौ नटनर्तकगायकैः ॥५३॥
लोकैश्चापि गृहस्यान्ते सपर्यां शुक्लतण्डुलैः ।
संस्थाप्य बलिराजं तु फलैःपुष्पैश्च पूजयेत् ॥५४॥
बलिमुद्दिश्य वै तत्र कार्यं सर्वं च पावके। यानि यान्यक्षयाण्याहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥५५॥
यदत्र दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु। तदक्षयं भवेत्सर्वं विष्णोःप्रीतिकरं शुभम्॥५६॥
रात्रौ ये न करिष्यन्ति तव पूजां बले नराः ।
तेषामश्रोत्रियं धर्मं सर्वं त्वामुपतिष्ठतु ॥५७॥
विष्णुना च स्वयं वत्स तुष्टेन बलये पुनः। उपकारकरं दत्तमसुराणां महोत्सवम्॥५८॥
तदा प्रभृति सेनानीःप्रवृत्ता कौमुदी सदा। सर्वोपद्रवविद्रावा सर्वविघ्नविनाशिनी॥५९॥

के द्वारा विन्ध्यावली के साथ सभी अलङ्कारों से अलंकृत बली का चित्र बनाये ॥४५-४६॥ हे रम्भोरु ! बली को कुष्माड स्वरूप मधु नामक दैत्य के साथ पूर्णरूप से प्रसन्न किरीट तथा कुण्डल धारण किए हुए, दो भुजाओं वाले बलि को अपने घर के बीच बनाकर उनकी पूजा विशाल गृह में करे ॥४७-४८॥ जो श्रेष्ठ राजा, माता, भाई तथा स्वजनों के साथ तथा अपने मन्त्री तथा पुरोहित के साथ प्रसन्नता पूर्वक, कमल, कुमुद के पुष्पों कहलार, रक्त कमल, चन्दन, पुष्प, अन्न से बने नैवेद्य दूध तथा गुड़ से बने पायस (खीर) मद्य, मांस, सुरा लेह्य, चोष्य खाने योग्य उपहारों से बली की पूजा करेगा वह वर्ष भर तक सुखी रहेगा ॥४९-५१॥ फिर इस मन्त्र से बली की प्रार्थना करे । हे विरोचन के पुत्र बली राजा ! हे भविष्य में इन्द्र होने वाले ! हे देवताओं के शत्रु ! आपको नमस्कार है, आप इस पूजा को स्वीकार करें ॥५२॥ इस तरह सविधि पूजा करके रात्रि में नटों एवं नर्तकों से रात्रि जागरण कराये ॥५३॥ लोगों को भी अपने घर के भीतर बलिराज की स्थापना करके श्वेत चावल तथा फलों एवं पुष्पों से उनकी पूजा करनी चाहिए॥५४॥ हे पावके ! वहाँ पर बलि की ही प्रसन्नता के लिए सबकुछ करना चाहिए । तत्त्वज्ञ मुनियों ने जिन सबों को अक्षय बतलाया है उन सबों को करना चाहिए । उस समय थोड़ा सा या अधिक जो कुछ भी दान दिया जाता है वह अक्षय होता है और भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाला होता है ॥५५-५६॥ हे वले! जो मनुष्य रात्रि में आपकी पूजा न करें उसके सारे वैदिक कर्म आपको प्राप्त हों ॥५७॥ हे पुत्र ! स्वयं भगवान् विष्णु ने ही दैत्यों के उपकारक महोत्सव बलि की पूजा की है ॥५८॥ हे सेनापते ! उसी समय से यह पूजा प्रवृत्त हुयी । यह पूजा सभी उपद्रवों को विनष्ट करने वाले तथा सभी विघ्नों को विनष्ट करने वाली

लोकशोकहरा काम्या धनुपुष्टिसुखावहा । कुशब्देन मही ज्ञेया मुदहर्षे ततो द्वयम् ॥६०॥
धातुत्वे निगमैश्चैव तेनैषा कौमुदी स्मृता । कौ मोदन्ते जना यस्मान्नानाभावैः परस्परम् ॥६१॥
हृष्टतुष्टाः सुखापन्नास्तेनैषा कौमुदी स्मृता। कुमुदानि बलेर्यस्यां दीयन्ते तेन षण्मुख ॥६२॥
अर्घार्थं पार्थिवैः पुत्र तेनैषा कौमुदी स्मृता। एकमेवमहोरात्रं वर्षे वर्षे च कार्तिके ॥६३॥
दत्तं दानवराजस्य आदर्शमिव भूतले। यः करोति नृपो राज्ये तस्य व्याधिभयं कुतः ॥६४॥
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं तस्य संपदनुत्तमा । नीरुजश्च जनाः सर्वे सर्वोपद्रववर्जिताः ॥६५॥
कौमुदी क्रियते तस्माद्भावं कर्तुं महीतले। यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां च षण्मुख ॥६६॥
हर्षदुःखादिभावेन तस्य वर्षं प्रयाति हि। रुदिते रोदते वर्षं हृष्टे वर्षं प्रहर्षितम् ॥६७॥

भुक्ते भोक्ता भवेद्वर्षं स्वस्थे स्वस्थं भविष्यति ।
तस्मात्प्रहृष्टैः कर्त्तव्या कौमुदी च शुभैर्नरैः ॥६८॥
वैष्णवी दानवी चेयं तिथिः प्रोक्ता च कार्त्तिके ॥६९॥
दीपोत्सवं जनितसर्वजनप्रसादं कुर्वन्ति ये शुभतया बलिराजपूजाम् ।
दानोपभोगसुखबुद्धिमतां कुलानां हर्षं प्रयातिसकलं प्रमुदं च वर्षम् ॥७०॥

स्कन्दैतास्तिथयो नूनं द्वितीयाद्याश्च विश्रुताः। मासैश्चतुर्भिश्चततः प्रावृट्काले शुभावहाः ॥७१॥
प्रथमा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदे परा । तृतीयाश्वयुजे मासि चतुर्थी कार्तिके भवेत् ॥७२॥
कलुषा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदेऽमला। आश्विने प्रेतसंचारा कार्तिके याम्यकामता ॥७३॥

है ॥५९॥ यह कमनीय पूजा सांसारिक कोशों को विनष्ट करने वाली, धन पुष्टि और सुख देने वाली है। कुशब्द पृथिवी का वाचक है और मुद शब्द हर्ष का बोधक है । मुद धातु से सम्पन्न यह इसीलिए वेदों में कौमुदी कही गयी है । चूकि लोग परस्पर में अनेक भावों से पृथिवी पर प्रसन्न होते हैं ॥६०-६१॥ वे हृष्ट, पुष्ट और सन्तुष्ट रहते हैं । कार्तिकेय ! इस पूजन में बलि को कुमुद पुष्प से अर्घ प्रदान किया जाता है इसीलिए इसे कौमुदी कहती हैं । कार्तिकेय ! एक ही दिन और रात्रि बलि को भगवान् ने बलि को प्रतिवर्ष प्रदान किया है । जो राजा अपने राज्य में इस पूजा को करता है, उसको किसी प्रकार का भय नहीं होता है ॥६२-६४॥ उस राजा के राज्य में सुभिक्ष, कल्याण, आरोग्य तथा सर्वोत्तम सम्पति होती है। सभी उपद्रवों से रहित लोग निरोग रहते हैं ॥६५॥ हे कार्तिकेय ! कौमुदी लोक में भाव के लिए मनायी जाती है । इसमें जो जिस भाव से युक्त होता है ॥६६॥ इसीलिए उसका वर्ष हर्ष या दुःख भाव से वितता है । उसमें रोने पर वर्ष भर रोते ही बितता है और प्रसन्न होने पर प्रसन्नता पूर्वक वर्ष बितता है ॥६७॥ उस दिन भोजन करने पर वर्ष भर वह भोजन ही करता है । स्वस्थ रहने पर स्वस्थ रहता है। अतएव शुभनरों को कौमुदी माहोत्सव मनाना चाहिए ॥६८॥ कार्तिक में यह तिथि वैष्णवी और दानवी दोनों प्रकार की होती है ॥६९॥ दीपोत्सव जन्य जो मनुष्य सबों को प्रसन्न करता है और बलिराज की पूजा करता है। उसके कुल के सभी लोग दान, उपभोग और बुद्धि सम्पन्न होते हैं । और उसका वह सम्पूर्ण वर्ष हर्ष एवं प्रमोद प्रदान करता है ॥७०॥ हे स्कन्द ! ये सभी द्वितीया आदि तिथियाँ निश्चित रूप से प्रख्यात होती हैं उसके बाद चार मासों के साथ वे वर्षा काल में सुखद होती हैं । पहली तिथि श्रावण मास में होती है, द्वितीया भाद्रपद मास में होती है । तृतीया आश्विन मास में और चतुर्थी कार्तिक मास में होती

गुह उवाच

कस्मात्सा कलुषा प्रोक्ता कस्मात्सा निर्मला मता ।
कस्मात्सा प्रेतसंचारा कस्माद्याम्या प्रकीर्तिता ॥७४॥

सूत उवाच

इति स्कन्दवचःश्रुत्वा भगवान्भूतभावनः । उवाच वचनं श्लक्ष्णं प्रहसन्वृषभध्वजः ॥७५॥

महेश उवाच

पुरा वृत्रवधे वृत्ते प्राप्ते राज्यं पुरन्दरे । ब्रह्महत्यापनोदार्थमश्वमेधः प्रवर्त्तितः ॥७६॥
क्रोधादिन्द्रेण वज्रेण ब्रह्महत्या निषूदिता । षड्विधा सा क्षितौ क्षिप्ता वृक्षतोयमहीतले ॥७७॥
नार्यां वह्नौ भ्रूणहनि संविभज्य यथाक्रमम् । तत्पापश्रवणात्पूर्वं द्वितीयाया दिनेन च ॥७८॥
नारीवृक्षनदीभूमि वह्निभ्रूणहनस्तथा । कुलषीभवनं जातो ह्यतोऽथ कलुषा स्मृता ॥७९॥
मधुकैटभयोरक्ते पुरा मग्नानुमेदिनी । अष्टाङ्गुला पवित्रा सा नारीणां तु राजोमलम् ॥८०॥
नद्यःप्रावृण्मलाःसर्वा वह्नेरूर्ध्वं मषीमलः । निर्यासमलिना वृक्षाःसङ्गाद्भ्रूणहनोमलाः ॥८१॥
कलुषा विचरन्त्यस्यां तेनैषा कलुषा मता । देवर्षिपितृधर्माणां निन्दका नास्तिकाःशठाः ॥८२॥

तेषां सा वाङ्मलात्पूता द्वितीया तेन निर्मला ।
अनध्यायेषु शास्त्राणि पाठयन्ति पठन्ति च ॥८३॥
साङ्ख्यकास्तार्किकाःश्रौतास्तेषां शब्दापशब्दजात् ।
मलात्पूता द्वितीयायां ततोऽर्थे निर्मला च सा ॥८४॥

है । श्रावण मास में कलुष, भाद्रपद में अमल, अश्विन मास में प्रेत संचार और कार्तिक मास में याम्य कामता तिथि कहलाती है ॥७१-७३॥ **कार्तिकेयजी ने कहा**— किस कारण से प्रतिपद कलुषा कहलाती है, किस कारण से द्वितीया निर्मला कहलाती है, किस कारण से तृतीया प्रेत संचारा होती है ? और किस कारण ये चतुर्थी याम्यकामता कहलाती है ?॥७४॥ **सूतजी ने कहा**— इस तरह से स्कन्द की वाणी सुनकर भूतभावन शिवजी जोर से हँसते हुए मधुर वाणी में कहे ॥७५॥ **महेश ने कहा**— प्राचीन काल में जब वृत्तासुर का वध हो गया और इन्द्र अपना राज्य प्राप्त कर लिए तो ब्रह्महत्या को दूर करने के लिए अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ हुआ ॥७६॥ क्रोध करके इन्द्र ने वज्र से ब्रह्महत्या को मार दिया उस समय वह छह प्रकार से वृक्ष, जल और पृथिवी ॥७७॥ स्त्री, अग्नि गर्भघात में बराबर-बराबर बँटकर गिरा । उससे पाप को सर्वप्रथम द्वितीया के दिन से वह नारी, वृक्ष, नदी, भूमि तथा गर्भनाशक हुआ कलुषी के भवन में गया उसी समय से द्वितीया तिथि कलुषा कहलाती है ॥७८-७९॥ प्राचीन काल में पृथिवी मधु और कैटभ के रक्त में डूब गयी थी वह आठ अङ्गुल मात्र पवित्र थी नारियों का रज ही वह मल है ॥८०॥ नदियाँ वर्षा के कारण मलीन होती हैं, अग्नि का ऊपर का भाग उसका मल है । निर्याप्त (लासा) आदि वृक्ष के मल हैं और सङ्गमात्र गर्भपात करने का मल है ॥८१॥ चूकि कलुषा इन सबों में विचरण करती है, इसीलिए इसे कलुष कहते हैं । देवता, ऋषि, पितृगण, धर्मनिन्दक नास्तिक और शठ इन सबों की वाणी रूप मल से वह पवित्र हो गयी इसीलिए द्वितीया तिथि निर्मला कहलाती है । जो लोग अनध्यायों में भी शास्त्रों को पढ़ते हैं ॥८२-८३॥ ऐसे सांख्य, तार्किक तथा श्रौत लोगो के अपशब्दों के शब्द से वह मल

कृष्णस्य जन्मना वत्स त्रैलोक्यं पावितं भवेत् ।
नभस्येते विनिर्दिष्टा निर्मला सा तिथिर्बुधैः ॥८५॥
अग्निष्वाता बर्हिषद आज्यपाःसोमपास्तथा । पितृन्पितामहान्प्रेतसंचारात्प्रेतसंचरा ॥८६॥
प्रेतास्तु पितरःप्रोक्तास्तेषां तस्यां तु संचरः । पुत्रपौत्रैस्तुदौहित्रैःस्वधामन्त्रैस्तु पूजिताः ॥८७॥
श्राद्धदानमखैस्तृप्ता यान्त्यतःप्रेतसंचरा । महालये तु प्रेतानां संचारो भुवि दृश्यते ॥८८॥
तेनैषा प्रेतसंचारा कीर्तिता शिखिवाहन । यमस्य क्रियते पूजा यतोऽस्यां पावके नरैः ॥८९॥
तेनैषा याम्यका प्रोक्ता सत्यं सत्यं मयोदितम् ।
एतत्कार्त्तिकमाहात्म्यं ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ॥९०॥
कार्त्तिकस्नानजं पुण्यं तेषां भवति निश्चितम् ।
कार्त्तिके च द्वितीयायां पूर्वाह्ने यममर्चयेत् ॥९१॥
भानुजायां नरःस्नात्वा यमलोकं न पश्यति ।
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां तु शौनक ॥९२॥
यमो यमुनया पूर्वं भोजितःस्वगृहेऽर्चिता । द्वितीयायां महोत्सर्गो नारकीयाश्च तर्पिताः ॥९३॥
पापेभ्यो विप्रयुक्तास्ते मुक्ताःसर्वनिबन्धनात् । आशंसिताश्च संतुष्टाःस्थिताःसर्वे यदृच्छया ॥९४॥
तेषां महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्र सुखावहः । अतो यमद्वितीयेयं त्रिपु लोकेपु विश्रुता ॥९५॥
तस्मान्निजगृहे विप्र न भोक्तव्यं ततो बुधैः । स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥९६॥

से पवित्र हो गयी इसीलिए द्वितीया को निर्मला कहते हैं ॥८४॥ हे वत्स ! भगवान् कृष्ण के जन्म में त्रैलोक्य पवित्र हो गया । चूकि भाद्रपद में बतलायी गयी है इसीलिए विद्वान् उसको निर्मला कहते हैं॥८५॥ अग्निष्वादा, वर्हिसदः, आज्यया और सोमया इन पितरों पितामहों आदि प्रेतों (मरे हुए) के संचारण से प्रेत संचरण वह तिथि कहलाती है ॥८६॥ प्रेत शब्द से पितरों को कहा जाता है, उन सबों के संचरण करने के कारण वह तिथि प्रेतसंचारा कही जाती है । पुत्रों, पौत्रों, दौहित्रों द्वारा श्राद्ध के मन्त्रों से पूजित होकर॥८७॥ श्राद्ध, दान और यज्ञों से तृप्त होकर वे चले जाते हैं अतएव उसे प्रेत संचारा कहते हैं । महालय में पृथिवी पर प्रेतों का संचरण होता है इसीलिए यह प्रेत संचारा कहलाती है । हे पावके ! चूकि इसमें यम की पूजा की जाती है । इसीलिए यह प्रेत संचारा कहलाती है । हे पावके ! चूकि इसमें यम की पूजा की जाती है इसीलिए चतुर्थी को याम्यका कहते हैं । यह मेरी वाणी सत्य है । इस कार्तिक माहात्म्य को जो मनुष्य सुनते हैं ॥८८-९०॥ उनको निश्चित रूप से कार्तिक स्नान का पुण्य प्राप्त होता है । कार्तिक में द्वितीया तिथि को पूर्वाह्ण में यम की अर्चना करनी चाहिए ॥९१॥ उस दिन यमुना में स्नान करने वाला मनुष्य यमलोक में नहीं जाता है । हे शौनक ! कार्तिक के शुक्ल पक्ष में यमुना ने यम को अपने घर भोजन कराया था । द्वितीया तिथि को महान् उत्सर्ग होता है और नारकी जीव तृप्त हो गये ॥९२-९३॥ वे सभी पाप युक्त होकर सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो गये । प्रशंसित होकर वे सभी भाग्यवशात् सन्तुष्ट हो गये ॥९४॥ उन सबों में महोत्सव होने पर यमलोक सुखद हो गया । इसीलिये यह यम द्वितीया त्रैलोक्य में विख्यात है ॥९५॥ हे विप्र ! इसीलिए विद्वानों को अपने घर नहीं खाना चाहिए

दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः । स्वर्णालङ्कारवस्त्राणि पूजासत्कारसंयुतम् ॥९७॥
भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्याहस्ततःपरम् । सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्धनम् ॥९८॥
ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां पूजितस्तर्पितो यमः । महिषासनमारूढो दण्डमुद्गरभृत्प्रभुः ॥९९॥
वेष्टितःकिङ्करैर्हृष्टैस्तस्मै याम्यात्मने नमः । यैर्भगिन्यःसुवासिन्यो वस्त्रदानादितोषिताः ॥१००॥
न तेषां वत्सरं यावत्कलहो न रिपोर्भयम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं धर्मकामार्थसाधनम् ॥१०१॥
व्याख्यातं सकलं पुत्र सरहस्यं मयाऽनघ ! ॥१०२॥

यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवःसंभोजितःप्रतितिथौ स्वसृसौहृदेन ।
तस्मात्स्वसुःकरतलादिह यो हि भुङ्क्ते प्राप्नोति वित्तशुभसंपदमुत्तमां सः ॥१०३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

एक सौ तेइसवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्न पुण्यवर्धनम् । मुक्तिदं तत्त्वबुद्धीनां शृणुष्व सुरसत्तम ॥१॥
तावद्गर्जति सेनानीर्गङ्गा भागीरथी क्षितौ । यावन्नायाति पापघ्नी कार्त्तिके हरिबोधिनी॥२॥

स्नेह पूर्वक बहन के हाथ से भोजन करना पुष्टता को बढ़ता है ॥९६॥ उसके बाद अपनी सगी बहन के हाथ से खाना चाहिए । सभी बहनों के हाथ से भोजन करने से बल बढ़ता है ॥९७-९८॥ कार्तिक शुक्ल द्वितीया को पूजित और तृप्त भैंसे पर बैठे हुए दण्ड मुद्गर धारण किए हुए यमराज की प्रार्थना करें ॥९९॥ दूतों से घिरे हुए और उनके द्वारा भेजे गये यमराज को नमस्कार है । जो लोगसुवासिनी (सधवा) बहनों को वस्त्रालङ्कार से सन्तुष्ट करते हैं ॥१००॥ उन लोगों को वर्ष भर कलह और शत्रु का भय नहीं होता है । यह पूजन, धन्य, यश देने वाला आयु को बढाने वाला और धर्म सम्पत्ति को बढ़ाने वाला है॥१०१॥ हे पुत्र ! मैंने सारी बातों को रहस्य पूर्वक व्याख्या की है ॥१०२॥ जिस तिथि को यमराज अपनी बहन के द्वारा अच्छी तरह से स्नेहपूर्वक भोजन कराये गये इसीलिए उस दिन जो अपनी बहन के हाथों भोजन करता है वह शुभ तथा उत्तम धन सम्पत्ति प्राप्त करता है ॥१०३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत एक सौ बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२२।।

प्रबोधिनी एकादशी का माहात्म्य

ईश्वर ने कहा— हे सुरश्रेष्ठ ! प्रबोधिनी एकादशी का माहात्म्य पाप विनाशक पुण्यवर्द्धक, तत्त्व ज्ञानियों को मुक्ति प्रदान करने वाला है उसे सुनो ॥१॥ हे सेनानी, भागीरथी गङ्गा तब तक गरजती हैं ।

तावत्तच्छन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च । यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्त्तिके ॥३॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्यां यथाभवत् ॥४॥
दुर्लभं चैव दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये सचराचरे । तदपि प्रार्थितं विप्र ददाति प्रतिबोधिनी ॥५॥
ऐश्वर्यं संस्मृतिं ज्ञानं राज्यं च सुखसंपदम् । ददात्युपोषिता विप्र हेलया हरिबोधिनी ॥६॥
मेरुमन्दरतुल्यानि पापान्युपार्जितानि च । एकेनैवोपवासेन दहते हरिबोधिनी ॥७॥
उपवासं प्रबोधिन्यां यःकरोति स्वभावतः । विधिना नरशार्दूल यथोक्तं लभते फलम् ॥८॥
पूर्वजन्मसहस्रेषु पापं यत्समुपार्जितम् । जागरेण प्रबोधिन्यां दह्यते तूलराशिवत् ॥९॥

शृणु षण्मुख वक्ष्यामि जागरस्य च लक्षणम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण दुर्लभो न जनार्दनः ॥१०॥

गीतं वाद्यं च नृत्यं च पुराणपठनं तथा । धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पं गन्धानुलेपनम् ॥११॥
फलमर्घ्यं च श्रद्धा च दानमिन्द्रियसंयमः । सत्यान्वितं विनिद्रं च मुदायुक्तं क्रियान्वितम् ॥१२॥
साश्चर्यंचैव सोत्साहमालस्यादिविवर्जितम् । प्रदक्षिणादिसंयुक्तं नमस्कारपुरःसरम् ॥१३॥
नीराजनसमायुक्तमनिर्विण्णेन चेतसा । यामे यामे महाभाग कुर्वन्नीराजनं हरेः ॥१४॥
एतैर्गुणैःसमायुक्तं कुर्याज्जगरणं विभोः । एकाग्रमानसो यस्तु न पुनर्जायते भुवि ॥१५॥
य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः । जागरं वासरे विष्णोर्नीयते परमां गतिम् ॥१६॥

पुरुषसूक्तेन यो नित्यं कार्त्तिके त्वर्चयेद्धरिम् ।
वर्षकोटिसहस्राणि पूजितस्तेन केशवः ॥१७॥

यथोक्तेन विधानेन पञ्चरात्रोदितेन वै । कार्त्तिके त्वर्चयेन्नित्यं मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥१८॥

जब तक कि प्रबोधिनी एकादशी नहीं आ जाती है ॥३॥ हजारों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञ के केवल प्रबोधिनी एकादशी के समान होते हैं ॥४॥ चराचरात्मक त्रैलोक्य में जो कुछ भी दुर्लभ हैं हे विप्र! उसकी भी प्रार्थना करने पर प्रबोधिनी एकादशी उसे प्रदान करती है ॥५॥ हे विप्र ! असावधानी पूर्वक भी की गयी प्रबोधिनी एकादशी, ऐश्वर्य, संसृति, ज्ञान, राज्य तथा सुख सम्पत्ति प्रदान करती है । हरि प्रबोधिनी का एक ही उपवास मेरु तथा मन्दराचल जैसे बड़े-से-बड़े पापों को विनष्ट कर देता है ॥६-७॥ जो कोई स्वाभाविक रूप से विधि पूर्वक उपवास करता है तो हे राजन् ! उसको प्रबोधिनी एकादशी के सम्पूर्ण फल प्राप्त होते हैं ॥८॥ हजारों पूर्व जन्मों में किए गये पापों को प्रबोधिनी एकादशी को किया गया जागरण रुई के ढेर के समान जला डालता है ॥९। हे कार्तिकेय ! मैं जागरण का स्वरूप बतला रहा हूँ उसे सुनो। उसके जान लेने मात्र से भगवान् जनार्दन दुर्लभ नहीं रहते हैं ॥१०॥ गीत, वाद्य, नृत्य, पुराण पाठ, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, चन्दनानुलेपन ॥११॥ फल, अर्घ्य, श्रद्धा, दान, इन्द्रियनिग्रह, सत्यभाषण, निद्राराहित्य प्रसन्नता पूर्वक सभी कार्यों को करना । आश्चर्य पूर्वक, उत्साह पूर्वक तथा आलस्य रहित होकर दक्षिणा, नमस्कार ॥१२-१३॥ नीराजन से युक्त प्रसन्नता पूर्वक प्रत्येक प्रहर में श्रीहरि का नीराजन (आरती) इन सभी गुणों से युक्त एकाग्र मन से जागरण करना चाहिए । ऐसा करने से पुनर्जन्म नहीं होता है ॥१४-१५॥ इस तरह जो कंजूसी किए बिना भक्ति पूर्वक प्रबोधिनी को जागरण करता है वह परमगति को प्राप्त करता है ॥१६॥ जो कार्तिक में पुरुष सूक्त से श्रीहरि की पूजा करता है उसके द्वारा हजारों करोड़

नमो नारायणायेति कार्त्तिके योऽर्चयेद्धरिम् ।
समुक्तोनारकैर्दुःखैपदंगछत्यनामयम् ॥१९॥
हरेर्नाम सहस्रं च गजराजस्य मोक्षणम्। कार्तिके पठते यस्तु पुनर्जन्म न विन्दति॥२०॥
युगोकोटिसहस्राणि मन्वन्तरशतानि च। द्वादश्यां कार्त्तिके मासि जागरी वसते दिवि ॥२१॥
कुले तस्य च संजाताःशतशोऽथ सहस्रशः ।
प्राप्नुवन्ति पदं विष्णोस्तस्मात्कुर्वीत जागरम् ॥२२॥
कार्त्तिके पश्चिमेयामे गानं करोति यः। श्वेतद्वीपे तु वसते पितृभिःसह भामिनि ॥२३॥
नैवेद्यदानं हरये कार्त्तिके दिनसंक्षये। युगानि वसते स्वर्गे तावन्ति मुनिसत्तमाः ॥२४॥
अक्षयं मुनिशार्दूल मालतीकमलार्चनम्। अर्चयेद्देवदेवेशं स याति परमं पदम्॥२५॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु कृत्वा ह्येकादशीं नरः ।
प्रातर्दत्त्वा शुभान्कुम्भान्स याति मम मन्दिरम् ॥२६॥

कार्त्तिकेय उवाच

भगवन्नुच्यतां पुण्यं व्रतानां परमं व्रतम्। कर्तव्यं कार्त्तिके मासि भवता भीष्मपञ्चकम् ॥२७॥
विधानं तस्य च फलं तथैव सुरसत्तम। कथयस्व प्रसादान्मे मुनीनां च पितामह॥२८॥

ईश्वर उवाच

प्रवक्ष्यामि महापुण्यं व्रतं विधिमतांवर। भीष्मेणैतद्यतःप्राप्तं व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥२९॥
सकाशाद्वासुदेवस्य तेनोक्तं भीष्मपञ्चकम्। व्रतस्यास्य गुणान्वक्तं कःशक्तःकेशवादृते ॥३०॥

वर्षों तक श्रीहरि की पूजा सम्पन्न हो जाती है ॥१७॥ इस तरह पञ्चरात्रोक्त विधि से कार्तिक में श्रीहरि की नित्य ही पूजा करनी चाहिए। ऐसा करने वाला मुक्ति का पात्र हो जाता है ॥१८॥ जो **ॐ नमो नारायणाय** इस मन्त्र से श्रीहरि की पूजा करता है, वह नरक के दुःखों से मुक्त होकर मुक्ति को प्राप्त कर लेता है॥१९॥ जो विष्णु सहस्रनाम और गजेन्द्र मोक्ष स्तोत्र का कार्तिक के महीने में पाठ करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता है ॥२०॥ जो कार्तिक के महीने में शुक्ल पक्ष की द्वादशी को जागरण करता है वह करोड़ों हजार युगों तक सैकड़ों मन्वन्तरों तक द्युलोक में निवास करता है ॥२१॥ उसके वंश में उत्पन्न सैकड़ों तथा हजारों मनुष्य श्रीविष्णु भगवान् के परंपद में जाते हैं अतएव हरि जागरण करना चाहिए॥२२॥ हे पार्वति ! कार्तिक की रात्रि में अन्तिम प्रहर में जो हरिकीर्तन करता है, वह अपने पितरों के साथ श्वेत द्वीप में निवास करता है ॥२३॥ जो दिन बीत जाने पर श्रीहरि को नैवेद्य समर्पित करता है वह उतने युग तक स्वर्ग में निवास करता है ॥२४॥ हे मुनिवर्य ! श्रीहरि का कमल एवं मालती से पूजन अक्षय होता है। अतएव उससे श्रीभगवान् की पूजा करने वाला परमपद को प्राप्त करता है ॥२५॥ कार्तिक के शुक्लपक्ष में एकादशी व्रत करके जो मनुष्य प्रातःकाल मङ्गलमय कुम्भों का दान करता है वह मेरे लोक में जाता है॥२६॥ **कार्तिकेय ने कहा—** हे भगवन् ! सभी व्रतों में उत्तम कार्तिक मास में करने योग्य भीष्म पञ्चक व्रत को आप बतलायें ॥२७॥ हे सुरसत्तम ! मेरे तथा मुनियों पर कृपा करके आप उसके विधान तथा फल को बतलायें ॥२८॥ **ईश्वर ने कहा—** हे विधिज्ञों में श्रेष्ठ ! मैं इस महापुण्य व्रत को बतलाता हूँ। भीष्म ने पाञ्च दिनों के इस व्रत को कहा था ॥२९॥ उन्होंने भगवान् वासुदेव के सान्निध्य से इस व्रत को कहा था। इस व्रत के महत्त्व को भगवान् केशव को छोड़कर कौन बतला सकता है ?॥३०॥ सत्य

कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु शृणु धर्मं पुरातनम् ।
वसिष्ठभृगुगर्गाद्यैश्चीर्णं कृतयुगादिषु ॥३१॥
अम्बरीषेण भोगाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु। ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियादिभिः ॥३२॥
क्षत्रियैश्च तथा वैश्यैःसत्यशौचपरायणैः। दुष्करं सत्यहीनानामशक्यं बालचेतसाम् ॥३३॥
दुष्करं भीष्ममित्याहुर्न शक्यं प्राकृतैर्नरैः। यस्तस्त्करोति विप्रेन्द्र तेन सर्वं कृतं भवेत् ॥३४॥
व्रतंचैतन्महापुण्यं महापातकनाशनम्। अतो नरैःप्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम्॥३५॥
कार्त्तिकस्यामलेपक्षे स्नात्वा सम्यग्विधानतः ।
एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥३६॥
प्रातःस्नात्वा विशेषेण मध्याह्ने च तथा व्रती ।
नद्यां निर्झरगर्ते वा समालभ्य च गोमयम् ॥३७॥
यवब्रीहितिलैःसम्यक्पितॄन्संतर्पयेत्क्रमात् । स्नात्वा मौनं नरःकृत्वा धौतवासा दृढ़व्रतः॥३८॥
भीष्मायोदकदानं च अर्घ्यंचैव प्रयत्नतः। पूजा भीष्मस्य कर्त्तव्या दानं दद्यात्प्रयत्नतः ॥३९॥
पञ्चरत्नं विशेषेण दत्त्वा विप्राय यत्नतः। वासुदेवोऽपि संपूज्यो लक्ष्मीयुक्तःसदाप्रभुः ॥४०॥
पञ्चके पूजयित्वा तु कोटिकल्पानि तुष्यति ।
यत्किञ्चित्क्रियते सर्वं पञ्चधा तु प्रकल्पयेत् ॥४१॥
संवत्सरव्रतानां च लभते सकलं फलम्। कृत्वा तूदकदानं तु तथार्घ्यस्य च दापनम्॥४२॥
मन्त्रेणानेन यःकुर्यान्मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥४३॥

युगों आदि में वसिष्ठ भृगु तथा गर्ग आदि ने इसे किया था । यह प्राचीन व्रत कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में किया जाता है, उसे सुनो ॥३१॥ अम्बरीष ने भोग आदि के द्वारा इस व्रत को त्रेतायुग आदि में किया था ॥३२॥ ब्राह्मणों ने इस व्रत को ब्रह्मचर्य, जप तथा होम आदि के द्वारा इसे किया था । क्षत्रियों तथा वैश्यों ने जो सत्य तथा शौच का पालन करते हैं उनको इसे करना चाहिए, मिथ्या बोलने वाले तथा बालकों के समान चञ्चल चित्त वाले इसे नहीं कर सकते हैं ॥३३॥ भीष्म को दुष्कर कहा जाता है, उसको प्राकृत मनुष्य नहीं कर सकते हैं । विप्रश्रेष्ठ ! जो इसको करता है, उसको सभी व्रतों को करने का फल प्राप्त हो जाता है ॥३४॥ यह व्रत महापुण्यमय तथा महापातकों का नाश करने वाला है । अतएव मनुष्यों को इसे प्रयत्न पूर्व करना चाहिए ॥३५॥ कार्तिक के शुक्ल पक्ष में विधिपूर्वक स्नान करके एकादशी के दिन इस पाँच दिनों का व्रत करना चाहिए ॥३६॥ व्रती प्रातः काल में स्नान करके मध्याह्न में नदी, झरना या सरोवर में शरीर में गोबर लगाकर ॥३७॥ यव, धान तथा तिल से अच्छी तरह से पितरों का तर्पण करे। मौन होकर स्नान करके धोती पहने हुए वह ॥३८॥ भीष्म को प्रयत्न पूर्वक जलदान और अर्घ्य प्रदान करें। फिर भीष्म की पूजा करे और दान दे ॥३९॥ विशेष रूप से ब्राह्मण को पञ्चरत्न दान करे । श्रीलक्ष्मीजी के साथ प्रभु वासुदेव की पूजा करनी चाहिए ॥४०॥ इन पञ्च दिनों में पूजा करके व्रती करोड़ों कल्पों तक सन्तुष्ट रहता है । व्रती जो कुछ भी करे उसको पाँच भागों में बाँट दे ॥४१॥ ऐसा करने वाला वर्ष भर के व्रतों को करने का फल प्राप्त करता है । जो जलदान और अर्घ्य इस मन्त्र से देता है वह मनुष्य मुक्ति का भागी होता है । वैयाघ्रपद गोत्र तथा साङ्कृति के वंश में श्रेष्ठ पुत्र हीन भीष्म वर्मा के मैं यह

वैयाघ्रपादगोत्राय साङ्कृतेप्रवराय च। अपुत्राय ददाभ्येतदुदकं भीष्मवर्मणे ॥४४॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च। अर्घ्यं ददामि भीष्माय ह्याजन्मब्रह्मचारिणे॥४५॥

इत्यर्घ्यमन्त्रः

अनेन विधिना यस्तु पञ्चकं तु समापयेत्। अश्वमेधसमं पुण्यं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥४६॥
पञ्चामपि कर्तव्यं नियमं च प्रयत्नतः। नियमेन बिना पुत्र न भाव्यं व्रतकर्मणा॥४७॥
उत्तरायणहीनाय भीष्माय प्रददौ हरिः। उत्तरायणहीनोऽपि शुद्धिं लग्नं बिना शुभाः ॥४८॥
ततःसंपूजयेद्देवं सर्वपापहरं हरिम्। अनन्तरं प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम् ॥४९॥
स्नापयेत जलैर्भक्तया मधुक्षीरधृतेन च। तथैव पञ्चगव्येन गन्धचन्दनवारिणा ॥५०॥
चन्दनेन सुगन्धेन कुङ्कुमेनाथ केशवम्। कूर्परोशीरमिश्रेण लेपयेद्गरुडध्वजम्॥५१॥
अर्चयेद्रुचिरैःपुष्पैर्गन्धधूपसमन्वितैः। गुग्गुलं घृतसंयुक्तं ददेत्कृष्णाय भक्तिमान् ॥५२॥
दीपकं तु दिवारात्रौ दद्यात्पञ्चदिनादिषु। नैवेद्यं देवदेवस्य परमान्नं निवेदयेत्॥५३॥
एवमभ्यर्चयेद्देवं संस्मृत्य च प्रणभ्य च। ॐ नमो वासुदेवाय जपेदष्टोत्तरंशतम्॥५४॥
जुहुयाच्च घृताभ्यक्तैस्तिलव्रीहियवादिभिः। षडक्षरेण मन्त्रेण स्वाहाकारान्वितेन च ॥५५॥

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां प्रणम्य गरुडध्वजम् ।
जपित्वा पूर्ववन्मन्त्रं क्षितिशायी भवेद्व्रती ॥५६॥

सर्वमेतद्विधानं तु कार्यं पञ्चदिनानि तु। विशेषोऽत्र व्रते ह्यस्मिन्यदन्यूनं श्रृणुष्व तत् ॥५७॥
प्रथमेऽह्नि हरेःपादौ पूजयेत्कमलैर्व्रती। द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत् ॥५८॥

जलदान करता हूँ ॥४२-४४॥ वसुओं के अवतार तथा शान्तनु के पुत्र, आजन्म ब्रह्मचारी भीष्म को मैं अर्घ्य देता हूँ ॥४५॥ **यह अर्घ्य का मन्त्र है** । इस विधि से जो पाञ्चों दिनों को बिताता है वह अश्वमेध याग के समान पुण्य प्राप्त करता है । इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥४६॥ पाञ्च दिनों तक नियमों का पालन प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए । हे पुत्र ! नियम के बिना कर्म से व्रत नहीं होता है ॥४७॥ उत्तरायण से रहित भीष्म को श्रीहरि ने मुक्ति प्रदान की अतएव उत्तरायण रहित भी लग्न की शुद्धि होती है ॥४८॥ उसके वाद प्रयत्न पूर्वक सभी पापों को दूर करने वाले श्रीहरि की पूजा करे । उसके बाद भीष्म पंञ्चक व्रत करे ॥४९॥ श्रीभगवान् को भक्ति पूर्वक जल, मधु, घी अं.र दुग्ध से स्नान कराये । उसी तरह पञ्चगव्य, सुगन्धित चन्दन के जल से श्रीहरि को स्नान करायें ॥५०॥ सुगन्धित चन्दन, कुङ्कुम, खस मिश्रित कर्पूर को श्रीहरि के शरीर में लगाये । श्रीभगवान् को परमान्न (क्षीरान्न) का भोग लगाये ॥५१॥ गन्ध एवं धूप से युक्त सुन्दर पुष्पों से, घृत मिश्रित गुग्गुल भगवान् को भक्तिपूर्वक प्रदान करे । पाञ्च दिनों तक दिन रात दीपक को जलाना चाहिये और भगवान् को परमान्न का भोग लगाना चाहिए ॥५२-५३॥ इस तरह से श्रीभागवन् को याद करके तथा प्रणाम करके श्रीभगवान् की पूजा करे । **ओम् नमो वासुदेवाय** इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे ॥५४॥ घृत मिश्रित तिल, चावल और यव से होम करें । होम का स्वाहाकार ओं नमो वासुदेव इस मन्त्र से करना चाहिए ॥५५॥ सायं सन्ध्या करके तथा श्रीभगवान् को प्रणाम करके पहले के ही समान मन्त्र जप करके पृथिवी पर व्रती को सोना चाहिए ॥५६॥ इस सम्पूर्ण विधान को पाँच दिनों तक करना चाहिए । इस व्रत के विषय विशेष बाते पूर्ण रूप से सुनो ॥५७॥ व्रत

ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालतीकुसुमैर्हरेः । कार्त्तिक्यां देवदेवस्य भक्तया तद्व्रतमानसः ॥५९॥
अर्चित्वा तं हृषीकेशमेकादश्यां समासतः । निष्प्राश्य गोमयंसम्यगेकादश्यामुपावसेत् ॥६०॥
गोमूत्रं मन्त्रवद्भूमौ द्वादश्यां प्राशयेद्व्रती। क्षीरंचैव त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तथा दधि ॥६१॥
संप्राश्य कायशुद्ध्यर्थं लङ्घःस्थित्वा चतुर्दिनम् ।
पञ्चमे दिवसे स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवम् ॥६२॥
भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्तया तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।
पापबुद्धिं परित्यज्य ब्रह्मचर्णेण धीमता ॥६३॥
मद्यं मासं परित्यज्य मैथुनं पापकारिणः । शाकाहारेण मुन्यन्नैःकृष्णार्चनपरो नरः ॥६४॥
ततो नक्त समश्नीयात्पञ्चगव्यपुरःसरम् । एवं सम्यक्समाप्तस्य यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥६५॥
मद्यपो यत्पिबेन्मद्यं जन्मनो मरणान्तिकम्। एतद्भीष्मव्रतं कृत्वा प्राप्नोति परमं पदम्॥६६॥
स्त्रीभिर्ब्राह्मणवाक्येन कर्तव्यं धर्मवर्धनम् । विधवाभिश्च कर्तव्यं मोक्षसौख्याभिवृद्धये॥६७॥
सर्वकामसमृद्धयर्थं पुण्यार्थमपि पावके । नित्यस्नाने तथा दाने ये कार्त्तिकमुपासते ॥६८॥
वैश्वदेवश्च कर्तव्यो विष्णुध्यानपरायणैः । आरोग्यपुत्रदो वत्स महापातकनाशनः ॥६९॥
तीर्थेषु कार्त्तिकं कुर्यात्सर्वयत्नेन षण्मुख । संवत्सरव्रतानां तु समाप्तिःकार्त्तिके मता ॥७०॥
पापस्य प्रतिमा कार्या रौद्रवक्त्रातिभीषणा ।
खड्गहस्ता विनिष्क्रान्ता लोहदंष्ट्रा करालिनी ॥७१॥

के पहले दिन श्रीहरि के दोनों चरणों की पूजा कमल से करे । दूसरे दिन श्रीभगवान् की पूजा विल्व पत्र से करें ॥५८॥ तीसरे दिन श्रीभगवान् के शिर की पूजा मालती पुष्प से करे । कार्तिक मास के एकादशी के दिन श्रीभगवान् में मन लगाकर श्रीभगवान् की पूजा संक्षेप में करे । एकादशी के दिन गोबर का प्राशन करके अच्छी तरह एकादशी व्रत करे ॥५९-६०॥ द्वादशी के दिन भूमि पर बैठकर मन्त्र पढ़ते हुए गोमूत्र पीकर व्रत करे । त्रयोदशी के दिन दूध और चतुर्दशी को दधि खाकर व्रत करे ॥६१॥ इन सबों का प्राशन शरीर की शुद्धि के लिए करे उपवास करके चार दिन बिताये । पाँचवे दिन स्नान करके श्रीभगवान् की सविधि पूजा करके ॥६२॥ भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे । व्रती को पाप बुद्धि से रहित होकर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ॥६३॥ पापी भी मनुष्य मद्य, मांस तथा मैथुन का त्याग करके शाकाहार तथा मुन्यन्न (तीनी) से भगवान् की अर्चना करे ॥६४॥ उसके पश्चात् वह सायंकाल पञ्चगव्य आदि से प्राशन करे । इस तरह से व्रत करके वह इस व्रत के फल को प्राप्त करता है ॥६५॥ जो मदिरा पायी जन्म से मरण पर्यन्त मदिरा पीता है । वह भी भीष्मव्रत करके परमपद प्राप्त करता है॥६६॥ स्त्रियों को ब्राह्मण के कहने के अनुसार धर्मवृद्धि करना चाहिए । विधवाओं को मोक्ष तथा सुख की वृद्धि के लिए इस व्रत को करना चाहिए ॥६७॥ हे पावके सभी कामनाओं की पूर्ति और पुण्य प्राप्त करने के लिए भी इस व्रत को करना चाहिए । जो लोग प्रतिदिन स्नान और दान करने में सदा कार्तिक व्रत की उपासना करते हैं ॥६८॥ भगवान् विष्णु का ध्यान करने वालों को बलिवैश्वदेव भी करना चाहिए हे पुत्र ! यह व्रत आरोग्य तथा पुत्र को प्रदान करने वाला और महापातकों का नाश करने वाला है ॥६९॥ हे षण्मुख ! हर प्रकार से कार्तिक व्रत को तीर्थो में करना चाहिए । वर्ष भर के व्रतों की समाप्ति

तिलप्रस्थोपरि स्थाप्या कृष्णवस्त्राभिवेष्टिता ।
रक्तपुष्पकृता पीडा ज्वलत्काञ्चनकुण्डला ॥७२॥
संपूज्य परया भक्त्या धर्मराजस्य नामभि:। इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलि: ॥७३॥
यदन्यजन्मनि कृतमिह जन्मनि वा पुन:। पापं प्रशममायातु तव पादप्रसादत: ॥७४॥
एवं संपूज्य विधिवत्प्रतिमां तां च काञ्चनीम् ।
कृत्वा पूजां यथाशक्ति विप्राणां वेदवादिनाम् ॥७५॥
प्रीतये देवदेवस्य कृष्णस्याक्लिष्टकर्मण:। ब्राह्मणाय प्रदातव्यं धर्मो मे प्रीयतामिति ॥७६॥
वाचकार्य प्रदातव्यायथाशक्तिच दक्षिणा। दद्याद्धिरण्यं गाश्चैवकृष्णोमेप्रीयतामिति॥७७॥
इति पाठ:
कृतकृत्य:स्थितो भूत्वा विरक्त:संयतो भवेत् ।
अन्येषामपिदातव्यं स्वशक्त्या दानमुत्तमम् ॥७८॥
शान्तचितो निराबाध:परं पदमवाप्नुयात्। नीलोत्पलदश्यामश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुज: ॥७९॥
अष्टपादैकनयन:शङ्कुकर्ण:खरस्वन: । जडी द्विजिह्वस्ताम्राक्षो मृगराजतनुच्छद: ॥८०॥
चिन्तनीयो महादेवो यस्य रूपं न विद्यते। इदं भीष्मेण कथितं शरतल्पगतेन मे ॥८१॥
तदेदत्ते मयाऽऽख्यातं दुष्करं भीष्मपञ्चकम् ।
धन्यं पुण्यं पापहरं युधिष्ठिर ! महाव्रतम् ॥८२॥
यत्कृत्वा ब्रह्महा गोघन: सर्वपापै: प्रमुच्यते ॥८३॥

कार्तिक में हो जाती है ॥७०॥ पाप की प्रतिमा भयङ्कर, रौद्र वस्त्र धारण की हुयी, हाथ में खड्ग धारण की हुयी, लोहे के निकले हुए दाँतों वाली और भयङ्कर बनाना चाहिए । उसकी स्थापना एक प्रस्थ तिल पर करनी चाहिए, उसको काले वस्त्र से वेष्टित होनी चाहिए । वह अपने बालों में लाल पुष्प लगाये रहे। उसका सुवर्ण का कुण्डल चमकता रहे ॥७१-७२॥ उसकी धर्मराज के नामों से पूजा करें । हाथ में पुष्प लेकर निम्नाङ्कित मन्त्र का उच्चारण करे ॥७३॥ मैंने इस जन्म में या दूसरे जन्मों में जो पाप किया है वह आपके चरणों की कृपा से विनष्ट हो जाय ॥७४॥ इस तरह से विधिवत् उस सुवर्ण की मूर्ति की पूजा करके अपनी शक्ति के अनुसार वेदज्ञ ब्राह्मणों को उसका दान दे दें ॥७५॥ अक्लिष्ट कर्म करने वाले श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए मेरा धर्म बढ़े यह कहकर उस मूर्ति को ब्राह्मण को दान दे दे ॥७६॥ वाचक को अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिए । और श्रीभगवान् मुझपर प्रसन्न हों इस उद्देश्य से वाचक को सुवर्ण और गौ दान देना चाहिए ॥७७॥ **यहाँ तक पाठ समाप्त हुआ** । इस तरह से कृत्यों को समाप्त करके विरक्त होकर बैठे । अपनी शक्ति के अनुसार दूसरे लोगों को भी दान देना चाहिए॥७८॥ बाधा रहित वह शान्त चित्त पुरुष परंपद को प्राप्त करता है । नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले, चार दाँतों और चार भुजाओं वाले ॥७९॥ आठ चरण और एक नेत्र वाले रुक्ष बोलने वाला, जड़ तथा दो जिह्वा वाले, लाल आँखें और सिंह के शरीर वाले सङ्कर्षण का ध्यान करे ॥८०॥ जिनका कोई रूप नहीं है ऐसे महादेव का ध्यान करे । शर शय्या पर पड़े हुए भीष्म ने इस व्रत को कहा है ॥८१॥ इस तरह से मैंने दुष्कर भीष्म पञ्चक नामक व्रत को तुम्हें बतलाया । हे युधिष्ठिर ! यह महान् व्रत, धन्य, पवित्र

यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृतिपञ्चदशीनिरुद्धम् ।
उक्तं न भोजनपरस्य तदा निषेधस्तस्मिन्व्रते शुभफलं प्रददाति विष्णुः ॥८४॥

सूत उवाच

एतत्सर्वाधिकं पुण्यं दुर्लभं भुवने कृतम्। इदं गुह्यं मयाख्यातं शास्त्रसारसमुच्चयम् ॥८५॥
सुराणां गोपितं सर्वमतिगुह्यं च मोक्षदम्। श्रुत्वा चैकपदे देवि अगम्यागमने रताः ॥८६॥
कन्याविक्रीःस्वसाविक्रीर्ह्युभयं तु विमोचयेत् ।
मोक्षदं च इदं शास्त्रं प्रकाश्यंनेतरे जने ॥८७॥
श्रुत्वा चैकपदे यस्तु मोक्षं गच्छति मानवः ।
गोपनीयं प्रयत्नेन ये चापि त्यागिनो नराः ॥८८॥
न तेषां कथ्यते पुण्यं सत्यं सत्यं च षण्मुख ।
इत्येतत्सर्वमाख्यातं कार्त्तिकस्य तु यत्फलम् ॥८९॥

श्रीविष्णुरुवाच

कथितं देवदेवेन पुत्राय हितकाम्यया। पितुस्तद्वाक्यमाकर्ण्य षण्मुखो हर्षनिर्भरः ॥९०॥
ऊचुःप्राञ्जलयःसर्वे तं देवं जगदायुषम् । कृतकृत्या वयं जाताःश्रुत्वा कार्त्तिकजं फलम् ॥९१॥
अपरं नास्ति श्रोतव्यं न प्राप्तं जन्मनःफलम् ।
माहात्म्यमेतदाकर्ण्य पूजयेद्यस्तु पाठकम् ॥९२॥
गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च विष्णुतुल्यो यतो हि सः ।
वाचके पूजिते यस्माद्विष्णुर्भवति पूजितः ॥९३॥

और पापों को विनष्ट करने वाला है । इस व्रत को करके गो हत्यारा भी पापों से मुक्त हो जाता है ॥८२॥ एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक होने वाला यह भीष्म पञ्चक व्रत पृथिवी पर प्रख्यात है । भोजन परायण को इसे नहीं बतलाये उस समय इसका निषेध है । इस व्रत को करने वाले को भगवान् विष्णु शुभ फल प्रदान करते हैं ॥८३॥ **सूतजी ने कहा—** यह व्रत संसार में सर्वाधिक पुण्य प्रद और दुर्लभ है । इस रहस्यमय और शास्त्रों के सार व्रत को मैंने कहा ॥८४॥ यह देवताओं के लिए भी गोप्य रहस्यमय और मोक्ष प्रद व्रत है । इसको सुनकर जो अगम्यागमन करने वाले हैं ॥८५॥ कन्या और बहन को बेचने वाले हैं; ये दोनों पाप से मुक्त हो जाते हैं । यह शास्त्र मोक्ष प्रद है । इसका प्रकाशन नहीं करना चाहिए ॥८६॥ इसको सुनकर मनुष्य शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं । जो त्यागी मनुष्य हैं उनको भी इसे प्रयत्न पूर्वक नहीं बतलाना चाहिए ॥८७॥ इस व्रत को करने वालों को होने वाले पुण्यों का वर्णन नहीं किया जा सकता है यह मैं परम सत्य कहता हूँ । इस तरह से मैंने कार्तिक के फल का पूर्ण रूप से वर्णन किया॥८८॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** शिवजी ने इसे अपने पुत्र कार्तिकेय को सुनाया । अपने पिता की बात को सुनकर कार्तिकजी हर्ष से भर गये ॥८९॥ सबों ने संसार के आयु स्वरूप उन देव को कहा । कार्तिक माहात्म्य को सुनकर हमलोग कृत-कृत्य हो गये ॥९०॥ अब हमलोगों को कुछ भी सुनने के लिए बाकी नहीं है । इस माहात्म्य को सुनकर पाठक की पूजा ॥९१॥ गौ, पृथिवी, सुवर्ण और वस्त्र प्रदान करके करनी चाहिए । क्योंकि वाचक की पूजा करने से भगवान् विष्णु की पूजा सम्पन्न हो जाती है ॥९२॥ सफल

तथा तं पूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सफलम् शुभम् ।
धर्मशास्त्रं पुराणं च वेदविद्यादिकं च यत् ।।९४।।

पुस्तकं वाचकायैव दातव्यं धर्ममिच्छता। पुराणविद्यादातारो ह्यनन्तफलभोजिनः ।।९५।।
यःपठेत इदं भत्तया श्रुत्वा चैवावधारयेत् । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकंसगच्छति ।।९६।।
धनंधान्यं यशःपुत्रानायुरारोग्यमेव च। माहात्म्यश्रवणादेव लभ्यते च न संशयः ।।९७।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कार्तिकमाहात्म्ये
श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२३।।

एक सौ चौबीसवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

सूतसूत महाभाग त्वया लोकहितैषिणा। कथितं कार्त्तिकाख्यानं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।।१।।
अधुना माघमाहात्म्यं वद नो लोमहर्षणे। श्रुतेन येन लोकानां संशयःक्षीयते महान् ।।२।।
पुरा केन महाभाग लोकेऽस्मिन्संप्रकाशितम् ।
माघस्नानस्य माहात्म्यं सेतिहासं तदाऽऽदिश ।।३।।

सूत उवाच

साधु साध मुनिश्रेष्ठा यूयं कृष्णपरायणाः। यत्पृच्छथमुदायुक्ता भत्तया कृष्णकथा मुहुः।।४।।

कल्याण चाहने वाले को पाठक, धर्मशास्त्र, पुराण तथा वेद विद्या इत्यादि की प्रतिदिन उसी तरह पूजा करनी चाहिए ।।९३।। धर्म चाहने वाले कि वह वाचक को पुस्तक दे दे । पुराण विद्या का दान करने वाले अनन्त फल को प्राप्त करते हैं ।।९४।। जो इसको भक्ति पूर्वक पढ़ता है और इसको सुनकर धारण करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में जाता है ।।९५।। इस माहात्म्य को ही सुनने वाले को धन, धान्य, यश, पुत्र, आयु और आरोग्य की प्राप्ति होती है ।।९६।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्यान्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा संवाद के प्रसङ्ग में एक सौ तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२३।।

माघमास का माहात्म्य वर्णन

ऋषियों ने कहा— महाभाग सूतजी लोक हितकारी आपने भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले कार्तिक माहात्म्य को सुनाया ।।१।। हे लोमहर्षण नन्दन ! आप हमलोगों को माघ माहात्म्य सुनायें जिसके सुन लेने से लोगों का संशय विनष्ट हो जाता है ।।२।। हे महाभाग ! सर्वप्रथम इसको किसने संसार में प्रकाशित किया । माघ मास के माहात्म्य और इतिहास को आप हमलोगों को बतलायें ।।३।। **सूतजी ने**

कथयिष्यामि माघस्य माहात्म्यं पुण्यवर्धनम् ।
पापघ्नं शृण्वतां पुंसां स्नातानां चारुणोदये ॥५॥
एकदा पार्वती विप्राःशङ्करं लोकशङ्करम्। पप्रच्छ विनयोपेता स्पृष्ट्वा तच्चरणाम्बुजम्॥६॥

पार्वत्युवाच

देवदेव महादेव भक्तानामभयप्रद। प्रसीद नाथ विश्वेश यत्पृच्छे तद्वदाऽधुना ॥७॥
श्रुता नानाविधा धर्मास्त्वत्तःपूर्वं मया विभो ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं माघजं वद ॥८॥
तत्तु केन पुरा चीर्णं को विधिः का च देवता ।
तत्सर्वं विस्तराद्ब्रूहि यतस्त्वं भक्तवत्सलः ॥९॥

महेश उवाच

अध्वराऽवभृथस्नात ऋषिभिःकृतमङ्गलः। पूजितो नागरैःसर्वैःखपुरान्निर्गतो बहिः ॥१०॥
दिलीपो भूभृतां श्रेष्ठो मृगयारसिको नृपः। कौतूहलसमाविष्ट आखेटव्यूहसंवृतः ॥११॥
उपानद् गूढपादस्तु नीलोष्णीष उरच्छदी। बद्धगोधाङ्गुलित्राणो धनुष्पाणिः सरीसृपः॥१२॥
बद्धक्षुद्रासि धानुष्कैस्तथा भूपैश्च पत्तिभिः। गान्धारेषु सुरम्येषु वनेषु विपुलेषु च ॥१३॥
उल्लङ्घितमहास्रोतो युवा पञ्चास्यविक्रमः। मुदा क्रीडति तैःसार्धं कुञ्जेषु मृगयन्मृगान् ॥१४॥
हन्यतां हन्यतामेष मृगो वैष पलायते। इति जल्पन्स्वभृत्येषु स्वयमुत्पत्य हन्ति च॥१५॥
इतस्ततः पुनर्याति क्वचित्पश्यन्वनस्थलीम्। विटपोड्डीनसंत्रस्त लीनकेकिकुलाकुलाम् ॥१६॥

कहा— हे मुनिश्रेष्ठ ! बहुत अच्छी बात है। आप लोग भगवान् के भक्त हैं। क्योंकि आपलोग प्रसन्नता पूर्वक श्रीभगवान् की कथा फिर पूछ रहे हैं ॥४॥ मैं पुण्य को बढ़ाने वाले माघ के माहात्म्य को कहता हूँ इसको सुनने से अरुणोदय काल में स्नान करने वालों का पाप विनष्ट हो जाता है ॥५॥ हे विप्रों ! एक बार पार्वतीजी लोक कल्याणकारी शङ्करजी के चरणों का स्पर्श करके नम्रता पूर्वक पूछीं ॥६॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे भक्तों को अभय प्रदान करने वाले महादेवजी, हे विश्वेश आप प्रसन्न होइये और जो मैं पूछ रहीं हूँ उसे बतलाइये ॥७॥ हे विभो ! पूर्वकाल मैंने अनेक धर्मों को सुना है। इस समय मैं माघ का माहात्म्य सुनना चाहती हूँ, उसे आप बतलायें ॥८॥ उसका अनुष्ठान किसने किया ? उसकी विधि क्या हैं ? माघ के देवता कौन हैं ? इन सारी बातों को आप विस्तार पूर्वक कहें क्योंकि आप भक्तवत्सल हैं॥९॥ **महेश ने कहा—** यज्ञान्त स्नान किए हुए राजा दिलीप का ऋषियों ने मङ्गल किया। जब वे अपने नगर से निकले तो नागरिकों ने उनका पूजन किया। राजा दिलीप राजाओं में श्रेष्ठ और आखेट प्रेमी हैं। कौतूहल युक्त तथा आखेट के सहायकों से घिरे हुए ॥१०-११॥ वे जूता पहने और नील पगड़ी बाँधे थे। हृदय पर कवच धारण करके गोह के अङ्गुलित्र धारण किए हुए वे धनुष धारण किये चल रहे थे॥१२॥ कटार बाँधे हुए धनुर्धारी पैदल राजाओं के साथ बहुत अधिक बनों वाले गान्धार देश के मनोहर वनों में गये। बड़ी-बड़ी नदियों को पार करके युवक सिंह के समान पराक्रम वाले वे मृगों को कुञ्जों में मारते हुए आनन्द पूर्वक उन सबों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे ॥१३-१४॥ मारो-मारो यह मृग भाग रहा है, इस तरह से कहकर स्वयं उच्छलकर उसको मारते थे ॥१५॥ उसके बाद वे वन स्थली को देखते हुए

हरिणीगणवित्रस्तां धावच्छावकदिङ्मुखाम्। क्वचित्फेरवफेत्कारताराराववि‌भीषणम् ॥१७॥
खड्गयूथैः चिल्लक्ष्मीं दधानामिव दन्तिनाम्। क्वचित्कोटरसंदष्टोलूकनादविनादिनीम् ॥१८॥
मृगारीपदमुद्राभिर्मुद्रितां च क्वचित्क्वचित्। शार्दूलनखनिर्भिन्नरोहिद्रक्तारुणा क्वचित् ॥१९॥
पीवरस्तनभारार्तसुस्निग्धमहिषीगणैः। अवरोधाजिरक्षोणीं सूचयन्तीं मनःक्वचित् ॥२०॥
क्वचिद्वृक्षघनच्छन्नां वन्यपुष्पसुगन्धिनीम्। क्वचिल्लतागृहद्वारां भृङ्गशब्दसुशोभनाम् ॥२१॥
अर्धनिःसृतनिर्मोकनागमीमबृहद्बिलाम्। बिलेषु लीनाजगरैर्भीमां निर्मोकसर्पिणीम् ॥२२॥

क्वचिद्दावानलज्वालां शिलाज्योतिःसुशोभनाम् ।
फूत्कारशब्दसंपूर्णमृगव्याघ्रसमाकुलाम् ॥२३॥
प्रविमुञ्चञ्छुनां यूथं शशकेषु क्वचित्क्वचित् ।
पल्वलेषु च विश्रम्य पुनर्याति वनान्तरम् ॥२४॥

एवं व्रजति राजेन्द्रे व्याधवर्गे च वल्गति। कुर्वन्कोलाहलं तत्र सारङ्गोनिर्गतो वनात् ॥२५॥
स्फालवेगक्रमाक्रान्तदुर्गमार्गमहीतलः। कदाचिद्गगनारूढःकदाचिद्भूमिगोचरः ॥२६॥
वक्रस्त्रोतोऽतिगम्भीरं कण्टकद्रुमसङ्कुलम्। प्रविष्टो विषमारण्यं राजाऽसौ तत्पदानुगः ॥२७॥
दूराद्दूरंतरं गत्वा देशाद्देशं च निर्जनम्। मृगादर्शनसंरम्भसंशुष्कगलकन्धरः ॥२८॥

ताम्रतालुमुखःस्विन्नःश्रान्तपत्तिःस्खलद्ध्वनिः ।
अतीत्य दीर्घमर्गान्सतृषार्तोमध्यगेरवौ ॥२९॥

फिर इधर-उधर जाते थे। डरकर वृक्ष से उड़े हुए छिपे हुए मयूरों से भरी हुई वन स्थली में वे जाते थे॥१६॥ कहीं पर संत्रस्त हरिणियों के बच्चे भाग रहे थे, कहीं पर भयङ्कर जोर-जोर से रोती हुयी स्यारिनों की ध्वनि उन्होंने सुना ॥१७॥ कहीं पर गैंड़ों के समूह द्वारा हाथियों के सौन्दर्य को धारण की हुयी, कहीं पर वृक्षों के कोटरों के नाद से नादित ॥१८॥ कहीं पर सिंहों के पैरों के चिह्न से चिह्नित तथा सिंहों के नख से फाड़े गये मृगों के रक्त से लाल वनी हुयी ॥१९॥ कहीं पर बड़े-बड़े वनों के भार से आर्त वनी हुयी भैसों के समूह से अवरोध के आँगन में भरी हुयी भूमि की सूचना मन को देने वाली, ॥२०॥ कहीं पर घने वृक्षों से ढँकी हुयी तथा वनैले पुष्पों से सुगन्धित, कहीं पर लता गृहों से युक्त तथा भौरों की गुञ्जन ध्वनि से सुशोभित ॥२१॥ कहीं पर जिनके आधे केचुल निकल गये थे ऐसे नागों से भयङ्कर विलों वाली विलों में जिनके छिपे हुए अजगरों के कारण भयङ्कर जहाँ केंचुल इधर-उधर उड़ रहे थे ऐसी तथा कहीं वनाग्नि की ज्वाला वाली तथा शिला की कान्ति से सुशोभित, कहीं पर फूत्कार के शब्दों से परिपूर्ण और मृगों तथा व्याघ्रों से भरी हुयी वनस्थली को देखते हुए ॥२२-२३॥ कहीं कहीं पर खरगोशों को पकड़ने के लिए कुत्तों को छोड़ते हुए, छोटे-छोटे जलाशयों पर विश्राम करके राजा दूसरे वन में चले जाते थे॥२४॥ राजेन्द्र दिलीप के इस तरह जाते रहने पर वहेलिए बोलते रहते थे। उसी समय कोलाहल करता हुआ एक सारङ्ग हिरण वन से निकला ॥२५॥ वह वेग से उच्छलकर कठिन मार्ग को पार कर जाता था। कभी वह आकाश में कूद जाता था तो कभी पृथिवी पर दिखता था ॥२६॥ वह चकोर से भयङ्कर तथा कण्टीले वृक्षों से भरे हुए भयङ्कर वन में प्रवेश कर गया। और राजा उसका पीछा कर रहे थे ॥२७॥ वह एक देश से दूसरे निजी स्थान में जाकर मृग को नहीं देख पाये। उनका गला और कन्धा सूख गया था ॥२८॥ उनका

ददर्शाऽग्रे तु कासारं स्पर्धयन्तमपांपतिम् । घनपादापतीरस्थं सुतीर्थं विमलं शुभम् ॥३०॥
विशालं विकचाम्भोजं मधुमत्तमधुव्रतम् । पद्मिनीपत्रपालाशच्छन्नं मरकतैरिव ॥३१॥
स्वच्छन्दमुच्चलन्मत्स्यं स्वच्छं साधुमनो यथा ।
चलज्जलचरैर्मिश्रं वीचिराजिविराजितम् ॥३२॥
अन्तर्ग्राहगणक्रूरं खलानामिव मानसम् । क्वचिच्छैवालदुर्गम्यं कृपणस्येव मन्दिरम् ॥३३॥
नानाविहङ्गसर्वार्तिं शमयन्तं दिवानिशम् । दातारमिव सर्वस्वैरापन्नार्तिप्रणाशनम् ॥३४॥
तर्पयन्तं निजाम्भोभिः श्वापदान्स्वपितॄनिव । हरन्तं सर्वसंतापं हिमांशुमिव चाह्निकम् ॥३५॥
तं दृष्ट्वा भूदतालानिश्चातको जलदं यथा । तत्र पीतजलो राजा कृतमाध्याह्निकक्रियः ॥३६॥
भुक्त्वा खेटकमांसानि सहायैः सहितो नृपः । उवास सरसस्तीरे सुरम्यां कथयन्कथाम् ॥३७॥
ततः शरासने बाणं कृत्वा रात्रौ स्थितस्तरौ । व्याधाः संधानमास्थाय रुरुधुः ककुभां पथः ॥३८॥
एवं स्थितेषु वीरेषु वने विस्तार्यवागुराम् । निशार्धे निर्गतं यूथं सूकराणां तटेतटे ॥३९॥
चरित्वा सरसीकन्दान्यपात व्याधसङ्कुले । राज्ञा विद्धाश्च ते क्रोडा व्याधैश्च बहवो हताः ॥४०॥
क्षणेनैव वराहास्ते विद्धाः पेतुर्महीतले । तान्दृष्ट्वा तुमुलं नादं व्याधाश्चक्रुः सुदर्पिताः ॥४१॥
धावन्तः प्रमुदायुक्ता मिलिता यत्र भूपतिः । तानादाय भटैर्भूयो निःसृतः सरसीतटात् ॥४२॥
स्वपुरं गन्तुकामोऽसौ दृष्ट्वान्पथि तापसम् । ब्राह्मणं वृद्धहारीतं शङ्खचक्रसुशोभितम् ॥४३॥

मुख लाल हो गया था । उनकी पैदल सेना थक गयी थी और वह ठीक से बोल नहीं पा रही थी ॥२९॥ बहुत बड़े मार्ग को पार करके दोपहर की बेला में प्यास से वे व्याकुल हो गये । उन्होंने सागर के समान एक सरोवर को देखा । उसके तट पर घने वृक्ष थे उसका सुन्दर जल स्वच्छ था ॥३०॥ उसमें बहुत अधिक कमल खिले थे, मधुमत्त भौंरे भरे थे मरकतमणि के समान कमल के पत्तों से ढँका हुआ था । सज्जन पुरुषों के स्वच्छ मन के समान उसमें उजली मछलियाँ उछल रही थी । उसमें जलचर चल रहे थे तथा लहरियों से सुशोभित था ॥३१-३२॥ दुष्टों के मन के समान उसके भीतर ग्राह समूह से वह भरा था । वह कहीं पर सेवर के कारण के कृपणों के मन के समान वह दुर्गम्य था । अनेक प्रकार के पक्षियों से वह सबों के कष्ट को दूर कर रहा था । वह अपने सर्वस्व का दान करके दानदाता के समान सबों के कष्ट को दूर कर रहा था ॥३३-३४॥ वह अपने जल से पिता के समान सभी जीवों को तृप्त कर रहा था । जिस तरह चन्द्रमा दिन के सन्ताप को दूर करते हैं उसी तरह सबों के सन्ताप को दूर कर रहा था॥३५॥ उसको देखकर राजा की थकान दूर उसी तरह से हो गयी जैसे मेघ को देखकर चातक की श्रान्ति समाप्त हो जाती है । राजा ने वहाँ पर मध्याह्न की क्रियाओं को किया उस सरोवर के तट पर सुन्दर चर्चा करते हुए रुक गये ॥३६-३७॥ ततः धनुष पर बाण रखकर अपने सहायकों के साथ शिकार का मांस खाकर पेंड़ के नीचे रात्रि में सोए । बहेलिए सावधानी पूर्वक दिशाओं के मार्ग को छेंक लिए ॥३८॥ इस तरह से जाल बिछाकर वीरों के सो जाने पर आधी रात को शूकरों का समूह प्रत्येक तट पर निकला॥३९॥ सरोवर के कन्द को खाकर वह व्याधों के बीच फंस गया । राजा ने उन शूकरों को छेद दिया और त्याधों ने भी बहुत अधिक शूकरों को मार दिया ॥४०॥ वे वाराह क्षण भर में बाण से विद्ध होकर पृथिवी पर गिर पड़े । उन सबों को देखकर दृप्त व्याधों ने बहुत अधिक ध्वनि की ॥४१॥ वे दौड़ते हुए राजा के पास गये ।

नियमैर्दुष्करैरुग्रैः परिक्षीणकलेवरम् । अस्थिशेषं महादान्तं विस्फुरत्कर्कशत्वचम् ॥४४॥
दधानं हारिणं चर्म वसानं मृदुबल्कलम् । कुर्वाणं नैगमं जाप्यं नखलोमजटाधरम् ॥४५॥
तं वनाश्रमिणं दृष्ट्वा मार्गं दत्त्वा स संभ्रमः ।
प्रणम्य शिरसा राजा कृतपद्माञ्जलिःस्थितः ॥४६॥
अथ चैनमलङ्कारैर्द्विजो निश्चित्य भूमिपम् । उवाच श्रेयसे हेतोःपरोपकृतिवाञ्छया ॥४७॥
किमर्थं गम्यते राजन्काले पुण्यतमे शुभे। माघमासे विहायैव प्रातःस्नानं सरोवरे॥४८॥
प्रत्युवाच ततो राजा नाहं जाने द्विजोत्तम !! ।
माघस्नानफलं कीदृवतन्मे कथय विस्तरात् ॥४९॥
इति भूपवचःश्रुत्वा प्राह वैशानसो मुनिः। भगवान्द्युमणिःशीघ्रमभ्युदेति तमोऽपहा ॥५०॥
स्नानकालोऽयमस्माकं न कथावसरो नृप ! ।
स्नात्वा गच्छ वसिष्ठं तं पृच्दस्व स्वकुलप्रभुम् ॥५१॥
इत्युत्तवा तापसो मौनी प्रातःस्नानाय निर्गतः ।
प्रत्यावृत्य दिलीपोऽपि तत्र स्नात्वा यथाविधि ॥५२॥
पुनःस्वनगरीं वीरो गतोऽसौ हर्षपूरितः। अन्तःपुरे निवेद्याथ वानप्रस्थकथां पुनः ॥५३॥
श्वेताश्वरथमारुह्य सुश्वेतच्छत्रचामरः । सालङ्कारःसुवासाश्च संवृतो मन्त्रिभिःसह ॥५४॥
जयशब्दान्पुनःश्रृण्वन्स्तुतो मागधवन्दिभिः। वसिष्ठस्याश्रमं यात ऋषिवाक्यमनुस्मरन् ॥५५॥
तत्रैव नत्वा ब्रह्मर्षिं विनयावारपूर्वकम्। दत्तासनो गृहीतार्ध्य आशीर्भिःसमलङ्कृतः॥५६॥

उन सबों को लेकर राजा सरोवर के तट से चल पड़े ॥४२॥ अपने नगर में जाने की इच्छा वाले राजा ने रास्ते में तपस्वी ब्राह्मण वृद्ध हारीत को देखे वे शङ्ख, चक्र से सुशोभित थे ॥४३॥ दुष्कर तथा उग्र नियमों को करने के कारण उनका शरीर अत्यन्त दुबला और पतला था वे अत्यन्त दान्त थे उनके शरीर में केवल हड्डी बच गयी थी । उनकी कर्कश त्वचा चमक रही थी ॥४४॥ वे मृग चर्म तथा मुलायम वल्कल धारण किए थे । वे वेद मन्त्र का जप कर रहे थे और नख, लोम तथा जटा धारण किए थे॥४५॥ उन वानप्रस्थी को देखकर उन्होंने शीघ्रता से मार्ग दे दिया । उनको प्रणाम करके राजा हाथ जोड़े थे ॥४६॥ अलंकृत देखकर उन्होंने निश्चित कर लिया कि ये राजा हैं उन्होंने परोपकार की इच्छा से तथा राजा का कल्याण करने के लिए कहा ॥४७॥ हे राजन् ! इस सुन्दर तथा अत्यन्त पुण्यमय काल में आप कहाँ ले जा रहे हैं ? इस माघ मास में सरोवर में प्रातः स्नान किए बिना कहाँ जा रहे हैं ?॥४८॥ राजा ने कहा— द्विजोत्तम ! मैं माघ स्नान का फल नहीं जानता हूँ अतः आप उसे विस्तार पूर्वक बतलाएँ॥४९॥ राजा की इस बात को सुनकर वैखानस मुनि ने कहा— अन्धकार विनष्ट करने वाले भगवान् सूर्य शीघ्र उदित होने वाले हैं ॥५०॥ राजन् ! यह मेरे स्नान का समय है अतएव कथा का अवसर नहीं है तुम स्नान करके अपने कुलगुरु वसिष्ठ के पास जाओ ॥५१॥ यह कहकर मौन धारण किए हुए स्नान करने के लिए चले गये । लौटकर राजा दिलीप भी नियमानुसार स्नान करके ॥५२॥ राजा प्रसन्नता पूर्वक अपनी नगरी में गये । उन्होंनें रानियों को वानप्रस्थी की बात सुनाया ॥५३॥ उजले घोड़े के रथ पर बैठकर वे श्वेत छत्र चामर से सुशोभित हुए फिर सुन्दर वस्त्रालङ्कार से सुशोभित होकर अपने मन्त्रियों के साथ ॥५४॥

सानन्दं मुनिना पृष्टः कुशलं भूपतिर्यदा। तदाऽब्रवीद्वचो राजा हर्षयन्मुनिमानसम् ॥
सोऽपि वैखानसेनोक्तं पप्रच्छ मधुराकृतिः ॥५७॥

दिलीप उवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रुता विस्तरतो मया। आचारो दण्डनीतिश्च राजधर्माश्च ये परे ॥५८॥
चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमाणां च याःक्रियाः ।
दानानि तद्विधानानि यज्ञाश्च विधयस्तथा ॥५९॥
व्रतानि तत्प्रदिष्टानि विष्णोराराधनं तथा ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि माघस्नाने च यत्फलम् ।
विधेयं यद्विधानेन तन्मे ब्रह्मन्मुने वद ॥६०॥

वसिष्ठ उवाच

सम्यगुक्तं परं श्रेयो लोकत्रयहितावहम्। निर्मलीकरणं तेन मुनिना वनवासिना ॥६१॥
कटाक्षैःकामिनीनां ते प्रत्यासन्नमखण्डिताः। कामयन्ते मृगार्केते स्रोतसिस्नातुतेव च ॥६२॥
विना वह्निं विनायज्ञमिष्टापूर्तं बिना प्रिये। वाञ्छन्ति सद्गतिं स्नातुं प्रातर्माघे बहिर्जले॥६३॥
गोभूहिरण्यमाणिक्यस्वर्णधेन्वादिकानि ये। अदत्त्वेच्छन्ति चैकार्णे माघं स्नाता नराधिप !॥६४॥
त्रिःसप्ताहव्रतैःकृच्छ्रैःपराकैश्च निजां तनुम्। अशोष्येच्छन्ति ये स्वर्गं तपसि स्नान्तु ते सदा॥६५॥
हरेःपूजा च वैशाखे तपःपूजा च कार्त्तिके ।
तपोहोमस्तथा दानं त्रयं माघे विशिष्यते ॥६६॥

मागधों और वन्दियों ने राजा का जय-जयकार मनाया और उनकी स्तुति की मुनि के वाक्य को स्मरण करके करते हुए वसिष्ठ महर्षि के आश्रम में चले गये ॥५५॥ वहाँ उन्होंने विनय तथा आचार पूर्वक उनको प्रणाम किया। ऋषि के द्वारा आसन प्राप्त करके वे अर्घ्य स्वीकार करके ऋषि के आशीर्वाद से अलंकृत हुए॥५६॥ आनन्द पूर्वक ऋषि के द्वारा कुशल पूछे जाने पर राजा ने ऋषि की बात को महर्षि के मन को प्रसन्न करते हुए कहा। महर्षि ने वैखानस के द्वारा कही हुयी बात को पूछा ॥५७॥ **दिलीप ने कहा**— भगवन आपकी कृपा से मैंने विस्तार पूर्वक सदाचार, दण्डनीति और राजधर्मों को जाना है ॥५८॥ चारो वर्णों एवं आश्रमों की जो क्रियाएँ हैं उनको दान करने की विधि तथा यज्ञों की विधि को ॥५९॥ उन में बतलये गये व्रतों तथा भगवान् विष्णु के आराधना को भी मैंने सुना है। इस समय मैं माघ स्नान के फल को सुनना चाहता हूँ। हे ब्रह्मन् ! मुने इसका जो विधान है उसको आप बतलायें ॥६०॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा**— बड़ी अच्छी बात हैं तुमने त्रिलोक के कल्याण का साधन पूछा है। उन वनवासी मुनि ने निर्मलीकरण का कार्य किया है ॥६१॥ कामिनियों के कटाक्ष उनके सन्निकट होने पर खण्डित नहीं कर सके। वे मृगार्क के समय नदियों में स्नान करना चाहते हैं ॥६२॥ यज्ञ, इष्टापूर्त तथा अग्निहोत्र के बिना ही सद्गति प्रदान करने वाले वे बाहर की जल में माघ में प्रातः स्नान करना चाहते हैं ॥६३॥ जो लोग गौ, भूमि, माणिक्य तथा स्वर्ण दान के बिना ही केवल माघ स्नान करते हैं ॥६४। तीन सप्ताह तक कृछ्र व्रतों से जो अपने शरीर को सूखाये बिना ही स्वर्ग प्राप्त करना चाहते हैं उनको माघ स्नान में सदा स्नान करना चाहिए ॥६५॥ वैशाख में श्रीहरि की पूजा, कार्तिक में तप की पूजा होती हैं और माघ में तप,

सानुबन्धोऽविपर्यासो धराधीशो भवेद्ध्रुवम् ।
कैवल्योत्पादकाबुद्धिर्यया वा न भवेत्पुनः ॥६७॥
पदध्या वरिवस्या सा विहिता दिव्यलौचनैः ।
तदनन्नं तपोदानं माघेमासि नृपोत्तम ॥६८॥
सकामो वा प्रजा ये वा हरये तद्विनापि वा ।
कायशुद्धि व्रतीभूत्वा चतुर्धा स्नानजं फलम् ॥६९॥
निरन्ना अदितिःसस्नौ माघे द्वादशवत्सरे। पुत्रांश्च द्वादशादित्याँल्लभे त्रैलोक्यदीपकान् ॥७०॥
सुभगा रोहिणी माघा दानशीला त्वरुन्धती ।
शची च रूपसंपन्ना प्रासादे सप्तभूमिके ॥७१॥
विमलीकृतशोभाढ्ये नर्तकीललिताजिरे । दीपवर्णसमुच्छिन्ने रूपवत्स्त्रीजनाकुले ॥७२॥
गीतवादित्रनिर्घोषे मङ्गलाचारशोभिते । वेदध्वनिपवित्रे च विद्वद्विप्रैरलङ्कृते ॥७३॥
सुरार्चनरते रम्ये सदातिथिनिषेविते । मुदितास्ते वसन्तीह यैःस्नातं मकरे रवौ ॥७४॥
यैर्दत्तं बहु माघे च मुरारिश्चार्चितःस्तुतः। इष्टवस्तुपरित्यागान्नियमस्य तु पालनात् ॥७५॥
धर्मसूतिःसदामाघःपापमूलं निकृन्तति। काममूलःफलद्वारा निष्कामो ज्ञानदः सदा ॥७६॥
ये लोका ज्ञानशीलानां ये लोका विपिनौकसाम् ।
ये लोका विष्णुभक्तानां ते माघस्नायिनां सदा ॥७७॥
देवलोकान्निवर्तन्ते पुण्यैरन्यैःपरन्तप। कदाचिन्न निवर्तन्ते माघस्नानरता नराः ॥७८॥

दान और होम विशेष रूप से विख्यात है ॥६६॥ अनुबन्ध और विपर्यास से रहित मनुष्य निश्चित रूप से राजा होता है । जिससे कैवल्य को उत्पन्न करने वाली बुद्धि नहीं होती है ॥६७॥ उसको दिव्य नेत्र वाले ऋषियों ने चरणों की सेवा बतलाया है । हे नृपोत्तम माघ मास में वह अन्न रहित, तपस्या और दान माघ मास में होता है । सकाम पूजा श्रीहरि के बिना भी शरीर शुद्धि से युक्त होकर इन चार प्रकार के माघमास में स्नान जन्य फल होता है ॥६८-६९॥ अदिति ने अन्न नहीं खाने वाली बारह वर्ष तक माघ में स्नान किया और उन्होंने त्रैलोक्य के दीपक स्वरूप बारह आदित्य नामक पुत्रों को प्राप्त किया ॥७०॥ सुभगा, रोहिणी, मघा, दान करने वाली अरुन्धती तथा रूपवती शची, सत मंजिलों वाली प्रासाद पर, स्वच्छ करके अलंकृत नर्तकियों से मनोहर आङ्गन में द्वीपों के वर्णो से सम्पन्न, सुन्दरी स्त्रियों से परिपूर्ण ॥७१-७२॥ गीत तथा वादित्र की ध्वनि से ध्वनित तथा मङ्गलाचरण से सुशोभित, वेद ध्वनि से पवित्र बने हुए तथा विद्वान् ब्राह्मणों से समलंकृत ॥७३॥ देवार्चन से युक्त होने के कारण तथा अतिथियों से सेवित प्रासाद में वे रहते हैं जो माघ मास में स्नान करते हैं ॥७४॥ जो लोग माघ मास में बहुत दान करते हैं और श्रीभगवान् की पूजा करते हैं, अभिप्रेत वस्तु का परित्याग करने के कारण और नियमों का पालन करने के कारण ॥७५॥ माघ का महीना धर्म को सदा उत्पन्न करता है और पापों के मूल को विनष्ट कर देता है । वह कामना का मूल कारण फल प्रदान करके होता है और निष्काम ज्ञान को प्रदान करता है ॥७६॥ ज्ञानियों को वही लोक प्राप्त होते हैं, वन में निवास करने वालों को जो फल प्राप्त होते हैं तथा भगवान् विष्णु के भक्तों को जो लोक प्राप्त होते हैं वे ही लोक माघ में स्नान करने वालों को प्राप्त होते हैं ॥७७॥ हे राजन् ! दूसरे पुण्यों

माघे स्नात्वा तु यो धेनुं दद्यान्मर्त्यः पयस्विनीम् ।
तस्या यावन्ति रोमाणि सर्वाङ्गे च नृपोत्तम ॥७९॥
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते। माघस्नानं प्रकुर्वाणो यो दद्यात्सगुडांस्तिलान् ॥८०॥
पातकं तस्य प्रक्ष्याल्य निर्मलो भाति वै नरः ।
सर्वेषां धान्यराशीनां तिलाःपापप्रणाशनाः ॥८१॥
तस्मान्माघे प्रयत्नेन तिलादेया नृपोत्तम। माघस्नानं प्रकुर्वाणोदद्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥८२॥
पितृन्संतर्प्य शुद्धात्मा याति विष्णोःपरंपदम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन माघोदानेन नीयते ॥८३॥
अदानं न क्षिपेन्माघं सर्वदा नृपसत्तम। वित्तानुसारं ज्ञात्वा वै माघे दानं सदा ददेत् ॥८४॥
माघस्नानं तु यःकुर्यादुपानत्ककमण्डलून्। ददाति ब्राह्मणेभ्यश्च स स्वर्गे तिष्ठतिध्रुवम् ॥८५॥
माघस्नानमयं राजन्कुर्वाणस्तप उत्तमम्। दानं विना क्षिपेन्नैव दानात्स्वर्गमवाप्यते ॥८६॥
दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन प्राप्यते सुखम्। दानेन हीयते पापं महापातकज नृप ॥८७॥
अदानं न तपो भाति ह्यसूर्यं गगनं यथा। असन्ततिकुलं यद्वदाचारेण बिना गृहम् ॥८८॥
नातःपरतरं किंचित्पवित्रं पापनाशनम्। विद्याधराय संगीत भृगुणा मणिपर्वते ॥८९॥

राजोवाच

ब्रह्मन्कदा भृगुर्विप्रो निजागाद महीधरे। तस्मै धर्मोपदेशं च कथ्यतां मे कुतूहलात्॥९०॥

को करने वाले देवलोक से इस संसार में आते हैं किन्तु जो लोग माघ स्नान करने वाले होते हैं वे लोग इस संसार में कभी भी नहीं आते हैं ॥७८॥ माघ में स्नान करके जो लोग दुधारू गौ का दान करते हैं हे राजन् ! उस गौ के शरीर में जितने रोएँ होते हैं ॥७९॥ उतने हजार वर्ष तक वे स्वर्ग में पूजित होते हैं । माघ स्नान करने वाले जो लोग गृह तथा तिल का दान करते हैं ॥८०॥ वे अपने पापों को धोकर निर्मल हो जाते हैं । सभी अन्न समूह में तिल पाप विनाशक है ॥८१॥ हे नृपोत्तम ! इसीलिए माघ मास में तिलों का दान करना चाहिए । माघ सनान करने वाले को ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ॥८२॥ पितरों का तर्पण करके शुद्ध आत्मा वाला वह भगवान् विष्णु के परम पद में जाता है । इसीलिए हर प्रकार के प्रयास से माघ मास में दान करना चाहिए ॥८३॥ हे राजन् ! बिना दान दिए हुए माघ को नहीं बिताना चाहिए । अपनी सम्पत्ति के अनुसार उसे माघ में स्नान करना चाहिए ॥८४॥ हे राजन् ! माघ स्नान करने वाला जो व्यक्ति उपानह और कमण्डलू ब्राह्मणों को दान देता है वह स्वर्ग जाता है ॥८५॥ माघ स्नान रूपी उत्तम तप करने वाले को बिना दान किए हुए माघ का महीना नहीं बिताना चाहिए ॥८६॥ दान से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और दान से सुख की प्राप्ति होती है । हे राजन् ! दान के द्वारा महापातक जन्य पाप विनष्ट होता है ॥८७॥ दान के बिना तपस्या उसी तरह नहीं सुशोभित होती है जैसे सूर्य के बिना दिन नहीं शोभता है और जिस तरह सन्तान के बिना वंश सुशोभित नहीं होता है और सदाचार के बिना गृह सुशोभित नहीं होता है ॥८८॥ इससे बढ़कर दूसरा कुछ भी पुण्य देने वाला नहीं होता है । मणि पर्वत पर भृगु महर्षि ने इस बात को विद्याधर को बतलाया था ॥८९॥ **राजा ने कहा**— हे ब्रह्मन् ! भृगु महर्षि ने कब

वसिष्ठ उवाच

द्वादशाब्दं पुरा राजन्न ववर्ष बलाहकः। तेनोद्विग्नाःप्रजाःक्षीणा गताःसर्वा दिशो दश ॥९१॥
खिलीभूते तदा मध्ये हिमबद्विन्ध्ययोर्नृप !। स्वाहास्वधावषट्कार वेदाध्ययनवर्जिते ॥९२॥
सोपपल्वे तदा लोके लुप्तधर्मे च निष्प्रभे। फलमूलान्नपानीयशून्ये वै भूमिमण्डले ॥९३॥
विन्ध्यपादतरुच्छन्नरम्यरेवातटाश्रमात् । सहशिष्यैश्च निर्गम्य हिमाद्रिं स गतो भृगुः ॥९४॥
तत्र तिष्ठति कैलासगिरेःपश्चिमतो गिरिः। मणिकूट इति ख्यातो हेमरत्नशिलोच्चयः ॥९५॥
अधोधःस्फटिकश्वेतो मध्ये नीलशिलो गिरिः ।
भूतिभिःसर्वतःशुक्लो नीलकण्ठ इवाऽऽबभौ ॥९६॥
सर्वत्रासौ नीलशिलो हेमरेखान्तरान्तरः। स्फुरद्विद्युल्लतःकृष्णो जीमूतइव राजते ॥९७॥
मूर्ध्नि नीलशिलःशैलस्त्वधःकाञ्चनमेखलः। नारायण इवाभाति परिवीत इवाम्बरः ॥९८॥
अमेखला सुनीलाभो मध्येमध्ये सितोपलः। सतारकमिव व्योम शुशुभे स महीधरः॥९९॥
लब्ध्वात्मनस्तनुं शुभ्रां दीप्तदिव्यौषधीधरः। बहुद्योतकरो भाति द्वितीय इव चन्द्रमाः ॥१००॥
अधित्यकासु सङ्गीतैःकिन्नरीणां सकीचकैः। रम्भापत्रपताकाभिःशोभते स सदाऽचलः ॥१०१॥
हरितोपलवैदूर्यपद्मरागशिताश्मनाम् । रुग्रश्मिमण्डलैःसोऽग इन्द्रचापैरिवावृतः ॥१०२॥
सर्वधातुमयैर्हेर्नानारत्नैःप्रशोभितः । सोऽग्निज्वालैरिवात्युच्चैःशृङ्गःसर्वत्र वेष्टितः ॥१०३॥

महीधर को इस बात को बतलाया था ? मुझे कुतूहल है, आप उसको दिए गये धर्मोपदेश को मुझे बतलायें ॥९०॥ **महर्षि वसिष्ठ ने कहा—** प्राचीन काल में मेघ ने वर्षा नहीं की । उससे उद्विग्न होकर क्षीण हुयी प्रजा दशो दिशाओं में चली गयी ॥९१॥ विन्ध्याचल और हिमालय के बीच भाग के विनष्ट हो जाने पर स्वाहा, स्वधा और वषटकार तथा वेदाध्ययन से वह स्थान रहित हो गया ॥९२॥ उपद्रव ग्रस्त संसार में धर्म लुप्त हो गया और कान्ति हीन हो गया । पृथिवी पर फल, मूल, अन्न और जल नहीं रह गये ॥९३॥ विन्ध्याचल की तराई में वृक्षों की छाया से रहित नर्मदा के तट पर विद्यमान आश्रम से अपने शिष्यों के साथ निकलकर महर्षि भृगु हिमालय पर्वत पर चले गये ॥९४॥ वहाँ पर कैलास पर्वत के पश्चिम दिशा में विद्यमान मणिकूट पर्वत विख्यात है । उसकी शिलायें सुवर्ण और रत्नों की हैं ॥९५॥ उसके नीचे के भाग स्फटिक से श्वेत हैं और बीच में पर्वत की नीली शिलायें हैं । वह ऐश्वर्यो से उसी तरह श्वेत था जैसे नीलकण्ठ सुशोभित होते हैं ॥९६॥ सर्वत्र उसकी नीली शिलायें थी और बीच-बीच में सुवर्ण की रेखा थी । चमकती हुयी बिजली से वह काले मेघ के समान सुशोभित था ॥९७॥ उस पर्वत का ऊपरी भाग नीले शिला वाला था और नीचे उसकी मेखल स्वर्ण की थी । आकाश से सुशोभित वह भगवान् नारायण के समान सुशोभित होता था ॥९८॥ मेखला रहित नीली कान्ति वाले उसके बीच में श्वेत शिलायें थीं ताराओं से युक्त आकाश के समान वह पर्वत सुशोभित होता था ॥९९॥ उस का शरीर शुभ्र था उस पर दिव्य औषधियाँ विद्यमान थीं बहुत प्रकाश करने वाला वह दूसरे चन्द्रमा के समान सुशोभित होता था ॥१००॥ वह पर्वत अधित्यकाओं पर किन्नरियों और कीचकों से सुशोभित था ॥१०१॥ नीले पत्थर, वैदूर्य और पद्मराग की कान्ति से सुशोभित अनेक प्रकार की कान्ति समूह से वह पर्वत इन्द्र धनुष समान प्रतीत होता था ॥१०२॥ सम्पूर्ण धातुमय सुवर्ण अनेक रत्नों से सुशोभित पर्वत उच्च शिखरों के

तस्यागत्य नितम्बेषु सतृणासु शिलासु च । विद्याधर्य:प्रसेवन्ते स्वपतीन्कामविक्लवा: ॥१०४॥

निरूद्धान्तर्मरुन्मागा जितक्लेशा विरागिण: ।
ध्यायन्त्यहर्निशं ब्रह्म रम्यसानुगहासु च ॥१०५॥

साक्षसूत्रकरा:सिद्धा अर्धोन्मीलितलोचना:। आराध्यन्ति भूतेशं सुन्दरीषु दरीषु च ॥१०६॥

मन्दारकुसुमामोदसुरभकृतदिङ्मुख: । एषनिर्झरिणीवारिझंकारमुखर:सदा ॥१०७॥

उपत्वकासु खेलद्भिर्वनस्थै:कलभैर्गजै: । कस्तूरीमृगयूथैश्च चारुचित्रमृगैस्तथा ॥१०८॥

विलसच्चमरीवृन्दैर्विचित्रै:श्वापदैस्तथा । नदत्पारावतैश्चैव चकोरैश्चापि कोकिलै: ॥१०९॥

राजहंसैर्मयूरैश्च सदा रम्य:स पर्वत: । सेव्यमान:सदादेवैर्गुह्यकैरप्सरोगणै: ॥११०॥

राजोवाच

बह्वाश्चर्यमय:शैल:सर्वसिद्धिसमाश्रय: । भगवन्कियदुच्छ्राय:कियदायामविस्तर: ॥१११॥

ऋषिरुवाच

षट्त्रिंशद्योजनोच्छ्रायो मस्तके दशयोजन:। आयामविस्तराभ्यां स मूले षोडशयोजन: ॥११२॥

हरिचन्दनमन्दारचूतराजिविराजित: । देवदारुद्रुमाकीर्ण:सरलार्जुनशोभित: ॥११३॥

कालागरुलवङ्गैश्च निकुञ्जैश्च लतागृहै:। विराजते गिरिश्रेष्ठ:सदा पुष्पफलप्रद: ॥११४॥

तं दृष्ट्वा पर्वतं रम्यं तदा दुर्भिक्षपीडित:। भृगुश्चकार तत्रैव वसतिं हृष्टमानस: ॥११५॥

(तस्मिन्मनोहरे शैले कन्दरेषु वनेषु च)। चिरकालं तपस्तेपे तप:सुनिरतो भृगु: ॥
एवं तिष्ठति राजेन्द्र ! द्विजे स्वाश्रमवासिनि ॥११६॥

द्वारा अग्नि की ज्वाला के समान सर्वत्र सुशोभित होता था ॥१०३॥ उसके बीच भाग में विद्यमान तृणों से युक्त शिलाओं पर काम से व्याकुल विद्याधरियाँ अपने पतियों का सेवन करती हैं ॥१०४॥ अपने श्वास वायु को रोककर विरागयुक्त और श्रम रहित महर्षिगण रात-दिन उस शिखर की कन्दराओं में ब्रह्म का ध्यान करते हैं ॥१०५॥ अपने हाथ में माला लिए हुए और आधी खुली आँखों वाले सिद्ध पुरुष सुन्दर कन्दराओं में शङ्करजी की आराधना करते हैं ॥१०६॥ कल्पवृक्ष के पुष्पों की सुगन्धि से उसकी दिशाएँ सुगन्धित हैं। यह झरने के जल के झङ्कार से सदा ध्वनित होता रहता है ॥१०७॥ उपत्यकाओं पर खेलने वाले हाथी के बच्चों से तथा कस्तूरी मृग समूह से तथा सुन्दर चितकबरे मृगों से ॥१०८॥ सुशोभित होने वाली चमरी गायों के समूह से विचित्र जीवों से, कूजने वाले कबूतरों चकोरों तथा कोकिलाओं से ॥१०९॥ राजहंसों तथा मयूरों से मनोहर बने हुए उस पर्वत का सेवन देवता गुह्यक तथा अप्सरा समूह करता है ॥११०॥ **राजा ने कहा**— अनेक आश्चर्यों से युक्त वह पर्वत सभी सिद्धों का आश्रय है । हे भगवन् ! वह कितना ऊँचा और कितना विस्तृत है ?॥१११॥ **ऋषि ने कहा**— यह पर्वत तीस योजन ऊँचा है और उसका ऊपरी भाग दश योजन विस्तृत है । उसकी लम्बाई चौड़ाई नीचे के भाग में सोलह योजन है ॥११२॥ वह हरिचन्दन, मन्दार तथा आम्र राशि से सुशोभित है । उस पर देवदारु के वृक्ष भरे हैं । तथा वह सरल एवं अर्जुन के वृक्षों से सुशोभित है ॥११३॥ वह काला अगरु और लवङ्ग के निकुञ्जों और लता गृहों से सुशोभित है । वह पर्वत श्रेष्ठ हमेशा फलों एवं पुष्पों से भरा रहता है ॥११४॥ उस मनोहर पर्वत को देखकर

अवतीर्यागतो शैलाद्द्वौ विद्याधरदम्पती। समागम्य मुनिं नत्वा स्थितौ तावतिदुःखितौ॥११७॥
तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा मञ्जुवाक्यं द्विजोऽब्रवीत्।
वद विद्याधर! प्रीत्या युवां किमतिदुःखितौ॥११८॥
श्रुत्वा तस्य मुनेर्वाक्यं प्राहविद्याधरो द्विजम्।
श्रूयतां तापसश्रेष्ठ! ममदुःखस्य कारणम्॥११९॥
सुकृतस्य फलं प्राप्य प्राप्तोऽस्मि त्रिदशालयम्।
लब्ध्वाऽपि देवतादेहं मुखं व्याघ्रस्य मेऽभवत्॥१२०॥
न जाने कर्मणःकस्य विपाकोऽयमुपस्थितः।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य न लेभे शम्र मे मनः॥१२१॥
अन्यच्च श्रूयतां विप्र येन मे ह्याकुलंमनः। जायेयं मम कल्याणी मधुवाणी सुरूपिणी॥१२२॥
नृत्यगीतकलाभिज्ञा सर्व सद्गुणशालिनी। यस्मिनकाले कुमारीयं तदाचाऽमलयानया॥१२३॥
विपञ्ची परिवादिन्यातन्त्रीभिःसप्तभिर्भृशम्। वीणावादरसाभिज्ञस्तोषितो नारदोमुनिः॥१२४॥
मुग्धभावेऽपि गायन्त्या त्वनया रक्तकण्ठया!
विचित्रस्वरनादज्ञो देवराजोऽपितोषितः॥१२५॥
अस्याःकौतुकभिन्नाङ्ग्या वादयन्त्या विपञ्चिकाम्।
नानावक्रगतिस्निग्धं श्रुत्वा तं पञ्चमध्वनिम्॥१२६॥
तुतोषोद्भिन्नरोमाञ्चो धुन्वन्मौलिं महेश्वरः। शीलौदार्यगुणग्रामरूपयौवनसंपदा॥१२७॥
नानया सदृशी नाके काचिदस्ति नितम्बिनी।
क्वेयं देवमुखी रामा क्वाहं व्याघ्रमुखःपुमान्॥१२८॥

दुर्भिक्ष से पीड़ित भृगु महर्षि प्रसन्न होकर वहीं निवास किए॥११५॥ उस मनोहर पर्वत की कन्दराओं और वनों में तपस्या करने वाले भृगु महर्षि दीर्घकाल तक तपस्या किए। आश्रम वासी द्विज के इस तरह से रहते हुए हे राजेन्द्र! पर्वत से उतरकर दो विद्याधरों की दम्पती आकर मुनि को नमस्कार करके बैठ गये। वे अत्यन्त दुःखी थे॥११६-११७॥ उन सवों को उस तरह देखकर महर्षि ने मनोहर वाणी में कहा— हे विद्याधर! प्रेम पूर्वक बतलाओ कि तुम दुःखी क्यों हो?॥११८॥ मुनि के वचन को सुनकर किन्नरी ने कहा हे तापस श्रेष्ठ! मेरे दुःख का कारण आप सुनें॥११९॥ अपने पुण्य का फल पाकर हमने स्वर्ग प्राप्त किया है। देवता का देह प्राप्त करके हमारा मुख व्याघ्र का हो गया है॥१२०॥ न-जाने किस कर्म के फल स्वरूप यह परिणाम उपस्थित हुआ है। इस वात को वार-वार याद करके मेरे मन को शान्ति नहीं मिलती हैं॥१२१॥ हे विप्र! आप दूसरी भी बात सुनें जो मेरे दुःख का कारण है मेरी यह जया नाम की सुन्दरी पत्नी है यह मधुरवाणी बोलने वाली है, इसका रूप सुन्दर है॥१२२॥ यह नृत्य कला को जानती है और सभी सद्गुणों से युक्त है। जिस समय कुमारी थी उस समय यह सुन्दरी है॥१२३॥ इस सात तारों वाली वीणा को बजाती थी। वीण वादन के ज्ञाता नारदजी सन्तुष्ट हो गये॥१२४॥ मनोहर कण्ठों से गाती हुयी इस मधुर कण्ठों वाली से इन्द्र भी प्रसन्न हो गये॥१२५॥ कौतुक से भिन्न अङ्गों वाली यह जब वीणा वजा रही थी, अनेक टेढ़ी गतियों से युक्त इसकी पञ्चम ध्वनि को सुनकर॥१२६॥ रोमाञ्चों

इति ब्रह्मन्सदाचिन्त्य दह्यामि हृदि सर्वदा। इति विद्याधरप्रोक्तं श्रुत्वा चेक्ष्वाकुनन्दन ॥१२९॥
त्रिकालज्ञो भृगुःप्राह प्रहसन्दिव्यलोचनः। शृणु विद्याधरश्रेष्ठ विचित्रं कर्मणां फलम् ॥१३०॥
प्राप्य प्राज्ञा न मुह्यन्ति मुह्यन्त्यज्ञानचेतसः। मक्षिकापदमात्रं तु यथा हि विषमंविषम् ॥१३१॥

क्रियात्वविहिताल्पाऽपि विपाके दारुणा तथा ।
उपोष्यैकादशीं माघे तैलाभ्यङ्गःकृतस्त्वया ॥१३२॥
द्वादश्यां प्राग्भवे देहे तेन व्याघ्रमुखो भवान् ।
उपोष्यैकादशीं पुण्यां द्वादश्यां तैलसेवनात् ॥१३३॥

कुरूपं प्राप्तवान्देहं पुराह्येवं पुरूरवाः। दृष्ट्वात्मनःकुकायं स तेन दुःखेन दुःखितः॥१३४॥
गिरिराजं समागम्य देवतासरसस्तटे। स्थित्वा च परमप्रीत्या शुचिःस्नातःकुशासने॥१३५॥
नवनीलघनश्यामं नलिनायतलोचनम्। शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरावृतम् ॥१३६॥
कौस्तुभेन विराजन्तं वनमालाधरं हरिम्। चिन्तयन्हृदये राजा निगृहीताखिलेन्द्रियः॥१३७॥
मासत्रयं निराहारस्तपस्तेपे सुदारुणम्। अल्पेन तपसा तुष्टःसप्तजनमकृतार्चनः ॥१३८॥
संस्मरं स्तस्य भूपस्य तदा प्रादुरभूत्स्वयम्। माघस्य शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां मकरे रवौ॥१३९॥
शङ्खाद्भिरभिषिच्याशु मुदा तं चक्रवर्तिनम्। वासुदेवो ददौ तस्मै स्मारयंस्तैलचेष्टितम्॥१४०॥
अतीवसुन्दरं रूपं कमनीयं मनोहरम्। येन तं चकमे देवी उर्वशी देवनायिका ॥१४१॥

से युक्त शङ्करजी अपने शिर को हिलाते हुए प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा शील की उदारता और गुण समूह रूपी सम्पत्ति से सम्पन्न स्वर्गलोक में इसके समान कोई भी स्त्री नहीं है। कहाँ तो देवताओं के मुख वाली यह मेरी पत्नी और कहाँ व्याघ्र के समान मुख वाला पुरुष मैं ॥१२७-१२८॥ ब्रह्मन्! इस बात को सोचकर मेरा हृदय सदा जलता रहता है। इस बात को विद्याधर के मुख से सुनकर हे राजन्! ॥१२९॥ दिव्य नेत्र वाले त्रिकालज्ञ मुनि भृगु हँसते हुए कहे। हे विद्याधर कर्मों के विचित्र फल को तुम सुनो ॥१३०॥ उसको प्राप्त करके ज्ञानी पुरुष मोहित नहीं होते अज्ञानी ही मोहित होते हं। जिस तरह मक्खी के पैर भर भी विष भयङ्कर होता है ॥१३१॥ थोड़ी सी भी क्रिया नहीं करने पर भी उसका भयङ्कर परिणाम होता है। तुमने एकादशी व्रत करके भी पूर्वजन्म में देह में तेल लगा लिया इसी कारण तुम व्याघ्र के समान मुख वाले हुए हो। एकादशी का उपवास करके द्वादशी के दिन तेल का सेवन करने के कारण तुमने कुरूप देह को प्राप्त किया है। प्राचीन काल में इसी तरह पुरुरवा अपने निन्दित शरीर को देखकर उसके दुःख से दुःखी हो गया ॥१३२-१३४॥ वह गिरिराज पर आकर देवता सरोवर के तट पर अत्यन्त प्रेम पूर्वक पवित्र कुश के आसन पर बैठकर ॥१३५॥ नवीन मेघ के समान नीले शरीर वाले तथा कमल के समान विशाल नेत्र वाले शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मधारण करने वाले, पीताम्बरधारी ॥१३६॥ कौस्तुभमणि से सुशोभित तथा वनमाला धारण करने वाले श्रीहरि का अपने हृदय में चिन्तन करने वाले राजा ने अपनी सारी इन्द्रियों को निगृहीत कर लिया ॥१३७॥ और तीन मासों तक वे भयङ्कर तपस्या करने लगे। सात जन्मों तक पूजन किये जाने वाले श्रीभगवान् थोड़ी ही तपस्या से प्रसन्न हो गये ॥१३८॥ उस राजा का स्मरण करते हुए श्रीहरि प्रकट हो गये। सूर्य के मकर राशि के होने पर माघ मास के शुक्लपक्ष में॥१३९॥ प्रसन्नता पूर्वक राजा को शङ्ख के जल से अभिषिक्त किए और उनको चक्रवर्ती बनाये। भगवान् वासुदेव

इत्थं लब्धवरो राजा कृतकृत्यःपुरंगतः। इति कर्मगतिं ज्ञात्वा किं विद्याधर ! खिद्यते॥१४२॥
भवान्परिजिहीर्षुश्चेद्दानवस्य विरूपताम्। शीघ्रं मद्वचनादेव प्राचीनाघविनाशनम्॥१४३॥
माघमासे कुरु स्नानं मणिकूटनदीजले। मुनिसिद्धसुरैर्जुष्टे कथयिष्यामि तद्विधिम्॥१४४॥
तवभाग्यवशान्माघो निकटःपञ्चमेऽहनि। पौषस्यैकादशीं शुक्लामारभ्य स्थण्डिलेशयः॥१४५॥
मासमेकं निराहारस्त्रिकालं स्नानमाचर। त्रिकालमर्चयन्विष्णुंत्यक्तभोगोजितेन्द्रियः॥१४६॥
माघस्यैकादशीशुक्ला यावद्विद्याधरोत्तम। ततो निर्दग्धपापं त्वां द्वादश्यां पुण्यवासरे॥१४७॥
अभिषिच्य शिवैस्तोयैर्मन्त्रपूतैरहं सुर। कामवक्त्रोपमं वक्त्रं करष्यिामि तवानघ॥१४८॥
देवतावदनो भूत्वा त्वं विद्याधरसत्तम। अनया वरवर्णिन्या सार्धं क्रीड यथासुखम्॥१४९॥
ज्ञातमाघप्रभावस्त्वं माघस्नानं सदा कुरु। यथा मनोरथावाप्तिर्जायते तव सर्वदा॥१५०॥
इत्युक्तं भृगुणा तस्मै सर्वज्ञेन महात्मना। विद्याधराय राजेन्द्र पुनर्गाथा उदाहृता॥१५१॥
माघस्नानैर्विपन्नाशो माघस्नानैरघयक्षः। सर्वयज्ञाधिको माघःसर्वदानफलप्रदः॥१५२॥
माघोगर्जति यज्ञेभ्यो माघोयोगाच्च गर्जति। तीव्राच्च तपसो माघो भो विद्याधर गर्जति॥१५३॥
पुष्करे च कुरुक्षेत्रे ब्रह्मावर्ते पृथूदके। अविमुक्ते प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे॥१५४॥
यत्फलं दशभिर्वर्षैःप्राप्यते नियमैर्नरैः। तत्फलं प्राप्यते माघे त्र्यहस्नानान्न संशयः॥१५५॥

ने पुरुरवा को तेल की याद दिलाते हुए ॥१४०॥ राजा को अत्यन्त सुन्दर और कामनीय रूप प्रदान किए। उसी के कारण देवी उर्वशी उनको अपना पति बनाना चाहा ॥१४१॥ इस तरह से वरदान प्राप्त करके पुरुरवा कृत-कृत्य हो गये और अपने नगर में गये। हे विद्याधर ! इस प्रकार की कर्म की गति को जानकर तुम क्यों दुःखी होते हो ?॥१४२॥ यदि तुम दानव की विरूपता को दूर करना चाहते हो तो शीघ्र ही मेरी बात मानकर पूर्वजन्म के पापों को विनष्ट करने वाले माघ मास में मणिकूट पर्वत की नदी के जल में जो मुनियों, सिद्धों और देवताओं से सेवित है स्नान करो। उसकी विधि को मैं बतलाता हूँ ॥१४३-१४४॥ तुम्हारे भाग्यवशात् माघ मास सन्निकट में है आज के पाँचवें दिन पूष मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी से प्रारम्भ करके वेदी पर सोओ। निराहार रहकर एक मास तक त्रिकाल स्नान करो। तीन बार भगवान् विष्णु की अर्चना करके भोगों का त्याग करके तथा जितेन्द्रिय होकर ॥१४५-१४६॥ माघ शुक्ल एकादशी पर्यन्त हे विद्याधर ! रहो। उसके पश्चात् पाप के भस्म हो जाने से तुमको द्वादशी के पवित्र काल में॥१४७॥ मैं पवित्र जल से अभिषिक्त करके कामदेव के समान तुम्हारा मुख कर दूँगा ॥१४८॥ हे विद्याधर ! श्रेष्ठ देवता के मुख वाला होकर इस सुन्दरी के साथ अपने मनोनुसार क्रीड़ा करो ॥१४९॥ माघ के प्रभाव को जानने वाले तुम सदा माघ स्नान करो। उससे कि तुमको सदैव मनोरथों की प्राप्ति होती रहेगी॥१५०॥ इस तरह सर्वज्ञ महात्मा भृगु से कहे और महर्षि भृगु ने पुनः कहा ॥१५१॥ माघ में स्नान करने से विपत्ति का नाश होता है, माघ स्नान से पापों का विनाश होता है, माघ सभी यज्ञों से अधिक फलदायी है और सभी दानों का फल प्रदान करता ॥१५२॥ माघ यज्ञों से गरजता है, माघ योग से गर्जता है विद्याधर तीव्र तपस्या से भी माघ गर्जता है ॥१५३॥ पुष्कर, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, पृथुदक, अविमुक्त क्षेत्र, प्रयाग तथा गङ्गा सागर सङ्गम स्थल में दश वर्षों में नियमों का पालन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल की प्राप्ति माघ के महीने में तीन दिनों तक स्नान करने से हो जाती है ॥१५४-१५५॥ जो

स्वर्गलोके चिरंरागो येषां मनसिवर्तते। यत्र क्वापि जलेतैस्तु स्नातव्यं मकरे रवौ ॥१५६॥
आयुरारोग्यसंपत्तिरूपसौभाग्यतागुणाः । येषां मनोरथास्तैस्तु न त्याज्यं माघमज्जनम्॥१५७॥
ये च बिभ्यति नरकाद्ये दारिद्र्याच्च संचितात् ।
सर्वथा तैःप्रयत्नेन माघे कार्यं निमज्जनम् ॥१५८॥
दारिद्र्यपापदौर्भाग्यपङ्कप्रक्षालनाय च। माघस्नानान्न चान्योऽस्ति उपायो राजसत्तम ॥१५९॥
श्रद्धाहीनानि कर्माणि तथात्यल्पफलानि वै। फलं ददाति संपूर्णं माघस्नानं यथातथा ॥१६०॥
अकामो वा सकामो वा यत्र क्वाऽपि बहिर्जले ।
इहामुत्र च दुःखानि माघस्नायी न विन्दति ॥१६१॥
पक्षद्वये यथा चन्द्रो वर्धते क्षीयते तथा। पातकं क्षीयते माघे पुण्यराशिश्च वर्धते ॥१६२॥
यथा च खन्या जायन्ते रत्नानि विविधानि च ।
स्नानात्पुण्यानि जायन्ते नराणां माघतस्तथा ॥१६३॥
आयुर्वित्तं कलत्रादि संपदःप्रभवन्ति च । कामधेनुर्यथा कामं चिन्तामणिस्तुचिन्तितम्॥१६४॥
माघंस्नानं ददातीह तद्वत्सर्वान्मनोरथान्। कृते तपःपरंज्ञानं त्रेतायां यजनं तथा ॥१६५॥
द्वापरे तु कलौ ज्ञानं माघःसर्वयुगेषु च। सर्वेषामेव वर्णानामाश्रमाणां च भूपते ॥
माघस्नानं तु धर्मस्य धाराभिरभिवर्षति ॥१६६॥

वसिष्ठ उवाच

इति वाक्यं भृगोःश्रुत्वा तस्मिन्नेवाश्रमे सुरः ।
सहैव भृगुणा माघेगिरौनिर्झरिणीतटे ॥१६७॥

लोग दीर्घकाल से स्वर्ग प्राप्त करना चाहते हैं उनको मकर राशि के सूर्य के होने पर कहीं भी स्नान कर लेना चाहिए ॥१५६॥ जो लोग आयु, आरोग्य, सम्पत्ति तथा सौभाग्य नामक गुणों को प्राप्त करना चाहते हैं उन लोगों को माघ स्नान नहीं छोड़ना चाहिए ॥१५७॥ जो लोग नरक आदि तथा दारिद्र्य से डरते हैं उन लोगों को किसी तरह प्रयास करके माघ स्नान करना चाहिए ॥१५८॥ हे राजवर्य ! दारिद्र्य, पाप और दौर्भाग्य रूप पंक को धोने के लिए माघ स्नान से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है ॥१५९॥ श्रद्धा से रहित कर्मों का फल अत्यन्त अल्प मिलता है । जैसे-तैसे भी किया गया माघ स्नान अपना सम्पूर्ण फल प्रदान करता है ॥१६०॥ घर के बाहर जल में माघ के महीने में निष्काम अथवा सकाम स्नान करने वाला इस लोक तथा परलोक में कहीं भी दुःख नहीं प्राप्त करता है ॥१६१॥ जिस तरह दोनों पक्षों में चन्द्रमा बढ़ते और घटते हैं किन्तु माघ मास में पुण्य बढ़ता है और पाप क्षीण होता है ॥१६२॥ जिस तरह खदान से अनेक प्रकार के रत्न निकलते हैं उसी तरह माघ मास में स्नान करने से पुण्य बढ़ते हैं ॥१६३॥ जिस तरह चिन्तन करने से कामधेनु और चिन्तामणि अभिलषित फलों को प्रदान करते हैं उसी तरह से माघ स्नान सभी मनोरथों को पूर्ण करता है ॥१६५॥ सत्ययुग में तपस्या ज्ञान प्रदान करती है । त्रेतायुग में यज्ञ से ज्ञान प्राप्त होता है और द्वापर युग में भी ऐसा ही होता है और कलियुग में भी माघ स्नान तो सभी युगों में सभी वर्णो एवं सभी आश्रमों के धर्म की धारा बहाता है ॥१६६॥ **महर्षि वसिष्ठ ने कहा—** महर्षि

यथोक्तविधिना स्नानमकरोद्धार्ययासह । भृगोरनुग्रहात्सोऽथ संप्राप्य मनसेप्सितम् ॥१६८॥
देवतावदनो भूत्वा मुमुदे मणिपर्वते। आजगाम भृगुर्विन्ध्यं तमनुग्राह्य हर्षितः ॥१६९॥
मणिमयगिरिराजे स्नानमात्रेण माघे मदनवदनरूपस्तत्र विद्याधरोऽभूत् ।
क्षपितनियमदेहो विन्ध्यपादावतीर्णो भृगुरपि सहशिष्यैराजगामाथ रेवाम् ॥
अखिलभुवनसारं माघमाहात्म्यमेतद्द्विजवर भृगुणोक्तं भूपविद्याधराय ।
विविधफलविचित्रं यःशृणोतीह नित्यं रुचिरसकलकामान्देववत्प्राप्नुयात्सः ॥१७०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥

एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय

वसिष्ठ उवाच

अधुना माघमाहात्म्यं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम। पृच्छते कार्तवीर्याय दत्तात्रेयेण भाषितम् ॥१॥
दत्तात्रेयं हरिं साक्षाद्वसन्तं सह्यपर्वते । पप्रच्छ तं द्विजं गत्वा राजा माहिष्मतीपतिः ॥२॥

भृगु की बात सुनकर उस देवता ने उसी आश्रम में भृगु महर्षि के साथ माघ के महीने में झरना के तट पर विधि पूर्वक अपनी पत्नी के साथ स्नान किया । महर्षि भृगु की कृपा और अपने मनोरथ को प्राप्त करके देवता के मुख वाला हो गया मणि पर्वत पर प्रसन्न हो गया । उसको अनुगृहीत करके महर्षि भृगु विन्ध्य पर्वत पर आ गये ॥१६७-१६९॥ मणिमय गिरिराज पर केवल माघ स्नान करने से कामदेव के सदृश मुख और रूप वाला वह विद्याधर हो गया । नियम काल को बिताकर महर्षि भृगु भी विन्ध्य पर्वत पर अपने शिष्यों के साथ रेवा के तट पर आ गये ॥१७०॥ हे ब्राह्मणवर्य ! सम्पूर्ण लोकों के सारभूत इस माघ माहात्म्य को महर्षि भृगु के द्वारा कथित राजा और विद्याधर के चरित्र को तथा इसके अनेक विचित्र फलों को जो सुनता है वह इस लोक में अपने सभी सुन्दर मनोरथों विद्याधर के ही समान प्राप्त कर लेता है॥१७१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तरखण्ड के माघ माहात्मय के अन्तर्गत वसिष्ठ दिलीप संवाद के अन्तर्गत एक सौ चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पुर्ण हुआ ।।१२४।।

माघ माहात्म्यन्तर्गत कार्तवीर्य और दत्तात्रेय संवाद का वर्णन

महर्षि वसिष्ठ ने कहा— हे राजश्रेष्ठ ! अब मैं माघ का माहात्म्य बतलाता हूँ । इसको कार्तवीर्य को महर्षि दत्तात्रेय ने सुनाया था ॥१॥ महर्षि दत्तात्रेय के रूप में सह्याचल पर रहने वाले श्रीहरि से महिष्मती के राजा कार्तवीर्य ने पूछा ॥२॥ **सहस्त्रार्जुन ने कहा—** हे योगियों में श्रेष्ठ भगवान् ! मैंने सभी

सहस्रार्जुन उवाच

भगवन्योगिनांश्रेष्ठ सर्वेधर्माःश्रुता मया । माघस्नानफलं ब्रूहि कृपया मम सुव्रत ॥३॥

दत्तात्रेय उवाच

श्रूयतां नृपशार्दूल एतत्प्रश्नोत्तरं शुभम् । ब्रह्मणोक्तं पुरा ह्येतन्नारदाय महात्मने ॥४॥
तत्सर्वं कथयिष्यामि माघस्नानफलं महत् । यथादेशं यथातीर्थं यथाविधि यथाक्रियम् ॥५॥
अस्मिन्वै भारते वर्षे कर्मभूमौ विशेषतः । अमाघस्नायिनां नृणां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥६॥
असूर्यं गगनं यद्वदचन्द्रमुडुमण्डलम् । तद्वन्नाभाति सत्कर्म माघस्नानं विना नृप ॥७॥
व्रतैदनैस्तपोभिश्च न तथा प्रीयते हरिः । माघमज्जनमात्रेण यथा प्रीणाति केशवः ॥८॥
न समं विद्यते किंचित्तेजःसौरेणतेजसा । तद्वत्स्नानेन माघस्य न समाःक्रतुजाःक्रियाः ॥९॥
प्रीतये वासुदेवस्य सर्वपापापनुत्तये । माघस्नानं प्रकुर्वीत स्वर्गलाभाय मानवः ॥१०॥
किं रक्षितेन देहेन सुपुष्टेन बलीयसा । अध्रुवेणाप्यशुचिना माघस्नानं विना भवेत् ॥११॥
अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसक्षतजलेपनम् । चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥१२॥
जराशोकविपद्व्याप्तं रोगमन्दिरमातुरम् । रजस्वलमनित्यं च सर्वदोषसमाश्रयम् ॥१३॥
परोपतापितापार्तं परद्रोहि परंविषम् । लोलुपं पिशुनं क्रूरं कृतघ्नं क्षणिकं तथा ॥१४॥
दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं दोषत्रयसमन्वितम् । अशुचि स्रावि सच्छिद्रं तापत्रयविमोहितम् ॥१५॥
निसर्गतोऽधर्मरतं तृष्णाशतसमाकुलम् । कामक्रोधमहालोभनरकद्वारसंस्थितम् ॥१६॥

धर्मों को सुना है । हे सुव्रत ! मुझपर कृपा करके आप माघ स्नान के फल को बतलाइये ॥३॥ **भगवान् दत्तात्रेय ने कहा—** हे राजन् ! आप इस प्रश्न का उत्तर सुनिये । इसको प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने नारदजी को बतलाया था ॥४॥ उन सारे माघ स्नान के फल को मैं देश, तीर्थ, विधि और क्रिया के साथ यथार्थ रूप से बतलाता हूँ ॥५॥ विशेष रूप से इस कर्म भूमि रूपी भारत वर्ष में जो लोग माघ स्नान नहीं करते हैं उनका जीवन व्यर्थ बतलाया गया है ॥६॥ जिस तरह सूर्य से रहित आकाश और चन्द्रमा से रहित तारा समूह नहीं सुशोभित होता है उसी तरह हे राजन् ! माघ स्नान के बिना सत्कर्मों की शोभा नहीं होती है ॥७॥ श्रीहरि, दान, व्रत और तपस्या से वैसे प्रसन्न नहीं होते हैं, जितना वे केवल माघ स्नान करने से प्रसन्न होते हैं ॥८॥ जिस तरह सूर्य के तेज के समान कोई तेज नहीं है, उसी तरह माघ स्नान के समान कोई भी यज्ञ की क्रिया नहीं है ॥९॥ मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् वासुदेव की प्रसन्नता के लिए सभी पापों को विनष्ट करने के लिए तथा स्वर्ग की प्राप्ति के लिए माघ स्नान करे ॥१०॥ माघ स्नान के बिना सुपुष्ट बलवान, अनित्य और अपवित्र शरीर की रक्षा करने से कौन सा लाभ है ?॥११॥ शरीर, हड्डी रूपी स्तम्भों स्नायु रूपी बन्धनों, मांस तथा खून रूपी लेप, चमड़े से ढ़ँका हुआ, दुर्गन्धि से युक्त तथा मलमुत्र का पात्र है ॥१२॥ यह जरा, शोक तथा विपत्तियों से व्याप्त है, रोग का घर आतुर, रजस्वल, अनित्य तथा सभी दोषों का आश्रय हैं ॥१३॥ दूसरों को संतप्त करने वाला, आर्त, दूसरों से द्वेष करने वाला भयङ्कर विष है । लोलुप, चुगुलखोर, क्रूर, कृतघ्न तथा क्षणिक है ॥१४॥ यह दुष्पूर दुर्धर, दुष्ट, तीनों दोषों से युक्त अपवित्र, मलों को बहाने वाला, छिद्र युक्त, तथा त्रिताप से मोहित है ॥१५॥ स्वभावतः पाप कर्म करने वाला, असंख्य तृष्णओं से भारा हुआ, काम, क्रोध, महालोभ और नरक के द्वार

क्रिमिविड्भस्म भवति परिणामे शुनांहविः। ईदृक्छरीरं व्यर्थं हि माघस्नानं विवर्जितम् ॥१७॥
बुद्बुदा इव तोयेषु पूतिका इव जन्तुषु। जायन्ते मरणायैवमाघस्नानविवर्जिताः ॥१८॥
अवैष्णवो हतो विप्रो हतं श्राद्धमयोगि च । अब्रह्मण्यं हतं क्षेत्रमनाचारं हतं कुलम् ॥१९॥
सदम्भश्च हतो धर्मःक्रोधेनैव हतं तपः । अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ॥२०॥
गुर्वभक्ता हता नारी ब्रह्मचारी तया हतः। अदीप्तेऽग्नौ हतो होमो हता भुक्तिरसाक्षिका ॥२१॥

उपजीव्या हता कन्या स्वार्थे पाकक्रियाहता ।
शूद्रभिक्षो हतो यागःकृपणस्य हतं धनम् ॥२२॥
अनभ्यासा हता विद्या हतो राजा विरोधकृत् ।
जीवनार्थं हतं तीर्थं जीवनार्थं हतं व्रतम् ॥२३॥

असत्या च हता वाणीतथापैशुन्यवादिनी । संदिग्धश्च हतो मन्त्रो व्यग्रचितो हतो जपः ॥२४॥
हतमश्रोत्रिये दानं हतो लोकश्च नास्तिकः । अश्रद्धया हतं सर्वं कृतं यत्पारलौकिकम् ॥२५॥
इहलोको हतो नृणां दरिद्राणां यथा नृप। मनुष्याणां तथा जन्म माघस्नानं विना हतम्॥२६॥
मकरस्थे रवौ यो हि न स्नात्यनुदिते रवौ। कथं पापैःप्रमुच्येत कथं स त्रिदिवं व्रजेत् ॥२७॥
ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः । माघस्नायी विपापःस्यात्तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥२८॥
माघमासे रटन्त्यापःकिंचिदभ्युदिते रवौ । ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं पतन्तं पुनीमहे ॥२९॥

के रूप में स्थित है ॥१६॥ मर जाने पर यह या तो क्रिमियों का विट् बन जाता है या भस्म हो जाता है । या कुत्तों का भोजन हो जाता है । इस तरह का शरीर माघ स्नान के बिना व्यर्थ है ॥१७॥ माघ स्नान नहीं करने वाले लोग जल के बुलबुले के समान या जन्तुओं में होने वाली पूतिका के समान व्यर्थ हैं । वे केवल मरने के लिए उत्पन्न होते हैं ॥१८॥ अवैष्णव ब्राह्मण हतभाग्य है योगियों के बिना श्राद्ध व्यर्थ है, ब्राह्मण के बिना क्षेत्र व्यर्थ और सदाचार के बिना वंश व्यर्थ है ॥१९॥ अभिमान पूर्वक किया गया धर्म, क्रोधी का तप, अदृढ ज्ञान तथा प्रमाद पूर्वक किया गया श्रवण ॥२०॥ गुरुजनों की भक्ति नहीं करने वाली नारी, और नारी के जाल में फँसा ब्रह्मचारी, अप्रदीप्त अग्नि में किया गया होम तथा साक्षी रहित भोग ये सबके-सब व्यर्थ हैं ॥२१॥ जिसका उपजीव्य कोई दूसरा हो ऐसी कन्या केवल अपने खाने के लिए बनाया गया भोजन, शूद्र से भीख लेकर किया गया यज्ञ तथा कृपण के धन; ये सबके सब व्यर्थ हैं ॥२२॥ अभ्यास रहित विद्या, विरोध करने वाला राजा, जीविका के लिए किया गया तीर्थ और व्रत ये सब व्यर्थ हैं ॥२३॥ सत्य रहित और चुगुली करने वाली वाणी, सन्देह युक्त मन्त्र, तथा चञ्चल मन से किया गया जप भी व्यर्थ हैं ॥२४॥ अवैदिक को दिया गया दान, नास्तिक तथा श्रद्धा के बिना किये गये सी पारलौकिक कर्म व्यर्थ हैं ॥२५॥ हे राजन् ! जिस तरह दरिद्रों का यह लोक बिगड़ जाता है उसी तरह माघ स्नान के बिना मनुष्यों का जन्म बिगड़ जाता है ॥२६॥ जो मनुष्य मकर राशि के सूर्य के उदित होने से पहले स्नान नहीं करता है, वह पाप से मुक्त होकर देवलोक में कैसे जा सकता है ? ॥२७॥ ब्रह्मघाती, सुवर्ण चुराने वाल, मदिरा पायी, गुरु की शय्या पर सोने वाला भी यदि माघ में स्नान करता है तो वह पाप रहित हो जाता है, और उसके साथ रहने वाला भी पापमुक्त हो जाता है ॥२८॥ माघ मास में सूर्योदय हो जाने पर जल कहते हैं हम किसी ब्रह्मघाती और मदिरा पायी को कैसे शुद्ध करेंगे ॥२९॥ सभी

उपपापानि सर्वाणि पातकानि महान्त्यपि । भस्मीभवन्ति सर्वाणि माघस्नायिनि मानवे ॥३०॥
कम्पन्ते सर्वपापानि माघस्नानसमागमे । नाशकालोऽयमस्माकं यदि स्नास्यति वारिणि॥३१॥
एवं क्रोशन्ति पापानि दृष्ट्वा स्नानोद्यतं नरम् ।
पावका इव दीप्यन्ते माघस्नानैर्नरोत्तमाः ॥३२॥
विमुक्ताःसर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमाः । आर्द्रंशुष्कं लघुस्थूलं वाङ्मनःकर्मभिःकृतम्॥३३॥
माघस्नानं दहेत्पापं पावकःसमिधो यथा । प्रामादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत्॥३४॥
स्नानमात्रेण तन्नश्येन्मकरस्थे दिवाकरे। निष्पापास्त्रिदिवं यान्ति पापिष्ठा यान्ति शुद्धताम्॥३५॥
संदेहो नाऽत्र कर्तव्यो माघस्नाने नराधिप ! ।
सर्वेऽधिकारिणो माघे विष्णुभक्तौ यथा नृप ! ॥३६॥
सर्वेषां स्वर्गदो माघःसर्वेषां पापनाशनः। एष एव परो मन्त्रो ह्येतदेव . परंतपः ॥३७॥
प्रायश्चित्तं परं चैतन्माघस्नानमनुत्तमम्। नृणां जन्मान्तराभ्यासान्माघस्नाने मतिर्भवेत्॥३८॥
अध्यात्मज्ञानकौशल्यं जन्माभ्यासाद्यथा नृप। संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदम् ॥३९॥
पावनं पावनानां च माघस्नानं परं नृप । स्नान्ति माघे न ये राजन्सर्वकामफलप्रदे ॥४०॥
कथं ते भुञ्जते भोगांश्चन्द्रसूर्यग्रहोपमान्। शृणु राजन्महाश्चर्य माघस्नानप्रभावजम् ॥४१॥
कुब्जिका नाम कल्याणी ब्राह्मणी भृगुवंशजा ।
बालवैधव्यदुःखार्ता तपस्तेपे सुदुस्तरम् ॥४२॥

उपपातक और महापाप भी मनुष्य के माघ स्नान करने पर भस्म हो जाते हैं ॥३०॥ माघ स्नान की बेला आने पर सभी पाप काँपने लगते हैं कि यदि यह माघ स्नायी हो जायेगा तो हमलोगों का नाश हो जायेगा॥३१॥ स्नान करने के लिए तैयार मनुष्य को देखकर पाप इसी तरह से चिल्लाने लगते हैं । माघ स्नान करने पर श्रेष्ठ मनुष्य अग्नि के समान प्रकाशित होते हैं ॥३२॥ वे सभी पापों से मुक्त होकर मेष से निकले चन्द्रमा के समान चमकते हैं । वाणी, मन और शरीर से किए गये लघु स्थूल तथा आर्द्र शुष्क सभी पापों को माघ स्नान उसी तरह भस्म कर देता है जिस तरह अग्नि समिधा को जला डालती है । जो पाप, प्रामादिक, ज्ञात, अज्ञात हो गये हों ॥३३-३४॥ वे सबके सब मकर राशि के सूर्य के होने पर स्नान करने मात्र से ही विनष्ट हो जाते हैं । पाप रहित होकर वे स्वर्ग में जाते हैं और अत्यन्त पापी भी शुद्ध हो जाते हैं ॥३५॥ हे राजन् ! माघ स्नान के विषय में भेद नहीं करना चाहिए । जिस तरह भगवान् विष्णु की भक्ति करने का सबको अधिकार है उसी तरह माघ स्नान करने का सबको अधिकार है ॥३६॥ माघ सवों को स्वर्ग, प्रदान करता है, सबों के पाप का नाश करता है । यही सबसे बड़ा मन्त्र और सबसे बड़ा तप है ॥३७॥ यह सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है अनेक जन्मों के अभास से ही मनुष्यों की माघ स्नान करने वाली होती है ॥३८॥ जो संसार रूपी कीचड़ को विनष्ट करने में दक्ष व्यक्ति को जैसे जन्म से अभ्यास करने से अध्यात्म ज्ञान की कुशलता मिलती है, वैसे ही राजन् ! माघ स्नान सबसे बड़ा पवित्र करने वाला है । राजन् जो लोग सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले माघ में स्नान नहीं करते हैं ॥३९-४०॥ वे चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के समान कैसे भोगते हैं ? हे राजन् ! माघ स्नान के प्रभाव जन्य महा आश्चर्य को आप सुनें ॥४१॥ भृगुवंशों में उत्पन्न कल्याणी कुब्जिका ब्राह्मणी बाल वैधव्य जन्य दुःख से आर्त होकर

विन्ध्यपादे महाक्षेत्रे रेवाकपिलसंगमे। तत्र सा व्रतिनी भूत्वा नारायणपरायणा॥४३॥
सदाचारवती नित्यं नित्यं सङ्गविवर्जिता। जितेन्द्रियाजितक्रोधासत्यवागल्पभाषिणी ॥४४॥
सुशीला दानशीला च देहशोषणशालिनी । पितृदेवद्विजेभ्यश्च दत्त्वा हुत्वा तथानले ॥४५॥
षष्ठे काले च सा भुङ्क्ते ह्युञ्छवृत्तिःसदा नृप ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रपाराकतप्तकृच्छ्रादिभिर्व्रतैः ॥४६॥
पुण्यान्नयति सा मासान्नर्मदायाश्च रोधसि। एवं तया तपस्विन्या वल्कलिन्या सुशीलया॥४७॥
सुमहासत्त्वशालिन्या धृतिसंतोषयुक्तया। षष्टिर्माघास्तया स्नाता रेवाकपिलसङ्गमे ॥४८॥
ततःसा तपसा क्षीणा तस्मिंस्तीर्थे मृता नृप ।
माघस्नानजपुण्येन तेन सा वैष्णवेपुरे ॥४९॥
उवाच प्रमुदायुक्ता चतुर्युगसहस्रकम्। सुन्दोपसुन्दनाशाय पश्चात्पद्मभवात्पुनः ॥५०॥
तिलोत्तमेति नाम्ना सा ब्रह्मलोकेऽवतारिता। तेन पुण्यस्य शेषेण रूपस्यैकायनं ययौ॥५१॥
अयोनिजाऽबलारत्नं देवानामपि मोहिनी। लावण्यह्लादिनी तन्वी साऽभूदप्सरसां वरा ॥५२॥
निपुणस्यविधेःस्रष्टार्नूनमाश्चर्यकारिणी ।तामुत्पाद्य विधाता वै तुष्टोऽनुज्ञां तदा ददौ॥५३॥
एणशावाक्षि ! गच्छ त्वं दैत्यनाशाय सत्वरम् ।
ततःसा ब्रह्मणोलोकाद्वीणामादाय भामिनी ॥५४॥
गता पुष्करमार्गेण यत्र तौ देववैरिणौ। तत्र स्नात्वा तु रेवायाःपवित्रे निर्मले जले ॥५५॥

कठोर तप करने वाली ॥४२॥ विन्ध्याचल की तराई में रेवा और कपिल के सङ्गम स्थल में वह व्रतिनी होकर भगवान् नारायण की भक्ति करती थी ॥४३॥ वह सदा सदाचारिणी होकर तथा किसी भी प्रकार की आसक्ति से रहित होकर रहती थी तथा सत्य एवं बहुत कम बोलती थी ॥४४॥ वह सुशील, दान करने वाली, अपने देह को सुखा डालने वाली थी । पितरों, देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करके दिन के छठे भाग में भोजन करती थी तथा सदा उञ्छवृत्ति का पालन करती थी । कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, पाराक, तप्त कृच्छ्र, आदि व्रतों से ॥४५-४६॥ नर्मदा नदी के तट में अतिपुण्य मासों को पुण्य करके बिताती थी । इस तरह वल्कल धारण करने वाली तपस्विनी तथा सुशील महासत्त्व सम्पन्न, धैर्य तथा सन्तोष युक्ता उस नारी ने साठ माघ मासों को रेवा और कपिला सङ्गम पर स्नान किया ॥४७-४८॥ हे राजन् ! उसके बाद तपस्या से क्षीण हुयी वह उस तीर्थ में ही मर गयी । माघ स्नान जन्य पुण्य के कारण वह चार हजार युग तक भगवान् विष्णु के लोक में प्रसन्नता पूर्वक निवास की उसके पश्चात् वह पद्म कल्प में ब्रह्मलोक में तिलोत्तमा के नाम से सुन्द और उपसुन्द के नाश के लिए अवतरित हुयी । उस पुण्य के अवशिष्ट अंश से वह अत्यन्त सुन्दरी हुयी ॥४९-५१॥ अयोनिजा वह नारीरत्न देवताओं को भी मोहित करने वाली थी । अपने सौन्दर्य से आनन्द प्रदान करने वाली वह सुन्दरी अप्सराओं में श्रेष्ठ हुयी ॥५२॥ वह निश्चित रूप से ब्रह्माजी की सृष्टि में आश्चर्य कारिणी हुयी । उसको उत्पन्न करके ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये उसको आज्ञा प्रदान किए ॥५३॥ उन्होंने कहा मृगनयनी तुम दैत्य का नाश करने के लिए जाओ । उसके पश्चात् वह ब्रह्मलोक से बीणा लेकर पुष्कर मार्ग से वहाँ गयी जहाँ वे दोनों देव शत्रु दैत्य थे । वहाँ रेवा नदी के पवित्र

परिधायाम्बरं रक्तं बन्धूककुसुमप्रभम् । रणद्वलयिनी चारुशिञ्जन्मेखलनूपुरा ॥५६॥
लोलमुक्तावली कण्ठी चलत्कुण्डलशोभना ।
माधवीकुसुमापीडा कङ्केलीविटपे स्थिता ॥५७॥
गायन्ती सुस्वरं साऽपि पीडयन्ति तु वल्लकीम् ।
स्वरषट्कं मूर्च्छयन्ती सुस्निग्धं कोमलं कलम् ॥५८॥
इत्थं तिलोत्तमा बाला तिष्ठन्त्यशोककानने। दृष्ट्वा दैत्यभटैरिन्दोःकलेव सुखदा हृदि ॥५९॥
तां दृष्ट्वा विस्मितैराजन्सानन्दैः सैनिकैर्भृशम् ।
त्वरमाणैरदृष्ट्वैव गत्वा सुन्दोपसुन्दयोः ॥६०॥
कथिता संभ्रमेणैव वर्णयित्वा पुनःपुनः। हे दैत्यौ न विजानीमो देवी वा दानवी नुकिम्॥६१॥
नागाङ्गनाऽथ वा यक्षी स्त्रीरत्नं सर्वथा तु सा ।
युवां रत्नभुजौ लोके रत्नभूता हि साऽबला ॥६२॥
वर्तते नातिदूरेऽग्रे ह्यशोके शोकहारिणी ।
गत्वा तां पश्यतं शीघ्रं मन्मथस्याऽपि मोहिनीम् ॥६३॥
इति सेनापतीनां तौ श्रुत्वा वाचं मनोहराम् ।
चषकं सीधुन (शीघ्रत) स्त्यक्त्वा विहाय जलसेचनम् ॥६४॥
उत्तमस्त्रीसहस्राणि त्यक्त्वा तस्माज्जलाशयात् ।
शतभारायसीं क्रूरां कालदण्डोपमां गदाम् ॥६५॥
भिन्नाभिन्नां गृहीत्वा तु जवेनाभिप्लुतं गतौ ।
यत्र शृङ्गारसज्जा सा हन्तुं चण्डीव संस्थिता ॥६६॥

जल में स्नान करके ॥५४-५५॥ दूपहरिया के पुष्प के समान कान्ति वाले लाल वस्त्र को पहनकर के गयी। उसके कङ्गन खनखना रहे थे और उसके नूपुर और करधनी ध्वनि कर रहे थे ॥५६॥ उसके गले के मोती के हार हिल रहे थे उसके सुन्दर कुण्डल भी चञ्चल थे । अपने जूड़े में माधवी पुष्प लगायी थी और कंकेली के वृक्ष पर बैठी हुयी वह सुन्दर स्वर से गा रही थी और बीणा बजा रही थी । वह मधुर, कोमल तथा मनोहर स्वर में मूर्छना कर रही थी ॥५७-५८॥ इस तरह से तिलोत्तमा अशोक वन में बैठी थी । चन्द्रमा की कला के समान हृदय को सुख देने वाली को देखकर दैत्य के अनुचर उसको देखकर आश्चर्यित हो गये और उन अनुचरों ने आनन्द पूर्वक उसके देखे बिना ही शीघ्रता से सुन्द एवं उपसुन्द के पास गये ॥५९-६०॥ तिलोत्तमा का बार-बार वर्णन करके शीघ्रता से उसको बतलाये । हे दैत्यों के स्वामिन्! हमलोग यह नहीं जानते है कि वह कोई देवी या दानवी है ॥६१॥ या वह सर्पों की पत्नी हैं या यक्षी है । वह स्त्री रत्न है आप दोनों रत्नों के उपभोक्ता हैं और वह अबला रत्न है । शोक विनाशिनी वह सन्निकट में अशोक वन में है । आप दोनों वहाँ जाकर देखें वह कामदेव को भी मोहित करने वाली है ॥६२-६३॥ इस तरह सेनापतियों की मनोहर वाणी को सुनकर मदिरा के प्याला को छोड़कर और जलसेक को त्यागकर॥६४॥ उस जलाशय से सौ भार वाली लोहे का दण्ड के समान गदा को लेकर हजारों स्त्रियों का त्याग करके

राजन्संधुक्षयन्तीव दैत्ययोर्मन्मथानलम् । स्थित्वा तस्याःपुरोजाल्मौ तद्रूपेण विमोहितौ ॥६७॥
विशेषान्मधुनामत्तावूचतुस्तौ परस्परम् । भ्रातर्विरम भार्येयं ममास्तु वरवर्णिनी ॥६८॥
त्वमेवार्य त्यजैतां मे भार्यां तु मदिरेक्षणाम् ।
इत्याग्रहेण संरब्धौ मातङ्गाविव सोन्मदौ ॥६९॥
अन्योन्यं कालनिर्दिष्टौ गदया जघ्नतुस्तदा । परस्परप्रहारेण गतासू पतितौ भुवि ॥७०॥
तौ मृतौ सैनिकैर्दृष्ट्वा कृतःकोलाहलो महान् ।
कालरात्रिसमा केयं हा किमेतदुपस्थितम् ॥७१॥
एवं वदत्सु सैन्येषु दैत्यौ सुन्दोपसुन्दकौ । पातयित्वा गिरेःशृङ्गेह्लादिनीव तिलोत्तमा ॥७२॥
प्रस्थिता गगनं शीघ्रं द्योतयन्ती दिशो दश । देवकार्यं ततःकृत्वा आगता ब्रह्मणःपुरः ॥७३॥
ततस्तुष्टे न देवेन विधिना सानुमोदिता । स्थानं सूर्यरथे दत्तं तव चन्द्रानने मया ॥७४॥
भुङ्क्ष्व भोगाननेकास्त्वं यावत्सूर्योऽम्बरे स्थितः ।
इत्थं सा ब्राह्मणी राजन्भूत्वा चाप्सरसाम्वरा ॥७५॥
भुङ्क्तेऽद्याऽपि रवेर्लोकेमाघस्नानफलं महत् । तस्मात्प्रयत्नतो राजञ्छ्रद्दधानैःसदा नरैः ॥७६॥
स्नातव्यं मकरादित्ये वाञ्छद्भिःपरमांगतिम् । नाऽनवाप्तोऽत्र तस्यास्ति पुरुषार्थोहिकश्चन ॥७७॥
नाऽक्षीणं पातकं किंचिन्माघे मज्जति यो नरः ।
तुलयन्ति न ते नाऽत्र यज्ञाःसर्वे सदक्षिणः ॥७८॥

अलग-अलग गदा लेकर शीघ्रता से स्नान करके गये । जहाँ पर शृङ्गार की सज्जा चण्डी के समान विद्यमान थी ॥६५-६६॥ वह दैत्यों की कामाग्नि को प्रदीप्त करती हुयी के समान थी उसके समक्ष खड़े होकर वे दोनों दुष्ट मोहित हो गये ॥६७॥ वे मदिरा के मद में उन्मत्त थे परस्पर में एक-दूसरे से कहे भाई तुम रुक जाओ यह सुन्दरी मेरी पत्नी हो जाय ॥६८॥ अरे बड़े भाई तुम ही रुक जाओ सुन्दरी यह मेरी पत्नी बन जाय । इस तरह के आग्रह के कारण वे दोनों पागल हाथी के समान भिड़ गये ॥६९॥ काल के विषय बने हुए वे दोनों एक दूसरे पर गदा का प्रहार किए । परस्पर प्रहार के कारण वे दोनों मरकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥७०॥ राजन् ! उन दोनों को मृत देखकर सैनिकों ने वहुत कोलाहल किया । काल रात्रि के समान यह कौन है ? यह यहाँ क्यों आयी है ?॥७१॥ इस तरह सुन्द एवं उपसुन्द को मारकर वह पर्वत शिखर पर गिरने वाली बिजली के समान चली गयी ॥७२॥ वह दशो दिशाओं को प्रकाशित करती हुयी आकाश में चली गयी । देवताओं का कार्य करके वह ब्रह्माजी के समक्ष आयी ॥७३॥ उसके बाद प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उसका अनुमोदन किया । उन्होंने कहा— हे चन्द्रमुखी ! मैंने तुमको सूर्य के रथ में स्थान प्रदान किया है ॥७४॥ जब तक सूर्य आकाश में रहें तब तक अनेक प्रकार के भोगो को भोगों । हे राजन्! इस तरह से वह ब्राह्मणी आप्राओं में श्रेष्ठ होकर आज तक भी सूर्य के लोक में माघ स्नान के फलों को भोगती है । अतः हे राजन् ! मनुष्यों को प्रयत्न पूर्वक मकर राशि के सूर्य के होने पर परमागति चाहने वालों को माघ स्नान करना चाहिए । उस व्यक्ति को इस लोक में कुछ भी अप्राप्य नहीं होता ॥७५-७७॥ माघ स्नान करने वाले के सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं उसके समान दक्षिणा दान पूर्वक किये गये कोई

माघस्नानेन राजेन्द्र तीर्थेचैव विशेषतः। न चान्यत्स्वर्गदं कर्म न चान्यत्पापनाशनम्॥७९॥
न चान्यन्मोक्षदं यस्मान्माघस्नानसमं भुवि ॥८०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठादिलीपसंवादे माघस्नानप्रशंसायांसुन्दोपसुन्ददैत्यवधो नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय

कार्तवीर्य उवाच

हेतुना केन विप्रर्षे माघस्नाने महाद्भुतः । प्रभावो वर्ण्यते नूनं तन्मे कथय सुव्रत॥१॥
गतपापो यदेकेन द्वितीयेन दिवंगतः । वैश्योऽसौ माघपुण्येन ब्रूहि मे तत्कुतूहलम् ॥२॥

दत्तात्रेय उवाच

निसर्गात्सलिलं मेध्यं निर्मलं शुचि पाण्डुरम् ।
मलहं पुरुषव्याघ्रद्रावकं दाहनाशनम् ॥३॥
तारकं सर्वभूतानां पोषणं जीवनं च यत्। आपो नारायणोदेवःसर्ववेदेषु पठ्यते ॥४॥
ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी ।
मासानांच तथा माघःश्रेष्ठः सर्वेषु कर्मसु ॥५॥
मकरस्थेरवौ माघे प्रातःकाले तथाऽमले। गोष्पदेऽपि जलेस्नानं स्वर्गदं पापिनामपि ॥६॥

भी यज्ञ नहीं होते हैं ॥७८॥ हे राजेन्द्र ! तीर्थ में किए गये माघ स्नान से बढ़कर कोई भी दूसरा साधन न तो स्वर्ग देने वाला है और न पापों का विनाश करने वाला है ॥७९॥ उसके समान पृथिवी पर कोई मोक्ष देने वाला भी साधन नहीं हैं ॥८०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के माघ माहात्म्य के अन्तर्गत वसिष्ठ दिलीप संवाद के प्रसङ्ग में माघ स्नान की प्रशंसा का सुन्दोपसून्द नामक दैत्यों के वध वर्णन नामक एक सौ पचीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२५।।

माघ स्नान की विधि का वर्णन

कार्तवीर्य ने कहा— हे विप्रर्षे ! आप किस कारण से माघ स्नान के महान और अद्भुत माहात्मय का वर्णन करते है, उसे आप मुझे बतलायें ॥१॥ एक माघ स्नान से वह वैश्य निष्पाप हो गया और दूसरे से स्वर्ग चला गया । मुझे कुतूहल है उसे आप बतलाये ॥२॥ **दत्तात्रेय महर्षि ने कहा—** जल स्वभावतः मेध्य, निर्मल, पवित्र, पाण्डु, मलापहारी, द्रावक और दाह को विनष्ट करने वाला है ॥३॥ सभी जीव को तारने वाला जीवन का पोषण करने वाला सभी वेदों में भगवान् नारायण ही आप कहलाते हैं ॥४॥ जैसे ग्रहों में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्रमा हैं उसी तरह सभी कर्मों में माघ का महीना सभी महीनों से श्रेष्ठ

योगोऽयं दुर्लभो राजंस्त्रैलोक्ये सचराचरे । अस्मिन्योगे त्वशक्तोऽपिस्नायाद्यदि दिनत्रयम् ॥७॥
दद्यात्किंचिदशक्तोऽपि दारिद्र्याभाववाञ्छया ।
त्रिस्नानेनापि माघस्य धनिनो दीर्घजीविनः ॥८॥
पञ्च वा सप्तवाऽहानि चन्द्रवद्धर्धते फलम्। संप्राप्ते मकरादित्ये पुण्येपुण्यप्रदेनृणाम् ॥९॥
सत्कार्यास्तिथयःसर्वाःस्नानदानादिकर्मसु । कर्तारं दापयन्तीह्यक्षयंशाश्वतंपदम् ॥१०॥
तस्मान्माघे बहिःस्नायादात्मनो हितकाम्यया। अथातःसंप्रवक्ष्यामि माघस्नानविधिं परम् ॥११॥
कर्तव्यो नियमःकश्चिद्व्रतरूपी नरोत्तमैः। फलातिशयहेतोर्वै किंचिद्भोज्यंत्यजेद्बुधः ॥१२॥
भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलविमिश्रितम्। त्रिकालं चार्चयेद्विष्णुंवासुदेवं सनातनम् ॥१३॥
दातव्यो दीपकोऽखण्डो देवमुद्दिश्य माधवम् ।
इन्धनं कम्बलं वस्त्रमुपानत्कुङ्कुमं घृतम् ॥१४॥
तैलं कार्पासकोष्ठं च तूलीं तूलवटीं पटीम् ।
अन्नंचैव यथाशक्ति देयं माघे नराधिप ॥१५॥
सुवर्णं रत्तिकामात्रं दद्याद्वेदविदे तथा। तद्दानमक्षयं राजन्समुद्र इव सर्वदा ॥१६॥
परस्याग्निं न सेवेत त्यजेच्चैव प्रतिग्रहम्। माघान्ते भोजयेद्विप्रान्यथाशक्ति नराधिप॥१७॥
देया च दक्षिणा तेभ्य आत्मनःश्रेयइच्छता। एकादशीविधानेन माघस्योद्यापनं तथा॥१८॥
कर्तव्यं श्रद्दधानेन ह्यक्षय्यस्वर्गवाञ्छया। अनन्तपुण्यावाप्त्यर्थं विष्णुसंप्रीतिहेतवे ॥१९॥

है ॥५॥ माघ के महीने में सूर्य के मकरस्थ होने पर प्रातः गौ के खूर भर भी स्वच्छ जल में स्नान पापियों को भी स्वर्ग प्रदान करता है ॥६॥ हे राजन् ! चराचरात्मक त्रैलोक्य में यह योग दुर्लभ है । इस योग में यदि असमर्थ व्यक्ति भी तीन दिन तक स्नान करे ॥७॥ और दारिद्रय कभी नहीं प्राप्त करने की इच्छा से माघ स्नान करे तो वह धनिक और दीर्घजीवी होता है ॥८॥ मकरस्थ सूर्य के होने पर चन्द्रमा पवित्र पुण्य प्रदेश में रहकर पाञ्च या सात दिन में फल बढ़ाते हैं ॥९॥ स्नान तथा दान आदि में सभी तिथियाँ सत्कार के योग्य हैं । वे दान करने वाले को इस मास में अक्षय और शाश्वत फल प्रदान करती हैं ॥१०॥ अतएव आत्म कल्याण की कामना से मनुष्य को माघ में घर से बाहर स्नान करना चाहिए । अब मैं माघ स्नान की विधि बतला रहा हूँ ॥११॥ श्रेष्ठ मनुष्य को व्रत रूपी कोई नियम करना चाहिए । अतिशय फल प्रदान करने के लिए किसी भोज्य पदार्थ का त्याग करना चाहिए ॥१२॥ भूमि पर सोये, घी और तिल से होम करे । सनातन भगवान् वासुदेव की तीनों काल में पूजा करे ॥१३॥ भगवान् माधव की प्रसन्नता के उद्देश्य से अखण्ड दीप जलाना चाहिए । इन्धन, कम्बल, वस्त्र, उपानह कुङ्कुम, और घी ॥१४॥ तेल, रजाई, तुली, तूलवटी वट्टी (तकिया) तथा अपनी शक्ति के अनुसार अन्न माघ में दान करना चाहिए ॥१५॥ वेदज्ञ ब्राह्मण को एक रत्ती भी सुवर्ण दान करना चाहिए । हे राजन् ! वह दान समुद्र के समान अक्षय होता है॥१६॥ दूसरे की आग को न तापे और दान न ले, माघ के अन्त में यथा शक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥१७॥ आत्म कल्याण चाहने वाले को उन ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए तथा एकादशी के विधान से माघ का उद्यापन करे ॥१८॥ अक्षय स्वर्ग चाहने वाले को, अनन्त पुण्य चाहने वाले को, तथा

मकरस्थेरवौ माघे गोविन्दाच्युतमाधव। स्नानेनानेन भो देव यथोक्तफलदो भव॥२०॥

इति मन्त्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनी समाहितः ।
वासुदेवं हरिं कृष्णं माधवं च स्मरेत्पुनः ॥२१॥
गृहेऽपि सजलं कुम्भं वायुना निशि पीडितम् ।
तत्स्नानं तीर्थसदृशंत्रं सर्वकामफलप्रदम् ॥२२॥

तत्र व्रतेन दातव्यं सान्नं चोपस्करान्वितम्। तत्स्नानस्य प्रभावेण नरो न निरयं व्रजेत् ॥२३॥
तप्तेनवारिणा स्नानं यद्‌गृहे क्रियते नरैः। षडब्दफलदं तद्धि मकरस्थे दिवाकरे ॥२४॥

बहिःस्नानं तु वाप्यादौ द्वादशाब्दफलं स्मृतम् ।
तडागे द्विगुणं राजन्नद्यांचैव चतुर्गुणम् ॥२५॥

शतधा देवखातेषु शतधा तु महादने। शतं चतुर्गुणं राजन्महानद्योश्च सङ्गमे ॥२६॥
सहस्रगुणितं सर्वं तत्फलं मकरे रवौ। गङ्गायां स्नानमात्रेण लभते मानवो नृप ॥२७॥
गङ्गायां येऽवगाहन्ते माघमासे नृपोत्तम । चतुर्युगसहस्रं तु न पतन्ति सुरालयात्॥२८॥
दिने दिने सहस्रं तु सुवर्णानां विशांपते। तेन दत्तं तु गङ्गायां यो माघे स्नाति मानवः ॥२९॥
शतेनगुणितं माघे सहस्रं राजसत्तम। निर्दिष्टमृषिभिःस्नानं गङ्गायमुनसङ्गमे ॥३०॥
पापौघभूरिभारस्य दाहार्थे च प्रजापतिः। प्रयागं विदधे भूप प्रजानां च हिते स्थितः ॥३१॥

भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए इन सब कार्यों को श्रद्धा पूर्वक करना चाहिए ॥१९॥ सूर्य को माघ के महीने में मकर राशिस्थ होने पर हे गोविन्द ! हे माधव ! हे अच्युत ! हे देव ! इस स्नान के कारण यथोक्त फल मुझे प्रदान करें ॥२०॥ इस मन्त्र का उच्चारण करके मौन होकर सावधान पूर्वक स्नान करे। फिर वासुदेव, श्रीहरि, कृष्ण तथा माधव इन नामों का स्मरण करे ॥२१॥ घर में भी रात्रि में जल भरे घड़े को जो वायु से शीतल हो गया हो उससे स्नान करना तीर्थ के ही समान होता है ॥२२॥ व्रती को सामग्रियों के साथ अन्न दान करना चाहिए । उस स्नान के प्रभाव से मनुष्य नरक में नहीं जाता है ॥२३॥ मकरस्थ सूर्य के होने पर जो मनुष्य गर्म पानी से स्नान करता है उसको छह वर्ष तक फल की प्राप्ति होती है॥२४॥ घर से बाहर बावली आदि में स्नान करने पर बारह वर्ष तक फल प्राप्त होता है । तालाव में चार गुना फल होता है और नदी में स्नान करने पर हे राजन् ! चार गुना फल मिलता है ॥२५॥ देव कुण्डों में सौ गुना फल मिलता है सौ गुना ही फल नदी में स्नान करने वाले को प्राप्त होता है । हे राजन्! दो महानदियों के सङ्गम स्थल पर उसके चार गुना फल मिलता है ॥२६॥ मकर राशि के होने पर सभी फल हजार गुना हो जाते हैं । चार हजार चतुर्युग तक उनका देव लोक से पतन नहीं होता है । यह फल उनके गङ्गा में स्नान करने पर प्राप्त होता है ॥२७॥ हे नृपोत्तम ! जो लोग माघ के महीने में गङ्गा में स्नान करते हैं उन लोगों का भी हजार चतुर्युग तक देवलोक से पतन नहीं होता है । जो मनुष्य गङ्गा में स्नान करता है उसको प्रतिदिन एक हजार सुवर्ण की मुद्रा दान करने का फल प्राप्त होता है ॥२८-२९॥ हे राजश्रेष्ठ ! माघ में उसके सौ गुना ऋषियों ने फल बतलाया है और गङ्गा यमुना सङ्गम में उसका हजार गुना फल बतलाया गया है ॥३०॥ हे राजन् ! प्रजाओं का कल्याण करने वाले ब्रह्माजी ने प्रयाग का

शृणु स्थानमिदं सम्यक्सितासितजलं किल। पापरूपपशूनां च ब्रह्मणा विहितं पुरा॥३२॥
सितासितजले मज्जेदपि पापशतान्वितः। मकरस्थे रवौ माघे नैव गर्भेषु मज्जति॥३३॥
सूनारतोऽपि यो मर्त्यःप्रयागे स्नानमाचरेत्। माघेमासि नरव्याघ्र स याति परमंपदम्॥३४॥
सितासिता तु या धारा सरस्वत्याविगर्भिता।
तन्मार्गं विष्णुलोकस्य सृष्टिकर्ता ससर्ज वै॥३५॥
दुस्तरा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुर्जया। प्रयागे दह्यते सा तु माघेमासि नराधिप॥३६॥
तेजोमयेषु लोकेषु भुक्त्वाभोगाननेकशः। पश्चाच्चक्रिणि लीयन्तेप्रयागे माघमज्जनात्॥३७॥
उपस्पृशति यो माघे मकरार्के सितासिते।
न तत्पुण्यं च सङ्ख्यातुं चित्रगुप्तोऽपि वेत्यलम्॥३८॥
सन्निमज्जति यो माघे मकरस्थसितासिते। तस्य पुण्यस्य माहात्म्यं वक्तुं ब्रह्माऽपि न क्षमः॥३९॥
संवत्सरशतं साग्रं निराहारस्य यत्फलम्। प्रयागे माघमासे तु त्र्यहस्नानस्य तत्फलम्॥४०॥
स्वर्णभारसहस्रेण कुरुक्षेत्रे रविग्रहे। यत्फलं लभते माघे वेण्याःस्नानाद्दिनेदिने॥४१॥
राजसूयसहस्रस्य राजन्नविकलं फलम्। सितासिते तु माघे च स्नानानां भवति ध्रुवम्॥४२॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुर्यःसप्त च याःपुनः।
वेण्यां स्नातुं समायान्ति माघे मासि नृपोत्तम॥४३॥
सर्वतीर्थानिकृष्णानि पापिनां सङ्गदोषतः। भवन्ति शुक्लवर्णानि प्रयागे माघमज्जनात्॥४४॥
आकल्पसंचितं पापं जन्मभिर्यन्नरैर्नृप। तद्भवेद्भस्मसान्माघे स्नातानां च सितासिते॥४५॥

निर्माण किया है ॥३१॥ सैकड़ों पापों को करने वाला भी मनुष्य प्रयाग के सङ्गम स्थल में स्नान करे। उस स्थान को पाप रूपी पशुओं का वध के लिए ब्रह्माजी ने निर्माण किया है ॥३२-३३॥ हे राजन्! माघ मास में हिंसा करने वाला भी मनुष्य प्रयाग में स्नान करता है वह परम पद को प्राप्त करता है ॥३४॥ जहाँ पर गङ्गा, यमुना की धारा होती है उसके बीच में सरस्वती नदी छिपी रहती है। उसका मार्ग ब्रह्माजी ने विष्णु लोक का बनाया है ॥३५॥ भगवान की वैष्णवी माया तो देवताओं के लिए भी दुस्तर है। राजन्! प्रयाग में माघ मास में स्नान करने से पाप राशि भस्म हो जाती है ॥३६॥ तेजोमय लोकों में भोगों को भोगकर माघ मास में प्रयाग में स्नान करने वाले बाद में श्रीभगवान् में लीन हो जाते हैं ॥३७॥ जो लोग मकरस्थ रवि के हीन पर सङ्गम में स्नान करते हैं उनके पुण्यों को गिनने में चित्रगुप्त भी समर्थ नहीं हैं॥३८॥ जो प्रयाग के सङ्गम में माघ में मकरस्थ सूर्य के होने पर सङ्गम में स्नान करते हैं उसके पुण्य की महिमा ब्रह्माजी भी नहीं बतला सकते हैं ॥३९॥ एक सौ वर्ष तक निराहार रहने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल की प्राप्ति माघ मास में प्रयाग में तीन दिनों तक स्नान करने से हो जाती है ॥४०॥ सूर्य ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में हजार भार सुवर्ण दान करके जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल की प्राप्ति त्रिवेणी में स्नान करने से हो जाती है ॥४१॥ हे राजन्! एक हजार राजसूय का पूरा-पूरा फल प्रयाग कें सङ्गम स्थल में स्नान करने का होता है ॥४२॥ पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं तथा सातो पुरियों में हे राजन् सबके सब माघ मास में प्रयाग में स्नान करने के लिए आते हैं ॥४३॥ पापियों के संसर्ग से सभी तीर्थ काले हो जाते हैं, वे माघ मास में प्रयाग में स्नान करने से श्वेत हो जाते हैं ॥४४॥ राजन् मनुष्यों द्वारा कल्प

वाङ्मनःकायजं पापं नरस्य विलयं व्रजेत्। प्रयागे माघमासे तु त्र्यहस्नातस्य निश्चितम् ॥४६॥
प्रयागे माघमासे यस्त्र्यहं स्नाति च मानवः। पापं त्यक्त्वा दिवं याति जीर्णात्वचमिवोरगः ॥४७॥
कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र कुत्रवगाहिता। तस्माद्दशगुणा पुण्या यत्र विन्ध्येन सङ्गता ॥४८॥
तस्माच्छतगुणा गङ्गा काश्यामुत्तरवाहिनीं। काश्याःशतगुणाप्रोक्ता गङ्गायामुनसङ्गमे ॥४९॥
सा सहस्रगुणा तासां भवेत्पश्चिमवाहिनी। या राजन्दर्शनादेव ब्रह्महत्यापहारिणी ॥५०॥
या पश्चाद्वाहिनीगङ्गा कालिन्द्यासह सङ्गता। हन्ति कोटिकृतं पापं सा माघे नृप दुर्लभा ॥५१॥

यत्कथ्यतेऽमृतं राजन्सा वेणी भुवि कीर्तिता।
तस्यां माघे मुहूर्तं तु देवानामपि दुर्लभम् ॥५२॥

ब्रह्मा विष्णुर्महादेवो रुद्रादित्यमरुद्गणाः। गन्धर्वा लोकपालाश्च यक्षकिन्नरपन्नगाः ॥५३॥

अणिमादिगुणैः सिद्धा येचाऽन्ये तत्त्ववादिनः।
ब्रह्माणी पार्वती लक्ष्मीः शची मेनाऽदितिर्दितिः ॥५४॥

सर्वास्ता देवपत्न्यश्च तथा नागाङ्गना नृप !। घृताची मेनका रम्भा उर्वशी च तिलोत्तमा॥५५॥

गणा ह्यप्सरसां सर्वे पितॄणां च गणास्तथा।
स्नातुमायान्ति मे सर्वे माघे वेण्यां नराधिप ! ॥५६॥

कृते युगे स्वरूपेण कलौ प्रच्छन्नरूपिणः। प्रयागे माघमासे तु त्र्यहस्नानस्य यत्फलम् ॥५७॥

पर्यन्त जो पाप किए गये रहते हैं वे सारे पाप प्रयाग में सङ्गम स्थल में स्नान करने से भस्म हो जाते हैं॥४५॥ प्रयाग में माघ मास में तीन दिन तक स्नान करने मात्र से मनुष्य द्वारा मन, वाणी और शरीर द्वारा किए गये पाप नष्ट हो जाते हैं ॥४६॥ जो मनुष्य माघ में तीन दिन तक स्नान किए रहता है वह सारे पापों को सर्प के केचुल के समान त्यागकर स्वर्ग लोक जाते हैं ॥४७॥ जहाँ कही भी गङ्गा में स्नान किया जाय वह कुरुक्षेत्र में स्नान करने से समान होता है। किन्तु जहाँ गङ्गा का सम्बन्ध विन्ध्य पर्वत से होता है वहाँ पर स्नान करने पर उसके दश गुना फल होता है। उससे भी काशी में उत्तर वाहिनी गङ्गा में सौ गुना पुण्य प्रदान करती हैं। प्रयाग में सङ्गम स्थल की गङ्गा काशी से भी सौ गुना अधिक पुण्य प्रदान करती हैं। वहाँ भी जहाँ गङ्गा पश्चिम वाहिनी हैं वहाँ वे उसके भी हजार गुना अधिक फलप्रद है। हे राजेन्द्र ! उस गङ्गा का दर्शन कर लेने मात्र से ब्रह्महत्या का नाश हो जाता है ॥४८-५०॥ जो पश्चिम वाहिनी गङ्गा यमुना में मिलती हैं वे करोड़ों पापों का विनाश करने वाली है। राजन् ! वह माघ में दुर्लभ होती है ॥५१॥ हे राजन् ! जिसे अमृत कहा जाता है वह पृथिवी पर त्रिवेणी कहलाती है। माघ के महीने में उसमें मुहूर्त भर रहना देवताओं के लिए भी दुर्लभ है ॥५२॥ राजन् मैं माघ के महीने में त्रिवेणी में स्नान करने के लिए ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रुद्रगण, आदित्यगण, मरुद्गण, गन्धर्व, लोकपाल, यक्ष, किन्नर, पन्नग, अणिमा आदि गुणों से युक्त जो सिद्ध तथा तत्त्वदर्शी पुरुष हैं, ब्रह्माणी, पार्वती, लक्ष्मी, शची, मेना, अदिति, दिति, देवताओं की सभी पत्नियाँ, नागों की पत्नियाँ सभी अप्सराएँ और सभी पितृगण आते हैं ॥५३-५६॥ सत्ययुग में स्वरूपतः कलि में प्रच्छन्न रूप से प्रयाग में माघ मास में तीन दिन स्नान करने का जो फल

नाश्वमेधसहस्रेण तत्फलं लभते भुवि। त्र्यहस्नानफलं माघे पुरा काञ्चनमालिनी ॥
राक्षसाय ददौ भूप तेन मुक्त:स पापकृत् ॥५८॥

कार्तवीर्य उवाच

भगवन्राक्षस:कोऽसौ सा का काञ्चनमालिनी ।
कथं दत्तवती धर्मं कथं वा तस्य सद्गतिः ॥५९॥
एतत्कथय योगीन्द्रः ! अत्रिसन्तानभास्कर ! ।
यदि त्वं मन्यसे श्राव्यं परं कौतूहलं हि मे ॥६०॥

दत्तात्रेय उवाच

शृणु राजन्विचित्रं त्वमितिहासं पुरातनम्। यस्य स्मरणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत्॥६१॥
अप्सरारूपसंपन्ना नाम्ना काञ्चनमालिनी। प्रयागे माघमासे सा स्नात्वा याति हरालयम् ॥६२॥
निकुञ्जे गिरिराजस्य तिष्ठता गिरिरूपिणा। दृष्टा गगनमारूढा तेन वृद्धेन रक्षसा॥६३॥
तेजस्विनी सुहेमाभा सुश्रोणी दीर्घलोचना। चन्द्रानना सुकेशी च पीनोन्नतपयोधरा॥६४॥
तां दृष्ट्वा रूपसंपन्नामुवाच राक्षसस्तदा। का त्वं कमलपत्राक्षि कुत आगम्यते त्वया ॥६५॥

आर्द्रं च वसनं कस्मात्सार्द्रा ते कबरी कुतः ।
कुतआगम्यते भीरु कुतस्ते खेचरीगतिः ॥६६॥

केन पुण्येन वा भद्रे तव तेजोमयं वपुः। अतीवरूपसम्पन्नं संभूतं च मनोहरम्॥६७॥
त्वद्वस्त्रविन्दुपातेन मम मूर्ध्नि सुलोचने। क्षणेन ह्यगमच्छान्तिं क्रूरं मे मानसं सदा॥६८॥

होता है वह फल अश्वमेध याग का नहीं हो सकता है । प्राचीन काल में काञ्चन मालिनी ने माघ में तीन दिन के स्नान का फल राक्षस को प्रदान किया उसीसे वह पापों से मुक्त हो गया ॥५७-५८॥ **कार्तवीर्य ने कहा—** हे भगवन् ! वह राक्षस कौन था और काञ्चन मालिनी कौन थी ? उसने पुण्य क्यों प्रदान किया? और राक्षस की मुक्ति कैसे हो गयी ?॥५९॥ हे महर्षि ! अत्रि के वंश को प्रकाशित करने वाले योगीन्द्र मुझे इस बात को आप मेरे लिए श्राव्य मानते हों तो बतलायें मुझे बड़ा ही कौतूहल है ॥६०॥ **दत्तात्रेय महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! आप विचित्र प्राचीन इतिहास को सुनें उसके सुनने मात्र से वाजपेय याग करने का फल प्राप्त होता है ॥६१॥ कोई रूपवती अप्सरा थी और उसका नाम काञ्चनमालिनी था। माघ मास में प्रयाग में स्नान करके शिवलोक में जा रही थी ॥६२॥ गिरिराज के निकुञ्ज में पर्वत रूप से रहने वाले उस वृद्ध राक्षस ने आकाश में जाती हुयी उसे देखा ॥६३॥ वह अप्सरा तेजस्विनी, सुवर्ण के समान कान्ति वाली, सुन्दर श्रोणी प्रदेश वाली, बड़े-बड़े नेत्रों वाली, चन्द्रमा के समान आह्लादक मुखवाली तथा सुन्दर केशों वाली थी । उसके स्तन मोटे और उठे हुए थे ॥६४॥ उसको रूपवती देखकर राक्षस ने कहा हे कमलनयनी तुम कौन हो ? और कहाँ से आ रही हो ?॥६५॥ तुम्हारे वस्त्र और केश भिंगे क्यों हैं? सुन्दरी ? तुम कहाँ से आ रही हो और तुम्हारी आकाश में गति कैसे है ? ॥६६॥ हे भद्रे ! किस पुण्य के प्रभाव से तुम्हारा शरीर तेजोमय है ? और अत्यन्त रूप से युक्त और मनोहर हुआ है॥६७॥ हे सुन्दरी! तुम्हारे वस्त्र के विन्दु मेरे शिर पर गिरने से, मेरा क्रूर मन क्षणभर में ही शान्त हो गया है ॥६८॥

नीरस्य महिमा कोऽयमेतद्व्याख्यातुमर्हसि। त्वं मे शीलवती भासि नाकृतिर्निर्गुणा भवेत् ॥६९॥

अप्सरा उवाच

श्रूयतामप्सराश्चाहं भो रक्षः कामरूपिणी। प्रयागतश्चागताऽहं नाम्ना काञ्चनमालिनी॥७०॥
आर्द्रःपरिकरो मेऽतः सुस्नाताहं सितासिते। गन्तव्यं तु मया रक्षः कैलासे तु नगोत्तमे॥७१॥
तत्राऽऽस्ते पार्वतीनाथः सुरासुरसुपूजितः। वेणीवारिप्रभावेण रक्षस्ते क्रूरता गता॥७२॥
जाताऽहं येन पुण्येन गन्धर्वस्य सुमेधसः। कन्यका दिव्यरूपा तु तत्सर्वं कथयामि ते ॥७३॥
कलिङ्गाधिपतेराज्ञस्त्वहमासं च वेश्यका। रूपलावण्यसम्पन्ना सौभाग्यमदगर्विता॥७४॥
अन्यासां युवतीनां च तत्पुरेऽहं शिरोमणिः।
तज्जन्मनि मया रक्षो भुक्त्वा भोगान्यथेच्छया ॥७५॥
मोहितं तत्पुरं सर्वं मया यौवनसंपदा। रत्नानि च विचित्राणि भूषणानि धनानि च ॥७६॥
वासांसि चित्ररूपाणि कर्पूरागुरुचन्दनम्। एतच्चोपार्जितं सर्वं मया मोहनरूपया॥७७॥
नाहं जानामिहेम्नोऽन्तं स्वनिवासे निशाचर ! ।
संसेवन्ते युवानो मे चरणौकामपीडिताः ॥७८॥
मया ते वञ्चिताः सर्वे सर्वस्वेन तु मायया। अन्योन्यस्पर्धाभावेन मृताः केचितु कामिनः ॥७९॥
इत्थं तन्नगरे रम्ये सकले मे गतिस्तदा। प्राप्ते तु वार्द्धके काले शुशोच हृदयं मम ॥
न दत्तं न हुतं जप्तं न व्रतं चरितं मया ॥८०॥
नाराधितो मया देवश्चतुर्वर्गफलप्रदः। न मया पूजिता देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥८१॥

जल का यह कैसा प्रभाव है उसे तुम बतलाओ । तुम मुझे शीलवती प्रतीत होती हो तुम्हारा आकार गुण हीन नहीं हो सकता है ?॥६९॥ **अप्सरा ने कहा—** हे अपने मनोऽनुकूल रूप धारण करने वाले राक्षस! आप सुनें । मेरा नाम काञ्चनमालिनी है । मैं प्रयाग से आ रही हूँ ॥७०॥ गङ्गा यमुना के सङ्गम में स्नान करने के कारण मेरे वस्त्र भींगे हैं । हे राक्षस ! मुझे पर्वत श्रेष्ठ कैलास में जाना है ॥७१॥ देवताओं और असुरों से पूजित भगवान् शिव वहाँ है । हे राक्षस ! त्रिवेणी के जल के प्रभाव से आपके मन की क्रूरता दूर हो गयी है ॥७२॥ मैं जिस पुण्य के प्रभाव से सुमेधा नामक गन्धर्व की दिव्य रूप वाली पुत्री हुयी उसे मैं पूर्ण रूप से बतलाती हूँ ॥७३॥ मैं कलिङ्ग देश के राजा की वेश्या थी । मैं रूप के सौन्दर्य से सम्पन्न तथा सौभाग्य के मद से गर्वित थी ॥७४॥ उस नगर में दूसरी युवतियों में मै श्रेष्ठ थी । उस जन्म में एक राक्षस ने मेरा अपनी इच्छा के अनुसार भोग किया ॥७५॥ युवती मैंने अपने रूप से उस सम्पूर्ण नगरी को मोह लिया । अपने मोहक रूप से मैंने विचित्र रत्नों, भूषणों और धनों को विविध प्रकार के वस्त्रों, कर्पूर, अगरु और चन्दन इन सबों को अर्जित किया ॥७६-७७॥ हे निशाचर ! मुझे इस बात का भी पता नहीं था कि मेरे घर में कितना सुवर्ण है । काम पीड़ित युवा पुरुष मेरे चरणों की सेवा करते थे॥७८॥ मैंने अपनी माया से उन सबों के, सर्वस्व को ठगा । परस्पर में स्पर्धा होने के कारण उनमें से कुछ कामी मर गये ॥७९॥ इस तरह से उस सम्पूर्ण नगर में मेरी गति थी वृद्धापन आने पर मैंने हृदय में विचार किया मैंने दान, होम, जप तथा व्रत कुछ भी नहीं किया है ॥८०॥ मैंने चारों पुरुषार्थ रूपी फल

सर्वपापहरो विष्णुर्नस्मृतो भोगलुब्धया। न च संतर्पिता विप्रा न कृतं प्राणिनांहितम्॥
अणुमात्रमिदं पुण्यं न कृतं च प्रमादतः ॥८२॥
पातकं तु कृतं भद्र तेन मे दह्यते मनः । बहुथैवं विलप्याऽहं ब्राह्मणं शरणंगता ॥८३॥
ब्रह्मण्यं वेदविद्वांसं तस्य राज्ञःपुरोहितम् । स हि पृष्टो मयारक्षः कथं मे निष्कृतिर्भवेत्॥८४॥
पापस्याऽस्य द्विजश्रेष्ठ कथं यास्यामि सद्गतिम् ।
स्नेनैव कर्मणा तप्तां वराकीं दीनमानसाम् ॥८५॥
पापपङ्कनिमग्नां त्वं मामुद्धर कचग्रहैः । मयि कारुण्यजं वारि वर्षहर्षदृशा द्विज ! ॥८६॥
सज्जने साधवः सर्वे साधुः साधुरसज्जने । इत्यसौ मद्वचः श्रुत्वा चकाराऽनुग्रहं मयि ॥
ऊचे प्रीतिकरं वाक्यं सर्वधर्ममयं द्विजः ॥८७॥

द्विज उवाच

निषिद्धाचरणं जाने सर्वन्तेऽहं वरानने। कुरु मे सत्वरं वाक्यं याहि क्षेत्रं प्रजापतेः ॥८८॥
तत्र गत्वा कुरु स्नानं तेन पापक्षयस्तव। सर्वं मनोगतं भद्रे त्वदीयं शोचितं मया ॥८९॥
नाहमन्यत्रपश्यामि यत्ते पापप्रणाशनम्। प्रायश्चित्तं परं तीर्थे स्नानंचऋषिभिःस्मृतम् ॥९०॥
किन्तु तीर्थे त्यजेद्भीरु मनसाऽप्यशुभं कृतम् ।
प्रयागस्नानशुद्धा त्वं स्वर्गं यास्यसि निश्चितम् ॥९१॥
प्रयागस्नानमात्रेण नृणां स्वर्गो न संशयः। अन्यदेशकृतं पापं तत्क्षणादेव भामिनि !॥९२॥

देने वाले श्रीभगवान् की भी पूजा नहीं की है और न तो दुर्गति का विनाश करने वाली दुर्गा देवी की ही पूजा की है ॥८१॥ भोग के लोलुप मैंने सभी पापों को विनष्ट करने वाले भगवान् विष्णु की भी आराधना नहीं की है मैंने न तो ब्राह्मणों को खिलाया है और न तो मैंने किसी प्राणी का कल्याण किया है । प्रमाद के कारण मैंने अणुमात्र भी पुण्य कर्म नहीं किया है ॥८२॥ मैंने केवल पाप ही किया है, उसी के कारण मेरा मन जल रहा है । इस तरह से वहुत विलाप करके मैं ब्राह्मण की शरणागति की॥८३॥ ब्राह्मणत्व का सम्मान, वेद के विद्वान् उस राजा के पुरोहित के पास गयी और पूछी हे ब्राह्मण! मेरा उद्धार कैसे हो सकता है ॥८४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं पापिनी हूँ मेरी सद्गति कैसे हो सकती है ? अपने कर्मों के कारण दुःखी मुझ वाराकी का पाप रूपी कीचड़ में फँसी हुयी मेरा वाल पकड़कर आप उद्धार करें। हे द्विज ! आप मुझ पर करुणा करें ॥८५-८६॥ सज्जन पुरुष के पास सभी सज्जन होते हैं और असज्ज्न पुरुष के पास असज्जन। इस तरह के मेरी वाणी सुनकर उन्होंने मुझ पर कृपा की । उन्होंने प्रसन्न करने वाले धर्ममय वाक्य कहा॥८७॥ ब्राह्मण ने कहा सुन्दरि ! मैं तुम्हारे सम्पूर्ण निषिद्ध कर्म को जानता हूँ। तुम मेरे कहने के अनुसार शीघ्र ही प्रजापति क्षेत्र में जाओ ॥८८॥ वहाँ जाकर स्नान करो ऐसा करने से तुम्हारे पाप का नाश हो जायेगा । भद्रे ! तुम्हारी सारी बातों का मैंने विचार किया है ॥८९॥ तुम्हारे पापों को विनष्ट करने वाले किसी दूसरे साधन को मैं नहीं जानता हूँ । ऋषियों के साथ तीर्थ में स्नान करना सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है ॥९०॥ हे सुन्दरि ! तीर्थ में किसी अशुभ कर्म को सोचना भी नहीं चाहिए । प्रयाग स्नान करके तुम निश्चित रूप से स्वर्ग जाओगी ॥९१॥ इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रयाग में स्नान करने

प्रयागे विलयं याति पापं तीर्थकृतं विना। शृणु भीरु पुरा शक्रो गौतमस्य मुनेर्वधूम्॥९३॥
दृष्ट्वा कामवशं प्राप्तस्तां गतो गुप्तकामुकः ।
उग्रेण तेन पापेन तदैव जनितं फलम् ॥९४॥
ऋषिस्त्रीगन्तुरिन्द्रस्य तस्याश्च पुस्तस्तदा। कुत्सितं गर्हितं जातमिति लज्जाकरं वपुः॥९५॥
तद्भर्तुः शापमाहात्म्यात्सहस्रभगविह्वितम्। अधोमुखस्ततो भूत्वा देवराजो विनिर्गतः॥९६॥
निनिन्द स्वकृतं कर्म सोऽभिभूतः सलज्जितः ।
मेरोःशिरसि तोयाढ्ये शतयोजनविस्तृते ॥९७॥
तत्र गत्वा प्रविष्टस्तु हेमाम्भोरुहकोरके। तत्रस्थो गर्हयन्नित्यमात्मानं मन्मथं तथा॥९८॥
धिक्तां कामात्मतां लोके सद्यः पातकदायिनीम् ।
यया हि नरकं याति सर्वलोकविगर्हितः ॥९९॥
आयुःकीर्तियशोधर्मधैर्यध्वंसकरी तथा। धिङ्मन्मथं दुराचारमापदां नियतं पदम्॥१००॥
देहस्थं दुर्दमं शत्रुमसंतुष्टं सदावशम्। इत्थं वादिनि प्रच्छन्ने वासवे पद्मसद्मनि॥१०१॥
आखण्डलं विना भीरु देवलोको न शोभते ।
ततो देवाःसगन्धर्वा लोकपालाःसकिन्नराः ॥१०२॥
शच्या सह समागम्य पप्रच्छुस्ते बृहस्पतिम् ।
भगवन्बलभिद्देवं नैव जानीमहे वयम् ॥१०३॥
क्व तिष्ठति गतः कुत्र कुत्र वा मृगयामहे ।
न नाकः शोभते तेन विना देवगणैःसह ॥१०४॥

मात्र से मुनियों को स्वर्ग मिलता है । हे भामिनि ! दूसरे स्थान में किये गये पाप प्रयाग में क्षणभर में विनष्ट हो जाते हैं, किन्तु प्रयाग में किए गये पाप का वहाँ भी विनाश नहीं होता है । हे भद्रे ! सुनो, प्राचीन काल में इन्द्र गौतम मुनि की पत्नी को ॥९२॥ देखकर कामार्त हो गये और गुप्त रूप से कामुक रूप बनाकर गये उस उग्र पाप से उसको उसी समया फल प्राप्त हो गया ॥९३-९४॥ ऋषि की पत्नी के साथ सहगमन करने वाले इन्द्र का शरीर निन्दित और लज्जाकार हो गया । गौतम ऋषि के शाप के कारण उसमें हजार भाग हो गये । उसके बाद इन्द्र नीचे मुँह करके वहाँ से निकल गये । अभिभूत और लज्जित होकर उन्होंने अपने कर्म की निन्दा की । वे सौ योजन विस्तृत और जल से परिपूर्ण सुमेरु पर्वत के शिखर पर चले गये॥९५-९७॥ वहाँ जाकर वे स्वर्णिम कमलकी कली में प्रवेश कर गये । वहाँ से सदैव अपना तथा कामदेव की निन्दा करते थे ॥९८॥ संसार में सद्यः फल देने वाली कामुकता को धिक्कार है । उसके कारण जीव सभी लोकों में निन्दित नरक में जाता है ॥९९॥ वह आयु, कीर्ति, यश, धर्म और धैर्य को विध्वस्त कर देती है। दुराचारी कामदेव को भी धिक्कार है, क्योंकि वह निश्चित रूप से विपत्ति में डालने वाला होता है ॥१००॥ वह देह में रहने वाला दुर्दम शत्रु है असन्तुष्ट और वश में नहीं रहने वाला है। इस तरह कमल में छिपकर इन्द्र के कहने पर हे भीरु इन्द्र के बिना स्वर्ग सुशोभित नहीं होता था ॥१०१॥ वह कब सनाथ और ऐश्वर्य से युक्त होगा इसमें विलम्ब करना उचित नहीं है । उसके पश्चात् देवता, गन्धर्व, किन्नर और लोकपाल ॥१०२॥ शची के साथ आकर सबों ने बृहस्पति से पूछा हे भगवन् ! इन्द्र जाने कहाँ चले गये ॥१०३॥ वे कहाँ

सुपुत्रेण बिना यद्वत्कुलं श्रीमद्गुणान्वितम् । उपायश्चिन्त्यतां सद्यः स्वर्लोको येन शोभते॥१०५॥
सनाथः सुश्रियायुक्तो न विलम्बोऽत्र युज्यते ।
इतितेषां वचःश्रुत्वा गुरुर्वचनमब्रवीत् ॥१०६॥
जानेऽहं स्वापराधेन लज्जया यत्र तिष्ठति। रभसा लब्धकार्यस्य भुङ्क्ते स मघवा फलम्॥१०७॥
नृणां नीतिपरित्यागाद्विपाकाः स्युर्भयङ्कराः । अहो राज्यमदैर्मत्तः कृत्याकृत्यमचिन्तयन् ॥१०८॥
कृतवान्निन्द्यमानं हि दृष्टादृष्टक्षयङ्करम् । कुर्वन्ति बालिशा यत्र दैवोपहतबुद्धयः ॥१०९॥
अपराधाद्यथा जन्म स्यादिहामुत्र निष्फलम्। अधुना तत्र गच्छामो यत्र शक्रः स तिष्ठति॥११०॥
इत्युक्त्वा निर्गताः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः। दृष्ट्वा सरसि विस्तीर्णे स्वर्णपङ्कजकाननम् ॥१११॥
तुष्टुवुर्देवराजं ते प्रबोधो येन जायते। ततो गुरोःप्रबोधेन निर्गतः पद्मकुड्मलात् ॥११२॥
दीनाननो विरूपस्तु व्रीडाकुञ्चितलोचनः। जग्राह चरणाविन्द्रो गुरोस्तस्याग्रजन्मनः ॥११३॥
त्राहि मां निष्कृतिं ब्रूहि पापस्याऽस्य बृहस्पते ! ।
देवराजवचः श्रुत्वा जगौ विप्रो बृहस्पतिः ॥११४॥
शृणु देवेन्द्र वक्ष्येऽहमुपायं पापनाशनम्। प्रयागस्नानमात्रेण तत्क्षणादे पातकात् ॥११५॥
मुच्यसे देवराज त्वं तत्र यामः सहैव ते। अथ पुरोधसा सार्धमागत्य बलमर्दनः॥११६॥
सस्नौ सितासिते तीर्थे सद्यो मुक्तो ह्यघैस्ततः ।
अथ देवगुरुस्तस्मै प्रसन्नस्तु वरं ददौ ॥११७॥

रहते हैं ? कहाँ गये हैं ? और हमलोग उनको कहाँ खोजे ? उनके बिना स्वर्ग देवताओं के रहने पर भी शोभा नहीं पाता है ॥१०४॥ जिस तरह ऐश्वर्य सम्पन्न, गुणो से युक्त भी वंश सुपुत्र के बिना नहीं शोभता है, आप ऐसा उपाय सोचें जिससे कि स्वर्ग लोक सुशोभित हो । उन सबों की इस वाणी को सुनकर वृहस्पति ने कहा ॥१०५-१०६॥ मैं जानता हूँ कि इन्द्र कहाँ है ? वे अपने अपराध के कारण लज्जावश पड़े हैं। इन्द्र सहसा किए हुए अपने कार्य का फल भोग रहे हैं ॥१०७॥ मनुष्य जब नीति का परित्याग करता है तो उसका भयङ्कर परिणाम होता है । राज्य मद से मत्त बने लोग कर्तव्य का विचार किए बिना किए गये निन्दित कार्य का फल भयङ्कर होता है । ऐसा कार्य करने वाले मूर्खों की बुद्धि मारी जाती है ॥१०८-१०९॥ अपराध वशात् ही उसके अनुसार इस लोक और पर लोक में जन्म होता है । अब हम वहाँ चलते हैं जहाँ पर इन्द्र हैं ॥११०॥ यह कहकर सबके सब बृहस्पति को आगे करके निकल पड़े। विस्तृत सरोवर में स्वर्ण पङ्कज के वन को देखकर ॥१११॥ उन लोगों ने इन्द्र की प्रार्थना की जिससे वे जगे । तदान्तर बृहस्पति के कहने से इन्द्र कमल की कली से बाहर निकले ॥११२॥ दीन बने हुए विरूप तथा लज्जा से अपनी आँखे बन्द किए हुए इन्द्र ने ब्राह्मण बृहस्पति के पैर को पकड़ लिए ॥११३॥ और कहे हे बृहस्पते ! आप मेरी रक्षा इस पाप से कीजिए । देवराज की वातें सुनकर ब्राह्मण बृहस्पति ने कहा॥११४॥ हे इन्द्र ! मैं पाप नाशक उपाय को बतला रहा हूँ उसे आप सुनें । प्रयाग में स्नान करने मात्र से तत्क्षण ही पातक से मुक्त हो जाओगे, हम सभी तुम्हारे साथ चल रहे हैं । तदनतर अपने पुरोहित के साथ आकर इन्द्र ॥११५-११६॥ तीर्थराज के त्रिवेणी क्षेत्र में स्नान करके सद्यः पाप मुक्त हो गये ।

प्रयागस्नानमात्रेण क्षीणं पापं तवानघ ! । क्षीणपापस्य ते शक्र मत्प्रसादेन सत्वरम् ॥११८॥
सहस्त्रमेतद्योनीनां सहस्त्रं स्याद्दृशां तव । तदैव द्विजवाक्येन शुशुभे च शचीपतिः॥११९॥
लोचनानां सहस्त्रेण पङ्कजैरिव मानसम् । अथ वृन्दारकैः सर्वैर्ऋषिभिश्चाभिपूजितः ॥१२०॥

गन्धर्वैः स्तूयमानस्तु गतः शक्रोऽमरावतीम् ।
इत्थं सद्यो विपापोऽभूत्प्रयागे पाकशासनः ॥१२१॥
याहि त्वमपि कल्याणि प्रयागं देवसेवितम् ।
सद्यः पापविनाशाय तथा स्वर्गतये दृढम् ॥१२२॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा सेतिहासं समङ्गलम् ।
तदैव संभ्रमापन्ना नत्वा पादौद्विजस्यतु ॥१२३॥

त्यत्तवा बन्धुजनं सर्वं दासदासीगृहं तथा । सकलान्विषयानक्षो विषग्रासानिवस्फुटम् ॥१२४॥

वपुश्च क्षणविध्वंसि पश्यन्ती निर्गता ह्यहम् ।
नरकार्णवसंपातदारुणान्तरवह्निना ॥१२५॥

हृदये कुणपव्याघ्रतदातत्तप्यमानया । मया गत्वा कृतं स्नानं माघे मासि सितासिते॥१२६॥

तस्य स्नानस्य माहात्म्यं शृणु वृद्धनिशाचर ! ।
त्र्यहात्पापक्षयो जातः सप्तविंशतिभर्दिनैः ॥१२७॥

शेषैर्मे यदभूत्पुण्यं तेन देवत्वमागता । रममाणा तु कैलासे गिरिजायाःप्रियासखी ॥१२८॥
जातिस्मरा तथा जाता प्रयागस्य प्रभावतः । स्मृत्वा प्रयागमाहात्म्यं माघे माघे व्रजाम्यहम्॥१२९॥
इति राक्षस यत्पृष्टं त्वया विस्मितचेतसा । तन्मया कथितं सर्वं चरित्रं प्रीयते तव॥१३०॥

उसके बाद प्रसन्न होकर बृहस्पति ने इन्द्र को वरदान दिया ॥११७॥ प्रयाग में स्नान करने मात्र से तुम्हारे पाप नष्ट हो गये हैं । इन्द्र निष्पाप पर मेरी कृपा होने से शीघ्र ही तुम्हारी ये हजार योनियाँ तुम्हारे नेत्र बन जायँ । उसी समय ब्राह्मण वाक्य से इन्द्र सुशोभित हो गये ॥११८-११९॥ कमल के समान हजार नेत्रों के द्वारा इन्द्र को देखकर सभी देवताओं और ऋषियों ने पूजा की ॥१२०॥ गन्धर्वों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए इन्द्र अमरावती गये । इस तरह इन्द्र को प्रयाग में सद्यः फल प्राप्त हो गया ॥१२१॥ हे कल्याणी ! तुम शीघ्र ही देवताओं से सेवित प्रयाग जाओ जिससे कि तुम्हारे पाप सद्यः विनष्ट हो जायें और तुमको सद्गति की प्राप्ति हो ॥१२२॥ इस तरह से राज पुरोहित की इतिहास और मङ्गल पूर्ण वाणी सुनकर उसी समय शीघ्रता पूर्वक ब्राह्मण के चरणों में प्रणाम करके ॥१२३॥ अपने सभी बान्धवों, दासियों, दासों तथा गृह को भी त्याग कर हे राक्षस सभी विषयों को विष के ग्रास के समान तथा क्षण ध्वंसी शरीर को भी जानकर वहाँ से निकल पड़ी । मैंने जाकर माघ मास में सितासित जल में नरक समुद्र के भीतर रहने वाली अग्नि से तथा हृदय में शरीर रूपी व्याघ्र से तपती हुयी स्नान किया ॥१२४-१२६॥ हे वृद्ध निशाचर ! उस स्नान की महिमा तुम सुनो । तीन दिनों तक स्नान करने से पाप का नाश हो गया और अवशिष्ट सत्ताइस दिनों के स्नान जन्य पुण्य से मैंने देवत्व प्राप्त कर लिया । कैलास पर्वत पर रमण करती हुयी मैं पार्वतीजी की प्रिय सखी हो गयी ॥१२७-१२८॥ मैं प्रयाग के प्रभाव से जातिस्मर हो गयी

मत्प्रीतये चरित्रं स्वं त्वं ब्रूहि मम राक्षस ! ।
कर्मणा केन जातोऽसि विरूपोऽतिभयङ्करः ॥१३१॥
श्मश्रुलो दीर्घदंष्ट्रश्च क्रव्यादो गिरिगह्वरे ॥१३२॥

राक्षस उवाच

इष्टं ददाति गृह्णाति गुह्यं वदति पृच्छति ।
प्रीत्या हि सज्जनो भद्रे तच्च सर्वं त्वयि स्थितम् ॥१३३॥
त्वया संभावितो नूनं मन्येऽहं वामलोचने। भाविनीनिष्कृतिः सद्यस्त्वयाऽस्य क्रूरकर्मणः॥१३४॥
अतो वक्ष्यामि ते भद्रे दुष्कृतं यत्स्वयंकृतम् ।
निवेद्य सज्जने दुःखंततःसर्वसुखीभवेत् ॥१३५॥
शृणु सुश्रोण्यहं काश्यां बह्वचो वेदपारगः। जातः पुराद्विजः श्रेष्ठः कुले महतिनिर्मले॥१३६॥
राज्ञां दुष्कृतिनां भीरु शूद्राणां च तथा विशाम् ।
वाराणस्यां कृतो घोरो मया दुष्टप्रतिग्रहः ॥१३७॥
बहुधा बहुधा वारं निषिद्धः कुत्सितो बहु। चाण्डालस्यापि न त्यक्तो मया दुष्टप्रतिग्रहः ॥१३८॥
अन्यच्च पातकं तत्र ममाभून्मूढचेतसः। तन्नास्ति दुष्कृतं कर्म मया यत्र न यत्कृतम्॥१३९॥
अन्यच्च श्रूयतां दोषः क्षेत्रस्य वरवर्णिनि। अविमुक्तेऽणुमात्रं यत्तदघं मेरुतां व्रजेत्॥१४०॥
न धर्मस्तु मया कश्चित्संचितस्तत्र जन्मनि ॥१४१॥
ततो बहुतिथे काले मृतस्तत्रैव शोभने। अविमुक्तप्रभावेन नचाऽहं नरकं गतः ॥१४२॥
अविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं नैति किल्बिषी ।
अविमुक्ते कृतं किंचित्पापं वज्रीभवेद्दृढम् ॥१४३॥

प्रयाग के माहात्म्य को याद करके मैं प्रत्यके माघ में वहाँ जाती हूँ ॥१२९॥ राक्षस तुमने अपने आश्चर्यित अन्तःकरण से जो पूछा था उसे मैंने बतला दिया जिससे कि तुम प्रसन्न होओ ॥१३०॥ मेरी प्रसन्नता के लिए तुम अपना चरित्र बतलाओ किस कर्म के फलस्वरूप विरूप तथा अत्यन्त भयङ्कर श्मश्रुल, बड़े-बड़े दाँतों वाले तथा पर्वत की गुफा में रहने वाले मांस भक्षी हुए हो ?॥१३१-१३२॥ **राक्षस ने कहा**— सज्जन अभिप्रेत वस्तु प्रदान करते हैं तथा पूछने पर रहस्य को भी वतलाते हैं । तुममें भी सज्जन के सभी गुण विद्यमान हैं ॥१३३॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे द्वारा मैं अपने को सम्मानित मानता हूँ और मुझ क्रूर कर्म करने वाले के द्वारा भावी उद्धार भी मैं मानता हूँ ॥१३४॥ अतएव हे भामिनी ! मैं अपने पापों को बतलाता हूँ । सज्जन पुरुष को अपना दुःख बतलाकर सभी लोग सुखी हो जाते हैं ॥१३५॥ प्राचीन काल में काशी में मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण वंश में ऋग्वेदी पारंगत ब्राह्मण हुआ । राजाओं, पापियों, शूद्रों तथा वैश्यों से मैंने वाराणसी में भयङ्कर दान लिया ॥१३६-१३७॥ मैंने अनेक बार चाण्डाल से भी निषिद्ध और निन्दित दान लिया उसे छोड़ा नहीं ॥१३८॥ वहाँ पर मैंने दूसरे भी पाप किए । ऐसा कोई भी पाप नहीं है जिसे मैंने नहीं किया हो ॥१३९॥ हे सुन्दरि ! दूसरे भी मेरे द्वारा अविमुक्त क्षेत्र में किए गये पाप को तुम सुनो । काशी में किया गया छोटा सा भी पाप मेरु के समान महान् हो जाता है ॥१४०॥ उस जन्म में मैंने कोई भी पुण्य कर्म नहीं किया ॥१४१॥ सुन्दरि ! उसके बाद बहुत दिनों के पश्चात् मेरी मृत्यु हो गयी।

वज्रलेपेन पापेन तेन मे जन्म राक्षसम्। रौद्रं क्रूरतरं पापं संभूतं हिमपर्वते॥१४४॥
द्विर्जातो गृध्रयोनौ प्राक्त्रिर्व्याघ्रो द्विः सरीसृपः ।
एकवारमुलूकस्तु विड्वराहस्ततः परम् ॥१४५॥
इदं तु दशमं जन्म राक्षसं मम भामिनि !। अतीतानि सहस्राणि वर्षाणि मम जन्मनः ॥१४६॥
नास्ति मे निष्कृतिर्भद्रे एतस्माद्दुःखसागरात् ।
अत्र त्रियोजनं सुभ्रूर्निर्जन्तु हि मया कृतम् ॥१४७॥
अनागसां च भूतानां बहूनां च कृतःक्षयः। कर्मणा तेन मे सुभ्रूर्दह्यते सततं मनः॥१४८॥
त्वद्दर्शनसुधासिक्तं गतं शैत्यं मनो मम। तीर्थं फलति कालेन सद्यः साधुसमागमः॥१४९॥
अतः सत्संगतिं सुभ्रः प्रशंसन्ति मनीषिणः। एतते कथितं सर्वं स्वदुःखं हृद्गतं मया ॥१५०॥
विरलः सज्जनः सुभ्रः स्वात्मा यस्य न खिद्यते ।
जानास्यत्रोचितं त्वं हि किंचिन्नो वच्म्यतःपरम् ॥१५१॥
अस्यदुःखोदधेः पारं कथं यामीति चिन्तयन् ।
सज्जनानां समाभूतिः सर्वेषामुपजीवनम् ॥१५२॥
क्षीरार्णवः पयो दत्ते हंसाय न बकाय किम् ॥१५३॥

दत्तात्रेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा दयार्द्रीकृतमानसा। धर्मदाने मतिं कृत्वा जगौ काञ्चनमालिनी॥१५४॥
करिष्ये निष्कृतिं रक्ष इदानीं खलु मा शुचः ।
प्रतिज्ञां तुदृढां कृत्वा यतिष्ये तव मुक्तये ॥१५५॥

अविमुक्त क्षेत्र में किया गया पाप वज्र के तुल्य हो जाता है ॥१४२-१४३॥ उस व्रजलेप पाप के कारण मैं रौद्र, अत्यन्त क्रूर तथा पापी राक्षस होकर हिमालय पर जन्म लिया ॥१४४॥ उससे पहले मैंने दो बार गृध्र हुआ, तीन बार व्याघ्र हुआ और दो बार सर्प हुआ । एक बार उल्लू हुआ और उसके बाद ग्राम सूकर हुआ ॥१४५॥ हे भामिनी ! यह मेरा राक्षस का जन्म दशवाँ है । मेरे जन्म के हजारों वर्ष बीत गये हैं॥१४६॥ हे भद्रे ! मेरा इस दुःख सागर से उद्धार होना असम्भव है । यहाँ पर मैंने तीन योजन के जीवों को खा लिया है ॥१४७॥ मैंने बहुत से निर्दोष जीवों को मार दिया है । हे सुभ्रु ! उस कर्म के कारण मेरा मन संतप्त हो गया है ॥१४८॥ तुम्हारे दर्शन रूपी अमृत से सींचित होकर मेरा मन शान्त हो गया है। तीर्थ तो समयानुसार फल देता है और सज्जनों का समागम शीघ्र ही फल प्रदान करता है ॥१४९॥ हे सुभ्रु ! इसीलिए मनीषी पुरुष साधु की सङ्गति की प्रशंसा करते हैं । इस तरह अपने हृदय में विद्यमान दुःख को मैंने तुम्हें सुनाया ॥१५०॥ हे सुभ्रु ! सज्जन पुरुष कोई ही होते हैं, उनकी आत्मा खिन्न नहीं होती है । तुम ही इसके उचित उपाय को जानती हो । अब मुझे कुछ भी नहीं कहना है ॥१५१॥ इस दुःखसागर से पार मैं कैसे जाऊँगा ? इस बात को सोचते हुए सज्जनों की प्राप्ति सबों का उपजीवन है ॥१५२॥ क्षीरार्णव भी हंस को ही दूध देता है बगुले को नहीं ॥१५३॥ **दत्तात्रेय महर्षि ने कहा—** इस तरह से उसके वचन को सुनकर दयार्द्र मन वाली काञ्चन मालिनी ने पुण्य दान करने का मन बना लिया ॥१५३॥ उसने कहा राक्षस ! मैं तुम्हारा उद्धार करूँगी अब शोक न करो । मैं दृढ़ प्रतिज्ञा करके तुम्हारी मुक्ति का प्रयास

बहवो हि कृता माघा वर्षेवर्षे यथाविधि। श्रद्धापूर्वं मया भद्र ब्रह्मक्षेत्रे सितासिते ॥१५६॥

तां वदामि तु सङ्ख्यातिं तस्य धर्मस्य राक्षस ! ।

गूढो धर्मो हि कर्त्तव्यइत्यूचुर्विबुधा जनाः ॥१५७॥

आर्त्ते दानं प्रशंसन्ति मुनयो वेदवादिनः। सागरे वर्षतो भद्र किं मेघस्य फलं भवेत् ॥१५८॥

अनुभूतं मया रक्षः स्वयं तत्पुण्यजं फलम् ।

तत्तु दास्यामि ते मित्र सद्यः पापविनाशनम् ॥१५९॥

निष्पीड्याऽथ ततो वस्त्रं जलं कृत्वा कराम्बुजे ।

ददौ सा माघजं पुण्यं तस्मै वृद्धाय रक्षसे ॥१६०॥

शृणु राजन्विचित्रं हि प्रभावं माघधर्मजम् । तदैवं प्राप्य तत्पुण्यं विमुक्ता राक्षसीतनुः॥१६१॥

संभूतो देवताकारस्तेजोभास्करविग्रहः। देवयानं समारूढः सहर्षोत्फुल्ललोचनः॥१६२॥

द्योतमानस्तदा व्योम्नि भासयन्प्रभया दिशः। दिव्यरूपधरो रेजे द्वितीयइव भास्करः॥१६३॥

ततोऽभिनन्दयामास स तां काञ्चनमालिनीम् ।

भद्रे वेत्तीश्वरो देवः कर्मणांयःफलप्रदः ॥१६४॥

तत्त्वयोपकृतं सर्वं यत्र मे नास्ति निष्कृतिः। इदानीमपि कारुण्यात्प्रसीदाऽनुग्रहं कुरु॥१६५॥

शिक्षां विधेहि मे देवि सर्वनीतिमयी शुभाम् ।

सर्वधर्मकरी नूनं न कुर्वे पातकं यथा ॥१६६॥

तां श्रुत्वा त्वदनुज्ञातः पश्चाद्यामि सुरालयम् ॥१६७॥

करूँगी ॥१५४॥ मैंने प्रत्येक वर्ष अनेक माघ व्रतों को श्रद्धा और विधि पूर्वक ब्रह्मक्षेत्र में किया है॥१५५॥ हे राक्षस ! मैं उनकी संख्या बतलाती हूँ । विद्वान् पुरुषों ने कहा है कि धर्म को छिपाकर करना चाहिए ॥१५६-१५७॥ वेदवादी पुरुष आर्त को दान दिए जाने की प्रशंसा करते हैं । हे भद्र ! सागर में वर्षा करने वाले मेघ को कौन सा फल मिलता है ?॥१५८॥ हे राक्षस ! मैंने उस पुण्य के फल को प्राप्त किया है । हे मित्र ! मैं सद्य पाप को विनष्ट करने वाले उस पुण्य को तुम्हें देती हूँ ॥१५९॥ उसके बाद उसने वस्त्र को निचोड़कर हाथ में जल ले लिया उसने माघ जन्य पुण्य को उस बृद्ध राक्षस को प्रदान किया ॥१६०॥ हे राजन् ! माघ जन्य विचित्र प्रभाव को तुम सुनो । उसी समय उस पुण्य को प्राप्त कर उसका राक्षस शरीर छूट गया ॥१६१॥ वह देवता के आकर का हो गया । उसका शरीर सूर्य के समान तेजस्वी था । हर्ष के कारण विकसित नेत्रों वाला वह देव विमान पर बैठ गया ॥१६२॥ उस समय वह आकाश में चमक रहा था और अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था । दिव्य रूप धारी वह दूसरे सूर्य के समान सुशोभित होता था । उसके पश्चात् उसने उस कांचनमालिनी की प्रशंसा की और कहा— भद्रे ! फलप्रद कर्मों को ईश्वर ही जानते हैं ॥१६३-१६४॥ जिन कर्मों से मेरा उद्धार होना सम्भव नहीं हैं उन सबों से तुमने उद्धार किया है । अब भी मेरे ऊपर कृपा करके अनुग्रह करो ॥१६५॥ हे देवि! तुम मुझे सम्पूर्ण नीतियों से युक्त उपदेश दो । जिससे किसी भी पुण्यों को करने वाला मैं कभी पाप न करूँ ॥१६६॥ उस शिक्षा को सुनकर तुमसे आज्ञा लेकर मैं देवलोक में जाऊँगा ॥१६७॥ **दत्तात्रेय ने**

दत्तात्रेय उवाच

एतन्निशम्य तेनोक्तं प्रियं धर्ममयं वचः । अतिप्रीत्याऽब्रवीद्धर्मं राजन्काञ्चनमालिनी ॥१६८॥

धर्मं भजस्व सततं त्यज भूतहिंसां सेवस्व साधपुरुषाञ्जहि कामशत्रुम् ।
अन्यस्य दोषगुणकीर्तनमाशु हित्वा सत्यं वदार्चय हरिं व्रज देवलोकम् ॥१६९॥
देहेऽस्थिमांसरुधिरे स्वमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ।
पश्याऽनिशं जगदिदं क्षणभङ्गुरं हि वैराग्यभावसिको भव योगनिष्ठः ॥१७०॥
प्रीत्या मया निगदितं तव धर्ममार्गं चित्ते निधेहि सकलं भव शीलयुक्तः ।
संत्यज्य राक्षसतनुं धृतदेवदेहो ज्योतिर्मयो व्रज यथासुखमाशु नाकम् ॥१७१॥

श्रुत्वा धर्मं ततो हृष्टःसंतुष्टो राक्षसोऽब्रवीत् ।
भव प्रमुदिता नित्यं सर्वदा शिवमस्तु ते ॥१७२॥
आचन्द्रार्कं रमस्व त्वं कैलासे शिवसन्निधौ ।
उमायांऽखण्डितं प्रेम तवास्तु वरवर्णिनि ॥१७३॥

धर्मनिष्ठा तपोनिष्ठा मातस्त्वं भव सर्वदा । मास्तु लोभःशरीरे तआपन्नार्तिं सदा हर॥१७४॥

इत्युक्तवा तु प्रणम्याऽथ स तां काञ्चनमालिनीम् ।
जगाम राक्षसः स्वर्गं गन्धर्वैर्बहुभिः स्तुतः ॥१७५॥

देवकन्यास्तदागत्य ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । तस्याःकाञ्चनमालिन्या मूर्ध्नि हर्षसमाकुलाः ॥१७६॥

तामालिङ्ग्य ततः प्रोचुः कन्यकास्तु प्रियं वचः ।
कृतं भद्रे त्वया चित्रं राक्षसस्य विमोक्षणम् ॥१७७॥

कहा— इस बात को सुनकर वह धर्ममयी वाणी कही । राजन् ! काञ्चन मालिनी ने बड़े प्रेम पूर्वक धर्मोपदेश किया ॥१६८॥ तुम सदा धर्म करो, किसी जीव की हिंसा न करो । साधु पुरुषों की सेवा करो और मन रूपी शत्रु को विनष्ट कर दो । शीघ्र ही दूसरों के गुण और दोष का वर्णन त्याग दो सत्य बोलो, श्रीहरि की पूजा करो और देवलोक जाओ ॥१६९॥ मांस अस्थि और रुधिरमय देह में आसक्ति को त्याग दो । पत्नी, पुत्र आदि की ममता को छोड़ दो । इस जगत् को सदा क्षणभङ्गुर समझो तुम योग निष्ठ होकर वैराग्य भाव से प्रेम करो ॥१७०॥ मैंने प्रेमपूर्वक धर्ममार्ग का उपदेश दिया है । इन सारी बातों को अपने मन में धारण करो और शीलयुक्त हो जाओ । राक्षस शरीर को त्याग कर तथा ज्योतिर्मय देव शरीर को धारण करके तुम सुख पूर्वक स्वर्ग में जाओ ॥१७१॥ उसके पश्चात् धर्मोपदेश सुनकर प्रसन्न और संतुष्ट राक्षस ने कहा— तुम सदा प्रसन्न रहो । तुम्हारा सदा कल्याण हो ॥१७२॥ जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहें तब तक शिवजी के सन्निकट कैलास पर्वत पर बिहार करो । तुम्हारा पार्वतीजी में अखण्ड प्रेम बना रहे ॥१७३॥ हे मातः ! तुम सदैव धर्मनिष्ठ और तपोनिष्ठ रहो । तुम्हारे शरीर में लोभ न हो और दुःखियों के दुःख को दूर करो ॥१७४॥ इस तरह उस काञ्चन मालिनी को कहकर वह राक्षस स्वर्ग चला गया ॥१७५॥ उसी समय देव कन्याओं ने आकर पुष्पों की वृष्टि उस काञ्चन मालिनी के सिर पर हर्षित होकर की ॥१७६॥ उसका आलिङ्गन करके देव कन्याओं ने उसको मधुर वाणी में कहा हे भद्रे !

दुष्टस्यास्य भयात्कश्चिद्विशत्यस्मिन्न कानने। अधुनानिर्भयाह्यत्रविचरामो यथासुखम्॥१७८॥
श्रुत्वा तद्वचनं राजंस्तासां काञ्चनमालिनी। हृष्टा तेनैव दानेन कृतकृत्या तदा सती॥१७९॥
तं राक्षसं काञ्चनमालिनी वरा गन्धर्वकन्या परिमोच्य सत्वरम्।
क्रीडन्त्यमूभिः प्रययौ हरालयं प्रीत्या सूपर्णा च परोपकारया॥१८०॥
संवादमेनं वरकन्यकेरितं भक्तया परं यः शृणुयाच्च मानवः।
न बाध्यते जातु सदा स राक्षसैर्धर्मे मतिस्तस्य भृशं हि जायते॥१८१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे माघमासमाहात्म्ये कार्तवीर्य दत्तात्रेय संवादे राक्षसमोक्षो नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२६॥

एक सौ सत्ताइसवाँ अध्याय

वसिष्ठ उवाच

कथितं माघमाहात्म्यं दत्तात्रेयेण भाषितम्। अधुनाऽहं प्रवक्ष्यामि माघस्नानस्य यत्फलम्॥१॥
सर्वक्रतुवरिष्ठं तु सर्वदानफलप्रदम्। सर्वव्रततपस्तुल्यं माघस्नानं परन्तप॥२॥
स्नानेन माघस्य विशुद्धमानसाःपितॄन्दिवि स्थाप्य कुलद्वयस्य वै।
स्वर्गं प्रयान्ति स्वयमुज्ज्वलनना वरैर्विमानैरुचिरैश्च कामगैः॥३॥

तुमने अद्भुत मोक्ष राक्षस को प्रदान किया है॥१७७॥ इस दुष्ट के भय से कोई भी इस वन में प्रवेश नहीं करता था अब हमलोग निर्भय होकर यहाँ विचरण करेंगी॥१७८॥ हे राजन्! उन सबों के वचन को सुनकर काञ्चन मालिनी उस दान के द्वारा प्रसन्न होकर कृत-कृत्य हो गयी॥१७९॥ गन्धर्व की श्रेष्ठ पुत्री काञ्चन मालिनी उस राक्षस को मुक्त करके उन देवकन्याओं के साथ क्रीड़ा करती हुयी कैलास चली गयी। परोपकार करने के कारण वह हर्ष से परिपूर्ण हो गयी थी॥१८०॥ उस श्रेष्ठ कन्या के द्वारा उक्त इस संवाद को जो मनुष्य भक्ति पूर्वक सुनता है, वह कभी भी राक्षसों से बाधित नहीं होता है। और वह अत्यन्त धार्मिक हो जाता है॥१८१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के माघ मास के माहात्म्य के अन्तर्गत कार्तवीर्य दत्तात्रेय संवाद के प्रसङ्ग में राक्षस मोह वर्णन नामक एक सौ छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥१२६॥

माघ स्नान के फल का वर्णन

महर्षि वसिष्ठ ने कहा— मैंने दत्तात्रेय के द्वारा कहे गये माघ माहात्म्य को तुम्हें सुनाया, इस समय मैं माघ मास में स्नान का फल बतलाता हूँ॥१॥ हे परन्तप! माघ स्नान का फल सभी यज्ञों से श्रेष्ठ, सभी दानों के फल को प्रदान करने वाला, तथा सभी व्रतों एवं तपस्याओं के समान है॥२॥ माघ स्नान

ये मानवाः पापकृतोऽपि सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ।
स्नात्वा हि माघे हरिमर्चयन्ति ये मुञ्चन्ति तेऽपीह महाघसंचयम् ॥४॥
सत्येन हीनाःपितृमातृदुःखदा ह्यनाश्रमस्थाःकुलधर्मवर्जिताः ।
ये दाम्भिकास्तेऽपि नराः सतां गतिं स्नानैः प्रयान्त्यत्र हि माघसंभवैः ॥५॥
पुण्येषु तीर्थेषु च माघमासे स्नानं नराणामतिदुर्लभं भुवि ।
तस्माद्यतो ब्रह्मविदां पदं नरैः संप्राप्यते नात्र विचारणा मम ॥६॥
माघे तपोदानजपप्रसेवनं स्थानं हरेःपूजनमक्षयं नृप ! ।
तस्माद्यथाशक्ति नरैः प्रयत्नतः स्नात्वा प्रदेयं वसनान्नकाञ्चनम् ॥७॥
माघेऽन्नदाताऽमृतपःसुरालये ह्योग्नश्च दाता बलभित्समीपगः ।
दीपाग्निवासांसि ददन्नरः सदा सूर्यस्य लोके वसति प्रभामयः ॥८॥
यज्ञैः सुदानैःसुतपोभिरुज्ज्वलैः सुब्रह्मचर्यार्चनयोगसेवया ।
शुद्धा भवन्तीह तथा न पापिनः स्नानैर्यथापुण्यभवैस्तु माघजैः ॥९॥
दुःखौघसंतप्तिमसह्ययातनां याम्यां न ते यान्त्यपि पापकारिणः ।
ये माघमासे वरतीर्थमज्जनं कुर्वन्ति चार्धोदितसूर्यमण्डले ॥१०॥
स्नात्वा च माघे हरिमर्चयन्ति ये स्वश्च्युता भूपतयो भवन्ति ।
भव्याः सुरूपाः सुभगाः प्रियम्वदा धर्मान्विता भूरिधनाः शतायुषः ॥११॥

करने के कारण विशुद्ध मन वाले लोग माता-पिता तथा दोनों कुलों को स्वर्ग में स्थापित करके स्वयं चमकते हुए मुख वाले लोग श्रेष्ठ मनोहर एवं कामग विमान पर चढ़कर स्वर्ग में जाते हैं ॥३॥ पापी भी मनुष्य जो सदा दुराचार में लगे रहने वाले और कुमार्ग गामी भी हों वे लोग इस महीने में यदि स्नान करके श्रीहरि की पूजा करते है वे भी महान् पाप समूह से मुक्त हो जाते हैं ॥४॥ असत्यवादी, माता-पिता को दुःख देने वाले, अनाश्रमी तथा कुल धर्म का पालन नहीं करने वाले तथा घमण्डी जो मनुष्य हैं वे भी माघ में स्नान करके सद्गति को प्राप्त करते हैं ॥५॥ माघ मास में मनुष्यों के लिए पवित्र तीर्थ में स्नान करना अत्यन्त दुर्लभ है । अतएव जिससे मनुष्य ब्रह्मज्ञानियों के पद को प्राप्त करते हैं उसके विषय में मुझे कोई विचार नहीं करना है ॥६॥ हे राजन् ! माघ मास में तपस्या, दान, जप तथा श्रीहरि की सेवा, पूजा अक्षय होता है । अतएव स्नान करके मनुष्यों को चाहिए कि वे स्नान करके अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न पूर्वक वस्त्र, अन्न और सुवर्ण दान दें ॥७॥ माघ में अन्नदान करने वाला देवलोक में अमृतपायी हो जाता है, सुवर्ण का दान करने वाला इन्द्र के समीप जाता है । सदा दीप, और वस्त्र दान करने वाला मनुष्य सूर्य लोक में कान्ति सम्पन्न होकर सूर्य लोक में निवास करता है ॥८॥ यज्ञों, दानों तथा शुद्ध तपों, ब्रह्मचर्य का पालन, पूजा तथा योग सेवा के द्वारा पापी मनुष्य उतना शुद्ध नहीं होता है जितना माघ स्नान के द्वारा उत्पन्न पुण्यों से पवित्र होता है ॥९॥ जो लोग माघ मास में आधे सूर्य मण्डल के उदित होते समय माघ में स्नान करते हैं उनको न तो दुखजन्य संताप होता है, और न यमलोक में असहय यातना यदि वे पापी जीव हों तो भी ॥१०॥ जो लोग माघ के महीने में प्रातःस्नान करके श्रीहरि की अर्चना करते हैं वे स्वर्ग

दीप्तानले काष्ठचयो यथा हुतो भस्मावशेषो भवतीह तत्क्षणात् ।
स्नानेन माघस्य तथा विलीयते क्षुद्रोऽपि पापौघमहाघसंचयः ॥१२॥
कायेन वाचा मनसाऽपि पातकं ज्ञातं यदज्ञातमलङ्कृतं नरैः ।
स्नानं च माघे वरतीर्थसंभवं सर्वं दहेद्विष्णुरिवाशु हृद्गतः ॥१३॥
संभुज्यमानाघफलं हि पार्थिव प्रमादतोऽपीह नृणां कदाचन ।
स्नानं हि माघस्य यतःप्रसज्यते तदैवमत्संक्षयमेति निश्चितम् ॥१४॥
गन्धर्वकन्या पृथिवीशशापजं संभुज्यमानाघफलं दुरत्ययम् ।
स्नानाद्विमुक्ताः खलु माघमासजाद्वाक्यात्पुरा लोमशजातमद्भुतम् ॥१५॥

सूत उवाच

श्रुत्वैतत्पार्थिवः प्रीत्या नत्वा तत्पादपङ्कजम्। श्रद्धया परया नम्रस्तं पप्रच्छ पुरोधसम् ॥१६॥
भगवन्ब्रूहि कन्याभिः शापो ह्यधिगतः कुतः ।
कस्याऽपत्यानि तास्तासां नाम किं कीदृशं वयः ॥१७॥
कथं लोमशवाक्येन विपाकाच्छापसंभवात् ।
विमुक्ताः कुत्र ताःसस्नुर्मासं ताः कति सङ्ख्यया ॥१८॥

वसिष्ठ उवाच

श्रूयतां राजशार्दूल ! धर्मगर्भा कथापरा । यथारणिर्वह्निगर्भा धर्मसूर्वह्निसूरिव ॥१९॥
गन्धर्वः सुखसंगीतिस्तस्य कन्या प्रमोदिनी। सुशीलस्य सुशीला च सुस्वरा स्वरवेदिनः ॥२०॥
सुतारा चन्द्रकान्तस्य चन्द्रिका सुप्रभस्य च ।
इमानि वरनामानि तासामप्सरसां नृप ॥२१॥

से पतित होने पर सुन्दर रूप वाले, सुभग, प्रिय बोलने वाले धार्मिक शतायु और अधिक सम्पत्ति सम्पन्न राजा होते हैं ॥११॥ जिस तरह प्रदीप्त अग्नि में डाली गयी लकड़ी तत्क्षण जलकर भस्म हो जाती है, उसी तरह माघ मास में स्नान करने से छोटा सा भी पाप समूह विनष्ट हो जाता है ॥१२॥ मन, वाणी और शरीर से किए गये ज्ञात एवं अज्ञात पाप मनुष्यों से हो जाते हैं, उनके श्रेष्ठ तीर्थ में माघ में स्नान जन्य पुण्य से भगवान् विष्णु उन सबों को भस्म कर देते हैं ॥१३॥ माघ के फल का उपभोग करने वाले राजा संसार में कामी मनुष्य के प्रति प्रमाद कर जाते हैं । माघ मास के स्नान के साथ उस पाप का सम्बन्ध हो जाने से उसका उसी क्षण नाश हो जाता है । गन्धर्व की पुत्री पृथिवी पति के शाप के कारण पाप के कठोर फल (दु:ख) को भोग रही थी, वह महर्षि लोमश के वाक्यानुसार माघ स्नान के द्वारा मुक्त हो गयी ॥१४-१५॥ **सूतजी ने कहा—** इस बात को सुनकर राजा ने झुककर महर्षि वसिष्ठ को प्रणाम किया और उनसे श्रद्धा पूर्वक पूछा ॥१६॥ हे भगवन् ! आप बतलाएँ कि कन्याओं को किसने शाप दिया ? वे किसकी पुत्रियाँ थीं ? उन सबों का नाम क्या था ? और उनकी अवस्था कितनी थी ?॥१७॥ लोमश महर्षि के वाक्य के प्रभाव से वे कहाँ पर मुक्त हुयीं । उनकी संख्या कितनी थी और उन सबों ने कहाँ स्नान किया ॥१८॥ **महर्षि वसिष्ठ ने कहा—** हे राजश्रेष्ठ ! आप इस अत्यन्त धर्म की कथा को सुनें। जैसे अग्निगर्भा अरणि धर्म और अग्नि को उत्पन्न करती है ॥१९॥ सुख सङ्गीति नामक गन्धर्व की कन्या

कुमार्यः पञ्च सर्वास्ता वयसा सुसमाः पुनः ।
चन्द्रादिव विनिष्क्रान्ताश्चन्द्रिकेव समुज्वलाः ॥२२॥
चन्द्राननाः सुकेशिन्यश्चन्द्रामृतरसाधराः । नेत्रेष्वानन्दकारिण्यः कौमुदीकुमुदेष्विव ॥२३॥
लावण्यपिण्डसंभूताश्चारूरूपामनोहराः । उद्भिन्नकुचकुम्भिन्यः पद्मिन्य इव माधवे ॥२४॥
उन्मील्य यौवनं कान्तं वल्लीव नवपल्लवैः ।
हेमगौराश्च हेमाभा हेमालङ्कारभूषिताः ॥२५॥
हेमचम्पकमालिन्यो हेमच्छविसुवाससः । स्वरग्रामावलीहासु विविधामूर्छनासु च ॥२६॥
तालनादविनोदेषु वेणुवीणाप्रवादने। मृदङ्गनादसंभिन्नं लास्यमार्गलयेषु च ॥२७॥
चित्रादिषु विनोदेषु कलासु च विशारदाः । एवंभूतास्तु ताः कन्या मुमुहुः कीडने वने॥२८॥
पितृभिर्लालिताः सत्यश्चे रुश्च धनदालये । कौतुकादेकदापञ्च मिलित्वा मासि माधवे ॥
कन्या मन्दारपुष्पाणि विचिन्वन्त्यो वनाद्वनम् ॥२९॥
गौरीं समाराधयितुं वराङ्गनाः कदाचिदच्छोदसरोवरं ययुः ।
हेमाम्बुजानि प्रवराणि ताः पुनस्तस्मादुपादाय वरोत्पलैः सह ॥३०॥
वैडूर्यशुद्धस्फटिकाच्छविद्रुमे स्नात्वा तडागे परिधाय चाम्बरम् ।
मौनेन च स्थण्डिलपिण्डिकामयीं स्वर्णस्य सिक्ताभिरुमां विनिर्ममुः ॥३१॥
समार्चितां चन्दनचन्द्रकुङ्कुमैरभ्यर्च्य गौरीं वरपङ्कजादिभिः ।
नानोपचारैश्च सुभक्तिभावितास्तालप्रयोगैर्ननृतुः कुमारिकाः ॥३२॥

प्रमोदिनी थी । सुशील की पुत्री सुशीला थी और स्वरवेदी की पुत्री सुस्वरा थी ॥२०॥ चन्द्रकान्ता की पुत्री सुतारा थी और सुप्रभा की कन्या चन्द्रिका थी । राजन् ! ये श्रेष्ठ नाम उन अप्सराओं के हैं ॥२१॥ ये पाञ्चो कुमारियाँ समान अवस्था वाली थीं । चन्द्रमा से निकली हुयी चन्द्रिका के समान सुन्दर थीं ॥२२॥ उनके मुख चन्द्रमा के समान थे, केश सुन्दर थे, उनके अधर चन्द्रमा में विद्यमान अमृत के समान थे । वे नेत्रों को आनन्द देने वाली और कुमुद पर पड़ने वाली चन्द्रिका के समान थी ॥२३॥ वे सभी सौन्दर्य के पिण्ड से उत्पन्न सुन्दर रूप वाली एवं मनोहर थीं । वैशाख में विकसित होने वाले कमल के समान उनके स्तन उठे हुए थे ॥२४॥ मनोहर जवानी के कारण वे नवीन पल्लवों से युक्त लता के समान थीं। वे सुवर्ण के समान गोरी, सुवर्ण के समान कान्ति वाली तथा सुवर्णालङ्कार से अलंकृत थीं ॥२५॥ वे सोनचम्पा की माला धारण की थीं और सुवर्ण के समान कान्ति वाले सुन्दर वस्त्र को धारण करती थीं । वे सभी सुन्दरियाँ स्वर समूह के विषय में अनेक प्रकार की मूर्छनाओं के विषय में ॥२६॥ ताल नाद के मनोरंजन में, मुरली और वीणा बजाने में, मृदङ्ग ध्वनि से युक्त नृत्य और लयों के विषय में और चित्र आदि बनाने की कलाओं में; दक्ष थीं । इस प्रकार की वे कन्यायें क्रीड़ावन में मोहित हो गयीं ॥२७-२८॥ अपनी माता-पिता से लालित वे कुबेर के गृह में संचरण करती थीं । कौतुक वशात् वे सब मिलकर वैशाख के महीने में मन्दार पुष्प को एक वन से दूसरे वन में चून रही थीं ॥२९॥ गौरी देवी की आराधना करने के लिए वे सब अच्छोद सरोवर पर गयीं । वे सब श्रेष्ठ स्वर्णिम कमल और नील कमल को लेकर ॥३०॥ वैडूर्य मणि तथा स्फटिक मणि के समान स्वच्छ सरोवर में स्नान करके तथा वस्त्र धारण करके मौन होकर वेदी

गान्धारमाश्रित्य वरं स्वरं ततो गेयं सुतारध्वनिभिःसुमूर्च्छितम् ।
एणीदृशस्ताः प्रजगुः कलक्षरं चारुप्रबन्धं गतिभिस्तु सुस्वरम् ॥३३॥
तस्मिन्सुनादे रसवर्षहर्षदे कन्यास्वलं निर्भरनृत्यवृत्तिषु ।
अच्छोदतीर्थप्रवरे तदा गतः स्नातुं मुनेर्वेदनिधेः सुताग्निपः ॥३४॥
रूपेण निःसीमतरो वराननः सरोजपत्रायतलोचनो युवा ।
विशालवक्षाः सुभुजोऽतिसुन्दरः श्यामच्छविः कामइवाऽपरो हि सः ॥३५॥
स ब्रह्मचारी सशिखो विराजते दण्डेन युक्तो धनुषेव मन्मथः ।
एणाजिनप्रावरणः सुसूत्रधृद्धेमाभमौञ्जीकटिसूत्रमेखलः ॥३६॥
तं दृष्ट्वा ब्राह्मणं बालास्तास्तत्र सरसस्तटे । जहृषुः कौतुकाविष्टाः कोऽयं नो नयनातिथिः॥३७॥
सन्त्यक्तनृत्यगीतास्तास्तस्यालोकनतत्पराः । हरिण्योलुब्धकेनेव विद्धाः कामेन सायकैः ॥३८॥
पश्यपश्येतिजल्पन्त्यो मुग्धाः पञ्च ससंभ्रमम् ।
तस्मिन्विप्रवरे यूनि कामदेवभ्रमं ययुः ॥३९॥
पुनःपुनस्तमभ्यर्च्य नयनैः पङ्कजैरिव । पश्चाद्विचारयामासुस्ताश्च कन्याःपरस्परम् ॥४०॥
यद्ययंकामदेवो हि रतिहीनः कथं व्रजेत् । अथाऽयमश्विनौ देवौतौनूनं युग्मचारिणौ॥४१॥
गन्धर्वः किन्नरो वाऽथ सिद्धो वा कामरूपधृत् ।
ऋषिपुत्रोऽथ वा कश्चित्कश्चिद्वा मानुषोत्तमः ॥४२॥

की पिण्डका के समान, सुवर्ण की कान्ति वाली वे सब पार्वती देवी की मूर्ति बनायीं ॥३१॥ चन्दन, कर्पूर तथा कुङ्कुम से पूजित गौरी देवी की पूजा कमल आदि से तथा अनेक उपचारों से पूजा करके वे सभी कुमारियाँ ताल के प्रयोगों के साथ नृत्य कीं ॥३२॥ गान्धार राग को अपना कर सुन्दर स्वर वाले तथा वीणा की ध्वनि से मूर्छित गीत को ॥३३॥ रस की वर्षा करने वाले और हर्षित करने वाले उस सुन्दर नाद में पूर्ण रूप से उन कन्याओं ने खूब नृत्य किया । उसी समय वेदनिधि महर्षि के अग्निप नामक पुत्र अच्छद सरोवर में स्नान करने गये ॥३४॥ उनका अत्यन्त सौन्दर्य युक्त मुख, सुन्दर था, उनके नेत्र कमल दल के समान विस्तृत थे । वे युवक, विस्तृत वक्षःस्थल वाले, सुन्दर भुजाओं से अति सुन्दर थे। उनका वर्ण श्याम था और वे दूसरे कामदेव के समान प्रतीत होते थे ॥३५॥ वे ब्रह्मचारी शिखा से युक्त थे और धनुष धारण किए हुए कामदेव के समान दण्ड धारण किए थे । मृगचर्म ओढ़े हुए सुन्दर यज्ञोपवीत से सुशोभित थे । सुवर्ण की कान्ति से युक्त मौञ्जी मेखला (करधनी) धारण किए थे ॥३६॥ उनको उस सरोवर के तट पर देखकर वे कुमारियाँ उत्कण्ठा से युक्त प्रसन्न हो गयीं और सोच रहीं थीं कि यह कौन दिखता है ?॥३७॥ वे सब नृत्य और गीत को छोड़कर उनको ही देखने लगीं । कामार्त बनी हुयी उन सबों की दशा बहेलिये का बाण से विधि हुयी हरिणी के समान हो गयी थी ॥३८॥ वे पाँचो सुन्दरियाँ परस्पर में कह रही थीं देखो-देखो उन श्रेष्ठ ब्राह्मण को भ्रम से कामदेव समझ रही थी । अपने नेत्र रूपी कमलों से उनकी अर्चना करके (देखकर) उन कन्याओं ने परस्पर में विचार किया ॥३९-४०॥ यदि ये कामदेव हैं तो रति के बिना कैसे चल सकते हैं ? यदि अश्विनी कुमार हैं तो वे दोनों सदा एक साथ चलते हैं ॥४१॥ ये अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले कोई गन्धर्व या किन्नर या सिद्ध हैं ? या

अस्तु वा कश्चिदेवाऽयं धात्रा सृष्टो हि नः कृते ।
यथा भाग्यवतामर्थे निधानं पूर्वकर्मभिः ॥४३॥
तथाऽस्माकं कुमारीणां गौर्यानीतो वरोत्तमः ।
करुणाजलकल्लोलप्लवार्द्रीकृतचित्तया ॥४४॥
मया वृतस्त्वया नायं त्वया वृतस्तथा मया ।
एवं पञ्चसु कन्यासु वदन्तीषु नृपोत्तम ! ॥४५॥
श्रुत्वा तद्वचनं तत्र कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः ।
आलोच्य हृदये सोऽपि विघ्नमेतदुपस्थितम् ॥४६॥
ब्रह्मविष्णुगिरिशादयः सुरा ये च सिद्धमुनयःपुरातनाः ।
तेऽपि योगबलिनो विमोहिता लीलया तदबलाभिरद्धुतम् ॥४७॥
योषितां नयनतीक्ष्णसायकैर्भ्रूलतासुदृढचापनिर्गतैः ।
धन्विना मकरकेतुना हतः कस्य नो पतति हा ! मनोमृगः ॥४८॥
तावदेय नयधीर्विराजते तावदेव जनताभयं भजेत् ।
तावदेय दृढचित्तता भृशं तावदेव गणना कुलस्य च ॥४९॥
तावदेव तपसः प्रगल्भता तावदेव यमधारणं नृणाम् ।
तावदेव वनितेक्षणबाणैर्मोहयन्त्युरुमदैर्न मानुषाः ॥५०॥
मोहयन्तु मदयन्तु रागिणो योषितः सुललितैर्मनोहरैः ।
मोहयन्ति मदयन्ति मामिमं धर्मरक्षणपरं हि कैर्गुणैः ॥५१॥
मांसशुक्रमलमूत्रनिर्मिते योषितां वपुषि निर्घृणेऽशुचौ ।
कामिनश्च परिकल्प्य चारुतां मा रमन्तु सुविमूढचेतसः ॥५२॥

किसी ऋषि के पुत्र हैं या श्रेष्ठ मनुष्य हैं ?॥४२॥ चाहें ये जो कोई हो ब्रह्माजी ने इनको हमलोगों के ही लिए बनाया है जैसे पूर्व कर्म जन्य भाग्यवानों के लिए खजाना होता है ॥४३॥ इन्हें हम कुमारियों के लिए गौरी देवी ने उत्तम वर के रूप में उपस्थित किया है । उनका चित्त करुणा रूप जल की लहरियों से आर्द्र हो गया होगा ॥४४॥ एक कहती थी मैंने इनका वरण है, तुम नहीं, दूसरी कहती थी जैसे तुमने वरण किया है, उसी तरह मैंने भी इनका वरण किया है हे नृपोत्तम ! इस प्रकार से पाँचों को कहते रहने पर॥४५॥ उन सबों की उस वाणी को सुनकर मध्याह्न की क्रिया करके उन्होंने हृदय में विचार किया कि यह तो बीच में विघ्न आ गया है ॥४६॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता और प्राचीन सिद्ध मुनिगणों को इन स्त्रियों ने बड़ी आसानी से मोहित कर लिया ॥४७॥ स्त्रियों के भौहें रूपी मजबूत धनुष से छूटे हुए कटाक्ष रूपी तीक्ष्ण बाणों से धनुर्धारी कामदेव के द्वारा मारा गया कौन ऐसा व्यक्ति है ? जिसका मन रूपी मृग न गिर पड़े ॥४८॥ जब तक ही उसके तप की प्रगल्भता बनी रहती है मनुष्य तब तक ही यम (इन्द्रिय निग्रह) को धारण किए रहता है, उसका चित्त तब तक ही दृढ़ बना रहता है और तब तक ही वह अपने कुल की मर्यादा को ध्यान में रखता है । तब तक उसकी नीतिशालिनी बुद्धि सुशोभित होती है और तब तक मनुष्यों को जनता का भय बना रहता है । स्त्रियों के ललित और मनोहर रूप से रागी पुरुष भले ही मोहित हो जायँ

दारुणो हि परिकीर्तितोऽङ्गनासन्निधिर्विमलबुद्धिभिर्बुधैः ।
यावदत्र न समीपगा इमास्तावदेव हि गृहं व्रजाम्यहम् ॥५३॥
समीपं तस्य यावद्धि नाऽऽगच्छन्तिवराङ्गनाः ।
वैष्णवेन प्रभावेण तावदन्तर्दधे द्विजः ॥५४॥
तस्य योगबलाद्भूप गतस्यादर्शनं तदा। दृष्ट्वा तद्भुतं कर्म ऋषिपुत्रस्यधीमतः ॥५५॥
वित्रस्तनयना बालाः कुरङ्ग्यइव कातराः। संभ्रान्तनयनाः शून्या ददृशुस्ता दिशो दश॥५६॥
इन्द्रजालं स्फुटं वेत्ति मायां जानाति वा पुनः ।
दृष्टोऽप्यदृष्टरूपोऽभूदित्यूचुश्च परस्परम् ॥५७॥
व्याप्तं तु हृदयं तासां सदैव विरहाग्निना। ज्वलद्दावानलेनेव सुस्निग्धं सान्द्रकाननम ॥५८॥
त्यक्त्यवैन्द्रजालिकीं विद्यां कान्त ! दर्शय सत्वरम् ।
स्वात्मानं नो मनोयुक्तं प्राग्ग्रासे मक्षिकोपमम् ॥५९॥
हा ! कष्टं दर्शितः कस्माद्धात्रा त्वं घटितः पुनः ।
ज्ञातं महानुसंतापहेतोर्नस्त्वं विनिर्मितः ॥६०॥
कच्चित्ते निर्दयं चेतः कच्चिदस्मासु नो मनः ।
कच्चिद्धूर्तोऽसि हे कान्त कच्चिन्मुष्णासि नो मनः ॥६१॥
कच्चिन्न प्रत्ययोऽस्मासु कच्चिदस्मान्परीक्षसे ।
कच्चिन्नर्मकलाशीलः कच्चिन्मायाविशारदः ॥६२॥

किन्तु ये किन गुणों के द्वारा धर्म परायण मुझको मोहित और मदमत्त बना सकती हैं ।।४९-५१।। नारियों के माँस, शुक्र, मल-मूत्र से निर्मित अत्यन्त घृणास्पद और अपवित्र शरीर में कामी पुरुष सौन्दर्य की कल्पना करके मोहित अन्तःकरण वाले लोग खूब रमण करें ।।५२।। स्त्रियों के सान्निध्य को स्वच्छ बुद्धि वाले पुरुष भयङ्कर बतलाते हैं । जब तक ये मेरे पास नहीं आती हैं उससे पहले ही मैं अपने घर चला जाता हूँ।।५३।। उस ब्रह्मचारी के सन्निकट जब तक वे नहीं आयी उससे पहले ही भगवान् विष्णु की कृपा से वे अन्तर्धान हो गये ।।५४।। राजन् वे अपने योग के बल से अन्तर्धान हो गये । उन बुद्धिमान ऋषिपुत्र के उस अद्भुत कर्म को देखकर ।।५५।। भयभीत नेत्रों वाली वे बालाएँ हरिणी के समान कातर हो गयीं। अत्यन्त त्रस्त नेत्रो वाली उन सबों को सारी दिशाएँ शून्य सी दिखती थीं ।।५६।। यह इन्द्रजाल जानता है या माया करना जानता है, दिखायी देने पर वह अदृश्य हो गया इस तरह से वे परस्पर में कहने लगी।।५७।। सबों का हृदय विरहाग्नि से व्याप्त हो गया जैसे घने और हरे वन में जलती हुयी बनाग्नि जल जाती है ।।५८।। हे कान्त ! इन्द्र जाल की विद्या को छोड़कर तुम शीघ्र दर्शन दो । हमलोगों के मन के साथ प्रथम ग्रास में ही मक्षिका पात के समान ।।५९।। कष्ट की बात है कि विधाता ने तुम्हारा दर्शन क्यों कराया ?। लगता है हमलोगों के महान् अनुसन्ताप के लिए ब्रह्मा ने तुमको बनाया है ।।६०।। तुम्हारा अन्तःकरण अत्यन्त निर्दय है क्या ? क्या तुम्हारा मन हमलोगों में नहीं लगता है ? हे कान्त ! तुम धूर्त हो क्या ? तुम हमलोगों के मन को क्यों चुरा रहो हो ?।।६१।। तुम्हारा हमलोगों पर विश्वास नहीं है क्या ? क्या तुम

कच्चिच्चित्ते प्रवेष्टुं च वेत्सि विज्ञानलाघवम् ।
कच्चिन्निष्क्रमणोपायं न जानासि कुतः पुनः ॥६३॥
कच्चिद्विनाऽपराधं तु त्वमस्मासु प्रकुप्यसे । कच्चिद्दुःखं विजानासि परेषां विप्रलम्भजम् ॥६४॥
त्वद्दर्शनं विना नूनं हृदयेश्वर ! साम्प्रतम् । न जीवामोऽथ जीवामः पुनस्त्वद्दर्शनाशया ॥६५॥
अस्मांश्च नय तत्र त्वं यत्र शीघ्रं गतो भवान् ।
त्वद्दर्शनहरो धाता व्यदधादङ्कुरच्छिदम् ॥६६॥
सर्वथा दर्शनं देहि कारुण्यं भज सर्वथा। पर्यन्तं न प्रपश्यन्ति सर्वथा सज्जनाजनाः ॥६७॥
इत्थं विलप्य ताः कन्याः प्रतीक्ष्य च बहुक्षणम् ।
पितुर्भिया गृहं गन्तुं शीघ्रमारेभिरेगतिम् ॥६८॥
तत्प्रेमनिगडैर्बद्धा भृशं विरहविक्लवाः। कथंचिद्धैर्यमालम्ब्य ताः स्वं स्वं गृहमागताः ॥६९॥
आगत्य पतिताः सर्वा जलयन्त्रसमीपतः ।
किमेतन्मातृभिः पृष्टाः कुतः कालात्ययोऽभवत् ॥७०॥

कन्याऊचुः

क्रीडन्त्यः किन्नरीभिस्तु सार्धं सङ्गीतकं मुदा ।
संस्थितास्तेन न ज्ञातं दिवसादिसरोवरे ॥७१॥
पथि श्रान्ता वयं मातः सन्तापस्तेन नस्तनौ ।
मोहेन महता वक्तुं न केनाऽप्युत्सहामहे ॥७२॥
इत्युक्त्वा लुलुठुस्तत्र मणिभूमौ कुमारिकाः ।
आकारं गोपयन्त्यस्ता मुग्धा जल्पन्ति मातृभिः ॥७३॥

हमलोगों की परीक्षा कर रहे हो ? क्या नर्म कला का तुम्हारा शील नहीं हैं ? क्या तुम माया करने में दक्ष हो ?॥६२॥ अपने विज्ञान की दक्षता से तुम मन में प्रवेश करना जानते हो क्या ? क्या तुम बाहर निकलने के उपाय को नहीं जानते हो क्या ?॥६३॥ क्या बिना अपराध के ही तुम हमलोगों पर नाराज हों ? क्या तुमको दूसरे के विप्रयोग जन्य दुःख का पता नहीं है ?॥६४॥ हे हृदयेश्वर ! आपके दशर्न के बिना इस समय हमलोग नहीं जी सकती हैं ? आपके पुनः दर्शन होने की आशा में हमलोग जी रही हैं ॥६५॥ शीघ्र तुम हमलोगों को भी वहीं ले चले जहाँ पर तुम हो । तुम्हारे दर्शन को चुराने वाले ब्रह्मा ने तो अङ्कुर को ही काट दिया है ॥६६॥ तुम शीघ्र दर्शन दो हमलोगों पर करुणा करो । सज्जन पुरुष किसी के अन्त को नहीं देखते हैं ॥६७॥ इस तरह से वे कन्यायें बहुत विलाप करके और प्रतीक्षा करके अपने माता-पिता के भय से अपने घर जाने लगीं ॥६८॥ उसके प्रेम रूप जंजीर में बँधी हुयी अत्यधिक विरह से व्याकुल बनी हुयी किसी प्रकार धैर्य धारण कर वे सब अपने-अपने घर गयीं ॥६९॥ वे सब आकर जलयन्त्र के समीप गिर गयीं माताओं ने जब पूछा कि क्या हो गया ? कहाँ पर तुमलोगों को इतनी देर हुयी ?॥७०॥ **कन्याओं ने कहा—** किन्नरियों के साथ क्रीड़ा करते हुए और सङ्गीत करते हुए सरोवर की ओर हमलोगों को समय का पता नहीं चला ॥७१॥ हे मातः ! हमलोग रास्ते में थक गयी हैं उसी के कारण हमारे शरीर में सन्ताप है । अत्यधिक श्रान्ति के कारण हमलोग किसी के साथ नहीं बोल

काचिन्नर्तयति क्रीडामयूरं न मुदा तदा । न पाठयति तं कीरं पञ्जरेऽन्या कुतूहलात् ॥७४॥
लालयेन्नकुलं नाऽन्या नोल्लासयति सारिकाम् ।
अपरातीवसंमुग्धानैव क्रीडति सारसैः ॥७५॥
भेजिरे न विनोदांस्ता रेमिरे नैव मन्दिरे । ऊचिरे बान्धवैर्नालं वीणावाद्यं न चक्रिरे ॥७६॥
कल्पद्रुमप्रसूनं यद्रसवत्तु सुधोपमम् । मन्दारकुसुमामोदि न पपुर्मधुरं मधु ॥७७॥
योगिन्यइव ताः कन्या नासाग्रन्यस्तलोचनाः । अलक्ष्यध्यानसन्तानाः पुरुषोत्तममानसाः ॥७८॥
चन्द्रकान्तमणिच्छन्ने स्त्रवद्वारिकणद्रवे। क्षणं वातायने स्थित्वा जलयन्त्रे क्षणं क्षणात् ॥७९॥
रचयन्ति क्षणं शय्यां दीर्घिकाम्भोजिनीदलैः ।
वीज्यमानाः सखीभिस्ताः शीतलैः कदलीदलैः ॥८०॥
इत्थं युगसमां रात्रिं मन्वानास्ता वरस्त्रियः । कथंचिद्धीरतां कृत्वा विह्वलाः सज्वराइव ॥८१॥
प्रातर्व्योममणिं दृष्ट्वा मन्यमानाः स्वजीवितम् ।
विज्ञाप्य मातरं स्वां स्वां गौरीं पूजयितुं गताः ॥८२॥
स्नात्वा तेन विधानेन पुष्पैर्धूपैर्यथा तथा। विधाय पूजनं देव्या गायन्त्यस्तत्र ताः स्थिताः ॥८३॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रः स्नातं सोऽपि समागतः ।
पित्राश्रमपदात्तस्मादच्छोदे च सरोवरे ॥८४॥
मित्रं दृष्ट्वैव रात्र्यन्तेनलिन्वइव कन्यकाः । उत्फुल्लनयनाजातास्तं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणम् ॥८५॥

पाती हैं ॥७२॥ यह कहकर वे कुमारियाँ मणिभूमि पर लेट गयीं, अपने आकार को छिपाती हुयी वे सब माताओं से अपने के श्रान्त बतलाती थीं ॥७३॥ कोई भी क्रीड़ा मयूर को उस समय प्रसन्नता पूर्वक नहीं नचाती थी । दूसरी पिंजड़े में विद्यमान शुक को कूतूहल वशात् नहीं पढ़ाती थी । कोई नेवले को नहीं खेलाती थी, कोई सारिका को नहीं प्रसन्न करती थी । दूसरी अत्यन्त मोहित होने के कारण सारसों के साथ नहीं खेलती थी ॥७४-७५॥ वे न तो किसी से विनोद करती थीं और न तो घर में उन सबों का मन लगता था । वे अपने बाँधवों के साथ बातें नहीं करती थीं और न उन सबों ने बीणा बजाया ॥७६॥ अमृत के समान रस वाले कल्प पुष्प तथा मन्दार पुष्प की सुगन्धि से जो युक्त था उसके पराग को उन सबों ने नहीं पिया और न मधुर मधु का पान किया ॥७७॥ योगीन्द्रों के समान वे कन्यायें नासिका के अग्रभाग में अपनी दृष्टि लगाकर बिना किसी लक्ष्य के ध्यान कर रही थीं उनका पुरुषोत्तम भगवान् में मन नहीं लगता था । जलकण को स्त्रवित करने वाले चन्द्रकान्त मणि से अच्छन्न क्षणभर खिड़की पर रुककर क्षण भर में जल यन्त्र में गयी । वे क्षणभर शय्या का निर्माण बावलियों की कमलिनी के दल से करती थीं ॥७८-७९॥ सखियाँ उनको शीतल केले के पत्ते से हवा करती थीं ॥८०॥ इस तरह उस दिन की रात्रि को युग के समान मानने वाली वे श्रेष्ठ स्त्रियाँ किसी तरह धैर्य धारण करके ज्वर से व्याकुल बनी हुयी के समान ॥८१॥ प्रात:काल सूर्यमणि (सूर्य) को उदित देखकर उसको अपना जीवन मानती हुयी अपनी-अपनी माताओं से आज्ञा लेकर गौरी का पूजन करने के लिए गयीं ॥८२॥ विधान पूर्वक स्नान करके धूपों तथा दीपों से जैसे-तैसे पूजा करके वहीं पर गीत गाने लगीं ॥८३॥ उसी समय वे भी ब्राह्मण स्नान करने के लिए अपने पिता के आश्रम से अच्छोद सरोवर पर आये ॥८४॥ सूर्य को देखकर रात्रि

गत्वा तदैव ताः कन्याः समीपं ब्रह्मचारिणः ।
सव्यापसव्यबन्धेन भुजापाशं च चक्रिरे ॥८६॥
गतोऽसि धूर्त पूर्वेद्युर्गन्तुमद्य न शक्यते। वृतस्त्वं नूनमस्माभिर्नात्र तेऽस्तु विचारणा ॥८७॥
इत्युक्तो ब्राह्मणः प्राह प्रहसन्बाहुपाशगः । यष्माभिरुच्यते भद्रमनुकूलं प्रियम्वचः ॥८८॥
प्रथमाश्रमनिष्ठस्य किन्तु नाद्याऽपिमे व्रतम्। वेदाभ्यसनशीलस्य पारं याति गुरोः कुले ॥८९॥
आश्रमे यत्र यो धर्मो रक्षणीयः स पण्डितैः ।
विवाहोऽयमतो मन्ये न धर्मइति कन्यकाः ॥९०॥
आकर्ण्य तस्य वाक्यानि तमूचुस्ता वचस्ततः ।
सकलध्वनिसोत्कण्ठाः कोकिला इव माधवे ॥९१॥
धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामाद्धर्मफलोदयः। इत्येव निश्चितं शास्त्रं वर्णयन्ति विपश्चितः ॥९२॥
सकामो धर्मबाहुल्यात्पुरस्ते समुपागतः । सेव्यतां विविधैर्भोगैः स्वर्गभूमिरियं ततः ॥९३॥
श्रुत्वा तद्वचनं तासां प्राह गम्भीरया गिरा। तथ्यं वो वचनं किंतु समाप्येह स्वकंव्रतम्॥९४॥
प्राप्यानुज्ञां गुरोः सर्वं वैवाहं कर्म नान्यथा ।
इत्युक्ताः पुनरूचुस्ताःस्फुटं मूढोऽसि सुन्दर ! ॥९५॥
दिव्यौषधं ब्रह्मरसायनं च सिद्धिर्निधेः साधुकला वराङ्गनाः ।
मन्त्रस्तथा सिद्धिरसश्च धर्मतो नेमा निषेध्याः सुधिया समागताः ॥९६॥
कार्यं हि दैवाद्यदि सिद्धमागतं तस्मिन्नुपेक्षां न च याति नीतिगः ।
यस्मादुपेक्षा न पुनः फलप्रदा तस्मान्न दीर्घीकरणं प्रशस्यते ॥९७॥

के बाद कमलिनी के समान वे सब कन्याएँ ब्रह्मचारी को देखकर प्रसन्न हो गयीं ॥८५॥ उसी समय वे कन्यायें ब्रह्मचारी के समीप जाकर बायें और दायें होकर उनको अपने भुजपाश में बाँध लीं ॥८६॥ उन सबों ने कहा धूर्त कल तो तुम चले गये थे किन्तु आज नहीं जा सकते हो हमलोगों ने तुम्हारा वरण कर लिया है, अव इस विषय में विचार मत करो ॥८७॥ इस तरह से कहने पर भुजपाश में बँधे हुए ब्राह्मण ने हँसकर कहा तुमलोग कल्याणकारी और मधुर वाणी में बोलती हो ॥८८॥ किन्तु मैं तो प्रथम आश्रम में हूँ अभी व्रत है वेदाध्ययन करने वाले का यह आश्रम गुरुकुल में होगा ॥८९॥ जिस आश्रम का जो धर्म होता है पण्डितों को उसका पालन करना चाहिए अतएव कन्ययाएँ मेरा विवाह उसके बाद ही होगा। ब्रह्मचारी की बात को सुनकर उन कन्याओं ने उत्कण्ठा युक्त मनोहर ध्वनि में वसन्त में कोकिलाओं के समान कहीं ॥९०-९१॥ धर्म करने से अर्थ की प्राप्ति होती है । अर्थ से काम की प्राप्ति होती है, काम के द्वारा धर्म फल की प्राप्ति होती है । इस तरह से शास्त्र के द्वारा निश्चित बात को विद्वान् बतलाते हैं॥९२॥ वह काम धर्म की बहुलता के कारण तुम्हारे समक्ष उपस्थित हुआ है । आप उससे अनेक प्रकार की कामनाओं से इस स्वर्ग भूमि का उपभोग करें ॥९३॥ उन सबों की इस बात को सुनकर ब्रह्मचारी ने गम्भीर वाणी में कहा तुमलोगों की बात सत्य है किन्तु मैं अपने व्रत को समाप्त करके ॥९४॥ आचार्य की आज्ञा प्राप्त करके मैं सम्पूर्ण वैवाहिक कर्म करूँगा पहले नहीं । इस तरह से कहने पर उन सबों ने पुनः कहा सुन्दर ! तुम मूर्ख हो ॥९५॥ श्रेष्ठ नारियाँ दिव्य औषधियाँ हैं, ब्रह्म स्नान हैं, सिद्धि

सान्द्रानुरागाः कुलजन्मनिर्मलाः स्नेहार्द्रचित्ताः सुगिरः स्वयम्वराः ।
कन्याः सुरूपाः खलु चारुयौवना धन्या लभन्तेऽत्र नरास्तु नेतरे ॥९८॥
क्व वयं वर सुन्दर्यः क्व चायं तापसो वटुः ।
दुर्घटस्य विधाने हि मन्येधाताऽतिपण्डितः ॥९९॥
तस्मादस्मानिदानीं तु स्वीकुर्यान्मङ्गलं भवान् ।
गान्धर्वेण विवाहेन ह्यन्यथा नो न जीवितम् ॥१००॥
श्रुतवाक्यस्ततः प्राह ब्राह्मणो धर्मवित्तमः। भो मृगाक्ष्यः कथं त्याज्यो धर्मोधर्मधनैर्नरैः॥१०१॥
धर्मश्चार्थश्च कामाश्च मोक्षश्चैतच्चतुष्टयम्। यथोक्तं ज्ञेयं विपरीतं तु निष्फलम् ॥१०२॥
नाकालेऽहं व्रती कुर्यामतो दारपरिग्रहम् । न क्रियाफलमाप्नोति क्रियाकालं न वेत्ति यः॥१०३॥
यतो धर्मविचारेऽस्मिन्प्रसक्तं मम मानसम् । तस्माच्छृणुत हेकन्या न समीहे स्वयम्वरम् ॥१०४॥
एवं ज्ञात्वाऽऽशयं तस्य समीक्ष्यैताःपरस्परम् ।
करात्करं विमुच्याऽथ जग्राहाऽङ्घ्री प्रमोदिनी ॥१०५॥
भुजौ जगृहतुस्तस्य सुशीला सुस्वरा तथा ।
आलिलिङ्ग सुतारा च चुचुम्बे चन्द्रिका मुखम्॥१०६॥
तथापि निर्विकारोऽसौ प्रलयानलसन्निभः। शशाप ब्रह्मचारी ताः क्रोधेनाऽत्यन्तमूर्छितः॥१०७॥

का आकर हैं और सुन्दर कला होती हैं । बुद्धिमान पुरुष को, मन्त्र, सिद्धि रस का धर्मानुसार निषेध नहीं करना चाहिए ॥९६॥ भाग्यवशात् यदि सिद्धकर्म प्राप्त हो जाय तो नीतिज्ञ पुरुष उसकी उपेक्षा नहीं करते हैं, क्योंकि उपेक्षा फलप्रद नहीं होती है, अतएव किसी कार्य में विलम्ब करने की प्रशंसा कोई भी नहीं करता है ॥९७॥ सघन प्रेम युक्त, कुल तथा जन्म से निर्मल, जिनका हृदय स्नेह से भरा है, सुन्दर वाणी वाली, स्वयम्वरण करने वाली, सुन्दर यौवन सम्पन्न तथा सुन्दर रूप वाली कन्याओं को तो कोई भाग्यवान् पुरुष ही प्राप्त करते हैं दूसरे लोग नहीं ॥९८॥ कहाँ तो हमलोग श्रेष्ठ सुन्दरियाँ और कहाँ तो आप तपस्वी ब्रह्मचारी ? इस तरह का दुर्घट विधान करने में ब्रह्माजी दक्ष हैं ॥९९॥ इसीलिए मङ्गल स्वरूप आप हमलोगों को गान्धर्व विवाह विधि से स्वीकार करें । अन्यथा हमलोग जीवित नहीं रह सकती हैं ॥१००॥ उस वाक्य को सुनकर श्रेष्ठ धर्म वेत्ता उस ब्राह्मण ने कहा— अरी मृगनयनियों जिनका धर्म ही ऐसा है ऐसे लोग उस धर्म को कैसे त्याग सकते हैं ?॥१०१॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारो पुरुषार्थ शास्त्रानुकूल होने पर ही सफल होते हैं अन्यथा विफल होते हैं ॥१०२॥ अतएव व्रती मैं विना उचित समय के विवाह नहीं कर सकता हूँ । जो किसी काम के उचित समय को नहीं जानता है वह उसका फल नहीं प्राप्त करता है ॥१०३॥ चूकि मेरा मन धर्म में लगा है अतएव कन्याओं तुमलोग सुनों मैं स्वयम्वर करना नहीं चाहता हूँ ॥१०४॥ उस ब्रह्मचारी के इस प्रकार के अभिप्राय को जाकनर उन सबों ने परस्पर में एक दूसरे को देखकर हाथ-से-हाथ छुड़ा कर प्रमोदिनी ने उसके दोनों पैरों को पकड़ लिया उसके दोनों हाथों को सुशीला और सुस्वरा ने पकड़ लिया । सुतारा ने उनका आलिङ्गन कर लिया और चन्द्रिका ने उनका चुम्बन किया ॥१०५-१०६॥ फिर भी प्रलयाग्नि के समान उस ब्रह्मचारी के मन में कोई विकार नहीं आया

पिशाच्यइव मां लग्नास्तत्पिशाच्यो भविष्यथ ।
एवं तेनाऽऽशु शप्तास्तास्तं संत्यज्य पुरःस्थिताः ॥१०८॥
किमेतच्चेष्टितं पाप ह्यनागसि जने त्वया। प्रिये कृत्येऽप्रियं कृत्वा धिक्त्वां धर्मज्ञतांतव ॥१०९॥
अनुरक्तेषु भक्तेषु मित्रेषु द्रोहकारिणः। पुंसो लोकद्वये सौख्यं नाशं यातीतिनः श्रुतम्॥११०॥
तस्मात्त्वमपि नः शापात्पिशाचो भव सत्वरम् ।
इत्युक्त्वोपरता बाला निःश्वसन्त्यः क्षुधाकुलाः ॥१११॥
तदा चान्योन्यसंरम्भात्तस्मिन्सरसि पार्थिव ! ।
ताः कन्या ब्रह्मचारी स (च) सर्वे पैशाचमागताः ॥११२॥
पिशाच्यः सपिशाचत्र क्रन्दमानाः सुदारुणम् ।
क्षपयन्ति विपाकंतंपूर्वोपात्तस्यकर्मणः ॥११३॥
स्वकालेतुफलत्येवपूर्वोपात्तंशुभाशुभम् । स्वच्छायावच्च दुर्वारंदेवानामपिपार्थिव॥११४॥
क्रन्दन्तिपितरस्तासां मातरस्तत्र तस्य च। अप्रमादश्च बालानां दैवं हिदुरतिक्रमम् ॥११५॥
ततऊर्ध्वंपिशाचास्ते आहारार्थे सुदुःखिताः। इतस्ततश्च धावन्तो वसन्ति सरसस्तटे॥११६॥
एवं बहुतिथे काले लोमशो मुनिसत्तमः। पौषे मासि चतुर्दश्यामच्छोदे स्नातुमागतः ॥११७॥
दृष्ट्वा तं ब्राह्मणं सर्वे पिशाचाः क्षुत्समाकुलाः ।
धावन्तो हन्तुकामास्ते मिलित्वा यूथवर्तिनः ॥११८॥
दह्यमानाः सुतीव्रेण तेजसा लोमशस्य च। असमर्थाः पुरःस्थातुं सर्वे ते दूरतः स्थिताः॥११९॥

और अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस ब्रह्मचारी ने उन सबों को शाप दे दिया ॥१०७॥ तुमलोग पिशाची के समान मुझसे लिपट गयीं हो अतएव पिशाची हो जाओ । इस तरह से ब्रह्मचारी से शप्त उसको छोड़कर उसके सामने वे खड़ी हो गयीं ॥१०८॥ उन सबों ने कहा— अरे पापी, निरपराध हमलोगों के प्रति तुमने क्या किया ? प्रिय कार्य करने पर अप्रिय करने वाले तुम धर्मी को धिक्कार है ॥१०९॥ अनुरागयुक्त, भक्त तथा मित्रों से द्रोह करने वाले मनुष्य के लोक तथा परलोक दोनों में सुख का नाश हो जाता है यह हमलोगों ने सुना है ॥११०॥ अतएव तुम भी हमलोगों जैसे पिशाच हो जाओ इस तरह से कहकर निश्वास लेती हुयी वे कुमारियाँ भूख से व्याकुल होने के कारण चुप हो गयीं ॥१११॥ हे राजन् ! इस तरह परस्पर में होने वाले विषाद के कारण वे कन्यायें और ब्रह्मचारी सबके सब पिशाच हो गये ॥११२॥ पिशाच और पिशाचियाँ करुण रुदन करती हुयी अपने पूर्वकर्म के परिणाम को भोग रहे थे ॥११३॥ पूर्वकृत शुभ और अशुभ कर्म अपने समय पर ही फल प्रदान करते हैं । राजन् ! अपनी छाया के समान कर्म नष्ट नहीं होता है ॥११४॥ ब्रह्मचारी और उन कन्याओं के माता-पिता रो रहे थे कन्याओं के अप्रमाद जन्य भाग्य को पार करना कठिन था ॥११५॥ उसके पश्चात् वे सभी अत्यन्त दुःखी होकर आहार के लिए इधर-उधर दौड़ते हुए उस सरोवर पर ही रहने लगे ॥११६॥ इस तरह से बहुत दिनों के पश्चात् पौष मास की चतुर्दशी को मुनिश्रेष्ठ लोमश स्नान करने के लिए उस सरोवर पर आये ॥११७॥ उन ब्राह्मण को देखकर भूख से व्याकुल एक समूह में रहने वाले वे पिशाच मिलकर उनको मारने के लिए दौड़ते हुए आये ॥११८॥ लोमश

तत्र वेदनिधिर्विप्रस्तदैव हि समागतः। समीक्ष्य लोमशं राजन्साष्टाङ्गं प्रणिपत्य सः॥१२०॥
उवाच सूनृतां वाचं बद्ध्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।
महाभाग्योदये विप्र ! साधूनां संगतिर्भवेत् ॥१२१॥
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वदा । यः करोति सतां सङ्गं तयोः सत्संगतिर्वरा ॥१२२॥
गुरूणां सङ्गमो विप्र दृष्टादृष्टफलो भुवि । स्वर्गदो रोगहारी च किंतु सोपद्रवो मतः ॥१२३॥
इत्युक्त्वा कथयामास पूर्ववृत्तान्तमद्भुतम् । इमा गन्धर्वकन्यास्ता बटुः सोऽयं ममात्मजः॥१२४॥
सर्वे पिशाचरूपेण मिथःशापविमोहिताः । दीनाननास्तु तिष्ठन्ति तवाग्रे मुनिसत्तम ॥१२५॥
तवद्दर्शनेन बालानां निस्तारोऽद्य भविष्यति। सूर्योदये तमःस्तोमः किं न लीयेत गह्वरे ॥१२६॥
श्रुत्वा तल्लोमशो राजन्कृपार्द्रीकृतमानसः। प्रत्युवाचमहातेजास्तं मुनिं पुत्रदुःखितम् ॥१२७॥
मत्प्रसादाच्च बालानां स्मृतिः सपदि जायताम् ।
धर्मं च वच्मि तं येन मिथःशापो लयं व्रजेत् ॥१२८॥

वेदनिधिरुवाच

महर्षे कथ्यतां धर्मो मुच्यन्ते येन बालकाः। नायंकालोविलम्बस्यशापाग्निर्दारुणोयतः ॥१२९॥

लोमश उवाच

मया सार्धं प्रकुर्वन्तु माघस्नानं विधानतः। शापान्मुञ्चन्ति माघान्ते नान्यथा निष्कृतिर्भवेत्॥१३०॥
शापः पापफलं विप्र पापनाशो भवेन्नृणाम् ।
माघस्नानेन तीर्थे च इतिमेनिश्चितामतिः ॥१३१॥

महर्षि के अत्यन्त तेज से जलते हुए वे सब उनके सामने रुकने में असमर्थ होकर दूर ही रुक गये॥११९॥ वहाँ पर उसी समय वेद निधि ब्राह्मण आये । राजन् ! लोमश मुनि को देखकर उन्होंने उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥१२०॥ वे हाथ जोड़कर महर्षि को सुन्दर वाणी में कहे, हे विप्र ! महाभाग्य के उदय होने पर सज्जनों का दर्शन होता है ॥१२१॥ गङ्गा आदि सभी तीर्थों में स्नान करके जो सङ्गति करता है । उन दोनों की सङ्गति को श्रेष्ठ कहा जाता है ॥१२२॥ हे विप्र ! गुरुजनों की लोक में दृष्ट अदृष्ट का फल होता है वह स्वर्ग प्रद, रोगों को हरण करने वाला किन्तु उपद्रव युक्त होता है ॥१२३॥ यह कहकर उन्होंने प्राचीन अद्भुत वृत्तान्त को सुनाया । ये सभी वही गन्धर्व कन्याएँ हैं और वह वटु मेरा पुत्र है ॥१२४॥ परस्पर के शाप से मोहित ये आपके समक्ष दीन होकर खड़े हैं ॥१२५॥ आपके दर्शन से इन बालकों का आज उद्धार हो जायेगा । सूर्योदय हो जाने पर अन्धकार समूह गुफा में नहीं छिप जाता है क्या ?॥१२६॥ राजन् ! उस बात को सुनकर दयार्द्र हुए महातेजस्वी लोमश महर्षि ने पुत्र के दुःख से दुःखी वेदनिधि से कहा । मेरी कृपा से इन बालकों को पूर्वकाल की स्मृति हो जाय मैं ऐसे धर्म का उपदेश देता हूँ जिससे कि यह परस्पर का शाप विनष्ट हो जाय ॥१२७-१२८॥ **वेद निधि ने कहा—** हे महर्षे ! आप उस धर्म को बतलाइये जिससे कि ये बालक मुक्त हो जायँ, यह विलम्ब करने का समय नहीं है, क्योंकि शाप की अग्नि भयङ्कर होती है ॥१२९॥ **लोमश महर्षि ने कहा—** ये सभी मेरे साथ विधि पूर्वक माघ स्नान करे ये सभी माघ के अन्त में मुक्त हो जायेंगे अन्यथा इन सबों का उद्धार नहीं हो सकता है ॥१३०॥ हे विप्र!

सप्तजन्मकृतं पापं वर्तमानं च पातकम्। माघस्नानं दहेत्सर्वं पुण्यतीर्थे विशेषतः ॥१३२॥
प्रायश्चित्तं न पश्यन्ति यस्मिन्पापे मुनीश्वराः। पातकं पुण्यतीर्थेषु नश्येत्तदपि माघतः ॥१३३॥
ज्ञानकृन्मानसे माघस्तस्मान्मोक्षफलप्रदः । हिमवत्पृष्ठतीर्थेषु सर्वपापप्रणाशनः ॥१३४॥
इन्द्रलोकप्रदोऽच्छोदे निर्दिष्टो वेदवादिभिः । सर्वपापहरो माघो मोक्षदो बदरीवने ॥१३५॥
पापहा दुःखहारी च सर्वकामफलप्रदः । रुद्रलोकप्रदो माघो नार्मदे पापनाशतः ॥१३६॥
यामुनः सूर्यलोकय भवेत्कल्मषनाशनः । सारस्वतोऽघविध्वंसी ब्रह्मलोकफलप्रदः ॥१३७॥
विशालफलदो माघो विशालायां द्विजोत्तम। पातकेन्धनदावाग्निर्गर्भहेतुक्रियापहः ॥१३८॥

विष्णुलोकाय मोक्षाय जाह्नवः परिकीर्तितः ।
सरयूगण्डकीसिन्धुश्चन्द्रभागा च कौशिकी ॥१३९॥

तापीगोदावरीभीमापयोष्णीकृष्णवेणिका । कावेरीतुङ्गभद्रा च अन्या याश्च समुद्रगाः ॥१४०॥

आशु माघी नरो याति स्वर्गलोकं विकल्मषः ।
नैमिषे विष्णुसायुज्यं पुष्करे ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥१४१॥
आखण्डलस्य लोको हि कुरुक्षेत्रे तु माघतः ।
माघो देवह्रदे विप्र योगसिद्धिफलप्रदः ॥१४२॥

प्रभासे मकरादित्ये स्नानादुद्रगणो भवेत् । देवक्यां देवतादेहो नरो भवति माघतः॥१४३॥
माघस्नानेन भो विप्र गोमत्यां न पुनर्भवः । हेमकूटे महाकालओङ्कारे चामरेश्वरे ॥१४४॥

शाप पाप का फल होता है और पाप का नाश तीर्थ में माघ स्नान से निश्चित रूप से हो जाता है यह मेरा निश्चित मत है ॥१३१॥ विशेष रूप से पुण्य तीर्थ में माघ स्नान करने से सात जन्मों के पाप और वर्तमान पाप को भस्म कर देता है । ॥१३२॥ मुनीश्वरोंने जिन पापों का प्रायश्चित्त नहीं बतलाया है वह भी पाप पुण्य तीर्थ में माघ स्नान करने से नष्ट हो जाता है ॥१३३॥ मन में माघ स्नान करने से ज्ञान उत्पन्न होता है । इसीलिए वह मोक्ष प्रदान करने वाला है । हिमलाय पर विद्यमान् तीर्थों में वह सभी पापों को विनष्ट कर देता है ॥१३४॥ वेद वादियों ने अच्छोद को इन्द्रलोक प्रदान करने वाला बतलाया है, सभी पापों को विनष्ट करने वाला माघ बदरिकाश्रम में मोक्ष प्रदान करता है ॥१३५॥ नर्मदा के तट पर माघ पापनाशक दुःख विनाशक, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला और रुद्रलोक प्रदान करने वाला होता है॥१३६॥ यमुना तट पर माघ सभी पापों को नष्ट करने वाला तथा सूर्यलोक प्रदान करने वाला, सरस्वती नदी में वह पाप विनाशक और ब्रह्मलोक प्रदान करने वाला होता है ॥१३७॥ हे द्विजोत्तम ! विशाला में माघ विशाल फल देता है जिन कर्मों को करने से पाप होता है उन सबों को वह भस्म कर देता है॥१३८॥ गङ्गातट पर माघ विष्णुलोक तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है । सरयू, गन्डकी, सिन्धु, चन्द्रभागा, कौशिकी, तापी, गोदावरी, भीमा, पयोष्णी कृष्णवेणी, काबेरी, तुङ्गभद्रा तथा अन्य जो समुद्रगामिनी नदियाँ है । इन सबों गें स्नान करने वाला मनुष्य शीघ्र ही निष्पाप होकर स्वर्ग चला जाता है । नैमिषारण्य में माघ भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्रदान करता है । पुष्कर में माघ बह्माजी का लोक प्रदान करता है ॥१३९-१४१॥ कुरुक्षेत्र में माघ स्नान करने से इन्द्र का लोक प्राप्त होता है । देह्रद में माघ योग की सिद्धि प्रदान करता है। सूर्य के मकर राशि के होने पर प्रभास क्षेत्र में स्नान करने से मनुष्य रुद्र का गण होता है । देवकी नदी

नीलकण्ठेऽर्बुदे माघाद्रुद्रलोके महीयते। सर्वासां सरितां विप्र सङ्गमे मकरे रवौ ॥१४५॥
स्नानेन सर्वकामानामवाप्तिर्जायते नृणाम् । माघस्तु प्राप्यते धन्यैः प्रयागे द्विजसत्तम ॥
अपुनर्भवदं तत्र सितासितजलं यतः ॥१४६॥

गायन्ति देवाः सततं दिविष्ठा माघः प्रयागे किल नो भविष्यति ।
स्नानान्नरा यत्र न गर्भवेदनां पश्यन्ति तिष्ठन्ति च विष्णुसन्निधौ ॥१४७॥
मज्जन्ति येऽपि त्र्यहमत्र मानवास्तीर्थे प्रयागे बहुपापकञ्चुकाः ।
व्रजन्ति ते नो निरयेषु धर्मिणः स्वर्गे शुभे चारु चरन्ति देववत् ॥१४८॥
तीर्थैर्व्रतैर्दानतपोभिरध्वरैः सार्धं विधात्रा तुलया धृतं पुरः ।
माघे प्रयागस्य तयोर्द्वयोरभून्माघो गरीयानतएव सोऽधिकः ॥१४९॥
वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसञ्चितैः ।
योगैश्च संयान्ति नरा न तां गतिं स्नानेन माघस्य हि यान्ति यां गतिम् ॥१५०॥
स्नाताश्च ये मकरभास्करोदये तीर्थे प्रयागे सुरसन्धिुसङ्गमे ।
तेषां गृहद्वारमलङ्करोति किं भृङ्गावलिः कुञ्जरकर्णताडिता ॥१५१॥
यो राजसूयाद्धयमेधयज्ञतः स्नानात्फलं संप्रददाति चाधिकम् ।
पापानि सर्वाणि विलोप्य लीलया नूनं प्रयागः स कथं न सेवयते ॥१५२॥

अवन्तिविषये राजा वीरसेनोऽभवत्पुरा। नर्मदातीरमागत्य राजसूयं चकार सः॥१५३॥
षोडशैरश्वमेधैश्च स्वर्णवाटविराजितैः । स्वर्णभूषणयूपाढ्यैरीजे सोऽपि यथाविधि ॥१५४॥

में माघ में स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता है । हेमकूट, महाकाल, ओङ्कारेश्वर, अमेश्वर, नीलकण्ठ, अर्वुदक्षेत्र में माघ स्नान रुद्रलोक प्रदान करता है । हे विप्र ! मकरार्क में सभी नदियों के सङ्गमस्थल में ॥१४२-१४५॥ स्नान करने से सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है । हे द्विज ! धन्य पुरुष भी प्रयाग में माघ को प्राप्त करते हैं । क्योंकि वहाँ पर सितासित जल से पुनर्जन्म की प्राप्ति नहीं होती हैं ॥१४६॥ स्वर्गलोक में रहने वाले देवता यह कहते हैं हमें प्रयाग में माघ नहीं मिलेगा । वहाँ पर स्नान करने वाले मनुष्य पुनः गर्भ की वेदना को नहीं प्राप्त करते हैं और भगवान् विष्णु का सान्निध्य प्राप्त करते हैं ॥१४७॥ बहुत बड़े पापी भी मनुष्य यदि प्रयाग तीर्थ में तीन दिन स्नान करते हैं तो वे नरकों में नहीं जाते हैं और धार्मिक होकर वे स्वर्ग में देवता के समान सञ्चरण करते हैं ॥१४८॥ तीर्थ, व्रत, दान, तपस्या तथा यज्ञों के साथ ब्रह्माजी ने प्रयाग में माघ के फल की तौला तो उन दोनों में माघ भारी हो गया अतएव प्रयाग सबों से बड़ा है ॥१४९॥ वायु, जल, तथा पत्तों को खाकर शरीर को सुखाने से तथा चिरकाल पर्यन्त तपस्या करने से तथा योग करने से मनुष्य उस गति को नहीं प्राप्त करते हैं, जिस गति को वे प्रयाग में माघ स्नान करने से प्राप्त करते हैं ॥१५०॥ जिन लोगों ने सूर्योदय से पहले माघ स्नान किया, प्रयाग के गङ्गा यमुना सङ्गम स्थल में किया उनके दरवाजे को हाथियों के कानों से प्रताड़ित होकर भ्रमर समूह अलंकृत करते हैं॥१५१॥ जो प्रयाग राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक फल प्रदान करता है तथा आसानी से सभी पापों को विनष्ट कर देता है उस प्रयाग का सेवन लोग क्यों नहीं करते हैं ॥१५२॥ प्राचीन काल में अवन्तिका नगरी का राजा वीरसेन हुआ । उसने नर्मदा के तट पर आकर राजसूय यज्ञ किया॥१५३॥

प्रददौ धान्यराशींश्च द्विजेभ्यः पर्वतोपमान् । वदान्यो देवताभक्तो गोप्रदः ससुवर्णदः ॥१५५॥
ब्राह्मणो भद्रको नाम मूर्खो हि नकुलस्तथा ।
कृषीवलो दुराचारः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥१५६॥
कृषिकर्मसमुद्विग्नो बन्धुभिश्चाप्यसंस्कृतः। इतस्ततः परिभ्रम्य निर्गतः क्षुत्प्रपीडितः ॥१५७॥
दैवतः सार्थमाविश्य प्रयागं स समागतः। महामाघीं पुरस्कृत्य सस्नौ तत्र दिनत्रयम् ॥१५८॥
अनघः स्नानमात्रेण भूत्वेह स द्विजोत्तमः। प्रयागाच्चलितस्तत्र पुनर्यस्मात्समागतः॥१५९॥
स राजा सोऽपि विप्रश्च विपन्नावेकदा तदा ।
तयोर्गतिः समा दृष्टा मया शक्रस्य सन्निधौ ॥१६०॥
तेजो रूपं बलं स्त्रैणं देवयानं विभूषणम्। पारिजातमयी माला नृत्यं गीतंतयोःसमम् ॥१६१॥
इति दृष्टं हि माहात्म्यं क्षेत्रस्य कथमुच्यते। माघः सितासिते विप्रराजसूयैः समोमतः॥१६२॥
धनुस्त्रिशतविस्तीर्णे सितनीलाम्बुसङ्गमे। अपुनरावृत्तिर्माघी राजसूयी पुनर्भवेत् ॥१६३॥
माघमासिकवातोऽपि सितासितजलं स्पृशेत् ।
अधर्म्यं न स्पृशेन्नूनं महापातकहा हि सः ॥१६४॥
किमत्र बहुनोक्तेन श्रूयतां निश्चितं द्विज। समुद्भूतफलं पापं तीर्थे माघः प्रणाशयेत् ॥१६५॥
अत्र ते कथयिष्यामि सावधानमतिः शृणु ।(पिशाचमोचनं नाम इतिहासं पुरातनम् ॥

स्वर्णवाट से सुशोभित सोलह अश्वमेधों से तथा सुवर्ण के आभूषणों से अलंकृत अश्वमेध यज्ञों से सविधि पूजन किया ॥१५४॥ उसने पर्वत के समान अन्न के ढेरों को ब्राह्मणों को दान दिया । वह उदार, देवता भक्त, गोदान करने वाला तथा सुवर्ण दान करने वाला था ॥१५५॥ भद्रक नामक ब्राह्मण जो कुल हीन, कृषक, दुराचारी तथा सभी धर्मों से बहिष्कृत था, वह कृषी से घबरा गया, बान्धवों ने उसका संस्कार नहीं इधर-उधर भ्रमण करके भूख और प्यास से पीड़ित होकर वहाँ से निकल गया ॥१५६-१५७॥ देवताओं के समूह में घूसकर वह प्रयाग में आया महामाघी को दृष्टि पथ में रखकर वहाँ उसने तीन दिन तक स्नान की ॥१५८॥ केवल स्नान करके निष्पाप तथा द्विजश्रेष्ठ होकर वह प्रयाग से जहाँ से आया था वहाँ के लिए चल पड़ा ॥१५९॥ उस समय वह राजा और वह विप्र दोनों की मृत्यु एक साथ हुयी । मैंने उन दोनों की इन्द्र की सन्निधि में एक समान गति हुयी ॥१६०॥ उन दोनों के तेज, रूप, बल, स्त्रियाँ, विमान, आभूषण, पारिजत पुष्प की माला, नृत्य और गीत एक समान थे ॥१६१॥ यह मैंने देखा अतएव उसे क्षेत्र की महिमा कैसे बतलायी जाय । प्रयाग के सङ्गम में माघ में स्नान करने वाले और राजसूय यज्ञ करने वालों को एक समान फल है ॥१६२॥ तीन सौ धनुष में फैले हुए सङ्गम में माघ स्नान करने वाला मनुष्य पुनः इस संसार में नहीं आता है, जबकि राजसूय याग करने वाले का पुनर्जन्म होता है ॥१६३॥ माघमास की वायु भी प्रयाग सङ्गम स्थल का स्पर्श करता है । किन्तु वह अधर्म का स्पर्श नहीं करता है, क्योंकि वह तो पवित्र करने वाला है ॥१६४॥ हे द्विज ! बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है ? मेरा निश्चित मत आप सुनें । जितने भी पाप हैं माघ मास उन सबों को तीर्थ स्थल में विनष्ट कर देता है ॥१६५॥ इस विषय में मैं आपको एक प्राचीन पिशाच मोचन नामक इतिहास सुनाता हूँ । ये अप्सरा बलिकाएँ और तुम्हारा पुत्र भी सुनें । मेरी कृपा से स्मृति को प्राप्त करके पिशाचत्व से मुक्ति चाहने वाले हैं । प्राचीन काल में देवद्युति नामक

शृण्वन्त्वप्सरो बाला: शृणोतु त्वत्सुतस्तथा ।
मत्प्रसादात्स्मृतिं लब्ध्वा पैशाच्यान्मुक्तिकामिनः ॥)
पुरा देवद्युतिर्विप्रो वैष्णवो वेदपारगः ॥१६६॥
पिशाचान्मोचयामास करुणाप्लुतमानसः ॥१६७॥

दिलीप उवाच

कुत्र स्थितः कस्य पुत्रो नियमः कोऽस्य वा जपः ।
केन वा वैष्णवो वृत्तः के पिशाचाश्च मोचिताः ॥१६८॥
एतद्विस्तरतः सर्वं कीर्तयस्व महामुने। कौतूहलं महापुण्यं शृणुमस्त्वत्प्रसादतः ॥१६९॥

वसिष्ठ उवाच

प्लक्षप्रस्रवणे पुण्ये सरस्वत्यास्तटे शुभे । तत्राश्रमपदं तस्य शैलमाश्रित्य शोभनम् ॥१७०॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च बिल्वैर्बकुलपाटलैः । तिन्तिडीचिरबिल्वैश्च चूतचम्पककाञ्चनैः ॥१७१॥
करञ्जैः कोविदारैश्च केसरैः कुञ्जराशनैः । नतिलकैः कर्णिकारैश्चकुम्भैःखादिरतिन्दुकैः ॥१७२॥
वासीरैः साल्वजम्बीरैः पीलूदुम्बरवेतसैः । शाकोटैरटरूषैश्च करहाटैर्वटद्रुमैः ॥१७३॥
घोण्टाकुटजपालाशैरशोकैः शोकहारिभिः । चम्बूनिम्बकदम्बैश्च क्षीरिकाकरमर्दकैः ॥१७४॥
बीजपूरैः सनारिङ्गैरम्भाराजिविराजितैः । पनसैरसवद्भिश्च नारिकेलैः सदाफलैः ॥१७५॥
सप्तच्छदैस्त्रिपत्रैश्च शिरीषामलकैः शुभैः । कर्कन्धूलकुचैरक्षैः पारिभद्रैर्वचादिभिः ॥१७६॥
केतकैः सिन्दुवारैश्च तगरैः कुन्दमल्लिकैः । पद्मेन्दीवरकह्लारमालतीयूथिकादिभिः ॥१७७॥
मालतीमोगरैश्चैव जातीफलविराजितैः । पुन्नागैः किंशुकैश्चैव बर्बरीतुलसीद्रुमैः ॥१७८॥
आश्रमोरमणीयः स द्रुमैर्नावानिवैर्नृपः । वनमध्ये नदी याति पुण्यतोया सरस्वती ॥१७९॥

वेद पारङ्गत वैष्णव ब्राह्मण ने ॥१६६॥ करुणा से भरकर पिशाचों को मुक्त कर दिया ॥१६७॥ **महाराज दिलीप ने कहा—** वह ब्राह्मण कहाँ रहता था ? किसका पुत्र था वह कौन सा नियम और जप करता था ? किसने उसको वैष्णव बनाया और किन पिशाचों को उसने मुक्त बना दिया ?॥१६८॥ हे महामुने! आप इन सारी बातों को विस्तार पूर्वक बतलायें । आपकी कृपा से इस महापवित्र और कौतूहल पूर्ण इतिहास को मैं सुनाना चाहता हूँ ॥१६९॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** सरस्वती नदी के पवित्र तट पर विद्यमान प्लक्ष प्रस्रवण क्षेत्र के पर्वत के ऊपर सुन्दर पर्वत पर उसका आश्रय युक्त मनोहर आश्रम था॥१७०॥ वह आश्रम, शाल, ताल, तमाल, विल्व बकुल, पाटल, इमली, चिरि, विल्व, सोनचम्पा ॥१७१॥ करञ्ज, कोविदार, केशर और कुञ्जराशन, तिलक, कर्णिकार, कुम्भ, खैर, तेन्दुक ॥१७२॥ वासीर, साल्व, जम्वीर, पीलु, गूलर, शालकोट, अटरुष (अरुष) करहाट, वटवृक्ष ॥१७३॥ घोण्टा, कूटज, पलाश शोक नाशक, अशोक, जामुन, नीम, कदम्ब, क्षीरिका करमर्दक ॥१७४॥ बीजपूर नारङ्गी, सुन्दर केलों की पङ्क्ति, रसयुक्त, कटहल, हमेशा फलयुक्त रहने वाले नारियल ॥१७५॥ सप्तछद, त्रिपत्र, शिरीष, आँवला, बैर, लकुच, पारिभद्र, बचा ॥१७६॥ केतकी, सिन्दुवार, तगर, कुन्द, मालती, कमल, नीलकमल, कह्लार, मालती, जूही ॥१७७॥ मालती, मोगरा, फलों से सुशोभित जाती, पुन्नाग, किंशुक, बर्बरी तथा तुलसी के

कूजन्ति सारसास्तत्र मदस्निग्धकलं सदा। नदन्ति कोकिलाः शब्दं गुञ्जन्ति च मधुव्रताः॥१८०॥
बहुकोलाहलं भूप तद्वनं शुकसारिभिः। चरन्ति श्वापदास्तत्र विविधाः काननोत्तमे॥१८१॥
सदाफलं सदापुष्पं परागकणधूसरम्। आच्छन्नं काननं सर्वं मधुवृक्षैः समन्ततः॥१८२॥
नवपल्लवसंजातमञ्जरीभरवल्लिभिः। आश्लिष्टमभितो रम्यं प्रियाभिरिव वल्लभः॥१८३॥
तस्य शापभयात्तस्तो वातो वाति समन्वतः। न वर्षन्त्यश्मभिर्मेघा न शोषयति भास्करः॥१८४॥
वनं नोपद्रवं तद्धि सदा सिद्धनिषेवितम्। आह्लादजनकं नित्यं वनं चैत्ररथं यथा॥१८५॥
तस्मिन्वसति धर्मात्मा देवद्युतिर्द्धिजोत्तमः। पुत्रः सुमित्रो विप्रस्य लब्धो लक्ष्मीपतेर्वरात्॥१८६॥
नियमः श्रूयतां तस्य सर्वदा नियतात्मनः। ग्रीष्मे पञ्चतपा नित्यं सूर्यन्यस्तविलोचनः॥१८७॥
वर्षत्कादम्बिनी यावद्वर्षास्वभ्रावकाशगः। वाते प्रवाते निष्कम्पो दुःसहो हिमवानिव॥१८८॥
वसत्यप्सु स हेमन्ते ह्रदे सारस्वते द्विज। उपस्पृशति काले स त्रिवारं वारि निर्मलम्॥१८९॥
पितृन्देवानृषीन्नित्यं संतर्पयति श्रद्धया। ब्रह्मयज्ञपरो नित्यं सत्यवादी जितेन्द्रियः॥१९०॥
भूमौ विश्रम्य विश्रान्तः प्रदध्यौ प्रार्थयन्हरिम्।
वन्यैर्जुहोत्यग्निहोत्रं श्रद्धयाऽतिथिपूजकः॥१९१॥
चान्द्रायणविधानेन कालं नयति सर्वदा। स्वयं विगलितैः पत्रैः फलैर्वृत्तिं समीहते॥१९२॥
अनुद्विग्नस्तपोनिष्ठो वेदवेदाङ्गपारगः। धमनीविकरालोऽसावास्थिमात्रकलेवरः॥१९३॥

वृक्षों आदि से ॥१७८॥ यह आश्रम रमणीय था तथा अन्य वृक्षों से भी। उस वन के बीच से पवित्र जल वाली सरस्वती नदी प्रवाहित होती थी ॥१७९॥ वहाँ पर मद से मत्त सारस पक्षी मनोहर कूजन करते थे कोयलें बोलती रहती थी और भौंरें गुञ्जार करते रहते थे ॥१८०॥ राजन्! उस वन में शुकों तथा सारिकाओं की बहुत ध्वनि होती थी। उस उत्तम वन में अनेक प्रकार के जीव चला करते हैं ॥१८१॥ उस वन में सदैव फल लगे रहते थे और पुष्प खिले रहते थे। सम्पूर्ण वन मधुवृक्षों से भरा था ॥१८२॥ वह वन सदा नवीन मञ्जरियों से युक्त लताओं से आलिङ्गित उसी तरह से थे जिस तरह प्रियाओं से उनके प्रिय आलिङ्गित होते हैं ॥१८३॥ महर्षि के शाप के भय से वहाँ वायु सदा मन चला करती थी। मेघ वहाँ ओले नहीं बरसाते थे और सूर्य सुखाने का काम नहीं करते थे ॥१८४॥ सदैव सिद्ध पुरुषों से सेवित उस वन में कोई उपद्रव नहीं होता था चैत्ररथ वन के समान आह्लादित करने वाले उस वन में धार्मिक ब्राह्मण श्रेष्ठ देवद्युति रहते थे। उनके पुत्र का नाम सुमित्र था और उसको वे भगवान् विष्णु के वरदान से प्राप्त किए थे ॥१८५-१८६॥ हमेशा नियमों का पालन करने वाले उन ब्राह्मण के नियमों को आप सुनें। वे ग्रीष्म ऋतु में सदा सूर्य में अपनी दृष्टि लगाये रहते थे और पञ्चाग्नि का सेवन करते थे ॥१८७॥ जब तक वर्षा होती रहती थी तब तक वे खुले आकाश के नीचे रहते थे। कँपा देने वाली वायु के चलने पर वे हिमालय के समान सुदृढ़ बने रहते थे ॥१८८॥ वे ब्राह्मण हेमन्त ऋतु में सरस्वती नदी ह्रद में पड़े रहते थे। वे समयानुसार तीन बार ही जल पीते थे ॥१८९॥ वे श्रद्धा पूर्वक देवताओं का तर्पण करते थे। वे प्रतिदिन ब्रह्मयज्ञ करते थे और सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय थे ॥१९०॥ थकने पर भूमि पर बैठकर श्रीहरि का ध्यान करते थे। वे वन्य फलों से अग्निहोत्र करते थे और श्रद्धा पूर्वक अतिथियों की पूजा करते थे ॥१९१॥ वे सदा चान्द्रायण व्रत करके समय बिताते थे। अपने आप गिरे हुए पत्तों और फलों को वे खाते थे ॥१९२॥ वे कभी

इत्थं जगाम वर्षाणां सहस्रं तस्य कानने । तदा जज्वाल शैलोऽसौतपसस्तस्यतेजसा॥१९४॥
सोढुं न शक्यते भूतैस्तेजस्तस्य महात्मनः । वैश्वानरइवाभाति प्रज्वलंस्तपसा द्विज ॥१९५॥
गतवैराणि भूतानि समजायन्त तद्वने । मृगव्याघ्राखुमार्जारा मिथः क्रीडन्ति निर्भयाः॥१९६॥
अन्योऽपि नियमस्तस्य श्रूयतामतिदुर्लभः । नारायणं त्रिकालं स संपूजयति नित्यशः ॥१९७॥
पुष्पाणां तु सहस्रेण विकचेन सुगन्धिना । वेदसूक्तविधानेन विष्णुध्यानपरायणः ॥१९८॥

विष्णोः स प्रीयते विप्रःकुरुते कर्म चाऽखिलम् ।
दधीचेर्वरदानात्स संजातो वरवैष्णवः ॥१९९॥

एकदा मासि वैशाखएकादश्यां महामुनिः । पूजां कृत्वा हरेरम्यां विचित्रामकरोत्स्तुतिम्॥२००॥
तदैव खगमारुह्य देवदेवो हरिः स्वयम्। आजगाम पुरस्तस्य तया स्तुत्याऽतिहर्षितः ॥२०१॥
तं दृष्ट्वा गरुडारूढं प्रत्यक्षं जलदच्छविम् । चतुर्बाहुं विशालाक्षं सर्वालङ्कारभूषितम्॥२०२॥
उद्भूतपुलको विप्रः सानन्दजललोचनः। जगाम शिरसा भूमौ कृतकृत्यमन स्तदा ॥२०३॥
न ममौ तेन हर्षेण स ब्रह्माण्डोदरेऽपि हि। न सस्मार निजं देहं ब्रह्मभूतइवाभवत् ॥२०४॥

ततः संभाषितः प्रीत्या हरिणा वैष्णवो मुनिः ।
देवद्युते विजानामिमद्भक्तस्त्वं मदाश्रयः ॥२०५॥
संन्यस्ताखिलकर्माऽसि मद्भावो मन्मनाः सदा ।
वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि स्तोत्रेणाऽनेन चानघ ! ॥२०६॥

उद्विगन नहीं होते थे, तपोनिष्ठ तथा वेदों और वेदाङ्गों में पारंगत थे । उनकी धमनियाँ भयङ्कर लगती थी शरीर में केवल अस्थि मात्र रह गया था ॥१९३॥ इस तरह से वन में रहते हुए उनके एक हजार वर्ष बीत गये । उसी समय उनकी तपस्या के तेज से पर्वत जलने लगा ॥१९४॥ उनके तेज को कोई भी जीव वर्दास्त नहीं कर पाता था । अपनी तपस्या से वे ब्राह्मण देदीप्यमान अग्नि के समान प्रतीत होते थे॥१९५॥ उस वन में सभी जीवों ने एक दूसरे से बैर करना त्याग दिया । वहाँ मृग, व्याघ्र, चूहा, बिल्ली, निर्भय होकर एक दूसरे के साथ क्रीड़ा करते थे ॥१९६॥ उन ब्राह्मण के दूसरे भी अत्यन्त दुर्लभ नियमों को आप सुनें । वे प्रतिदिन भगवान् नारायण की त्रिकाल पूजा करते थे ॥१९७॥ भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए वे विकसित सुगन्धित हजारों पुष्पों से वेद सूक्त के विधान से पूजा करते थे ॥१९८॥ वे ब्राह्मण भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के ही लिए सारे कर्मों को करते थे । महर्षि दधीचि के वरदान से श्रेष्ठ वैष्णव हो गये॥१९९॥ एक बार वैशाख मास की एकादशी के दिन वे श्रीहरि की मनोहर पूजा करके अद्भुत स्तुति किए ॥२००॥ उसी समय गरुड़ पर चढ़कर देवाराध्य श्रीहरि स्तुति से अत्यन्त हर्षित होकर उनके समक्ष आ गये ॥२०१॥ चार भुजाओं वाले, विशाल वक्षःस्थल वाले, सभी अलङ्कारों से अलंकृत एवं मेघ के समान कान्ति वाले श्रीहरि को गरुड़ पर सवार देखकर ॥२०२॥ उस समय रोमांच से युक्त तथा आनन्दाश्रु से परिपूर्ण नेत्रों वाले वे ब्राह्मण अपने को कृत-कृत्य करते हुए श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किए ॥२०३॥ वे हर्ष के कारण, ब्रह्माण्ड में नहीं अँट पा रहे थे । वे ब्रह्म स्वरूप हो गये और अपने शरीर को भी याद नहीं कर पा रहे थे ॥२०४॥ उसके पश्चात् श्रीहरि ने प्रेम पूर्वक उन वैष्णव मुनि से कहा हे देवद्युते ! मैं जानता हूँ कि तुम मेरे भक्त और मेरे आश्रित हो ॥२०५॥ मुझमें ही सदा मन लगाये रहने के कारण तुमने

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं प्रत्युवाच स तापसः। देवदेवारविन्दाक्ष स्वमायाधृतविग्रह॥२०७॥
त्वद्दर्शनात्सदा देव दुर्लभो नापरो वरः। ब्रह्मादयः सुराः सर्वे योगिनः सनकादयः ॥२०८॥
त्वां साक्षात्कर्तुमिच्छन्ति सिद्धाश्च कपिलादयः ।
अहं ममेतिपाशा ये मोहलोभाः शुभाशुभाः ॥२०९॥
सहेतुकाश्च दह्यन्ते दृष्टे त्वयि परावरे। जन्मनः कर्मणो बुद्धेराविर्भूतं फलं मम॥२१०॥
यद्दृष्टोऽसि जगन्नाथ प्रार्थये किमतः परम् ।
न वरार्थं हि देवेश त्वत्पादपङ्कजं हृदि ॥२११॥
चिन्तयामि सदा भक्त्या त्वद्गतेनान्तरात्मना। इममेव वरं याचे त्वद्भक्तिरचलामम॥२१२॥
अस्तु वै कमलानाथ प्रार्थये नाऽपरं वरम्। इतिश्रुत्वा वचस्तस्य प्रसन्नवदनो हरिः ॥२१३॥
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा एवमस्तु द्विजोत्तमम् । अन्यस्ते तपसः कश्चित्प्रत्यूहो न भविष्यति ॥२१४॥
एतच्च त्वत्कृतं स्तोत्रं ये पठिष्यन्ति मानवाः ।
तेषां मद्विषया भक्तिर्निश्चला च भविष्यति ॥२१५॥
धर्मकार्यं च यत्किंचित्साङ्गंसर्वं भविष्यति । ज्ञानेचपरानिष्ठा तेषांस्थास्यति निश्चला॥२१६॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिततत्र देवदेवो जनार्दनः। देवद्युतिस्तदारभ्य नारायणपरोऽभवत्॥२१७॥

दिलीप उवाच

महर्षेऽनुगृहीतोऽस्मि कथया पावनीकृतः। अनया विष्णुसंगत्या गङ्गयेवाऽहमद्य वै ॥२१८॥
किंतु स्तोत्रं समाख्याहि प्रसन्नो येन माधवः ।
तस्यानघस्य विप्रस्य महत्कौतूहलं मम ॥२१९॥

सभी कर्मों को त्याग दिया है। हे निष्पापा ! इस स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ तुम वरदान माँगो ॥२०६॥ श्रीहरि के इस वाक्य को सुनकर उन तपस्वी ने कहा— हे देवदेव ! हे कमलनयन ! हे अपनी माया से शरीर धारण करने वाले ॥२०७॥ हे देव ! आपके दर्शन से बढकर कोई भी वरदान नहीं है। ब्रह्मा आदि सभी देवता और सनकादिक योगिगण ॥२०८॥ तथा कपिल आदि सिद्धगण आपका दर्शन करना चाहते हैं। आप परावर तत्त्व का दर्शन हो जाने पर अहङ्कार ममकार आदि के बन्धन, मोह, लोभ, शुभ, अशुभ सभी अपने कारणों के साथ विनष्ट हो जाते हैं, जन्म, कर्म तथा बुद्धि सबका अर्विभूत फल प्राप्त हो गया। क्योंकि हे जगन्नाथ ! आपका मुझे दर्शन हो गया है। अब इससे अधिक मैं क्या माँगू ?। हे देवेश ! मेरे हृदय में आपका चरण कमल का वर देने के लिए नहीं ॥२०९-२११॥ आपमें मन लगाकर भक्ति पूर्वक नहीं चिन्तन करता हूँ। आपकी अचला भक्ति मुझे प्राप्त हो मैं यही वरदान माँगता हूँ ॥२१२॥ हे कमलनाथ ! मैं दूसरा वरदान नहीं माँगता हूँ। इस तरह की वाणी सुनकर प्रसन्न श्रीहरि ने प्रसन्न होकर कहा। हे द्विजश्रेष्ठ ! ऐसा ही होगा। तुम्हारी तपस्या में दूसरा कोई भी विघ्न नहीं होगा ॥२१३-२१४॥ तुम्हारे द्वारा की गयी इस स्तुति को जो लोग पढ़ेंगे उन लोगों की मेरे विषय में निश्चला भक्ति होगी॥२१५॥ जो कोई भी धर्म कार्य करेंगे वह अपने अङ्गों के साथ सम्पूर्ण हो जायेगा। उन लोगों का उत्तम निष्ठा ज्ञान में भी सुदृढ़ होगी ॥२१६॥ यह कहकर देवदेव भगवान् जनार्दन अन्तर्धान हो गये। उसी समय से देवदत्त नारायण परायण हो गये ॥२१७॥ **महाराज दिलीप ने कहा**— हे महर्षे ! मैं आप से अनुगृहीत हूँ और

त्वत्प्रसादादहं विप्र मन्ये प्राप्तं मनोरथम् । महतां सङ्गतिः कस्य महत्त्वाय न कल्पते ॥२२०॥
कथयस्व प्रसादेन विष्णोः स्तोत्रमनुत्तमम् । येन तुष्टः सभगवान्ददौ तस्य च दर्शनम् ॥२२१॥

वसिष्ठ उवाच

कथयामि रहस्यं ते यज्जप्तं स्तोत्रमुत्तमम् । प्राग्गृहीतं सुपर्णेन गरुडान्मयि चागतम् ॥२२२॥
अध्यात्मगर्भसारं तन्महोदयकरं शुभम् । सर्वपापहरं भूप स्वात्मज्ञानकरं परम् ॥२२३॥
ओ३म्नमोवासुदेवाय नमोविश्वाय चक्रिणे । भक्तप्रियाय कृष्णाय जगन्नाथाय शार्ङ्गिणे ॥२२४॥

स्तोता स्तुत्यः स्तुतिः सर्वं जगद्विष्णुमयं यदा ।
तदा संस्तूयते केन भक्तिर्मोदकरी नृणाम् ॥२२५॥
यस्य देवस्य निःश्वासो वेदाः साङ्गाः ससूत्रकाः ।
का स्तुतिः प्रमुदे तस्य भक्त्याऽहं मुखरोऽभवम् ॥२२६॥

चक्रवद्भ्रमते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् । अतस्त्वं गीयते देव चक्रपाणि वरायुध ! ॥२२७॥

वेदो न वक्ति यं साक्षान्नच वाग्वेत्ति नो मनः ।
मद्विधस्तं कथं स्तौति भक्तिमान्वा कथं भवेत् ॥२२८॥

ब्रह्मादिब्रह्मविष्णुस्त्वं त्वमेव सकलाश्रयः । स्रष्टा ब्रह्मनिदानं च शुद्धं ब्रह्म त्वमेव च ॥२२९॥

(कोऽयं कायस्तव विभो ! भित्त्वा स्पृशति कायिनम् ।
कायदोषैर्न चाऽऽघ्रातो नमस्तस्मै तुयोगिने ॥१॥)

इस कथा से मैं पवित्र हो गया । भगवान् विष्णु की इस सङ्गति से मैं मानो गङ्गाजी से पवित्रकर दिया गया हूँ ॥२१८॥ आप उस स्तोत्र को कहें जिससे भगवान् विष्णु उस ब्राह्मण पर प्रसन्न हो गये । यह मुझको महान् कौतूहल है ॥२१९॥ हे विप्र ! लगता है कि आपकी कृपा से मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया । महापुरुषों की सङ्गति किस व्यक्ति को महत्त्व नहीं प्रदान करती है ॥२२०॥ प्रसन्न होकर आप भगवान् विष्णु की स्तुति का वर्णन करें । जिससे प्रसन्न होकर भगवान् उस ब्राह्मण को दर्शन दिए ॥२२१॥ **महर्षि वसिष्ठ ने कहा—** उस रहस्यात्मक उत्तम स्तोत्र को मैं आपको बतलाता हूँ इसको मैंने पहले आये हुए गरुड के मुख से सुना था ॥२२२॥ वह अध्यात्म का सारा अंश है वह बहुत कल्याणकारी है । हे राजन् ! वह आत्मज्ञान करने वाला तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाला है ॥२२३॥ ओङ्कार स्वरूप भगवान् वासुदेव को नमस्कार है विश्व स्वरूप चक्र धारण करने वाले, भक्तों के प्रिय, कृष्णावतार धारण करने वाले, जगत् के स्वामी शार्ङ्ग धनुषधारी ॥२२४॥ स्तुति करने वाले, स्तुत्य, स्तुति यह सम्पूर्ण जगत् जब विष्णु स्वरूप है उस समय आप किसके द्वारा स्तुति किए जाते हैं, भक्ति मनुष्यों को आनन्द प्रदान करने वाली है॥२२५॥ जिन श्रीभगवान् के अङ्गों एवं सूत्रों के साथ वेद निःश्वास हैं उन श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए कौन सी स्तुति हो सकती है ? मैं तो भक्ति के कारण मुखर हो गया हूँ ॥२२६॥ चराचरात्मक यह सम्पूर्ण विश्व चक्र के समान घूमता रहता है, इसीलिए श्रेष्ठ आयुध चक्र को धारण करने वाले चक्रपाणि कहलाते हैं ॥२२७॥ जिन श्रीभगवान् का साक्षात् वेद नहीं करते हैं, वाणी भी उनको नहीं जानती है और न मन जानता है उन भगवान् को मेरे जैसे मनुष्य कैसे स्तुति कर सकता है या भक्ति सम्पन्न कैसे हो सकता है ॥२२८॥ आप ब्रह्माजी के कारण है, आप ब्रह्मा और विष्णु हैं आप ही सबों के आश्रय हैं । जगत् की सृष्टि करने वाले,

देवाभावेन जागर्ति न निद्राति निजात्मनि। सुखसंदोहबुद्धिर्यासा त्वं विष्णो न संशयः ॥२३०॥
महदादयो महाभावास्तथावैकारिका गुणाः। त्वमेव नाथ तत्सर्वं नानात्वं मूढकल्पना ॥२३१॥
केशकेशवरूपाभिः कल्पनातिसृभिस्तथा। त्वमेव कल्पसे ब्रह्मपुमानिव सुतादिभिः ॥२३२॥
विदोषं विगुणं चैकं चिन्मूर्तिरखिलं जगत्। कवीनां भाति यत्तत्त्वं तं विष्णुं नौमि निर्मलम्॥२३३॥
यस्य ज्ञानेन कुर्वन्ति कर्मापिश्रुतिभाषितम्। निरीषणाजगन्मित्राः शुद्धं ब्रह्म नमामितत् ॥२३४॥
ध्वस्तेतरच्च सन्मात्रं यत्प्रबोधादुपासते। योगिनः सर्वभूतेषु सद्रूपं नौमि तं हरिम्॥२३५॥

ब्रह्माऽहमिति गायन्ति यं ज्ञात्वैकं वरा द्विजाः ।
पश्यन्तो हि त्वया तुल्यं देवं तं नौमि माधवम् ॥२३६॥

मायया मोहवैचित्र्यं तथाऽहंममतां नृणाम्। यो नाशयतिपापौघान्नमस्तस्मैचिदात्मने ॥२३७॥

प्रयाणे वाऽप्रयाणे च यन्नाम स्मरतां नृणाम् ।
सद्यो नश्यन्ति पापौघा नमस्तस्मै चिदात्मने ॥२३८॥

मोहानललसज्ज्वालाज्वलल्लोकेषु सर्वदा। यत्पादाम्भोरुहच्छायां प्रविष्टश्च न दह्यते ॥२३९॥
यस्य स्मरणमात्रेण न मोहो नैव दुर्गतिः। न रोगा नैव दुःखानि तमनन्तं नमाम्यहम् ॥२४०॥
कामयन्ते प्रजा नैव धिषणाभ्यःसमुत्थिताः। लोकमात्मैव पश्यन्ति यं बुद्ध्वैकचरा जनाः॥२४१॥

ब्रह्माजी को उत्पन्न करने वाले तथा शुद्ध ब्रह्म भी आप ही हैं ॥२२९॥ हे विभो ! आपका शरीर कौन है? जो शरीरधारी का भेदन करके उसका स्पर्श करता है, किन्तु शरीर के दोषों से नहीं सश्लिष्ट होता है उन योगी स्वरूप आपको नमस्कार है । जो देव रूप से जागता है और अपनी आत्मा में शयन करता है जो सुख समूह रूपी वुद्धि है हे विष्णो ! वह आप ही हैं । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं हैं ॥२३०॥ हे नाथ ! आप ही महदादि महाविकार तथा वैकारिक विकार जन्य गुण है हे नाथ ! ये सवके सव आप ही है नानात्व तो मूर्खों की कल्पना मात्र है ॥२३१॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा केशव इन तीनों के रूपों कल्पना हे ब्रह्मन् ! आप ही पुरुष और पुत्रादि के रूप में विद्यमान हैं ॥२३२॥ ब्रह्मज्ञानियों को जो तत्त्व, निर्दोष, प्राकृतिक गुण रहित ज्ञान स्वरूप यह सम्पूर्ण जगत् जो तत्त्व विष्णु प्रतीत होते हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२३३॥ जिसने ज्ञान से श्रुति प्रोक्त कर्मों को ईषण रहित जगत् के मित्र करते हैं उन शुद्ध ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२३४॥ समस्त भेद रहित सन्मात्र स्वरूप जिनका ज्ञान होने से योगी पुरुष जिनकी उपासना सभी मूर्तों के सत रूप से करते हैं उन भगवान् विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ॥२३५॥ श्रेष्ठ द्विज जिनको एक ही जानकर मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार का गान करते हैं जो आपके ही समान अपने को देखते हैं ऐसे देव माधव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२३६॥ जो श्रीभगवान् माया जन्य मोह की विचित्रता को तथा मनुष्यों के अहङ्कार और ममकार को तथा पाप समूह को नष्ट करते हैं उन ज्ञान स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२३७॥ प्रस्थान या अप्रस्थान के समय जिनके नामों का स्मरण करने वाले मनुष्यों के पाप समूह शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं उन ज्ञान स्वरूप श्रीभगवान को नमस्कार हैं ॥२३८॥ मोहाग्नि से सदा जलती हुयी ज्वाला से संसार सदा जल रहा है । उसके जो लोग जिनकी भगवान् के चरण रूपी वृक्ष की छाया प्रविष्ट होकर नहीं जलते हैं ॥२३९॥ जिनका स्मरण करने मात्र से न तो मोह होता है और न दुर्गति होती है, न रोग, न दुःख होते हैं उन अनन्त भगवान् को मैं नमस्कार करता

शब्दार्थः संविदर्थश्च विष्णोर्नामपरो यदि। सत्येन तेन संसारो मासं स्पृशतु माधव ॥२४२॥
नारायणो जगद्व्यापी यदि वेदादिसंमतः। सत्येनं तेन निर्विघ्ना विष्णुभक्तिर्ममाऽस्तुवै॥२४३॥
यो नबीजं विना बीजंबीजे यो बीजभावितः ।
सविष्णुर्भवबीजं मे सितविद्यासिनाद्यतु ॥२४४॥
त्रितनुर्नटवद्यस्तु सृष्टिस्थितिलयेषु च। गुणैर्भवति कार्येषु स प्रसीदतु मे हरिः ॥२४५॥
दशधेहावतीर्णो यो धर्मत्राणाय केवलम्। अभ्यर्थितः सुरैः सर्वैः स प्रसीदतु मे हरिः॥२४६॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं प्राणिहृन्मन्दिरेऽमलः। एको वसति यो देवः स प्रसीदतु मे हरिः॥२४७॥
इच्छां चक्रे स देवाग्र एकश्चैव बहुस्तथा। प्रविष्टो देवताः स्रष्टा स प्रसीदतु मे हरिः ॥२४८॥
हृत्खगः खसमः खादिः खातीतः खक्रियः खगः ।
खं ब्रह्मखादिभुक्चान्ते खमूर्तिस्त्वं मखाशनः ॥२४९॥
यद्भासा यन्मुदा यस्य मायया सृज्यते जगत् ।
जाड्यं दुःखमसत्यं च स भवानेव तन्मयः ॥२५०॥
त्वत्सृष्टं मोदते विश्वं त्वत्त्यक्तमशुचिर्भवेत्। तत्सङ्गतोऽप्यसङ्गस्त्वं विकारस्तेन तेन हि ॥२५१॥
भूतयोगजचैतन्यं चार्वाका यमुपासते। सौगता ब्रुवते तर्कैस्त्वां बुद्धिं क्षणभङ्गुराम् ॥२५२॥

हूँ॥२४०॥ बुद्धि से उत्थित महापुरुष प्रजा की कामना नहीं करते है, वे लोक को आत्मारूप से जानकर लोक उसी रूप में देखते हैं ॥२४१॥ शब्दार्थ और संविदर्थ यदि सभी भगवान् विष्णु के नाम स्वरूप हैं तो उस सत्य के कारण हे माधव ! मेरा स्पर्श संसार न करे ॥२४२॥ यदि वेद आदि बतलाते हैं कि भगवान् नारायण जगत् में व्यापक हैं तो इसी सत्य के द्वारा भगवान् विष्णु की भक्ति मुझमें बनी रहे॥२४३॥ जो भगवान् जगत् के कारण हैं और जिनका कोई भी कारण नहीं है बीज के भी बीज के रूप में जिनकी भावना की जाती है वे भगवान् विष्णु मेरे संहार करने के समय नट के समान ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीन शरीरों को त्रिगुण (सत्त्व, रजस एवं तमस) के द्वारा धारण करते हैं वे मुझ पर प्रसन्न होएँ ॥२४४-२४५॥ जो इस संसार में केवल धर्म की रक्षा करने के लिए देवताओं के द्वारा प्रार्थित होकर अवतीर्ण होते हैं, वे श्रीहरि मुझ पर प्रसन्न हों ॥२४६॥ जो अकेले श्रीभगवान् ब्रह्मा से लेकर एक तृण पर्यन्त सभी जीवों के हृदय मन्दिर में निवास करते हैं वे श्रीहरि मुझ पर प्रसन्न हों ॥२४७॥ वे श्रीभगवान् सृष्टि से पूर्व एक से अनेक होने का सत्य सङ्कल्प किए तथा सबों के भीतर आत्मा रूप से प्रवेश कर गये वे जगत् स्रष्टा श्रीहरि मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥२४८॥ हार्दाकाश में विचरण करने वाले, आकाश के समान व्यापक, आकाश के भी कारण, आकाशातीत, आकाश को रचने वाले, परमाकाश में संचरण करने वाले, आकाश के समान व्यापक, और प्रलय काल में आकाशादि का संहार करने वाले, आकाश मूर्ति तथा यज्ञों का भोग करने वाले हे भगवन् ! आप ही हैं ॥२४९॥ जिनके प्रकाश से, जिनकी प्रसन्नता से तथा जिनकी माया से जड, दुःखमय एवं असत्य जगत् की सृष्टि होती है वे ही आप जगदात्मा हैं ॥२५०॥ आपके द्वारा सृष्ट होकर सारा संसार आनन्दानुभव करता है और आप के द्वारा परित्यक्त हो जाने पर यह अपवित्र हो जाता है, उसके साथ रहकर भी आप असङ्ग हैं; और विभिन्न प्रकार का विकार भी उसी के कारण होते हैं ॥२५१॥ जिन श्रीभगवान् की उपासना चार्वाक भूतों से संसक्त ज्ञान रूप से करते हैं, तर्कों के द्वारा बौद्ध

शरीरपरिमाणं त्वां मन्यन्ते जिनदेवताः । ध्यायन्ति पुरुषं साङ्ख्यास्त्वामेवप्रकृतेः परम्॥२५३॥
जन्मादिरहितः पूर्वं यः स्यादानन्दलक्षणम् । त्वामेवोपनिषद्ब्रह्म चिन्तयन्ति परस्परम् ॥२५४॥
खादिभूतानि देहश्च मनोबुद्धीन्द्रियाणि च । विद्याविद्ये त्वमेवाऽत्र नान्यत्त्वत्तोऽस्ति किञ्चन॥२५५॥

त्वं धाता सर्वभूतानां त्वमेव शरणं मम ।
त्वमग्निस्त्वं हविः शक्रो होता मन्त्रः क्रियाफलम् ॥२५६॥
त्वमस्ति नास्ति वैकुण्ठ त्वामहं शरणं गतः ।
त्वं कर्मफलदाता च दीक्षितानां क्रियाफलम् ॥२५७॥

त्वं हेतुः सर्वभूतानां त्वमेव शरणं मम। युवतीनां यथा यूनि यूनां च युवतौ यथा ॥२५८॥
मनोऽभिरमते तद्वत्प्रीतिर्मे रमतां त्वयि। अपि पापं दुराचारं नरं त्वत्प्रणतं हरे ॥२५९॥
नेक्षन्ते किङ्करा याम्याउलूकास्तपनं यथा । तापत्रयमघौघश्च तावत्पीडयते जनम् ॥२६०॥
यावत्स्मरति नो नाथ भक्तया त्वत्पादपङ्कजम् ॥२६१॥

यं न स्पृशन्ति गुणजातिशरीरधर्मा यं न स्पृशन्ति गतयस्त्वखिलेन्द्रियाणाम् ।
यं च स्पृशन्ति मुनयो गतसङ्गमोहास्तस्मै नमो भगवते हरये करोमि ॥२६२॥
स्थूलं विलाप्य करणे करणं निदाने तत्कारणं करणकारणर्जिते च ।
इत्थं विलाप्य मुनयः प्रविशन्ति तत्र तस्मै नमोऽस्तु हरये मुनिसेविताय ॥२६३॥
यद्ध्यानसंवहनघूर्णवशीकृतान्तामैश्वर्यचारुगुणिनीं सुखमोक्षलक्ष्मीम् ।
आलिङ्ग्य शेरतइहात्मसुखैकभाजस्तस्मै नमोऽस्तु हरये मुनिसेविताय ॥२६४॥

आप को क्षणध्वंसी ज्ञान रूप मानते हैं ॥२५२॥ जैनी विद्वान् आपको शरीर परिमाणक मानते हैं । सांख्यमतानुयायी आपका ध्यान प्रकृति से परे पुरुष रूप से करते हैं ॥२५३॥ जो श्रीभगवान् जगज्जन्मादि से पूर्व आनन्द स्वरूप थे । औपनिषद मतावलम्वी आपको परस्पर में उपनिषत् पुरुष मानते हैं ॥२५४॥ आप ही आकाशादि महाभूत हैं, देह, बुद्धि मन, इन्द्रियाँ, विद्या, अविद्या स्वरूप आप ही हैं, आपसे भिन्न कुछ भी नहीं है॥२५५॥ आप ही सभी जीवों का पालन करने वाले हैं, मेरे शरण (रक्षक) हैं आप ही अग्नि, हविष्य, इन्द्र, होता, मन्त्र तथा क्रियाओं के फल हैं ॥२५६॥ हे वैकुण्ठ ! आप ही सत्ता और असत्ता हैं । मैं आपके शरणापन्न हूँ । आप ही सभी क्रियाओं के फल को देने वाले और दीक्षितों की क्रियाओं के फल हैं ॥२५७॥ आप ही सभी जीवों के कारण हैं और आप ही मेरे रक्षक हैं । जिस तरह युवतियों का मन युवकों में रमण करता है और युवकों का मन जैसे युवतियों में रमण करता है । उसी तरह मेरा मन आप में रमण करे । हे हरे ! अत्यन्त पापी और दुराचारी भी मनुष्य यदि आपके शरणागत है तो उसको भी यमदूत उसी तरह नहीं देखते हैं; जैसे उल्लू सूर्य को नहीं देखता है । त्रिताप और पाप समूह मनुष्य को तब तक ही दुःख देते हैं ॥२५८-२६०॥ हे नाथ ! जब तक वह आपके चरण कमलों का स्मरण नहीं करता है ॥२६१॥ जिनको, गुण, जाति तथा शरीर के धर्म नहीं स्पर्श करते हैं, जिनको सभी इन्द्रियों की गतियाँ नहीं स्पर्श कर पाती है, जिनका स्पर्श सङ्गमोह से रहित मुनिजन्य कर पाते हैं उन्हीं श्रीहरि भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२६२॥ स्थूल शरीर को इन्द्रियों में विलीन करके, इन्द्रियों को उनके कारण वैकारिकाहंकार में विलीन करके और उसको करणों और कारणों से रहित परमात्मा में विलीन करके मुनिजन जिन श्रीहरि में

जन्मादिभावविकृतेर्विरहस्वभावे यस्मिन्नयं परिधुनोति षडूर्मिवर्गः ।
यं तापयन्ति न सदा मदनादिदोषास्तं वासुदेवममलं प्रणतोऽस्मि हार्दम् ॥२६५॥
यद्ध्यानसङ्गतमलं विजहात्यविद्यां यद्ध्यानवह्निपतितं जगदति नाशम् ।
यज्ज्ञानमुल्लसदसिद्यतिसंशयारिं तं त्वां हरिं विशदबोधधनं नमामि ॥२६६॥
चराचराणि भूतानि सर्वाणि च हरेर्वशे । यथाऽत्र तेन सत्येन पुरस्तिष्ठतु मे हरिः ॥२६७॥
यथा नारायणः सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । तेन सत्येन मे रूपं प्रदर्शयतु केशवः ॥२६८॥
भक्तिर्यथा हरौमेऽस्ति तद्वरिष्ठा गुरौ यदि । ममाऽस्ति तेन सत्येन स्वं दर्शयतु केशवः ॥२६९॥
तस्यैवं शपथैःसत्यैर्भक्तिं तस्यानुचिन्तयन् । दर्शयामास चात्मानं स प्रीतः पुरुषोत्तमः ॥२७०॥
ततो दत्त्वा वरं तस्य पूरयित्वा मनोरथम् । जगाम कमलाकान्तः स्तुत्या विप्रेण तोषितः॥२७१॥
कृतकृत्यो द्विजःसोऽपिवासुदेवपरायणः । शिष्यैः सार्धं जपंस्तोत्रं तस्मिन्नास्ते तपोवने॥२७२॥
कीर्तयेद्य इदं स्तोत्रं शृणुयाद्योऽपि मानवः । अश्वमेधस्य यज्ञस्य प्राप्नोति विपुलं फलम् ॥२७३॥
आत्मविद्याप्रबोधं च लभते ब्राह्मणः सदा । न पापे जायते बुद्धिर्नैव पश्यत्यमङ्गलम् ॥२७४॥
बुद्धिस्वास्थ्यं मनःस्वास्थ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियकं तथा ।
नृणां भवति सर्वेषामस्य स्तोत्रस्य कीर्तनात् ॥२७५॥

विलीन हो जाते हैं उन मुनिजन से सेवित श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२६३॥ जिन श्रीभगवान् के ध्यान, संधारण और घूर्णन के द्वारा अपने वश में करने वाली, ऐश्वर्य रूपी सुन्दर गुणवाली सुख तथा मोक्ष लक्ष्मी को अपनाकर आत्मसुख सम्पन्न मुनिजन सुखपूर्वक शयन करते हैं उन मुनियों से सेवित श्रीहरि को नमस्कार है ॥२६४॥ भाव पदार्थों के जन्मादि से रहित स्वभाव वाले श्रीभगवान् में यह षडूर्मि समूह चारो ओर संचरण करता है, जिन भगवान् को कामादि दोष संतप्त नहीं करते हैं, उन हृदयवासी निर्मल भगवान् वासुदेव को नमस्कार करता हूँ ॥२६५॥ जिन श्रीहरि का ध्यान करने के कारण निर्मल पुरुष को अविद्या स्पर्श नहीं करती है और जिस श्रीभगवान् के ध्यान रूपी अग्नि के कारण संसार का बन्धन नष्ट हो जाता है, जिनके ज्ञान रूपी तलवार से संशय रूपी शत्रु को वह पुरुष काट देता है, उन विशद ज्ञान स्वरूप आप श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२६६॥ सभी चराचर जीव श्रीहरि के वश में हैं तो इसी सत्य के द्वारा श्रीहरि मुझे दर्शन दें ॥२६७॥ यदि सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक जगत् नारायण रूप ही है तो इसी सत्य के द्वारा श्रीभगवान् मुझको अपना रूपादि दिखलायें ॥२६८॥ जैसी भक्ति श्रीहरि में है उससे भी श्रेष्ठ भक्ति अपने आचार्य में यदि है तो इसी सत्य के द्वारा श्रीहरि मुझे दर्शन दें ॥२६९॥ उन देवद्युति के इस प्रकार के शपथ के कारण और उनकी भक्ति का विचार करके भगवान् पुरुषोत्तम प्रसन्न हो गये और उनको दर्शन दिए ॥२७०॥ उसके पश्चात् वरदान देकर उस ब्राह्मण के मनोरथ को पूर्ण किए फिर उस स्तुति से सन्तुष्ट होकर श्रीभगवान् चले गये ॥२७१॥ कृत-कृत्य वासुदेव परायण वे ब्राह्मण अपने शिष्यों के साथ इस स्तोत्र का पाठ करते हुए उस तपोवन में स्थित रहे ॥२७२॥ जो मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ करता है अथवा इसका श्रवण करता है वह अश्वमेधयाग का पूर्ण फल प्राप्त करता है ॥२७३॥ वह ब्राह्मण सदा आत्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करता है । उसकी बुद्धि कभी भी पाप में नहीं लगती है और न उसका कभी अमङ्गल होता है ॥२७४॥ उसकी बुद्धि मन और इन्द्रियाँ स्वस्थ होती हैं, इस स्तोत्र का

विचार्यार्थं जपेद्यस्तु श्रद्धया तत्परो नरः । स विधूयेह पापानि लभते वैष्णवं पदम् ॥२७६॥
लभते वाञ्छितानकामान्पुत्रपौत्रान्पशूंस्तथा। दीर्घमायुर्बलं वीर्यं लभते स सदा पठन्॥२७७॥
तिलपात्रं सहस्रेण गोसहस्रेण यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति यइमां कीर्तयेत्स्तुतिम्॥२७८॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां यं यं कामयते सदा। अचिरात्तमवाप्नोति स्तोत्रेणाऽनेन मानवः ॥२७९॥
आचारे विनये धर्मे ज्ञाने तपसि सन्नये । नृणां भवति नित्यं धीरिमां संशृण्वतां स्तुतिम्॥२८०॥

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
सद्यो भवति शुद्धात्मा स्तोत्रस्य पठनात्सकृत् ॥२८१॥

प्रज्ञालक्ष्मीयशःकीर्तिज्ञानधर्मविवर्धनम् । दुष्टग्रहोपशमनं सर्वाशुभविनाशनम्॥२८२॥
सर्वव्याधिहरं पथ्यं सर्वारिष्टनिषूदनम् । दुर्गतिस्तरणं स्तोत्रं पठितव्यं द्विजातिभिः ॥२८३॥
नक्षत्रग्रहपीडासु राजचोरभयेषु च। अग्निचोरनिपातेषु सद्यः संकीर्तयेदिदम् ॥२८४॥
सिहव्याघ्रभयं नास्ति नाभिचारभयं तथा । भूतप्रेतपिशाचेभ्यो राक्षसेभ्यस्तथैव च ॥२८५॥
पूतनाजृम्भकेभ्यश्च विघ्नेभ्यश्चैव सर्वदा । नृणां क्वचिद्भयं नास्ति स्तवे ह्यस्तिमन्त्रकीर्तिते॥२८६॥
वासुदेवस्य पूजां यः कृत्वा स्तोत्रमुदीरयेत्। लिप्यते पातकैर्नासो पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥२८७॥
गङ्गादिपुण्यतीर्थेषुया स्नानैर्नाप्यते गतिः । तां गतिं समवाप्नोति पठन्पुण्यामिमांस्तुतिम् ॥२८८॥

पाठ करने से सभी मनुष्यों को फल प्राप्त करता है । उसकी बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ स्वस्थ रहती हैं इस स्तोत्र का पाठ करने से सभी मनुष्यों को फल प्राप्त होता है ॥२७५॥ जो मनुष्य इस स्तुति के अर्थ को समझकर श्रद्धा से पाठ करता है वह इस लोक में समस्त पापों को विनष्ट करके श्रीभगवान् के लोक में जाता है ॥२७६॥ वह अपने अभिप्रेत कामनओं को प्राप्त करता है । वह सदा पुत्र, पौत्र, पशु, दीर्घायुष्ट्व, वल तथा पराक्रम प्राप्त करता है ॥२७७॥ जो मनुष्य इस स्तुति को सदा पढ़ता है वह एक हजार तिल भरे पात्र तथा एक हजार गौओं के दान का फल प्राप्त करता है ॥२७८॥ इस स्तोत्र के द्वारा मनुष्य धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन सबों में जिसको प्राप्त करना चाहता है उसको प्राप्त करता है ॥२७९॥ इस स्तुति को सुनने वाले मनुष्य की आचार, विनय, धर्म, ज्ञान, तपस्या तथा नीति मयी बुद्धि होती है॥२८०॥ जो मनुष्य पातक अथवा उपपातकों से युक्त होता है वह भी इस स्तोत्र का पाठ करने से शुद्ध आत्मा वाला हो जाता है ॥२८१॥ ब्राह्मणों को प्रज्ञा, लक्ष्मी, यश, कीर्ति, ज्ञान, धर्म की वृद्धि, दुष्ट ग्रहों की शान्ति, समस्त अमङ्गलों का विनाश, सभी व्याधियों का विनाश, सभी अरिष्टों की शान्ति तथा दुर्गति को दूर करना, इन सभी कार्यों को करने वाले इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए ॥२८२-२८३॥ नक्षत्र और ग्रहजन्य पीड़ा के होने पर, राजाओं या चोरों का भय होने पर, अग्नि और चोर के आने पर इस स्तोत्र का सद्यः पाठ करना चाहिए ॥२८४॥ इस स्तोत्र का पाठ करने पर सिंह तथा व्याघ्र का भय नहीं होता है, न तो अभिचार कर्म का भय होता है । भूत, प्रेत, पिशाच तथा राक्षसों का और पूतना तथा जृम्भकों का भी भय नहीं होता है ॥२८५॥ जो व्यक्ति भगवान् वासुदेव की पूजा करके इसका पाठ करता है वह उसी तरह पापों से नहीं लिप्त होता है जैसे पद्मपत्र जल से लिप्त नहीं होता है ॥२८६॥ गङ्गा आदि के पुण्य तीर्थों में स्नान करने का जो फल होता है, इस पवित्र स्तोत्र को पढ़ने से उसी गति की प्राप्ति होती है ॥२८७॥ जो व्यक्ति इस स्तोत्र को एक बार या दो बार या तीन बार दिन भर में सर्वदा अक्षय

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वाऽपि यः पठेत् ।
सर्वदा सर्वकालेषु सोऽक्षयं सुखमश्नुते ॥२८९॥
चतुर्ण्णामपि वेदानां त्रिरावृत्त्या च यत्फलम् ।
तत्फलं लभते स्तोत्रमधीयानः सकृन्नरः ॥२९०॥
अक्षप्यं धनमाप्नोति स्त्रीणां भवति वल्लभः ।
पूजां विन्दति लोकेऽस्मिञ्छ्रद्धया संस्मरन्हरिम् ॥२९१॥
सर्वदा संपदायुक्तो विपदं नैव गच्छति । गोभिर्न ह्रियते स्तोत्रं नित्यं यः कीर्तयेद्धियत् ॥२९२॥
अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् ।
सद्यो नश्यन्ति भक्तानामेतं संश्रृण्वतां स्तवम् ॥२९३॥
प्रातरुत्थाय योऽधीते शुचिर्विष्णुपरायणः। अक्षप्यं लभते सौख्यमिह लोके परत्र च ॥२९४॥
देवद्युतिप्रणीतं वै विष्णुप्रीतिकरं शुभम्। विष्णुप्रसादजननं विष्णुदर्शनकारकम् ॥२९५॥
योगसारमिदं नाम स्तोत्रं परमपावनम्। यः पठेत्सततं भक्तया विष्णुलोकं स गच्छति॥२९६॥
इति ते कथितं स्तोत्रं गुह्यं पापप्रणाशनम्। अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पिशाचस्य विमोचनम् ॥२९७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसम्वादेयोगसारस्तोत्रकथनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥

सुख प्राप्त करता है ॥२८९॥ चारो वेदों का तीन बार पाठ करने का जो फल होता है, वही फल मनुष्य इस स्तोत्र का एक बार पाठ करने से प्राप्त करता है ॥२९०॥ वह अक्षय धन प्राप्त करता है और स्त्रियों का प्रिय होता है, श्रद्धा पूर्वक श्रीहरि का स्मरण करता हुआ इस लोक में पूजा प्राप्त करता है ॥२९१॥ जो मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ नित्य करता है वह सदा सम्पत्ति सम्पन्न रहता है और कभी भी विपत्ति में नहीं पड़ता है । उसकी गायें सदा बनी रहती है ॥२९२॥ इस स्तोत्र का श्रवण करने वाले भक्तों की अलक्ष्मी, कालकर्णी, दुःस्वप्न और दुष्ट चिन्तन शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं ॥२९३॥ जो भगवद् भक्त प्रातः काल जगकर इस स्तोत्र का पाठ करता है वह इस लोक में तथा परलोक में अक्षय सुख प्राप्त करता है॥२९४॥ देवद्युति प्रणीत भगवान् विष्णु को प्रसन्न कराने वाला मङ्गलमय, विष्णु भगवान् की प्रसन्नता को उत्पन्न करने वाले और भगवान् विष्णु का दर्शन करने वाले ॥२९५॥ यह योगसार नामक परम पावन स्तोत्र को सदा पढ़ता है वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥२९६॥ इस तरह से आपको रहस्यात्मक गोपनीय, पाप विनाशक स्तोत्र मैंने बतलाया इसके बाद मैं पिशाचों की मुक्ति का वर्णन करूँगा ॥२९७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के माघ माहात्म्यान्तर्गत वसिष्ठ दिलीप संवाद के प्रसङ्ग में योगसार स्तोत्र वर्णन नामक एक सौ सताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२७॥

एक सौ अठाइसवाँ अध्याय

वसिष्ठ उवाच

श्रूयतां ये पिशाचाश्चमोचितास्तेन तद्वने । आसीद्राजा चित्रानामा द्राविडे विषये पुरा ॥१॥
सोमान्वये महावीरः शूरः शस्त्रास्त्रपारगः। गजवाजिरथोघैश्च संपन्नो विक्रमी सदा ॥२॥
स्वर्णैर्नानाविधैरत्नैः पूर्णकोशो महाधनः। मध्ये नारीसहस्रस्य सदा क्रीडति तत्परः ॥३॥
स्त्रैणः कामी सदा लुब्धश्चण्डकोपः स पार्थिवः ।
न करोति वचो धर्म्यं सचिवैः समुदीरितम् ॥४॥
विष्णुं निन्दति सोऽत्यर्थं वैष्णवान्द्वेष्टि सर्वदा ।
कोऽसौ विष्णुः क्व दृष्टोऽसौ क्व चाऽस्ते केन कीर्त्यते ॥५॥
इत्थं न सहते विष्णुंस राजा दैवमोहितः। नारायणं भजन्ते ये तान्पीडयति कोपितः॥६॥
न ब्राह्मणान्न वेदांश्च वैदिकं कर्म न व्रतम्। न दानं मन्यते दातुं पाखण्डस्थितिसंस्थितः॥७॥
अनीत्या चण्डदण्डैश्च प्रजापीडां करोति सः। निष्ठुरो निर्दयः क्रूरः पुण्यकार्यपराङ्मुखः ॥८॥
च्युताचारोऽच्युतद्वेष्टा च्युताग्निश्च च्युतक्रियः ।
सोऽनुशास्ति जनं भूपः कालरूपइवाऽपरः ॥९॥
ततो बहुतिथे काले स राजा पञ्चतां गतः। वैदिकेन विधानेन लेभे नैवोर्ध्वदैहिकम्॥१०॥
अथ किङ्करयूथेन पीड्यमानो भृशं तदा । अयः कीलमये मार्गे तप्तसिक्ताप्रपूरिते ॥११॥

चित्रराजा के वृत्तान्त का वर्णन

महर्षि वसिष्ठ ने कहा— अब आप सुनें वे पिशाच उसी वन में मुक्त हो गये । प्राचीन काल में द्रविड देश में चित्र नामक राजा थे ॥१॥ वे सोम वंश में उत्पन्न तथा महावीर थे । वे शास्त्रास्त्रों में पारङ्गत थे । हाथी, घोड़े रथ समूह से सम्पन्न तथा पराक्रमी थे ॥२॥ वे महाधनवान् थे उनका खजाना सुवर्ण तथा अनेक रत्नों से भरा था । वे सदा हजार नारियों के साथ क्रीड़ा करते थे ॥३॥ वे राजा, स्त्री परायण, कामी, लोभी तथा भयङ्कर क्रोध करने वाले थे । वह मन्त्रियों के द्वारा कहे गये धार्मिक बात को नहीं मानते थे ॥४॥ वह भगवान् विष्णु की अत्यन्त निन्दा करता था और वैष्णवों से द्वेष करता था । वे विष्णु कौन हैं ? उनको कहाँ पर तथा किसने देखा है ? वे कहाँ रहते हैं ? और उनका नाम कौन लेता है ?॥५॥ दुर्भाग्य मोहित वह राजा भगवान् विष्णु की प्रशंसा वर्दास्त नहीं करता था और क्रोध करके नारायण के भक्तों को दुःख देता था ॥६॥ पाखण्ड का पालन करने वाला वह राजा न ब्राह्मणों को मानता था, वेदों तथा वैदिक कर्मो तथा व्रतों को भी नहीं करता था, वह दान नहीं देता था ॥७॥ वह अनीति तथा भयङ्कर दण्ड के द्वारा प्रजाओं को पीड़ित करता था । वह निष्ठुर, निर्दय, क्रूर तथा पुण्य कार्यों के विपरीत रहता था ॥८॥ वह आचार हीन और भगवान् अच्युत से द्वेष करने वाला, अग्निहीन तथा क्रियाहीन था । राजन् दूसरे काल का रूप धारण किए के समान प्रजाओं का पालन करता था ॥९॥ बहुत समय बीत जाने पर वह राजा मर गया उसकी और्ध्वदैहिक क्रिया वैदिक विधि से नहीं की गयी ॥१०॥ उसके पश्चात् यमदूतों द्वारा अत्यन्त पीडित किया जाता हुआ वह, लोहे के कीलों से भरे तथा संतप्त बालुका से परिपूर्ण ॥११॥

चण्डार्करश्मिसन्तप्ते वृक्षच्छायाविवर्जिते। तप्ताङ्गारप्रकीर्णे च वह्निज्वालासमाकुले ॥१२॥
लोहतुण्डैश्च कालोलैर्हन्यमानः सुदारुणैः । वृकैर्दंष्ट्रावाकरालैश्च श्वभिर्घोरैश्च भक्षितः ॥१३॥
शृण्वन्क्रन्दितमन्येषां नृणां किल्विषकारिणाम् ।
जगाम पार्थिवो लोकमन्तकस्य भयावहम् ॥१४॥
शृणु भूपगतिं तस्य तस्मिँल्लोके सुदुःसहाम् ।
निरयान्निरयं यातः पर्यायेण स भूपतिः ॥१५॥
आदौ प्रयातस्तामिस्रे दारुणे भूरिदुःखदे । पुनश्चैवाऽन्यतामिस्रे यत्र दुःखं निरन्तरम्॥१६॥
गतोऽनन्तरमत्युग्रं महारौरवरौरवम् । नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥१७॥
पश्चान्मग्नःस भूपालो दुस्तरे दुःखमूर्च्छितः । संजीवने महावीचौ तापने संप्रतापने ॥१८॥
प्रतापनरकं राजा दुःखाग्निप्लुष्टमानसः। संपातं च स काकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम्॥१९॥
लोहशङ्कुमृगीयन्त्रं पन्थानं शाल्मलिंनदीम्। प्रविष्टोऽथ महाभीमं र्दुदर्श दुर्गमं पुनः ॥२०॥
असिपत्रवनं चैव लोहचारकमेव च । एवमेतेषु सर्वेषु पतित्वा पापकृन्नृपः ॥२१॥
अविन्दन्नरके घोरे संतापं यातनामयम् । विष्णुप्रद्वेषघोषेण युगानामेकविंशतिः ॥२२॥
भुक्त्वा च यातनां याम्यां निसतीर्णनरको नृपः ।
समयान्निरिराजे तु पिशाचोऽभूत्तदा महान् ॥२३॥
स भ्राम्यति दिशः सर्वा वने तस्मिम्बुभुक्षितः ।
न पश्यत्यशनं तोयंमेरावपि सदा गिरौ ॥२४॥
कदाचित्पर्यटन्सोऽथ पिशाचः शोकपीडितः ।
प्लक्षप्रस्रवणारण्यं प्रविष्टो भावि सत्फलम् ॥२५॥

भयङ्कर सूर्य किरणों से सन्तप्त तथा वृक्षों की छाया से रहित, जिसमें दहकते हुए अङ्गार पड़े थे, अग्नि की ज्वाला से भरे हुए, जिनके लोहे की चोंच थी ऐसे भयङ्कर काकोलों से नोचे जाते हुए, भयङ्कर दाँतों वाले भेड़िये तथा कुत्तों से खाया जाता हुआ तथा दूसरे पापियों के रोने की ध्वनि को सुनता हुआ वह राजा यमराज के भयङ्कर लोक में गया ॥१२-१४॥ अब आप उस राजा की उस लोक में भयङ्कर और दुःसह गति को सुनें । वह राजा क्रमशः एक नरक से दूसरे नरक में गया ॥१५॥ पहले अत्यन्त दुःखद भयङ्कर तामिस्र नामक नरक में गया । उसके बाद वह अन्धतामिस्र में गया जहाँ निरन्तर दुःख प्राप्त होता रहता है ॥१६॥ उसके पश्चात् वह महारौरव और रौरव नरक में गया । वह काल सूत्र नामक महानरक में गया॥१७॥ उसके पश्चात् वह राजा दुःख से दुःखी दुस्तर, संजीवन, महाकीचि, तापन, संतापन तथा कंकोल प्रतापन नामक नरक में दुःखाग्नि से भुना गया । संपात, कुड्मल मूतिमृतिक नामक नरक में गया॥१८-१९॥ उसके पश्चात् वह लोहशङ्कु, मृगीयन्त्र, पन्था शाल्मली नदी में गया । इस तरह इन सभी नरकों में गिरकर वह पापी राजा ॥२०॥ अन्त में भयङ्कर यातनामय संताप नामक नरक में गया । भगवान् विष्णु के प्रति द्वेष की घोषणा करने के कारण इक्कीस युगों तक यम यातना को भोगकर राजा नरक से निकला । फिर से पतर्वराज सुमेरु पर भयङ्कर पिशाच हुआ ॥२१-२३॥ भूखा हुआ वह सारे वन में घूम रहा था । वह कभी भी सुमेरु पर्वत पर पानी भी नहीं पाता था और न उसको भोजन मिलता

बिभीतकतरुच्छायां समाश्रित्य सुदुःखितः ।
हा ! हतोऽस्मीति चाक्रन्दद्घोरमुच्चैः पुनः पुनः ॥२६॥
क्षुत्तृड्भ्यां मुह्यमानस्य सर्वभूतद्रुहो मम । जन्मनोऽस्य दुरन्तस्य कथमन्तो भविष्यति ॥२७॥
आदौ पापसमुद्रेऽस्मिन्दुःखकल्लोलमालिनि ।
करावलम्बनं कोऽद्य निमग्नस्य प्रदास्यति ॥२८॥
इत्थं तस्य पिशाचस्य रोदनं दीनचेतसः । देवद्युतिरधीयानः शुश्राव करुणामयम् ॥२९॥
समागम्य ततस्तत्र तं पिशाचं ददर्श सः । विकरालमुखं भीमं पिशङ्गनयनं कृशम् ॥३०॥
ऊर्ध्वमूर्धजकृष्णाङ्गं यमदूतमिवापरम् । ललज्जिह्वं च लम्बोष्ठं दीर्घजङ्घं शिराकुलम् ॥३१॥
दीर्घाङ्घ्रिशुष्कतुण्डं च गर्ताक्षं शुष्कपञ्जरम् ।
अथाऽमुं कौतुकाविष्टः पप्रच्छ मुनिपुङ्गवः ॥३२॥

देवद्युतिरुवाच

कोऽसि त्वं भीषणाकारः कुतो रोदिषि दारुणम् ।
अवस्थेयं कुतो ब्रूहि किं चाऽहं करवाणि ते ॥३३॥
ममाश्रमप्रविष्टा हि दुःखभाजो न जन्तवः । मोदन्ते केवलं सर्वे वैष्णवे भवने यथा ॥३४॥
वद त्वं सत्वरं भद्र दुःखस्यैतस्य कारणम्। कालक्षेपं न कुर्वन्ति प्राप्तेऽर्थे हि मनीषिणः ॥३५॥

वसिष्ठ उवाच

श्रुत्वैतद्वचनं प्रीतः पिशाचस्त्यक्तरोदनः । उवाच दीनया वाचा प्रश्रयावनतस्तदा ॥३६॥

पिशाच उवाच

सर्वाङ्गव्यापि संतापं जहार त्वद्वचो मयि । ग्रीष्मे दावानलोद्भूतं वर्षन्मेघइवाचले ॥३७॥

था ॥२४॥ एक बार शोक पीड़ित वह पिशाच घूमता हुआ होने वाले सत्कर्म के फलस्वरूप प्लक्ष स्रवणारण्य में गया ॥२५॥ विभीतक (बहेड़ा) के पेड़ के नीचे अत्यन्त दुःखी वह हाय मैं तो मारा गया यह कहकर जोर-जोर से बार-बार रोया ॥२६॥ सभी जीवों से द्रोह करने वाले भूख तथा प्यास से व्याकुल मेरे इस जन्म का अन्त कब होगा ॥२७॥ दुःख रूपी लहरियों से भरे इस महा समुद्र में डूबते हुए मुझको सर्व प्रथम अपने हाथों का सहारा कौन देगा ?॥२८॥ इस तरह दीन बने हुए उस पिशाच के रुदन को सुनकर वेदाध्ययन करने वाले देवद्युति ने सुना ॥२९॥ वहाँ पर आकर विकराल मुख वाले, भयङ्कर, पीले नेत्र वाले और दुर्बल उस राक्षस को उन्होंने देखा ॥३०॥ उसके केश खड़े-खड़े थे, वह शिराओं से व्याप्त था ॥३१॥ उसके पैर बड़े थे, मुख सुखा था, आँखे, धसी थीं और शरीर शुष्क पञ्जर के समान था । उसके बाद कौतुकाविष्ट होकर मुनिश्रेष्ठ ने उससे पूछा ॥३२॥ **देवद्युति ने कहा—** भयङ्कर आकार वाले तुम कौन हो ? भयङ्कर रुदन क्यों करते हो ? तुम्हारी यह अवस्था कैसे हुयी ? यह बतलाओ कि मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ ?॥३३॥ मेरे आश्रम में रहने वाले जीव दुःखी नहीं है । वे वैकुण्ठ लोक के समान यहाँ पर आनन्दानुभव करते हैं ॥३४॥ हे भद्र ! तुम शीघ्र इस दुःख का कारण बतलाओ । समय के आ जाने पर मनीषीगण देखा नहीं करते हैं ॥३५॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** इस बात को सुनकर प्रसन्न हुए

यन्मेऽस्ति सुकृतं किंचित्तेन दृष्टोऽसि मे द्विज ।
नह्यसञ्चितपुण्यानां सद्भिरेकत्र सङ्गमः ॥३८॥
इत्युक्त्वा कथयामास पूर्ववृत्तान्तमात्मनः। विष्णुद्वेषप्रदोषेण दशामेतामहं गतः॥३९॥
यन्नामप्राणान्मुक्तो हि स्मृत्वा विष्णुपदं व्रजेत् ।
पापिष्ठो हि हरौ तस्मिन्मम द्वेषोऽभवद्द्विज ॥४०॥
यः पालयति भूतानि धर्मं याति जगत्त्रये। योऽन्तरात्मा च भूतानां तस्मिन्द्वेषो ममाऽभवत्॥४१॥
कर्मणां फलदो योऽत्र सर्ववेदेषु गीयते। तपोभिरिज्यते विप्रैः स मे द्वेषवशं गतः॥४२॥
त्यक्तक्रियैः प्रियारण्यैर्निःसङ्गैकचरैश्च यः। वेदान्ते यतिभिश्चन्त्यः समे द्वेषी हरिर्द्विज ॥४३॥
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे योगिनः सनकादयः। मुक्त्यर्थमर्चयन्तीह स विष्णुर्द्वेषितो मया॥४४॥
आदौमध्येऽवसानेयो विश्वधाता सनातनः। यस्य नैवादिमध्यान्ताः स मे द्वेषपदं ययौ॥४५॥
यन्मया सुकृतं कर्म कृतं प्राक्तनजन्मनि। विष्णुद्वेषाग्निना दग्धं तत्सर्वं भस्मसादभूत्॥४६॥
कथञ्चिदस्य पापस्य सीमां द्रक्ष्यामि चेदहम् ।
मुक्त्वा नारायणं नान्यामर्चयिष्यामि देवताम् ॥४७॥
विष्णुद्वेषाच्चिरं भुक्ता मया नरकयातना। निरयान्निसृतः सोऽहं पैशाचीं योनिमागतः॥४८॥
अधुना कर्ममन्त्रैः कैरथानीतस्त्वदाश्रमम्। यत्रत्वद्दर्शनार्कान्मे नष्टं दुःखमयं तमः॥४९॥

वह पिशाच रोना छोड़कर नम्र होकर दीन वाणी में कहा ॥३६॥ **पिशाच ने कहा**— आपकी वाणी मेरे सभी अङ्गों में उसी तरह से व्याप्त हो गयी जिस तरह से ग्रीष्म में उत्पन्न वनाग्नि को पर्वत पर वर्षा करने वाला मेघ शान्त कर देता है ॥३७॥ हे ब्राह्मण ! मेरा जो कुछ भी पुण्य है उसके फलस्वरूप आपका दर्शन हुआ है । पुण्य विहीन व्यक्ति को सज्जनों की सङ्गति नहीं प्राप्त होती है ॥३८॥ इस तरह से कहकर उसने अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्त को सुनाया । भगवान् विष्णु से द्वेष रूप भयङ्कर दोष के कारण मैं इस दशा को प्राप्त किया हूँ ॥३९॥ मरा हुआ व्यक्ति जिनका नाम स्मरण करने के कारण विष्णुलोक में जाता है हे द्विज! उन भगवान् विष्णु के विषय में मेरा प्रद्वेष हो गया था ॥४०॥ जो जीवों का पालन करता है वह तीनों लोकों में धर्म प्राप्त करता है । सबों की अन्तरात्मा उन श्रीभगवान् के प्रति मेरा प्रद्वेष था ॥४१॥ जिन श्रीहरि का गायन सभी वेदों में सभी कर्मों के फल प्रदाता रूप से किया गया है । ब्राह्मण अपनी तपस्या से जिनका पूजन करते हैं वे ही मेरे द्वेष के पात्र बन गये ॥४२॥ सभी कर्मों का त्याग करके जिनको वन ही प्रिय हैं ऐसे निःसङ्ग पुरुष जो अकेले रहते हैं, वे दान में सन्यासीगण जिनका चिन्तन करते हैं वे भगवान् विष्णु मेरे द्वेष के विषय बन गये ॥४३॥ ब्रह्मा आदि देवता और सनकादि योगिजन जिनकी अर्चना मुक्ति की प्राप्ति के लिए करते हैं वे ही भगवान् विष्णु मेरे प्रद्वेष के विशय बन गये ॥४४॥ आदि मध्य और अन्त में जो भगवान् विश्व का पालन करते हैं, जिनका आदि, मध्य और अन्त कुछ भी नहीं है वे ही भगवान् विष्णु मेरे प्रद्वेष के विषय हो गये ॥४५॥ पूर्व जन्म में मैंने जो भी पुण्य किया था वे सबके सब भगवान् विष्णु से द्वेष करने के कारण भस्म हो गये ॥४६॥ यदि मैं किसी तरह इस पाप की समाप्ति देखूंगा तो भगवान् नारायण को छोड़कर किसी भी देवता की अर्चना मैं नहीं करूँगा ॥४७॥ भगवान् विष्णु से द्वेष करने के कारण मैंने चिरकाल तक यम यातना को भोगा । नरक से निकल कर मैंने

प्राप्यते मरणं यत्र बन्धनं श्रीःसुखं बधूः। स तत्र नीयते स्वेन कर्मणा गलहस्तिना ॥५०॥
इदानीमुचितं कर्म ब्रूहि पैशाच्यनाशनम्। परोपकारकार्ये हि न धन्या मन्दगामिनः ॥५१॥

देवद्युतिरुवाच

अहोमुष्णाति मायेयं देवासुरनृणां स्मृतिम्। यया देवेष्वपि द्वेषो जायते धर्मनाशनः ॥५२॥

स्रष्टा पालयिता हन्ता जगतां यो महेश्वरः ।
आत्म च सर्वभूतानां तं मूढो द्वेष्टि कः कथम् ॥५३॥

भवन्ति सर्वकर्माणि सफलानि यदर्पणात्। तद्भक्तिविमुखो मर्त्यः को न यातीह दुर्गतिम् ॥५४॥
श्रुतिस्मृतिसदाचारविहितं कर्म केवलम्। सेवितव्यं चतुर्वर्णैर्भजेन्नारायणं सदा ॥५५॥
अन्यथा निरयं यान्ति विना ह्यागमसेवनात्। अतो वेदविरुद्धार्थं शास्त्रोक्तं कर्म सन्त्यजेत् ॥५६॥

स्वबुद्धिरचितैः शास्त्रैः प्रतार्येह तु बालिशान् ।
विघ्नन्ति श्रेयसो मार्गं लोकनाशाय केवलम् ॥५७॥
विष्णुं निन्दन्ति वेदांश्च तपो निन्दन्ति सद्विजान् ।
तेन ते नरकं यान्ति ह्यसच्छास्त्रनिषेवणात् ॥५८॥

अयमेव यथा राजा द्रविडो निरयं गतः। द्विषन्नारायणं देवं देवदेवं जगत्प्रभुम् ॥५९॥
तस्माद्द्वेषं हि देवेषु ब्राह्मणेषु विशेषतः। संत्यजेत्पुण्यकामोऽत्र वेदबाह्यांक्रियां त्यजेत् ॥६०॥

इत्युक्त्वा कथयामास पिशाचाय हितं मुनिः ।
प्रयागं गच्छ भो भद्र माघमासं विचारय ॥६१॥

पिशाच की योनि प्राप्त की ॥४८॥ न जाने किस कर्म के फलस्वरूप मैं आपके आश्रम में पहुँच गया जिसके कारण सूर्य के समान आपका दर्शन करके मेरा दुःख मयान्धकार विनष्ट हो गया है ॥४९॥ जहाँ पर मरण, बन्धन, श्रीजन्य सुख, पत्नी जीवन अपने कर्मो के द्वारा ढकेल दिये जाते है ॥५०॥ अब आप ऐसे कर्म को वतलायें जो पिशाचत्व का विनाशक हो । परोपकार करने में धन्य पुरुष देर नहीं करते हैं॥५१॥ **देवद्युति ने कहा—** आश्चर्य है कि यह माया, देवता, असुर और मनुष्यों की पूर्वजन्म की स्मृति को विनष्ट कर देती है, उसी के कारण मनुष्य देवताओं से भी द्वेष करने लगता है जो धर्म का नाश करने वाला है ॥५२॥ जो श्रीभगवान् स्रष्टा, पालयिता और संहार करने वाले हैं तथा सभी जीवों की जो आत्मा हैं उनसे कौन मूर्ख द्वेष करता है ॥५३॥ जिनको अर्पित कर देने से सभी कर्म सफल हो जाते हैं उनकी भक्ति का विरोधी कौन पुरुष है ? जो दुर्गति न भोगे ॥५४॥ श्रुति, स्मृति, सदाचार द्वारा विहित केवल कर्मो का सेवन मनुष्यों को करना चाहिए और भगवान् नारायण का सदा भजन करना चाहिए ॥५५॥ नहीं तो आगम का सेवन नहीं करने के कारण मनुष्य नरकों में जाते हैं अतएव वेद विरुद्ध शास्त्रोक्त कर्मो को त्याग देना चाहिए ॥५६॥ अपनी बुद्धि से रचित शास्त्रों से इसको में मूर्खो को धोखा देकर केवल लोक का नाश करने के लिए श्रेयोमार्ग में बाधा उपस्थित करते हैं ॥५७॥ जो लोग भगवान् विष्णु, वेद, तपस्या और द्विजों की निन्दा करते हैं उसके कारण तथा असत् शास्त्र का पालन करने के कारण लोग नरक में जाते हैं ॥५८॥ जैसे यह द्रविड़ देश का राजा जो भगवान् नारायण से द्वेष करता था नरक में चला गया ॥५९॥ अतएव पुण्य चाहने वालों को देवताओं से द्वेष तथा विशेष रूप से ब्राह्मणों से द्वेष त्याग

यत्र ते निश्चिता मुक्तिः पैशाच्यान्नात्र संशयः ।
तत्राप्लुता दिवं यान्ति श्रुतिरेषा सनातनी ॥६२॥
विजहाति नरस्तत्र प्राक्तनं कर्म दुष्कृतम् । प्रयागस्नानतो नास्ति क्वाऽप्यन्यदधिकं परम् ॥६३॥
प्रायश्चित्तं तपोरूपं दानरूपं क्रियात्मकम् । यागयोगादिकं विद्धि प्रयागं पापिनामपि ॥६४॥
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तत्पृथिव्यामपावृतम् । सितासितोदवेणी या तां हित्वा भुवि नापरा ॥६५॥
पापनैगडबद्धस्य च्छेदनैककुठारिका। क्व विष्णुः सूर्यतेजोऽग्निर्गङ्गायामुनसङ्गमः ॥६६॥
क्व वराकी नृणां तुच्छा पापराशितृणाहुतिः ।
मलीमसघनध्वंसे यथा शरदि चन्द्रमाः ॥६७॥
भाति पापक्षयादूर्ध्वं नरो वेणीजलप्लुतः । सितासितस्य माहात्म्यमहं वक्तुं न ते क्षमः ॥६८॥
यत्तोयकणसंस्पृष्टो मुक्तः केरलको द्विजः । इतिवाक्यमृषेः श्रुत्वा पिशाचस्तुष्टमानसः ॥६९॥
मुक्तदुःखइव प्रीतः पप्रच्छ प्रणयान्मुनिम् । कथं केरलदेशीयो द्विजो मुक्तो महामुने ॥७०॥
एतं कथय वृत्तान्तं संश्रित्य करुणा मयि ॥७१॥

देवद्युतिरुवाच

पिशाच श्रृणु पुण्यां मे कथां कथयतःशुभाम् ।
केरले वसुनामाऽत्र ब्राह्मणो वेदपारगः ॥७२॥
दायादैर्हृतवित्तस्तु निर्धनो बन्धुवर्जितः । जन्मभूमिं परित्यज्य महादुःखेन दुःखितः ॥७३॥

देना चाहिए तथा वेद बाह्य कर्मों को त्याग देना चाहिए ॥६०॥ हे भद्र ! तुम प्रयाग चले जाओ और माघ मास का विचार करो । इस तरह से उस ब्राह्मण ने पिशाच को कल्याणोपदेश किया ॥६१॥ वहाँ पर तुम्हारी पिशाचता से निश्चित रूप से मुक्ति हो जायेगी । सनातनी श्रुति बतलाती है कि वहाँ पर स्नान करने वाले स्वर्ग लोक जाते हैं ॥६२॥ वहाँ पर मनुष्य प्राचीन कर्म जन्य पापों को त्याग देता है, प्रयाग स्नान से दूसरा कोई भी श्रेष्ठ नहीं है ॥६३॥ प्रयाग पापियों के भी तपस्या रूप प्रायश्चित है, दान रूपी कर्म है और याग तथा योग आदि स्वरूप है ॥६४॥ गङ्गा-यमुना के सङ्गम का सितासितजल को छोड़कर पृथिवी पर स्वर्गापवर्ग का खुला हुआ द्वार दूसरा कोई नहीं हैं ॥६५॥ पाप रूपी हथकड़ी के बन्धन में बँधे जीवों के बन्धन को काटने वाली कुल्हाणी प्रयाग का सङ्गम स्थल है । कहाँ तो विष्णु तथा सूर्य के तेज रूपी अग्नि गङ्गा, यमुना का सङ्गम है ॥६६॥ और कहाँ तो मनुष्यों की पाप रूपी तृण राशि की आहुति और कहाँ घोर अन्धकार को विनष्ट करने वाले शरद के चन्द्रमा ॥६७॥ त्रिवेणी में स्नान करने वाला पुरुष पाप नाश हो जाने के बाद चमकने लगता है । गङ्गा, यमुना के सङ्गम के जल की महिमा बतलाने में मैं समर्थन नहीं हूँ ॥६८॥ उस जल के कण का स्पर्श होने से केरल का रहने वाला ब्राह्मण मुक्त हो गया। ऋषि के इस वाक्य को सुनकर प्रसन्न मन से वह पिशाच ॥६९॥ दुःख से मुक्त हुए के समान प्रसन्न होकर मुनि से प्रेम पूर्वक पूछा हे महामुने ! केरल देशीय ब्राह्मण कैसे मुक्त हो गया ?॥७०॥ आप मुझपर कृपा करके इस वृत्तान्त को सुनायें ॥७१॥ **देवद्युति ने कहा—** मैं तुम्हे पवित्र कथा सुनाता हूँ उसे तुम सुनो । केरल देश में वसु नामक वेद पारङ्गत ब्राह्मण रहता था ॥७२॥ उसके दयादों ने उसकी

देशाद्देशं परिभ्रम्य कालेन महताः पुनः । प्रविश्य स महारण्यमीषद्वयाधिप्रपीडितः ॥७४॥
गच्छंस्तीर्थान्तरं श्रान्तः क्षुत्क्षामो विन्ध्यपर्वते ।
दुर्भिक्षेण मृतिं लेभे न दाहं चौर्ध्वदेहिकम् ॥७५॥
तेन कर्मविपाकेन तत्रैव गिरिगह्वरे । प्रेतीभूतश्चिरं कालमुवास निर्जने वने ॥७६॥
शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारो निरूदकः । दिगम्बरो व्युपानत्को गिराहाहेतिनिःश्वसन् ॥७७॥
इतस्ततः परिभ्रम्य वायुभूतः स केरलः । द्विजो न शरणं लेभे न सुखं कुत्रचित्तदा ॥७८॥
संशोचति स्म दुःखार्तो नैव पश्यति सद्गतिम् ।
सर्वदा दत्तदानं स भुङ्क्ते स्वं कर्मणः फलम् ॥७९॥
हविर्जुह्वति नाग्नौ ये गोविन्दं नाऽर्चयन्ति ये ।
भजन्ते नात्मविद्यांये सुतीर्थविमुखाश्चये ॥८०॥
सुवर्णवस्त्रताम्बूलं मणिमन्नं फलं जलम्। आर्तेभ्यो न प्रयच्छन्ति सर्वे ते कृतहीनकाः ॥८१॥
ब्रह्मस्वं च परस्वं च स्त्रीधनाति हरन्ति ये। बलेन च्छद्मना वापि धूर्त्ताश्च परवञ्चकाः ॥८२॥
दाम्भिकाः कुहकाश्चौरा ये च पातकवृत्तयः ।
बालवृद्धातुरस्त्रीषु निर्दयाः सत्यवर्जिताः ॥८३॥
अग्निदा गरदा ये च ये चाऽन्ये कूटसाक्षिणः ।
अगम्यागामिनः सर्वे ये चान्ये ग्रामयाजिनः ॥८४॥
पितृमातृस्नुषापत्यस्वदारत्यागिनश्च ये। ये कदर्याश्च लुब्धाश्च नास्तिका धर्मदूषकाः ॥८५॥

सम्पत्ति छीन ली, बान्धवों से रहित वह निर्धन अत्यन्त दुःखी होकर अपनी जन्मभूमि का परित्याग कर दिया ॥७३॥ एक देश से दूसरे देश में घूमता हुआ वह बहुत दिनों के बाद कुछ व्याधि से पीड़ित होकर महारण्य में रहने लगा ॥७४॥ दूसरे तीर्थ में जाते हुए भूखा और थका हुआ वह दुर्भिक्ष के कारण विन्ध्य पर्वत पर मर गया और उसका न तो दाह हुआ और न और्ध्वदैहिक क्रिया हुयी ॥७५॥ अपने उस कर्म के परिणाम स्वरूप वह प्रेत होकर निर्जन वन में निवास किया ॥७६॥ शीत, आतप से अत्यन्त दुःखी वह निराहार और बिना जल के, दिगम्बर, उपानह रहित लम्बी श्वास लेकर हाय-हाय चिल्लाता हुआ ॥७७॥ इधर-उधर भ्रमण करके वह केरलवासी वायु होकर कहीं न तो शरण पाता था और न सुख ॥७८॥ दुःख से आर्त बना हुआ केवल सद्गति के विषय में सोचता था । अपने कर्मों का फल भोग रहा था ॥७९॥ वे सभी लोग नीच कोटि के हैं जो न तो हविष्य का होम करते हैं, भगवान् गोविन्द की अर्चना नहीं करते हैं, आत्मविद्या की सेवा नहीं करते हैं, तीर्थ पराङ्मुख रहते हैं, दरिद्रों, दुःखियों को सुवर्ण, वस्त्र, ताम्बूल, मणि, अन्न, फल और जल नहीं प्रदान करते हैं ॥८०-८१॥ जो लोग आत्मीयों के धन, दूसरों के धन, ब्राह्मण के धन और स्त्री के धन का हरण बल पूर्वक या धोखे से करते हैं, धूर्त तथा पर वञ्चक, दाम्भिक, जलने वाले, चोर, पापी, बाल, बृद्ध और आतुरों के प्रति निर्दयता का व्यवहार करने वाले, मिथ्यावादी, आग लगने वाले, विष खिलाने वाले, झूठी गवाही देने वाले, अगम्यागमन करने वाले तथा गावों में घूम-घूमकर यज्ञ कराने वाले ॥८२-८४॥ पिता, माता, पुत्र वधू, पुत्र तथा अपनी पत्नी का त्याग

त्यजन्ति स्वामिनं युद्धे त्यजन्ति शरणागतम् ।
गवाम्भूमेश्चहन्तारो येचाऽन्ये रत्नदूषकाः ॥८६॥
परापवादिनः पापा देवतागुरुनिन्दकाः । महाक्षेत्रेषु सर्वेषु प्रतिग्रहरताश्च ये ॥८७॥
परद्रोहरता ये च तथा च प्राणिहिंसकाः । कुप्रतिग्राहिणः सर्वे ते भवन्ति पुनःपुनः ॥८८॥
प्रेतराक्षसपैशाचतिर्यग्वृक्षकुयोनिषु । न तेषां सुखलेशोऽस्ति इह लोके परत्र च ॥८९॥
तस्मात्त्यक्तवा निषिद्धार्थ विहितं कर्म चऽऽचरेत् ।
यज्ञं दानं तपस्तीर्थ मन्त्रं देवं गुरुं भजे ॥९०॥
विपाकं कर्मणां दृष्ट्वा योनिकोटिषु दुस्तरम् ।
चतुर्भिरपि वर्णैश्च सेव्योधर्मोनिरन्तरम् ॥९१॥
इति प्रेतगतिं दृष्ट्वा पापीबीजोत्थितां हि सः ।
कृत्वा धर्मोपदेशं च पुनस्तस्मै द्विजोऽब्रवीत् ॥९२॥
इत्थं स केरलः प्रेतो वर्तमानो गिरौ तदा । अतिवाह्य चिरंकालमपश्यत्पथिकं पथि ॥९३॥
वहन्तं द्वौ करण्डौ च वेणी जलयुतौ तथा ।
गायन्तं प्रमुखं देवं पुण्यश्लोकंजनार्दनम् ॥९४॥
तं दृष्ट्वा सहसा प्रेतो मार्गरोधं चकार सः ।
दर्शयामास चाऽऽत्मानं माभैषीरित्युवाचसः ॥९५॥
पानीयं पातुमिच्छामि त्वत्तः कार्पटिकोत्तम ! ।
न दास्यसि जलं चेन्मे प्राणा यास्यन्ति मे दृढम् ॥९६॥
इति प्रेतवचः श्रुत्वा पान्थः प्रत्याह कौतुकात् ॥९७॥

करने वाले, कायर, लोभी, नास्तिक और धर्म को दूषित करने वाले ॥८५॥ युद्ध में अपने स्वामी तथा शरणागत का त्याग करने वाले, गोचर भूमि का हरण करने वाले तथा रत्नों को दूषित करने वाले ॥८६॥ दूसरों की निन्दा करने वाले, पापी, देवता तथा गुरु की निन्दा करने वाले तथा सभी महाक्षेत्रों में दान लेने वाले ॥८७॥ दूसरों से द्रोह करने वाले, प्राणियों की हिंसा करने वाले, निन्दित दान लेने वाले, ये सभी बार-बार प्रेत, राक्षस, पिशाच, पशु, पक्षी तथा वृक्ष आदि निन्दित योनियों में जन्म लेते हैं । इन सबों को इस लोक में तथा परलोक के सुख लेशमात्र भी नहीं प्राप्त होता है ॥८८-८९॥ अतएव निषिद्ध कर्म का त्याग करके विहित कर्मों का ही पालन करना चाहिए । यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, मन्त्र, देवता और गुरु की सेवा करे ॥९०॥ करोड़ों योनियों में कर्मों के भयङ्कर परिणाम को देखकर चारो वर्णों को सदा धर्म का पालन करना चाहिए ॥९१॥ इस तरह से पाप रूपी बीज से उत्पन्न प्रेत गति को देखकर उन ब्राह्मण ने उसको धर्मों का उपदेश दिया । और उसके बाद वे फिर बोले ॥९२॥ इस तरह से वह केरल देश का प्रेत उस पर्वत पर दीर्घ काल तक निवास करके रास्ते में एक पथिक को देखा कि ॥९३॥ उसने त्रिवेणी के जल से भरे हुए दो डब्बों को लिया था और प्रमुख देवता जनार्दन का गीत गा रहा था ॥९४॥ उसको देखकर वह प्रेत एका-एक उसके मार्ग को रोक दिया उसने अपना रूप दिखाकर कहा डरो मत ॥९५॥ उत्तम पथिक मैं तुम्हारे पात्र का जल पीना चाहता हूँ । यदि जल नहीं दोगे तो मेरे प्राण निकल जायेंगे॥९६॥

कार्पटिक उवाच

कस्त्वं दुःखभिभूतस्तु कृशो म्लानो दिगम्बरः ।
जीवशेषोमुमूर्षुश्च विकृतो भयवर्धनः ॥९८॥
नवधूममयाकारश्चण्डश्चञ्चललोचनः । पद्भ्यामस्पृष्टभूमिस्त्वं निर्मांसोदरबाहुकः ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रेतो वाक्यमथाब्रवीत् ॥९९॥

प्रेत उवाच

शृणु धर्मिष्ठ ते वच्मियेनाहमीदृशोऽभवम् । ब्राह्मणोऽदत्तदानोऽहं लोभीचमलिनक्रियः ॥१००॥
परान्नं च सदाभुक्तमेकाकी मिष्टभोजनः ।
मया दत्ता न भिक्षाऽपि हन्तकारो न पुष्कलः ॥१०१॥
न कृतो वैश्वदेवस्तु प्रक्षितो न बहिर्बलिः । भूतानां तु तृषार्तानां न हता पयसा च तृट्॥१०२॥
कदाचित्पितरो नैव तर्पिता अटता महीम् । नच श्राद्धं कृतं क्वाऽपि पूजिता नैव देवताः॥१०३॥
वर्षातपपरित्राणं न दत्तं पादरक्षणम् । जलपात्रमदत्तं च ताम्बूलं नौषधं मया ॥१०४॥
न गृहे वसतिर्दत्ता नातिथ्यं कस्यचित्कृतम् । अन्धवृद्धाधनानाथदीनां: पानान्नतोषिताः॥१०५॥
गवां ग्रासो न दत्तो वै न रोगी परिमोचितः ।
न दत्ता न हुता विप्र ! पवित्राश्चतिला मया ॥१०६॥
पृथिव्यां तिलदातारो न भवन्ति तु मद्विधाः ।
व्यतीपाते न दत्तं हि किंचित्स्वर्णं महाफलम् ॥१०७॥
संक्रान्तावुपरागे च न दत्तं सूर्यचन्द्रयोः । पर्वाण्यन्यानि सर्वाणि जग्मुः शून्या निमेद्विज॥१०८॥

प्रेत की इस वाणी को सुनकर प्रेत से कौतूहलवशात् पूछा ॥९७॥ **कर्पटिक ने कहा—** तुम दुःखाभिभूत कृश, नग्न, मलिन कौन हो । अब तो केवल तुम्हारे प्राण बचे हैं । तुम मुमूर्षु, विकृत और भयङ्कर हो ॥९८॥ नवीन धूम के समान भयङ्कर तुम्हारे नेत्र चञ्चल हैं । तुम अपने पैरों से पृथिवी का स्पर्श नहीं कर रहे हो, तुम्हारे पेट और बाहु मांस रहित हैं उसकी बातों को सुनकर प्रेत ने कहा ॥९९॥ **प्रेत ने कहा—** हे धार्मिक! जिसके कारण मेरी यह दशा है, उसे मैं तुम्हें बता रहा हूँ सुनो । मैं दान नहीं करने वाला, लोभी तथा पाप कर्मों को करने वाला ब्राह्मण था ॥१००॥ मैंने सदा परान्न को खाया मैं अकेले में अच्छी चीजें खाता था । मैंने किसी को भिक्षा भी नहीं दिया और न पुष्कल मात्रा में हन्तकार (जप) किया ॥१०१॥ न तो मैंने बलिवैश्व देव किया और न तो घर के बादर फेंका । मैंने प्यासे मनुष्यों की जल से प्यास भी नहीं बुझायी ॥१०२॥ पृथिवी पर घूमता हुआ मैंने कभी पितरों को भी तृप्त नहीं किया । मैंने कहीं भी जाकर श्राद्ध भी नहीं किया और न देवताओं की पूजा की ॥१०३॥ वर्षा और धूप से बचाने वाला छाता नहीं दिया और न किसी को जूता दान दियाा । मैंने न तो जल दान किया और न किसी को ताम्बूल और औषधि भी नहीं प्रदान की ॥१०४॥ अपने घर में किसी को न तो ठहरने दिया और न तो किसी का अतिथि सत्कार किया । अन्धे, वृद्ध, निर्धन, अनाथ और दीनों को मैंने अन्न और जल से तुष्ट भी नहीं किया ॥१०५॥ मैंने न तो गायों को घास दिया और न रोगी को रोगमुक्त कराया । मैंने किसी को पवित्र तिलों का न तो दान दिया और न होम किया ॥१०६॥ पृथिवी पर तिल का दान करने वाले मेरे समान

तिथयः कार्त्तिके मुख्या जाता वन्ध्याः सदा मम ।
पितृभ्यो नैव दत्तं वा ह्यष्टकासु मघासु च ॥१०९॥
द्विजानां न कृता प्रीतिर्मन्वादिषु युगादिषु । न दत्तस्तिलतैलेन प्रदीपः कार्तिके मया ॥११०॥
न स्नातो माघमासेऽहं रूपसौभाग्यकामदे । द्विजाय वेदविदुषे गौतम्यां सिंहगे गुरौ ॥१११॥
मया सङ्कल्पितं द्रव्यं न दत्तं पूर्वजन्मनि। न स्नातोऽहं कृष्णावेण्यां तथा कन्यागते गुरौ॥११२॥
अग्निं प्रज्वाल्य काष्ठौघैः स्नातानां पौषमाघयोः ।
शीतार्तानां च विप्राणां न कृतो जाड्यनिग्रहः ॥११३॥
माघवादिषु मासेषु न दत्तं शीतलं जलम् । मया नारोपितोऽश्वत्थोन्यग्रोधोनैववर्धितः॥११४॥
बन्दीगेहान्मया मुक्तिर्न कृता प्राणिनां क्वचित् ।
न प्राणिभयसंत्रस्तो रक्षितः शरणागतः ॥११५॥
नोपोष्यात्र त्रिरात्राणि तोषितो मधुसूदनः । कृच्छ्रातिकृच्छ्रपाराकंतथा चान्द्रायणंद्विज ॥११६॥
अथान्यत्तप्तकृच्छ्रं च तथा सांतपनानि च। व्रतान्येतानि पुण्यानि जुष्टानीन्द्रादिभिःसुरैः ॥११७॥
चरित्वा न मया तानि देहः संशोषितःपुरा। इत्थं पूर्वभवो वन्ध्योममजातो द्विजोत्तम् ! ॥११८॥
पश्य द्विज महाक्रूरामद्भुतामत्र जन्मनि। गतिं दूरप्रबोधां तु मम पूर्वस्य कर्मणः ॥११९॥
सन्ति मांसानि मार्गेषु वृकव्याघ्रहतानि वै ।
फलान्यन्यानि शैलेऽस्मिञ्छुकैस्त्यक्तानि सर्वतः ॥१२०॥

नहीं होते हैं । मैंने व्यतीपात में थोड़ा सा भी सुवर्ण दान नहीं किया ॥१०७॥ संक्रान्ति तथा चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण की बेला तथा दूसरे सभी पर्व इसीतरह शून्य ही बीत गये ॥१०८॥ मेरी कार्तिक की सभी मुख्य तिथियाँ व्यर्थ ही बीत गयीं । अष्टकाओं तथा मधाओं में मैंने पितरों का श्राद्ध नहीं किया ॥१०९॥ मन्वादि तथा युगादि तिथियों में मैंने ब्राह्मणों को प्रसन्न भी नहीं किया । मैंने तिल के तेल से कार्तिक में प्रदीप भी नहीं जलाया ॥११०॥ रूप, सौभाग्य को देने वाले तथा कामनाओं को पूर्ण करने वाले माघ मास में स्नान भी नहीं किया । सिंह राशि के गुरु के होने पर मैंने गौतमी में वेदज्ञ ब्राह्मण के लिए पूर्व जन्म में द्रव्य का सङ्कल्प नहीं किया । कन्या राशि के सूर्य के होने पर मैंने कृष्ण वेणी नदी में स्नान नहीं किया ॥१११-११२॥ पौष तथा माघ मास में स्नान किए हुए लोगों का काष्ठ समूह से आग प्रदीप्त करके शीतल ब्राह्मणों को जाड़े से नहीं बचाया ॥११३॥ वैशाख आदि के महीनों में किसी को मैंने ठंढा जल नहीं पिलाया । मैंने न तो पिपल के वृक्ष को रोपा और न बड़ के वृक्ष को रोपा ॥११४॥ कभी मैंने किसी को कारागार से मुक्त भी नहीं कराया । जीवों के भय से डरे हुए शरणागतों की रक्षा भी नहीं की ॥११५॥ मैंने तीन रातों तक उपवास करके भगवान् मधुसूदन को भी कभी नहीं सन्तुष्ट किया । हे द्विज ! मैंने कभी कृछ्र, अतिकृछ्र, पाराक, चान्द्रायण भी नहीं किया ॥११५॥ तप्तकृच्छ्र तथा सांतापन इन सभी व्रतों को नहीं किया । जो इन्द्र आदि देवताओं को सन्तुष्ट करने वाले हैं, इन सबों को भी सन्तुष्ट नहीं किया॥११६॥ उन व्रतों को करके मैंने अपने शरीर को नहीं सुखाया हे द्विज ! इस प्रकार मेरा पूर्वजन्म व्यर्थ हो गया ॥११७-११८॥ हे विप्र ! इस जन्म में मेरी अत्यन्त क्रूर, अद्भुत गति है । जिसे बतलाना कठिन है । यह मेरी गति मेरे पूर्वकर्मों का फल है ॥११९॥ मार्ग में भेड़िया तथा व्याघ्र द्वारा मारे गये मांस रास्ते

पुण्यानि च सुगन्धीनि फलानि रसवन्ति च ।
मूलानि तु सुभक्ष्याणि मृदूनि मधुराणि च ॥१२१॥
नानाविधानि तिष्ठन्ति मधूनिसुबहून्यपि । स्रोतसां निर्झराणां च सन्तिवारीणिसर्वशः ॥१२२॥
सुलभेषु पदार्थेषु सर्वेष्वेतेषु पर्वते। नेक्षेऽहमशनं क्वाऽपि दैवेनापि हतं सदा ॥१२३॥
वाताहारेण जीवामि यथा जीवन्ति पन्नगाः ।
पुनर्जीवामि भो विप्र देवयोनिप्रभावतः ॥१२४॥
बलेन प्रज्ञया नित्यं मन्त्रपौरुषविक्रमैः । सहायैश्चैव मित्रैश्च नाऽलभ्यं लभते नरः ॥१२५॥
लाभालाभे सुखे दुःखे विवाहे मृत्युजीवने। भोगे रोगे वियोगे च दैवमेवहिकारणम् ॥१२६॥
कुरूपाः कुकुला मूर्खाःकुत्सिताचारनिन्दिताः ।
शौर्यविक्रमहीनाश्च दैवाद्राज्यानिभुञ्जते ॥१२७॥
काणाः खञ्जाअभव्याश्च नीतिहीनाश्च दुर्गुणाः ।
नपुंसकाश्च दृश्यन्ते दैवाद्राज्ये प्रतिष्ठिताः ॥१२८॥
यैर्दत्ताश्च तिला गावो हिरण्यं वसनानि च। गौरीकन्याचयैर्दत्ता यैर्दत्ता च वसुन्धरा ॥१२९॥
शय्यासनानि ताम्बूलं मन्दिराणि धनानि च ।
भक्ष्यभोज्यानि दत्तानि चन्दनान्यगरूणि च ॥१३०॥
अटव्यां पर्वताग्रे च ग्रामे वा नगरेऽपिवा । पुरःपुरश्च तिष्ठन्ति तेषां भोगाः प्रयत्नतः ॥१३१॥
सन्त्यत्र पर्वतेऽन्येपिराक्षसा बलवत्तराः। राक्षसाश्च पिशाचाश्चपिशाच्यश्चातिदारुणाः ॥१३२॥
कदाचिच्च कथञ्चिच्च क्वाऽपि यत्र स्वकर्मणा ।
लभन्ते चान्नपानानि पर्यटन्तो वने वने ॥१३३॥

में पड़े हैं इस पर्वत पर शुक पक्षियों द्वारा परित्यक्त रसवान फल पड़े हैं ॥१२०॥ पवित्र, सुगन्धित और रसयुक्त फल मूल जो कोमल और मधुर हैं वे भी पड़े हैं ॥१२१॥ अनेक प्रकार के सुन्दर मधु बहुत हैं स्रोतों और झरनों के जल भी सर्वत्र हैं ॥१२२॥ इन सभी पदार्थों के इस पर्वत पर सुलभ होने पर भी भाग्य के मारे हुए मुझको वे नहीं दिखते हैं ॥१२३॥ मैं सर्पो के समान वायु पीकर जीवित हूँ । ऐसा होने पर देवयोनि के प्रभाव से मैं जीवित रहता हूँ ॥१२४॥ बल, प्रज्ञा, मन्त्र, पौरुष, और पराक्रम से तथा सहायकों एवं मित्रों से ये अलभ्य वस्तु नहीं मिलती हैं ॥१२५॥ लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, विवाह, मृत्यु, जीवन, भोग, रोग, तथा वियोग इन सबों का कारण भाग्य ही है ॥१२६॥ भाग्य से ही कुरूप, निन्दित कुल वाले, मूर्ख, निन्दित आचरण वाले, शौर्य तथा पराक्रम से रहित भी लोग राजा हो जाते हैं॥१२७॥ काने, लङ्गड़े, अभव्य, नीतिहीन, दुर्गण सम्पन्न तथा नंपुसक भी देखा जाता है कि राजा हैं॥१२८॥ जिन लोगों ने तिल का दान किया है, गौ, सुवर्ण, वस्त्र, गौरी कन्या तथा पृथिवी का दान दिया है ॥१२९॥ शय्या, आसन, ताम्बूल, मन्दिर, धन, भक्ष्य भोज्य, चन्दन तथा अगरु का दान किया है॥१३०॥ उन लोगों को जङ्गल में पर्वत पर, ग्राम में नगर में तथा नगर के बाहर भी भोगों की प्राप्ति हो जाती है ॥१३१॥ इस पर्वत पर भी बलवान वे राक्षस, पिशाच, पिशाची, अत्यन्त भयङ्कर हैं ॥१३२॥

इति श्रुत्वाऽत्र तेभ्यश्च मा भयं भवतां भवेत् ।
शुचिं गोविन्दभक्तं त्वां न ते द्रष्टुमपि क्षमाः ॥१३४॥
विष्णुभक्तितनुत्राणं नारायणपरायणम् । न स्पृशन्ति न पश्यन्ति राक्षसाः प्रेतपूतनाः॥१३५॥
भूतवेतालगन्धर्वाः शाकिन्यश्शर्मायिका ग्रहाः। रेवत्यो वृद्धरेवत्योमुखमण्ड्यस्तथाग्रहाः ॥१३६॥
यक्षाः बालग्रहाः क्रूरा दुष्टावृद्धग्रहाश्च ये । तथा मातृग्रहा भीमाग्रहाश्चान्येविनायकाः ॥१३७॥
कृत्याः सर्पाश्च कूष्माण्डा ये चाऽन्ये दुष्टजन्तवः ।
न पश्यन्ति परं विप्र ! वैष्णवं ब्राह्मणं शुचिम् ॥१३८॥
शुचिं रक्षन्ति भूतानि धर्मिष्ठं पीडयन्ति न। रक्षन्ति च शुचिं नित्यं ग्रहनक्षत्रदेवताः॥१३९॥
गोविन्दनामा जिह्वाग्रे हृदि वेदस्तु संस्थितः। शुचिश्च दानशीलश्च त्वंसर्वत्राकुतोभयः॥१४०॥
एवं ब्राह्मण तिष्ठामि भुञ्जानः कर्मणः फलम् ।
न शोचामीति मत्वाहं विमृश्यचपुनःपुनः ॥१४१॥
न दुनोमि तथा तावद्यवज्जम्बालिनीतटे । सारसोदीरितं वाक्यं श्रुतं पर्यटता मया ॥१४२॥

ब्राह्मण उवाच

सारसोदीरितं वाक्यं कीदृशं हि श्रुतं त्वया ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि त्वं प्रेत ! सत्वरम् ॥१४३॥

प्रेत उवाच

ब्रवीमि सारसं वाक्यं शृणु कार्पाटिकोत्तम ! ।
धूसरानामकक्षेऽस्मिन्नदीगिरिसमुद्भवा ॥१४४॥
सदाजलाशयोत्ताला मत्तदन्तिकुलाकुला । महाककुभशोभाढ्या स्निग्धजम्बूमनोहरा ॥१४५॥

वे विभिन्न वनों में घूमते हुए अपने कर्मो के फलस्वरूप, कभी, कहीं पर, कभी भी अन्न जल को प्राप्त कर लेते हैं ॥१३३॥ इस बात को जानकर तुम्हें उन सबों से भयभीत नहीं होना चाहिए । पवित्र तथा श्रीभगवान् के भक्त आपको वे देखने में भी समर्थ नहीं हैं ॥१३४॥ भगवान् नारायण के भक्त भगवान् विष्णु की भक्ति का कवच धारण करने वाले को राक्षस, प्रेत तथा पूतनाएँ न तो देख पाती हैं औन न स्पर्श कर पाती हैं । भूत, प्रेत, वेताल, शाकिनी, ग्रह, मातृग्रह, भीमाग्रह, तथा विनायक ॥१३५-१३७॥ कृत्या, सर्प, कूष्माण्ड (भूत) तथा दूसरे दुष्ट जन्तु हे विप्र ! परम पवित्र, वैष्णव ब्राह्मण को नहीं देख पाते हैं ॥१३८॥ सभी ग्रह, नक्षत्र और देवता, पवित्र, धार्मिक को दुःख नहीं देते हैं अपितु उसकी रक्षा करते हैं ॥१३९॥ आप तो अकुतोभय हैं, क्योंकि जिह्वा के अग्रभाग में भगवान् गोविन्द का नाम है और हृदय में वेद प्रतिष्ठि हैं ॥१४०॥ हे ब्राह्मण ! अपने कर्मों का फल भोगते हुए मैं यहाँ रहता हूँ शोक नहीं करता हूँ और बार-बार इस बात का विचार करता हूँ ॥१४१॥ जम्बालिनी के तट पर घूमते हुए मैंने जब से सारस की बात सुनी तब से दुःखी भी नहीं होता हूँ ॥१४२॥ **ब्राह्मण ने कहा—** तुमने सारसोक्त कैसी बातों को सुना । हे प्रेत ! उसे मैं सुनना चाहता हूँ शीघ्र बतलाओ॥१४३॥ **प्रेत ने कहा—** मैं सारस की बातों को कहता हूँ; हे कार्पाटिकोत्तम उसे आप सुनें । इसी किनारे पर्वत से निकली हुयी धूसरा नाम की नदी है ॥१४४॥ वह सदा जल से भरी रहती है और उसमें मदमत्त हाथी

तस्यास्तीरमहं प्राप्तो गाहमानो वनं घनम् । मयि तिष्ठति वै तत्र फलभोजनकाम्यया ॥१४६॥
वनान्तरात्समुड्डीय सारसो लक्ष्मणायुतः । आगत्य पुलिनं नद्याः सेवितुं बहुपक्षिभिः ॥१४७॥
पीत्वा तत्रैव पानीयं रमित्वा भार्यया सह । सुप्तः पक्षपुटे वामे प्रवेश्य च शिरोमुखम् ॥१४८॥
एतस्मिन्नन्तरे दृष्टः पादपादवतीर्य च । रक्ताननः सुरक्ताक्षो दण्डीदृढनखावलिः ॥१४९॥
लोमशो दीर्घलाङ्गूलश्चलचेष्टो हि वानरः । यत्राऽसौ सारसः सुप्तस्तत्र वेगेन चागतः ॥१५०॥
समागत्य च जग्राह सारसं चरणे दृढम् ।
कराभ्यां क्रूरया बुद्ध्या पश्यतां बहुपक्षिणाम् ॥१५१॥
उड्डीयोड्डीयते सर्वे गताश्चान्यत्र खेचराः । सारसी भीतभीता च विरावान्कुर्वतीस्थिता ॥१५२॥
सारसो भग्ननिद्रस्तु त्रासाच्चलितलोचनः । अवलोकितवाञ्छीघ्रं तदोत्ताम्यशिरोधराम् ॥१५३॥
विलोक्य वानरं दुष्टं हन्तुकामं सुदारुणम् । तदा सम्भाषयामास गिरा मधुरया खगः ॥१५४॥
अपराधं विना मां त्वं किं शाखामृग ! बाधसे ।
सापराधा जना लोके बध्यन्ते भूमिपैरपि ॥१५५॥
न पीडयितुमर्हनते त्वादृशा उत्तमा जनाः । अस्मानहिंसकान्साधून्परवृत्तिपराङ्मुखान् ॥१५६॥
जलशैवालभक्षांश्च खेचरान्वनवासिनः । स्वदाररतिशीलांश्च परदाराभिवर्जितान् ॥१५७॥
न पीडयितुमर्हन्ति त्वद्विधा वानरोत्तम !। परापवादपैशुन्यान्द्विजान्परमसेवकान् ॥१५८॥
शाखामृगविमुञ्चाशु सर्वथा मामनागसम्। जानामि तव जन्माहं नत्वंवेत्सितुमामकम्॥१५९॥

बैठे रहते हैं । वे सभी दिशाओं को सुशोभित करती हैं और सुन्दर जामुन के वृक्षों से मनोहर बनी रहती है ॥१४५॥ घने वन में घूमता हुआ उस नदी के तट पर फलों का भोजन करने की इच्छा से मैं वहाँ ठहरा रहा ॥१४६॥ दूसरे वन से अपनी सारसी के साथ उड़कर आया हुआ सारस उस नदी के तट पर रहने के लिए आया । वह सारसी के साथ रमण करके तथा पानी पीकर अपने बाए पङ्ख से शिर तथा मुख को छिपाकर सो गया ॥१४७-१४८॥ उसी समय वृक्ष से उतरकर लाल मुख वाला तथा लाल आँखों वाला दण्ड लिए हुए बड़े-बड़े नखों वाला, रोएँ दार तथा लम्बी पूंछ वाला चंचल चेष्टा वाला वानर दिखायी दिया । जहाँ पर वह सारस सोया था वहाँ वेग से आया ॥१४९-१५०॥ आकर के उसने सारस के पैर को जोर से पकड़ लिया । क्रूर बुद्धि वाले उसको सभी पक्षी देख रहे थे ॥१५१॥ वे सभी पक्षी उड़कर आकाश में चले गये सारसी भयभीत होकर जोर-जोर से बोल रही थी ॥१५२॥ सारस की नीद खुली भय से उसके नेत्र चञ्चल हो गये और उसने अपना शिर उठाकर उस दुष्ट वानर को देखा॥१५३॥ जो भयङ्कर और उसको मार देना चाहता था । उस समय मधुर वाणी में पक्षी ने कहा ॥१५४॥ हे वानर! निरपराध मुझको तुम क्यों मार रहे हो ? राजा भी अपराधी लोगों को ही दण्ड देते हैं ॥१५५॥ तुम तो उत्तम पुरुष हो तुम्हें मुझे नहीं मारना चाहिए । हमलोग अहिंसक, सज्जन हैं दूसरों की वृत्ति को नहीं अपनाते हैं ॥१५६॥ हम तो जल और सेवार खाते हैं आकाश में चलते हैं और वन में निवास करते हैं हम अपनी पत्नी के साथ रमण करते हैं दूसरों की पत्नी को देखते भी नहीं हैं ॥१५७॥ हे वानारोत्तम ! आप जैसे लोगों को मुझे पीड़ित नहीं करना चाहिए । दूसरे की निन्दा, चुगुली भी नहीं करने वाले, ब्राह्मणों का सेवक

इत्याकर्ण्यवचस्तस्य मुमोच सारसं तदा। चपलो वानरः शीघ्रमाह दूरे व्यवस्थितः ॥१६०॥

वानर उवाच

ब्रूहि रे त्वं कथं वेत्सि मम जन्म पुरातनम् ।
त्वं पक्षी ज्ञानहीनश्च तिर्यक्चाहं वनेचरः ॥१६१॥

सारस उवाच

जानेऽहं तावकं जन्म जातिस्मरमितिस्फुटम् ।
त्वं हि विन्ध्याधिपो राजा प्राग्भवे पर्वतेश्वरः ॥१६२॥

अहं पूज्यतमो विप्रस्तव वंशे पुरोहितः। तेन प्रत्यभिजानामि त्वां सम्यग्वानरोत्तम ! ॥१६३॥

इमां पालयता भूमिं प्रजाः सर्वाः प्रपीडिताः ।
त्वया विवेकहीनेन भृशं संचिन्वता धनम् ॥१६४॥

प्रजापीडनतापोत्थवह्निज्वालैस्तु वानर !। प्राक्त्वं दग्धः पुनः कुम्भीपाकेऽतिदारुणे॥१६५॥
पुनःपुनश्च दग्धेन जातेन च पुनः पुनः। नारकेण शरीरेण समास्त्रिंशद्गतं त्वया॥१६६॥
कुर्वता दारुणाञ्छब्दान्नु दता च पुनः पुनः। कुम्भिपाकानले तीव्राह्यनुभूताश्च यातनाः॥१६७॥
निस्तीर्णनरको भूयः पापशेषेण साम्प्रतम् । प्राप्तोऽसि वानरं जन्म येन मां हन्तुमिच्छसि॥१६८॥
विप्रस्योपवनात्पूर्वं पक्वरम्भाफलानिवै। अननुज्ञाप्य भुक्तानि त्वयाऽपहृत्य पौरुषात् ॥१६९॥

विपाकः कर्मणस्तस्य फलते पश्य दारुणः ।
वानरस्त्वं वने वासो ह्यधुना तेन वर्तसे ॥१७०॥

अशुभस्य शुभस्याऽपि पुरा विहितकर्मणः। भोगः क्रीडति भूतेषु नोल्लङ्घ्यस्त्रिदशैरपि॥१७१॥

मैं हूँ ॥१५८॥ हे वानर ! मैं पूर्ण रूप से निरपराध हूँ मुझको छोड़ दो । मैं तुम्हारे जन्म को जानता हूँ तुम मुझे नहीं जानते ॥१५९॥ इस बात को सुनकर उस चञ्चल वानर ने उसे छोड़ दिया और दूर हटकर उससे कहा ॥१६०॥ **वानर ने कहा—** बतलाओ तुम मेरे पूर्वजन्म को कैसे जानते हो ? तुम पक्षी हो ज्ञानहीन हो मैं तिर्यक् और वन में रहने वाला हूँ ॥१६१॥ **सारस ने कहा—** मैं तुम्हारे पूर्व जन्म को जानता हूँ क्योंकि मैं जाति स्मर (पूर्वजन्म को जानने वाला) हूँ । तुम पूर्व जन्म में विन्ध्य क्षेत्र के राजा थे और उस पर्वत के स्वामी थे ॥१६२॥ मैं तुम्हारे वंश का पूज्यतम और पुरोहित ब्राह्मण था । हे वानरेश्वर इसीलिए मैं तुमको अच्छी तरह से जानता हूँ ॥१६३॥ इस भूमि का पालन करने वाले तुम्हारे द्वारा सारी प्रजा पीड़ित थी । तुम विवेक हीन थे और सदा धन संचय करते थे ॥१६४॥ हे वानर ! प्रजाओं की पीड़ा से उत्पन्न अग्नि की ज्वालाओं से तुम पहले दग्ध हुए उसके बाद तुम कुम्भीपाक नामक भयङ्कर अग्नि में बार-वार जलाये गये और बार-बार उत्पन्न हुए । नारकीय शरीर के साथ तुम्हारे तीस वर्ष बीते ॥१६५-१६६॥ जोर-जोर से चिल्लाते हुए और बार-बार बोलते कुम्भीपाकाग्नि में तुम्हें तीव्र यातना सहनी पड़ी । फिर नरक से निकलकर तुम बचे हुए कर्मों के फलस्वरूप इस वानर का जन्म पाये हो और मुझको मारना चाहते हो ॥१६७-१६८॥ ब्राह्मण के उपवन से तुमने बिना आज्ञा प्राप्त किए पके हुए केले के फल को पौरुष के बल पर चुराकर खाये हो ॥१६९॥ देखों इसका भयङ्कर परिणाम होता है इसीलिए तुम वानर होकर वन में निवास कर रहे हो ॥१७०॥ पुण्य अथवा पाप पूर्वकृत कर्मों का फल जीवों को भोगना पड़ता

इत्थं त्वज्जन्म जानामि यथावत्तु सहेतुकम्। प्राप्तः सारसदेहोऽप्य ज्ञानेनापरिमोहितः ॥१७२॥

प्रेत उवाच

इति श्रुत्वा कथां विप्र वानरोऽप्याह सारसम् ।
सम्यग्वेत्ति भवान्नूनं कथं त्वं पक्षितां गतः ॥१७३॥

सारस उवाच

कथयिष्यामि तत्कर्म येनाऽहं दुर्गतिं गतः । पक्षियोनिं गतो येन तत्सर्वं श्रोतुमर्हसि ॥१७४॥
धान्यं खारिशतं साग्रमुत्सृष्टं हि त्वया पुरा। बहुभ्योब्राह्मणेभ्यश्च नर्मदायां रविग्रहे ॥१७५॥
पौरोहित्यमदाल्लोभाद्वञ्चयित्वा द्विजांस्तथा। किंचिद्दत्त्वा तु तेभ्यश्चगृहीतमखिलंमया ॥१७६॥
विप्रसाधारणद्रव्यग्रहणोत्पन्नपातकात् । पतितः कालसूत्रेऽहं नरके रक्तकर्दमे ॥१७७॥
चलत्क्रिमिसु संपूर्णे दुर्गन्धे पूयफेनिले । आनाभेस्तत्र मग्नोऽस्मि लिहन्पूयमधोमुखः ॥१७८॥
तथोपरिमहागृध्रैर्भक्ष्यमाणस्तु वायसैः। क्रिमिभिस्तुद्यमानस्तु मम देहो निरन्तरम् ॥१७९॥

तस्मिञ्छोणितपङ्केऽहं निरुच्छ्वासोऽभव तदा ।
मुहूर्तोऽपि महाकल्पसमो जातो ममाऽत्र वै ॥१८०॥

यातनाश्चानुभूताश्च समास्त्रिरयुतन्मया । वक्तुं च तत्र शक्नोमि दुःखं वानर नारकम्॥१८१॥
पौरोहित्यं महाघोरं पापदं च स्वभावतः । देवोपजीवनं यत्र ब्राह्मणस्योपजीवनम् ॥१८२॥
राज्ञः प्रतिग्रहो घोरस्तेन दग्धा द्विजातयः। तेषामपि हरेद्द्रव्यं पुरोधास्तेन नारकी ॥१८३॥

है उसको देवता भी भोगे विना नहीं रह सकते हैं ॥१७१॥ इस तरह से मैं तुम्हारे जन्मों को ठीक-ठीक से जानता हूँ यद्यपि मेरा सारस का शरीर है फिर भी मैं अज्ञान से मोहित नहीं हूँ ॥१७२॥ **प्रेत ने कहा—** इस वृत्तान्त को सुनकर हे द्विज ! उस वानर ने भी सारस से कहा निश्चित रूप से तुम अच्छी तरह से जानते हो किन्तु तुम सारस क्यों हो गये ॥१७३॥ **सारस ने कहा—** मैं अपने उस कर्म को बतलाता हूँ जिसके कारण मेरी दुर्गति हुयी । जिसके कारण मैं पक्षी हुआ उस कारण को तुम सुनो ॥१७४॥ तुमने पहले सौ खारी अन्न दान दिया । यह काम तुमने सूर्यग्रहण के समय नर्मदा में किया ॥१७५॥ पुरोहित होने के मद में सभी ब्राह्मणों को वञ्चित करके, उन सबों को थोड़ा सा देकर स्वयं पूरा अन्न मैंने ले लिया॥१७६॥ विप्रों के सामान्य द्रव्य को ले लेने के कारण उससे उत्पन्न पाप के कारण मैं खून के कीचड़ से भरे कालसूत्र नामक नरक में डाल दिया गया ॥१७७॥ उसमें कीड़े चल रहे थे वह दुर्गन्धि पूर्ण था और पीव ही उसका फेन था । मैं उसमें नाभि पर्यन्त डुबा हुआ था । और नीचे मुँह करके पीब चाट रहा था ॥१७८॥ ऊपर से गृध्र और कौए मुझे नोच रहे थे । मेरे शरीर में सदैव कीड़े काटते रहते थे ॥१७९॥ उस शोणित के कीचड़ में मैं बेहोश हो गया । यहाँ पर मेरे एक मुहूर्त भी महाकल्प के समान बीतते थे॥१८०॥ यहाँ पर मैंने तीस हजार वर्ष यातना भोगा । हे वानर ! उस नारकीय यातना का वर्णन मैं नहीं कर सकता हूँ ॥१८१॥ पुरोहिती स्वभावतः अत्यन्त भयङ्कर पाप प्रदान करने वाला होता है । उस कार्य में देवांश तथा ब्राह्मणाश से जीवन बिताना पड़ता है ॥१८२॥ राजा का भयङ्कर दान लेना पड़ता है उसके कारण ब्राह्मण दग्ध हो जाते हैं । पुरोहित उन सबों का भी द्रव्य लेता है, उसके कारण वह नारकी होता है ॥१८३॥ राजा जो पाप करता है वह पूर्व शरीर से धारण किया जाता है । इसी कारण उसको

राजा यत्कुरुते पापं पुरा देहेन धीयते । तस्य तेन पुरोधाश्च गीयते तत्त्वदर्शिभिः ॥१८४॥
दैवात्कथमपि प्राप्त उत्तारो नरकाम्बुधेः । मयाऽदौ देवयोगेन शकुनित्वमुपस्थितम् ॥१८५॥
अपहत्य पुरा कांस्यभाजनं भगिनीगृहात् । आक्षिकाय मया दत्तं तेन मे सारसी गतिः॥१८६॥

इयं च ब्राह्मणी पूर्वं कांस्यचोरी सुदारुणा ।
तेनेयं सारसी जाता मम भार्या सधर्मिणी ॥१८७॥
इत्थं वानरं ते सर्वं कथितं कर्मणः फलम् ।
वृत्तं च वर्तमानं च भविष्यं शृणु साम्प्रतम् ॥१८८॥
अहं हंसो भविष्यामि त्वं च हंसो भविष्यसि ।
हंसीयमपि मद्भार्या सारसी च भविष्यति ॥१८९॥
देशे च कामरूपे वै स्थास्यो वै यथा सुखम् ।
योगिनीं भाविकल्याणीं यास्यामस्तदनन्तरम् ॥१९०॥

ततश्च मानुषं जन्म प्राप्स्यामो दुर्लभं पुनः । श्रेयस्तद्विपरीतं च प्राणिभिर्यत्र साध्यते ॥१९१॥
एवं सर्वांच्छिवोजन्तून्मोहयित्वा स्वमायया । सुखैर्भुनक्ति दुःखैश्च नास्मानेव तु केवलम् ॥१९२॥
अयं लोके प्रवृत्तश्य मार्गो विविधनिर्मितः । धर्माधर्ममयोऽत्यर्थे सुखदुःखफलात्मकः ॥१९३॥

सेवितः प्राणिभिः सर्वैः सर्वदा वा पुनःपुनः ।
देवासुरनरव्याघ्रक्रिमिकीटजलेचरैः ॥१९४॥
नाऽतिक्रान्तो हि केनाऽपि पन्थाऽयं (?) दुःखकण्टकः ।
विरक्तायोगिनो ध्यायं विना वेदान्तपारगान् ॥१९५॥

तत्त्वादशियों ने पुरोधा कहा है ॥१८४॥ भाग्यवशात् मैं किसी तरह नरक से बाहर निकला उसके बाद सर्वप्रथम मुझे पक्षी होना पड़ा ॥१८५॥ प्राचीन काल में बहन के घर से कांसे का पात्र चुराकर मैंने अक्षिक (जुआड़ी) को दे दिया इसीलिए मैं सारस हुआ ॥१८६॥ यह मेरी पत्नी पहले भयङ्कर कांस्य चुराने वाली थी उसी कारण यह मेरी पत्नी सारसी हुयी ॥१८७॥ हे वानर ! इस तरह से मैंने तुम्हारे सभी कर्मों को बतलाया । ये सभी भूत कालिक और वर्तमान कालिक कर्म हैं अब तुम भविष्य की बात सुनो ॥१८८॥ मैं और तुम दोनों हंस होंगे और यह हंसी होगी ॥१८९॥ यह सभी कामरूप देश में सुख पूर्वक निवास करेंगे । हमलोग कल्याण कारिणी योगिनी के पास जायेंगे ॥१९०॥ उसके बाद हमलोग दुर्लभ मनुष्य शरीर को प्राप्त करेंगे । उस जन्म में मनुष्य कल्याण तथा अकल्याण दोनों को करता है ॥१९१॥ इस तरह शिव अपनी माया से सभी जीवों को मोहित करके सुख तथा दुःख पूर्वक सबों का भोग कराते हैं केवल हमलोगों को ही नहीं ॥१९२॥ अनेक निर्मित मार्गों को यह लोक प्रवृत्त है यह धर्माधर्मात्मक तथा अत्यन्त सुख दुःखात्मक है ॥१९३॥ सभी जीव इसका सदा सेवन करते हैं या बार-बार सेवन करते हैं । देवता, असुर, नर, व्याघ्र, कृमि, कीट, जलचर इनमें से कोई दुःख रूपी कण्टक से भरे संसार का अतिक्रमण नहीं कर सकते हैं । विरक्त, योगी, वेदान्त पारंगत कोई भी जो ध्यान किए बिना काई भी अत्रिक्रमण नही कर सकते हैं ॥१९४-१९५॥ छोटे या बड़े पुण्य अथवा पाप देश, काल को जानकर परमात्मा कर्मों का फल प्रदान

अणोर्वापि गुरोर्वापिपुण्यापुण्यस्य कर्मणः। ददातीह फलं ज्ञात्वा देशं कालं महेश्वरः ॥१९६॥
इत्थं विधिविधानज्ञां मायां ज्ञात्वेश्वरस्य च। न शोचन्ति न तप्यन्ति न व्यथन्ति महाधियः॥१९७॥

नान्यथा शक्यते कर्तुं विपाकः पूर्वकर्मणाम् ।
उपायैः प्रज्ञया वाऽपि शाखामृगसुरैरपि ॥१९८॥
पुरा त्वं भूपतिर्जातः पश्चाज्जातोऽसि नारकी ।
अधुना वानरो भूयो जन्म प्राप्स्यसि तादृशम् ॥१९९॥
इति मत्वा विशोकस्त्वं शाखामृगयथासुखम् ।
प्रतीक्षां कुरु कालस्य रममाणोऽत्र कानने ॥२००॥

अहमप्येवमीशानमायाबद्धो वनेवने। क्षपयिष्यामि वै जन्म धैर्यमास्थाय सारसम्॥२०१॥

वानर उवाच

मया त्वं पूजितः पूर्वं नौमि त्वामधुनाऽप्यहम् ।
जातिस्मरोऽसि जानामि सर्वं मत्पौर्वदैहिकम् ॥२०२॥

तिष्ठ सारस सारस्या शिवमस्तु सदा तव। त्वद्वाक्याद्धतमोहोऽहं विचरिष्यामि सर्वदा ॥२०३॥

प्रेत उवाच

इमं रम्यं विचित्रं च पावनं परमं द्विज। पक्षिवानरसम्वादं श्रुतं यावन्नदीतटे॥२०४॥

तावन्ममापि बोधोऽभूत्तेन शोकः क्षयं गतः ।
इदानीं जाह्नवीतोयमाहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥२०५॥
दृष्ट्वाऽत्र ब्राह्मणश्रेष्ठ त्वां याचे जाह्नवीजलम् ।
प्रेतत्वात्तर्तुकामोऽहं तीव्रतृष्णाप्रपीडितः ॥२०६॥

अस्मिन्नेवाचले दृष्टं मयाश्चर्यं च वै द्विज। गङ्गातोयस्य तावद्धि पातुमिच्छामि तज्जलम्॥२०७॥

करते हैं ॥१९६॥ इस तरह से विधि का विधान करने वाली ईश्वर की माया को जानकर बुद्धिमान पुरुष न शोचते हैं, न संतप्त होते हैं और न दुखित होते हैं ॥१९७॥ पूर्व कर्मों के परिणाम को नहीं मिटाया जा सकता है ॥१९८॥ पहले तुम राजा हुए बाक में नारकी हो गये इस समय वानर हो और भविष्य में तुम हंस आदि होओगे ॥१९९॥ इस बात को जानकर हे वानर ! शोक रहित होकर तुम सुख पूर्वक इस वन में रमण करते हुए समय की प्रतीक्षा करो ॥२००॥ मैं भी परमात्मा की माया से बँधा हुआ धैर्य धारण करके सारस के जन्म को बिताऊँगा ॥२०१॥ **वानर ने कहा—** मैंने यह पहले आपकी पूजा की थी इस समय में आपको नमस्कार करता हूँ । तुम जाति स्मर हो यह मैं जानता हूँ तथा तुम पूर्व जन्म के सभी कर्मों को जानते हो ॥२०२॥ हे सारस ! तुम सारसी के साथ रहो तुम्हारा सदा कल्याण हो तुम्हारे कहने के अनुसार मोह रहित होकर मैं भी सदा विचरण करूँगा ॥२०३॥ **प्रेत ने कहा—** इस मनोहर तथा विचित्र तथा परम पवित्र पक्षी और वानर के संवाद को मैंने नदी के तट पर सुना ॥२०४॥ उसी समय से मुझे भी ज्ञान हो गया तथा मेरा शोक नष्ट हो गया । इस समय गङ्गा जल के अद्भुत माहात्म्य को॥२०५॥ जानकर हे ब्राह्मण वर्य मैं आपसे तीव्र प्यास से पीड़ित प्रेतत्व से मुक्ति प्राप्त करने के लिए

पारियातोद्भवः कोऽपि ब्राह्मणो ग्रामयाजकः ।
अयाज्ययाजनाद्विन्ध्ये संभूतो ब्रह्मराक्षसः ॥२०८॥
अस्मात्सङ्गस्य लोभेन स्थितोऽसौ हायनाष्टकम् ।
तस्याऽस्थीनि सुपुत्रेण संचितानि द्विजोत्तम ॥२०९॥
क्षिप्तान्यानीय गङ्गायां तीर्थे कनखलेऽमले ।
तत्क्षणादेव मुक्तोऽसौ राक्षसत्वात्सुदारुणात् ॥२१०॥
इतिगङ्गाजलस्नानमहिमामहद्भुतम् । साक्षाद्दृष्टो मया तेन गाङ्गेयं प्रार्थितं जलम्॥२११॥
पुरस्ताद्यत्कृतस्तीर्थे मया भूरि परिग्रहः । न कृतस्तु प्रतीकारस्तस्य जाप्यादिलक्षणः॥२१२॥
तेन मे प्रेतरूपस्य दुर्लभोदकभोजनम् । सहस्रं यत्र वर्षाणामतीतं विन्ध्यपर्वते ॥२१३॥
इति ते कथितं सर्वं हित्वा लज्जां गरीयसीम् ।
इदानीं धार्मिकश्रेष्ठ जलदानेन सत्वरम् ॥२१४॥
संतर्पय ममप्राणान्कण्ठमात्रावलम्बितान् । दुर्लभं प्रेतभावेऽपि जीवितंप्राणिनामिह ॥२१५॥
शरीरं रक्षणीयं हि सर्वथा सर्वदा नरैः । नहीच्छन्ति तनुत्यागमपि कुष्ठादिरोगिणः॥२१६॥

देवद्युतिरुवाच

इतितद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गतः। पथिकश्चिन्तयामास कृपां प्रेते समुद्वहन्॥२१७॥
पापपुण्यफलंलोकेप्रत्यक्षं दृश्यते खलु । देवदानवमानुष्यं तिर्यक्त्वं क्रिमिकीटकम्॥२१८॥
नानायोनिषु जन्मानि नानाव्याधिप्रपीडनम् । मरणं बालवृद्धानामन्धत्वंकुब्जता तथा ॥२१९॥

गङ्गाजल माँग रहा हूँ ॥२०६॥ इसी पर्वत पर गङ्गाजल के महात्म्य को मैंने देखा है, इसीलिए मैं उस जल को पीना चाहता हूँ ॥२०७॥ पारिपात्र प्रदेश में एक ग्राम याजक ब्राह्मण था । अयाज्य याजन कराने के कारण वह इस पर्वत पर ब्रह्म राक्षस हुआ ॥२०८॥ उसके साथ सङ्गति के लोभ से आठ वर्षों तक वह पड़ा रहा हे द्विजोत्तम ! उसकी हड्डियों को उसके पुत्र ने संचित किया ॥२०९॥ उन सबों को लाकर उसने पवित्र कनखल तीर्थ में गङ्गा में डाला । उसी समय वह भयङ्कर राक्षसत्व से मुक्त हो गया ॥२१०॥ इस तरह से गङ्गा जल में स्नान करने के अत्यन्त अद्भुत महत्त्व को मैंने साक्षात् देखा है, इसीलिए मैंने गङ्गाजल के लिए प्रार्थना की है ॥२११॥ पहले मैंने जो तीर्थ में वहुत अधिक दान दिया है और उसका प्रतिकार जो मैंने जप आदि के द्वारा नहीं किया है ॥२१२॥ इसलिए प्रेतरूप वाले मुझको अन्न और जल मिलना दुर्लभ है । मेरे हजारों वर्ष विन्ध्य पर्वत पर बीत गये ॥२१३॥ इससे मैंने अत्यन्त भारी लज्जा का परवाह न करके सवकुछ कह दिया है । धार्मिक श्रेष्ठ ! इस समय शीघ्र जलदान के द्वारा ॥२१४॥ मेरे कण्ट में टिके हुए प्राणों को तृप्त करें प्रेत रूप में भी प्राणियों का जीवन दुर्लभ होता है ॥२१५॥ मनुष्यों को हर प्रकार से शरीर की रक्षा करनी चाहिए कुष्ठ आदि रोगों के रोगी भी शरीर को त्यागना नहीं चाहते हैं॥२१६॥ **देवद्युति ने कहा—** इस तरह से उस प्रेत की बातें सुनकर अत्यन्त आश्चर्यित पथिक उस पर कृपा करते हुए सोचा ॥२१७॥ पाप और पुण्य का फल संसार में साक्षात् दिखता है, देवता, दानव, मनुष्य, तिर्यक्, क्रिमि, कीट ॥२१८॥ आदि नाना योनियों में जन्म लेकर अनेक प्रकार से पीड़ा प्राप्त करना, मृत्यु, वालकों तथा वृद्धों का अन्धा होना और कुवड़ा होना ॥२१९॥ ऐश्वर्य, दरिद्रता, पाण्डित्य

ऐश्वर्य च दरिद्रत्वं पाण्डित्यं मूर्खता तथा । एताश्चरचना लोके भवन्ति कथमन्यथा ॥२२०॥
ते धन्याः कर्मभूमौ ये न्यायमार्गार्जितं धनम् ।
सत्पात्रेभ्यः प्रयच्छन्ति कुर्वन्ति चात्मनो हितम् ॥२२१॥
भूमिरत्नहिरण्यानि गावो धान्यं गृहं गजाः। रथाश्ववसनग्रामाः सिद्धमन्नं फलं जलम् ॥२२२॥
कन्यादिव्यौषधान्नानि च्छत्रोपानद्वरासनम् । शय्याताम्बूलमाल्यानितालवृन्तंवरासनम् ॥२२३॥
सर्वमेतत्प्रदातव्यं लोकत्रयजिगीषुभिः। दत्तं हि प्राप्यते स्वर्गे दत्तमेव हि भुज्यते ॥२२४॥
छत्रचामरयानानि वराश्ववरवारणाः । हर्म्याणिवरशय्याश्च गोमहिष्यो वरास्त्रियः ॥२२५॥
रत्नभूषणमुक्ताश्च पुत्रादास्यो महाकुलम्। आयुरारोग्यमैश्वर्यं कलाविद्यासु कौशलम् ॥२२६॥
दानस्यैव फलं सर्वं प्राप्यते भुवि मानवैः । तस्माद्देयं प्रयत्नेन नाऽदत्तमुपतिष्ठति ॥२२७॥
धर्मिष्ठेन तु पान्थेन गाथेयं सममायत । इति श्रुत्वा पुनः प्रेतः प्रोवाच ह्यार्त्तमानसः ॥२२८॥
मन्ये धर्मज्ञकल्पोऽसि पान्थ ! त्वं नाऽत्रसंशयः ।
देहि मे जीवनं वारि चातकाय घनो यथा ॥२२९॥
एतस्मिन्प्राणदाने हि मा विलम्बं कृथा बहुः। ततः प्रत्याह पान्थस्तु वचनं न्यायगर्भितम् ॥२३०॥
भृगुक्षेत्रे शृणु प्रेत ! पितरौ मम तिष्ठतः । तदर्थं तीर्थराजस्य मया वारिसमाहृतम् ॥२३१॥
तत्सितासितपानीयं मध्ये च प्रार्थितं त्वया । न जाने धर्मसंदेहः किमत्र मम युज्यते ॥२३२॥
बलावलं विचारार्थं करिष्ये प्रवलं विधिम्। वेदेभ्यो धर्मशास्त्रेभ्यो नाहं माननेकेवलम् ॥२३३॥
हयमेधादियज्ञेभ्यः सर्वेभ्योऽप्यधिकं मतम् । ऋषिभिर्देवताभिश्चप्राणिनां प्राणरक्षणम् ॥२३४॥

तथा मूर्खत्तम इन सभी प्रकारों की सृष्टि अन्यथा संसार में कैंसे हो सकती थी ॥२२०॥ संसार में वे लोग धन्य हैं जिन लोगों ने न्याय मार्ग से धनार्जन किया है । उसको सत्पात्रों को देते हैं और उससे आत्मकल्याण करते हैं ॥२२१॥ भूमि, रत्न, सुवर्ण, गौएँ, अन्न, गृह, हाथी, रथ, घोड़े, अनेक प्रकार के वस्त्र समूह, पकाया हुआ अन्न और जल ॥२२२॥ कन्या, दिव्य औषधि, अन्न, छाते, उपानह, श्रेष्ठ आसन, शय्या, ताम्बूल, माला, पङ्खा, श्रेष्ठ आसन इन सारी वस्तुओं को त्रैलोक्य को जीत लेने की इच्छा वालों को दान देना चाहिये । स्वर्ग में दी गयी वस्तु ही प्राप्त होती है और दी गयी वस्तु का भोग मिलता है ॥२२३-२२४॥ छत्र, चामर, सवारी, श्रेष्ठ घोड़े और श्रेष्ठ अश्व, महल, अच्छी शय्या, गौ, भैंस श्रेष्ठ स्त्रियाँ ॥२२५॥ रत्न, भूषण, मोती, पुत्र दासी, श्रेष्ठ वंश, आयु, आरोग्य, कला, विद्याओं में कुलशता ॥२२६॥ संसार में सभी वस्तुएँ दान के ही फल रूप से प्राप्त होती हैं अतएव प्रयत्न पूर्वक ही दान करना चाहिए अदत्त वस्तु नहीं प्राप्त होती हैं ॥२२७॥ धार्मिक पथिक ने इस वात को कहा यह सुनकर आर्त वने हुए प्रेत ने फिर कहा ॥२२८॥ हे पथिक ! तुम मुझे धर्मिष्ठ लगते हो इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । तुम मुझे जीवन रूप जल उसी तरह दो जैसे चकोर को मेघ जल प्रदान करता है ॥२२९॥ इस प्राण दान को करने में व्यर्थ ही विलम्व न करो । उसके वाद पथिक न्यायोचित वचन कहा ॥२३०॥ हे प्रेत ! सुनो, मेरे माता-पिता भृगु क्षेत्र में रहते हैं, उन लोगों के ही लिए मैं तीर्थ का जल लाया हूँ ॥२३१॥ उस सङ्गम के जल के लिए तुमने बीच में प्रार्थना की इससे न जाने कितना पुण्य समूह मुझे प्राप्त होगा । यहाँ क्या

इति दत्त्वा वरं वारि कृत्वा प्रेतस्य रक्षणम् ।
पित्रर्थं पुनरादाय जलं नेष्यामि पावनम् ॥२३५॥
एष मे प्रबलो भाति शुद्धधर्मप्रदो विधिः। परोपकरणादन्यत्सर्वमल्पं स्मृतं बुधैः ॥२३६॥
परोपकारिभिर्दत्ता अपि प्राणा नृभिर्मुदा ।
अद्भिः परोपकारः स्यात्किन लभ्यं मया पुनः ॥२३७॥
दधीचिना पुरा गीतः श्लोकोऽयं श्रूयते भुवि ।
सर्वधर्ममयः सारः सर्वधर्मज्ञसम्मतः ॥२३८॥
परोपकारः कर्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि। परोपकारजं पुण्यं तुल्यं क्रतुशतैरपि ॥२३९॥
इत्युक्त्वा प्रददौ तोयं गङ्गायामुनसंभवम्। प्रेताय प्राणरक्षार्थं स धर्मिष्ठो वरो द्विजः ॥२४०॥
प्रेतः प्रीतो जलं पीत्वा ह्यभिषिच्य शिरस्तथा ।
प्रजहौ प्रेतदेहं तं दिव्यदेहोऽभवत्क्षणात् ॥२४१॥
तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा निजगाद स केरलः। अहो विमुक्तः प्रेतत्वाद्वेणीपानीयबिन्दुभिः ॥२४२॥
ब्रह्माऽपि नैव शक्नोति मन्ये वक्तुमपां गुणम् ।
गङ्गातोयं महादेवो धत्ते के कथमन्यथा ॥२४३॥
अचिन्त्यशक्तिगङ्गाम्भस्तिलमात्रं तु यः पिबेत् ।
देवो भवेत्स सिद्धो वा गर्भेनैव च संविशेत् ॥२४४॥
न गङ्गासदृशी सिद्धिर्न गङ्गा सदृशी मतिः। न गङ्गासदृशी मुक्तिर्गङ्गासर्वाधिका यतः॥२४५॥

करना चाहिए इन सारी बातों का वेद तथा शास्त्रो से केवल तर्क से नहीं विचार कर मैं प्रबल विधि को करता हूँ ॥२३२-२३३॥ अश्वमेध के फल से भी अधिक यह कार्य अधिक फलद हैं कि ऋषियों और देवताओं से प्राणियों के प्राण की रक्षा करनी चाहिए ॥२३४॥ इस तरह से प्रेत को इस श्रेष्ठ जल को देकर उसके प्राणों की रक्षा करके फिर पिता के लिए पवित्र जल लाकर ले जाऊँगा ॥२३५॥ यह मेरे लिए प्रबल धर्म है और शुद्ध धर्म देने वाला है परोपकार करने से भिन्न सारी अन्य वस्तुएँ अल्प हैं ॥२३६॥ परोपकारी पुरुषों ने अपना प्राण दान भी प्रसन्नता पूर्वक दे दिया। यदि जल से ही परोपकार हो जाता है तो मैं उसे क्यों न करूँ ॥२३७॥ प्राचीन काल में महर्षि दधीचि के द्वारा कहा हुआ यह श्लोक संसार में सुना जाता है जो सभी धर्मों का सार अंश है और सभी धर्मज्ञों के अनुकूल हैं ॥२३८॥ परोपकाकर को प्राण तथा धन देकर भी करना चाहिए परोपकार जन्य पुण्य सौ यज्ञों के पुण्य के समान होता है ॥२३९॥ यह कहकर उन्होंने गङ्गा तथा युमना के सङ्गम के जल से उस प्रेत को धार्मिक श्रेष्ठ ब्राह्मण ने प्रेत के प्राणों की रक्षा करने के लिए दे दिया ॥२४०॥ प्रसन्न हुए प्रेत ने जल पीकर तथा अपने शिर को सींचकर उस प्रेत शरीर को त्याग दिया और राक्षस में ही दिव्य शरीरवाला हो गया ॥२४१॥ उस समय उस आश्चर्य को देखकर उस केरल निवासी ने कहा सौभाग्य वश मैं त्रिवेणी के जल के विन्दुओं द्वारा प्रेतत्व से मुक्त हो गया ॥२४२॥ इन जलों के गुण को ब्रह्माजी भी नहीं बतला सकते हैं। अन्यथा महादेव अपने शिर पर गङ्गा के जल को कैसे धारण करते हैं ॥२४३॥ अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न गङ्गाजी के जल को जो तिल परिमाणक भी पीता है वह या तो देवता हो जाता है अथवा गन्धर्व हो जाता है। वह पुनः

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन महाभक्तया च धार्मिक !। करस्थं तस्य कैवल्यंयो गङ्गां सेवतेसदा ॥२४६॥
आयुष्मान्भव पान्थ त्वं मा धर्मविरतो भव। त्वयाऽहं तारितः सद्योगङ्गाम्बुकणदानतः॥२४७॥

इत्युक्तवा प्रस्थितो नाकं पिशाचस्तु स केरलः ।
आशीर्भिरभिनन्द्याऽथ पान्थं बन्धुवरं नरम् ॥२४८॥
प्रेतं विमोक्ष्य पान्थोऽपि पुनरादाय तज्जलम् ।
गतस्तेनैवमार्गेणस्मरंस्तीर्थोदकौतुकम् ॥२४९॥

वसिष्ठ उवाच

इत्थं प्रयागमाहात्म्यंश्रुत्वा नत्वा च तं मुनिम् ।
प्रयागं सहसा माघे पिशाचः सत्वरंगतः ॥२५०॥
स्नात्वा सितासिते सोऽपि माघमासे द्विजोत्तम ! ।
पिशाचःक्षीणपापस्तु पैशाचीं विजहौ तनुम् ॥२५१॥

दिव्यदेहस्ततो भूत्वा द्राविडो भूपतिस्तदा। स्तुवन्नारायणं देवं भक्तया दोषविवर्जितः॥२५२॥
गन्धर्वैः स्तूयमानस्तु नाकनारीसुपूजितः। उत्तमेन विमानेन पुरन्दरपुरं ययौ॥२५३॥
इति ते कथितं विप्र पूर्ववृत्तं सकौतुकम्। इतिहासं द्विजश्रेष्ठ सद्यः पातकनाशनम्॥२५४॥
ज्ञानदं मोक्षदं विप्र श्रुतं दुर्गतिनाशनम् । इति ते कथितं सर्वं पुरावृत्तं सकौतुकम् ॥२५५॥
इतिहासं द्विजश्रेष्ठ श्रुतं दुर्गतिनाशनम्। अधुना तु मया सार्धमिमाः कन्याः सुतश्चये॥२५६॥

गर्भ में नहीं आता है ॥२४४॥ गङ्गा के समान न तो कोई सिद्धि होती है और न वैसा कोई ज्ञान होता है । गङ्गा के समान मुक्ति भी नहीं है, गङ्गा इन सबों से श्रेष्ठ हैं ॥२४५॥ अतएव हे धार्मिक ! महाभक्ति पूर्वक हर प्रकार के प्रयत्नों से गङ्गा का सेवन करे । ऐसा करने वाले के हाथ ही कैवल्य मुक्ति होती है॥२४६॥ हे पथिक ! तुम आयुष्मान होओ कभी धर्म न छोड़ो मेरा गङ्गा जल के कण से शीघ्र ही उद्धार कर दिया ॥२४७॥ यह कहकर केरल वासी स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया, पहले उसने अपने आशीर्वचनों से श्रेष्ठ बन्धु मनुष्य पथिक का अभिनन्दित किया ॥२४८॥ प्रेत को मुक्त करके पथिक भी पुनः उस जल को लेकर फिर उसी मार्ग से तीर्थ के जल के अद्भुत कार्य का स्मरण करता हुआ चला गया ॥२४९॥ **महर्षि वसिष्ठ ने कहा**— इस तरह से प्रयाग के माहात्म्य को सुनकर तथा उन मुनि को नमस्कार करके वह पिशाच शीघ्रता से प्रयाग गया ॥२५०॥ हे द्विजोत्तम ! वह भी माघ मास में सङ्गम स्थल के सितासित जलमें स्नान करके पापों के नष्ट हो जाने के कारण पिशाच शरीर को त्याग दिया ॥२५१॥ उसके पश्चात् वह दविड देश का राजा दिव्य शरीर धारण करके तथा दोष रहित वह भक्ति पूर्वक भगवान् नारायण की स्तुति करते हुए ॥२५२॥ तथा गन्धर्वों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए तथा नारियों द्वारा स्तुति किए जात हुए उत्तम विमान से इन्द्र लोक में चला गया ॥२५३॥ हे विप्र ! इस प्रकार से कौतूहल पूर्ण पूर्ववृत्तमय इतिहास का जो शीघ्र ही पापों को विनष्ट करने वाला है उसका वर्णन किया ॥२५४॥ हे विप्र ! इसको दुर्गति विनाशक ज्ञान और मोक्ष को प्रदान करने वाला कहा गया है । इस तरह से मैंनें सम्पूर्ण कौतूहल से इतिहास को कहा ॥२५५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उस इतिहास को दुर्गति विनाशक बतलाया गया है । इस समय ये सारी कन्यायें और तुम्हारे पुत्र ॥२५६॥ और तुम भी मेरे साथ प्रयाग चलो, क्योंकि सबके सब सद्गति

त्वं चायाहि प्रयागं वै सर्वे सद्गतिमीप्सवः। माघस्नानं प्रकुर्मोऽत्र देवानामपिदुर्लभम्॥२५७॥
तत्र मोक्ष्यन्ति पैशाच्यं सद्यः पापसमुद्भवम् ॥२५८॥

महेश उवाच

एवं वसिष्ठवक्त्राब्जकथामधुरसं मुदा। पीत्वा प्रमुदिताः सर्वे निस्तीर्णा नरकार्णवात्॥२५९॥
प्रस्थितास्तेन सार्धं ते सत्वरं व्योम्निहर्षिताः। दिलीप शृणु तत्सर्वं तत्तीर्थंतुसितासितम्॥२६०॥
सत्वरं व्योममार्गेण काममासाद्यदुःसहाः। समागम्य तदा तत्र संहृष्टहृदयाश्च ते॥२६१॥
अथोचे लोमशस्तत्र सदयं गगनाङ्गणे। पश्यन्तु श्रद्धया सर्वे तीर्थराजमिमं भुवि॥२६२॥
विना ज्ञानं प्रयागेऽस्मिन्मुच्यन्ते सर्वजन्तवः। इष्ट्वात्रैव महायज्ञं स्त्रष्टुकामः प्रजापतिः॥२६३॥
अवाप सृष्टिसामर्थ्यं ततः सृष्टिं चकार सः।
अत्र नारायणः सस्नौ पत्नीकामः सितासिते॥२६४॥
अतः स लब्धवाँल्लक्ष्मीं भार्याममृतमन्थने।
उषित्वा चाऽत्र षण्मासं स्नात्वा वेण्यां यथेच्छया॥२६५॥
त्रिपुरं घातयामास त्रिबाणेन त्रिशूलभृत्। इमानि त्रीणि कुण्डानि दीप्तान्यजस्त्रवह्निभिः॥२६६॥
एष तृप्तिं गतो वह्निर्यः केनापि च पुष्यति।
अत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत्तृप्ता मुमुदिरे भृशम्॥२६७॥
आविर्भूतो महेशोऽत्र नीलकण्ठः कपालभृत्।
अनिशं स सुरैः सेव्यआयातोऽञ्जलयेबटुः॥२६८॥
मृकण्डसूनुना कल्पे प्रविश्य यन्मुखे स्थितम्।
लोके ज्वालाकुले सोऽयं योगरूपी जनार्दनः॥२६९॥

प्राप्त करना चाहते हैं। वहाँ पर देवताओं के लिए भी दुर्लभ हम सब माघ स्नान करेगे॥२५७॥ वहाँ पर ये सभी पिशाचत्व जो पाप के कारण उद्भूत है, उसका त्याग कर देंगे॥२५८॥ **शिवजी ने कहा**— इस तरह से महर्षि वसिष्ठ के मुख कमल से कथा रूपी मधु के रस को प्रसन्नता पूर्वक पीकर प्रसन्न हुए सबके सब नरक सागर को पार कर गये॥२५९॥ महर्षि लोमश के साथ वे सब आकाश मार्ग से प्रसन्नता पूर्वक प्रस्थान किए। हे दिलीप सुनो! गङ्गा यमुना सङ्गम के सितासित तीर्थ को॥२६०॥ आकाश मर्ग से शीघ्र ही प्राप्त करके वहाँ आकर सभी प्रसन्न हो गये॥२६१॥ उसके पश्चात् आकाश में ही विद्यमान महर्षि लोमश ने कहा तुम लोग पृथिवी पर विद्यमान तीर्थ राज प्रयाग का दर्शन करो॥२६२॥ इस प्रयाग में ज्ञान प्राप्त किए बिना भी सभी जीव मुक्त हो जाते हैं। सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्माजी यहाँ पर यज्ञ करके॥२६३॥ सामर्थ्य प्राप्त किए और उसके पश्चात् उन्होंने सृष्टि की। यहाँ के सितासित जल में ही भगवान् नारायण पत्नी प्राप्त करने की इच्छा से स्नान किए थे॥२६४॥ इसीलिए उन्होंने लक्ष्मी को प्राप्त किया यहाँ पर छह मास रहकर त्रिवेणी स्नान करके॥२६५॥ शिवजी ने तीन बाणों से त्रिपुर को मारा। ये तीन कुण्ड यहाँ पर सदैव अग्नि से प्रदीप्त रहते हैं॥२६६॥ यह तृप्त हुआ बह्नि है जो किसी के द्वारा पोषित होता है। यहाँ पर तैंतिस देवता तृप्त होकर अत्यन्त प्रसन्न हुए॥२६७॥ यहाँ पर कपालधारी नीलकण्ठ प्रकट हुए।

सेयं भागीरथी शम्भोः सर्वदुःखापहारिणी। सिद्ध्यर्थं सेव्यते सिद्धैर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥२७०॥
अनिशं भूतिदा या च स्वर्गमार्गे ह्यनुत्तमा। स्वर्गहेतुश्च या देवी सेयं भागीरथी नदी॥२७१॥
यदम्भःस्नानमात्रेण विकर्तनसलोकताम्। लभनते प्राणिनः सर्वे नदी सा यमुनास्वयम्॥२७२॥
अनयोः पुण्यनद्योश्च सङ्गमः सुखदो मुने। अत्र स्नाता न पच्यन्ते नरके ज्ञानभाविताः ॥२७३॥
विना ज्ञानं प्रयागेऽस्मिन्मुच्यन्ते सर्वजन्तवः। अन्यच्च श्रूयतां विप्र ! इतिहासं पुरातनम् ॥२७४॥
शृण्वतां सर्वपापघ्नं सर्वरोगविनाशनम्। ऋचीकेन पुरा शप्तो गन्धर्वो वायसोऽभवत्॥२७५॥

शापं मुमोच सोऽत्रैव स्नातः सद्यः सितासिते ।
वासवस्य तु शापेन स्वर्गाद्भ्रष्टऽसरोर्वशी ॥२७६॥
स्वर्गकामा च सा सस्नौ लेभे स्वर्गंततोऽचिरात् ।
पुत्रं च शङ्करं लेभे ययातिर्नाहुषोमुने ॥२७७॥
पुत्रकामः प्रयागे हि स्नात्वा पुण्ये सितासिते ।
धनकामः पुरा शक्रः सुस्नातोऽत्र द्विजोत्तम ! ॥२७८॥

धनदस्य निधीन्सर्वाञ्जहार स च मायया। कश्यपोऽत्र तपस्तेपे शिवाराधनतत्परः ॥२७९॥

अस्मिंस्तीर्थे भरद्वाजो योगसिद्धिमवाप्तवान् ।
अस्मिंस्तीर्थे पुरा विप्र ! योगेशाःशान्तमानसाः ॥२८०॥

योगस्य फलभूमिं तु लेभिरे सनकादायः। अस्मिन्माघे तु ये स्नाता गङ्गायामुनसङ्गमे ॥२८१॥

सर्वदा देवताओं से सेवनीय ये अञ्जलि के लिए आये ॥२६८॥ मृकण्डु ऋषि के पुत्र मार्कण्डेय उनके मुख में प्रवेश करके एक कल्प तक निवास किए। ज्वाला से व्याकुल संसार में ये भगवान् जनार्दन हैं ॥२६९॥ वही भागीरथी हैं जिन्होंने शिवजी के समस्त दुःखों को दूर कर दिया। सिद्ध पुरुष भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली गङ्गा का सेवन सिद्धि प्राप्त करने के लिए करते हैं ॥२७०॥ यह सदैव ऐश्वर्य प्रदान करने वाली तथा स्वर्ग के मार्ग में सर्वोत्तम स्वर्ग प्राप्ति के हेतु हैं वही ये भागीरथी हैं ॥२७१॥ जिसके जल में स्नान करने मात्र से भूलोक सूर्य लोक में जाते हैं, यही यह यमुना नदी हैं ॥२७२॥ हे मुने ! इन दोनों नदियों का सङ्गम सुख प्रदान करने वाला है, यहाँ पर स्नान करने वाले ज्ञान से युक्त होने के कारण नरक में नहीं जाते हैं ॥२७३॥ इस प्रयाग में ज्ञान प्राप्त किए बिना ही सभी जीव मुक्त हो जाते हैं। हे विप्र! मैं आपको दूसरा प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ ॥२७४॥ यह सुनने वालों के समस्त पापों का विनाश करने वाला है। प्राचीन काल में ऋचीक ऋषि के शाप से गन्धर्व कौआ हो गया था ॥२७५॥ वह भी यही सङ्गम के सितासित जल में स्नान करके सद्यःमुक्त हो गया। इन्द्र के शाप से ऊर्वशी नाम की अप्सरा स्वर्ग से भ्रष्ट हो गयी थी ॥२७६॥ स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से उसने यहाँ स्नान किया और शीघ्र ही स्वर्ग चली गयी। पुत्र की प्राप्ति की कामना से सङ्गम के सितासित जल में हे मुने ! नहुष के पुत्र ययाति ने शङ्कर को पुत्र के रूप में प्राप्त किया। हे द्विजोत्तम ! धन प्राप्त करने की इच्छा से प्राचीन काल में इन्द्र ने यहाँ स्नान किया ॥२७७-२७८॥ उन्होंने अपनी माया से कुबेर की सभी निधियों का अपहरण कर लिया। भगवान् शिव की आराधना करने वाले महर्षि कश्यप ने यहाँ पर तपस्या की ॥२७९॥ इसी तीर्थ में महर्षि भरद्वाज ने योग की सिद्धि प्राप्त की। हे विप्र ! इसी तीर्थ में प्राचीन काल में शान्त मन वाले ॥२८०॥

तारारूपाश्च ते सर्वे तैर्व्याप्तं सकलंजगत् । विन्दन्ति कामिनः कामान्मुक्तिंयान्तिमुमुक्षवः॥२८२॥
विन्दन्ति साधकाः सिद्धिं प्रयागे हि द्विजोत्तम ! ।
साम्प्रतं मुक्तिकामास्तु कन्याश्चाऽपि सुतश्च ते ॥२८३॥
मद्वाक्यादत्र मज्जन्तु सर्वे त्वं चसितासिते । प्राक्कालिकाघविध्वंसिवेणीजलबलेन तु ॥२८४॥
लभन्तामखिलां लक्ष्मीं प्राप्तशापमहाफलाम् ।
एवमार्षवचः सम्यमतीन्द्रियमलङ्घनम् ॥२८५॥
श्रुत्वा चोत्कण्ठचित्तास्ते सर्वे स्नानाय चोद्यताः ।
प्रयागं प्राप्य दुष्प्राप्यं पैशाच्यं विजहुः क्षणात् ॥२८६॥
विमुक्ताः शापदुःखेन तनुं स्वां स्वां च लेभिरे ।
दृष्ट्वा वेदनिधिः पुत्रं ताः कन्यादिव्यरूपिणीः ।
तुष्टाव लोमशम्प्रीत्या प्रसन्नेनान्तात्मना ॥२८७॥
त्वदनुग्रहमात्रेणोत्तीर्णः पापमहार्णवः । इदानीमुचितं ब्रूहि बालानामृषिसत्तम॥२८८॥

लोमश उवाच

कुमारोऽधीतवेदोऽयंसमाप्तनियतमो युवा । आसां तु सानुरागाणां गृह्णातु करपङ्कजम्॥२८९॥
ततो लोमशवाक्येन स्वपितुर्वचनात्तदा । विवाहविधिना चाऽऽशुब्रह्मचारी सधार्मिकः॥२९०॥
शुभद्रव्यैश्च मन्त्रैश्च मुनिभिः कृतमङ्गलः । पञ्चानामपि कन्यानां पाणिं जग्राह धर्मतः॥२९१॥
आनन्दिन्यस्तदा सर्वाः कन्याः पूर्णमनोरथाः ।
बभूवुः सकुमारश्च सन्तुष्टश्च बभूवह ॥२९२॥

योगेश सनकादि योग के फल की भूमि को प्राप्त किए । माघ के महीने में इस गङ्गा, यमुना सङ्गम स्थल में स्नान करने वाले ॥२८१॥ लोग तारा के रूप में हो गये, उन लोगों से सारा जगत् व्याप्त है । कामी पुरुष कामना की प्राप्ति करते हैं और मुमुक्षु पुरुष मुक्ति को प्राप्त करते हैं ॥२८२॥ हे द्विजोत्तम ! सभी साधक प्रयाग में सिद्धि को प्राप्त करते हैं । इस समय ये कन्याएँ और तुम्हारे पुत्र मुक्ति चाहते हैं ॥२८३॥ अतएव मेरे वचन को मानकर तुम सब स्नान करो, त्रिवेणी अपने जल के बल से पूर्व जन्म के कर्मों को विध्वस्त कर देती है ॥२८४॥ आप सभी लोग शाप से प्राप्त महाफल स्वरूप सम्पूर्ण लक्ष्मी को प्राप्त करें। इस तरह ऋषि की वाणी, सत्य, अतीन्द्रिय और अलंघ्य है ॥२८५॥ उसे सुनकर सबके सब उत्कण्ठित होकर स्नान करने के लिए तैयार हो गये । और दुष्प्राप्य प्रयाग में जाकर वे क्षणभर में पिशाचत्व का परित्याग कर दिए । शाप जन्य दुःख से मुक्त होकर अपने-अपने शरीर को प्राप्त कर लिए ॥२८६॥ वेद निधि ने अपने पुत्र तथा उन दिव्य रूप वाली कन्याओं की पूजा की । वे प्रसन्न मन से महर्षि लोमश की स्तुति की ॥२८७॥ आपकी कृपा मात्र रूपी महासागर को पार कर लिया गया । हे ऋषि श्रेष्ठ इन बालकों के लिए जो उचित हो उसे आप बतलायें ॥२८८॥ **लोमश महर्षि ने कहा**— इस कुमार ने वेदाध्ययन करके नियमों को समाप्त कर दिया है और युवा है अतएव प्रेम करने वाली इन सबों को अपना पत्नी बना ले ॥२८९॥ उसके बाद महर्षि लोमश के वाक्यानुसार तथा अपने पिता की आज्ञा से उस धार्मिक ब्रह्मचारी ने शीघ्र विवाह की विधि से ॥२९०॥ मङ्गलमय द्रव्यों और मन्त्रों से ऋषियों द्वारा मङ्गल किए जाने पर

दत्त्वानुज्ञां मुनिः सोऽथ लोमशस्तैर्नमस्कृतः ।
जगाम स्वाश्रमं मेरुं पर्वतं सुरसेवितम् ॥२९३॥
ततो वेदनिधीराजन्स्नुषाः पञ्च सुतं तथा । पुरस्कृत्य मुदायुक्तो धनदस्य पुरं ययौ ॥२९४॥
इति नृपवर ! माघे स्नानसंजातपुण्या मुनिवरवचसा द्राक्तीर्थराजे प्रयागे ।
सकलकलुषमुक्ताः पञ्चगन्धर्वकन्या अलमभिमतलाभात्प्राप्य हर्षं च जग्मुः ॥२९५॥
परमिमितिहासं पावनं तीर्थभूतं वृजिनविलयहेतुं यः शृणोतीह नित्यम् ।
स भवति खलु पूर्णः सर्वकामैरभीष्टैर्व्रजति च सुरलोकं दुर्लभं धर्ममुक्तः ॥२९६॥
इतिहासमिमं श्रुत्वा पूजयेद्यस्तु पाठकम्। गोभिर्हिरण्यवस्त्रैश्च ब्रह्मतुल्यो यतो हि सः ॥२९७॥
वाचके पूजिते यस्माद्विष्णुर्भवति पूजितः । तस्मात्प्रपूजयेन्नित्यं यदिच्छेत्सफलं भवम् ॥२९८॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे गन्धर्वकन्यापरिणयोनामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥

धर्मानुसार उन पाञ्चों कन्याओं का पाणिग्रहण किया ॥२९१॥ उस समय आनन्दयुक्त सभी सुकुमार कन्याएँ पूर्ण मनोरथ वाली हो गयीं और कुमार भी सन्तुष्ट हो गया ॥२९२॥ उसके पश्चात् उन सवों के द्वारा नमस्कृत लोमश महर्षि ने उन सबों को अनुज्ञा प्रदान किया और वे अपने आश्रम सुमेरु पर्वत पर चले गये॥२९३॥ हे राजन् ! उसके बाद वेदनिधि पाञ्च पुत्रवधुओं और तथा अपने पुत्र को आगे करके कुबेर की नगरी में गये ॥२९४॥ हे राजश्रेष्ठ ! इस तरह से माघ में महर्षि लोमश के कहने से तीर्थ राज प्रयाग में स्नान करने से पुण्य प्राप्त करके पाञ्चों गन्धर्व कन्यायें सभी पापों से मुक्त होकर तथा सम्पूर्ण अभिमत फल को प्राप्त करके प्रहर्षित हो गयीं ॥२९५॥ जो मनुष्य इस संसार में इस श्रेष्ठ पावन, तीर्थ स्वरूप तथा पापों को विनष्ट करने वाले इतिहास को सुनता है, उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और धर्म से युक्त होकर वह दुर्लभ देवलोक में जाता है ॥२९६॥ इस इतिहास को श्रोता को सुनकर वाचक की पूजा गौ, सुवर्ण और वस्त्रों से करना चाहिए क्योंकि पाठक ब्रह्मा के समान होता है और वाचक की पूजा करने से चूकि भगवान् विष्णु की पूजा हो जाती है, अतएव यदि वह सफल संसार को चाहता है तो उसे सदा पाठक की पूजा करनी चाहिए ॥२९७-२९८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के माघ माहात्म्यान्तर्गत वसिष्ठ दिलीप संवाद के प्रसङ्ग में गन्धर्व कन्याओं के परिणय वर्णन नामक एक सौ अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२८॥

एक सौ उनतीसवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

श्रुतं कार्त्तिकमाहात्म्यं माघस्य च मया विभो ! ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि मुक्तिदं कर्म चोत्तमम् ॥१॥
श्रेष्ठा भक्तिस्तु का प्रोक्ता वद विश्वेश्वर प्रभो ।
येन विज्ञानमात्रेण नराः सुखमवाप्नुयुः ॥२॥

महादेव उवाच

तल्लीनचित्तः स पुमान्सा भक्तिः परमा मता ।
दयाधर्मपरो नित्यं विष्णुधर्मेषु तत्परः ॥३॥
फलमूलजलाहारी शङ्खचक्रप्रधारकः। त्रिकालं पूजयेद्विष्णुं सा भक्तिः सात्त्विकी मता॥४॥
उत्तमा सात्त्विकी प्रोक्ता राजसी चैव मध्यमा ।
कनिष्ठा तामसीचैव त्रिविधा भक्तिरुच्यते ॥५॥
श्रीधरे तु प्रकर्त्तव्या मुक्तिकामफलेप्सुभिः। अहङ्कारेण रूपेण दम्भमात्सर्यमायया॥६॥
ये कुर्वन्ति जना भक्तिं तामसी सा उदाहृता ।
परस्योत्सादनार्थं वादम्भमुद्दिश्य वाऽथवा ॥७॥
या भक्तिः क्रियते देवे तामसी सा प्रकीर्तिता ।
विषयान्प्रतिसंधाय यशऐश्वर्यमेव वा ॥८॥
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः। कर्मक्षयार्थे कर्त्तव्या ब्राह्मणैर्ज्ञानतत्परैः ॥९॥

भगवान् विष्णु की महिमा का वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— हे विभो ! मैनें कार्तिक और माघ इन दोनों मासों के माहात्म्य को सुना अब मैं मुक्ति प्रदान करने वाले उत्तम कर्म को सुनना चाहती हूँ ॥१॥ हे विश्वेश्वर प्रभो ! आप बतलायें कि श्रेष्ठ भक्ति कौन है जिसका विज्ञान मात्र प्राप्त करके मनुष्य सुख को प्राप्त कर सकें ॥२॥ **महादेवजी ने कहा—** जिस पुरुष का चित्त आराध्य में तल्लीन होता है उसी की भक्ति श्रेष्ठ भक्ति कहलाती है । दया और धर्मपरायण तथा विष्णु धर्म में सदा लगे रहने वाले, फल, मूल तथा जल का आहार करने वाले तथा शङ्ख, चक्र को धारण करने वाले को भगवान् विष्णु की त्रिकाल पूजा करनी चाहिए, ऐसे व्यक्ति की भक्ति सात्त्विकी होती है ॥३-४॥ सात्त्विकी भक्ति ही उत्तम भक्ति कहलाती है, राजसी भक्ति मध्यम होती है, तामसी भक्ति कनिष्ठा होती है, इस तरह भक्ति को तीन प्रकार का बतलाया गया है ॥५॥ मुक्ति रूपी फल चाहने वाले को भगवान् विष्णु की भक्ति करनी चाहिए अहङ्कार रूप से दम्भ, मत्सर्य और माया के द्वारा ॥६॥ जो लोग भक्ति करते हैं उनकी भक्ति तामसी होती है । दूसरे का नाश करने के लिए अथवा दम्भ के लिए जो भक्ति की जाती है, वह भक्ति तामसी कही गयी है । विषयों का अनुसन्धान करके या यश एवं ऐश्वर्य का अनुसन्धान करके ॥७-८॥ जो लोग मेरी पूजा अर्चा आदि करते हैं, उसके पृथक् भाव होने के कारण वह भक्ति राजस होती है । ज्ञानी ब्राह्मणों को कर्मों का क्षय करने के लिए भक्ति करनी चाहिए ॥९॥

विष्णोर्ह्यात्मार्पणीं बुद्धिं सा भक्तिः सात्त्विकी मता ।
अतो वै सर्वथा देवि संसेव्यः सर्वदा हरिः ॥१०॥
तामसेन तु भावेन तामसत्वं हि लभ्यते। राजसो राजसेनैव सात्त्विकेन तु सात्त्विकः ॥११॥
वेदाध्यायरतः श्रीमान्रागद्वेषविवर्जितः। शङ्खचक्रधरो विप्रः सर्वदा शुचिरुच्यते ॥१२॥
कर्मकाण्डे प्रवृत्तो यः सर्वदा विष्णुनिन्दकः ।
निन्दकस्तज्जनानां च महाचाण्डालउच्यते ॥१३॥
वेदाध्यायरतानित्यं नित्यं वै यज्ञयाजकाः। अग्निहोत्ररता नित्यं विष्णुधर्मपराङ्मुखा ॥
निन्दन्ति विष्णुधर्मांश्च वेदबाह्याः सुरेश्वरि ॥१४॥
कुर्वन्तिशान्तिम विबुधा प्रहृष्टाः क्षेमं प्रकुर्वन्ति पितामहाद्याः ।
स्वस्ति प्रयच्छन्ति मुनीन्द्रमुख्या गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम् ॥१५॥
शुभाग्रहा भूतपिशाचयुक्ता ब्रह्मादयो देवगणाः प्रसन्नाः ।
लक्ष्मीःस्थिरा तिष्ठति मन्दिरे च गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम् ॥१६॥
गङ्गागयानैमिषपुष्कराणि काशीप्रयागः कुरुजाङ्गलानि ।
तिष्ठन्ति देहे कृतभक्तिपूर्वं गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम् ॥१७॥
एवमाराधयेद्विद्वान्भगवन्तं श्रिया सह। कृतकृत्यो भवेन्नित्यं स व्रिपो नाऽत्रसंशयः॥१८॥

भगवान् विष्णु में अपनी आत्मा के अर्पण रूपी सात्त्विकी भक्ति है, अतएव हे देवि ! सर्वदा भगवान् की आराधना करनी चाहिए ॥१०॥ तामस भाव से तामसत्व प्राप्त होता है, राजसभाव से राजसत्व और सात्त्विकभाव से सात्त्विकता की प्राप्ति होती हैं ॥११॥ सदा वेदाध्ययन करने वाला, राग और द्वेष से रहित और शङ्ख चक्रधारी विप्र सदैव पवित्र रहता है ॥१२॥ जो केवल कर्मकाण्ड में ही लगा रहता है और भगवान् विष्णु की निन्दा करता है तथा भक्तों की जो निन्दा करता है, वह महाचाण्डाल कहलाता है॥१३॥ वेदाध्ययन करने वाले, यज्ञ कराने वाले और सदा अग्निहोत्र करने वाले तथा वैष्णव धर्म विमुख रहने एवं विष्णु धर्म की निन्दा करने वाले हे सुरेश्वरि वेद बाह्य हैं ॥१४॥ भगवान् गोविन्द की भक्ति करने वाले मनुष्यों की देवता शान्ति प्रसन्नता पूर्वक प्रदान करते हैं, ब्रह्माजी आदि देवता उनका कल्याण करते हैं और मुनीन्द्र मुख्य उसका स्वस्ति (कल्याण) करते हैं ॥१५॥ शुभग्रह, भूतों, पिशाचों के साथ-साथ ब्रह्मा आदि देवता उस पर प्रसन्न रहते हैं तथा गोविन्द की भक्ति करने वाले के घर में लक्ष्मीजी स्थिर हो जाती हैं॥१६॥ गङ्गा, गया, नैमिष क्षेत्र, पुष्कर क्षेत्र, काशी प्रयाग तथा कुरुजाङ्गल प्रदेश में भगवान् गोविन्द की भक्ति करने वाले मनुष्यों के शरीर में भक्ति पूर्वक निवास करते हैं ॥१७॥ विद्वान् को इसी तरह लक्ष्मीजी के साथ भगवान् विष्णु का ध्यान करना चाहिए । ऐसा करने वाला विप्र कृतकृत्य हो जाता है, इसमें कोई

क्षत्तियो वाथ वैश्यो वा शूद्रो वा सुरसत्तमे ।
भक्तिं कुर्वन्तिशेषेण मुक्तिं याति स वै नरः ॥१९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे विष्णुमहिमवर्णनं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥

एक सौ तिसवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

शालग्रामशिलाशुद्धामूर्त्तयस्सन्ति भूतले। तासां चैव तु मूर्तीनां पूजनं कतिधा स्मृतम् ॥१॥
ब्राह्मणैः कति पूज्यास्ताः क्षत्तियैर्वा सुरेश्वर ! ।
वैश्यैर्वाऽपि कथं शूद्रैः स्त्रीभिर्वाऽपि समादिश ॥२॥

महादेव उवाच

शालग्रामशिला पुण्या पवित्रा धर्मकारिणी। यस्या दर्शनमात्रेण ब्रह्महा शुध्यते नरः ॥३॥
तद्गृहं सर्वतीर्थानां प्रवर श्रुतिनोदितम् । यत्रेयं सर्वछा मूर्तिः शालग्रामशिला शुभा ॥४॥
ब्राह्मणैः पञ्चपूज्याः स्युश्चतस्रः क्षत्तियैस्तथा ।
वैश्यैस्तिस्रस्तथा पूज्या एका पूज्या प्रयत्नतः ॥५॥
तस्या दर्शनमात्रेण शूद्रो मुक्तिमवाप्नुयात्। अनेन विधिना देवि ये नराः पूजयन्ति वै ॥६॥

भी संशय नहीं है ॥१८॥ जो क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र श्रीभगवान् की भक्ति करते हैं, वे निश्चित रूप से मुक्ति को प्राप्त करते हैं ॥१९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड का विष्णु महिमा वर्णन नामक एक सौ उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२९।।

शालग्राम शिला के पूजन का माहात्म्य

पार्वतीजी ने कहा— पृथिवी पर शालग्राम शिला की जो शुद्ध मूर्तियाँ हैं उन मूर्तियों की पूजा कितने प्रकार की बतलायी गयी हैं ?॥१॥ हे सुरेश्वर ! ब्राह्मणों को कितनी मूर्तियों की पूजा करनी चाहिये और क्षत्रियों को कितनी मूर्तियों की पूजा करनी चाहिए, वैश्यों को कितनी मूर्तियों को पूजना चाहिए । शूद्रों और स्त्रियों को उनकी कैसे पूजा करनी चाहिए ॥२॥ **महादेवजी ने कहा—** शालग्राम शिला पवित्र और धर्म कारिणी होती है । उसका दर्शन करने से ब्रह्मघाती भी शुद्ध हो जाता है ॥३॥ उस गृह को वेदों ने श्रेष्ठ तीर्थ बतलाया है, जिस घर में शालग्राम की शिला सर्वदा वर्तमान रहती है ॥४॥ ब्राह्मणों को पाञ्च शालग्राम की पूजा करनी चाहिए, क्षत्रियों को चार तथा वैश्यों को एक या तीन शालग्राम की पूजा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए ॥५॥ शालग्राम शिला का दर्शन करने मात्र से शूद्र मुक्ति प्राप्त कर लेता है । हे देवि!

भोगान्सर्वांस्तत्र भुक्त्वा यान्ति विष्णोः परं पदम् ।
इयं सा महती मूर्तिः सर्वदा पापहारिणी ॥७॥
कैलासाद्यं फलं देवि जायते पूजनाद्यतः । तत्र गङ्गा च यमुना गोदावरी सरस्वती ॥८॥
तिष्ठते च शिला यत्र सर्वं तत्र न संशयः ।
किमत्र बहुनोक्तेन भूयो भूयो वरानने ॥९॥
पूजनं मनुजैः सम्यक्कर्त्तव्यं मुक्तिमिच्छुभिः ।
भक्तिभावेन देवेशि येऽर्चयन्ति जनार्दनम् ॥१०॥
तेषां दर्शनमात्रेण ब्रह्महा शुध्यते जनः । दासभावेन ये शूद्राः स्वर्चनं कुर्वते सदा॥११॥
तेषां पुण्यं न जानन्ति ब्रह्माद्याश्च सुरेश्वरि । भक्तिभावेन ये विप्रा हरिमभ्यर्चयन्ति वै ॥१२॥
एकविंशतिकुलं तैस्तु तारितं तेषु जन्मसु । शङ्खचक्राङ्कितो यस्तु विप्रः पूचनमाचरेत् ॥१३॥
पूजितं तु जगत्सर्वं तेन विष्णुप्रपूजनात् । पितरः संवदन्त्यस्मत्कुले जाताश्च वैष्णवाः॥१४॥
तत्कुलं तारितं तैस्तु यावदाभूतसंप्लवम्। ते तु चास्मान्समुद्धृत्य नयन्ते विष्णुमन्दिरम्॥१५॥
स एव दिवसो धन्यो धन्या माताऽथ बान्धवाः ।
पिता तस्य च वै धन्यो धन्या वै सुहृदस्तथा ॥१६॥
सर्वे धन्यतमा ज्ञेया विष्णुभक्तिपरायणाः । तेषां दर्शनमात्रेण महापापात्प्रमुच्यते॥१७॥
उपपातकानि सर्वाणि महान्ति पातकानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति वैष्णवानां च दर्शनात् ॥१८॥
पावकाइवदीप्यन्ते ये नरा वैष्णवा भुवि । विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मेघेभ्यइव चन्द्रमाः॥१९॥

इसी विधि से जो लोग शालग्राम का पूजन करते हैं ॥६॥ वे इस लोक में सभी भोगों को भोगकर भगवान् विष्णु के परम पद में जाते हैं । यह महान् मूर्ति सर्वदा पापों को विनष्ट करती है ॥७॥ हे देवि ! शालग्राम का पूजन का फल कैलास आदि की प्राप्ति है । जहाँ पर शालग्राम की शिला रहती है वहाँ पर गङ्गा, यमुना, गोदावरी तथा सरस्वती नदियों का निवास होता है । हे वरानने ! इस विषय में बार-बार कहने से क्या लाभ है ? ॥८-९॥ मुक्ति चाहने वाले को शालग्राम का पूजन अच्छी तरह से करना चाहिए । हे देवि! जो लोग भक्ति भाव पूर्वक भगवान् जनार्दन की पूजा करते हैं ॥१०॥ उन लोगों के दर्शन मात्र से ब्रह्म घाती भी शुद्ध हो जाता है । जो शूद्र दास भाव से भगवान् की पूजा करते हैं ॥११॥ हे सुरेश्वरि ! उन सवों को प्राप्त होने वाले पुण्यों को ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जानते हैं । जो ब्राह्मण भक्तिभाव पूर्वक श्रीहरि की अर्चना करते हैं ॥१२॥ वे उस जन्म में अपने इक्कीस पीढ़ी के पूर्वजों को तार देते हैं जो शङ्ख, चक्रांकित विप्र भगवान् शालग्राम की पूजा करता है ॥१३॥ वह भगवान् विष्णु की पूजा करने के कारण सम्पूर्ण जगत् की पूजा कर लेता है । उसके पितृगण कहते हैं कि हमारे वंश में वैष्णव हुआ है॥१४॥ उस वंश का तब तक के लिए उद्धार हो जाता है, जब तक महाप्रलय होता है । वे वैष्णव हमलोगों का उद्धार करके हमलोगों को विष्णु लोक में पहुँचायेंगे ॥१५॥ वह दिन धन्य होता है और वे माता-पिता भी धन्य हैं उनके सुहृद भी धन्य हैं ॥१६॥ भगतान् विष्णु की भक्ति करने वालों के दर्शन करने मात्र से मनुष्य महापाप से छूट जाता है ॥१७॥ सभी उपपात तथा बड़े-बड़े पाप भी जो हैं वे सबके सब वैष्णव के दर्शन से नष्ट हो जाते हैं ॥१८॥ जो मनुष्य वैष्णव होते हैं वे पृथिवी पर अग्नि के समान

आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम् ।
तत्सर्वं नाशमायाति वैष्णवानां च दर्शनात् ॥२०॥
हिंसादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत् ।
तत्सर्वं नाशमायाति दर्शनाद्वैष्णवस्यच ॥२१॥
निष्पापास्त्रिदिवं यान्ति पापिष्ठा यान्ति शुद्धताम् ।
दर्शनादेव साधूनां सत्यं तुभ्यं मयोदितम् ॥२२॥
संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदः । पावनः पावनानां च विष्णुभक्तो न संशयः ॥२३॥
प्रत्यहं विष्णुभक्ता ये स्मरन्ति मधुसूदनम् । ते तु विष्णुमया ज्ञेया विष्णुस्तत्रनसंशयः ॥२४॥
नवनीलघनश्यामं नलिनायतलोचनम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरावृतम् ॥२५॥
कौस्तुभेन विराजन्तं वनमालाधरं हरिम् । उल्लसत्कुण्डलज्योतिःकपोलवदनश्रिया ॥२६॥
विराजितं किरीटेन वलयाङ्गदनूपुरैः । प्रसन्नवदनाम्भोजं चतुर्बाहं श्रियान्वितम् ॥२७॥
एवं ध्यायन्ति ये विप्रा विष्णु चैव तु पार्वति ! ।
ते विप्रा विष्णुरूपाश्च वैष्णवास्ते न संशयः ॥२८॥
तेषां दर्शनमात्रेण भक्तया वा भोजनेन वा । पूजनेन च देवेशि वैकुण्ठं लभते ध्रुवम् ॥२९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे शालग्रामशिलापूजनमाहात्म्यं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥
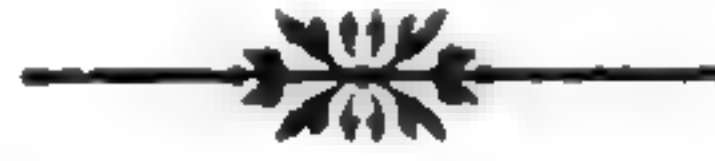
प्रकाशित होते हैं । मेघों से बाहर निकले हुए चन्द्रमा के समान वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥१९॥ आर्द्र, शुष्क, लघु, स्थूल तथा वाणी एवं मन से किए गये सारे पाप वैष्णवों के दर्शन से छूट जाते हैं॥२०॥ हिंसा आदि से उत्पन्न तथा ज्ञात एवं अज्ञात पाप जो हो जाते हैं वे सबके सब श्रीवैष्णव का दर्शन करने मात्र से नष्ट हो जाते हैं ॥२१॥ तुमको मैंने यह परम सत्य बतलाया है कि साधु पुरुषों के दर्शन करने से निष्पाप पुरुष स्वर्ग जाते हैं पापिष्ठ भी शुद्ध हो जाते हैं ॥२२॥ इसमें कोई संशय नहीं है कि भगवान् विष्णु के भक्त संसार रूप कीचड़ का प्रक्षालन करने में दक्ष तथा पवित्रों को भी पवित्र करने वाले होते हैं ॥२३॥ जो विष्णु भगवान् के भक्त प्रतिदिन भगवान् मधुसूदन का स्मरण करते हैं उन लोगों को विष्णु स्वरूप जानना चाहिए क्योंकि वहाँ पर भगवान् विष्णु का उनमें निवास होता है ॥२४॥ नवीन नील मेघ के समान श्याम वर्ण वाले, कमल के समान बड़े-बड़े नेत्र वाले, शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करने वाले पीताम्बरधारी ॥२५॥ कौस्तुभ मणि से सुशोभित वनमाला धारण करने वाले कपोल और मुख की शोभा से जिनके कुण्डलों की ज्योति और बढ़ जाती है ॥२६॥ प्रसन्न मुखकमल वाले, चार भुजाओं वाले तथा लक्ष्मीजी के साथ ॥२७॥ किरीट, कङ्कण, अङ्गद तथा नुपूर से सुशोभित मुख कमल वाले चतुर्भुज तथा श्रीलक्ष्मीजी के साथ । जो ब्राह्मण भगवान् विष्णु का ध्यान करते हैं हे पार्वती ! वे विष्णु स्वरूप वैष्णव हैं इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥२८॥ उन लोगों के केवल दर्शन करने से या भक्ति पूर्वक भोजन कराने से तथा पूजन करने से हे देवेशि वैकुण्ठ की अवश्य प्राप्ति होती है ॥२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के शालग्राम शिला के पूजन का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३०।।

एक सौ एकतीसवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

अनन्तं वासुदेवस्य कीदृशं स्मरणं स्मृतम् । यच्छ्रुत्वा न पुनर्मोहोमानुषाणांप्रजायते ॥१॥

महादेव उवाच

दृष्ट्वा तत्त्वेन देवेशि स्मराम्येनं तु नित्यशः ।
तृषातुरो यथा वारि तद्वद्विष्णुंस्मराम्यहम् ॥२॥

हिमेनाकुलितं विश्वं स्मरत्यग्निं यथा तथा। तद्वदेव तु वै विष्णुं स्मरनित विबुधादयः॥३॥
पतिव्रता यथा नारी पतिं स्मरति नित्यशः। तथा स्मरामि लोकेशं विष्णुं विश्वेश्वरेश्वरम्॥४॥
भयार्त्तः शरणं यद्वदथ लोभी यथा धनम्। पुत्रकामो यथा पुत्रं तथा विष्णुं स्मराम्यहम् ॥५॥

दूरस्थोऽपि यथा गेहं चातको माधवं यथा ।
ब्रह्मविद्यां ब्रह्मविदस्तथा विष्णुंस्मराम्यहम् ॥६॥
हंसा मानसमिच्छन्ति मुनयः स्मरणं हरेः ।
भक्ताश्च भक्तिमिच्छन्ति तथा विष्णुं स्मराम्यहम् ॥७॥
प्राणिनां वल्लभो देहो यत्र आत्माऽवतिष्ठते ।
आयुर्वाञ्छन्ति ये जीवास्तथा विष्णुं स्मराम्यहम् ॥८॥

भ्रमराश्च यथा पुष्पं चक्रवाका दिवाकरम्। यथात्मवल्लभा भक्तिं तथा विष्णुं स्मराम्यहम् ॥९॥

अन्धेनाकुलिता लोका दीपं वाञ्छन्ति वै यथा ।
तथा वै पुरुषा लोके स्मरणं केशवस्य च ॥१०॥

यथाश्रमार्त्ताविश्रामंनिद्रांव्यसनिनोयथा । गतालस्योयथाविद्यांतथाविष्णुं स्मराम्यहम्॥११॥

भगवान् विष्णु का माहात्म्य वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— अनन्त वासुदेव का स्मरण कैसे होता है । जिसको सुनकर मनुष्यों को फिर मोह नहीं होता है ॥१॥ **महादेवजी ने कहा**— हे देवेशि, श्रीभगवान् को तत्त्वतः जानकर मैं सदा उनका स्मरण करता हूँ । जिस तरह प्यासा व्यक्ति जल का स्मरण करता है उसी तरह मैं उनका स्मरण करता हूँ॥२॥ जिस तरह शैत्य से व्याकुल व्यक्ति अग्नि का स्मरण करता है उसी तरह भगवान् विष्णु का स्मरण देवता इत्यादि करते हैं ॥३॥ जिस तरह पतिव्रता नारी सदा अपने पति का स्मरण करती है उसी तरह से लोकेश्वरों के स्वामी भगवान् विष्णु का मैं स्मरण करती हूँ ॥४॥ जिस तरह डरा हुआ व्यक्ति अपने रक्षक का स्मरण करता है, लोभी धन का स्मरण करता है तथा जैसे पुत्र चाहने वाले पुत्र का स्मरण करता है उसी तरह मैं भगवान् विष्णु का स्मरण करता हूँ ॥५॥ जैसे परदेश गया व्यक्ति अपने घर का स्मरण करता है और चातक मेघ का स्मरण करता है जिस तरह ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म विद्या का स्मरण करता है उसी तरह मैं भगवान् विष्णु का स्मरण करता हूँ ॥६-८॥ भौंरे जैसे पुष्प का चक्रवाक दिन का, आत्मप्रिय भक्ति का स्मरण करता हैं उसी तरह से मैं भगवान् विष्णु का स्मरण करता हूँ ॥९॥ जिस तरह से अन्धकार से व्याकुल लोग दीपक का स्मरण करते हैं उसी तरह सत्पुरुष भगवान् केशव का स्मरण

मातङ्गाःपार्वतींभूमिंसिंहा वनगजादिकम्। तथैवस्मरणंविष्णोः कर्तव्यंपापभीरुभिः ॥१२॥
सूर्यकान्तेरवेर्योगाद्वह्निस्तत्रप्रजायते । एवं वै साधु संयोगाद्धरौ भक्तिः प्रजायते ॥१३॥
शीतरश्मेर्यथाकान्तश्चान्द्रयोगादपः श्रयेत्। एवं वैष्णवसंयोगान्मुक्तिर्भवति शाश्वती ॥१४॥
कुमुद्वती यथा सोमं दृष्ट्वा पुष्पं विकासते। तद्वच्छेव कृता भक्तिर्मुक्तिदा सर्वदा नृणाम् ॥१५॥

यथा नला या संत्रस्ता भ्रमरी स्मरणं चरेत् ।
तेन स्मरणयोगेन नालासारूप्यतामियात् ॥१६॥
गोपीभिर्जारबुद्ध्या च विष्णोश्च स्मरणं कृतम् ।
ताश्च सायुज्यतां नीतास्तथा विष्णुं स्मराम्यहम् ॥१७॥

केऽपि वै दुष्टभावेन च्छद्मभावेन केचन । केचापि लोभभावेन निःस्पृहाश्चैव केचन ॥१८॥
भक्त्या वा स्नेहभावेन द्वेषभावेन वा पुनः । केऽपिस्वामित्वभावेन बुद्ध्या वा बुद्धिपूर्वकम्॥१९॥
येन केनापि भावेन चिन्तयन्ति जनार्दनम्। इहलोके सुखं भुक्त्वा यान्ति विष्णोः परं पदम्॥२०॥
अहोविष्णोश्च माहात्म्यमद्भुतं लोमहर्षणम्। यदृच्छयापि स्मरणं त्रिधा मुक्तिप्रदायकम् ॥२१॥
न धनेन समृद्धेन विपुलाविद्यया तथा। एकेन भक्तियोगेन समीपे दृश्यते क्षणात्॥२२॥
सान्निध्येऽपि स्थितो दूरे नेत्रयोरञ्जनं यथा। भक्तियोगेन दृश्येत भक्तैश्चैव सनातनः ॥२३॥

करते हैं ॥१०॥ जिस तरह थका व्यक्ति विश्राम का स्मरण करता है व्यसनी पुरुष निद्रा का स्मरण करता है, निरालस पुरुष विद्या का स्मरण करता है उसी तरह मैं भगवान् विष्णु का स्मरण करता हूँ ॥११॥ जिस तरह हाथीं पर्वतीय भूमि का स्मरण करता है, सिंह हाथी आदि का स्मरण करता है उसी तरह पाप से डरने वाले लोगों को भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिए ॥१२॥ जिस तरह सूर्यकान्त मणि और सूर्य का संयोग होने पर अग्नि की उत्पत्ति होती है उसी तरह सज्जन पुरुषों के संयोग से श्रीहरि में भक्ति उत्पन्न होती है ॥१३॥ जैसे चन्द्रकान्त मणि और चन्द्रमा का संयोग होने पर मणि से जल चूने लगता है उसी तरह वैष्णवों की सङ्गति होने पर मुक्ति की प्राप्ति निश्चित रूप से होती है ॥१४॥ जिस तरह चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी का पुष्प विकसित हो जाता है उसी तरह भक्ति करने वाले को मुक्ति मिल जाती है।॥१५॥ जिस तरह नला कीड़े के भय से भयभीत कीड़ा भ्रमरी का स्मरण करता है और वह उस स्मरण के कारण नला के समान हो जाता है ॥१६॥ गोपियों ने जार बुद्धि से जैसे भगवान् कृष्ण का स्मरण किया और उनकी सायुज्यता को प्राप्त कर लिया उसी तरह मैं भगवान् विष्णु का स्मरण करता हूँ ॥१७॥ कुछ लोग कपट पूर्ण भाव से तथा कुछ लोग दुष्ट भाव से, कुछ लोग लोभ के भाव से तथा कुछ लोग निःस्पृह होकर॥१८॥ भक्ति पूर्वक, स्नेह पूर्वक, द्वेष पूर्वक, कुछ लोग स्वामित्व भाव से, कुछ लोग बुद्धि पूर्वक जिस किसी भाव से भगवान् जनार्दन का स्मरण करते हैं, वे लोग इस लोक में सुख का भोग करके अन्त में भगवान् विष्णु के परम पद में जाते हैं ॥१९-२०॥ सौभाग्यवश भगवान् विष्णु का माहात्म्य अत्यन्त अद्भुत है और रोमाञ्चक है । किसी प्रकार भी किया गया भगवान् का स्मरण तीन प्रकार की मुक्ति को प्रदान करता है ॥२१॥ धन की समृद्धि तथा अत्यधिक विद्या के द्वारा तथा केवल भक्ति के संयोग से भगवान् क्षणभर में समीप में दिखायी पड़ते हैं ॥२२॥ सनातन भगवान् सन्निकट में विद्यमान होकर भी उसी तरह से दूर

इदं तत्त्वमिदं तत्त्वं मोहितो देवमायया। भक्तितत्त्वं यदा प्राप्तं तदा विष्णुमयं जगत् ॥२४॥

इन्द्राद्यैरमृतं प्राप्तं सुखार्थे शृणु सुन्दरि ! ।
तथापि दुःखितास्ते वै भक्त्या विष्णोर्यथा विना ॥२५॥

भक्तिमेवाऽमृतंप्राप्य पुनर्दुःखं न जायते। वैकुण्ठाख्यं पदं प्राप्य मोदते विष्णुसन्निधौ ॥२६॥

वारि त्वक्त्वा यथा हंसः पयः पिबति नित्यशः ।
एवं धर्मान्परित्यज्य विष्णोर्भक्तिं समाश्रयेत् ॥२७॥
अन्यभक्तिं परित्यज्य विष्णुभक्तिं समाश्रयेत् ।
तोयं बद्ध्वातुवस्त्रेण कृतंकार्यंकथंभवेत् ॥२८॥
प्राप्य देहं विना भक्तिं क्रियते स वृथाश्रमः ।
विष्णुभक्तिं विनाधर्मानुपदिशन्तियेजनाः ॥
ते पतन्ति सदा घोरे नरके नाऽत्रसंशयः ॥२९॥

बाहुभ्यां सागरं ततु यद्वन्मूर्खोऽभिवाञ्छति। संसारसागरं तद्वद्विष्णुभक्तिं विना नरः ॥३०॥

विष्णुभक्तिं च रक्षन्ति कर्मणा पात्यते यदि ।
अकिञ्चनः स्पृहायुक्तोमेरौधात्तेयथास्पृहाम् ॥३१॥

तव भक्तौ तथा देव मया हि क्रियतेस्पृहा। जन्मान्तरे हि सा भक्तिर्मामकीयत्करोतिहि ॥३२॥
वह्निर्यथेह स्वल्पोऽपि दहते विविधं वनम्। तद्वदेव तु सा भक्तिरणुमात्रा कृता मया ॥३३॥
शतैश्च श्रूयते भक्तिः सहस्रैरपि बुध्यते। तेषां मध्ये तु देवेशि भक्तो ह्येकः प्रजायते ॥३४॥

हैं जैसे आँखों में लगा हुआ अञ्जन अपनी आँखों से नहीं दिखता है। वे भगवान् भक्ति योग के द्वारा भक्तों को दिखते हैं ॥२३॥ यह तत्त्व है किन्तु माया से मोहित मानव को जब भक्ति तत्त्व की प्राप्ति होती है तब वह सम्पूर्ण जगत् को विष्णुमय देखने लगता है ॥२४॥ हे सुन्दरि ! इन्द्र आदि देवताओं ने सुख प्राप्त करने के लिए अमृत प्राप्त किया फिर भी वे उसी तरह से दुःखी रहते हैं जिस तरह भक्ति विहीन मानव दुःखी रहता है ॥२५॥ केवल भक्ति रूपी अमृत को प्राप्त कर लेने से फिर कभी दुःख नहीं मिलता है। भक्त वैकुण्ठ लोक में जाकर भगवान् विष्णु के सन्निकट आनन्दित होते हैं ॥२६॥ जिस तरह हंस जल को छोड़कर सदा दुग्ध ही पीता है, उसी तरह सभी धर्मों का त्याग करके भगवान् विष्णु की भक्ति का आश्रय लेना चाहिए ॥२७॥ दूसरों की भक्ति को त्यागकर भगवान् विष्णु की भक्ति करनी चाहिए। वस्त्र में जल को बाँधने से कोई काम कैसे हो सकता है ॥२८॥ देह प्राप्त करके भक्ति के बिना किया गया परिश्रम व्यर्थ है, जो लोग विष्णु भक्ति से भिन्न भक्ति का उपदेश देते हैं वे सदा घोर नरक में जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं है ॥२९॥ जिस तरह मूर्ख अपनी भुजाओं के बल पर सागर को पार करना चाहता है उसी तरह बिना भाग्वान् विष्णु के संसार सागर को पार करना चाहने वाले अज्ञानी हैं ॥३०॥ यदि कर्मभ्रष्ट व्यक्ति भगवान् विष्णु की भक्ति की रक्षा करते है, उनकी इस प्रकार की स्पृहा, उसी तरह है; जिस तरह कोई दरिद्र सुमेरु को प्राप्त करना चाहता हो ॥३१॥ हे देव ! उसी तरह आपकी भक्ति प्राप्त करने की स्पृहा व्यर्थ हैं मनुष्य जो मेरी भक्ति करता है उसको वह भक्ति जन्मान्तर (दूसरे जन्म) में भी होती हैं ॥३२॥ जिस तरह थोड़ी सी भी अग्नि अनेक वनों को जला डालती है, उसी तरह मैंने छोटी भक्ति की हैं।।३३॥ सैकड़ों लोग भक्ति

बुद्धिं परेषां दास्यन्ति लोके बहुविधा जनाः ।
स्वयमाचरते सोऽपि नरः कोटिषुदृश्यते ॥३५॥
पूजया हस्यते भक्तिर्जपेन परिहस्तये। एवं भावो हि देवेशे भक्तिस्तेनैव गृह्यते ॥३६॥
सागरे च यथा पोतः कूपे द्रोणोपवेशनम्। यस्य भावो हि तद्वच्च भक्तिःसा तेनगृह्यते ॥३७॥
मूले सिक्तस्य वृक्षस्य पत्रं शाखासु दृश्यते ।
भजनादेव भो देवि फलमग्रे प्रतिष्ठितम् ॥३८॥
पानीयहारिणा यद्वद्धटे चित्तं प्रधीयते। तद्वद्देवे हरौ चित्तं धृत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥३९॥
शैशवे च यथा माता गुडं स्तोकं ददाति वै ।
पुनर्याचति वै बालो गुडं वै लोभकारणात् ॥४०॥
नीरे नीरं यथा क्षिप्तं दुग्धे दुग्धं घृते घृतम् ।
तद्वद्भेदं न पश्यन्ति विष्णुभक्तिप्रसादतः ॥४१॥
भानुः सर्वगतो यद्वद्वह्निः सर्वगतो यथा। भक्तिः स्थितस्तथा भक्तः कर्मभिर्नैव बाध्यते॥४२॥
अजामिलः स्वधर्मं च त्यत्तवा पापं समाचरन् ।
पुत्रं नारायणं स्मृत्वा मुक्तिं वै प्राप्तवान्ध्रुवम् ॥४३॥
दिवारात्रौ च ये भक्ता नाममात्रोपजीविनः। वैकुण्ठवासिनस्ते वै तत्र वेदा हि साक्षिणः॥४४॥
अश्वमेधादियज्ञानां फलं स्वर्गेऽपि दृश्यते। तत्फलं तु समग्रं वै भुक्त्वा वै सम्पतन्ति च॥४५॥

का श्रवण करते हैं, उसको हजारों लोग समझते हैं हे देवेश ! उन सबों में कोई एक भक्त हो जाता है॥३४॥ अनेक पुरुष दूसरों को ज्ञानोपदेश करते हैं, किन्तु करोड़ों लोगों में कोई एक होता है जो ज्ञान का आचरण करे ॥३५॥ पूजा के द्वारा भक्ति कम होती है, जप के द्वारा वह और अधिक कम हो जाती है । इस तरह की भावना जिस मनुष्य की श्रीभगवान् में होती है वह भक्ति को धारण करता है ॥३६॥ जिस तरह समुद्र में नौका होती है तथा कुएँ पर कोई कौआ बैठता है, इस तरह की जिसकी भावना होती है, वही भक्ति को धारण करता है ॥३७॥ हे देवि ! जिस तरह से मूल में सीचनें से उसका परिणाम शाखाओं और पत्तों में दिखता है उसी तरह भजन करने से ही आगे चलकर वह फल दिखायी देता है ॥३८॥ जिस तरह जल ले जाने वाले का घड़े पर ध्यान बना रहता है, उसी तरह श्रीहरि में मन को लगाने से मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥३९॥ जिस तरह बाल्य काल में माता थोड़ा सा गुड़ देती है और वह बालक लोभ के कारण फिर गुड़ मागता है ॥४०॥ जिस तरह जल में जल को डालने से दुग्ध में दुग्ध डालने से और घी में घी को डालने से मिल जाता है उन सबों में कोई भेद नहीं प्रतीत होता है, उसी तरह भगवान् विष्णु की कृपा से भक्त, भेद का अनुभव नहीं करते हैं ॥४१॥ जिस तरह सूर्य सर्वत्र व्याप्त रहते हैं, अग्नि सर्वत्र एक समान व्यापक है उसी तरह भगवद् भक्ति करने वाला भक्त कर्म के बन्धनों से नहीं बँधता है ॥४२॥ अजामिल अपने धर्म को त्यागकर पाप करने लगा किन्तु अपने पुत्र नारायण का स्मरण करके उसने मुक्ति प्राप्त कर ली ॥४३॥ जो भक्त दिन-रात नाम के ही बल पर जीते हैं, वे सब वैकुण्ठ वासी हैं इसमें वेद ही प्रमाण है ॥४४॥ अश्वमेध आदि यज्ञों का फल स्वर्ग में भी दिखता है और उस फल को पूर्ण रूप से भोगकर मनुष्य स्वर्ग से गिर जाते हैं ॥४५॥ किन्तु हे देवि ! भगवान् विष्णु के भक्त

विष्णुभक्तास्तथा देवि भुक्त्वा भोगाननेकशः ।
वैकुण्ठं प्राप्य वा तेषां पुनरागमनंकदा ॥४६॥
विष्णुभक्तिः कृता येन विष्णुलोके वसत्यसौ ।
दृष्टान्तं पश्य देवेशि विष्णुभक्तिप्रसादतः ॥४७॥
ग्रावाणो जलमध्यस्थाः शतशस्तेन तारिताः ।
विना जलं सोमकान्तो विष्णुभक्तस्य मानसम् ॥४८॥
दर्दुरो वसते नीरे षट्पदो हि वनान्तरे। गन्धं वेत्ति कुमुद्वत्या भक्तो भक्तौ तथा हरेः ॥४९॥
गङ्गातटे वसन्त्येक एके वै शतयोजनम् । कश्चिद्गङ्गाफलं वेत्ति विष्णुभक्तिपरस्तथा ॥५०॥
कर्पूरागुरुभारं हि उष्ट्रो वहति नित्यशः। मध्यगन्धं न जानाति तथा विष्णुम्बहिर्मुखाः॥५१॥
मृगाः शालं हि जिघ्रन्ति कस्तूरीगन्धमिच्छवः ।
स्वनाभिस्थं न जानन्ति तथा विष्णुं बहिर्मुखाः ॥५२॥
उपदेशो हि मूर्खाणां वृथा वै नगनन्दिनि। तथैव विष्णुभक्तेर्हिउपदेशो बहिर्मुखे ॥५३॥
अहिना च पयः पीतं तत्पयो हि विषायते। तथा वै चान्यभक्तानां विष्णुभक्तिर्विषायते ॥५४॥
चक्षुर्विना यथा दीपं दृष्ट्वा दर्पणमेव च। समीपस्था न पश्यन्ति तथा विष्णुं बहिर्मुखाः॥५५॥
पावको हि यथा धूमैरादर्शोऽपि मलेन च। यथोल्बेनावृतो गर्भो देहे कृष्णस्तथावृतः ॥५६॥

इस लोक में अनेक प्रकार के भोगों को भोगकर वैकुण्ठ में जाते है और वहाँ से उन लोगों का पतन नहीं होता है ॥४६॥ जो व्यक्ति भगवान् विष्णु की भक्ति करता है वह विष्णु लोक में निवास करता है । हे देवि! उसका उदाहरण है कि भगवान् विष्णु की कृपा से जल में रहने वाले पुल के पत्थर सैकड़ों लोगों को पार उतारते हैं, चन्द्रकान्त मणि जल के विना ही भगवान् विष्णु के भक्त का मन हो गया ॥४७-४८॥ मेढक जल में रहता है और भौंरा वन में रहता है फिर भी कुमुदिनी के गन्ध का अनुभव करता है । उसी तरह भक्त श्रीहरि की भक्ति के फल का अनुमव करता है ॥४९॥ कुछ लोग गङ्गातट में रहते हैं और कुछलोग गङ्गा से सौ योजन दूर रहते हैं और गङ्गा के फल का अनुभव करते हैं ॥५०॥ ऊँट कर्पूर और अगरु को ढोता है किन्तु कर्पूर और अगरु के सुगन्ध को नहीं जानता है इसी तरह भगवान् विष्णु की भक्ति से पराङ्मुख उसके फल को नहीं जानते हैं ॥५१॥ कस्तूरी के गन्ध को प्राप्त करने वाले मृग शालवृक्ष को सूंघते हैं वे अपनी नाभी में विद्यमान कस्तूरी को नहीं जानते हैं । उसी तरह भगवान् विष्णु की भक्ति के विरोधी उसके फल को नहीं जानते हैं ॥५२॥ हे पार्वती ! मूर्खों को उपदेश देना व्यर्थ है उसी तरह विष्णु की भक्ति नहीं करने वाले को उसका उपदेश देना व्यर्थ है ॥५३॥ सर्प के द्वारा पिया गया दुग्ध विष वन जाता है उसी प्रकार दूसरे देवता के भक्तों के लिए विष्णु भक्ति विष का काम करती है ॥५४॥ नेत्र विहीन व्यक्ति दीपक अथवा दर्पण को देखकर अपने समीप में विद्यमान लोगों को नहीं देख पाते हैं उसी तरह विष्णु भक्तिविहीन अपने हृदय में विद्यमान भगवान् विष्णु को नहीं देख पाते हैं ॥५५॥ जिस तरह से धूम से अग्नि ढँक जाती है, दर्पण के मैल से अच्छन्न हो जाने पर उसमें किसी का मुख नहीं दिखता है, जिस तरह उल्व (झिल्ली) से गर्भस्थ शिशु बँधा रहता है, उसी तरह भगवान् कृष्ण देह से आच्छन्न हैं वे नहीं दिखायी पड़ते हैं ॥५६॥ जिस तरह दुग्ध में घी छिपा रहता है तथा तिल तें तेल सदैव रहता है हे

दुग्धे सर्पिः स्थितं यद्वत्तिले तैलं तु सर्वदा ।
चराचरे तथा विष्णुर्दृश्यतेनगनन्दिनि ॥५७॥
एकसूत्रे मणिगणा धार्यन्ते बहवो यथा। एवं ब्रह्मादिभिर्विश्वं संप्रोतं ब्रह्मचिन्मये॥५८॥
यथाकाष्ठे स्थितो वह्निर्मथनादेव दृश्यते। एवं सर्वगतो विष्णुर्ध्यानादेव प्रदृश्यते॥५९॥
आदिरेको भवेद्दीपस्तस्माज्जाताः सहस्रशः ।
एवमेकः स्थितो विष्णुः सर्वं व्याप्य प्रतिष्ठते ॥६०॥
यथा सूर्योदये ज्योतिः पुष्करे तिष्ठते सदा ।
दृश्यते बहुधा नीरे लोके विष्णुस्तथा हि सः ॥६१॥
मारुतः प्रकृतिस्थोऽपिनानागन्धवहः सदा । ईश्वरः सर्वजीवस्थोभुङ्क्तेप्रकृतिजान्गुणान्॥६२॥
शर्कराविषसंयोगान्नीरं भवति यादृशम्। स भूत्वा सदृशो ह्यात्मा कर्मणःफलमश्नुते ॥६३॥
उर्वी च नीरसंयोगान्नानावृक्षाप्रजायते। प्रकृतेर्गुणसंयोगान्नानायोनिषु जायते॥६४॥
गजे वै मशके चैव देवे वा मानुषेऽपिवा। नाधिको न च न्यूनो वै निष्ठोदेहेसनिश्चलः ॥६५॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ता ये चात्र भुवि मानवाः। देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाः किन्नरादयः॥६६॥
तेषु सर्वेषु दृश्यन्ते जले चन्द्रमसो यथा। ससच्चिदानन्दशिवः स महेशो हि दृश्यते ॥६७॥
स वै विष्णुस्तथा प्रोक्तः सोऽयं सर्वगतो हरिः ।
वेदान्तवेद्यःसर्वेशः कालातीतो ह्यनामयः ॥६८॥
एवं तं वेत्ति यो देवि स भक्तो नात्रसंशयः ।
एको हि बहुधाज्ञेयो बहुधाप्येक एवसः ॥६९॥

पार्वति ! उसी तरह भगवान् विष्णु चराचर में सदा विद्यमान हैं ॥५७॥ जिस तरह एक ही सूत्र में अनेक मणि गुंथे रहते हैं उसी तरह से ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण विश्व ज्ञान स्वरूप परमात्मा से सम्बद्ध रहता है ॥५८॥ जिस तरह काष्ठ में रहने वाली अग्नि मथने पर ही प्रकट होती है उसी तरह सर्वत्र व्यापक विष्णु ध्यान के द्वारा ही दिखते हैं ॥५९॥ आदि में एक ही दीपक रहता है और उससे हजारों दीपक प्रज्ज्वलित होते हैं उसी तरह एक ही भगवान् विष्णु सब में व्यापक हैं ॥६०॥ जिस तरह सूर्योदय होने पर प्रकाश कमल पर सदैव बना रहता है और जल में वह अनेक दिखता है उसी तरह एक ही भगवान् विष्णु सम्पूर्ण लोक में व्यापक हैं ॥६१॥ वायु प्रकृतिस्थ होकर भी अनेक प्रकार के सुगन्धों का वहन करती है, उसी तरह परमात्मा सभी जीवों में स्थित रहकर प्राकृतिक गुणों का भोग करते हैं ॥६२॥ जल में मिलकर जैसा जल होता है उसी तरह की हो जाती है । उसी तरह परमात्मा जीव के सदृश होकर प्राकृतिक गुणों का भोग करते हैं ॥६३॥ पृथिवी भी जल का संयोग पाकर अनेक प्रकार के वृक्षों को उत्पन्न करती है उसी तरह आत्मा प्रकृति का संयोग होकर अनेक योनियों में उत्पन्न होता है ॥६४॥ वह आत्मा हाथी, मच्छर, देवता अथवा मनुष्य इन सबों में समान रूप से रहता है वह किसी में भी न्यूनाधिक मात्रा में नहीं रहता है ॥६५॥ ब्रह्माजी से लेकर एकतृणपर्यन्त तथा पृथिवी पर रहने वाले मनुष्य, देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व तथा किन्नर आदि सबों में परमात्मा उसी तरह दिखता है जिस तरह एक ही चन्द्रमा अनेक आश्रमों में अनेक प्रकार का दिखता है। वही परमात्मा सच्चिदानन्द, शिव तथा महेश हो जाता है ॥६६-६७॥ वही सर्व व्यापक श्रीहरि विष्णु भी

नामरूपविभेदेन जल्प्यते बहुधा भुवि । चक्षुषा न रवेर्ज्योतिर्भानुना चक्षुरेधते ॥७०॥
परमात्मा तथाचात्मा प्रतिदेहे तु सर्वदा । घटेघटे यथाकाशस्तस्मिन्भग्ने यथास्थितः ॥७१॥
रूपे रूपे तथा त्वं हि भग्ने तस्मिन्सुनिश्चलः ।
यथाकाष्ठमयं रूपं पतते प्रभुणा विना ॥७२॥
क्रिमिमेदोमयो देहः पतते चात्मना विना । हेम्नो भवन्ति वर्णाश्च वह्निनायान्तिपूर्ववत् ॥७३॥
तद्वज्जीवाः प्रपद्यन्ते भक्ता वै पूर्वरूपताम् । स्वघनेनावृतं सूर्यं मूढाःपश्यन्तिनिष्प्रभम् ॥७४॥
तथाऽज्ञानधियो मूढा न जानन्ति तमीश्वरम् । निर्विकल्पं निराकारं वेदान्तैःपरिपठ्यते ॥७५॥
निराकाराच्च साकारं स्वेच्छया च प्रकाशते ।
तस्मात्संजातमाकाशं निःशब्दं गुणवर्जितम् ॥७६॥
आकाशान्मारुतो जातः सशब्दं च तदाऽभवत् ।
वातादजायत ज्योतिर्ज्योतिषश्चाभवज्जलम् ॥७७॥
तज्जलेरुक्मगर्भश्च विराड्वै विश्वरूपधृत् । तस्य नाभिसरोजे च ब्रह्माण्डानांच कोटयः ॥७८॥
प्रकृतिः पुरुषस्तस्मान्निर्मितं तु त्रिधा जगत् ।
तयोर्द्वयोश्च संयोगात्तत्वयोगोऽभ्यजायत ॥७९॥
सात्त्विकी विष्णुसंभूतिर्ब्रह्मा वै राजसः स्मृतः ।
शिवस्तु तामसः प्रोक्तएभिः सर्वं प्रवर्त्तितम् ॥८०॥
एका ब्राह्मी स्थितिर्लोके कर्मबीजानुसारतः ।
तया संहरते विष्णुः सर्वलोकानुशेषतः ॥८१॥

हैं वे ही वेदान्त वेद्य, सर्वेश, कालातीत और निर्दोष हैं ॥६८॥ हे देवि ! जो इस प्रकार से जानता है वह निःसन्देह भक्त है । उस एक भी प्रकार के परमात्मा को अनेक प्रकार से जानना चाहिए और अनेक प्रकार का भी वह एक ही है ॥६९॥ वह पृथिवी पर नाम और रूप के भेद से अनेक प्रकार का कहा जाता है। नेत्र के कारण सूर्य में ज्योति नहीं है अपितु सूर्य से ही नेत्र ज्योति बढ़ती हैं ॥७०॥ उसी तरह परमात्मा भी सभी देहों के भीतर आत्मा रूप से विद्यमान है, प्रत्येक घटों में रहने वाला आकाश घट के नष्ट हो जाने पर आकाश एक ही रह जाता है ॥७१॥ प्रत्येक रूप में तो आप ही व्याप्त हैं । उन रूपों के नष्ट हो जाने पर हे प्रभो ! आप अकेले बच जाते हैं । जिस तरह काष्ठमय रूप (मूर्ति) रक्षक के बिना विनष्ट हो जाता है ॥७२॥ जैसे क्रिमि और मेदामय शरीर आत्मा के बिना विनष्ट हो जाता है सुवर्ण भी विकृत हो जाता है अग्नि के द्वारा वह फिर चमकने लगता है ॥७३॥ उसी तरह भक्त जीव अपने पूर्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं । मेघ से आच्छन्न सूर्य को मूर्ख जीव निष्प्रभ कहते हैं ॥७४॥ इसी तरह अज्ञानी जीव उस ईश्वर को नहीं जानते हैं किन्तु वेदान्त ईश्वर को निर्विकल्प और निराकार बतलाते हैं ॥७५॥ ईश्वर अपनी इच्छा से ही निराकार से सकार हो जाता है । इसीलिए आकाश निःशब्द और गुण रहित हो गया ॥७६॥ वायु से तेज उत्पन्न हुआ और तेज से जल उत्पन्न हुआ ॥७७॥ उस जल में विश्व रूप धारण करने वाले हिरण्यगर्भ । उनकी नाभिकमल में करोड़ों ब्रह्माण्ड थे ॥७८॥ उससे प्रकृति और पुरुष हुए उससे तीन प्रकार का जगत् उन दोनों के संयोग से तत्त्वयोग हुआ ॥७९॥ सात्त्विक भगवान् विष्णु हैं । ब्रह्मा राजस

तिष्ठत्यसौ तदा तत्र भगवान्विष्णुरव्ययः। एवं सर्वगतो विष्णुरादिमध्यान्त एव च॥८२॥
अविद्यया न जानन्ति लोका वै कर्मनिश्चिताः ।
वर्णोचितानि कर्माणि यः कालेषु प्रकारयेत् ॥८३॥
यत्कर्म विष्णुदैवत्यं न हि गर्भस्य कारणम् ।
वेदान्तशास्त्रैमुनिभिः सर्वदैव विचार्यते ॥८४॥
ब्रह्मज्ञानमिदं देहे तदहं परिकीर्त्तये। शुभाशुभस्य कार्यं च कारणं मन एव हि ॥८५॥
मनसा शुध्यते सर्वं तदा ब्रह्म सनातनम्। मनएवसदा बन्धुर्मनएव सदा रिपुः॥८६॥
मनसा तारिताः केचिन्मनसा पातिताश्चके। मध्ये सर्वपरित्यागो बाह्ये कर्मतथाचरन्॥८७॥
एवमेवकृतं कर्म कुर्वन्नपि न लिप्यते। पद्मपत्रं यथानीरलेशैरपि न लिप्यते ॥८८॥
अग्निरग्नौ यथा क्षिप्तो भक्तया च किं प्रयोजनम् ।
यदाभक्तिरसो ज्ञातो न मुक्ती रोचते तदा ॥८९।
योगैरष्टविधैर्विष्णुर्न प्राप्यश्चेह जन्मनि ।
भक्तया वा प्राप्यते विष्णुः सर्वदा सुलभो भवेत् ॥९०॥
वेदान्तैः प्राप्यते ज्ञानं ज्ञानेन ज्ञेयमेव च। तत्तु ज्ञेयं तदा प्राप्तं तदा शून्यमिदं जगत् ॥९१॥
बलेन प्राप्यते विष्णुर्योगैरष्टविधैश्च किम्। सर्वेषामेव भावानां भावशुद्धिः प्रशस्यते ॥९२॥
आलिङ्ग्यते यथा कान्ता यथा भावस्तथा फलम् ।
उपानद्युक्तपादो हि वेत्ति चर्ममयीं महीम् ॥९३॥

हैं और शिव को तामस कहा गया है। इन तीनों से सबकुछ प्रवृत्त हुआ ॥८०॥ ब्राह्मी सृष्टि कर्मानुसार होती है। उसके द्वारा विष्णु सभी लोकों का संहार करते हैं ॥८१॥ उस समय भगवान् विष्णु निर्विकार रूप से रहते हैं। इस तरह सर्व व्यापक विष्णु भगवान् ही आदि, मध्य और अन्त स्वरूप रहते हैं ॥८२॥ कर्म के द्वारा निश्चित संसारी जीव अज्ञान के कारण नहीं जानते हैं जिससे फिर कोई विभिन्न कालों में वर्णानुसार कर्मों को करता है ॥८३॥ जो कर्म विष्णु दैवत होता है वह गर्भ में आने का कारण नहीं होता है। इस बात का विचार मुनिजन वेदान्त शास्त्र में करते हैं ॥८४॥ देह में होने वाले इस ब्रह्मज्ञान का मैं वर्णन करता हूँ। अच्छे तथा बुरे कार्य का कारण मन ही हैं ॥८५॥ उस समय सम्पूर्ण सनातन ब्रह्म मन से शुद्ध हो जाता है। मन ही सदा बन्धु बना रहता है और मन ही सदा शत्रु बना रहता है ॥८६॥ कुछ लोगों को मन ने ही तार दिया और कुछ लोग मन से ही पतित हो गये। बीच में सभी कर्मों का परित्याग और बाह्य कर्म का आचरण करने वाले होते हैं ॥८७॥ इस तरह से ही कर्मों को करते हुए ज्ञानी कर्मों के बन्धन में नहीं पड़ते हैं। यह उसी तरह से होता है जैसे कमल का पत्ता जल की बून्द से भी संश्लिष्ट नहीं होता है ॥८८॥ अग्नि को अग्नि में डाल दिया गया तो उसमें भक्ति की क्या आवश्यकता है ? जब भक्ति के आनन्द का ज्ञान हो जाता है तो उस समय मुक्ति अच्छी नहीं लगती है ॥८९॥ यदि इस जन्म में आठ प्रकार के योगों से भगवान् विष्णु की प्राप्ति नहीं होती है तो भक्ति से ही उनकी प्राप्ति हो जाती है तब तो वे सर्वदा सुलभ हैं ॥९०॥ वेदान्तों से ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ज्ञेय की प्राप्ति होती है। वह ज्ञेय जब प्राप्त हो जाता है तो यह जगत् शून्य हो जाता है ॥९१॥ बल (आत्मज्ञान) से

बुद्धिर्यथा विधा यस्य तद्वत्स मन्यते जगत् ।
दुग्धेन सिक्तो निम्बोऽपि कटुभावं न तु त्यजेत् ॥९४॥
प्रकृतिं यान्ति भूतानि उपदेशो निरर्थकः । छित्त्वा वै सहकारं च फलं पत्रंकथंलभेत्॥९५॥
इन्द्रियाणां सुखार्थेन वृथा जन्मकथं नयेत्। स्थाल्यां वैडूर्यमय्यां हिपच्यतेचौषधंयथा॥९६॥
दह्यते चागदस्तद्वद्वृथा जन्मकथं भवेत्। निधानं च गृहे क्षिप्त्वा शुभःसेवांकथंचरेत् ॥९७॥
त्यक्त्वा वैकुण्ठनाथं तमन्यमार्गे कथं रमेत्। भक्तिहीनैश्चतुर्वेदैःपठितैःकिं प्रयोजनम् ॥९८॥
श्वपचो भक्तियुक्तस्तु त्रिदशैरपि पूज्यते । स्वकरेकङ्कणं बद्ध्वा दर्पणैः किंप्रयोजनम् ॥९९॥
ब्रह्मरुद्रादिभिर्देवैर्दत्तैश्वर्याश्च सेवकाः। अर्पितं नैव गृह्णन्ति प्रभोश्चैव तु किञ्चन॥१००॥
अकिञ्चनाय भक्ताय दातुं नालं गतो वरम् ।
निःशरीरस्य कृष्णस्य तत्र ध्यानं कथं भवेत् ॥१०१॥
साकारं बहवो दृष्ट्वा गता भक्त्या च तत्पदम् ।
पूजाभक्तिः कथं शून्ये साकारे कथ्यते बुधैः ॥१०२॥
शून्यमार्गे कथं याति आधारेण विना नरः ।
साकारो यः स्वयं स्वामी निराकारः स वै प्रभुः ॥१०३॥
सकारो हि सुखेनैव निराकारो न दृश्यते । सेवारसश्च साकारे निराकारेण वै रसः ॥१०४॥

भगवान् विष्णु की प्राप्ति होती है । ऐसी स्थिति में आठ प्रकार के योगों से क्या लाभ है ? सभी जीवों में भाव की शुद्धि श्रेष्ठ है ॥९२॥ कान्ता का आलिङ्गन जिस भाव से किया जाता है उसी तरह का फल होता है । जो अपने पैर में जूता पहन रखा है उसको सारी पृथिवी चर्ममयी प्रतीत होती है ॥९३॥ जिसकी बुद्धि जैसे होती है वह उसी प्रकार का जगत् को मानता है । यदि नीम के पेड़ को दुग्ध से भी सींचा जाय तो भी वह कड़वा ही रहेगा ॥९४॥ सभी जीव अपनी प्रकृति का अनुसरण करते हैं उनके लिए उपदेश निरर्थक है जो आम को काट देता है उसको फल और पल्लव की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?॥९५॥ इन्द्रियों को सुख प्राप्ति के लिए होने मानने पर व्यर्थ जीवन को कैसे बिताया जाय ? जैसे वैडूर्य मणि की स्थाली में औषधि ही पकायी जाती है ॥९६॥ उसी तरह से रोग भस्म होता है तो वृथा जन्म कैसे हो सकता है ? अपने घर में छोड़कर कोई किसी की मङ्गलमयी सेवा कैसे कर सकता है ?॥९७॥ उन वैकुण्ठ के स्वामी को छोड़कर कोई भी दूसरे मार्ग को क्यों अपनाये जो भक्ति रहित हैं उनके द्वारा चारो वेदों का पाठ करने से क्या प्रयोजन हैं ?॥९८॥ भक्ति सम्पन्न चाण्डाल की भी पूजा देवता करते हैं जो अपने हाथ में कङ्कण को पहन लिया उसको दर्पण से क्या मतलब है ?॥९९॥ ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओं के द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य वाले सेवक अपने स्वामी के द्वारा दी गयी किसी वस्तु को नहीं लेते हैं ॥१००॥ अकिञ्चन भक्त को देने में वरदान समर्थ नहीं है । धन के द्वारा निःशरीर श्रीभगवान् का ध्यान कैसे हो सकता है ?॥१०१॥ बहुत सी साकार वस्तुओं को देखकर भक्ति के द्वारा उस पद को प्राप्त किया जा सकता है । विद्वानों का कहना है कि शून्य साकार में पूजा भक्ति कैसे हो सकती हैं ?॥१०२॥ बिना आधार के बिना मनुष्य शून्य मार्ग पर कैसे चल सकता है । जो स्वामी साकार हैं वे ही निराकार भी हैं ॥१०३॥

साकारेण निराकारो ज्ञायते स्वयमेव हि। हरिस्मृतिप्रसादेन रोमाञ्चिततनुर्यदा ॥१०५॥
नयनानन्दसलिलं मुक्तिर्दासी भवेत्तदा। बाल्ये च यत्कृपं पापं तत्कथं न विनश्यति॥१०६॥
पूजादानव्रतैस्तीर्थैर्जपहोमैस्त्वदर्पितैः । निजधर्मं परित्यज्य तपोघोरं कथं चरेत् ॥१०७॥
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः । विधिं सन्त्यज्य शास्त्रीयं तपोघोरं कथं चरेत्॥१०८॥
आश्रमेण विना मूढो नैव सिद्धिमवाप्नुयात् ।
ब्रह्मणा निर्मिता वर्णाः स्वे स्वे धर्मे नियोजिताः ॥१०९॥
स्वधर्मेणागतं द्रव्यं शुक्लद्रव्यं तदुच्यते। शुक्लद्रव्येण यद्दानं दीयते श्रद्धयान्वितम् ॥११०॥
स्वकल्पेनाऽपि महापुण्यं तस्य सङ्ख्या न विद्यते ।
नीचसङ्गेन यद्द्रव्यमानीतं गृहकर्मेसु ॥१११॥
तेन द्रव्येण यद्दानं कृतं वै मनुजादिभिः । तत्फलं न भवेत्ते वै नैव तत्फलभागिनः ॥११२॥
यादृशं कुरुते कर्म इन्द्रियाणां सुखेच्छया । तादृशीं योनिमाप्नोति मूढो हि ज्ञानदुर्बलः ॥११३॥
इह यत्कुरुते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते । पुण्यमाचरतः पुंसो यदि दुःखं प्रजायते ॥११४॥
तदा तापो न कर्त्तव्यस्तत्कर्म पूर्वदेहजम् । पापमाचरतः पुंसो जायते सुखमेव च ॥११५॥
न कर्त्तव्यस्तदा हर्षः सुखे तत्र सुरेश्वरि । रज्जुबद्धाश्च पशवः प्रभुणास्वेच्छया यथा ॥११६॥
नीयन्ते कर्मबन्धेन मनुजा अपि भूतले । शाखामृगो वनचरो नृत्यते च गृहे गृहे ॥११७॥

साकार का दर्शन आसानी से हो जाता है किन्तु निराकार तो दिखता ही नहीं है । साकार में सेवा रस की प्राप्ति होती है और निराकार में रस की प्राप्ति नहीं होती है ॥१०४॥ साकार के द्वारा निराकार स्वयं ज्ञात हो जाता है । श्रीहरि के स्मरण की प्रसन्नता से जब शरीर रोमाञ्चित हो जाता है ॥१०५॥ उस नेत्रों के आनन्द जन्य जल से मुक्ति दासी हो जाती है । बालक पन में किया गया पाप पूजा, दान, व्रत, तीर्थ, जप और होम को आपको अर्पित करने से क्यों नहीं विनष्ट होता है ? मनुष्य अपने धर्म का परित्याग करके घोर तपस्या क्यों करे ॥१०६-१०७॥ अपने धर्म पर मर मिटना कल्याणकारी होता है । अतएव शास्त्रीय कर्मो को त्यागकर घोर तपस्या क्यों की जाय ?॥१०८॥ आश्रम के बिना कोई भी मूर्ख सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता है । ब्रह्माजी ने वर्णो का निर्माण करके मनुष्यों को उनको अपने-अपने धर्म में नियुक्त कर दिया॥१०९॥ जो धर्म अपने धर्माचरण से प्राप्त होता है । वह शुक्ल धन कहलाता है । जो दान श्रद्धा पूर्वक शुक्ल धन में से दिया जाता है उस स्वल्प दान से महापुण्यों की प्राप्ति होती है, उसकी गणना नहीं की जा सकती है । नीचों के साथ सम्बध करके जो धन गृह कर्मो में लाया जाता है ॥११०-१११॥ उस द्रव्य से किये गये दान का फल मनुष्यों को नहीं प्राप्त होता है और मनुष्य उस दान का फलभागी नहीं होता है ॥११२॥ इन्द्रियों के सुख को प्राप्त करने की इच्छा से मनुष्य जैसा कर्म करता है वह उसी प्रकार की योनि प्राप्त करता है । मूर्ख का ज्ञान दुर्बल होता है ॥११३॥ मनुष्य इस लोक में जो कर्म करता है वह उसका फल परलोक में प्राप्त करता है । यदि मनुष्य पुण्य करता है तो उसको सुख प्राप्त होता है तो उसको सन्तप्त नहीं होना चाहिए । क्योंकि वह कर्म पूर्वजन्म का होता है और पापी मनुष्य को सुख ही मिलता है ॥११४-११५॥ हे सुरेश्वरि ! उस समय हर्ष का अनुभव नहीं करना चाहिए । रस्सी में बँधे

एवं च कर्मणा जीवा नीयन्ते सर्वयोनिषु । क्रीडताकन्दुको यद्वत्प्रेर्यते प्रभुणेच्छया ॥११८॥
कर्मणा वा तथा जन्तुर्नीयते सुखदुःखयोः। प्राणी स्वकर्मभिर्बद्धो न शक्तो बन्धनिग्रहे॥११९॥
देवा वै कर्मभिर्बद्धा ऋषयश्च तथा परे । कैलासे रुद्रदेहस्था भुजगा विषभोजिनः॥१२०॥
असमर्थाः सुधां भोक्तुं कर्मयोनिर्बलीयसी । नीरोगदेहदाता यो बुधैःसूर्यो हि कथ्यते॥१२१॥
तद्रथे सारथिः पङ्गुःकर्मयोनिर्बलीयसी। इन्द्रद्युम्नो हि राजर्षिर्गजत्वं कर्मणा गतः॥१२२॥
समर्थस्वामिना तस्मिन्कर्मयोनिर्वृथा कृता । रुद्रब्रह्मादयो देवा मानवाश्चासुराश्च ये॥१२३॥
ते सर्वे कर्मबद्धाश्च विचरन्ति महीतले। कर्माधीनं जगत्सर्वं विष्णुना निर्मितं पुरा ॥१२४॥
तत्कर्म केशवाधीनं रामनाम्ना विनश्यति। सर्वत्राऽपि स्थितं तोयं मुक्तिदं तु सितासिते॥१२५॥
एवमाचरतां कर्म मुक्तिदं केशवार्चनम्। इन्द्रियाणां सुखार्थाय यः कर्म मनसा चरेत्॥१२६॥
अहं कृतेन मन्येत केवलं देहमेव हि । मनसा संस्मरञ्जन्तुः प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥१२७॥
स पूर्वकर्मभोक्ता च अग्रे कर्म न वर्धते । प्रशंसन्ति ग्रहान्केचित्केचित्प्रेतपिशाचकान् ॥१२८॥

केचिद्देवान्प्रशंसन्ति ह्योषधीः केचिदूचिरे ।
केचिन्मन्त्रं च सिद्धिं च केचिद्बुद्धिं पराक्रमम् ॥१२९॥

उद्यमं साहसं धैर्यं केचिन्नीतिं बलं तथा । अहं कर्म प्रशंसामि सर्वे कर्मानुवर्तिनः ॥१३०॥

इति मे निश्चिता बुद्धिः कथ्यते पूर्वसूरिभिः ।
यदा पुण्यमयो जन्तुःपापं किञ्चिन्न विद्यते ॥१३१॥

जानवर को स्वामी जैसे अपनी इच्छानुसार ले चलता है । उस तरह भी पृथिवी पर कर्म के बन्धन में बँधा है । देखा जाता है कि वन में रहने वाला वानर घर-घर नाचता चलता है ॥११६-११७॥ कन्दुक क्रीड़ा करने वाले बालक के समान श्रीहरि की इच्छा से कर्मों के अनुसार जीवों को सुख तथा दुःख को भोगना पड़ता है कर्मों के बन्धन में बंधा हुआ जीव उस बन्धन को तोड़ने में समर्थ नहीं है ॥११८-११९॥ देवता, ऋषिगण भी कर्म के बन्धन में बद्ध हैं । कैलास में रुद्र के देह में लिपटे रहने वाले सर्प भी विष ही खाते हैं ॥१२०॥ वे अमृत को खाने में असमर्थ हैं क्योंकि कर्मजन्य योनि बलवती होती है । विद्वानों का कहना है कि सूर्य ही नीरोग देह देते हैं ॥१२१॥ फिर भी सूर्य के सारथि लङ्गड़े हैं अतएव कर्म योनि बलवती है । कर्म के कारण राजर्षि इन्द्रद्युम्न हाथी हो गये ॥१२२॥ सर्व समर्थ जगत् स्वामी श्रीभगवान् ने कर्म योनि को व्यर्थ बना दिया । रुद्र तथा ब्रह्मा आदि देवता तथा मानव एवं असुर ॥१२३॥ ये सबके सब कर्म के बन्धन में बँधकर पृथिवी पर संचरण करते हैं । पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने सम्पूर्ण जगत् को कर्म के अधीन बनाया ॥१२४॥ वह कर्म भगवान् केशव के अधीन है और राम का नाम लेने से विनष्ट हो जाता है । जल तो सर्वत्र विद्यमान है किन्तु प्रयाग के सङ्गम का ही सितासित जल मुक्ति प्रदान करने वाला है ॥१२५॥ इसी तरह कर्म का आचरण करने वालों में श्रीभगवान् केशव की अर्चना मुक्ति देने वाले हैं । जो पुरुष इन्द्रिय सुख प्राप्त करने के लिए मन से कर्म करता है ॥१२६॥ और अहङ्कार के कारण केवल देह को ही आत्मा मानता है । वह मन से श्रीभगवान् का स्मरण करे तो उसको प्रायश्चित करना चाहिए ॥१२७॥ वह पूर्वकृत कर्मों को भोगता है उसका कर्म आगे नहीं बढ़ता है । कुछ लोग ग्रहों की तो कुछ लोग प्रेतों और पिशाचों की प्रशंसा करते हैं ॥१२८॥ कुछ लोग देवताओं की प्रशंसा करते हैं और कुछ लोग औषधियों की प्रशंसा करते हैं कुछ लोग मन्त्र और उसकी सिद्धि की प्रशंसा करते हैं और कुछ लोग बुद्धि और पराक्रम की प्रशंसा करते हैं ॥१२९॥ कुछ लोग उद्यम, साहस, धैर्य की प्रशंसा करते हैं और कुछ लोग नीति और बल की प्रशंसा करते हैं किन्तु मैं तो कर्म की प्रशंसा करता हूँ क्योंकि

ज्ञान हि द्विविधं चैव तदा पुण्यं सुखं भवेत् ।
पापं पुण्यं समं यस्य तदा कर्मसु विद्यते ॥१३२॥
समं योगं यदा द्वन्दं तदानन्दपदं व्रजेत् । बाह्ये सर्वपरित्यागी मनसा संस्पृही भवेत् ॥१३३॥
तद्वृथाचरितं तस्य तेन तत्पापभोगिनः । बाह्ये करोति कर्माणि मनसा निःस्पृहो भवेत्॥१३४॥
त्यागोऽसौ मध्यमो ज्ञेयो न तु पूर्णफलं लभेत् ।
बाह्यमध्ये परित्यज्य बुद्ध्याशून्याबलम्बनम् ॥१३५॥
त्यागः स उत्तमो ज्ञेयो योगिनामपि दुर्लभः ।
क्रोधात्सर्वं त्यजन्त्येके केचिद्वादप्रभावतः ॥१३६॥
कष्टात्सर्वं त्यजन्येके त्यागाः सर्वे तु मध्यमाः ।
सुबुद्ध्या श्रद्धया युक्तो न क्रोधादिवशं गतः ॥१३७॥
कर्मणा ह्यवलिप्तोऽपि सुगति यामि मानवः ।
शुचीनां श्रीमतांगेहे धीमतां योगिनामपि ॥१३८॥
योगाद्भ्रष्टस्तु जायेत कुले वै द्विजपूर्वके। स्वल्पेनैव तु कालेन पूर्णयोगं च विन्दति॥१३९॥
चिदानन्दपदं गच्छेद्योगभक्तिप्रसादतः। पङ्केनैवयथापङ्कं रुधिरं रुधिरेण वै॥१४०॥
हिंसया कर्मणा कर्म कथं क्षालयितुं क्षमः ।
हिंसाकर्ममयो यज्ञः कथं कर्मक्षये क्षमः ॥१४१॥
स्वर्गकामकृता यज्ञाः स्वर्गे ते चाल्पसौख्यदाः ।
अनित्यानि तु सौख्यानि भवन्ति च बहून्यपि ॥१४२॥

सबों को कर्म का अनुसरण करना पड़ता है ॥१३०॥ पूर्वाचार्यों का कहना है कि यह हमारी निश्चित बुद्धि हैं । जब जीव पुण्यमय होता है तो उसमें पाप थोड़ा सा भी नहीं होता है ॥१३१॥ ज्ञान दो प्रकार का होता है उस समय पुण्य और सुख होता है । जिसके पाप और पुण्य दोनों एक बराबर हों तव तक जीव कर्मों में बँधा रहता है ॥१३२॥ जब योग समान होता है तो वह आनन्द को प्राप्त करता है । बाहर से वह सबकुछ का त्याग करता है किन्तु उसकी मन में आकांक्षा बनी रहती है ॥१३३॥ वह उसका आचरण व्यर्थ होता है और उसके कारण जीव पाप भोगते हैं । जो बाहर से तो कर्मों को करता है किन्तु मन से उसकी कोई स्पृहा नहीं रहती है ॥१३४॥ यह त्याग मध्यम कोटि का होता है उससे उसको त्याग का पूरा फल नहीं मिलता है । बाह्य आचरण को भी बीच में ही छोड़कर बुद्धि से ही शून्य का अवलम्वन करना चाहिए ॥१३५॥ वही त्याग उत्तम होता है यह योगियों के भी लिए दुर्लभ होता है । कुछ लोग क्रोध करके सबका परित्याग कर देते हैं और कुछ लोग वादों के प्रभाव से त्यागते हैं ॥१३६॥ कुछ लोग कष्ट के कारण सबकुछ त्यागते हैं ये सभी त्याग मध्यम कोटि के हैं । सुन्दर बुद्धि से तथा श्रद्धा पूर्वक तथा क्रोध न करके ॥१३७॥ जो कर्मों में लगे रहते हैं वे मनुष्य सुन्दर गति को प्राप्त करते हैं । पवित्र तथा ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुषों के घर अथवा योगियों तथा बुद्धिमान ब्राह्मणों के घर में ॥१३८॥ योगभ्रष्ट पुरुष जन्म लेता है और वह थोड़े ही समय में पूर्ण योग को प्राप्त कर लेता है ॥१३९॥ वह योग तथा भक्ति की कृपा से ज्ञानानन्दमय पद को प्राप्त करता है । कीचड़ से कीचड़ को या खून से खून को ॥१४०॥ एवं हिंसा कर्म से कोई कर्म को कैसे दूर कर सकता है । यज्ञ तो हिंसा कर्ममय होता है वह कर्मों को कैसे नष्ट कर सकता है ॥१४१॥ स्वर्ग की कामना से किए गये यज्ञ स्वर्ग में अल्प फल प्रदान करते हैं । वहुत सभी सुख अनित्य होते हैं ॥१४२॥ श्रीहरि की भक्ति के बिना उन सबों से नित्य सुख नहीं मिलता है । सभी

नित्यं सौख्यं न तेष्वस्ति विना भक्तया हरेः क्वचित् ।
सार्वभौमसुखं राज्यं स्वर्गे चाऽपि तथा सुखम् ॥१४३॥
अन्यत्किञ्चिन्न वाञ्छामि गर्भवासाद्बिभेम्यहम् ।
ग्रावा वै भिद्यते लोहैर्माणिक्यं नैव भिद्यते ॥१४४॥
नानाकाममयी बुद्ध्याविष्णुभक्तिर्नभिद्यते। बकोजलचरान्भुङ्क्तेमण्डूकादींश्च वर्जयेत्॥१४५॥
तथा यमः सर्वहन्ता वर्जयेत्कृष्णसेवकान् । यो रक्षति स हर्ता च स वै पालकउच्यते ॥१४६॥
अपराधशतैर्युक्तं स्वस्थाने नय मामितः। यथाकृतापराधस्य कृष्णस्तस्य कृपाकरः॥१४७॥
फलं च लभते वाद्यरक्षकः किङ्करोति चेत् ।
एवमात्मा च देहेऽस्मिन्परवश्यकृपाकरः ॥१४८॥
प्राप्तो न पारः शनकैर्मल्लैर्युक्तानवापिता। व्याधस्य मुक्तिदाताचकुब्जकातारितास्वयम्॥१४९॥
ब्रह्माद्यैर्दुर्लभः स्वप्ने सुलभो गोपमन्दिरे । गोपोच्छिष्टं यदा भुक्तं तदा ते तारिताःस्वयम्॥१५०॥
योगिभिर्गीयते नित्यं परमात्मा जनार्दनः। अव्ययः पुरुषः श्रीमान्दृष्टवा तैर्देवि विस्मये॥१५१॥
एतत्स्मरणकं दिव्यं ये पठन्ति दिनेदिने। सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम्॥१५२॥
अनयाभावबुद्ध्या च पठनं विष्णुसन्निधौ। इह लोके सुखं भुक्तवा परं पदमवाप्नुयात् ॥१५३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे विष्णुस्मरणं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥
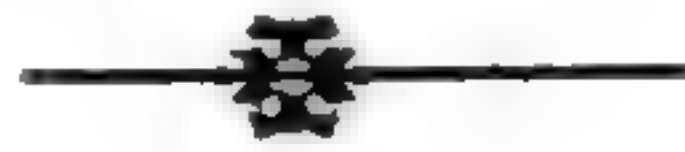
प्रकार के सुखों से युक्त राज्य जैसा होता है उसी तरह स्वर्ग में भी सुख होता है ॥१४३॥ मैं दूसरा कुछ नहीं चाहता हूँ मैं गर्भ वास से डरता हूँ लोहे से पत्थर को ही काटा जा सकता है मणि को नहीं ॥१४४॥ अनेक प्रकार की कामना से युक्त बुद्धि के द्वारा भगवान् विष्णु की भक्ति का भेद नहीं होता है । बगुला मछलियों को ही खाता है मेढकों को नहीं खाता ॥१४५॥ उसी तरह यम सबों को मारते हैं किन्तु भगवान् विष्णु के भक्तों को नहीं । जो संसार की रक्षा करता है, वही उसका संहार भी करता है और वही उसका पालक भी है ॥१४६॥ हे प्रभो ! सैकड़ों अपराधों से युक्त मुझे अपने लोक में ले चलें । जैसे अपराधियों के ऊपर भी श्रीभगवान् कृपा करते हैं ॥१४७॥ यदि बाजे का रक्षक कुछ करता है तो वह भी उसका फल भोगता है । इसी तरह आत्मा भी इस देह पर परवश होकर भी कृपा करता है ॥१४८॥ शनक भी उससे पार नहीं पाये मल्लों से युक्त पिता भी नहीं पार पाये । उस परमात्मा ने कुब्जा का स्वयम् उद्धार किया और उन्होंने व्याध को भी मुक्ति प्रदान किया ॥१४९॥ ब्रह्मा आदि देवताओं को वह परमात्मा स्वप्न में भी दुर्लभ हैं और गोपों के घर में सुलभ हो गये । जब परमात्मा गोपों का जूठा खाये उसी समय में उन सबों को तार दिया ॥१५०॥ देवि ! अव्यय पुरुष परमात्मा को देखकर आश्चर्यित योगिजन सदैव भगवान् जनार्दन की स्तुति करते हैं । इस स्तुति का जो प्रतिदिन पाठ करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥१५१-१५२॥ इस भाव बुद्धि से जो इसका पाठ भगवान् विष्णु के सन्निकट करता है वह इस लोक में सुख भोगकर परं पद को प्राप्त करता है ॥१५३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड में विष्णु स्मरण नामक एक सौ इकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३१।।

एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

द्वीपेऽस्मिन्यानि तीर्थानि तानि मे वद सुव्रत ! ।
द्वीपानां द्वीपराजोऽयं सर्वदा भुवि निर्मितः ॥
सङ्ख्यया त्वं वद स्वामिन्कृपां कृत्वा ममोपरि ॥१॥

महादेव उवाच

सर्वगः सर्वभूतेषु द्रष्टव्यः सर्वतो भुवि । सप्तलोकेषु यत्किञ्चिद्दृश्यते सचराचरम् ॥२॥
तत्त्वं तेन विना देवि न दृष्टं न श्रुतं मया । अतो विष्णुर्महादेवः केशवः क्लेशनाशनः ॥३॥
तीर्थरूपेण वर्तेत द्वीपे ह्यस्मिन्सुरेश्वरि । तानि तीर्थानि वक्ष्यामि साम्प्रतं नाऽत्रसंशयः॥४॥
प्रथमं पुष्करं क्षेत्रं तीर्थानां प्रवरं शुभम् । वाराणसी द्वितीयं तु क्षेत्रं मुक्तिप्रदायकम्॥५॥
तृतीयं नैमिषं क्षेत्रमृषीणां पावनं स्मृतम् । प्रयागं वै चतुर्थं तु तीर्थानामुत्तमं स्मृतम् ॥६॥
कार्मुकं पञ्चमं प्रोक्तमुत्पन्नं गन्धमादने । षष्ठं वै मानसं तीर्थं देवानां रम्यमेव च ॥७॥
सप्तमं विश्वकायं तु ह्यवरे पर्वते शुभे । अष्टमं गौतमाख्यं च मन्दरे निर्मितं पुरा॥८॥
मदोत्कटं तु नवमं दशमं रथचैत्रकम् । एकादशं कान्यकुब्जं यत्र तिष्ठति वामनः ॥९॥
द्वादशं मलयं चैव कुब्जाम्रकमतःपरम् । विश्वेश्वरं गिरिकर्णं केदारं गतिदायकम्॥१०॥
बाह्यं हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे गोपकं तथा । स्थानेश्वरं हिमाद्रौ च विल्वके विल्वपत्रिकम् ॥११॥
श्रीशैले माधवं तीर्थं भद्रं भद्रेश्वरे तथा । वाराहे विजयं प्रोक्तं वैष्णवं वैष्णवे गिरौ ॥१२॥

पुष्कर आदि अनेक तीर्थों का माहात्म्य वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— हे सुव्रत ! इस जम्बूद्वीप में जो तीर्थ हैं, उन्हें आप मुझे वतलाइये । यह पृथिवी पर विद्यमान सभी द्वीपों का द्वीपराज है । हे स्वामिन् ! आप मुझ पर कृपा करके इन सवों की संख्या वतलाइये ॥१॥ **महादेवजी ने कहा**— पृथिवी पर सभी भूतों में विद्यमान जो तत्त्व है उसका दर्शन अवश्य करना चाहिए । सभी लोकों में जो कुछ भी चर और दिखते हैं ॥२॥ उनमें विद्यमान परमात्म तत्त्व है, उनके विना मुझे कुछ भी नहीं दिखता है और न मैंने सुना है । अतएव भगवान् विष्णु ही महान देवता हैं आँखे ही क्लोशों को दूर करती हैं ॥३॥ हे सुरेश्वरि ! इस द्वीप में जो तीर्थ हैं उन सभी तीर्थों को मैं कहता हूँ इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥४॥ सभी तीर्थों में श्रेष्ठ पुष्कर क्षेत्र प्रथम तीर्थ है । दूसरा मुक्ति प्रदान करने वाला वाराणसी तीर्थ है ॥५॥ ऋषियों को पवित्र करने वाला तीसरा नैमिष क्षेत्र है । सभी तीर्थों में उत्तम प्रयाग तीर्थ चौथा है ॥६॥ पाँचवाँ कार्मुक तीर्थ है और गन्धमादन पर्वत पर उत्पन्न हुआ है । छठा देवताओं के लिए मानस तीर्थ है ॥७॥ शुभ अवर पर्वत पर विद्यमान सातवाँ विश्वकाय तीर्थ है । प्राचीन काल में मन्दराचल पर निर्मित आठवाँ गौतम तीर्थ है ॥८॥ नवाँ मदोत्कट तीर्थ है और दशवाँ चैत्ररथ तीर्थ है । ग्यारहवाँ तीर्थ कान्यकुब्ज है और वह वामन भगवान् का तीर्थ है ॥९॥ वारहवाँ मलयतीर्थ है और तेरहवाँ कुब्जाम्रक तीर्थ है । सद्गति प्रदान करने वाले विश्वेश्वर तीर्थ, गिरिकर्ण तीर्थ और केदार तीर्थ हैं॥१०॥ हिमालय से वाहर गोकर्ण पर गोपक तीर्थ है । हिमालय पर स्थानेश्वर तीर्थ है और विल्वक पर्वत

रौद्रं तु रुद्रकोटे तु पैत्र्यं कालञ्जरे गिरौ । कम्पिले काम्पिलं तीर्थं कर्कोटकं तथा ॥१३॥
शालग्रामोद्भवं तीर्थं गल्लिकायां सुरेश्वरि ! ।
नर्मदायां शिवाख्यं तु मायायां विश्वरूपकम् ॥१४॥
उत्पलाक्षसहस्राक्षं जातं वै रैवते गिरौ । गङ्गायां पितृतीर्थं च विष्णुपादोद्भवं तथा॥१५॥
विपाशायां विपापा च पाटले पुण्ड्रवर्धनम्। नारायणं सुपार्श्वे तु त्रिकूटे विष्णुमन्दिरम् ॥१६॥
विपुले विपुलं नाम कल्याणं मलयाचले । कौरवं कोटितीर्थे च सुगन्धं गन्धमादने॥१७॥
कुब्जाम्रके त्रिसन्ध्यं तु गङ्गाद्वारे हरिप्रियम् ।
शैलं विन्ध्यप्रदेशे तु बदर्यां सारस्वतं स्मृतम् ॥१८॥
कालिन्द्यां कालरूपं च सह्ये वै सायकं स्मृतम् ।
चान्द्रं चन्द्रप्रदेशे तु रमणं तीर्थनायकम् ॥१९॥
यमुनायां मृगाख्यं तु करवीरे कुरूद्भवम्। विनायके पर्वते वै ह्युमाख्यं तीर्थमेव च ॥२०॥
आरोग्यं भास्करे देशे महाकाले महेश्वरम्। तीर्थमभयदं नामामृताख्यं विन्ध्यकन्धरे ॥२१॥
मण्डपे विश्वरूपं च स्वाहाख्यं चेश्वरे पुरे । वैगलेयं प्रचण्डायां चाण्डिकं मरकण्टके॥२२॥
सोमेश्वरे तथा तीर्थे प्रभासे पुष्करं तथा । देवमात्रं सरस्वत्यां पारावततटे स्थितम् ॥२३॥
महालयं महापद्मे पयोष्ण्यां पिङ्गलेश्वरम्। सिंहिकायां तथा तीर्थं सौरवे रविसंज्ञकम्॥२४॥
कार्त्तिकं कृत्तिकाक्षेत्रे शाङ्करं शङ्करे गिरौ । उत्पलाख्यं ततो दिव्यं सुभद्रासिन्धुसङ्गमे ॥२५॥

पर विल्वपत्रिक तीर्थ है ॥११॥ श्रीशैल पर माधव तीर्थ है और भद्रेश्वर में भद्र तीर्थ है वाराह पर्वत पर विजय तीर्थ है, वैष्णव पर्वत पर वैष्णव तीर्थ है ॥१२॥ रुद्रकोटि में रौद्र तीर्थ है कालञ्जर गिरि पर पितृतीर्थ है । कम्पिल में कम्पिल तीर्थ है । मुकुट क्षेत्र में कर्कोटक तीर्थ है ॥१३॥ शालग्राम पर्वत पर उद्भव तीर्थ वह गल्लिका में है । नर्मदा में शिव तीर्थ है, मायापुरी में विश्वरूपक तीर्थ है । रैवतक गिरि पर उत्पलाक्ष और सहस्राक्ष तीर्थ हैं । गङ्गा नदी में पितृतीर्थ है और विष्णु पादोहभव तीर्थ है ॥१४-१५॥ विपाशा में विपाश तीर्थ है पाटल क्षेत्र में पुण्ड्रवर्धन तीर्थ है । सुपार्श्व पर्वत पर नारायण तीर्थ है पाटल क्षेत्र में पुण्ड्र वर्धन तीर्थ है । सुपार्श्व पर्वत पर नारायण तीर्थ है त्रिकूट पर्वत पर विष्णु मन्दिर तीर्थ है॥१६॥ विपुल पर्वत विपुल तीर्थ है मलयाचल पर कल्याण तीर्थ है । कोटितीर्थ में कौरव तीर्थ है । गन्धमादन पर्वत पर सुगन्ध तीर्थ है ॥१७॥ कुब्जाम्रक पर त्रिसन्ध्य तीर्थ है, गङ्गाद्वार में हरिप्रिय तीर्थ है। विन्ध्य प्रदेश में शैल तीर्थ है बदरी क्षेत्र में सारस्वत तीर्थ है ॥१८॥ कालिन्दी में काल रूप तीर्थ है, सह्य पर्वत पर सायक तीर्थ है । चन्द्र प्रदेश में चान्द्रतीर्थ है रमण तीर्थ तीर्थों का नायक है ॥१९॥ यमुना में मृग तीर्थ है करवीर पर्वत पर कुरुद्भव तीर्थ है । विनायक पर्वत पर उमा नामक तीर्थ है ॥२०॥ भास्कर क्षेत्र में आरोग्य तीर्थ है, महाकाल क्षेत्र में महेश्वर तीर्थ है । विन्ध्य पर्वत पर अभय प्रदान करने वाला अमृत तीर्थ है ॥२१॥ मण्डप क्षेत्र में विश्वरूप तीर्थ है और ईश्वर पुर में स्वाहा तीर्थ है । प्रचण्डा क्षेत्र में वैगलेय तीर्थ है अमर कण्टक मे चाण्डिक तीर्थ है ॥२२॥ प्रभास क्षेत्र में सोमेश्वर और पुष्कर तीर्थ हैं । सरस्वती नदी के पारावत तट पर स्थित देवमात्र तीर्थ है ॥२३॥ महापद्म क्षेत्र में महालय तीर्थ है । सिंहिका में तथा सौरव में रवि तीर्थ है ॥२४॥ कृत्तिका क्षेत्र में कार्तिक तीर्थ है, शङ्कर पर्वत पर शङ्कर तीर्थ है । सुभद्रा

गाणपत्यं ततश्चैव पर्वते विष्णुसंज्ञके। जालन्धरे ततः प्रोक्तं तीर्थं विष्णुमुखं च यत्॥२६॥
तारे वै तारकं प्रोक्तं पर्वते विष्णुसंज्ञके । देवदारुवने पोण्ड्रं पौष्कं काश्मीरमण्डले ॥२७॥
भौमं हिमं हिमाद्रौ च तुष्टिकं पौष्टिकं पुनः ।
कपालमोचनं तीर्थं जातं मायापुरे तथा ॥२८॥
शङ्खोद्धारं ततश्चैव देवं वैशङ्खधारकम्। पिण्डे वै पिण्डनं नाम सिद्धे वैखानसं भवेत्॥२९॥
अच्छोदे विष्णुकामं तु धर्मकामार्थमोक्षदम्। औषध्यंचोत्तरे कूले कुशद्वीपे कुशोदकम् ॥३०॥
मन्मथं हेमकूटे तु कुमुदे सत्यवादनम्। वन्दन्त्यामाश्वकं तीर्थं विन्ध्ये वै मातृकं स्मृतम्॥३१॥
चित्ते ब्रह्ममयं तीर्थं तीर्थानां पावनं स्मृतम्। एतेषां सर्वतीर्थानामुत्तमं शृणु सुन्दरि ॥३२॥
विष्णोर्नामसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति । ब्रह्महा हेमहारी वा बालहा गोघ्न एव च ॥३३॥
मुच्यते नाममात्रेण प्रसादात्केशवस्य तु । कलौ द्वारवती रम्या धन्यो देवो जनार्दनः ॥३४॥
ये पश्यन्ति नरा देवं मुक्तिस्तेषां सुनिश्चला। एवं धन्यतमं देवं विष्णुं सर्वेश्वरं प्रभुम् ॥३५॥
चिन्तयामि महादेवि विद्वत्संस्थो जनार्दनम् । अष्टोत्तरं तु तीर्थानां शतमेतदुदाहृतम् ॥३६॥
यो जपेच्छृणुयाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते। एषु तीर्थेषु यः स्नात्वा पश्येन्नारायणं हरिम् ॥३७॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम्। जगन्नाथं महातीर्थं लोकानां पावनं स्मृतम् ॥३८॥
ये गच्छन्ति नरश्रेष्ठास्तेऽपि यान्तिपरां गतिम्। अष्ठोत्तरशतं पुण्यं श्रावयेत्पितृकर्मणि ॥३९॥

और सिन्धु नदी के सङ्गम में उत्पल नामक दिव्य तीर्थ है ॥२५॥ विष्णु पर्वत पर गाणापत्य तीर्थ है और जालन्धर में विष्णुा मुख नामक तीर्थ बतलाया गया है ॥२६॥ तार पर्वत पर तारक तीर्थ बतलाया गया है यह विष्णु पर्वत पर है । देवदारु वन में पौण्ड्र तीर्थ है । कश्मीर मण्डल में पौष्टक तीर्थ है ॥२७॥ हिमाद्रि पर भौम तथा हिम तीर्थ हैं । तुष्टिक, पौष्टिक तीर्थ भी है । मायापुरी में कपाल मोचन तीर्थ है॥२८॥ वहीं पर शङ्खोद्धार देव तथा शङ्ख धारक तीर्थ है । पिण्ड क्षेत्र में पिण्डन तीर्थ है, सिद्ध क्षेत्र में वैखानस तीर्थ है ॥२९॥ अच्छोद सरोवर पर विष्णुकाम तीर्थ है वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है । उसके उत्तर तट पर औषध्य तीर्थ है कुशद्वीप में कुशोदक तीर्थ है ॥३०॥ हेमकूट पर्वत पर मन्मथ तीर्थ है, कुमुद पर्वत पर सत्यवादन तीर्थ है । बदन्ती में अश्वक तीर्थ है । और विन्ध्य पर्वत पर मातृक तीर्थ है ॥३१॥ चित्त में ब्रह्ममय तीर्थ है यह सभी तीथो को पवित्र करने वाला है । हे सुन्दरि! इन सभी तीर्थों में जो उत्तम तीर्थ है उसे मैं बतलाता हूँ सुनो ॥३२॥ भगवान् विष्णु के नाम के समान कोई तीर्थ न तो हुआ और न होने वाला है । ब्रह्मघाती, सुवर्ण चुराने वाला, बालघाती, गौघाती भी॥३३॥ इससे भगवान् विष्णु की कृपा से पाप मुक्त हो जाते हैं । कलियुग में द्वारकापुरी धन्य है और भगवान् जनार्दन धन्य हैं ॥३४॥ जो लोग वहाँ भगवान् का दर्शन करते हैं उनकी मुक्ति निश्चित है । हे महादेवि! मैं इस तरह से सर्वेश्वर भगवान् विष्णु का चिन्तन करता हूँ । भगवान् जनार्दन को विद्वान जानते हैं उन एक सौ आठ तीर्थों का मैंने वर्णन किया ॥३५-३६॥ जो इन तीर्थों को पढता है अथवा सुनता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है । वह इन तीर्थों में स्नान करके श्रीहरि का दर्शन करता है ॥३७॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के परं पद में जाता है । मनुष्यों के लिए जगन्नाथ पुरी को महातीर्थ कहा गया है । वहाँ जो श्रेष्ठ मनुष्य जाते हैं वे परम गति को प्राप्त करते हैं । इन पवित्र तीर्थों का श्राद्ध

इहलोके सुखं भुक्त्वा याति विष्णोः परं पदम् ।
गोदाने श्राद्धदाने वा अहन्यहनि वा पुनः ॥
देवार्चनविधौ विद्वान्परं ब्रह्माऽधिगच्छति ॥४०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तर खण्डे जम्बूद्वीपतीर्थवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

एक सौ तैंतिसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

वेत्रवत्यास्तु माहात्म्यं वक्ष्यामि सुन्दरि ! । यत्र स्नात्वा विमुच्यन्ते यावदाभूतसंप्लवम् ॥१॥
वृत्रेण च कृतः कूपो महागम्भीरसंज्ञकः । कूपात्सा निःसृता देवी महापापौघनाशिनी॥२॥
यथा गङ्गा तथेयं च सरिच्छ्रेष्टा सुरोत्तमे । अस्या दर्शनमात्रेणपापौघायान्ति च क्षयम्॥३॥
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम्। यच्छ्रुत्वा पापिनो दोषैर्विमुक्ताः कर्मबन्धनात् ॥४॥
चम्पके नगरे चैव राजा राज्यं करोति सः ।
सदा दुष्टो दुष्टरूरूपो जनानां स प्रपीडकः ॥५॥
अधमोऽधर्मरूपश्च विष्णुनिन्दापरायणः । देवद्विजनिहन्ता च आश्रमाणां विदूषकः ॥६॥

के समय पाठ सुनाना चाहिए ॥३८-३९॥ ऐसा करने वाला इस लोक में सुख को भोग कर परमगति को प्राप्त करते हैं । गोदान के समय या श्राद्ध के समय या प्रतिदिन देव पूजन के समय पढ़ने वाला विद्वान् परं ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥४०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के जम्बूद्वीप के तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३२।।

वेत्रवती नदी का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे सुन्दरि ! मैं वेत्रवती का माहात्म्य बतलाता हूँ उस तुम सुनो उसमें स्नान करने वाले सभी पापों से महाप्रलय काल तक मुक्त रहते हैं ॥१॥ वृत्रासुर ने महागम्भीर नामक कूप का निर्माण किया । उसी कूप से महान पाप समूह को विनष्ट करने वाली वेत्रवती नामक नदी निकली है । हे देवताओं में श्रेष्ठ पार्वति यह नदी गङ्गा के ही समान है । इसका केवल दर्शन करने से पाप समूह विनष्ट हो जाते हैं ॥२-३॥ हे देवि ! सुनो मैं प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ । इसको सुनकर पापी भी पाप मुक्त होकर कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥४॥ चम्पक नामक नगर में धर्म रूप नामक अधम, दुष्ट और लोगों को पीडित करने वाला राजा राज्य करता था वह सदा भगवान् विष्णु की निन्दा करता था । वह ब्राह्मणों और देवताओं को मारने वाला तथा आश्रमों को दूषित करने वाला था ॥५-६॥ वह वेद की निन्दा

वेदनिन्दापरः श्रीमान्मूर्खो वा निर्घृणःशठः। असच्छास्त्रेषु निरतः परदाराभिमर्शकः ॥७॥
विदारुणेति नामा च संजातो मूर्ख एव च। कदाचिद्दैवयोगेन आगतस्तां नदीं प्रति ॥८॥

आखेटकसमायुक्तः स्वयं कुष्ठी सुरेश्वरि ! ।
महापापादयं जातो ब्राह्मणानां च निन्दनात् ॥९॥
वृथावादी दुरात्मा च शठो वै निर्घृणः पशुः ।
वेदनिन्दारतो नित्यं गोशास्त्राणां प्रदूषकः ॥१०॥

एवं विधो वने भ्राम्यंस्तृषार्तः ससुहृद्वृतः। अश्वादुत्तीर्य राजासौ जलंपीत्वागृहंगतः ॥११॥
तेनैवोदकपानेन गतं कुष्ठं न संशयः। बुद्धिस्तु निर्मला जाता तस्य राज्ञो विशेषतः ॥१२॥
विष्णौ भक्तिः समुत्पन्ना तदातस्य सुरेश्वरि। ततः प्रभृति कालेन स्नानं वै कृतवान्सदा ॥१३॥
निर्मलो बहुरूपाढ्यो जातस्तत्र सुरेश्वरि। इह लोके सुखं भुक्त्वा कृत्वा यज्ञाननेकशः ॥१४॥

विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा स गतो वैष्णवं पदम् ।
इति ज्ञात्वा तु भो देवि ! वेत्रवत्यां विशेषतः ॥१५॥
स्नानं कुर्वन्ति ये विप्रास्ते मुक्ता नगनन्दिनि ।
राजन्योवाथ वैश्योवाशूद्रोवा सुरसत्तमे ॥१६॥
येऽत्र स्नानं प्रकुर्वन्ति ते मुक्ताः पापबन्धनात् ।
कार्त्तिके वाथ माघे वा बाह्यो वा वेदनिन्दकः ॥१७॥
सरितां सङ्गमे स्नात्वा मुच्यते देवि किल्विषात् ।
साभ्रमत्याः समं यत्र तस्याः सङ्गः प्रदृश्यते ॥१८॥

करता था एवं ऐश्वर्य सम्पन्न मूर्ख, शठ और निष्ठुर था। वह असत शास्त्र का ही सेवन करता था तथा परस्त्रीग्राही था। उसका नाम विदारुण भी था, वह जन्मतः मूर्ख था। हे सुरेश्वरि ! वह आखेट के साथ नेत्रवती नदी के तट पर आया। वह स्वयं कुष्ठ रोग ग्रस्त था वह महापाप के कारण तथा ब्राह्मणों का निन्दक होने के कारण कुष्ठी हो गया था ॥७-९॥ वह व्यर्थ बोलने वाला, दुष्ट, शठ और निष्ठुर एवं पशु के समान था। वह सदा वेदों की निन्दा करता था तथा गौओं और शास्त्रों को दूषित करता था ॥१०॥ इस प्रकार से वह वन में अपने मित्रों के साथ घूम रहा था और वह प्यास से व्याकुल हो गया। वह राजा घोड़े से उतरकर नदी का जल पिया और अपने घर चला गया ॥११॥ उस जल के पीने से उसका कुष्ठ रोग समाप्त हो गया विशेष रूप से राजा की बुद्धि निर्मल हो गयी ॥१२॥ हे सुरेश्वरि ! उसके बाद उसकी भगवान् विष्णु में भक्ति उत्पन्न हो गयी। उसी समय से वह प्रतिदिन स्नान करने लगा ॥१३॥ हे सुरेश्वरि, वह निर्मल, अत्यधिक सुन्दर हो गया। इस लोक में सुख भोगकर तथा अनेक यज्ञों को करके तथा ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर भगवान् विष्णु के लोक में चला गया। हे देवि ! इस बात को जानकर जो लोग विशेष रूप से वेत्रवती नदी में स्नान करते हैं हे पार्वति ! वे मुक्त हो जाते हैं। वे चाहे क्षत्रिय हों, या वैश्य हो, या शूद्र हों वे इस नदी में स्नान करके पाप के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। कार्तिक में या माघ में चाहे वेद बाह्य हो या वेद निन्दक हो ॥१४-१७॥ दो नदियों के सङ्गम में स्नान करके पाप मुक्त

तत्र स्नात्वा विशेषेण मुच्यते ब्रह्महा सदा। खेटकं नगरं दिव्यं स्वर्गरूपं तु वाऽनघे ॥१९॥
ब्रह्मणा तत्र वै देवि योगाश्च बहवः कृताः ।
तत्र स्नात्वा च भुत्तवा च पुनर्जन्मनविद्यते ॥२०॥
सा द्वितीया स्मृता गङ्गा कलौ देवि ! विशेषतः ।
ये नराः सुखमिच्छन्ति धनमिच्छन्ति ये नराः ॥२१॥
स्वर्गमिच्छन्ति ये लोकास्ते वै स्नात्वा पुनःपुनः ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥२२॥
सूर्यवंशे च ये जाताः सोमवंशे तथैव च। आगता वेत्रवत्यां तु स्नात्वा निर्वृतिमागताः ॥२३॥
दर्शनाद्धरते दुःखंस्पर्शनान्मानसं ह्यघम् । स्नात्वा भुत्तवा तथादेवि मुक्तिभागीनसंशयः॥२४॥
स्नानाज्जपात्तथा होमादनन्तं फलमश्नुते ।
गत्वा वाराणसीतीर्थं भत्तया चान्द्रायणं चरेत् ॥२५॥
तत्र गत्वा महत्पुण्यं तत्पुण्यं सुरसत्तमे। वेत्रवत्यां विशेषेण पञ्चत्वं यदि गच्छति ॥२६॥
स वै चतुर्भुजो भूत्वा याति विष्णोःपरम्पदम् ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि ये देवाः पितरस्तथा ॥२७॥
ते सर्वे च वसन्तीह वेत्रवत्यां सुरेश्वरि। किमन्यद्बहुनोक्तेन भूयोभूयो वरानने ॥२८॥
वेत्रवत्याः समं तीर्थं पृथिव्यां न सनातनि ! ।
अहं विष्णुस्तथा ब्रह्मा देवाश्च परमर्षयः ॥२९॥

हो जाता है। वेत्रवती नदी का जहाँ पर साभ्रमती नदी से सङ्गम है ॥१८॥ हे निष्पाप पार्वति ! वहाँ पर स्नान करके विशेष रूप से ब्रह्मघाती भी मुक्त हो जाता है। वहाँ पर विद्यमान खेटक नगर स्वर्ग स्वरूप है ॥१९॥ हे देवि ! वहाँ पर बहुत से ब्राह्मण योगी हो गये। वह पर स्नान करके तथा भोजन करके पुनर्जन्म नहीं होता है ॥२०॥ हे देवि ! वेत्रवती नदी कलियुग में दूसरी गङ्गा कही गयी है। जो मनुष्य सुख और धन प्राप्त करना चाहते हैं ॥२१॥ तथा जो लोग स्वर्ग प्राप्त करना चाहते हैं वे बार-बार स्नान करके इस लोक में सुख भोगकर भगवान् विष्णु के परम पद में जाते हैं ॥२२॥ जो राजा सोमवंश में अथवा सूर्य वंश में उत्पन्न हुए वे आकर वेत्रवती में स्नान करके मुक्त हो गये ॥२३॥ इस नदी के दर्शन से दुःख विनष्ट हो जाता है स्पर्श करने से मानसिक पाप नष्ट होता है जो स्नान करके इसका जल पीता है वह मुक्ति का पात्र हो जाता है ॥२४॥ स्नान, जप तथा होम करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है वाराणसी तीर्थ में जाकर भक्ति पूर्वक चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥२५॥ वहाँ जाकर जो महान् पुण्य प्राप्त होता है वह पुण्य वेत्रवदी नदी में मृत्यु जो जाने पर भी होती है ॥२६॥ वह चतुर्भुज होकर भगवान् विष्णु के परम पद में जाता है। पृथिवी पर जो तीर्थ देवता तथा पितृगण हैं ॥२७॥ हे सुरेश्वरि ! वे सबके सब वेत्रवती में निवास करते हैं। हे वरानने ! बार-बार अधिक कहने से क्या लाभ है ? वेत्रवती के समान पृथिवी पर दूसरा कोई भी तीर्थ नहीं है। मैं विष्णु तथा ब्रह्मा तथा सभी देवता एवं परमर्षि गण ॥२८-२९॥

तिष्ठन्ति देवताः सर्वा वेत्रवत्यां महेश्वरि। एककालं द्विकालं वा त्रिकालं च विशेषतः ॥३०॥
स्नानं कुर्वन्ति ये तत्र ते वै मुक्ता न संशयः ॥३१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे वेत्रवतीमाहात्म्ये त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥

एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

साभ्रमत्यास्तु माहात्म्यं वक्ष्ये देवि ! यथातथम्।
कश्यपो वै मुनिश्रेष्ठस्तपो वै तप्तवान्महत् ॥१॥
अनेकवर्षपर्यन्तं तेन तप्तं महत्तपः। अर्बुदे पर्वते रम्ये नानाद्रुमसमाकुले॥२॥
तत्र गत्वा तपस्तप्तमृषिणा कश्यपेन वै। सरस्वती यत्र रम्या पवित्रा पापनाशिनी॥३॥
एकस्मिन्दिवसे देवि गतोऽसौ नैमिषं प्रति। तदा तत्रऋषयः सर्वे कथां चक्रुरनेकशः॥४॥
तदा तैस्तुद्विजैः सम्यक्पृष्टोऽसौ कश्यपोमुनिः।
अहो कश्यपनःप्रीत्यैगङ्गेहानीयतांप्रभो ॥५॥
भवन्नाम्ना तु सा गङ्गा भविष्यति सरिद्वरा। तेषां वाक्यमुपाकर्ण्य नमस्कृत्य द्विजांश्च तान्॥६॥
आगतो ह्यर्बुदारण्ये सरस्वत्याश्च सन्निधौ। तत्र तप्तं तदा तेन तपः परमदुष्करम्॥७॥

वेत्रवती नदी में रहते हैं विशेष रूप से इसमें जो लोग एक बार या दो वार या तीन बार स्नान करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ॥३०-३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड में वेत्रवती माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ तैंतिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३३।।

साभ्रमती नदी का माहात्म्य वर्णन

श्रीमहादेवजी ने कहा— हे देवि ! साभ्रमती नीद का जैसे माहात्म्य है मैं वैसा ही बतलाता हूँ। मुनियों में श्रेष्ठ कश्यप ऋषि ने महान् तप किया ॥१॥ उन्होंने अनेक वर्षो तक महान् तप अनेक वृक्षों एवं लताओं से भरे हुए अर्बुद पर्वत पर किया ॥२॥ कश्यप ऋषि जाकर वहाँ पर तप किए जहाँ पर पवित्र तथा मनोहर सरस्वती नदी है। वह पापों का विनाश करने वाली है ॥३॥ हे देवि ! वे एक दिन नैमिष तीर्थ में गये। वहाँ वे सभी ऋषि अनेक प्रकार की कथा कर रहे थे ॥४॥ उस समय उन ऋषियों ने महर्षि कश्यप से कहा हे कश्यप मुने ! आप हमलोगों की प्रसन्नता के लिए यहाँ पर गङ्गा नदी को लाइये ॥५॥ वह नदी श्रेष्ठ गङ्गा लोक में आपके नाम से विख्यात होंगी। उन सबों के वाक्य का सुनकर तथा उन ब्राह्मणों को नमस्कार करके ॥६॥ वे अर्बुदारण्य में सरस्वती नदी के सन्निकट आये और वहाँ पर उन्होंने

आराधितो ह्यहं तेन कश्यपेन द्विजेन वै। प्रत्यक्षोऽहं तदा जातस्तस्य द्विजवरस्य च॥८॥
वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ॥९॥

कश्यप उवाच

वरं दातुं समर्थोऽसि देवदेव जगत्पते। शिरःस्थिता या गङ्गेयं पवित्रा पापहारिणी ॥१०॥
मम देया विशेषेण महादेव नमोऽस्तुते। तदा देवि मयोक्तं च गृह्णीष्व त्वं द्विजोत्तम ॥११॥
जटामेकां परित्यज्य दत्ता गङ्गा तदा मया। तां गृहीत्वाद्विजश्रेष्ठः स्वस्थानं हर्षतोययौ ॥१२॥
केशरन्ध्रं नाम तीर्थं वासो वै कश्यपस्य च।
गतस्तत्र तु देवेशि मुनिभिः परिवारितः ॥१३॥
कश्यपेन समानीता काश्यपी सा सरिद्वरा। यस्या दर्शनमात्रेण ब्रह्महा मुच्यते किल ॥१४॥

पार्वत्युवाच

स्नानमात्रेण किं पुण्यं तत्र तीर्थे वदस्व मे।
विश्वनाथकृपालुस्त्वं दयां कुरु ममोपरि ॥१५॥
दर्शने किं भवेत्पुण्यं स्नाने किं वद देवराट्।
महिमा कीदृशो ब्रह्मन्सर्वं त्वं वक्तुमर्हसि ॥१६॥

महादेव उवाच

मया श्रुतान्यनेकानि तीर्थान्यायतनानि च। श्रीविष्णोश्च प्रसादाच्च नद्यः सागरगाः प्रभोः॥१७॥
गङ्गा च यमुनारेवा तापीचैव महानदी। गोदावरी तुङ्गभद्रा कौशिकी गल्लिका तथा ॥१८॥
कावेरी वैदिका भद्रा सरयूः पापहारिणी। अन्याश्च विविधानद्यः सर्वपापहरा भुवि॥१९॥
प्रयागस्तीर्थराजश्च काशीपुष्करएव च। नैमिषारण्यसंज्ञं तु तीर्थं चामरकण्टकम् ॥२०॥

दुष्कर तप किया ॥७॥ उस कश्यप नामक ब्राह्मण ने मेरी आराधना की और उस द्विजश्रेष्ठ के समक्ष मैं प्रकट हो गया ॥८॥ **मैंने कहा—** हे भद्र ! आपके मन में जो हो उस श्रेष्ठ वरदान को आप माँगें ॥९॥ **कश्यप महर्षि ने कहा—** हे देवदेव ! हे जगत्पते ! आप वरदान देने में समर्थ हैं आपके शिर पर जो पवित्र और पाप विनाशनी गङ्गा है ॥१०॥ विशेष रूप से आप उसे मुझे दे दें हे महादेव आपको नमस्कार है। तो मैंने कहा ब्राह्मण उसे आप ले लें ॥११॥ मैंने एक जटा नोचकर गङ्गा को दे दिया। उसको लेकर वे द्विजश्रेष्ठ प्रसन्नता पूर्वक अपने आश्रम में चले गये। केशरन्ध्र नामक तीर्थ में महर्षि कश्यप का निवास है। वे मुनियों के साथ वहीं चले गये ॥१२-१३॥ महर्षि कश्यप ने उस काश्यपी नाम की श्रेष्ठ नदी को लाया। उसका दर्शन कर लेने से ब्रह्मघाती मुक्त हो जाता है ॥१४॥ **पार्वतीजी ने कहा—** वहाँ पर स्नान मात्र से कौन सा पुण्य होता है ? इसे आप मुझे बतलाइये ? हे विश्वनाथ ! आप कृपालु है मुझ पर कृपा कीजिये ॥१५॥ इसका दर्शन करने से कौन सा पुण्य होता है और हे देवों के स्वामिन् ! इसमें स्नान करने से कौन सा पुण्य होता है ? हे ब्रह्मन् ! इस तीर्थ की कैसी महिमा है इन सारी बातों को आप बतलायें॥१६॥ **महादेवजी ने कहा—** मैंने अनेक तीर्थों तथा मन्दिरों को भगवान् विष्णु की कृपा से सागर गामिनी नदियों के विषय में सुना है ॥१७॥ गङ्गा, यमुना, तापी, महानदी, गोदावरी, तुङ्गभद्रा कौशिकी, गल्लिका ॥१८॥ कावेरी, वेदिका, भद्रा, पापविनाशिका सरयू तथा दूसरी भी नदियाँ पाप विनाशिका हैं ॥१९॥ तीर्थ राज

उत्तमं द्वारकाक्षेत्रमर्बुदारण्यमुत्तमम्। एवंविधानि दिव्यानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥२१॥
श्रुतानि तत्र देवेशि मया विष्णोः प्रसादतः। पूर्वं भागीरथेनैव याचितोऽहं तु पार्वती ॥२२॥
तदादत्ताइयं गङ्गा विष्णोर्लोकमभीप्सुना। कश्यपाय पुनर्दत्ता ऋषीणां वचनान्मया॥२३॥
इयं वै काश्यपी गङ्गा रोगदोषहरा सदा। इयं या कथ्यते लोके युगे वै नामपूर्वकम् ॥२४॥
तदहं कथयिष्यामि शृणु सुन्दरि तत्त्वतः। कृते कृतवती नाम त्रेतायां गिरिकर्णिका॥२५॥
द्वापरे चन्दना नाम कलौ साभ्रमती स्मृता। दिने दिने विशेषेण स्नान्ति तस्यां नराश्च ये॥२६॥

सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ।
प्लक्षावतरणे तीर्थे सरस्वत्यां तथेश्वरि ॥२७॥

केदारे च कुरुक्षेत्रे यत्फलं स्नानतो भवेत्। तत्फलं तु नृणां नूनं साभ्रमत्यादिनेदिने ॥२८॥
भवतीति न संदेहो व्यासस्य वचनं यथा । नभस्येऽपरपक्षे तु प्रत्यहं वा सुरेश्वरि ॥२९॥

अमावास्यादिने सम्यक्छ्राद्धदाने च यत्फलम् ।
नरस्तत्फलमाप्नोति साभ्रमत्यवगाहनात् ॥३०॥
कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे श्रीस्थलेमाधवाग्रतः ।
तत्फलं लभते मर्त्योसाभ्रमत्यवगाहनात् ॥३१॥

एषा श्रेष्ठतमा देवि सर्वलोकेषु पावनी। इयं धन्यतमा देवि पवित्रा ह्यघनाशिनी ॥३२॥

यस्यां वै साभ्रमत्यां च एते तिष्ठन्ति नित्यशः ।
पूर्वसम्बन्धिनो ये च उत्तरेयेतथापुनः ॥३३॥

प्रयाग, काशी, पुष्कर, नैमिषारण्य, अमरकण्टक तीर्थ ॥२०॥ उत्तम द्वारका क्षेत्र तथा अवुर्दारण्य इसतरह से अनेक क्षेत्रों को भी मैंने ॥२१॥ हे देवेशि ! भगवान् विष्णु की कृपा से इन सबों को सुना है । हे पार्वति ! पूर्वकाल में भगीरथ ने विष्णु लोक प्राप्ति की कामना से मुझसे प्रार्थना की ॥२२॥ तो उस समय मैंने इस गङ्गा को दिया । फिर कश्यप महर्षि ने याचना की तो ऋषियों के कहने से मैंने उनको भी दिया॥२३॥ यह मेरी काश्यपी गङ्गा रोगों तथा दोषों को विनष्ट करने वाली हैं । इसको पूर्व के युगों में जो इसके नाम थे उनको मैं बतलाता हूँ । सत्ययुग में इसका नाम कृतवती था त्रेता में गिरिकर्णिका नाम था ॥२४-२५॥ द्वापर में इसका नाम चन्दना था और कलियुग में इसका नाम साभ्रमती है । इस नदी में जो लोग विशेष रूप से प्रतिदिन स्नान करते हैं ॥२६॥ वे सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं । हे पार्वति प्लक्षावतरण तीर्थ में सरस्वती नदी में केदार, तथा कुरुक्षेत्र में स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल साभ्रमती में स्नान करने से प्रतिदिन प्राप्त होता है ॥२७-२८॥ इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है । हे सुरेश्वरि ! श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन अथवा अमावस्या के दिन श्राद्ध करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल को मनुष्य साभ्रमती में स्नान करने मात्र से प्राप्त कर लेता है ॥२९-३०॥ कार्तिक पूर्णिमा के दिन कृतिका नक्षत्र का योग होने पर श्रीशैल पर श्रीभगवान् का दर्शन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है वह फल साभ्रमती में स्नान करने मात्र से प्राप्त हो जाता है हे देवि ! यह नदी सबों से श्रेष्ठ है, सभी लोकों में पवित्र है । हे देवि ! यह पवित्रा और पाप विनाशिका है ॥३१-३२॥ जिस साभ्रमती नदी में ये सभी तीर्थ और देवता निवास करते

पाश्चात्या दाक्षिणात्याश्च सर्वे यान्ति च नित्यशः ।
तीर्थयात्रामिषेणैव खेटके ब्रह्मसन्निधौ ॥३४॥
आयान्ति सर्वदा देवि कार्त्तिक्यां च न संशयः ।
तत्र श्राद्धं प्रकुर्वन्ति तथा वै विप्रभोजनम् ॥३५॥
नानाधर्मान्प्रकुर्वन्तिनानायज्ञांश्च नित्यशः । विविधानिच दानानि प्रकुर्वन्तिजनाःसदा॥३६॥
चतुर्युगेषु सर्वेषु नात्रकार्या विचारणा । यवक्रीतोऽथ रैभ्यश्च कक्षीवानुशिजस्तथा ॥३७॥
भृग्वङ्गिरास्तथा कण्वो मेधावी च पुनर्वसुः ।
वन्दी च गुणसम्पन्नः प्राच्यां दिशि उपश्रिताः ॥३८॥
उदीच्यां ये महाभागा मधुमत्प्रमुखास्तथा । सुबन्धुश्च महाभागो दत्तात्रेयश्चवीर्यवान् ॥३९॥
शिखिदीर्घतमाश्चैव गौतमः कश्यपस्तथा । श्वेतकेतुः कहोडाश्च पुलहो देवलस्तथा ॥४०॥
विश्वमित्रभरद्वाजौ जमदग्निश्च वीर्यवान् । ऋचीकपुत्रो गर्गश्च ऋषिरुद्दालकस्तथा ॥४१॥
देवशर्माऽथ धौम्यश्च आस्तीकः कश्यपस्तथा ।
लोमशो नाभिकेतुश्च लोमहर्षणएव च ॥४२॥
ऋषिरुग्रश्रवाश्चैव भार्गवश्च्यवनस्तथा । बालखिल्यादयो ये च सर्वे गच्छन्ति तत्र वै ॥४३॥
कृतस्नाना निराहाराः सदा विष्णुपरायणाः। शङ्खचक्रधरास्सर्वे तटेतिष्ठन्ति नित्यशः ॥४४॥
पितृतीर्थं गयानाम सर्वतीर्थवरं शुभम् । यत्राऽऽस्ते देवदेवेशः स्वयमेव पितामहः॥४५॥
गीता या पितृभिर्गाथा श्राद्धभागमभीप्सुभिः ।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥४६॥
यजेतवाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् । तथा वाराणसी पुण्या पितॄणां वल्लभासदा॥४७॥

है । उसमें तीर्थ यात्रा के व्याज से पौर्बत्य, औतराह, पाश्चात्य और दक्षिणात्य सभी जाते हैं और अन्त में बह्म के सान्निध्य को प्राप्त करते हैं ॥३३-३४॥ हे देवि ! कार्तिक पूर्णिमा के दिन वे सब आते हैं, वहाँ श्राद्ध करते हैं या ब्राह्मण भोजन कराते हैं ॥३५॥ वे अनेक धर्मों को करते हैं और अनेक यज्ञों को सदा करते हैं । वहाँ पर लोग सदा अनेक प्रकार का दान करते हैं । चारो युगों में यह कार्य करते हैं, इसमें किसी भी प्रकार का विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है । यवक्रीत, रैभ्य, कक्षीवान् उशिज, भृगु, अङ्गिरा, कण्व, मेधावी, पुनर्वसु तथा गुण सम्पन्न बन्दी ये पूर्व दिशा में रहने वाले हैं ॥३६-३८॥ उत्तर दिशा में रहने वाले मधुमत्त आदि ऋषिगण हैं । महाभाग सुबन्धु वीर्य, दत्रात्तेय, शिखी, दीर्घतमा, गौतम कश्यप, श्वेतकेतु, कहोड, पुलह, देवल ॥३९-४०॥ विश्वामित्र, भरद्वाज, वीर्यवान जमदग्नि, ऋचीक पुत्र गर्ग, उद्दालक ऋषि ॥४१॥ देवशर्मा, धौम्य, आस्तीक, कश्यप, लोमश, नाभिकेतु, लोमहर्षण ॥४२॥ उग्रश्रवा ऋषि, भार्गव, च्यवन तथा बालखिल्य आदि जितने है वे सब साभ्रमती में जाते हैं ॥४३॥ ये सभी स्नान करके निराहार रहते हैं, शङ्ख, चक्रधारी ये सभी, साभ्रमती के तट पर निवास करते हैं ॥४४॥ पितृतीर्थ गया सभी तीर्थों में श्रेष्ठ तथा कल्याण करने वाला है । वहाँ पर देशों के स्वामी ब्रह्माजी का निवास है ॥४५॥ श्राद्ध भाग प्राप्त करने के कारण पितृगण उसका गान करते हुए कहते हैं । अनेक पुत्रों की प्राप्ति करने की इच्छा इसलिए करना चाहिए कि उन सबों में से शायद कोई गया जाय ॥४६॥ अथवा

या चैव ममसांनिध्याद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। ममाऽऽज्ञया तु देवेशो बिन्दुमाधवसंज्ञकः ॥४८॥
नित्यं तिष्ठति देवेशि वाराणस्यां विशेषतः। अतो धन्यतमा श्रेष्ठा पुरीयं मम सर्वदा ॥४९॥
पितृणां वल्लभं तीर्थं पुण्यं वै विमलेश्वरम् ।
पितृतीर्थं प्रयागं च सर्वतीर्थसमन्वितम् ॥५०॥
साभ्रमत्युदके देवि आयान्तिङ्गा वचनान्मम। वटेश्वरश्च भगवान्माधवेन समन्वितः ॥५१॥
दशाश्वमेधकं पुण्यं गङ्गाद्वारं तथैव च। मन्त्रियोगाश्च देवेशि साभ्रमत्यां वसन्तिहि ॥५२॥
नदाथललितादेवी तीर्थं यत्सप्तधारकम्। तथा मित्रपदं नाम केदारं शङ्करालयम् ॥५३॥
गङ्गासागरमित्याहुः सर्वतीर्थमयं शुभम्। तीर्थं ब्रह्मसरस्तद्वच्छतद्रुसलिले ह्रदे ॥५४॥
तीर्थं तु नैमिषं नाम आज्ञया मम सर्वदा। साभ्रमत्युदके देवि निवसन्ति न संशयः ॥५५॥
श्वेता वल्कलिनी पुण्या ततः श्वेता हिरण्मयी ।
हस्तिमत्यथावार्त्तघ्नी नदी सागरगामिनी ॥५६॥
पितृणां वल्लभा ह्येताः श्राद्धकोटिफलप्रदाः ।
तत्र श्राद्धानि देयानि पुत्रैः पितृहिताय वै ॥५७॥
पाटलं वाडवाख्यं च नगरं तत्र सुन्दरि। साभ्रमत्यां सदा एताः प्राप्तनद्यो विशेषतः ॥५८॥
तत्र स्नानं च दानं च ये कुर्वन्ति नरा भुवि ।
इहलोके सुखं भुक्त्वा यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥५९॥
जम्बूद्वीपं महापुण्यं यत्र पुण्यं विवर्धते। तत्रार्याख्यं महापुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥६०॥
नीलकण्ठमिति ख्यातं तीर्थं नन्दह्रदस्तथा। तथा रुद्रह्रदस्तीर्थं पुण्यं रुद्रमहालयम् ॥६१॥

अश्वमेध याग करके या नीला वृषभ छोड़े । इसी तरह पवित्र वाराणसी पितरों को प्रिय है ॥४७॥ वह मेरे सान्निध्य के कारण भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली है । मेरी आज्ञा से देवताओं के स्वामी विन्दुमाधव॥४८॥ सदा वाराणसी में रहते हैं । अतएव यह मेरी नगरी धन्यतमा है ॥४९॥ पितरों के प्रिय तथा पवित्र विमलेश्वर तीर्थ है । पितृतीर्थ प्रयाग सभी तीर्थों से युक्त है ॥५०॥ हे देवि ! ये सभी मेरी बात मानकर साभ्रमती के जल में आते हैं भगवान् माधव के साथ बटेश्वर ॥५१॥ पवित्र दशाश्वमेध और गङ्गाद्वार भी मेरी आज्ञा से हे देवेशि साभ्रमती में निवास करते हैं ॥५२॥ नन्दा, ललिता देवी सप्तधारा तीर्थ मित्रापद तथा शङ्करजी का निवास केदार तीर्थ में है ॥५३॥ सर्वतीर्थमय गङ्गा सागर, ब्रह्मसारतीर्थ तथा शतद्रु के शुभ जल और ह्रद ॥५४॥ नैमिष तीर्थ मेरी आज्ञा से सदा साभ्रमती के जल में निवास करते हैं ॥५५॥ पवित्र बल्कलिनी श्वेता, हिरण्यमी, हस्तीमयी, आर्तिघ्नी यह सागर गामिनी नदी है ॥५६॥ ये सभी नदियाँ पितरों को प्रिय है और करोड़ों श्राद्ध का फल प्रदान करने वाली हैं । वहाँ पर पुत्रों पितरों के कल्याण के लिए श्राद्ध करना चाहिए ॥५७॥ हे सुन्दरि ! वहाँ पर वाडव नामक पाटल नगर है । विशेष रूप से ये सभी नदिया साभ्रमती में आती है ॥५८॥ वहाँ पर जो मनुष्य स्नान और दान करते हैं वे इस लोक में सुख भोगकर भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं ॥५९॥ जम्बूद्वीप अत्यन्त पुण्यमय है, इसमें पुण्य बढता है, उसमें भी आर्यावर्त महापवित्र है वह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ॥६०॥ प्रख्यात नील

मन्दाकिनी महापुण्या तथाऽच्छोदा महानदी ।
साभ्रमत्यां बहन्त्येताः स्वात्मना दर्शनं गताः ॥६२॥
धूम्रामित्रपदं तद्वद्वैजनाथं दृषद्वरम् । क्षिप्रा नदी महाकालं तथा कालञ्जरो गिरिः ॥६३॥
गङ्गोद्भूतं हरोद्भेदं नर्मदोङ्कारमेव च। गङ्गापिण्डप्रदानेन समान्याहुर्मनीषिणः॥६४॥
एतानिब्रह्मतीर्थानि साभ्रमत्युत्तरे तटे। गुप्तीकृतानि देवेशि देवैर्ब्रह्मपुरोगमैः ॥६५॥
स्मरणादपि लोकानां पापघ्नानि महेश्वरि । किं पुनः श्राद्धदातॄणां मानवानांसुरेश्वरि॥६६॥
ॐकारं पितृतीर्थं च कावेरी कपिलोदकम् ।
संभेदश्चण्डवेगायास्तथैवामरकण्टकम् ॥६७॥
कुरुक्षेत्राच्छतगुणमस्मिन्स्नानादिकं भवेत् । वार्तघ्नीसङ्गमे देवि गणेश्वरपुरःसरैः ॥६८॥
साभ्रामत्यां पुरा नीतं गणैस्तीर्थकदम्कम् । एष तूद्देशतः प्रोक्तस्तीर्थानां सङ्गमो मया ॥६९॥
वागीशोऽपि न शक्नोति तीर्थानां तत्त्वविस्तरम् ।
सत्यं तीर्थं दयातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ॥७०॥
तस्मात्तीर्थे प्रयत्नेन स्नानं कुर्यान्नसंशयः। प्रातःकालो मुहूर्त्तांस्त्रीन्सङ्गवस्तावदेव तु ॥७१॥
तदा स्नानादिकं तीर्थे देवानां प्रीतिदायकम् ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्णस्ततः परम् ॥७२॥
पितॄणां प्रीतिजननं स्नानपिण्डादितर्पणम्। सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्रद्धंतत्रनकारयेत् ॥७३॥
राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु । अह्नो मुहूर्ताविख्याता दशपञ्च च सर्वदा ॥७४॥

कण्ठ तीर्थ, तथा नन्द ह्रदतीर्थ पवित्र रुद्रह्रद और रुद्रमहालय ॥६१॥ मन्दाकिनी अत्यन्त पुण्यमयी है तथा अच्छोदा महानदी ये सब साभ्रमती में बहती है और इन सबों का दर्शन होता है ॥६२॥ धूम्रामित्र पद तथा श्रेष्ठ मूर्ति वैजनाथ क्षिप्रा नदी महाकाल तथा कालञ्जर गिरि ॥६३॥ गङ्गा से उत्पन्न, हरोद्‌भेद क्षेत्र, नर्मदा, ओङ्कारेश्वर इन सबों में पिण्डदान करने से एक समान फल होता है यह मनीषियों ने कहा है ॥६४॥ इन सभी तीर्थों को ब्रह्मा आदि देवताओं ने साभ्रमती के उत्तर तट में छिपा दिया है ॥६५॥ हे महेश्वरि ! ये स्मरण करने से पापों को विनष्ट करते हैं । तो फिर श्राद्ध करने वाले मनुष्यों के विषय में क्या कहना है॥६६॥ पितृतीर्थ ओङ्कारेश्वर, कावेरी, कपिला का जल, चण्डवेगा का संभेद, अमर कण्टक ॥६७॥ हे महादेवि ! जहाँ पर साभ्रमती के साथ गणेश्वर पूर्वक वातघ्नी का सङ्गम स्थल है वहाँ पर स्नान आदि करना कुरुक्षेत्र की अपेक्षा सौ गुना फलप्रद है ॥६८॥ प्राचीन काल में गणों ने साभ्रमती में तीर्थ समूह को लाया। इस तरह से मैंने तीर्थो के सङ्गम स्थल के नामों को गिनाया ॥६९॥ बृहस्पति भी तीर्थों के विस्तार को नहीं बतला सकते हैं । सत्य, दया तथा इन्द्रिय निग्रह ये सबके सब तीर्थ हैं ॥७०॥ अतएव तीर्थ में प्रयत्न पूर्वक स्नान करना चाहिए । प्रातःकाल तीन मुहूर्त तक संगव काल रहता है ॥७१॥ उस समय तीर्थ में स्नान करना देवताओं को प्रसन्न करने वाला होता है । मध्याह्न के तीन मुहूर्त और अपराह्ण के तीन मुहूर्त पितरों को प्रसन्न करने वाले होते हैं । इसी समय में स्नान तथा पिण्डदान आदि करना चाहिए सायंकाल के तीन मुहूर्त में श्राद्ध नहीं करना चाहिए ॥७२-७३॥ वह राक्षसी वेला है, उस काल में सभी कार्य निन्दित होते हैं । दिन में पन्द्रह मुहूर्त विख्यात हैं ॥७४॥ इन सबों में जो आठवाँ मुहूर्त होता है उसको

तत्राष्टमो मुहूर्तोयः स कालःकुतुपःस्मृतः। मध्याह्नेसर्वदा यस्मान्मन्दीभवतिभास्करः ॥७५॥
तस्मादनन्तफलदः पितॄणां पिण्डदानतः। मध्याह्नः खड्गपात्रं च तथा नेपालकम्बलः॥७६॥
रूप्यं दर्भास्तथागावो दौहित्रं कुतुपास्तिलाः ।
पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य संतापकारकाः ॥७७॥
अष्टावेते यतस्तस्मात्कुतपा इतिविश्रुताः। ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतुपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम् ॥७८॥
मुहूर्तपञ्चकं चैतच्छ्राद्धकाले समिष्यते ।
विष्णोर्देहात्समुद्भूताः कुशाः कृष्णतिलाः स्मृताः ॥७९॥
श्राद्धस्य रक्षणार्थाय एवमाहुर्दिवौकसः। तिलोदकाञ्जलिर्देयो जलस्तथैस्तीर्थवासिभिः ॥८०॥
सदर्भहस्तैरेकेन श्राद्धमेवं न हिंस्यते। साभ्रमत्यां नामधेयैरितितीर्थप्रवेशनम्॥८१॥
कारयित्वा मया देवि दत्ता वैकश्यपाय च। मम भक्तः कश्यपोऽसौवल्लभोममसर्वदा ॥८२॥
दत्ता तस्मादियं गङ्गा पवित्रा पापनाशिनी। साभ्रमत्यां महाभागो तीर्थेवैब्रह्मचारिके ॥८३॥
आत्मानं च प्रतिष्ठाप्य तन्नाम्ना शङ्करो ह्यहम् ।
स्थितो लोकहितार्थाय ब्रह्मचारीशसंज्ञकः ॥८४॥
साभ्रमत्या उपकण्ठे ब्रह्मचारीशसंज्ञके। कलौ भक्तो विशेषेण पूजनं कुरुते यदा॥८५॥
इहलोकेसुखं भुक्तवा याति शैवं पदं महत् ।
महद्भिर्व्याधिभिश्चैव पीडितोयदिगच्छति ॥८६॥
यस्याऽऽशुनरश्यतिव्याधिर्दर्शनाच्चमहेश्वरि । गत्वावैतस्य संस्थानउपवासीजितेन्द्रियः ॥८७॥
पूजनं कुरुते भक्तया रात्रौ तिष्ठन्सुनिश्चलः। तदाऽहं योगिरूपेण दर्शनंतस्य यामिहि॥८८॥

कुतप काल कहते है चूकि मध्याह्न में सर्वत्र सूर्यमन्द पड़ जाते हैं ॥७५॥ उस समय पितरों को पिण्ड प्रदान करना अनन्त फल प्रदान करने वाला है । मध्याह्न, खड्गपात्र, तथा नेपाल का कम्बल ॥७६॥ चाँदी, कुश, गौ, दौहित्र, कुतप, तिल, पाप ही कुत्सित है उसको सन्तप्त करने वाला कुतपकाल है इसलिए इन आठों को कुतप कहा गया है । कुतप के बाद के जो चार मुहूर्त ॥७७-७८॥ ये पाँच मुहूर्त श्राद्ध काल में अभिप्रेत होते हैं । कुश तथा काली तिल ये दोनों भगवान् विष्णु के शरीर से उत्पन्न हैं।।७९। देवताओं ने इन सबों को श्राद्ध का रक्षक कहा है । तीर्थवासियों को जल में ही खड़ा होकर तिलाञ्जलि देना चाहिए ॥८०॥ हाथ में कुश लेकर एक हाथ से करने से श्राद्ध विघ्नित नहीं होता है । साभ्रमती में नाम लेकर ही प्रवेश करना चाहिए ॥८१॥ हे देवि ! इस तरह कराकर ही कश्यप महर्षि को इसे प्रदान किया । कश्यप महर्षि मेरे भक्त हैं, और मुझको सदा प्रिय हैं ॥८२॥ इसीलिए मैंने उनको पवित्र तथा पाप विनाशिका गङ्गा को प्रदान किया । हे महाभागे ! साभ्रमती के ब्रह्मचारीश तीर्थ अपने को उसी नाम से प्रतिष्ठित करके लोक कल्याण करने के लिए ब्रह्मचारीश नाम से स्थित हूँ।।८३-८४॥ साभ्रमती के तट के निकट ब्रह्मचारीश तीर्थ में जो भक्त विशेष रूप से मेरी पूजा करते हैं ॥८५॥ वे इस लोक में सुख भोगकर शिवलोक में जाते हैं । यदि बड़ी व्याधि से पीड़ित व्यक्ति भी वहाँ जाता है ॥८६॥ हे महेश्वरि ! दर्शन करने मात्र से उसकी व्याधि विनष्ट हो जाती है । उस स्थान पर जितेन्द्रिय होकर उपवास करने पर उसकी व्याधि विनष्ट होती हैं ॥८७॥ वहाँ पर रात्रि में निश्चल रूप से जो मेरी पूजा भक्ति पूर्वक करता है उसको

ददामि वाञ्छितान्कामान्सत्यं सत्यं वरानने । मम स्थाने विशेषेण समायान्ति च ये जनाः ॥८९॥
तेषां व्याधिप्रशमनं करोमि सुचिरादहम् । चतुरशीतिसंज्ञेयो व्याधिःसंकथितो मया ॥९०॥
ससव्याधिर्विनश्येतदर्शनादेव सुन्दरि । न लिङ्गं वर्तते तत्र मामकं नगदन्दिनि ॥९१॥
स्थानमात्रं तु तत्रैव मामकं नात्र संशयः । एकस्मिन्नेव काले तु अस्यांभूमौमहातपाः ॥९२॥
राजा वै सूर्यवंशीयो ब्रह्मदत्तस्तु वीर्यवान् । तेन राज्ञा तपस्तप्तं बहुकालं सुरेश्वरि ॥९३॥
पञ्चाग्निसाधनं तेन कृतं च बहुधा ततः । मासोपवासकादीनि तपस्तप्तान्यनेकशः ॥९४॥
एवं बहुतरं कालं राज्ञा तप्तं तपो महत् । प्रत्यक्षोऽहं तदा जातो वरार्थं वरवर्णिनि ॥९५॥
ब्रह्मदत्त शृणुष्व त्वं महद्वाक्यं नरेश्वर । यंयं वाञ्छयसे नित्यं तं ददामि न संशयः ॥९६॥
तेनोक्तं मम देवेश वाञ्छितं यदि दीयते । एकएव वरो देव दीयतां मम सर्वदा ॥९७॥

मम नाम्ना हि देवेश ईश्वरो भुवि जायताम् ।
तेन वाक्येन संतुष्टो वरोदत्तो मयाऽनघे ॥९८॥

तदाऽहं तेन वै सार्धं निवसामि सुरेश्वरि । अत्र स्थित्वा निराहारो भक्तिं कुर्यादशेषतः ॥९९॥

ददामि वाञ्छितान्कामान्यावदिन्द्राश्चतुर्दशः ।
अत्राऽऽगत्य तु ये विप्रा रुद्रजाप्यादिकं च यत् ॥१००॥

प्रकुर्वन्ति विशेषेण तेषां दद्मि शृणुष्व तत् । स्त्रीसौख्यं पुत्रसौख्यं च लक्ष्मीवृद्धिकरं पुनः ॥१०१॥
यशऐश्वर्यमेवाऽपि तथा रोगादिनाशनम् । तत्सर्वं प्राप्यते क्षिप्रं वाञ्छितं वै कलौयुगे ॥१०२॥

मैं योगी के रूप में दर्शन देता हूँ ॥८८॥ जो लोग विशेष रूप से मेरे स्थान पर जाते हैं उनकी सारी कामनाओं को पूर्ण कर देता हूँ मेरी यह सत्य बात है ॥८९॥ ऐसे लोगों की व्याधि को मैं शीघ्र शान्त कर देता हूँ । मैंने चौरासी व्याधियों का नाम बतलाया है ॥९०॥ सुन्दरि मेरे दर्शन मात्र से वे सभी व्याधियाँ दूर हो जाती हैं हे पार्वति ! वहाँ पर मेरा लिङ्ग नहीं है ॥९१॥ इसमें कोई संशय नहीं है कि वहाँ पर मेरा स्थान मात्र है । एक समय इस स्थान पर सूर्यवंशी महातपस्वी राजा ब्रह्मदत्त ने बहुत समय तक तपस्या की । इसके बाद उसने कई बार पञ्चाग्नि का का भी सेवन किया । बार-बार उस राजा ने महिने-महीने भर उपवास किया ॥९२-९४॥ इस तरह से उस राजा ने बहुत समय तक तपस्या की । हे वर वर्णिनि ! उसके पश्चात् राजा को मैंने वर देने के लिए दर्शन दिया ॥९५॥ मैंने कहा ब्रह्मदत्त ! तुम मेरी बात सुनो तुम्हारे मन में जो-जो इच्छा हो वह सब मैं दूँगा ॥९६॥ **राजा ने कहा**— हे देव ! यदि आप मुझे वरदान देते हैं तो मेरे मन में एक ही इच्छा है वही आप मुझे दीजिये ॥९७॥ हे ईश्वर ! आप मेरे ही नाम से पृथिवी पर उद्भूत हों । हे पार्वति ! उससे सन्तुष्ट होकर मैंने राजा को वरदान दे दिया ॥९८॥ उसी समय से मैं उस राजा के साथ वहाँ निवास करता हूँ । मनुष्य इस स्थान पर रहकर पूर्ण रूप से भक्ति करे तो ॥९९। उसकी सभी कामनाओं को मैं चौदह इन्द्रों के समय तक पूर्ण करता रहता हूँ । यहाँ पर आकर जो ब्राह्मण रुद्र का जप आदि करते हैं ॥१००॥ ऐसे लोगों को मैं स्त्री सुख और पुत्र जन्य सुख प्रदान करता हूँ और लक्ष्मी की वृद्धि करता हूँ ॥१०१॥ वहाँ यश ऐश्वर्य आदि के साथ-साथ उनके रोगों का नाश करता हूँ । कलियुग में वह मनुष्य शीघ्र ही अपनी अभिप्रेत वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है॥१०२॥

अस्मिन्कलौ युगे घोरे मद्भक्ता भुवि पार्वति ! ।
अत्राऽऽगत्य प्रकुर्वन्ति स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥१०३॥
ददामि वाञ्छितानर्थान्सत्यं सत्यं सुरेश्वरि । ब्रह्मदत्तं तुतन्नाम्नाद्वितीयं ब्रह्मचारिणम् ॥१०४॥
गङ्गाधरं प्रतिष्ठाप उषित्वा दिनपञ्चकम् । स राजा गतवांस्तत्र स्वके राज्ये ततः पुनः॥१०५॥
ब्रह्मदत्तस्तु विख्यातो लोके वै परमोमहान् । राज्यं चकार धर्मज्ञो ह्ययुतं वर्षसंज्ञकम् ॥१०६॥
ततः कतिपये काले राज्यं भुत्तवा स वै नृपः ।
गतवाञ्छिवलोकं तंब्रह्माख्यं पदमुत्तमम् ॥१०७॥
देवौ द्वौ तत्र वर्त्तेते मम नामाभिधायकौ । एकौ वै ब्रह्मचारीशो ह्यन्यो गङ्गाधरः स्मृतः॥१०८॥
मम स्थाने विशेषेण पूजांकुर्वन्तिये जनाः । तेषां सर्वं ददामीह वाञ्छितं नाऽत्र संशयः ॥१०९॥
स्थानमेव सदालिङ्गं गन्तव्यं च नृभिः सदा ।
तत्र पुष्पं च धूपं च नैवेद्यं विविधं तथा ॥११०॥
यः करोति नरः प्राज्ञः म सर्वं लभते ध्रुवम् ।
बिल्वपत्रैश्च पुष्पैश्च तथा वा चन्दनादिभिः ॥१११॥
पूजां कुर्वन्ति मत्स्थाने तेषां सर्वं ददाम्यहम् ।
य इदं शृणुयान्नित्यं ब्रह्मचारिकथानकम् ॥११२॥
इह लोके सुखं प्राप्य व्रजते शिवसन्निधौ । यत्र गङ्गाधरो देवो नित्यं तिष्ठति भूतिदः॥११३॥
ब्रह्मचारीशसंज्ञस्तु द्वितीयो वर्त्तते सदा । ताभ्यां ध्यानसमायोगाच्छिवत्वमश्नुते ध्रुवम् ॥११४॥
दर्शनान्नश्यते रोगः पूजनादायुरनुयात् । स्नानात्तत्र तु देवेशि मुक्तिभागी न संशयः ॥११५॥

हे पार्वति ! कलियुग में मेरे भक्त यहाँ आकर स्नान तथा दान इत्यादि करते हैं ॥१०३॥ मैं सत्य कहता हूँ कि उनके अभिप्रेत कामनाओं को पूर्ण मैं करता हूँ ब्रह्मदत्त को तो अपने नाम से दूसरे ब्रह्मचारि॥१०४॥ वे गङ्गाधर को वहाँ पर स्थापित करके तथा पाञ्च दिन वहाँ रहकर अपने राज्य में चले गये ॥१०५॥ ब्रह्मदत्त संसार में अत्यन्त महान् रूप से विख्यात हुए और उन्होंने दश हजार वर्ष तक राज्य किया॥१०६॥ उसके बाद कुछ समय राज्य करके शिवलोक में चले गये और ब्रह्म नामक पद को प्राप्त किए ॥१०७॥ वहाँपर मेरे नाम से दो देवता है ब्रह्मचारी और गङ्गाधर ॥१०८॥ जो लोग मेरे स्थान पर विशेष से पूजा करते हैं उन लोगों को मैं सभी अभिप्रेत वस्तुओं को प्रदान करता हूँ ॥१०९॥ वहाँ का स्थान ही शिवलिङ्ग है वहाँ पर मनुष्यों को सदैव जाना चाहिए वहाँ पर धूप, पुष्प तथा अनेक प्रकार के नैवेद्य का भोग लगाना चाहिए ॥११०॥ जो प्राज्ञ पुरुष वहाँ पूजा करते हैं, उनके सब कुछ प्राप्त होता है । वहाँ विल्वपत्र तथा पुष्प एवं चन्दन आदि से ॥१११॥ मेरे स्थान की पूजा जो लोग करते हैं उनको मैं सबकुछ प्रदान करता हूँ । जो व्यक्ति इस ब्रह्मचारी की कथा को सुनता है ॥११२॥ वह इस लोक में सुख भोगकर शिवलोक में जाता है । वहाँ पर गङ्गाधर नामक देवता सदैव विद्यमान रहते हैं ॥११३॥ ब्रह्मचारी नामक दूसरे देव भी वहाँ सदा निवास करते हैं । उन दोनों देवताओं का ध्यान करने वाला मनुष्य शिवत्व को प्राप्त कर लेता है ॥११४॥ वहाँ दर्शन करने से रोग का नाश होता है और पूजन करने से आयु की प्राप्ति होती

शृणु सुन्दरि वक्ष्यामि तीर्थं परममद्भुतम्। राजखड्गइति ख्यातं साभ्रमत्यां विशेषतः ॥११६॥
सूर्यवंशसमुत्पन्नो राजा वै कर्त्तनस्तथा। दुराचारी तु पापात्मा ब्राह्मणानां च निन्दकः॥११७॥
गुरुद्रोही सदा रुष्टो निन्दकः सर्वकर्मणाम्। परदाररतो नित्यं नित्यं विष्णुप्रदूषकः॥११८॥
प्रजापीडनकं नित्यं करोति बहुधा ततः। एवं विधः स दुष्टात्मा पृथिव्यां वर्त्तते सदा॥११९॥
क्रियत्येवं गते काले शृणु सुन्दरि तत्त्वतः। पापेन दैवयोगाच्च कुष्ठित्वं समजायत॥१२०॥
निरीक्ष्य स्वं शरीरं तु विचार्य च पुनःपुनः ।
किंकर्त्तव्यमिति ध्यायन्निति चिन्तापरोऽभवत् ॥१२१॥
कदाचिद्दैवयोगाच्च क्रीडार्थं गतवान्वने । तत्र साभ्रमतीतीरं समासाद्य च तिष्ठति ॥१२२॥
तत्र स्नानं कृतं तेन पीतं पानीयमुत्तमम्। तत्र स्नानेन सपदि शरीरंदिव्यसंज्ञकम् ॥१२३॥
यथा स्वर्णमयी मूर्त्तिर्दृश्यते नगनन्दिनि । तद्वदेव तु संजातः स राजा नाऽत्र संशयः ॥१२४॥
दिव्यरूपमनुप्राप्य कियत्कालंततो नृपः । राज्यं भुक्तवा तु देवेशि गतो वै परमंपदम्॥१२५॥
तदातीर्थमिदं जातं राजखड्गेति संज्ञकम्। अत्र स्नानं प्रकुरुते दानं यो वै ददाति च ॥१२६॥
इह लोके सुखंभुक्तवा याति विष्णोः परं पदम् ।
न रोगो वर्त्तते तेषां न शोकश्च कदाचन ॥१२७॥
प्रत्यहं कुरुते स्नानं खड्गेऽस्मिन्राजसंज्ञके। यो नरः प्राप्नुयात्स्वर्गं ब्रह्माद्यैः स च पूज्यते॥१२८॥
कृते सत्येश्वरो नाम त्रेतायां भुवनेश्वरः । राजेश्वरसमाख्यातो द्वापदे नगनन्दिनि ॥१२९॥

है तथा स्नान करने वाला मनुष्य भोग तथा मोक्ष का पात्र हो जाता है ॥११५॥ हे सुन्दरि ! सुनो मैं तुमको अत्यन्त अद्भुत तीर्थ को बतलाता हूँ। साभ्रमती में राजा खड्ग नामक तीर्थ विख्यात है ॥११६॥ सूर्यवंश में उत्पन्न कर्तन नाम का राजा था वह दुराचारी, पापी और ब्राह्मणों का निन्दक था ॥११७॥ वह अपने गुरु से द्रोह करता था रुष्ट होने के कारण सदा उनकी निन्दा करता था। वह सदैव परस्त्री से प्रेम करता था और भगवान् विष्णु की निन्दा करता था। प्रायः प्रजाओं को दुःख देता था इस प्रकार का राजा पृथिवी पर विद्यमान था ॥११८-११९॥ इस तरह से कुछ समय बीत जाने पर अपने पाप के कारण वह कोढी हो गया ॥१२०॥ अपने शरीर को देखकर और बार-बार विचार करके सोचता था कि मुझे अब क्या करना चाहिए ॥१२१॥ एक बार दैवयोग से वह क्रीडा करने के लिए वन में गया और वह साभ्रमती नदी के तट पर जाकर बैठ गया ॥१२२॥ वहाँ पर उसने स्नान किया और उस नदी का जल पीया। स्नान करने के कारण राजा का शरीर शीघ्र ही दिव्य हो गया ॥१२३॥ हे पार्वती ! वह स्वर्ग निर्मित मूर्ति के समान दिखने लगा। वह राजा स्वर्ण मूर्ति के समान हो गया ॥१२४॥ दिव्य रूप को प्राप्त करके राजा कुछ दिनों तक राज्य का भोग करके परम पद को प्राप्त किया ॥१२५॥ समय से उस तीर्थ का नाम राजा खड्ग हो गया। जो मनुष्य वहाँ पर स्नान करके दान करता है ॥१२६॥ वह इस लोक में सुख भोगकर विष्णु लोक में जाता है। उन लोगों को तो कभी रोग होता है और न शोक होता है ॥१२७॥ जो इस राजा खड्ग तीर्थ में प्रतिदिन स्नान करता है वह मनुष्य स्वर्ग जाता है और ब्रह्मा आदि देवता उसकी पूजा करते हैं ॥१२८॥ वहाँ पर मैं कृतयुग में सत्येश्वर, त्रेता में भुवनेश्वर, द्वापर में राजेश्वर ॥१२९॥ इस कलियुग

अस्मिन्कलियुगे घोरे गुप्तीभूतोऽथ विश्वराट् ।
अतो वै तीर्थसम्भूतं राजखड्गेतिसञ्ज्ञकम् ॥१३०॥
पितॄणां तर्पणं चाऽत्र श्रद्धया ये प्रकुर्वते। ते नराः पुण्यकर्माणः पृथिव्यां परिकीर्तिताः॥१३१॥
ब्रह्मघ्ना बालहन्तारः स्नानं येऽत्र प्रकुर्वते । यैर्दोषैरहितास्ते च गच्छन्ति शिवसन्निधौ ॥१३२॥
नीलोत्सर्गं करिष्यन्ति साभ्रमत्यां नराश्च ये। तेषां वै पितरस्तृप्ता यावदाभूतसंप्लवम्॥१३३॥
इदमाख्यानकं दिव्यं राजखड्गेतिसंज्ञकम् । ये शृण्वन्ति नरा देवि न तेषां विद्यते भयम्॥१३४॥
रोगा दोषा विनश्यन्ति श्रवणात्पठनात्ततः ॥१३५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे साभ्रमतीमाहात्म्यं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१३४॥

एक सौ पैंतिसवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

साभ्रमत्यपि यान्देशान्नन्दिकुण्डाद्विनिःसृता। गच्छन्ती पावयामास कान्कान्देशान्वदस्व मे ॥
चकार कानि तीर्थानि विलङ्घ्यार्बुदपर्वतम् ॥१॥

सूत उवाच

इति तत्रोदिते देव्या महादेवः स विश्वराट्। उवाच वचनं तां वै पार्वतीं विश्वमोहिनीम्॥२॥

में वहाँ मैं गुप्त रूप से विश्वराट् संज्ञक हूँ । इसीलिए इस तीर्थ का नाम राजाखड्ग है ॥१३०॥ यहाँ पर जो लोग श्रद्धा पूर्वक पितरों का श्राद्ध करते हैं वे पुण्यवान लोग पृथिवी पर प्रख्यात हो जाते हैं ॥१३१॥ ब्रह्मघाती, बालकों को मारने वाले भी जो लोग यहाँ पर स्नान करते हैं वे उन दोषों से छूटकर भगवान् शिव के लोक में जाते हैं ॥१३२॥ जो लोग साभ्रमती में नील वृष को छोड़ते हैं उनके पितृगण महाप्रलय काल तक तृप्त रहते हैं ॥१३३॥ इस राजा खड्ग के वृत्तान्त को जो लोग सुनते हैं उनको किसी प्रकार का भय नहीं है ॥१३४॥ उसके सुनने और पढ़ने से सारे रोग और दोष विनष्ट हो जाते हैं ॥१३५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत साभ्रमती माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ चौतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३४॥

नन्दि तीर्थ की महिमा का वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— नन्दी कुण्ड से निकली हुयी साभ्रमती नदी जिन देशों में जाती है उन देशों को आप मुझे बतलाइये । अर्बुद पर्वत को पार करके इसने कितने तीर्थों का निर्माण किया ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** देवी के द्वारा इस तरह से पूछने पर विश्वराट् शङ्करजी ने विश्वमोहिनी पार्वतीजी से कहा ॥२॥

महादेव उवाच

नन्दिकुण्डात्प्रथमतस्तीर्थात्परमपावनात् । कपालमोचनं तीर्थं मुनिभिः सम्प्रकारितम् ॥३॥
सर्वतेजोऽधिकं तीर्थं पावनात्पावनं परम् । अत्र मया परित्यक्तं कपालं ब्रह्मसञ्ज्ञकम्॥४॥
कपालमोवनं तीर्थमतो जातं हि पार्वति। पावनं सर्वभूतानां प्रकटं लोकविश्रुतम्॥५॥
कपालकुण्डमाख्यातं तत्तीर्थं तीर्थराजकम् । यत्र देवास्तथानागागन्धर्वाः किन्नरादयः ॥६॥
निवसन्ति महात्मानस्तीर्थे वै निर्मलेशुभे। त्रैलोक्य विश्रुतं तीर्थज्ञानदं मुक्तिदायकम् ॥७॥
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कपालेशं प्रपूजयेत् ।
उपोष्य रजनीमेकांकृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ॥८॥
तत्रापि वस्त्रदानेन अग्निहोत्रफलं लभेत् । तस्मिंस्तीर्थे तु यः कश्चिद्दर्शनव्रतमास्थितः ॥९॥
संत्यज्य देहमात्मानं शिवलोकं व्रजेद्ध्रुवम् ।
अस्मिंस्तीर्थे पुरा स्नानात्सौदासौ ब्रह्महत्यया ॥१०॥
मोचितो विमलं ज्ञानं प्राप्तवान्वै सुरेश्वरि । भगीरथान्वये जातः सुदासाख्यो महाबली ॥११॥
तस्य पुत्रोऽमित्रसहः सौदासेति च विश्रुतः। वसिष्ठशापतः प्राप्तः सौदासो राक्षसीं तनुम् ॥१२॥
साभ्रमत्यां कृतस्नानो विमुक्तः शापजादधात् ।
अत्र गङ्गा च यमुनागोदावरीसरस्वती ॥१३॥
नन्दितीर्थे वसन्त्येताः पवित्राः पुण्यदाःसदा ।
गोदानं भूमिदानं च शय्यादानं तथैव च ॥१४॥
कन्यादानं विशेषेण कर्तव्यं ज्ञानिभिर्नरैः । एतद्दानसमं प्रोक्तं साभ्रमत्यवगाहनम् ॥१५॥

महादेवजी ने कहा— सर्वप्रथम अत्यन्त पवित्र नन्दी कुण्ड नामक तीर्थ से श्लोक में ब्रह्म कपाल तीर्थ का निर्माण किया उसका प्रकाशन मुनियों ने किया ॥३॥ सभी तीर्थों से अधिक तेज: सम्पन्न इस परम पावन तीर्थ में मैंने ब्रह्मकपाल का परित्याग किया ॥४॥ हे पार्वति ! इसीलिए यह तीर्थ कपाल मोचन कहलाया यह लोक में विख्यात तथा सभी जीवों को पवित्र करने वाला है ॥५॥ वह तीर्थों का राजा कपाल कुण्ड कहा जाता है । वहाँ पर देवता गन्धर्व, नाग और किन्नर इत्यादि ॥६॥ निर्मल और शुभ तीर्थ में महात्माओं का निवास होता है । त्रैलोक्य में यह विख्यात है कि यह तीर्थ ज्ञान और मुक्ति देने वाला होता है ॥७॥ वहाँ पर स्नान करके तथा पवित्र होकर कपालेश की विशेष रूप से पूजा करे । एक रात्रि तक उपवास करके तथा ब्राह्मण भोजन कराकर ॥८॥ वहाँ पर वस्त्र दान देने से अग्निहोत्र के फल की प्राप्ति होती है। उस तीर्थ में जो कोई भी दर्शन का व्रत करता है ॥९॥ वह अपने शरीर का त्याग करके शिवलोक में जाता है । प्राचीन काल में यहाँ स्नान करके सौदास ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो गये ॥१०॥ हे सुरेश्वर! पाप मुक्त होने के बाद वे निर्मल ज्ञान प्राप्त किए । भगीरथ के ही वंश में सुदास उत्पन्न हुए थे ॥११॥ सुदास का पुत्र मित्रसह हुआ । वसिष्ठ महर्षि के शाप से सौदास राक्षस शरीर को प्राप्त किए थे ॥१२॥ साभ्रमती में स्नान करके वे शाप जन्य पाप से मुक्त हो गये । नन्दि तीर्थ में गङ्गा, यमुना और सरस्वती का निवास है । ये सभी नदियाँ और पुण्यप्रद है । गोदान, भूमिदान और शय्यादान ॥१३-१४॥ और ज्ञानी मनुष्यों को विशेष रूप से कन्यादान करना चाहिए । इन सभी दानों के समान पुण्यप्रद साभ्रमती में

यत्र वै सकलान्येव पतितानीह भूतले। वारिणा स्पर्शमात्रेण शुद्धत्वं यान्ति तान्यपि ॥१६॥
अत्र श्राद्धं प्रकुर्वाणो नरो वै भक्तितत्परः। पितरस्तस्य सन्तुष्टा गच्छन्ति परमं पदम् ॥१७॥
एतदाख्यानकं दिव्यं ये शृण्वन्ति नराः सदा ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता विष्णोः सायुज्यमाप्नुयुः ॥१८॥
कर्मणा मनसा वाचा ये स्तुवन्ति महेश्वरम्। न तेषां विद्यते दुःखं यावदाभूतसंप्लवम् ॥१९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणेपञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे नन्दितीर्थमहिमा नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३५॥

एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अथ नन्दिप्रदेशात्तु यथा साभ्रमती नदी। समायाता विकीर्णं च वनं विप्रर्षिसेवितम् ॥१॥
बहुधा जलवेगेन पर्वतानां च रोधसः। सप्तधा प्रविभक्ता च दक्षिणोदधिगामिनी ॥२॥
आद्या साभ्रमती पुण्या द्वितीया सेटिका तथा ।
तृतीया बल्किनी पुण्या चतुर्थी च हिरण्मयी ॥३॥
सर्वपापहरा प्रोक्ता हस्तिमत्यथ पञ्चमी। वेत्रवती सा च षष्ठी वृत्रेण निर्मिता पुरा ॥४॥
इयं सा परमा देवी वृत्रकूपाद्विनिःसृता। वेत्रवती ततो जाता महापाप्रणाशिनी ॥५॥

स्नान है ॥१५॥ इसमें सभी पतितों की जल के स्पर्श मात्र से शुद्धि हो जाती है ॥१६॥ वहाँ पर भक्ति पूर्वक श्राद्ध करने वाले मनुष्यों के पितृगण सन्तुष्ट होकर परमपद को प्राप्त करते हैं ॥१७॥ इस दिव्य आख्यान को जो मनुष्य सदैव सुनते हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करते हैं ॥१८॥ जो लोग मन, वाणी और कर्म से शङ्करजी की स्तुति करते हैं उन लोगों को महाप्रलय काल तक कोई दुःख नहीं होता है ॥१९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत नन्दि तीर्थ की महिमा वर्णन नामक एक सौ पैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३५।।

विकीर्ण तीर्थ का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— इसके पश्चात् नन्दि प्रदेश से साभ्रमती नदी विप्रर्षियों से सेवित विकीर्ण वन में आयी ॥१॥ बहुत अधिक जल के वेग पर्वतों के तट से सात-सात धाराओं में विभक्त होकर वह दक्षिण समुद्र में जाती है ॥२॥ पहली धारा का नाम साभ्रमती है । दूसरी धारा से टिका है । तीसरी धारा पवित्र कल्किनी है चौथी हिरण्मयी है ॥३॥ पाञ्चवी हस्तीमती अत्यन्त पवित्र है । छठी धारा वेत्रवती है उसका

भद्रामुखी शुभप्राया सप्तमी लोकपावनी। एतैस्तु सप्तभिर्देवि तांस्ताञ्जनपदांस्तथा ॥६॥
पवित्रीकृत्य चैकेन सप्तस्त्रोता: प्रतिष्ठिता। विकीर्णतीर्थेय: श्राद्धं पितृनुद्दिश्यदास्यति ॥७॥
गयापिण्डप्रदानस्य फलं यत्तद्भविष्यति। अवकीर्णाच्युता ये च लुप्तपिण्डोदकक्रिया: ॥८॥
ते विकीर्णे प्रमुच्यन्ते दत्तपिण्डोदकक्रिया: । तत्र श्राद्धं तु य: कुर्याद्गाणपत्यं भवेद्ध्रुवम् ॥९॥
तस्मात्रयीविधानेन श्रद्धया श्राद्धमाचरेत् । अस्मिंस्तीर्थे विशेषेण सप्तनद्युदये द्विजा: ॥१०॥
स्नानं कुरुत विप्रेन्द्रा ऋषिलोकमभीप्सव: । इत्युक्तं कश्यपेनाऽथ द्विजान्प्रति विशेषत: ॥११॥
यदि चेत्क्रियते स्नानं सर्वदु:खापहं सदा। तीर्थानां प्रवरं तीर्थं क्षेत्राणामुत्तमोत्तमम् ॥१२॥
तीर्थमेतद्विकीर्णं च शुभदं रोगदोषहृत्। कुर्वन्त्यत्र विशेषेण ये स्नानं सर्वदा कलौ॥१३॥
ते नरा: पुण्यभाजो हि जायन्ते नाऽत्रसंशय: ।
गयातीर्थसमं तीर्थं विकीर्णं पावनंपरम् ॥
पितृणां पुण्यदं नित्यं लोकानां दु:खनाशनम् ॥१४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे विकीर्णतीर्थमहिमा नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय: ॥१३६॥

निर्माण प्राचीन काल में वृत्रासुर ने किया ॥४॥ यह धरा वृत्रकूप से निकली है इसीलिए वेत्रवती महापापों को विनष्ट करने वाली हो गयी ॥५॥ लोक पावनी सातवीं धारा मङ्गलमयी भद्रमुखी है । हे देवि ! ये सात धाराएँ विभिन्न जनपदों को ॥६॥ पवित्र करके सात स्त्रोतों वाली हो गयी है । विकीर्ण तीर्थ में जो अपने पितरों के उद्देश्य से पिण्डदान करता है ॥७॥ उससे उसको गया में पिण्डदान करने से होने वाले पुण्य की प्राप्ति होती है । जो लोग अवकीर्ण से च्युत है और उनकी पिण्डदोदक क्रिया लुप्त हो गयी ॥८॥ वे विकीर्ण तीर्थ में पिण्डदान और तर्पणकर के मुक्त हो जाते हैं । विकीर्ण तीर्थ में श्राद्ध करने वाले निश्चित रूप से गाणपत्य पद को प्राप्त करते हैं ॥९॥ अतएव वैदिक विधि से श्रद्धा पूर्वक श्राद्ध करना चाहिए। हे ब्राह्मणों इस तीर्थ में सात नदियों के उत्पत्ति स्थान पर ॥१०॥ ऋषि लोक को प्राप्त करने के इच्छुक आप लोग स्नान करें । इस बात को काश्यप ऋषि ने ब्राह्मणों को विशेष रूप से कहा ॥११॥ यदि सभी दु:खों को दूर करने वाला सभी तीर्थों और क्षेत्रों में श्रेष्ठ इस तीर्थ में स्नान करता है तो उसके सभी दु:ख दूर हो जाते हैं ॥१२॥ यह विकीर्ण तीर्थ कल्याण करने वाला तथा रोग को दूर करने वाला है । कलियुग जो लोग विशेष रूप से सदा स्नान करते हैं ॥१३॥ वे मनुष्य पुण्य के पात्र होते हैं इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । गया तीर्थ के ही समान विकीर्ण तीर्थ पवित्र है । यह पितरों को पुण्य प्रदान करता है और लोगों का दुखनाश करता है ॥१४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत विकीर्ण तीर्थ की महिमा का वर्णन नामक एक सौ छत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३६।।

एक सौ सैंतिसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

तीर्थादस्मात्परं तीर्थं श्वेतोद्भवमनुत्तमम् । यत्र श्वेता नदी जाता मत्पृष्ठोदरभस्मना ॥१॥
विश्रुता त्रिषु लोकेषु सर्वपापप्रणाशिनी । हराङ्गभस्मसंयोगाज्जाता देवैस्तु मानिता ॥२॥
तस्यां स्नातः शुचिर्दान्तस्त्रिरात्रमुषितः पुमान् ।
महाकालेश्वरं दृष्ट्वा रुद्रलोके महीयते ॥३॥
पिण्डं पितृभ्यो यो दद्यात्तस्यास्तीरे कुशैस्तिलैः ।
सुतृप्ताः पितरस्तस्य भवन्तीति न संशयः ॥४॥
श्वेतगङ्गा महापुण्या दुःखदारिद्र्यमोचनी । यत्र स्नानेन भो देवि परं सुखमवाप्यते ॥५॥
तस्या वै सङ्गमे पुण्ये नित्यं तिष्ठामि पार्वति ! ।
येऽत्र दानं प्रकुर्वन्ति स्नानं च तत्र सुन्दरि ! ॥६॥
तदनन्तफलं तस्य भवेद्वै नाऽत्रसंशयः । तत्र भूतेश्वरो देवः सङ्गमे वसते ध्रुवम् ॥७॥
तत्र धूपं च दीपं च पुष्पमारार्तिकं तथा । ये कुर्वन्ति नरश्रेष्ठास्ते नराः पुण्यरूपिणः ॥८॥
बिल्वदलं समादाय यो ददाति शिवोपरि । वाञ्छितं लभते नित्यं श्वेतायांशिवसन्निधौ ॥९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे श्वेतातीर्थं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७॥

श्वेता तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

महादेवजी ने कहा— इस तीर्थ से बड़ा तथा सर्वश्रेष्ठ श्वेतोद्भव है । वहाँ पर श्वेता नदी मेरे पीठ और उदर के भस्म से उत्पन्न हुयी है ॥१॥ यह सभी पापों का नाश करने वाली और त्रैलोक्य में विख्यात है । देवता मानते हैं कि शङ्करजी के शरीर के भस्म से यह उत्पन्न हुयी है ॥२॥ उसमें स्नान करके पवित्र बना हुआ तीन रात तक वहाँ पर निवास करके महाकालेश्वर का दर्शन करके रुद्र लोक में पूजित होता है॥३॥ जो लोग वहाँ पिण्ड दान कुश और तिल से करते हैं उनके पितर तृप्त हो जाते हैं, इमसें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥४॥ श्वेतागङ्गा अत्यन्त पुण्यमयी है और दुःख दारिद्र्य को विनष्ट करने वाली है । हे देवि ! वहाँ पर स्नान करने से श्रेष्ठ सुख की प्राप्ति होती है ॥५॥ उसके पवित्र सङ्गम स्थल में मैं नित्य ही निवास करता हूँ । हे सुन्दरि ! जो लोग यहाँ पर स्नान और दान करते हैं ॥६॥ तो उसका उन लोगों को अनन्त फल की प्राप्ति होती है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । वहाँ पर सङ्गम भूतेश्वर देव का निवास है ॥७॥ वहाँ पर धूप, दीप, पुष्प और आरती जो श्रेष्ठ मनुष्य करते हैं वे पुण्य स्वरूप हैं ॥८॥ यहाँ पर विल्व पत्र लेकर जो लोग शङ्करजी पर चढ़ाते हैं वे श्वेता में शिवजी के सन्निकट अपने अभिप्रेत सभी फलों को प्राप्त करते हैं ॥९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत श्वेतातीर्थ वर्णन नामक एक सौ सैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३७॥